

शिक्षा-मन्त्रालय, भारत सरकार, की आर्थिक सहायता से मुद्रित

सर्वाधिकार सुरक्षित

मूल्य ५० रुपया

श्री रमेशचन्द्र देव, जेनरल सेक्रेटरी, सर्वे भारतीय काशितज्ञ न्यास, दुर्ग रामनगर, वाराणसी (भारत) द्वारा प्रकाशित एवं श्री रमाशंकर, तारा प्रिंटिंग वर्क्स, वाराणसी द्वारा मुद्रित ।

विषयसूची

प्राक्चन	1—111
भूमिका	v—xxxiii
अध्याय विषयसूची	xxxv—xxxix
निर्धारित पाठ के अध्यायों का ब्रह्मदेव संस्करण के अध्यायों से साम्यनिर्देश	xi
वादनपुराण—संस्कृतमूल तथा अनुवाद	१—४६५

परिशिष्ट

परिशिष्ट १—वामनपुराण के विषयों का अन्य पुराणों तथा रामायण-महाभारत के विषयों से साम्य-निर्देश	१—३
परिशिष्ट २—आख्यानो, स्तोत्रों तथा व्रत-उपवासों की सूची	१०—११
परिशिष्ट ३—व्यक्ति-नामसूची	१२—३४
परिशिष्ट ४—भौगोलिकनामसूची	३५—४६
परिशिष्ट ५—वनरपतिओं तथा जन्तुओं की नामसूची	४७—५५
परिशिष्ट विषयक अतिरिक्त संनिवेश एवं संशोधन	५७—५८
श्लोकार्थसूची	१—१७

सर्वभारतीय काशिराज न्यास

ना

न्यासिमण्डल

१. महामहिम महाराज काशीनरेश डा० विभूतिनारायणसिंह एम ए, डी लिट् रामनगर दुर्ग, वाराणसी (अध्यक्ष) ।

भारत सरकार द्वारा नियुक्त सदस्य

२. श्रीरघुनाथसिंह, एम ए, एल एल बी, वाराणसी ।

उत्तर प्रदेश सरकार द्वारा नियुक्त सदस्य

३ डा० सम्पूर्णानन्द, डी लिट् वाराणसी, भूतपूर्व राज्यपाल, राजस्थान ।

४ प० कमलापति त्रिपाठी अध्यक्ष, उत्तरप्रदेश कांग्रेस कार्य समिति ।

महामहिम महाराज काशीनरेश द्वारा नियुक्त सदस्य

५ डा० सुनीलकुमार चटर्जी, एम ए, डी लिट्, एफ ए एस बी कलकत्ता विश्वविद्यालय में तुलनात्मक भाषाशास्त्र के इमरिटस प्रोफेसर राष्ट्रीय प्राध्यापक, कलकत्ता ।

६. महाराजकुमार डा० रघुबीरसिंह, एम. ए, एल एल बी, डी लिट्, रघुबीरनिवास, सीतामऊ (मालवा) ।

७ प० गिरिधारीलाल मेहता मैनेजिंग डाइरेक्टर जार्जिन हेण्डरसन लिमि०, दि सिन्धिवाय स्टीम नेविगेशन लिमि०, ट्रस्टी वल्लभराम सालिमाम ट्रस्ट, कलकत्ता, वाराणसी ।

पुराण-समिति के सदस्य

१ महामहिम महाराज काशीनरेश डा० विभूतिनारायणसिंह एम ए, डी लिट् (अध्यक्ष) ।

२. पद्मभूषण पण्डितराज श्रीराजेश्वर शास्त्री द्रविड, प्राचार्य साङ्गवेद विद्यालय, वाराणसी ।

३ पद्मभूषण डा० वे राघवन, एम ए, पी एच डी सस्कृत विभागाध्यक्ष, मद्रास विश्वविद्यालय, मद्रास ।

४ डा० गौरीनाथ शास्त्री, उपकुलपति, वाराणसेय सरकुल विश्वविद्यालय, वाराणसी ।

५ डा० रामकरण शर्मा, शिक्षा परामर्शदाता (सस्कृत), शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली ।

६ डा० लुडविग स्टर्नराख, धर्मशास्त्र के सम्मानित अध्यापक, वरिष्ठ 'सोशल अफेयर्स' अधिस्त्री, संयुक्तराष्ट्र, न्यूयार्क, अमेरिका ।

७ प्रो० जानन्दरवरूप शुभ, एम ए, शास्त्री, उपनिदेशक, पुराण-विभाग, काशिराज न्यास, दुर्ग रामनगर, वाराणसी ।

प्रान्कथन

१५ अगस्त, १९४७ ई०, को भारत स्वतन्त्र राष्ट्र घोषित हुआ। जिससे इसक दीर्घकालीन विदेशी शासन का अन्त हुआ। भारत को यह दीर्घकालीन पराधीनता किसी देश के इतिहास में सम्भवतः सबसे अधिक रही। भारत देश स्वतंत्र तो हुआ, परन्तु भारत को यह स्वतंत्रता विदेशी साम्राज्य की अनेक सृष्टियों से युक्त तथा भारत विभाजन के फलस्वरूप असंख्य रक्तरेखित घटनाओं से परिपूर्ण थी।

ऐसी स्थिति में देश के ४८ प्रतिशत भाग पर राज्य करने वाले देशी राजाओं के लिये, अपना सर्वस्व दान कर, एक अव्यवस्था प्रभुता सम्पन्न भारतीय प्रजातन्त्र राज्य के निर्माण में पूर्ण सहयोग देने का अवसर प्राप्त हुआ।

फलतः स्वर्गीय श्री सरदार वल्लभभाई पटेल के आह्वान पर इन सभी राजाओं ने भारतमाता के महान् हित को ध्यान में रखते हुए अपने राज्यों के विलयन की सहर्ष स्वीकृति दे दी। युरों से ये शासक अपनी प्रजा पर शासन करते आए थे, इनमें से अनेक राज्यों को राज्य परम्परा तो अत्यन्त प्राचीन काल से ही भारत के चिर अतीत से सम्बद्ध थी। इन राजाओं ने आरम्भ के समय अपने राज्यों की रक्षा की सपर्य के समय इन्हें संचालित क्रिया तथा सामान्यतः अपनी पुत्रवत् प्रजा का वित्त्वत् सरक्षण किया। अब ये ही राजा भारतीय जनता के हाथों में स्वायत्त शासन की बागडोर देकर एव उन्हें स्वेच्छा से राजनीतिक व्यवस्था करने का तथा अपने भविष्य के निर्माण का अमूल्य अवसर प्रदान कर एव राष्ट्र निर्माण के कार्यों में उन्हीं के साथ कंधे से कंधा मिलाकर सक्रिय सहयोग करने को मस्तुत हुए। इस प्रकार ५७६ राज्यों के विलय का महान् कार्य केवल दार्द्व वर्षों में सम्पन्न हो गया, अव्यथा उसे पूरा करने में कई दशक लग जाना भी सम्भव था।

भारत के राजवशा अब समय की गति के अनुसार अपने कार्यक्षेत्र को परिवर्तित कर देश के उत्थान के लिए राष्ट्रजीवन के विविध क्षेत्रों में लग गए। मैंने स्वयं भी संस्कृत-विद्या और उसकी संस्कृति के पुनर्निर्माण के कार्य को अपनाया जो मेरे राजवशा की चिर स्थापित परम्परा के अनुकूल है।

भारत सरकार ने सर्वभारतीय काशिराज न्यास की स्थापना में मेरी सहायता की। इस न्यास का प्रमुख उद्देश्य है संस्कृत विद्या की उन्नति एव भारतीय संस्कृति का पोषण करना। न्यास की स्थापना में भारत के उपप्रधान मंत्री स्वर्गीय श्री वल्लभभाई पटेल, तथा भूतपूर्व न्याय मंत्री श्री के० एम० मुन्शी ने जो सहयोग एव पथप्रदर्शन किया है उसके लिए मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ।

मैंने यह कार्य विशाल पुराण वाङ्मय के सम्पादन एव प्रकाशन की योजना से आरम्भ किया है क्योंकि संस्कृत साहित्य के क्षेत्र में ये पुराण प्रतिपद्य विषयों की विविधता तथा गम्भीरता और चार लाख से भी अधिक श्लोकों के विशाल ग्रन्थ समुदाय के कारण अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। इन पुराणों में आदिमकाल से लेकर मध्यकाल तक के भारत के विभिन्न विज्ञानसरोवर कार्यों और विचारों की सांस्कृतिक प्रवृत्तियों के धार्मिक एव सामाजिक इतिहास का अद्वितीय वजन मिलता है। अनेक कालों और स्थलों में सगृहीत तत्त्वों को समन्वयमक रूप देकर उन्हें दार्शनिक, सामाजिक और धार्मिक विचारधाराओं की एकात्मकता के साथ ही दालने के फलस्वरूप ये हमारे राष्ट्र साहित्य का रूप ग्रहण कर चुके हैं। धर्म और कर्मकाण्ड के पोषण में समाज का व्यवस्थाओं के तथा लोगों के विश्वास एवं मान्यताओं तथा उनकी धार्मिक प्रक्रियाओं एवं विविधियों के प्रतिपादन में पुराण समान रूप से सद्यः हैं।

पुराणों में भौगोलिक एवं स्थानीय वर्णन भी विशद रूप में मिलते हैं। इनमें भारत के पर्वत, नदी, देश, जनपद तोर्थ, तथा पहाड़ी और जगली प्रदेश भी वर्णित हैं।

पुराण आध्यात्मिक तथ्यों को आख्यायनों के द्वारा सरलतया प्रतिपादित करने की विशेष शैली अपनाते हैं। इनका लक्ष्य सश्रीप्तीकरण नहीं बल्कि विशदीकरण है, ये विषय की स्पष्टता, सरलता तथा सर्वसाधारण की समझ और रुचि की ओर विशेष ध्यान देते हैं।

इस विशाल एवं महत्त्वपूर्ण साहित्य के गम्भीर अध्ययन की विशेष आवश्यकता है। भारतीय विद्या के उपासकों एवं स्नातकों तथा भारत के दार्शनिक और धार्मिक सम्प्रदायों में रुचि रखनेवाले अन्य विद्वानों को चाहिए कि वे पुराणों का विस्तृत अध्ययन एवं उनमें निहित विविध विचारमवृत्तियों का विश्लेषण करें तथा उनकी समालोचनात्मक व्याख्या प्रस्तुत करें। प्राचीन तथा मध्यकालीन भारत के सांस्कृतिक इतिहास में शोधकार्य के लिए पुराण हमें पर्याप्त क्षेत्र प्रदान करते हैं। विद्वानों का ध्यान भारत के दो महान् इतिहासों—रामायण तथा महाभारत—की ओर तो पहले ही आकर्षित हो चुका है, जिसके कारण उनका वैज्ञानिक पद्धति से समीक्षात्मक अध्ययन एवं सम्पादन हुआ है, किन्तु भारत का विश्वकोष जैसा पुराण साहित्य इस दृष्टि से अभी तक उपेक्षित ही रहा।

जब काशिराजन्व्यास द्वारा पुराणों का इस प्रकार का वैज्ञानिक पाठसमीक्षात्मक सम्पादन प्रारम्भ किया गया तो ऐसा लगा कि पुराणों का मूलपाठ बहुधा प्रक्षेपों तथा पाठान्तरों से प्रभावित है। कुछ विद्वानों ने मत व्यक्त किया कि हमें उपलब्ध पाठ के संस्करणों का विशेष अध्ययन कर उन्हें ही पुनः प्रकाशित करना चाहिए। परन्तु हम लोग निचार-पूर्वक इस निर्णय पर पहुँचे कि सर्वप्रथम सम्भावित मूलपाठ का सम्पादन एवं प्रकाशन प्राप्य हस्तलेखों तथा अन्य पाठसमीक्षोपयोगी सामग्रियों के समीक्षात्मक विश्लेषण के बाद ही सावधानी से होना चाहिये। यद्यपि पुराणों के मूलपाठ के, जो अनिश्चित एवं अस्थिर दशा में हैं, अक्षरशः मौलिक रूप का पुनर्निर्माण किया जाना असम्भव है, तथापि क्रम से क्रम, प्राप्त हस्तलेखों के आधार पर उनके पर्याप्त प्राचीनतम पाठ का निर्धारण तो किया हो जा सकता है। अन्ततोगत्वा सभी (अष्टादश) पुराणों का समीक्षित संस्करण तथा उनका हिन्दी और अंग्रेजी अनुवाद निकालने का निश्चय किया गया है। यह एक विस्तृत योजना है। जिसके लिए अत्यधिक व्यय भी अपेक्षित है। तथापि हमने इस कठिन कार्यभार को उठाया है।

विश्व-प्राच्यविद्या अन्तर-राष्ट्रीय-सम्मेलन के प्रति हम बहुत कृतज्ञ हैं कि उसने १९६१ के अपने मास्को (रूस) अधिवेशन में निम्नलिखित प्रस्ताव को पारित कर हमारी योजना का अनुमोदन किया —

“प्राच्यविद्या के विद्वानों के अन्तर-राष्ट्रीय सम्मेलन का यह पचोसवाँ अधिवेशन इस बात पर सतोष व्यक्त करता है कि पुराणों में स्थित भण्डारकर प्राच्यशोधसंस्थान द्वारा प्रकाशित महाभारत तथा बड़ौदा के प्राच्य-शोध संस्थान द्वारा सम्पादित रामायण के सदृश ही वाराणसी के काशिराजन्व्यास द्वारा पुराणों का समीक्षित संस्करण सम्पादित एवं प्रकाशित किया जा रहा है, और आशा करता है कि इस महत्त्वपूर्ण कार्य के सफल सम्पादन में अन्तरराष्ट्रीय सहयोग प्राप्त होता रहेगा”।

पुनः इस सम्मेलन ने अपने १९६४ में हुए दिल्ली के अधिवेशन में निम्नलिखित प्रस्ताव पास कर इसकी पुष्टि की —

“प्राच्यविद्या विद्वानों के अन्तर-राष्ट्रीय-सम्मेलन का यह छबीसवाँ अधिवेशन बनारस के सर्व भारतीय-काशिराजन्व्यास द्वारा सभी पुराणों के समीक्षात्मक सम्पादन तथा पुराण सम्बन्धी सर्वतोमुखी समालोचनात्मक अध्ययन के लिए

सुनिर्धारित योजना का स्वागत करता है, तथा आशा करता है कि प्राच्यविद्या के शोध-कार्यों में रुचि रखनेवाले व्यक्ति तथा सम्थाप, इस प्रयास में अपनी सहायता और सहयोग प्रदान करेंगे ।”

हमें बहुत प्रसन्नता है कि पुराणों के सम्पादन एवं प्रकाशन की इस योजना का सर्वप्रथम प्रकाशन वामनपुराण का पाठसमीक्षक सस्करण है जिसको संयुक्तसष्ट अमेरिका के मिशिगनप्रदेशान्तर्गत आन आर्वर नगर में प्राच्यविद्याविद् विद्वानों के अन्तरराष्ट्रीय सम्मेलन के अष्टादसवें अधिवेशन में समर्पित किया गया । इस अधिवेशन में निम्नलिखित प्रस्ताव पारित किया गया —

“यह सम्मेलन केन्द्रीय भारत सरकार, राज्य सरकारों तथा भारतीय विद्या में अभिरुचि रखनेवाले सभी विद्वानों से सिफारिश करता है कि महाराज-चन्द्रस्य क सुयोग्य पद्यदर्शन में काशिराज न्यास द्वारा पुराणों के सशोधित सस्करणों को प्रकाशित करने का बहुत ही उपयोगी कार्य किया जा रहा है । इस योजना के अन्तर्गत श्री धानन्द-स्वरूप गुप्त द्वारा सुयोग्यतया सम्पादित वामनपुराण का पाठसमीक्षक सशोधित सस्करण काशिराज न्यास के सदस्य डा० सुनीति कुमार चर्खा द्वारा इस अधिवेशन में प्रस्तुत किया जा रहा है जिसे विशेष रूप से न्यास के सदस्य डा० रायगोविन्द चन्द्र वाराणसी से यहाँ लाये हैं ।”

हम आशा करते हैं कि इस सम्करण के सम्बन्ध में विद्वान् लोग अपना बहुमूल्य सुझाव देने की कृपा करेंगे जिससे आगामी सस्करणों में हम उन्हें अपना सक्के । हम सर्वथा आश्चर्यविन हैं कि पुराण सम्पादन के इस कार्य से पुराणों के पठन पाठन में एक नवीन प्रेरणा मिल सकेगी एवं इस दिशा में अभिरुचि जागरित होगी ।

अब काशिराज न्यास द्वारा वामनपुराण के इस सम्करण का मूलसंस्कृतपाठसहित एवं अनेक उपयोगी परिशिष्टों से युक्त हिन्दी तथा अंग्रेजी अनुवाद भी प्रयत्न-प्रयत्न प्रकाशित कर दिये गये हैं । आशा है वामन-पुराण के अध्वयनादि में इन अनुवादों से पर्याप्त सहायता मिलेगी ।

भारत-सरकार, उत्तरप्रदेश सरकार तथा मैसूर सरकार के प्रति उनके द्वारा की गई उदार आर्थिक सहायता के लिए, जो हमारे लिये बड़े प्रोत्साहन की बात है, हम अपना आभार प्रदर्शित करते हैं ।

विजयदशमी
स० वि० २०२५
(१ अक्टूबर, १९६८)

विभूतिनारायणसिंह
(काशिनरेश)

भूमिका

१—पुराण वाङ्मय

भारतीय साहित्य में पुराणों का स्थान

यदि धर्म का मूलस्रोत वेद माना जाता है^१ परन्तु हिन्दुसमाज का धर्म प्रपानतया वैरागिक ही रहा है। अतः प्राचीन भारतीय वाङ्मय में पुराणों का अपना एक विशिष्ट स्थान है। वेदों का पठन पाठन तो उच्च वर्ग के शक्तियों अर्थात् द्विजों तक ही सीमित था, निम्न वर्ग के लोगों के लिये वेदों का अध्ययन अथवा श्रवण संभव नहीं था। परन्तु पुराण-वाङ्मय दोनों ही प्रकार के वर्गों के लिये विहित तथा सुलभ था, लोक शिक्षा के माध्यम के रूप में भी पुराणों की उपयोगिता सदा ही बनी रही। पुराण वाङ्मय को पञ्चमवेद माना जाता था—“इतिहासपुराण पञ्चम वेदानां वेदम्” (छान्दोग्योपनिषद् ७.१.२), “पुराण पञ्चमो वेद इति ब्रह्मानुशासनम्” (स्कन्द पुराण, देवालय) इत्यादि। अतः वेदों के समकक्ष ही पुराणों का स्थान था। “वेदसमितम्” ऐसा वचन पुराणों में अनेक स्थानों पर मिलता है। इतना ही नहीं, कहीं कहीं तो वेदों से भी अधिक पुराणों को मान्यता प्रदान की गई—

वेदार्थादधिकं मये पुराणार्थं वरानने ।

वेदा प्रतिष्ठिता सर्वे पुराणे नात्र सशय ॥ (नारदीय पुराण, २.२४.१७)

भारतीय जनता में धार्मिक विचारों तथा विधानों के लिये एवं सामाजिक तथा सांस्कृतिक कृत्यों के लिये मुख्य प्रेरणा पुराणों से ही प्राप्त होती रही है, अतः भारत की धार्मिक एवं सांस्कृतिक इतिहास परम्परा को समझने के लिए पुराणों का अध्ययन एवं ज्ञान आवश्यक है, और उनमें उल्लिखित प्राचीन भारतीय राजव्यवस्थाओं तथा यशानुचरितों के कारण भारत के प्राचीन राजनैतिक इतिहास के निर्माण में पुराणों का प्रधान भाग रहा है। पुराणों में वर्णित भुवनकोश की सहायता के बिना भारत के प्राचीन भूगोल का ज्ञान भी संभव नहीं है। इस प्रकार पुराण वाङ्मय निर्विवाद रूप से अनेक विद्याओं का स्रोत है। वेदों की सम्यग् व्याख्या के लिए भी पुराणों का ज्ञान अत्यन्त आवश्यक है, क्योंकि महाभारतदि इतिहास तथा पुराणों के द्वारा ही वेदों का उपवृद्धि हुआ है, जैसा कि महाभारत तथा पुराणों में कहा है—

इतिहासपुराणान्यां वेदं समुपवृद्धयेत् ।

त्रिनेत्रयस्त्वधुताद् वेदो मामयं प्रहरिष्यति ॥

(महाभारत १.१.२६७ वायु पुराण १.२०.१, इत्यादि)

पुराण और इतिहास

प्राचीन वैदिक काल से ही पुराण और इतिहास का परस्पर पविष्ट सम्बन्ध रहा है, वे दोनों एक दूसरे के

संकेत—

वे = देखिये

पु = पुराणा कीजिये

१ हे—वेदोऽविश्वो धर्ममूलम् । (मनुस्मृ. २.६ मत्स्य-पुराण, १.२.७)

२ तु—जीवूद्विज्वरणां ययी न श्रुतिगोचरा । (भागवत पुराण १.४.२५)

}

पूरक माने गये हैं। 'पुराण' और 'इतिहास' ये दोनों शब्द कभी तो भिन्न अर्थों में प्रयुक्त होते रहे और कभी एक ही अभिन्न अर्थ में दोनों का प्रयोग होता था। शंकराचार्य के अनुसार 'इतिहास' ब्राह्मणग्रन्थों में वर्णित उर्वशी पुरूरवा के सवादादि का नाम है तथा 'पुराण' "असद्वा इदमप्र आसीत्" इत्यादि सृष्टिविषयक वचनों का नाम है—“इतिहास इति—उर्वशीपुरूरवसो सवादादि। पुराणम्—असद्वा इदमप्र आसीदित्यादि।” (शृङ्गारण्यकोपनिषद् २ ४ १०, शांकरभाष्य)। परन्तु सायण (शतपथब्राह्मण १३.४३, भाष्य) के मतानुसार इतिहास का अर्थ सृष्टिविषयक इसप्रकार के वचन हैं जैसे “आरम्भ में जल के अतिरिक्त कुछ नहीं था” और पुराण का अर्थ उर्वशी पुरूरवा इत्यादि का आख्यान है। इसप्रकार हम देखते हैं कि प्राचीन काल में भी इतिहास तथा पुराण का अर्थ एक दूसरे के लिये बदला जा सकता था, अर्थात् वे दोनों एक ही अर्थ में प्रयुक्त होते थे। परन्तु कभी कभी उनका एक दूसरे से प्रत्यक् अर्थ में भी प्रयोग मिलता है।

विशेषण के रूप में 'पुराण' शब्द का अर्थ है 'पुराना, पुरातन, प्राचीन तथा सजा के रूप में इसका अर्थ है—'पुरातन आख्यानों से सयुक्त ग्रन्थ'। इस अर्थ में 'पुराण' शब्द का प्राचीनतम प्रयोग हमें अथर्ववेद तथा ब्राह्मण ग्रन्थों में मिलता है। 'इतिहास शब्द का निर्वचन है—'इति इ आस' अर्थात् 'यह ऐसा था' या 'ऐसा हुआ'। इस निर्वचन के अनुसार किसी तथ्यात्मक कथानक या आख्यान को इतिहास कहा जाता था। यास्क ने अपने निरुक्त में 'इतिहास' शब्द का इसी अर्थ में प्रयोग किया है—“तत्रेतिहासमाचक्षते—'देवापिदिचार्षिपेण शन्तनुश्च क्रौरव्यौ आतरी बभूवुः'” (निरुक्त २.३.१)। बाद में पुराणों में भी 'इतिहास' शब्द का इस अर्थ में प्रयोग पाया जाता है—“अत्राप्युदाहरन्तीमितिहास पुरातनम्” (मत्स्य पु १७६), इत्यादि। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि 'पुराण' शब्द किसी समय दोनों ही अर्थों में प्रयुक्त होता था। कोई भी आख्यान चाहे वह रूपकारक हो या तथ्यात्मक हो 'पुराण' कहा जाता था। 'पुराण' शब्द का इस प्रकार का प्रयोग हमें अथर्ववेद (११ ७ २४) तथा पुराणों में भी मिलता है।

जैसा कि पहले कहा गया है केवल 'पुराण' शब्द ही पुराण तथा इतिहास दोनों के लिये प्रयुक्त पाया जाता है, अतः 'पुराण' शब्द का अर्थ 'इतिहास' शब्द के अर्थ से अधिक विस्तृत था तथा 'पुराण' के अन्तर्गत पुराण और इतिहास दोनों ही आ जाते थे, याज्ञवल्क्य स्मृति में धर्म के चौदह स्थानों (स्रोतों) में केवल पुराण की गणना की है, इतिहास या इतिहास पुराण की नहीं, यथा—

पुराणन्यायमीमासाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिणा ।

वेदा स्थानानि विद्याना धर्मस्य च चतुर्दश ॥ (याज्ञ० स्मृ० १३)

यहाँ याज्ञवल्क्य ने पुराण में इतिहास का भी अन्तर्भाव किया है यह स्पष्ट ही है, क्योंकि महाभारतादि इतिहास भी धर्मशास्त्र अर्थात् धर्मप्रतिपादक ग्रन्थ माना गया है। इसी प्रकार विष्णुपुराण (३.६.२८) में भी चौदह (या अठारह) विद्याओं में केवल पुराण की गणना है जिसमें इतिहास का भी अन्तर्भाव मानना चाहिये।

१ दे—ऋच सामानि इत्यानि पुराणं यजुषा सह ।

उत्पिष्टावर्जिते सर्वे निचि देवा दिविधित ॥ (अथर्ववे० ११ ७ २४)

तथा “अथ नवमेऽनु सातुपविणिति पुराणवे”, शांभूमिति निर्वाचपुराणमाचक्षते (शतपथ-ब्रा०, १३ ४ ३ १३) इत्यादि ।

४ दे—अयो नामेतिहासोऽयं धोतव्यो विज्ञियोपुनः ।

अयं गार्हपति-पुष्यं धर्मात्कर्मिणः परम् ।

मोगात्कर्मि-श्रोतं ध्यानेनमित्तुजित्ना ॥

(महाभा० समीक्षित संस्करण, पुनः, १ ५६ ११, २१)

इस प्रकार 'पुराण' तथा 'इतिहास' ये दोनों ही शब्द एक दूसरे के अर्थ में प्रयुक्त होने लगे और पुराण तथा इतिहास ये दोनों विषय यद्यपि प्राचीन काल में कभी अलग अलग माने जाते थे परन्तु बाद में ये दोनों अभिन्नार्थक माने जाने लगे, जिसके कारण इन दोनों की व्याख्या या परिभाषा में भी कोई भेद न रह गया। अमरकोश ने इतिहास का जो लक्षण दिया है महाभारत के टीकाकार नीलकण्ठ ने वही लक्षण पुराण का दिया है, यथा—

इतिहास पुरावृत्तम् (अमरकोश १.५४)

पुराण पुरावृत्तम् (नीलकण्ठीका—महाभा० १.५१)

और ज्यों-ज्यों पुराण विश्वकोश का रूप धारण करते गये और अपने में मानवीपयोगी सभी विषयों का समावेश करने लगे, त्यों-त्यों इतिहास तथा धर्मशास्त्र आदि विषयों का समावेश भी पुराण में होने लगा। महाभारत ने स्वयं अपने आपको 'पुराण' कहा है—“द्वैषाद्यनेन यत्प्रोक्तं पुराणं परमर्षिणा” (१.१ १७) इत्यादि, और रामायण का भी बहुत कुछ अंश वस्तुतः पुराण ही है। अतः पुराण में इतिहास भी समाविष्ट है। इस प्रकार पुराण के विशाल बाह्यमय में अठारह महापुराणों का, अठारह या इससे भी अधिक उपपुराणों का तथा रामायण और महाभारत इन दोनों भारत के राष्ट्रीय इतिहास ग्रन्थों का समावेश हो जाता है। केवल अठारह महापुराणों की ही श्लोकसंख्या चार लाख मानी गई है, महाभारत की श्लोकसंख्या एक लाख है तथा रामायण की पचीस हजार, इस तरह सब मिलाकर सग्रा पाँच लाख श्लोक संख्या इस विशाल बाह्यमय की है। सग्रा पाँच लाख श्लोकों का यह समग्र बाह्यमय एकत्रित 'पुराण' नाम से अभिहित होगा है, जैसा कि मत्स्य पुराण में माना गया है —

एव संपदा पञ्चैते लक्षा मर्त्ये प्रकीर्त्तित ।

पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि त्रिदुर्बुधा ॥ (मत्स्य पु० ५३ ७१)

अठारह महापुराणों के अतिरिक्त जो अठारह या और भी अधिक उपपुराण हैं वे इन महापुराणों के ही परिशिष्ट रूप माने गये हैं उनकी संख्या इस सग्रा पाँच लाख से अलग है इस प्रकार भारत का यह विशाल इतिहास-पुराण या पुराण बाह्यमय परिमाण तथा विषय के विस्तार की दृष्टि से ससार में अद्वितीय है।

वर्तमान पुराण ग्रन्थों का स्वरूप और मद्दक

पुराण और हिन्दुधर्म एक दूसरे के साथ अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं, एक के परिवर्तन से दूसरे में परिवर्तन आना स्वाभाविक है। पुराणों ने अपने प्रामाण्य को सदा अक्षुण्ण बनाये रखने का प्रयत्न किया है। अतएव जब जब हिन्दु जाति में कोई सामाजिक, धार्मिक अथवा राजनीतिक परिवर्तन या विप्लव हुआ तब तब पुराणों ने भी अपने स्वरूप में तदनुसृत परिवर्तन करने की चेष्टा की है और तत्कालीन नवीन विचारधाराओं को अपना कर अपने साधे में डालने का प्रयत्न किया है, अतः पुराणों में समय-समय पर अनेक सशोधन एवं परिवर्तन होते रहे। पुराणों में जो अनेक भ्रष्टेय या पाठभेद मिलते हैं उनमें से सब नहीं तो कुछ अवश्य इस प्रकार की चेष्टा के फलस्वरूप हुए हैं, परन्तु इतना होने पर भी उनमें कुछ परम्परायें ऐसी भी सुरक्षित हैं जो अत्यन्त प्राचीन काल से कदाचित् प्रागैदिक काल से, भारत में चलती आ रही थीं और जो परम्परायें वर्तमान पुराणों के प्राचीन संस्करणों में भी निबद्ध रहीं होंगी। अतएव वर्तमान पुराणों में उनके प्राचीन स्वरूप में से बहुत कुछ सुरक्षित माना जाना चाहिये, और जो कुछ परिवर्तन काल में नवीन सशोधनदि हुए हैं उनमें से अधिकतर देश और काल की आवश्यकता के अनुसार ही हुए हैं और उनसे हमें प्रगतिशील हिन्दुधर्म के तत्कालीन स्वरूप की झाँकी मिलती है। वर्तमान पुराण ग्रन्थों को प्राचीन पुराणों के सशोधित संस्करण ही समझना चाहिये, और कुछ दक्षिणाओं को छोड़ कर उनमें से कोई भी पुराण ग्रन्थ ११वीं शताब्दी के बाद का नहीं है, क्योंकि वरबन्धिना

अलबेरुनी ने १०३० ई० में अपने ग्रन्थ में इन सभी अठारह महापुराणों का तथा कुछ उपपुराणों का भी उल्लेख किया है। उनमें से कुछ पुराण ७वीं शताब्दी से भी पूर्व के हैं क्योंकि उनमें से किसी में भी गुप्तकाल के पश्चात् को किसी भी राजवंशवाली का उल्लेख नहीं मिलता, यहाँ तक कि हर्षवर्धन सम्राट् का उल्लेख भी पुराणों में नहीं है, अतः वे पुराण हर्षवर्धन-काल से पूर्व के ही होने चाहिये। विटरनिट्ज़ ने अपने 'भारतीय साहित्य के इतिहास' (History of Indian Literature) भाग १, पृष्ठ ५२५, में कहा है कि प्राचीन पुराण-ग्रन्थ अपने वर्तमान रूप में ईसा की आरम्भिक शताब्दियों में ही आ लुके थे क्योंकि वर्तमान पुराणों में तथा प्रथम शताब्दी के ललितविस्तर, सद्गर्भपुण्डरीक आदि बौद्ध ग्रन्थों में शैली इत्यादि के विचार से बहुत कुछ साम्य पाया जाता है।

पुराणों की अनुवाद परम्परा का उद्भव तथा विकास

पुराणों की प्रसिद्धि तथा लोकप्रियता के कारण तथा उनके धार्मिक और सांस्कृतिक महत्त्व के कारण दोनों इतिहास-ग्रन्थों का तथा अनेक पुराणों का भारत की प्रायः सभी समृद्ध भाषाओं में तथा बहुत सी विदेशी भाषाओं में भी अनुवाद हुआ है। पूरे ग्रन्थों के अनुवाद के अतिरिक्त इनके कुछ प्रसिद्ध आख्यानों का, दार्शनिक सदमों का तथा माहात्म्यों और स्तोत्रों का भारत में तथा यूरोप में अलग भी अनुवाद हुआ है। सामान्यतः जितना ही प्रसिद्ध तथा लोकप्रिय कोई ग्रन्थ रहा है उसके उतने ही अधिक अनुवाद भी हुए हैं। दोनों इतिहास-ग्रन्थों पर तथा कुछ पुराणों पर (जैसे भागवतपुराण, विष्णुपुराण, लिङ्गपुराण आदि पर) उच्चकोटि की अनेक संस्कृत टीकायें भी लिखी गईं, जिनका विद्वद्गर्भ में बहुत अधिक समादर है, और बहुत से देशी तथा विदेशी अनुवादों में उनसे सहायता ली गई है।

(१) भारत में पुराणों की अनुवाद परम्परा

पुराण वाङ्मय दोनों इतिहास-ग्रन्थों सहित भारत में लोक शिक्षा का माध्यम सदा से रहा है यह पहले ही कहा जा चुका है। सुतों और व्यासों द्वारा इनका पाठ तथा प्रवचन जगह जगह जनता के समक्ष किया जाता था, इससे भारत के निरक्षर लोगों को भी उच्चकोटि की धार्मिक तथा सांस्कृतिक शिक्षा अनायास ही मिल जाती थी। पुराण-साहित्य संस्कृत में होने के कारण इतिहास तथा पुराण साधारण पढ़े लिखे लोगों की पहुँच के बाहर थे। उन पर संस्कृत में जो टीकायें

५ दे—'अलबेरुनी का भारत (Alberuni's India, translated by E. C. Sachau, भाग १, पृष्ठ १२०-१३१)

अलबेरुनी ने इस ग्रन्थ में पुराणों को दो सूचियाँ दी हैं—एक तो वह जो विष्णुपुराण (३६२१-२४) में दी हुई है, यथा—

(१) ब्राह्म, (२) पाच, (३) वैश्व, (४) शैव (५) भागवत, (६) नारदीय, (७) मार्कण्डेय, (८) धामनेय, (९) भविष्य (१०) ब्राह्मवैवर्त, (११) लैङ्ग, (१२) वाराह (१३) स्कन्द, (१४) वामन, (१५) कूर्म, (१६) मातस्य, (१७) गार्हपत्य, (१८) ब्रह्माण्ड

तथा दूसरी सूची यह है जो किसी सत्कालीन पुराणज्ञ से उतने सुनी—

(१) आदिपुराण, (२) मत्स्यपुराण, (३) कूर्मपुराण, (४) वाराह पुराण, (५) नरसिंह पुराण, (६) वामनपुराण, (७) वायुपुराण, (८) नन्दपुराण, () स्कन्दपुराण, (१०) आदित्यपुराण, (११) सोमपुराण, (१२) साम्बपुराण, (१३) ब्रह्माण्डपुराण, (१४) मार्कण्डेयपुराण, (१५) तार्य (= गारुड) पुराण, (१६) विष्णुपुराण, (१७) ब्रह्मपुराण, (१८) भविष्यपुराण।

यह सूची विष्णुपुराणोक्त सूची से कुछ भिन्न है इसमें विष्णुपुराणोक्त कुछ पुराणों का उल्लेख न होकर कई उपपुराण माने जाने वाले पुराणों का उल्लेख है और इस प्रकार १८ संख्या पूरी हो गई है। समग्र है यह सूची भी उस समय प्रचलित रही हो।

थी ये केवल विद्वानों के ही काम की थीं, साधारण जनता का उनसे काम चलना संभव नहीं था। साधारण जन-समाज में भी पुराण वाक्य तथा महाभारत-रामायण के अध्ययन तथा अनुशीलन की इच्छा का जागरित होना स्वाभाविक था। अतः उनके अनुवादों की परम्परा का जन्म भारत में हुआ। रामायण-महाभारत तथा पुराणों के साररूप में भी अनेक ग्रन्थ लिखे गये। इनके आधार पर अनेक स्वतन्त्र ग्रन्थों का भी निर्माण होने लगा। मध्यकालीन भक्तकवियों का इसमें प्रधान हाथ रहा है। हिंदी में तुलसीदास का रामचरितमानस, तेलुगु में रंगनाथ-रामायण तथा तामिळ में कवचन-रामायण इसी प्रकार का प्रयास कहा जा सकता है। सूरदास का सूरसागर भागवत के दशमस्कन्ध के आधार पर स्वतन्त्र रचना है। महाभारत के आधार पर भी अनेक ग्रन्थ देशी भाषाओं में लिखे गये। अन्य पुराणों के आधार पर भी अनेक रचनाएं भिन्न-भिन्न भारतीय भाषाओं में हुई हैं। भारत में निर्मित इन अनुवादों, सार-ग्रन्थों तथा अन्य पुराण-त्रिपय-सम्बन्धी स्वतन्त्र रचनाओं की भारत की विभिन्न प्रदेशीय भाषाओं—हिंदी, बंगला, उडिया, गुजराती, मराठी, तेलुगु, तामिळ आदि—में इतनी अधिक संख्या है कि स्थानाभाव के कारण यहाँ उनका उल्लेख करना शक्य नहीं है। विभिन्न भाषाओं में लिखे गये पुराण-सम्बन्धी इन अनुवादों तथा सार-ग्रन्थों का परिचय पृथक्-पृथक् लेखों के रूप में 'पुराण-पत्रिका' में प्रकाशित करने की योजना है और 'पुराण' में इस प्रकार के कुछ लेखों का प्रकाशन भी हुआ है, जैसे 'तामिळ में पुराण' ('पुराण' भाग २, जुलाई १९६०, पृष्ठ २२५-२४२), 'तेलुगु में पुराण' ('पुराण' भाग ४, अंक २, जुलाई १९६२, पृष्ठ २८७-४०७) तथा कन्नड़ में 'पुराण' ('पुराण' भाग ६, अंक १, जुलाई १९६४, पृष्ठ १४७-१७२)।

देशी भाषाओं के अतिरिक्त भारत में फारसी में भी रामायण, महाभारत तथा कुछ पुराणों के अनुवाद हुए हैं, जिनका निवरण नीचे दिया जा रहा है :—

(१) रामायण—रामायण का फारसी अनुवाद अकबर के समय में फैजी द्वारा किया गया था। रामायण का एक अन्य फारसी अनुवाद १८वीं शताब्दी के अन्त में बनारस में गोस्वामी आनन्दधन द्वारा किया गया, जिसे बनारस के महाराजा श्री महोचनारायण सिंह जी के समय में नियुक्त बनारस के रेजिडेंट जोनेथन डंकन (Jonathan Duncan) ने करवाया था। रामायण के फारसी अनुवाद की एक पाण्डुलिपि लंदन के ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित है जिसको संख्या OR 5087 है।^६

(२) महाभारत—महाभारत का फारसी अनुवाद सम्राट् अकबर के आदेशानुसार विद्वानों के एक समूह ने किया। इस फारसी अनुवाद (रजमनामा, चित्रों सहित) की एक पाण्डुलिपि (OR 12076) ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित है। १८वीं शती का एक अन्य फारसी अनुवाद भी ब्रिटिश म्यूजियम में है (OR 5746, पर्व १-४; OR. 5743, पर्व ६-१०, OR 5861, पर्व १२-१६)।

(३) हरिवंश—हरिवंश का एक फारसी रूपान्तर १६८० ई० का ब्रिटिश म्यूजियम में प्राप्त है संख्या (OR 5747)।

(४) मत्स्य-पुराण—गोस्वामी आनन्दधन द्वारा मत्स्यपुराण का भी फारसी अनुवाद ९ भागों में किया गया है। यह स्वतन्त्र भाषानुवाद है तथा इसमें अन्य पुराणों के अंश भी मिले हुए हैं। इस अनुवाद का आरम्भ जोनेथन डंकन के आदेशानुसार १८४८ वि० (१७९२ ई०) में किया गया। इसकी एक पाण्डुलिपि इटली के

६-७ ब्रिटिश म्यूजियम में सुरक्षित इन फारसी अनुवादों की सूचना यहाँ के परिचयपत्रों द्वारा कवीराज व्यास के पाठ नेत्रे हुए उनके १० जनवरी १९६३ के एक पत्र में दी गई है, जिन्हें लिये हम धनके आभारी हैं।

रोमस्थानीय एक संस्थान (Italian Institute) में सुरक्षित है। इसके पथम भाग की माइकोफिलम प्रति काशिराभ-न्यास द्वारा रोम से प्राप्त की गई है। इस फारसी अनुवाद का अग्नेजी अनुवाद 'पुराण' पत्रिका में यथा समय प्रकाशित किया जायेगा।

(५) भागवत-पुराण—अखिलभारतीय प्राच्यविद्या सम्मेलन (All-India Oriental Conference) के अलीगढ़ अधिवेशन के समय मैंने भागवत पुराण के फारसी अनुभव के कुछ हस्तलेख अलीगढ़ विश्वविद्यालय के ग्रन्थालय में देखे थे ऐसा मुझे स्मरण है। संभवतः कुछ अन्यपुराणों के तथा हरिवंश के भी फारसी अनुवाद वहाँ हों।

(आ) अन्य एशियाई देशों में इतिहास पुराण के अनुवादादि

भारतीय हिन्दू धर्म का प्रचार तथा प्रसार भारत से बाहर भी अन्य एशियाई देशों में—विशेषतः दक्षिण पूर्वी एशिया में—प्राचीन काल से ही पाया जाता है। तिब्बत, चीन, जापान, इन्डोचाइना तथा इन्डोनेशिया में धैर्य तथा वैष्णव धर्म का विशेष प्रचार हुआ। रामायण, महाभारत तथा पुराण (विशेषतया ब्रह्माण्ड-पुराण) वहाँ बहुत लोकप्रिय हो गये। बालि द्वीप में शैव उपासकों का अत्यन्त प्रिय ग्रन्थ तद्देशीय ब्रह्माण्डपुराण है ऐसा एक पाश्चात्य विद्वान् का कथन है। इन्हीं विद्वान् (आर फेडरिक) ने १८७७ ई० में प्रथम बार पुरानी जावा भाषा में लिखे हुए ब्रह्माण्ड पुराण की ओर तथा अन्य अनेक मूल संस्कृत ग्रन्थों के पुराने जावा भाषा में रचित रूपान्तरों की ओर विद्वानों का ध्यान आकर्षित किया। एक डच विद्वान् (Dr H N. Van der Tuuk) ने इस पुराण के अनेक हस्तलेखों (पाण्डुलिपियों) का संग्रह किया जो १८९४ ई० में उसको मृत्यु के पश्चात् हार्लैंड भेज दिये गये। इस प्राचीन जावाई ब्रह्माण्ड पुराण को हार्लैंड के प्रसिद्ध विद्वान् डा० लॉडा ने सम्पादित तथा डच भाषा में अनूदित किया है। जावाद्वीपीय यह ब्रह्माण्ड पुराण मूल संस्कृत ग्रन्थ का अथवा ब्रह्माण्ड-पुराण के किसी सक्षिप्त संस्करण का पुरानी जावा भाषा में गद्यानुवाद है। इस अनुवाद में बीच-बीच में मूल संस्कृत ग्रन्थ के अनेक श्लोक या उनके पाद ज्यों के ज्यों संस्कृत में दिये गये हैं और ऐसे बहुत से श्लोकों या श्लोक पादों का जावा भाषा में साथ-साथ अनुवाद भी दिया है।

तिब्बत, जापान, इन्डोचाइना तथा इन्डोनेशिया में रामायण के भी अनेक रूपान्तर (अनुवाद अथवा सार रूप में अथवा तद्देशीय कथाओं के रूप में) उपलब्ध थे, और कुछ अब भी उपलब्ध हैं। प्राचीन जावाद्वीपीय रामायण (कैकविन) के सन्दर्भ में एक विद्वान् का यह भी मत है कि इसके कुछ अंश तो भट्टिकाव्य से अनूदित हैं तथा शेष अंश भट्टिकाव्य के कुछ अंशों के स्वरूप हैं। रामायण का प्रभाव केवल जावा तथा बालि द्वीपों में ही नहीं था, परन्तु कम्बोडिया, लाओस, थाइलैंड तथा कुछ अन्य भागों में और चीन में भी था।

प्राचीन जावा भाषा में प्रस्तुत महाभारत का रूपान्तर का कुछ विशेषरूप से विवरण डा० सुकथकर ने स्वसंपादित महाभारत-आदिपर्व की भूमिका (Prolegomena) में दिया है। इस जावाद्वीपीय महाभारत ग्रन्थ में सर्वत्र बीच-बीच में संस्कृत के श्लोक भी दिये हुए हैं, जिन्हें भाण्डारकर प्राच्यसंस्थान, पूना, से प्रकाशित महाभारत के पर्वों में परिशिष्ट रूप में दिया है।

५ आर फेडरिक, 'जनरल आफ दि रायल एशियाटिक सोसाइटी', १८७६ पृ० १७१

६ डे०—डा जे लॉडा का जावाद्वीपीय ब्रह्माण्डपुराणविषयक लेख, 'पुराण', पृ० २, जुलाई १९६०, पृ० २५१-२६७

१० एम घोष जनरल आफ दि मेटेर इण्डिया सोसाइटी, कलकत्ता ३ १ डे०—ए डी गुलाकर, स्टडीज इन दि एपिक्स एण्ड दि पुराणज पृ० १२५

(इ) यूरोप में रामायण महाभारत एवं पुराणों की अनुवाद परम्परा

यूरोप के साहित्य पर भारत के इतिहास-पुराण वाङ्मय का जो प्रभाव पड़ा है वह बहुत महत्त्वपूर्ण है तथा अध्ययन करने योग्य है। यूरोप का कथा साहित्य प्रायः भारत के कथा साहित्य पर आधारित है। १९वीं शताब्दी के आरम्भ से यूरोपीय साहित्य भारतीय इतिहास-पुराण साहित्य से विशेष प्रभावित होने लगा। मध्ययुग से ही यूरोप में इस प्रभाव का आभास मिलता है। भारत के कुछ ग्रन्थ अरबी तथा फारसी अनुवादों के द्वारा यूरोप में पहुँच गये। उदाहरणार्थ, पद्यतन्त्र का अनुवाद पहले ईरान की प्राचीन भाषा पहलवी में हुआ। पुनः इस पहलवी रूपान्तर का सीरियाई (५७० ई०) तथा अरबी (लगभग ७६० ई०) भाषाओं में अनुवाद हुआ। इस अरबी अनुवाद पर आधारित यूरोपीय भाषाओं में पद्यतन्त्र के अनेक रूपांतर हुए। भारत में आनेवाले कुछ यात्रियों तथा ईसाई मिशनरियों ने भी प्राचीन भारतीय साहित्य से यूरोप को अवगत कराया। १६५१ ई० में डच यात्री अब्राहम रोजर (Abraham Roger) ने मर्तुहरि की सूक्तियों का प्रकाशन किया जिन्का पुर्तगाली भाषा में एक ब्राह्मण ने उसके लिये अनुवाद कर दिया था। उपनिषदों का फारसी अनुवाद औरंगजेब के भाई दारारिकोह ने किया था। उपनिषदों के इस फारसी अनुवाद का फ्रांस के एक विद्वान् (Anquetil du Ferrol) ने १९वीं शताब्दी के आरम्भ में लैटिन में अनुवाद किया। यद्यपि यह लैटिन अनुवाद बहुत शुद्ध नहीं था फिर भी इसने जर्मन दार्शनिक शोपेनहार को अत्यन्त प्रभावित किया।

पद्यतन्त्र के सीरियाई तथा अरबी अनुवादों के यूरोपीय रूपांतरों ने, उपनिषदों के फारसी रूपांतर के लैटिन अनुवाद ने, मर्तुहरिसुभाषितों के पुर्तगाली अनुवाद के प्रकाशन ने, तथा सस्कृत अग्नेवी विद्वानों द्वारा भारत में किये हुए कुछ महत्त्वपूर्ण संस्कृत ग्रन्थों के अग्नेवी अनुवादों ने—यथा, चार्ल्स विल्किन्स (Charles Wilkins) द्वारा सन् १७८५ में किये हुये भगवद्गीता के अग्नेवी अनुवाद ने (जो मूल सस्कृत ग्रन्थ से यूरोपीय भाषा में किया हुआ सर्वप्रथम अनुवाद था), १७८७ ई० में इसी विद्वान् द्वारा किये हुए 'हितोपदेश' के अनुवाद ने, १७८९ ई० में विलियम जॉन्स (William Jones) द्वारा किये हुए कालिदासकृत शकुन्तला नाटक के अग्नेवी अनुवाद ने (इस अग्नेवी अनुवाद का जर्मन भाषान्तर भी जॉन्स फास्टर द्वारा १७९१ ई० में किया गया), १७९४ ई० में विलियम जॉन्स द्वारा किये हुए 'मनुस्मृति' के अग्नेवी अनुवाद ने (जिसका जर्मन अनुवाद भी १७९७ ई० में प्रकाशित हुआ), तथा 'विवादार्णवसेतु' नामक भर्भनिकथ के फारसी अनुवाद के नैथेनील ब्रेसी हालहेड (Nathaniel Brassey Halhed) द्वारा १७७६ ई० में किये हुए अग्नेवी अनुवाद ने यूरोपीय विद्वानों को सस्कृत के अध्ययन की ओर तथा भारत के प्राचीन सस्कृत साहित्य के अन्वेषण की ओर आकर्षित पथ प्रवृत्त किया।

कुछ यूरोपीय विद्वान् इस अध्ययन के लिए स्वयं भारत भी आये। इनमें ग्रीक विद्वान् गैलेनीन का नाम विशेष उल्लेखनीय है, जो १९वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में बनारस आया तथा यहाँ सस्कृत का अध्ययन किया और

११ भूमिका का यह भाग अधिकतर एम. विटरनिट्टकृत हिस्ट्री आफ इंडियन लिटरेचर, भाग १, के निम्नलिखित अर्थों पर आधारित है —

इण्डोइकान के पृष्ठ १-१५, वैदिक लिटरेचर नामक अग के पृष्ठ ५२-१७०, तथा एनिस १८४ पुराणाग सम्बन्धी अग के पृष्ठ ३११-३७० ग्रन्थ ग्रन्थों तथा सूचनाओं का भी आधार लिया गया है जिनका निर्देश मयासम्भव उन रचनाओं पर कर दिया गया है।

४० वर्ष तक बनारस में रहकर अनेक संस्कृत ग्रन्थों का (देवी माहात्म्य का भी) ग्रीक भाषा में अनुवाद किया ।^{१२} आस्ट्रिया के एक ईसाई पादरी फ्रा पाओलिनो (Fra Paolino) ने भारतीय संस्कृतवाचन्य का यूरोप में सबसे पहले उद्घाटन किया, वह मलाबार तट पर १७७६ से १७८९ ई० तक रहा और उसने अपने ग्रन्थ (Systema Brahmanicum) के द्वारा यूरोप को भारत के ब्राह्मण धर्म के साहित्य से परिचित कराया ।

यूरोप में संस्कृत का पहले पहल प्रवेश एक अमेजी विद्वान् एलेक्जैंडर हैमिल्टन (Alexander Hamilton) के द्वारा किया गया । उसने विलियम जॉन्स तथा कॉलब्रूक के समान ही वारेन हेस्टिंगज के समय में भारत में संस्कृत का अध्ययन किया तथा १८०२ ई० में फ्रांस में होता हुआ यूरोप लौटा, परन्तु उस समय इंग्लैंड तथा फ्रांस के बीच युद्ध आरम्भ हो गया और हैमिल्टन को बीच में ही पेरिस में रोक लिया गया । तभी जर्मन विद्वान् फ्रैडरिक श्लैगल (Friedrich Schlegel) भी १८०७ तक रहने के लिए पेरिस आया हुआ था । श्लैगल ने हैमिल्टन से परिचय किया तथा उससे संस्कृत का अध्ययन किया । श्लैगल ने ही जर्मनी में भारतीय भाषा-विज्ञान की नींव डाली । उसके ग्रन्थ में, जो १८०८ ई० में प्रकाशित हुआ, रामायण, मनुस्मृति, भगवद्गीता और महाभारत के शाकुन्तलोपाख्यान के कुछ अंशों का जर्मन में अनुवाद भी दिया हुआ था और ये संस्कृत के मूल ग्रन्थों से जर्मन भाषा में किए हुये प्रथम अनुवाद थे । श्लैगल के इस जर्मन ग्रन्थ ने जर्मन विद्वानों के हृदयों में संस्कृत के अध्ययन के लिए और भी अधिक उत्साह तथा प्रेरणा जागरित करने का श्रेय प्राप्त किया परन्तु यूरोप में संस्कृत साहित्य के इस प्रचार में सैन्ट पीटर्स बर्ग में प्रकाशित संस्कृत जर्मन कोश ने जिसका सम्पादन बार्थॉलिक (Otto Bohtligk) तथा रॉय (Rudolph Roth) ने किया था और जो सात भागों में १८५७-१८७५ ई० में प्रकाशित हुआ, बहुत अधिक सहायता प्रदान की ।

१८३० ई० तक तो यूरोप में वेदों से भिन्न अन्य संस्कृत साहित्य का ही विशेषरूप से अध्ययन तथा अनुसंधान हुआ । उस समय तक वेदों की ओर विद्वानों का विशेष ध्यान नहीं गया था । यद्यपि कॉलब्रूक (H T Colebrooke) ने १८०५ में अपने वेद परिचयात्मक निबन्ध (On the Veda) में यूरोप को वेदों का प्रथम बार परिचय दिया था । संस्कृत का यह अध्ययन तुलनात्मक भाषा-विज्ञान से संबद्ध था, जिसकी नींव जर्मन विद्वान् फ्रैंज बोप्प (Franz Bopp) ने १८१६ में प्रकाशित अपने ग्रन्थ 'Conjugations system' के द्वारा डाली थी । परन्तु वेदों का भाषाविज्ञानात्मक दृष्टि से अध्ययन एवं अनुसंधान १८३८ से आरंभ हुआ जब फ्रैडरिक रोजन (Friederich Rosen) ने ऋग्वेद के प्रथम अष्टक का लटन से प्रकाशन किया ।

परन्तु वेदों के अध्ययन की वास्तविक नींव पैद्य विद्वान् यू बर्नफ (Eugene Burnouf) ने डाली, उसके दो शिष्य रुडॉल्फ रॉथ तथा मैक्समुलर वेदों के प्रसिद्ध विद्वान् हुए । रॉथ ने वेदों के साहित्य तथा इतिहास का परिचय १८४६ ई० में प्रकाशित अपने ग्रन्थ में दिया । और मैक्समुलर ने सायण भाष्य सहित ऋग्वेद के सम्पूर्ण ग्रन्थ का १८४९-१८७५ ई० में प्रकाशन किया । तभी से यूरोप के अनेक विद्वान् वेदों के अध्ययन में जुट गये । और फलस्वरूप यूरोप में चारों वेदों की संहिताओं के अनेक सम्पूर्ण अनुवाद, अनुवाद सहित उनके अनेक संस्करण तथा वेदों के व्याख्यानमय अनेक अध्ययन प्रकाशित हुये हैं ।

वेद संहिताओं के अनुवादों में विस्सन (H. Wilson) द्वारा किया हुआ ऋग्वेद का अमेजी अनुवाद (जो

१२ इत मूचना के लिये मैं बार्थिंगटन (अमेरिका) का कैथलिक मूनिचरिटी के प्राध्यापक डा० सीयूफीड थुल्लज का आभारी हूँ (निर्दिष्ट—जनवा ७ अक्टूबर १९६४ का पत्र)

सायण-भाष्य पर आधारित है), एच. ग्रेसमन (H. Grassmann) द्वारा किया हुआ ऋग्वेद का जर्मन अनुवाद (जो सायण-भाष्य से बिल्कुल स्वतन्त्र है) तथा अल्फ्रेड लुडविग् (Alfred Ludwig) द्वारा किया हुआ ऋग्वेद का जर्मन-अनुवाद (जिसमें सायण भाष्य से तथा अन्य आधुनिक साधनों से भी सहायता ली गई है) विशेष उल्लेखनीय हैं। ग्रिफिथ B. T. H. Griffith) ने तो सम्पूर्ण ऋग्वेद, शुक्लयजुर्वेद तथा अथर्ववेद के अंग्रेजी अनुवाद किये जो बनारस से प्रकाशित हुए। यजुर्वेद की तैत्तिरीयसंहिता का अंग्रेजी अनुवाद कीथ (A. B. Keith) ने किया, तथा सामवेद की राणायनीय संहिता का सम्पादन तथा अनुवाद स्टीवनसन (J. Stevenson) ने किया। ऋग्वेद के मन्त्रों के अनेक संकलन भी अनुवाद सहित प्रकाशित हुए जिनमें से मैक्समुल्लर (Max Muller), ओल्डनबर्ग (Oldenberg) गैल्डनर (R. F. Geldner), मैकडालन (A. A. Macdonell) आदि विद्वानों द्वारा प्रकाशित सातुवाद संकलन उल्लेखनीय हैं।

पञ्चतन्त्र, भगवद्गीता, उपनिषद्, भगवद्गीता, मनुस्मृति, धर्मशास्त्र-निबन्ध, तथा शकुन्तला के अनुवादों ने और विशेषकर वेदों के अनुवादों तथा अध्ययनों ने यूरोप में रामायण-महाभारत तथा पुराण वाङ्मय के अध्ययन के प्रति विद्वानों को प्रेरित किया, क्योंकि पुराणों में इन्हीं के जैसे सनातन विषयों का प्रतिपादन किया गया है। यूरोप में पुराण का प्रथम परिचय भागवत पुराण के तामिल रूपान्तर के फ्रेंच अनुवाद द्वारा हुआ यह अनुवाद १७८८ ई० में पेरिस में प्रकाशित हुआ। इस फ्रेंच अनुवाद का एक जर्मन अनुवाद भी ज्यूरिक में १७९१ ई० में प्रकाशित हुआ। बाद में पुराण-ग्रन्थों के तथा रामायण-महाभारत के अनेक यूरोपीय भाषाओं में अनुवाद होने लगे। इन अनुवादों में से कुछ का परिचय नीचे दिया जा रहा है¹—

लैटिन अनुवाद

महाभारत के 'नल्येपाख्यान' का लैटिन अनुवाद फ्रेंच वाप्य द्वारा १८१९ ई० में प्रकाशित किया गया। भगवद्गीता का एक लैटिन अनुवाद ए. व्हल्फू, श्लेगल (August Wilhelm von Schlegel) ने १८३३ ई० में प्रकाशित किया। देवीमाहात्म्य का लैटिन अनुवाद लुदोविकस पोले (Ludovious Poley) ने बर्लिन से १८३१ में प्रकाशित किया।

इटालियन अनुवाद

रामायण का इटालियन अनुवाद गोरसियो (G. Gorresio) ने १८४७-५८ में प्रकाशित किया।

फ्रेंच अनुवाद

रामायण का फ्रेंच भाषा में एक अनुवाद Fauche द्वारा १८५७-५८ में तथा दूसरा अनुवाद A. Roussel द्वारा १९०५ ई० में प्रकाशित किया गया।

महाभारत के १-१० पर्वों का अनुवाद भी H. Fauche द्वारा पेरिस से १८५३ में प्रकाशित किया गया।

महाभारत के दो प्रसिद्ध उपाख्यानों—शकुन्तलोपाख्यान तथा नल्येपाख्यान—का अनुवाद भी फ्रेंच में क्रमशः A. Chezy (१८३० ई०) तथा S. Levi (१९२० ई०) ने प्रकाशित किये।

भागवतपुराण का फ्रेंच अनुवाद E. Burnouf द्वारा पेरिस से १८४०-४७ में प्रकाशित किया गया। भागवत के तामिल रूपान्तर के फ्रेंच अनुवाद का पहले ही उल्लेख कर दिया गया है।

¹ १३ पुराणों के तथा रामायण महाभारत के यूरोपीय भाषाओं में किये हुए अनुवादों का कुछ श्रेष्ठ विलुप्त परिचय रामायण का केंद्रीय अनुवाद की सूचिका न दे दिया है।

जर्मन अनुवाद

रामायण के प्रथम काण्ड का अनुवाद J Menrad द्वारा १८९७ में तथा द्वितीय काण्ड का स्वतन्त्र पद्यत्मक अनुवाद A Holtzmann द्वारा किया गया।

महाभारत के अनेक उपाख्यानो के जर्मन अनुवाद प्रकाशित हुए, जैसे शाकुन्तलोपाख्यान का १८३३ में, नलोपाख्यान का १८६३ तथा १९२९ में, मत्स्योपाख्यान का १८२९ तथा १८९९ में एवं सावित्र्युपाख्यान का १८८९, १८३६ एवं १८९५ में जर्मन विद्वानों द्वारा अनुवाद प्रकाशित किये गये।

भागवत पुराण के तामिल रूपान्तर वाले फ्रेंच अनुवाद का जर्मन भाषा में १७९१ ई० में अनुवाद किया गया इसका उल्लेख किया जा चुका है। गरुडपुराण के प्रेतकल्प (सरोद्धार) का E Abegg ने जर्मन में अनुवाद किया।

मार्कण्डेय पुराण के हरिदचन्द्रोपाख्यान का F Ruokert द्वारा १८५४ में अनुवाद किया गया।

विष्णुपुराण के 'पुरूरवा तथा उर्वशी' आख्यान का जर्मन अनुवाद Geldner द्वारा किया गया तथा कृष्णलीला विषयक ५ वें अंश का अनुवाद A Paul द्वारा १९१५ में प्रकाशित किया गया।

अंग्रेजी अनुवाद

रामायण का पद्यत्मक अंग्रेजी अनुवाद R T Griffith द्वारा ५ भागों में बनारस से १८७०-७४ ई० में प्रकाशित किया गया। रामायण का एक अंग्रेजी अनुवाद एम० एन० दच द्वारा कलकत्ते से १८९२-९४ में प्रकाशित किया गया।

महाभारत के संपूर्ण ग्रन्थ का अनुवाद किशोरी मोहन गंगोली ने अंग्रेजी में किया जो कलकत्ते से १८८४-९६ में प्रकाशित हुआ। एम० एन० दच द्वारा महाभारत का दूसरा अंग्रेजी अनुवाद १८९५-१९०५ में कलकत्ते से प्रकाशित किया गया। नलोपाख्यान का एक अंग्रेजी अनुवाद Monier Williams द्वारा १८६० में प्रकाशित किया गया। सावित्र्युपाख्यान का अंग्रेजी अनुवाद Griffith द्वारा १८५२ में तथा J Muir द्वारा १८८० में प्रकाशित किया।

विष्णुपुराण का अंग्रेजी अनुवाद प्रथम बार विल्सन (H H Wilson) द्वारा लंडन से १८४० में प्रकाशित किया गया। इस अनुवाद का एक नवीन संस्करण पुत्री पुस्तकालय द्वारा १९६१ में प्रकाशित किया गया है। इस पुराण का एक अन्य अंग्रेजी अनुवाद एम एन दच ने कलकत्ते से १८९४ में प्रकाशित कराया।

मार्कण्डेयपुराण का प्रसिद्ध अंग्रेजी अनुवाद पार्जिटर (F E Pargiter) द्वारा १८८८-१९०५ में प्रकाशित किया गया।

मार्कण्डेयपुराण के हरिदचन्द्रोपाख्यान का अंग्रेजी अनुवाद भी J Muir द्वारा Original Sanskrit Texts में किया गया।

देवीमाहात्म्य का एक अंग्रेजी अनुवाद वेंकट राय स्वामी द्वारा १८२३ ई० में कलकत्ते में प्रकाशित किया गया। इसका एक अंग्रेजी अनुवाद सांस्कृतिक अध्ययन सहित डा० वामुदेवशरण अग्रवाल ने भी किया है, जो सर्वभारतीय काशिराज-ग्रन्थालय द्वारा १९६३ में प्रकाशित किया गया है।

अग्निपुराण का अंग्रेजी अनुवाद M N Dutt द्वारा १९०१ में कलकत्ते से प्रकाशित किया गया।

भागवतपुराण के कुछ अंग्रेजी अनुवाद भारतीय विद्वानों द्वारा १८९५ में, १९२१-२२ में, १९२८ में तथा १९३०-३४ में प्रकाशित किये गये ।

देवीभागवत का एक अंग्रेजी अनुवाद पाणिनि आफिस (इलाहाबाद) द्वारा १९२२ में प्रकाशित किया गया ।

ब्रह्मवैवर्त पुराण का भी एक अंग्रेजी अनुवाद पाणिनि आफिस द्वारा प्रकाशित किया गया ।

गरुडपुराण का अंग्रेजी अनुवाद M N Dutt द्वारा कलकत्ते से १९०८ में प्रकाशित किया गया ।

गरुडपुराण के 'प्रतिकल्प' (सरोद्धार) का अंग्रेजी अनुवाद E Wood द्वारा १९११ में S, B H ग्रन्थमाला के नवें भाग में प्रकाशित किया गया ।

मत्स्यपुराण का अंग्रेजी अनुवाद पाणिनि आफिस द्वारा दो भागों में प्रकाशित किया गया ।

आय यूरोपीय भाषाओं में अनुवाद

महाभारत के नलोपार्यायन का यूरोप की प्रायः सभी भाषाओं में जैसे—इटालियन, फ्रेंच, जर्मन, अंग्रेजी स्वेडिश, प्रोक, जैक, पोलिश, रूसी, आधुनिक प्रीक तथा हंगेरियन में—अनुवाद हुआ है । यह प्रसिद्ध उपार्यायन यूरोप के प्रायः सभी विश्वविद्यालयों के सस्टृतपाठ्यक्रम में निर्धारित है ।

इन अनुवादों से यूरोप में इतिहास पुराण की अनुवाद परम्परा का इतने अल्प काल में ही कितना अधिक विकास हुआ यह स्पष्ट है । यह विकास यूरोपीय विद्वानों की तथा कुछ अंग्रेजीवेत्ता भारतीय विद्वानों की इस महत्त्वपूर्ण साहित्य की ओर प्रवृत्ति का तथा इसकी व्याख्या के लिए उनके किये हुये प्रयत्नों का ही परिणाम है । इन अनुवादों तथा अध्ययनों से पुराणों का महत्त्व पाश्चात्य विद्वानों की दृष्टि में बहुत अधिक बढ़ गया है, और अब तो भारत के समान यूरोप में भी पुराणों पर अनेक प्रकार के अध्ययन तथा अनुसंधान किये जा रहे हैं ।

पुराणों के अनुवाद की कुछ समस्याएँ

किसी भी अनुवाद के सम्बन्ध में यह सामान्य प्रश्न उपस्थित होता है कि वह अनुवाद मूल के भावों का कहां तक प्रतिनिधित्व करता है और साथ में अनुवाद की भाषा के सोप्टव को भी कहां तक सुरक्षित रखता है । परन्तु पुराणों के अनुवाद के सम्बन्ध में इस बात के अतिरिक्त और भी अनेक समस्याएँ उपस्थित होती हैं जिनका दिग्दर्शन यहाँ नीचे कराया जा रहा है —

(१) पुराणों में मानवोपयोगी सभी ज्ञान क्षेत्रों का समावेश पाया जाता है जैसा कि पुराणों ने स्वयं दावा किया है—'पुराणमखिल सर्वशास्त्रमय ध्रुवम्' (स्कन्द पुराण, ७ १ २ ४) । इनमें धर्म, दर्शन, आचारनैति, व्यवहारनैति, राजनीति, सृष्टिविद्या, भुवनकोश, राजवंशावली, वरानुचरित, तीर्थ गाहात्म्य, व्रत, उपवास, अनेकविध आख्यान, देवों तथा असुरों इत्यादि का वर्णन तथा इसी प्रकार के अन्य अनेक विषय मिलते हैं । अतः पुराण के अनुवादक के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह पुराणों के इन सभी विषयों से भली प्रकार परिचित हो ।

(२) पुराण भी अन्य विद्याओं के समान एक अलग विद्या है । पाश्चात्य तथा विष्णुपुराण ने १४ विद्याओं में पुराण विद्या का भी अन्तर्भाव किया है इसका निर्देश पहले किया जा चुका है । सभी शास्त्रों के अपने अपने विशेष विषय भी होते हैं । पुराण के दो अपने विशेष विषय हैं—सृष्टिनिर्माणदि का विवेचन, तथा पुराण आख्यान (Mythology) । जिस प्रकार पुराणों के सृष्टिविषयक सिद्धान्तों को ठीक ठीक समझने के लिए इस विषय के उन विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों को समझना आवश्यक है जिनका प्रतिपादन पद्धर्शन शास्त्रों में किया गया है । इसी प्रकार पुराणों के पुराणार्यानों को समझने के लिए तुलनात्मक पुराणार्यायन शास्त्र का अध्ययन आवश्यक है ।

पुराणों के अनेक आख्यानों का बीच वेदों में मिलना है; जैन तथा बौद्ध ग्रन्थों के विविध आख्यानों से भी पुराणों के अनेक आख्यानों का साम्य है। यही नहीं, अपितु ग्रीस तथा रोम देश के विविध आख्यानों से भी पुराणों के अनेक आख्यानों का साम्य है इसका उल्लेख जोन्स विलियम ने भी किया है।¹⁴ अतः पुराण के अनुवादक को पौराणिक सृष्टि-विज्ञान तथा तुलनात्मक पुराणाख्यान-शास्त्र (Science of Comparative Mythology) के आधार पर पुराणों के आख्यानों का सही ज्ञान अपेक्षित है, अन्यथा अनुवाद में अनेक भूलों का हो जाना समभव है।

(३) पुराणों में हमें बहुधा संक्षिप्त तथा अस्पष्ट वचन भी मिलते हैं। अनुवादक का कर्तव्य है कि इस प्रकार के संक्षिप्त तथा अस्पष्ट अंशों की स्पष्ट व्याख्या टिप्पणी के रूप में अथवा अनुवाद में ही करे। ऐसे अंशों को स्पष्ट करने के लिए उसे प्राचीन संस्कृत टीकाओं एवं व्याख्याओं का सहारा आवश्यक है। यदि वही वचन अन्यत्र भी किसी पुराण में अथवा महाभारतादि में मिल सके तो उसका अन्वेषण करके तब अर्थ को स्पष्ट करना चाहिए। उदाहरणार्थ, वामनपुराण का निम्नलिखित श्लोक देखिये—

चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्या पञ्चभिरेव च ।

हृयते च पुनर्द्वाभ्या तुभ्यं होत्रात्मने नम ॥

(वाम०-पु०, सरो-माहात्म्य, ५-१)

यह श्लोक कश्यप द्वारा कही हुई विष्णु-स्तुति का है। किन्तु इसका अर्थ अस्पष्ट है। यही श्लोक महाभारत शान्तिपर्व के भीष्मन्तराज में भी दिया हुआ है। (४७. ४३)। नीलकण्ठ ने महाभारत की अपनी टीका में इसका अर्थ इस प्रकार किया है—

“चतुर्भिरिति । आश्रयवेति, चतुरक्षरम् । अस्तु श्रौषडिति चतुरक्षरम् । यजेति द्वयक्षरम् । ये यजामहे इति पद्याक्षरम् । द्वयक्षरो वषट्कार इति सप्तदशभिरक्षरैर्बोहृषते तस्मै होत्रात्मने नम ॥”

इस व्याख्या से उपर्युक्त अस्पष्ट श्लोक का स्पष्टीकरण हो जाता है। इसी प्रकार के तुलनात्मक अध्ययन से अर्थ को स्पष्ट करते हुये पुराणों का अनुवाद करना उचित है। इसके अतिरिक्त इस प्रकार के श्लोकों के अर्थानुसंधान के लिये वैदिक यज्ञ-विद्या का ज्ञान भी अपेक्षित है और इसी तरह अन्य अस्पष्ट वचनों के अर्थानुसंधान के लिये उन वचनों में लक्षित विद्याओं का ज्ञान आवश्यक है।

(४) सभी पुराण संस्कृत भाषा में रचित हैं, जिसके कारण पुराणों की भाषा की समस्या भी अनुवाद में आसानी होती है। इस भाषा समस्या के निम्नलिखित पक्ष यहाँ विचाराणीय हैं :—

(क) संस्कृत अत्यन्त संदृढ या सरिलट भाषा है। संस्कृत का एक छोटा-सा वाक्य अनुवाद में अनेक वाक्यों की अपेक्षा रख सकता है और फिर भी मूल के भाव का समतुल्य एवं सौष्ठव अनुवाद में आ ही जाय यह भी निश्चित नहीं है। महाभारत के सावि-युगलवान के अनुवाद के संवन्ध में विंटरनिट्ज का कथन है कि “यह काम्य सूत्रों की भाषाओं में अनूदित हुआ है, जर्मन ने भी इसका अनुवाद किया है, परन्तु ये सभी अनुवाद अथवा रूपन्तर इस भारतीय काम्य के अनुपम चमत्कार की शोकी मात्र दे सकते हैं।” (पृ० ३९९).

(ग) अन्य संस्कृत काम्यों के समान पुराणों में भी हमें स्थल स्थल पर स्थानों, दरपों इत्यादि के उष्णकटि के काम्यमन्त्र वर्णन मिलते हैं जिनमें इष्टे तथा परिस्तरुया आदि शब्दकारों का भी रूप प्रयोग होता है। संस्कृत के

श्लेष तथा परिसरूपा का अन्य भाषा में अनुवाद करते ही उनका चमत्कार तथा काव्य-सौन्दर्य नष्ट हो जाता है और उनका पूरा पूरा भाव भी अनुवाद में खाना टुपकर हो जाता है ।

(ग) संस्कृत के कुछ शब्द ऐसे भी हैं जिनके समानार्थक या पर्याय शब्दों का अन्य भाषाओं में मिलना संभव नहीं है, उदाहरणार्थ, 'धर्म', 'यज्ञ' 'ब्रह्मचर्य' आदि ऐसे शब्द हैं, जिनका वह पूर्ण भाव जिनके साथ भारतीय मानस जुड़ा हुआ है अन्य भाषाओं के किन्हीं भी पर्याय शब्दों में आना संभव नहीं उनकी अधूरी व्याख्या अन्वय की जा सकती है, परन्तु उससे अनुवाद का प्रवाह बाधित हो जाता है । विंटरनिट्ज ने स्वयं इस तथ्य को स्वीकार किया है वे कहते हैं—'यूरोप की किसी भी भाषा में ऐसा शब्द नहीं है जो संस्कृत-शब्द 'धर्म' का पर्यायवाचक कहा जा सके ।' (पृष्ठ ३५२, पादटिप्पणी २) । अतः ऐसे शब्दों का अनुवाद हो ही नहीं सकता ।

(घ) पुराणों की संस्कृत-भाषा प्राकृत भाषा के प्रभाव के कारण यथा छन्दोऽनुसूय के कारण बहुधा अपाणिनीय हो गई है । पुराणों के इस प्रकार के अपाणिनीय प्रयोगों से अनुवादक का परिचित होना आवश्यक है नहीं तो अर्थ का अन्वय ही सकता है, उदाहरणार्थ, प्राकृत के समान पुराणों में भी द्वितीया के स्थान में प्रथमा का प्रयोग मिलता है, जैसे—

रुद्रमौशनस प्रादात् सतोऽन्ये मातरो ददु ।

(वागन पु०, समीक्षात्मक संस्करण, ३१.९१)

इस श्लोकार्थ में 'मातरो' शब्द प्रथमा विभक्ति में होते हुए भी वस्तुतः कर्मकारक को द्वितीया में है परन्तु इस बात को न समझते हुए देखकों ने इस पुराण की प्राचीन पाण्डुलिपियों में अनेक अशुद्ध पाठभेद कर दिये हैं । जैसे 'अन्ये' के स्थान में 'अन्यान्' आदि, जो प्रसंग के अनुसार ठीक नहीं बैठते ।

(ङ) प्रायः कोई भी संपूर्ण पुराण किसी एक ही मन्थकार का प्रणीत नहीं है । पुराण के पाठ की वृद्धि तथा उसमें परिवर्तन देशकाल के अनुसार सदा से होता आया है । अतः उनमें कुछ ऐसे भी शब्द आ गये हैं जो उस काल तथा देश में भिन्न अर्थ में प्रयुक्त होते थे और जिनका वह अर्थ संस्कृतसाहित्य में प्रचलित नहीं है । उदाहरणार्थ, क्रिया-योगसार में, जो पद्मपुराण का एक खण्ड माना जाता है और जिसका निर्माण पूर्वी बंगाल में ९वीं या १०वीं शताब्दी में हुआ, 'प्रस्ताव' शब्द (६.१२४) कथा के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है तथा 'कल्लोल' शब्द (१०.२१; २०.९०) 'कुल्ले' अर्थात् आचमन के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है । इसी प्रकार बृहद्महापुराण में जिसका निर्माण भी बंगाल में ही १३वीं शताब्दी में हुआ, संस्कृत धातु 'वस्' का प्रयोग 'बैठने' के अर्थ में (२.१४.१६) तथा 'विलक्षण' शब्द का प्रयोग 'पर्याप्त' के अर्थ में (२.१४.५०) हुआ है ।

(च) पुराणों के अस्थिर पाठ के कारण उनमें कुछ ऐसे श्लोक भी होने संभव हैं जिनका कोई सुनिश्चित तथा संतोषजनक अर्थ नहीं किया जा सकता ऐसे सदिग्धार्थक श्लोकों का सम्भावित अर्थ करने के अतिरिक्त अनुवाद में उनका पृथक् निर्देश भी कर देना उचित है, जिससे आगे विद्वानों को उन पर विचार करने का अवसर मिले ।

पुराणों के अनुवाद की कतिपय समस्याओं का उल्लेख यहाँ किया गया है । इस प्रकार की अन्य समस्याएँ भी अनुवाद में उपस्थित हो सकती हैं जिनका समाधान विद्वान् तथा अनुभवी अनुवादक के लिए सर्वथा शक्य है ।

—वामनपुराण

महापुराणों की सूची में वामनपुराण का १४वाँ स्थान है। वामन अवतार का सविस्तर प्रतिपादन करने के कारण इस पुराण का नाम 'वामनपुराण' रखा गया है। इस पुराण में अनेक महत्त्वपूर्ण पौराणिक विषयों का वर्णन है, यथा भुवनेश्वर, शिव और विष्णु की भक्ति एवं पूजाविधि, देवीमाहात्म्य-आख्यान, स्कन्दोत्पत्ति, देवासुरसमाम, कुरुक्षेत्र तथा इसके तीर्थों का वर्णन, व्रत, उपवास तथा अनेक महत्त्वपूर्ण आख्यान और उपाख्यान। इनके अतिरिक्त वामनपुराण में कुछ ऐसे भी विषय आ गये हैं जिनका अन्य पुराणों में अभाव है—जैसे शिव के विभिन्न अंगों के भूषणों के रूप में सर्पों के नामों का उल्लेख, प्रह्लाद का बदरिकाश्रम में नर-नारायण से युद्ध, देवों और असुरों के पृथक् पृथक् वाहनों का वर्णन, सुकेशिचरित, त्रिविक्रम द्वारा धुन्धुवध, प्रह्लाद की तीर्थयात्रा तथा वामन के विविध स्वरूपों एवं निवास-स्थानों का वर्णन।

वामन-पुराण में संकुचित साम्प्रदायिक भावना का निरान्त अभाव है। इसमें तान्त्रिक पूजा विधियों का भी कहीं उल्लेख नहीं है जैसा कि अन्य कई पुराणों में है इससे इसकी प्राचीनता सिद्ध होती है। ग्रन्थ परिमाण की दृष्टि से यह पुराण बड़ा नहीं है इसमें केवल ६००० के लगभग श्लोक हैं। परन्तु यह पुराण महत्त्वपूर्ण पुराणों में से अन्ततम है। इसने भारत के स्वर्णयुग में प्रचलित प्रायः सभी आध्यात्मिक एवं धार्मिक विचारधाराओं को अपने कलेवर में सुरक्षित किया है। इसमें स्तोत्रों की संख्या भी २८ के लगभग है जो इसके लघु कलेवर को देखते हुए बहुत कही जा सकती है। इसके नैतिक धर्म का मूल इसमें वर्णित अष्टाङ्ग धर्म (२३, २५, २८) है जिससे सिद्ध है कि यह पुराण कोई धार्मिक विधि-विधानों को आवश्यकता से अधिक महत्त्व नहीं देता। इस पुराण में प्रह्लाद, बलि, सुकेशि आदि असुरों को भी धर्माचरण के क्षेत्र में महत्ता प्रदान की है। इन सब बातों से इस पुराण की धार्मिक उदारता प्रकट होती है।

वामन पुराण के नाम से ही प्रकट है कि यह पुराण प्रधानतया भागवत-वैष्णव धर्म से संबद्ध है। इसके उपक्रम तथा उपसंहार से भी यही बात सूचित होती है। इस पुराण के आरम्भ में 'नारायणं नमस्कृत्य...' वैष्णवधर्म का प्रसिद्ध मंगलाचरणरूप श्लोक दिया हुआ है जो वामन-पुराण के प्रायः सभी काश्मीरी और दक्षिण भारतीय हस्तलेखों में पाया जाता है। महाभारत और प्रायः प्रत्येक वैष्णवग्रन्थ के आरम्भ में यह श्लोक पढ़ा जाता है। उसके पश्चात् वामन पुराण का मंगलाचरण श्लोक 'त्रैलोक्यराज्यमाक्षिप्य' आता है जिसमें श्रीधर अर्थात् विष्णु को नमस्कार किया गया है। तदनन्तर वामन पुराण के आरम्भिक श्लोकों में भी विष्णु और वैष्णव का उल्लेख है। उपसंहार में भी विष्णु और विष्णु भक्तों की एवं विष्णुमूर्तियों के निर्माणकर्त्ताओं की प्रशंसा है तथा भिन्न भिन्न पत्नों और पुष्पों द्वारा विष्णु पूजा का विस्तृत विधान है। इसके अतिरिक्त इस पुराण में १७ स्तोत्र विष्णु और वामन के हैं तथा ११ स्तोत्र शिव के हैं, जिनमें से भी ५ शिवस्तोत्र सरोमाहात्म्य में पठित हैं और वामन पुराण में संनिविष्ट सरोमाहात्म्य का प्रामाण्य संदिग्ध ही है जैसा कि आगे विचार किया गया है। सरोमाहात्म्य में वेदवृत्त शिवस्तोत्र बहुत बड़ा है उसमें १०० से भी अधिक श्लोक हैं परन्तु वह स्तोत्र महाभारत के दान्तिपर्व (अ० २८४, श्लो० ७४-१८६) में दिये हुए दशवृत्त शिवस्तोत्र के विस्तृत समान ही है।

वामन पुराण प्रधानतः वैष्णव पुराण होते हुए भी वैष्णव और शैव धर्मों के सामञ्जस्य से परिपूर्ण है। विद्वान् ने विष्णु-पुराण के अपने अंग्रेजी-अनुवाद की भूमिका में कहा है कि 'यह पुराण अन्य पुराणों की अपेक्षा धार्मिक सम्प्रदायों के प्रति अधिक उदार है। यह बिना किसी पक्षपात के शिव और विष्णु के प्रति समानरूप से आदर प्रदर्शित करता है अतः यह पुराण किसी भी सम्प्रदाय-विरोध के साथ अपने को विशेष सम्बद्ध नहीं करता।'

परन्तु वामन-पुराण प्रपाततया वैष्णव-पुराण होने पर भी राक्स-पुराण माना जाता है। वैष्णव-पुराण प्रायः सात्त्विक ही माने गये हैं, जैसा कि पद्म-पुराण (आनन्दा० संस्करण, ६ २६३ ८१ ८५) तथा भविष्य-पुराण (३ ३ २८ १० १५) उल्लेख किया है।

उपर्युक्त विवेधानुसार पद्म-पुराण तथा भविष्य-पुराण में पुराणों के सात्त्विक राक्स तथा तामस ये तीन विभाग निम्नलिखित हैं —

पद्म-पुराण	भविष्य-पुराण
(१) सात्त्विक-पुराण	(१) सात्त्विक-पुराण
१ वैष्णव	१ ब्रह्मवैवर्त
२ नारदीय	२ स्कान्द
३ भागवत	३ पाद्म
४ गरुड	४ भागवत
५ पाद्म	५ ब्राह्म
६ वाराह	६ गरुड
(२) राक्स-पुराण	(२) राक्स-पुराण
१ ब्रह्मण्ड	१ मात्स्य
२ ब्रह्मवैवर्त	२ कूर्म
३ मार्कण्डेय	३ वृषिंह
४ भविष्य	४ वामन
५ वामन	५ त्रिव
६ ब्राह्म	६ वायु
(३) तामस-पुराण	(३) तामस-पुराण
१ मात्स्य	१ मार्कण्डेय
२ कूर्म	२ वाराह
३ ईश	३ आग्नेय
४ दश	४ लिङ्ग
५ स्कान्द	५ ब्रह्मण्ड
६ आग्नेय	६ भविष्य

पद्म-पुराण के अनुसार सात्त्विक-पुराण मोक्षमद हैं, राक्स-पुराण स्वर्गमद हैं, तथा तामस-पुराण नरकमद हैं —

सात्त्विक मोक्षमद मोक्ष राक्स स्वर्गमद शुभा ।

तामस तामसा देवि निरयन्तिहेतवः ॥

(पद्म० पृ० ६ २६३ ८५)

परन्तु भविष्य पुराण के अनुसार राजस-पुराणों में प्रायेण कर्मकाण्ड का प्रतिपादन होता है, तथा तामस-पुराण शाक्तधर्म परायण होते हैं —

राजसा षट् स्मृता वीर कर्मकाण्डमया भुवि ।

तामसा षट् स्मृता भाज्ञै शक्तिधर्मपरायणा ॥

(भविष्य पु० ३ ३ २८ १३, १५)

मत्स्य पुराण के अनुसार सात्त्विक पुराणों में अधिकतर हरि का माहात्म्य होता है, राजस पुराणों में ब्रह्मा का माहात्म्य अधिक होता है तथा तामस पुराणों में अग्नि और शिव का माहात्म्य अधिक रहता है और सकीर्ण पुराणों में सरस्वती तथा पितरों का माहात्म्य विशेषरूप से रहता है —

सात्त्विकेषु पुराणेषु माहात्म्यमधिकं हरे ।

राजसेषु च माहात्म्यमधिकं ब्रह्मणो विदुः ॥

तद्दग्नेश्च माहात्म्यं तामसेषु शिवस्य च ।

संकीर्णेषु सरस्वत्या पितॄणां च निगद्यते ॥

(मत्स्यपु०, ५३ ६७-६८)

परन्तु मत्स्यपुराण में तीस कल्पों का भी यही वर्गीकरण दिया हुआ है, और सात्त्विक, राजस, तामस तथा सकीर्ण कल्पों में क्रमशः ६-हो हरि, ब्रह्मादि देवों का विशेष माहात्म्य रहता है ऐसा कहा गया है (अ० २९) । पर मत्स्य-पुराण में न तो सात्त्विकादि कल्पों के और न सात्त्विकादि पुराणों के अलग अलग नाम दिये हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि मत्स्यपुराण का यह वर्गीकरण पूर्वकाल में कल्पों का ही रहा होगा और बाद में इस वर्गीकरण को पुराणों के साथ भी जोड़ दिया गया होगा । चाहे जो भी स्थिति रही हो, मत्स्य पुराण के अनुसार वामन पुराण कौन से वर्ग में है यह सूचित नहीं होता । संभव है मत्स्य पुराण के समय में भी वामनपुराण राजस ही माना जाता रहा हो । इस दृष्टि से इसमें ब्रह्म का माहात्म्य अधिक रहना चाहिये था ।

स्कन्दपुराण की शंकरसहिता के शिवरहस्य खण्ड (२ ३०-५) में वामन पुराण का उन दश पुराणों में अन्तर्भाव किया है जो शिव माहात्म्य का प्रतिपादन करते हैं । ये दश पुराण शैव, मार्कण्डेय, लैङ्ग, वाराह, स्कन्द, मात्स्य, कौर्म, वामन तथा ब्रह्माण्ड हैं^१ । परन्तु ऐसा अनुमान किया जा सकता है कि वामनपुराण जो मूल में वैष्णव पुराण था कालान्तर में अथवा शिव रहस्य खण्ड के समय में शिवपरक बना दिया गया होगा । अस्तु ॥

पद्मपुराण (आन संस्करण, १ ६२ २-७) में हरि की पुराणावधन पुरुष के रूप में कल्पना की गई है और भिन्न भिन्न पुराणों को हरि के भिन्न भिन्न शरीरावयव माने हैं । इस कल्पना में वामनपुराण को हरि विष्णु की त्वचा कहा गया है । जिस प्रकार संपूर्ण शरीर की त्वचा दके हुए हैं उसी प्रकार कदाचिद् वामन पुराण को भी विष्णु के संपूर्ण माहात्म्य का प्रतिपादन करने वाला माना जाता था ।

वामनपुराण में कुरुक्षेत्र तथा इसके तीर्थों के माहात्म्य के प्रतिपादन पर विशेष जोर दिया गया है । सरोमाहात्म्य पदकरण में सूत और ऋषियों का संवाद का स्थान भी कुरुजाह्नव ही कहा गया है । बलि का यज्ञ भी कुरुक्षेत्र में ही

१६ ६०—कार, श्री शंकरा स्मृत्यै हत दि त्रिभुविन आग्नेयपुराण, अवर हैरिटेज, भाग १ १६५१, पृष्ठ २१०

गिरवहायलख का हस्त लेख इण्डिया आफिस लाहवरो में है

६०—जे रागलिङ्ग कैलाग आक त इत मेट्रिकलिय, भाग ६, संख्या ३६७१-७२

रखा गया है जहाँ भगवान् वामन ऋषि उसको छलते हैं (६२ प२), यद्यपि पद्मपुराण (सृष्टि ख २५ १५ १६) में बलि का यह यज्ञ पुष्कर में, अग्निपुराण (४ ७) में गङ्गाद्वार में, स्कन्दपुराण (प्रभासखण्ड, वस्त्रापयज्ञेय महात्म्य, १४ ७८ प्रमृति) के अनुसार प्रभास के समीप वस्त्रापय क्षेत्र में एष भागवत पुराण (७ १८ २१ प्रमृ) के अनुसार नर्मदा के उत्तरी तट पर होना हुआ कहा गया है। अतः वामनपुराण के अनुसार कुरुक्षेत्र को तथा कुरुक्षेत्र के पृथ्वीद्वीप को सर्वश्रेष्ठ माना गया है (१२.४५)।

क्या वामन महापुराण है अथवा उपपुराण ?

प्रायः सभी पुराणों में महापुराण-सूची में वामन पुराण का नाम दिया हुआ है, केवल गरुडपुराण (१२१५ १५-१६) तथा बृहद्दर्शनपुराण (१२५ २० २२) की सूची में महापुराणों के अन्तर्गत वामनपुराण का उल्लेख नहीं पाया जाता, परन्तु उनकी उपपुराणों की सूची में वामनपुराण का नाम दिया है। कूर्मपुराण (११ १ १३-२०) में महापुराण सूची में तथा उपपुराण-सूची इन दोनों में ही वामनपुराण के नाम का उल्लेख है। डॉ० हाकरा ने अपने 'स्टडीज इन दि उपपुराणाज्' भाग १ के पृष्ठ ४ १३ पर उपपुराणों की २३ विभिन्न सूचियों दी हैं जिसमें से केवल चार सूचियों में ही वामनपुराण का उपपुराण के रूप में कथन है। हाकरा भी अपनी पुस्तक 'रिक्वैस्ट ऑन हिन्दु साइन्स एण्ड फिक्शन' के पृ० ७७ पर कहते हैं कि वर्तमान वामनपुराण को उपपुराण कहा जा सकता है।

हमें अब यह विचार करना है कि वर्तमान वामनपुराण महापुराण है अथवा उपपुराण। वामनपुराण के महत्त्व तथा विषय की दृष्टि से यह प्रश्न अवश्य विचारणीय है।

पहले हम बृहद्दर्शन तथा गरुडपुराण की महापुराण सूचियों में वामनपुराण के नाम के अभाव पर विचार करेंगे।

पुराणों में दी हुई प्राचीन महापुराण सूचियों को निम्नलिखित चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है -

वर्ग १—

(१) विष्णुप (३, ६ २१-२४) (११) अग्नि (२७२ १-२६), (१११) भागवत (१२ १३ ४८), (११) भविष्य (ब्रह्मपर्व, ६१ ६४) (११) ब्रह्मवैवर्त (४ १३३ ११ प्रमृति), (११) मार्कण्डेय (बेंकटे संस्करण, १३४. ८-१५), (१११) मत्स्य (५३ १३-५६), (१११) नारदीय (१.९२ २१ २८), (१२) पद्म (आनन्दा स, १ ६२ २-३), (२) स्कन्द (७ १२ २८-७७) तथा (११) वाराह (११२ ६९-७२) इस वर्ग की सूचियों में पुराणों के नामों का क्रम विष्णुपुराण के क्रम के अनुसार है।

वर्ग २—

(१) कूर्म १ १ ११-१५, (२) पद्म, आनन्दा संस्करण, उत्तरखण्ड, २१९ २५ २७, (३) सौर उपपुराण ९ ६ १२, (४) स्कन्द, मयासखण्ड, १.२.५ ७

यह वर्ग कूर्मपुराण के क्रम का अनुसरण करता है, इसमें केवल निम्नलिखित किंचित् भेद हैं —

कूर्म पुराण ८ मार्कण्डेय, ९ आग्नेय

सौर पुराण ८ आग्नेय, ९ मार्कण्डेय

वर्ग ३—

(१) लिङ्ग-पुराण १.३९ ६१-६४, (२) शिव-पुराण, बेंकटे संस्करण, उमासंहिता, ४४ १२० १२२ यह वर्ग लिङ्ग-पुराण के क्रम का अनुसरण करता है।

इन तीनों वर्गों में १८ महापुराणों के नाम समान हैं, केवल क्रम में कुछ भेद है; यथा—

वर्ग १ (=विष्णुपुराण-क्रम)

वर्ग २ (=कूर्मपुराण-क्रम)

वर्ग ३ (=लिङ्गपुराण-क्रम)

१. ब्राह्म	१. ब्राह्म	= विष्णुपुराण-क्रम	१. ब्राह्म	= कूर्मपुराण-क्रम
२. पाद्म	२. पाद्म		२. पाद्म	
३. वैष्णव	३. वैष्णव		३. वैष्णव	
४. शैव ^{१०}	४. शैव ^{१०}		४. शैव ^{१०}	
५. भागवत	५. भागवत		५. भागवत	
६. नारदीय	६. भविष्य		६. भविष्य	
७. मार्कण्डेय	७. नारदीय		७. नारदीय	
८. आग्नेय	८. मार्कण्डेय		८. मार्कण्डेय	
९. भविष्य	९. आग्नेय		९. आग्नेय	
१०. ब्रह्मवैवर्त	१०. ब्रह्मवैवर्त		१०. ब्रह्मवैवर्त	
११. लैङ्ग	११. लैङ्ग	= विष्णुपुराण-क्रम	११. लैङ्ग	= विष्णुपुराण-क्रम
१२. वाराह	१२. वाराह		१२. वाराह	
१३. स्कान्द	१३. स्कान्द		१३. वामन	
१४. वामन	१४. वामन		१४. कूर्म	
१५. कौर्म	१५. कौर्म		१५. मात्स्य	
१६. मात्स्य	१६. मात्स्य		१६. गरुड	
१७. गरुड	१७. गरुड		१७. स्कान्द	
१८. ब्रह्माण्ड	१८. वायवीय (=ब्रह्माण्ड)		१८. ब्रह्माण्ड	

वर्ग ४—

(१) भागवत १२.७.२३-२४; (२) देवीभागवत १.३.२-१२; (३) पद्म, पाताल-खण्ड, १११.९०-९४; (४) पद्म, उत्तरखण्ड, २६३.७७-८१ इस वर्ग के प्रत्येक पुराण में दिये हुए महापुराणों के नामों का क्रम एक दूसरे से भिन्न है और प्रथम तीनों वर्गों में से किसी वर्ग का भी अनुसरण नहीं करता ।

इन उपर्युक्त चारों वर्गों के सभी पुराणों में वामनपुराण का नाम महापुराणों की सूची में उल्लिखित है, और अधिष्ठातर सूचियों में वामनपुराण की क्रम-संख्या १४वाँ है, स्वर्ण वामनपुराण ने भी अपने लिये इसी क्रम-संख्या को माना है ('बतुर्दशं वामनमाहुरग्रयम्' ६९.११ B) ।

१७. वर्ग १ में मात्स्यपुराण, नारदीयपुराण तथा अग्निपुराण, एवं वर्ग २ में सौरपुराण चौथी संख्या पर 'शैव' के स्थान में 'वायु' का उल्लेख करते हैं। इनके प्रतिरिक्त जलवेदीन की दूसरी सूची (१०३० ई०) में तथा कबीरदासचार्य-सूचीपत्र में भी 'शैव' के स्थान पर 'वायु' का ही उल्लेख है।

वस्तुतः, वायुपुराण का ही शिवभक्तिप्रतिपादन के कारण दूसरा नाम शैवपुराण भी है, यथा—'बतुर्षे वायुता शोक वायवीयमिति स्मृतम् । शिवभक्तिसमायोजता शैव तथापराख्यया । (बैकतेभर प्रेस मुद्रित—ब्रह्माण्डपुराणदर्शन में रेवा-माहात्म्य से उद्धृत ।

इन उपर्युक्त प्राचीन महापुराण सूचियों के अतिरिक्त कुछ परवर्तिकालीन सूचियों भी हैं जिनमें महापुराणों के नामों में भी भेद है। उनमें विष्णु पुराण की सूची में उल्लिखित महापुराणों में से कुछ का अभाव है और उनके स्थान में १८ सख्या पूर्ति के लिये ऐसे उपपुराणों का नाम दिया है, जिनकी प्रसिद्धि तथा प्रतियोग उन सूचियों के निर्माण-काल में रही होगी। ये सूचियाँ निम्नलिखित हैं—

सूची-स्यल	महापुराणों का अनुल्लेख	महापुराणों के स्थान में उपपुराणों का उल्लेख
(१) भविष्य पुराण (३.३.२८.१०-१४)	१. नारदीय पुराण २. ब्रह्मवैवर्त	१. नृसिंह २. शैव ('वायु' के अतिरिक्त)
(२) गरुड पुराण (१ २१५.१५-१६)	१. वामन	१. शैव ('वायु' के अतिरिक्त)
(३) वायु-पुराण (२.४२.१-११)	१. धाम्नेय २. लिङ्ग	१. आदिक
(४) पराशर पुराण ^१ (१ २०-२३)	१. नारदीय २. गरुड	१. शैव २. नरसिंह
(५) बृहद्दर्शन पुराण (१.२५ २०-२२)	१. वामन	१. शैव ('वायु' के अतिरिक्त)
(६) अल्लवेदनि की सूची ^२ (विष्णु-पुराण से भिन्न)	१. अग्नि २. भागवत ३. ब्रह्मवैवर्त ४. लिङ्ग ५. नारदीय ६. पद्म	१. आदि पुराण २. आदित्य पुराण ३. नन्द पुराण ४. नृसिंह-पुराण ५. साम्ब पुराण ६. सोम पुराण
(७) कवीन्द्राचार्य सूचीपत्र ^३	१. भागवत २. नारदीय	१. देवी भागवत २. नन्दि पुराण

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि केवल गरुड पुराण तथा बृहद्दर्शन पुराण की महापुराण सूचियों में ही वामन पुराण के नाम का अभाव है, शेष सभी सूचियों में (अल्लवेदनि की दोनों सूचियों में भी) वामन पुराण का महापुराणों के अन्तर्गत उल्लेख है। अतः केवल इन दो पुराणों में वामन पुराण के नाम का महापुराणों की सूची में अनुल्लेख वामन पुराण के महापुराणत्व के निराकरण में कोई पृष्ठ प्रमाण नहीं माना जा सकता। अन्य कई महापुराणों के नाम भी कुछ परवर्तिकालीन महापुराण-सूचियों में नहीं मिलते, जैसे धाम्नेय, ब्रह्मवैवर्त और लिङ्ग पुराणों का (जैसा कि उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट है), और ये पुराण किसी उपपुराणों के नामों की सूची में भी उल्लिखित नहीं हैं। वस्तुतः यह प्रतीत होता है कि परिवर्तिकालीन इन सूचियों को इनके निर्माताओं ने महापुराण तथा उप पुराण विषयक अपनी-अपनी

१८ ३०—हाजरत 'स्टीव्ह' इन दि उनपुराणाज् नाम १, पृष्ठ १३, पारटिपल्पी २०-२१

१९ ३०—पारटिपल्पी

२० ३०—कवीन्द्राचार्य सूचीपत्र, भागकमाड थोरिपटण्त विरीय (मरीय), संख्या १७, १९२१ ई०।

मान्यताओं तथा धारणाओं के अनुसार निर्माण किया अथवा उनके समय में पुराणों के नामों के विषय में जैसी मान्यताएँ प्रचलित थीं उन्हीं के अनुसार हत्कालीन सूचीनिर्माताओं ने उन सूचियों का निर्माण किया, उस बात में कुछ महापुराणों का महत्त्व घट गया होगा तथा उनके स्थान में कुछ उपपुराणों का महत्त्व बढ़ा होगा। कभी-कभी किसी महापुराण का नाम दोनों प्रकार की सूचियों में (महापुराण सूची में तथा उपपुराण सूची में) दिया हुआ मिलता है, जैसे कि ब्रह्माण्ड पुराण का नाम अनेक उपपुराण-सूचियों में भी दिया है। वामन पुराण का नाम भी इसी प्रकार कूर्म पुराण में महा पुराण सूची में तथा उपपुराण सूची में दिया हुआ है। तो क्या कूर्म पुराण के कथनामुसार वामन-महापुराण के अतिरिक्त कोई वामन उपपुराण भी था और क्या वर्तमान वामन पुराण ग्रन्थ वही या उसी के समान अन्य कोई वामन उपपुराण है? यह प्रश्न यहाँ विचारणीय है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है हाजरा द्वारा उद्धृत तेईस उपपुराण सूचियों में से केवल चार सूचियों में ही वामन-उपपुराण का उल्लेख है। शेष अन्य सभी सूचियों में 'वामन' के स्थान में 'मानव' उपपुराण का ही उल्लेख है और वामन उपपुराण का उल्लेख करने वाली चार उपपुराण सूचियों में से भी दो सूचियाँ कूर्मपुराण से ही उद्धृत हैं, एक तो बेंकटेश्वर प्रेस संस्करण से, तथा दूसरी सूची नृसिंह बाजपेयी के 'नित्याचारप्रदीप', भाग १, पृष्ठ १९, से उद्धृत है, परन्तु कूर्मपुराण की अन्य तीन उपपुराण सूचियों में (जो रघुनन्दन के 'मल्लसतत्व' में तथा हेमाद्रि के 'चतुर्वर्गचिन्तामणि' में उद्धृत है) 'वामन' के स्थान में 'मानव' का ही उल्लेख है। यहाँ काशिराजन्वास के पुराण विभाग में भी अब तक कूर्मपुराण के जिन चार हस्तलेखों का पाठसंवाद (Collation) किया गया है उनमें से दो में भी 'वामन' के स्थान में 'मानव' ही पाठ है, इनमें से एक हस्तलेख तो विवेधरानन्द सस्थान (होशियारपुर) का संख्या 5589 वाला है, तथा दूसरा हस्तलेख अब्दुल राइसेरी (मद्रास) का P M 2418 है। अतः, हाजरा द्वारा दी हुई जिन चार उपपुराण सूचियों में 'वामन' पाठ है वह शुद्ध 'मानव' पाठ का लेखकों की भूल अथवा रुचि के कारण बर्णकम व्यत्यय जनित अशुद्ध पाठ है। डा० हाजरा को स्वयं भी इस 'वामन' पाठ की शुद्धता में संदेह है ऐसा उनके इस कथन से सूचित होता है — "इन सूचियों में 'मानव' के स्थान पर जो 'वामन' पाठ है वह या तो तत्कालीन जनता के इस उपपुराणविषयक अज्ञान का सूचक है क्योंकि कभी तो वह इसे 'मानव' उपपुराण कहती होगी और कभी 'वामन' उपपुराण, या फिर 'मानव' उपपुराण ही कालान्तर में 'वामन' उपपुराण के नाम से विख्यात हो गया होगा अथवा इसके विपरीत हुआ होगा।" ('स्टडीज इन दि उपपुराणाब्' भाग २, पृष्ठ ५१२), इसके अतिरिक्त वामन पुराण से भिन्न अन्य किसी वामन उपपुराण के वचनों का उद्धरण किसी भी निबन्ध ग्रन्थ में नहीं मिलता और न किसी ग्रन्थकार ने ही वामन उपपुराण के किसी वचन का उद्धरण दिया है और न वामन उपपुराण का अभी तक कोई हस्तलेख ही प्राप्त हुआ है। अतः सम्भव नहीं परिणाम निकलता है कि 'वामन उपपुराण' का कभी कोई अस्तित्व नहीं रहा होगा। 'मानव' उपपुराण के भी किसी वचन अथवा हस्तलेख का अभी तक कोई पता नहीं चला है अतः इसके विषय में भी अभी तक कुछ भी निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। फिर भी वामन-उपपुराण की अपेक्षा मानव उपपुराण के अस्तित्व की अधिक संभावना है क्योंकि इसका उल्लेख अधिकतर उपपुराण सूचियों में मिलता है।

इसपर भी यह प्रश्न उठ सकता है कि यदि वर्तमान वामन-पुराण पूर्वोक्त वामन-उपपुराण नहीं भी हो, तो भी क्या यह स्वयं महापुराण की अपेक्षा उपपुराण की कोटि में आने योग्य नहीं है? डा० हाजरा ने भी अपने 'पुराणिक

रिवाजसु' ग्रन्थ (पृ० ७७) में वर्तमान वामन पुराण उपपुराण के रूप में अधिक उपयुक्त माना है। वर्तमान वामन पुराण को उपपुराण मानने के लिए निम्नलिखित दो हेतु दिये जाते हैं —

(१) इसमें महापुराणों के पाँच लक्षणों (सर्ग, प्रतिसर्ग, वरा, वशानुचरित की तथा मन्वन्तर विषयों) का अभाव है।

(२) इस पुराण का जो लक्षण मत्स्यपुराण (अध्याय ५३) तथा स्कन्दपुराण (प्रभास खण्ड १२ ६३-६४) में दिया हुआ है उससे इसका मेल नहीं बैठता। मत्स्यपुराण तथा स्कन्दपुराणमें वामन पुराण को ब्रह्मा द्वारा अभिहित कहा गया है तथा कूर्म कल्प सम्बन्धी वर्णन का होना बताया गया है, परन्तु वर्तमान वामन पुराण में ये दोनों ही बातें नहीं मिलती। इसमें वक्ता पुलस्त्य है, ब्रह्मा नहीं, और न इसमें कूर्म कल्प का ही कोई कथन या वर्णन मिलता है। अतः यह वर्तमान वामन-पुराण मत्स्य तथा स्कन्द पुराण में कथित वामन महापुराण नहीं है।

नीचे इन दोनों हेतुओं पर कुछ विचार किया जाता है।

(१) पुराणों का विकास देश काल के अनुसार होता रहा है। प्राचीन पुराण ग्रंथों में सृष्टि की उत्पत्ति आदि का प्रतिपादन तथा धर्मशास्त्रसम्बन्धी विषयों का और तत्सम्बन्धी आख्यानो का ही प्राधान्य था। आपस्तम्ब धर्मसूत्र (१६ १२ १३ आदि) में कुछ पुराण श्लोकों को उद्धृत किया गया है जिनमें धर्मशास्त्र सम्बन्धी विषयों का ही उल्लेख है। ब्रह्माण्ड (२ ३४ ८१) वायु (६० २१) तथा विष्णु पुराण (३ ६ १५) में निम्नलिखित श्लोक दिया है

आख्यानैश्चोपाख्यानैर्गाथामि कल्पजोतिभिः।

पुराणसहिता चक्रे पुराणार्थविशारदः।

(पाठभेद—कल्पजोतिभिः, ब्रह्माण्डपु कल्पशुद्धिभिः, विष्णुपु कुलकर्मभिः, वायुपु)

इस श्लोक से भी यही निर्देश मिलता है कि पुराणवाङ्मय में मूल में सृष्टि प्रतिपादन तथा स्मृति विषय ही साख्यान रहे होंगे। राजवशावलि तथा वशानुचरित पौराणिक सूतों द्वारा सम्वृत किये गये तथा पुराणों के विद्वांस की परवर्ति अवस्था में उनमें सम्मिलित कर दिये गये। परन्तु कौटिल्य के समय में ही पौराणिक सूत का अभाव मिलता है क्योंकि उन्होंने अपने अर्थशास्त्र (५ ३) में पौराणिक को सूत तथा मागध से भिन्न माना है। उस समय पौराणिक का यही कर्त्तव्य था कि वह राजा को उपराष्ट्र में पुराण सुनाये। अतः कौटिल्य के समय के लगभग या उसके पश्चात् जिन महापुराणों को पुनः सङ्कत अथवा संशोधित किया गया उनमें से कुछ में इन वशावलियों तथा वशानुचरितों की उपेक्षा भी कर दी गई होगी। यही कारण है कि कुछ महापुराणों में तभी पञ्च लक्षण प्राप्य नहीं है। फिर भी वामन पुराण में सृष्टि प्रतिपादन, प्रलय-स्वरूप वर्णन, सप्त महद्गणों की उत्पत्ति के प्रसंग में सातों मनुर्वा तथा मन्वन्तरो का कुछ वर्णन तथा अरजोपाख्यान में इक्ष्वाकुवंश के कुछ राजाओं का वर्णन मिलता है। परन्तु पुराणों का मुख्य ध्येय तो आख्यानदि के द्वारा धर्म का प्रतिपादन है। पञ्चलक्षणों का समावेश भी धर्म के अंग के रूप में ही हुआ है, विष्णुपुराण (४ २४-१२३) से यह स्पष्ट हो जाता है अतएव भविष्य पुराण (१ १ ६५) में पुराणों को धर्मशास्त्र भी कहा गया है।

(२) यद्यपि वर्तमान वामनपुराण में मत्स्य पुराण तथा स्कन्दपुराण में कहा हुआ लक्षण कुछ अलग भन्ति नहीं होता है, इसका ब्रह्मा के स्थान में पुलस्त्य वक्ता हैं केवल इतना ही भेद है। पुराणों में कथित आख्यानदि का सम्बन्ध किसी न किसी पुरातन कल्प से जोड़ा जाता है जैसा कि मत्स्य पुराण के इस वचन से सिद्ध होता है —

पुरातनस्य कल्पस्य पुराणानि विदुर्वापा । (५३ ७२) ।

मत्स्यपुराण तथा स्कन्दपुराण में वामनपुराण का निम्नलिखित स्वरूप दिया है —

त्रिविक्रमस्य महात्म्यमधिकृत्य चतुर्मुख
त्रिवर्गमभ्यधात् तच्च वामन परिकीर्तितम् ।
पुराण दशसाहस्रं कूर्मकल्पानुग शिवम् ॥

(मत्स्य ५३ ४४ ४५, स्कन्द ७ १२.६३-६४)

इसी से मिलता जुलता लक्षण नारदीय पुराण में भी दिया है, यथा—

शृणु तात प्रवक्ष्यामि पुराण वामनाभिषम् ।
त्रिविक्रमचरित्राञ्च दशसाहस्रसस्यकम् ।
कूर्मकल्पसमाख्यानं वर्गात्रयकथानकम् ॥

(नारदीय पु० १ १०५ १-२)

इन लक्षणों में कूर्मकल्पानुग (मत्स्य, स्कन्द) तथा कूर्मकल्पसमाख्यान (नारदीय-पु०) इन दोनों ही का यही अर्थ अधिक सगत प्रतीत होता है कि वामनपुराण में कूर्मकल्पसम्बन्धी विषयों तथा आख्यानों का कथन है, स्वयं कूर्मकल्प का निर्देश या वर्णन होना आवश्यक नहीं। सभी पुराणों में किसी न किसी पुरातन कल्प के विषय तथा आख्यानादि रहते हैं यही पुराणों का मत है, जैसा कि पूर्वोक्त मत्स्यपुराण (५३ ७२) के वचन से सिद्ध होता है।

पुन मत्स्य पुराण (अ० ५३) तथा अग्निपुराण (अ० २७२) में नारदीयपुराण का निम्नलिखित लक्षण दिया है —

यत्राह नारदो धर्मान् बृहत्कल्पाश्रयानिह ।
पञ्चविंशतिसहस्राणि नारदीय तदुच्यते ॥

इसमें 'बृहत्कल्पाश्रयान् धर्मान्' इन शब्दों से स्पष्ट हो जाता है कि नारदीय पुराण में बृहत्कल्प सचन्धी धर्मों का उल्लेख है न कि बृहत्कल्प का। इसी प्रकार वामन के सम्बन्ध में भी यही समझना अधिक उचित है कि इसमें जिन धर्मों तथा आख्यानों का वर्णन है वे कूर्मकल्पसम्बन्धी हैं।

नारदीय पुराण में वामनपुराण की निम्नलिखित विषयानुक्रमणी दी हुई है —

पुराणप्रश्न प्रथम ब्रह्मशीर्षच्छिदा तत ।
कपालमोचनाख्यान् दक्षयज्ञविहिंसनम् ॥ ३ ॥
हरस्य कल्परूपारुवा कामस्य दहन तत ।
प्रह्लावनारायणबोर्धुद् देवासुराह्व ॥ ४ ॥
सुकेश्यर्षसमाख्यान् ततो भुवनकोशकम् ।
तत कामनताख्यान् श्रीदुर्गाचरित तत ॥ ५ ॥
तपगोचरित पश्चात् कुरुक्षेत्रस्य वर्णनम् ।
सत्या महात्म्यमतुल पार्वतीजन्मकीर्तनम् ॥ ६ ॥
तपस्तस्या विवाहश्च गोय्युपाख्यानक तत ।
तत कौशिकेयुपाख्यान् कुमारचरित तत ॥ ७ ॥
ततोऽपक्रवपाख्यान् साध्योपाख्यानक तत ।

नाकालिचरित पश्चादरजाया कथाऽद्भुता ॥ ८ ॥
 अन्धकेधायोर्युद्ध गणत्वं चान्धकस्य च ।
 मरुता जन्मकथनं मलेश्व चरितं तत ॥ ९ ॥
 ततस्तु लक्ष्म्याश्चरित त्रैविक्रमनत परम् ।
 महादतीर्थायात्राया प्रोच्यतेऽथ कथा शुभा ॥ १० ॥
 ततश्च धुन्धुचरित प्रेतोपाख्यानक तत ।
 नक्षत्रपुरुषाख्यान श्रीद्वामचरित तत ॥ ११ ॥
 त्रिविक्रमचरित्रान्ते ब्रह्मभोक्त स्तवोत्तम ।
 प्रह्लादवल्गिसवादे सुतले हरिशसनम् ॥ १२ ॥
 इत्येष पूर्वभागोऽस्य पुराणस्य तवोदित ।
 शृण्वतोऽस्योत्तर भाग बृहद्द्वामनसंज्ञकम् ॥ १३ ॥
 माहेश्वरी भागवती सौरी गणेश्वरी तथा ।
 चतस्र सहिताश्चात्र पृथक् साहस्रसंख्याया ॥ १४ ॥
 इत्येतद्द्वामन नाम पुराणं सुविचित्रकम् ।
 पुरस्स्येन समाख्यात नारदाय महात्मने ॥ १५ ॥

(नारदीय पुराण १ १०५ ३-१४, १७)

नारदीय पुराणोक्त वामनपुराण की इस विषय सूची में जिन विषयों का जिस क्रम से उल्लेख है उन सभी विषयों का उसी क्रम से वर्णन वर्तमान वामनपुराण में प्राप्य है। और नारदीय पुराण के कथनानुसार इसका वक्ता भी पुलस्त्य है तथा मदनकर्ता और श्रोता नारद है। अतः यह सिद्ध होता है नारदीय पुराणोक्त वामन महापुराण यही वर्तमान वामनपुराण है। नारदीय पुराण में इसके उत्तर भाग (बृहद्द्वामन) की चारों सहितानों की श्लोक संख्या मिलाकर ४००० कही गई है। जैसा कि उपर्युक्त १४वें श्लोक से प्रकट है। वामनपुराण का चार सहितानों का बृहद्द्वामनसंज्ञक उत्तरभाग अब प्राप्य नहीं है केवल उसका पूर्वभाग ही वर्तमान वामनपुराण के रूप में प्राप्य है। जिसकी संख्या उपर्युक्त हिसाब से ६००० बैठती है और यही संख्या वर्तमान वामनपुराण में प्राप्य है। अतः इसमें कोई संदेह नहीं कि कम से कम नारदीय पुराण के समय से जो ८०० ई० से १००० ई० तक माना जाता है^३ वर्तमान वामनपुराण महापुराण के रूप में माना जाता रहा है। मत्स्यपुराण के समय में जो वामनपुराण रहा होगा उसका वक्ता ब्रह्मा होगा। परन्तु नारदीय पुराण के समय से पूर्व ही उसका पुनः सस्करण हुआ होगा जिसके अनुसार उसका वक्ता ब्रह्मा न रहकर पुलस्त्य हो गया और अभी तक पुलस्त्य नारद के उसी संवाद रूप में वर्तमान वामनपुराण हमें प्राप्य है।

वामनपुराण का ग्रन्थ परिमाण

वैकटेश्वर प्रेस मुद्रित वामनपुराण के प्रचलित पाठ में ९५ अध्याय तथा ५८१५ श्लोक हैं और कुछ गद्यांश भी हैं। परन्तु पाठनिर्धारणार्थ जिन हस्तलेखों का हमने पाठसंवाद (Collation) किया है, उनके अनुसार स्थिति इस प्रकार है —

(अ) सभी कश्मीरी हस्तलेखों में वैकटे सस्करण के २३-३१ अध्याय उप्त हैं। इन अध्यायों में मयम या

गौण वामन-चरित है जिसे सूत रोमहर्षण ने कुरुक्षेत्र-स्थित ऋषियों से कहा है। यह वामन-चरित प्रचलित वामनपुराण के 'सरोमाहात्म्य' (वेंकटे. २२. ४७-४९. ५१) का अंग है, इसलिये यह वामन-चरित उस मुख्य वामन चरित की अपेक्षा, जिसका वर्णन वामनपुराण के अन्तिम अध्यायों (वेंकटे. अ. ७६-९३ हैं; पाठसमीक्षात्मक संस्क. अ० ५०-६६) में है और जिसको वामनपुराण के मुख्य वक्ता पुलस्त्य ने नारद से कहा है, गौण कहा जा सकता है।

(आ) संवादित (Collated) बगाली तथा दक्षिण भारतीय हस्तलेखों में सूत रोमहर्षण तथा ऋषियों का पूरा संवाद (जो सरोमाहात्म्य विषयक है) छुप्त है। वहा यह बतला देना उचित है कि दक्षिण-भारत से मलयालम तथा ग्रन्थ लिपियों में लिखा हुआ वामनपुराण का कोई भी हस्तलेख प्राप्त नहीं हो सका। सरस्वती-महल मन्थागार से हमने वहाँ के कुछ देवनागरी हस्तलेखों—D 10419, D. 10421, D. 10422 तथा D 10423—का अध्याय-विवरण मंगवाया जिसके अनुसार इन हस्तलेखों का अन्तिम अध्याय वेंकटे. संस्करण के अन्तिम अध्याय (९५) से मिलता है। परन्तु इन हस्तलेखों में से दो में इस अन्तिम अध्याय की संख्या ६५ (पञ्चषष्टितमोऽध्यायः) तथा दो में ६७ (सप्तषष्टितमोऽध्यायः) है, जिससे स्पष्ट है कि चारों ही दक्षिण भारतीय हस्तलेखों में भी 'सरोमाहात्म्य' के २७ अध्याय नहीं हैं।

सूत ऋषिसंवादात्मक इस सरोमाहात्म्यप्रकरण (वेंकटे० २२. ४७-४९-५१) में निम्नलिखित विषय हैं—

(१) २२.४७-६०—इस अंश में कुरुक्षेत्र के धृष्टकेतुकीर्ण का वर्णन—उत्पत्ति आदि—तथा माहात्म्य है।

(२) अ. २३-३१. इन अध्यायों में प्रथम अर्थात् गौण वामन-चरित का वर्णन है। यह प्रथम वामन चरित प्राय. मत्स्यपुराण (अ. २४४-२४६) के वामन-चरित से तथा कुछ अंश में हरिवंश (भविष्यपर्व, अ. ६६-७२) के वामन चरित से मिलता है, जिससे यह अनुमान किया जा सकता है कि वामनपुराण का यह गौण वामनचरित इन दोनों पुराणों के वामन चरितों पर आधारित है।

(३) अ० ३२-४२ इन अध्यायों में कुरुक्षेत्र के विविध तीर्थों का वर्णन तथा माहात्म्य दिया हुआ है। यह वर्णन तथा माहात्म्य महाभारत (पाठसमीक्षात्मकसंस्करण) के आरण्यक पर्व अ. ८१ तथा शल्यपर्व, अ. ३७-४२ में कहे हुए कुरुक्षेत्र-तीर्थों के वर्णन के समान है।

जैसा कि पहले कहा गया है कि यह पूरे का पूरा माहात्म्य सूत रोमहर्षण ने ऋषियों से कहा है परन्तु महाभारत के आरण्यकपर्व (अ. ८१) में वर्णित यह माहात्म्य पुलस्त्य के द्वारा भीष्म से कहा गया है।

महाभारत के इस प्रकरण में पुलस्त्य द्वारा भीष्मके प्रति 'नरग्याग्र' (८१. ८३५), 'राजन्' (८१. २१०), 'धर्मज्ञ' (८१. ४६५) इत्यादि संबोधनों का प्रयोग किया जाना उचित है, परन्तु प्रचलित वामन पुराण के इस सरोमाहात्म्यप्रकरण में, तथा उसके संबद्धित लेखों में विस्तृत ये ही संबोधन—'नरग्याग्र' (वेंकटे. ३५. २५), 'राजन्' (वेंकटे. ३४. ४२५), 'धर्मज्ञ' (वेंकटे. ३५. ४२५)—सूत द्वारा ऋषियों के प्रति भी प्रयुक्त हुए हैं, निम्नका हेतु यही प्रतीत होता है कि वामन पुराण का यह भाग महाभारत के उक्त अंश पर आधारित है, नहीं तो अन्य किसी भी प्रकार से वामन पुराण के इस प्रकार के पाठों का समर्थन नहीं किया जा सकता। बाद में वामन-पुराण के इस प्रकार के पाठों का कुछ हस्तलेखों में संशोधन किया गया प्रतीत होता है।

(४) अ. ४३-४९. इनमें स्याणुतीर्थ में और उसके चारों ओर प्रतिष्ठापित विविध शिवलिंगों का वर्णन तथा माहात्म्य सनकुमार द्वारा मार्कण्डेय से कहा गया है। ये अध्याय अन्यत्र कहीं भी—महाभारत तथा पुराणों में—

नहीं मिल सके। परन्तु महाभारत (आरण्यकपर्व, ८१.१२७) में पृथूदकतीर्थ के महात्म्य के प्रमङ्ग में यह वचन है —“गीतं सनत्कुमारेण व्यासेन च महात्मना”, क्या इससे यह तो सूचित नहीं होता कि यह प्रकरण कदाचित् स्कन्द-पुराण की सनत्कुमार-संहिता में भी रहा हो जो अब प्राप्य नहीं है।

‘सरोमाहात्म्य’ के ये सारे-के सारे अध्याय पूर्वागत मुख्य कथानक से असंबद्ध हैं जिसमें हरि ने देवों से कुशक्षेत्र में जाकर पृथूदकतीर्थ में पितरों की आराधना करने को कहा है, जिससे उन्हें द्विमाल्य की पत्नी के रूप में उनकी मानसी कन्या मेना प्राप्त हो, तथा उसकी कन्या से शिवजी द्वारा उत्पन्न पुत्र महिषासुर का वध करे। वस्तुतः, इस मुख्य कथानक का सूत्र बीच में प्रसिद्ध ‘सरोमाहात्म्य’ से विच्छिन्न-सा हो गया है, तथा सरोमाहात्म्य के अन्त में उससे आगे के अध्याय (वेंकटे. अ. ५०) में पुनः वह कथा सूत्र विच्छिन्न पूर्वमसङ्ग से पुनः जोड़ा गया है। किन्तु यह पूरा सरोमाहात्म्य सभी उत्तरभारतीय देवनागरी हस्तलेखों में तथा दक्षिण-भारत के एक तेरुगु हस्तलेख (मद्रास की ओरियण्टल मैजुरिक्ल्स-लाइब्रेरी का हस्तलेख D २२६८) में दिया हुआ है।

कश्मीरी हस्तलेखों में उत्तरभारतीय देवनागरी हस्तलेखों के समान ही सूत्र-श्रुति-संवाद के आरम्भ में वामन की उत्पत्ति के संबंध में प्रश्न तो मिलता है (‘उत्पत्ति वामनस्य च’, वेंकटे. २२.१८०) परन्तु उसके उत्तर के रूप में वामनचरित नहीं मिलता जिससे अनुमान होगा है कि कश्मीरी हस्तलेखों में या तो सरोमाहात्म्यान्तर्गत इस वामनचरित का लेखकों की असावधानता आदि के कारण लोप हो गया या फिर पुलस्त्य द्वारा हुए मुख्य वामनचरित को दृष्टि में रखते हुए जान बूझ कर इस पूर्व वामनचरित का त्याग कर दिया गया हो। (वामनपुराण का मुख्य वामनचरित सभी हस्तलेखों में मिलता है, परन्तु सरोमाहात्म्यान्तर्गत वामनचरित कश्मीरी, बंगाली तथा दक्षिणभारतीय हस्तलेखों में नहीं मिलता)

अब, वामनपुराण के ग्रन्थ परिमाण की स्थिति इस प्रकार हमारे सामने आती है —या तो हमें सूत्र-श्रुति-संवादत्मक पूरे का पूरा सरोमाहात्म्य-पाठ वामनपुराण के निर्धारित पाठ में रखना चाहिए, जैसा कि उत्तरभारतीय देवनागरी हस्तलेखों में है, अथवा सम्पूर्ण सरोमाहात्म्य का त्याग करना चाहिये जैसा कि बंगाली और दक्षिण भारतीय हस्तलेखों में किया गया है। परन्तु जब तक हमें मलयालम और ग्रन्थलिपियों में लिखे हुए वामनपुराण के कुछ हस्तलेख नहीं प्राप्त हो जाते तब तक वामनपुराण के दक्षिण भारतीय ग्रन्थ परिमाण के सम्बन्ध में कुछ भी निश्चयात्मक रूप से नहीं कहा जा सकता। पुनः कुछ प्राचीन धर्मशास्त्र-निबन्धों में (जैसे १२वीं शताब्दी के लक्ष्मीपारङ्गन ‘हृदयकरचरु’ में) सरोमाहात्म्य के अनेक श्लोक उद्धृत मिलते हैं। दक्षिणभारतीय वैद्यनाथ दीक्षित द्वारा स्तुतिप्रकाशक के आह्निकप्रकरण (१७०० ई०) में भी सरोमाहात्म्य के कुछ श्लोक उद्धृत हैं। ऐसी स्थिति में वामनपुराण ग्रन्थ से सरोमाहात्म्य-प्रकरण को सर्वथा निकाल देना युक्तिसंगत नहीं प्रतीत होता। और केवलमात्र प्रथम वामन चरित का भी त्याग नहीं किया जा सकता जैसा कि कश्मीरी हस्तलेखों में किया गया है, क्योंकि कश्मीरी हस्तलेखों का प्रमाण इस विषय में अतदिग्ध नहीं है।

पुनः नारदीयपुराण में सूत्र श्रुति संवादात्मक वामनपुराण के अस्तित्व का भी निर्देश मिलता है, यथा—

इत्येतद् वामनं नाम पुराणं सुविचित्रकम् ।

पुलस्त्येन समाख्यातं नारदाय महात्मना ॥

ततो नारदत प्राप्तं व्यासेन सुमहात्मना ।

व्यासात् लब्धवाक्षैस्त्वं उच्छिष्यो रोमहर्षणः ।

स चाख्यास्पति विप्रैभ्यो नैमिषेभ्य एव च ।

एव परम्परापातं पुराण वामन शुभम् ॥

(ना० पु० १.१०५ १७-१९)

इससे अनुमान किया जा सकता है कि किसी समय में सूत-ऋषि-संवादात्मक वामन-पुराण भी रहा होगा और उसी का एक अंग यह सूत-ऋषि-संवादात्मक सरोमाहात्म्य ही, तथा बाद में किसी कारण से वह वामन-पुराण लुप्त हो गया हो तथा उसका अवशेष सरोमाहात्म्य पुस्तक्य नारद-संवादात्मक इस वामन-पुराण में प्रविष्ट हो गया हो। पुस्तक्य-नारद-संवादात्मक इस वामन-पुराण का कुछ अंश भी लुप्त हो गया ऐसा प्रतीत होता है, क्योंकि वामन-पुराण के अनेक ऐसे श्लोक निबन्ध ग्रन्थों में उद्धृत मिलते हैं जो अब न तो वामन-पुराण की मुद्रित पुस्तकों में ही प्राप्य है, और न वामन-पुराण के किसी हस्तलेख में ही। (निबन्ध ग्रन्थों में उद्धृत इस प्रकार के श्लोकों का संग्रह वामन-पुराण के पाठसमीक्षात्मकसंस्करण के परिशिष्ट (२ B) में दे दिया गया है ।

पुराण सदा से ही हिन्दुधर्म के विश्वकोश माने जाते हैं। देशकाल के अनुसार उनका समय समय पर सशोधन एवं परिवर्धन आदि होता रहा है इसका उल्लेख किया जा चुका है। इससे हिन्दुधर्म तथा समाज के लिये पुराण एक जीवित साहित्य के रूप में प्राप्त है। पुराणकारों ने जहाँ 'पुरातन' का त्याग न करके देश-काल के अनुसार उसकी व्याख्या करने का प्रयत्न किया है, वहाँ उन्होंने युग-युग में प्रचलित अनेक नवीन विचारधाराओं का भी पुराणों में उचित संनिवेश किया है और इसी के कारण पुराणवाङ्मय का परिमाण दो लाख श्लोक से बढ़कर चार लाख श्लोक हो गया^{२२}, जो 'पुराणों का दूषण नहीं, अपितु मृषण ही है और पुराणों की यह सामग्री उपेक्षित न होकर समाग्र है। इसलिये पुराणों के प्रचलित अंशों का सर्वथा त्याग अभीष्ट नहीं है जब तक कि इस प्रकार के अंश लेखों या वाचकों द्वारा उनकी अज्ञानता के कारण या साम्प्रदायिक कुत्सित प्रवृत्ति के कारण प्रक्षिप्त प्रमाणित न हो जायें।

मत्स्यपुराण, स्कन्दपुराण, अग्निपुराण तथा नारदीयपुराण में वामनपुराण का ग्रन्थ परिमाण १०,००० श्लोक कहा गया है ('दशसाहस्रसूक्तम्' इत्यादि)। नारदीयपुराण के अनुसार वामनपुराण का बृहद्वाग्वामनसूक्त एक उत्तर भाग भी था जिसमें एक एक हजार श्लोकों वाली चार संहिताएँ थीं (१.१०५ १३ १६, पूर्व उद्धृत)। परन्तु बृहद्वाग्वामन नामक यह उत्तर भाग अब नहीं मिलता यद्यपि इसके कुछ श्लोक वीरमित्रोदय नामक निबन्धग्रन्थ के पूजाप्रकाश में तथा जीवगोस्वामी और रूपगोस्वामी के दृष्ट्यभक्तिविषयक ग्रन्थों में^{२३} उद्धृत मिलते हैं, इनके अतिरिक्त लघुभागवतामृत नामक ग्रन्थ में भी बृहद्वाग्वामन के ६ श्लोक उद्धृत हैं^{२४}। नारदीयपुराणोक्त वामनपुराण का पूर्वभाग ही अब वर्तमान 'वामनपुराण' ग्रन्थ के रूप में प्राप्य है, जिसका परिमाण उत्तरभाग के ४००० श्लोकों को निकाल कर ६००० श्लोक बैठता है, और यही परिमाण वर्तमान 'वामनपुराण' ग्रन्थ का है।

२२ दे०—मेरा लेख "Purans and their Referencing", 'पुराण, ७ २ (जुलाई, १९६५) पृ ३२१-३२१

२३ जीवगोस्वामी के 'श्लोकदर्प' (या 'भागवतसर्प') के कृष्णलोक के वर्णन के प्रसंग में बृहद्वाग्वामनपुराण से उद्धृत कुछ श्लोक मिलते हैं जिनका उपन्यास 'इमं च बृहद्वाग्वामनपुराण प्रसिद्धि' नामक से किया गया है, इसी प्रकार रूपगोस्वामी की कृत 'उन्मत्तनीलमणि' ग्रन्थ में भुविमें के भवनी गीरीभाय विषयक प्रसंग में बृहद्वाग्वामनपुराण का निर्देश मिलता है। इसकी तोषण रोचनी टीका में जीवगोस्वामी का वक्तव्य है—'श्रीगोपी बृहद्वाग्वामनोक्त। सा च यथा—इत्यादि (उज्ज्वलीलमणि, ख० रो०, कारिका ४६) इस मूल्यवान सूचन के लिये मैं धाराणमेय सस्कृत विश्वविद्यालय धाराणसी, के शिक्षाविभाग के अध्यक्ष श्रीकृष्णमणि त्रिपाठी का प्रायास ही है।

२४ दे०—हाजरा, 'श्लोकी इति उपपुराणाज', भाग १, पृ० ३२१-२२

वामनपुराण के निर्धारित पाठ के अध्याय—

नौस हस्तलेखों के पाठसंबन्ध (Collabon) के आधार पर निर्धारित वामनपुराण के मुख्य पाठ (उ. पा., Main Text) में 'सरोमाहास्य' को छोड़ कर ६९ अध्याय हैं।

'सरोमाहास्य' पाठ मुख्यपाठ के २३ तथा २४ अध्यायों के बीच में है, जैसा कि उत्तरभारतीय देवनागरी हस्तलेखों में तथा मद्रास के तेल्लुहस्तलेख में है, केवल इसकी अध्याय संख्या पृथक् है। इस प्रकार 'सरोमाहास्य' को परिशिष्ट में न लेकर मुख्यपाठ के अन्तर्गत ही यथास्थान रखना है।

हस्तलेखों के आधार पर वेंकटे. सस्करण के १४वें अध्याय की १४ तथा १५ दो अध्यायों में बाँटा गया है, और वेंकटे के ८३ तथा ८४ अध्यायों को मिलाकर एक (अ० ५७) किया गया है। वेंकटे. के ९५ अध्याय को दो अध्यायों (६८, ६९) में बाँटा गया है, अन्तिम अध्याय (६९) में 'फलश्रुति' है।

निर्धारित पाठ में गद्यांश—

स. मा. अध्याय ५	५४१ अक्षर
„ „ अध्याय २३	५६४ अक्षर
उ. पा., अध्याय ३९.	४०० अक्षर
„ „ अध्याय ४३	५९ अक्षर
„ „ अध्याय ४४	१६३ अक्षर
„ „ अध्याय ६६	११०४ अक्षर

योग २७३१ अक्षर

(३२ अक्षरों के १ श्लोक के हिसाब से कुल ८६ श्लोक)

निर्धारित पाठ की श्लोकसंख्या—

मुख्य पाठ (अ० १-६९)	४५६३ श्लोक
सरोमाहास्य पाठ	१२२८ श्लोक
रघुपाठ	८६ श्लोक
	योग=५८७७ श्लोक

वामनपुराण के अध्ययन तथा अनुवाद

अध्ययन—

वामनपुराण के कुछ अध्ययन, जिनमें इन पुराण के विविध पक्षों पर विचार किया गया है, पुस्तकों तथा लेखों के रूप में प्रकाशित हुए हैं। इनमें से कुछ का उल्लेख नीचे किया जाता है —

१. 'वामनपुराण—ए स्टडी' (वामनपुराणानुशीलनम्), स्वर्गीय डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल (प्रोफेसर बनारस हिन्दू-यूनिवर्सिटी) द्वारा लिखित, तथा प्रबोधप्रकाशन, वाराणसी ५ द्वारा प्रकाशित, १९६४। इसमें वामनपुराण के विषयों का विश्लेषण तथा सांस्कृतिक अध्ययन किया गया है।

२. डॉ. आर० सी० हाकरा कृत 'स्टडीज इन दि पुराणिक रिकार्ड्स एण्ड कस्टम्स' में पृष्ठ ७७ प्रभृति में वामनपुराण के काल तथा सृति विषयों का विचार किया गया है।

३ पॉल हैकर ने इस पुराण के विषयों का विश्लेषण तथा इसके अनेक श्लोकों पर विचार किया है।^{१५}

४ ए. होहनवर्गर ने अपने लेख 'Das Vāmana Purāṇa' में, जो इंडो इरानियन जर्नल, भाग ७ (१९६३), अंक १ में (पृष्ठ १-५७) में प्रकाशित हुआ है वामनपुराण के अनेक पक्षों पर विचार किया है।

५ वे० राघवन् 'दि वामनपुराण', 'पुराण' ४ १ (जनवरी १९६८) १८४-१९२

इसमें वामनपुराण के हस्तलेखों की सूची दी गई है तथा वामनपुराण एव कुमारसम्भव के समान श्लोकों का निर्देश किया गया है।

६ बी० एच० कपाडिया का लेख, पुराण, ७ १ (जनवरी, १९६५) पृष्ठ १७०-१८२ पर प्रकाशित—

७ आ० स्व० गुप्त, पुराण-अध्याय विषयक लेख, 'पुराण' ५ ३ (जुलाई १९६३) के पृष्ठ ३६०-३६६ पर प्रकाशित।

अनुवाद—

१ वामनपुराण का एक हिन्दी अनुवाद वैकटेश्वर प्रेस, बम्बई से शाके १८८५ (सन् १९०३) में प्रकाशित हुआ। इसे श्री श्यामसुन्दर त्रिपाठी ने किया है। इसमें प्रत्येक अध्याय का प्रथम तथा अन्तिम श्लोक दिया है और अनुवाद में श्लोकांक भी दिये हैं।

२ मूल सस्कृत पाठ सहित बंगला अनुवाद, जो मद्रास चन्द्र पाल द्वारा किया गया है तथा कलकत्ते से सन् १९५० (१८९३ई०) में निरपेक्ष धर्म सञ्चारिणी सभा द्वारा प्रकाशित हुआ है।

३ एक दूसरा बंगला अनुवाद मूलसस्कृतपाठसहित बंगाली प्रेस से बंगाली सन् १३१४ (सन् ई० १९०८) में प्रकाशित हुआ। यह अनुवाद श्री पचानन्तर्करन द्वारा किया गया है।

इन दोनों बंगाली अनुवादों में सस्कृत पाठ भी अंग्रेजों में ही है।

४ मूल सस्कृत पाठ सहित एक कन्नड अनुवाद श्री जयचामराजेन्द्र प्रथावली में प्रकाशित हुआ है (संख्या २५) इसे श्री वैकुण्ठार्य ने किया है। इसमें सस्कृतपाठ कन्नड अक्षरों में ही है।

५ ६ प्रस्तुत अंग्रेजी तथा हिन्दी के अनुवाद जो काशिराजन्धस द्वारा पृथक् पृथक् प्रकाशित कराये जा रहे हैं और जिनमें गवेषणोपयोगी भूमिका तथा अनेक परिशिष्ट भी दिये हैं और श्लोक सूची भी अन्त में दी हुई है।

वामनपुराण में भी अन्य पुराणों के समान, कुछ श्लोक ऐसे हैं जिनका अर्थ सदृग्ध है अतः उनका अनुवाद भी प्रायः सदृग्ध ही है। अच्छा होता यदि उपर्युक्त अनुवादों में इस प्रकार के श्लोकों का एक सूची के रूप में एकत्र निर्देश कर दिया गया होता। परन्तु अभी तक कहीं कोई ऐसी सूची नहीं दी गई है, "जिसका कारण प्रायः यही है कि अनुवादकों को अनुवाद प्रथम के केवल उन्हीं अंशों का अनुवाद करने में सतोष नहीं होता जिनका अर्थ बोधगम्य और निश्चित है, परन्तु वे यह समझते हैं कि उन्हें प्रत्येक अंश का अनुवाद करना आवश्यक है चाहे उस अंश का अर्थ अभी तक अनिर्णीत ही रहा हो।"^{१६}

वामनपुराण के हिन्दी अनुवाद सहित इस संस्करण के निर्माण में जिन अनेक ग्रन्थिगारों, सस्थाओं तथा विद्वानों का सहयोग प्राप्त हुआ है उनके प्रति आभार प्रदर्शित करना एक पवित्र कर्तव्य ही जाता है। वामनपुराण के महत्त्वपूर्ण

१५ वे०—बी० एच० कपाडिया का लेख पुराण ७. १ (जनवरी, १९६५) में पृ० १७०-१८२ पर प्रकाशित।

१६ विटरनिटज, पूर्वोक्त ग्रन्थ पृष्ठ ६६

हस्तलेख हमें (१) इडिया अफिस लाइब्रेरी, लद्दन, (२) ब्रिटिश म्यूजियम, लद्दन, (३) बोडलियन लाइब्रेरी आवसफोर्ड, (४) पैन्सिलवेनिया लाइब्रेरी, अमेरिका, (५) रणवीरसंस्कृतशोधसंस्थान, जम्मू, (६) एशियाटिक सोसाइटी, कलकत्ता, (७) वगीय साहित्य परिषद्, कलकत्ता, (८) भण्डारकर प्राच्य शोध संस्थान, पूना, (९) भारतीय इतिहास सशोधक महल, पूना, (१०) थुगेरी मठ, मैसूर, (११) प्राच्यशोध संस्थान, मैसूर, (१२) ओरियण्टल मैनुस्क्रिप्ट्स लाइब्रेरी, मद्रास, (१३) अड्यार लाइब्रेरी, मद्रास, (१४) सरस्वती महल लाइब्रेरी, तबीर, (१५) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय लाइब्रेरी, वाराणसी, (१६) सरस्वती भवन लाइब्रेरी, वाराणसेय संस्कृतविश्वविद्यालय तथा (१७) सरस्वती भण्डार, रामनगर, ने पाठसमाचार्य प्रदान किये, तथा सरस्वती महल लाइब्रेरी, तबीर ने अपने यहां के कुछ हस्तलेखों का विवरण भेजकर हमें सहायता प्रदान की। इन सब संस्थाओं के प्रति हम हार्दिक कृतज्ञता प्रकट करते हैं।

पाठसमीक्षात्मक संस्करण के निर्माण में जिन विद्वानों ने अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया है (और जिनके नामों का निर्देश कृतज्ञता प्रकाशन सहित उस संस्करण की भूमिका में तथा वर्तमान अंग्रेजी अनुवाद वाले संस्करण में कर दिया गया है) उनके प्रति पुनः हम अपना आभार प्रदर्शित करते हैं। पुराण विभाग के विद्वद्गण डा० गंगासागर राय, श्री अनन्त प्रसाद मिश्र, प० हीरामणिशास्त्री, श्री रामचन्द्रपाण्डेय, श्री रामायणद्विवेदी, श्री चौ० विजय शंकर सिंघ, तथा श्री मध्वाचार्य व्यास, श्री जनार्दनपाण्डेय, प० ठकुर प्रसाद द्विवेदी, श्री कामदेव झा, तथा श्री सुरेश प्रसाद गुप्त ने इस पुण्य कार्य में हमें अपना पूर्ण सहयोग दिया है। इनके प्रति भी हम आभारी हैं। प्रस कापी के टाइप करने में श्री अनन्त प्रसाद त्रिपाठी तथा श्री रविशंकर उपाध्याय ने पूर्ण सहयोग दिया है। वे दोनों भी धन्यवाद के पात्र हैं।

वामनपुराण का यह हिन्दी अनुवाद वेंकटेश्वर संस्करण से श्री गोपालचन्द्र वेदान्तशास्त्री (वाराणसी) ने किया था। पाठ-समीक्षात्मक संस्करण के निर्मित होने पर उसके निर्धारित पाठ के अनुसार पुनः पूर्व अनुवाद का सशोधन तथा नवीन अंश का अनुवाद श्री चौधरी धीनारायण सिंह (रामनगर) ने किया और पुराणविभागस्थ श्री डा० गंगासागर राय ने उस अनुवाद को अन्तिम रूप में दोहराया। इस प्रकार इन विद्वानों के सहयोग से यह अनुवाद पुराणोपासक विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत है। इसके अन्त में परिशिष्ट रूप में जो सामग्री जोड़ी गयी है वह पुराणों के अध्ययन तथा शोधकार्य में अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी, ऐसी आशा है। परिशिष्टों में वनस्पति-सूची तथा अन्तु सूची में वैज्ञानिक लैटिन नाम क्रमशः काशी विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर आयुर्वेदीय विभाग के प्राध्यापक श्री के० सी० चुनेकर ने तथा अन्तु विज्ञान विभाग के प्राध्यापक डा० पी० प्रसाद ने दिये हैं जिनके लिये हम अत्यन्त आभारी हैं।

परन्तु इन सब कार्यों के मूल में जिनका निरन्तर हाथ तथा नेतृत्व रहा उन महामहिम महाराज काशीनरेश श्री डा० बिम्बिनारायण सिंह जी के प्रति आभार तो शब्दों में प्रकट करना शक्य ही नहीं है। इस पुराण यज्ञ के वस्तुतः वे ही यज्ञमान तथा ऋत्विक् हैं। काशीराज न्यास के महामन्त्री श्री रमेशचन्द्र देव तथा ताराप्रेस के प्रबन्धक श्री रामशङ्कर षण्ड्या ने इस संस्करण के समय पर प्रकाशन में अत्यधिक परिश्रम किया है। इसके लिये वे परम धन्यवाद के पात्र हैं। आशा है यह संस्करण विद्वानों एवं पुराणप्रेमीजनों के लिये उपयोगी सिद्ध होगा।

रामनगर (वाराणसी)

वान-दस्वरूप गुप्त

१० अक्टूबर, १९६८ ई०

अध्यायविषयसूची

अध्याय	श्लोकसंख्या	विषय	पृष्ठाङ्क
१	३०	हरललित (शिव की लीलाएँ)—वर्षावर्णन तथा शङ्कर के जीमूतकेतु होने का कारण	1-3
२	५५	हरललित—शङ्कर वर्णन, शिव का सती के साथ मन्दराचल पर निवास, दक्ष के द्वारा यज्ञ का ऋषिक्रम, शिव के कपाली होने का कारण	4-8
३	५१	हरललित—शङ्कर के कपाली होने का कारण (पूर्वानुवृत्त)	8-12
४	५७	हरललित—सती का शरीर त्याग, शिव के क्रोध से गर्गों की उत्पत्ति, दक्षयज्ञ का विध्वंस	12-16
५	६१	हरललित—दक्षयज्ञ का विध्वंस (पूर्वानुवृत्त), शिव के कालस्वरूप एवं राशित्स्वरूपादि का वर्णन	17-21
६	१०७	वदरिकाश्रम में वसन्त शोभा, नर नारायण की तपश्चर्या के प्रसङ्ग में काम की अनङ्गता का वर्णन, काम द्वारा अनङ्गता की प्राप्ति	21-29
७	६५	वर्षेशी का निर्माण, प्रह्लाद का राज्याभिषेक, प्रह्लाद की नैमिष तीर्थ यात्रा एवं नर नारायण के साथ युद्ध	30-35
८	७२	नर नारायण के साथ प्रह्लाद का युद्ध (पूर्वानुवृत्त)	35-40
९	५२	देवताओं के साथ अन्धक के युद्ध-वर्णन के अन्तर्गत देवासुरों के बाहनों का वर्णन देवताओं से अन्धक का युद्ध	41-45
१०	५७	देवों से अन्धक का युद्ध (पूर्वानुवृत्त)	45-50
११	५८	सुकेशि के उपाख्यान के अन्तर्गत ऋषियों द्वारा उसके लिये धर्मोपदेश तथा देवादि द्वादश योनियों के धर्म का कथन भुवनकोश एवं इकीस नरकों का वर्णन	51-55
१२	५६	सुकेशि वृत्तान्त के अन्तर्गत नरकप्रद कर्मों का वर्णन, कृतघ्न निन्दा के प्रसङ्ग में अपने अपने धर्मों में पदार्थों की प्रधानता का वर्णन, कृतघ्न निन्दा	55-60
१३	५८	सुकेशि के वृत्तान्त के अन्तर्गत जम्बूद्वीप के बर्षों का वर्णन भुवनकोश में भारतवर्ष के द्वीपों, पर्वतों, नदियों तथा जनपदों का उल्लेख	60-63
१४	५६	सुकेशिवृत्तान्त के अन्तर्गत ब्रह्मचारिधर्म एवं सदाचार का वर्णन	64-69
१५	६७	सुकेशिवृत्तान्त में भोज्य अन्नों का वर्णन, द्रव्यों की शुद्धि का कथन, द्रव्यों का शोधन तथा शीघ्र गृहस्थ के सदाचरणों का वर्णन अमोघ्यों के लक्षण, शीघ्र का स्वल्प, वर्णाश्रमधर्म का वर्णन	69-74
१६	६३	सुकेशि के नगर का वर्णन सुकेशि के नगर का पातन, सूर्य का अध पातन तथा पुनरासुरोपण	75-79
१७	६४	देवों की शवनविधि, अश्वत्थशयनद्वितीयाव्रत, कृष्णाष्टमी व्रत में रुद्र का पूजन	79-84
१८	७२	देवताओं के अङ्गों में विविध वृक्षों की उत्पत्ति, असङ्गद्वय में केशव का पूजन, विष्णुपञ्जरस्तोत्र; कात्यायनी चरित के अन्तर्गत महिष की उत्पत्ति एवं राज्याभिषेक	84-89
१९	३७	कात्यायनी का प्रादुर्भाव, देवों द्वारा कात्यायनी की स्तुति अगस्त्य द्वारा विन्ध्य का निम्नीकरण	90-94
२०	४४	कात्यायनी चरित में चण्ड मुण्ड द्वारा महिष से देवी के रूप सौष्ठव का निवेदन महिषासुर द्वारा दूत सप्रेषण, दूत द्वारा देवी से महिषासुर के सदेश का कथन, महिषासुर का युद्धोद्योग	94-99
२१	५२	देवी एवं महिषासुर में युद्ध तथा महिषासुर का वध	99-103

अध्याय	श्लोकसंख्या	विषय	पृष्ठाङ्क
२२	६१	देवी की पुनरुत्पत्ति के विषय में प्रश्न, अन्य महिष द्वारा घोड़ित देवों का विष्णु के समीप जाना, कुरुक्षेत्र निर्माण वर्णन के प्रसङ्ग में सवर्ण एवं तपती का वृत्तान्त	113-109
२३	४५	कुरुक्षेत्र निर्माण का वृत्तान्त एवं पृथुदुःतीर्थ वर्णन	109-112
स मा १	१४	ब्रह्मसर के प्रमाण पय महिमा का वर्णन	113-114
स मा २	२१	वामनचरित—दैत्यराज्य पद पर बलि का अभिषेक; बलि का ऐश्वर्य वर्णन	114-115
स मा ३	३८	वामनचरित—करुण्य के साथ देवताओं का ब्रह्मलोकगमन	116-118
स मा ४	२३	वामनचरित—ब्रह्मा के उपदेश से देवताओं का श्वेतद्वीप में आगमन तथा तपश्चरण	118-120
स मा. ५	गद्य + १	वामनचरित—करुण्य द्वारा नारायण का स्तवन	120-121
स मा ६	३६	वामनचरित—विष्णु द्वारा देवों को वरप्रदान; अदिति की तपश्चर्या, अदिति द्वारा विष्णु की स्तुति	121-124
स मा ७	१६	वामनचरित—विष्णु द्वारा अदिति को वरप्रदान, अदिति के गर्भ में विष्णु की रिपिति	124-125
स मा ८	४९	वामनचरित—दैत्यों के तेज का विनाश, प्रह्लाद द्वारा अदिति के गर्भ में स्थित विष्णु की स्तुति	126-129
स मा. ९	४४	वामनचरित—वामनावतार, ब्रह्मा द्वारा वामनस्तुति, वामन का बलि के यज्ञ के लिए प्रस्थान	130-133
स मा १०	११	वामनचरित—वामन द्वारा वीन पग मात्र की याचना तथा अपने सर्वदेवमय विषाद रूप का प्रदर्शन, वामन का तीन पग में त्रैलोक्य को तापना; बलि का पाताल-गमन	133-140
स मा ११	२४	मार्कण्डेयकृत सरस्वती की स्तुति मार्कण्डेय द्वारा सरस्वती से कुरुक्षेत्र-प्रवेश के लिए प्रार्थना	140-142
स मा १२	२१	कुरुक्षेत्रमहिमा, कुरुक्षेत्र के तीर्थों में भ्रमण का विधान	142-144
स मा १३	५०	कुरुक्षेत्र के सात बनों और सात नदियों तथा तीर्थों का वर्णन	144-147
स मा १४	५६	कुरुक्षेत्र के तीर्थ	148-151
स मा १५	७८	कुरुक्षेत्र के तीर्थ	152-157
स मा १६	४०	कुरुक्षेत्र के तीर्थ; सप्तसारस्वत-तीर्थ-वर्णन	157-160
स मा १७	२३	मङ्गलक वृत्तान्त	160-162
स मा १८	४०	कुरुक्षेत्र के तीर्थ (पूर्वावृत्त)	162-165
स मा १९	४३	वसिष्ठापवाहतीर्थ की उत्पत्ति का वर्णन	165-168
स मा. २०	३४	कुरुक्षेत्र के तीर्थ	169-171
स मा २१	३०	कुरुक्षेत्र के तीर्थ तथा प्राची सरस्वती का माहात्म्य	171-173
स मा २२	८६	ब्रह्मोत्पत्ति वर्णन, सांनिहस्य सरोत्पत्ति; सर्पिण एवं बालखिल्यों की उत्पत्ति एवं तपश्चर्या; शिव द्वारा ऋषियों के धर्मज्ञान की परीक्षा; ऋषियों द्वारा शिव के लिङ्ग का पातन, ब्रह्मा द्वारा ऋषियों को ज्ञान का उपदेश	173-179
स मा २३	३६	ब्रह्मा द्वारा की गई शिव की स्तुति; हरितरूपधारी शिव द्वारा दास्यन से लिङ्ग का आनयन एवं सर के पार्व में स्थापन, देवों तथा ऋषियों द्वारा शिव की स्तुति	180-183
स मा २४	३१	स्थाणु तीर्थ, स्थाणुवट एवं स्थाणु-लिङ्ग का माहात्म्य	183-185
स मा २५	५६	स्थाणुलिङ्ग के चतुर्दिक् समीपस्थ विविध लिङ्गों की प्रतिष्ठा एवं उनका माहात्म्य	186-189
स मा २६	१६३	स्थाणुतीर्थ महिमा के प्रसङ्ग में वेन-चरित, पृथु का जन्म एवं राज्यभिषेक; पृथु द्वारा अपने पिता के उद्धार का प्रयत्न, पृथु द्वारा तारित वेन की शिवस्तुति	190-200
स मा २७	३५	वेनकृत शिवस्तुति का माहात्म्य; स्थाणुतीर्थ का माहात्म्य एवं वेन आदि की स्वर्ग-प्राप्ति	201-203
स मा २८	४९	चतुर्मुखों की उत्पत्ति के प्रसङ्ग में ब्रह्मकृत शिवस्तुति; चतुर्मुखोत्पत्ति तथा स्थाणुतीर्थ माहात्म्य	203-207

अध्याय	श्लोकसंख्या	विषय	पृष्ठाङ्क
२४	११	पितरों की आराधना के लिए पुण्य विधि; देवों द्वारा पृथुदक में पितरों की आराधना कर मेना की प्राप्ति	208-209
२५	७५	मेना से तीन ऋषियों की उत्पत्ति, ब्रह्मा के शाप से हुटिला का आपोमयी होना, रागिणी को ब्रह्मा का शाप, उमा की तपश्चर्या, शिव का हिमबदाश्रम में निवास, शिव द्वारा तपस्विनी पार्वती की परीक्षा, शिव का मन्दराचल पर गमन	209-215
२६	७१	शिव द्वारा सप्तर्षियों का हिमवान् के यहाँ प्रेषण, सप्तर्षियों का हिमवान् के गृह में आगमन एवं शिव के लिए उमा की याचना, हिमालय द्वारा अपने ज्ञातियों का आमन्त्रण तथा सप्तर्षियों के संदेश का निवेदन; हिमालय का शिव के लिए कन्यादान की स्वीकृति; सप्तर्षियों द्वारा शिव से उस वृत्तान्त का निवेदन	215-220
२७	६२	उमा और शिव का विवाह तथा बालरत्नियों की उत्पत्ति	220-22०
२८	७७	सुन्दर वर्ण की प्राप्ति के लिए पार्वती की तपश्चर्या एवं ब्रह्मा द्वारा पार्वती को सुवर्ण तुल्य वर्ण का वर प्रदान; इन्द्र द्वारा कौशिकी की विन्ध्य पर स्थापना; महामोहनक में स्थित शिव के प्राङ्गण में अग्नि का प्रवेश, देवों की प्रार्थना से शिव द्वारा महामैथुन का परिस्वाग, अग्नि द्वारा शिव के वीर्य का पान, गजानन की उत्पत्ति	225-231
२९	८८	नमुचिबध, शुम्भनिशुम्भ का वृत्तान्त—शुम्भ द्वारा देवी के यहाँ दूतसंप्रेषण, दूत का देवी से संदेश-कथन, भूषलोचन-वध, देवी का चण्डमुण्ड के साथ युद्ध, काली द्वारा असुरसैन्य का विनाश; चण्डमारी का चण्डवध के लिए उद्योग तथा चण्डमुण्ड का वध	231-237
३०	७३	चण्डिका की देह से मालकाओं की उत्पत्ति; मालकाओं के साथ असुरों का युद्ध; रक्त बीज से युद्ध एवं रक्तबीज-वध; निशुम्भ-शुम्भ वध; देवों द्वारा देवी की स्तुति एवं देवी द्वारा वरप्रदान; देवी द्वारा अपनी भाभी उत्पत्ति वर कथन	238-245
३१	१०४	स्कन्दोत्पत्ति, स्कन्द के पशुमुख एवं चतुर्भुज होने का कारण; स्कन्द का सेनापति पद पर अभिषेक; स्कन्द के लिए गण, मयूर, शक्ति एवं दण्डादि का समर्पण	245-252
३२	१२०	स्कन्द द्वारा तारक-विजय के लिए अनुमति की याचना; स्कन्द का स्वस्त्ययन तथा युद्ध के लिए प्रयाण; तारकादि की मन्त्रणा; पातालकेतुवृत्तान्त; स्कन्द का तारक-महिष आदि से युद्ध; तारक-वध; महिष का शीर्ष की गुहा में प्रवेश स्कन्द एवं शक्र में विवाद स्कन्द द्वारा शीर्ष भेदन तथा महिषासुर का वध; हर का सुचक्राक्ष के लिए वर प्रदान	253-262
३३	४७	श्रवणवध द्वारा पातालकेतु पर प्रहार; अन्धक का गौरी की प्राप्ति के लिए प्रयास	263-267
३४	७९	क्षीर तेज की प्राप्ति के लिए शिव की तपस्या; शिव का तपश्चरण एवं केदार तीर्थ की उत्पत्ति; शङ्कर के सरस्वती में निमग्न होने से भुवन का विश्लोभ; सुरासुरवध के प्रसङ्ग में विष्णु का चतुर्भुज स्वरूप-वर्णन; सनत्कुमार का द्वादशपत्रक योग की प्राप्ति के लिए प्रयत्न एवं ब्रह्मा से पुष्पम-नरक-विषयक प्रश्न	267-273
३५	७७	ब्रह्मा द्वारा पुष्पाम नरकों का वर्णन; पुत्र और शिष्य में वैशिष्ट्य; औरस इत्यादि द्वादश पुत्रों का वर्णन; सनत्कुमार द्वारा ब्रह्मा का दत्तक पुत्र होना; ब्रह्मा द्वारा सनत्कुमार के लिए द्वादशपत्रक योग का उपदेश; विष्णु की चतुर्भुज का वर्णन; सुर वध	273-278
३६	५९	देवताओं से हराभिषेक एवं तप्तवृद्ध का विधान वर्णन; हरिहर के संयोग में विष्णु के हृदय में शिव लिङ्ग की स्थिति; हरिहरस्वरूप वर्णन; शिव द्वारा शुक को सञ्जीवनी विद्या की शिक्षा मङ्गलकवृत्तान्त; सप्तभारस्वतीतीर्थमहिमा	279-284

अध्याय	श्लोकसंख्या	विषय	पृष्ठाङ्क
३७	८६	अन्धकृतान्तः। प्रह्लाद द्वारा कामसन्तप्त अन्धक से दण्डकाख्यान का वर्णन, अरजा से दण्डक का चित्राङ्गदा के वृत्तान्त का कथन	284-290
३८	७९	चित्राङ्गदा आख्यान में विश्वकर्मा का बानर होना, वेदवती, नन्द्यन्ती, जाबालि एवं देववती का उपाख्यान जाबालि के जटामोचन का वर्णन	290-296
३९	१६९	गाल्व-वृत्तान्त चित्राङ्गदा द्वारा वेदवती से अपने वृत्तान्त का वर्णन वेदवती वृत्तान्त इन्द्रद्युम्न प्रभृति द्वारा कन्याओं का अन्वेषण घृताची वृत्तान्त चन्द्र द्वारा जाबालि की जटाओं से मुक्ति कर्पिरूपधारी विश्वकर्मा की शपमुक्ति इन्द्रद्युम्न आदि का सप्तगोदावर में आगमन, कन्याओं द्वारा शिव की स्तुति, सप्तगोदावर में सभी का एकत्र सम्मेलन घृताची द्वारा चित्राङ्गदा को आश्वासन चारों कन्याओं का विवाह	296-308
४०	६४	दण्डक द्वारा अरजा का धर्षण शुक द्वारा दण्डक को शप प्रदान प्रह्लाद का अन्धक से परलोचर्जन का उपदेश अन्धक का शिव के समीप दूत प्रेषण अन्धक का शिव के साथ युद्धघोष	309-313
४१	९९	नन्दी द्वारा गणों का आद्धान, उपस्थित गणों का वर्णन गणों से हरिहर के एकत्र ज्ञान का उपदेश, गणों की सदाशिवरूप का दर्शन ऐक्यज्ञान से गणों का पापरहित होना शङ्कर के गणों द्वारा मन्दर का आच्छादन	314-318
४२	६६	अन्धक से युद्ध के लिए हर का प्रयाण, रुद्र-गणों का दानवों से युद्ध, तुहण्ड, कुजम्भ, दुर्योधन, हस्ती आदि का घघ	318-324
४३	१६२	शुक द्वारा सञ्जीवनी विद्या का प्रयोग नन्दी के साथ दानवों का युद्ध, शिव द्वारा शुक का अपने जठर में स्थापन, शुकद्वय हर स्तुति, शुक द्वारा शिव के उदर में विश्वदर्शन, हर के जठर से शुक का निष्क्रमण, प्रमथों तथा देवों का दानवों से युद्ध, हर का नृत्य एवं दानवों की पराजय, हर के वेप में अन्धक का पार्वती के समीप गमन भयवश पार्वती का श्वेताङ्कुसुम के गुल्म में तिरोभाव प्रमथों एवं अमरों का दानवों से युद्ध, अग्नि द्वारा इन्द्र को शक्ति-प्रदान जम्भ एवं शक्र का युद्ध, मातलि की उत्पत्ति, मातलि का इन्द्र सारथी होना इन्द्र द्वारा दैत्यों का विघात एवं जम्भ-कुजम्भ का बध	324-336
४४	९६	अन्धक युद्ध, शिव के शूल से अन्धक का भेदन अष्ट भैरव एवं मङ्गल तथा चर्चिका की उत्पत्ति शिव की नेत्रवह्नि से अन्धक का शोषण, अन्धक-कृत शिरस्तुति, अन्धक को भृङ्गित्व की प्राप्ति, शिव द्वारा देवादिकों का विसर्जन अर्कङ्कुसुम से पार्वती का प्रकट होना एवं अन्धक द्वारा पार्वती की स्तुति	336-344
४५	४२	मलय पर्वत पर इन्द्र का दानवों से युद्ध, इन्द्र के पाकशासन तथा गोत्रभिद् होने का कारण एवं दितिज भरतों की उत्पत्ति	344-347
४६	७६	स्वायम्भुव, स्वारोचिष, उत्तम, तामस, रैत एवं चाक्षुष मन्वन्तरों के भरतों की उत्पत्ति	347-353
४७	५१	बलि, मय आदि दानवों का देवों से युद्ध। कालनेमि का युद्ध। कालनेमि से विष्णु का युद्ध एवं कालनेमि का बध	353-357
४८	५०	बलि एवं बाण आदि का दोनों से युद्ध, बलि की स्वर्गविजय प्रह्लाद का स्वर्ग में आगमन, बलि की कर्त्तव्योपदेश की शुश्रूषा तथा प्रह्लाद का उपदेश	357-361
४९	५२	शैलोक्यलक्ष्मी का बलि के समीप उपस्थित होना, रवेतादि लक्ष्मी चतुष्टय की उत्पत्ति एवं विभाग का वर्णन, महाप्रह्लादि नियियों का वर्णन, जवश्री का बलि के शरीर में प्रवेश तथा श्रीसम्पन्न बलि के वैभव का वर्णन	361-365

५०	४९	प्रावृत्तिके लिए इन्द्र की महानदी के तटपर तपश्चर्या एवं निष्कल्पन होकर माता के आश्रम में आगमन, अदिति की तपस्या एवं वासुदेव स्तुति; वासुदेव का अदिति से स्वयं पुत्र होने की स्वीकृति एवं अपने तेज के अंश से अदिति के गर्भ में प्रवेश	365-370
५१	५७	प्रह्लाद द्वारा विष्णु का अदिति के गर्भ में प्रविष्ट होने की घात सुनकर बलि का विष्णु के लिए दुर्वचन, प्रह्लाद का बलि को शाप एवं बलि द्वारा प्रह्लाद से अनुनय करने पर प्रह्लाद का उपदेश	370-374
५२	९०	प्रह्लाद-तीर्थयात्रा प्रसंग में धुन्धु एवं त्रिविक्रम का आख्यान एवं महदादि लोको का वर्णन; धुन्धु का यज्ञोपक्रम एवं यज्ञ क्षय के लिए वामनोत्पत्ति, धुन्धु के यज्ञसदस्यों से अपने वृत्तान्त का कथन, धुन्धु की वामन के लिए धनादि दान करने की इच्छा, वामन का त्रिविक्रम रूप, धुन्धु-वध	375-381
५३	८३	पुरूरवा की रूपप्राप्ति के प्रसङ्ग में प्रेत एवं वणिक् की कथा एवं वणिक् से प्रेत द्वारा अपने वृत्तान्त का कथन; प्रेत द्वारा अथवाद्वादशी माहात्म्य का वर्णन गया में पिण्ड-दान करने से उसकी प्रेतयौनि से मुक्ति; पुरूरवा को पूर्वजन्म में सुरूपप्राप्ति	382-387
५४	३९	नक्षत्ररूपव्रत के वर्णन में नक्षत्रपुरण के स्वरूप, पूजाविधि एवं व्रत के माहात्म्य का वर्णन	388-390
५५	३३	प्रह्लाद की तीर्थ यात्रा एवं जलोद्भव का आख्यान	391-393
५६	४६	चक्र प्रदान-कथा में उपमन्यु एवं श्रीदाम का वृत्तान्त, शिव द्वारा विष्णु को चक्रदान, हर का विरूपाक्ष होना एवं श्रीदामवध	394-397
५७	७४	प्रह्लाद तीर्थयात्रा में विविध तीर्थों का वर्णन	397-402
५८	८४	प्रह्लाद-तीर्थयात्रा में त्रिवृटगिरि पर स्थित सरोवर में माह द्वारा गज का ग्रहण, गजेन्द्र द्वारा विष्णु की स्तुति, गज माह का उद्धार एवं दोनों को वरदान, गजेन्द्रमोक्षण स्तोत्र की प्रशंसा	403-409
५९	१२१	सारस्वत स्तोत्र के प्रसङ्ग में विष्णुपञ्जर स्तोत्र एवं राक्षस वृत्तान्त तथा राक्षस-महीत मुनि द्वारा अग्नि की प्रार्थना एवं सारस्वत स्तोत्र राक्षसमुक्त मुनि का उसको उपदेश	409-418
६०	५१	महेश्वरोक्त पाप प्रशमन-स्तोत्र	418-422
६१	२६	अगस्त्योक्त पाप प्रशमन स्तोत्र	422-424
६२	५६	यज्ञ के लिए बलि का कुरुक्षेत्र में आगमन एवं वहाँ के निवासी मुनियों का पलायन, वामन जन्म, ब्रह्मा द्वारा वामन-स्तुति एवं जात कर्म आदि क्रियायें; वामन की बलिपथ में जाने की इच्छा, भरद्वाज से वामन का स्थनिवास-कथन	424-429
६३	४८	वामन का विविध स्थानों में निवास कथन एवं कुरुजाङ्गल के लिए प्रस्थान	429-432
६४	११५	बलि-शुक्र-सयाद में कौशमारकुत की कथा	433-441
६५	६८	वामन का बलि के यज्ञघाट में प्रवेश एवं बलि से पद त्रय की याचना, वामन का विराट्-रूप ग्रहण एवं उनका त्रिविक्रम रूप, याग का वामन से बलि-बन्धन विषयक प्रश्न, वामन का बलि को वर प्रदान, बलि का पाताल एवं वामन का स्वर्ग गमन	442-447
६६	१८ + ११	वामन की ब्रह्मलोक में पूजा, ब्रह्मा द्वारा वामन की स्तुति एवं विष्णु का वामन रूप से स्वर्ग में निवास	448-451
६७	७६	बलि का पाताल-वास, सुदर्शन चक्र का पाताल में प्रवेश एवं बलि द्वारा उसकी स्तुति, प्रह्लाद द्वारा बलि से विष्णु भक्ति तथा विष्णु भक्तों की प्रशंसा	452-457
६८	७१	बलि का प्रह्लाद से पूजा, दान आदि विषयों में प्रश्न; विष्णु के पूजन में विहित पुष्प, पूजाविधि एवं प्रतिमास में विविध दानों का वर्णन, विष्णुमन्दिर निर्माण-महिमा, प्रह्लाद द्वारा विष्णु भक्तों एवं वृद्ध-वाक्य की महिमा-वर्णन	458-463
६९	१६	वामनपुराण की फलश्रुति	463-465

निर्धारित पाठ के अध्यायों का वेंकटेश्वर सस्करण के अध्यायों से साम्यनिर्देश

निर्धारित पाठ	वेंकटेश्वर सस्करण
१-१४	१-१४ ५७
१५	१४ ५८-१४ १२२
१६-२२	१५-२१
२३	२२ १-४६
समा १	२२ ४७-६०
समा. २-२८	२३-४९
२४	५०
२५-१६	५१-८२
५७ १-३३ab	८१ १-३२ef
५७ ३३cd-७४	८४ १०ab-५०
५८ ६१	८५-८८
(६२ १-९)	(८४ १-९)
६२	८९
६३-६७	९०-९४
६८ १-२७	९५ १-२८ab
६८ २८-७१	९५ ३८-८४
६९ १-३	९५ ८५-८७
६९ ४-१२	९५ २८०d-३७
६९ १३-१६	९५ ८८-९२

अथ श्रीवामनपुराणम्

१

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥

त्रैलोक्यपराज्यमाधिप्य बलेरिन्द्राय यो ददौ ।
श्रीधराय नमस्तस्मै छद्मवामनरूपिणे ॥ १
पुलस्त्यमृषिमासीनमाश्रमे वाग्निदां वरम् ।
नारदः परिपप्रच्छ पुराणं वामनाश्रयम् ॥ २
कथं भगवता ब्रह्मन् विष्णुना प्रभविष्णुना ।
वामनत्वं धृतं पूर्वं तन्मयाचक्ष्व पृच्छतः ॥ ३
कथं च वैष्णवो भूत्वा प्रह्लादो दैत्यसत्तमः ।
त्रिदशैर्पुत्रेषु सार्धमत्र मे संशयो महान् ॥ ४
श्रूयते च द्विजश्रेष्ठ दक्षस्य दुहितः सती ।
शंकरस्य प्रिया भार्या बभूव चरवर्णिनी ॥ ५
किमर्थं सा परित्यज्य स्वशरीरं वरानना ।

जाता हिमवतो गेहे गिरीन्द्रस्य महात्मनः ॥ ६
पुनश्च देवदेवस्य पत्नीत्वमगमच्छुभा ।
एतन्मे संशयं छिन्धि सर्ववित् त्वं मतोऽसि मे ॥ ७
तीर्थानां चैव माहात्म्यं दानानां चैव सत्तम ।
व्रतानां विविधानां च विधिमाचक्ष्व मे द्विज ॥ ८
एषमुक्तो नारदेन पुलस्त्यो मुनिसत्तमः ।
श्रीवाच वदतां श्रेष्ठो नारदं तपसो निधिम् ॥ ९
पुलस्त्य उवाच ।
पुराणं वामनं वक्ष्ये ऋमान्निखिलमादितः ।
अवधानं स्थिरं कृत्वा शृणुष्व मुनिसत्तम ॥ १०
पुरा हैमवती देवी मन्दरस्थं महेश्वरम् ।

१

नारायण, नरों में श्रेष्ठ नर, देवी सरस्वती और व्यास
को नमस्कार करने के अनन्तर जय (पुराणादि) को पढ़े ।

जिन्होंने बलि से त्रैलोक्य (स्वर्ग, मर्त्य और पाताल)
के राज्य को छीन कर इन्द्र को दे दिया था, छल से वामनरूप
धारण करने वाले उन श्रीधर विष्णु को नमस्कार है । (१)
विद्वानों में श्रेष्ठ महर्षि पुलस्त्य आश्रम में बैठे
थे । देवर्षि नारद ने उनसे वामन से सम्बद्ध पुराण की कथा
पूछी— (२)
हे ब्रह्मन्, सामर्थ्यशाली भगवान् विष्णु ने कैसे पूर्व
काल में वामन-शरीर ग्रहण किया था, इसे आप मुझ प्रदत्त
कर्ता को बताइये । (३)
दैत्यों में श्रेष्ठ प्रह्लाद, वैष्णव होकर भी देवताओं के
साथ संभ्राम में क्यों प्रवृत्त हुए थे, इस विषय में मुझे बड़ा
संदेह है । (४)
हे द्विजश्रेष्ठ, ऐसा सुनने में आता है कि प्रजापति दक्ष
की परमा सुन्दरी कन्या सती शरर की प्रिय पत्नी हुई थीं । (५)
वह सुन्दर सुखवाली (सती) क्यों अपने शरीर को छोड़

कर पर्वतराज महात्मा हिमाचल के घर में उत्पन्न हुई । (६)
और पुन वह कल्याणी देवदेव (महादेव) की पत्नी
बनीं । मेरे विचार से आप सर्वज्ञ हैं, अतः इस सशय को
आप दूर करें । (७)
हे सत्पुरुषों में श्रेष्ठ, हे द्विज, तीर्थों तथा दानों की महिमा
तथा विविध व्रतों की अनुष्ठान विधि भी मुझे बताइये । (८)
नारद के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर मुनिवों में
मुख्य तथा बलाओं में श्रेष्ठ पुलस्त्य, तपोयत नारद से
कहने लगे— (९)
पुलस्त्य ने कहा—मैं आदि से प्रारम्भ करके क्रमशः
सम्पूर्ण वामन पुराण का वर्णन करूँगा । हे मुनिश्रेष्ठ,
आप ध्यान लगाकर सुनिये । (१०)
प्राचीन समय में देवी हैमवती (सती) ने भीष्म शत्रु
का आगमन देवशर मन्दर पर्वत पर बैठे हुए महेश्वर से
यह वचन कहा— (११)

उवाच वचनं दृष्ट्वा ग्रीष्मकालमपस्थितम् ॥ ११
 ग्रीष्मः प्रवृत्तो देवेश न च ते विद्यते गृहम् ।
 यत्र वातातपौ ग्रीष्मे स्थितयोर्नो गमिष्यतः ॥ १२
 एवमुक्तो भवान्या तु शंकरो वाक्यमब्रवीत् ।
 निराश्रयोऽहं सुदति सदाऽरण्यचरः शुभे ॥ १३
 इत्युक्त्वा शंकरेणाथ वृक्षच्छायासु नारद ।
 निदाघकालमनयत् समं शर्वेण सा सती ॥ १४
 निदाघान्ते समुद्भूतो निर्जनाचरितोऽद्भुत ।
 घनान्धकारिताशो वै प्रावृट्कालोऽतिरागवान् ॥ १५
 तं दृष्ट्वा दक्षतनुजा प्रावृट्कालमपस्थितम् ।
 प्रोवाच वाक्यं देवेशं सती सप्रणय तदा ॥ १६
 विवान्ति वाता हृदयाघदारणा
 गर्जन्यभी तोयधरा महेश्वर ।
 स्फुरन्ति नीलाभ्रगणेषु विद्यतो
 वाशन्ति केकारवमैव धर्हिणः ॥ १७
 पतन्ति धारा गगनात् परिच्युता
 वक्रा बलाकाश्च सरन्ति तोयदान् ।
 कदम्बसर्जार्जुनकेतकीद्रुमाः

हे देवेश, ग्रीष्म ऋतु का आरम्भ हो गया है किन्तु
 आपका कोई घर नहीं है जहाँ रहते हुए हम दोनों ग्रीष्म के
 वायु प्रवाह और ताप को बिता सकें । (१२)

भवानी के ऐसा कहने पर शंकर ने कहा—हे शुभे, हे
 सुन्दर दौतों वाली, मैं गृहहीन और सदा वन में विचरण
 करने वाला हूँ । (१३)

हे नारद, शंकर के इस प्रकार कहने पर उन सती ने
 शंकर के साथ वृत्तों की छाया में ग्रीष्मकाल बिताया । (१४)

ग्रीष्म ऋतु के अन्त में अद्भुत वर्षाऋतु का आगमन
 हुआ जो अत्यधिक राग को बढ़ाने वाला था । इससे लोगों
 का आना जाना रुक गया तथा मेघों के द्वारा आच्छन्न हो
 जाने से दिशायें अन्धकारमय हो गईं । (१५)

उस वर्षाकाल को उपस्थित देखकर दक्ष पुत्री सती ने
 प्रेमपूर्वक महादेव से यह बात कही— (१६)

“हे महेश्वर, हृदयविदीर्णकारी वायु वेग से चल रहे
 हैं, ये मेघ गर्जन कर रहे हैं, नील मेघ मढली में विजलियों
 चमक रही हैं और मोर केना शब्द कर रहे हैं । (१७)

पुष्पाणि मृञ्चन्ति सुमारुताहताः ॥ १८
 श्रुत्वैव मेघस्य दृढं तु गर्जितं
 त्यजन्ति हंसाश्च सरांसि तत्क्षणात् ।
 यथाश्रयान् योगिगणाः समन्तात्
 प्रवृद्धमूलानपि सत्यजन्ति ॥ १९
 इमानि यूथानि वने मृगाणां
 चरन्ति धावन्ति रमन्ति शंभो ।
 तथाऽचिराभाः सुतरा स्फुरन्ति
 पद्मेह नीलेषु घनेषु देव ।
 नूनं समृद्धिं सलिलस्य दृष्ट्वा
 चरन्ति शूरास्तरुणद्रुमेषु ॥ २०
 उद्बृचवेगाः सहसैव निम्नगा
 जाताः शशाङ्काङ्कितचारमौले ।
 किमत्र चित्रं यदनुज्ज्वलं जनं
 निपेच्य योपिद् भवति त्वशीला ॥ २१
 नीलैश्च मेघैश्च समावृतं नमः
 पुष्पैश्च सर्जार्जा मृङ्गलैश्च नीपा ।
 फलैश्च विल्वाः पयसा तथापगा ।

गगनमडल से छूटी हुई जलधारयें गिर रही हैं, बगुले
 और सारस मेघों का अनुगमन कर रहे हैं । प्रबल वायु द्वारा
 आहत कदम्ब सर्ज, अर्जुन तथा केतकी के वृक्ष पुष्प गिरा
 रहे हैं । (१८)

मेघ का गर्भीर गर्जन सुनकर इस तुरन्त जलाशयों
 को छोड़कर चले जा रहे हैं, जिस प्रकार योगिजन अपने
 सब प्रकार से समृद्ध घर को भी सर्वथा छोड़ देते हैं । (१९)

हे शंभो, वन में मृगों के ये गुण्ड आनन्दित होकर
 इतस्तत दीब रहे हैं । और हे देव, देखिये—काले-काले
 मेघों में विद्युत् मलीमौति चमक रही हैं । मानो जल की वृद्धि
 को देखकर शरणागण तरुण वृक्षों पर विचरण कर रहे हैं । (२०)

नदियाँ एकाएक वेग से प्रवाहित हो रही हैं । हे
 चन्द्रशेखर । इसमें क्या आश्चर्य है कि चरित्रहीन व्यक्ति
 को प्राप्त कर ली तु शील हो जाती है । (२१)

नीलमेघों के द्वारा आकाश आच्छन्न हो गया है, पुष्पों
 के द्वारा सर्ज, मुकुटों के द्वारा कदम्ब, फलों के द्वारा विल्व
 वृक्ष, जल के द्वारा नदियाँ, तथा कमलों से युक्त पत्रों के

पत्रैः सपत्रैश्च महासरांसि ॥ २२
 इतीदृशे शंकर दुःसहेऽद्भुते
 काले सुरीद्रे ननु ते प्रवीमि ।
 गृहं कुरुभ्यात्र महाचलोत्तमे
 सुनिर्वृता येन भवामि शंभो ॥ २३
 इत्थं त्रिनेत्रः श्रुतिरामणीयकं
 श्रुत्वा ययो वाक्पामिदं वभापे ।
 न मेऽस्ति वित्तं गृहसंचयार्थं
 मृगारिचर्मावरणं मम प्रिये ॥ २४
 ममोपवीतं भुजगेधरः शुभे
 कर्णेऽपि पद्मश्च तयैव पिङ्गलः ।
 केयूरमेकं मम कम्बलस्त्वहि-
 द्वितीयमन्यो भुजगो धनंजयः ॥ २५
 नागस्तथैवाश्वतरो हि कङ्कण
 सन्वेतरे तक्षक उचरे तथा ।
 नीलोऽपि नीलाङ्गनतुल्यवर्णः
 श्रोणीतटे राजति सुप्रसिद्धः ॥ २६

इति श्रीवामनपुराणे प्रथमोऽध्याय ॥१॥

द्वारा बड़े-बड़े सरोवर आच्छन्न हो गए हैं । (२२)
 हे शंकर, इसीलिए मैं कहती हूँ कि ऐसे दु सह, अद्भुत
 तथा भयकर समय में आप इस महान् तथा उत्तम पथत
 पर गृहनिर्माण कीजिए, हे शंभो, जिससे मैं निश्चिन्त हो
 जाऊँ । (२३)
 सती के इन मधुर वाक्यों को सुनकर त्रिनेत्र शंकर ने
 कहा—'हे प्रिये, गृह निर्माण के लिये मेरे पास धन नहीं
 है । मैं व्याघ्र का चर्म पहनवा हूँ । (२४)
 हे शुभे, सरोवरों में जनेऊ है । फल और विंगल
 नामक दो सर्प मेरे दोनों कानों में हैं । कबल और
 धनजय नामक दो सर्प मेरी दोनों बाहों के बाजूबन्द हैं । (२५)
 मेरे दाहिने हाथ में अश्वतर नाग और बाएँ हाथ में
 तक्षक नाग बगन बने हैं । मेरे कटिप्रदेश में नीलाङ्गन के
 समान वर्णवाला नील नामक सर्प अवस्थित होकर सुशोभित
 हो रहा है । (२६)

पुलस्त्य उवाच ।
 इति वचनमथोग्रं शंकरात्सा मृदानी
 श्रुतमपि तदसत्त्वं श्रीमदाकर्ण्य भीता ।
 अरनितलमवेक्ष्य स्वामिनो वासकृच्छ्रात्
 परिवदति सरोपं लज्जयोच्छ्वस्य चोष्णम् ॥२७
 देव्युवाच ।
 कथं हि देवदेवेश प्रावृट्कालो गमिष्यति ।
 वृक्षमूले स्थिताया मे सुदुःखेन वदाम्यतः ॥ २८
 शंकर उवाच ।
 घनावस्थितदेहायाः प्रावृट्कालः प्रयास्यति ।
 यथाम्बुधारा न तत्र निपतिष्यन्ति विग्रहे ॥ २९
 पुलस्त्य उवाच ।
 ततो हरस्तद्घनखण्डमुत्त-
 मारुद्ध तस्यै सह दक्षकन्याया ।
 ततोऽभवन्नाम तदेधरस्य
 जीमूतकेतुस्त्विति विश्रुतं दिवि ॥ ३०

पुलस्त्य ने कहा—महादेव के इस प्रकार फटोर तथा
 ओजस्वी एव सत्य होने पर भी असत्य प्रतीत हो रहे वचन
 को सुनकर सती अत्यन्त भयभीत हो गई और स्वामी के
 निवासकष्ट के कारण क्रोध और लज्जा से गरम साँस छोड़-
 कर भूमि की ओर देवती हुई कहने लगी— (२७)
 देवी ने कहा—'हे देवदेवेश ! वृक्ष के मूल में दु ख
 पूर्वक रहकर मेरा किस प्रकार वर्षाकाल बीतेगा ? अत मैं
 (गृह निर्माण के लिये) कहती हूँ । (२८)
 शंकर ने कहा—'हे देवि, मेव महली के ऊपर शरीर
 स्थित कर तुम वर्षाकाल वित्त सन्तुगी, जिससे वृष्टि की
 जलधारा तुम्हारे शरीर पर नहीं गिरेगी ।' (२९)
 पुलस्त्य ने कहा—तदनन्तर महादेव दक्ष कन्या सती
 के साथ उस उन्नत घनसङ्घ के ऊपर चढ़कर बैठ गये । अत
 तब से उनका नाम स्वर्ग में 'जीमूतकेतु' ऐसा विख्यात
 हुआ ।' (३०)

पुलस्त्य उवाच ।
 ततस्त्रिनेत्रस्य गतः प्राष्टकालो घनोपरि ।
 लोकानन्दकरी रम्या शरत् समभवन्मुने ॥ १
 त्यजन्ति नीलान्मुधरा नभस्तलं
 वृक्षांश्च कङ्काः सरितस्तटानि ।
 पद्माः सुगन्धं निलयानि वायसा
 रूर्ध्विपाणं क्लृपं जलाशयाः ॥ २
 विकासमायान्ति च पङ्कजानि
 चन्द्रांशवो भान्ति लताः सुपुष्पाः ।
 नन्दन्ति हृष्टान्यपि गोकुलानि
 सन्तश्च संतोषमनुव्रजन्ति ॥ ३
 सरस्तु पद्मा गगने च तारका
 जलाशयेष्वेव तथा पर्यासि ।
 सतां च चित्तं हि दिशां मुखैः समं
 वैमल्यमायान्ति शशाङ्कान्तयः ॥ ४

एतादृशे हरः काले मेघपृष्ठाधिवासिनीम् ।
 सतीमादाय शैलेन्द्रं मन्दरं समुपाययौ ॥ १
 ततो मन्दरपृष्ठेऽसौ स्थितः समशिलातले ।
 रराम शंभुर्भगवान् सत्या सह महाद्युतिः ॥ ६
 ततो व्यतीते शरदि प्रतिबुद्धे च केशवे ।
 दक्षः प्रजापतिश्रेष्ठो यष्टुमारभत क्रतुम् ॥ ७
 द्वादशैव स चादित्याञ्च शक्रादींश्च सुरोचमान् ।
 सकश्यवान् समामन्त्र्य सदस्यान् समचीकरत् ॥ ८
 अरुन्धत्या च सहितं वसिष्ठं शंसितव्रतम् ।
 सहानसूययाऽत्रिं च सह धृत्या च कौशिकम् ॥ ९
 अहल्यया गौतमं च भरद्वाजममायया ।
 चन्द्रया सहितं ब्रह्मन्नुपिमङ्गिरसं तथा ॥ १०
 आमन्त्र्य कृतवान्दक्षः सदस्यान् यज्ञसंसदि ।
 विद्वान् गुणसंपन्नान् वेदवेदान्पारंगान् ॥ ११
 धर्मं च स समाहूय भार्ययाऽर्हिसया सह ।

२

पुलस्त्य ने कहा—तदपश्चात् त्रिनेत्र महादेव का वर्षाकाल मेघों के ऊपर व्यतीत हो गया । तदुपरान्त हे मुने, लोकों की आनन्दकारिणी रमणीय शरद् प्रारंभ हुई । (१)
 (शरदागम होने पर) नील मेघों ने आकाश का, बगुलों ने वृक्षों का और नदियों ने तट का त्याग कर दिया । कमल सुगन्ध छोड़ने लगे, बाकों ने घोंसलों का परित्याग कर दिया । रुरसृगों के शृङ्ग गिर गए और जलाशय मलिनता से रहित हो गए । (२)
 कमल विरसित होने लगे, शुभ ज्योत्स्ना प्रभासित होने लगी, लताएँ पुष्पित हो गयीं, गोकुल सुपुष्ट एवं आनन्दित हो गए तथा सज्जन लोगों को सन्तोष की प्राप्ति हुई । (३)
 जलाशयों में कमल, गगन में तारे, जलाशयों में जल दिशाओं के साथ-साथ सज्जनों का चित्त तथा चन्द्रमा की कान्ति विमल हो गई । (४)
 ऐसे समय शंकर जी मेघ के ऊपर स्थित सती को

लेकर श्रेष्ठ मन्दर पर्वत पर पहुँचे । (५)
 तदनन्तर महापुतिमान् भगवान् शंकर मन्दराचल के ऊपर एक समतल शिला पर अवस्थित होकर सती के साथ रमण करने लगे । (६)
 तदुपरान्त शरद्काल के बीतने पर तथा केशव (विष्णु) के जागृत होने पर प्रजापति-श्रेष्ठ दक्ष ने यज्ञ करना आरंभ किया । (७)
 उन्होंने द्वादश आदित्यों तथा कर्यपादि (ऋषियों) के साथ इन्द्र आदि श्रेष्ठ देवताओं को निमन्त्रित कर उन्हें यज्ञ का सदस्य बनाया । (८)
 हे ब्रह्मन्, उन्होंने अरुन्धती के साथ प्रशस्तव्रतपारी वसिष्ठ को, अनसूया के साथ अत्रि को, धृति के साथ कौशिक को, अहल्या के साथ गौतम को, अमाया के साथ भरद्वाज को तथा चन्द्रा के साथ अङ्गिरा ऋषि को (यज्ञ में) निमन्त्रित किया । (९-१०)
 इन गुणसम्पन्न वेदवेदान्पारंगामी विद्वान् ऋषियों को

निमग्न्य वज्रवाटस्य द्वारपालत्वमादिशत् ॥ १२
 अरिष्टनेमिनं चक्रे इष्माहरणकारिणम् ।
 भृगुं च मन्त्रसंस्कारे सम्भगं दक्षः प्रयुक्तवान् ॥ १३
 तथा चन्द्रमसं देवं रोहिण्या सहितं शुचिम् ।
 धनानामधिपत्ये च युक्तवान् हि प्रजापतिः ॥ १४
 नामावृद्धितृश्रैव दौहित्रांश्च प्रजापतिः ।
 संशंकरां सर्तां वृक्तवा मखे सर्वान् न्यमन्त्रयत् ॥ १५
 नारद उवाच ।

किमर्थं लोकरूपतिना धनाध्यक्षो महेश्वरः ।
 ज्येष्ठः श्रेष्ठो वरिष्ठोऽपि आयोऽपि न निमग्नितः ॥ १६
 पुलस्त्य उवाच ।
 ज्येष्ठः श्रेष्ठो वरिष्ठोऽपि आयोऽपि भगवाच्छिनः ।
 कपालीति विदित्वेशो दक्षेण न निमग्नितः ॥ १७
 नारद उवाच ।

किमर्थं देवताश्रेष्ठः शूलपाणिस्त्रिलोचनः ।
 कपाली भगवाञ्जातः कर्मणा केन शंकरः ॥ १८

निमग्नित कर दक्ष ने उन्हें यह मे सदश्य बनाया । (११)
 धर्म को उनकी पत्नी अहिंसा के साथ निमग्नित कर
 उन्हें यत्नमण्डप या द्वारपाल बनाया । (१२)
 दक्ष ने अरिष्टनेमि को समिया लाने का कार्य दिया
 तथा भृगु को मन्त्रसंस्कार के कार्य में भलीभाँति नियुक्त
 किया । (१३)

तथा प्रजापति दक्ष ने रोहिणी के साथ शुचि
 चन्द्रमस को धनाधिपति के पद पर नियुक्त किया । (१४)
 प्रजापति ने सनी एवं शरद को छोड़कर अपने सभी
 जामाताओं, पुत्रियों एवं दौहित्रों को यह में आमन्त्रित
 किया । (१५)

नारद ने कहा—शेष्ठपति दक्ष ने श्रेष्ठ एवं ज्येष्ठ, श्रेष्ठ,
 वरिष्ठ, आय एवं धनाध्यक्ष होने पर भी उन्हें क्यों निमग्नित
 नहीं किया ? (१६)

पुलस्त्य ने कहा—“ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, वरिष्ठ तथा आय होते
 हुए भी भगवान् शिव को कपाली जान कर प्रजापति दक्ष
 ने उन्हें निमग्नित नहीं किया ।” (१७)

“द्विश्रेष्ठ नारद ने कहा—शूलपाणि त्रिलोचन भगवान्
 शंकर क्यों एवं किस कर्म से कपाली बने” (१८)

पुलस्त्य उवाच ।

शृणुष्ववावहितो भूत्वा कथामेतां पुरातनीम् ।
 प्रोक्तामादिपुराणे च ब्रह्मणाऽन्यक्तमूर्तिना ॥ १९
 पुरा त्वेकार्णव सर्वं जगत्स्वधारजङ्गमम् ।
 नष्टचन्द्रार्कनक्षत्रं प्रणष्ट्येव नानलम् ॥ २०
 अप्रतर्न्यमविवेच्यं भावाभावविवर्नितम् ।
 निमग्नपर्वततह तमोभूतं सुदुर्दशम् ॥ २१
 तस्मिन् स शेते भगवान् निद्रां वर्षसहस्रिकीम् ।
 राज्यन्ते सृजते लोकान् राजसं रूपमास्थितः ॥ २२
 राजसः पञ्चवदनो वेदवेदाङ्गपारगः ।
 सप्त चराचरस्यास्य जगतोऽद्भुतदर्शनः ॥ २३
 तमोमयस्तथैवान्यः समुद्रभूतस्त्रिलोचनः ।
 शूलपाणिः कपर्दी च अक्षमालां च दर्शयन् ॥ २४
 ततो महात्मा ह्यसृजदहकारं सुदारुणम् ।
 येनानान्तातुभौ देवौ तावेव ब्रह्मशंकरौ ॥ २५
 अहंकारावृत्तो रुद्रः प्रत्युवाच पितामहम् ।

पुलस्त्य ने कहा—

“आप सांख्यान होकर सुनें, मैं आदिपुराण
 में अन्यक्तमूर्ति ब्रह्मा जी द्वारा कही गई इस प्राचीन कथा
 को कहता हूँ ।” (१९)

प्राचीन समय में समस्त स्थावरजङ्गमात्मक जगत्
 एकार्णव था । चन्द्र, सूर्य, नक्षत्र, वायु एवं अग्नि विरोहित
 थे । तत्कालीन जगत् की अवस्था अप्रतर्न्य, अविवेच्य तथा
 भाव अभाव से रहित थी । सभी पर्वत एवं वृक्ष जल में
 निमग्न थे तथा सम्पूर्ण जगत् तमोभूत एवं दुर्दशाग्रस्त
 था । (२०-२१)

उस पराणव में भगवान् विष्णु सहस्र वर्षों की निद्रा में
 शयन करने में एवं सृष्टि के अंत में सृजितरूप एवं
 आश्रय कर वे समस्त लोकों की सृष्टि करते हैं । (२२)

उनका राजस स्वरूप इस चराचरतामक जगत् या सप्त,
 अद्भुतदर्शन, पञ्चवदन एवं वेदवेदाङ्गपारग्नत था । (२३)

उसी प्रकार एक अन्य पुरुष प्रादुर्भूत हुआ जो तमोमय,
 त्रिलोचन, शूलपाणि, कपर्दी तथा रत्नाक्षमालाधारी था (२४)
 वदनन्तर परमात्मा ने अविदारुण अहंकार की सृष्टि की
 जिससे ब्रह्मा तथा शंकर दोनों ही देवता आत्मान्न हुए । (२५)

को भवानिह संप्राप्तः केन सृष्टोऽसि मां वद ॥ २६
 पितामहोऽप्यहंकारात् प्रत्युवाचाथ को भवान् ।
 भवतो जनकः कोऽत्र जननी वा तदुच्यताम् ॥ २७
 इत्यन्योन्यं पुरा ताम्भ्यां ब्रह्मेशाभ्यां कलिप्रिय ।
 परिवादोऽभवत् तत्र उत्पत्तिर्भवतोऽभवत् ॥ २८
 भवानप्यन्तरिक्षं हि जातमात्रस्तदोत्पत्तत् ।
 धारयन्नतुलां बीणां कुर्वन् किलकिलाध्वनिम् ॥ २९
 ततो विनिर्जितः शंभुर्मानिना पद्मयोनिना ।
 तस्यावधोमुखो दीनो प्रहाक्रान्तो यथा शश्वी ॥ ३०
 पराजिते लोकपतौ देवेन परमेष्ठिना ।
 क्रोधान्धकारितं रुद्रं पञ्चमोऽय मुखोऽब्रवीत् ॥ ३१
 अहं ते प्रतिजानामि तमोमूर्ते त्रिलोचन ।
 दिग्वासा वृषभारूढो लोकक्षयकरो भवान् ॥ ३२
 इत्युक्तः शंकरः क्रुद्धो वदनं धोरचक्षुषा ।
 निर्दग्धुकामस्त्वनिशं ददर्श भगवानजः ॥ ३३
 ततस्त्रिनेत्रस्य सम्प्लुङ्गवन्ति

अहंकारावृत शंकर ने पितामह से कहा—“आप कौन यहाँ आये हैं? मुझे कतलाजो कि किसने तुम्हारी सृष्टि की है?” (२६)

पितामह ने भी अहंकार से उत्तर दिया—“यह बताइये कि आप कौन हैं तथा आपके जनक एव जननी कौन हैं?” (२७)

हे कलिप्रिय नारद, इस प्रकार प्राचीन काल में ब्रह्मा और शंकर के मध्य पारस्परिक विवाद हुआ। यहीं आपकी उत्पत्ति हुई थी। (२८)

और आप भी उत्पन्न होते ही अनुपम बीणा पारण किये किलकिल ध्वनि करते हुए ऊपर अन्तरिक्ष की ओर चले गये। (२९)

तदुपरान्त मानी पद्मयोनि (ब्रह्मा) द्वारा विजित होकर प्रहाक्रान्त चन्द्रमा के सदृश दीन शंकर अधोमुख होकर स्थित हुए। (३०)

परमेष्ठि देव (ब्रह्मा) के द्वारा लोकपति (शंकर) के पराजित होने पर क्रोधान्धकारित रुद्र से (श्री ब्रह्मा जी के) पाँचवें मुख ने कहा— (३१)

हे तमोमूर्ति त्रिलोचन! मैं आपको पद्मचानता हूँ

वक्त्राणि पञ्चाथ सुदर्शनानि ।
 श्वेतं च रक्तं कनकावदातं
 नीलं तथा पिङ्गजटं च शुभ्रम् ॥ ३४
 वक्त्राणि दृष्ट्वाऽर्कसमानि सद्यः
 पंतामहे वक्त्रमृवाच वाक्यम् ।
 समाहृतम्याथ जलस्य बुद्बुदा
 भवन्ति किं तेषु पराक्रमोऽस्ति ॥ ३५
 तच्छ्रुत्वा क्रोधयुक्तेन शंकरेण महात्मना ।
 नराग्रेण शिरश्चिन्नं ब्राह्मं परुषवादिनम् ॥ ३६
 तच्छिन्नं शंकरस्यैव सव्ये करतलेऽपत्तत् ।
 पतते न कदाचिच्च तच्छंकरकराच्छिरः ॥ ३७
 अथ क्रोधावृतेनापि प्रहणाद्बुद्धवत्कर्मणा ।
 सृष्टस्तु पुरुषो धीमान् कवची कुण्डली शरी ॥ ३८
 धनुष्पाणिर्भहानाहुषोणशक्तिधरोऽन्यथः ।
 चतुर्भुजो महातूषी आदित्यसमदर्शनः ॥ ३९
 स प्राह गच्छ दुर्धुदे मा त्वां शूचिन् निपातये ।

कि आप दिगम्बर, वृषारोही एवं लोकसंहारक हैं। (३२)

ऐसा कहे जाने पर अजन्मा भगवान् शंकर ने भ्रम करने की कामना से अपने भयहूर नेत्र द्वारा (ब्रह्मा के उस) मुख का निरन्तर अवलोकन किया। (३३)

तदनन्तर श्री शंकर के श्वेत, रक्त, स्वर्णिम नील एव पिगल वर्ण के सुन्दर पाँच मुख समुद्रभूत हुए। (३४)

सूर्य सदृश सग (समुद्रभूत) मुखों को देखकर पितामह के मुख ने कहा—“समाहृत जल में बुद्बुद् तो उत्पन्न होते हैं किन्तु क्या उनमें पराक्रम भी होता है?” (३५)

यह सुनकर क्रोधयुक्त महात्मा शंकर ने नख के अग्र भाग से ब्रह्मा के परुषभापी शिर को काट दिया। (३६)

वह कटा हुआ शिर शंकर के ही काम हथेली पर गिरा एव वह कपाल श्री शंकर के उस हथेली से किसी प्रकार भी नहीं गिरा। (३७)

तदनन्तर अद्भुतवर्मा क्रोधावृत ब्रह्मा ने भी कवच कुण्डल एवं शर धारण करने वाले, धनुर्धर, महाबाहु, वाणशक्तिधर, अन्यथ, चतुर्भुज, महातूषीर युक्त, आदित्य के समान दिखलाई पड़ने वाले एक बुद्धिमान् पुरुष की सृष्टि की। (३८-३९)

उन्होंने कहा—“हे दुर्धुदि शूलपायी शंकर, तुम चले

भवान् पापममायुक्तः पापिष्ठं को त्रिधांसति ॥ ४०
 इत्युक्तः शंकरस्तेन पुरुषेण महात्मना ।
 त्रपायुक्तो जगामाथ रुद्री बदरिकाश्रमम् ॥ ४१
 नरनारायणस्थानं पर्वते हि हिमाश्रये ।
 सरस्वती यत्र पुण्या स्यन्दते सरितां वरा ॥ ४२
 तत्र गत्वा च तं दृष्ट्वा नारायणमुनाच ह ।
 भिक्षां प्रयच्छ भगवन् महाकापालिकोऽस्मि भोः ॥ ४३
 इत्युक्तो धर्मपुत्रस्तु रुद्र वचनमब्रवीत् ।
 सर्व्यं भुजं ताडयस्व त्रिशूलेन महेश्वर ॥ ४४
 नारायणवचः श्रुत्वा त्रिशूलेन त्रिलोचनः ।
 सर्व्यं नारायणभुजं ताडयामास वेगवान् ॥ ४५
 त्रिशूलमिहतान्मार्गात् तिस्रो धारा विनिर्ययुः ।
 एका गगनमाद्रभ्य स्थिता ताराभिमण्डिता ॥ ४६
 द्वितीया न्यपतद् भूमौ तां जग्राह तपोधनः ।
 अत्रिस्तस्मात् समुद्भूतो दुर्वासाः शंकरांशतः ॥ ४७
 तृतीया न्यपतद् धारा कपाले रौद्रदर्शने ।
 तस्माच्छिशुः समभवत् संनद्धकवचो युवा ॥ ४८

श्यामाश्रदातः शरचापपाणि
 गर्जन्यथा प्रावृषि तोयदोऽसौ ।
 इत्थं ब्रुवन् कस्य विशातयामि
 स्कन्धाच्छिरस् तालफलं यथैव ॥ ४९
 तं शंकरोऽभ्येत्य वचो धभापे
 नरं हि नारायणवाहुजातम् ।
 निपातयैनं नर दुष्टवाक्य
 ब्रह्मात्मजं सूर्यशतप्रकाशम् ॥ ५०
 इत्येवमुक्तः स तु शंकरेण
 आर्घं धनुस्ताजगव्यं प्रसिद्धम् ।
 जग्राह तूणानि तथाऽक्षयाणि
 युद्धाय वीरः स मतिं चकार ॥ ५१
 ततः प्रयुद्धौ सुभृशं महाबली
 ब्रह्मात्मजो वाहुभवथ शर्व ।
 दिव्यं सहस्र परिवत्सराणां
 ततो हरोऽभ्येत्य विरञ्चिभूचे ॥ ५२
 त्रितस्त्वदीयः पुरुषः पितामह

जाओ, मैं तुम्हें नहीं मारूँगा । तुम पापयुक्त हो, पापिष्ठ
 को कौन मारना चाहता है ? ४०

उस महापुरुष ने शंकर से इस प्रकार कहा तब रुद्र
 लज्जित होकर बदरिकाश्रम को चले गए । (४१)

हिमालय पर्वत पर (वह बदरिकाश्रम) नर नारायण का
 स्थान है जहाँ नदियों में श्रेष्ठ पवित्र सरस्वती नदी प्रवाहित
 होती है । (४२)

वहाँ जाकर और उन नारायण को देखकर शंकर ने
 कहा—“हे भगवन् । मैं महाकापालिक हूँ । आप मुझे
 भिक्षा दें । (४३)

ऐसा कहे जाने पर धर्मपुत्र (नारायण) ने रुद्र से कहा—
 “हे महेश्वर । तुम त्रिशूल के द्वारा मेरी बायीं भुजा को
 ताड़ित करो । (४४)

नारायण के वचन को सुन कर वेगवान् त्रिलोचन ने
 त्रिशूल से उनकी बायें भुजा को ताड़ित किया । (४५)

त्रिशूलाह्वय भागें से तीन धापें निकलीं । एक धारा
 आकाश में जाकर ताराओं से अभिमण्डित हुई । दूसरी धारा
 पृथ्वी पर गिरी जिसे तपोधन अत्रि ने ग्रहण किया । उससे

शंकर के अश से दुर्वासा का प्रादुर्भाव हुआ । तृतीय धारा
 भयानक दिखाई पड़ने वाले कपाल पर गिरी जिसेसे एक शिशु
 उत्पन्न हुआ, वह (ताल) कवच बाँधे, श्यामवर्ण का, हाथों
 में धनुषबाण धारण किए एक युवक हो गया । वर्षों काल
 मैं जिस प्रकार मेघ गर्जन करते हैं उसी प्रकार वह (युवा
 पुरुष) यह वह रहा था “मैं तालफल के सदृश किसके
 स्कन्ध से शिर को काटूँ ।” (४५-४९)

श्री नारायण के वाहु से उत्पन्न पुरुष के समीप जाकर
 श्रीशंकर ने कहा—“हे नर । शत सूर्यसदृश प्रकाशमान कटु
 भाषी ब्रह्मा से उत्पन्न इस पुरुष को तुम मारो ।” (५०)

शंकर के ऐसा कहने पर उस धार पुरुष ने प्रसिद्ध
 आद्य अजगम (नामक) धनुष एवं अक्षय तूणीर ग्रहण कर
 युद्ध का निरचय किया । (५१)

तदनन्तर ब्रह्मात्मज एव वाहुजात शंकर पुरुष-दोनों
 महाबलवान् पुरुषों ने सहस्र दिव्य वर्षों तक प्रबल युद्ध
 किया । उत्पन्नान् श्रीशंकर ने ब्रह्मा के पास जानर
 कहा— (५२)

“हे पितामह । यह एक अद्भुत बात है कि दिव्य पं

नरेण दिव्याद्भुतकर्मणा बली ।
महाशुपत्कैरभित्य ताडित-
स्तदद्भुतं चेह दिशो दशैव ॥ ५३
ब्रह्मा तमीशं वचनं वभाषे
नेहास्य जन्मान्यजितस्य शंभो ।
पराजितश्चेष्यतेऽसौ त्वदीयो

नरो मदीयः पुरुषो महात्मा ॥ ५४
इत्येवमुक्तो वचनं त्रिनेत्रशु-
चिक्षेप सूर्ये पुरुषं विरिञ्चेः ।
नरं नरस्यैव तदा स विग्रहे
चिक्षेप धर्मप्रभवस्य देवः ॥ ५५

इति श्रीवामनपुराणे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

३

पुलस्त्य उवाच ।

तवः करतले रुद्रः कपाले दारुणे स्थिते ।
संतापमगमद् ब्रह्मंश्चिन्त्या व्याकुलेन्द्रियः ॥ १
तवः समागता रौद्रा नीलाञ्जनचयप्रभा ।
संरक्तमूर्द्धवा भीमा ब्रह्महत्या हरान्तिकम् ॥ २
तामागतां हरो दृष्ट्वा पप्रच्छ विकरालिनीम् ।
काऽसि स्वमागता रौद्रे केनाप्यर्थेन तद्वद ॥ ३
कपालिनमथोवाच ब्रह्महत्या सुदारुणा ।

अद्भुत कर्म वाले नर ने दशों दिशाओं में व्याप्त महान्
बाणों के प्रहार से ताडित कर आपके पुरुष को जीत
लिया ।” (५३)

ब्रह्मा ने उस शंभु से कहा कि—इस अजित वा जन्म
यहाँ दूसरों से हारने के लिये नहीं हुआ है । यदि किसी

श्री वामन पुराण में द्वितीय अध्याय समाप्त ॥२॥

३

ब्रह्मवध्याऽसि संप्राप्ता मां प्रतीच्छ त्रिलोचन ॥ ४
इत्येवमुक्त्वा वचनं ब्रह्महत्या विवेश ह ।
त्रिशूलपाणिनं रुद्रं संप्रतापितविग्रहम् ॥ ५
ब्रह्महत्याभिभूतश्च शर्वो बदरिकाश्रमम् ।
आगच्छन्न ददर्शाथ नरनारायणावृषी ॥ ६
अदृष्ट्वा धर्मतनयौ चिन्ताशोकसमन्वितः ।
जगाम यमुनां स्नातुं साऽपि शुष्कजलाऽभवत् ॥ ७
कालिन्दी शुष्कसलिलां निरीक्ष्य वृषकेतनः ।

को पराजित कहा जाना अभीष्ट है तो यह तेरा ही नर
है । मेरा पुरुष तो महाबली है । (५४)

ऐसा कहे जाने पर श्रीशंकर जी ने विरिञ्चि के पुरुष
को सूर्यमण्डल में फेंका तथा उन्हीं शंकर ने उस नर को
धर्म पुत्र नर के शरीर म फेंक दिया । (५५)

पुलस्त्य ने कहा—हे ब्रह्मन् ! तदनन्तर करतल में
दारुण कपाल के सन्धिस्थ रहने पर रुद्र चिन्ता के कारण
व्याकुलेन्द्रिय होने से सन्नत हुए । (१)

सुशुप्राप्त नीलाञ्जन समूह के समान वाग्जिवाली, रक्त
केशवाली, रौद्र एवं भयंकर ब्रह्महत्या महादेव के निम्न
आई । (२)

उस विग्रहाल सूर्ति को आयी देण कर श्री शंकर ने
पूछा—“हे रौद्रे, यह घतलाओ कि तुम कौन हो एवं
किस लिये आयी हो ? (३)

तब उस अत्यन्त दारुण ब्रह्महत्या ने कपाली से कहा—

“मैं ब्रह्महत्या यहाँ आयी हूँ । हे त्रिलोचन ! आप मुझे
खीकार करें ।” (४)

ऐसा कह कर ब्रह्महत्या सन्तप्त शरीरवाले त्रिशूलपाणि
रुद्र में प्रविष्ट हुई । (५)

ब्रह्महत्या से अभिभूत श्री शंकर बदरिकाश्रम में आए,
किन्तु वहाँ नर एव नारायण श्रुतियों को नहीं देखा । (६)

धर्मतनय ऋषिद्वय को न देखकर चिन्ता और शोक से
युक्त वे यमुना में स्नान करने गए, किन्तु उसका भी बल
सूख गया । (७)

कालिन्दी नदी को शुष्कसलिला हुई देख कर वृषकेतन

प्लक्ष्मणा स्नातुमगमदन्वद्वािन च सा गता ॥ ८
 ततोऽनु पुष्करारण्यं मागधारण्यमेव च ।
 सैन्धवारण्यमेवासी गता स्नातो यथेच्छया ॥ ९
 तथैव नैमिपारण्यं धर्मारण्य तथेधरः ।
 स्नातो नैव च सा रीत्रा ब्रह्महत्या व्यमुञ्चत ॥ १०

सरित्सु तीर्थेषु तथाथमेषु

पुण्येषु देवायतनेषु शर्व. ।

समायुतो योगयुतोऽपि पापा

घ्रात्राप मोक्षं जलदध्नोऽमी ॥ ११

ततो जगाम निर्विण्ण. शंकरः कुरुजाङ्गलम् ।

तत्र गत्वा ददर्शाय चक्रपाणिं रगध्वजम् ॥ १२

तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं शङ्खचक्रगदाधरम् ।

कृत्वाञ्जलिपुटो भृश्या हर.स्तोत्रमुदीरयत् ॥ १३

हर उवाच ।

नमस्ते देवतानाय नमस्ते गरुडध्वज ।

शङ्खचक्रगदापाणे वासुदेव नमोऽस्तु ते ॥ १४

नमन्ते निर्गुणानन्त अप्रतर्क्याय वेधसे ।

(शंकर) प्लक्ष्मणा (सरारती) नदी में स्नान करने गए। किंतु यह भी अन्वद्वािन हो गई। (८)

तदुपरान्त पुष्करारण्य, मागधारण्य और सैन्धवारण्य में जाकर उन्होंने इच्छानुसार स्नान किया। (९)

उसी प्रकार शंकर ने नैमिपारण्य तथा धर्मारण्य में भी स्नान किया किन्तु उस भयंकर ब्रह्महत्या ने उन्हें नहीं छोड़ा। (१०)

जलध्वज शंकर ने अनेक नदियों, तीर्थों, आश्रमों एवं पवित्र देवायतनों की यात्रा की तथापि योगी होने पर भी वे पाप से मुक्ति न प्राप्त कर सके। (११)

तदन्तर सिन्धु शंकर जी कुरुजांगल में गये। यहाँ जाकर उन्होंने गरुडध्वज चक्रपाणि (विष्णु) को देखा। (१२)

उन शंख-चक्र-गदाघाटी पुण्डरीकाक्ष (श्री नारायण) का दर्शन कर शंकर हाथ जोड़कर स्तुति करने लगे। (१३)

हर ने कहा—“हे देवताओं के नाथ ! आपको नमस्कार है, हे गरुडध्वज ! आपको प्रणाम है, हे शंखचक्रगदाघाटी वासुदेव ! आपको नमस्कार है।” (१४)

“हे निर्गुण, अनन्त, अप्रतर्क्य, विघाता ! आपको नमस्कार

ज्ञानाज्ञान निरालम्ब सर्वालम्ब नमोऽस्तु ते ॥ १५

रजोयुक्त नमस्तेऽस्तु ब्रह्ममूर्तें स्नातन ।

तया सर्वमिदं नाथ जगत्सृष्टं चराचरम् ॥ १६

सत्त्वाधिष्ठित लोकेश विष्णुमूर्तें अधोक्षज ।

प्रजापाल महागहो जनार्दन नमोऽस्तु ते ॥ १७

तमोमूर्तें अहं क्षेप त्वदंशश्रोधसंभवः ।

गुणाभियुक्त देवेश सर्वव्यापिन् नमोऽस्तु ते ॥ १८

भूरिय त्वं जगन्नाथ जलाम्परहुताशनः ।

वायुर्बुद्धिर्भनथापि शर्वरी त्व नमोऽस्तु ते ॥ १९

धर्मो यज्ञस्तपः मत्यमहिंसा श्रौचमार्जवम् ।

धमा दानं दया लक्ष्मीर्ब्रह्मचर्यं त्वमीश्वर ॥ २०

त्वं साङ्गाश्चतुरो वेदास्त्वं वेद्यो वेदपारगः ।

उपवेदा भगानीश सर्वोऽसि त्वं नमोऽस्तु ते ॥ २१

नमो नमस्तेऽच्युत चक्रपाणे

नमोऽस्तु ते माघव भीनमूर्ते ।

लोकं भवान् कारुणिको मतो मे

श्रायस्य मां केशव पापवन्धात् ॥ २२

हे । हे ज्ञानज्ञानान्तरूप, निरालम्ब एवं सर्वालम्ब ! आपको नमस्कार है।” (१५)

हे रजोयुक्त, हे स्नातन, हे ब्रह्ममूर्ति ! आपको नमस्कार है। हे नाथ, आप ने इस सम्पूर्ण परापर जगत् की सृष्टि की है। (१६)

हे मरवगुप्त क आश्रय, हे लोकेश ! हे विष्णुमूर्ति, हे अधोक्षज ! हे प्रजापालक, हे महायाहु ! हे जनार्दन ! आपको नमस्कार है। (१७)

हे तमोमूर्ति ! मैं आपको अज्ञभूत श्रेय से उत्पन्न हूँ। हे गुणाभियुक्त सर्वव्यापी देवेश ! आपको नमस्कार है। (१८)

हे जगन्नाथ ! आप हा पृथ्वी, जल, आकाश, अग्नि, वायु, बुद्धि, मन एवं रात्रि हैं, आप को नमस्कार है। (१९)

हे ईश्वर ! आप ही धर्म, यज्ञ, तपस्या, सत्य, अहिंसा, पवित्रता, सरलता, धमा, दान, दया, लक्ष्मी एवं ब्रह्मचर्य हैं। (२०)

हे ईश ! आप अज्ञों सहित चतुर्धैरवरूप, वेध एवं वेदपारगामी हैं। आप ही उपवेद तथा सभी बुद्ध आप ही हैं। आपको नमस्कार है। (२१)

ममाशुभं नाशय विग्रहस्थं
यद् ब्रह्महत्याऽभिभवं बभूव ।
दग्धोऽस्मि नष्टोऽस्म्यसमीक्ष्यकारी
पुनोहि तीर्थोऽसि नमो नमस्ते ॥२३॥
पुलस्त्य उवाच ।

इत्थं स्तुतश्चक्रधरः शंकरेण महात्मना ।
श्रोवाच भगवान् वाक्यं ब्रह्महत्याक्षयाय हि ॥ २४ ॥
हरिरुवाच ।

महेश्वर शृणुष्वेमां मम वाच कलस्वनाम् ।
ब्रह्महत्याक्षयकरिं शुभदां पुण्यवर्धनीम् ॥ २५ ॥
योऽसौ ग्राह्मण्डले पुण्ये मर्दशप्रभवोऽध्ययः ।
प्रयागे वसते नित्यं योगशापीति विश्रुतः ॥ २६ ॥
चरणाद् दक्षिणाचस्य विनिर्याता सरिद्धरा ।
विश्रुता चरणेत्येव सर्वपापहरा शुभा ॥ २७ ॥
सव्यादन्या द्वितीया च असिरित्येव विश्रुता ।
ते उभे तु सरिच्छ्लेष्टे लोकपूज्ये बभूवतुः ॥ २८ ॥

हे अच्युत ! हे चक्रपाणि ! आपन्ने बारंबार नमस्कार
है । हे मीनमूर्तिधारी माधव ! आपन्को नमस्कार है । मैं
आपन्को लोक में दयालु मानता हूँ । हे केशव ! मुझे आप
पाप-बन्धन से मुक्त करें । (२२)

मेरे शरीर में स्थित ब्रह्महत्या जन्य अशुभ को आप
नष्ट करें । बिना विचार किये कार्य करने वाला मैं
दग्ध पध नष्ट हो गया हूँ । आप तीर्थ हूँ । अतः आप मुझे
पवित्र करें । आपन्को बारंबार नमस्कार है । (२३)

पुलस्त्य ने कहा—महात्मा शंकर द्वारा इस प्रकार
स्तुति की जाने पर चक्रधर (भगवान् विष्णु) ने ब्रह्महत्या
के क्षय के हेतु कहा— (२४)

हरि ने कहा—“हे महेश्वर ! आप श्रुतिमयुर, ब्रह्महत्या
क्षयकारी, शुभप्रद एवं पुण्य को बढ़ाने वाली मेरी बात
सुनो । (२५)

पवित्र ग्राह्मण्डलान्तर्गत प्रयाग में मेरे अश से
लपन्न योगशापी नाम से प्रसिद्ध अत्रयय पुरुष नित्य निवास
करते है । (२६)

उन्के दक्षिण चरण से चरणा नाम से विद्युत श्रेष्ठ नदी
निकली है यह सर्वपापहारिणी तथा पवित्र है । (२७)

ताभ्यां मध्ये तु यो देशस्तत्क्षेत्रं योगशाधिनः ।
त्रैलोक्यप्रवरं तीर्थं सर्वपापप्रमोचनम् ।
न तादृशोऽस्ति गगने न भूम्यां न रसातले ॥ २९ ॥
तत्रास्ति नगरी पुण्या ख्याता वाराणसी शुभा ।
यस्यां हि भोगिनोऽपीश प्रयान्ति भवतो लयम् ॥ ३० ॥
विलासिनीनां रश्मनास्यनेन
श्रुतिस्वनेत्राक्षिणपुंगवानाम् ।
शुचिस्वरत्वं गुरयो निशम्य
हास्यादशासन्त मुहुर्मुहुस्ताम् ॥ ३१ ॥
व्रजस्तु योपित्तु चतुष्पथेषु
पदान्यलक्ताहणितानि दृष्ट्वा ।
ययौ शशी विस्मयमेव यस्या
किंस्वित् प्रयाता स्थलपत्निनीयम् ॥ ३२ ॥
तुङ्गानि यस्यां सुरमन्दिराणि
रुन्धन्ति चन्द्रं रजनीमुखेषु ।
दिवाऽपि सूर्यं पवनाप्लुताभि-

एव उनके वाम (पाद) से असि नाम से प्रसिद्ध एक
दूसरी नदी निकली है । ये दोनों श्रेष्ठ नदियाँ लोकपूज्य
हुई हैं । (२८)

उन दोनों के मध्य का प्रदेश योगशापी का क्षेत्र है यह
त्रैलोक्य में सर्वश्रेष्ठ तथा सभी पापों से मुक्त करनेवाला
तीर्थ है । उसके सदृश अन्य कोई तीर्थ आकाश, पृथ्वी एवं
रसातल में नहीं है । (२९)

हे ईश ! वहाँ पवित्र शुभप्रद विख्यात वाराणसी नगरी है
जिसमें भोगी लोग भी आप के स्थान को प्राप्त करते हैं । (३०)

श्रेष्ठ ब्राह्मणों की वेदध्वनि विलासिनियों की रश्मनास्यनि
से मिश्रित होकर कल्याणप्रद स्वर का रूप धारण करती है ।
उस ध्वनि को सुन कर गुरुजन बारंबार हास्यपूर्वक हनका
शासन करते हैं । (३१)

चतुष्पथों पर भ्रमण करने वाली स्त्रियों के अलक्ष से
अरजित पदों को देख कर चन्द्रमा को यह विस्मय हो गया
कि क्या स्थल कमालिनी इस मार्ग से गई है । (३२)

जिसमें रात्रि का आरंभ होने पर ऊँचे-ऊँचे देवमन्दिर
चन्द्रमा का अरोध करते हैं एवं दिन में पवनाप्लुतिलि दीर्घ
पताभ्रों से सूर्य को तिमिरहित किया करते हैं । (३३)

दीर्घाभिरेवं सुपताक्रिकाभिः ॥ ३३
 भृङ्गाश्च यस्यां शशिक्रान्तमिचौ
 प्रलोम्बमानाः प्रतिविम्बितेषु ।
 आलेख्योपिद्विमलानाब्जे-
 ष्वीपुर्भ्रमाच्चैव च पुष्पकान्तरम् ॥ ३४
 परिश्रमश्चापि पराजितेषु
 नरेषु संमोहनखेलनेन ।
 यस्यां जलक्रीडनसंगतासु
 न स्त्रीषु शंभो गृहदीर्घिकासु ॥ ३५
 न चैव कश्चित् परमन्दिराणि
 रुणद्धि शंभो सहसा ऋतेऽथान् ।
 न चावलानां तरसा पराक्रमं
 करोति यस्यां सुरतं हि मुक्त्वा ॥ ३६
 पाशप्रन्थिर्जन्द्वाणां दानच्छेदो मदच्युतौ ।
 यस्यां मानमदो पुंसां करिणां यौवनागमे ॥ ३७
 प्रियदोषाः सदा यस्यां कौशिका नेतरे जनाः ।
 तारागणेषुकुलीनत्वं गद्ये वृत्तच्युतिर्विभो ॥ ३८

जिस (वाराणसी) में चित्र में निर्मित रित्रियों के विमल मुल फमलों को चन्द्रकान्त मणि की भित्तियों पर प्रति-विम्बित देखकर भ्रमवश उनपर लुब्ध भ्रमर दूसरे पुष्पों की ओर नहीं जाते । (३४)

और हे शम्भो ! जिस (वाराणसी) में समोहन खेलों से पराजित पुरुषों में तथा गृह की बागलियों में जलक्रीड़ा के लिए परुत्र हुई रित्रियों में ही परिश्रम होता है, अन्यत्र नहीं । (३५)

जहाँ पाशों के अतिरिक्त अन्य कोई भी दूसरे के घरों को सहसा नहीं रोक्ता तथा सुरत काल के अतिरिक्त कोई रित्रियों के साथ आवेगयुक्त पराक्रम नहीं करता । (३६)

जहाँ हाथियों के बन्धन में ही पाशप्रन्थि, उनकी मद-च्युति में ही दानच्छेद एवं नर हाथियों के यौवनागम में ही मान और मद होते हैं (अन्यत्र नहीं) । (३७)

हे विभो ! जहाँ उलूकही सदादोषा (रात्रि) प्रिय होते हैं अन्य लोग दोषों के प्रेमी नहीं हैं । तारागणों में ही अहुलीनत्व (पृथ्वी में न क्षिपना) है लोगों में अहुलीनता नहीं, गद्य में ही वृत्तच्युति (छन्दोभङ्ग) है अन्यत्र वृत्त (चरित्र) च्युति नहीं है । (३८)

भृत्तिलुब्धा विलासिन्यो भुजंगपरिवारिताः ।
 चन्द्रभूपितदेहाश्च यस्यां त्वमिव शंकर ॥ ३९
 ईदृशायां सुरेशान वाराणस्यां महाश्रमे ।
 वसते भगवाँल्लोलः सर्वपापहरो रनिः ॥ ४०
 दशाश्वमेधं यत्प्रोक्तं मदंशो यत्र केशवः ।
 तत्र गत्वा सुरश्रेष्ठ पापमोक्षमवाप्तसि ॥ ४१
 इत्येवमुक्तो गरुडध्वजेन
 वृषध्वजस्तं शिरसा प्रणम्य ।
 जगाम वेगाद् गरुडो यथाऽस्तौ
 वाराणसीं पापविमोचनाय ॥ ४२
 गत्वा सुपुण्यां नगरीं सुतीर्थी
 दृष्ट्वा च लोलं सदशाश्वमेधम् ।
 स्नात्वा च तीर्थेषु विमुक्तपापः
 स केशवं द्रष्टुमुपाजगाम ॥ ४३
 केशवं शंकरो दृष्ट्वा प्रणिपत्येदमब्रवीत् ।
 त्वत्प्रसादाद् हृषीकेश ब्रह्महत्या क्षयं गता ॥ ४४

हे शंकर ! जहाँ की विलासिनियाँ आप के सदृश 'भृत्तिलुब्धा' 'भुजंगपरिवारिता' एवं 'चन्द्रभूपितदेहा' होती हैं । (यहाँ 'भृत्ति' पद 'भ्रम' और 'घन' के अर्थ में 'भुजङ्ग' पद 'सर्व' एवं 'जार' के अर्थ में तथा 'चन्द्र' पद 'चन्द्रा-भूषण' के अर्थ में प्रयुक्त है ।) (३९)

हे सुरेशान ! इस प्रकार की वाराणसी के महान् आश्रम में सर्वपापहारी भगवान् लोल रवि निरास करते हैं । (४०)

हे सुरश्रेष्ठ ! जहाँ दशाश्वमेध कहे जाने वाले स्थान पर, जहाँ मेरे अश्वरूप केशव स्थित हैं, जाकर आप पाप से छुटकारा प्राप्त करेंगे । (४१)

गरुडध्वज के ऐसा कहने पर वृषध्वज रुद्धे शिर से प्रणाम कर पापविमोचनार्थं गरुड के सदृश वेग से वाराणसी गए । (४२)

उस परमपवित्रतवा तीर्थेनूत नगरी में जाकर दशाश्वमेध के साथ भगवान् लोल न दर्शन किया तथा (यहाँ के) तीर्थों में स्नान कर तथा पापमुक्त हो कर (उसके बाद) वे केशव का दर्शन करने गये । (४३)

शंकर ने केशव को देख कर प्रणाम करने के उपरान्त

नेदं कपालं देवेश मद्गतं परिमुञ्चति ।
कारणं वेदि न च तदेतन्मे वक्तुमर्हसि ॥ ४५

पुलस्त्य उवाच ।

महादेववचः श्रुत्वा केशवो वाक्यमब्रवीत् ।
त्रिप्रते कारणं रुद्र तत्सर्गं कथयामि ते ॥ ४६
योऽसौ ममाग्रतो दिव्यो हृद् पद्मोत्पलैर्युतः ।
एष तीर्थप्रदः पुण्यो देवगन्धर्वपूजितः ॥ ४७
एतस्मिन्प्रवरे तीर्थे स्नानं शंभो समाचर ।
स्नातमात्रस्य चाद्यैव कपालं परिमोक्षयति ॥ ४८

इति श्रीवामनपुराणे तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

४

पुलस्त्य उवाच ।

एव कपाली संजातो देवर्षे भगवान्हरः ।
अनेन कारणेनासौ दक्षेण न निमन्त्रितः ॥ १
कपालिज्ञायति सर्वा विज्ञायाथ प्रजापतिः ।

यह कहा—हे हृषीकेश ! आपके प्रसाद से ब्रह्महात्या नष्ट हो गयी । (४५)

(किन्तु) हे देवेश, यह कपाल मेरे हाथ को नहीं छोड़ रहा है। इसका कारण मैं नहीं जानता। आप ही मुझे यह बतला सकते हैं । (४६)

पुलस्त्य ने कहा—महादेव का वचन सुन कर केशव ने यह वाक्य कहा—“हे रुद्र ! इसके समस्त कारणों को मैं तुम्हें बतलाता हूँ । (४६)

मेरे सामने जो बमलों से युक्त यह दिव्य हृद् है वह पवित्र तथा तीर्थश्रेष्ठ है एव देवताओं तथा गन्धर्वों से पूजित है । (४७)

श्री वामनपुराण म तृतीय अध्याय समाप्त ॥३॥

४

पुलस्त्य ने कहा—हे देवर्षे ! इस प्रकार भगवान् हर कपाली हुए थे । इसी कारण वे दक्ष के द्वारा निमन्त्रित नहीं हुए । (१)

प्रजापति दक्ष ने सती को कपाली की भार्या समझ कर बोध तथा अपनी कन्या होने पर भीयत में निमन्त्रित नहीं

ततः कपाली लोके च रयातो रुद्र भविष्यति ।
कपालमोचनेत्येवं तीर्थं चेदं भविष्यति ॥ ४९

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्तः सुरेशेन केशवेन महेश्वरः ।
कपालमोचने सत्सौ वेदोक्तविधिना ह्यने ॥ ५०

स्नातस्य तीर्थे त्रिपुरान्तकस्य

परिच्युतं हस्ततलात् कपालम् ।

नाम्ना बभूवाथ कपालमोचनं

तत्तीर्थवर्षे भगवत्प्रसादात् ॥ ५१

यज्ञे चार्हापि दुहिता दक्षेण न निमन्त्रिता ॥ २
एतस्मिन्नन्तरे देवीं द्रष्टुं गौतमनन्दिनी ।
जया जगाम शैलेन्द्रं मन्दरं चारुकन्दरम् ॥ ३
तामागतां सती दृष्ट्वा जयामेकामुवाच ह ।

हे शशु ! तुम इस परम श्रेष्ठ तीर्थ में स्नान करो । स्नान करने मात्र से आज ही यह कपाल (आप के हाथ को) छोड़ देगा । (४८)

इससे हे रुद्र ! सत्सर में तुम 'कपाली' नाम से प्रसिद्ध होगे तथा यह तीर्थ भी कपालमोचन नाम से प्रख्यात होगा । (४९)

पुलस्त्य ने कहा—हे मुने ! सुरेश्वर केशव के ऐसा कहने पर महेश्वर ने कपालमोचन तीर्थ में वेदोक्तविधि से स्नान किया । (५०)

तीर्थ में स्नान करते ही त्रिपुरान्तक के करतल से कपाल गिर गया । तदुपरान्त भगवान् की कृपा से उस तीर्थश्रेष्ठ का नाम कपालमोचन पड़ा । (५१)

किया । (२)
इसी बीच देवी का दर्शन करने के लिये गौतम नन्दिनी जया सुन्दर कन्दरा वाले पर्वत श्रेष्ठ मन्दर पर गई । (३)
उस जया को अनेकी आई देर कर सती ने कहा—

किमर्थं विजया नागाज्जमन्ती चापराजिता ॥ ४
सा देव्या वचनं श्रुत्वा उवाच परमेश्वरीम् ।
गता निमन्त्रिताः सर्वा मत्पे मातामहस्य ताः ॥ ५
समं पित्रा गौतमेन मात्रा चैवाप्यहल्यया ।
अहं समागता द्रष्टुं त्वां तत्र गमनोस्तुका ॥ ६
किं त्वं न व्रजसे तत्र तथा देवो महेश्वरः ।
नामन्त्रिताऽसि तवैतन् उवाहोऽस्मिन् व्रजिभ्यसि ॥ ७
गतास्तु ऋषयः सर्वे ऋषिपत्न्यः सुरास्तथा ।
मातृभ्यसः शशाङ्कस्य सपत्नीको गतः ऋतुम् ॥ ८
चतुर्दशसु लोकेषु जन्वो ये चराचराः ।
निमन्त्रिताः त्रयो सर्वे किं नासि त्वं निमन्त्रिता ॥ ९

पुलस्त्य उवाच ।

जयायास्तद्वच श्रुत्वा वज्रपातसम मती ।
मन्युनाऽभिप्लुता ब्रह्मन् पञ्चत्वमगमन् ततः ॥ १०
जया मृतां सर्तां दृष्ट्वा क्रोधशोकपरिप्लुता ।
सुधती धारि नेत्राभ्यां सस्वरं विललाप ह ॥ ११

“विजया, जयन्ती और अपराजिता क्यों नहीं आयी ?” (४)

देवी के वचन को सुन कर उन्होंने परमेश्वरी से कहा—
पिता गौतम और माता अहल्या के साथ वे सप्त मातामह
के यज्ञ में निमन्त्रित होकर गयी हैं। वहाँ जाने के लिये
जसुक में आप को देखने आयी हूँ। (५-६)

क्या आप तथा महेश्वर वहाँ नहीं जा रहे हैं ? क्या
पिता ने आपने निमन्त्रित नहीं किया है ? अथवा
आप वहाँ जायेंगी ? (७)

सभी ऋषि, ऋषिपत्नियों तथा देवगण वहाँ गये हैं ।
हे मातृभ्यसे (मीसी) ! सपत्नीक शशाङ्क भी उस यज्ञ में गये
हैं। (८)

चौदहों लोकों के समस्त चराचर जन्तु उस यज्ञ में
निमन्त्रित हुए हैं। क्या आप निमन्त्रित नहीं हैं ? (९)

पुलस्त्य ने कहा—हे ब्रह्मन् ! जया के वज्रपात-सदृश
यस वचन को सुन कर श्रोधाभिप्लुत सती पञ्चत्व को प्राप्त
हो गई। (१०)

सती धी मृत देखकर क्रोध और शोक से परिप्लुत
जया नेत्रों से आँसू बहाने हुए सत्तर बिलाम परने
लगी। (११)

आक्रन्दितध्वनिं श्रुत्वा शूलपाणिस्त्रिलोचनः ।
आः क्रिमेतद्वितीत्युक्त्वा जयाभ्याश्शुभागतः ॥ १२
आगतो ददृशे देवीं लतामिव वनस्पतेः ।
कृचां परशुना भूमौ श्लथाङ्गीं पतितां सतीम् ॥ १३
देवीं निपतितां दृष्ट्वा जयां प्रपञ्च शंकरः ।
किमियं पतिता भूमौ निकृचेव लता सती ॥ १४
सा शंकरवचः श्रुत्वा जया वचनमब्रवीत् ।
श्रुत्वा मत्प्रस्था दक्षस्य भगिन्यः पतिभिः सह ॥ १५
आदित्याद्यास्त्रिलोकेश समं शक्रादिभिः सुरैः ।
मातृभ्यसा रिपन्नेयमन्तर्दुःखेन दहती ॥ १६

पुलस्त्य उवाच ।

एतच्छ्रुत्वा वचो रौद्रं रुद्रः क्रोधाप्लुतो भूमौ ।
ऋद्वस्य सर्वगात्रेभ्यो निश्चेहः सहसार्ज्वरिपः ॥ १७
ततः क्रोधान् त्रिनेत्रस्य गात्ररोमोद्भवा मुने ।
गणाः सिंहहृषा जाता वीरभद्रपुरोगमाः ॥ १८
गणैः परिश्रुतभ्रमान्मन्दराद्विमसाह्वयम् ।

रोने की ध्वनि सुनकर शूलपाणि त्रिलोचन “अरे यह क्या
है” ऐसा रुद्र कर जया के पास गए। (१२)

वहाँ पहुँचकर उन्होंने परशु से काटी हुई वृक्ष की लता
के सदृश शिथिलाङ्गी सती को भूमि पर पड़ी हुई
देखा। (१३)

भूमि पर पड़ी हुई देवी को देख कर शंकर ने जया से
पूछा—“सती छिन्न लता की तरह भूमि पर क्यों पड़ी हुई
है।” (१४)

शंकर के वचन को सुन कर उस जया ने कहा “हे
त्रिलोकेश ! दक्ष के यज्ञ में अपने पतिपत्नी के साथ बहनों
का एवं इन्द्रादिवैशों के साथ आदित्यादि का उपस्थित होना
सुनकर आन्तरिक दुःख से दग्ध होती हुई यह (मेरी) मीसी
विपन्न हो गई। (१५-१६)

पुलस्त्य ने कहा—इस भयकर वचन को सुनकर रुद्र
अत्यन्त श्रोधान्वित हो गए। क्रुद्ध (शंकर) के शरीर से
सहसा ज्वालायें निकलने लगीं। (१७)

तदनन्तर हे मुने ! क्रोध के कारण त्रिनेत्र के शरीर के
रोमों से सिंह के सदृश मुखजाले गण छलत्र हुए जिनमें
वीरभद्र प्रमुख थे। तब अपने गर्मों से परिवेष्टित होकर वे

गतः कनकलं तस्माद् यत्र दक्षोऽयजत् ऋतुम् ॥ १९
 ततो गणानामधिपो वीरभद्रो महानलः ।
 दिशि प्रतीच्युत्तराया तस्यौ शूलधरो मुने ॥ २०
 जया क्रोधाद् गदां गृह्य पूर्वदक्षिणतः स्थिता ।
 मध्ये त्रिशूलधृक् शर्वस्तन्व्यौ क्रोधान्महामुने ॥ २१
 मृगारिषदन दृष्ट्वा देवाः शक्रपुरोगमाः ।
 ऋषयो यक्षगन्धर्वाः किमिदं त्वित्यचिन्तयन् ॥ २२
 ततस्तु धनुरादाय शरांश्चाशीविपोपमान् ।
 द्वारपालस्तदा धर्मो वीरभद्रमुपाद्रवद् ॥ २३
 तमापतन्तं सहसा धर्मं दृष्ट्वा गणेश्वरः ।
 फरेणैकेन जग्राह त्रिशूलं बह्विसन्निभम् ॥ २४
 कार्मुकं च द्वितीयेन तृतीयेनाथ मार्गणान् ।
 चतुर्थेन गदां गृह्य धर्ममभ्यद्रवद् गणः ॥ २५
 ततश्चतुर्भुजं दृष्ट्वा धर्मराजो गणेश्वरम् ।
 तन्प्राचष्टमुजो मृत्वा नानापुषधरोऽन्ययः ॥ २६
 सङ्घर्षगदाप्राप्तपरश्वधवराङ्कुशैः ।

चापमार्गणभृतरथौ हन्तुकामो गणेश्वरम् ॥ २७
 गणेश्वरोऽपि संक्रुद्धो हन्तुं धर्मं सनातनम् ।
 वर्षं मार्गणास्तीक्ष्णान् यया प्रावृषि तोषदः ॥ २८
 तावन्वोन्यं महात्मानो शरचापधरो मुने ।
 रुधिरारुणसिक्ताङ्गौ किंशुकाविष रेजतुः ॥ २९
 ततो वरास्त्रैर्गणनायकेन

जितः स धर्मः तरसा प्रसह्य ।

पराङ्मुखोऽभूद्धिमना मुनीन्द्र

स वीरभद्रः प्रविवेश यज्ञम् ॥ ३०

यज्ञपाटं प्रविष्टं त वीरभद्रं गणेश्वरम् ।
 दृष्ट्वा तु सहसा देवा उत्तस्थुः सायुधा मुने ॥ ३१
 वसवोऽष्टौ महाभगा ग्रहा नव सुदारुणाः ।
 इन्द्राद्या द्वादशदित्या रुद्रास्त्वेकादशैव हि ॥ ३२
 विश्वेदेवाश्च साध्याश्च सिद्धगन्धर्वपन्नगाः ।
 यक्षाः किंपुरुपाथैव स्वगाथक्रधरास्तथा ॥ ३३
 राजा वैचस्तादंशाद् धर्मकीर्तिस्तु विश्रुतः ।

भद्र पर्वत से हिमालय पर गये और वहाँ से कनकल गए
 जहाँ दक्ष यज्ञ कर रहे थे । (१८-१९)

हे मुने ! तदनन्तर गणाधिप महानली वीरभद्र शूल
 धारण किये पश्चिमोत्तर दिशा में स्थित हुए । (२०)

हे महामुने ! शीघ्र से गदा लेकर जया पूर्वदक्षिण
 दिशा में खड़ी हो गई और मध्य में क्रोधित त्रिशूलाधारी
 शंकर स्थित हुए । (२१)

सिंहवदन (वीरभद्र) को देखकर इन्द्रादि देवता, ऋषि,
 यक्ष एवं गन्धर्व लोग सोचने लगे कि यह क्या है ? (२२)

तदनन्तर द्वारपाल धर्म धनुष एवं सर्प के समान
 बाणों को लेकर वीरभद्र की ओर दौड़े । (२३)

सहसा धर्म को आता हुआ देवस्वर गणेश्वर एक
 हाथ में अग्नि के सदृश त्रिशूल, दूसरे हाथ में धनुष,
 तीसरे हाथ में बाण और चतुर्थ हाथ में गदा लेकर उनकी
 ओर दौड़े । (२४-२५)

तदुपरान्त अश्वघर्षराज ने चतुर्भुज गणेश्वर को
 देकर नाना प्रकार के आयुधों से युक्त अश्वभुज
 होकर उनका सामना किया और गणेश्वर को मारने की
 इच्छा से (अपने हाथों में) यज्ञ, धर्म (दाल), गदा, प्रास

(भाल), परश्वध (फरसा), उत्तम अड्डा, धनुष एवं बाण
 धारण कर खड़े हो गये । (२६-२७)

गणेश्वर वीरभद्र भी अत्यन्त क्रुद्ध होकर सनातन
 धर्म को मारने के लिये वर्षाकालिक मेघ के सदृश उनके
 ऊपर तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करने लगे । (२८)

हे मुने ! शरचापधारी वे दोनों रुधिर से लाल तथा
 सिकल शरीर वाले महात्मा किंशुकपुष्प के सदृश सुशोभित
 होने लगे । (२९)

हे मुनीन्द्र ! तदनन्तर गणनायक द्वारा श्रेष्ठ शस्त्रारतों
 से बलपूर्वक विजित धर्मराज उदास होकर पीछे हट गये
 एवं वीरभद्र यज्ञ में प्रविष्ट हुए । (३०)

हे मुने ! गणेश्वर वीरभद्र को यज्ञमण्डप में प्रविष्ट
 हुआ देवस्वर देवतागण आत्र शस्त्र लेकर सहसा बठ
 रखे हुए । (३१)

महाभाग आठों यज्ञ, अति दाह्य नयगह, इन्द्रादि,
 द्वादश आदित्य, एकादश रुद्र, विश्वेदेव, साध्यागण, सिद्ध,
 गन्धर्व, पन्नग, यक्ष, किंपुरप (रिन्नर), भूत, विहंगम,
 पन्नधर, वैचरत्न-यज्ञीय प्रसिद्ध राजा धर्मकीर्ति, चन्द्रवंशीय
 राजा उमपलशाली भोजकीर्ति, दैत्य, दानव तथा

सोमवंशोद्भवश्चोम्रो भोजकीर्तिर्महाशुभः ॥ ३४
 दितिना दानवाश्रान्ये येऽन्ये तत्र समागताः ।
 ते सर्वेऽन्धद्रवन् रौद्रं वीरभद्रमुदायुषाः ॥ ३५
 तानापतत एवाशु चापभागधरो गणः ।
 अभिदुद्राव वेगेन सर्वानेव शरोत्करीः ॥ ३६
 ते शस्त्रवर्षमतुलं गणेशाय समुत्सृजन् ।
 गणेशोऽपि वरास्त्रैस्तान् प्रचिच्छेद निमेद च ॥ ३७
 शरैः शस्त्रैश्च सततं बध्ममाना महात्मना ।
 वीरभद्रेण देवाद्या अवहारमर्तुत ॥ ३८
 ततो विवेश मगपो यज्ञमध्यं सुविस्तृतम् ।
 जुह्वाना ऋषयो यत्र हवींषि प्रवितन्वते ॥ ३९
 ततो महर्षये दृष्ट्वा भूरेन्द्रवदनं गणम् ।
 भीता होत्रं परित्यज्य जग्मुः शरणमच्युतम् ॥ ४०
 तानावाधिकभृद् दृष्ट्वा महर्षींस्त्रस्तमानसान् ।
 न भेतन्व्यमितीत्युक्त्वा समुच्चस्थौ वरायुषः ॥ ४१
 समानम्य ततः शार्ङ्गं शरानग्निशिखोपमान् ।

धूमोच वीरभद्राय कायावरणदारणान् ॥ ४२
 ते तस्य कायमासाद्य अमोघा वै हरेः शराः ।
 त्रिपेतुर्भुवि भग्नाद्या नास्तिकादिव याचकाः ॥ ४३
 शरांस्त्वमोघान्मोघत्वमपान्मानीक्ष्य केशवः ।
 द्विव्यैरस्त्रैर्वीरभद्रं प्रच्छादयितुमुद्यतः ॥ ४४
 तानस्त्रान्वासुदेवेन प्रशिप्लान्गणनायकः ।
 वारयामास शूलेन गदया मार्गणैस्तथा ॥ ४५
 दृष्ट्वा विप्लान्यस्त्राणि गदां चिक्षेप माधवः ।
 त्रिशूलेन समाहत्य पातयामास भूतके ॥ ४६
 मुशलं वीरभद्राय प्रचिक्षेप हलायुधः ।
 लाङ्गलं च गणेशोऽपि गदया प्रत्यवारयत् ॥ ४७
 मुशलं समदं दृष्ट्वा लाङ्गलं च निवारितम् ।
 वीरभद्राय चिक्षेप चक्रं क्रोधात् रागध्वजः ॥ ४८
 तमापतन्तं शतसूर्यकल्पं
 सुदर्शनं वीक्ष्य गणेश्वरस्तु ।
 शूलं परित्यज्य जगार चक्रं

वहाँ आये हुए अन्य सभी आयुध लेकर रौद्र वीरभद्र की ओर दौड़े । (३२-३५)

धनुष बाणधारी गण ने उन सभी के आते ही उन पर वेगपूर्वक बाण प्रहार से प्रत्याक्रमण किया । (३६)

उन सभी ने वीरभद्र के ऊपर अनुत्तरीय बाणों की वर्षा की । गणपति ने भी उत्तम अस्त्रों से उन्हें क्षिप्त भिन्न कर डाला । (३७)

महात्मा वीरभद्र द्वारा विविध बाणों और अस्त्रों से आहत होकर देवतादि युद्ध से निवृत्त हो गये । (३८)

तब गणपति वीरभद्र सुविस्तृत यज्ञ के मध्य में प्रविष्ट हुए जहाँ यज्ञरत ऋषि लोग अग्नि में हवि की आहुति दे रहे थे । (३९)

तदुपरान्त महर्षि लोग सिंहमुख गण को देखकर भय से हवन छोड़कर अच्युत की शरण में गये । (४०)

चक्रधारी अच्युत त्रस्तमानस इन महर्षियों को आर्त देसकर 'डरो मत' ऐसा कह कर श्रेष्ठ आयुध लेकर रड़े हुए । (४१)

तदनन्तर वे शार्ङ्ग धनुष को धुका कर वीरभद्र के ऊपर शरीरावरण को विदारित करने वाले अग्निशिखा के

तुल्य बाणों का वर्षण करने लगे । (४२)

श्री हरि के वे अमोघ बाण उसके (वीरभद्र के) शरीर पर पहुँच कर पृथ्वी पर इस प्रकार गिर पड़े जैसे याचक त्रास्तिक के पास से निराश होकर लौटता है । (४३)

अमोघ बाणों को व्यर्थ होते देख कर केशव वीरभद्र को दिव्य अस्त्रों से आच्छादित करने के लिये ध्यान हुए । (४४)

वासुदेव के द्वारा प्रक्षिप्त उन बाणों को गणनायक ने शूल, गदा और बाणों से निवारित कर दिया । (४५)

माधव ने अपने अर्धों को विनष्ट हुआ देखकर गदा लेंकी । किंतु (वीरभद्र ने) त्रिशूल से आघात कर उसे भूतल पर गिरा दिया । (४६)

हलायुध ने वीरभद्र की ओर मुशल और लाङ्गल फेंका जिसे गणाधिप ने गदा से निवारित कर दिया । (४७)

गदा के सहित मुशल और हल को निवारित हुआ देख कर गरुडध्वज ने क्रोध से वीरभद्र के ऊपर चक्र फेंका । (४८)

किंतु गणेश्वर ने सैकड़ों सूर्य के सदृश सुदर्शन को आते देख शूल छोड़ कर चक्र को इस प्रकार निगल

यथा मधुं मीनवपु, सुरेन्द्रः ॥ ४९
 चक्रे निगीर्णे गणनायकेन
 क्रोधातिरक्तोऽसितचारुनेत्रः ।
 मुरारिरभ्येत्य गणाधिपेन्द्र-
 मुत्क्षिप्य वेगाद् भुवि निष्पिपेप ॥ ५०
 हरिवाहूरुवेगेन विनिष्पिष्टस्य भूतले ।
 सहितं रुधिरोद्गारैर्मुखाच्चक्रं विनिगतम् ॥ ५१
 ततो निःसृतमालोभय चक्रं कैटभनाशनः ।
 समादाय हृषीकेशो वीरभद्रं मुमोच ह ॥ ५२
 हृषीकेशेन मुक्तस्तु वीरभद्रो जटाधरम् ।
 गत्वा निवेदयामास वासुदेवात्पराजयम् ॥ ५३

ततो जटाधरो दृष्ट्वा गणेशं शोणिताप्लुतम् ।
 निश्चसन्तं यथा नागं क्रोधं चक्रे तदान्वयः ॥ ५४
 ततः क्रोधाभिभूतेन वीरभद्रोऽथ शंभुना ।
 पूर्वोद्दिष्टे तदा स्थाने सायुधस्तु निवेशितः ॥ ५५
 वीरभद्रमथादिश्य भद्रकालीं च शंकरः ।
 विवेश क्रोधताम्राक्षो यज्ञघाटं त्रिशूलभृत् ॥ ५६
 ततस्तु देवप्रवरे जटाधरे
 त्रिशूलपाणौ त्रिपुरान्तकारिणि ।
 दक्षस्य यज्ञं विशति क्षयंकरे
 जातो ऋषीणां प्रवरो हि साध्वसः ॥ ५७

इति श्रीवामनपुराणे चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

लिया जैसे मीनशरीरधारी सुरेन्द्र मधु को निगल गए थे । (४९)

गणनायक द्वारा चक्र निगले जाने पर मुरारि के सुन्दर कान्ते नेत्र क्रोध से अत्यन्त खल हो गये । वे गणाधिप के निःसृत गए और उन्हें वेग से उठा लिया तथा पृथ्वी पर पटक कर पीसने लगे । (५०)

हरि की भुजाओं और जाघों के प्रबल वेग से मूलत मे पटके गए वीरभद्र के मुख से रुधिरोद्गार के साथ चक्र निकल आया । (५१)

तदनन्तर कैटभनाशन हृषीकेश ने चक्र को निकला देर कर उसे ले लिया और वीरभद्र को छोड़ दिया । (५२)

हृषीकेश द्वारा मुक्त वीरभद्र जटाधर शंकर के निःसृत

जाकर वासुदेव से हुई अपनी पराजय निवेदित किये । (५३)

तदनन्तर गणेश्वर को शोणिताप्लुत तथा नाग के सदृश निश्वास लेते देख अव्यय जटाधर ने क्रोध किया । (५४)

तदुपरान्त क्रोधाभिभूत शंकर ने सायुध वीरभद्र को पूर्वोद्दिष्ट स्थान पर निवेशित कर दिया । (५५)

वीरभद्र तथा भद्रकाली को आदेश देकर क्रोध से रक्तनेत्र वाले त्रिशूलधर शंकर यज्ञमण्डप में प्रविष्ट हुए । (५६)

तदनन्तर त्रिपुरान्तकारी, त्रिशूलपाणि, क्षयकारी, देव-श्रेष्ठ जटाधर के दक्ष यज्ञ में प्रवेश करने पर ऋषियों में महान् भय उत्पन्न हुआ । (५७)

श्री वामनपुराण म चतुर्थ अध्याय समाप्त ॥४॥

पुलस्त्य उवाच ।

नटाधरं हरिर्दृष्ट्वा क्रोधादारक्तलोचनम् ।
 तस्मात् स्थानादपाक्रम्य कुञ्जाम्रेऽन्तर्हितः स्थितः ॥ १
 बसवोऽष्टौ हरं दृष्ट्वा सुसुबुधैर्गतो मृने ।
 सा तु जाता सरिच्छ्रेष्ठा सीता नाम सरस्वती ॥ २
 एकादश तथा स्त्रास्त्रिनेत्रा वृषकेतनाः ।
 कान्दिशीका लयं जग्मुः समम्बेत्यैव शंकरम् ॥ ३
 विश्वेऽश्विनौ च साध्याश्च मरुतोऽनलभास्कराः ।
 समासाद्य पुरोडाशं भक्षयन्तो महाहृने ॥ ४
 चन्द्रः सममृगणैर्निशां सपुपदर्शयन् ।
 उत्पत्यारुह्य गगनं स्वमधिष्ठानमास्थितः ॥ ५
 कश्यपावाथ श्वपयो जपन्तः शतहृदियम् ।
 पुष्पाञ्जलिपुटा भूत्वा प्रणताः संस्थिता मृने ॥ ६
 असकृद् दक्षदयिता दृष्ट्वा स्त्रं बलाधिकम् ।

क्रोध से आरक्त नेत्रवाले जटाधर को देखकर हरि उस स्थान से हट कर कुञ्जाम्र में छिप कर बैठ गये । (१)
 हे मुने ! हर को देकर आठ वसु वेग से वह (पिघल) गये । इससे सीता नामकी श्रेष्ठ नदी उत्पन्न हुई । (२)
 तथा वृषकेतन त्रिनेत्रधारी एकादश रुद्र भय से भागते हुए शंकर के निकट जाकर उनमें छोन हो गये । (३)
 हे महामुने ! विरवेदेवगण, अश्विनीकुमार, साध्यशुन्द, धातु, अग्नि एवं सूर्य शंकर को निकट पाकर पुरोडाश खाते हुए भाग गये । (४)
 वाराणस के साथ चन्द्रमा रात्रि को प्रकट करते हुए आकाश में ऊपर जाकर अपने स्थान पर स्थित हो गये । (५)
 हे मुने ! कश्यप आदि ऋषि शतरुद्रिय (मन्त्र) वा जप करते हुए अञ्जलि में पुष्प लेकर त्रिनेत्र भाव से खड़े हो गये । (६)
 द्न्द्रादिक देवताओं में रद्र को सर्वाधिक बली देकर कर दक्ष की पत्नी अत्यन्त हीनतापूर्वक बार-बार बिलाप करने लगी । (७)

शक्रादीनां सुरेशानां कृपणं विललाप ह ॥ ७
 ततः क्रोधाभिभूतेन शंकरेण महात्मना ।
 तलप्रहारैरमरा बहवो विनिपातिताः ॥ ८
 पादप्रहारैरपरे त्रिशूलेनापरे मृने ।
 दृष्यन्निना तयैशान्ये देवाद्याः प्रलयीकृताः ॥ ९
 ततः पूषा हरं वीक्ष्य विनिघ्नन्तं सुरासुरान् ।
 क्रोधाद् बाहू प्रसारयथ प्रदुद्राव महेश्वरम् ॥ १०
 तमापतन्तं भगवान् संनिरीक्ष्य त्रिलोचनः ।
 बाहुभ्यां प्रतिजग्राह करैर्णकेन शंकरः ॥ ११
 कराभ्यां प्रगृहीतम्य शंशुनांशुमतोऽपि हि ।
 कराङ्गुलिभ्यो निशेरुरसृग्धाराः समन्ततः ॥ १२
 ततो वेगेन महता अंशुमन्तं दिवाकरम् ।
 भ्रामयामास सततं मिहो मृगशिशुं यया ॥ १३
 भ्रामितस्यातिवेगेन नारदांशुमतोऽपि हि ।

५

तदनन्तर क्रोधाभिभूतमहात्मा शंकर ने (हाथ के) तलवे के प्रहार से अनेक देवताओं को मार डाला । (८)
 हे मुने ! इसी प्रकार कुछ देवादिकों को पद प्रहार से कुछ को त्रिशूल से कुछ को नेत्राग्नि द्वारा नष्ट कर दिया । (९)
 तदनन्तर सुरों एवं असुरों का संहार करते हुए शंकर को देकर पूषा-सूर्य क्रोधपूर्वक दोनों मुजाएँ प्रसारित कर महेश्वर की ओर दौड़े । (१०)
 भगवान् त्रिलोचन शंकर ने उन्हें आते देख एक ही हाथ से उनसे दोनों मुजाओं को पकड़ लिया । (११)
 शंशु द्वारा सूर्य के प्रगृहीत दोनों हाथों की अङ्गुलियों से चतुर्विक् रश्मि की धारा प्रवाहित होने लगी । (१२)
 तदनन्तर वे अंशुमान् दिवाकर को अत्यन्त वेग से निरन्तर इस प्रकार घुमाने लगे जैसे सिंह मृगशायक को घुमाता है । (१३)
 हे नारद ! अत्यन्त वेग से घुमाये गए सूर्य की मुजाओं

शुद्धौ हस्वत्वमापन्नौ त्रुटितस्नायुवन्धनौ ॥ १४
 रुधिराप्लुतसर्वाङ्गमंशुमन्तं महेश्वरः ।
 संनिरीक्ष्योत्ससर्जनमन्यतोऽभिजगाम ह ॥ १५
 ततस्तु पूषा विहसत् दशनानि विदर्शयन् ।
 प्रोवाचैब्रह्मि क्वापालिन् पुनः पुनरथेश्वरम् ॥ १६
 ततः क्रोधाभिमृतेन पूष्णो वेगेन शंभुना ।
 मृष्टिनाहत्य दशनाः पात्रिता धरणीतले ॥ १७
 भग्नदन्तम्वथा पूषा शोणितामिच्छुताननः ।
 पपात शुवि निःसंज्ञो वज्राहत इवाचलः ॥ १८
 भगोऽभिधीश्य पूषाणं पतितं रुधिरोक्षितम् ।
 नेत्राम्यां घोररूपाभ्यां वृषध्वजमवैक्षत ॥ १९
 त्रिपुरघ्नस्ततः क्रुद्धस्तेनाहत्य चक्षुषी ।
 निपातयामास शुवि धोभयन्सर्वदेवताः ॥ २०
 ततो दिवाकराः सर्वे पुस्कृत्य शतक्रतुम् ।
 मरुद्भिश्च हुताशैथ भयाज्जग्मूर्दिशो दश ॥ २१
 प्रतिघातेषु देवेषु प्रह्लादाद्या दितीश्वराः ।
 नमस्कृत्य ततः सर्वे तस्युः प्राज्ञलयो मुने ॥ २२

के स्नायुवन्ध टूट गए एवं वे छोटी हो गई । (१४)
 दिवाकर को सर्वाङ्ग भेरुधिराप्लुत हुआ देव उन्हें छोड़
 कर महेश्वर अन्यत्र चले गए । (१५)
 तदनन्तर हँसते ध्वं दौं दिखलाते हुए पूषा बारंबार
 कहने लगे, "हे क्वाली ! आओ आओ ।" (१६)
 तदुपरान्त क्रोधाभिमूत शम्भु ने वेगपूर्वक मुक्के से
 मारकर पूषा के दाँतों को धरती पर गिरा दिया । (१७)
 इस प्रकार भग्नदन्त एवं रुधिराप्लुतमुख पूषा वज्र से
 मारे गये पर्वत के सदृश नि सन्न होकर पृथ्वी पर
 गिर पड़े । (१८)
 गिरे हुए रुधिराप्लुत पूषा को देव पर भग्न भयङ्कर
 नेत्रों से वृषध्वज को देखने लगे । (१९)
 वदनन्तर क्रुद्ध त्रिपुरहन्ता ने सभी देवताओं को छुप्य
 करते हुए चरतल के प्रहार से (भग्न) के दोनों नेत्रों को
 पृथ्वी पर गिरा दिया । (२०)
 हृष्यन्त आदित्यगण, इन्द्र को आगे कर, मरुद्गणों तथा
 अग्निगणों के साथ भय से दशों दिशाओं में भाग भये । (२१)
 हे मुने ! देवताओं के चले जाने पर प्रह्लाद आदि देव

ततस्तं यज्ञवाटं तु शंकरो घोरचक्षुषा ।
 ददर्श दग्धुं कोपेन सर्वाश्वैव सुरासुरान् ॥ २३
 ततो निलिलियरे वीराः प्रणेष्टुर्दुदुवुस्तथा ।
 भयादन्धे हरं दष्ट्वा गता वैवस्वतक्षयम् ॥ २४
 त्रयोऽग्नयस्त्रिभिर्नेत्रैर्दुःसहं समवैक्षत ।
 दृष्टमात्रास्त्रिनेत्रेण भस्मीभूताभवन् क्षणात् ॥ २५
 अग्नो प्रणष्टे चक्षोऽपि भूत्वा दिव्यवपुर्मृगः ।
 बुद्राव विह्ववगतिर्दक्षिणासहितोऽम्बर ॥ २६
 तमेवानुससारेशवापमानम्य वेगवान् ।
 शरं पाशुपतं कृत्वा कालरूपी महेश्वरः ॥ २७
 अर्द्धेन यज्ञवाटान्ते जटाधर इति श्रुतः ।
 अर्द्धेन गगने शर्वः कालरूपी च कथ्यते ॥ २८
 नारद उवाच ।
 कालरूपी त्वयाख्यातः शंभुर्गगनगोचरः ।
 लक्षणं च स्वरूपं च सर्वं व्याख्यातुमर्हसि ॥ २९
 पुलस्त्य उवाच ।
 स्वरूपं त्रिपुरघ्नस्य वदित्व्ये कालरूपिणः ।

महेश्वर को प्रणाम कर अङ्गलिबाँध कर खड़े हो गए । (२३)
 तदनन्तर शंकर उस यज्ञमंडप को तथा सभी देवायुओं को
 दग्ध करने के लिये क्रोधपूर्ण घोर दृष्टि से देखने लगे । (२४)
 तदपश्चात् महादेव को देखकर बुद्ध वीर भय से छिप
 गए, कई प्रणाम करने लगे, बुद्ध भाग गये और कोई-कोई
 यमपुत्री पहुँच गये । (२५)
 तदनन्तर महेश्वर ने तीन नेत्रों से तीनों अग्निगणों को देखा,
 उनके देखते ही तीनों अग्निगणों क्षणभर में भस्मीभूत
 हो गयीं । (२६)
 अग्नि के नष्ट होने पर यज्ञ भी दिव्य शरीर वाला मृग
 होकर दक्षिणा के साथ आकाश में व्यवगति से भाग
 गया । (२७)
 कालरूपी वेगवान महेश्वर धनुष को झुका कर उसमें
 पाशुपत शर संयुक्त कर उसी के पीछे दौड़े । (२८)
 यज्ञशाळा में अर्द्धांश से स्थित शंकर जी 'जटाधर'
 नाम से प्रसिद्ध हुए एवं आकाश में अर्द्धांश से स्थित
 उनको 'कालरूपी' कहा जाता है । (२९)
 नारद ने कहा—“आपने आकाशपारी शंकर को

येनाम्बरं मुनिश्रेष्ठ व्याप्तं लोकरहितेषुना ॥ ३०
 यत्राश्विनी च भरणी कृत्तिकायास्तथांशकः ।
 मेपो राशिः कुजक्षेत्रं तच्छिरः कालरूपिणः ॥ ३१
 आश्रेयांशास्त्रयो ब्रह्मन् प्राजापत्य कवेर्गृहम् ।
 सौम्याद् वृषनामेदं वदनं परिकीर्तितम् ॥ ३२
 मृगार्द्धमाद्रादित्याशास्त्रयः सौम्यगृहं त्विदम् ।
 मिथुनं भुजयोन्त्यस्य गगनस्वस्य शूलिनः ॥ ३३
 आदित्यांशश्च पुष्यं च आश्रेया शशिनो गृहम् ।
 राशिः कर्कटको नाम पार्श्वे मखविनाशिनः ॥ ३४
 पित्र्यक्षं भगदैवत्यमुत्तरांशश्च केसरी ।
 सूर्यक्षेत्रं विभोर्वह्नन् हृदयं परिगीयते ॥ ३५
 उत्तरांशास्त्रयः पाणिशित्रार्धं कन्यका त्वियम् ।
 सोमपुत्रस्य सद्मैतद् द्वितीयं अटरं मिभोः ॥ ३६
 चित्रांशद्वितयं स्वातिर्विशाखायांशकृतयम् ।

द्वितीयं शुक्रसदनं तुला नाभिरुदाहृता ॥ ३७
 विशाखांशमनूराधा ज्येष्ठा भोग्यगृहं त्विदम् ।
 द्वितीयं शशिको राशिमिदं कालस्वरूपिणः ॥ ३८
 मूलं पूर्वोत्तरांशश्च देवाचार्यगृहं धनुः ।
 ऊरुयुगलमीशस्य अनरर्थे प्रगीयते ॥ ३९
 उत्तरांशास्त्रयो ऋक्षं श्रवणं मकरो मुने ।
 धनिष्ठांशं शनिक्षेत्रं जानुनी परमेष्ठिनः ॥ ४०
 धनिष्ठांशं शतभिषा प्रौष्ठपद्यांशकृतयम् ।
 सौरैः सद्मामपरमिदं कुम्भो जह्वं च विश्रते ॥ ४१
 प्रौष्ठपद्यांशमेकं तु उत्तरा रेवती तथा ।
 द्वितीयं जीवसदनं मीनस्तु चरणावुभौ ॥ ४२
 एवं कृत्वा कालरूपं त्रिनेत्रो
 यज्ञं क्रोधान्मार्गैर्गौराजवाप ।
 विद्वधासौ वेदनावुद्धिमुक्तः

वाकरूपी कहा है । आप उनके सम्पूर्ण स्वरूप और लक्षण की व्याख्या करें ।” (२९)

पुलस्त्य ने कहा—हे मुनिश्रेष्ठ, मैं त्रिपुरानाशक कालरूपी उन शंकर के स्वरूप का बतलाता हूँ जिन्होंने लोकहित की कामना से आकाश को व्याप्त किया । (३०)

पूरी अश्विनी तथा भरणी एवं कृत्तिका के एक पाद से युक्त, मंगल का क्षेत्र नेप राशि कालरूपी महादेव का गिर है । (३१)

हे ब्रह्मन् ! कृत्तिका के तीन अंश, पूरी रोहिणी एवं मृगशिरा के दो पूर्व पादों वाला, शुक्र का क्षेत्र वृष राशि वनस मुख है । (३२)

मृगशिरा के दोप दो पाद, पूरी आर्द्रा और पुनर्वसु के तीन पाद वाला बुध का क्षेत्र मिथुन राशि गगनस्व शूली की दो मुजायें हैं । (३३)

पुनर्वसु का एक पाद पूरा पुष्य और अश्लेषा नक्षत्रों वाला चन्द्रमा का क्षेत्र कर्कट राशि बह्विनाशक शंकर के दो पार्श्व हैं । (३४)

हे ब्रह्मन् ! पूरी मघा, पूरी पूर्वा फाल्गुनी और उत्तरा फाल्गुनी के एक पाद वाला, सूर्य का क्षेत्र सिंहराशि शंकर का हृदय कहा जाता है । (३५)

उत्तराफाल्गुनी के तीन पाद, पूरा हस्त एवं चित्रा के दो पूर्व पादों वाला, बुध का द्वितीय क्षेत्र कन्या राशि शंकर का

जठर है । (३६)

चित्रा के दोप दो पाद, पूरी स्वाति एवं विशाखा के तीन पादों वाला, शुक्र का दूतरा क्षेत्र तुला राशि महादेव की नाभि कहलाता है । (३७)

विशाखा के एक पाद, अनुराधा और ज्येष्ठा नक्षत्रों वाला, मंगल का द्वितीय क्षेत्र वृश्चिक राशि कालरूपी महादेव का लिंग है । (३८)

पूरा मूल, पूरा पूर्वाषाढा और उत्तराषाढा के एक पाद वाला बृहस्पति का क्षेत्र धनुराशि महेश्वर का ऊरुयुगल है । (३९)

हे मुने ! उत्तराषाढा के दोप तीन पाद, पूरा श्रवण और धनिष्ठा के दो पूर्व पाद वाला, शनि का क्षेत्र मकर राशि परमेष्ठी महेश्वर के दो जानु हैं । (४०)

धनिष्ठा के अपरार्धे पूरी शतभिषा, पूर्व भाद्रपद के तीन पादवाला शनिका द्वितीय गृह कुम्भ राशि उनको दो जघायें हैं । (४१)

पूर्वभाद्रपद का एक पाद, पूरा उत्तरभाद्रपद और रेवती नक्षत्रों वाला, बृहस्पति का द्वितीय गृह मीन राशि उनके दो चरण हैं । (४२)

इस प्रकार त्रिनेत्र ने वाकरूप धारण कर क्रोधपूर्वक यज्ञ को धागों से मारा । तदनन्तर बाणविद्ध वेदनावुद्धिचित

खे संतम्यौ तारकामिथिताङ्गः ॥ ४३

नारद उवाच ।

राशयो गदिता ब्रह्मंस्त्वया द्वादश वै मम ।

तेषां विशेषतो ब्रूहि लक्षणानि स्वरूपतः ॥ ४४

पुलस्त्य उवाच ।

स्वरूपं तव वक्ष्यामि राशीनां मृगु नारद ।

यादृशा यत्र संचारा रस्मिन् स्थाने वसन्ति च ॥ ४५

मेघः समानमूर्तिश्च अज्ञाविक्रधनादिषु ।

संचारस्थानमेवास्य धान्यरत्नाकरादिषु ॥ ४६

नवशाद्वलमंलन्नवसुधायां च सर्वशः ।

नित्यं चरति फुल्लेषु सरमां पुल्लिनेषु च ॥ ४७

वृषः सदृशरूपो हि चरते गोकुलादिषु ।

तस्याधिवासभूमितु कृषीवलधराश्रयः ॥ ४८

स्त्रीपुंसयोः समं रूपं शय्यासनपरिश्रमः ।

वीणाबाणवृद्धं मिथुनं गीतनर्तकशिल्पिषु ॥ ४९

यद्वा तारिकाओं से आहत शरीर होकर आकाश में स्थित हो गया । (४३)

नारद ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने मुझे द्वादश राशियों का कथन किया । अब विशेष रूप से उनके स्वरूप के अनुसार लक्षण का वर्णन करें । (४४)

पुलस्त्य ने कहा—हे नारद ! आपको मैं राशियों का स्वरूप बतलाता हूँ, सुनिधे । वे जैसे हैं तथा जहाँ संचार और निवास करते हैं वह सभी वर्णन करता हूँ । (४५)

मेघराशिमेघ के सदृश मृतिवाला है । बकरी, भेड़, घन धान्य एवं रत्नाकरादि इसके सञ्चार स्थान हैं । (४६)

तथा नवीन वर्षा से आच्छन्न समग्र पृथ्वी एवं पुलिपत वनरसतियों से युक्त सरोवर के पुल्लिनों में यह नित्य सञ्चारण करता है । (४७)

वृष के तुष्य रूपयुक्त वृषराशि गोकुलादि में विचरण करता है तथा कृषकों की भूमि इसका निवास स्थान है । (४८)

मिथुन राशि स्त्री और पुरुष के समान रूप से युक्त है । शय्या और आसन इसके आश्रय हैं । अपने हाथों में इसने वीणा एवं बाण धारण कर रक्खे हैं । गायकों, नर्तकों एवं शिल्पियों में यह सञ्चारण करता है । (४९)

इस द्वेषात्मक राशि को मिथुन कहते हैं । यह राशि

स्थितः क्रीडारतिर्नित्यं विहारावनिरस्य तु ।

मिथुनं नाम विरयातं राशिर्द्वेषात्मकः स्थितः ॥ ५०

कर्किः कुलीरेण समः सलिलस्थः प्रकीर्तितः ।

वेदारवापीपुल्लिने विप्रिक्तावनिरेव च ॥ ५१

सिंहस्तु पर्वतारण्यदुर्गकन्दरभूमिषु ।

वसते व्याधपल्लीषु गह्वरेषु गुहासु च ॥ ५२

ब्रीहिस्रदीपिककरा नावारुढा च कन्यका ।

चरते स्त्रीरतिस्थाने वसते नड्वलेषु च ॥ ५३

तुलापाणिश्च पुरषो वीध्यापणविचारकः ।

नगराध्यानशालासु वसते तत्र नारद ॥ ५४

श्वभ्रवत्समीकसंचारी वृश्चिको वृश्चिकाकृतिः ।

विषगोमयक्रीटादिपापाणादिषु संस्थितः ॥ ५५

धनुस्तुरङ्गजघनो दीप्यमानो धनुर्धरः ।

वाजिशरस्त्रपिटीरः स्थायी गजरथादिषु ॥ ५६

मृगास्यो मकरो ब्रह्मन् वृषस्कन्धेक्षणज्ञजः ।

क्रीडा प्रेमी एवं विहारभूमियों में निवास करने वाला है । (५०)

कर्कट राशि केकडे के सदृश रूपयुक्त एवं जल में रहने वाला कहा जाता है । जल से पूर्ण क्यारी एवं पुल्लिन (नदी-तीर) तथा एकान्त भूमि इसके सञ्चार के स्थान हैं । (५१)

सिंह राशि पर्वत, अरण्य, दुर्गमस्थान, कन्दरा, व्याधों (अखेटकों) के स्थान, गह्वर एवं गुफाओं में निवास करता है । (५२)

कन्या राशि ब्रीहि एवं दीपक हाथ में लिये हुए है तथा नौगात्र है, वह जियों के रतिस्थान और सरपतों में विचरण करता है । (५३)

हे नारद ! तुला राशि हाथ में तुला लिये हुए पुरुष के रूप में गलियों और बाजारों में विचरण करता है तथा नगरों, मार्गों एवं भवनों में निवास करता है । (५४)

वृश्चिक के आकार की वृश्चिक राशि, गड्डे एवं वल्मीक (दीमकों की बाँधी) में विचरण करता है । विष, गोबर, कीट एवं पापाण आदि इसके निवास स्थान हैं । (५५)

धनुष राशि की जपा अथ के सदृश है । वह प्रकाशमान तथा धनुषधारी है । यह धुङ्कसवारी, शूरकर्म एवं अस्त्र का हाता तथा वीर है । गज एवं रथ आदि में उसका स्थान है । (५६)

हे ब्रह्मन् ! मकर राशि का मुख स्रग के सदृश, एवं

मरुतोऽमौ नदीचारी वसते च महोदधी ॥ ५७
रिक्तकुम्भश्च पुरुष, स्कन्धधारी जलाश्रुतः ।
ध्रुवशालावरः कुम्भः स्यायी शौण्डिकमद्मसु ॥ ५८
मीनद्वयमयासक्तं मीनस्तीर्थोन्धिधमंकरः ।
वसते पुण्यदेशेषु देवब्राह्मणसद्मसु ॥ ५९
लक्षणा गदितास्तुभ्यं मेपादीनां महामुने ।

इति श्रीवामनपुराणे षष्ठमोऽध्यायः ॥१५॥

न कस्यचित् त्वयात्वेयं शुद्धमेतत्पुरातनम् ॥ ६०
एतन् मया ते कथितं सुरपे
यथा त्रिनेत्रः प्रममाथ यज्ञम् ।
पुण्य पुराणं परमं पवित्र-
मारयातजान्पापहरं शिवं च ॥ ६१

६

पुलस्त्य उवाच ।
हृद्भ्रमो ब्रह्मणो योऽसौ धर्मो दिव्यगुर्मुने ।
दाक्षायणी तस्य भार्या तस्यामजनवत्सुतान् ॥ १
हरिं कृष्णं च देवर्षे नारायणनरो तथा ।
योगाभ्यासरतौ नित्यं हरिकृष्णौ बभूवतुः ॥ २
नरनारायणौ चैव जगतो हितकाम्यया ।
तप्येता च तपः सौम्यौ पुराणाष्टपिसततौ ॥ ३
प्रालेयाद्रि समागम्य तीर्थे बदरिकाश्रमे ।

स्कन्धधृप के तुल्य तथा नेत्र गज तुल्य हैं । यह राशि नदी में
विचरण करती तथा समुद्र में रहती है । (५७)

कुम्भ राशि रिक्त कुम्भ को स्वध पर धारण करने वाले
जलाश्रुत पुरुष के आकार से युक्त है । इसका सचार
स्थानध्रुवशलाका एव निवास स्थान महेशला है । (५८)

मीनराशि दो परस्पर संयुक्त मछलियों के आकार से
युक्त है । तीर्थस्थान एव समुद्र इसके सचार-स्थान है । यह
पवित्र देशों एव देव मन्दिरो तथा ब्राह्मणों के घरों में

श्रीवामनपुराण में षष्ठम अध्याय समाप्त ॥१५॥

गुणन्तौ तत्परं ब्रह्म गङ्गाया विपुले तटे ॥ ४
नरनारायणाम्बा च जगदेतद्वराचरम् ।
तापितं तपसा ब्रह्मन् शक्र, क्षोभं तदा ययौ ॥ ५
संक्षुब्धस्तपसा ताम्बां क्षोभणाय शतनतुः ।
रम्भाधाप्सरस, श्रेष्ठाः प्रेषयत्स महाध्रमम् ॥ ६
कन्दर्पश्च सुदुर्धर्षश्चूताङ्कुरमहायुधः ।
समं सहचरेणैव वसन्तेनाश्रमं गतः ॥ ७
ततो माधवकन्दपा ताश्चैवाप्सरसो वरः ।

निवास करता है । (५९)

हे महामुने ! मैंने आपको मेयादि राशियों का लक्षण
बतलाया । आप इस पुरातन रहस्य को किसी से न
कहिये ! (६०)

हे देवर्षे ! त्रिलोचन ने जिस प्रकार यज्ञ को प्रमथित
किया उसका वर्णन मैंने आपसे कर दिया । इस प्रकार मैंने
आपको श्रेयस्कर, पुरातन, परम पवित्र, पापहारी एव कल्याण
प्रद आढ्यान सुनाया । (६१)

६

पुलस्त्य ने कहा—हे मुने, ब्रह्म के हृदय से उत्पन्न
दिव्यदेहधारी जो धर्म था उसने दाक्षायणी नाम की अपनी
भार्या से हरि, कृष्ण, नर और नारायण नामक पुत्रोंको उत्पन्न
किया । हे देवर्षे ! हरि और कृष्ण दोनों नित्य योगाभ्यास में
निरत हो गए । तथा पुरातन और ऋषियों में श्रेष्ठ शान्तमना
नर और नारायण संसार के कल्याण की कामना से हिमालय
पर्वत पर जाकर बदरिकाश्रम तीर्थ में गंगा के प्रशस्त तट पर
उस पर ब्रह्म का जप करते हुए तपस्या करने लगे । (१-४)

हे ब्रह्मन्, नर-नारायण की तपस्या से यह चपचर
जगत् तप्त हो गया । तब इन्द्र व्याकुल हो गए । (५)

उन दोनों की तपस्या से अत्यन्त क्षुब्ध इन्द्र ने उन्हें
क्षुब्ध करने के लिये रम्भा आदि श्रेष्ठ अप्सराओं को महान्
आश्रम में भेजा । (६)

आश्रम के अङ्कुर रूप महान् आयुधवाला अत्यन्त दुर्धर्ष
कन्दर्प भीअपन सहचर वसन्त के साथ आश्रम मेंगया । (७)
तदनन्तर वसन्त, कन्दर्प तथा वे श्रेष्ठ अप्सराएँ बदरिका

वदर्थश्रममागम्य विचिक्रीहुर्यथेच्छया ॥ ८
 ततो वसन्ते संप्राप्ते किंशुका ज्वलनप्रभाः ।
 निष्पन्नाः सततं रेजुः शोभयन्तो धरातलम् ॥ ९
 शिशिरं नाम मातङ्गं विदार्यं नखरैरिव ।
 वसन्तकेशरी प्राप्तः पलाशकुसुमैर्मृगे ॥ १०
 मया तुपारौघकरी निजितः स्वेन तेजसा ।
 तमेव हसतेत्युच्चैः वसन्तः कुन्दकुडूमलैः ॥ ११
 वनानि कर्णिकाराणां पुष्पितानि विरेजिरे ।
 यथा नेन्द्रेषुत्राणि कनकाभरणानि हि ॥ १२
 तेषामनु तथा नीपाः किङ्करा इव रेजिरे ।
 स्वामिसंलक्ष्यसंमाना भृत्या राजसुतानिव ॥ १३
 रक्ताशोकवना भान्ति पुष्पिताः सहसोज्ज्वलाः ।
 भृत्या वसन्तनृपतेः संग्रामेऽसृक्प्लुता इव ॥ १४
 मृगशृन्दाः पिञ्जरिता राजन्ते गहने रणे ।
 पुलकाभिर्घृता यद्वत् सज्जनाः सुहृदागमे ॥ १५
 मञ्जरीभिर्विराजन्ते नदीकूलेषु वेतसाः ।

वक्तुकामा इवाङ्गल्या कोऽस्माकं सदशो नगः ॥ १६
 रक्ताशोककरा तन्वी देवपे किंशुकाऽङ्घ्रिका ।
 नीलाशोककरा श्यामा विकसितकमलानना ॥ १७
 नीलेन्दीवरनेत्रा च ब्रह्मन् विल्वफलस्तनी ।
 प्रफुल्लकुन्ददशना मञ्जरीकरशोभिता ॥ १८
 बन्धुजीसाधना शुभा सिन्दुवारनखाद्भृता ।
 पुंस्कोकिलस्वना दिव्या अङ्गोलवसना शुभा ॥ १९
 बर्हिद्वन्द्वकलापा च सारसवरनूपुरा ।
 प्राग्धंशरसना ब्रह्मन् मत्तहंसगतिस्त्वया ॥ २०
 पुत्रजीवांशुका भृङ्गरोमराजिविराजिता ।
 वसन्तलक्ष्मीः संप्राप्ता ब्रह्मन् वदरिकाश्रमे ॥ २१
 ततो नारायणो दृष्ट्वा आश्रमस्थानवद्यताम् ।
 तमीक्ष्य च दिशः सर्वास्ततोऽनङ्गमपश्यत् ॥ २२

नारद उवाच ।

कोऽसावनङ्गो ब्रह्मपे तस्मिन् वदरिकाश्रमे ।
 यं ददर्श जगन्नाथो देवो नारायणोऽव्ययः ॥ २३

श्रम मे आनर इच्छानुसार प्रोढा वरने लयी । (८)

तदुपान्त वसन्त ऋतु के आने पर अग्नि के सदृश
 कालिवाले पत्रहीन पलाशवृक्ष वसुधा की शोभा बढ़ाते हुए
 निरन्तर सुशोभित हुए । (९)

हे मुने ! वसन्तरूप केशरी पलाश इंसुम रूप नलों से
 शिशिर रूप माला को मारनों विदीर्ण कर वहाँ प्रकट हुआ । (१०)

मैंने अपने तेज से तुपार समूह रूपी हस्ती को जीत
 लिया है इस भाव से वसन्त, कुन्द की कलियों के द्वारा जोर
 से उनका उपहास करने लगा । (११)

स्वर्णभरणधारी राजपुत्रों के सदृश पुष्पित कर्णिकारों
 (अमलवास) के वन सुशोभित होने लगे । (१२)

उनके पीछे बद्धवृक्ष इस प्रकार सुशोभित हाते थे
 जैसे राक्षसों के पीछे स्वामी से सम्मानित सेवक शोभा
 पाते हैं । (१३)

रक्त अशोक के वन इस प्रकार सहसा कुसुमित तथा
 दग्ध हो शोभित हो उठे मारनों वसन्त राजा के भृत्य युद्ध
 में रक्त से परिप्लुत हो रहे हैं । (१४)

गहनवन में पिञ्जरित मृगशृन्द इस प्रकार विराजित
 होने लगे जैसे सुहृद के आने से सज्जन पुलकित हो

जाते हैं । (१५)

मन्दी के कूलों पर अपनी मञ्जरियों के द्वारा वेतस इस
 प्रकार सुशोभित हो रहे थे मारनों के अंगुलियों के द्वारा यह
 कहना चाहते हैं कि 'हमारे सदृश अन्य कौन वृक्ष है' । (१६)

हे देवपे ! हे ब्रह्मन् ! रक्ताशोक रूपी हाथ, पलाश रूपी
 पद, नीलाशोक रूपी केश-माला, विकसित कमलरूपी मुख,
 नील कमल रूपी नेत्र, विल्वफल रूपी स्तन, विकसित कुन्द
 फूल रूपी दन्त, मञ्जरी रूपी कर बन्धुजीव रूपी अक्षर,
 सिन्दुवार रूपी नख, नर कोयल की वादली रूपी स्वर,
 अकोल रूपी वक्ष, मयूर समूह रूपी आभरण, सारस के
 स्वर रूपी नूपुर, प्राग्धंशरूपी करधनी, मत्त हंस रूप गति,
 पुत्रजीव रूपी अशुक (वक्ष) और ध्रमर रूपी रोमाञ्जली
 से विराजित दिव्य, शुभ, तन्वी एव तरुणी वसन्त लक्ष्मी उस
 वदरिकाश्रम मे प्रकट हुई । (१७-२१)

तदनन्तर नारायण ने आश्रम की पवित्रता देख कर
 तथा सभी दिशाओं की ओर देखकर अनग (वामदेव)
 को देखा । (२२)

नारद ने कहा—“हे ब्रह्मपे ! यह अनङ्ग कौन है ? जिसे
 अव्यय जगन्नाथ नारायण ने वदरिकाश्रम मे देखा ।” (२३)

पुलस्त्य उवाच ।
 कन्दर्पो हर्षतनयो योऽसौ कामो निगद्यते ।
 स शंकरेण संदग्धो ह्यनङ्गत्वमुपागतः ॥ २४
 नारद उवाच ।
 किमर्थं कामदेवोऽमी देवदेवेन शंभुना ।
 दग्धस्तु कारणे कस्मिन्नेतद्विचारयातुमर्हसि ॥ २५
 पुलस्त्य उवाच ।
 यदा दक्षसुता प्रसन्नं सती याता यमलयम् ।
 विनाश्य दक्षयज्ञं तं विचचार त्रिलोचनः ॥ २६
 ततो वृषभ्यजं दृष्ट्वा कन्दर्पः कुसुमायुधः ।
 अपत्नीकं तदाऽश्रेण उन्मादेनाभ्यताडयत् ॥ २७
 ततो हरः शरणाथ उन्मादेनाशु ताडितः ।
 विचचार तदोन्मत्तः काननानि सरांसि च ॥ २८
 स्मरन् सतीं महादेवस्तयोन्मादेन ताडितः ।
 न शर्म लेभे देवर्षेण गणनिद्र इव द्विपः ॥ २९
 ततः पपात देवेशः कालिन्दीसरितं मुने ।

निमग्ने शंकरे आपो दग्धाः कृष्णत्वमागताः ॥ ३०
 तदाप्रभृति कालिन्ध्या भृङ्गाञ्जननिभं जलम् ।
 आस्थन्दत् पुष्पतीर्था सा केदपाश्रमिवाग्नेः ॥ ३१
 ततो नदीषु पुण्यासु सरस्तु च नदेषु च ।
 पुलिनेषु च रम्येषु वापीषु नलिनीषु च ॥ ३२
 पर्वतेषु च रम्येषु काननेषु च सातुषु ।
 विचरन् स्वेच्छत्या नैत्र शर्म लेभे महेश्वरः ॥ ३३
 क्षणं गायति देवर्षं क्षणं रोदिति शंकरः ।
 क्षणं ध्यायति तन्वर्ङ्गां दक्षकन्यां मनोरमाम् ॥ ३४
 ध्यात्वा क्षणं प्रस्रपिति क्षणं त्वन्नायते हरः ।
 स्वप्ने तथेदं गदति तां दृष्ट्वा दक्षकन्यकाम् ॥ ३५
 निर्वृष्ये तिष्ठ किं मृष्टे त्यजसे मामनिन्दिते ।
 मृष्ये त्वया विरहितो दग्धोऽस्मि मदनान्निना ॥ ३६
 सति सत्यं प्रकृषिता मा कोपं हृह सुन्दरि ।
 पादप्रणामावतमभिमामपितुमर्हसि ॥ ३७
 श्रूयसे दृश्यसे नित्यं स्पृश्यसे वन्द्यसे प्रिये ।

पुलस्त्य ने कहा—कन्दर्प हर्ष का पुत्र है । उसे ही काम
 कहा जाता है । शंकर (वे तेजानल) द्वारा दग्ध होकर वह
 अनङ्ग हो गया है । (२४)
 नारद ने कहा—“आप यह बतलाएँ कि देवाधिदेव शंकर
 ने कामदेव को क्यों और किस कारण से भस्म किया। (२५)
 पुलस्त्य ने कहा—हे भद्रन्! दक्ष दुष्टिवा सती के प्राण
 खाना करने पर त्रिलोचन दक्ष-यज्ञ का भ्यस कर विारण
 करने लगे । (२६)
 तदनन्तर वृषभ्यज को अपनी क देवकीर कुसुमायुष कन्दर्प
 ने छुई उन्माद नामक अश्रु के द्वारा आहत किया । (२७)
 तदुपयान्त उन्माद शर से ताडित शंकर उन्मत्त होकर
 यनों और सरोयों में विचरण करने लगे । (२८)
 हे देवर्षे! वागविद्व गज के सदृश उन्माद शर से उस
 प्रकार ताडित महादेव सती का स्मरण करत हुए शान्ति
 नहीं प्राप्त कर सके । (२९)
 हे मुने! तदनन्तर देवेश शंकर कालिन्दी नदी में गिर
 पड़े । शंकर के निमग्न होने पर (नदी का) अञ्ज दग्ध होकर
 काला हो गया । (३०)
 उस समय से कालिन्दी नदी का अञ्ज और अञ्जन

के सदृश काला हो गया एव यह पवित्र तीर्थोवाटी नदी
 पृथ्वी के विशाखा के सदृश प्रवाहित होने लगी । (३१)
 तदनन्तर पवित्र नदियों, सरोयों, नदी, रमणीय नदी-
 तटों, वापियों, कमलरनों, पर्वतों, मनोहर कानों तथा पर्वत
 शृङ्गों पर स्वेच्छ पूर्वक विचरण करते हुए महेश्वर कभी भी
 शान्ति नहीं प्राप्त कर सके । (३२-३३)
 हे देवर्षे! शंकर कभी गाने, कभी रोत और कभी
 कृपाशी मनोरमा दग्धकन्या का ध्यान करते थे । (३४)
 ध्यान करने कभी सात और कभी रम्य देवते लगे
 थे, स्वप्नराज में दक्ष की उस कन्या को देखकर वह इस
 प्रकार कहते थे (३५)
 हे निर्दये! कभी, हे मूढ़े! मुझ क्यों छोड़ रही हो ?
 हे अनिन्दित ! हे मृष्ये ! तुम्हारे विरह में मैं कामानि के
 द्वारा दग्ध हो रहा हूँ । (३६)
 हे सति ! क्या तुम वस्तुतः मुझ हो ? हे सुन्दरि !
 श्लेष मा करो । मैं तुम्हारे चरणों में अथवा शंकर प्रणाम
 करता हूँ । मेरे साथ तुम्हें सम्भाषण करना चाहिये । (३७)
 हे प्रिये ! मैं सतत तुम्हापि वात मुनका हूँ, तुम्हें
 देखना हूँ, तुम्हारा स्पर्श करना हूँ, तुम्हारी वन्दना करना हूँ

आलिङ्गयसे च सतवं किमर्थं नामिमापसे ॥ ३८
 विलपन्तं जन्तं दृष्ट्वा कृपा कस्य न जायते ।
 विशेषतः पतिं बाले ननु त्वमतिनिर्घृणा ॥ ३९
 त्वयोक्तानि वचांस्येवं पूर्वं मम कृशोदरि ।
 विना त्वया न जीवेयं तदसत्यं त्वया कृतम् ॥ ४०
 एहोहि कामसंतपं परिष्वज सुलोचने ।
 नान्यथा नश्यते तापः सत्येनापि शपे प्रिये ॥ ४१
 इत्थं विलप्य स्वप्नान्ते प्रतिबुद्धस्तु तत्क्षणात् ।
 उत्कृजति तथाऽरप्ये मुक्तकण्ठं पुनः पुनः ॥ ४२
 तं कूजमानं विलपन्तमारान्
 समीक्ष्य कामो वृषवेतनं हि ।
 विव्याध चापं तरसा विनान्य
 संतापनाम्ना तु शरेण भूयः ॥ ४३
 संतापनास्त्रेण तदा स विद्वो
 भूयः स संतप्ततरो बभूव ।
 संतापयंश्चापि जगत्समग्रं
 फ्लुकृत्य फ्लुकृत्य विवामते स्म ॥ ४४
 तं चापि भूयो मदनो जधान

तथा तुम्हें आलिङ्गित करता हूँ । तुम क्यों बात नहीं कर
 रही हो ?" (३८)

"हे माते ! विद्याप करने वाले व्यक्ति को देर कर किसे
 दया नहीं उत्पन्न होती ? विशेषतः अपने पति को विद्याप करता
 देरकर किसे दया नहीं आती ? निश्चय ही तुम अति
 निर्दयी हो ।" (३९)

"हे कृशोदरि ! तुमने पहले मुझसे कहा था कि तुम्हारे
 विना मैं जीवित नहीं रहूँगी । इसे तुमन असत्य कर
 दिया ।" (४०)

"हे सुलोचने ! आआ आओ । कामसन्तप मुझ आलि-
 ङ्गित करो । हे प्रिये ! मैं सत्य की शपथ दाखर कहना हूँ
 कि अन्य किसी प्रकार मेरा ताप नहीं शान्त होगा ।" (४१)

इस प्रकार विद्याप पर वे स्वल्प के अंत में तत्क्षण लठ
 कर अरण्य में मुक्त कण्ठ से रोने लगे । (४२)

मुक्तकण्ठ से विद्याप करते हुए वृषवेतन को दूर से
 देख काम ने योगपूर्वक धनुष झुका कर पुनः उन्हें सन्वाप
 नामक बाण से आविद्ध किया । (४३)

विजृम्भमास्त्रेण ततो विजृम्भे ।
 ततो भृशं कामशरैर्वितुक्षो
 विजृम्भमाणः परितो भ्रमंथ ॥ ४५
 दर्दशं वक्ष्याधिपतेस्तनूजं
 पाञ्चालिकं नाम जगत्प्रधानम् ।
 दृष्ट्वा त्रिनेत्रो धनदस्य पुत्रं
 पाशवं समभ्येत्य वचो वभाषे ।
 भ्रातृव्य वक्ष्यामि वचो यदद्य
 तत् त्वं कुरुष्वामितविक्रमोऽसि ॥ ४६
 पाञ्चालिक उवाच ।
 यन्नाथ मां वक्ष्यसि तत्करिष्ये
 सुदुष्करं यद्यपि देवसंपैः ।
 आज्ञापयस्वातुलवीर्यं शंभो
 दासोऽसि ते भक्तियुक्तस्थेश ॥ ४७
 ईश्वर उवाच ।
 नाशं गतायां वरदाम्बिकायां
 कामाग्निना प्लुष्टमुविग्रहोऽसि ।

तब सन्तापनात्र से विद्ध होकर वे और भी अधिक
 सन्तप्त हो गये एवं मुझ से वारम्बार फूटकार कर समस्त
 जगत् को सन्तप्त करते हुये समय व्यनीत करने लगे । (४४)

तदनन्तर मदन ने उन्हें पुनः विजृम्भण नामक अस्त्र
 से आहत किया जिससे उन्हें अर्थात् आने लगी । तदु-
 परान्त काम के बाणों से अत्यन्त पीड़ित होकर विजृम्भण
 करते हुए तथा शत्रुदिक् परिभ्रमण करते हुए उन्होंने
 यक्षाधिपति के जगन्मै प्रधान पाञ्चालिक नामक पुत्र को देखा ।
 धनद वे पुत्र को देर इसके पास जा कर त्रिनेत्र ने यह वचन
 कहा—हे भ्रातृव्य ! तुम अमित विजयशाली हो, मैं जो
 आज बात करता हूँ उसे तुम करो । (४५-४६)

पाञ्चालिक ने कहा—"हे नाथ ! आप जो कहेंगे
 देवताओं द्वारा मुदुप्कर होने पर भी उसे मैं करूँगा । हे
 अतुल्यशक्तिशाली शंभो ! आदेश दीजिये । हे ईश ! मैं आपका
 भक्तियुक्त दास हूँ ।" (४७)

महेश्वर ने कहा—वरदायिनी अम्बिका के विनष्ट होने
 पर मेरा मुन्दर शरीर कामाग्नि से अत्यन्त दग्ध हो रहा है ।

विजृम्भणोन्मादशरौर्विभिन्नो
 धृतिं न विन्दामि रतिं सुखं वा ॥ ४८
 विजृम्भणं पुत्र तथैव ताप-
 उन्मादमुग्रं मदनप्रणुत्नम् ।
 नान्यः पुमान् धारयितुं हि शक्नो
 मुक्त्वा भवन्त हि ततः प्रतीच्छ ॥ ४९
 पुलस्त्य उवाच ।
 इत्येवमुक्तो वृषभध्वजेन
 यक्षः प्रतीच्छत् स विजृम्भणादीन् ।
 तीपं जगामाशु ततस्त्रिशूली
 तुष्टस्तदैवं वचनं वभाषे ॥ ५०
 हर उवाच ।
 यस्मात्प्रया पुत्र सुदुर्धराणि
 विजृम्भणादीनि प्रतीच्छितानि ।
 तस्माद्भरं त्वां प्रतिपूजनाय
 दास्यामि लोकस्य च हास्यकारि ॥ ५१
 यस्त्वां यदा पश्यति चैत्रमासे
 स्पृशेन्नरो वार्षयते च भक्त्या ।
 वृद्धोऽथ बालोऽथ युवाथ योषित्

सर्वे तदोन्मादधरा भवन्ति ॥ ५२
 गायन्ति नृत्यन्ति रमन्ति यक्ष
 वाद्यानि यत्नादपि वादयन्ति ।
 तयाप्रतो हास्यवचोऽभिरक्ता
 भवन्ति ते योगयुतास्तु ते स्युः ॥ ५३
 मर्षव नाम्ना भविताऽसि पूज्यः
 पाञ्चालियेशः प्रथितः पृथिव्याम् ।
 मम प्रसादाद् वरदो नराणां
 भविष्यसे पूज्यतमोऽभिगच्छ ॥ ५४
 इत्येवमुक्तो विधुना स यशो
 जगाम देशान् सहमैव सर्वान् ।
 कालञ्जरस्योत्तरत. सुपुण्यो
 देशो हिमाद्रेरपि दक्षिणस्थः ॥ ५५
 तस्मिन् सुपुण्ये निषये निजिरो
 रुद्रप्रसादादभिपूज्यतेऽसौ ।
 तस्मिन् प्रयते भगवास्त्रिनेत्रो
 देवोऽपि विन्ध्यं गिरिमम्यगच्छत् ॥ ५६
 तत्रापि मदनो गत्वा ददर्श वृषकेतनम् ।
 दृष्ट्वा प्रहर्षुकामं च ततः प्रादुर्द्रवञ्जरः ॥ ५७

विजृम्भण और उन्माद शरों से विद्ध होने से मुझे भैरव, रति
 या सुख नहीं प्राप्त हो रहा है । (४८)
 "हे पुत्र । तुम्हारे अतिरिक्त अन्य कोई पुरुष, कामदेव
 से प्रेरित विजृम्भण, सतापन और उन्माद नामक उभ अत्र
 धारण करने में समर्थ नहीं है । अतः तुम इन्हें ग्रहण
 करो ।" (४९)
 पुलस्त्य ने कहा—वृषभध्वज के ऐसा कहने पर उस यक्ष
 ने विजृम्भण आदि सभी अस्त्रों को ग्रहण कर लिया । इस
 से त्रिशूली को तत्काल सतोप प्राप्त हो गया और सन्तुष्ट
 होकर उन्मादने उससे इस प्रकार वचन कहा— (५०)
 महादेव ने कहा—हे पुत्र । क्योंकि तुमने अति भयानक
 विजृम्भण आदि अस्त्रों को ग्रहण कर लिया अतः प्रतिपूज
 नार्थ मैं तुम्हें सप्त लोगों के लिये आतन्द्रदायक वर
 दूँगा । (५१)
 चैत्र मास में जो वृद्ध, बालक, युवक या स्त्री तुम्हारा

स्पर्श या भक्ति पूर्वक पूजन करे तो वे सभी तत्क्षण उन्माद-
 मत्त हो जायेंगे । (५२)
 हे यक्ष । वे गायेंगे, नाचेंगे, आनन्दित होंगे और
 निपुणता के साथ वाजे बजायेंगे । तुम्हारे सम्मुख हँसी की
 बात करते हुए भी वे योगयुक्त रहेंगे । (५३)
 "मिरे ही नाम से तुम पूज्य होंगे । ससार में तुम्हारा
 पांचालियेश नाम प्रसिद्ध होगा । मेरे प्रसाद से तुम लोगों
 के वरदाता और पूज्यतम होंगे । जाओ ।" (५४)
 महाेश्वर के ऐसा कहने पर वह यक्ष सहसा सप्त देशों
 में गया । कालजर ने उत्तर और हिमालय के दक्षिण ओ
 परम पवित्र देश है— (५५)
 उस पुण्यभूमि में वह अधिष्ठित हो गया । रुद्र के
 प्रसाद से वह पूजित हुआ । उसके चले जाने पर भगवान्
 त्रिनेत्र भी विन्ध्यगिरि पर गए । (५६)
 वहाँ भी मदन ने जाकर वृषकेतन को देखा । प्रहार

ततो दारुवन घोरं मदनाभिस्ततो हरः ।
 विवेश ऋषयो यत्र सपत्नीका व्यवस्थिताः ॥ ५८
 ते चापि ऋषयः सर्वे दृष्ट्वा मूर्च्छां नताभवन् ।
 ततस्तान् ग्राह भगवान् भिक्षा मे प्रतिदीयताम् ॥ ५९
 तदन्ते मौनिनस्तस्युः सर्व एव महर्षयः ।
 तदाश्रमाणि सर्वाणि परिचक्राम नारद ॥ ६०
 तं प्रविष्टं तदा दृष्ट्वा भार्गवादेययोपितः ।
 प्रश्नोभमगमन् सर्वा हीनसत्त्वाः समन्ततः ॥ ६१
 श्रुते त्वरुन्धतीमेकामनसूयां च भागिनीम् ।
 एताम्बां भर्तृपूजासु तच्चिन्तासु स्थित मनः ॥ ६२
 ततः संक्षुभिताः सर्वा यत्र पाति महेश्वरः ।
 तत्र श्रयान्ति कामार्चा मदविह्वलितेन्द्रियाः ॥ ६३
 त्यक्त्वाश्रमाणि शून्यानि स्वानि ता मुनिमोपितः ।
 अनुजगमुर्यथा मत्तं करिष्य इव कुञ्जरम् ॥ ६४
 वतस्तु ऋषयो दृष्ट्वा भार्गवाद्गिरसो मुने ।

की कामनावाले उस (कामदेव) को देकर हर भागने लगे । (५७)

तदनन्तरकामदेवके द्वारा पीछा किये जाते हुये महादेव घोर दारुवन में प्रविष्ट हुए जहाँ सपत्नीक ऋषिगण निवास करने थे । (५८)

उन ऋषियों ने भी उन्हें देखकर स्तिर धुन्ना कर प्रणाम किया । तदनन्तर भगवान् ने उनसे कहा—“मुझे भिक्षा दीजिए ।” (५९)

इस पर सभी महर्षि मौन रह गये । हे नारद ! तदुप रान्त महादेव समस्त आश्रमों में भ्रमण करने लगे । (६०)

इस समय उन्हें प्रविष्ट हुआ देव अरुन्धती एव सुन्दरी अनुसूया को छोड़कर, क्योंकि इनका मन पति की पूजा एव ध्यान में लगा था, भार्गव क्षीर आश्रम की समस्त पत्नियों प्रक्षुब्ध एव सत्त्वहीन हो गईं । (६१-६२)

तदनन्तर महेश्वर जहाँ जाते वही वे संक्षुभित, कामार्ता एवं मद से विकल इन्द्रियों वाली सभी स्त्रियों भी जाने लगीं । (६३)

अपने आश्रमों को शून्य छोड़ मुनियों की वे स्त्रियाँ इस प्रकार इनका अनुसरण करने लगीं जैसे हथिनियाँ मतथाले कुजर या अनुसरण करती हैं । (६४)

हे मुने ! यह देकर श्रोधान्वित भार्गव एव आद्गिरस

श्रोधान्विताश्रुवन्सर्वे लिङ्गोऽस्य पततां भुवि ॥ ६५
 ततः पपात देवस्य लिङ्गं पृथ्वीं विदारयन् ।
 अन्तर्धानं जगामाय त्रिशूली नीललोहितः ॥ ६६
 ततः स पतितो लिङ्गो विभिय वसुधातलम् ।
 रसातलं विवेशाशु ब्रह्माण्डं चोर्ध्वतोऽभिनत् ॥ ६७
 ततश्चाल पृथिवी गिरयः सरितो नगाः ।
 पातालभुवनाः सर्वे जङ्गमाजङ्गमैर्वृताः ॥ ६८
 सक्षुब्धान् भुवनान् दृष्ट्वा भूलोकैर्दोष पितामहः ।
 जगाम माधवं द्रष्टुं क्षीरोद नाम सागरम् ॥ ६९
 तत्र दृष्ट्वा हृषीकेशं प्रणिपत्य च भक्तितः ।
 उवाच देव भुवनाः किमर्थं क्षुभिता रिभो ॥ ७०
 अथोवाच हरिर्ब्रह्मन् शार्वां लिङ्गो महर्षिभिः ।
 पातितस्तस्य भारता संचाल वसुधरा ॥ ७१
 ततस्तद्दृश्यतमं श्रुत्वा देवः पितामहः ।
 तत्र गच्छाम देवेश एवमाह पुनः पुनः ॥ ७२

ऋषियों ने कहा कि इनका लिङ्ग भूमि पर गिर जाय । (६५)
 तदनन्तर महादेव का लिङ्ग पृथ्वी को विदीर्ण करता हुआ गिर गया । एव नीललोहित त्रिशूली वहाँ से अन्तर्धान हो गये । (६६)

तदुपरान्त वह गिरा हुआ लिङ्ग पृथ्वी का भेदन कर शीघ्र रसातल में प्रविष्ट हो गया एव ऊपर की ओर उसने ब्रह्माण्ड का भेदन कर दिया । (६७)

तत्पश्चात् पृथ्वी, पर्वत, नदियों, पादप, तथा चराचर से पूर्ण समस्त पाताल एव लोक बाँप उठे । (६८)

पितामह ब्रह्मा भूलोक आदि भुजनों को सक्षुब्ध देव कर माधव को देखते क्षीरसागर पहुँचे । (६९)

वहाँ हृषीकेश को देव भक्तिपूर्वक प्रणाम कर उन्होंने कहा—“हे देव ! हे विभो ! समस्त भुवन क्यों विक्षुब्ध हो गये हैं ?” (७०)

तदनन्तर हरि ने कहा—“हे ब्रह्मन् ! महर्षियों ने शम्भु के लिङ्ग को गिरा दिया है उसके भार से आर्त वसुधरा विचलित हो रही है ।” (७१)

तत्पश्चात् देव पितामह इस अद्भुत पात को सुनकर वारवार कहने लगे—“हे देवेश ! यहाँ चले ।” (७२)

ततः पितामहो देवः केशवश्च जगत्पतिः ।
 आजग्मतुस्तद्गुदेव्यं यत्र लिङ्गं भवस्य तत् ॥ ७३
 ततोऽनन्तं हरिलिङ्गं दृष्ट्वारुह्य खगेश्वरम् ।
 पातालं प्रविवेशाय विम्बयान्तरितो विभुः ॥ ७४
 ब्रह्मा पद्मचिमानेन ऊर्ध्वमाक्रम्य सर्वतः ।
 नैवान्तमलम्बु ब्रह्मन् विस्मितः पुनरागतः ॥ ७५
 विष्णुर्गत्वाऽथ पातालान् सप्त लोकपरायणः ।
 चक्रपाणिर्विनिष्कान्तो लेभेऽन्तं न महामुने ॥ ७६
 विष्णुः पितामहश्चोभो हरलिङ्गं ममेत्य हि ।
 कृताञ्जलिपुटौ भूत्वा स्तोतुं देवं प्रवक्रतुः ॥ ७७
 हरिब्रह्माणावृत्तः ।
 नमोऽस्तु ते शूलपाणे नमोऽस्तु वृषभध्वज ।
 जीमूतवाहन कवे शर्षे त्र्यम्बक शंकर ॥ ७८
 महेश्वर महेशान सुवर्णाक्ष वृषारूपे ।
 दक्षयज्ञायकर कालरूप नमोऽस्तु ते ॥ ७९
 स्वमादिरस्य जगत्स्त्वं मध्य परमेश्वर ।

भवानन्तश्च भगवान् सर्वगस्त्व नमोऽस्तु ते ॥ ८०
 पुलस्त्य उवाच ।
 एव संस्तूयमानस्तु तस्मिन् दारुवने हरः ।
 स्वरूपी तारिदं वाक्यमुवाच वदतां वरः ॥ ८१
 हर उवाच ।
 किमर्थं देवतानाथो परिभूतकर्मं त्विह ।
 मां स्तुवाते भृशाम्बुधं कामतापितविग्रहम् ॥ ८२
 देवावृत्तः
 भवतः पातितं लिङ्गं यदेतद् भुवि शंकर ।
 एतत् प्रगृह्णतां भूय अतो देव स्तुवावहे ॥ ८३
 हर उवाच
 ययर्चयन्ति त्रिदशा मम लिङ्गं सुरोत्तमौ ।
 तदेतत्प्रतिगृह्णीयां नान्यथेति कथंचन ॥ ८४
 ततः प्रोवाच भगवानेवमस्त्विति केशवः ।
 ब्रह्मा स्वयं च जग्राह लिङ्गं कनकपिङ्गलम् ॥ ८५
 ततश्चकार भगवांश्चातुर्वर्ण्यं हरार्चने ।

तदुपरान्त देव पितामह और जगत्पति केशव वहाँ पहुँचे जहाँ शंकर का यह लिंग था । (७३)

तदनन्तर उस अनन्त लिंग को देख कर विम्बयान्वित हरि गरुड पर सवार हो पाताल में प्रविष्ट हुए । (७४)

पदायिमान के द्वारा ब्रह्मा सम्पूर्ण ऊर्ध्व देश को आक्रान्त करने पर भी उस लिंग का अन्त नहीं पा सके अतः हे ब्रह्मन् । आश्चर्यान्वित होकर वे लीट आये । (७५)

लोकरञ्जक चक्रपाणि विष्णु सातों पातालों में जाकर (पुन) बाहर निकले । हे महामुने । वे भी (उसका) अन्त नहीं पा सके । (७६)

विष्णु और पितामह दोनों हर के लिंग के पास जाकर हाथ जोड़कर देव की स्तुति करने लगे । (७७)

हरि और ब्रह्मा ने कहा—“हे शूलपाणे ! आपने नमस्कार है । हे वृषभध्वज । हे जीमूतवाहन । हे कवि । हे शर्षे । हे त्र्यम्बक ! हे शंकर ! आपको नमस्कार है । (७८)

हे महेश्वर ! हे महेशान ! हे सुवर्णाक्ष ! हे वृषारूपे ! हे दक्ष यज्ञके विष्ण्वसक ! हे कालरूप ! आपने नमस्कार है । (७९)

हे परमेश्वर ! आप इस जगत् के आदि मध्य एवं अन्त

हैं । आप भगवान् (पदैश्वर्यपूर्ण) और सर्वव्यापी हैं । आपने नमस्कार है । (८०)

पुलस्त्य ने कहा—“उस दारुवन में इस प्रकार स्तुति किये जाने पर वक्ताओं में श्रेष्ठ हर ने अपने स्वरूप में आविर्भूत होकर (अर्थात् मूर्तिमान् होकर) उन दोनों से कहा— (८१)

हर ने कहा—“हे युगलदेवतानाथ ! यकी गति वाले, कामानल से दग्ध एवं अत्यन्त आराम्य मेरी यहाँ आप क्यों स्तुति कर रहे हैं ? (८२)

दोनों देवों ने कहा—“हे शंकर ! पृथ्वी पर आपका जो यह लिंग गिराया गया है उस पुन आप ग्रहण करें । इसी लिए हम आपकी स्तुति कर रहे हैं । (८३)

हर ने कहा—“हे युगल सुतोत्तम ! यदि देवता मेरे लिंग की अर्चना करें तभी मैं इसे पुन ग्रहण करूँगा अन्य किसी प्रकार नहीं । (८४)

तब भगवान् केशव ने कहा—“ऐसा ही हो ।” ब्रह्मा ने स्वयं उस स्वयं के सदृश विंगल लिंग को ग्रहण किया । (८५)

तब भगवान् ने पारों धर्मों को हर लिंग की अर्चना का

शास्त्राणि चैषां ह्युरयानि नानोक्तिविदितानि च ॥८६॥
 आद्यं शैवं परिस्थ्यातमन्यत्पाशुपतं मुने ।
 तृतीयं कालवदनं चतुर्थं च कपालिनम् ॥ ८७
 शैवश्चासीत्स्वयं शक्तिर्वसिष्ठस्य प्रियः सुतः ।
 तस्य शिष्यो बभूवाथ गोपायन इति श्रुत ॥ ८८
 महापाशुपतथासीद्भरद्वाजस्तपोधनः ।
 तस्य शिष्योऽप्यभूद्राजा ऋषभः सोमकेश्वरः ॥ ८९
 कालास्यो भगवानासीदापरतन्मस्तपोधनः ।
 तस्य शिष्योभवद्वैश्वो नाम्ना काथेश्वरो मुने ॥ ९०
 महाव्रती च धनदस्तस्य शिष्यश्च वीर्यवान् ।
 कर्णोदर इति ख्यातो जात्या शूद्रो महातपाः ॥ ९१
 एवं स भगवान्भ्रक्ष्ण पूजनाय शिवस्य तु ।
 कृत्वा तु चातुरारथस्य स्वमेव भवन गत ॥ ९२
 गते ब्रह्मणि शर्वोऽपि उपसंहृत्य त तदा ।
 लिङ्गं चित्रवने सूक्ष्मं प्रतिग्राप्य चचार ह ॥ ९३

अधिकारी बनाया । इनके मुख्य शास्त्र नाना प्रकार के
 वचनों से प्रक्यात हैं । (८६)

हे मुने! (उन हरन्कर्णों का) प्रथम सप्रदाय शैव, द्वितीय
 पाशुपत, तृतीय कालवदन, और चतुर्थ कपाली नाम से
 विख्यात है । (८७)

वसिष्ठ के प्रियपुत्र शक्ति स्वयं शैव थे एव्य उनका
 गोपायन नाम से प्रसिद्ध शिष्य था । (८८)

तपोधन भरद्वाज महापाशुपत थे और सोमकेश्वर राजा
 ऋषभ उनके शिष्य हुए । (८९)

हे मुने! ऐश्वर्ययुक्त तपोधन आपस्तम्ब, कालवदन
 सप्रदाय के आचार्य्य थे । काथेश्वर नाम का उनका एक वैश्य
 शिष्य था । (९०)

धनद (नाम था) महाव्रती (कपाली) था । शूद्र जाति
 का महातपस्वी कर्णोदर नामक उनका एक प्रसिद्ध
 शिष्य था । (९१)

इस प्रकार भगवान् ब्रह्मा शिव की पूजा के लिये चार
 आश्रमों या विधान कर अपने भवन को चले गए । (९२)

ब्रह्मा के चले जाने पर महादेव ने भी इस लिंग को
 उपसंहृत कर लिया एव्य चित्रवन में सूक्ष्म लिंग प्रतिग्रापित
 कर विचरण करने लगे । (९३)

विचरन्तं तदा भूयो महेश कुसुमायुधः ।
 आरास्त्वित्वाऽग्रतो धन्वी सतापयित्मुद्यतः ॥ ९४
 ततस्तमग्रतो दृष्ट्वा क्रोधाच्चातदृशा हरः ।
 स्मरमालोकयामास शिरसाश्रचरणान्तिरुम् ॥ ९५
 आलोकितस्त्रिनेत्रेण मदनो घत्तिमानपि ।
 प्रादह्यत तदा ब्रह्मन् पादादारभ्य कक्षवत् ॥ ९६
 प्रदह्यमानौ चरणौ दृष्ट्वाऽसौ कुसुमायुधः ।
 उत्ससर्ज धनुः श्रेष्ठ तज्जगामाथ पञ्चधा ॥ ९७
 यदासीन्मुष्टिर्गन्धं तु रक्मपृष्ठं महाप्रभम् ।
 स चम्पकहतज्जातः सुगन्धाढ्यो गुणाकृतिः ॥ ९८
 नाहस्थान शुभाकारं यदासीद्ब्रह्मभूपितम् ।
 तज्जात केसरारण्य बहुल नामतो मुने ॥ ९९
 या च कोटी शुभा ह्यासीदिन्द्रनीलविभूषिता ।
 जाता सा पाटला रम्या भृङ्गराजिबिभूषिता ॥ १००
 नाहोपरि तथा सुष्टौ स्थानं शशिमणिप्रभम् ।

उस समय महेश को विचरण करते देख पुष्पधन्वा
 कामदेव पुन उनके सम्मुख निकट स्थित होकर उन्हें सन्तापित
 करने को उद्यत हुआ । (९४)

तदुपरान्त महादेव ने उस कामदेव को सामने देखकर
 क्रोधपूर्ण दृष्टि से शिखा से चरण तक उसे देखा । (९५)

हे ब्रह्मन् ! त्रिनेत्र द्वारा आलोकित होने पर सुत्तिमान्
 होने पर भी कामदेव पैर से लेकर कक्ष पर्यन्त दग्ध हो
 गया । (९६)

कुसुमायुध मदन ने अपने चरणों को जलने हुए देख श्रेष्ठ
 धनुष को पेंक दिया जिसके पाँच टुकड़े भी गए । (९७)

उस धनुष का परमप्रभामयुक्त रक्मपृष्ठ सुष्टिवन्ध
 सुगन्धसे भरा सुन्दर चम्पक वृक्ष हो गया । (९८)

हे मुने ! उस धनुष का यज्ञभूषित सुन्दर आकार वाला
 नाहस्थान केसरारण्य बहुल नाम का वृक्ष बना । (९९)

इन्द्रनील से विभूषित उसकी सुन्दर कोटि सुगों से
 विभूषित रमणीय पाटला (गुलाब) के रूप में परिणत हो
 गयी । (१००)

नाह के ऊपर सुष्टि में स्थित चन्द्रवान्तमणि की प्रभा
 से युक्त स्थान, शशिविरण के समान उज्वल पद्मगुल्फा
 जाती (जूही) बन गया । (१०१)

पञ्चगुल्माऽभवज्जाती शशाङ्क किरणोज्ज्वला ॥ १०१
 ऊर्ध्वं मृष्ट्या अधः कोट्योः स्थानं विद्रुमभूषितम् ।
 तस्माद्बहुपुटा मष्टी संजाता विविधा मुने ॥ १०२
 पुष्पोत्तमानि रम्याणि सुरभीणि च नारद ।
 जातिपुक्तानि देघेन स्वयमाचरितानि च ॥ १०३
 शुभोच मार्गणाञ्च भूम्यां शरीरे दहति स्मरः ।
 फलोपगानि वृथाणि संभूतानि सहस्रशः ॥ १०४
 चूतादीनि सुगन्धीनि स्वादूनि विविधानि च ।

हरप्रसादाज्जातानि भोज्यान्यपि सुरोत्तमैः ॥ १०५
 एवं दग्धा स्मरं रुद्रः संयम्य स्वतनुं विष्टः ।
 पुण्यार्थी क्षिशिराद्रिं स जगाम तपसेऽव्ययः ॥ १०६
 एवं पुरा देववरेण शंभुना
 कामस्तु दग्धः सशरः सचाप ।
 ततस्त्वनङ्गेति महाधनुर्द्धरो
 देवैस्तु गीतः सुरपूर्वपूजितः ॥ १०७

इति श्रीवामनपुराणे पट्टोऽध्याय ॥६॥

हे मुने ! सृष्टि के ऊपर और दोनों कोटियों के नीचे वाले विद्रुममणि विभूषित स्थान से अनेक पुटों वाली मष्टिका (माठली) उत्पन्न हुई । (१०२)

हे नारद ! देव के द्वारा जाती (जूही) के साथ अन्य सुन्दर तथा सुगन्धित पुष्पों की सृष्टि हुई । शरीर के दग्ध होते समय कामदेव ने अपने बाणों को पृथ्वी पर फेंका जिससे सहस्रों प्रकार के फलयुक्त वृक्ष उत्पन्न हुए । (१०३-१०४)

श्री हर के प्रसाद से श्रेष्ठ देवताओं द्वारा भी भोग्य

अनेक प्रकार के सुगन्धित एवं स्वादिष्ट आभ्रादि फल उत्पन्न हुए । (१०५)

इस प्रकार मदन को भस्म कर एवं अपने शरीर को सयत कर विष्णु अव्यय रुद्र पुण्य की वामना से हिमा लय पर तपस्या हेतु चले गए । (१०६)

पूर्व समय में इस प्रकार देवताओं में श्रेष्ठ शम्भु ने धनुष बाण सहित काम को दग्ध कर दिया । तत्पश्चात् देवताओं में प्रथम पूजित वह महाधनुर्धर देवों द्वारा "अनङ्ग" कहा गया । (१०७)

॥ श्रीवामनपुराण मे पट्ट अध्याय समाप्त ॥६॥

पुलस्त्य उवाच ।

ततोऽनङ्गं विभृष्ट्वा ब्रह्मन् नारायणो मुनिः ।
 प्रहस्यैवं वचः प्राह कन्दर्प इह आस्पताम् ॥ १
 तदशुब्धत्वमीक्ष्यास्य कामो विस्मयमागतः ।
 वसन्तोऽपि महाचिन्तां जगामाशु महाधुने ॥ २
 ततश्चाप्सरसो दृष्ट्वा स्वागतेनाभिपूज्य च ।
 वसन्तमाह भगवानेहोहि स्थीयतामिति ॥ ३
 ततो विहस्य भगवान् मञ्जरीं कुसुमाघृताम् ।
 आदाय प्राक्सुवर्णाङ्गीमूर्धोर्वालां विनिर्ममे ॥ ४
 ऊरुद्धवां स कन्दर्पो दृष्ट्वा सर्वाङ्गसुन्दरीम् ।
 अमन्यत तदाऽनङ्गः किमियं सा प्रिया रतिः ॥ ५
 तदेव वदनं चारु स्वस्त्रिभ्रुकुटिलालकम् ।
 सुनासावंशाधरोष्ठमालोकनपरायणम् ॥ ६

पुलस्त्य ने कहा—हे ब्रह्मन् ! इसके अनन्तर विभु
 नारायण मुनि ने अनंग को देखकर हँसते हुए इस प्रकार वचन
 कहा—“हे कन्दर्प ! यहाँ बैठो ।” (१)

काम वनकी उस अशुद्धता को देख कर विस्मयान्वित
 हुआ । हे महाधुने ! वसन्त को भी तरान्त महीनी चिन्ता
 हुई । (२)

तदनन्तर अप्सराओं को देख कर स्वागत द्वारा उनकी
 पूजा कर भगवान् ने वसन्त से कहा—“आओ आओ
 बैठो ।” (३)

तदुपरान्त भगवान् नारायण मुनि ने हँस कर एक
 कुसुमाघृत मञ्जरी ली और अपने ऊरु पर एक सुवर्णाङ्गी
 बाला की छुट्टि की । (४)

ऊरु से उरपत्र उस सर्वाङ्ग-सुन्दरी को देखकर कन्दर्प
 मन में सोचने लगा—“क्या यह मेरी प्रिया रति है ?” (५)
 जैसे ही सुन्दर नेत्र, भौंह एवं कुटिल अलकों से युक्त,
 सुन्दर नासिका का वंश पथ अधरोष्ठ बाला तथा देखने में

अत्यन्त आनर्पक यह मुख है । (६)

तावेवाहार्यविरलौ पीवरौ मग्नचुचुकौ ।
 राजतेऽस्याः कुचौ पीनौ सज्जनाविव संहतौ ॥ ७
 तदेव तनु चार्चङ्ग्या वलित्रयविभूपितम् ।
 उदरं राजते श्लक्ष्णं रोमावलिबिभूपितम् ॥ ८
 रोमावली च जघनाद् यान्ती स्तनतटं तिवयम् ।
 राजते भृङ्गमालेव पुलिनात् कमलाकरम् ॥ ९
 जघनं त्वतिविस्तीर्णं भात्यस्या रशनावृतम् ।
 क्षीरोदमथने नद्वं भुज्जंगेनेव मन्दरम् ॥ १०
 कदलीस्तम्भसदृशैरूर्ध्वमूर्धरथोरुभिः ।
 विभाति सा सुचार्चङ्गी पद्मकिञ्जल्कसन्निभा ॥ ११
 जानुनी गूढगुल्फे च शुभे जङ्घे त्वरोमशे ।
 विभातोऽस्यास्तथा पादावलक्तकसमत्विपौ ॥ १२
 इति संचिन्तयन् कामस्तामनिन्दितलोचनाम् ।

७

इसके वे ही मनोहर, अत्यन्त तथा मग्नचुचुक वाले पीन
 कुच सज्जन पुरुषों के सदृश परस्पर संहत हैं । (७)

इस सुन्दराङ्गी का बही कुश, त्रिजली विभूपित, कोमल
 तथा रोमावलि युक्त उदर शोभित हो रहा है । (८)

जघा से स्तनतट की ओर जाती हुई इसकी यह रोमावलि
 पुलिन से कमलाकर की ओर जाती हुई भ्रमरमाला के सदृश
 सुशोभित हो रही है । (९)

करघनी से आवृत अतिविस्तीर्ण इसका नितम्ब प्रदेश
 इस प्रकार सुशोभित हो रहा है मानों क्षीरसागर के मन्थन
 काल में भुजङ्गवेष्टित मन्दर पर्वत हो । (१०)

कमल के केसर के समान गौरवर्ण वाली यह सुन्दरी
 कदली स्तम्भ के समान ऊर्ध्वमूल ऊरुओं के द्वारा शोभित
 हो रही है । (११)

इसके दोनों घुटने, गूढगुल्फ, रोमहीन सुन्दर जघाघेतथा
 आलक्तक के समान कान्ति वाले दोनों पाद अत्यन्त सुशोभित
 हो रहे हैं । (१२)

हे मुने ! उस सुन्दर नेत्रवाली के विषय में इस प्रकार

कामातुरोऽसौ संजातः क्रिष्टतान्यो जनो मुने ॥ १३
 माधवोऽप्युर्वशीं दृष्ट्वा संचिन्तयत नारद ।
 क्रिस्विन् कामनरेन्द्रस्य राजधानी स्वयं स्थिता ॥ १४
 आयाता शशिने नूनमियं कान्तिर्निशाक्षये ।
 रथिरभिमप्रतापतिगीता शरणमागत ॥ १५
 इत्थं संचितयन्नेव अवष्टभ्याप्सररोगणम् ।
 तस्यौ मुनिरिव ध्यानमास्थित, स तु माधवः ॥ १६
 सत, स त्रिस्मितान् सर्वान् कन्दर्पादीन् महामुने ।
 दृष्ट्वा प्रोवाच वचनं स्मितं कृत्वा शुभ्रव्रतः ॥ १७
 इयं ममोक्तंमृता कामाप्सरस माधव ।
 नीयतां सुरलोकाय दीयतां वासवाय च ॥ १८
 इत्युक्ताः कम्पमानास्ते जगद्गृह्योर्वशीं दिवम् ।
 सहस्राक्षय तां प्रादाद् रूपयौवनशालिनीम् ॥ १९
 आचक्षुश्चरितं ताभ्यां धर्मजाभ्यां महामुने ।
 देवराजाय कामाद्यास्ततोऽभूद् विस्मयः परः ॥ २०

एतादृशं हि चरितं ख्यातिमायां जगाम ह ।
 पातालेषु तथा मर्त्ये दिक्पटासु जगाम च ॥ २१
 एरुदा निहते रौद्रे हिरण्यकशिपौ मुने ।
 अभिपिक्तस्तदा राज्ये प्रह्लादो नाम दानवः ॥ २२
 तस्मिन्शासति दैत्येन्द्रे देवब्राह्मणपूजके ।
 मखानि श्रुवि राजानो यजन्ते विधिवत्तदा ॥ २३
 ब्राह्मणाश्च तपो धर्मं तीर्थयात्राश्च कुर्वते ।
 वैश्याश्च पशुशुचित्याः शूद्राः शुश्रूषणे रताः ॥ २४
 चातुर्धर्म्यं ततः स्वे स्वे आश्रमे धर्मकर्मणि ।
 आवर्त्तत ततो देवा वृत्त्या युक्ताभवन् मुने ॥ २५
 ततस्तु च्यवनो नाम भार्गवेन्द्रो महातपाः ।
 जगाम नर्मदां स्नातुं तीर्थं चैवाकुलीधरम् ॥ २६
 तत्र दृष्ट्वा महादेवं नदीं स्नातुमथातरत् ।
 अवतीर्णं प्रजग्राह नागः केकरलोहितः ॥ २७
 गृहीतस्तेन नागेन सस्मार मनसा हरिम् ।

सोचते हुए जब यह कामदेव ही काममोहित हो गया तो फिर अन्य पुरुषों की क्या बात है । (१३)
 हे नारद ! वसन्त भी उस उर्वशी को देखकर सोचने लगा—“क्या यह कामनरेश की स्वयं राजधानी अपस्थित है ? (१४)
 अथवा रात्रि का अन्त होने पर सूर्य की किरणों के साथ के मय से चन्द्रमा की कान्ति शरणागत हुई है । (१५)
 इस प्रकार सोचते हुए अप्सराओं की रोक कर वसन्त, मुनि के सदृश ध्यानस्थ हो गया । (१६)
 हे महामुने ! तदुपरान्त शुभ्रव्रत नारायण मुनि ने कन्दर्पादि सभी को विस्मयान्वित देख कर हँसते हुए कहा— (१७)
 “हे काम, हे अप्सराओं, हे वसन्त, मेरे ऊरु से उत्पन्न इस बाला को सुरलोक में ले जाओ और इन्द्र को दे दो ।” (१८)
 ऐसा कहे जाने पर वे सभी काँपते हुए उर्वशी को लेकर स्वर्ग में गए और इन्द्र को वह रूप यौवन शालिनी बाला दे दिया । (१९)
 हे महामुने ! कामादि ने इन्द्र से उन धर्मजों—(नर और नारायण) का चरित्र कहा जिससे उन्हें अत्यन्त

त्रिस्मय हुआ । (२०)
 (नर और नारायण का) ऐसा चरित्र सर्वोच्च ख्याति को प्राप्त हुआ तथा वह पाताल, मर्त्यलोक एवं आठों दिशाओं में व्याप्त हो गया । (२१)
 हे मुने ! प्राचीन काल में अति भयकर हिरण्यकशिपु के मारे जाने पर प्रह्लाद नामक दानव राज्याभिषिक्त हुआ । (२२)
 देवता और ब्राह्मण के पूजक उस दैत्येन्द्र के शासनकाल में पृथ्वी पर राजा लोग विधिपूर्वक यज्ञानुष्ठान करते थे । (२३)
 ब्राह्मण लोग तपस्या, धर्मकार्य और तीर्थयात्रा, वैश्य लोग पशुपालन तथा शूद्र लोग शुश्रूषा करने लगे । (२४)
 हे मुने ! इस प्रकार चारों वर्ण अपने-अपने अवस्थित रह कर धर्मकार्यों के अनुष्ठान में तत्पर हुए । इससे देवता भी वृत्ति से युक्त हो गये । (२५)
 तदनन्तर भार्गवश्रेष्ठ महातपस्वी च्यवन नामक ऋषि नर्मदा के अकुलीधर तीर्थ में स्नान करने गये । (२६)
 वहाँ महादेव का दर्शन कर वे नदी में स्नान करने के लिये उबरे । जल में अवतीर्ण ऋषि को केकरलोहित साँप ने पकड़ लिया । (२७)

संस्पृते पुण्डरीकाक्षे निर्विषोऽभूमहोरगः ॥ २८
नीतस्तेनातिरौद्रेण पद्मगेन रसातलम् ।
निर्विषश्चापि तत्याज च्यवनं धृजगोत्तमः ॥ २९
संत्यक्तमात्रो नागेन च्यवनो भार्गवोत्तमः ।
चचार नागकन्याभिः पूज्यमानः समन्ततः ॥ ३०
विचरन् प्रविवेशाय दानवानां महत् पुरम् ।
संपूज्यमानो दैत्येन्द्रैः प्रह्लादोऽप्य ददर्श तम् ॥ ३१
भृगुपुत्रे महातेजाः पूजां चक्रे यथार्हतः ।
संपूजितोपविष्टश्च पृष्टश्चागमनं प्रति ॥ ३२
स चौवाच महाराज महातीर्थं महाफलम् ।
स्नातुमेवागतोऽस्म्यद्य द्रष्टुञ्चैवाकुलीश्वरम् ॥ ३३
नद्यामेवावतीर्णोऽस्मि गृहीतश्चादिना बलात् ।
समानोतीऽस्मि पाताले दृष्टश्चात्र भवानपि ॥ ३४
एतच्छ्रुत्वा तु वचनं च्यवनस्य दितीश्वरः ।
प्रोवाच धर्मसंयुक्तं स वाक्यं वाक्यकोत्रिदः ॥ ३५

उस सौंप द्वारा गृहीत ऋषिने मन मे हरि का स्मरण किया । पुण्डरीकाक्ष का स्मरण करने पर वह महान् नाग विषहीन हो गया । (२८)

उस महाभयकर विषहीन महानाग ने च्यवन ऋषि को रसातल में ले जाकर छोड़ दिया । (२९)

नाग से मुक्त होते ही भार्गवश्रेष्ठ च्यवन वहाँ चारों ओर से नागकन्याओं द्वारा पूजित होते हुए विचरण करने लगे । (३०)

विचरण करते हुए वे दानवों के विशाल नगर में प्रविष्ट हुए । वहाँ श्रेष्ठ दैत्यों द्वारा पूजित प्रह्लाद ने उन्हें देखा । (३१)

महातेजस्वी प्रह्लाद ने भृगुपुत्र की वयायोग्य पूजा की । पूजोपरान्त उनके बैठने पर उनसे आगमन का वारण पूछा । (३२)

उन्होंने कहा—हे महाराज ! आज मैं महाफलदायक श्रेष्ठतीर्थ में स्नान करने तथा अकुलीश्वर का दर्शन करने आया था । (३३)

नदी में उतरते ही एक नाग ने मुझे हठान् पन्द्र

प्रह्लाद उवाच ।

भगवन् कानि तीर्थानि पृथिव्यां कानि चाम्बरे ।
रसातले च कानि स्युरेतद् वक्तुं ममार्हसि ॥ ३६

च्यवन उवाच ।

पृथिव्यां नैमिषं तीर्थमन्तरिक्षं च पुष्करम् ।
चक्रतीर्थं महाबाहो रसातलतले विदुः ॥ ३७

पुलस्त्य उवाच ।

श्रुत्वा तद्भार्गववचो दैत्यराजो महासुने ।
नैमिषं गन्तुकामस्तु दानवानिदमब्रवीत् ॥ ३८

प्रह्लाद उवाच ।

उत्तिष्ठध्वं गमिष्याम, स्नातुं तीर्थं हि नैमिषम् ।
द्रव्यामः पुण्डरीकाक्षं पीताससमच्युतम् ॥ ३९

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्त्वा दानवेन्द्रेण सर्वे ते दैत्यदानवाः ।
चक्रुर्द्योगमतुलं निर्जग्मुश्च रसातलात् ॥ ४०

लिया । वह मुझे पाताल में लाया और मैंने वहाँ आप को भी देखा । (३४)

च्यवन की इस बात को सुन कर वाक्य-बोधिद्विती-श्वर ने यह धर्मसंयुक्त वाक्य कहा । (३५)

प्रह्लाद ने कहा—हे भगवन् ! कृपया मुझसे यह कहिये कि पृथ्वी, आकाश और पाताल में कौन कौन से तीर्थ हैं ? (३६)

च्यवन ने कहा—हे महाबाहो ! पृथ्वी में नैमिष, अन्तरिक्ष में पुष्कर और रसातल में चक्रतीर्थ प्रतिष्ठ हैं । (३७)

पुलस्त्य ने कहा—हे महासुने ! भार्गव की इस बात को सुन कर नैमिष तीर्थ में जाने के लिए इच्छुक दैत्यराज ने दानवों से यह कहा—

प्रह्लाद ने कहा—“उठो, हम सभी नैमिषतीर्थ में स्नान करने जायेंगे तथा वहाँ पीताम्बरधारी अच्युत पुण्डरीकाक्ष के दर्शन करेंगे ।” (३८)

पुलस्त्य ने कहा—दानवेन्द्र के ऐसा कहने पर वे सभी दैत्य और दानव विपुल उद्योग किए एव रसातल से बाहर निकले । (४०)

ते समभ्येत्य दैतेया दानवाश्च महाबलाः ।
 नैमिषारण्यमागत्य स्नानं चक्रुर्मुदान्त्रिताः ॥ ४१
 ततो द्वितीयः श्रीमान् मृगग्यां स चचार ह ।
 चरन् सरस्वतीं पुण्यां ददर्श निमलोदकाम् ॥ ४२
 तस्यादूरे महाशालं शालवृक्षं श्रौक्षितम् ।
 ददर्श बाणानपरान् मूढे लग्नान् परस्परम् ॥ ४३
 तवस्तानद्भ्रुताकारान् बाणान् नामोपरीतकान् ।
 दृष्ट्वाऽतुल तदा चक्रे क्रोधं दैत्येश्वरः किल ॥ ४४
 स ददर्श ततोऽदूरात्कृष्णाजिनधरो मुनी ।
 समुन्नतजटाभारो तपस्यासक्तमानसौ ॥ ४५
 तयोश्च पार्श्वयोर्दिव्ये धनुषी लक्ष्णान्त्रिते ।
 शार्ङ्गमाजगवं चैव अक्षय्यौ च महेशुधी ॥ ४६
 तौ दृष्ट्वाऽमन्यत तदा दाम्भिकविति दानवः ।
 तव प्रोवाच वचनं तावुभौ पुरुषोत्तमौ ॥ ४७
 किं मवद्भवा समारब्धं दम्भं धर्मविनाशनम् ।

उन महाबलवान् दितिनन्दनों एव दानवों ने नैमिषारण्य
 में आकर आनन्द से स्नान किया । (४१)

तदनन्तर द्वितीयः श्रीमान् प्रह्लाद मृगया करने के
 लिये विचरण करने लगे । भ्रमण करते हुए उन्होंने पवित्र
 एव निर्मल जलवाढी सरस्वती नदी को देखा । (४२)

यहाँ से थोड़ी दूर पर बाणों से विद्ध वड़ी बड़ी शालाओं
 वाले एक शाल वृक्ष को देखा । अन्य बाण एक दूसरे के
 मुख से सलग्न थे । (४३)

तदनन्तर उन अद्भुत आकार वाले नागोपधीत
 बाणों को देख कर दैत्येश्वर को भयकर क्रोध हुआ । (४४)
 तदुपरान्त उन्होंने दूर से ही कृष्णाजिनधारी, समुन्नत
 जटायुक तथा तपस्या में लीन दो मुनियों को
 देखा । (४५)

उन दोनों के पार्श्व में शार्ङ्ग और आजगव नामक
 सुलक्षणयुक्त दिव्य दो धनुष और दो अक्षय तथा षडे तरुण
 वर्तमान थे । (४६)

उन्हें देखकर दानव प्रह्लाद ने उनको दाम्भिक समझा ।
 तदनन्तर उन्होंने उन दोनों श्रेष्ठ पुरुषों से कहा— (४७)

“तुम दोनों धर्मविनाशक दम्भ को क्यों कर रहे हो ?

क तपः क जटाभारः क चेमो प्रवराणुषी ॥ ४८
 अथोवाच नरो दैत्यं का ते चिन्ता द्वितीयः ।
 सामर्थ्ये सति यः कुर्यात् तत्संपद्येत तस्य हि ॥ ४९
 अथोवाच द्वितीयस्तो का शक्तिर्धनुषयोरिह ।
 मयि तिष्ठति दैत्येन्द्रे धर्मसेतुप्रवर्तके ॥ ५०
 नरस्त प्रत्युवाचाथ आवाभ्यां शक्तिरुज्विता ।
 न कश्चिच्छक्रुयाद् योद्धुं नरनारायणौ युधि ॥ ५१
 दैत्येश्वरस्तन्म. क्रुद्धः प्रतिज्ञामारुरोह च ।
 यथा कथंविज्जेष्यामि नरनारायणौ रणे ॥ ५२
 इत्येवमुक्त्वा वचन महात्मा
 द्वितीयः स्थाप्य धलं वनान्ते ।
 वितत्य चापं गुणमानिकृष्य
 तलध्वनिं घोरतरं चकार ॥ ५३
 ततो नरस्त्वाजगवं हि चाप-
 मानन्य बाणान् सुप्रहृञ्चिताग्रान् ।

कहाँ तुम्हारी तपस्वा, वहाँ तुम्हारा जटाभार और कहाँ ये
 दोनों श्रेष्ठ आयुध ?” (४८)

तदनन्तर नर ने दैत्य से कहा—“हे द्वितीय ! तुम
 क्यों चिन्ता कर रहे हो ? सामर्थ्य रहने पर जबकि जो कर्म करता
 है उसका वह कार्य उसको शोभा देता है । (४९)

तदुपरान्त द्वितीयः प्रह्लाद ने उन दोनों से कहा—
 धर्मसेतुप्रवर्तक मुझ दैत्येन्द्र के रहते यहाँ तुम दोनों की
 क्या शक्ति है ? (५०)

तदनन्तर नर ने उन्हें प्रत्युत्तर दिया—“हम प्रचण्ड
 शक्ति से युक्त हैं । हम दोनों नर और नारायण से संभर में
 कोई भी युद्ध नहीं कर सकते । (५१)

तदुपरान्त दैत्येश्वर ने क्रुद्ध होकर प्रतिज्ञा की—“मैं
 युद्ध में जिस किसी भी प्रकार नर और नारायण को
 जीतूँगा ।” (५२)

ऐसा वचन कह कर महात्मा द्वितीयः ने वन की सीमा
 पर अपने सैन्य को स्थापित कर धनुष को फैलाया और
 प्रत्यक्षा चढ़ा कर घोरतर तलध्वनि की । (५३)

तदनन्तर नर ने आजगव धनुष को झुका कर अनेक
 सुतीक्ष्ण बाणों को छोड़ा । किन्तु दैत्यपति ने अनेक श्वेत्-

भ्रमोच तानप्रतिमैः पृथक्कै-
 श्चिच्छेद दैत्यस्तपनीयपुङ्खैः ॥ ५४
 छिन्नान् समीक्ष्याथ नरः पृथक्कान्
 दैत्येश्वरेणाप्रतिमेन संख्ये ।
 क्रुद्धः समानम्य महाधनुस्ततो
 भ्रमोच चान्वान् विविधान् प्रपत्कान् ॥ ५५
 एकं नरो द्वौ द्वित्रिजेश्वरश्च
 त्रीन् धर्मसुनुश्चतुरो द्वितीशः ।
 नरस्तु बाणान् प्रभ्रमोच पञ्च
 षट् दैत्यनाथो निशितान् पृथक्कान् ॥ ५६
 सप्तसिंहरयो द्विचतुश्च दैत्यो
 नरस्तु षट् त्रीणि च दैत्यमुख्ये ।
 षट्त्रीणि चैकं च द्वितीशरेण
 मुक्तानि बाणानि नराय विप्र ॥ ५७
 एकं च षट् पञ्च नरेण भ्रुवता-
 स्त्वष्टौ शराः सप्त च दानवेन ।
 षट् सप्त चाष्टौ नव पण्वरेण
 द्विसप्ततिं दैत्यपतिः ससर्ज ॥ ५८

पुंख वाले अप्रतिम बाणों से उन बाणों को छिन्न भिन्न कर दिया । (५४)

वधुप्रसन्न नर ने युद्ध में अप्रतिम दैत्येश्वर के द्वारा बाणों को छिन्न हुआ देख क्रुद्ध होकर अपने महान् धनुष को झुकते हुए अग्य अनेक बाणों को छोड़ा । (५५)

नर के एक बाण छोड़ने पर द्वितीश्वर ने दो बाण छोड़ा, धर्मपुत्र के तीन बाणों पर द्वितीश ने चार बाण छोड़ा । तदनन्तर नर के पाँच बाण छोड़ने पर दैत्यश्रेष्ठ ने छ तौत्र बाणों को छोड़ा । (५६)

हे विप्र ! ऋषिमुख्य के सात बाण छोड़ने पर दैत्य ने आठ बाण छोड़ा । नर के द्वारा दैत्य पर नव बाण छोड़े जाने पर दैत्यपति ने नर पर दश बाण छोड़ा । (५७)

नर के बारह बाण छोड़ने पर दानव ने पन्द्रह बाण छोड़ा । नर के छत्तीस बाण छोड़ने पर दैत्यपति ने बहत्तर बाण चलाया । (५८)

शतं नरस्त्रीणि शतानि दैत्यः
 षट् धर्मपुत्रो दश दैत्यराजः ।
 ततोऽप्यसरपेयतरान् हि बाणान्
 भ्रमोचतुस्तौ सुभृश हि कोपात् ॥ ५९
 ततो नरो बाणगणैरसर्प्यै-
 रवास्तरङ्गमिमयो दिशः खम् ।
 स चापि दैत्यप्रवरः प्रपत्कै-
 श्चिच्छेद वेगात् तपनीयपुङ्खैः ॥ ६०
 ततः पतत्रिभिर्वारौ सुभृशं नरदानथौ ।
 युद्धे वरास्त्रैर्घुष्येता घोररूपैः परस्परम् ॥ ६१
 ततस्तु दैत्येन वरास्त्रपाणिना
 चापे नियुक्तं तु पितामहास्त्रम् ।
 महेश्वरास्त्रं पुरुषोत्तमेन
 सम समाहृत्य निपेततुस्तौ ॥ ६२
 प्रज्ञास्त्रे तु प्रशमिते प्रह्लादः शोधमूर्च्छितः ।
 गदा प्रगृह्य तरसा प्रचस्कन्द रथोत्तमात् ॥ ६३
 गदापाणिं समायान्तं दैत्य नारायणस्तदा ।
 दृष्ट्वाऽथ पृष्ठतश्चक्रे नरं योद्धुमनाः स्वयम् ॥ ६४

नर के सौ बाणों पर दैत्य ने तीन सौ बाण चलाया । धर्मपुत्र के दश सौ बाण पर दैत्यराज ने एक हजार बाण छोड़ा । तदनन्तर उन दोनों ने अत्यन्त क्रोध से असंख्य बाण छोड़े । (५९)

तदनन्तर नर ने असंख्य बाणों से पृथ्वी, आकाश और दिशाओं को आच्छन्न कर दिया । उस दैत्यप्रवर ने भी बड़े वेग से स्वर्णपुख वाले बाणों द्वारा उनके बाणों को काट दिया । (६०)

रतुप्रसन्न नर और दानव दोनों धीर चाणों तथा भय-पर श्रेष्ठ अस्त्रों से परस्पर सग्राम करने लगे । (६१)

तदनन्तर दैत्य ने श्रेष्ठ अस्त्र हाथ में लेकर धनुष पर श्रद्धाश्च निशोजित किया पथ पुरुषोत्तम नर ने माहेश्वरास्त्र का प्रयोग किया । वे दोनों अस्त्र परस्पर एक दूसरे को समाहृत कर गिर गए । (६२)

ब्रह्मास्त्र व्यर्थ होने पर क्रोधमूर्च्छित प्रह्लाद वेग से गदा लेकर उत्तम रथ से बूद पड़े । (६३)

ततो द्वितीयः सगदः समाद्रवत्

सशार्ङ्गपाणिं तपसां निधानम् ।

इति श्रीवामनपुराणे सप्तमोऽध्याय ॥७॥

ख्यातं पुराणार्पिमुदारविक्रमं

नारायणं नारद लोकपालम् ॥ ६५

८

पुलस्त्य उवाच ॥

शार्ङ्गपाणिनमायान्तं दृष्ट्वाऽग्रे दानवेश्वरः ।
परिभ्राम्य गदां वेगात् मूर्ध्नि साध्यमताडयत् ॥ १
ताडितस्याय गदया धर्मपुत्रस्य नारद ।
नेत्राभ्यामपतद् वारि वह्निवर्षनिभं क्षुषि ॥ २
मूर्ध्नि नारायणस्यापि सा गदा दानवार्पिता ।
जगाम क्षतधा ब्रह्मज्यौलशृङ्गे यथाऽश्वनिः ॥ ३
ततो निवृत्य दैत्येन्द्रः समास्थाय रथं द्रुतम् ।

आदाय कार्मुकं वीरस्तूणाद् वाणं समाददे ॥ ४
आनम्य चापं वेगेन गार्द्धपत्राच्छिखीमुखान् ।
सुमोच साध्याय तदा क्रीधान्धकारिताननः ॥ ५
तानापतत एवाशु वाणांधन्द्रार्द्धसन्निभान् ।
चिच्छेद वाणैरपरैर्निर्विभेद च दानवम् ॥ ६
ततो नारायणं दैत्यो दैत्यं नारायणः शरैः ।
आविष्येतां तदाऽन्योन्यं मर्मभिर्द्धिरजिह्वगैः ॥ ७
ततोऽन्तरे संनिपातो देवानामभयन्तुने ।

उस समय नारायण ने गदापाणि दैत्य को आते देख कर स्वय युद्ध करने की इच्छा से नर को पीछे कर दिया ।

(६४)

तदनन्तर हे नारद ! गदायुक्त दैत्यपति, तपोनिधान शार्ङ्गधनुषारी प्रसिद्ध पुरातन श्रुति महापराक्रमशाली लोकपति नारायण की ओर हीड़े ।

(६५)

श्रीवामनपुराण में सप्तम अध्याय समाप्त ॥७॥

९

पुलस्त्य ने कहा—दानवेश्वर ने शार्ङ्गपाणि साध्य (नारायण) को सामने आते देख गदा को घुमाकर वेग से धक्के शिर पर प्रहार किया ।

(१)

हे नारद ! गदा से ताडित धर्मपुत्र के नेत्रों से अग्नि वषो के सदृश अश्रुजल भूमि पर गिर पड़ा ।

(२)

हे ब्रह्मन् ! शूलशृंग पर गिर कर जैसे वस्त्र टूट जाता है उसी प्रकार दानव द्वारा नाद्ययण के शिर पर चलायी गयी गदा सैकड़ों टुकड़े हो गई ।

(३)

तदनन्तर शीघ्रतापूर्वक लीट कर वीर दैत्येन्द्र ने रथ पर आरूढ़ हो धनुष लेकर तरकस से श्राण निकाला ।

(४)

तदुपरान्त श्रीधान्य दैत्येन्द्र ने वेग से धनुष को झुका कर शृंग के पल्ल वाले अनेक वाणों को साध्य की ओर चलाया ।

(५)

नारायण ने शीघ्रतापूर्वक आ रहे उन अर्धचन्द्र तुल्य वाणों को वाणों से काट डाला और अन्य वाणों से दानव का भेदन किया ।

(६)

तदनन्तर दैत्य ने नारायण को और नारायण ने दैत्य को परस्पर मर्मभेदी एव सीधे चलने वाले वाणों से विद्ध किया ।

(७)

हे मुने ! उस समय शीघ्रतापूर्वक हो रहे इस लड़पु, किंचिद्व

(35)

दिवक्षणां तदा युद्धं लघु चित्रं च सुष्ठु च ॥ ८
 ततः सुराणां दुन्दुभ्यस्त्वपाघन्त महास्त्रनाः ।
 पुष्पवर्षमनौषम्यं मृष्टुचुः साध्यदैत्ययोः ॥ ९
 ततः पयस्तु देवेषु गगनस्थेषु तातुभौ ।
 अयुष्येतां महेष्यासौ प्रेक्षकप्रीतिवर्द्धनम् ॥ १०
 बबन्धतुस्तदाकाशं तातुभौ शरवृष्टिभिः ।
 दिशश्च विदिशश्चैव छादयेतां शरोत्करैः ॥ ११
 ततो नारायणश्चापं समाकृष्य महामुने ।
 रिभेद मार्गणैस्तीक्ष्णैः प्रह्लादं सर्वमर्मसु ॥ १२
 तथा दैत्येश्वरः क्रुद्धश्चापमानम्य वेगवान् ।
 रिभेद हृदये वाहोर्वदने च नरोत्तमम् ॥ १३
 ततोऽस्त्यतो दैत्यपते कार्मुकं मृष्टिन्धनात् ।
 चिच्छेदैकेन बाणैर्न चन्द्रार्धाकारवर्षसा ॥ १४
 अपास्त्यत धनुश्छिन्नं चापमादाय चापरम् ।
 अधिप्य लाघवात् कृत्वा वर्षं निशिताञ्जशरान् ॥ १५

एव सुन्दर युद्ध को देखने को इच्छा वाले देवताओं का समूह आकाश में एत्रित हो गया । (८)

तदनन्तर महान् शब्दकारी दुन्दुभियों को घनाकर देवताओं ने साध्य और दैत्य पर अनुपम पुष्प-वर्षा की । (९)

तदुपरान्त उन दोनों महाधनुषारियों ने आकाशरथ दोनों के सामने प्रेक्षकों की प्रीति बढ़ाने वाला युद्ध किया । (१०)

उस समय उन दोनों ने वाणों की वृष्टि से आकाश को आवृत कर दिया तथा बाणों के समूह से दिशाओं ए विदिशाओं को आच्छादित कर दिया । (११)

हे महामुने ! तदनन्तर नारायण ने धनुष को खींच कर वीक्षण वाणों से प्रह्लाद के सभी मर्मस्थलों में प्रहार किया तथा वेगवान् दैत्येश्वर ने क्रोधपूर्वक धनुष को झुकाकर नरोत्तम के हृदय, दोनों बाहों और मुख में भेदन किया । (१२-१३)

तदनन्तर (नारायण ने) एक चन्द्रार्धाकार तेजस्वी बाण से बाण चला रहे दैत्यपति के धनुष को मृष्टिन्धन से काट दिया । (१४)

(दैत्यपति ने) कटे धनुष को फेंक कर दूसरा धनुष

तानप्यस्य शरान् साध्यश्छित्त्वा धार्णरवारयत् ।
 कार्मुकं च धुरप्रेण चिच्छेद पुरुषोत्तमः ॥ १६
 छिन्न छिन्नं धनुदैत्यस्त्वन्धन्यत्समाददे ।
 समादत्तं तदा साध्यो मुने चिच्छेद लाघवात् ॥ १७
 संछिन्नेन्यथ चापेषु जग्राह दितिजेश्वरः ।
 परिघं दारुण दीर्घं सर्वलोहमय दृढम् ॥ १८
 परिगृह्णाथ परिघं भ्रामयामान दानवः ।
 भ्राम्यमाण स चिच्छेद नारायेन महामुनिः ॥ १९
 छिन्ने तु परिघे श्रीमान् प्रह्लादो दानवेधरः ।
 सुद्वारं भ्राम्य वेगेन प्रचिक्षेप नराग्रजे ॥ २०
 तमापतन्त बलान् मार्गणैर्दशभिर्मुने ।
 चिच्छेद दशधा साध्यः स छिन्नो न्यपतद् मुनि ॥ २१
 सुद्वारे वितथे जाते प्रासमादिष्य वेगवान् ।
 प्रचिक्षेप नराग्रयाय त च चिच्छेद घर्मजः ॥ २२
 प्रासे छिन्ने ततो दैत्यः शक्तिमादाय चिरिपे ।

ले लिया और शीघ्र ही उस पर प्रत्यक्षा चढ़ा कर वीक्षण वाणों की वर्षा की । (१६)

उसके धन शरों को भी साध्य ने बाणों से छिन्न कर निमारित पर दिया एव पुरुषोत्तम ने तीक्ष्ण बाण से उसके धनुष को भी काट डाला । (१७)

हे मुने ! धनुष के छिन्न होने पर दैत्यराज ने मारम्बार दूसरा धनुष ग्रहण किया किन्तु साध्य ने छिड़े गये उन धनुषों को भी लाघव से काट दिया । (१७)

तदनन्तर धनुषों के कट जाने पर दितिजेश्वर ने भयङ्कर दृढ़ एव दीर्घ लोहमय परिघ को ग्रहण किया । (१८)

दानव ने परिघ को लेकर उसे घुमाया । घुमाए जा रहे परिघ को महामुनि (नारायण) ने बाण से काट डाला । (१९)

परिघ के कट जाने पर श्रीमान् दानवेश्वर प्रह्लाद ने वेग से सुद्वार को घुमा कर नारायण के ऊपर फेंका । (२०)

हे मुने ! उस आ रहे सुद्वार को बलवान् साध्य ने दश वाणों से दश भागों में काट दिया और वह कट कर पृथ्वी पर गिर पड़ा । (२१)

सुद्वार के व्यर्थ हो जाने पर वेगवान् दैत्य ने प्राप्त लेकर नरोत्तम के ऊपर फेंका । धमनन्दन ने उसे भी काट दिया । (२२)

तां च चिच्छेदं धलमात् क्षुरप्रेण महातपाः ॥ २३
 छिन्नेषु तेषु शस्त्रेषु दानवोऽन्यन्महद्बलुः ।
 समादाय ततो वाणैरवतस्तार नारद ॥ २४
 ततो नारायणो देवो दैत्यनाथं जगद्गुरुः ।
 नाराचेन जघानाथ हृदये सुरतापसः ॥ २५
 संभिन्नहृदयो ब्रह्मन् देवेनाद्भुतकर्मणा ।
 निपपात रथोपस्थे तमपोवाह सारथिः ॥ २६
 स संज्ञां मुचिरेणैव प्रतिलभ्य दितीश्वरः ।
 सुदृढं चापमादाय भूयो योद्धुमुपागतः । २७
 तमागतं सनिरीक्ष्य प्रत्युवाच नराग्रजः ।
 गन्ड दैत्येन्द्र चोत्स्यामः प्रातस्त्वाह्निकमाचर ॥ २८
 एयमुक्तो दितीशस्तु साध्येनाद्भुतकर्मणा ।
 जगाम नैमिषारण्यं क्रियां चक्रे तदाऽऽह्निकीम् ॥ २९
 एवं युध्यति देवे च प्रह्लादो ह्यसुरो मुने ।
 रात्रौ चिन्तयते युद्धे कथं जेष्यामि दाम्भिकम् ॥ ३०
 एवं नारायणेनाऽसौ सहायुष्यत नारद ।

दिव्यं वर्षसहस्रं तु दैत्यो देवं न चाजयत् ॥ ३१
 ततो वर्षसहस्रान्ते ह्यजिते पुरुषोत्तमे ।
 पीतवाससमभ्येत्य दानवो वाक्यमब्रवीत् ॥ ३२
 किमर्थं देवदेवेश साध्यं नारायणं हरिम् ।
 विजेतुं नाऽद्य शक्नोमि एतन्मे कारणं वद ॥ ३३
 पीतवासा उवाच ।
 दुर्जयोऽसौ महागहस्त्वया प्रह्लाद धर्मजः ।
 साध्यो विप्रवरो धीमान् मृधे देवासुरैरपि ॥ ३४
 प्रह्लाद उवाच ।
 यद्यसौ दुर्जयो देव मया साध्यो रणाजिरे ।
 तत्कथं यत्प्रतिज्ञातं तदसत्यं भविष्यति ॥ ३५
 हीनप्रतिज्ञो देवेश कथं जीवेत मादृशः ।
 दत्माचवाग्रतो निष्णो करिष्ये कायशोधनम् ॥ ३६
 पुलस्त्य उवाच ।
 इत्येयमुक्त्वा यचनं देवाग्रे दानवेश्वरः ।

प्राप्त के छिन्न होने पर दैत्य ने शक्ति लेकर फेंकी ।
 बलवान् महातपा नारायण ने क्षुरप द्वारा उसे भी काट
 दिया । (२३)
 हे नारद ! उन अर्धों के छिन्न होने पर दानव ने अन्य
 महाधनुष लेकर वाणों की वर्षा की । (२४)
 तदनन्तर सुरतापस जगद्गुरु नारायण देव ने दैत्यपति
 के हृदय में नाराच से प्रहार किया । (२५)
 हे ब्रह्मन् ! अद्भुतकर्मा देव द्वारा छिदे हृदय वाला वह
 दैत्य रथ के मध्य भाग में गिर पड़ा । उसे सारथी वहाँ से
 हटा ले गया । (२६)
 बहुत देर बाद चेतना प्राप्त कर सुदृढ धनुष लेकर
 दितीश्वर पुन युद्ध करने के लिए आया । (२७)
 उसे आया देख नरामज ने कहा—“हे दैत्येन्द्र ! हम
 प्रातः काल युद्ध करेंगे, जाओ इस समय आह्निक कर्म
 करो । (२८)
 अद्भुतकर्मा साध्य के ऐसा कहने पर दितीश नैमिषा-
 रण्य में गया और वहाँ उसने आह्निक कर्म किया । (२९)
 हे मुने ! देव के ऐसा युद्ध करने पर असुर प्रह्लाद
 रात्रि में यह विचार करता था कि युद्ध में दाम्भिक को कैसे

जीतूँगा ? (३०)
 हे नारद ! इस प्रकार दैत्य ने नारायण के साथ दिव्य
 सहस्र वर्षों तक युद्ध किया, परन्तु वह देव को नहीं जीत
 सका । (३१)
 तदनन्तर सहस्र वर्षों के उपरान्त भी पुरुषोत्तम नारायण
 के अपराजित रहने पर दानव ने पीताम्बरधारी विष्णु के
 पास जाकर कहा— (३२)
 “हे देवदेवेश ! मैं साध्य नारायण हरि को आज तक
 क्यों नहीं जीत सका ? मुझे इसका कारण बतलाएँ ।” (३३)
 पीताम्बरधारी ने कहा—“हे प्रह्लाद ! महाबाहु धर्म-
 पुत्र मुम्हारे द्वारा दुर्जेय है । विप्रवर धीमान् साध्य देवा-
 सुरों द्वारा भी युद्ध में अजेय है ।” (३४)
 प्रह्लाद ने कहा—“हे देव ! यदि वह साध्य देव रणा-
 गण में मेरे द्वारा दुर्जेय है तो मैंने जो प्रतिज्ञा की है
 उसका क्या होगा ? वह तो मिथ्या होगी ।” (३५)
 “हे देवेश ! मेरे जैसा व्यक्ति हीनप्रतिज्ञ होकर कैसे
 जीवित रहेगा ? इसलिये हे विष्णु ! मैं आप के सामने
 धपना शरीर शोधन करूँगा ।” (३६)
 पुलस्त्य ने कहा—विष्णु के सामने ऐसा यचन कह कर

शिरःस्नातस्तदा तस्यै गृणन् ब्रह्म सनातनम् ॥ ३७
ततो दैत्यपतिं विष्णुः पीतवासाऽम्बरीद्वचः ।

गच्छ जेष्यसि भक्त्या तं न पुद्गेन कथंचन ॥ ३८

प्रह्लाद उवाच ।

मया जितं देवदेव त्रैलोक्यमपि सुव्रत ।

जितोऽयं त्वत्प्रसादेन शक्रः किञ्चित् धर्मजः ॥ ३९

असौ यद्यजयो देव त्रैलोक्येनापि सुव्रतः ।

न स्थातुं त्वत्प्रसादेन शक्यं किञ्च करोम्यज ॥ ४०

पीतवासा उवाच ।

सोऽहं दानवशार्दूल लोकानां हितकाम्यया ।

धर्मं श्रवर्चापवितुं तपश्चर्यां समास्थितः ॥ ४१

तस्माद्यदिच्छसि जयं तमाराधय दानव ।

तं पराजेष्यसे भक्त्या तस्माच्छुश्रूष धर्मजम् ॥ ४२

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्तः पीतवासेन दानवेन्द्रो महात्मना ।

अग्रवीद्वचनं हृष्टः समाह्वयाऽम्बकं मुने ॥ ४३

दानवेश्वर शिरःस्नात होकर सनातन ब्रह्म का जप करते हुए बैठ गए । (३७)

तदनन्तर पीताम्बरधारी विष्णु ने दैत्यपति से यह वचन कहा—“जाओ, उन्हें भक्ति से जीत सकोगे, युद्ध से कथमपि नहीं ।”

प्रह्लाद ने कहा—“हे देवदेव ! हे सुव्रत ! आपकी कृपा से मैंने त्रैलोक्य तथा इन्द्र को जीता है । इस धर्म-नन्दन की क्या बात है ?” (३८)

‘हे अजन्मा ! यदि वह सुव्रत त्रैलोक्य से भी अजेय है तथा आपके प्रसाद से भी मैं उसके सामने नहीं टहर सकता तो मैं क्या करूँ ?’ (३९)

पीताम्बरधारी ने कहा—हे दानवेश्वर ! वह मैं ही हूँ जो जप की हितकामना से धर्मप्रवर्तनार्थ तपश्चर्या कर रहा हूँ । (४०)

अतः हे दानव ! यदि तुम विजय चाहते हो तो उनकी आराधना करो । तुम उन्हें भक्ति द्वारा पराजित कर सकोगे अतः धर्मनन्दन की सेवा करो । (४१)

पुलस्त्य ने कहा—हे मुने ! महात्मा पीताम्बरधारी के पीसा कहने पर प्रसन्न दानवेन्द्र ने अन्धक को बुला कर यह वाक्य कहा— (४२)

प्रह्लाद उवाच ।

दैत्याश्च दानवाश्चैव परिपाल्यास्तवयान्धक ।

मयोत्सृष्टमिदं राज्यं प्रतीच्छस्व महाभुज ॥ ४४

इत्येवमुक्तो जग्राह राज्यं ह्रीरुण्यलोचनिः ।

प्रह्लादोऽपि तदाऽगच्छत् पुण्यं बदरिकाश्रमम् ॥ ४५

दृष्ट्वा नारायण देवं नरं च दितिवेधरः ।

कृताञ्जलिपुटो भूत्वा वचन्दे चरणौ तयोः ॥ ४६

तमुवाच महातेजा वास्यं नारायणोऽव्ययः ।

किमर्थं प्रणतोऽसीह मामजित्वा महासुर ॥ ४७

प्रह्लाद उवाच ।

कस्त्वां जेतुं प्रभो शक्तः कस्तन्तः पुरुषोऽधिकः ।

त्वं हि नारायणोऽनन्तः पीतवासा जनार्दनः ॥ ४८

त्वं देवः पुण्डरीकाक्षस्त्ये विष्णुः शार्ङ्गचापधृक् ।

त्वमव्ययो महेशानः शाश्वतः पुरुषोत्तमः ॥ ४९

त्वां योगिनश्चिन्तयन्ति चार्चयन्ति भनीपिणः ।

जपन्ति स्नातृकास्त्वां च यजन्ति त्वां च याज्ञिकाः ॥ ५०

प्रह्लाद ने कहा—“हे अन्धक ! तुम दैत्यों और दानवों का प्रतिपालन करो । हे महाभुज ! मेरे द्वारा तब तक यह राज्य तुम ग्रहण करो । (४४)

इस प्रकार कहने पर ह्रीरुण्यक्ष के पुत्र ने राज्य ग्रहण किया । तदनन्तर प्रह्लाद भी पवित्र बदरिकाश्रम चले गये । (४५)

दितिवेधर ने नारायण देव तथा नर को देख हाथ जोड़ कर उनके चरणों में प्रणाम किया । (४६)

महातेजस्यो अव्यय नारायण ने उससे कहा—“हे महासुर ! मुझ बिना जीत तुम क्यों यहाँ प्रणत हुए हो ?” (४७)

प्रह्लाद ने कहा—हे प्रभो ! आपको कौन जीत सकता है ? कौन पुरुष आप से बढ़कर हो सकता है ? आप ही अनन्त नारायण पीताम्बरधारी जनार्दन हैं । (४८)

आपकी देव पुण्डरीकाक्ष तथा शार्ङ्गधनुषधारी विष्णु हैं । आप अव्यय, महेश्वर तथा शाश्वत पुरुषोत्तम हैं । (४९)

‘योगी आपको ध्यान करते हैं, मनीषी आपकी पूजा करते हैं, स्नातक आपके नाम का जप करते हैं तथा याज्ञिक आपका यजन करते हैं ।’ (५०)

स्वमच्युतो हृषीकेशश्चक्रपाणिर्धराधरः ।
 महामीनो ह्यशिरास्त्वमेव वरकच्छपः ॥ ५१
 हिरण्याक्षरिपुः शीमान् भगवानथ सूकरः ।
 मत्पितृनाशनकरो भवानपि नृकेसरी ॥ ५२
 ब्रह्मा त्रिनेत्रोऽभरराड् हुताश्वः
 प्रेताधिपो नीरपतिः समीरः ।
 सूर्यो मृगाङ्कोऽचलजङ्गमाघो
 भवान् विभो नाथ खगेन्द्रकेतो ॥ ५३
 त्वं पृथ्वी ज्योतिराकाशं जलं भूत्वा सहस्रशः ।
 तथा व्याप्तं जगत्सर्वं कस्तवो जेष्यति माघव ॥ ५४
 भक्त्या यदि हृषीकेश तोपमेपि जगद्गुरो ।
 नान्यथा त्वं प्रशक्योऽसि जेतुं सर्वगतान्वय ॥ ५५
 भगवानुवाच ।
 परिदुष्टोऽस्मि ते दैत्य स्तवनेनेन सुव्रत ।
 भक्त्या त्वनन्यया चाहं त्वया दैत्य पराजितः ॥ ५६
 पराजितश्च पुरुषो दैत्य दण्डं प्रयच्छति ।
 दण्डार्थं ते प्रदास्यामि वरं वृष्टुं यमिच्छसि ॥ ५७

“आप अच्युत, हृषीकेश, चक्रपाणि, धराधर, महा मत्स्य, ह्यशीन तथा श्रेष्ठ कच्छप (कूर्मावतार) हैं ।” (५१)
 “आप श्रीमान्, हिरण्याक्ष रिपु, तथा भगवान् सूकर हैं । आप ही मेरे पिता के नाशक भगवान् नृसिंह हैं ।” (५२)
 “आप ब्रह्मा, महादेव, इन्द्र, अग्नि, यमराज, वरुण और वायु हैं । हे विभो ! हे नाथ ! हे खगेन्द्रकेतु (गुरुहृष्यज) ! आप सूर्य, चन्द्र तथा स्थावर और जगम में आदि हैं ।” (५३)

आप पृथ्वी, अग्नि, आकाश, जल हैं । सहस्रों रूपों से आप ने समस्त जगत् को व्याप्त किया है । हे माघव ! कौन आप को जीतेगा ? (५४)

“हे जगद्गुरो ! हे हृषीकेश ! आप भक्ति से ही सन्तुष्ट हो सकते हैं । हे सर्वगत ! हे अविनाशी ! आप दूसरे किसी प्रकार से नहीं जीते जा सकते ।” (५५)

भगवान् ने कहा—हे सुव्रत ! हे दैत्य । तुम्हारे इस स्तव से मैं सन्तुष्ट हूँ । हे दैत्य ! इस अनन्य भक्ति से तुम्हारे द्वार मैं पराजित हो गया हूँ । (५६)

“हे दैत्य ! पराजित पुरुष दण्ड देता है । अस्तु, दण्ड

प्रह्लाद उवाच ।
 नारायण वर याचे यं त्वं मे दातुमर्हसि ।
 तन्मे पापं लयं यातु शारीरं मानसं तथा ॥ ५८
 वाचिकं च जगन्नाथ यत्त्वया सह युष्यतः ।
 नरेण यद्यप्यभवत् वरमेतत्प्रयच्छ मे ॥ ५९
 नारायण उवाच ।
 एवं भवतु दैत्येन्द्र पापं ते यातु संक्षयम् ।
 द्वितीयं प्रार्थय वरं तं ददामि त्वामसुर ॥ ६०
 प्रह्लाद उवाच ।
 या या जायेत मे बुद्धिः सा सा विष्णो त्वदाश्रिता ।
 देवार्चने च निरता त्वच्चित्ता त्वत्परायणा ॥ ६१
 नारायण उवाच ।
 एवं भविष्यत्यसुर वरमन्यं यमिच्छसि ।
 तं वृणोष्व महाबाहो प्रदास्याम्यविचारयन् ॥ ६२
 प्रह्लाद उवाच ।
 सर्वमेव मया लब्धं त्वत्प्रसादादधोक्षज ।
 त्वत्पादपङ्कजाभ्यां हि ख्यातिरस्तु सदा मम ॥ ६३

के निमित्त मैं तुम्हें वर दूँगा । इच्छित वर माँगो ।” (५७)
 प्रह्लाद ने कहा—“हे नारायण ! मैं वर माँगता हूँ जिसे आप दे सकते हैं । हे जगन्नाथ ! आपके तथा नर के साथ युद्ध करने में मेरे शरीर, मन और वाणी से जो भी पाप हुआ हो वह नष्ट हो जाय । मुझे यही वर दें ।” (५८-५९)

नारायण ने कहा—“हे दैत्येन्द्र ! ऐसा ही हो । तुम्हारा पाप नष्ट हो जाय । हे असुर ! दूसरा वर माँगो । उसे भी मैं तुम्हें दूँगा ।” (६०)

प्रह्लाद ने कहा—“हे विष्णु ! मेरे भीतर जो जो बुद्धि उत्पन्न हो वह आपके ही आश्रित, देवार्चन में निरत और आपके चिन्तन में लगी रहे ।” (६१)

नारायण ने कहा—“हे असुर ! ऐसा ही होगा । हे महाबाहो ! अन्य जो वर तुम चाहो माँगो । मैं बिना विचारे तुम्हें दूँगा ।” (६२)

प्रह्लाद ने कहा—“हे अधोक्षज ! आपके अनुग्रह से मुझे सब बुद्धि मिल गयी । आपके चरणरत्नलों से मेरी प्रसिद्धि सदा बनी रहे ।” (६३)

नारायण उवाच ।

एवमस्त्वपरं चात्तु नित्यमेवाश्रयोऽभ्ययः ।

अजरधामरश्वापि मत्प्रसादाद् भविष्यसि ॥ ६४

गच्छस्य दैत्यशार्दूल स्वमावासं कियारत् ।

न कर्मबन्धो भवतो मच्चित्तस्य भविष्यति ॥ ६५

प्रशासयदमूर्त्न दैत्यान् राज्यं पालय शाश्वतम् ।

स्वजातिसदृशं दैत्यं कुरु धर्ममनुत्तमम् ॥ ६६

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्तो लोकनाथेन प्रह्लादो देवमधवीत् ।

कथं राज्यं समादास्ये परित्यक्तं जगद्गुरो ॥ ६७

तमुवाच जगत्स्वामी गच्छ त्वं निजमाश्रयम् ।

हितोपदेष्टा दैत्यानां दानवानां तथा भव ॥ ६८

नारायणेनैवमुक्तः स तदा दैत्यनायकः ।

प्रणिपत्य विभुं तुष्टो जगाम नगरं निजम् ॥ ६९

दृष्टः सभाजितश्चापि दानवैरन्ध्रकेन च ।

निमन्त्रितथ राज्याय न प्रत्यैच्छत्स नारद ॥ ७०

राज्यं परित्यज्य महाऽसुरेन्द्रो

नियोजयन् सत्पथि दानवेन्द्रान् ।

ध्यायन् स्मरन् केशवमप्रमेय

तस्यै तदा योगविशुद्धदेहः ॥ ७१

एवं पुरा नारद दानवेन्द्रो

नारायणेनोत्तमपूरुषेण ।

पराजितश्चापि विमुच्य राज्यं

तस्यै मनो घातरि सन्निवेश्य ॥ ७२

इति श्रीवामनपुराणे अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नारायण ने कहा—“ऐसा ही होगा । इसके अतिरिक्त मेरे प्रसाद से तुम अक्षय, अविनाशी, अजर और अमर होंगे । (६४)

“हे दैत्यशार्दूल ! अपने घर जाओ । सदा (धर्म) कार्य में रह रहे । मुझ में चित्त लगाये रखने से तुम्हें कर्म बन्धन नहीं होगा । (६५)

“इन दैत्यों का शासन करते हुएशाश्वत राज्य का पालन करो । हे दैत्य ! अपनी जाति के अनुकूल श्रेष्ठ धर्मों का अनुष्ठान करो ।” (६६)

पुलस्त्य ने कहा—लोकनाथ के ऐसा कहने पर प्रह्लाद ने भगवान् से कहा—“हे जगद्गुरो, परित्यक्त राज्य को कैसे ग्रहण करें ?” (६७)

जगत्स्वामी ने उससे कहा—“तुम अपने घर जाओ तथा दैत्यों एव दानवों क हितोपदेशक बनो । (६८)

नारायण के ऐसा कहने पर वे दैत्यनायक (प्रह्लाद) विमुक्तो प्रणाम कर प्रसन्नतापूर्वक अपने नगर चले गये । (६६)

हे नारद ! अन्धक तथा दानवों ने प्रह्लाद को देखा तथा सम्मान किया और उन्हें राज्य स्वीकार करने के लिए निमन्त्रित किया, किन्तु उन्होंने राज्य नहीं स्वीकार किया । (७०)

महासुरेन्द्र (प्रह्लाद) राज्य को छोड़, दानवेन्द्रों को शुभ मार्ग में नियोजित कर तथा अप्रमेय केशव का ध्यान और स्मरण करते हुए योग के द्वारा विमुक्त शरीर होकर अवस्थित हुए । (७१)

हे नारद ! इस प्रकार, प्राचीन समय में पुरुषोत्तम नारायण द्वारा पराजित दानवेन्द्र प्रह्लाद राज्य छोड़ कर विधाता नारायण में चित्त सलग्न कर अवस्थित हुए । (७२)

श्रीवामनपुराणे न षष्ठम अध्याय समाप्त ॥८॥

नारद उवाच ।

नेत्रहीनः कथं राज्ये प्रह्लादेनान्धको मुने ।
अभिषिक्तो जानताऽपि राजधर्म सनातनम् ॥ १

पुलस्त्य उवाच ।

लब्धचक्षुरसौ भूयो हिरण्याक्षेऽपि जीवति ।
ततोऽभिषिक्तो दैत्येन प्रह्लादेन निजे पदे ॥ २

नारद उवाच ।

राज्येऽन्धकोऽभिषिक्तस्तु किमाचरत सुव्रत ।
देवादिभिः सह कथं समास्ते तद् वदस्व मे ॥ ३

पुलस्त्य उवाच ।

राज्येऽभिषिक्तो दैत्येन्द्रो हिरण्याक्षस्तोऽन्धकः ।
तपसाराध्य देवेश शूलपाणि त्रिलोचनम् ॥ ४
अजेयत्वमवभ्यत्वं सुरसिद्धिर्पिपन्नगैः ।
अदाह्यत्वं हुताशेन अकलेषत्वं जलेन च ॥ ५

एव स वरलब्धस्तु दैत्यो राज्यमपालयत् ।
शुक्रं पुरोहितं कृत्वा समध्यास्ते ततोऽन्धकः ॥ ६
ततश्चक्रे सङ्घोष देवानामन्धकोऽसुरः ।
आक्रम्य वसुधां सर्वां मनुजेन्द्रान् पराजयत् ॥ ७
पराजित्य महीपालान् सहायार्थं नियोज्य च ।
तैः समं मेरुशिखरं जगामाद्भुतदर्शनम् ॥ ८
शक्रोऽपि सुरसैन्यानि सङ्घोष्य महागजम् ।
समारुहामरावत्यां गुप्तिं कृत्वा विनिर्ययौ ॥ ९
शक्रस्यानु तयैवान्ये लोरुपाला महौजसः ।
आरुह्य वाहनं स्वं स्वं सायुधा निर्ययुर्बहिः ॥ १०
देवसेनाऽपि च समं श्रेष्ठाद्भुतकर्मणा ।
निर्जगामातिवेगेन गजवाजिरथादिभिः ॥ ११
अग्रतो द्वादशादित्याः प्रष्टवश्च त्रिलोचनाः ।
मघ्येऽष्टौ वसवो विश्वे साध्याधिरस्ताः गणाः ।

६

नारद ने कहा—“हे मुने । सनातन राजधर्म जानते हुए भी प्रह्लाद ने नेत्रहीन अन्धक को क्यों राज्याभिषिक्त किया ? (१)

पुलस्त्य ने कहा—हिरण्याक्ष के जीवित रहने के समय ही पुन उसे दृष्टि प्राप्त हो गई थी । इसी से दैत्य प्रह्लाद ने अपने पद पर उसे अभिषिक्त किया । (२)

नारद ने कहा—“हे सुव्रत । मुझे यह बतलाइये कि अन्धक ने राज्याभिषिक्त होकर क्या किया तथा देवादिकों के साथ कैसा व्यवहार किया ? (३)

पुलस्त्य ने कहा—हिरण्याक्षतनय दैत्येन्द्र अन्धक ने राज्याभिषिक्त होकर तपस्या द्वारा देवेश शूलपाणि त्रिलोचन की आराधना कर उनसे सुर, सिद्ध, ऋषि एवं पन्नगों द्वारा अजेयत्व तथा अवभ्यत्व, आत्मि के द्वारा अदाह्यत्व (जलाया न जाना) और जल से अकलेषत्व (मिथोया न जाना) रूप वरदान प्राप्त कर राज्य का पालन किया और गुनाचार्य को पुरोहित पद पर

नियुक्त कर निवास करने लगा । (४-६)
तदनन्तर अन्धकासुर ने देवताओं को जीतने का उद्योग किया तथा सम्पूर्ण पृथ्वी को आक्रान्त कर श्रेष्ठ राजाओं को पराजित कर दिया । (७)

राजाओं को पराजित कर तथा उन्हें अपनी सहायता में नियुक्त कर उनके साथ वह मेरु पर्वत के देखने में अद्भुत शिखर पर पहुँचा । (८)

इन्द्र भी देव सेना को सज्ज कर महागज ऐरावत पर आरोहण होकर अमरावती में सुरक्षा की व्यवस्था कर बाहर निकले । (९)

अन्यान्य महातेजसी आयुधधारी लोन्पाळ्याण अपने-अपने वाहनों पर सवार होकर इन्द्र के पीछे-पीछे बाहर निकल पड़े । (१०)

अद्भुतकर्मा इन्द्र के साथ हाथी घोड़े रथ आदि से युक्त देवसेना भी बड़े वेग से निकल पड़ी । (११)
अग्रभाग में द्वादश आदित्य, प्रष्टभाग में त्रिष्टोचन,

यज्ञविद्याधराद्याश्च स्वं स्वं वाहनमस्थिताः ॥ १२
नारद उवाच ।

रुद्रादीनां वदस्वेह वाहनानि च सर्वशः ।
एकैकस्यापि धर्मज्ञ परं कौतुहलं मम ॥ १३
पुलस्त्य उवाच ।

भृशुष्य कथयिष्यामि सर्वेषामपि नारद ।
वाहनानि समासेन एकैकस्यानुपूर्वशः ॥ १४
रुद्रहस्तलोत्पन्नो महावीर्यो महाजवः ।
श्वेतजर्णो भ्राजपतिर्देवराजस्य वाहनम् ॥ १५
रुद्रोत्संभवो भीमः कृष्णवर्णो मनोजवः ।
पौण्ड्रको नाम महिषो धर्मराजस्य नारद ॥ १६
रुद्रकर्णमलोद्भूतः श्यामो जलधिसंज्ञकः ।
शिशुमारो दिव्यगतिः वाहनं वरुणस्य च ॥ १७
रौद्रः शुकटचक्राक्षः शैलाकारो नरोत्तमः ।
अम्बिकापादसम्भूतो वाहनं धनदस्य तु ॥ १८
एकादशानां रुद्राणां वाहनानि महामुने ।

(रुद्रगण), मध्य मे आठोंवतु, विषेदेव, साध्य, अधिनीतुमार, मरुद्वरण, यक्ष, विद्याधर आदि अपने-अपने वाहन पर अधिष्ठित होकर चलने लगे । (१२)

नारद ने कहा—“हे धर्मज्ञ । रुद्र आदि के वाहनों का एक एक कर पूर्णतया वर्णन कीजिये । इस विषय में मुझे बहुत कौतुहल हा रहा है । (१३)

पुलस्त्य ने कहा—हे नारद । मुने, मैं एक एक करके क्रमशः सभी के वाहनों का संक्षेप में वर्णन करता हूँ । (१४)

रुद्र के करतल से उत्पन्न महावीर्ययुक्त एवं अति वेगवान् शुकटचक्रवर्णो वाला राजपति (पिरात्रल) देवराज का वाहन है । (१५)

हे नारद । रुद्र के ऊरु से उत्पन्न भयङ्कर, कृष्णवर्णो वाला एवं मन के सदृश वेगवान् पौण्ड्रक नामक महिष धर्मराज का वाहन है । (१६)

रुद्र के कर्ण-मल से उत्पन्न श्यामवर्णो वाला दिव्यगति शील जलधि नामक शिशुमार वरण का वाहन है । (१७)

अम्बिका के शरणों से उत्पन्न भयङ्कर, गायत्री के चक्रवर्ण चक्षुवाला, पर्वताकार नरोत्तम कुबेर का वाहन है । (१८)

गन्धर्वाश्च महावीर्यो भुजगेन्द्राश्च दारुणाः ।
श्वेतानि सौरमेवाणि घृपाण्युग्रजवानि च ॥ १९
रथं चन्द्रमसथार्द्धसहस्रं हसवाहनम् ।
हरयो रथवाहाश्च आदित्या मुनिसत्तम ॥ २०
कुञ्जरस्याथ वसतो यथाश्च नरवाहनाः ।
किन्नरा मुनगारूढा ह्यारूढौ तथाश्चिनौ ॥ २१
सारङ्गाधिष्ठिता ब्रह्मन् मरुतो घोरदर्शनाः ।
शुकारूढाश्च कवयो गन्धर्वाश्च पदातिनः ॥ २२
आरुह्य वाहनान्येवं स्थानि स्वान्यमरोत्तमाः ।
सनद्य निर्ययुर्हृष्टा युद्धाय सुमहौनसः ॥ २३

नारद उवाच ।

गदितानि सुरादीनां वाहनानि त्वया मुने ।
दैत्यानां वाहनान्येव यथावद् वक्तुमर्हसि ॥ २४
पुलस्त्य उवाच ।

भृशुष्य दानवादीनां वाहनानि द्विजोत्तम ।
कथयिष्यामि तत्त्वेन यथावच्छ्रोतुमर्हसि ॥ २५

हे महामुने । एकादश रुद्रों के वाहन महावीर्यशाली गन्धर्वगण, दारुण भुजगेन्द्रगण तथा सुरभि के अश से उत्पन्न तीव्रगति वाले श्वेतघृषभ हैं । (१९)

हे मुनिश्रेष्ठ । चन्द्रमा के रथ के पाहक अर्ध सहस्र (पाँच सौ) हस हैं । आदित्यों के रथ के वाहक घोड़े हैं । (२०)

वसुओं के वाहन कुञ्जर, यक्षों के वाहन नर, किन्नरों के वाहन सर्प एव अधिनीतुमारों के वाहन अश्व हैं । (२१)

हे ब्रह्मन् । भयङ्कर दीपने वाले मरुद्वर्णों के वाहन सारङ्ग हैं, कवियों (भृशुओं) के वाहन शुक हैं तथा अन्यपक्षेण वक्तव्य है । (२२)

इस प्रकार अतितेजस्वी श्रेष्ठ देवगण अपने-अपने वाहनों पर आरूढ एवं सज्ज होकर हर्षपूर्वक युद्धार्थ निकले । (२३)

नारद ने कहा—हे मुने । आपने देवादिकों के वाहनों का वर्णन किया । इसी प्रकार अब दैत्यों के वाहनों का यथा वत् वर्णन करें । (२४)

पुलस्त्य ने कहा—हे द्विजोत्तम । दानवों के वाहन को मुने । मैं त्वचत यथावत् वर्णन करता हूँ । (२५)

अन्धकस्य रथो दिव्यो युक्तः परमवाजिभिः ।
 कृष्णवर्णैः सहस्रारसु त्रिनल्वपरिमाणवान् ॥ २६
 प्रह्लादस्य रथो दिव्यश्चन्द्रवर्णैर्हृद्योत्तमैः ।
 उद्यमानस्तयाऽष्टाभिः श्वेतरुक्ममयः शुभः ॥ २७
 निरोचनस्य च गजः कुजम्भस्य तुरंगमः ।
 जम्भस्य तु रथो दिव्यो हयैः काञ्चनसन्निभैः ॥ २८
 शङ्कुकर्णस्य तुरगो हयग्रीवस्य कुञ्जरः ।
 रथो मयस्य विख्यातो दुन्दुभेश्च महोरगः ।
 शम्बरस्य विमानोऽभूदयःशङ्खोर्ध्वाधिपः ॥ २९
 बलवृत्रो च बलिनौ गदामुसलधारिणौ ।
 पद्भ्यां दैवतमैन्यानि अभिद्रवितुष्टुप्रतौ ॥ ३०
 ततो रणोऽभूत् तुष्टुलः संकुलोऽतिभयंकरः ।
 रजसा संरुतो लोको पिङ्गवर्णेन नारद ॥ ३१
 नाज्ञासीच पिता पुत्रं न पुत्र. पितरं तथा ।
 स्नानेनान्ये निजधनुर्वै परानन्ये च सुव्रत ॥ ३२

अन्धक का अलौकिक रथ कृष्णवर्ण के श्रेष्ठ अश्वों से परिचालित है एवं सहस्र अश्वों (पहिये की नाभि और नेमि के बीच की लकड़ियों) से युक्त और बाह्य सौ हाथ परिमाण वाला है । (२६)

प्रह्लाद का श्वेतरुक्ममय सुन्दर दिव्य रथ चन्द्रवर्ण-वाले आठ उत्तम अश्वों से यादित होता है । (२७)

विरोचन का वाहन हाथी एवं कुजम्भ का घोडा है तथा जम्भ का दिव्य रथ काञ्चन तुरग अश्वों से युक्त है । (२८)

शङ्कुकर्ण का वाहन अश्व, हयग्रीव का वाहन हाथी, मय दानव का विख्यात रथ एवं दुन्दुभि का वाहन विशाल उरग है । शम्बर का वाहन विमान तथा अय शङ्ख का वाहन सिंह है । (२९)

गदा और मुसलधारी बलवान् बल और वृत्र पैदल ही देवनाओं की सेना पर चढ़ाई करने के लिये उद्यत थे । (३०)

तदनन्तर अति भयंकर पमासान युद्ध हुआ । हे नारद ! समस्त लोक पीछे पीछे से आगृत हो गया जिससे पिता पुत्र को तथा पुत्र पिता को पहचान नदी पाने थे । हे सुव्रत ! कुञ्

अभितुष्टो महावेगो रथोपरि रथस्तदा ।
 गजो मत्तगजेन्द्रं च सादी सादिनमभ्यगात् ॥ ३३
 पदातिरपि संक्रुद्धः पदातिनमथोलम्भम् ।
 परस्परं तु प्रत्यघ्नन्नन्योन्यजयकाङ्क्षिणः ॥ ३४
 ततस्तु संकुले तस्मिन् युद्धे दैवासुरे मृने ।
 प्रावर्तत नदी घोरा शमयन्ती रणाद्रजः ॥ ३५
 शोणितोदा रथावर्चा योधसंपट्टवाहिनी ।
 गजकुम्भमहाहूर्मा शरमीना दुरत्यया ॥ ३६
 तीक्ष्णाग्रप्रासमकरा महासिपाह्राहाहिनी ।
 अन्त्रदैवालसंकीर्णा पताकाफेनमालिनी ॥ ३७
 मृध्रकङ्कमहाहंसा श्येनचक्राहमण्डिता ।
 वनवायसकादम्भा गोमायुक्षापदाकुला ॥ ३८
 पिशाचमुनिमंकीर्णा दुस्तरा प्राकृतैर्जनेः ।
 रथप्लवैः मंतरन्तः शूरास्तां प्रजगाहिरे ॥ ३९
 आगुल्फादयमजन्तः सूदयन्तः परस्परम् ।

लोग अपने ही पक्ष के लोगों को तथा कुछ लोग विरोधी पक्ष के लोगों को मारने लगे । (३१-३२)

रथ के ऊपर रथ वेग से आक्रमण करने लगे । हाथी मतवाले हाथी के ऊपर तथा घुड़सवार घुड़सवारों की ओर बढ़े । पैदल सैनिक ने क्रुद्ध होकर अन्य बलशाली पैदल पर आक्रमण किया एवं इस प्रकार ये एक दूसरे को जीतने की इच्छा से परस्पर प्रहार करने लगे । (३३-३४)

हे मुने ! तदनन्तर देवों और असुरों के वस घोर समाप में युद्ध से उत्पन्न धूल का शमन करती हुई शोणित रूपी जल एवं रथ रूपी आवर्त से युक्त तथा योद्धाओं के समूह की बहाने वाली एवं गजकुम्भ रूपी महान् वृषभ तथा शर रूपी मीन से युक्त अगम्य नदी प्रवर्तित हुई । (३५-३६)

(यह नदी) तेज धार वाल प्रास रूपी मकर, महान् असि रूपी प्राद, आँत रूपी शैवाल, पताका रूपी फेन, मृध्र एवं कङ्क रूपी महाहंस, श्येन रूपी चक्रवाक, वन वायस रूपी कलहंस, मृगाळ रूपी सिंह एवं पिशाच रूपी मुनिवों से संकीर्ण थी तथा साधारण मनुष्यों से दुस्तर थी । जयरूप वन को इच्छा वाले शूर योद्धा लोग घुटनों तक हूयने चरारते, एक दूसरे को मारते हुये

समुत्तरन्तो वेगेन योधा जयघनेप्सवः ॥ ४०
 ततन्तु रौद्रे सुरदैत्यसादने
 महाहवे भीरुमयंकोऽथ ।
 रक्षांसि यथाथ सुसप्रहृष्टाः
 पिशाचपुथास्त्वभिरोभिरे च ॥ ४१
 पिरन्त्यसुग्गाढतरं भदाना-
 मालिङ्गय मासानि च भक्षयन्ति ।
 वसां तिलुम्पन्ति च विस्फुरन्ति
 गर्जन्त्यथान्योन्यमयो वयासि ॥ ४२
 मुञ्चन्ति फेत्काररवाञ्छिवाथ
 श्रन्दन्ति योधा भुवि वेदनाचाः ।
 शस्त्रप्रतप्ता निपतन्ति चान्ये
 युद्धं श्मशानप्रतिमं वभूव ॥ ४३
 तन्मिञ्छिवापोररवे प्रवृत्ते
 सुरासुराणां सुभयंकरे ह ।
 युद्धं वयो प्राणपणोपविद्धं
 द्वन्द्वेऽतिशस्त्राक्षगतो दुरोदरः ॥ ४४
 हिरण्यचमुस्तनयो रणेऽन्धको

रथे स्थितो बाजिसहस्रयोजिते ।
 मत्तेभृष्टस्थितसुप्रतेजसं
 समेषिवान् देवपति शतव्रतसु ॥ ४५
 समापतन्तं महिषारिहृदं
 यमं प्रतीच्छद् धलवान् दितीशः ।
 प्रह्लादानामा तुरगाद्युक्तं
 रथं समास्थाय समुद्यतास्त्रः ॥ ४६
 विरोचनश्चापि जलेश्वरं त्वगा-
 जम्भस्तवथानाद् धनदं बलाढ्यम् ।
 वायुं समभ्येत्य च शम्भरोऽथ
 मयो हुताशं युयुधे मुनीन्द्र ॥ ४७
 अन्ये ह्ययग्रीवमुखा महानला
 दितेस्तनूजा दनुपुगवाश्च ।
 सुरान् हुताशार्कवसूरगोश्वान्
 द्वन्द्व समासाद्य महानलान्विताः ॥ ४८
 गर्जन्त्यथान्योन्यस्रुपेत्य युद्धे
 चापानि कर्पन्त्यतिवेगिताश्च ।
 मुञ्चन्ति नाराचगणान् सहस्रश

रथ रथी नीचाओं द्वारा उस नदी को वेग से पार कर रहे थे । (३७-४०)

इस प्रकार भीरु जनों के लिए भयकारी देवों एवं देवों के सहायक अत्यन्त भयकर युद्ध होने पर राक्षस और यक्ष लोग अत्यन्त क्षामगिद्ध हुए तथा पिशाचों का समूह भी प्रसन्न हुआ । वे धीरों के गाड़े रुधिर का पान करते थे तथा आलिंगन कर मांस का भक्षण करते थे । पत्नी चर्मा को नोपते और उद्वलने थे एवं एक दूसरे के प्रति गर्जन करते थे । (४१-४२)

शृगालियों फेरमार शब्द करने लगी, भूमि पर पड़े हुए वेदना से दुःखी योद्धा मग्न करने लगे । युद्ध लोभ शत्रु हन होकर गिलने लगे तथा युद्धभूमि श्मशान तुरूप हो गई । (४३)

शृगालियों के भयकर शब्द से युद्ध देवासुर संवाम इस प्रकार हुआ मानों द्वन्द्व में निपुण योद्धा लोग राखरूपी पाता शबर तथा प्राण की बापी लगा कर घूम में

सलग्न हुए हों । (४४)

हिरण्याक्ष-जनय अन्धक सहस्र-अश्वों से युक्त रथ पर आरूढ़ हो कर मत्त मार्तण की पीठ पर स्थित महातेजस्वी देवराज इन्द्र के साथ युद्ध करने गया । (४५)

आठ पौदों से युक्त रथ पर आरूढ़ अत्र उढाये बलवान् दैत्यराज प्रह्लाद ने महिषारूढ आक्रमणकारी यम का सामना किया । (४६)

हे मुनीन्द्र ! विरोचन जनेश्वर (वरुण) से युद्ध के लिए आगे बढ़ा तथा जम्भ बलशाली धनद (शुबेर) की ओर गया । शम्भर वायु के सम्मुख गया एवं मय अग्नि के साथ युद्ध करने लगा । (४७)

हयभीय आदि अग्न्यान् महाबलवान् दैत्य तथा दानव अग्नि, धूम्र, आठ वसु तथा चरगेश्वर आदि देवजाओं के साथ द्वन्द्व युद्ध करने लगे । (४८)

युद्ध में एक दूसरे का सामना कर के गर्जन करने हुए अतिवेग पूर्वक घणुप रथीय कर सहस्रों बाणों को

आगच्छ हे तिष्ठसि किं श्रुवन्तः ॥ ४९ |
 शरैस्तु तीक्ष्णैरतितापयन्तः
 शस्त्रैरमोघैरभिताडयन्तः ।
 मन्दाकिनीवेगनिभां वहन्तीम्
 प्रवर्तयन्तो भयदां नदीं च ॥ ५०
 त्रैलोक्यमाकांक्षिमिरुद्रवेगैः
 सुरासुरैर्नारद संप्रपुद्गे ॥

पिशाचरक्षोगणपुष्टिवर्धनी-
 मृत्तुर्निच्छद्भिरसृग्मदी वमौ ॥ ५१
 बाधन्ति तूर्याणि सुरासुराणाम्
 पश्यन्ति रसथा मुनिसिद्धसंघाः ।
 नयन्ति तानप्सरसां गणाद्या
 हता रणे येऽभिमुखस्तु शूराः ॥ ५२

इति श्रीवामनपुराणे नवमोऽध्याय ॥६॥

१०

पुलस्त्य उवाच ।
 ततः प्रवृत्ते संग्रामे भीरूणां भयवर्धने ।
 सहस्राक्षो महाचापमादाय व्यसृजच्छरान् ॥ १
 अन्धकोऽपि महावेगं धनुराकृष्य भास्वरम् ।
 पुरंदराय चिक्षेप शरान् वह्निगयासतः ॥ २

तावन्योन्यं सुतीक्ष्णाग्रैः शरैः संनतपर्वभिः ।
 रुक्मपुङ्खैर्नहावेगैराजघ्नतुरुभावापि ॥ ३
 ततः क्रुद्धः शतमसः कुलिशं भ्रान्त्य पाणिना ।
 चिक्षेप दैत्यराजाय तं ददर्श तथान्धकः ॥ ४
 आजघान च धाणौघैरस्त्रैः शस्त्रैः स नारद ।

छोड़ने तथा यह कहने लगे कि 'अरे ! आओ आओ क्यों रुके हो ?'
 तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करते हुए तथा अमोघ शरों से प्रहार करते हुए उन लोगों ने मन्दाकिनी के वेग सदृश प्रवाहित होने वाली भयकर (रण) नदी को प्रवर्तित किया ।
 हे नारद ! उस युद्ध में त्रैलोक्य की आकाशा वाले उप

वेगशाली सुर एव अमुराग पिशाचों एव राक्षसों की पुष्टि बढ़ाने वाली शोणित-सरिता को पार करने की इच्छा कर रहे थे ।
 (उस समय) देव और असुरों के बाजे वज्र रहे थे आनाशने विघ्न मुनियों और सिद्धों के समूह उस युद्ध को देख रहे थे तथा जो धीर समुत्तयुद्ध में मारे गये थे उन्हें अप्सरायें (स्वर्ग में) ले जा रही थी ।

धोवामनपुराण में नवो अध्याय समाप्त ॥६॥

१०

पुलस्त्य ने कहा—तदनन्तर भीरुओं के लिये भयवर्धक संग्राम आरम्भ होने पर सहस्राक्ष (इन्द्र) महान् धनुष लेकर बाणों को छोड़ने लगे ।
 अन्धक ने भी वेगशाली तथा तेजस्वी धनुष लेकर मयूर के पंख वाले अनेक बाणों को पुरन्दर (इन्द्र) के ऊपर छोड़ा ।

उन दोनों ने एक दूसरे को झुके हुए पर्यो वाले, श्वर्णपुंखयुक्त तथा महावेगवान् तीक्ष्ण बाणों से आहत किया ।
 तदनन्तर क्रुद्ध इन्द्र ने हाथ से वज्र को घुमा कर दैत्यराज के ऊपर फेंका । अन्धक ने उसे देखा और—

तान् भस्मसाचदा चक्रे नगानिव हुताशनः ॥ ५
 ततोऽतिवेगिनं वज्रं दृष्ट्वा बलवतां वरः ।
 समाप्लुत्य रथात्तस्यौ भुवि बाहुसहायवान् ॥ ६
 रथं सारथिना सार्धं साश्वष्वजसङ्घवरम् ।
 भस्म कृत्वाथ कुलिशमन्धकं समुपाययौ ॥ ७
 तमापतन्तं वेगेन मृष्टिनाहत्य भूक्ते ।
 पातयामास बलवान् जगर्ज च तदाऽन्धकः ॥ ८
 तं गर्जमानं वीक्ष्वाथ वासव. सायकैर्दृढम् ।
 ध्वर्षं तान् वारयन् स समभ्यायाच्छतक्रतुम् ॥ ९
 आजघान तलेनेभं कुम्भमग्रे पदा करे ।
 जानुना च समाहत्य विपाणं प्रभञ्ज च ॥ १०
 वाममुपस्था तथा पार्श्वं समाहत्यान्धकस्त्वरन् ।
 गजेन्द्रं पातयामास प्रहारैर्जरीकृतम् ॥ ११
 गजेन्द्रात् पतमानाच्च अवप्लुत्य शतक्रतुः ।
 पाणिना वज्रमादाय प्रविवेशामरायतीम् ॥ १२

हे नारद ! उसने भी बाणों, अश्वों और शरों से प्रहार किया। अग्नि जिस प्रकार वृष्टों को भस्म करती है उसी प्रकार उस वज्र ने उन्हें भस्म कर डाला। (५)

तब बलवानों ने श्रेष्ठ अन्धक अति वेगवान् वज्र को आते देव कर रथ से बूद कर बाहुबल वा आश्रय लेकर धृष्टी पर खड़ा हो गया। (६)

वह वस सारथि, अश्व, ध्वजा एव ब्रूज के साथ रथ को भस्म कर अन्धक के पास आया। (७)

वेगपूर्वक आते हुए उस (वज्र) को बलवान् अन्धक ने मृष्टि से प्रहार कर भूमि पर गिरा दिया और गर्जन करने लगा। (८)

उसे गर्जन करने देव वासव (इन्द्र) ने उसके ऊपर दृढ़ बाणों की वर्षा की। उनसे निवारित करत हुए वह शतक्रतु के पास आया। (९)

उसने करतल से ऐरावत के कुम्भमग्रे में एवं पैर से धूड पर प्रहार किया तथा जानु से बाँट पर प्रहार कर उसे चोंड़ दिया। (१०)

तथा अन्धक ने वाममुष्टि से पार्श्व में शीघ्रतापूर्वक प्रहार करने से जर्जर हुए गजेन्द्र को गिरा दिया। (११)

गिर रहे गजेन्द्र पर से बूद कर एवं हाथ में वज्र प्रदण पर इन्द्र अमरायती में चले गए। (१२)

पराङ्मुखे सहस्राक्षे तद् दैवतनलं महत् ।
 पातयामास दैत्येन्द्रः पादमुष्टितलादिभिः ॥ १३
 ततो वैवस्वतो दण्डं परिभ्राम्य द्विजोत्तम ।
 समभ्यधावत् प्रह्लादं हन्तुकामः सुरोत्तमः ॥ १४
 तमापतन्तं बाणौर्ध्ववर्षं रविनन्दनम् ।
 हिरण्यकशिपोः पुत्रश्चापमानम्य वेगवान् ॥ १५
 तां वाणवृष्टिमतुलां दण्डेनाहत्य भास्करिः ।
 शातयित्वा प्रचिक्षेप दण्डं लोकभयंकरम् ॥ १६
 स वायुपथमास्थाय धर्मराजकरे स्थित ।
 जज्वाल कालाग्निनिभो यद्बद्धं दग्धुं जगत्त्रयम् ॥ १७
 जान्वल्यमानमायान्तं दण्डं दृष्ट्वा दितेः सुताः ।
 प्राक्रोशन्ति हतः कष्टं प्रह्लादोऽप्य यमेन हि ॥ १८
 तमाक्रन्दितमाकर्ष्य हिरण्याक्षसुतोऽन्धकः ।
 श्रोवाच मा भैष्ट मवि स्थिते कोऽयं सुराधमः ॥ १९
 इत्येवमुक्त्वा वचनं वेगेनाभिससार च ।

इन्द्र के पराङ्मुख हो जाने पर उस महती देवसेना को दैत्येन्द्र ने पद, मुष्टि एव करतल आदि द्वारा (प्रहार कर) गिरा दिया। (१३)

हे द्विजोत्तम ! तदनन्तर देव श्रेष्ठ यम दण्ड घुमाते हुए प्रह्लाद को मारने की इच्छा से दौड़ पड़े। (१४)

रविनन्दन (यम) को आते देख हिरण्यकशिपु के वेगवान् पुत्र प्रह्लाद ने घण्टु खींच कर बाणों की वर्षा की। (१५)

भास्करनन्दन यमराज ने दण्ड के आघात से उस अनु-लनीय वाण-वृष्टि को नष्ट कर लोकभयकारी दण्ड चलाया। (१६)

धर्मराज के हाथ में स्थित वह दण्ड वायुपथ में जाकर भागों त्रैलोक्य को दग्ध करने हेतु कालाग्नितुल्य प्रवर्तित होने लगा। (१७)

जान्वल्यमान दण्ड को आते देव दैत्य लोग चिल्लाने लगे, 'हाय ! हाय ! यमराज द्वारा प्रह्लाद मारे गये।' (१८)

उस आक्रन्दन को सुन कर हिरण्याक्ष-वनय अन्धक ने कहा—'ढरो मत ! मेरे रहते यह सुराधम क्या है ?' (१९)

हे नारद ! ऐसा कह कर वह वेग से दौड़ा और दैसते

जग्राह पाणिना दण्डं हसन् सव्येन नारद ॥ २०
 तमादाय ततो वेगाद् भ्रामयामास चान्धकः ।
 जगर्जं च महानादं यथा प्राट्पि तोयदः ॥ २१
 प्रह्लादं रक्षितं दृष्ट्वा दण्डाद् दैत्येक्षरेण हि ।
 साधुवादं ददुर्हृष्टा दैत्यदानवयूथयाः ॥ २२
 भ्रामयन्तं महादण्डं दृष्ट्वा भानुसुतो मुने ।
 दुःसहं दुर्घरं मत्वा अन्तर्धानमगाद् यमः ॥ २३
 अन्तर्हिते धर्मराजे प्रह्लादोऽपि महासुने ।
 दारयामास बलवान् देवसैन्यं समन्ततः ॥ २४
 वरुणः शिशुमारस्यो बद्ध्वा पार्श्वीहाऽसुरान् ।
 गदया दारयामास तमभ्यागाद् विरोचनः ॥ २५
 तोमरोर्वज्रसंस्पर्शैः शक्तिभिर्भागैर्गणैरपि ।
 जलेशं ताडयामास मृद्गैः कणपैरपि ॥ २६
 ततस्तं गदयाऽभ्येत्य पातयित्वा धरातले ।
 अभिद्रुत्य बधन्धाय पार्श्वीमचगजं बली ॥ २७
 तान् पाशाञ्चतथा चक्रे वेगाच्च दनुजेश्वरः ।
 वरुणं च समभ्येत्य मध्ये जग्राह नारद ॥ २८

हुए बायें हाथ से उस दण्ड को पकड़ लिया । (२०)
 तदनन्तर अन्धक ने उसे लेकर सुमाया और वर्षानलीन
 नेप के सदृश महानाद करते हुए गर्जन किया । (२१)
 दैत्येश्वर (अन्धक) के द्वारा दण्ड से प्रह्लाद को
 रक्षित देख दैत्यों एवं दानवों के यूथपति प्रसन्न होकर
 साधुवाद देने लगे । (२२)
 हे मुने ! सुमाए जाते महादण्ड को देख सूर्यतनय यम
 उसे दुःसह और दुर्घर समझकर अन्तर्धान हो गये । (२३)
 हे महासुने ! धर्मराज के अन्तर्हित होने पर बलवान्
 प्रह्लाद भी चारों ओर से देवसेना को विदीर्ण करने
 लगे । (२४)
 शिशुमार (सूस) पर स्थित वरुण महान् असुरों को
 पाशों से बाँध कर गदा द्वारा विदीर्ण करने लगे । तब विरो-
 चन ने उनका सामना किया । (२५)
 (उसने) यम के सदृश तोमरों, शक्तियों, बाणों,
 मुद्गगैरों, कणपों एवं मालों से जलेश को ताड़ित
 किया । (२६)
 तदनन्तर उसके निष्ठ जाकर गदा के आपात से उसे

ततो दन्ती च शृङ्गाभ्यां प्रचिक्षेप तदाऽव्ययः ।
 ममर्द च तथा पद्भ्यां सवाहं सलिलेश्वरम् ॥ २९
 तं मर्घमानं वीक्ष्याथ शशाङ्कः शिशिरांशुमान् ।
 अभ्येत्य ताडयामास मार्गणैः कायदारणैः ॥ ३०
 म तोड्यमानः शिशिरांशुवाणै-
 रवाप पीडां परमां गजेन्द्रः ।
 दृष्ट्य वेगात् पयसामधीशं
 मृद्गुर्मुद्गुः पादतलेर्ममर्द ॥ ३१
 स मृयमानो वरुणो गजेन्द्रं
 पद्भ्यां सुगाढं जघृहे महर्षे ।
 पादेषु भूमिं करयोः स्पृशंथ
 मूर्धानमृच्छाल्य बलान्महात्मा ॥ ३२
 शृङ्गाङ्गुलीभिश्च गजस्य पुच्छं
 कृत्वेह यन्धं भुजगेश्वरेण ।
 उत्पात्य चिक्षेप विरोचनं हि
 सकुडरं रे सनियन्त्वाहम् ॥ ३३

भूतल पर गिराने के उपरान्त दौड़ कर पाशों द्वारा बलवान्
 वरुण ने हाथी को बाँध लिया । (२७)
 दनुजेश्वर ने वेगपूर्वक उन पाशों को सैकड़ों टण्डों में
 तोड़ दिया । हे नारद ! वरुण के निष्ठ जाकर उसने उनसे
 मध्य भाग में पकड़ लिया । (२८)
 तदनन्तर अव्यय दन्ती ने सोमों (दौतों) द्वारा वरुण
 को फेंक दिया और अपने पैरों से याहन सहित वरुण को
 कुचल डाला । (२९)
 उन्हें मर्दित होते हुए देख शीत निरणों वाले शशाङ्क ने
 उसके निष्ठ जाकर शरीर विदीर्ण करने वाले बाणों से उसे
 ताड़ित किया । (३०)
 चन्द्र के वाणों से ताड़ित गजेन्द्र को अत्यन्त पीड़ा हुई
 और दुष्ट गजेन्द्र वरुण को वेगपूर्वक पैरों से पुन पुन
 मर्दित करने लगा । (३१)
 हे महर्षे ! कुचले जाते हुए महात्मा वरुण ने दृढ़तापूर्वक
 हाथी के दोनों पैरों को पकड़ लिया एवं अपने हाथों तथा
 पैरों से भूमि का स्पर्श करन हुए बलपूर्वक मलक उठा कर
 अगुलियों से उस हाथी की पुच्छ पर चढ़ सर्पराज से विरोचन

क्षिप्तो जलेशेन विरोचनस्तु
 सकुञ्जरो भूमितले पपात ।
 साहं सन्यत्रार्गलहर्म्यभूमि
 पुर सुकेशेरिव भास्करेण ॥ ३४
 ततो जलेशः सगदः सपाशः
 समभ्यधावद् दितिज निहन्तुम् ।
 ततः समाक्रन्दमनुचमं हि
 मृक्तं तु दैत्यैर्घनरावतुल्यम् ॥ ३५
 हा हा हतोऽसौ वरुणेन वीरो
 विरोचनो दानवसैन्यपालः ।
 प्रह्लाद हे जम्भकुजम्भकाद्या
 रक्षध्वमभ्येत्य सहान्धकेन ॥ ३६
 अहो महात्मा बलवाञ्जलेशः
 संचूर्णयन् दैत्यमटं सवाहम् ।
 पाशेन बद्ध्वा गदया निहन्ति
 यथा पशु वाजिमखे महेन्द्रः ॥ ३७
 श्रुत्वाथ शब्दं दितिजैः समीरितं
 जम्भप्रधाना दितिजेश्वरास्ततः ।

समभ्यधावंस्त्वरिता जलेश्वरं
 यथा पतङ्गा ज्वलित हुताशनम् ॥ ३८
 तानागतान् वै प्रसमीक्ष्य देवः
 प्राह्वादिभृत्सृज्य वितत्य पाशम् ।
 गदा समुद्ध्राम्य जलेश्वरस्तु
 दुद्राव तान् जम्भमुखानरातीन् ॥ ३९
 जम्भं च पाशेन तथा निहत्य
 तार तलेनाशनिसंनिभेन ।
 पादेन घृत्रं तरसा कुजम्भं
 निपातयामास फल च मृष्ट्या ॥ ४०
 तेनादिता देववरेण दैत्याः
 संप्राद्रवन् दिक्षु विमुक्तशस्त्राः ।
 ततोऽन्धकः सत्वरितोऽभ्युपेयाद्
 रणाय योद्धुं जलनायकेन ॥ ४१
 तमापतन्त गदया जघान
 पाशेन बद्ध्वा वरुणोऽसुरेशम् ।
 तं पाशमाविध्य गदां प्रगृह्य
 चिक्षेप दैत्यः स जलेश्वराय ॥ ४२

को बाँध कर उसके हाथी, नियन्ता एव वाहन के साथ
 उठाकर आकाश में फेंक दिया । (३२-३३)

(३२-३३)

वरुण द्वारा फेंका गया विरोचन हाथी सहित पृथ्वी पर
 इस प्रकार गिरा जैसे भास्कर द्वारा सुकेशी राक्षस का अट्टा
 लिनार्थो, यन्त्रों, अर्गलार्थो एव प्रासादों से युक्त नगर
 गिराया गया था । (३४)

(३४)

वदनन्तर वरुण, गदा और पाश लेकर दैत्य को मारने
 के लिये दौड़े । तब दैत्यगण मेघ के गर्जन के सदृश आक
 रन्द करने लगे— (३५)

(३५)

“हाय ! हाय ! राक्षस सेना के रक्षक वीर विरोचन
 वरुण द्वारा मारे जा रहे हैं । हे प्रह्लाद ! जम्भ ।
 कुजम्भादि । अन्धक के साथ आकर उन्हें बचाओ । (३६)

(३६)

हाय ! महात्मा बलवान् वरुण वाहन सहित दैत्यवीर
 को घूर्ण करते हुए पाश से बाँधकर गदा द्वारा इस प्रकार
 मार रहे हैं जैसे अरवमेघ यज्ञ में इन्द्र पशु का धध
 करते हैं । (३७)

(३७)

तदनन्तर दैत्यों के द्वारा कहे गये शब्द को सुन कर
 जम्भ प्रमुख दैत्य गण वरुण की ओर इस प्रकार शीघ्रता से
 दौड़े जैसे पतङ्ग प्रज्वलित अग्नि की ओर झपटते हैं । (३८)

उन्हें आया देस वरुण प्रह्लाद-पुत्र (विरोचन) को
 छोड़ पाश फैला कर और गदा धुमा कर उन जम्भप्रभृति
 शत्रुओं को और दौड़े । (३९)

उन्होंने जम्भ को पाश से, तार-दैत्य को वज्र तुल्य वर
 तल के प्रहार से, वृत्रासुर को पैर से, वेगपूर्वक कुजम्भ को
 और बल नामक असुर को मुक्के से गिरा दिया । (४०)

उन घेघप्रवर द्वारा मदित दैत्य शस्त्रों को छोड़ कर
 दिशाओं में भाग गए । तदनन्तर अन्धक वरुण के साथ युद्ध
 करने के लिये शीघ्रतापूर्वक वहाँ आया । (४१)

उस आ रहे अहुरेश्वर को वरुण ने पाश से बाँध कर
 गदा से मारा । उस पाश और गदा को छीन कर दैत्य ने
 वरुण पर फेंका । (४२)

समाजधानाय हुताशनं हि
 वरापुषेनाथ वराह्णमघ्ये ।
 समाहृतोऽग्निः परिहृच्य शम्बरं
 तथाऽन्धकं स स्वरितोऽन्धधावत् ॥ ५२
 तमापतन्तं परिघेण भूयः
 समाहनन्मूर्ध्नि तदान्धकोऽपि ।
 स ताडितोऽग्निर्दित्तित्तिश्वरेण
 भवात् प्रदुद्राव रणाजिरादि ॥ ५३
 ततोऽन्धको मात्तचन्द्रभास्करान्
 साध्यान् सत्प्राशिवसून् महोरगान् ।
 यान् याञ्छरेण स्पृशते पराक्रमी
 पराङ्मुखांस्तान्कृतवान् रणाजिरात् ॥ ५४

ततो विजित्यामरसैन्यमुग्र
 सेन्द्रं सरुद्रं सयमं ससोमम् ।
 संपूज्यमानो दनुपुंगवैस्तु
 तदाऽन्धको भूमिमुपाजगाम ॥ ५५
 आसाद्य भूमिं करदान् नरेन्द्रान्
 कृत्वा वशे स्थाप्य चराचरं च ।
 जगत्समग्रं प्रविवेश धीमान्
 पातालमड्यं पुरमश्मकाहम् ॥ ५६
 तत्र स्थितस्तथापि महाऽसुरस्य
 गन्धर्वविशाधरसिद्धसंघाः ।
 सहाभ्सरोभिः परिचारणाय
 पातालमभ्येत्य समावसन्त ॥ ५७

इति श्रीवामनपुराणे दशमोऽध्याय ॥१०॥

उसने श्रेष्ठ आयुध के द्वारा अग्नि के शिर पर प्रहार किया । इस प्रकार आहत अग्नि शम्बर को छोड़ कर तत्काल अन्धक की ओर दौड़े । (५२)
 अन्धक ने आ रहे अग्नि के मस्तक पर पुनः परिघ से प्रहार किया । दित्तित्तिश्वर द्वारा ताडित अग्निदेव भयभीत हो रणक्षेत्र से भाग गए । (५३)
 तदनन्तर पराक्रमी अन्धक ने वायु, चन्द्र, भास्कर, साम्य, रुद्र, अश्विनीकुमार, वसु और महानागों में जिन-जिनको बाण से स्पर्श किया वे सभी युद्धभूमि से पराङ्मुख हो गये । (५४)

तदनन्तर इन्द्र, रुद्र, यम, सोम सहित देवताओं की उपर सेना को जीत कर अन्धक श्रेष्ठ दानवों के द्वारा पूजित होते हुए भूतल पर आ गया । (५५)
 भूमि पर आकर, नरपतियों को करद बना कर तथा समस्त चराचर जगत् को बशीभूत कर धीमान् (अन्धक) पाताल में स्थित अपने अरमक नामक उत्तम नगर में प्रविष्ट हुआ । (५६)
 वहाँ पर स्थित महासुर की सेवा करने के लिए अप्सराओं के साथ गन्धर्व, विद्याधर एवं सिद्धों के समूह पाताल में आकर निवास करने लगे । (५७)

श्रीवामनपुराण में दशवाँ अध्याय समाप्त ॥१०॥

नारद उवाच ।

यदेतद् भवता प्रोक्तं सुकेशिनगरोऽम्बरात् ।
पातितो भ्रुवि सूर्येण तत्कदा क्वत्र क्व च ॥ १
सुकेशीति च कश्चासौ केन दत्तः पुरोऽस्य च ।
किमर्थं पातितो भूम्यामाकाशाद् भास्करेण हि ॥ २
पुलस्त्य उवाच ।

मृणुष्यावहितो भूत्वा कथामेतां पुरातनीम् ।
यद्योक्तवान् स्वयंभूर्मां कथ्यमानां मयाऽनघ ॥ ३
आसीन्निशाचरपतिरिन्दुत्केशीति विश्रुतः ।
तस्य पुत्रो गुणज्येष्ठः सुकेशिरभवत्ततः ॥ ४
तस्य तुष्टस्तथेशानः पुरमाकाशचरिणम् ।
प्रादादज्ञेयत्वमपि शत्रुभिश्चाप्यवध्यताम् ॥ ५
स चापि शंकरात् प्राप्य वरं गगनगं पुरम् ।
रेमे निशाचरैः सार्द्धं सदा धर्मपथि स्थितः ॥ ६

स कदाचिद् गतोऽरुण्यं मागधं राक्षसेश्वरः ।
तत्राश्रमांस्तु ददृशे श्रुवीणां भावितात्मनाम् ॥ ७
महर्षीन् स तदा दृष्ट्वा प्रणिपत्याभिवाद्य च ।
प्रत्युवाच श्रुषोन् सर्वास्व कृतामनपरिग्रहः ॥ ८
सुकेशिरुवाच ।

प्रभृमिच्छामि भवत' मंशयोऽयं हृदि स्थितः ।
कथयन्तु भवन्तो मे न चैवाज्ञापयाम्यहम् ॥ ९
किम्विच्छेयः परे लोके किम् चेह द्विजोत्तमाः ।
केन पूज्यस्तथा सत्सु केनासौ सुरमेधते ॥ १०
पुलस्त्य उवाच ।

इत्थं सुकेशिवचनं निशम्य परमर्षयः ।
प्रोचुरिन्दुमृश श्रेयोऽर्षमिह लोके परत्र च ॥ ११
श्रुयतां कथयिष्यामस्तव राक्षसपुंगव ।

११

नारद ने कहा—“आपने जो यह कहा था कि सूर्यने सुकेशी के नगर को आकाश से पृथ्वी पर गिरा दिया था, तो यह घटना कम और कहाँ हुई ? (१)

“यह सुकेशी कौन था ? उसे नगर किसने दिया था ? तथा भास्कर ने आकाश से पृथ्वी पर उसको क्यों गिरा दिया था ?” (२)

पुलस्त्य ने कहा—हे अनघ ! ब्रह्मा ने मुझसे जिस प्रकार इस प्राचीन कथा को कहा था उसे मैं कह रहा हूँ आप सावधान होकर सुनें । (३)

विपुलेशी नाम का निशाचरों का एक प्रतिष्ठ राजा था । इसको गुणों से परिष्ठ सुकेशी नाम का पुत्र हुआ । (४)

उस पर प्रसन्न होकर शिव ने हमें एक आकाशचारी नगर और शत्रुओं से अज्ञेय तथा अवध्य होने का वर भी दिया । (५)

बह शंकर से भेद आद्यशपाठी नगर पाकर राक्षसों के

साथ सदा धर्म पय पर रहते हुए आनन्द मनाने लगा । (६)
एक समय मागधाण्य में जाकर उस राक्षसेश्वर ने वहाँ प्यान परायण श्रुषियों के आश्रमों को देखा । (७)

उस समय महर्षियों को देकर अभियादन और प्रणाम करने के उपरान्त आसन पर बैठकर उसने समस्त श्रुषियों से कहा । (८)

सुकेशी ने कहा—मैं आपको आता नहीं देख रहा हूँ, जब तु, मेरे हृदय में यह संदेह है उसमें आपसे पूछना चाहता हूँ । आप मुझसे कहिये । (९)

हे द्विजोत्तमो ! इस शेर और परलोक में भय क्या है ? मनुष्य सज्जनों में कैसे पूज्य होता है और कैसे कते सुग की उपलब्धि होती है ? (१०)

पुलस्त्य ने कहा—सुकेशी के इन प्रश्न के वचन को सुनकर भेद श्रुषियों ने इसलोक और परलोक में भय क्या का विचार कर कहा । (११)

श्रुषियों ने कहा—“हे राक्षस-भेद ! दे वीर ! इन लोक

यद्दि श्रेयो भवेद् वीर इह चाभ्युन्न चाव्ययम् ॥ १२

श्रेयो धर्मः परे लोके इह च क्षणदाचर ।

तस्मिन् समाश्रितः सत्सु पूज्यस्तेन सुखी भवेत् ॥ १३

सुकेशिरुवाच ।

किंलक्षणो भवेद् धर्मः किमाचरणसत्क्रियः ।

यमाश्रित्य न सीदन्ति देवाद्यास्तु तदुच्यताम् ॥ १४

ऋषय ऊचुः ।

देवानां परमो धर्मः सदा यज्ञादिकाः क्रियाः ।

स्वाध्यायवेदवेत्तृत्वं विष्णुपूजारतिः स्मृता ॥ १५

दैत्यानां बाहुशालित्वं मात्सर्यं युद्धसत्क्रिया ।

वेदनं नीतिशास्त्राणां हरभक्तिरुदाहृता ॥ १६

सिद्धानामुदितो धर्मो योगयुक्तिरनुत्तमा ।

स्वाध्यायं ब्रह्मविज्ञानं भक्तिर्द्रव्याभ्यामपि स्थिरा ॥ १७

उत्कृष्टोपासनं ज्ञेयं नृत्यवाद्येषु वेदिता ।

सरस्वत्यां स्थिरा भक्तिर्गान्धर्वो धर्म उच्यते ॥ १८

और परलोक में जो श्रेय तथा अव्यय वस्तु है उसके विषय में हम कहते हैं । उसे सुनो । (१२)

हे निशाचर ! इस लोक और परलोक में धर्म श्रेय है । उसमें आश्रित व्यक्ति सज्जनों में पूज्य होता है तथा सुखी होता है । (१३)

सुकेशी ने कहा—“धर्म का लक्षण क्या है ? उसमें कौन से आचरण एवं सत्कर्म होते हैं जिनका आश्रय लेकर देवादि कभी दुःखी नहीं होते । कृपया उसका वर्णन करें । (१४)

ऋषियों ने कहा—सदा यज्ञादि कार्य, स्वाध्याय, वेदज्ञान और विष्णुपूजा में रति—यह देवताओं का परम धर्म है । (१५)

बाहुबल, हेतुयोग, युद्धकर्म, नीतिशास्त्र का ज्ञान और हर भक्ति—ये दैत्यों के धर्म कहे गये हैं । (१६)

श्रेष्ठ योगसाधन, वेदाध्ययन, ब्रह्मविज्ञान और इन दोनों (विष्णु और शिव) में स्थिर भक्ति यह सिद्धों का धर्म कहा गया है । (१७)

उत्कृष्ट उपासन, नृत्य और वाद्य का ज्ञान तथा सरस्वती के प्रति स्थिर भक्ति—यह गन्धर्वों का धर्म कहा

विद्याधरत्वमतुलं विज्ञानं पौरुषे मतिः ।

विद्याधराणां धर्मोऽयं भवान्यां भक्तिरेव च ॥ १९

गन्धर्वविद्यावेदित्वं भक्तिर्भानौ तथा स्थिरा ।

कौशल्यं सर्वशिल्पानां धर्मः किंपुरुषः स्मृतः ॥ २०

ब्रह्मचर्यममानित्वं योगाभ्यासरतिर्दृढा ।

सर्वत्र कामचारित्वं धर्मोऽयं पैतृकः स्मृतः ॥ २१

ब्रह्मचर्यं यताश्रित्वं जप्यं ज्ञानं च राक्षस ।

नियमाद्धर्मवेदित्वमापो धर्मः प्रचक्ष्यते ॥ २२

स्वाध्यायं ब्रह्मचर्यं च दानं यजनमेव च ।

अकार्पण्यमनायास दयाऽहिंसा क्षमा दमः ॥ २३

जितेन्द्रियत्वं शौचं च माङ्गल्यं भक्तिरच्युते ।

शंकरे भास्करे देव्यां धर्मोऽयं मानवः स्मृतः ॥ २४

घनाधिपत्यं भोगानि स्वाध्यायं शंकरार्चनम् ।

अहंकारमशौण्डीर्यं धर्मोऽयं गुह्यकेश्विति ॥ २५

परदारारामशित्वं पारक्ष्येऽयं च लोलुपा ।

स्वाध्यायं व्यम्बके भक्तिर्धर्मोऽयं राक्षसः स्मृतः ॥ २६

जाता है । (१८)

अतुलनीय विद्वत्ता, विज्ञान, पौरुषबुद्धि और भ्रान्ती के प्रति भक्ति—यह विद्याधरों का धर्म है । (१९)

गन्धर्वविद्या का ज्ञान, पूर्ण के प्रति स्थिर भक्ति और सभी शिल्प कलाओं में कुशलता—यह किंपुरुषों का धर्म माना जाता है । (२०)

ब्रह्मचर्य, अमानित्व, योगाभ्यास में दृढ़ रति एवं सर्वत्र इच्छानुसार धमन—यह पितरों का धर्म कहा जाता है । (२१)

हे राक्षस ! ब्रह्मचर्य, नियताहार, जप, आत्मज्ञान, और नियमानुसार धर्मज्ञान यह ऋषियों का धर्म कहा जाता है । (२२)

स्वाध्याय, ब्रह्मचर्य, दान, यजन, अकार्पण्य, परिश्रम-रहित्व, दया, अहिंसा, क्षमा, दम, जितेन्द्रियता, शौच, माङ्गल्य, तथा विष्णु, शंकर, भास्कर और देवी में भक्ति—यह मनुष्यों का धर्म है । (२३-२४)

घनाधिपत्य, भोग, स्वाध्याय, शंकरार्चन, अहंकार एवं अशौण्डीर्य (अवीरता) यह गुह्यकों का धर्म है । (२५)

परस्त्रीगमन, दूसरे के धर्म में लोलुपता, स्वाध्याय और शिवभक्ति—यह राक्षसों का धर्म कहा जाता है । (२६)

अविवेकमथाज्ञानं शीघ्रहानिरस्तयता ।
 पिशाचानामयं धर्मः सदा चामिपगृह्णतु ॥ २७
 योनयो द्वादशैवैतास्तासु धर्माश्च राक्षस ।
 प्रव्रज्जना कथिताः पुण्या द्वादशैव गतिप्रदाः ॥ २८
 सुकेशिरुनाच ।
 भवद्विरुक्ता ये धर्माः श्लाघता द्वादशान्यथाः ।
 तत्र ये मानवा धर्मास्तां भूयो वक्तुमर्हथ ॥ २९
 ऋषय ऊचुः ।
 शृणुष्व मनुजादीनां धर्मास्तु क्षणदाचर ।
 ये वसन्ति महीपृष्ठे नरा द्वीपेषु सप्तसु ॥ ३०
 योजनानां प्रमाणेन पञ्चाशत्क्रोष्टिरावता ।
 जलोपरि महीयं हि नौरिवास्ते सरिःजले ॥ ३१
 तस्योपरि च देवेशो ब्रह्मा शैलेन्द्रमुत्तमम् ।
 कर्णिकाकारमत्युच्चं स्थापयामास सत्तम ॥ ३२
 तस्येमां निर्ममे पुण्यां प्रजां देवधतुर्दिशम् ।
 स्थानानि द्वीपसंज्ञानि कृतवांश्च प्रजापति ॥ ३३

तत्र मध्ये च कृतवाञ्जम्बूद्वीपमिति धृतम् ।
 तल्लक्षं योजनानां च प्रमाणेन निगद्यते ॥ ३४
 ततो जलनिधी रौद्रे वाह्यतो द्विगुणः स्थितः ।
 तस्यापि द्विगुणः प्लक्षो वाह्यतः संप्रतिष्ठित ॥ ३५
 ततस्त्विभ्रुरसोदश्च बाह्यतो वलयकृतिः ।
 द्विगुणः शाल्मलिद्वीपो द्विगुणोऽस्य महोदधेः ॥ ३६
 सुरोदो द्विगुणस्तस्य तस्माच्च द्विगुणः कुशः ।
 घृतोदो द्विगुणश्चैव कुशद्वीपात् प्रकीर्तितः ॥ ३७
 घृतोदाद् द्विगुणः प्रोक्तः क्रौञ्चद्वीपो निशाचर ।
 ततोऽपि द्विगुणः प्रोक्तः समुद्रो दक्षिसंज्ञितः ॥ ३८
 समुद्राद् द्विगुणः शाक शकाद् दुग्धान्धिरुत्तमः ।
 द्विगुणः सध्वितो यत्र शेषपर्यङ्कगो हरिः ।
 एते च द्विगुणा सर्वे परस्परमपि स्थिताः ॥ ३९
 चत्वारिंशदिमाः कोट्यो लक्षश्च नवतिः स्मृताः ।
 योजनानां राक्षसेन्द्र पञ्च चाति सुविस्तृताः ।
 जम्बूद्वीपात् समारभ्य यावत्क्षीराब्धिपरन्ततः ॥ ४०

अविवेक, अज्ञान, शीघ्रहीनता, असायता एव सदा मास
 लोलुपता यह पिशाचों का धर्म है । (२७)
 हे राक्षस । ये द्वादश योनियाँ हैं । पितामह ब्रह्मा ने
 उनके द्वादश पवित्र तथा उत्तम गतिदायक धर्मों को कहा
 है । (२८)
 सुकेशी ने कहा—आपने जिन श्लाघा एव अन्यथा
 बाद धर्मों को कहा है उनमें मनुष्यों के धर्मों को पुन
 कहें । (२९)
 ऋषियों ने कहा—हे निशाचर । पृथ्वी के सात द्वीपों
 में निवास करनेवाले मनुष्य आदि के धर्मों को सुनो । (३०)
 पचास करोड़ योजन के विस्तारवाली यह पृथ्वी जल
 के ऊपर इस प्रकार स्थित है जैसे नदी पर नौका । (३१)
 हे सज्जनश्रेष्ठ । उसके ऊपर देवेश ब्रह्मा ने कर्णिका के
 आकार वाले अत्यन्त ऊँचे शैलेन्द्र को स्थापित किया है । (३२)
 तदनन्तर उस पर ब्रह्मा ने चतुर्दिक् पवित्र प्रजाओं का
 निर्माण तथा द्वीप सज्ज स्थानों को भी बनाया । (३३)
 उसके मध्य में जम्बूद्वीप बनाया । इसका प्रमाण एक

लक्ष योजन का कहा जाता है । (३४)
 उसके बाहर द्विगुण परिमाण में रौद्र समुद्र है तथा
 उसके उपरान्त उसका द्विगुण प्लक्ष द्वीप स्थित है । (३५)
 उसके बाहर द्विगुण प्रमाण वाला वलयकार श्लुर रस
 सागर है । इस महोदधि का दुगुना शाल्मलि द्वीप है । (३६)
 उससे दुगुना सुरासागर है तथा उससे दुगुना कुश
 द्वीप है । कुशद्वीप से दुगुना घृतसागर है । (३७)
 हे निशाचर । घृत सागर से दुगुना क्रौञ्चद्वीप कहा
 गया है तथा उससे दुगुना ध्वि नामक समुद्र है । (३८)
 ध्विसागर से दुगुना शाकद्वीप है । एव शाकद्वीप से
 द्विगुण उत्तम क्षीरसागर है जिसमें शेष पर्यङ्कशायी
 श्री हरि स्थित हैं । ये सभी परस्पर एक दूसरे से द्विगुण
 प्रमाण में स्थित हैं । (३९)
 हे राक्षसेन्द्र । जम्बूद्वीप से लेकर क्षीरसागर के अन्त
 तक का विस्तार चाळीस करोड़ नब्बे छाल पाँच
 योजन है । (४०)

१. योजन के पनेत्र परिमाण विभिन्न शास्त्रों में मिलते हैं, जिनमें बहुत बल्य परिमाण भी है ।

तस्माच्च पुष्करद्वीपः स्वाद्दस्तदनन्तरम् ।
 फोव्यश्रत्सो लक्षणां द्विपश्चाश्च राक्षस ॥ ४१
 पुष्करद्वीपमानोऽयं तावदेव तयोदधिः ।
 लक्ष्मण्डकटाहेन समन्तादभिपूरितम् ॥ ४२
 एवं द्वीपास्त्रियमे सप्त पृथग्धर्माः प्रथक्क्रियाः ।
 गदिष्यामस्त्वन वय मृगुष्व त्वं निशाचर ॥ ४३
 प्लक्षादिषु नरा वीर ये वसन्ति सनातनाः ।
 शाकान्तेषु न तेष्वस्ति युगावस्था कथंचन ॥ ४४
 मोदन्ते देववत्तेषां धर्मो दिव्य उदाहृतः ।
 कल्पान्ते प्रलयस्तेषा निगद्येत महासुभज ॥ ४५
 ये जनाः पुष्करद्वीपे वसन्ते रौद्रदर्शने ।
 पैशाचमाश्रिता धर्म कर्मान्ते ते विनाशिनः ॥ ४६
 सुकेशिश्रुवाच ।
 क्रिमर्थं पुष्करद्वीपो भवद्भिः समुदाहृतः ।
 दुर्दर्शः शौचरहितो घोरः कर्मान्तनाशकृत् ॥ ४७

हे राक्षस ! इसके बाद पुष्करद्वीप एवं तदनन्तर सुखादु-
 जल का सागर है । चार करोड़ बावन लाख योजन पुष्कर
 द्वीप का परिमाण है । तदुपरान्त उसी परिमाण का समुद्र
 भी है । इसका एक लक्ष योजन चतुर्दिक् अप्ठकटाह से
 परिपूर्ण है । (४१-४२)

इस प्रकार ये सात द्वीप पृथक् धर्मों और पृथक् क्रियाओं
 से युक्त हैं । हे निशाचर ! हम इनका वर्णन करते हैं । उसे
 सुनो । (४३)

हे वीर ! प्लक्ष से शाक तक के द्वीपों में जो सनातन
 पुरुष निवास करते हैं उनमें किसी प्रकार की युग की
 व्यवस्था नहीं है । (४४)

हे महाबाहो ! वे देवताओं के समान आनन्द करते
 हैं । उनका धर्म दिव्य कहा जाता है । कल्प के अन्त में
 इनका प्रलय होना वर्णित है । (४५)

भयङ्कर शीखने वाले पुष्करद्वीप में जो लोग रहते हैं वे
 पैशाचिक धर्मों के आश्रित होते हैं । कर्म के अन्त में उनका
 नाश होता है । (४६)

सुकेशी ने कहा—आप लोगों ने पुष्करद्वीप को क्यों
 भयङ्करदर्शन, पवित्रतारहित, घोर एव कर्म के अन्त में

ऋषय ऊचुः ।

तस्मिन् निशाचर द्वीपे नरकाः सन्ति दारुणाः ।
 रौरवाद्यास्तवो रौद्रः पुष्करो घोरदर्शनः ॥ ४८

सुकेशिश्रुवाच ।

कियन्त्येतानि रौद्राणि नरकाणि तपोधनाः ।
 कियन्नात्राणि मार्गेण का च तेषु स्वरूपता ॥ ४९

ऋषय ऊचुः ।

मृगुष्व राक्षसश्रेष्ठ प्रमाणं लक्षण तथा ।
 सर्वेषां रौरवादीनां संख्या या त्वेकविंशतिः ॥ ५०

द्वे सहस्रे योजनानां ज्वलिताङ्गारविस्तृते ।
 रौरवो नाम नरकः प्रथमः परिकीर्तितः ॥ ५१

तप्रताम्रमयी भूमिरघस्ताद्विधापिता ।
 द्वितीयो द्विगुणस्तस्मान्महारौरव उच्यते ॥ ५२

तवोऽपि द्विःस्थितथान्यस्तामिस्रो नरकः स्मृतः ।
 अन्धतामिस्रको नाम चतुर्थो द्विगुणः परः ॥ ५३

नाश करने वाला कहा है । (४७)

ऋषियों ने कहा—हे निशाचर ! उस द्वीप में रौरव
 आदि भयात्नक नरक हैं । इसी से रौद्र पुष्कर द्वीप देखने
 में भयङ्कर है । (४८)

सुकेशी ने कहा—हे तपस्वीर्षण ! वे रौद्र नरक कितने
 हैं ? उनका मार्ग कितना है ? उनका स्वरूप कैसा
 है ? (४९)

ऋषियों ने कहा—हे राक्षसश्रेष्ठ ! उन समस्त रौरव
 आदि नरकों का लक्षण और प्रमाण सुनो । उनकी संख्या
 इक्कीस है । (५०)

प्रथम रौरव नामक नरक कहा जाता है । वह दो हजार
 योजन विस्तृत एव ज्वलित अङ्गार से युक्त है । (५१)

इससे द्विगुणित महारौरव नामक द्वितीय नरक है ।
 उसकी भूमि जलते हुये तावे से बनी है, जो नीचे से
 अग्नि द्वारा तापित होती रहती है । (५२)

उससे द्विगुणित विस्तृत तीसरा तामिस्र नामक नरक
 कहा जाता है । उससे द्विगुणित अन्धतामिस्र नामक चतुर्थ
 नरक है । (५३)

ततस्तु कालचक्रेति पञ्चमः परिगीयते ।
अप्रतिष्ठं च नरकं घटीयन्त्रं च सममम् ॥ ५४
असिपत्रवनं चान्यत्सहस्राणि द्विसप्ततिः ।
योजनां परिख्यातमष्टमं नरकोत्तमम् ॥ ५५
नवमं तप्तहृन्मं च दशमं कूटशाल्मलिः ।
करपत्रस्तथैवोक्तस्तथाऽन्यः श्वानभोजनः ॥ ५६
संदंशो लोहपिण्डश्च करम्भसिक्ता तथा ।

घोरा क्षारनदी चान्या तयान्यः कुम्भिभोजनः ।
तथाऽष्टादशमी प्रोक्ता घोरा वैतरणी नदी ॥ ५७
तथाऽपरः शोणितपूयभोजनः
धुराग्रधारो निश्चितश्च चक्रकः ।
संशोपगो नाम तयाप्यनन्तः
प्रोक्तास्तथैते नरकाः सुकेशिन् ॥ ५८

इति धीयामनपुत्रणे एवादशोऽध्यायः ॥११॥

१२

सुकेशिर्वाच ।

कर्मणा नरकानेतान् केन गच्छन्ति वै कथम् ।
एतद् वदन्तु विभ्रेन्द्राः परं कौतूहलं मम ॥ १

श्रवय ऊचुः ।

कर्मणा येन येनेह गान्ति शालकृतंकट ।
स्वकर्मफलमोर्गार्थं नरकान् मे शृणुष्व तान् ॥ २

तदनन्तर पञ्चम नरक को कालचक्र कहते हैं । अम-
तिष्ठ नामक नरक पट्ट धीर घटीयन्त्र समम है । (५४)
नरकभेद असिपत्रवन नामक आठवाँ नरक यहार
हजार योजन विस्तृत कहा जाना है । (५५)
नरक तप्तहृन्म, दशमो कूटशाल्मलि, एकादश कर-
पत्र और बारहवाँ नरक श्वानभोजन है । (५६)

वेददेवद्विजातीनां यैर्निन्दा सततं कृता ।
ये पुरापेतिहामार्गान् नामिन्नन्दन्ति पापिनः ॥ ३
सुकुनिन्दाकरा ये च मत्पवित्रनकराश्च ये ।
दातुर्निवारका ये च तेषु ते निपतन्ति हि ॥ ४
सुहृद्भक्तिमोदर्यत्स्वामिभृत्यपितामुतान् ।
याज्योपाध्याययोर्षेथ कृतो भेदोऽधर्ममिवः ॥ ५

तदनन्तर प्रथम संदंश, लोहपिण्ड, करम्भसिक्ता,
मयंरर क्षार नदी, कुम्भिभोजन और अष्टारहवाँ को पौर
वैतरणी नदी कहा जाता है । (५७)
तदनन्तर शोणितपूयभोजन, धुराग्रधार, निश्चितचक्रक
तथा संशोपग नामक अन्त रहित नरक हैं । हे सुकेशी !
सुमते इन नरकों का वर्णन किया गया । (५८)

धीयामनपुत्रण में व्याख्या ब्रह्माय ॥११॥

१२

सुकेशी ने कहा—'हे विभ्रेन्द्रग ! आप लोग यह
कथनापे कि इन नरकों में मनुष्य किस कर्म से और कैसे
जाते हैं ? इस विषय में सुते अत्यन्त कौतूहल है । (१)
श्रवियों ने कहा—हे शालकृतंकट ! (राघवस) अपने
कर्मफल का भोग करने के लिये जिन कर्मों से मनुष्य इन
नरकों में जाते हैं उन्हें हमसे सुनो । (२)
वेद, वैशाखा एवं द्विजातियों की सतत निन्दा करने वाले,

पुत्राण एवं इतिहास के अप्यों का अभिन्नन्दन न करने वाले,
गुरुओं के निन्दक, धर्मों में विघ्न डालनेवाले और दागा
को रोक्ने वाले पापी इन नरकों में गिरते हैं । (३-४)

सुहृद्, बन्धु, सहोदर, प्रभु शूर्य, पिता-पुत्र, एवं
याज्योपाध्याय में परस्पर भेद उत्पन्न करनेवाले, अपन
व्यक्ति तथा जो अपन व्यक्तिक एक को कन्या देकर पुनः

कन्यामेकस्य दत्त्वा च ददत्यन्यस्य येऽधमाः ।
 करपत्रेण पाठ्यन्ते ते द्विधा यमकिंकरैः ॥ ६
 परोपतापजनकाथन्दनोशीरहारिणः ।
 बालव्यजनहर्तारः करम्भसिकताश्रिताः ॥ ७
 निमन्त्रितोऽन्यतो भुङ्क्ते श्राद्धे दैवे सपैतृके ।
 स द्विधा कृष्यते मूढस्तीक्ष्णतुण्डैः खगोचरैः ॥ ८
 मर्माणि यस्तु साधूनां तुदम् वाग्भिर्निकृन्वति ।
 तस्योपरि तुदन्वस्तु तुण्डैस्तिष्ठन्ति पत्रिणः ॥ ९
 यः करोति च पैशुन्यं साधूनामन्यथामति ।
 वज्रतुण्डनखा निहामाकर्षन्तेऽस्य धायसाः ॥ १०
 मातापितृगुरूणां च येऽवज्ञां चक्रुरुदताः ।
 मज्जन्ते पूषण्मूत्रे त्वप्रतिष्ठे ह्यधोमुखाः ॥ ११
 देवताऽतिथिभूतेषु भृत्येष्वभ्यागतेषु च ।
 अशुक्त्वस्तु येऽनन्वि बालपित्रग्निमावृषु ॥ १२
 दुष्टासृक्पूयनिर्यासं भुङ्क्ते त्वधमा इमे ।

दूसरे को देते हैं वे यम दूतों द्वारा करपत्र (आरे) से दो टुकड़ों में चीरे जाते हैं । (५-६)

दूसरे को सजाप देनेवाले, चन्दन और उशीर (सस) के धरणकर्ता और बालों से बने पक्षों अर्थात् चवरो के धरणकर्ता करम्भसिकता नामक नरक में जाते हैं । (७)

देव या पैतृक श्राद्ध में निमन्त्रित होकर अन्यत्र भोजन करने वाले मूढ़को तीक्ष्ण चोंच वाले बड़े-बड़े पक्षी दो टुकड़े करते हैं । (८)

बचनों के द्वारा चोट करते हुये जो सजनों के मर्मों को बाधता है उसके ऊपर चोंच द्वारा सहार करते हुये पक्षी बँटे रहते हैं । (९)

दुष्टबुद्धियुक्त जो मनुष्य साधुओं की पिशुनन करता है उसकी जिह्वा को वज्रतुण्ड चोंच और नख धारके कौए खींचते हैं । (१०)

माता, पिता एवं गुरु की अयशा करने वाले उद्वत पुरुष पूष, विद्या एवं मूय से पूर्ण अप्रतिष्ठ नामक नरक में अधोमुख अवस्था में झूबते हैं । (११)

देवता, अतिथि, अग्य प्राणी, मृत्य, अभ्यागत, बालक, पिता, अग्नि एवं माताओं को बिना सिलाने वाले अजयम पुरुष पर्यवतुल्य शरीर एवं सूची सदृश मुख से युक्त होकर

सूचीमुखी जायन्ते क्षुधात्ता गिरिविग्रहाः ॥ १३
 एकपट्टक्युपविष्टानां विषमं भोजयन्ति ये ।
 विड्भोजनं राक्षसेन्द्र नरकं ते व्रजन्ति च ॥ १४
 एकसाधप्रयात ये पश्यन्तथार्थिनं नराः ।
 असंविभज्य भुङ्क्न्ति ते यान्ति श्लेष्मभोजनम् ॥ १५
 गोब्राह्मणान्नयः स्पृष्टा यैरुच्छिष्टैः क्षपाचर ।
 क्षिप्यन्ते हि करास्तेषां तमकुम्भे सुदारुणे ॥ १६
 सूर्येन्दुतारका दृष्टा यैरुच्छिष्टैश्च कामतः ।
 तेषां नेत्रगतो वह्निर्धम्यते यमकिंकरैः ॥ १७
 मित्रजायाथ जननी ज्येष्ठो ब्राता पिता स्वसा ।
 जामयो गुरवो वृद्धा यैः संस्पृष्टाः पदा नृमिः ॥ १८
 वृद्धाङ्घ्रयस्ते निगडैर्लोहैर्वह्निप्रवापितैः ।
 क्षिप्यन्ते रौरवे घोरे ब्राजानुपरिदाहिनः ॥ १९
 पायसं कृशरं मांसं वृथा सुक्तानि यैर्नरैः ।
 तेषामयोगुडास्तपाः क्षिप्यन्ते वदनेऽसृष्टताः ॥ २०

क्षुधार्त रहते हुये दूषित रक्त एवं पीव का निर्यास (रस) भक्षण करते हैं । (१२-१३)

हे राक्षसेन्द्र ! एक ही पक्षि में बँटे हुये लोगों को जो समान रूप से भोजन नहीं कराते वे विड्भोजन नामक नरक में जाते हैं । (१४)

एक साथ चलनेवाले किसी इच्छुक को देखते हुये भी बिना बाँटे भोजन करने वाले श्लेष्मभोजन नामक (नरक) में जाते हैं । (१५)

हे राक्षस ! उच्छिष्टाशया में गाय, ब्राह्मण और अग्नि को स्पृश करने वालों के हाथ भयंकर तप्तकुम्भ में डाले जाते हैं । (१६)

उच्छिष्टाशया में खेचका से सूर्य, चन्द्र और नक्षत्र को देखने वालों के नेत्रों में यमदूत अग्नि जलाते हैं । (१७)

मित्रपत्नी, जननी, ज्येष्ठघाता, पिता, बहन, पुत्री, गुरु और वृद्धों को पैर से छूनेवाले मनुष्यों के पैर वह्नि-जलने हुए लोहनिगड से बाँधकर बग्ड़े रौरव नरक में डाले जाते हैं वहाँ वे ज्ञानुपर्यन्त जलने रहते हैं । (१८-१९)

पायस, कृशर एवं मांस का वृथा (देवादि को बिना अर्पित किये हुए) भोजन करने वालों के मुख में अद्भुत तप्त लौहपिण्ड टूँसा जाता है । (२०)

गुरुदेवद्विजातीनां वेदाना च नराधमैः ।
 निन्दा निशामिता यैस्तु पापानामिति कुर्वताम् ॥ २१
 तेषा लोहमयाः कीला बह्विधर्णाः पुनः पुनः ।
 श्रवणेषु निखन्यन्ते धर्मरानस्य किंकरैः ॥ २२
 प्रपादेवकुलारामान् विप्रवेधमसमानदान् ।
 रूपवापीतडागाश्च भङ्गवत्वा विध्वंसयन्ति ये ॥ २३
 तेषा विलपता चर्म देहत् क्रियते पृथक् ।
 कर्त्तिकामिः सुतीक्ष्णामिः सुरौर्द्रैर्मकिंकरैः ॥ २४
 गोब्राह्मणार्कमग्निं च ये वै मेहन्ति मानवाः ।
 तेषां गुदेन चान्त्राणि त्रिनि कृन्तन्ति वायसाः ॥ २५
 स्तपोपणपरो यस्तु परित्यजति मानव ।
 पुत्रभृत्यफलत्रादिवन्पुत्रवर्गमकिञ्चनम् ।
 दुर्मिक्षे सत्रमे चापि स क्षमोन्वे निपात्यते ॥ २६
 शरणागत ये त्यजन्ति ये च बन्धनपालकाः ।
 पतन्ति यन्त्रपीडे ते ताड्यमानास्तु किंकरैः ॥ २७

कलेशयन्ति हि निप्रादीन् ये ह्यकर्मसु पापिनः ।
 ते पिप्यन्ते शिलापेपे श्लोप्यन्तेऽपि च शोपकैः ॥ २८
 न्यासापहारिणः पापा वध्नन्ते निगडैरपि ।
 क्षुत्क्षामाः शुष्कताबोष्टाः पात्यन्ते वृथिकाशने ॥ २९
 पर्वमैथुनिनः पापाः परदाररताश्च ये ।
 ते बह्विधमा कूटाग्रामालिङ्गन्ते च शात्मलीम् ॥ ३०
 उपाध्यायमधःकृत्य यैरधीत द्विजाधमैः ।
 तेषामध्यापको यश्च स शिला शिरसा बहेत् ॥ ३१
 मूत्रवेधेम्पुरीषाणि वैरुस्तुष्टानि चारिणि ।
 ते पात्यन्ते च विष्णुवे दुर्गन्धे पृथूपरिते ॥ ३२
 श्राद्धातिथेयमन्योन्य यैर्युक्तं भुवि मानवैः ।
 परस्पर भक्षयन्ते मांसानि स्वानि वालिशः ॥ ३३
 वेदयद्विपुत्त्यागी भार्यापित्रोस्तपैव च ।
 गिरिशृङ्गद्वयपात पात्यन्ते यमकिंकरैः ॥ ३४
 पुनर्भूतयो ये च कन्याविध्वंसकाश्च ये ।

पापियों द्वारा की गई गुरु, देवता, ब्राह्मण और वेदों की निन्दा को सुनने वाले मीच मनुष्यों के कानों में धर्मराज के किंकर अग्निवर्ण लोहे की कीलें बार-बार ठोंकते हैं । (२१-२२)

प्रपा (प्याऊ), देवमन्दिर, उद्यान, ब्राह्मणगृह, समा, मठ, वृष, वापी (बावली) एवं तडागा को तोड़कर नष्ट करनेवाले मनुष्यों के विलाप करते रहने पर भयकर यमकिंकर सुतीक्ष्ण कुरिकाओं के द्वारा उनकी देह से चर्म को पृथक् करते हैं । (२३-२४)

गाय, ब्राह्मण, सूर्य और अग्नि के सम्मुख मल-मूत्रादि का उत्सर्ग करने वालों की मुदा से कौए उनकी आंठों को नोंच-नोंच कर काटते हैं । (२५)

'दुर्मिक्ष एव विप्लव्य के समय अकिञ्चन पुत्र, श्रृत्य एवं कलजादि वन्पुर्का को छोड़कर आत्मपोषण करनेवाला मनुष्य श्मश्रोजन नामक नरक में डाला जाता है । (२६)

शरणागत व्यक्ति का परित्याग करनेवाले तथा बन्धन पालक (कारागार-रक्षक) मनुष्य यमदूतों के द्वारा लाङ्घित होते हुये यन्त्र पीड नामक नरक में गिरते हैं । (२७)

अकर्मों में ब्राह्मणों को कलेश देने वाले पापी मनुष्य

शिलाओं पर पीसे जाते हैं तथा अग्नि द्वारा शोधित किये जाते हैं । (२८)

न्यास का अपहरण करनेवाले पापियों को निगडबद्ध कर क्षुधाक्षीण एवं शुष्क ताल्बोष्ट अवस्था में वृथिकाशन नामक नरक में गिराया जाता है । (२९)

पर्वमैथुन करनेवाले तथा परस्पर पापियों को बहिन तम कीलें वाले शात्मली का आलिङ्गन करना पड़ता है । (३०)

उपाध्याय को स्वयं की अपेक्षा निम्नासन पर बिठाकर अभ्यसन करनेवाले अपम द्विजों एवं उनके अभ्यापकों को शिरपर शिला बहन करनी पड़ती है । (३१)

जल में मूत्र, श्लेष्मा (कक) एवं मल का त्याग करने वालों को दुर्गन्ध युक्त विद्या, और पीव से पूर्ण विष्णुमूत्र नामक नरक में गिराया जाता है । (३२)

इस सप्तर में श्राद्ध वे अवसर पर अतिथि के निमित्त प्रस्तुत पदार्थ को परस्पर भक्षण करने वाले मूर्खों को परलोक में एक दूसरे का मांस खाना पड़ता है । (३३)

वेद, अग्नि, गुरु, भार्या, पिता एवं माता का त्याग करने वालों को यमदूत गिरिशिखर पर से नीचे गिराते हैं । (३४)

विधवा से विवाह करनेवालों, अविवाहित कन्या को

तद्गर्भश्राद्धमुग् यथ कृमीन्मक्षेत्पिपीलिकाः ॥ ३५
 चाण्डालादन्यजाद्वापि प्रतिगृह्णाति दक्षिणाम् ।
 याजको यजमानश्च सोऽश्मान्तः स्थूलकीटकः ॥ ३६
 पृष्ठमांसाशिनी मूढास्तथैवोत्कोचनीविनः ।
 क्षिप्यन्ते वृक्षमक्षे ते नरके रजनीचर ॥ ३७
 स्वर्णस्तेयी च ब्रह्मघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः ।
 तथा गोभूमिहर्तारो गोस्त्रीघालहनाश्च ये ॥ ३८
 एते नरा द्विजा ये च गोषु विक्रियिणस्तथा ।
 सोमविक्रयिणो ये च वेदविक्रयिणस्तथा ॥ ३९
 कृतसम्पान्त्वशौचाश्च नित्यनैमित्तनाशकाः ।
 कृतसाक्ष्यप्रदा ये च ते महारौरवे स्थिताः ॥ ४०
 दशवर्षसहस्राणि तावत् तामिस्रके स्थिताः ।
 तावच्चैवान्धतामिस्रे असिपत्रवने ततः ॥ ४१
 तावच्चैव घटीयन्त्रे तत्रकुम्भे ततः परम् ।
 प्रपातो भवते तेषां यैरिदं दुष्कृतं कृतम् ॥ ४२
 ये त्वेते नरका रौद्रा रौरवाद्याम्तवोदिताः ।
 ते सर्वे श्रमशः प्रोक्ताः कृतघ्ने लोकनिन्दिते ॥ ४३

दूषित करनेवालों एवं एक प्रकार से उत्पन्न व्यक्तियों की सन्तान के यहाँ श्राद्ध में भोजन करने वालों को कृमि तथा पिपीलिका का मक्षण करना पड़ता है । (३५)
 चाण्डाल और अन्यत्र से दक्षिणा लेनेवाले याजकों एवं उनके यजमानों को पत्थरों में रहनेवाला स्थूल कीट घनना पड़ता है । (३६)
 हे रजनीचर ! पुण्ड्रलोरो एवं घूसलोरो को शुक्रमक्ष नामक नरक में डाला जाता है । (३७)
 सुवर्णचोर, ब्राह्मण का हत्याकारी, मद्यप, गुरुपत्नीगामी, गाय, तथा भूमि की चोरी करने वाले एवं स्त्री तथा बालक के मारने वाले मनुष्यों तथा गो, सोम एवं वेद का विषय करने वाले, कृतसम्प तथा शौचाचारपरित्यागी, नित्यनैमित्तिकधर्मों के नाशक, कृत साक्ष्य देनेवाले द्विजों को महारौरव नामक नरक में नियास करना पड़ता है । (३८-४०)
 क्षपयुक्त प्रहार के पापियों को दस हजार वर्ष तामिस्र नरक में तथा घतने ही वर्षों तक अन्धतामिस्र और असिपत्रवन नामक नरक में रहने के क्षपयान्—घतने ही

यथा सुराणां प्रवरो जनार्दनी
 यथा गिरीणामपि शैशिराद्रिः ।
 यथायुधानां प्रवरं सुदर्शनं
 यथा खगानां निनतातनूजः ।
 महोरगाणां प्रवरोऽप्यनन्तो
 यथा च भूतेषु मही प्रधाना ॥ ४४
 नदीषु गङ्गा जलजेषु पद्मं
 सुरारिषुत्वेषु हरादिप्रभक्तः ।
 क्षेत्रेषु यद्वल्कुरुजङ्गलं वरं
 तीर्थेषु यद्वत् प्रवरं पृथूदकम् ॥ ४५
 सरस्तु चैवोत्तरमानसं यथा
 वनेषु पुण्येषु हि नन्दनं यथा ।
 लोकेषु यद्वत्सदनं विरिञ्चोः
 सत्यं यथा धर्माधिनिश्चालु ॥ ४६
 यथाऽश्वमेधः प्रवरः क्रतूनां
 पुत्रो यथा स्पर्शवतां वरिष्ठः ।
 तपोधनानामपि कुम्भयोनिः
 धृतिर्वरा यद्वदिहागमेषु ॥ ४७

वर्षों तक घटीयन्त्र और तत्रकुम्भ नामक नरकों में रहना पड़ता है । (४१-४२)
 जिन भयंकर रौरव आदि नरकों का वर्णन सुमसे किया गया है वे सभी लोक निन्दित कृतघ्नों को घारी-घारी से प्राप्त होते हैं । (४३)
 जैसे देववाओं में जनादेन, पर्वतों में हिमालय, अर्धों में सुदर्शन, पक्षियों में गरुड, महान् सर्पों में अनन्त नाम तथा भूतों में पृथ्वी श्रेष्ठ है । (४४)
 नदियों में गंगा, जलजों में कमल, देव शत्रु-दैत्यों में महादेव के चरणों का भक्त, क्षेत्रों में जिस प्रकार बुरुजांगल, तीर्थों में पृथूदक प्रधान है । (४५)
 जलाशयों में उत्तरमानस, पवित्र वनों में नन्दन वान, लोनों में ब्रह्मलोक, धर्म-कार्यों में सत्यप्रधान है तथा जैसे— (४६)
 यमों में अश्वमेध, स्पर्श करने योग्य पदार्थों में पुत्र, क्षपयियों में अगस्त्य, आगम शास्त्रों में वेद श्रेष्ठ है । (४७)

मूरयः पुराणेषु यथैव मात्स्यः
 स्वायंभुवोक्तिस्त्वपि संहितासु ।
 मनुः स्मृतीनां प्रवरो यथैव
 तिथीषु दशों विपुवेषु दानम् ॥ ४८
 तेजस्विनां यद्वदिहार्क उक्तो
 ऋक्षेषु चन्द्रो जलधिर्हृदेषु ।
 नवान् यथा राक्षससत्तमेषु
 पाशेषु नागस्तिमितेषु बन्धः ॥ ४९
 धान्येषु शालिद्रिपदेषु विप्रः
 चतुष्पदे गौः श्वपदां मृगेन्द्रः ।
 पुष्पेषु जाती नगरेषु काञ्ची
 नारीषु रम्भा श्रमिणां गृहस्थः ॥ ५०
 कुशस्थली श्रेष्ठतमा पुरेषु
 देशेषु सर्वेषु च मण्यदेशः ।
 फलेषु चूतो मूकलेष्वशोकः
 सर्वापधीनां प्रवरा च पथ्या ॥ ५१
 मूलेषु कन्दः प्रवरो ययोक्तो

जैसे पुराणों में मात्स्यपुराण, संहिताओं में स्वयम्भू के
 द्वारा कथित संहिता, स्मृतियों में मनुस्मृति, तिथियों में
 अमावस्या और विपुवों (मेघ और तुला की समान्ति)
 के अवसर पर किया गया दान श्रेष्ठ होता है । (४८)

तथा जैसे तेजस्वियों में सूर्य, नक्षत्रों में चन्द्रमा,
 जलाशयों में समुद्र, राक्षसश्रेष्ठों में आप और निरुच्छेद
 करतेवाले पाशों में नागपाश श्रेष्ठ है । (४९)

एव जैसे धानों में शालि, द्विपदों में ब्राह्मण, चतुष्पदों
 में गाय, जगली जानवरों में सिंह, फूलों में जाती, नगरों में
 काञ्ची, नारियों में रम्भा और आश्रमियों में गृहस्थ
 श्रेष्ठ हैं । (५०)

पुतों में कुशस्थली, समस्त देशों में मण्यदेश, फलों में

व्याधिग्रजीर्ण क्षणदाचरेन्द्र ।
 श्वेतेषु दुग्धं प्रवरं यथैव
 कार्पासिकं प्रावरणेषु यद्वत् ॥ ५२
 कलासु मूल्या गणितज्ञता च
 विज्ञानमुरयेषु यथेन्द्रजालम् ।
 शक्रेषु मूरया त्वपि काकमाची
 रसेषु मूरयं लवणं यथैव ॥ ५३
 तुङ्गेषु तालो नलिनीषु पम्पा
 वनौकसेष्वेव च श्वशुराजः ।
 महीरुहेष्वेव यथा वटश्च
 यथा हरो ज्ञानवतां वरिष्ठः ॥ ५४
 यथा सतीनां हिमवत्सुता हि
 यथार्जुनीनां कपिला वरिष्ठा ।
 यथा घृषाणामपि नीलवर्णों
 यथैव सर्वेष्वपि दुःसहेषु ।
 दुर्गेषु रौद्रेषु निशाचरेण
 नृषातनं वैतरणी प्रधाना ॥ ५५

आम, गुडुलों में अशोक, समस्त जड़ी वृद्धियों में पथ्या सर्व
 श्रेष्ठ है । (५१)

हे निशाचर ! जैसे मूलों में कन्द, रोगों में अजीर्ण,
 श्वेत वस्तुओं में दुग्ध और वरुओं में रूई के कपड़े श्रेष्ठ हैं ।
 (तथा जैसे) (५२)

कलाओं में गणितज्ञता, विज्ञान में इन्द्रजाल, शकों में
 काकमाची, रसों में लवण, ऊँची वस्तुओं में ताल, कमल-
 सरोवरों में पम्पा, वनौकसों में श्वशुराज, वृक्षों में वट,
 हानियों में महादेव वरिष्ठ हैं । (एव) हे निशाचर !
 जैसे— (५३-५४)

सतियों में पार्वती, गायों में कपिला, बैलों में नील रग
 का बैल, सभी दुःसह कठिन एव भयकर नरकों में वैतरणी
 सर्वप्रधान है । वसी प्रकार हे निशाचरेन्द्र ! पापियों में

चित्रोत्पला वै तमसा करमोदा पिशाचिका ।
 तयान्या पिप्पलशोणी विपाशा वञ्जुलावती ॥ २६
 सत्सन्तजा शुक्तिमती मञ्जिष्ठा कृत्तिमा वसुः ।
 श्लशपादप्रसूता च तयान्या बलवाहिनी ॥ २७
 शिवा पयोष्णी निर्विन्ध्या तापी सनिषावती ।
 वेणा वैतरणी चैव सिनीवाहुः कुमुद्वती ॥ २८
 तोया चैव महागौरी दुर्गन्धा वाशिला तथा ।
 विन्धवपादप्रसूताश्च नद्यः पुण्यजलाः शुभाः ॥ २९
 गोदावरी भीमरथी कृष्णा वेणा सरस्वती ।
 तुङ्गभद्रा सुप्रयोगा वाद्या कावेरिरेव च ॥ ३०
 दुग्धोदा नलिनी रेवा वारिसेना कल्म्वना ।
 एतास्त्वपि महानद्यः सहापादविनिर्गताः ॥ ३१
 कृतमाला ताम्रपर्णी वञ्जुला चोत्पलावती ।
 मिनी चैव सुदामा च शुक्तिमत्प्रभवास्त्विमाः ॥ ३२
 मर्वाः पुण्याः सरस्वत्यः पापप्रशमनास्तथा ।
 जगतो मातरः मर्वाः सर्वाः सागरयोपितः ॥ ३३
 अन्याः सहस्रशश्चात्र ध्रुवनयो हि राक्षस ।
 सदाकालवहाश्रान्याः प्रावृट्कालवहास्तथा ।

चित्रवृटा, अपवाहिना, चित्रोत्पला, तमसा, करमोदा, पिशाचिका, पिप्पलशोणी, विपाशा, वञ्जुलावती, सत्सन्तजा, शुक्तिमती, मञ्जिष्ठा, कृत्तिमा, वसु और बलवाहिनी—ये नदियाँ श्लश पर्यंत से निकली हैं । (२५-२७)

शिवा, पयोष्णी, निर्विन्ध्या, तापी, निरषावती, वेणा, वैतरणी, सिनीवाहु, कुमुद्वती, तोया, महागौरी, दुर्गन्धा तथा वाशिला—ये पवित्र जलपाटी कल्याणशारिणी नदियों विन्धवपर्यंत से निकली हुई हैं । (२८-२९)

गोदावरी, भीमरथी, कृष्णा, वेणा, सरस्वती, तुङ्गभद्रा, सुप्रयोगा, वाद्या, कावेरी, दुग्धोदा, नलिनी, रेवा, वारिसेना तथा कल्म्वना—ये महानदियाँ सहापर्यंत के पाद से निकली हैं । (३०-३१)

कृतमाला, ताम्रपर्णी, वंजुला, उत्पलावती, सिनी तथा सुदामा—ये नदियाँ शुक्तिमान पर्यंत से निकली हुई हैं । (३२)
 ये सभी नदियाँ पवित्र, पापों का प्रशमन करने वाली, जगत् की मातायें तथा सागर की पत्नियाँ हैं । (३३)

उदङ्मण्योद्भवा देशाः पिनन्ति स्वेच्छया शुभाः ॥ ३४
 मत्स्याः कुश्टाः कुणिकुण्डलाश्च
 पाञ्चालकाश्याः सह कोसलाभिः ॥ ३५
 वृक्षाः शबरकौवीराः सम्भूलङ्गा जनास्त्विमे ।
 शकाश्चैव समशका मध्यदेश्या जनास्त्विमे ॥ ३६
 वाहीका वाटधानाश्च आभीराः कालतोयकाः ।
 अपरान्तास्तवा शूद्राः पङ्कवाश्च सखेटकाः ॥ ३७
 गान्धारा यवनाश्चैव सिन्धुसौवीरमद्रकाः ।
 श्यातद्रवा ललितथाश्च पारावतसमूपकाः ॥ ३८
 माठरोदकधाराश्च कैकेया दशमास्तथा ।
 श्रियाः प्रातिवेश्याश्च वैश्यशूद्रकुलानि च ॥ ३९
 काम्बोजा दरदाश्चैव वर्मरा ह्यङ्गलौकिकाः ।
 चीनाश्चैव तुपाराश्च बहुधा वाह्यतोदराः ॥ ४०
 आत्रेयाः समरद्राजाः प्रस्थलाश्च दशोरकाः ।
 लम्पकान्तावकारामाः शूलिकास्तङ्गणैः सह ॥ ४१
 औरसाश्चालिमद्राश्च किरातानां च जातयः ।
 तामसाः क्रमामाश्च सुपार्श्याः पुण्ड्रकार्तव्या ॥ ४२
 कुल्ताः कुहुका ऊर्णास्तूणीपादाः सङ्कवृटाः ।

हे राक्षस । इनके अतिरिक्त अन्य सदस्यों ध्रुव नदियों भी यहाँ पर हैं । इनमें कतिपय सदैव प्रवाहित होने वाली हैं तथा कतिपय केवल वर्षा काल में प्रवाहित होने वाली हैं। उत्तर पश्चिम मध्य के देशों के निवासी इन पवित्र नदियों के जल को स्वेच्छया पान करते हैं । (३४)

मत्स्य, कुश्ट, कुणिक, कुण्डल, पाञ्चाल, काशी, कोशल, वृक, शबर, कौवीर, भूलङ्गा, शक, तथा मद्रक जातियों के मनुष्य मध्यदेश में रहते हैं । (३५-३६)

पाहलिय, वाटधान, आभीर, कालतोयक, अपरान्त, शूद्र पङ्कव, खेटक, गान्धार, यवन, सिन्धु, सौवीर, मद्रक, शान्द्रय, ललित्य, पारावत, मूपक, माठर, उदकपार, कैकेय दशम, क्षत्रिय, प्रातिवेश्य, तथा वैश्य एवं शूद्रों के कुल, कम्बोज, दरद, बर्मर, अङ्गलौकिक, चीन, तुपार, बहुधा, वाह्यतोदर, आत्रेय, मरद्राज, प्रस्थल, दशोरक, लम्पक, तावक, राम, शूलिक, तङ्गण, औरस, अल्यिमद्र, किरातों की जातियाँ, तामस, क्रममास, सुपार्श्व, पुण्ड्रक, कुल्ता, कुहुक, ऊर्ण,

माण्डव्या मालवीयाश्च उत्तरापथवामिनः ॥ ४३
 अङ्गा बङ्गा सुद्वारवास्तवन्तर्गिरिर्हिर्गिराः ।
 तथा प्रवङ्गा बाङ्गेया मासादा वलदन्तिकाः ॥ ४४
 ब्रह्मोत्तरा प्राविजया भार्गवाः केशवर्वरा ।
 प्राग्व्योतिषाश्च शूद्राश्च विदेहास्ताम्रलिङ्गकाः ॥ ४५
 माला मगधगोनन्दाः प्राच्या जनपदास्त्रियमे ।
 पुण्ड्रश्च केरलाश्च चौडाः कुल्याश्च राक्षस ॥ ४६
 जातुषा मूपिकादाश्च कुमारदा महाशकाः ।
 महाराष्ट्रा माहिषिकाः कालिङ्गाश्चैव सर्वशः ॥ ४७
 आभीराः सह नैपीका आरण्याः शनराथ ये ।
 वलिन्ध्या विन्ध्यमौलिया वैदर्भा दण्डकैः सह ॥ ४८
 पौरिकाः सौशिकश्चैव अमका भोगवर्द्धनाः ।
 वैपिकाः कुन्दला अन्ध्रा उज्जिदा नलकारकाः ।
 दाक्षिणात्या जनपदास्त्रियमे शालकटङ्कट ॥ ४९
 सूर्पारका कारिवना दुर्गास्तालीकटैः सह ।
 पुलीयाः ससिनीलाश्च तापसास्तामसास्तथा ॥ ५०
 कारस्करास्तु रमिनी नासिक्यान्तरनर्मदाः ।

भारकच्छाः समाहेयाः सह सारस्वतीरपि ॥ ५१
 वात्सेयाश्च सुराष्ट्राश्च आवन्त्याश्चायुर्देः सह ।
 इत्येते पश्चिमाभायां स्थिता जानपदा जनाः ॥ ५२
 कारुपाश्चैकलव्याश्च मेकलाश्चोत्कलैः सह ।
 उत्तमर्णा दशार्णाश्च भोजाः किंरुवरैः सह ॥ ५३
 तोशला कोशलाश्चैव त्रैपुराश्चैल्लिकास्तथा ।
 तुस्सास्तुन्वरानश्चैव वहनाः नैपथैः सह ॥ ५४
 अनूपास्तुण्डिकेराश्च वीतहोत्रास्त्वन्तयः ।
 सुकेशे विन्ध्यमूलस्यान्त्रियमे जनपदाः स्मृताः ॥ ५५
 अथो देशान् प्रवक्ष्यामः पर्वताश्चयिणस्तु ये ।
 निराहारा हंसमार्गाः कुपथास्तङ्गणाः खशाः ॥ ५६
 कुपथावरणाश्चैव ऊर्णाः पुण्याः सहडुकाः ।
 त्रिगर्ताश्च किराताश्च तोमराः शिन्धिराद्रिकाः ॥ ५७
 इमे ततोक्ता विपयाः सुविस्तराद्
 द्वीपे कुमारै रजनीचरेश ।
 एतेषु देशेषु च देशवर्मान्
 संकीर्त्यमानाञ्च शृणु वत्सवो हि ॥ ५८

इति श्रीवामनपुराणे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

तूणीपाद्, कुन्डकट, माण्डव्य एव मालवीय ये जातिव्यो
 उत्तरापथ (उत्तरारण्ड) के निवासी हैं । (३७-४३)
 अग, ऋग, एव सुद्वारव्य, अन्तगिरि, बहिर्गिरि, प्रवग, वागेय,
 मासादा, वलदन्तिक, ब्रह्मोत्तर, प्राविजय, भार्गव, केशवर्वर,
 प्राग्व्योतिष, शूद्र, विवेह, ताम्रलिङ्ग, माला, मगध एव
 गोनन्द-ये पूर्व के जनपद हैं । (४४-४६ ५b)
 हे राक्षस ! पुण्ड्र, केरल, चौड, डुर्य, जातुप, मूपि
 काद, कुमारदा, महाशक, महाराष्ट्र, माहिषिक, कालिङ्ग,
 आभीर, नैपीक, आरण्य, शनर, वलिन्ध्य, विन्ध्यमौलिय, वैदर्भ,
 दण्डक, पौरिक, सौशिक, अमक, भोगवर्द्धन, वैपिक,
 कुन्दल, अन्ध, सूर्भिद् एव नलकारक—हे शालकट ! ये
 दक्षिण के जनपद हैं । (४६ ०d-४६)
 सूर्पारक, कारिवन, दुर्ग, तालीकट, पुलीय, ससिनील,
 तापस, तामस, कारस्कर, रमी, नासिक्य, अन्तर, नर्मद,

भारकच्छ, माहेय, सारस्थ, वात्सेय, सुराष्ट्र, आयत्य एव
 आयुर्दे के पश्चिम दिशा में स्थित जनपदों के निवासी
 हैं । (५०-५२)
 कारुप, ऐकलव्य, मेकल, उत्कल, उत्तमर्ण, दशार्ण, भोज,
 किंरुवर, तोशल, कोशल, त्रैपुर, ऐल्लिक, तुस्म, तुन्वर, वहन,
 नैपथ, अनूप, तुण्डिकेर, वीतहोत्र एव अन्ती—हे सुकेशी !
 ये सभी जनपद विन्ध्यपर्वत के मूल में हैं । (५३-५५)
 हम अब पर्वताश्रित देशों का वर्णन करेंगे (उनके नाम
 ये हैं—)। निराहार, हंसमार्ग, कुपथ, तगण, खश, कुप
 थावरण, ऊर्ण, पुण्या, हडुका, त्रिगर्व, किरात, तोमर एव
 शिन्धिराद्रिक । (५६-५७)
 हे राक्षस ! तुम से कुमारद्वीप के इन देशों का विस्तार
 से हम लोगों ने वर्णन किया। अब हम इन देशों में वर्तमान
 देश पर्वतों का यथार्थ वर्णन करेंगे। उसे सुनो । (५८)

श्रीवामन पुराण मे तेऽहो अध्याय समाप्त ॥१३॥

पापीयसां तद्ब्रदिह कृतमः -
सर्वेषु पापेषु निशाचरेन्द्र ।
ब्रह्ममग्नौघादिषु निष्कृतिर्हि

विद्येत नैवास्य तु दुष्टचारिणः ।
न निष्कृतिश्चारित कृत्स्नवृत्तेः
सुहृत्कृतं नाशयतोऽब्दकोटिभिः ॥ ५६

इति श्रीवामनपुराणे द्वादशोऽध्याय ॥ १२ ॥

१३

मुकेशिरुवाच ।

भवद्भिर्दत्ता घोरा पुष्करद्वीपसंस्थितिः ।
जम्बूद्वीपस्य संस्थानं कथयन्तु महर्षयः ॥ १

श्रुणुय ऊचुः ।

जम्बूद्वीपस्य संस्थानं कथयमानं निशामय ।
नवभेदं सुविस्तीर्णं स्वर्गमोक्षफलप्रदम् ॥ २
मध्ये त्विलावृतो वर्षो भद्राश्वः पूर्वतोऽद्भुतः ।
पूर्वं उत्तरतश्चापि हिरण्यो राक्षसेश्वर ॥ ३
पूर्वदक्षिणतश्चापि किन्नरो वर्ष उच्यते ।

भारतो दक्षिणे प्रोक्तो हरिर्दक्षिणपश्चिमे ॥ ४
पश्चिमे केतुमालश्च रम्यकः पश्चिमोत्तरे ।
उत्तरे च कुरुवर्षः कल्पवृक्षसमावृतः ॥ ५
पुण्या रम्या नवैते वर्षाः शालकटंकट ।
इलावृताद्या ये चाष्टौ वर्षा मुवत्सैव भारतम् ॥ ६
न तेष्वस्ति युगावस्था जरासृत्युभयं न च ।
तेषां स्वाभाषिकी सिद्धिः सुखप्राया ह्यमन्ततः ।
विपर्ययो न तेष्वस्ति नोत्तमाधममध्यमाः ॥ ७
यदेतद् भारतं वर्षं नवद्वीपं निशाचर ।
सागरान्तरिताः सर्वे अगम्याश्च परस्परम् ॥ ८

कृतघ्न प्रधानतम पापी होता है । ब्रह्महत्या एव गोहत्या आदि पापों की निष्कृति तो होती है निम्नु दुष्टचारी एव सुहृद् के किये को नष्ट करने वाले कृतघ्न की निष्कृति कठोड़ों वर्षों में भी नहीं होती । (५५-६)

श्रीवामन पुराण में बारहवें अध्याय समाप्त ॥१२॥

१३

मुकेशी ने कहा—हे ऋषियग, आप लोगों ने पुष्कर द्वीप की घोर संस्थिति का वर्णन किया, अब जम्बूद्वीप के संस्थान का वर्णन करें । (१)

ऋषियों ने कहा—जम्बूद्वीप की स्थिति का वर्णन हम लोगों से सुनो । यह अति विस्तीर्ण द्वीप नव भागों में विभाजित है तथा रम्य मोक्ष के फल तो देने वाला है । (२)

हे राक्षसेश्वर ! इसके बीच में इलावृत वर्ष, पूर्व में अद्भुत भद्राश्व वर्ष, तथा पूर्वोत्तर में हिरण्य वर्ष है । (३)

पूर्व-दक्षिण में किन्नर वर्ष, दक्षिण में भारतवर्ष तथा दक्षिण-पश्चिम में हरिवर्ष बताया गया है । (४)

पश्चिम में केतुमाल-वर्ष, पश्चिमोत्तर में रम्यक वर्ष और उत्तर में कल्पवृक्ष से समावृत कुरुवर्ष है । (५)

हे शालकटंकट ! ये नव पवित्र और रमणीय वर्ष हैं । भारतवर्ष के अतिरिक्त इलावृतादि आठ वर्षों में युगावस्था तथा जरासृत्यु का भय नहीं होता । इनमें बिना प्रयत्न के राशभाषिक तथा सुख बहुल सिद्धि होती है तथा इनमें कोई विपर्यय (परिवर्तन) तथा उत्तम, मध्यम एवं अधम का भेद भी नहीं होता । हे निशाचर ! इस भारतवर्ष में नव द्वीप हैं । ये सभी द्वीप समुद्रों से व्यवहित हैं और परस्पर अगम्य हैं । (६-८)

इन्द्रद्वीपः कसेरुमांस्ताम्रवर्णो गमस्तिमान् ।
 नागद्वीपः कटाहश्च सिंहलो वारुणस्त्वया ॥ ९
 अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरमन्वृतः ।
 कुमाराख्यः परिख्यातो द्वीपोऽयं दक्षिणोत्तरः ॥ १०
 पूर्वं किराता यस्यान्ते पश्चिमे यवनाः स्थिताः ।
 आन्ध्रा दक्षिणतो वीर तुरुष्कास्त्वपि चोचरे ॥ ११
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्तर्यासिनः ।
 इज्यायुद्धवर्णिज्यायैः कर्मभिः कृतपावनाः ॥ १२
 तेषां संख्यनहारश्च एभिः कर्मभिरिष्यते ।
 स्वर्गापवर्गप्राप्तिश्च पुण्यं पापं तत्रैव च ॥ १३
 महेन्द्रो मलयः सद्यः शुक्तिमान् ऋक्षपर्वतः ।
 विन्ध्यश्च पारियात्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः ॥ १४
 वयान्ये शतसाहस्रा भूधरा मध्यवासिनः ।
 विस्तारोच्छ्रायिणो रम्या विपुलाः शुभसानधः ॥ १५
 कोलाहलः स्रैभ्राजो मन्दरो दुर्दर्पाचलः ।
 यातंधमो वैश्रुवश्च मैनाकः सरसस्तथा ॥ १६
 तुङ्गप्रस्थो नागगिरिस्तथा गोवर्धनाचलः ।

उज्जायनः पुष्पगिरिरर्बुदो रैवतस्तथा ॥ १७
 ऋष्यभूकः सगोमन्तश्चित्रकूटः कृतस्मरः ।
 श्रीपर्वतः कोङ्कणश्च श्रवतोऽन्येऽपि पर्वताः ॥ १८
 तैर्विभिश्चा जनपदा म्लेच्छा आर्याश्च नागशः ।
 तैः पीयन्ते सरिच्छ्रेष्ठा यास्ताः सम्बद्ध निशामय ॥ १९
 सरस्वती पञ्चरूपा कालिन्दी सहिरण्यती ।
 श्रवद्रुद्रचन्द्रिका नीला वित्तैरावती कृद्दः ॥ २०
 मधुरा हाररावी च उशीरा धातुकी रसा ।
 गोमती धृतपापा च वाहुदा सद्यपद्मती ॥ २१
 निश्विरा गण्डकी चित्रा कौशिकी च यधूमरा ।
 सरयुश्च सलौहित्या हिमवत्पादनिःसृताः ॥ २२
 वेदस्मृतिर्वेदसिनी धृवमती सिन्धुरेव च ।
 पर्णाशा नन्दिनी चैव पावनी च मही तथा ॥ २३
 पारा चर्मण्ठी लूपी विदिशा वेणुप्रत्यपि ।
 सिन्ध्रा क्षवन्ती च तथा पारियात्राभ्रयाः स्मृताः ॥ २४
 शोषो महानदश्चैव नर्मदा सुरसा कृपा ।
 मन्दाकिनी दशार्णा च चित्रवृटापवाहिका ॥ २५

भास्वरपर्व के नदियों के नाम इस प्रकार हैं—इन्द्रद्वीप, कसेरुमान्, ताम्रवर्ण, गमस्तिमान्, नागद्वीप, कटाह, सिंहल, और वारुण तथा यह सागर से युक्त कुमार नामक नवम द्वीप दक्षिण से उत्तर की ओर फैला है । (६-२०)
 है वीर । भास्वरपर्व के पूर्व की सीमा पर किरात, पश्चिम में यवन, दक्षिण में आन्ध्र तथा उत्तर में तुरुष्क लोग स्थित हैं । (११)

इसके अन्तर्भाग में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र लोग रहते हैं । यज्ञ, युद्ध एवं पाणिज्य आदि कर्मों के द्वारा वे सभी पवित्र किये गये हैं । उनका नव्यनहार, स्वर्गापवर्ग की की प्राप्ति तथा पाप एवं पुण्य इन्हीं कर्मों द्वारा होता है । (१२-१३)

इस वर्ष में महेन्द्र, मलय, सद्य, शुक्तिमान् ऋक्ष, विन्ध्य एवं पारियात्र नाम वाले सात बृह (मुख्य) पर्वत हैं । (१४)

इसके मध्य में अन्य छायों पर्वत हैं जो अत्यन्त विसृष्टी, वचुङ्ग, शम्भ एवं सुन्दर शृङ्गों वाले हैं । (१५)
 कोलाहल, स्रैभ्राज, मन्दर, दुर्दद, यातंधम, वैश्रुव,

मैनाक, सरस, तुङ्गप्रस्थ, नागगिरि, गोवर्धन पर्वत, उज्जायन, पुष्पगिरि, अर्बुद, रैवत, ऋष्यभूक, गोमन्त, चित्रकूट, कृतस्मर, श्रीपर्वत, कोङ्कण तथा सेरुदों अन्य पर्वत (यहाँ हैं) । (१६-१८)

इनसे आयों और म्लेच्छों के विभागानुसार जनपद संयुक्त हैं । यहाँ के निवासी, जिन श्रेष्ठ नदियों का जल पीते हैं उनका वर्णन मही मौलि सुने । (१९)

सरस्वती, पञ्चरूपा, कालिन्दी, हिरण्यती, श्रवद्रु, चन्द्रिका नीला, विजस्ता, ऐरावती, इन्द्र, मधुरा, हाररावी, उशीरा, धातुकी, रसा, गोमती, धृतपापा, वाहुदा, सद्यपद्मती, निश्विरा, गण्डकी, चित्रा, कौशिकी, यधूमरा, सरयु तथा डीहित्या-ये नदियाँ हिमालय के पाद से निकली हैं । (२०-२२)

वेदस्मृति, वेदसिनी, धृवमती, सिन्धु, पर्णाशा, नन्दिनी, पावनी, मही, पारा, चर्मण्ठी, लूपी, विदिशा, वेणुप्रती, सिन्ध्रा तथा अश्वी—ये नदियाँ पारियात्र पर्वत से निकली हैं । (२३-२४)

महानद शोण, नर्मदा, सुरसा, कृपा, मन्दाकिनी, दशार्णा,

ऋषय ऊचुः ।

अहिंसा सत्यमस्तेयं दानं क्षान्तिर्दमः शमः ।
अकार्पण्यं च शौचं च तपश्च रजनीचर ॥ १
दशाङ्गो राक्षसश्रेष्ठ धर्मोऽसौ सार्वर्वाणिकः ।
ब्राह्मणस्यापि विहिता चातुराश्रम्यरूपना ॥ २
सुकेशिरुवाच ।

विप्राणां चातुराश्रम्यं विस्तरान्मे तपोधनाः ।
आचक्षुष्वं न मे तृप्तिः शृण्वतः प्रतिपद्यते ॥ ३

ऋषय ऊचुः ।

कृतोपनयनः सम्यग् ब्रह्मचारी गुरौ वसेत् ।
तत्र धर्मोऽस्य यस्तं च कथ्यमानं निशामय ॥ ४
स्वाध्यायोऽथाग्निशुश्रूषा स्नान मिश्राटनं तथा ।
गुरोर्निवेद्य तच्चायमनुज्ञातेन सर्वदा ॥ ५
गुरोः कर्मणि सोद्योगः सम्यक्प्रीत्युपपादनम् ।

१४

ऋषियोंने कहा—हे राक्षसश्रेष्ठ ! अहिंसा, सत्य, अस्तेय (चोरी न करना) दान, क्षमा, दम (इन्द्रिय निग्रह), शम, अकार्पण्य, शौच एवं तप—इन दस अङ्गों वाला धर्म सभी वर्णों के लिये विहित है । ब्राह्मणों के लिये पार आश्रमों का विधान किया गया है । (१-२)

सुकेशी ने कहा—हे तपोधनो ! ब्राह्मणों के हेतु विहित चातुराश्रम्य को आप लोग विस्तार पूर्वक सुनसे कहें । मुझे सुनते हुये तृप्ति नहीं हो रही है । (३)

ऋषियोंने कहा—भलीभांति उपनयन सस्कार हो जाने पर ब्रह्मचारी गुरु के गृह पर रहे । वहाँ उसके जो धर्म हैं उन्हें धतला रहा हूँ, तुम सुनो । (४)

स्वाध्याय, अग्निहोती सेवा, स्नान, भिक्षाटन, सर्वदा गुरु को निवेदित करके तथा उनसे आज्ञा प्राप्त कर भोजन करना । गुरु के कार्य हेतु उद्यत रहना, सम्यक् रूप से गुरु में प्रीति उत्पन्न करना, उनके द्वापक सुलभे जाने पर तत्पर तथा एकामर्षित होकर पढ़ना । (ये उसके धर्म हैं) (५-६)

तेनाहूत. पठेचैव तत्परो नान्यमानसः ॥ ६

एकं द्वो सकलान् वापि वेदान् प्राप्य गुरोर्मुखत् ।

अनुज्ञातो वर दत्त्वा गुरवे दक्षिणा ततः ॥ ७

गार्हस्थ्यथाश्रमकामस्तु गार्हस्थ्यथाश्रममावसेत् ।

वानप्रस्थाश्रम चाऽपि चतुर्थं स्वेच्छयात्मनः ॥ ८

तत्रैव वा गुरोर्गोहे द्विजो निष्ठामवाप्नुयात् ।

गुरोरभावे तत्पुत्रे तच्छिष्ये तत्सुत विना ॥ ९

शुश्रूषन् निरभीमानो ब्रह्मचर्याश्रम वसेत् ।

एवं जयति मृत्युं स द्विजः शालकटङ्कट ॥ १०

उपावृत्तस्तवस्तस्माद् गृहस्थाश्रमकाम्यया ।

असमानर्पिकुलजा कन्यासुद्वहेद् निशाचर ॥ ११

स्वकर्मणा धनं लब्ध्वा पितृदेवातिथीर्निपि ।

सम्यक् संग्रहयेद् भक्त्या सदाचाररतो द्विजः ॥ १२

गुरु के मुख से एक, दो या सभी वेदों को प्राप्त कर गुरु को धन तथा दक्षिणा देने के पश्चात् उनसे अनुज्ञा, प्राप्त कर, गृहस्थाश्रम में जाने का इच्छुक (शिष्य) गार्हस्थ्यश्रम में प्रवेश करे । अथवा अपनी इच्छा के अनुसार वनिप्रस्थ या सन्यास का अवलम्बन करे । (७-८)

अथवा वही गुरु के घर में ब्राह्मण मृत्यु (नैष्ठिक ब्रह्मचर्य) प्राप्त करे अर्थात् जीवनपर्यन्त रहे । गुरु के अभाव में उनके पुत्र एवं पुत्र न हो तो उनके शिष्य के समीप निवास करे । (९)

हे शालकटङ्कट ! अभिमानरहित तथा झुझपा करते हुये ब्रह्मचर्याश्रम में रहे । इस प्रकार अनुष्ठान करने वाला द्विज मृत्यु को जीत लता है । (१०)

हे निशाचर ! वहाँ से उपावृत्त होकर गृहस्थाश्रम की कामना से असमान ऋषि बलि, कुल में उत्पन्न कन्या से विवाह करे । (११)

सदाचार में रत द्विज अपने कर्म द्वारा धनोपार्जन कर

सुकेशिस्त्वाच ।

सदाचारो निगदितो घुम्भामिर्मम सुव्रताः ।
लक्षणं श्रोतुमिच्छामि कथयस्व तमय मे ॥ १३

ऋषय ऊचुः ।

सदाचारो निगदितस्त्व योऽस्माभिरादरात् ।
लक्षणं तस्य वक्ष्यामस्तच्छृणुष्व निशाचर ॥ १४
गृहस्थेन सदा कार्यमाचारपरिपालनम् ।

न ह्याचारविहीनम्य भद्रमत्र परत्र च ॥ १५
यज्ञदानतपासीह पुरुषस्य न भूये ।
भवन्ति यः समृद्धिर्घ्य सदाचारं प्रवर्तते ॥ १६
दुराचारो हि पुरुषो नेह नामुत्र नन्दते ।
कार्यो यतनः सदाचारे आचारो हन्त्यलक्षणम् ॥ १७
तस्य स्वरूपं वक्ष्यामः सदाचारस्य राक्षस ।
शृणुष्वैकमनास्तच्च यदि श्रेयोऽभिवाञ्छसि ॥ १८

धर्मोऽस्य मूलं धनमस्य शाखा
पुण्यं च कामः फलमस्य मोक्षः ।

पितरों, देवों एव अतिथियों को अपना भक्ति द्वारा सम्यक्
तथा एत करे । (१२)

सुकेशी ने कहा—हे सुव्रते ! आप लोगों ने मुझ से
सदाचार का वर्णन किया है । मैं उसका लक्षण सुनना
चाहता हूँ । मुझसे अब उसका वर्णन करें । (१३)

ऋषियों ने कहा—हे निशाचर ! हमने आदर के साथ
तुमसे जिस सदाचार का उल्लेख किया है, उसका लक्षण
बढ़ते हैं, उसे सुनो । (१४)

गृहस्थ को आचार का सदा पालन करना चाहिये ।
आचारहीन व्यक्ति का इसलोक और परलोक में कल्याण
नहीं होता है । (१५)

सदाचार का उल्लंघन पर क्यवद्द्वार करनेवाले पुरुष के
यज्ञ, दान एवं तप कल्याणकर नहीं होते । (१६)

दुराचारी पुरुष इस लोक तथा परलोक में आनन्दित
नहीं होता । अतः आचार पालन में सदा प्रयत्न करना
चाहिये । आचार अलक्षण को विनष्ट करता है । (१७)
हे राक्षस ! उस सदाचार का स्वरूप बढ़ते हैं ।

असौ मदाचारतरुः सुकेशिन्
संसेवितो येन स पुण्यभोक्ता ॥ १९

ब्राह्मे सुहृते प्रथमं विबुध्वे-
दनुस्मोद् देववरान् महर्षिन् ।

प्राभातिकं मङ्गलमेव वाच्यं
यदृक्तवान् देवपतिस्त्रिनेत्रः ॥ २०

सुकेशिस्त्वाच ।

किं तदुक्तं सुप्रभातं शंखेण महात्मना ।
प्रभाते यत् पठन्मर्त्यो मुच्यते पापनश्वनात् ॥ २१

ऋषय ऊचुः ।

श्रूयतां राक्षसश्रेष्ठ सुप्रभातं हरोदितम् ।
श्रुत्वा स्मृत्वा पठित्वा च सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ २२

ब्रह्मा श्रारारिस्त्रिपुरान्तकारी
भानुः शशी भूमिसुतो बुधश्च ।

गुरुश्च शुकः सह भानुजेन
कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥ २३

यदि कल्याण चाहते हो तो एकाग्रचित्त होकर उसे
सुनो । (१८)

हे सुकेशी ! धर्म इसका मूल है, धन इसकी शाखा
है, काम इसका पुण्य है एव मोक्ष इसका फल है—ऐसे
सदाचार रूपी वृक्ष का जिसने सेवन किया है वह पुण्य
को भोगने वाला हावा है । (१९)

ब्राह्मसुहृते में उठकर सर्वप्रथम श्रेष्ठ देवों एवं महर्षियों
का स्मरण करे तथा देवपति महादेव द्वारा कथित प्रभात-
कालीन मंगल को पढ़े । (२०)

सुकेशी ने कहा—महात्मा शंकर ने कौन सा सुप्रभात
कहा है । जिसका प्रान जाळ पाठ करने से मनुष्य पाप
क्षयन से मुक्त हो जाता है । (२१)

ऋषियों ने कहा—हे राक्षसश्रेष्ठ ! महादेव द्वारा कथित
‘सुप्रभात’ सुनो ! इसको सुनने, स्मरण करने और पढ़ने से
मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है । (२२)

ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध,
बृहस्पति, शुक, तथा शनि—ये सब मेरा सुप्रभात
करें । (२३)

भृगुर्वसिष्ठः ऋतुरङ्गिराश्च
 मनुः पुलस्त्यः पुलहः सगौतमः ।
 रैभ्यो मरीचिश्च्यवनो ऋद्धुश्च
 कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥ २४
 सनत्कुमारः सनकः सनन्दनः
 सनातनोऽप्यासुरिपिङ्गलौ च ।
 सप्त स्वराः सप्त रसातलाश्च
 कुर्वन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥ २५
 पृथ्वी सगन्धा सरसाम्भथाऽऽपः
 स्पर्शश्च वायुर्ज्वलनः सतेजाः ।
 नभः सशब्दं महता सहैव
 यच्छन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥ २६
 सप्तार्णवाः सप्त कुलाचलाश्च
 समर्षयो द्वीपवराश्च सप्त ।
 भूरादि कृत्वा भुवनानि सप्त
 ददन्तु सर्वे मम सुप्रभातम् ॥ २७
 इत्थं प्रभाते परमं पवित्रं
 पठेत् स्मरेद्वा शृणुयाच्च भक्त्या ।
 दुःस्वप्ननाशोऽनघ सुप्रभातं

भृगु, वसिष्ठ, ऋतु, अंगिरा, मनु, पुलस्त्य, पुलह, गौतम, रैभ्य, मरीचि, च्यवन तथा ऋद्धु ये सभी (ऋषि) मेरा सुप्रभात करें । (२४)

सनत्कुमार, सनक, सनन्दन, सनातन, आसुरि, (पगल, सातों स्वरा एवं सातों रसातल—ये सभी मेरा सुप्रभात करें । (२५)

गन्धयुक्त पृथिवी, रसयुक्त जल, स्पर्शयुक्त वायु, तेज-युक्त ध्वनि, शब्द युक्त आकाश एवं महत्त्वच ये सभी मेरा सुप्रभात करें । (२६)

सात समुद्र, सात बुल्लपर्वत, सात ऋषि, सात क्षेत्र द्वीप और भू आदि सात लोक ये सभी मुझे सुप्रभात प्रदान करें । (२७)

इस प्रकार प्रातःकाल परम पवित्र सुप्रभात श्लोक को भक्तिपूर्वक पढ़े, स्मरण करे अथवा सुने । हे अनघ ! (बिसा करनेसे) भगवान् की कृपा से निग्रय ही दुःस्वप्न

भवेच्च सत्यं भगवत्प्रसादात् ॥ २८
 ततः समुत्थाय विचिन्तयेत्
 धर्मं तथार्थं च विहाय शय्याम् ।
 उत्थाय पश्चाद्भरिस्त्रिभुदीर्यं
 गच्छेत् तदोत्सर्गविधिं हि कर्तुम् ॥ २९
 न देवगोब्राह्मणवह्निमार्गो
 न राजमार्गो न चतुष्पथे च ।
 कुर्यादथोत्सर्गमपीह गोष्ठे
 पूर्वापरं चैव समाश्रितो गाम् ॥ ३०
 ततस्तु शौचार्थंघृष्याहरेन्मृदं
 गुदे त्रयं पाणितले च सप्त ।
 तथोभयोः पञ्च चतुस्तथैकां
 लिङ्गे तथैकां मृदमाहरेत् ॥ ३१
 नान्तर्जलाद्राक्षस मृषिकस्थलात्
 शौचावशिष्टा शरणात् तथान्या ।
 बल्मीकमृच्चैव हि शौचनाय
 ग्राह्या सदाचारविदा नरेण ॥ ३२
 उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वापि विद्वान्
 प्रक्षाल्य पादौ भुवि संनिविष्टः ।

का नाश होता है तथा सुप्रभात होता है । (२८)

तदनन्तर उठकर धर्म तथा अर्थ की चिन्ता करे और शय्या त्याग करने के उपरान्त 'हरि' का नाम लेकर उत्सर्ग विधि (शौचादि) करने के लिये जाय । (२९)

देवता, गौ, ब्राह्मण और अग्नि के मार्ग, राजपथ और चौराहे पर, गोशाला में तथा पूर्व या पश्चिम दिशा की ओर मुख करके मल-त्याग न करें । (३०)

तदनन्तर शौचार्थं मिट्टी प्रहण करे एवं मलद्वार में तीन बार, (वाम) पाणितल में सात बार तथा दोनों करतलों में दस बार एवं लिङ्ग में एक बार मिट्टी लगावे । (३१)

हे पाशस ! सदाचारविद् मनुष्य को जल के भीतर से, पूँडे की पिल से, दूसरों के शीच से बची हुई एवं गृह से मिट्टी नदी लेनी चाहिये । दीमक की बाँधी से ही शौचार्थ मिट्टी लेनी चाहिये । (३२)

विद्वान् पुरुष पर घोने के परचात् उत्तर या पूर्वमुख

समाचमेदङ्गिरफेनिलाभि-
 रादौ परिमृज्य मुखं द्विरङ्गिः ॥ ३३
 ततः स्पृशेत्प्रानि शिरः क्रेण
 संध्यासुपासीत ततः क्रमेण ।
 केशास्तु मंशोध्द्य च दन्तधावनं
 कृत्वा तथा दर्पणदशनं च ॥ ३४
 कृत्वा शिरःस्नानमथाङ्गिकं वा
 संपूज्य तोयेन पितृन् सदेवान् ।
 होमं च कृत्वा लभनं शुभानां
 कृत्वा बहिर्निर्गमनं प्रशस्तम् ॥ ३५
 दूर्वादधिसर्पिरथोदकुम्भं
 वेतुं सवत्सां वृषभं सुवर्णम् ।
 मृद्भोमयं स्वस्तिरुमक्षतानि
 लाजामधु ब्राह्मणकन्यकां च ॥ ३६
 खेतानि पुष्पाण्यथ शोभनानि
 हुताञ्जनं चन्दनमर्कविम्बम् ।
 अथत्यवृक्षं च समालभेत्
 ततस्तु कुर्यान्नज्जातिधर्मम् ॥ ३७

बैठकर पहले मुख को दो बार जल से धोने के उपरान्त फेन-रहित जल से आचमन करे । (३३)

तदनन्तर अपनी इन्द्रियों तथा शिर को हाथ से स्पृश कर क्रमशः केश सशोधन, दन्तधावन एवं दर्पण-दर्शन करने के उपरान्त सन्ध्यापासन करे । (३४)

शिर स्नान अथवा आङ्गिक स्नान कर पितरों एवं देवताओं का जल से पूजन करने के पश्चात् हवन कर और माणालिक वस्तुओं का स्पर्श कर बाहर निकलना प्रशस्त होता है । (३५)

दूर्वा, दधि, पूत, जलपूर्ण कलश, सरस्ता गौ, वृषभ, सुवर्ण, मिट्टी, गोबर, स्वस्तिक चिह्न, अक्षत, लाजा, मधु, ब्राह्मण की कन्या, सुन्दर श्वेतपुष्प, अग्नि, चन्दन, सूर्य-विम्ब और अम्बरध (पीपल) वृक्ष का स्पर्श कर अपने जाति के धर्मों का पालन करे । (३६-३७)

देश-विहित धर्म, श्रेष्ठ कुलधर्म और गोत्रधर्म का त्याग नहीं करना चाहिये । उसी से अर्थ की सिद्धि करनी चाहिये ।

देशानुशिष्टं कुल धर्ममयं
 स्वगोत्रधर्मं न हि संत्यजेत् ।
 तेनार्थसिद्धिं समुपाचरेत्
 नासत्प्रलापं न च सत्यहीनम् ॥ ३८
 न निष्ठुर नागमशास्त्रहीनं
 वाक्यं वदेत्साधुजनेन येन ।
 निन्द्यो भवेन्नैव च धर्ममेदो
 सर्गं न चासत्सु नरेषु कुर्यात् ॥ ३९
 संध्यासु वर्ज्यं सुरत दिवा च
 सर्वासु योनीषु परावलासु ।
 आगारशून्येषु महीतच्छेषु

रजस्वलास्त्रेव जलेषु वीर ॥ ४०

वृथाऽटनं वृथा दानं वृथा च पशुमारणम् ।

न कर्त्तव्यं गृहस्थेन वृथा दारपरिग्रहम् ॥ ४१

वृथाऽटनास्त्रित्यहानिर्वृथादानाद्गन्धयः

वृथा पशुघ्नः प्राप्नोति पातकं नरकप्रदम् ॥ ४२

संतत्या हानिरश्लान्या वर्णसंकरतो भयम् ।

भेतव्यं च भवेत्लोकैः वृथादारपरिग्रहात् ॥ ४३

असत्प्रलाप, सत्यरहित, निष्ठुर और आगम शास्त्र विहीन ऐसा वाक्य कभी न कहे जिससे साधुजनों द्वारा निन्दित होना पड़े । धर्मभेद एवं असत्सुखों का सङ्ग भी नहीं करना चाहिये । (३८-३९)

हे वीर ! सन्ध्या एवं दिन के समय रति नहीं करनी चाहिये । सभी योनियों की परखियों में, गृह हीन पृथ्वी पर, रजस्वला स्त्री में तथा जल में सुरतव्यापार वर्जित है । (४०)

गृहस्थ को व्यर्थ भ्रमण, व्यर्थ दान व्यर्थ पशु-घ्न तथा व्यर्थ दार परिग्रह नहीं करना चाहिये । (४१)

व्यर्थ घूमन से नित्यकर्म की हानि होती है, वृथा दान से धनह्य होता है तथा वृथा पशुघ्न करने वाला नरकप्रद पातक को प्राप्त करता है । (४२)

व्यर्थ स्त्री-सम्प्रेष से सन्तान की निन्द्य हानि, वर्ण-संकर से भय तथा लोक में भी भय की प्राप्ति होती है । (४३)

परस्वे परदारो च न कार्या बुद्धिरुत्तमः ।
 परस्वं नरकापैव परदाराश्च मृत्यवे ॥ ४४
 नेक्षेत् परस्त्रियं नग्नां न संभाषेत् तस्करान् ।
 उदकयादर्शनं स्पर्शं संभाषं च विवर्जयेत् ॥ ४५
 नैकासने तथा स्थेयं मोदयां परजायया ।
 तपैव स्वाश्व मातुश्च तथा स्त्रुद्धितुस्त्यपि ॥ ४६
 न च स्नायीत वै नग्नी न शयीत कदाचन ।
 दिग्वाससोऽपि न तथा परिभ्रमणमिष्यते ॥
 भिक्षासनभाजनादीन् दूरतः परियर्जयेत् ॥ ४७

नन्दासु नाम्यद्भृष्टपाचरेत्
 क्षौरं च रिक्तासु जयामु मांसम् ।
 पूर्णासु योषित्परिवर्जयेत्
 भद्रासु सर्वाणि समाचरेत् ॥ ४८
 नाम्यद्भृष्टमर्के न च भूमिपुत्रे
 क्षौरं च शुक्ले रविजे च मांसम् ।
 धुधेषु योषित् समाचरेत्

उत्तमव्यक्तिक परधन तथा परस्त्री मे मत न लगाये ।
 परधन नरक-कारक और परस्त्री मृत्यु का कारण होती
 है । (४४)

परस्त्री को नगनायाया में न देखे, तस्करों से सम्भाषण
 न करे एवं उदकस्पर्श स्त्री को न तो देखे, न उसका स्पर्श करे
 और न उससे समापण करे । (४५)

अपनी बहन तथा परस्त्री के साथ एक आसन पर नहीं
 बैठना चाहिये । वस्ती प्रकार अपनी माता तथा कन्या के
 साथ एकआसन पर न बैठे । (४६)

नग्न होकर स्नान और शयन कभी न करे । नग्न होकर
 भ्रमण न करे । दूटे आसन और बर्तन आदि को दूर
 से ही त्याग दे । (४७)

नग्ना (प्रतिपदा, पट्टी और पद्माद्री) तिथियों
 में मालिन्ग न करे, रिक्ता (चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी)
 तिथियों में क्षौर कर्म न करे तथा जया (शुनीया, अष्टमी
 और त्रयोदशी) तिथियों में मांस नहीं खाना चाहिये । पूर्णा
 (पंचमी, दशमी और पूर्णिमा) तिथियों में स्त्री का स्पर्श
 न करे तथा भद्रा (द्वितीया, सप्तमी तथा द्वादशी) तिथियों

शेषेषु सर्वाणि सदैव कुर्यात् ॥ ४९
 चित्रासु हस्ते श्रवणे च तैलं
 क्षौरं विशाखास्वभित्तिसुवर्ज्यम् ।
 मूले मृगे भाद्रपदासु मांसं
 योषिन्मघाकृत्तिकयोत्तरासु ॥ ५०
 सदैव वर्ज्यं शयनमृदक्षिशरासु
 तथा प्रतीच्यां रजनीचरेण ।
 भुङ्क्षीत नैवेह च दक्षिणासुरो
 न च प्रतीच्यामभिभोजनीयम् ॥ ५१
 देवालयं चैत्यतरुं चतुष्पथ
 विद्याधिकं चापि गुरुं प्रदक्षिणम् ।
 माल्याघ्नपानं वसनानि यत्नतो
 नान्यैर्भूतांदचापि हि धारयेद् बुधः ॥ ५२
 स्नायाच्छिरःस्नानतया च नित्यं
 न कारणं चैव विना निश्वासात् ।
 ग्रहोपरागे स्वजनापयाते

में सभी कार्य करे । (४९)

रविवार एवं मङ्गलवार को मालिन्ग, शुक्रवार को क्षौर
 कर्म, शनिवार को मांस तथा बुधवार को स्त्री का वर्जन करे ।
 शेष दिनों में सभी कार्य सदैव करना चाहिये । (४९)

चित्रा, हस्त और श्रवण नक्षत्रों में तैल तथा विशाखा
 और अभिजित् नक्षत्रों में क्षौर कार्य का वर्जन करना
 चाहिये । मूल, मृगशिरा और भाद्रपदाओं में मांस भक्षण
 तथा मघा, श्रुतिक्रा और तीनों उत्तराश्रों (उत्तराषाढा, मूनी,
 उत्तराषाढा, उत्तराभद्रपदा) में स्त्री-सहवास न करे । (५०)

हे राजसराज ! उत्तर एवं पश्चिम की ओर शिर कर
 शयन करना सदा वर्जनीय है । दक्षिण और पश्चिम की
 ओर मुख कर भोजन नहीं करना चाहिये । (५१)

देवमन्दिर, पौरवत्तक (प्रशस्त-वृक्ष), चतुष्पथ, अपने
 से अधिक विद्वान् तथा गुरु की प्रदक्षिणा करे । बुद्धिमान्
 व्यक्त यत्नपूर्वक दूसरे के द्वारा व्यवहृत माता, अन्न
 और वाहन का व्यवहार न करे । (५२)

नित्य शिर के ऊपर से स्नान करे । ग्रहोपराग (मन्त्र-
 वाक्य) और रवजन की मृत्यु तथा अन्न नक्षत्र में चन्द्रमा

सुस्तवा च जन्मवर्षगते शशाङ्के ॥ ५३
नाम्बुद्धितं कायसुपस्पृशेच्च
स्नातो न केशान् विधुनीत चापि ।
गात्राणि चैवाभ्यरपाणिना च
स्नातो विमृज्याद् रजनीचरेश ॥ ५४
पसेच्च देशेषु सुराजकेषु
सुमहितेष्वेव जनेषु नित्यम् ।

अक्रोधना न्यायपरा अमत्तराः
कृषीवला ह्योपधयश्च यत्र ॥ ५५
न तेषु देशेषु वसेत बुद्धिमान्
सदा नृपो दण्डरुचिस्त्वशक्तः ।
जनोऽपि नित्योत्सववद्भवैरः
सदा जिगीषुश्च निशाचरेन्द्र ॥ ५६

इति श्रीवामनपुराणे चतुर्दशोऽध्याय ॥ १४ ॥

१५

श्रुपय ऊचुः ।

यच्च वज्रं महाबाहो सदाधर्मस्थितैर्नरैः ।
यद्भोज्यं च समुद्दिष्टं कथयिष्यामहे वयम् ॥ १
भोज्यमन्नं पृथुपितं स्नेहाक्तं चिरसंभृतम् ।
अस्नेहा व्रीहयः श्लक्ष्णा विकाराः पयसस्तथा ॥ २

शशकः शल्यको गोधा श्वाविधो मत्स्यकच्छपौ ।
तद्वद् द्विदलकृदीनि भोज्यानि मनु रव्रवीत् ॥ ३
मणिरत्नप्रवालाना तदन्नमुक्ताफलस्य च ।
शैलदात्मयानां च तृणमूलौषधान्यपि ॥ ४
शूर्पधान्याजिनाना च सहवाना च वाससाम् ।

के आने के अतिरिक्त बिना कारण राजा में स्नान नहीं करना चाहिये । (५३)

हे रजनीचरेश ! मालिश किये हुये शरीर का स्पर्श न करे, स्नान करने के उपरान्त (तरफाल) केशों को न झाड़े तथा स्नान करके हाथ एवं वस्त्र से शरीर को नहीं पोंड़ना चाहिये । (५४)

शोभन राजा से युक्त तथा अकृतायुक्त मनुष्यों वाटे

एव जहाँ क्रोध हीन, न्यायी, ईर्ष्याविहीन मनुष्य हों तथा कृषक एवं औषधियाँ हों—ऐसे राज्य में रहना चाहिये । (५५)

बुद्धिमान् व्यक्ति को ऐसे देश में नहीं रहना चाहिये जहाँ का राजा दण्ड में सदैव रुचि रखने वाला तथा अशक्त हो और जहाँ की जनता नित्य उत्सव मनाने वाली तथा परस्पर वैर करने वाली एवं सदैव जय की इच्छा वाली हो । (५६)

वामनपुराण में ५ दशमोऽध्याय समाप्त ॥१५॥

१५

श्रुपियों ने कहा—हे महाबाहो ! धर्मनिष्ठ व्यक्तियों के लिये जो (पदार्थ) सदैव वर्जनीय हैं एवं जो भोज्य कहे गये हैं हम वनना वर्णन करेंगे । (१)

स्नेहाक्त (तैल, घृत आदि स्निग्ध पदार्थों से पकाया गया) अन्न वासी एवं बहुत समय का रस होने पर भी भोज्य है, तथा अस्निग्ध चिकने चावल एवं दूध के विकार (दधि, घृत आदि) वासी एवं पुराने होने पर भी

मदय है । (२)

शशक (खरहा), शल्यक (साही), गोधा (गोह), श्वाविध (पशु विशेष), मत्स्य एवं कच्छप तथा दाओं को मनु ने खाने योग्य कहा है । (३)

मणि, रत्न, प्रवाल (मूंगा), मुक्ताफल (मोती), पत्थर और लकड़ी के बने बर्तन, तृण, मूल तथा औषधियाँ शूर्प—धान्य, अजिन (मृगचर्म), महत्वत्त (सिले हुये

वल्कलानामशेषाणामम्बुना शुद्धिरिष्यते ॥ ५
 सस्नेहानामथोष्णेन तिलकल्केन वारिणा ।
 कार्पासिकानां वस्त्राणां शुद्धिः स्यात्सह भस्मना ॥ ६
 नागदन्तास्थिशृङ्गाणां तक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ।
 पुनः पाकेन भाण्डानां मृन्मयानां च भेष्यता ॥ ७
 शुचि भैक्षं कारुहस्तः पर्णं योपिन्मुखं तथा ।
 रथ्यागतमविज्ञातं दासवर्गेण यत्कृतम् ॥ ८
 वाक्प्रशस्तं चिरातीतमनेकान्तरितं लघु ।
 चेष्टितं बालवृद्धानां बालस्य च मुखं शुचि ॥ ९
 कर्मान्ताङ्गारशालासु स्तनंधयसुताः स्त्रियः ।
 वाग्विशुष्यो द्विजेन्द्राणां संतमाश्राम्युविन्दयः ॥ १०
 भूमिर्विशुष्यते खातदाहमार्जनगोकर्मैः ।
 लेपाद्दुष्टेखनात् सेकाद् वेष्म संमार्जनार्चनात् ॥ ११
 केशकीटावपक्षेऽग्ने गोघ्राते मक्षिकान्विते ।

मृदम्बुभस्मक्षाराणि प्रक्षेपव्यानि शुद्धये ॥ १२
 औदुम्बराणां चाम्पेन क्षारेण त्रपसीतयोः ।
 भस्माम्बुमिश्र कांस्यानां शुद्धिः प्लावोद्रवस्य च ॥ १३
 अमेध्याक्तस्य मृत्तोर्यैर्गन्धापहरणेन च ।
 अन्येषामपि द्रव्याणां शुद्धिर्गन्धापहारतः ॥ १४
 मातुः प्रत्नवणे वस्तः शकुनिः फलपातने ।
 गर्दभो भारवाहित्वे श्वा मृगग्रहणे शुचिः ॥ १५
 रथ्याकर्दमतोयानि नावः पथि तृपानि च ।
 मारुतेनैव शुद्धयन्ति पक्वेष्टकचितानि च ॥ १६
 शृतं द्रोणादकस्यान्नमेध्याभिष्युतं भवेत् ।
 अग्रधुदृष्ट्य संत्याज्यं शेषस्य प्रोक्षणं स्मृतम् ॥ १७
 उपवासं त्रिरात्र वा दूषितान्नस्य भोजने ।
 अज्ञाते ज्ञातपूर्वं च नैव शुद्धिर्विधीयते ॥ १८
 उदक्याश्चाननगन्धाश्च सूतिकान्त्याचसायिनः ।

वस्त्र), एवं समस्त वल्कलों की शुद्धि जल से होती है ।

(४-५)

स्नेह (तैल-पुतादि) मुक्त वस्त्रों की शुद्धि उष्ण जल तथा तिल-कल्क (खली) से एवं कपास के वस्त्रों की शुद्धि भस्म से होती है ।

(६)

हॉथी के दाँत, हड्डी और शृङ्ग की शुद्धि तक्षय (तराशने) से होती है । मिट्टी के बर्तन पुनः अग्नौ जलाने से शुद्ध होते हैं ।

(७)

मिक्षात्र, क्षारीयों का हाथ, विषेय वस्तु, खीमुस, मार्ग से खीयी हुई वस्तु, अज्ञात पदार्थ तथा नौकरों द्वारा निर्मित वस्तुएँ पवित्र होती हैं ।

(८)

वचन द्वारा प्रशस्त, चिरातीत (पुराना), अनेकान्तरित एवं लघु वस्तुएँ, बालों और वृद्धों द्वारा किया गया कर्म तथा शिशु का मुस्य शुद्ध होता है ।

९

कर्मगृह, अन्तर्गृह एवं अग्निशाला में दुधमुँहे पुत्रों वाली स्त्रियें, घोले, हुए श्रेष्ठ आग्नेयों के मुख के छींटे तथा उष्ण जलविन्दु पवित्र होते हैं ।

(१०)

भूमि की शुद्धि खनने से, जलाने से, श्राद्ध देने से, गोचारण से, छीपने से, राखेंचने से तथा सींचने से होती है और गृह की शुद्धि श्राद्ध देने तथा अर्चन से होती है ।

(११)

केश, कीट एवं मक्षिकामुक्त तथा गोघ्रात अन्न की शुद्धि

के लिये मिट्टी, जल, भस्म और क्षार छिड़कना चाहिये ।

(१२)

अम्ब के द्वारा औदुम्बर (ताम्रपात्र) की, क्षार के द्वारा जले और शीशे की, भस्म और जल के द्वारा काँसे की वस्तुएँ तथा (बुद्ध अश को) बहा देने से तरल पदार्थ शुद्ध होते हैं ।

(१३)

अपवित्र वस्तु से मिश्रित पदार्थ मिट्टी और जल से तथा गन्ध दूर कर देने से शुद्ध होते हैं । अन्य पदार्थों की शुद्धि भी गन्ध दूर करने से होती है ।

(१४)

माता के स्तन को प्रस्तुत कराने में बड़का, वृक्ष से फल गिराने में पक्षी, घोड़ा डोने में गया और शिकार पकड़ने में कुत्ता शुद्ध होता है ।

(१५)

माँ, कीचड़, जल, नाव, पथ पर पड़ा हुआ तृण एवं पक्षी हुई इँटों की चित्तियाँ वायु के द्वारा ही शुद्ध होती हैं ।

(१६)

एक द्रोण या एक आदक के पके अन्न के अपवित्र वस्तु से संयुक्त होने पर उसके ऊपर का अंश निकाल कर फेंक देना चाहिये एवं शेष पर जल छिड़कने से शुद्ध मानी गयी है ।

(१७)

अथात रूप से दूषित अन्न खाने पर तीन रात्रि तक उपवास करने से शुद्धि का विधान है किन्तु जानबूझ कर खाने पर शुद्धि नहीं हो सकती ।

(१८)

स्पृष्ट्वा स्नायीत शौचार्थं तथैव मृतहारिणः ॥ १९
 सस्नेहमस्ति संस्पृश्य सवासा. स्नानमाचरेत् ।
 आचम्यैव तु नि.स्नेह गामालभ्याकर्मोक्ष्य च ॥ २०
 न लङ्घयेत्पुरीपासृग्ग्रीवनोद्धर्चनानि च ।
 शुद्धानुच्छिद्यविष्मूत्रे पादाभ्यामि रिपेद् वहिः ॥ २१
 पञ्चपिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात् परवारिणि ।
 स्नायीत देवरातेषु सरोद्भद्ररित्सु च ॥ २२
 नोयानादौ विज्ञानेषु प्राङ्गस्तिष्ठेत् कदाचन ।
 नालपेद् जननिद्रिष्टं वीरहीनां तथा भिन्नयम् ॥ २३
 देवतापितृसन्ध्यास्त्रयज्ञभेदादिनिन्दकैः ।
 कृत्वा तु स्पर्शमालापं शुद्धयतेऽकारालोकनात् ॥ २४
 अभोज्याः सूत्रिकापण्डमाजाराण्यकुक्कुटाः ।
 पतितापविद्वानग्नाश्राण्डालाद्यभमाश्च ये ॥ २५
 मुनेयिरुनाच ।
 भवद्भिः कीर्तिताऽभोज्या य एते सूत्रिकादयः ।

अमीषां श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतो लक्षणानि हि ॥ २६
 ऋषय उचुः ।
 ब्राह्मणी ब्राह्मणस्यैव याऽवरोधत्वमागता ।
 तादुभौ मृतिरेत्युक्तौ तयोरेकां विगर्हितम् ॥ २७
 न जुहोत्युचिते काले न स्नाति न ददाति च ।
 पितृदेवार्चनादीनः स पण्डः परिगीयते ॥ २८
 दम्भार्थं जपते यश्च तप्यते यज्ञते तथा ।
 न परत्रार्यमुच्यते स मार्जारः प्रकीर्तितः ॥ २९
 विभवे सति नैवात्ति न ददाति जुहोति च ।
 तमाहुरारण्यं तस्यान्तं भुक्त्वा कृच्छ्रेण शुद्धयति ॥ ३०
 यः परेषां हि मर्माणि निकृन्तन्निव भाषते ।
 नित्यं परगुणद्वेषी स श्वान इति कथ्यते ॥ ३१
 सभागतानां यः सम्यः पक्षपातं समाश्रयेत् ।
 तमाहुः कुक्कुटं देवास्तम्याप्यन्तं विगर्हितम् ॥ ३२

रजस्रवण स्त्री, कुत्ता, नग्न, प्रसूता स्त्री, अन्त्यासत्यायी (चाण्डाल) और शत्रुवाहनों को स्पर्श कर पवित्र होने के लिये स्नान करना चाहिये । (१९)
 मज्जा युक्त हड्डी छू जाने पर यज्ञ सहित स्नान करे किन्तु सुखी हड्डी वा स्पर्श होने पर आचमन, गो स्पर्श, तथा सूर्यदर्शन करने से ही शुद्धि होती है । (२०)
 पुरीष (विद्या), रक्त, घोषन (धूक) एवं उद्धर्तन (उवटन) का लङ्घन नहीं करना चाहिए । उच्छिद्य पदार्थ विद्या, मूत्र एवं पैर धोने के जल को घर से बाहर फेंक देना चाहिये । (२१)
 दूसरे के द्वारा निर्मित वावली इत्यादि में बिना पाँच अजलि मिट्टी निम्नले स्नान न करे । देव निर्मित झेलों, शालाओं और शिदों में स्नान करे । (२२)
 बुद्धिमान व्यक्ति उद्यानादि में कदापि असमय में न रहे । लोक विद्विष्ट व्यक्ति तथा पति-पुत्रहीना स्त्री से वार्त्तालाप नहीं करना चाहिये । (२३)
 देवों, पितरों, भले शारत्रों (स्मृति आदि), यज्ञ एवं वेदादि के निन्दकों का स्पर्श और उनसे वार्त्तालाप करने पर मनुष्य सूर्यदर्शन करने से शुद्ध होता है । (२४)
 सूत्रिका, पण्ड, मार्जार, आलु, श्वान, कुक्कुट, पतित,

अपविद्ध, नग्न तथा चाण्डाल आदि अधम प्राणियों के यहाँ नहीं गाना चाहिये । (२५)
 सुकेशी ने कहा—आप ने जिन सूत्रिकादि का अत्र अभक्ष्य कहा है मैं तत्त्वतः उनके लक्षण सुनना चाहता हूँ । (२६)
 ऋषियों ने कहा—अन्य ब्राह्मण के साथ ब्राह्मणी के व्यभिचरित होने पर उन दोनों को सूत्रिका कहा जाता है । उन दोनों का अन्न विगर्हित होता है । (२७)
 उचित समय पर हवन, स्नान और दान न करने वाला तथा पितरों एवं देवताओं की पूजा से रहित व्यक्ति को पण्ड कहते हैं । (२८)
 दम्भ के लिये जप, तप और यज्ञ करने वाले तथा परलोभाथं उद्योग न करने वाले व्यक्ति को 'मार्जार' कहते हैं । (२९)
 ऐश्वर्य रहते हुए भोग, दान एवं हवन न करने वाले को 'आलु' कहते हैं उसका अन्न खाने पर मनुष्य कृच्छ्रव्रत करने से शुद्ध होता है । (३०)
 दूसरों का गर्म भेदन करने हुए वार्त्तालाप करने वाले परगुणद्वेषी को 'श्वान' कहते हैं । (३१)
 सभा में आगत व्यक्तियों में जो सम्य पक्षपात करता

स्वधर्मं यः समुत्सृज्य परधर्मं समाश्रयेत् ।
 अनापदि स विद्वद्भिः पतितः परिकीर्त्यते ॥ ३३
 देवत्यागी पितृत्यागी गुरुभक्त्यरतस्तथा ।
 गोब्राह्मणस्त्रीवधकृदपविद्धः स कीर्त्यते ॥ ३४
 येषां कुले न वेदोऽस्ति न शास्त्रं नैव च व्रतम् ।
 ते नग्नाः कीर्तिताः सद्भिः सत्तेषामन्नं विगर्हितम् ॥ ३५
 आशार्तानामदाता च दातुश्च प्रतिपेधकः ।
 शरणागतं यस्त्यजति स चाण्डालोऽधमो नरः ॥ ३६
 यो धान्धरैः परित्यक्तः साधुभिर्ब्राह्मणैरपि ।
 कुण्डाशी यश्च तस्यान्नं भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥ ३७
 यो नित्यकर्मणो हानिं कुर्यान्नैमित्तिकस्य च ।
 भुक्त्वाच्च तस्य शुद्धयेत् त्रिरात्रोपोषितो नरः ॥ ३८
 गणकस्य निपादस्य गणिकाभिपन्नोस्तथा ।

कदर्यस्यापि शुद्धयेत् त्रिरात्रोपोषितो नरः ॥ ३९
 नित्यस्य कर्मणो हानिः केवलं मृतजन्मसु ।
 न तु नैमित्तिकोच्छेदः कर्त्तव्यो हि कथंचन ॥ ४०
 जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलस्य विधीयते ।
 मृते च सर्वेनृधनामित्याह भगवान् भृगुः ॥ ४१
 प्रेताय सलिलं देयं वहिर्दग्धा तु गोत्रजैः ।
 प्रथमेऽपि चतुर्थे वा सप्तमे वाऽस्थिसंचयम् ॥ ४२
 ऊर्द्धुं सचयनात्तेषामङ्गस्पर्शो विधीयते ।
 सोदकैस्तु त्रिधा कार्यां समुद्धैस्तु सपिण्डजैः ॥ ४३
 विपोद्बन्धनशस्त्राम्बुवह्निपातमृतेषु च ।
 घाले प्रराजि संन्यासे देशान्तरमृते तथा ॥ ४४
 सद्यः शौचं भवेद्वीर तच्चाप्युक्तं चतुर्विधम् ।
 गर्भसाधे तदेवोक्तं पूर्णकालेन चेतरे ॥ ४५

इं उसे देवताओं ने 'हुक्कट' कहा है उसका भी अन्न विगर्हित है । (३२)

विपत्तिकाल के अतिरिक्त अन्य समय में अपना धर्म छोड़ कर दूसरे का धर्म ग्रहण करने वाले को विद्वानों ने 'पतित' कहा है । (३३)

देवत्यागी, पितृत्यागी, गुरुभक्ति से विमुख, तथा गौ, ब्राह्मण एवं स्त्री की हत्या करने वाला को 'अपविद्ध' कहते हैं । (३४)

जिनके कुल में वेद, शास्त्र एवं व्रत नहीं हैं उन्हें सज्जन लोग 'नग्ना' कहते हैं । उनका अन्न निन्दित है । (३५)

आशा रखने वालों को न देने वाला, दाता को मना करने वाला तथा शरणागत का परित्याग करने वाला अधम मनुष्य 'चाण्डाल' कहा जाता है । (३६)

धान्यवर्षों, साधुओं एवं ब्राह्मणों से परित्यक्त तथा कुण्ड (पति के जीवित रहने पर एष्टुरूप से उत्पन्न पुत्र) के यहाँ स्थाने वाले का अन्न खाकर चान्द्रायण व्रत करना चाहिये । (३७)

नित्य और नैमित्तिक कर्म न करने वाले व्यक्ति का अन्न खाने पर मनुष्य तीन रात तक उपवास करने से शुद्ध होता है । (३८)

गणक (ज्योतिषी), निपाद, बेरया, वैद्य तथा कर्द

(कृपण) का भी अन्न खाने पर मनुष्य त्रिरात्रोपवास से शुद्ध होता है । (३९)

घर में जन्म या मृत्यु होने पर नित्य कर्म नहीं होता किन्तु नैमित्तिक कर्म का उच्छेद कभी नहीं करना चाहिये । (४०)

भगवान् भृगु ने कहा है कि पुत्र उत्पन्न होने पर पिता के लिये एष ग्रहण में सभी षण्णुओं के लिये वस्त्र के साथ स्नान का विधान है । (४१)

ग्राम के बाहर शराह करने के उपरान्त समोत्र लोग प्रेत के उद्देश्य से जलदान करें तथा प्रथम, चतुर्थ या सप्तम दिन अस्थि संचय करें । (४२)

अस्थिसङ्ग्रह के उपरान्त उनके अङ्ग-स्पर्श का विधान है । शुद्ध होकर सोदक (चीदह पीढ़ी के अन्तर्गत के लोग) एष सपिण्डज (सात पीढ़ी के अन्दर के लोग) जनों को ऊर्ध्वदैहिक क्रिया करनी चाहिये । (४३)

हे वीर ! विष, बन्धन, शस्त्र, जल, अग्नि और गिरने से मृत्यु होने पर तथा बालक, परिप्राजक, सन्यासी एवं देशान्तर में मृत्यु होने पर सद्य शौच होता है । यह (सद्य शौच) भी चार प्रकार का कहा गया है । गर्भसाधन में भी वैसी ही शुद्धि होती है । अन्य अशौच पूरे समय पर शुद्ध होते हैं । (४४-४५)

प्राज्ञानामहोरात्रं क्षत्रियाणां दिनत्रयम् ।
 पद्भ्रात्रं चैव वैश्यानां शुद्राणां द्वादशाहिकम् ॥ ४६
 दशद्वादशमासार्द्धमाससंस्कार्यैर्द्विनैश्च तैः ।
 स्वाः स्वाः कर्मक्रियाः कुर्युः सर्वे वर्णा यथाक्रमम् ॥ ४७
 प्रेतमुद्दिश्य कर्त्तव्यमेकोद्दिष्टं विधानतः ।
 सपिण्डीकरणं कार्यं प्रेते आवत्सराश्रमैः ॥ ४८
 ततः पितृन्मापन्ने दर्शपूर्णदिभिः शुभैः ।
 प्रीणनं तम्य कर्त्तव्यं यथा श्रुतिनिर्दर्शनात् ॥ ४९
 पितुरर्थं सशुद्दिश्य भूमिदानादिकं स्वयम् ।
 कुर्याद्येनाम्य सुप्रीताः पितरो वान्ति राक्षस ॥ ५०
 यद् यदिष्टतमं किञ्चिद् यथास्य दयितं गृहे ।
 तत्तद् गुणवते देयं तदेवात्यमिच्छता ॥ ५१
 अव्येतथ्या त्रयीं नित्यं भाष्यं च विदुषा सदा ।
 धर्मतो धनमाहार्यं यद्व्यं चापि शक्तितः ॥ ५२

(वद् सद्यः शौच) ब्राह्मणों वा एक अहोरात्र का, क्षत्रियों का तीन दिनों का, वैश्यों का छ दिनों का एवं शुद्रों का बारह दिनों का होता है । (४६)

सभी वर्गों के लोग यथान्त दश, बारह, पन्द्रह दिन एवं एक मासके अन्तर पर अपनी अपनी क्रियाएँ करें । (४७)
 प्रेत के उद्देश्य से विधि के अनुसार एकोद्दिष्ट श्राद्ध करना चाहिये । मरने के एक वर्ष बीत जाने पर मनुष्य को सपिण्डीकरण करना चाहिये । (४८)

तदनन्तर प्रेत के पितर हो जाने पर अमावस्या और पूर्णमासी के दिन वेदविहित रीति से उनका तर्पण (श्राद्ध) करना चाहिये । (४९)

हे राक्षस ! पिता के उद्देश्य से स्वयं भूमिदानादि करे जिससे पितृगण इस के उपर प्रसन्न होकर जाय । (५०)

व्यक्ति की जीवनावस्था में घर में जो-जो पदार्थ उसका अत्यन्त अभिलषित एवं जो उसकी प्रिय वस्तु रही हो उसे उसकी अश्रयता की कामना से गुणगान पात्र को देना चाहिये । (५१)

सदा त्रयी (वेद) का अध्ययन करना चाहिये, विद्वान् धनता चाहिये, धर्मपूर्वक धनार्जन एवं यथाशक्ति यज्ञ करना चाहिये । (५२)

यथापि कुर्वतो नात्मा जुगुप्सामेति राक्षस ।
 तत् कर्त्तव्यमशुक्लेन यन्न गोप्यं महाजने ॥ ५३
 एवमाचरतो लोके पुरुषस्य गृहे सतः ।
 धर्मार्थकामसंप्राप्तिः परत्रेह च शोभनम् ॥ ५४
 एष तूद्देशतः प्रोक्तो गृहस्थाश्रम उच्चमः ।
 वानप्रस्थाश्रमं धर्मं प्रवक्ष्यामोऽवधार्यताम् ॥ ५५
 अपत्यसंततिं दृष्ट्वा प्राज्ञो देहस्य चानतिम् ।
 वानप्रस्थाश्रमं गच्छेदात्मनः शुद्धिकारणम् ॥ ५६
 त्वारण्योपभोगैश्च तपोभिर्यातामकर्मणम् ।
 भूमौ शय्या ब्रह्मचर्यं पितृदेवातिथिक्रिया ॥ ५७
 होमस्त्रिपण्यं भ्मानं जटावलकलधारणम् ।
 यन्यग्नेहनिषेवित्व वानप्रस्थारिथिस्त्वयम् ॥ ५८
 सर्वसङ्गपरित्यागो ब्रह्मचर्यममानिता ।
 जितेन्द्रियत्वभावासे नैरुस्मिन् वसतिदिचरम् ॥ ५९

हे राक्षस ! मनुष्य को ऐसा कार्य निश्चय होकर करना जिसके करने से उसकी आत्मा निन्दित न हो एवं जो कार्य बड़े लोगों से छिपाने योग्य न हो । (५३)

ऐसा आचरण करने वाले पुरुष के गृहस्थ होने पर भी उसे धर्म, अर्थ एवं काम की प्राप्ति होती है तथा वह व्यक्ति इसलोक और परलोक में कल्याण का भागी बनता है । (५४)

संक्षेप से हमने उत्तम गृहस्थाश्रम का वर्णन किया । अब हम लोग वानप्रस्थाश्रम के धर्म का वर्णन करेंगे । ध्यानपूर्वक सुनो । (५५)

शुद्धिमान् व्यक्ति पुत्र की संतान तथा अपने शरीर की अननति देकर आत्मा की शुद्धि के हेतुभूत वानप्रस्थ आश्रम में जाय । (५६)

यहाँ वन्य पदार्थों का उपभोग और तप द्वारा शरीरशोधन करे । इस आश्रम में भूमि पर शयन, ब्रह्मचर्य का पालन एवं पितर, देवता तथा अतिथियों की पूजा करे । (५७)

हवन, तीन बार स्नान, जटा और बल्लक का धारण तथा वन्य फलों से निरासे स्नेह का सेवन करे । यही वानप्रस्थाश्रम की विधि है । (५८)

(चतुर्थे आश्रम के धर्म ये हैं-) सर्वसङ्ग परित्याग, ब्रह्मचर्य, अहंकार का अभाव, जितेन्द्रियता, एक आयास में बहुर

अनारम्भस्तथाहारो मैशान्नं नातिक्रोपिता ।
 आत्मज्ञानावबोधेच्छा तथा चात्मावबोधनम् ॥ ६०
 चतुर्थे त्वाश्रमे धर्मा अस्माभिस्ते प्रकीर्तिताः ।
 वर्णधर्माणि चान्यानि निशामय निशाचर ॥ ६१
 गार्हस्थ्यं ब्रह्मचर्यं च वानप्रस्थं त्रयाश्रमाः ।
 क्षत्रियस्यापि कथिता ये चाचारा द्विजस्य हि ॥ ६२
 वैखानसत्वं गार्हस्थ्यमाश्रमद्वितयं विशः ।
 गार्हस्थ्यमुत्तमं त्वेकं शूद्रस्य क्षणदाचर ॥ ६३
 स्वानि वर्णाश्रमोक्तानि धर्माणीह न हापयेत् ।
 यो हापयति तस्यासौ परिकुप्यति भास्करः ॥ ६४
 कुपितः कुलनाशाय ईश्वरो रोगवृद्धये ।

भातुर्वै यतते तस्य नरस्य क्षणदाचर ॥ ६५
 तस्मात् स्वधर्मं न हि संत्यजेत्
 न हापयेचापि हि नात्मबंधम् ।
 यः संत्यजेचापि निजं हि धर्मं
 तस्मै प्रकुप्येत दिवाकरस्तु ॥ ६६
 पुलस्त्य उवाच ।
 इत्येवमुक्तो मुनिभिः सुकेशी
 प्रणम्य तान् ब्रह्मनिधीन् महर्षीन् ।
 जगाम चोत्पत्य पुरं स्वकीयं
 महुर्मुहूर्धर्ममवेशमाणः ॥ ६७

इति श्रीवामनपुराणे पञ्चदशोऽध्याय ॥ १५ ॥

काल तक न रहना, उद्योगभाव, भिक्षान्नभोजन, अतिक्रोप
 न करना, आत्मज्ञान की इच्छा तथा आत्मज्ञान । (५९-६०)
 हे निशाचर ! हमने तुमसे चतुर्थ आश्रम के इन धर्मों
 का वर्णन किया । अब अन्य वर्णधर्मों को सुनो । (६१)
 क्षत्रियों के लिये भी गार्हस्थ्य, ब्रह्मचर्य एवं वानप्रस्थ
 इन तीन आश्रमों एवं ब्राह्मणों के लिये विहित आचारों का
 विधान है । (६२)
 हे राक्षस ! वैश्यों के लिये वानप्रस्थ एवं गार्हस्थ्य इन
 दो आश्रमों का विधान है तथा शूद्र के लिये एकमात्र
 उत्तम गार्हस्थ्य आश्रम का विधान है । (६३)
 अपने वर्णाश्रमोक्त धर्मों का इस लोक में त्याग नहीं
 करना चाहिये । इनका त्याग करने वाले पर सूर्य क्रुद्ध

होते हैं । (६४)
 हे निशाचर ! क्रुद्ध भगवान् भास्कर मनुष्य की रोग-
 वृद्धि एवं उसके कुल का नाश करने के लिये प्रयत्न करते
 हैं । (६५)
 अतः स्वधर्म का न तो त्याग करे और न उसकी हानि
 होने दे तथा अपने धर्म की हानि न होने दे । जो मनुष्य
 अपने धर्म का त्याग करता है उस पर दिवाकर (सूर्य) क्रोध
 करते हैं । (६६)
 पुलस्त्य ने कहा—मुनियों के ऐसा कहने के उपरान्त
 उन ब्रह्मज्ञानी महर्षियों को प्रणाम कर सुकेशी धारम्बार
 धर्म का चिन्तन करते हुए उड़कर अपने पुर को
 चला गया । (६७)

श्रीवामनपुराण में पञ्चदशोऽध्याय समाप्त ॥१५॥

पुलस्त्य उवाच ।

ततः सुकेशिर्देवर्षे बत्वा स्वपुरमुत्तमम् ।
समाहूपात्रवीत् सर्वान् राक्षसान् धार्मिकं वचः ॥ १
अहिंसा मत्प्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियसंबन्धः ।
दानं दया च क्षान्तिश्च ब्रह्मचर्यममानिता ॥ २
शुभा सत्या च मधुरा वाङ् नित्यं सत्क्रिया रतिः ।
सदाचारनिषेवित्वं परलोकप्रदायकम् ॥ ३
इत्युचुर्धूमनयो मह्यं धर्ममाद्यं पुरातनम् ।
सोहमाज्ञापये सर्वान् क्रियतामविकल्पतः ॥ ४

पुलस्त्य उवाच ।

ततः सुकेशिवचनात् सर्व एष निशाचराः ।
प्रयोदशाङ्गं ते धर्मं चक्रुर्मुदितमानसाः ॥ ५
ततः प्रवृद्धिं सुतरामगच्छन्त निशाचराः ।
पुत्रपौत्रार्थसंयुक्ताः सदाचारसमन्विताः ॥ ६

तज्ज्योतिस्तेजसस्तेषां राक्षसानां महात्मनाम् ।
गन्तुं नाशकृन्वन् सूर्यो नक्षत्राणि न चन्द्रमाः ॥ ७
ततस्त्रिभुवने प्रह्वन् निशाचरपुरोऽभवत् ।
दिवा चन्द्रस्य सद्यः क्षणदायां च सूर्यवत् ॥ ८
न ज्ञायते गतिर्व्योम्नि भास्करस्य सतोऽम्बरे ।
शशाङ्कमिति तेजस्त्वादमन्यन्त पुरोत्तमम् ॥ ९
स्वं विकासं विभ्रुञ्चन्ति निशामिति व्यचिन्तयन् ।
कमलाक्षरेषु कमला मित्रमित्यवगम्य हि ।
रात्रौ विकसिता ब्रह्मन् विभूतिं दातुमीप्सवः ॥ १०
कौशिका रात्रिसमयं बुद्ध्वा निरगमन् किल ।
तान् वापसासदा ज्ञात्वा दिवा निघ्नन्ति कौशिकान् ॥ ११
स्नातकास्त्वापगास्त्वेव स्नानजप्यपरायणाः ।
आरुण्टमश्रास्तिष्ठन्ति रात्रौ ज्ञात्वाऽथ वासरम् ॥ १२
न व्ययुज्यन्त चक्राश्च तदा वै पुरदर्शने ।

१६

पुलस्त्य ने कहा—हे देवर्षे ! तदनन्तर अपने उत्तम नगर में जाकर सुकेशी ने समस्त राक्षसों को बुलाकर उनसे धर्म की बात कही । (१)

‘अहिंसा, सत्य, अचीर्य, शौच, इन्द्रियसंयम, दान, दया, श्रमा, ब्रह्मचर्य, अहंकार या अभाव, प्रिय, सत्य और मधुस्वाणी, सदा सरायाँ में अनुरक्ति एवं सदाचार पालन-ये सभी परलोक (में सुख) प्रद (धर्म) हैं। मुनियों ने इस प्रकार के आद्य और पुरातन धर्म को मुझे बतलाया है। अस्तु मैं तुम लोगों को आश्रय देता हूँ कि तुम लोग बिना विचार के इन सभी का अनुष्ठान करो। (२-४)

पुलस्त्य ने कहा—तदनन्तर सुकेशी के यचन से सभी राक्षस प्रसन्नचित्त होकर (अहिंसादि) प्रयोदश अङ्ग वाले धर्म का आचरण करने लगे। (५)

इससे सदाचार-समन्वित राक्षस पुत्र पौत्रादिसंयुक्त होकर अतिशय प्रवृद्धि को प्राप्त किए। (६)

उन महात्मा राक्षसों के तेज से सूर्य, नक्षत्र और चन्द्रमा

(अपने मार्ग में) नहीं चल सके। (७)

हे ब्रह्मन् ! तदनन्तर त्रिभुवन में निशाचरों की नगरीदिन में चन्द्र के समान और रात में सूर्य के समान हो गईं। (८)

तदुपरान्त आकाश में सूर्य की गति दिखाई नहीं पड़ती थी। यह श्रेष्ठ नगर तेज के कारण आनाम में चन्द्रमा के सदृश प्रतीत होता था। (९)

हे ब्रह्मन् ! (दिन को) रात्रि समझ कर सरोवर के पथलों ने विरसित होना बन्द कर दिया तथा रात्रि में (सुनेशे के पुर को) सूर्य समझकर विभूति प्रदान करने की इच्छा से विरसित होने लगे। (१०)

वल्गु (दिन को) रात्रि का समय जान कर बाहर निकल आए और कीए दिन आनन्द वल्गुओं को मारने लगे। (११)

स्नातक लोग रात्रि को दिन समझ आरुण्ट मान होकर स्नान प्य जप करते हुए जल में खड़े रहे। (१२)

उस समय नगर का दर्शन होने से पक्काबक पड़ी

मन्यमानास्तु दिवसमिदं श्रुत्वा च ॥ १३
 नूनं कान्ताविहीनेन केनचिच्चरुपत्त्रिणा ।
 उत्सृष्टं जीवितं शून्ये फूल्कृत्य सरितस्तटे ॥ १४
 ततोऽनुकृपयाविष्टो विवस्वांस्तीव्ररश्मिभिः ।
 संतापयद्भगन् सर्वं नास्तमेति कथंचन ॥ १५
 अन्ये धदन्ति चक्राहो नूनं कथिन् मृतो भवेत् ।
 तत्कान्तया तपस्त्वं भर्तृशोकार्त्तया धत ॥ १६
 आराधितस्तु भगवांस्तपसा वै दिवाकरः ।
 तेनासौ शशिनिर्जैता नास्तमेति रविर्ध्रुवम् ॥ १७
 यन्विनो होमशालासु सह श्रुतिविम्भिरश्चरे ।
 प्रावर्त्तयन्त कर्माणि रात्रावपि महाह्वने ॥ १८
 महाभागवताः पूजां विष्णोः कुर्वन्ति भक्तितः ।
 रवौ शशिनि चैवान्ये ब्रह्मणोऽन्ये हरस्य च ॥ १९
 कामिनशाप्यमन्यन्त साधु चन्द्रमसा कृतम् ।
 यदियं रजनी रम्या कृता सततकोष्ठुदी ॥ २०

अन्येऽनुवृत्तौ कगुररस्माभिश्चक्रभृद् वशी ।
 निर्व्याजेन महागन्धैरर्चितः क्लृप्तैः शुभैः ॥ २१
 सह लक्ष्म्या महायोगी नभस्यादिचतुर्ध्रुवपि ।
 अशून्यशयना नाम द्वितीया सर्वकामदा ॥ २२
 तेनासौ भगवान् प्रीतः प्रादाच्छयनमुचमम् ।
 अशून्यं च महाभोगैरनस्तमितशेखरम् ॥ २३
 अन्येऽध्रुवन् ध्रुवं दन्या रोहिण्या शशिनः क्षयम् ।
 दृष्ट्वा तपं तपो धोरं रुद्राराधनकाम्यया ॥ २४
 पुण्यायामध्यायटम्यां वेदोक्तविधिना स्नयम् ।
 तुष्टेन शंभुना दत्तं वरं चास्पै यदच्छया ॥ २५
 अन्येऽध्रुवन् चन्द्रमसा ध्रुवमाराधितो हरिः ।
 व्रतेनेह स्वर्गण्डेन तेनाखण्डः शशी दिनि ॥ २६
 अन्येऽध्रुवच्छशाङ्गेन ध्रुवं रक्षा कृतात्मनः ।
 पदद्वयं समम्यर्च्य विष्णोरमिततेजसः ॥ २७
 तेनासौ दीप्तिमांश्चन्द्रः परिभूय दिवाकरम् ।

रात्रि को दिन मान कर परस्पर विपुक्त नहीं हुए एवं उषारर
 से बहने लगे— (१३)

निग्रय ही किसी पत्नी से विहीन चक्रवाक पत्नी ने
 ण्कान्त में नदी तट पर पूरकार करके जीवनोत्सर्ग किया
 है। (१४)

इसी से द्यार्द्र होकर सूर्य तीव्र त्रिरणों से जगन् को
 सन्ताप देते हुए किसी प्रकार आन नदी हो रहे हैं। (१५)

दूसरे बहने हैं—“निग्रय ही कोई चक्रवाक मर गया
 है और पतिशोचते उसकी कान्ता ने तप किया है। (१६)

इसीलिये निग्रय ही उसकी तपस्या से प्रसन्न चन्द्रजयो
 भगवान् सूर्ये आन नहीं हो रहे हैं। (१७)

हे महाह्वने! यज्ञशालाओं में श्रुतिरजों के साथ यज्ञ-
 मान लगे रात्रि में भी यज्ञकर्म में प्रवृत्त हो रहे हैं। (१८)

महाभागवत (विष्णुमण्ड) भक्तिपूर्वक विष्णु की पूजा
 कर रहे हैं एवं दूसरे लोग सूर्य, चन्द्र, ब्रह्मा और शिव की
 आराधना में प्रवृत्त हो रहे हैं। (१९)

कामियों ने शोषा कि मग्न चन्द्रिका-पूर्णे रम्य रात्रि
 की रचना कर चन्द्रमा ने एक सुन्दर वायें किया
 है। (२०)

दूसरे बहने लगे कि हम लोगों ने निष्पट भाव से
 अति सुगन्धित पवित्र पुष्पों के द्वारा महालक्ष्मी के साथ
 महायोगी चक्रधारी विष्णु की पूजा धावग आदि चार मासों
 में की। इसी अवधि में सर्वत्रामदा अशून्यशयना द्वादशी
 तिथि होती है। उसी से प्रसन्न होकर भगवान् ने अशून्य तथा
 महायोगी से पूर्ण उत्तम शयन प्रदान किया
 है। (२१-२३)

दूसरों ने कहा कि चन्द्रमा का क्षय देत कर देवी
 रोहिणी ने निग्रय ही रुद्र की आराधना करने की इच्छा से
 परम पवित्र अश्यायसी तिथि में वेदोक्त विधान से घोर तप
 किया है। जिससे प्रसन्न होकर भगवान् शीघ्र ने उसे
 इच्छानुसार धर दिया है। (२४-२५)

दूसरे बहने लगे निग्रय ही चन्द्रमा ने भगवान् हरि
 की अखण्ड तप द्वारा अराधना की है। उससे आकाश में
 चन्द्रमा अखण्ड है। (२६)

दूसरों ने कहा कि अपरिमित तेजस्वी श्रीविष्णु
 के चरणयुगल की अर्चना कर के अवरय ही चन्द्रमा ने
 अपनी रक्षा की है। (२७)

इसीमें दीप्तिमान् चन्द्रमा सूर्य को पतार करके हमें

अस्माकमानन्दकरो दिवा तपति सूर्यधन् ॥ २८
 लक्ष्यते कारणैरन्यैर्गुणिभिः सत्यमेव हि ।
 शशाङ्कनिर्वृतः सूर्यो न विभाति यथा पुरा ॥ २९
 यवामी कमलाः श्लक्ष्णा रणदुभृङ्गगणावृताः ।
 विकचाः प्रतिभासन्ने जातः सूर्योदयो ध्रुवम् ॥ ३०
 यथा चामी विभासन्ति विकचाः दुग्धदाकराः ।
 अतो विज्ञायते चन्द्र उदितश्च प्रतापवान् ॥ ३१
 एवं संभाषतां तत्र सूर्यो चाक्षयानि नारद ।
 अमन्यत क्रिमेतद्दि लोको वक्ति शुभाशुभम् ॥ ३२
 एवं संचिन्त्य भगवान् दृष्यौ ध्यानं दिवाकरः ।
 आममन्ताज्जगद्दृष्टं त्रैलोक्यं रजनीचरैः ॥ ३३
 ततस्तु भगवाञ्छात्वा तेजसोऽप्यमहिष्णुताम् ।
 निशाचरस्य वृद्धिं तामचिन्तयत योगवित् ॥ ३४
 ततोऽज्ञासीद्य तान् सर्गान् सदाचाररत्वाशुचीन् ।
 देवब्राह्मणपूजानु संमक्तान् धर्ममपुतान् ॥ ३५

तवस्तु रथःश्वकृन् विभिरद्विपकेमरी ।
 महांशुनखरः सूर्यस्तद्विधातमचिन्तयत् ॥ ३६
 ज्ञातवांश्च ततश्छिद्रं राक्षसानां दिवस्पतिः ।
 स्वधर्मविच्युतिनाम सर्वधर्मविधातकृत् ॥ ३७
 ततः क्रोधाभिभूतेन मानुना रिपुभेदिभिः ।
 भानुभी राक्षसपुरं तद् दृष्टं च यथेच्छया ॥ ३८
 स मानुना तदा दृष्टः क्रोधाध्मातेन चतुषा ।
 निपपाताम्नराद् घटः धीणपुण्य इव ग्रहः ॥ ३९
 पतमानं समालोक्य पुरं शालकटङ्कटः ।
 नमो भवाय शर्वाय इदमुच्चैरदीरयत् ॥ ४०
 तमाक्रन्दितमारुर्ष्य चारणा गगनेचराः ।
 हा हेति बुभुक्षुः सर्वे हरमपठः पठयसौ ॥ ४१
 तच्चारणवचः शर्मः श्रुतवान् मर्षगोऽप्ययः ।
 श्रुत्वा संचिन्तयामाम केनासौ पात्यते भुवि ॥ ४२
 श्रुतवान् देवपतिना सहस्रकिरणेन तन् ।

आनन्द देते हुए दिन मे सूर्य के समान तप रहे हैं । (२८)
 पस्तुत. अन्य अनेक प्रकार के कारणों से यह लक्षित हो रहा है कि चन्द्रमा के द्वारा पराजित सूर्य पूर्व के सटश नहीं प्रतीत हो रहे हैं । (२९)
 यत गुआर कर रहे भ्रमर समूह से आश्रित वे सुन्दर कमल विरसित दिरालाई पड़ रहे हैं अतः निज्य ही सूर्योदय हुआ है । (३०)
 तथा च, यत ये बुद्धदृष्टद विरसित है अतः यह ज्ञात होता है कि प्रतापवान् चन्द्रमा उदित हुआ है । (३१)
 हे नारद ! इस प्रकार वर्णन करने वालों के धार्यों को सुन कर सूर्य सोचने लगे कि ये लोग इस प्रकार शुभाशुभ वचन क्यों बोल रहे हैं ? (३२)
 भगवान् दिवाकर ऐसा विचार कर ध्यान भग्न हो गये । उन्होंने देखा कि समस्त त्रैलोक्य पारों ओर से राक्षसों द्वारा प्रसन्न तो गया है । (३३)
 तदनन्तर योगी भगवान् आरक्ष राक्षसों की वृद्धि तथा तेज की असहनीयता को जान कर विचार करने लगे । (३४)
 तदुपरान्त उन्हें यह ज्ञान हुआ कि सभी राक्षस सदा-चार-व्यपचन, पवित्र, देवता और प्राणियों की पूजा में अनु-

रक्त तथा धार्मिक हैं । (३५)
 तदनन्तर राक्षसों के विनाशक तथा अन्धकाररूपी दाधी के लिये सिंह के सदृश तीक्ष्ण रश्मि रूपी नख धारने सूर्य उनके (राक्षसों के) विनाश के विषय में सोचने लगे । (३६)
 तदुपरान्त सूर्य को राक्षसों के स्वधर्मविच्युति रूपी छिद्र का ज्ञान हुआ जो समस्त धर्मों का विनाशक है । (३७)
 तदनन्तर क्रोधाभिभूत सूर्य ने रिपुभेदी रश्मियों के द्वारा भलीभांति उस तपसुसुर को देखा । (३८)
 उस समय सूर्य द्वारा प्राधूर्य दृष्टि से देखा गया वह पुर धीणपुण्य ग्रह के सदृश आनाश से गिर पड़ा । (३९)
 अपने नगर को गिरने देखा कर शालकटङ्कट (मुकेन्द्रो) ने उच्च स्तर से 'नमो भवाय शर्वाय' यह कहा । (४०)
 इसके उस आग्रन्दन को सुन कर सभी आग्रशचारी पारण विकलाने लगे- 'हाय हाय ! यह दर मल गिर रहा है' । (४१)
 सर्गामी अव्यय शर्व (शंकर) ने पारणों के उस वचन को सुना पर्व सुनकर सोचने लगे कि इसे दृष्टी पर बौन गिरा रहा है । (४२)
 उन्होंने यह जान लिया कि देवपति सहस्रकिरण

पातितं राक्षसपुरं ततः क्रुद्धस्त्रिलोचनः ॥ ४३
 क्रुद्धस्तु भगवन्तं तं भानुमन्तमपश्यत् ।
 दृष्टमात्रस्त्रिषेत्रेण निपपात ततोऽम्भरात् ॥ ४४
 गगनात् स परित्रष्टः पथि वायुनिपेविते ।
 गृहच्छया निपवितो यन्त्रमुक्तो यथोपलः ॥ ४५
 ततो वायुपथान्मुक्तः किमुकोज्ज्वलविग्रहः ।
 निपपातान्तरिक्षात् स वृत्तः किन्नरचारणैः ॥ ४६
 चारणैर्वेदितो भानुः प्रविभात्यम्भरात् पतन् ।
 अर्द्धपद्मं यथा तालात् फलं कपिनिराहृतम् ॥ ४७
 ततस्तु ऋषयोऽभ्येत्य प्रत्युचुर्भानुमालिनम् ।
 निपतस्य हरिक्षेत्रे यदि श्रेयोऽभिवाञ्छामि ॥ ४८
 ततोऽध्वरीत् पतन्नेव विवस्वास्तास्तपोधनात् ।
 किं तत् क्षेत्रं हरेः पुण्यं वदस्व शीघ्रमेव मे ॥ ४९
 तमूचुर्हृत्नयः सूर्यं मृषु क्षेत्रं महाफलम् ।
 माग्न्यत वासुदेवस्य भासि तच्छंकरस्य च ॥ ५०

(सूर्यं) द्वारा राक्षस वा पुर गिराया गया है । इससे त्रिलोचन क्रुद्ध हो गए । (४३)

क्रुद्ध होकर उन्होंने भगवान् सूर्य को देखा । त्रिनेत्र के देवने ही वे (सूर्य) आकाश से गिर पड़े । (५५)

आकाश से उतुत सूर्य, वायुनिपेविन मार्ग में यन्त्रमुक्त पतार व सट्टी गिरने लगे । (४५)

तदान्तर किमुक्त वे सट्टा उज्ज्वल शरीर बाने सूर्य वायुपथ से मुक्त होने के उपरान्त त्रिनेत्र एवं चारणों से आवृत होकर अन्तरिक्ष से नीचे गिरने लगे । (४६)

चारणों में घिरे हुए भानु आकाश से नीचे गिरते समय तालवृक्ष से गिरने वाले कपियों से आवृत अर्द्धपद्म फल के सदृश प्रतीत हो रहे थे । (४७)

तदनन्तर मुनिपों ने सूर्यदेव से निजट आकर उनसे कहा कि यदि ऋष्याण चाहते हो तो हरि के क्षेत्र में गियो । (४८)

गिरने हुए ही सूर्य ने वन तपस्वियों से पूछा—'हरि वा यह पवित्र क्षेत्र कीन है ? मुझे शीघ्र बतलाओ ।' (४९)

मुनिपों ने सूर्य से कहा—महापद्मदायक इस क्षेत्र का विवरण मुझे । सम्प्रति वह वासुदेव का क्षेत्र है किन्तु

योगशापिनमारभ्य यावत् वेशवदर्शनम् ।
 एतत् क्षेत्रं हरेः पुण्यं नाम्ना वाराणसी पुरी ॥ ५१
 तच्छ्रुत्वा भगवान् भानुर्भवेनेत्राग्नितापितः ।
 वरणायास्तथैवाभ्यास्तवन्तरे निपपात ह ॥ ५२
 ततः प्रदहति तनौ निमज्ज्यास्यां लुलुद् रविः ।
 वरणायां समभ्येत्य न्यमज्जत यथेच्छया ॥ ५३
 भूयोऽसि वरणां भूयो भूयोऽपि वरणामसिम् ।
 लुलुस्त्रिषेत्रवह्वर्चात्तं भ्रमतेऽल्लतचक्रवत् ॥ ५४
 एतमिन्नन्तरे ब्रह्मन् ऋषयो यश्चाराहसा ।
 नागा विद्याधराश्चापि पक्षिणोऽम्भसरसस्तथा ॥ ५५
 यावन्तो भास्कररथे भूतप्रेतादयः स्थिताः ।
 तावन्तो ब्रह्मसदनं गता वेदयितुं ह्यने ॥ ५६
 ततो ब्रह्मा सुरपतिः सूरैः साधं समभ्यगात् ।
 रम्यं महेश्वराणामं मन्दरं रविकारणात् ॥ ५७
 गत्वा दृष्ट्वा च देवेशं शंकरं शूलपाणिनम् ।

भविष्य मे यह शर वा क्षेत्र होगा । (५०)

योगशापी से प्रारम्भ कर वेशवदर्शन तक का पवित्र क्षेत्र हरि का क्षेत्र है । इसका नाम वाराणसी पुरी है । (५१)

यह सुन कर भव (शिव) के नेत्राग्नि से तापित भगवान् सूर्य वरुणा और असि के मध्य गिरे । (५२)

तदनन्तर शरीर के प्रदग्ध हाते रहने से व्याकुल रवि ने असि में निमज्जन करने के उपरान्त वरुणा में जाकर यथेच्छ निमज्जन किया । (५३)

इस प्रकार त्रिनेत्र के बद्धि में आतं होकर वे धारधार अग्नि और वरुणा की ओर अलग-अलग के सट्टा झीङ्गने लगे । (५४)

हे ब्रह्मन् । हे मुने । इस बीच ऋषि, यक्ष, राक्षस, नाग, विद्याधर, पक्षी, अल्परायें और भास्कर के रथ में जितने भूत प्रेत आदि थे वे सभी यह समाचार देने के लिये ब्रह्मा के सदन में गये । (५५-५६)

तदनन्तर सुरपति ब्रह्मा देवनागों के साथ सूर्य के लिये महेश्वर के रमणीय आवास-स्थान मन्दर पर्वत पर गए । (५७)

यहाँ जाकर पय देवेश शूलपाणि शंकर को देख कर

प्रसाद्य भास्करार्थाय वाराणस्यामुपानयत् ॥ ५८
 ततो दिवाकरं भूयः पाणिनादाय शंकरः ।
 कृत्वा नामास्य लोलेति रथमारोपयत् पुनः ॥ ५९
 आरोपिते दिनकरे ब्रह्माऽभ्येत्य सुकेशिनम् ।
 सवान्धवं सनगरं पुनरारोपयद् दिवि ॥ ६०
 समारोप्य सुकेशि च परिध्वज्य च शंकरम् ।
 प्रणम्य केशवं देवं वैराजं स्वगृहं गतः ॥ ६१
 एवं पुरा नारद भास्करेण

पुरं सुकेशोर्ध्वं वि सन्निपातितम् ।
 दिवाकरो भूमितले भवेन
 क्षिप्तस्तु दृष्ट्वा न च संप्रदग्धः ॥ ६२
 आरोपितो भूमितलाद् भवेन
 भूयोऽपि भानुः प्रतिभासनाय ।
 स्वयंभुवा चापि निशाचरेन्द्रश्च
 त्वारोपितः खे सपुरः सगन्धुः ॥ ६३

इति श्रीवामनपुराणे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

१७

नारद उवाच ।
 यानेतान् भगवान् प्राह कामिभिः शशिनं प्रति ।
 आराधनाय देवाभ्यां हरीशभ्यां वदस्व तान् ॥ १
 पुलस्त्य उवाच ।
 मृणुष्व कामिभिः प्रोक्तान् व्रतान् पुण्यान् कलिप्रिय ।

तथा भास्कर के लिये उन्हें प्रसन्न कर ब्रह्मा उन्हें वाराणसी में लिये । (५८)
 तदनन्तर शंकर ने दिवाकर को हाथ से उठाकर उनका 'लोल' नाम रखने के उपरान्त उन्हें पुन उनके रथ पर स्थापित किया । (५९)
 दिनकर के अपने रथ में आरोपित हो जाने पर ब्रह्मा सुकेशी के निकट गए एवं उसे पुन बान्धवों एव नगर के साथ आकाश में आरोपित किया । (६०)
 सुकेशी को (आकाश में) समारोपित करने के उपरान्त

आराधनाय शर्वस्य केशवस्य च धीमतः ॥ २
 यदा त्वापाढी संघाति व्रजते चोत्तरायणम् ।
 तदा स्वपिति देवेशो भोगिभोगे श्रियः पतिः ॥ ३
 प्रतिसुप्ते विभौ तस्मिन् देवगन्धर्वगुह्यकाः ।
 देवानां मातरश्चापि प्रसुप्राथाप्यनुकृमात् ॥ ४

शंकर का आलिङ्गन कर तथा केशवदेव को प्रणाम कर ब्रह्मा अपने वैराज नाम लोक को चले गए । (६१)
 हे नारद ! प्राचीन समय में इस प्रकार सूर्य ने सुकेशी के नगर को पृथ्वी पर गिराया एवं महादेव ने दिवाकर को नेत्रानल से दग्ध न कर भूमितल पर गिराया था । (६२)
 शंकर ने पुन सूर्य को प्रतिभासित होने के लिये भूमितल से (आकाश में) आरोपित किया तथा ब्रह्मा ने निशाचरेन्द्र को उसके पुर और बधुओं के सहित आकाश में आरोपित किया । (६३)

श्रीवामनपुराण में सोतहर्षो अध्याय समाप्त ॥१६॥

१७

नारद ने पूछा—आपने चन्द्रमा के विषय में कामियों द्वारा श्री हरि और शंकर की आराधना के लिये जिन व्रतों का उल्लेख किया है उनका वर्णन करें । (१)
 पुलस्त्य ने कहा—हे कलिप्रिय (कलहप्रिय = नारद) ! महादेव और धीमान् केशव की आराधना के लिये कामियों

द्वारा कथित पवित्र व्रतों का वर्णन सुनो । (२)
 जब आपाढी पूर्वमा आनेवाली होती है तथा उत्तरायण कीत जाता है उस समय धीपति देवेश भोगिभोगे (उपशय्या) पर सोते हैं । (३)
 उन विभु के सो जाने पर देवता, गन्धर्व, शुद्धक एवं

नारद उवाच ।

कथयस्व सुरादीनां शयने विधिमुत्तमम् ।

सर्वमनुक्रमेणैव पुरस्कृत्य जनार्दनम् ॥ ५

पुलस्त्य उवाच ।

मिथुनाभिगते सूर्ये शुक्रपक्षे तपोधन ।

एकादश्यां जगत्स्वामी शयनं परिकल्पयेत् ॥ ६

शेषाहिभोगपर्यङ्कं कृत्वा संपूज्य केशधम् ।

कृत्योपवीतकं चैव सम्यक्संपूज्य वै द्विजान् ॥ ७

अनुज्ञां ब्राह्मणेभ्यश्च द्वादश्यां प्रवतः शुचिः ।

लब्ध्वा पीताम्बरधरः स्वस्ति निद्रां समानयेत् ॥ ८

त्रयोदश्यां ततः कामः स्वपते शयने शुभे ।

कदम्बानां सुगन्धानां कुसुमैः परिकल्पिते ॥ ९

चतुर्दश्यां ततो यथाः स्पन्ति मुखशीतले ।

सौवर्णपङ्कजकृते सुखास्तीर्णोपधानके ॥ १०

पौर्णमास्याह्मनाथाः स्वपते चर्मसंस्ते ।

वैद्यान् च जटामारं समुद्ग्रन्थान्यचर्मणा ॥ ११

देवमाताएँ भी क्रमशः सा जाती है । (४)

नारद ने पूछा—जनार्दनसे प्रारम्भ कर क्रमशः देवतादि के शयन की समस्त उक्त विधि मुझे बतलाएँ । (५)

पुलस्त्य ने कहा—हे तपोधन ! (आषाढ के) शुक्ल पक्ष में सूर्य के मिथुन राशि में जाने पर एकादशी तिथि को जगत्स्वामी जनार्दन शयन करते हैं । (६)

शेषनाग के शरीर का पर्यङ्क बना कर यज्ञोपवीतपुलक्रीकेश एवं द्विजों की पूजा करने के उपरान्त द्वादशी तिथि में ब्राह्मणों से अनुज्ञा लेकर समय एवं पवित्रता-पूर्वक पीताम्बरधर को सुवर्णपूर्वक निद्रा का आश्रय ग्रहण करावे । (७-८)

तदनन्तर त्रयोदशी तिथि में सुगन्धित कदम्ब पुष्पों से निर्मित पवित्र शय्या पर कामदेव शयन करते हैं । (९)

चतुर्दशी को सुवर्णपङ्कज रूप में विज्ञाये गये एवं उपधानयुक्त सुशीतल स्वर्णपङ्कज निर्मित शय्या पर यज्ञ-गण शयन करते हैं । (१०)

पूर्यमासी तिथि को अमानाथ शंकर एक दूसरे चर्म द्वारा जटामार बांध कर व्याघ्रचर्म की शय्या पर सोते हैं । (११)

ततो दिवाकरो राशिं संप्रयाति च कर्कटम् ।

ततोऽमराणां रजनी भवते दक्षिणायनम् ॥ १२

ब्रह्मा प्रतिपदि तथा नीलोत्पलमयेऽनघ ।

तल्पे स्वपिति लोकानां दर्शयन् मार्गमुत्तमम् ॥ १३

विश्वकर्मा द्वितीयायां तृतीयायां गिरेः सुता ।

विनायकश्चतुर्थ्यां तु पञ्चम्यामपि धर्मराट् ॥ १४

पञ्च्यां स्कन्दः प्रस्वपिति सप्तम्यां भगवान् रविः ।

कात्यायनी तथाष्टम्यां नवम्यां कमलालया ॥ १५

दशम्यां भुजगेन्द्राश्च स्वपन्ते वायुभोजनाः ।

एकादश्यां तु कृष्णायाम् साध्या प्रह्वन् स्वपन्ति च ॥ १६

एष क्रमस्ते गदितो नभादौ स्वपने मुने ।

स्वपत्सु तत्र देवेषु प्रावृट्कालः समापयौ ॥ १७

कङ्काः समं यलाकाभिरारोहन्ति नगोचमान् ।

वायसाश्चापि कुर्वन्ति नीडानि ऋषिपुंगव ।

वायसाश्च स्वपन्त्येते ऋतौ गर्भभरालसाः ॥ १८

यस्यां तिथ्यां प्रस्वपिति विश्वकर्मा प्रजापतिः ।

तदनन्तर दिवाकर कर्कट राशि में गमन करते हैं । तब देवताओं के लिये रात्रिस्वरूप दक्षिणायन का आरम्भ होता है । (१२)

हे निष्पाप ! लोगों को उत्तम मार्ग दिखलाते हुए ब्रह्मा प्रतिपद् तिथि में नीलकमल की शय्या पर सोते हैं । (१३)

विश्वकर्मा द्वितीया को, पर्यवतन्दिनी तृतीया को, विनायक (गणेश) चतुर्थी को और धर्मराज पञ्चमी को, स्कन्द षष्ठी को, भगवान् सूर्य सप्तमी को, कात्यायनी अष्टमी को, लक्ष्मी नवमी को, वायुभोजा सप्त दशमी को, तथा हे ब्रह्मन् ! साध्यगण कृष्ण एकादशी का सोते हैं । (१४-१६)

हे मुने ! धावगादि में क्रमानुसार देवताओं के सोने का क्रम हम ने तुम्हें बतलाया । देवों के सा जाने पर वर्षाकाल का समागम होता है । (१७)

हे ऋषियेष्ठ ! यलाकाओं के साथ कङ्क ऊँचे पर्वतों पर चढ़ जाते हैं तथा कीप घोंसले बनाने लगते हैं एवं मादा कीप इस ऋतु में गर्भ भार से आलस्य के कारण होती हैं । (१८)

प्रजापति विश्वकर्मा जिस तिथि में सोते हैं वह कल्याण-

द्वितीया सा शुभा पुण्या अशून्यशयनोदिता ॥ १९
तस्यां तिथावर्च्य हरिं श्रीवत्साङ्गं चतुर्भुजम् ।
पर्यङ्कस्थं समं लक्ष्म्या गन्धपुष्पादिभिर्मृने ॥ २०
ततो देवाद्य शय्यायां फलानि प्रक्षिपेत् क्रमात् ।
सुरभीणि निवेद्येत्थं विज्ञाप्यो मधुसूदनः ॥ २१

यथा हि लक्ष्म्या न विजुज्यसे त्वं
त्रिविक्रमानन्त जगन्निवास ।
तथाऽस्त्वशून्यं शयनं सदैव
अस्माकमेवेह तव प्रसादात् ॥ २२
यथा त्वशून्यं तव देव तल्पं
समं हि लक्ष्म्या वरदाच्युतेश ।
सत्येन तेनामितवीर्यं विष्णो
गार्हस्थ्यनाशो मम नास्तु देव ॥ २३

इत्युच्चार्य प्रणम्येशं प्रसाद्य च पुनः पुनः ।
नक्तं भुञ्जीत देवेषु तैलक्षारविभार्जितम् ॥ २४

कारिणी पवित्र अशून्यशयना नामक द्वितीया तिथि होती है । (१६)

हे मुने! उस तिथि में लक्ष्मी के साथ पर्यङ्कस्थ श्रीवत्साङ्ग चतुर्भुज हरि का गन्ध-पुष्पादि के द्वारा अर्चन कर इन देव के निमित्त शय्या पर क्रमशः फल तथा सुगन्ध निवेदित करने के उपरान्त मधुसूदन से इस प्रकार प्रार्थना करे— (२०-२१)

हे त्रिविक्रम! हे अनन्त! हे जगन्निवास! जिस प्रकार आप लक्ष्मी से श्रद्धा नहीं होते वसी प्रकार आपकी कृपा से हम लोगों का शयन कभी (स्त्री से) शून्य न हो । (२२)

हे देव! हे वरद! हे अच्युत! हे देव! हे अमितवीर्य वाले विष्णो! क्योंकि आपकी शय्या लक्ष्मी से शून्य नहीं होती इसी सत्य के प्रमाण से हमारे गार्हस्थ्य का नाश न हो । (२३)

हे देवर्षे! इस प्रकार स्तुति करने के पश्चात् ईश को प्रणाम द्वारा पुनः पुनः प्रसन्न कर शत्रि में सेल एवं नमक से रहित भोजन करे । (२४)

दूसरे दिन बुद्धिमान् व्यक्ति लक्ष्मीधर मेरे ऊपर

द्वितीयेऽहि द्विजाभ्याय फलान् दद्याद् विचक्षणः ।
लक्ष्मीधरः प्रीयतां मे इत्युच्चार्य निवेद्येत् ॥ २५
अनेन तु विधानेन चातुर्मास्यव्रतं चरेत् ।
यावद् वृश्चिकराशिस्य प्रविभाति दिवाकरः ॥ २६
ततो विजुघ्यन्ति सुराः क्रमशः क्रमशो मृने ।
तुलास्थेऽर्के हरिः कामः शिवः पश्चाद्विजुघ्यते ॥ २७

तत्र दानं द्वितीयायां मूर्धिलक्ष्मीधरस्य तु ।
सशय्यास्तरणोपेता यथा विभवमात्मनः ॥ २८
एष व्रतस्तु प्रथमः प्रोक्तस्तत्र महाद्युने ।
यस्मिंश्चीर्णे वियोगस्तु न भवेदिह कस्यचित् ॥ २९
नभस्ये मासि च तथा या स्वात्कृष्णाष्टमी शुभा ।
युक्ता मृगशिरिणैव सा तु कालाष्टमी स्मृता ॥ ३०
तस्यां सर्वेषु लिङ्गेषु त्रियो स्वपिति शंकरः ।
वसते संनिधाने तु तत्र पूजाऽथवा स्मृता ॥ ३१
तत्र स्नायीत वै विद्वान् गोमूत्रेण जलेन च ।

प्रसन्न हों यह उच्चारण कर श्रेष्ठ ब्राह्मण को फल प्रदान करें । (२५)

इस विधान के द्वारा जब तक सूर्य वृश्चिक राशि पर रहते हैं तब तक चातुर्मास्य व्रत का पाठन करना चाहिये । (२६)

हे मुने! तदनन्तर क्रमशः देवगण जगते हैं । सूर्य के तुलाराशिस्य होने पर हरि प्रबुद्ध होते हैं । तत्पश्चात् काम और शिव जगते हैं । (२७)

तदनन्तर द्वितीया के दिन अपने विभव के अनुसार आस्तरण-युक्त शय्या के साथ लक्ष्मीधर की मूर्ति या दान करे । (२८)

हे महासुने! इस प्रकार मैंने आप को प्रथम व्रत बताया जिसका आचरण करने पर इस संसार में किसी की वियोग नहीं होता । (२९)

इसी प्रकार भाद्रपद मास में मृगशिरा नक्षत्र से युक्त पवित्र कृष्णाष्टमी को कालाष्टमी माना गया है । (३०)

उस तिथि में भगवान् शंकर समस्त लिंगों में सोते एवं उनके संनिधान में निवास करने हैं । इस अवसर पर की गई शंकर की पूजा अश्रय मानो गई है । (३१)

उस तिथि में विद्वान् मनुष्य गोमूत्र और जल से स्नान

स्नातः संपूजयेत् पुष्पैर्धत्तूरस्य त्रिलोचनम् ॥ ३२
 धूपं केसरनिर्यासं नैवेद्यं मधुसर्षिणी ।
 प्रीयतां मे विरूपाक्षस्त्वित्युच्चायं च दक्षिणाम् ।
 विप्राय दद्यान्नैवेद्यं सहिरण्यं द्विजोत्तम ॥ ३३
 तद्वदाश्वयुजे मासि उपवासी जितेन्द्रियः ।
 नवम्यां गोमयस्नानं कुर्यात्पूजां तु पङ्कजैः ।
 धूपयेत् सर्जनिर्यासं नैवेद्यं मधुमोदकैः ॥ ३४
 कृतोपवासस्त्वष्टम्यां नवम्यां स्नानमाचरेत् ।
 प्रीयतां मे हिरण्याक्षो दक्षिणा सतिला स्मृता ॥ ३५
 कार्तिके पयसा स्नानं करवीरेण चाचनम् ।
 धूपं श्रीवासनिर्यासं नैवेद्यं मधुपायसम् ॥ ३६
 सनैवेद्यं च रजतं दातव्यं दानमग्रजे ।
 प्रीयतां भगवान् स्थाणुरिति वाच्यमनिष्टुरम् ॥ ३७
 कृत्वोपवासमष्टम्यां नवम्यां स्नानमाचरेत् ।

मासि मार्गशिरे स्नानं दध्मार्चा भद्रया स्मृता ॥ ३८
 धूपं श्रीवृक्षनिर्यासं नैवेद्यं मधुनोदनम् ।
 संनिवेद्या रक्तशालिर्दक्षिणा परिकीर्त्तिता ।
 नमोऽस्तु प्रीयतां शर्वस्त्विति वाच्यं च पण्डितैः ॥ ३९
 पौषे स्नानं च हविषा पूजा स्यात्तमरैः शुभैः ।
 धूपो मधुकनिर्यासो नैवेद्यं मधु शङ्कुली ॥ ४०
 समुद्ग्रा दक्षिणा प्रोक्ता प्रीणनाय जगद्गुरोः ।
 वाच्यं नमस्ते देवेश त्र्यम्बकेति प्रकीर्त्तिवत् ॥ ४१
 माघे कुशोदकस्नानं मृगमदेन चाचनम् ।
 धूपः कदम्बनिर्यासो नैवेद्यं सतिलोदनम् ॥ ४२
 पयोभक्तं सनैवेद्यं सरुक्मं प्रतिपादयेत् ।
 प्रीयतां मे महादेव उमापतिरतीरयेत् ॥ ४३
 एवमेव समुद्दिष्टं पङ्क्तिभिर्मैस्तु पारणम् ।
 पारणान्ते त्रिनेत्रस्य स्नपनं कारयेत्क्रमात् ॥ ४४

करें। स्नानोपरान्त धत्तूर के पुष्पों से शंकर की पूजा करें। (३२)

हे द्विजोत्तम ! केसर के निर्यास (गोंद) का धूप तथा मधु एवं घृत का नैवेद्य अर्पण करने के अनन्तर 'विरूपाक्ष मेरे ऊपर प्रसन्न हों' यह कह कर ब्राह्मण को दक्षिणा तथा स्वर्ण के साथ नैवेद्य प्रदान करे। (३३)

इसी प्रकार आश्विन मास में नवमी तिथि को उपवासी एव जितेन्द्रिय होकर गोबर से स्नान करने के उपरान्त कमलों से पूजन करे तथा सर्ज वृक्ष के निर्यास का धूप एवं मधु और मादक का नैवेद्य अर्पण करे। (३४)

अष्टमी को उपवास करके नवमी को स्नान करने के उपरान्त 'हिरण्याक्ष मेरे ऊपर प्रसन्न हों' यह कहते हुए तिलमिश्रित दक्षिणा प्रदान करे। (३५)

कार्तिक में दुग्धस्नान तथा करवीर के पुष्प से अर्चन करे तदनन्तर श्रीवास (सरल) वृक्ष की गोंद का धूप तथा मधु एवं पायस का नैवेद्य अर्पण करने के पश्चात् नम्रता पूर्वक 'भगवान् स्थाणु मेरे ऊपर प्रसन्न हों' यह उच्चारण करते हुए ब्राह्मण को नैवेद्य के साथ रजत का दान करे। (३६-३७)

मार्गशीर्ष मास में अष्टमी तिथि को उपवास करके नवमी तिथि में दधि से स्नान करे। इस अवसर पर भद्रा (औषधि-

विशेष) के द्वारा पूजा बताई गई है। (३२)

श्रीवृक्ष के निर्यास का धूप, एव मधु और ओदन का नैवेद्य देकर पण्डित व्यक्ति 'शर्व को नमस्कार है, वे मेरे ऊपर प्रसन्न हों' यह कहते हुए रक्तशालि की दक्षिणा प्रदान करे। (३६)

पौष मास में घृत का स्नान तथा सुन्दर तगर पुष्पों द्वारा पूजा करे तदनन्तर महूए के वृक्ष की गोंद से धूप देकर मधु एवं शङ्कुली का नैवेद्य अर्पण करे तथा 'हे देवेश त्र्यम्बक ! आपको नमस्कार है' यह कहते हुए जगद्गुरु के प्रीणनार्थ सुद्ग (मृग) सहित दक्षिणा प्रदान करे। (४०-४१)

माघ मास में कुशोदक से स्नान तथा मृगमद (वस्तूरी) से अर्चन करे। तदनन्तर कदम्ब वृक्ष के निर्यास का धूप देकर तिल एवं ओदन का नैवेद्य अर्पण करने के उपरान्त 'महादेव उमापति मेरे ऊपर प्रसन्न हों' यह कहते हुए स्वर्ण के साथ दूध एवं भात की दक्षिणा प्रदान करे। (४२-४३)

इस प्रकार छ' मासों के अनन्तर (प्रथम) पारण का विधान कहा गया। पारण के अन्त में त्रिनेत्र महादेव का क्रम से स्नान कार्य सम्पन्न कराये। (४४)

गोरोचनायाः सहिता गुडेन

दयं समालम्ब्य च पूजयेत् ।

श्रीवस्त्र दीनोऽस्मि भवन्तमीश

मच्छोकनाशं प्रकुरुष्व योग्यम् ॥ ४५

ततस्तु फाल्गुने मासि कृष्णाष्टम्यां यतत्र ।

उपवासं सप्तदशं कर्तव्यं द्विजसत्तम ॥ ४६

द्वितीयेऽह्नि ततः स्नानं पञ्चगव्येन कारयेत् ।

पूजयेत्तु न्दुसुमधुपयेत् चन्दनं त्वपि ॥ ४७

नैवेद्यं सघृतं दद्यात् ताम्रपात्रे गुडोदनम् ।

दक्षिणां च द्विजातिभ्यो नैवेद्यसहितां मुने ।

यासोयुगं प्रीणयेच्च स्त्रमुच्चार्य नामतः ॥ ४८

चैत्रे चोदुम्बरफलैः स्नानं मन्दारकार्चनम् ।

गुग्गुलुं महिषारख्यं च घृतार्कं धूपयेद् युधः ॥ ४९

समोदकं तथा सर्पिः प्रीणनं विनिवेदयेत् ।

दक्षिणा च सनैवेद्यं मृगाजिनमुदाहृतम् ॥ ५०

नाट्येश्वर नमस्तेऽस्तु इदमुच्चार्य नारद ।

प्रीणनं देवनाथाय कुर्याच्छुद्धासमन्वितः ॥ ५१

वैशाखे स्नानसुदितं सुगन्धकुसुमाम्भसा ।

पूजनं शंकरस्योक्तं चूतमङ्गरिभिर्विभो ॥ ५२

धूपं सर्जाज्ययुक्तं च नैवेद्यं सफलं घृतम् ।

नामजप्यमपीशस्य कालमेति विपश्चिता ॥ ५३

जलकुम्भान् सनैवेद्यान् ब्राह्मणाय निवेदयेत् ।

सोपधीतान् सहात्राद्यास्तच्चित्तैस्तत्परायणैः ॥ ५४

ज्येष्ठे स्नान चामलकैः पूजाऽर्ककुसुमैस्तथा ।

धूपयेच्चित्रनेत्रं च आयत्या पुष्टिकारकम् ॥ ५५

सक्त्रं सघृतान् देवे धन्वास्तान् विनिवेदयेत् ।

उपानयुगलं छत्रं दानं दद्याच्च भक्तिमान् ॥ ५६

नमस्ते भगनेत्रन्न पूष्णो दशननाशन ।

इदमुच्चारयेद्भक्त्या प्रीणनाय जगत्पतेः ॥ ५७

आषाढे स्नानसुदितं श्रीफलैरर्चनं तथा ।

धत्तूरकुसुमं, शुक्लैर्धूपयेत् सिन्धुकं तथा ॥ ५८

नैवेद्याः सघृता, पूषा, दक्षिणा सघृता यवाः ।

गोरोचन के सहित गुड द्वारा महादेव की प्रतिमा का अनुलेपन कर उसकी पूजा करे तथा इस प्रकार प्रार्थना करे "हे ईश ! मैं दीन हूँ तथा आपकी शरण में हूँ, आप मेरे ऊपर प्रसन्न हों तथा मेरे शोक का भलीभाँति नाश करें ।" (४५)

तदनन्तर हे ब्रह्मधारी द्विजश्रेष्ठ । फाल्गुन मास की कृष्णाष्टमी को उपवास करे । दूसरे दिन पञ्चगव्य से स्नान कराये तथा कुन्द पुष्प द्वारा अर्चन कर चन्दन का धूप और ताम्रपात्र में घृतसहित गुडोदन का नैवेद्य प्रदान करे । तदुपरान्त 'स्त्र' शब्द का उच्चारण कर ब्राह्मणों को नैवेद्य के सहित दक्षिणा तथा दो वस्त्र प्रदान कर महादेव को प्रसन्न करे । (४६-४८)

चैत्र मास में गुलर के फल के जल से स्नान कराये और मन्दार के फूलों से पूजा करे । तदनन्तर बुद्धिमान् व्यक्ति घृतमिश्रित महिष नामक गुग्गुलु से धूप देकर मोदक सहित घृत प्रसन्नवाद्य अर्पण करे एवं 'नाट्येश्वर को नमस्कार है' यह कहते हुए नैवेद्य सहित युगचर्म की दक्षिणा प्रदान करे । इस प्रकार महायुक्त होकर देवनाथ को प्रसन्न करे । (४९-५१)

हे विभो ! वैशाख मास में सुगन्धित पुष्पों के जल से स्नान तथा आम्रमङ्गरियों से शंकर के पूजन का विधान है । इस समय घृतमिश्रित सज्ज युक्त के नियाँस का धूप तथा फल सहित घृत का नैवेद्य अर्पण करे । बुद्धिमान् व्यक्ति को श्री शिव के 'फाल्गुन' नाम का जप करना चाहिये, तथा तमना एव तत्परायण होकर ब्राह्मण को नैवेद्य, उपवीत एवं अन्नादि के साथ जलकुम्भ की दक्षिणा प्रदान करे । (५२-५४)

ज्येष्ठ मास में आमलक के जल से स्नान कराये तथा अर्क (मन्दार) के पुष्पों से पूजन करे । तदनन्तर भविष्य में पुष्टिकारक जिनेत्र को धूपदान करे एवं घृत तथा दधिमिश्रित सत्तू का नैवेद्य अर्पित करे । जगत्पति के प्रीत्यर्थ 'हे भगनत्रघ्न एव पूषा के दाँत के नाशक आप को नमस्कार है' यह कहकर भक्तिपूर्वक छत्र एवं उपानयुगल दक्षिणा में प्रदान करे । (५५-५७)

आषाढ मास में श्रीफलसयुक्त जल से स्नान कराये तथा धत्तूर के श्वेत पुष्पों से अर्चन करे । तदनन्तर सिन्धुक का धूप देकर घृत सहित पूष का नैवेद्य अर्पण करे एवं 'हे दक्षयज्ञघ्न आप को नमस्कार है', इसे उच्च स्वर से

नमस्ते दक्षयज्ञघ्न इदमुच्चैर्दीरयेत् ॥ ५९
 श्रावणे मृगभोज्येन स्नानं कृत्वाऽर्चयेद्भूरम् ।
 श्रीवृक्षपत्रैः सफलैर्धूपं दद्यात् तथाऽगुरुम् ॥ ६०
 नैवेद्यं सघृतं दद्यात् दधि पूषान् समोदकान् ।
 दध्योदनं सकुसरं भाषधानाः सशङ्कुलीः ॥ ६१
 दक्षिणां श्वेतवृषभं घेयुं च कपिलां शुभाम् ।
 कनकं रक्तवसनं प्रदद्याद् ब्राह्मणाय हि ।

गङ्गाधरेति जगन्व्यं नाम शंभोश्च पण्डितैः ॥ ६२
 अमीभिः षड्भिरपरिमातैः पारणमुत्तमम् ।
 एवं संवत्सरं पूर्णं संपूज्य वृषभध्वजम् ।
 अक्षयान् लभते कामान् महेश्वरवचो यथा ॥ ६३
 इदमुक्तं व्रतं पुण्यं सर्वाक्षयकरं शुभम् ।
 स्वयं रुद्रेण देवर्षे तत्तथा न तदन्यथा ॥ ६४

इति श्रीवामनपुराणे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

१८

पुलस्त्य उवाच ।

मासि चाश्वयुजे ब्रह्मन् यदा पत्रं जगत्पतेः ।
 नाभ्या निर्याति हि तदा देवेष्वेतान्यथोऽभवन् ॥ १
 कन्दर्पस्य कराम्रे तु कदम्बश्चारुदर्शनः ।
 तेन तस्य परा प्रीतिः कदम्बेन विवर्द्धते ॥ २

यज्ञाणामधिपस्यापि मणिमद्रस्य नारद ।
 वटवृक्षः समभवत् तस्मिन्स्तस्य रतिः सदा ॥ ३
 महेश्वरस्य हृदये धत्तूरविटपः शुभः ।
 सजातः स च शर्वस्य रतिकृत् तस्य नित्यशः ॥ ४
 ब्रह्मणो मध्यतो देहाज्ञातो मरकतप्रभः ।

बहते ह्यप घृतयुक्तं जी की दक्षिणा प्रदान करे । (५८-५९)
 श्रावण मास में मृगभोज्य (?) के जल से स्नान करा कर
 फलयुक्त विल्वपत्रों से महादेव की पूजा करे तथा अगुरु
 का धूप दे । तदनन्तर घृतयुक्त पूष, मोदक, दधि, दध्योदन,
 उद्दद की दाल, मुना हुआ जी एवं कचौड़ी का नैवेद्य अर्पण
 करने के उपरान्त बुद्धिमान् व्यक्ति ब्राह्मण को श्वेतवृषभ, शुभ
 कपिला गौ, स्वर्ण एवं रक्तवस्त्र की दक्षिणा दे एवं शंभु के
 'गङ्गाधर' इस नाम का जप करे । (६०-६२)

इन दूसरे छ. मासों के अनन्तर द्वितीय पारण होता
 है । इस प्रकार एक वर्ष तक वृषभध्वज का पूजन कर महेश्वर
 के वचनानुसार मनुष्य अक्षय कामनाओं को प्राप्त
 करता है । (६३)

हे देवर्षे ! यह कल्याणकारी पवित्र एवं सर्वाक्षयकर व्रत
 स्वयं रुद्र ने कहा है । यह जैसा कहा है वैसा ही है ।
 यह कभी अन्यथा नहीं हो सकता । (६४)

श्रीवामनपुराण में सप्तदशोऽध्याय समाप्त ॥१७॥

१८

पुलस्त्य ने कहा—हे ब्रह्मन् ! आश्विन मास में जब
 जगत्पति (विष्णु) की नाभि से कमल उत्पन्न हुआ उसी
 समय अन्य देवों से ये वस्तुएँ उत्पन्न हुई— (१)
 कामदेव के कराम में सुन्दर कदम्ब उत्पन्न हुआ । इसी-
 लिये कदम्ब से उनकी परमप्रीति बढ़ती है । (२)

हे नारद ! यक्षों के राजा मणिमद्र से वटवृक्ष उत्पन्न
 हुआ । इसी से उत्तम सदा वसुका प्रेम है । (३)
 महेश्वर के हृदय पर सुन्दर धत्तूर वृक्ष उत्पन्न हुआ ।
 अतएव यह महादेव को सदा प्रिय है । (४)
 ब्रह्मा के मध्यगरीर से मरकतमणि के समान स्वर्ण

सु दरः कण्टकी श्रेयानभवद्विश्वकर्मणः ॥ ५
गिरिजायाः करतले कुन्दगुल्मस्त्यजायत ।
गणाधिपस्य कुम्भस्थो राजते सिन्धुवारकः ॥ ६
यमस्य दक्षिणे पार्श्वे पालाशो दक्षिणोत्तरे ।
कृष्णोदुम्बरको रुद्राजातः क्षोभकरो वृषः ॥ ७
स्कन्दस्य वन्धुजीवस्तु रवेरदवत्य एव च ।
कात्यायन्याः शमीजाता विल्वो लक्ष्म्याः कोऽभवत् ॥ ८
नागानां पतये ब्रह्मच्छरस्तम्बो व्यजायत ।
वासुकेर्विस्तृते पुच्छे वृष्टे दूर्वा सितासिता ॥ ९
साध्यानां हृदये जातो वृक्षो हरितचन्दनः ।
एवं जातेषु सर्वेषु तेन तत्र रतिर्भवेत् ॥ १०
तत्र रम्ये शुभे काले या शुक्लैकादशी भवेत् ।
तस्यां संपूजयेद् विष्णुं तेन खण्डोऽस्य पूर्यते ॥ ११
पुण्यैः पत्रैः फलैर्वापि गन्धवर्णरसान्वितैः ।

ओषधीभिश्च मुख्याभिर्यावत्स्याच्छरदागमः ॥ १२
घृतं तिला श्रीह्रियवा हिरण्यकनकादि यत् ।
मणिमुक्ताप्रवालानि वस्त्राणि विविधानि च ॥ १३
रसानि स्वादुकटुधम्लकषायलवणानि च ।
तिक्तानि च निवेद्यानि तान्यखण्डानि यानि हि ॥ १४
तत्पूजार्थं प्रदातव्यं केशवाय महात्मने ।
यदा संवत्सरं पूर्णमखण्डं भवते गृहे ॥ १५
कृतोपवासो देवर्षे द्वितीयेऽहनि संयतः ।
स्नानेन तेन स्नायीत येनाखण्डं हि वत्सरम् ॥ १६
सिद्धार्थकैस्त्रिलैर्वापि तेनैवोद्धर्तनं स्मृतम् ।
हविषा पद्मनाभस्य स्नानमेव समाचरेत् ।
होमे तदेव गदितं दाने शक्तिर्निजा द्विज ॥ १७
पूजयेताथ कुसुमैः पादादारम्य केशवम् ।
भूपयेद् विविधं धूपं येन स्याद् वत्सरं परम् ॥ १८

वी उत्पत्ति हुई और विश्वकर्मा के शरीर से सुन्दर कंटकी वृक्ष उत्पन्न हुआ । (५)

गिरिनिन्दनी के करतल पर कुन्द-गुल्म पैदा हुआ तथा गणपति के कुम्भ देश में सिन्धुवारक वृक्ष विराजमान है । (६)

यमराज के दाहिने पार्श्व में पालाश और दक्षिणोत्तर (पाम) पार्श्व में कृष्ण उदुम्बर का वृक्ष उत्पन्न हुआ । रुद्र से उद्देजक वृष (वासक-अडुसा) की उत्पत्ति हुई । (७)

स्कन्द से वन्धुजीव, सूर्य से अश्वत्थ, कात्यायनी से शमी और लक्ष्मी के हाथ में बेल का वृक्ष पैदा हुआ । (८)

हे ब्रह्मन् ! जालों के पत्ति (शेष) से शरत्तन्त्र (सरपत) उत्पन्न हुआ तथा वासुकि के विस्तृत पुच्छ और पीठ पर भेल एवं कृष्ण दूर्वा उत्पन्न हुई । (९)

साध्यों के हृदय में हरितचन्दन वृक्ष उत्पन्न हुआ । इस प्रकार उत्पन्न होने से उन सभी वृक्षों में तत्तद् देवों की अनुरक्ति होती है । (१०)

उस रमणीय शुभ काल में जो शुक्ल एकादशी तिथि होती है उसमें विष्णु की पूजा करे । इससे इसकी न्यूनता

दूर हो जाती है । (११)

शरत् काल के आगमन तक गन्ध, वर्ण और रसयुक्त पत्र, पुष्प एवं फलों तथा मुख्य औषधियों से विष्णु की पूजा करे । (१२)

घृत, तिल, त्रीहि, जी, रजत, सुवर्ण, मणि, मुक्ता, प्रवाल, नाना प्रकार के वस्त्र, स्वादु, कटु, अम्ल, कषाय, लवण और तिक्त रस आदि वस्तुओं को असङ्घटित रूप से महात्मा केशव की पूजा के लिये अर्पित करे । इस प्रकार पूजन करने से वर्ष के पूर्ण होने पर गृह में पूर्णता होती है । (१३-१४)

हे देवर्षे ! उपवास कर दूसरे दिन संयत होकर इस प्रकार स्नान करे जिससे वर्ष असङ्घटित रहे । (१६)

सफेद सरसों वा तिल के द्वारा उबटन का विधान है । पद्मनाभ को घृत से स्नान कपाना चाहिये । हे द्विज ! होम में भी वही (अर्थात् घृत) विहित है और दान में यथाशक्ति वा विधान है । (१७)

तदनन्तर पुष्पों के द्वारा चरण से आरम्भ कर केशव की पूजा करे एवं नाना प्रकार के धूपों से उन्हें धूपित करे जिससे सम्बत्सर पूर्ण हो । (१८)

हिरण्यरत्नवासोभिः पूजयेत् जगद् गुरुम् ।
 रामखण्डवचोष्याणि हविष्याणि निवेदयेत् ॥ १९
 ततः संपूज्य देवेशं पद्मनाभं जगद् गुरुम् ।
 विज्ञापयेन्मुनिश्रेष्ठ मन्त्रेणानेन सुव्रत ॥ २०
 नमोऽस्तु ते पद्मनाभ पद्माध्व महाधुते ।
 धर्मार्थकाममोक्षाणि त्वखण्डानि भवन्तु मे ॥ २१
 विकासिपन्नपत्राक्ष यथाऽखण्डोसि सर्वतः ।
 तेन सत्येन धर्मोद्या अखण्डाः सन्तु केशव ॥ २२
 एवं सवत्सरं पूर्णं सोपवासो जितेन्द्रियः ।
 अखण्ड पारयेद् ब्रह्मन् व्रत वै सर्ववस्तुषु ॥ २३
 अस्मिन्धीर्षं व्रते व्यक्तं परितुष्यन्ति देवताः ।
 धर्मार्थकाममोक्षाद्यास्तत्त्वक्षयाः संभवन्ति हि ॥ २४
 एतानि ते मयोक्तानि व्रतान्युक्तानि कामिभिः ।
 श्रवक्ष्याम्ययुना त्वेतद्वैष्णवं पञ्जरं शुभम् ॥ २५

सुवर्णों, रत्नों और वस्त्रों द्वारा जगद्गुरु का पूजन करे
 तथा राम-खण्डवच (मिश्रात्र विशेष), चोष्य एव हविष्यों का
 का नैवेद्य अर्पित करे । (१६)

हे सुव्रत । हे मुनिश्रेष्ठ । देवेश जगद्गुरु पद्मनाभ की
 की पूजा करने के उपरान्त इस मन्त्र से प्रार्थना करे—(२०)

हे पद्मनाभ । हे लक्ष्मी के पति । हे महायुतिमान् ।
 आपको प्रणाम है । हमारे धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष
 अखण्ड हों । (२१)

हे विरसितकमलपत्र के समान नेत्र धारि । आप जिस
 प्रकार सर्वत्र अखण्ड हैं वसी सत्य के प्रभाव से मेरे
 धर्मोदिक भी अखण्ड रहें । (२२)

हे ब्रह्मन् । इस प्रकार सम्पूर्ण वर्ष तक उपवासी और
 जितेन्द्रिय रहते हुए सभी वस्तुओं के द्वारा व्रत को अखण्ड
 रूप से पारित करे । (२३)

यद् व्रत करने पर निरिचत रूप से देवता प्रसन्न होते
 हैं एव धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष अक्षय होते हैं । (२४)

कामियों द्वारा कथित इन व्रतों का मैंने तुमसे वर्णन
 किया । अब मैं कल्याणकारी इस वैष्णवपञ्जर का वर्णन
 करूँगा । (२५)

हे गोविन्द ! आपको नमस्कार है । हे विष्णो ! आप

नमो नमस्ते गोविन्द चक्रं गृह्य सुदर्शनम् ।
 प्राच्यां रक्षस्व मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः ॥ २६
 गदां कौमोदकीं गृह्य पद्मनाभामितयते ।
 चाम्यां रक्षस्व मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः ॥ २७
 हलमादाय सौनन्दं नमस्ते पुरुषोत्तम ।
 प्रतीच्यां रक्ष मे विष्णो भवन्तं शरणं गतः ॥ २८
 मूसलं शातनं गृह्य पुण्डरीकाक्ष रक्ष माम् ।
 उचरस्यां जगन्नाथ भवन्तं शरणं गतः ॥ २९
 शार्ङ्गमादाय च धनु रस्त्रं नारायणं हरे ।
 नमस्ते रक्ष रक्षोन्न पेशान्यां शरणं गतः ॥ ३०
 पाञ्चजन्यं महाशङ्खमन्तर्वीष्यं च पङ्कजम् ।
 प्रगृह्य रक्ष मां विष्णो आषेय्यां यज्ञसूकर ॥ ३१
 चर्म सूर्यशतं गृह्य खड्गं चन्द्रमसं तथा ।
 नैर्ऋत्यां मां च रक्षस्व दिव्यमूर्ते नृकेसरिन् ॥ ३२

सुदर्शनचक्र लेकर पूर्व दिशा में मेरी रक्षा करें । मैं आपकी
 शरण में हूँ । (२६)

हे अमितयुति पद्मनाभ । कौमोदकी गदा धारण कर
 दक्षिण दिशा में मेरी रक्षा करें । हे विष्णो ! मैं आपकी
 शरण में आया हूँ । (२७)

हे पुरुषोत्तम । आपको नमस्कार है । सौनन्द नामक
 हल लेकर आप पदिचम दिशा में मेरी रक्षा करें । हे
 विष्णो ! मैं आपकी शरण आया हूँ । (२८)

हे पुण्डरीकाक्ष । विनाशगरी मूसल लेकर आप उत्तर
 दिशा में मेरी रक्षा करें । हे जगन्नाथ ! मैं आपकी शरण आया
 हूँ । (२९)

हे हरि ! शार्ङ्गधनुष एव नारायणास्त्र लेकर ईशान
 वीण में मेरी रक्षा करें । हे रक्षोघ्न । आपको नमस्कार है ।
 मैं आपकी शरण में आया हूँ । (३०)

हे यज्ञसूकर विष्णु ! पाञ्चजन्य नामक महाशत्रु तथा
 अन्तर्वीष्य पङ्कज को ग्रहण कर अग्निवीण में मेरी रक्षा
 करें । (३१)

हे दिव्यमूर्तिनरकेशरी ! सूर्यशत नामक डाल तथा चन्द्र-
 मस नामक तलवार लेकर नैर्ऋत्य वीण में मेरी रक्षा
 करें । (३२)

वैजयन्तीं प्रगृह्य त्वं श्रीवत्सं कण्ठभूषणम् ।
 वायव्यां रक्ष मां देव अधशीर्षं नमोऽस्तु ते ॥ ३३
 वैनतेयं समारुह्य अन्तरिक्षे जनार्दन ।
 मां त्वं रक्षार्जित सदा नमस्ते त्वपराजित ॥ ३४
 विशालाक्षं समारुह्य रक्ष मां त्वं रसातले ।
 अक्षुमार नमस्तुभ्यं महामोह नमोऽस्तु ते ॥ ३५
 करशीर्षाद्भिद्रपर्वेषु तथाऽष्टनाहुपञ्जरम् ।
 कृत्वा रक्षस्व मां देव नमस्ते पुरुषोत्तम ॥ ३६
 एतदुक्तं भगवता वैष्णव्य पञ्जरं महत् ।
 पुरा रक्षार्थमीशेन क्रात्यायन्या द्विजोत्तम ॥ ३७
 नाशयामास सा यत्र दानवं महिषासुरम् ।
 नमरं रक्तबीजं च तथाऽन्यान् सुरकण्ठकान् ॥ ३८
 नारद उवाच ।
 काऽसौ कात्यायनी नाम या जज्ञे महिषासुरम् ।
 नमरं रक्तबीजं च तथाऽन्यान् सुरकण्ठकान् ॥ ३९

कथासौ महिषो नाम कुले जातश्च कस्य सः ।
 कथासौ रक्तबीजाख्यो नमरः कस्य चात्मजः ।
 एतद्विस्वरतस्तात यथायद् वक्तुमर्हसि ॥ ४०
 पुलस्त्य उवाच ।
 श्रूयतां संप्रवक्ष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् ।
 सर्वदा वरदा दुर्गा येय कात्यायनी मुने ॥ ४१
 पुराऽसुरवरो रौद्रो जगत्क्षोभकरासुरौ ।
 रम्भश्चैव करम्भश्च द्वागन्तां सुमहानलौ ॥ ४२
 तावपुत्रौ च देवर्षे पुत्रार्थं तेतपस्तपः ।
 बहून् वर्षगणान् दैत्यौ स्थितौ पञ्चनदे जले ॥ ४३
 तत्रैको जलमध्यस्थो द्वितीयोऽप्यग्निपंचमी ।
 करम्भश्चैव रम्भश्च यश्च मालवटं प्रति ॥ ४४
 एकं निमग्नं सलिले ग्राह्येण वासनः ।
 चरणाभ्या समादाय निजघान यथेच्छया ॥ ४५
 ततो भ्रातरि नटे च रम्भः कोपपरिच्छुतः ।

हे अधशीर्ष देव ! वैजयन्तीमाला तथा श्रीकंस नामक कण्ठभूषण धारण कर वायव्य कोण मे मेरी रक्षा करें । आप को नमस्कार है । (३३)
 हे अजित जनार्दन ! वैनतेय पर आरुह्य हो कर आप अन्तरिक्ष मे मेरी रक्षा करें । हे अपराजित ! आपरो सदा नमस्कार है । (३४)
 हे अक्षुमार (महाकन्धुप) ! विशालाक्ष पर आरुह्य होकर आप रसातल मे मेरी रक्षा करें । हे महामोह ! आपको नमस्कार है । (३५)
 हे पुरुषोत्तम ! हाथ, शिर एव जोड़ों आदि मे अष्ट बाहु पञ्जर करके आप मेरी रक्षा करें । हे देव ! आप को नमस्कार है । (३६)
 हे द्विजोत्तम ! प्राचीन काल में भगवान् ईश (शंकर) ने कात्यायनी को रक्षा के हेतु इस महान् वैष्णव पञ्जर को उस स्थान पर कहा था जहाँ उन्होंने महिषासुर, नमर, रक्तबीज एव अन्यान्य देव-शत्रुओं का नाश किया था । (३७-३८)
 नारद ने पूछा—“महिषासुर, नमर, रक्तबीज तथा अन्यान्य सुरकण्ठकों का वध करने वाली ये कात्यायनी कौन हैं ?” (३९)

“हे तात ! यह महिष कौन है ? तथा वह किसके कुल में उत्पन्न हुआ था ? यह रक्तबीज कौन है ? तथा नमर किसका पुत्र है ? आप इसका यथावत् विस्तारपूर्वक वर्णन करें ।” (४०)
 पुलस्त्य ने कहा—“मुनिधे मैं उस पापनाशक कथा को कहता हूँ । हे मुने ! सर्वदा वरदा दुर्गा ही ये कात्यायनी हैं ।” (४१)
 प्राचीन काल में रम्भ और करम्भ नामक भयकर, जगत्क्षोभकारी, महाबलवान् दो श्रेष्ठ असुर थे । (४२)
 हे देवर्षे ! पुत्रहीन उन दोनों दैत्यों ने पञ्चनद के जल में रहकर बहुत वर्षों तक पुत्रार्थ तप किया । (४३)
 मालवट यक्ष के प्रति पत्रम करम्भ और रम्भ इन दोनों मे एक जल में स्थित होकर तथा दूसरा पञ्चान्निक के मध्य बैठ कर तप कर रहा था । (४४)
 ग्राह्यरूपधारी इन्द्र जल में निमग्न एक को पैर पकड़ कर तीक्ष्ण ले गया और इच्छानुसार मार डाला । (४५)
 तदनन्तर भाई के नष्ट हो जाने पर क्रोधयुक्त महा बलशाली रम्भ ने अपने शिर को काट कर अग्नि में आहुति करने की इच्छा की । (४६)
 तदुपरान्त पेश प्रहण कर और हाथ में सूर्य सदृश

बहो स्वशीर्षं संक्षिद्य होतुमैच्छन् महाबलः ॥ ४६
 ततः प्रगृह्य केनेषु खड्गं च रविप्रनमम् ।
 छेत्तुकामो निजं शीर्षं वह्निना प्रतिषेधितः ॥ ४७
 उक्तं मा दैत्यवर नाशयात्मानमात्मना ।
 दुस्तरा परवष्याऽपि स्ववष्याऽप्यतिदुस्तरा ॥ ४८
 यच्च प्रार्थयसे वीर तद्दामि यथेप्सितम् ।
 मा त्रियस्व मृतस्येह नष्टा भवति वै कथा ॥ ४९
 ततोऽन्नवीडु वचो रम्भो वरं चेन्मे ददासि हि ।
 त्रैलोक्यविजयी पुत्रः स्यान्मे त्वत्तेजसाऽधिकः ॥ ५०
 अजेयो दैवतैः सर्वैः पुभिर्दैत्यैश्च पावक ।
 महाबलो वायुरिव कामरूपी कृतास्त्रविद् ॥ ५१
 तं प्रोवाच कविर्ब्रह्मन् वाटमेवं भविष्यति ।
 यस्यां चित्तं समालम्बि करिष्यसि ततः सुतः ॥ ५२
 इत्येवमुक्तो देवेन वह्निना दानवो ययौ ।
 द्रष्टुं मालवटं यक्षं यक्षैश्च परिवारितम् ॥ ५३

प्रभायुक्त खड्ग धारण कर अपना शिर काटने की इच्छा
 वाले (रम्भ) को अग्नि ने रोका और कहा "हे दैत्यवर !
 तुम स्वयं अपना नाश मत करो । परवध भी दुस्तर होता
 है, आत्महत्या तो अतिदुस्तर है । (४७-४८)

हे वीर ! तुम जो माँगो वह तुम्हारी इच्छा अनुसार मैं
 सुन्दे दूँगा । मरो मत । इस संसार में मृत व्यक्त की कथा
 नष्ट हो जाती है । (४९)

तदनन्तर रम्भ ने यह वचन कहा—'यदि आप वर देते
 हैं तो (यह दीजिये कि) मुझे आप से भी अधिक तेजस्वी
 त्रैलोक्य-विजयी पुत्र उत्पन्न हो । (५०)

हे पावक ! समस्त देवताओं तथा मानवों और दैत्यों से
 भी वह अजेय हो । वह थायु के समान महाबलवान् तथा
 कामरूपी एव सर्वोत्तरेवेत्ता हो ।' (५१)

हे ब्रह्मन् ! अग्नि ने उससे कहा—'अच्छा ऐसा ही
 होगा । जिस स्त्री में तुम्हारा चित्त लग जायेगा उसी से
 तुम पुत्र उत्पन्न करोगे ।' (५२)

अग्निदेव के ऐसा कहने पर रम्भ यशों से परिचेष्टित
 मालवट यक्ष का दर्शन करने गया । (५३)

यहाँ उन यशों का पद्म नामक निधि एकाम मन से

तेषां पद्मनिधित्तर वसते नान्यचेतनः ।
 गजाश्च महिपाथाश्च गावोऽजाविपरिप्लुताः ॥ ५४
 तान् दृष्ट्वैव तदा चक्रे भावं दानवपार्थिवः ।
 महिष्यां रूपयुक्तायां त्रिहायण्यां तपोधन ॥ ५५
 सा समागाच्च दैत्येन्द्रं कामयन्ती तरस्विनी ।
 स चापि गमन चक्रे भवितव्यप्रचोदितः ॥ ५६
 तस्यां समभवद् गर्भस्तां प्रगृह्णाव दानवः ।
 पातालं प्रविशेश्च ततः स्वभवनं गतः ॥ ५७
 दृष्टश्च दानवैः सर्वैः परित्यक्तश्च वन्धुभिः ।
 अकार्यकारकेत्येवं भूयो मालवटं गतः ॥ ५८
 माऽपि तेनैव पतिना महिषी चारुदर्शना ।
 समं जगाम तत् पुष्यं यक्षमण्डलमुत्तमम् ॥ ५९
 ततस्तु वसतस्तस्य श्यामा मा सुपुत्रे मुने ।
 अजीजनत् सुतं शुभ्रं महिषं कामरूपिणम् ॥ ६०
 एतानुसृततां जातां महिषोऽन्यो ददर्श ह ।

निवास करता था । बकरे और भेड़ों से भरे हुये अश्व,
 महिष तथा हाथी और गौ उस स्थान पर थे । (५४)

हे तपोधन ! दानवराज ने उन्हें देखकर तीन बयों वाली
 रूपवती एक महिषी में प्रेम प्रकट किया (अर्थात् आसक्त
 हुआ) । (५५)

कामपरायण हाकर वह महिषी शीघ्र दैत्येन्द्र के समीप
 आ गयी । भवितव्यता से प्रेरित उसने (रम्भ ने) भी उसके
 (महिषी के) साथ संगम किया । (५६)

उसे गर्भ हो गया । तदनन्तर उस महिषी को लेकर
 दानव पाताल में प्रविष्ट हुआ और पर चला गया । (५७)

उसके दानव-बन्धुओं ने उसे देख एवं 'अकार्यकारक'
 जानकर उसका त्याग कर दिया । (तदनन्तर) वह पुन माल-
 वट के निरुत्त गया । (५८)

वह सुन्दरी महिषी भी उसी पति के साथ उस पवित्र
 और उत्तम यक्ष-मण्डल में गई । (५९)

हे मुने ! वहाँ उसके निवास करते समय उस श्यामा
 (महिषी) ने प्रसन्न किया । उसने एक शुभ तथा इच्छानुसार
 रूप धारण करने वाली महिषपुत्र को उत्पन्न किया । (६०)

उसके शत्रुमती होने पर किसी दूसरे महिष ने उसे

सा चाम्यगाद् दितिवरं रक्षन्ती शीलमात्मनः ॥ ६१
 तदुन्नामितनासं च महिषं वीक्ष्य दानवः ।
 खड्गं निष्कृष्य तरसा महिषं समुपाद्रवत् ॥ ६२
 तेनापि दैत्यस्तीक्ष्णाम्यां शृङ्गाभ्यां हृदि ताडितः ।
 निर्भिन्नहृदयो भूयो निपपात ममार च ॥ ६३
 मृतो भर्तारि सा श्यामा यज्ञाणां शरणं गता ।
 रक्षिता गुह्यकैः साध्वी निवार्य महिष ततः ॥ ६४
 ततो निवारितो यक्षैर्हयारिर्मदनातुरः ।
 निपपात सरो दिव्यं ततो दैत्योऽभवन्मृतः ॥ ६५
 नमरो नाम विरयातो महाबलपराक्रमः ।
 यक्षानाश्रित्य तस्थौ स कालयन् श्वापदान् मृते ॥ ६६
 स च दैत्येश्वरो यक्षैर्मालवटपुरस्सौः ।
 चितामारोपितः सा च श्यामा तं चारुहत् पतिम् ॥ ६७
 ततोऽग्निमध्यादुत्तस्थौ पुत्रो रौद्रदर्शनः ।

व्यद्रावयत् स तान् यक्षान् खड्गपाणिभयंकरः ॥ ६८
 ततो हतास्तु महिषाः सर्वे एव महात्मना ।
 ऋते संरक्षितारं हि महिषं रम्भनन्दनम् ॥ ६९
 स नामतः स्मृतो दैत्यो रक्तबीजो महामृते ।
 योऽजयत् सर्वतो देवान् सेन्द्ररुद्रार्कमारुतान् ॥ ७०
 एवं प्रभावा दनुपुगवास्ते
 तेजोऽधिकस्तत्र बभौ ह्यारिः ।
 राज्येऽभिपिक्थ महाऽसुरेन्द्रै-
 र्विनिर्जितैः शम्भरतारकाद्यैः ॥ ७१
 अशकनुवद्भिः सहितैश्च देवैः
 सलोकपालैः सहृताशमास्कृतैः ।
 स्थानानि त्यक्तानि शशीन्द्रभास्कृतै-
 र्धर्मश्च दूरे प्रतियोजितश्च ॥ ७२

इति श्रीवामनपुराणे अष्टादशोऽध्याय ॥१८॥

देखा । वह अपने शील का रक्षण करती हुई दैत्यश्रेष्ठ के
 निकट गई । (६१)
 नाक को ऊपर उठाये उस महिष को देख कर दानव
 ने खड्ग निकाल कर महिष पर वेग से आक्रमण
 किया । (६२)
 उस (महिष) ने भी तीक्ष्ण शृङ्गों से दैत्य के हृदय में
 प्रहार किया । वह दैत्य हृदय फट जाने से भूमि पर गिर
 पड़ा और मर गया । (६३)
 पति के मर जाने पर वह महिषी यक्षों की शरण में
 गई । तदनन्तर गुह्यकों ने महिष को हटा कर साध्वी महिषी
 की रक्षा की । (६४)
 यक्षों द्वारा निवारित कामार्त ह्यारि (महिष) एक
 दिव्य सरोवर में गिर पड़ा । तदुपरान्त वह मर कर एक
 दैत्य हो गया । (६५)
 हे मुने ! वन्य पशुओं को मारते हुए यक्षों के आश्रय
 में रहने वाला महाबल-पराक्रम युक्त वह दैत्य नमर नाम से
 विख्यात हुआ । (६६)
 मालवट आदि यक्षों ने उस दैत्येश्वर को चिता पर

रखा । वह श्यामा भी पति के साथ (चिता पर) आरूढ़
 हो गई । (६७)
 तदनन्तर अग्नि के मध्य से हाथ में खड्ग धारण किये
 रौद्रदर्शन एव भयंकर पुरुष प्रकट हुआ । उसने सभी यक्षों
 को भगा दिया । (६८)
 तदुपरान्त उस बलवान् ने संरक्षक रम्भनन्दन महिष
 को छोड़कर सारे महिषों को मार डाला । (६९)
 हे महामृते ! वह दैत्य रक्तबीज नाम से विख्यात
 हुआ । उसने इन्द्र, रुद्र, सूर्य एव मरुनादि सहित देवों को
 सर्वत्र जीत लिया । (७०)
 वे सभी दैत्य इस प्रकार के प्रभाव से युक्त थे । किन्तु
 उनमें ह्यारि (महिष) अधिक तेजस्वी था । उसके
 द्वारा विजित शम्भर, तारकादि महान् असुरों ने उसका
 राज्याभिषेक किया । (७१)
 लोकपालों के सहित अग्नि, सूर्य आदि देवों के द्वारा
 एक साथ मिलकर जब वह जीता नहीं गया तो चन्द्र,
 इन्द्र एव सूर्य ने अपना अपना स्थान छोड़ दिया तथा धर्म
 भी दूर हटा दिया गया । (७२)

श्रीवामनपुराण में अष्टादश अध्याय समाप्त ॥१८॥

पुलस्त्य उवाच ।
 ततस्तु देवा महिषेण निर्विताः
 स्थानानि संत्यज्य सप्ताहनापुधाः ।
 वग्मूः पुरस्कृत्य पितामहं ते
 द्रष्टुं तदा चक्रधरं श्रियः पतिम् ॥ १
 गत्वा स्वपश्यंश्च मियः सुरोत्तमौ
 स्थितौ रामेन्द्रासनशंकरौ हि ।
 दृष्ट्वा प्रणम्यैव च सिद्धिसाधकौ
 न्यवेदयन्तन्महिषादिचेष्टितम् ॥ २
 प्रभोऽधिसुर्येन्द्रनिलाग्निवेधसां
 जलेशशक्रादिषु चाधिकारान् ।
 आक्रम्य नाकात् निराकृता वयं
 कृतावनिस्था महिषासुरेण ॥ ३
 एतद् भवन्तौ शरणागतानां
 श्रुत्वा वचो मृत हितं सुराणाम् ।
 न चेद् भ्रजामोऽथ रसातलं हि

संकल्पमाना युधि दानवेन ॥ ४
 इत्थं सुरारिः सह शंकरेण
 श्रुत्वा वचो विन्दुतचेतसस्तान् ।
 दृष्ट्वाऽथ चक्रे सहसैव कोपं
 कालाग्निकल्पो हरिरव्ययात्मा ॥ ५
 ततोऽनुकोपान्मधुसूदनस्य
 सशंकरस्यापि पितामहस्य ।
 तथैव शक्रादिषु दैवतेषु
 महर्षिं तेजो वदनाद् विनिःसृतम् ॥ ६
 तच्चैकतां पर्वतहटसन्निभं
 जगाम तेजः प्रवराश्रमे मूने ।
 कात्यायनस्याप्रतिमस्य तेन
 महर्षिणा तेज उपाकृतं च ॥ ७
 तेनपिसृष्टेन च तेजसा दृष्टं
 ज्वलत्प्रकाशासहस्रितुल्यम् ।
 तस्माद्य जाता तरलायताक्षी

१९

पुलस्त्य ने कहा—तदनन्तर महिष द्वारा पराजित देव गण अपने-अपने स्थानों को छोड़ कर अपने वाहनों और आयुधों के साथ पितामह को आगे कर चक्रधारी लक्ष्मी पति का दर्शन करने गए । (१)

वहाँ जाकर उन लोगों ने विष्णु पर्व शंकर इन दोनों मुपेतमों को एक साथ बैठे देखा । उन दोनों सिद्धि-साधकों को देखने के अनन्तर प्रणाम कर उन लोगों ने उनसे महिषादि के कर्म का वर्णन किया । (२)

(उन्होंने कहा—) हे प्रभो ! महिषासुर ने अधिनी-जुमाए, सूर्य, चन्द्र, वायु, अग्नि, मरुत, धरणी, इन्द्र आदि (१५) देवताओं के अधिपतियों पर आक्रमण कर स्वर्ग से निघाल दिया है तथा हम लोग दृष्टी के निपासी बना दिये गये हैं । (३)

हम शरणागत देवताओं की यह बात सुन कर आप

दोनों हमारे हित की यात्र कहे । अन्यथा दानव द्वारा युद्ध में मारे जा रहे हम लोग आज रसातल में पड़े जायेंगे । (४) शंकर के साथ सुरारि ने उनके इस प्रकार के वचन को सुना तथा उन दुःखी चित्तवालों को देखा । तदनन्तर कालाग्नि-सदृश अव्ययात्मा हरि ने सहस्राक्षेप किया । (५)

तदनन्तर मधुसूदन, शंकर, पितामह तथा शक्रादि देवताओं द्वारा श्रेष्ठ करने पर उनके मुरारि महान् तेज प्रकट हुआ । (६)

हे मुने ! अनुपम कात्यायन ऋषि के आश्रम में पर्वत शृंग वृक्ष यह तेज प्रकटित हो गया । उन महर्षि ने तेज का उपहार (दण्ड) किया । (७)

उन महर्षि द्वारा उत्पन्न किये गए तेज से आवृत्त यह तेज सरसों के सटप जाम्बूनमान हो गया । इससे

कात्यायनी योगविशुद्धदेहा ॥ ८
 माहेश्वराद् वक्त्रमथो बभूव
 नेत्रत्रयं पावकतेजसा च ।
 याम्येन केशा हरितेजसा च
 धृजास्तथाष्टादश संप्रजज्ञिरे ॥ ९
 सौम्येन युग्मं स्तनयोः सुसंहं
 मध्यं तथैन्द्रेण च तेजसाऽभवत् ।
 ऊरू च जह्वे च नितम्बसंप्रुते
 जाते जलेशस्य तु तेजसा हि ॥ १०
 पादौ च लोकप्रपितामहस्य
 पद्माभिकोशप्रतिमौ बभूवतुः ।
 दिवाकराणामपि तेजसाऽङ्गुलीः
 कराङ्गुलीश्च वसुतेजसैव ॥ ११
 प्रजापतीनां दशनाश्च नेजसा
 याक्षेण नासा श्रवणौ च माहृतात् ।
 साध्येन च भ्रुधुगलं सुकान्तिमत्
 कन्दर्पवीणासनसन्निभं बभौ ॥ १२
 तथर्षितेजोत्तममुत्तमं महन्-
 नाम्ना शृषिष्यामभवत् प्रसिद्धम् ।

योग से विशुद्ध देहवाली एवं चंचल तथा विनाल नेत्रों वाली कात्यायनी आविर्भूत हुई । (८)
 माहेश्वर के तेज से कात्यायनी का मुख, अग्नि के तेज से उनके तीन नेत्र, यम के तेज से केश तथा हरि के तेज से उनकी अष्टादह भुजाएँ उत्पन्न हुई । (९)
 चन्द्रमा के तेज से उनके सम्पृक्त सटे हुये स्तनयुगल, इन्द्र के तेज से मध्य भाग तथा वरुण के तेज से ऊरु, ऊर्ध्वार्ध एवं नितम्बों की उत्पत्ति हुई । (१०)
 लोकप्रपितामह पद्मा के तेज से उनके पद्मनोश तुल्य पद्म युगल, आदित्यों के तेज से पैर की अँगुलियों, तथा वसुओं के तेज से उनके हाथ की अँगुलियों उत्पन्न हुई । (११)
 प्रजापतियों के तेज से उनके दौत, यक्षों के तेज से नाक, वायु के तेज से दोनों कान, साध्य के तेज से कामदेव के धनुष सदृश वनछी दोनों भीति प्रकट हुई । (१२)
 महर्षि का उत्तमोत्तम तथा महान् तेज शृषी पर

कात्यायनीत्येव तदा बभौ सा
 नाम्ना च तेनैव जगत्प्रसिद्धा ॥ १३
 ददौ त्रिशूलं वरदत्रिशुली
 चक्रं सुरारिर्वरुणश्च शङ्खम् ।
 शक्तिं हुताशः श्वसनश्च चापं
 तूणौ तथास्यशरौ विधस्वान् ॥ १४
 वज्रं तथेन्द्रः सह घण्टया च
 यमोऽथ दण्डं धनदो गदां च ।
 ब्रह्माऽश्ममालां सकमण्डलुं च
 कालोऽसिमुग्रं सह चर्मणा च ॥ १५
 हारं च सोमः सह चामरेण
 मालां समुद्रो हिमवान् मृगेन्द्रम् ।
 चूडामणिं कुण्डलमर्धचन्द्रं
 प्रादात् कृटारं वसुशिल्पकर्त्ता ॥ १६
 गन्धर्वराजो रजततुलितं
 पानस्य पूर्णं सदृशं च भाजनम् ।
 भुजंगहारं भुजगेश्वरोऽपि
 अम्बानपुष्पाभूतवः स्रजं च ॥ १७
 तदाऽवितुष्टा सुरसत्त्वमानां

'कात्यायनी' इस नाम से प्रसिद्ध हुआ और तदनन्तर वे उसी नाम से जगत् में प्रसिद्ध हुई । (१३)
 वरद त्रिशुली ने उन्हें त्रिशूल, सुरारि ने चक्र, वरुण ने शङ्ख, अग्नि ने शक्ति, वायु ने धनुष तथा सूर्य ने अश्वय पाणों वाली दो तूणीर प्रदान किया । (१४)
 इन्द्र ने घण्टा सहित वज्र, यम ने दण्ड, कुबेर ने गदा, ब्रह्मा ने कमण्डलु के साथ अश्रमाला तथा काल ने ढाल सहित धम तलवार दिया । (१५)
 चन्द्रमा ने चामर सहित हार, समुद्र ने माला, हिमालय ने सिद्ध, विश्वकर्मा ने चूडामणि, कुण्डल, अर्धचन्द्र तथा कृटार प्रदान किया । (१६)
 गन्धर्वराज ने उनके अनुरूप, रजत का पूर्ण पान (मद्य) पात्र, नागराज ने भुजङ्गहार तथा ऋतुओं ने न मुष्पाने यन्त्रि पुष्पों की माला प्रदान की । (१७)
 तदनन्तर श्रेष्ठ देवशाओं के ऊपर अत्यन्त प्रसन्न होकर त्रिनेत्रा (कात्यायनी) ने उच्च अष्टादास किया । इन्द्र, विष्णु

अद्वाद्दृष्टासं मृषुचे त्रिनेत्रा ।
 तां तुप्पुदुर्देववराः सहेन्द्राः
 सविष्णुरुद्रेन्द्रनिलाग्निभास्कराः ॥ १८
 नमोऽस्तु दैव्यै सुरपूजितायै
 या संस्थिता योगनिशुद्धदेहा ।
 निद्राम्बररूपेण महीं वितत्य
 वृष्णा त्रया धुद् मयदाऽथ कान्तिः ॥ १९
 श्रद्धा स्मृतिः पुष्टिरयो क्षमा च
 छाया च शक्तिः कमलालया च ।
 घृतिर्दया भ्रान्तिरयेह माया
 नमोऽस्तु दैव्यै भयरूपिकायै ॥ २०
 ततः स्तुता देववैरुंगेन्द्र-
 मात्स्य देवी प्रगताऽवनीध्रम् ।
 विन्ध्यं महापर्वतमृषुषृङ्गं
 चकार यं निम्नतरं त्वगस्त्यः ॥ २१
 नारद उवाच ।
 किमर्थमाद्रि भगवानगस्त्य-
 स्तं निम्नमृङ्गं कृतवान् महर्षिः ।
 कस्मै कृते केन च वारणेन

ब्रह्म, चन्द्रमा, वायु, अग्नि तथा सूर्य आदि श्रेष्ठ देव उनही
 खुलि करने छगे— (१८)

योग से विपुल देहवाली सुरपूजित देवी को नमस्कार
 है। वे निद्रा रूप से पृथ्वी में व्याप्त हैं, वे ही वृष्णा, त्रया,
 मुषा, मयदा, कान्ति, श्रद्धा, स्मृति, पुष्टि, क्षमा, छाया,
 शक्ति, शक्ति, घृति, दया, भ्रान्ति तथा माया हैं। ऐसी
 संतारस्यरूपिणी देवी को नमस्कार है। (१९-२०)

तदनन्तर देववैरो से इस पुत्र देवी सिंह पर आरुढ़
 होकर विन्ध्य नामक इस उंचे शृङ्गवाले महान् पर्वत पर गईं
 जिसे अगस्त्य मुनि ने अग्नि निम्न कर दिया था। (२१)

नारद ने पूछा—हे शुद्धात्मन्! यह बातोंयें कि भगवान्
 अगस्त्य महर्षि ने तब पर्वत को निम्न करि लिये उर्ध्व किस
 कारण से निम्नमृग वाणा किया? (२२)

पुत्रव्य ने कहा—प्राचीन काल में विन्ध्य ने गगनविदारी

एतद् वदस्वामलसत्त्ववृत्ते ॥ २२

पुत्रस्त्य उवाच ।

पुरा हि विन्ध्येन दिवाकरस्य
 गतिर्निरुद्धा गगनेचरस्य ।
 रविस्ततः कुम्भभवं समेत्य
 होमावसाने वचन यभापे ॥ २३
 समागतोऽहं द्विज दूरतस्त्वां
 कुरुष्व मासृद्धरणं मुनीन्द्र ।
 ददस्व दानं मम यन्मनीषितं
 चरामि येन त्रिदिवेषु निर्वृत्तः ॥ २४
 इत्यै दिवाकरवचो गुणसंप्रयोगि
 श्रुत्वा तदा कलशजो वचनं यभापे ।
 दानं ददामि तत्र यन्मनसस्त्वभीष्टं
 नार्थी प्रयाति विमृशो मम कश्चिदेव ॥ २५
 श्रुत्वा वचोऽमृतमयं कलशोद्धवस्य
 ग्राह प्रसुः करतले निनिधाय भूर्धनि ।
 एषोऽथ मे गिरिवरः प्ररुणद्धि मार्गं
 विन्ध्यस्य निम्नकरणे भगवन् वतस्व ॥ २६
 इति रविवचनादयाह कुम्भनन्मा

सूर्य की गति को रोक दिया। तदनन्तर सूर्य ने महर्षि अगस्त्य
 के पास जाकर होम के अन्त में यह वचन कहा— (२३)

हे द्विज! मैं बहुत दूर से आपके पास आया हूँ। हे
 मुनीन्द्र! आप मेरा उद्धार करें। मुझे मेरा अभीष्ट दान
 दें जिससे मैं निश्चिन्त होकर आकाश में विचरण
 करूँ। (२४)

इस प्रकार दियाकर वे गुण संयुक्त वाच्य को सुनकर
 अगस्त्य ने कहा—“मैं तुम्हें तुम्हारा मनोभिच्छिन्न दान
 दूंगा। मेरे पास से कोई भी वाच्य विमुक्त हो कर
 नहीं जाता।” (२५)

अगस्त्य के अमृतमय वचन को सुनकर शिर से
 अश्रुजल संयुक्त किये हुए प्रसु दियाकर ने कहा—“आज यह
 गिरिवर मेरा मार्ग रोक रहा है अतः हे भगवन्! आप
 विन्ध्यापठ को नीचा करने का प्रयत्न करें। (२६)

कुम्भजन्मा अगस्त्य ने सूर्य की बात सुन कर कहा—

कृतमिति विद्धि मया हि नीचभृङ्गम् ।
 तत्र क्रिरणजितो भविष्यते महीश्रो
 मम चरणसमाश्रितस्य का व्यथा ते ॥ २७
 इत्येवमुक्त्वा कलशोद्भवस्तु
 सूर्यं हि संस्तूय विनम्य भक्त्या ।
 जगाम संत्यज्य हि दण्डकं हि
 विन्ध्याचलं वृद्धवपुर्महापिः ॥ २८
 गत्वा वचः प्राह मुनिर्महीश्रं
 यास्ये महातीर्थवरं सुपुण्यम् ।
 वृद्धोऽस्म्यशक्तश्च तथापिरोद्धं
 तस्माद् भवान् नीचतरोऽस्तु सद्यः ॥ २९
 इत्येवमुक्त्वो मुनिसत्तमेन
 स नीचभृङ्गस्त्वभवन्महीश्रः ।
 समाक्रमथापि महर्षिस्वर्यः
 श्रोष्टुञ्च्य विन्ध्यं त्विदमाह शैलम् ॥ ३०
 यावत्त भूयो निजमात्रजामि
 महाश्रमं धौतगुः सुतीर्थीद् ।
 त्वया न तावत्त्रिहर्षिषत्तन्मं

नो वेद् विद्यन्त्येऽहमवज्ञया ते ॥ ३१
 इत्येवमुक्त्वा भगवाञ्जगाम
 दिशं स याम्यां सहसाऽन्तरिक्षम् ।
 आक्रम्य तस्यै स हि तां तदाद्यां
 काले ब्रजाम्यत्र यदा मुनीन्द्रः ॥ ३२
 तत्राश्रमं रम्यतरं हि कृत्वा
 संशुद्धजाम्भूनदतोरणान्तम् ।
 तत्राप्य निक्षिप्य विदर्भपुरीं
 स्वमाश्रमं मौन्यमुपाजगाम ॥ ३३
 प्रातावृत्तौ पर्वकालेषु नित्यं
 तमन्त्रे ह्याश्रममावसत् सः ।
 शेषं च कालं स हि दण्डकस्वम्
 तपश्चकारामितस्मन्तिमान् मुनिः ॥ ३४
 विन्ध्योऽपि दृष्ट्वा गगने महाश्रमं
 वृद्धिं न यात्येव भयान्महर्षेः ।
 नासी निवृत्तेति मतिं विधाय
 स मंस्थितो नीचतराग्रभृङ्गः ॥ ३५
 एवं त्वगस्त्येन महाचलेन्द्रः

“मेरे द्वारा विन्ध्य को नीचा किया हुआ ही समझो । यह पर्वत तुम्हारी स्थिती से पराजित होगा । मेरे चरणों के आश्रित तुम्हारे लिये व्यथा कैसे ?” (२७)

वृद्ध शरीर वाले महर्षि अगस्त्य ऐसा कह कर विनम्रता पूर्वक भक्ति से सूर्य की स्तुति करने के उपरान्त दण्डक का स्थान पर विन्ध्यपर्वत के निरुद्ध गए । (२८)

यहाँ जाकर मुनि ने पर्वत से कहा “मैं अर्थापेक्षित महातीर्थ को जा रहा हूँ । मैं वृद्ध होने से तुम्हारे ऊपर चढ़ने में असमर्थ हूँ अतः आप तरघाट नीचा हो जाय ।” (२९)

मुनिभेद के ऐसा कहने पर पर्वत नीचन शिखर वाला हो गया । तदनन्तर महर्षिभेद ने विन्ध्यपर्वत को चढ़कर पार करने के पश्चात् उससे यह कहा— (३०)

मैं जब तक पवित्र तीर्थ से स्नान करके पुनः अपने महान् आश्रम में न छोड़ूँ तब तक तुम्हें नदी बन्दना

चाहिये । अन्यथा अवसा करने के कारण मैं तुम्हें घोर श्राप दूँगा । (३१)

ऐसा कहकर भगवान् अगस्त्य सहसा दक्षिण दिशा की ओर अन्तरिक्ष में चले गये तथा ‘उचित समय से फिर आऊँगा’ ऐसा कहकर वही दिशा में ये रुक गये । (३२)

यहाँ मुनि ने विजुद्धस्वर्णमय तोरणों वाले अतिरमणीय आश्रम की रचना कर एक उसमें विदर्भपुरी (छेषामुद्रा) को रख कर स्वयं अपने आश्रम को चले गए । (३३)

अमितस्मिन्तिमान् मुनि विभिन्न शत्रुओं के पर्यघात में नित्य आघातस्थित अपने आश्रम में निवास करने तथा शेष समय दण्डक में रह कर तप करने लगे । (३४)

विन्ध्यपर्वत भी आश्रम में महान् आश्रम को देखकर महर्षि के भय से नदी बड़वा । ये नदी छोटी है ऐसा समझ कर यह शिखर नीचा किए हुए स्थित है । (३५)

हे महर्षे ! इस प्रकार अगस्त्य ने महान् पर्वतघात को

स नीचशृङ्गो हि कृतो महर्षे ।
तस्योर्ध्वशृङ्गे मुनिसंस्तुता सा
दुर्गा स्थिता दानवनाशनार्थम् ॥ ३६
देवाश्च सिद्धाश्च महोरगाश्च

विधाधरा भूतगणाश्च सर्वे ।
सर्वाप्सरोभिः प्रतिरामयन्तः
कात्यायनीं तत्पुरपेतशोकाः ॥ ३७

इति श्रीवामनपुराणे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१६॥

२०

शुलस्य उवाच ।
ततस्तु तां तत्र तदा वसन्तीं
कात्यायनीं शैलवरस्य शृङ्गे ।
अपश्यतां दानवसत्तमौ द्वौ
चण्डश्च मुण्डश्च तपस्विनीं वाम् ॥ १
दृष्ट्वैव शैलादवतीर्य श्रीघ्न-
माज्महतुः स्वभवनं सुरारी ।
दृष्ट्वोचतुस्तौ महिषासुरस्य
दूतादिदं चण्डमुण्डौ दिवौशम् ॥ २
स्वभ्यो भवान् किं स्वसुरेन्द्र साम्प्रत-

मागञ्च पश्याम च तत्र विन्ध्यम् ।
सत्रासित देवी सुमहातुभावा
कन्या मरुपा सुरसुन्दरीणाम् ॥ ३
जितास्तया तोयधराऽलकैर्हि
जितः शशाङ्को वदनेन तन्वया ।
नेत्रैस्त्रिभिस्त्रीणि हुताशनानि
जितानि कण्ठेन जितस्तु शङ्खः ॥ ४
स्तनौ सुवृत्तावथ मद्रचूचुकौ
स्थितौ विजित्येव गजस्य कुम्भौ ।
त्वां सर्वजैतारमिति प्रतर्क्य

निम्नशृंगालाकर दिया । उसके ऊर्ध्वशृंग पर मुनिसंस्तुता
दुर्गा दाम्बरी के विनाशार्थ स्थित हुई । (३६)

देवता, सिद्ध, महानाग, विद्याधर एव समस्त भूतगण

अप्सराओं के सहित कात्यायनी को प्रसन्न करते हुए शोक-
रहित होकर उनके निकट रहने लगे । (३७)

श्रीवामनपुराण मे उन्नीसवें अध्याय समाप्त ॥१६॥

२०

पुलस्त्य ने कहा—तदनन्तर उस श्रेष्ठ पर्वत-शिखर पर
निवास करने वाली उस तपस्विनी कात्यायनी को चण्ड
और मुण्ड नामक दो श्रेष्ठ दानवों ने देखा । (१)

देखने के पश्चात् पर्वत से उतर कर दोनों देवशत्रु
अपने घर गए । महिषासुर के चण्ड मुण्ड नामक उन
दोनों दूतों ने दैत्यराज के निकट जाकर यह कहा— (२)

हे असुरेन्द्र ! आप इस समय स्वाध तो हैं ? आइये, हम-
लोग विन्ध्यपर्वत पर चलकर देखें। यहाँ सुरसुन्दरियों में रूप-

वती एक श्रेष्ठ लक्ष्मणों वाली कन्या देवी अवस्थित है । (३)
उस पृथ्वी सुन्दरी ने वेशवास के द्वारा मेघों को, मुख
के द्वारा शशाङ्क को, तीन नेत्रों द्वारा तीन (गार्हपत्य, दक्षिण,
आयहनीय) अग्नियों को और बंठ के द्वारा शंख को जीत
लिया है । (४)

उसके मग्नचूचुक बाने सुवृत्ताकार स्तन इस प्रकार
स्थित हैं मानों उन्होंने हाथी के दोनों गण्डस्थलों को जीत
लिया हो । यह प्रतीत होता है मानों आपकी सर्वविजयी

कुचौ स्मरेणैव कृतौ सुदुर्गा ॥ ५
 पीनाः सशस्त्राः परिधोपमादत्र
 भ्रुजास्तयाऽष्टादश भान्ति तस्याः ।
 पराक्रमं चै भवतो विदित्वा
 कामेन यन्वा इव ते कृतास्तु ॥ ६
 मर्ष्यं च तन्यास्त्रिजलीतरङ्गं
 विभाति दैत्येन्द्र सुरोमरात्रि ।
 भयातुरारोहणकातरस्य
 कामस्य सोपानमिव प्रयुक्तम् ॥ ७
 सा रोमराज्ञी सुतरां हि तस्या
 विराजते पीनकुचावलम्बा ।
 आरोहणे त्वद्भयकातरस्य
 स्वेदप्रवाहोऽसुर मन्मथस्य ॥ ८
 नाभिर्गभीरा सुतरां विभाति
 प्रदक्षिणाऽस्याः परिवर्तमाना ।
 तस्यैव लावण्यगृहस्य मुद्रा
 कन्दर्परागा स्वयमेव दत्ता ॥ ९
 विभाति रम्यं जघनं मृगाश्याः

ममन्ततो मेखलपाऽव्यजुष्टम् ।
 मन्याम तं कामनराधिपस्य
 प्राकारगुप्तं नगरं सुदुर्गम् ॥ १०
 पृचाषरोमी च मृद् कुमार्थाः
 शोभेत ऊरू समनुचमी हि ।
 आग्रामनार्थं मकरध्वजेन
 जनस्य देशानिव सन्निविष्टौ ॥ ११
 तज्जानुपुग्मं महिषासुरेन्द्र
 अद्वौन्नतं भाति तस्यैव तस्याः ।
 सृष्ट्या विधाता हि निरूपणाय
 श्रान्तन्वया हस्ततन्त्रे ददौ हि ॥ १२
 जङ्घे सुवृत्तेऽपि च रोमहीने
 शोभेत दैत्येधर ते तदीये ।
 आक्रम्य लोकानिव निर्मिताया
 रूपाव्रित्तस्यैव कृताधरो हि ॥ १३
 पादौ च तस्याः कमलोदराभौ
 प्रयत्नतस्तौ हि कृतौ विधात्रा ।
 आग्नापि ताम्यां नखरत्नमाला

समस्त कर कामदेव ने ही कुचरूपी दो सुन्दर दुर्गों की रचना की है । (५)
 उसकी मोटी, परिध सटश सशस्त्र अष्टादश सुजाएँ इस प्रकार सुशोभित हो रही हैं मानों आपरा पताक्रम जान कर कामदेव ने यन्त्र के सटश उना निमांग किया है । (६)
 हे दैत्येन्द्र! त्रिजली से तरङ्गित तथा सुन्दर रोमावलि वाला उसका मध्यभाग इस प्रकार सुशोभित हो रहा है मानों वह भयार्त तथा आरोहण के लिये अधीर कामदेव का सोपान हो । (७)
 हे असुर! पीनकुचावलयन उसरी वह रोमवलि इस प्रकार सुशोभित हो रही है मानों आरोहण करने में आपके मथ को कातर कामदेव का स्वेद प्रवाह हो । (८)
 लक्षिण की ओर धूम्री दृढ़ कमरी गभीर नाभि इस प्रकार प्रतीत हो रही है मानों कन्दर्पनरेश ने स्वयं ही इस शयणगृह के ऊपर मुद्रा लगाई हो । (९)

चारों ओर मेखला से घेरित उम मृगात्री का रमणीय जघन सुशोभित हो रहा है। उसे हम कामनरेश का चहारदीवारी से सुरगिन दुर्गम नगर मानते हैं । (१०)
 उस कुमारी के पृचाधार, रोमरहित, कोमल तथा उत्तम ऊरू इस प्रकार शोभित हो रहे हैं मानों मरुत्पथ्य ने मनुष्यों के निवामार्थ दो देशों का मन्त्रियेष्ट किया है । (११)
 हे महिषासुरेन्द्र! उसके अद्वौन्नता जानुपुगल इस प्रकार सुशोभित हो रहे हैं मानों उसकी रचना करने के उपरान्त शान्त विधाता ने निरवगार्थ अपना कराउ व्यवस्था किया हो । (१२)
 हे दैत्येधर! उसरी सुवृत्त तथा रोमहीन वे दोनों जघार्थ इस प्रकार सुशोभित हो रही हैं मानों शोभितियम्य चर निर्मित की गई नादिश के रूप के द्वारा नीची की गई है । (१३)
 विधाता ने प्रयत्नपूर्वक उसके चमत्केन्द्र के समान शान्तियाने पारपुगल का निर्माण किया है। कन्दोर्न नगर

नक्षत्रमाला गगने यथैव ॥ १४
 एयंस्वरूपा दनुनाथ कन्या
 महोग्रशस्त्राणि च धारयन्ती ।
 दृष्ट्वा यथेष्टं न च विन्न का सा
 सुताऽथवा कस्यचिदेव बाला ॥ १५
 तद्भूतले रत्नमनुत्तमं स्थितं
 स्वर्गं परित्यज्य महाऽसुरेन्द्र ।
 गत्वाऽथ विन्ध्यं स्वयमेव पश्य
 कुरुष्व यत् तेऽभिमतं क्षमं च ॥ १६
 श्रुत्वैव ताभ्यां महिषासुरस्तु
 देव्याः प्रवृत्तिं कमनीयरूपाम् ।
 चक्रे मतिं नात्र विचारमस्ति
 इत्येवमुक्त्वा महिषोऽपि नास्ति ॥ १७
 प्रागेव पुंसस्तु शुभाशुभानि
 स्थाने विधात्रा प्रतिपादितानि ।
 यस्मिन् यथायानि यतोऽथ विप्र
 स नीयते वा व्रजति स्वयं वा ॥ १८

ततोऽसु मृण्डं नमरं सचण्डं
 विडालनेत्रं सपिशङ्गवाष्कलम् ।
 उग्रायुधं चिद्भुररक्तरीजो
 समादिदेशाथ महासुरेन्द्रः ॥ १९
 आहत्य भेरी रणकर्कशास्ते
 स्वर्गं परित्यज्य महोधरं तु ।
 आगम्य मूले शिविरं निवेश्य
 तम्युथ सजा दनुनन्दनास्ते ॥ २०
 ततस्तु दैत्यो महिषासुरेण
 संप्रेषितो दानवयूथपालः ।
 मयस्य पुत्रो रिपुसैन्यमर्दी
 स दुन्दुभिर्दुन्दुभिनिःखनस्तु ॥ २१
 अम्येत्य देवीं गगनस्थितोऽपि
 स दुन्दुभिर्योक्त्र्यमुवाच विप्र ।
 कुमारि दूतोऽस्मि महासुरस्य
 रम्भात्मजस्याप्रतिमस्य युद्धे ॥ २२
 कात्यायनी दुन्दुभिमभ्युवाच

रूपी रत्नों की माला को इस प्रकार प्रकाशित किया मानों
 आकाश में नक्षत्रों की माला हो । (१४)
 हे दनुनाथ ! महान् एव उग्र शस्त्रों को धारण करने
 वाली यह कन्या ऐसे स्वरूपवाली है। उसे भली-
 भाँति देखकर भी हम यह न जान सके कि यह कौन है
 तथा किसकी पुत्री या स्त्री है । (१५)
 हे महासुरेन्द्र ! स्वर्ग का परित्याग कर वह श्रेष्ठ रत्न
 भूतल में स्थित है। आप स्वयं विन्ध्याचल पर जाकर उसे
 देखें तथा जो आपकी इच्छा एवं सामर्थ्य हो वह
 करें । (१६)
 उन दोनों से देवी विषयक कमनीय वार्त्ता को सुनने
 के उपरान्त "इस विषय में कुछ विचारणीय नहीं है" ऐसा
 कहकर (जाने का) निश्चय किया। उन महिष भी नहीं
 रहा (अर्थात् उसका भी अन्त आ गया) । (१७)
 मनुष्य के शुभाशुभ को ब्रह्मा ने पहले से ही तत्त-
 स्थानों पर नियत कर दिया है जिस व्यक्ति को जहाँ पर या
 तहाँ से जिस प्रकार जो-जो (शुभाशुभ मिलने होते) हैं

वह वहाँ या तो ले जाया जाता है या स्वयं चला
 जाता है । (१८)

तदनन्तर महासुरेन्द्र ने मृण्ड, नमर, चण्ड, विडाळ-
 नेत्र, पिशङ्गवाष्कल, उग्रायुध, चिद्भुर और रक्तबीज को
 आदेश दिया । (१९)

रणकर्कश वे सभी दानव भेरियाँ बजाने के उपरान्त
 स्वर्ग का परित्याग कर पथ के निरुद्ध आकर उसके मूल
 में शिविर का निवेश कर तैयार होकर स्थित हो गए । (२०)

तदुपरान्त महिषासुर ने दुन्दुभि-नुत्प शब्द करने वाले
 रिपुसैन्यमर्दी तथा दानवों के सेनापति मयपुत्र दुन्दुभि
 को (देवी के पास) भेजा । (२१)

हे विप्र ! दुन्दुभि ने देवी के निरुद्ध जाकर तथा
 आकाश में स्थित होकर यह वचन कहा "हे कुमारी ! बुद्ध
 में अप्रतिम तथा रम्भ के पुत्र महासुर का मैं दूत
 हूँ !" (२२)

कात्यायनी ने दुन्दुभि से कहा—"हे दैत्येन्द्र ! भय को

एहोहि दैत्येन्द्र मयं विमुच्य ।
 वाक्यं च यद्रम्भसुतो वषापे
 वदस्व तत्सत्यमपेवमोह. ॥ २३
 तयोक्तमाक्ये दितिनः शिवाया-
 स्त्वज्यान्वरं भूमितले निपण्णः ।
 सुलोपविष्टः परमासने च
 रम्मात्मजेनोक्तवष्टुवाच वाक्यम् ॥ २४
 हुन्दुभित्वाच ।
 एवं समाज्ञापयते सुरारि-
 स्त्वां देवि दैत्यो महिषासुरस्तु ।
 ययामरा हीननलाः पृथिव्या
 भ्रमन्ति युद्धे पित्रिता मया ते ॥ २५
 स्वर्गं मही वायुपयाथ यथाः
 पातालमन्ये च महेश्वराद्याः ।
 इन्द्रोऽस्मि रद्रोऽस्मि दिशारुरोऽस्मि
 सर्वेषु लोकेष्वधिपोऽस्मि पाले ॥ २६
 न सोऽस्ति नाके न महीतले वा
 रसातले देवमटोऽसुरो वा ।
 यो मां हि संग्राममुपैविवांस्तु
 मृतो न यद्यो न निनीविषुर्यः ॥ २७

यान्येन रत्नानि महीतले वा
 स्वर्गेऽपि पातालतलेऽप्य मुग्धे ।
 सर्वाणि मामत्र समागतानि
 वीर्यानितानीह विशालनेत्रे ॥ २८
 स्त्रीरत्नमप्य भवती च कन्या
 प्राप्नोऽस्मि शूलं तत्र कारणेन ।
 तस्माद् भवस्नेह जगत्पति मां
 पतिभ्रताहोऽस्मि विशुः प्रमुग्ध ॥ २९
 पुलस्त्य उवाच ।
 इत्येवमुक्त्वा दितिजेन दुर्गा
 वात्पायनी प्राह मयस्य पुत्रम् ।
 सत्यं प्रभुर्दानवराट् पृथिव्यां
 सत्यं च युद्धे पित्रितामराथ ॥ ३०
 किं त्वन्ति दैत्येण ब्रूलेऽस्मदीये
 धर्मो हि शुल्कारय इति प्रमिद्धः ।
 त चेत् प्रदद्यान्महिषो ममाद्य
 भजाति सत्येन पतिं ह्यारिम् ॥ ३१
 श्रुत्वाऽप्य वाक्यं मयनोऽग्रवीथ
 शुचकं वदम्यान्मुनपत्रनेत्रे ।
 ददात्स्वमूर्धानमपि त्वदर्धे

होकर यहाँ आओ और रम्भपुत्र ने जो वचन कहा है
 उसे मोहराहो होकर सत्य-सत्य कहो । (२३)
 शिवा ये कुछ प्रधर के कथनोपरान्त दैत्य आकाश
 होकर पृथ्वी पर आया एवं श्रेष्ठ आसन पर सुनपूर्वक
 बैठकर रम्भात्मज द्वारा कथित वाक्य का कहा । (२४)
 हुन्दुभि ने कहा—दे देवि । सुचारि महिषासुर ने तुम्हें
 यह असंगतचित्त दिया है कि मेरा द्वारा युद्ध स किञ्चित्त
 कहीन अमर लोग पृथ्वी पर धमक कर रहे हैं । (२५)
 हे बाले ! स्वर्ग, पृथ्वी, वायुमार्ग, पानाळ और शंकर
 आदि सभी मेरे कर्ष हो गए हैं । मैं ही इन्द्र, रुद्र,
 विषाकर एवं सभी लोकों का अधिपति हूँ । (२६)
 स्वर्ग, पृथ्वी या रसातल में जीवित रहने की
 इच्छावाला ऐसा कोई देवमोहा, असुर, मृत या यज्ञ नहीं
 है जो युद्ध में मेरा सामना करे । (२७)

हे मुग्धे ! हे विशालनेत्रे ! पृथ्वी, स्वर्ग या पाताळ
 में जितने भी रत्न हैं वे सभी पात्रमाजित होकर आज
 मेरे पास आ गए हैं । (२८)
 आप स्त्रीरत्नों में श्रेष्ठ कन्या हैं । मैं आपके लिये पयं
 पर आया हूँ । इसलिये मुझ जगत्पति को मुझ स्वीकार
 करो । विनु पय प्रभु मैं तुम्हारा योग्य पति हूँ । (२९)
 शुल्कार ने कहा—दैत्य के ऐसा ब्रह्मणे पर दुर्गां द्वारा
 यनी ने मय के पुत्र से कहा—“यद साय दे कि दानवराट्
 पृथ्वी में प्रभु है एवं यह भी मय दे कि (वसनें) मुझ
 में देवों को जीन लिया है । (३०)
 दिगु हे दैत्ये ! हमारे कुल में मुझ नामक एक
 धर्म प्रसिद्ध है । यदि मर्दिच आज मुझे यह प्रदान करे तो
 सत्य के द्वारा मैं वत ह्यारि की पति स्वीकार कर
 दूँगा” । (३१)

किं नाम शुल्कं यदिहैव लभ्यम् ॥ ३२
पुलस्त्य उवाच ।

इत्येवमुक्त्वा दनुनायकेन
कात्यायनी सस्वनमुन्नदित्वा ।
विहस्य चैतद्वचनं वभापे
हिताय सर्वस्य चराचरस्य ॥ ३३
श्रीदेव्युवाच ।

कुलेऽस्मदीये शृणु दैत्य शुल्कं
कृतं हि यत्पूर्वतैः प्रसन्न ।
यो जेष्यतेऽस्मत्कुलजां रणाग्रे
तस्याः स भर्ताऽपि भविष्यतीति ॥ ३४
पुलस्त्य उवाच ।

तच्छ्रुत्वा वचनं देव्या दुन्दुभिर्दानवेश्वरः ।
गत्वा निवेद्यामास महिषाय यथातथम् ॥ ३५
स चाभ्यगान्महातेजाः सर्वदैत्यपुरःसरः ।
आगत्य विन्ध्यशिखरं योद्धुक्कामः सरस्वतीम् ॥ ३६

इस वाक्य को सुन कर मधुपुत्र ने कहा "हे कमल-पत्र के समान नेत्रवाली ! शुल्क को बताओ। यह तुम्हारे हेतु अपना मस्तक भी दे सकता है। शुल्क की तो बात ही क्या जो यही पर प्राप्य है।

(३२)
पुलस्त्य ने कहा—दनुनायक के ऐसा कहने पर कात्यायनी ने उच्च श्वर से गर्जनकर हैंसते हुए समस्त चराचर के हितार्थ यह वचन कहा।

(३३)
श्रीदेवी ने कहा—“हे दैत्य। पूर्वजों ने हठपूर्वक हमारे कुल में जो शुल्क निर्धारित किया है उसे सुनो। हमारे कुल में इत्यन्न कन्या को जो युद्ध में जीतेगा वही उसका पति होगा।”

(३४)
पुलस्त्य ने कहा—देवी की वह बात सुन कर दानवेश्वर दुन्दुभि ने जाकर महिषासुर से उस बात को ज्यों का त्यों निवेदित कर दिया।

(३५)
सभी दैत्यों के साथ उस महातेजस्वी दैत्य ने प्रयाप्य किया एवं सरस्वती से युद्ध करने की इच्छा से विन्ध्यशिखर पर पहुँचा।

(३६)

ततः सेनापतिर्दैत्यो चिञ्चुरो नाम नारद ।
सेनाग्रगामिनं चक्रे नमरं नाम दानवम् ॥ ३७
स चापि तेनाधिकृतथतुरङ्गं समूर्जितम् ।
वलैकदेशमादाय दुर्गां दुद्राव वेगितः ॥ ३८
तमापतन्तं वीक्ष्याथ देशं ब्रह्मपुरोगमाः ।
ऊचुर्वाक्यं महादेवीं वर्मं ह्यवन्ध चाम्बिके ॥ ३९
अथोवाच सुरान् दुर्गां नाहं बन्नामि देवताः ।
कवचं कौऽत्र संतिष्ठेत् ममाग्रे दानवाधमः ॥ ४०
यदा न देव्या कवचं कृतं शस्त्रनिघर्हणम् ।
तदा रक्षार्थमस्यास्तु विष्णुपञ्जरमुक्तवान् ॥ ४१
सा तेन रक्षिता ब्रह्मन् दुर्गां दानवसत्तमम् ।
अवच्य दैवतैः सर्वैर्महिषं प्रत्यपीडयत् ॥ ४२

एवं पुरा देववरेण शंभुना
तद्वैष्णवं पञ्जरायातास्याः ।
श्रोवतं तथा चापि हि पादघातै-
निपूदितोऽसौ महिषासुरेन्द्रः ॥ ४३

हे नारद ! तदुपरान्त सेनापति चिञ्चुर नामक दैत्य ने नमर नामक दानव को सेना का अप्रगामी बनाया। (३७)

उससे अधिकृत होने के पश्चात् वह समस्त सेना के अतिऊर्जस्वित तथा चार अंगों से युक्त एक अंश को लेकर वेगपूर्वक दुर्गा की ओर दौड़ा। (३८)

उसको आते देखकर ब्रह्मादि देवताओं ने महादेवी से कहा कि हे अम्बिके ! आप कवच बाँध लीजिये। (३९)

तदन्तर देवी ने देवताओं से कहा—“हे देवगण ! मैं कवच नहीं बाँधूँगी। यहाँ मेरे सम्मुख कौन दानवाधम ठहर सकता है ?” (४०)

जब देवी ने शस्त्रनिवारक कवच न पहना तो उनकी रक्षा के लिये (पूर्वोक्त) विष्णुपञ्जर स्तोत्र कहा गया। (४१)

हे ब्रह्मन् ! उससे रक्षित होकर दुर्गा ने समस्त देवताओं के द्वारा अवच्य दानवश्रेष्ठ महिषासुर को अत्यन्त पीड़ित किया। (४२)

इस प्रकार पहले देवश्रेष्ठ राम्भु ने बड़े नेत्रों वाली (कात्यायनी) से उस वैष्णव पञ्जर को कहा था और

एवंप्रभावो द्विज विष्णुपञ्जरः
सर्वासु रक्षास्वधिको हि गीतः ।

कस्तस्य कुर्याद् युधि दर्पहानि
यस्य स्थितधेतसि चक्रपाणिः ॥ ४४

इति श्रीवामनपुराणे विंशोऽध्यायः ॥२०॥

२१

नारद उवाच ।

कथं कात्यायनी देवी सानुगं महिपासुरम् ।
सवाहनं हतवती तथा विस्तरतो वद ॥ १
एतच्च संशयं ब्रह्मन् हृदि मे परिवर्तते ।
विद्यमानेषु शस्त्रेषु यत्पद्मथां तममर्दयत् ॥ २

पुलस्त्य उवाच ।

मृशुष्वावहितो भूत्वा कथामेतां पुरातनीम् ।
शृत्वां देवयुगस्यादौ पुण्यां पापभयापहाम् ॥ ३
एवं स नमरः क्रुद्धः समापतत वेगवान् ।
सगत्राश्वरथो ब्रह्मन् दृष्टो देव्या यथेच्छया ॥ ४

उन्होंने भी पादप्रहार द्वारा उस महिपासुर को मार
वाला । (४२)

हे द्विज ! इस प्रकार के प्रभाव से युक्त विष्णुपञ्जर

श्रीवामनपुराण में बीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२०॥

२१

नारद ने कहा—“कात्यायनी देवी ने अनुचरों एव
याहनों के साथ महिपासुर को किस प्रकार मारा । इसका
विस्तार से वर्णन करे । (१)

हे ब्रह्मन् ! मेरे मन में यह संशय है कि शस्त्रों के
विद्यमान होते हुए भी देवी ने पैरों द्वारा उसे क्यों मर्दित
किया ?” (२)

पुलस्त्य ने कहा—“देवयुग के आदि में घटित तथा पाप
एवं भय को दूर करने वाली इस पवित्र पुरातनी कथा को
सायधान होकर सुनो ।” (३)

हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार वह क्रुद्ध नमर राज, अथ एवं
रथ के साथ वेगपूर्वक आ चढ़ा । देवी ने उसे यथेच्छरूप से
देरा । (४)

ततो बाणगणैर्देत्यः समानम्याथ कार्मुकम् ।
ववर्ष शैलं धारौघैर्वाविष्णुदक्षिभिः ॥ ५
शरशर्पेण तेनाथ विलोक्याद्रिं समाश्रुतम् ।
क्रुद्धा भगवती वेगादाचक्यर्ष धनुर्धरम् ॥ ६
वद्वसुर्दानवे सैन्ये दुर्गया नामित बलात् ।
सुवर्णपृष्ठं विवभौ विद्युदम्यधरोधिव ॥ ७
बाणैः सुररिपूनन्यान् खड्गैर्नान्यान् शुभ्रवत् ।
गदया मूसलेनान्याधर्मणाऽन्यानपातयत् ॥ ८
एकोऽप्यसौ बहून् देव्याः केसरि कालसनिभः ।
विधुन्यन् केसरसटां निपूदयति दानवान् ॥ ९

समस्त रक्षाकारी (वस्तुओं) ने श्रेष्ठ वधा गया है । जिसके
चित्त में चक्रपाणि स्थित हों युद्ध में उसके दर्प की हानि
कीन कर सक्ता है ? (४४)

तदनन्तर धनुष को छोड़ कर दैत्य ने शैल के ऊपर
इस प्रकार बाण वर्षा की जैसे आकाश (पर्वत पर) धारा प्रवाह
जलवृष्टि करता है । (५)

तदनन्तर पर्वत को बाण-वर्षा से आश्रित हुआ
देख कर क्रुद्धा भगवती ने वेगपूर्वक श्रेष्ठ धनुष को
सींचा । (६)

दानव-सेना के मध्य दुर्गा द्वारा धनुर्वक शुकचाया गया
यह सुवर्णपृष्ठ वाला धनुष मेघों में विद्युत के तुल्य चमका । (७)

हे शुभ्रवन् ! उन्होंने कुछ राक्षसों को बाणों के द्वारा, कुछ को
रथों के द्वारा, कुछ को गदा के द्वारा, कुछ को सुसल के
द्वारा एवं कुछ को ढाल के द्वारा मार डाला । (८)

देवी के कालवृक्ष्य सिंह ने अपनी केसरसटा को हिलाने

कुलिशाभिहता दैत्याः शकत्या निर्भिन्नवधसः ।
 लाङ्गलैर्दारित्रीया विनिकृत्ताः परश्वधैः ॥ १०
 दण्डनिर्भिन्नशिरसश्चत्रविच्छिन्नवन्धनाः ।
 चेलुः पेतुश्च मम्बुश्च तत्त्वशुधापरे रणम् ॥ ११
 ते वध्यमाना रौद्रया दुर्गाया दैत्यदानवाः ।
 कालरात्रिं मन्यमाना दुद्रुवुर्भयपीडिताः ॥ १२
 सैन्याग्रं भग्नमालोक्य दुर्गामग्रे तथा स्थिताम् ।
 दृष्ट्वाजगाम नमरो मत्तकुञ्जरसस्थितः ॥ १३
 समागम्य च वेगेन देव्याः शक्तिं मुमोच ह ।
 त्रिशूलमपि सिंहाय प्राहिणोद् दानवो रणे ॥ १४
 तावापतन्तौ देव्या तु हुंकारेणाय भस्मसात् ।
 कृतावथ गजेन्द्रेण गृहीतो मध्यतो हरिः ॥ १५
 अथोत्पत्य च वेगेन तलेनाहत्य दानवम् ।
 गतासुः कुञ्जरस्कन्धात् क्षिप्य देव्यै निवेदितः ॥ १६

हुए अकेले अनेक दानवों का वध किया । (९)
 कुलिश से आहत, शक्ति से विदीर्ण वध स्थल वाले,
 हल से फाड़ी गयी गर्दनवाले, परश्वध से काटे गये, दण्ड से
 फोड़े गये शिरवाले तथा चक्र से विच्छिन्न बन्धनों वाले
 दैत्य विचलित हो गये, गिर गये, मूर्छित हो गये और कोई-
 कोई युद्ध छोड़कर भाग गये । (१०-११)
 भयकर दुर्गा द्वारा मारे जा रहे भय पीडित दैत्य एव
 दानव उन्हें कालरात्रि मानकर भाग खड़े हुए । (१२)
 सेना के अग्र भाग को भग्न तथा दुर्गा को सम्मुख
 स्थित देख कर मत्त हाथी पर आरूढ नमर आगे
 थाया । (१३)
 युद्ध में आकर दानव ने देवी के ऊपर वेगपूर्वक शक्ति
 से प्रहार किया एव सिंह के ऊपर त्रिशूल चलाया । (१४)
 देवी ने आ रहे उन दोनों अशों को कुञ्जर द्वारा भस्म
 सात् कर दिया । तदनन्तर गजेन्द्र ने सिंह के मध्य भाग
 को पकड़ लिया । (१५)
 तदनन्तर (सिंह ने) वेगपूर्वक उछल कर दानव को
 धरपकड़ से मारने के उपरान्त उस निष्प्राण (दानव) को
 कुञ्जर के स्कन्ध से नीचे गिरा कर देवी को निवेदित
 किया । (१६)
 हे ब्रह्मन् ! देवी कात्यायनी क्रोध से उस दैत्य को मध्य

गृहीत्वा दानवं मध्ये ब्रह्मन् कात्यायनी रपा ।
 सव्येन पाणिना भ्राम्य वादयत् पटहं यथा ॥ १७
 ततोऽद्दहासं मुमुचे तादृशे वाद्यतां गते ।
 हास्यात् सद्ब्रह्मवन्तस्या भूता नानानिधाऽद्बुधताः ॥ १८
 केचिद् व्याघ्रमुखा रौद्रा वृष्कारास्तथा परे ।
 हयास्या महिपास्याश्च वराहवदनाः परे ॥ १९
 आरुकुकुटवक्त्राश्च गौऽजाविकमुखास्तथा ।
 नानावक्त्राक्षिचरणा नानायुधधरास्तथा ॥ २०
 गायन्त्यग्ये हसन्त्यग्ये रमन्त्यग्ये तु सद्यः ।
 वादयन्त्यपरे तत्र स्तवन्त्यग्ये तथात्मिकाम् ॥ २१
 सा तैर्भूतगणैर्देवी सार्द्धं तदानवं बलम् ।
 शतयामास चाक्रम्य यथा सस्य महाशनिः ॥ २२
 सेनाग्रे निहते तस्मिन् तथा सेनाग्रगामिनि ।
 विभ्रुरः सैन्यपालस्तु योधयामास देवता ॥ २३

में पकड़ कर तथा बायें हाथ से घुमा कर पटह के सदृश
 बजाने लगी । (१७)
 तदनन्तर उसके उस प्रकार वायला को प्राप्त
 होने पर देवी ने अद्दहास किया । उनकी हँसी से अनेक
 प्रकार के अद्बुत भूत उत्पन्न हुए । (१८)
 कोई कोई भयकर (भूत) व्याघ्र के समान मुखवाले थे,
 किसी की आकृति वृक के सदृश थी, किसी का मुख घोड़े के
 तुल्य, किसी का महिप सदृश एव किसी का वराह जैसा
 था । (१९)
 किसी का मुख मूषक, कुकुकुट, गाय, बकरा अथवा
 भेड़ के सदृश था । वे सभी नाना प्रकार के मुख, आँख
 एव चरणों वाले तथा नाना प्रकार के आयुधों को धारण
 किये हुये थे । (२०)
 उनमें कुछ समूह बनाकर गाने लगे, कुछ हँसने लगे, कुछ
 रमण करने लगे, कुछ वादन करने लगे तथा कुछ देवी
 की स्तुति करने लगे । (२१)
 देवी ने उनभूतगणों के साथ उस दानव सेना पर आक्रमण
 कर उसे इस प्रकार नष्ट कर दिया जैसे महान् वज्र
 सरय (खेती) का नाश करता है । (२२)
 सेना के उस अग्र भाग तथा सेनाग्रगामी (सेनापति)
 के मारे जाने पर सैन्यपाल विभ्रुर ने देवताओं से युद्ध
 किया । (२३)

कार्मुकं दृढमाकर्णमाकृष्य रथिनां वरः ।
 ववर्ष शरजालानि यथा मेधो वसुध्वराम् ॥ २४
 तान् दुर्गा स्वशरीरिष्ठत्वा शरसंघान् सुपर्वभिः ।
 सौवर्णपुङ्खानपराञ्जशरान् जग्राह षोडश ॥ २५
 तत्रशतुर्भिश्चतुरस्तुरङ्गानपि भामिनी ।
 हत्या सारथिमेकेन ध्वजमेकेन चिच्छिदे ॥ २६
 तत्रस्तु सशरं चापं चिच्छेदैकेषुणाऽम्बिका ।
 छिन्ने धनुषि खड्गं च चर्मं चादत्तवान् बली ॥ २७
 तं खड्गं चर्मणा सार्धं दैत्यस्याधुन्वतो मलात् ।
 शरैश्चतुर्भिश्चिच्छेद ततः शूलं समाददे ॥ २८
 समुद्ग्राम्य महच्छूलं तंत्राद्रवदथाम्बिकाम् ।
 श्रोत्रुको मृदितोऽरण्ये मृगराजवधूं यथा ॥ २९
 तस्याभिपतत. पादौ करौ शीर्षं च पश्वभिः ।
 शरीरिश्चिच्छेद संक्रुद्धा न्यपतन्निहतोऽसुरः ॥ ३०
 तस्मिन् सेनापतौ क्षुण्णो तदोप्राप्त्यो महासुरः ।
 समाद्रवत वेगेन करालास्यत्रैव दानवः ॥ ३१

पाष्कलश्चोद्धतश्चैव उदग्राल्योऽग्रकार्मुकः ।
 दुर्द्धरो दुर्मुखश्चैव विडालनयनोऽपरः ॥ ३२
 एतेऽन्ये च महात्मानो दानवा बलिनां वराः ।
 कात्यायनीमाद्रवन्त नानाशस्त्रास्त्रपाणयः ॥ ३३
 तान् दृष्ट्वा लीलया दुर्गा वीणां जग्राह पाणिना ।
 चादयामास हस्तौ तथा डमरुकं वरम् ॥ ३४
 यथा यथा चादयते देवी वाद्यानि तानि तु ।
 तथा तथा भूतगणा नृत्यन्ति च हसन्ति च ॥ ३५
 ततोऽसुराः शस्त्रधराः समभ्येत्य सरस्वतीम् ।
 अभ्यघ्नन्स्तांश्च जग्राह केशेषु परमेश्वरी ॥ ३६
 प्रगृह्य केशेषु महासुरांस्तान्
 उत्पत्य सिंहात्तु नगस्य सानुम् ।
 ननर्त वीणां परिवादयन्ती
 पपौ च पान जगतो जनित्री ॥ ३७
 तत्रस्तु देव्या बलिनो महासुरा
 दोर्दण्डनिर्धृतविशीर्णदर्पाः ।

रथायोहियों में श्रेष्ठ उस दैत्य ने दृढ धनुष को वानों तक खींच कर इस प्रकार बाणों की वर्षा की जैसे मेघ वसुध्वरा पर जलवर्षा करता है । (२४)
 दुर्गा ने सुन्दर पर्वों याने अपने बाणों से उन बाण समूहों को काट कर सुवर्ण पुखवाल दूसरे सोलह बाणों को लिया । (२५)
 तदनन्तर क्रुद्ध दुर्गा ने चार बाणों से (उसके) चार घोड़ों को, एक से सारथी को एवं एक से ध्वज को काट डाला । (२६)
 तदुपरान्त अम्बिका ने एक बाण से उसने बाणसहित धनुष को काट डाला । धनुष कट जाने पर बलवान् चिभुर ने खड्ग और डाल प्रदण किया । (२७)
 देवी ने दैत्य के उस ढाल युक्त तलवार को जिसे वह धनुषपूर्वक घुमा रहा था चार बाणों से काट दिया । तदुपरान्त उसने शूल धारण किया । (२८)
 महान् शूल को घुमा कर वह अम्बिका की ओर इस प्रकार दौड़ा जैसे घन में शृगाल प्रसन्नमान होकर सिंदिनी की ओर दौड़ता है । (२९)
 अत्यन्त क्रुद्ध देवी ने पाँच बाणों से आक्रमणकारी उस

(असुर) के दोनों हाथों, दोनों पैरों एवं मस्तक को काट दिया जिससे मरकर वह असुर गिर पड़ा । (३०)
 उस सेनापति के मरने पर उग्रास्य नामक महान् असुर तथा करालास्य नामक दानव वेगपूर्वक दौड़े । (३१)
 बाष्कल, उद्धत, उदमाल्य, उग्रकार्मुक, दुर्धर, दुर्मुख, तथा विडालनयन—ये तथा अन्य अनेक शस्त्रधारी, अत्यन्त बली एवं श्रेष्ठ दानवों ने कात्यायनी को आक्रमण किया । (३२-३३)
 उन्हें देख कर देवी दुर्गा ने लीलापूर्वक हाथों में वीणा एवं श्रेष्ठ डमरुक लेकर हँसते हुए बजाना प्रारम्भ किया । (३४)
 देवी उषों उवा उन बाघों को बजाती थी त्यों-त्यों भूत-गण नाचते और हँसते थे । (३५)
 तदनन्तर शस्त्रधारी असुर सरस्वती के निरुद्ध जानर प्रहार करने लगे । परमेश्वरी ने उनके केशों को पकड़ लिया । (३६)
 वन महासुरों का केश पकड़ कर तथा सिद्ध से' लखल कर पर्वत शृंग पर आयी हुयी जगज्जननी (कात्यायनी) वीणा वादन करते हुए पान करने लगीं । (३७)
 तदनन्तर देवी के बाहुदण्ड से मारे गये विशीर्णदर्पाः

विस्रस्तवस्त्रा व्यसवश्च जाताः
 ततस्तु तान् वीक्ष्य महासुरेन्द्रान् ॥ ३८
 देव्या महौजा महिषासुरस्तु
 व्यद्रावयद् भूतगगान् खुराग्रैः ।
 तुण्डेन पुच्छेन तथोरसाऽन्यान्
 निःश्वासवातेन च भूतसंचारं ॥ ३९
 नादेन चैवाशुनिसन्निभेन
 विषाणकोट्या त्वपरान् प्रमथ्य ।
 दुद्राव सिंहं युधि हन्तुकामः
 ततोऽम्बिका क्रोधवशं जगाम ॥ ४०
 ततः स क्रोपादथ तीक्ष्णशृङ्गः
 क्षिप्रं गिरीन् भूमिमशीर्णयच्च ।
 संक्षोभयंतोयनिधीन् घनांश्च
 विध्वंसयन् प्राद्वताथ दुर्गाम् ॥ ४१
 सा चाथ पाशेन वन्यथ दुष्टं
 स चाप्यभूत् क्लिन्नकटः करीन्द्रः ।
 करं प्रचिच्छेद च हस्तिनोऽग्रं
 स चापि भूयो महिषोऽभिजातः ॥ ४२

बलवान् महासुर अस्तव्यस्त वस्त्रवाणे एव विगतप्राण हो
 गए । तदुपरान्त उन श्रेष्ठ महासुरों को देख कर महाबलवान्
 महिषासुर ने अपने खुराम, तुण्ड, पुच्छ, वश स्थल तथा
 निःश्वास वायु से देवी के भूतगर्गों को भगा दिया । (३८ ३९)
 वज्रतुल्य शब्द एव सींगों की नोक से अन्गों को प्रम-
 थित करके युद्ध में सिंह को मारने की इच्छा से वह दौड़ा ।
 इससे अम्बिका क्रुद्ध हो गई । (४०)
 तदनन्तर तीक्ष्ण शृङ्गयुक्त वह (महिष) कोपवश
 शीघ्रतापूर्वक पर्वतों एवं भूमि को विशीर्ण करने लगा तथा
 समुद्र को सञ्चुम्ब करते हुए एवं भेषों को विध्वस्त करते
 हुए दुर्गों की ओर दौड़ा । (४१)
 तदनन्तर वहोंने इस दुष्ट को पाश से बाँध लिया ।
 और वह मदसिक्तगण्डस्थल वाला गजराज बन गया । देवी
 ने हाथी का शृण्डाम काट दिया । तत्पश्चात् वह पुन महिष
 हो गया । (४२)
 हे महर्षे ! तदनन्तर सृष्टानी ने उसके ऊपर शूल फेंका,

ततोऽस्य शूलं व्यसृजन्मृडानी
 स शीर्णमूलो न्यपतत् पृथिव्याम् ।
 शक्तिं प्रचिक्षेप हुताश्रदचां
 सा कुण्ठिताया न्यपतन्महर्षे ॥ ४३
 चक्रं हरेर्दानवचक्रहन्तुः
 क्षिप्रं त्वचक्रत्वष्टुपागतं हि ।
 गदां समाविध्य धनेश्वरस्य
 क्षिप्तातु भग्ना न्यपतत् पृथिव्याम् ॥ ४४
 जलेष्वाशोऽपि महासुरेण
 विषाणतुण्डाग्रसुरप्रशुन्नः ।
 निरस्य तत्कोपितया च मृक्तो
 दण्डस्तु याम्यो बहुखण्डतां गतः ॥ ४५
 वज्रं सुरेन्द्रस्य च विग्रहेऽस्य
 मृक्तं सुसूक्ष्मत्वष्टुपाजगाम ।
 संत्यज्य मिहं महिषासुरस्य
 दुर्गोऽधिरूढा सहसैव प्रष्टम् ॥ ४६
 प्रष्टस्थितायां महिषासुरोऽपि
 पोप्ल्यते वीर्यमदान्मृडान्याम् ।

वह (शूल) टूट कर पृथ्वी पर गिर पड़ा । तत्पश्चात्
 वहोंने अग्नि द्वारा प्रदत्त शक्ति फेंकी, किन्तु वह भी कुण्ठिताम
 होकर गिर पड़ी । (४३)

दानव समूह को मारने वाला हरि का चक्र भी फेंके
 जाने पर अचक्र बन गया (निष्क्रिय हो गया) । धनेश्वर
 की गुमा कर फेंकी गयी गदा भग्न होकर पृथ्वी पर गिर
 पड़ी । (४४)

महासुर ने जलेष्वा के पास को विषाण, तुण्डाम एवं
 खुर के प्रहार से निरस्त कर दिया । कुपित (देवी द्वारा)
 छोड़ा गया यम का दण्ड भी कई खण्डों में टूट
 गया । (४५)

उसके शरीर पर चलाया गया इन्द्र का वज्र भी अति
 सूक्ष्म (टुकड़े टुकड़े) हो गया । तदनन्तर दुर्गो सहसा सिंह
 की छोड़कर महिषासुर के प्रष्ट पर आहूट हो गई । (४६)

मृष्टानी के प्रष्टस्थित होने पर महिषासुर वीर्य के मद से

सा चापि पद्भ्यां मृदुकोमलाम्ब्यां
ममर्द तं क्लिन्नमिवाजिनं हि ॥ ४७
स मृद्यमानो धरणीधराभो
देव्या वली हीननलो बभूव ।
ततोऽस्य शूलेन निभेद कण्ठं
तस्मात् पुमान् यद्गुधरो विनिर्गतः ॥ ४८
निष्क्रान्तमात्रं हृदये पदा तम्
आहत्य संपृष्ट कचेपु कोपात् ।
शिरः प्रविच्छेद वरासिनाऽस्य
हाहाकृतं दैत्यनलं तदाऽभूत् ॥ ४९
सचण्डमृण्डाः समयाः सताराः

सहासिलोम्ना भयकातराक्षाः ।
संताप्यमानाः प्रमथैर्मवान्याः
पातलमेवाविविशुर्मयार्ताः ॥ ५०
देव्या जयं देवगणा विलोक्य
स्तुवन्ति देवीं स्तुतिभिर्महर्षे ।
नारायणीं सर्वजगत्प्रतिष्ठां
कात्यायनीं घोरमुरतीं सुरूपाम् ॥ ५१
संस्तूयमाना सुरसिद्धसंघै-
र्निपण्णभूता हरपादमूले ।
भूयो भविष्याम्यमरार्थमेव-
मुक्त्वा सुरांस्तान् प्रविशेत् दुर्गा ॥ ५२

इति श्रीवामनपुराणे एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

२२

नारद उवाच ।

पुलस्त्य कथ्यतां तावद् देव्या भूयः नमृद्भवः ।
महत्कौतूहलं मेऽथ विस्तराद् प्रब्रूयिष्यते ॥ १

उल्लसने लगा । ये भी मृदु तथा कोमल चरणों से भीगे मृग-
चर्म के सटका उसना मर्दन करने लगीं । (४७)

देवी द्वारा मर्दन किया जाता हुआ पर्वताकार बलवान्
बह (महिषासुर) बलहीन हो गया । तदनन्तर (देवी ने)
शूल से उसका कण्ठ काट दिया । उससे (कटे कट से)
एक यद्गुधारी पुरुष निकला । (४८)

उसके निकलते ही (देवी ने) उसके हृदय पर चरण
से आघात कर और क्रोध से उसके बालों को पकड़कर
श्रेष्ठ तलवार से उसका शिर काट डाला । उस समय दैत्यों की
सेना हाहाकार करने लगी । (४९)

पुलस्त्य उवाच ।

श्रूयतां कथयिष्यामि भूयोऽस्याः संभवं मुने ।
शुम्भासुरवधार्थाय लोकानां हितकाम्यया ॥ २

चण्ड, मुण्ड, मय, तार और असिलोमा आदि भय से
कातराक्ष होकर तथा भयान्त्रि के प्रमथों द्वारा प्रताडित होने पर
भयार्त होकर पातल में प्रविष्ट हो गये । (५०)

हे महर्षे ! देवी की जय को देवगण देवगण स्तुतियों
के द्वारा सर्वजगत् की आधारभूता, घोरमुरती एवं सुरूपा,
नारायणी, कात्यायनी देवी की स्तुति करने लगे । (५१)

शिर के पादमूल में बैठी हुई देवीं और सिद्धों द्वारा
संस्तूयमान दुर्गा ने कहा कि मैं अमरों के लिये पुन आविर्भूत
होऊँगी । ऐसा बहने के उपरान्त वह दुर्गा अन्वर्षान
हो गई । (५२)

श्रीवामनपुराण में इहीमर्षो अध्याय समाप्त ॥२१॥

२२

नारद ने कहा—हे प्रब्रूयिष्यामि भूयोऽस्याः संभवं मुने ।
देवी की उत्पत्ति मुझसे पुन विस्तर पूर्वक कहिये । मुझे
महान् श्रुतहृच्छ है । (१)

पुलस्त्य ने कहा "हे मुने ! मुनिये, मैं होरहित की
कामना से शुम्भासुर के बधहेतु हुई इनकी पुन उत्पत्ति का
वर्णन करता हूँ ।" (२)

या सा हिमवतः पुत्री भवेनोढा तपोधना ।
 उमा नाम्ना च तस्याः सा कोशाज्ञाता तु कौशिकी ॥ ३
 संभूय विन्ध्यं गत्वा च भूयो भूतगणैर्वृता ।
 शुम्भं चैव निशुम्भं च बधिष्यति वरायुधैः ॥ ४
 नारद उवाच ।

ब्रह्मंस्त्वया समाख्याता मृता दशममजा सती ।
 सा जाता हिमवत्पुत्रीत्येवं मे वक्तुमर्हसि ॥ ५
 यथा च पार्वतीकोशात् समुद्भूता हि कौशिकी ।
 यथा हतवती शुम्भं निशुम्भं च महासुरम् ॥ ६
 कस्य चेमौ सुतो वीरौ त्पातौ शुम्भनिशुम्भकौ ।
 एतद् विस्तरतः सर्वं यथावद् वक्तुमर्हसि ॥ ७

पुलस्त्य उवाच ।

एतत्ते कथयिष्यामि पार्वत्याः संभवं ह्यने ।
 शृणुष्वान्वहितो भूत्वा स्कन्दोत्पत्तिं च शाश्वतीम् ॥ ८
 रुद्रः सत्यां प्रणष्टायां ब्रह्मचारिण्यते स्थितः ।

शुक्र ने हिमवान् की जिस तपोधना उमा नामक पुत्री से विवाह किया था उन्हीं के कोश से वह कौशिकी उत्पन्न हुई । (३)

उत्पन्न होने के उपरान्त भूतगणों के साथ पुन विन्ध्यपर्वत पर जाकर श्रेष्ठ आयुषों से वे शुम्भ और निशुम्भ का वध करेंगी । (४)

नारद ने कहा "हे ब्रह्मन् ! आपने यह कहा था कि दक्षपुत्री सती मर गई वे पुन (कैसे) हिमवान् की पुत्री हुई यह मुझसे कहिये । (५)

पार्वती के कोश से जिस प्रकार कौशिकी उत्पन्न हुई, तथा उन्हीं निशुम्भ और निशुम्भ नामक महान् असुरों का जिस प्रकार वध किया तथा वे शुम्भ और निशुम्भ नामक प्रसिद्ध वीर किसके पुत्र थे—इन सभी को विस्तार पूर्वक ठीक ठीक बतलाइये ।" (६-७)

पुलस्त्य ने कहा—हे मुने मैं आपसे पार्वती की इस उत्पत्ति का वर्णन करता हूँ । आप सावधान होकर स्कन्द की शाश्वत उत्पत्ति को सुनें । (८)

सती के नष्ट हो जाने पर ब्रह्मचारिण्यते में स्थित तथा आश्रयहीन रुद्र तप करने लगे । (९)

दैत्यों के दर्प का नाश करने वाले वे देवताओं के

निराश्रयत्वमापन्नस्तपस्तप्तुं व्यवस्थितः ॥ ९
 स चासीद् देवसेनानीदैत्यदर्पविनाशनः ।
 शिवरूपत्वमास्थाय सैनापत्यं समुत्सृजत् ॥ १०
 ततो निराकृता देवाः सेनानाथेन शंभुना ।
 दानवेन्द्रेण विक्रम्य महिषेण पराजिताः ॥ ११
 ततो जम्बुः सुरेशानं द्रष्टुं चक्रगदाधरम् ।
 श्वेतद्वीपे महाहंसं प्रपन्नाः शरणं हरिम् ॥ १२
 तानागतान् सुरान् दृष्ट्वा ततः शक्रपुरोगमान् ।
 विहस्य मेघगम्भीरं प्रोवाच पुरुषोत्तमः ॥ १३
 किं जितास्त्वसुरेन्द्रेण महिषेण दुरात्मना ।
 येन सर्वे समेत्यैवं मम पार्श्वेऽपगताः ॥ १४
 तद् युष्माकं हितार्थं यद् वदामि सुरोत्तमाः ।
 तत्कुरुष्वं जयो येन समाश्रित्य भवेद्भि वः ॥ १५
 य एते पितरो दिव्यास्त्वग्निष्पाचेति विशुक्ताः ।
 अमीषां मानसी कन्या मेना नाम्नाऽस्ति देवताः ॥ १६

सेनापति थे । अब उन्हींने शिव (मंगल) स्वरूप धारण कर सेनापतित्व का परित्याग कर दिया । (१०)

तदुपरान्त सेनापति शम्भु से निराकृत (परित्यक्त) देवों को दानवेन्द्र महिष ने बलपूर्वक आक्रमण कर पराजित कर दिया । (११)

तदनन्तर (वे देवगण) सुरस्वामी महाहंस (परमात्मा) चक्रगदाधर के दर्शनार्थ श्वेतद्वीप में गये एवं हरि के शरणपत्र लिये । (१२)

तदनन्तर उन इन्द्रादि देवों को आया हुआ देखकर पुरुषोत्तम ने हँसकर मेघ के समान गम्भीर स्वर में कहा— (१३)

क्या आप सभी लोग असुराधिप दुरात्मा महिष से पराजित हो गये हैं जिससे इस प्रकार समवेत होकर मेरे पास आये हैं ? (१४)

हे सुरोत्तमो ! आप लोगों के हितार्थ मैं जो कहता हूँ उसे करें जिसमा आश्रय करने से आपकी विजय होगी । (१५)

हे देवगण ! जो वे दिव्य पितर 'अग्निष्पाच' इस नाम से प्रसिद्ध हैं उन्हींकी मेना नामक एक मानसी कन्या है । (१६)

तामाराध्य महातिथ्यां श्रद्धया परयाऽमराः ।
 प्रार्थयध्वं सती मेनां प्रालेयाद्रेरिहार्थतः ॥ १७
 तस्यां सा रूपसंपुक्ता भविष्यति तपस्विनी ।
 दक्षकोपाद् यया मुक्तं मलयज्जीवितं प्रियम् ॥ १८
 सा शंकरात् स्वतेजोऽंशं जनयिष्यति यं सुतम् ।
 स हनिष्यति दैत्येन्द्रं महिषं सपदासुगम् ॥ १९
 तस्माद् गच्छत पुण्यं तत् कुरुक्षेत्रं महाफलम् ।
 यत्र पृथुदके तीर्थे पूज्यन्तां पितरोऽञ्जयाः ॥ २०
 महातिथ्यां महापुण्ये यदि शत्रुपराभवम् ।
 जिहासतात्मनः सर्वे इत्यं वै क्रियतामिति ॥ २१
 पुलस्त्य उवाच ।
 इत्युक्त्वा वासुदेवेन देवाः शक्रपुरोगमाः ।
 कृवाञ्जलिपुटा भूत्वा पत्रच्छुः परमेस्वरम् ॥ २२
 देवा उचुः ।
 कोऽयं कुरुक्षेत्र इति यत्र पुण्यं पृथुदकम् ।
 उद्भवं तम्य तीर्थस्य भगवान् प्रव्रवीतु नः ॥ २३

केय प्रोक्ता महापुण्या त्रियीनाद्युत्तमा तिथिः ।
 यस्यां हि पितरो दिव्याः पूज्याऽस्माभिः प्रयत्नतः ॥ २४
 ततः सुराणां वचनान्मुरारिः कैटभार्दनः ।
 कुरुक्षेत्रोद्भवं पुण्यं प्रोक्तवांस्तां त्रियीमपि ॥ २५
 श्रीभगवानुवाच ।
 सोमवंशोद्भवो राजा ऋक्षो नाम महानलः ।
 कृतस्यादौ समभवदक्षत् संवरणोऽभवत् ॥ २६
 स च पित्रा निजे राज्ये बाल एवाभिपेक्षितः ।
 बाल्येऽपि धर्मनिरतो मद्भक्तश्च सदाऽभवत् ॥ २७
 पुरोहितस्तु तस्यासीद् वसिष्ठो वरुणात्मजः ।
 स चास्याध्यापयामास साहान् वेदानुदारधीः ॥ २८
 ततो जगान चारण्यं त्वनध्याये नृपात्मजः ।
 सर्वकर्मसु निक्षिप्य वसिष्ठं तपसां निधिम् ॥ २९
 ततो मृगयाध्याक्षेपाद् एकाकी विजनं वनम् ।
 वैभ्राज स जगामाय जयोन्मादनमभ्ययात् ॥ ३०
 ततस्तु कौतुकायिष्ठः सर्वर्तुकुसुमे वने ।

वाच्ये । (२३)
 “अतिपवित्र कौन तिथि तिथियों में उत्तम बड़ी गई है जिसमें हम प्रयत्न पूर्वक दिव्य पितरों की पूजा करें ।” (२४)
 तदुपरान्त कैटभार्दन मुरारि ने देवताओं के कहने पर उनसे कुरुक्षेत्र की पवित्र उत्पत्ति और उस तिथि का वर्णन किया । (२५)
 श्रीभगवान् ने कहा—कृत युग के आदि में श्वश्र नामक एक महायज्ञवान् राजा सोमवंश में उत्पन्न हुआ । श्वश्र से संवरण की उत्पत्ति हुई । (२६)
 पिता ने उसे बाल्यकाल में ही राज्याभिषिक्त कर दिया । यह शाल्यावस्था में भी सदा धर्म निरत पर्व मेरा भक्त था । (२७)
 उदारचेता धरुणपुत्र वसिष्ठ उसके पुरोहित थे । उन्होंने उसे अज्ञात संहित वेदों को पढ़ाया । (२८)
 तदनन्तर अनध्याय होने पर तपोतिथि वसिष्ठ को समी कार्य सौंपकर वह राजपुत्र वन में गया । (२९)
 तदनन्तर मृगयासक्त होकर वह एकाकी वैभ्राज नामक निर्जन वन में पहुँचा और फिर उन्मादग्रस्त हो गया । (३०)

हे देववृन्द ! अत्यन्त श्रद्धा से महातिथि (अमावास्या) में सती मेना की आराधना कर इससे हिमालय (की पत्नी बनने) के निमित्त प्रार्थना कीजिये । (१७)
 उन्दी (मेना) से रूपवती यह तपस्विनी उत्पन्न होगी जिसने दक्षकोप से अपने प्रिय जीवन को मल के सदृश त्याग दिया था । (१८)
 वह शक्र से स्वतेज के अशस्वरूप जिस पुत्र को उत्पन्न करेगी वह दैत्येन्द्र महिष को उसके अनुचरों के साथ मारेगा । (१९)
 अब आप लोग महाफलप्रद, पवित्र कुरुक्षेत्र में जाइये और वहाँ पृथुदक तीर्थ में अजय्य पितरों का पूजन करिये । (२०)
 यदि आप सभी लोग अपने शत्रु का पराभव चाहते हैं तो महातिथि के दिन परम पवित्र तीर्थ में इस प्रकार का कार्य करें । (२१)
 पुलस्त्य ने कहा—वासुदेव के ऐसा कहने पर शक्रादि देवों ने हाथ जोड़कर परमेस्वर से पूछा । (२२)
 देवताओं ने कहा—“यह कुरुक्षेत्र कौन है जहाँ पवित्र पृथुदक तीर्थ है ? आप हमलोगों को उस तीर्थ की उत्पत्ति

अवितृप्तः सुगन्धस्य समन्ताद् व्यचरद् वनम् ॥ ३१
 स वनान्तं च ददशे फुल्लकोकनदावृतम् ।
 कङ्कारपत्रकुमुदैः कमलेन्दीवरैरपि ॥ ३२
 तत्र क्रीडन्ति सततमप्सरोऽभरकन्यकाः ।
 तासां मध्ये ददर्शय कन्यां संवरणोऽधिकाम् ॥ ३३
 ददर्शनादेव स नृपः काममार्गणपीडितः ।
 जातः सा च तमीश्वर्यैव कामवाणातुराऽभवत् ॥ ३४
 उभौ तौ पीडितौ मोहं जग्मतुः काममार्गणैः ।
 राजा चलासनो भूम्यां निपपात तुरङ्गमात् ॥ ३५
 तमभ्येत्य महात्मानो गन्धर्वाः कामरूपिणः ।
 सिपिचुर्वारिणाऽभ्येत्य लब्धसङ्गोऽभवत् क्षणात् ॥ ३६
 सा चाप्सरोभिरुत्पात्य नीठा पितृकुल निजम् ।
 ताभिराश्वासिता चापि मधुरैर्वचनाम्बुभिः ॥ ३७
 स चाप्यारुह्य तुरगं प्रतिष्ठानं पुरोत्तमम् ।

तदुपरान्त सर्वश्रुतुओं के कुसुमों वाले वन में कौतुक्-
 विष्ट होकर सुगन्धों से अलस होने के कारण चारों ओर
 विचरण करने लगा । (३१)

उसने फुल्ल कोकनद, कङ्कलार, पद्म, कुसुद, कमल एव
 इन्दीवों से आवृत वन को देखा । (३२)

वहाँ अप्सरायें एव देव कन्यायें सतत क्रीडा कर रही
 थीं । सवरण ने उनके मध्य एक अत्यन्त सुन्दरी कन्या को
 देखा । (३३)

देखते ही वह राजा कामवाणों से पीडित हो गया
 और वह कन्या भी उसे देखते ही कामवाण से आतुर हो
 गई । (३४)

काम के वाणों से पीडित वे दोनों मूर्च्छित हो गये ।
 राजा का आसन विचलित हो गया और वह घोड़े से
 पृथ्वी पर गिर पड़ा । (३५)

इच्छानुसार रूप धारण करने वाले महात्मा गन्धर्वलोग
 उसके पास जानर जल से सिद्धन करने लगे और वह
 क्षणमात्र में सचेत हो गया । (३६)

अप्सरायें उसे भी उठाकर उसके पिता के गृह में ले गईं
 एव उन्होंने उसे मधुर बचन रूपी जल से आरवासित
 किया । (३७)

गतस्तु मेरुशिखरं कामचारी यथाऽमरः ॥ ३८
 यदाप्रभृति सा दृष्टा आर्क्षिणा तपती गिरौ ।
 तदाप्रभृति नाश्नाति दिवा स्वपिति नो निधिः ॥ ३९
 ततः सर्वनिदव्यग्रो विदित्वा वरुणात्मजः ।
 तपतीतापितं वीरं पार्थिवं तपसां निधिः ॥ ४०
 समुत्पत्य महायोगी गगनं रविमण्डलम् ।
 विवेश देवं तिग्मांशुं ददर्श स्यन्दने स्थितम् ॥ ४१
 तं दृष्ट्वा भास्करं देवं प्रणमद् द्विजसत्तमः ।
 प्रतिप्रणमितश्चासौ भास्करेणाविशद् रथे ॥ ४२
 ज्वलज्जटाकलापोऽसौ दिवाकरसमीपगः ।
 श्रोभते वारुणिः श्रीमान् द्वितीय इव भास्करः ॥ ४३
 ततः सपूजितोऽर्षाद्यैर्भास्करेण तपोधनः ।
 पृष्टश्चागमने हेतुं प्रत्युवाच दिवाकरम् ॥ ४४
 समायातोऽस्मि देवेश याचितुं त्वां महायुते ।

वह (राजा) भी घोड़े पर आरुह्य होकर श्रेष्ठ प्रतिष्ठान पुर को
 इस प्रकार चला गया जैसे कामचारी देवता मेरु-शिखर पर
 जाते हैं । (३८)

श्रुत्यन्तय सवरण ने जब से नेत्रों द्वारा देवकन्या
 तपती को पयैत पर देखा, तब से वह दिन में न तो भोजन
 करता था और न रात्रि में सोता था । (३९)

तदनन्तर सबस, अग्र्यम, तपोनिधि एव महायोगी वरुण-
 पुत्र वसिष्ठ उस वीर राजाको तपती के कारण सन्तप्त
 जान कर आकाश में ऊपर उठे एव सूर्य मण्डल में प्रवेश कर
 रथ पर बैठे हुये सूर्य देव को देखा । (४०-४१)

द्विजोत्तम वसिष्ठ ने सूर्यदेव को देख कर प्रणाम किया
 एवं सूर्य द्वारा प्रतिप्रणाम किये जाने के उपरान्त रथ में
 प्रवेश किया । (४२)

भास्कर के समीप स्थित प्रज्वलित जटाकलाप युक्त वरुण-
 पुत्र द्वितीय भास्कर के सदृश सुशोभित हुये । (४३)

तदनन्तर भास्कर द्वारा अर्षादि से सम्पूजित होने के
 पश्चात् आगमन का कारण पूछे जाने पर तपोधन ने दिवाकर
 से कहा— (४४)

“हे महायुतिमान् देवेश ! मैं संवरण के लिए आप से

सुतां संवरणस्यार्थं तस्य त्वं दातुमर्हसि ॥ ४५
 ततो वसिष्ठाय दिवाकरेण
 निवेदिता सा तपती सन्जा ।
 गृह्यागताय द्विजपुंगवाय
 राज्ञोऽर्थतः संवरणस्य देवाः ॥ ४६
 सावित्रिमादाय ततो वसिष्ठः
 स्वमाश्रमं पुण्यमुपाजगाम ।
 सा चापि संसृत्य नृपात्मजं तं
 कृताञ्जलिर्यारुणिमाह देवी ॥ ४७
 तपस्युवाच ।
 ब्रह्मन् मया खेदमुपेत्य यो हि
 सहाप्सरोभिः परिचारिकाभिः ।
 दृष्टो ह्यरण्येऽमरगर्भतुल्यो
 नृपात्मजो लक्ष्मणतोऽभिजाने ॥ ४८
 पादौ शुभौ चक्रगदासिचिह्नौ
 जहौ तथोरु करिहस्ततुल्यौ ।

कटिस्तथा सिंहकटिर्धैव
 . . . धामं च मध्यं त्रिवलीनिवद्धम् ॥ ४९
 ग्रीवाऽस्य शङ्खाकृतिमादधाति
 भ्रुवौ च पीनौ कठिनौ सुदीर्घौ ।
 हस्तौ तथा पद्मदलोद्भवाङ्गौ
 छत्राकृतिस्तस्य शिरो विभाति ॥ ५०
 नीलाश्र केशाः कुटिलाश्च तस्य
 कर्णौ समांसौ सुसमा च नामा ।
 दीर्घाश्च तस्याहङ्गुलयः सुपर्वाः
 पद्भ्यां कराम्यां दक्षनाश्च शुभ्रः ॥ ५१
 समुन्नतः पद्भिरुदारवीर्य-
 रित्रभिर्गभीरस्त्रिषु च प्रलम्बः ।
 रक्तस्तया पश्रसु राजपुत्रः
 कृष्णधतुर्भस्त्रिभिरानतोऽपि ॥ ५२
 श्याम्यां च शुक्लः सुरभिश्चतुर्भिः
 दृश्यन्ति पद्मानि दशैव चास्य ।

कन्या की याचना करने आया हूँ। उसे आप प्रदान करें। (४५)
 हे देवगण! तदनन्तर भास्कर ने गृह्यागत द्विजश्रेष्ठ वसिष्ठ को राजा संवरण के लिये तपती नामक वह कन्या समर्पित कर दी। (४६)
 तदुपरान्त सूर्यपुत्री को लेकर वसिष्ठ अपने पवित्र आश्रम में आये। उस कन्या ने भी उस राजपुत्र का स्मरण कर वसिष्ठ से हाथ जोड़कर कहा। (४७)
 तपती ने कहा—हे ब्रह्मन्! खेदयुक्त होकर परिचारिका अप्सराओं के साथ मैंने वन में देवपुत्र तुझ जिस राजपुत्र को देखा था उसको मैं लक्ष्मणों से जानती हूँ। (४८)
 उसके हीनौ शुभ चरण चक्र, गदा एवं शसि के चिह्नों से युक्त हैं, उसकी जह्वायें तथा ऊरु हाथी के शुण्ड सदृश हैं, तथा उसकी कटि सिंह की कटि के समान है तथा त्रिवली

निवद्ध उसका मध्य भाग अत्यन्त कृश है। (४९)
 उसकी ग्रीवा शङ्ख के सदृश है, दोनों भ्रुवार्थ मोटी, कठोर एवं दीर्घ हैं, दोनों करतल पद्मदल से चिह्नित हैं तथा उसका मस्तक छत्र सदृश सुशोभित है। (५०)
 उसके केश नीले तथा लुँचपाते हैं, दोनों कर्णमांसल हैं, नासिका सुडौल है, उसके हाथों पर पैरों की अँगुलियाँ सुन्दर एवं बाली एवं दीर्घ हैं तथा उसके दाँत शुभ्र हैं। (५१)
 वह महावीर्यायु राजपुत्र छ स्थानों से उन्नत, तीन स्थानों से गभीर और तीन स्थानों से लम्बा पाँच स्थानों से छाल, चार स्थानों से काल और तीन स्थानों से नम्र है। (५२)
 वह दो स्थानों से शुक्ल तथा चार स्थानों से सुगन्धित है। उसके दस स्थानों पर कमल दिखलाई पड़ने हैं। हे

१. रामचन्द्रकृत इत नामकपुराण की संस्कृत टीका के अनुसार ५२वें तथा ५३वें श्लोक के पूर्वार्ध का अर्थ इस प्रकार है—

सलाह, रक्षण, गण्ड, ग्रीवा, कटि तथा ऊरु-ये छ भेग उन्नत हैं, नाभि, मध्य तथा वज्रु ये तीन भेग गभीर हैं, दोनों भ्रुवार्थ तथा नासिकोप ये तीन भेग प्रलम्ब हैं, दोनों पैर-शान्त, मधुर, हस्तद्वय, पादद्वय तथा नख ये पाँच रक्त हैं, केश, पद्म पीर कनीजिवा ये चार भेग कृष्ण हैं, भ्रुव, नेत्रप्रान्थद्वय, तथा कर्णद्वय नम्र हैं, दन्त तथा नेत्र दो भेग युक्त वर्ण के हैं, केश, मुख तथा गण्डद्वय ये चार भेग सुगन्धित हैं।

वृतः स भर्ता भगवान् हि पूर्वं
 तं राजपुत्रं भुवि संविचिन्त्य ॥ ५३
 ददस्व मां नाथ तपस्विनेऽस्मै
 गुणोपपन्नाय समीहिताय ।
 नेहान्यकामां प्रवदन्ति सन्तो
 दातुं तथाऽन्यस्य विभो क्षमस्व ॥ ५४
 देवदेव उवाच ।
 इत्येवमुक्तः सवितुश्च पुत्र्या
 ऋषिस्तदा ध्यानपरो बभूव ।
 ज्ञात्वा च तत्रार्कसुतां सकामां
 हृदा युतो वाक्यमिदं जगाद ॥ ५५
 स एव पुत्रि नृपतेस्तनूजो
 दृष्टः पुरा कामयसे यमघ ।
 स एव चायाति ममाश्रम वै
 ऋक्षात्मजः संवरणो हि नाम्ना ॥ ५६
 अथाजगाम स नृपस्य पुत्र-
 स्तमाश्रमं ब्राह्मणपुंगवस्य ।
 दृष्ट्वा वसिष्ठं प्रणिपत्य भूधर्ना

स्थितस्त्वपश्यत् तपतीं नरेन्द्रः ॥ ५७
 दृष्ट्वा च तां पद्मविशालनेत्रां
 ता पूर्वदृष्टामिति चिन्तयित्वा ।
 पप्रच्छ केयं ललना द्विजेन्द्र
 स वारुणिः प्राह नराधिपेन्द्रम् ॥ ५८
 इयं विवस्वद्दुहिता नरेन्द्र
 नाम्ना प्रसिद्धा तपती पृथिव्याम् ।
 मया तनार्याय दिवाकरोऽर्थित,
 प्रादान्मया त्वाश्रममानिनिन्ये ॥ ५९
 तस्मात् समुच्छिद्य नरेन्द्र देव्याः
 पाणिं तपत्या विधिवद् गृहाण ।
 इत्येवमुक्तो नृपतिः प्रहृष्टो
 जग्राह पाणिं विधिवत् तपत्याः ॥ ६०
 सा तं पतिं प्राप्य मनोऽभिरामं
 सूर्यात्मजा शुकसमप्रभावम् ।
 रराम तन्वी भवनेत्तमेपु
 यथा महेन्द्रं दिवि दैत्यकन्या ॥ ६१

इति श्रीवामनपुराणे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

भगवन् ! मैंने पृथ्वी पर उस राजपुत्र को विचारपूर्वक
 पहले ही पति रूप से वरण किया है । (५३)
 हे नाथ ! गुणोपपन्न तथा अभीष्ट उस तपस्वी के निमित्त
 मुझे प्रदान करें । सन्तों का वह बहना है कि अन्य की कामना
 करने वाली स्त्री को किसी दूसरे को नहीं देना चाहिये । हे
 विभो ! मुझे क्षमा करें । (५४)
 देव देव ने कहा—तब सूर्य-पुत्री के ऐसा कहने पर
 ऋषि ध्यानमग्न हो गये और सूर्य-पुत्री को उस
 कुमार में आसक्त जानकर प्रसन्नता पूर्वक यह वचन
 कहे । (५५)
 हे पुत्रि ! जिसकी तुम आज कामना कर रही हो उसी
 राजपुत्र को तुमने पहले देखा था । वही संवरण नामक
 ऋक्ष-पुत्र मेरे आश्रम में आ रहा है । (५६)
 तदनन्तर वह राजकुमार ब्राह्मणश्रेष्ठ वसिष्ठ के आश्रम
 में आया । उस नरेन्द्र ने वसिष्ठ को देखकर शिर झुकाकर

प्रणाम किया और बैठने पर तपती को देखा । (५७)
 कमल के सदृश विशाल नेत्रोंवाली उसने देखकर उसने
 सोचा कि इसे मैंने पहले भी देखा है । उसने पूछा 'हे
 द्विजवर ! यह ललना कौन है ?' तब वरुणपुत्र ने शंजेन्द्र
 (सवरण) से कहा— (५८)
 हे नरेन्द्र ! पृथ्वी में तपती नाम से प्रसिद्ध यह सूर्य
 की पुत्री है । तुम्हारे लिये मेरे माँगने पर दिवाकर ने इसे
 मुझे दे दिया और मैं आश्रम में लाया हूँ । (५९)
 "अतः हे नरेन्द्र ! उठो एव विधिवत् तपती देवी वा
 पाणिग्रहण करो । ऐसा कहे आने पर अतिहर्षित नृपति ने
 तपती का विधिवत् पाणिग्रहण किया । (६०)
 वह सूर्य-नन्या (तपती) इन्द्र सुलभ प्रभावशाली
 उस मनोहर पति को पाकर उत्तम महलों में इस प्रकार
 रमण करने लगी जैसे स्वर्ग में महेन्द्र को पाकर दैत्यकन्या
 (वीलोमी) विहार करती है । (६१)

श्रीवामनपुराणे में बाह्यर्षेण समाप्त ॥२२॥

देवदेव उवाच ।
 तस्यां तपत्यां नरसत्त्वमेन
 जातः सुतः पार्थिवलक्षणस्तु ।
 स जातर्मादिभिरेव संस्कृतो
 विवर्द्धताज्येन हुतो यथाऽग्निः ॥ १
 कृतोऽस्य चूडाकरणश्च देवा
 विप्रेण मित्रावरुणात्मजेन ।
 नवाब्दिकस्य व्रतगन्धनं च
 वेदे च शास्त्रे विधिपारगोऽभूत् ॥ २
 ततश्चतुर्भुजभिरपीह वर्षैः
 सर्वज्ञतामभ्यगमत् ततोऽसौ ।
 ख्यातः प्रथिव्यां पुरुषोत्तमोऽसौ
 नाम्ना कुरुः संवरणस्य पुत्रः ॥ ३
 ततो नरपतिर्दृष्ट्वा धार्मिकं तनयं शुभम् ।

दारक्रियार्थमकरोद् यत्नं शुभकुले ततः ॥ ४
 सौदामिनीं सुदाम्नस्तु सुतां रूपाधिकां नृपः ।
 कुरोरर्थाय दृत्तगन् स प्रादात् कुरवेऽपि ताम् ॥ ५
 स तां नृपसुतां लब्ध्वा धर्मार्थावविरोधयन् ।
 रेमे तन्व्या सह तथा पौलोम्या मघवानिच ॥ ६
 ततो नरपतिः पुत्रं राज्यभारक्षम बली ।
 विदित्वा यौवराज्याय विधानेनाभ्यपेचयत् ॥ ७
 ततो राज्येऽभिपिक्तस्तु कुरुः पित्रा निजे पदे ।
 पालयामास स महीं पुत्रवच्च स्वय प्रजाः ॥ ८
 स एव क्षेत्रपालोऽभूत् पशुपालः स एव हि ।
 स सर्वपालकश्चासीत् प्रजापालो महानलः ॥ ९
 ततोऽस्य बुद्धिरूपपन्ना कीर्तिलोकं गरीयसी ।
 यावत्कीर्तिः सुसंस्था हि तावद्वासः सुरैः सह ॥ १०
 स त्वेषं नृपतिश्रेष्ठो प्रायात्तव्यमवेक्ष्य च ।

देवदेव ने कहा—“उस तपती में नरोत्तम सवरण के द्वारा राजलक्षण युक्त पुत्र उत्पन्न हुआ । जातर्म्म आदि संस्कारों से संस्कृत होकर वह घृत डाले हुए अग्नि के सदृश बढ़ने लगा । (१)
 हे देवगण ! मित्रावरुण के पुत्र विप्र वसिष्ठ ने उसका चूडाकरण संस्कार किया । नवें वर्ष में उसका उपनयन संस्कार हुआ और वह वेद तथा शास्त्रों का पारगामी विद्वान् हो गया । (२)
 तदनन्तर वह चौबीस वर्षों में सर्वज्ञ हो गया । ससार में सवरण का वह पुत्र पुरुषश्रेष्ठ कुरु नाम से प्रसिद्ध हुआ । (३)
 तदुपरान्त राजा शुभ धार्मिक पुत्र को देखकर किसी उत्तम कुल में उसके विवाह का यत्न करने लगे । (४)
 राजा ने सुन्दर स्वरूप वाली सुदामा की पुत्री सौदामिनी को कुरु के लिये वरण किया और वन्होंने भी उसे कुरु के लिये

प्रदान कर दिया । (५)
 उस राजकुमारी को पाकर वह धर्म और अर्थ का विरोध न करते हुए उस तन्वह्नी के साथ इस प्रकार रमण करने लगा जैसे पौलोमी (शची) के साथ इन्द्र रमण करता है । (६)
 तदनन्तर बलवान् राजा ने पुत्र को राज्यभार के वहन में समर्थ जानकर विधानपूर्वक यौवराज्य पद पर उसे अभिपिक्त कर दिया । (७)
 पिता द्वारा अपने राज्यपद पर अभिपिक्त होकर कुरु स्वय ही सन्तान की भौति प्रजा और पृथ्वी का पालन करने लगा । (८)
 वही महाबलवान् क्षेत्रपाल, पशुपाल, सर्वपालक एवं प्रजापालक भी हुआ । (९)
 तदनन्तर उसे यह बुद्धि उत्पन्न हुई कि ससार में कीर्ति सर्वश्रेष्ठ होती है । कीर्ति जबतक भलीभौति स्थित रहती है वही तक देवताओं के साथ निवास होता है । (१०)

विचचार महीं सर्वा कीर्त्ययं तु नराधिपः ॥ ११
 ततो द्वैतवन नाम पुण्यं लोकेधरो बली ।
 तदासाय सुसतुष्टो विवेशाम्बन्तरं ततः ॥ १२
 तत्र देवीं ददर्शथ पुण्यां पापविमोचनीम् ।
 ब्रह्मजां ब्रह्मणः पुत्रीं हरिजिह्वां सरस्वतीम् ॥ १३
 सुदर्शनस्य जननीं हृद कृत्वा सुविस्तरम् ।
 स्थितां भगवतीं कृत्वा तीर्थकोटिभिराप्लुताम् ॥ १४
 तस्यास्तज्जलमीदृशैव स्नात्वा प्रीतोऽभवन्नृपः ।
 समाजगाम च पुनः ब्रह्मणो वेदिष्ठत्तराम् ॥ १५
 समन्तपञ्चकं नाम धर्मस्थानमनुचमम् ।
 आसमन्ताद् योजनानि पञ्च पञ्च च सर्वतः ॥ १६
 देश ऊचुः ।
 क्रियन्त्यो वेदयः सन्ति ब्रह्मणः पुरुषोत्तम ।
 येनोत्तरतया वेदिगंदिता सर्वपञ्चका ॥ १७
 देशदेश उवाच ।
 वेदयो लोकनाथस्य पञ्च धर्मस्य सेतवः ।

इस प्रकार याथातथ्य (यथार्थता) का विचार करने के उपरान्त वह नृपतिश्रेष्ठ कीर्ति के हेतु समस्त पृथ्वी पर विचरण करने लगा । (११)
 तदनन्तर वह बली लोकेधर पवित्र द्वैतवन पहुँचा एव सुसतुष्ट होकर उसके भीतर प्रविष्ट हुआ । (१२)
 वहाँ उसने पवित्र, पापनाशिनी, प्लक्ष-वृक्ष से उत्पन्न, हरिजिह्वा, ब्रह्मपुत्री, सुदर्शन की जननी, सुविस्तर हृद में स्थित, बूल पर करोड़ों तीर्थों से आवृत भगवती सरस्वती को देखा । (१३-१४)
 उसके जल को देखने ही स्नान करके राजा प्रसन्न हो गया एव पुनः ब्रह्मण की उत्तर दिशा में अवतिथत वेदी (समन्तपञ्चक) पर गया । (१५)
 यह समन्तपञ्चक नामक श्रेष्ठ धर्मस्थान चारों ओर से पाँच-पाँच योजन तक है । (१६)
 देवताओं ने कहा—“हे पुरुषोत्तम ! ब्रह्मण की कितनी वेदियाँ हैं ? क्योंकि आपने सर्वपञ्चका वेदी को उत्तर वेदी कहा है । (१७)
 देवदेव ने कहा—लोकनाथ ब्रह्मण की धर्म-सेतु स्वरूप पाँच वेदियाँ हैं जिन पर सुरेश लोकनाथ शम्भु ने यज्ञ

यासु यष्टं सुरेशेन लोकनाथेन शंभुना ॥ १८
 प्रयागो मध्यमा वेदिः पूर्वा वेदिर्गयाशिरः ।
 विरजा दक्षिणा वेदिरनन्तफलदायिनी ॥ १९
 प्रतीची पुष्करा वेदिस्त्रिभिः कुण्डैरलंकृता ।
 समन्तपञ्चका चोक्ता वेदिरेवोचराऽभ्यया ॥ २०
 तममन्यत राजर्षिरेदं क्षेत्रं महाफलम् ।
 कश्चिद्यामि कृषिष्यामि सर्वाङ्गान् कामान् यथेप्सितान् ॥ २१
 इति संचिन्त्य मनसा त्यक्त्वा स्यन्दनमुत्तमम् ।
 चक्रे कीर्त्ययंमतुलं संस्थानं पार्थिवर्षभः ॥ २२
 कृत्वा सीरं स सौवर्णं गृह्य रुद्रचुपं प्रभुः ।
 पौण्ड्रकं याम्यमहिषं स्वयं कर्षितुमुद्यतः ॥ २३
 तं कर्षन्तं नरवरं समभ्येत्य शतक्रतुः ।
 श्रोवाच राजन् किमिदं भवान् कर्तुमिहोद्यतः ॥ २४
 राजाऽब्रवीत् सुरवरं तपः सत्यं क्षमां दयाम् ।
 कृषामि शौचं दानं च योगं च ब्रह्मचारिताम् ॥ २५

किया था । (१८)
 प्रयाग मध्यवेदी है, गयाशिर पूर्ववेदी है, अनन्त फल-दायिनी विरजा दक्षिणवेदी है, तीन कुण्डों से अलंकृत पुष्कर पश्चिम वेदी है तथा अनन्य समन्तपञ्चक को उत्तर वेदी कहा गया है । (१९-२०)
 राजर्षि कुरु ने सोचा कि इस क्षेत्र को महाफलदायी कहूँगा (यनाजैगा) और यहीं समस्त कामनाओं की खेती कहूँगा । (२१)
 अपने मन में इस प्रकार विचार कर वह राजश्रेष्ठ रथ से उतर पड़ा एव कीर्ति के लिये अनुत्तमीय स्थान का निर्माण किया । (२२)
 सुवर्ण निर्मित इल बनाकर उसमें शङ्कर के प्रथम एव यमराज के पौण्ड्रक नामक महिष को सयुक्त कर वह राजा स्वयं कर्षण करने को उद्यत हुआ । (२३)
 इन्द्र ने कर्षण कर रहे नरश्रेष्ठ के निकट जाकर कहा “हे राजन् आप यहाँ यह क्या करने को उद्यत हुये हैं ?” (२४)
 राजा ने इन्द्र से कहा कि मैं तप, सत्य, क्षमा, दया, शौच, दान, योग और ब्रह्मचर्य की कृषि कर रहा हूँ । (२५)

तस्योवाच हरिर्देवः कस्माद्बीजो नरेधर ।
 लब्धोऽष्टाङ्गैति सहसा अवहस्य गतस्ततः ॥ २६
 गतेऽपि शक्रं राजर्षिरहन्यहनि भीरुधृक् ।
 कृपतेऽन्यान् समन्ताद्य सप्तक्रोशान् महीपतिः ॥ २७
 ततोऽहमब्रुवं गतन् कुरो किमिदमित्यथ ।
 तदाऽष्टाङ्गं महाधर्मं ममात्प्यातं नृपेण हि ॥ २८
 ततो मयाऽस्य गदित नृप बीजं क्व तिष्ठति ।
 स चाह मम देहस्य बीजं तमहमब्रुवम् ।
 देहाहं वापयिष्यामि सीरं कृपतु वै भवान् ॥ २९
 ततो नृपतिना बार्हृद्विष्णिः प्रसृतः कृतः ।
 प्रसृतं वं घृजं दृष्ट्वा मया चक्रोण वेगतः ॥ ३०
 सहस्रधा वृत्तच्छिद्य दत्तो युष्मारुमेव हि ।
 ततः सव्यो घृजो राज्ञा दत्तच्छिन्नोऽप्यसौ मया ॥ ३१
 तथैवोरुयुगं प्रादान्मया लिप्तौ च ताडुभौ ।
 ततः स मे श्विरः प्रादात् तेन प्रीतोऽस्मि तस्य च ।
 परदोऽस्मोत्पथेस्तुक्ते कुरुर्वरमवाचत ॥ ३२

कुल्लवाच ।
 याजदेवन्मया कृष्टं धर्मक्षेत्रं तदस्तु च ।
 स्नातानां च मृतानां च महापुण्यफलं तिरह ॥ ३३
 उपवातं च दानं च स्नानं जप्यं च माधव ।
 होमयज्ञादिकं चान्यच्छुभं वाप्यशुभं विभो ॥ ३४
 तत्रत्वमाद्बृषीनेश शहचक्रमदाधर ।
 अक्षयं प्रवरे क्षेत्रे भवत्यत्र महाफलम् ॥ ३५
 तथा नवान् सुरैः मार्थं समं देवेन शुलिना ।
 यम त्वं पुण्डरीकाक्ष मन्नामव्यञ्जेऽप्युत ।
 हत्येवमुक्तस्तेनाहं राज्ञा गडहृयाच तम् ॥ ३६
 तत्रा च त्वं दिव्यधनुर्मय भूयो महीपते ।
 तत्राऽन्तर्काले मामेव लयमेप्ससि सुव्रत ॥ ३७
 कीर्तिश्च शाश्वती तुभ्यं भविष्यति न संशयः ।
 तत्रैव याजका यज्ञान् वनिष्यन्ति सहस्रतः ॥ ३८
 तस्य धेनुस्य रक्षार्थं ददौ स पुरुषोत्तमः ।
 यक्षं च चन्द्रनामानं वासुकिं चापि पद्मगम् ॥ ३९

कहने पर कुरु ने वर माँगा । (३२)
 कुरु ने कहा—जितने स्थान को मैंने जोता है वह धर्मक्षेत्र हो जाय और यहाँ स्नान करने वालों तथा मरने वालों को महापुण्यफल की प्राप्ति हो । (३३)
 हे माधव । हे विभो । हे अद्भुतक्रमदायायी हृषीकेश । उपवास, दान, स्नान, जप, होम, यज्ञ आदि तथा अन्य भी शुभ या अशुभ कर्म, इस क्षेत्र में आपसी कृपा मे अत्यन्त बड़ा फल प्राप्त हो । (३४-३५)
 "तथा हे पुण्डरीनाम्न । हे अशुभ । मेरे नाम के व्यञ्जक इस क्षेत्र (कुल्लोत्र) में आपदियों एवं शत्रु के साथ निवास करें ।" राजा ने ऐसा कहने पर 'अच्छा ऐसा हो होगा' यह कहने के उपरान्त मैंने कहा कि हे महीपति ! गुप्त पुत्र दिव्य शरीर के दा जाओ तथा हे सुव्रत ! अन्नकाल में गुप्त मेरे में छिप हो जाओगे ।" (३६-३७)
 "नितिसन्देह (गुरुराहो) कीर्ति शाश्वती (सर्वेकात्रवायिनी) होगी । यहाँ पर नहरों याजक यत्न करेंगे ।" (३८)
 इस क्षेत्र की रक्षा के लिए पुरुषोत्तम ने चन्द्रनामक यज्ञ, वासुकि नामक शर, शुकुर्षी नामक विदापक, गुण्डो नामक

विद्याधरं शङ्कुकर्णं सुकेशिं राक्षसेश्वरम् ।
 अजावनं च नृपतिं महादेवं च पावकम् ॥ ४०
 एतानि सर्वतोऽभ्येत्य रक्षन्ति कुरुजाङ्गलम् ।
 अमीषां बलिनोऽन्ये च मृत्याश्चैवानुयायिनः ॥ ४१
 अष्टौ सहस्राणि धनुर्धराणां
 ये धारयन्तीह सुदुष्कृताश्च वै ।
 स्नातुं न यच्छन्ति महोत्तरूपा-
 रत्वन्यस्य भूताः सचराचराणाम् ॥ ४२
 तस्यैव मध्ये बहुपुण्य उक्तः
 पृथूदकः पापहरः शिवश्च ।

पुण्या नदी प्राङ्मुखतां प्रयाता
 यत्रौषयुक्तस्य शुभा जलाब्दा ॥ ४३
 पूर्वं प्रजेयं प्रपितामहेन
 सृष्टा समं भूतगणैः समस्तैः ।
 मही जलं वह्निसमीरमेव
 खं त्वेवमादौ विषभौ पृथूदकः ॥ ४४
 तथा च सर्वाणि महार्णवानि
 तीर्थानि नद्यः स्रवणाः सरांसि ।
 संनिर्मितानीह महाभुजेन
 तच्चैक्यमागाद् सलिलं महीषु ॥ ४५

इति श्रीवामनपुराणे त्रयोविंशोऽध्याय ॥२३॥

राक्षसेश्वर, अजावन नामक नृपति एव महादेव नामक
 पावक को दिया (नियुक्त किया) । (३६-४०)

ये सभी तथा इनके अन्य बली भृत्य एव अनुयायी
 आकर कुरुजाङ्गल की सब ओर से रक्षा करते हैं । (४१)
 आठ सहस्र धनुर्धर जो पापियों को यहाँ से निवारित
 करते हैं वे उग्ररूपधारी भूत गण चराचर के दूसों
 (पापियों) को भी स्नान नदी करने देते । (४२)

इसी के मध्य अति पवित्र, पापहर, कल्याणकारी पृथूदक

नामक तीर्थ है । यहाँ शुभ जल से पूर्ण एक पवित्र नदी पूर्व
 की ओर प्रवाहित होती है । (४३)

प्रपितामह ब्रह्मा ने सृष्टि के आदि में पृथ्वी, जल,
 अग्नि, पवन और आकाशादि ममस्त भूतों के साथ ही
 इसकी भी सृष्टि की । यही पृथूदक है । (४४)

महाभुज ब्रह्मा ने पृथ्वी पर जिन महासमुद्रों, तीर्थों,
 नदियों, स्रोतों एवं सरोवरों की रचना की वे सभी जल इस में
 एकत्र को प्राप्त है । (४५)

श्रीवामनपुराण में तेत्सर्वोऽध्याय समाप्त ॥

सरोमाहात्म्यम्

१

देवदेव उवाच ।

सरस्वतीद्वपद्मयोरन्तरे कुरुजाङ्गले ।
 मुनिप्रवरमासीनं पुराणं लोमहर्षणम् ।
 अपृच्छन्त द्विजवराः प्रभावं सरसस्तदा ॥ १
 प्रमाणं सरसो ब्रूहि तीर्थानां च विशेषतः ।
 देवतानां च माहात्म्यमुत्पत्तिं वामनस्य च ॥ २
 एतच्छ्रुत्वा वचस्तेषां रोमहर्षसमन्वितः ।
 प्रणिपत्य पुराणपरिचिदं वचनमब्रवीत् ॥ ३

लोमहर्षण उवाच ।

ब्रह्माणमग्र्यं कमलासनस्यं
 विष्णुं तथा लस्मिसमन्वितं च ।
 रुद्रं च देवं प्रणिपत्य भूर्णा
 तीर्थं महद् ब्रह्मसरः प्रवक्ष्ये ॥ ४
 रन्तुकादौजसं यावत् पावनाच्च चतुर्मुखम् ।

सरः संनिहितं श्रोतुं ब्रह्मणा पूर्वमेव तु ॥ ५
 कलिद्रापरयोर्मध्ये व्यासेन च महात्मना ।
 सरःप्रमाणं वत्प्रोक्तं तच्छृणुष्वं द्विजोत्तमाः ॥ ६
 विश्वेश्वरादस्थियपुरं तथा कन्या जरद्गवी ।
 यावदोषवती श्रोक्ता तावत्संनिहितं सरः ॥ ७
 मया श्रुतं प्रमाणं यत् पथ्यमानं तु वामने ।
 तच्छृणुष्वं द्विजश्रेष्ठाः पुष्यं वृद्धिकरं महत् ॥ ८
 विश्वेश्वराद् देववरा नृपावनान् सरस्वती ।
 सरः संनिहितं ज्ञेयं समन्तादर्धयोजनम् ॥ ९
 एतदाश्रित्य देवाश्च ऋषयश्च समागताः ।
 सेवन्ते मुक्तिकामार्थं स्वर्गार्थं चापरे स्थिताः ॥ १०
 ब्रह्मणा सेवितमिदं सृष्टिकामेन योगिना ।
 विष्णुना स्थितिकामेन हरिरूपेण सेवितम् ॥ ११

सरोमाहात्म्यम्

१

देवदेव ने कहा—सरस्वती और द्वपद्मवती के मध्य कुरुजाङ्गल में आसीन मुनिप्रवर बृद्ध लोमहर्षण से प्राचीनकाल में ब्राह्मणों ने सरोवर का प्रभाव पूछा— (१)

इस सरोवर के विस्तार, विशेषतः तीर्थों और देवताओं के माहात्म्य एवं वामन की उत्पत्ति का आप वर्णन करें । (२)

उनके इस वचन को सुनकर रोम हर्ष-युक्त पौराणिक ऋषि ने उन्हें प्रणाम करने के उपरान्त कहा । (३)

लोमहर्षण ने कहा—सर्वप्रथम उत्पन्न कमलासन ब्रह्मा, लक्ष्मी-सहित विष्णु और महादेव रुद्र को शिर से प्रणाम कर मैं महान् ब्रह्मसर तीर्थ का वर्णन करता हूँ । (४)

ब्रह्माने प्राचीन काल में यह कहा था कि यह सन्निहित सरोवर रन्तुक से औजस पर्यन्त और पावन से चतुर्मुख तक है । (५)

हे द्विजोत्तम ! कलि और द्वापर के मध्य में महात्मा व्यास ने सरोवर का जो प्रमाण बतलाया है, उसे आप लोग सुनें । (६)

विश्वेश्वर से अस्थियपुर पर्यन्त और कन्या जरद्गवी से ओषवती पर्यन्त यह सन्निहित सरोवर स्थित है । (७)

हे द्विजश्रेष्ठे ! मैंने वामनपुराण में वर्णित जो प्रमाण सुना है उसे पवित्र एवं अभ्युदयकारी प्रमाण को आप सुनें । (८)

विश्वेश्वर से देववर तक एवं नृपावन से सरस्वती पर्यन्त चतुर्दिक् अर्धयोजन में इस सन्निहित सरोवर समझना चाहिये । (९)

आये हुए देवता एवं ऋषिगण इसका आश्रय ग्रहण कर मुक्ति की कामना से इसका सेवन करते हैं, तथा अन्य लोग स्वर्ग के निमित्त यहाँ स्थित रहते हैं । (१०)

योगी ब्रह्माने सृष्टि की इच्छा से एवं हरिरूप धारी विष्णुने जगत् स्थिति की कामना से इसका सेवन किया । (११)

रुद्रेण च सरोमध्यं प्रविष्टेन महात्मना ।
सेच्य तीर्थं महातेजाः स्थाणुत्वं प्राप्तवान् हरः ॥ १२
आद्यैषा ब्रह्मणो वेदिस्ततो रामहृदः स्मृतः ।
कुरुणा च यतः कृष्टं कुरुक्षेत्रं ततः स्मृतम् ॥ १३

तरन्तुकारन्तुकयोर्वदन्तरं
यदन्तरं रामहृदाचतुर्मुखम् ।
एतत्कुरुक्षेत्रसमन्तपञ्चकं
पितामहस्योत्तरवेदिरुच्यते ॥ १४

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

२

श्रुपय ऊचुः ।

श्रुहि वामनमाहात्म्यमुत्पत्तिं च विशेषतः ।
यथा बलिर्नियमितो दत्तं राज्यं शक्तकतोः ॥ १
लोमहर्षण उवाच ।
शृणुष्वं ह्यनयः प्रीता वामनस्य महात्मनः ।
उत्पत्तिं च प्रभावं च निवासं कुरुजाङ्गले ॥ २
तदेव वंशं दैत्यानां शृणुष्वं द्विजसत्तमाः ।
यस्य वंशे समभवद् बलिर्वैरोचनिः पुरा ॥ ३
दैत्यानामादिपुरुषो हिरण्यकशिपुः पुरा ।

तस्य पुत्रो महातेजाः ब्रह्मादो नाम दानवः ॥ ४
सम्पाद् विरोचनो जज्ञे बलिर्जज्ञे विरोचनाद् ।
हते हिरण्यकशिपौ देवानुत्साद्य सर्वतः ॥ ५
राज्यं कृतं च तेनेष्टं त्रैलोक्ये सचराचरे ।
कृतयत्नेषु देवेषु त्रैलोक्ये दैत्यतां गते ॥ ६
जये तथा बलवतोर्मयश्चम्बरयोस्तथा ।
शुद्धासु दिक्षु सर्वासु प्रवृत्ते धर्मकर्मणि ॥ ७
संप्रवृत्ते दैत्यपथे अयनस्ये दिवाकरे ।
ब्रह्मादशम्बरमयैरनुहादिन चैव हि ॥ ८

सरोवर के मध्य में प्रविष्ट महात्मा रुद्र ने इस तीर्थ का
सेवन किया जिससे महानेजस्वी हर को स्थाणुत्वं प्राप्त
हुआ । (१२)

आदि में यह 'ब्रह्मवेदो' थी किन्तु कालान्तर में इसका
नाम 'रामहृद' हुआ । तदुपरान्त कुरु द्वारा कृष्ट होने से
श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में प्रथम अध्याय समाप्त ॥१॥

श्रुपियों ने कहा—(आप) वामन के माहात्म्य और
उत्पत्ति का विशेष रूप से ध्यान करें तथा यह बतलायें कि
किस प्रकार बलि को बाँध कर इन्द्र को राज्य दिया
गया । (१)

लोमहर्षण ने कहा—हे मुनियो ! प्रसन्नता पूर्वक आप
छोग महात्मा वामन की उत्पत्ति, प्रभाव और कुरुजाङ्गल
में उनके निवास का वर्णन सुनें । (२)

हे द्विजभेदो ! आप लोग दैत्यों के उस वंश को भी सुनें
जिसमें प्राचीनघ्नल में विरोचन के पुत्र बलिपिदा हुए थे । (३)

पूर्व समय में दैत्यों का आदिपुरुष हिरण्यकशिपु था ।
प्रत्यक्षनामक महानेजस्वी दानव उसका पुत्र था । (४)

इसका 'कुरुक्षेत्र' नाम हुआ । (१२)

तरन्तुक एवं अरन्तुक के मध्य तथा रामहृद एवं चतुर्मुख
का मध्य भाग समन्तपञ्चक कुरुक्षेत्र है तथा इसे ही पितामह
की उत्तरवेदी कहा जाता है । (१४)

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये प्रथम अध्याय समाप्त ॥१॥

२

उससे विरोचन और विरोचन से बलि उत्पन्न हुआ ।
हिरण्यकशिपु के मारे जाने पर सभी स्थानों से देवताओं
को हटा कर चराचर सहित वीनों लोकों में बलिने भलीभाँति
राज्य किया । देवताओं के प्रयत्न करने पर भी त्रैलोक्य दैत्यों
के अधीन हो गया । (५-६)

बलशाली मय और शम्बर की विजय हो गई । सर्वत्र
धर्म कार्य फैल गया और दिशाओं शुद्ध हो गईं । (७)

सूर्य भी दैत्यपथ वाले (दक्षिण) अयन में स्थित हो गये ।
ब्रह्माद, शम्बर और मय तथा अनुहाद दैत्य सब दिशाओं की
रक्षा करने लगे । आगरा भी दैत्य पालित हो गया । देवयान

दिक्षु सर्वास्तु गुह्यासु गगने दैत्यपालिते ।
 देवेषु मरुशोभां च स्वर्गस्थां दर्शयत्सु च ॥ ९
 प्रकृतिस्ये ततो लोके वर्त्तमाने च सत्पथे ।
 अभावे सर्वपापानां धर्मभावे सदोत्थिते ॥ १०
 चतुष्पादे स्थिते घर्मे ह्यधर्मं पादविग्रहे ।
 प्रजापालनयुक्तेषु आजमानेषु राजसु ।
 स्वधर्मसंप्रयुक्तेषु तथाश्रमनिवासिषु ॥ ११
 अभिपिक्तोऽसुरैः सर्वदैत्यराज्ये नलिस्तदा ।
 हृष्टेष्वसुरसंघेषु नदत्सु मुदितेषु च ॥ १२
 अयाम्युपगता लक्ष्मीर्बलिं पशान्तरप्रभा ।
 पशोद्यतकरा देवी वरदा सुप्रवेशिनी ॥ १३

श्रीत्वाच ।

बले बलवतां श्रेष्ठ दैत्यराज महाद्युते ।
 प्रीताऽस्मि तव भद्रं ते देवराजपराज्ये ॥ १४

यत्त्वया युधि विक्रम्य देवराज्यं परान्वितम् ।
 दृष्ट्वा ते परमं सत्त्वं ततोऽहं स्वयमागता ॥ १५
 नाश्रयं दानवव्याघ्र हिरण्यकशिपोः कुले ।
 प्रसूतस्यासुरेन्द्रस्य तव कर्मदमीदृश्यम् ॥ १६
 विशेषितस्त्वया राजन् दैत्येन्द्रः प्रपितामहः ।
 येन श्रुतं हि निखिलं त्रैलोक्यमिदमन्वयम् ॥ १७
 एवमुक्त्वा तु सा देवी लक्ष्मीर्दैत्यनृपं बलिम् ।
 अनिष्टा वरदा सेव्या सर्वदवमनोरमा ॥ १८
 तुष्टाश्च देव्यः प्रवराः ह्योः कीर्तिर्द्युतिरेव च ।
 प्रभा धृति क्षमा भूतिर्हृद्विर्दिव्या महामतिः ॥ १९
 श्रुतिःस्मृतिरिडा कीर्तिः शान्तिः पुष्टिस्तथा क्रिया ।
 सर्वाश्चाप्सरसो दिव्या नृत्तगीतविशारदाः ॥ २०
 प्रपद्यन्ते स्म दैत्येन्द्रं त्रैलोक्यं सचराचरम् ।
 प्राप्तमैश्वर्यमतुलं बलिना ब्रह्मवादिना ॥ २१

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये द्वितीयोऽध्याय ॥२॥

स्वर्गस्थ यज्ञ की शोभा देखने लगे । (८-९)
 सारा ससार प्रकृतिगत हो गया तथा सन्मार्ग पर आच्छाद हो गया । सभी पापों के नष्ट होने पर धर्म भाव स्थिर हो गया । (१०)
 धर्म चार पादों से प्रतिष्ठित हो गया । अधर्म एक ही पाद पर स्थित हुआ । सभी राजा प्रजापालन करते हुये सुशोभित होने लगे तथा सभी आश्रमों के लेय स्वधर्म का पालन करने लगे । (११)
 ऐसे समय में असुरों ने बलि को दैत्य-राज-वद पर अभिपिक्त कर दिया । हृष्ट असुर समुदाय प्रसन्न होकर निनाद करने लगे । (१२)
 इसके अनन्तर कमलेश्वर के समान कान्ति वाली, वरदा, सुप्रवेशिनी लक्ष्मी देवी हाथ में कमल लिये हुये बलिं चें समीप आईं । (१३)
 लक्ष्मी ने कहा— हे बलवानों मे श्रेष्ठ ! महातेजस्वी दैत्यराज बलि ! देवराज के पराजय से मैं तुम पर प्रसन्न हूँ । तुम्हारा मंगल हो । (१४)

क्योंकि तुमने समाप्त मे पराक्रम दिखाकर देवों के राज्य को जीत लिया है । अत तुम्हारे श्रेष्ठ बल को देखकर मैं स्वय आई हूँ । (१५)
 हे दानवश्रेष्ठ ! असुरेन्द्र हिरण्यकशिपु के कुल में उत्पन्न तुम्हारे इस प्रकार के कर्म से कोई आश्चर्य की बात नहीं है । (१६)
 हे राजन् ! आप दैत्यश्रेष्ठ अपने प्रपितामह हिरण्यकशिपु से भी विशिष्ट हैं । क्योंकि ! आप इस अन्वय समाप्त त्रैलोक्य का भोग कर रहे हैं । (१७)
 दैत्यराज बलि से ऐसा कहने के उपरान्त सर्वदेव मनोरमा सेव्या एव वरदा च लक्ष्मी देवी राजा बलि में प्रियत हो गईं । (१८)
 उन प्रसन्न होकर सभी श्रेष्ठ देवियों ही, कीर्ति, श्रुति, प्रभा, धृति, क्षमा, भूति, श्रद्धा, दिव्या महामति, श्रुति, स्मृति, इडा, कीर्ति, शान्ति, पुष्टि, क्रिया तथा नृत्तगीत विशारदा दिव्य अप्सरायें दैत्येन्द्र का सेवन करने लगीं । इस प्रकार ब्रह्मवादी बलि ने सचराचर त्रैलोक्य का अतुल ऐश्वर्य प्राप्त कर लिया । (१९-२१)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में दूसरा अध्याय समाप्त ॥२॥

ऋषय ऊचुः ।

देवानां ब्रूहि नः कर्म यद्बृहतास्ते पराजिताः ।
कथं देवातिदेवोऽसौ विष्णुर्वामनतां गतः ॥ १

लोमहर्षण उवाच ।

वलिंसंस्थं च त्रैलोक्यं दृष्ट्वा देवः पुरंदरः ।
मेरुप्रस्थं ययौ शक्रः स्वमातुर्निलयं शुभम् ॥ २
समीपं प्राप्य मातुश्च कथयामास तां गिरम् ।
आदित्याश्च यथा युद्धे दानवेन पराजिताः ॥ ३
अदितिरुवाच ।

यद्येवं पुत्र युष्माभिर्न शक्यो हन्तुमाहवे ।
वलिर्विरोचनसुतः सर्वैश्वैव भरद्गवणैः ॥ ४
सहस्रशिरसा शक्यः केवलं हन्तुमाहवे ।
तेनैकेन सहस्राक्ष न स ह्यग्रेण शक्यते ॥ ५
तद्वत् पृच्छामि पितरं कश्यपं ब्रह्मवादिनम् ।

ऋषियों ने कहा—आप हमें यह बतलायें कि देवता लोग कौन कर्म करने से पराजित हुये तथा देवाधिदेव विष्णु किस प्रकार वामन धने ? (१)

लोमहर्षण ने कहा—पुरंदर (इन्द्र) देव त्रैलोक्य को बलि के अधिकार में देखकर अपनी माता के मेरुस्थित कल्याणयुक्त गृह को गये । (२)

माता के समीप जाकर उनसे उन्होंने युद्ध में देवगण दानव बलि से जिस प्रकार पराजित हुये थे उसका वर्णन किया । (३)

अदिति ने कहा—हे पुत्र । यदि ऐसा है तो समस्त भरद्गवण के साथ मिलकर भी तुमलोग युद्ध में विरोचन के पुत्र बलि को नहीं मार सकते । (४)

हे सहस्राक्ष ! (उसे) युद्ध में केवल सहस्रशीर्ष (भगवान् विष्णु) ही मार सकते हैं । उनके अतिरिक्त अन्य किसी से भी यह (मार) नहीं जा सकता । (५)

पराजयार्थं दैत्यस्य बलेस्तस्य महात्मनः ॥ ६
ततोऽदित्या सह सुराः संप्राप्ताः कश्यपान्तिकम् ।
तत्रापश्यन्त मारीचं मुनिं दीप्ततपोनिधिम् ॥ ७
आद्यं देवगुरुं दिव्यं प्रदीप्तं ब्रह्मवर्चसा ।
तेजसा भास्कराकारं स्थितमग्निशिखोपमम् ॥ ८
न्यस्तदण्डं तपोयुक्तं बद्धकृष्णाजिनाम्बरम् ।
बलकलाजिनसंवीतं प्रदीप्तमिव तेजसा ॥ ९
हुताशमिव दीप्यन्तमाज्यगन्धपुरस्कृतम् ।
स्वाध्यायवन्तं पितरं वपुष्मन्तमिवानलम् ॥ १०
ब्रह्मवादिसत्यवादिसुरासुरगुरुं प्रभुम् ।
प्राह्वण्याऽप्रतिमं लक्ष्म्या कश्यपं दीप्ततेजसम् ॥ ११
यः स्रष्टा सर्वलोकानां प्रजानां पतिरुच्यतः ।
आत्मभावविशेषेण तृतीयो यः प्रजापतिः ॥ १२
अयं प्रणम्य ते वीराः सहादित्या सुरर्षभाः ।

३

अतः उस महात्मा बलिनामक दैत्य की पराजय के लिये मैं तुम्हारे पिता ब्रह्मवादी कश्यप से पूछूँगी । (६)
तदनन्तर अदिति के साथ देवतालोग कश्यप के समीप गये । वहाँ उन लोगों ने तेजस्वी, तपोनिधि, मरीचिमुनि के पुत्र, आद्य, दिव्य, देवगुरु, ब्रह्मतेज से प्रदीप्त, तेज से भास्कर तुल्य, अग्निशिखा के सदृश, न्यस्तदण्ड, तपोयुक्त, कृष्ण सूत्रचर्म से आवृत, बलकल धीर सूत्रचर्म पहने हुए, तेज से प्रदीप्त आज्यगन्ध पुरस्कृत हुताशन के सदृश प्रदीप्त, स्वाध्यायरत, शरीरधारी अग्नितुल्य, ब्रह्मवादी, सत्यवादी, सुरासुरगुरु, अप्रतिम ब्रह्मतेजयुक्त, लक्ष्मी के कारण दीप्ततेज सम्पन्न समर्थ पिता कश्यप को बैठे हुये देखा । (७-११)

वे सभी लोगों के स्रष्टा, श्रेष्ठ प्रजापति एवं आत्मभाव की विशेषता के कारण तृतीय प्रजापति हैं । (१२)
तदनन्तर अदिति के साथ समस्त देववीर प्रणाम कर (कश्यप से) इस प्रकार बोले जैसे ब्रह्मा से उनके मानस

ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे ब्रह्माणमिव मानसाः ॥ १३
अजेयो युधि शक्रेण बलिदैत्यो बलाधिकः ।
तस्माद् विधच नः श्रेयो देवानां पुष्टिवर्धनम् ॥ १४
श्रुत्वा तु वचनं तेषां पुत्राणां कश्यपः प्रभुः ।
अकरोद् गमने बुद्धिं ब्रह्मलोकाय लोककृत् ॥ १५
कश्यप उवाच ।

शुक्र गच्छाम सदनं ब्रह्मणः परमाद्भुतम् ।
तथा पराजय सर्वे ब्रह्मणः ख्यातमुद्यताः ॥ १६
सहादित्या ततो देवायाताः काश्यपमाश्रमम् ।
प्रमथिता ब्रह्मसदनं महर्षिगणसेवितम् ॥ १७
ते गृह्णन्ते संप्राप्ता ब्रह्मलोक सुवर्चसः ।
दिव्यैः कामगमैर्यानेर्षथाहैस्ते महानलाः ॥ १८
ब्रह्माण द्रष्टुमिच्छन्तस्तपोराशिन्मन्व्ययम् ।
अध्यगच्छन्त विस्तीर्णां ब्रह्मणः परमां सभाम् ॥ १९
पट्पदोद्गीतमधुरा सामगैः समुदीरिताम् ।

पुत्र कहते हैं— (१३)
बलशाली बलिदैत्य युद्ध में इन्द्र द्वारा अजेय हो गया
है । अब हम देवों के वृद्धि के लिए आप ब्रह्मलोक को सपन्न
करें । (१४)
उन पुत्रों का वचन सुनकर लोककर्ता प्रभु कश्यप ने ब्रह्म
लोक जाने का विचार किया । (१५)

कश्यप ने कहा—हे इन्द्र ! ब्रह्मा जी से अपनी पराजय
कहने को उद्यत होकर हम उनके परम अद्भुत लोक को
चलें । (१६)
तदनन्तर अदिति के साथ कश्यप के जात्रम में आये
सभी देवना महर्षिगणों से सेवित ब्रह्मसदन की ओर प्रस्थान
किये । (१७)

यथायोग्य, विषय एव कामचारी यानों के द्वारा महा
बली एव तेजस्वी वे सभी लोग मुहूर्त मात्र में ब्रह्मलोक
पहुँच गये । (१८)
तपोराशि, अध्यय ब्रह्मा को देखने को इच्छा वाले वे
लोग ब्रह्मा की विस्तीर्ण श्रेष्ठ सभा में गये । (१९)
धर्मों के गीत से मधुर, सामगान से मुदरित, कल्याण
कारिणी और शत्रुओं की विनाशिना उस सभा को देखकर वे
लोग प्रसन्न हुए । (२०)
उन देव श्रेष्ठों ने अनेक विस्तृत कर्मावृत्तानों के समय

श्रेयस्करीममित्रार्णौ दृष्ट्वा संनहपुस्तदा ॥ २०
शुचो बह्वचमृत्स्यैश्च प्रोक्ताः क्रमपदाक्षराः ।
शुश्रुवुर्विबुध्व्याप्रा विततेषु च कर्मसु ॥ २१
यज्ञविद्यावेददिदः पदक्रमदिदस्तथा ।
स्वरेण परमर्षीणां सा वभूव प्रणादिता ॥ २२
यज्ञसंस्तवविद्भिश्च शिक्षाविद्भिस्तथा द्विलैः ।
छन्दसा चैव चार्थज्ञैः सर्वविद्याविशारदैः ॥ २३
लोकायतिकमृत्स्यैश्च शुश्रुवुः स्वरमीरितम् ।
तत्र तत्र च विप्रेन्द्रा नियताः शतितत्रताः ॥ २४
जपहोमपरा गुरुया ददशुः कश्यपात्मजाः ।
तस्यां सभायामास्ते स ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ २५
सुरासुरगुरुः श्रीमान् विद्यया वेदमायया ।
उपासन्त च तत्रैव प्रजानां पतयः प्रभुम् ॥ २६
दक्षः प्रचेताः पुलहो मरीचिश्च द्विजोत्तमाः ।
भृगुरध्विर्वसिष्ठश्च गौतमो नारदस्तथा ॥ २७

श्रेष्ठ ऋग्वेदियों के द्वारा प्रयुक्त क्रमपदादि से युक्त ऋचाओं
का श्रवण किया । (२१)
यह सभा यज्ञ विद्या के जानकार और पदक्रम से युक्त
वेदों के जानने वाले परमर्षियों के स्वर से प्रतिध्वनित हो
रही थी । (२२)

देवों ने वहाँ यज्ञ के संस्कारों के ज्ञाताओं, शिक्षाविदों
वेदमंत्रों के अर्थ जानने वालों, सर्वविद्याविशारद द्विजों
एव श्रेष्ठ लोकायतिकों द्वारा उच्चरित स्वर को सुना । कश्यप
पुत्रों ने वहाँ सर्वत्र नियम पूर्वक तीक्ष्णव्रतधारी जप
होमपरायण श्रेष्ठ विषों को देखा । उसी सभा में लोक-
पितामह ब्रह्मा बैठे हुये थे । (२३-२५)

सभा में विद्या एव वेदभाषासम्पन्न श्रीमान् सुरासुरगुरु
ब्रह्मा भी विराजमान थे एव वहाँ पर प्रजापतिगण उन
प्रभु की उपासना कर रहे थे । (२६)

हे द्विजोत्तमो ! दक्ष, प्रचेता, पुलह, मरीचि, भृगु, अत्रि
वशिष्ठ, गौतम और नारद, सभी विद्यायें, आकाश, वायु,
तेज, जल, पृथ्वी, शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध, प्रकृति,
विकृति, अन्याय्यमहत् कारण, साङ्गोपाङ्ग चारो वेद, और
लोकपति नीति, यज्ञ, सकल्प, प्राण, तथा अन्य अनेक
लोग ब्रह्मा की उपासना कर रहे थे । हे द्विजोत्तमो ! अर्थ,
धर्म, काम, मोक्ष, हर्ष, शुक, वृहस्पति, सर्वर्च और बुध,

विद्यास्तधान्तरिक्षं च वायुस्तेजो जलं मही ।
 शब्दः स्पर्शश्च रूपं च रसो गन्धस्तथैव च ॥ २८
 प्रकृतिश्च विकारश्च यन्चान्यत् कारणं महत् ।
 साङ्गोपाङ्गाश्च चत्वारो वेदा लोकपतिस्तथा ॥ २९
 नयाश्च क्रतवश्चैव सङ्कल्पः प्राण एव च ।
 एते चान्ये च बहवः स्वयंभुवमुपासते ॥ ३०
 अर्थो धर्मश्च कामश्च क्रोधो हर्षश्च नित्यशः ।
 शुक्रो बृहस्पतिश्चैव संवत्सोऽथ युधस्तथा ॥ ३१
 शनैश्चरश्च राहुश्च ग्रहाः सर्वे व्यवस्थिताः ।
 मरुतो विश्वकर्मा च वसवश्च द्विजोत्तमाः ॥ ३२
 दिवाकरश्च सोमश्च दिवा रात्रिस्तथैव च ।

अर्द्धमासाश्च मासाश्च ऋतवः षट् च संस्थिताः ॥ ३३
 तां प्रदिश्य सभां दिव्यां ब्रह्मणः सर्वकामिकाम् ।
 कश्यपस्त्रिदशैः सार्द्धं पुत्रैर्धमेभृतां वरः ॥ ३४
 सर्वतेजोमयीं दिव्यां ब्रह्मर्षिगणसेविताम् ।
 ब्राह्मणा श्रिया सेव्यमानामचिन्त्यां विगतकल्माम् ॥ ३५
 ब्रह्माणं प्रेक्ष्य ते सर्वे परमासनमास्थितम् ।
 शिरोभिः प्रणता देव देवा ब्रह्मर्षिभिः सह ॥ ३६
 ततः प्रणम्य चरणौ नियताः परमात्मनः ।
 विमुक्ताः सर्वपापेभ्यः शान्ता विगतरुल्मपाः ॥ ३७
 दृष्ट्वा तु तान् सुरान् सर्वान् कश्यपेन सहागतान् ।
 आह ब्रह्मा महातेजा देवानां प्रभुरीश्वरः ॥ ३८

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये तृतीयोऽध्यायः ॥ ५ ॥

४

ब्रह्मोवाच ।

यदर्थमिह संप्राप्ता भवन्तः सर्व एव हि ।
 चिन्तयाम्यहमप्यग्रे तदर्थं च महाबलाः ॥ १
 भविष्यति च वः सर्वं काङ्क्षितं यत् सुरोत्तमाः ।

शनैश्चर और राहु ये सभी ग्रह भी वहाँ व्यवस्थित थे ।
 मरुद्गण, विश्वकर्मा, वसु, सूर्य, चन्द्रमा, दिन, रात्रि, पक्ष,
 मास, तथा छ' ऋतुएँ भी वहाँ उपस्थित थीं । (२७-३३)
 अपने पुत्र देवताओं के साथ धार्मिकों में श्रेष्ठ करवप ने
 ब्रह्मा की उस सर्ववाममयी, सर्वतेजोमयी, दिव्य, ब्रह्मर्षिगण
 सेवित, ब्रह्मतेज से युक्त, अचिन्त्य एव खेदरहित सभा में
 प्रवेश किया तथा उन सभी देवों ने श्रेष्ठ आसन पर बैठे

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य

बलैर्दानिवह्मुरन्यस्य योऽस्य नेता भविष्यति ॥ २
 न केवलं सुरादीनां गतिर्भम स विश्वकृत् ।
 त्रैलोक्यस्यापि नेता च देवानामपि स प्रभुः ॥ ३
 यः प्रभुः सर्वलोकानां विश्वेशश्च सनातनः ।

ब्रह्मा को देखकर ब्रह्मर्षियों के साथ शिरसे प्रणाम
 किया । (३४-३६)

परमात्मा के चरणों में प्रणाम कर नियमधारी वे सभी
 सर्वपापविमुक्त, विगतरुल्मप एव शान्त हो गये । (३७)

कश्यप के साथ आये हुये उन सभी देवताओं को
 देखकर महतेजस्वी देवदेवर प्रभु ब्रह्मा ने कहा— (३८)
 मैं तीक्ष्ण धर्माय समाप्त ॥३॥

४

ब्रह्मा ने कहा—“हे महाबलशाली देवगण । आप सभी
 जिस लिये यहाँ आये हैं मैं पहले से ही उसके विषय में
 विचार कर रहा हूँ । (१)

हे सुरश्रेष्ठ ! आपलोग जो चाहते हैं वह सब पूरा

होगा । दानवराज बल को जीतने वाले विश्वरचयिता न
 केवल देवों की अपि तु मेरी भी गति हैं । वे त्रैलोक्य के
 भी नेता और देवों के भी प्रभु हैं । (२-३)

ओ सव लोकों के प्रभु सनातन विश्वेश एवं पूर्वज हैं

पूर्वजोऽयं सदाप्याहुरादिदेवं सनातनम् ॥ ४
 तं देवापि महात्मानं न विदुः कोऽप्यसाविति ।
 देवानस्मान् श्रुति विश्वं स वेत्ति पुरुषोत्तमः ॥ ५
 तस्यैव तु प्रसादेन प्रवक्ष्ये परमां गतिम् ।
 यत्र योगं समास्थाय तपश्चरति दुश्चरम् ॥ ६
 क्षीरोदस्योचरे कूले उदीच्यां दिशि विश्वकृत् ।
 अमृतं नाम परमं स्थानमाहुर्मनीषिणः ॥ ७
 भवन्तस्तत्र वै गत्वा तपसा शंसितप्रताः ।
 अमृतं स्थानमासाद्य तपश्चरत दुश्चरम् ॥ ८
 ततः श्रोष्यथ संपुष्टां स्निग्धगम्भीरनिःस्वनाम् ।
 उष्णान्ते तोयदस्येव तोयपूर्णस्य निःस्वनम् ॥ ९
 रक्तां पुष्टाक्षरां रम्यामभयां सर्वदा शिवाम् ।
 वाणीं परममंस्कारां वदतां ब्रह्मवादिनाम् ॥ १०
 दिव्यां सत्यकरां सत्यां सर्पकल्मषनाशिनीम् ।
 सर्वदवाधिदवश्य ततोऽसौ भावितात्मनः ॥ ११
 तस्य व्रतसमाप्त्यां तु योगव्रतविसर्जने ।

उन्हें ही सनातन आदिदेव भी कहा जाता है । (४)
 उन महात्मा को देवादि नहीं जानते कि वे कौन हैं
 किन्तु वे पुरुषोत्तम देवों को, मुझे, श्रुति एवं विद्वय को भी
 जानते हैं । (५)

उन्हीं के प्रसाद से मैं श्रेष्ठ उपाय बतलाता हूँ । आप
 सभी लोग उत्तरदिशा में क्षीरसागर के उत्तरी किनारे
 पर उस स्थान पर जाइये जिसे मनीषी लोग अमृत नाम
 का श्रेष्ठ स्थान कहते हैं । विश्वकर्मा योगधारण कर
 वहाँ दुश्चर तप कर रहे हैं । तेषां व्रतधारी आप लोग उस
 अमृत स्थान पर जाकर कठिन तप करें । (६-८)

तदनन्तर श्रीष्म के अन्त में लक्ष्मण मेघ के गर्जन के
 समान देवाधिदेव की शब्दमयी, स्निग्ध गम्भीर ध्वनिवाली,
 प्रेममयी, पुष्ट अक्षरों वाली, रमणीय, अभय, सर्वदामगल-
 मयी, उष्णारण कर रहे ब्रह्मवादियों की वाणी के समान
 परमसंस्कार से युक्त, दिव्य, सत्यधारिणी, सत्य एवं समस्त
 पापों को नष्ट करनेवाली वाणी को सुनोमै । तदनन्तर
 भावितात्मा (आत्मज्ञ) कश्यप के योगव्रत के विसर्जन
 के अवसर पर व्रत की समाप्ति होने पर वे महारामा विष्णु
 जिनका तेज अमोघ है आपसे कहेंगे "हे सुरश्रेष्ठे ! मेरे

अमोघं तस्य देवस्य विश्वतेजो महात्मनः ॥ १२
 कस्य किं वो वरं देवा ददामि वरदः स्थितः ।
 स्वागतं वः सुरश्रेष्ठ मत्समीपमुपागताः ॥ १३
 ततोऽदितिः कश्यपश्च गृह्णीयातां वरं तदा ।
 प्रणम्य शिरसा पादौ तस्मै देवाय धीमते ॥ १४
 भगवानेव नः पुत्रो भवत्विति प्रसीद नः ।
 उक्तश्च परया वाचा तथाऽस्त्विति स वक्ष्यति ॥ १५
 देवा भ्रुवन्ति ते सर्वे कश्यपोऽदितिवे च ।
 तथाऽस्त्विति सुराः सर्वे प्रणम्य शिरसा प्रभुम् ।
 श्वेतद्वीपं समुद्दिश्य गताः सौम्यदिशं प्रति ॥ १६
 तेऽचिरैरेव संप्राप्ताः क्षीरोदं सरितां पतिम् ।
 यथोद्दिष्टं भगवता ब्रह्मणा सत्यवादिना ॥ १७
 ते श्रान्ताः सागरान् सर्वान् पर्वतांश्च सकाननान् ।
 नदीश्च विविधा दिव्याः पृथिव्यां ते सुरोत्तमाः ॥ १८
 अपश्यन्त तमो घोरं सर्वसत्त्वविवर्जितम् ।
 अमात्स्करममर्षादं तमसा सर्वतो ब्रूतम् ॥ १९

समीप आये हुये आप लोगों का स्वागत है । मैं वरदरूप
 से स्थित हूँ । किसे कौन सा वर दू । (१२-१३)

तदनन्तर अदिति और कश्यप उनधीमान् देव के चरणों
 में शिरसे प्रणाम कर बह कर मीने "भगवान् ही हमारे पुत्र
 धनं एतदर्थं आप हमारे ऊपर प्रसन्न हों" ऐसा कहते थे
 परवाणी से "ऐसा ही हो" यह कहेंगे । (१४-१५)

कश्यप, अदिति एवं सभी देवता 'ऐसा ही हो' यह
 कहने के उपरान्त प्रभु (ब्रह्मा) को शिरसे प्रणाम कर
 श्वेतद्वीप के उद्देश्य से उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान
 किये । (१६)

वे अतिशीघ्र सत्यवादी भगवान् ब्रह्मा द्वारा बताये
 अनुसार क्षीरसमुद्र के तट पर पहुँच गये । (१७)

उन देव श्रेष्ठों ने पृथ्वी के सर्भी सागरों, कानन युक्त
 पर्वतों एवं अनेक दिव्य नदियों को पर किया । (१८)

तदनन्तर उन लोगों ने समस्त प्राणियों से विहीन,
 सूर्यविहीन, सीमा रहित एवं चतुर्दिक् तमस् से घिरे हुये
 घोर अन्धकार को देखा । (१९)

अमृतं स्थानमासाद्य कश्यपेन महात्मना ।
दीक्षिताः कामदं दिव्यं व्रतं वर्षसहस्रकम् ॥ २०
प्रसादार्थं सुरेशाय तस्मै योगाय धीमते ।
नारायणाय देवाय सहस्राक्षाय भृतेषु ॥ २१

ब्रह्मचर्येण मौनेन स्थानवीरासनेन च ।
क्रमेण च सुराः सर्वे तप उग्रं समास्थिताः ॥ २२
कश्यपस्तत्र भगवान् प्रमादार्थं महात्मनः ।
उदीरयत वेदोक्तं यमाहुः परमं त्वयम् ॥ २३

इति श्रीयामनपुराणे सरोमाहात्म्ये चतुर्थोऽध्याय ॥४१॥

५

कश्यप उवाच ।

नमोऽस्तु ते देवदेव एकशृङ्ग वृषाच्चै
सिन्धुवृष वृषाकपे सुररूप अनादिसंभव
रुद्र कपिल विष्वक्सेन सर्वभूतपते भ्रुव
धर्माधर्म वैकुण्ठ वृषावर्च अनादिमध्यनिधन
घनंजय शुचिश्रवः पृश्नितेजः निजजय
अमृतेशय सनातन त्रिधाम तुपित महावरच
लोकनाथ पञ्चनाभ विरिञ्च बहुरूप अक्षय
अक्षर हन्ययुज खण्डपरशो शक मुञ्जकेश
हंस महादक्षिण हृषीकेश सूक्ष्म महानियमधर

[5]

विरज लोकप्रतिष्ठ अरूप अग्रज धर्मज धर्मनाम [10]
गमस्तिनाम शतक्रतुनाम चन्द्ररथ सूर्यतेजः
सहस्रवासः अजः सहस्रशिरः सहस्रपाद
अधोमुख महापुरुष पुरुषोत्तम सहस्रनाहो
सहस्रमूर्च्छ सहस्रास्य सहस्रसंभव सहस्रसत्त्वं
त्वामाहुः । पुष्पहास चरम त्वमेव वौषट् [15]
वपट्कारं त्वामाहुः रथयं मत्सेपु प्राशितारं सहस्रधारं
च भूय श्रुवश्च स्वथ त्वमेव वेदवेद्य ब्रह्मशय
श्राद्धप्रिय त्वमेव धौरसि मातरिश्वाऽसि
धर्मोऽसि होता पोता मन्ता नेता होमहेतुस् त्वमेव

उस अमृत स्थान पर पहुँच कर महात्मा कश्यप ने
धीमान् योगी सुरेश्वर, कल्याणस्वरूप, सहस्राक्ष, नारायण
देव की प्रसन्नता हेतु (देवताओं को) सहस्रवर्षीय दिव्य
कामद व्रत की दीक्षा दी । (२-२१)

सभी देवता क्रम पूर्वक ब्रह्मचर्य, मौन एवं स्थान वीरा

श्रीयामनपुराण के सरोमाहात्म्य मे च षा अध्याय समाप्त ॥४१॥

५

कश्यप ने कहा—हे देव देव एकशृङ्ग, वृषाधि,
सिन्धुवृष, वृषाकपि, सुररूप, अनादिसंभव, रुद्रकपिल,
विष्वक्सेन, सर्वभूतपति, भ्रुव, धर्माधर्म, वैकुण्ठ, वृषावर्च,
अनादिमध्यनिधन, घनंजय, शुचिश्रवः, पृश्नितेजः, निजजय,
अमृतेशय, सनातन, त्रिधाम, तुपित, महावरच, लोकनाथ,
पञ्चनाभ, विरिञ्चि, बहुरूप, अक्षय, अक्षर, हन्ययुज,
खण्डपरशु, शक, मुञ्जकेश, हंस, महादक्षिण, हृषीकेश,
सूक्ष्म, महानियमधर, विरज, लोकप्रतिष्ठ, अरूप, अग्रज,

सन् (आसन विशेष) धारण कर उग्र तप करने
लगे । (२२)

वहाँ भगवान् कश्यप ने महात्मा विष्णु को प्रसन्न
करने के लिये वेदोक्त स्वर का पाठ किया जिसे 'परमस्तव'
कहते हैं । (२३)

धर्मज, धर्मनाम, गमस्तिनाम, शतक्रतुनाम, चन्द्ररथ,
सूर्यतेजः, सगुद्रवास, अज, सहस्रशिरः, सहस्रपाद, अधोमुख,
महापुरुष, पुरुषोत्तम, सहस्रबाहु, सहस्रमूर्ति, सहस्रास्य,
सहस्रसंभव ! आपको नमस्कार है ! आपको सहस्रसत्त्व कहते
हैं । हे पुष्पहास, चरम ! आप ही वौषट् हैं एवं आपको ही
वपट् कहते हैं । आपही अप्रय, यज्ञों में प्राशिता (भोक्ता)
सहस्रधार, भू, सुच एवं स्व हैं । आपही वेदवेद्य, ब्रह्मशय,
श्राद्धप्रिय, हो, मातरिश्वा, धर्म, होता, पोता, मन्ता, नेता

अग्रथ विश्वधाम्ना त्वमेव दिग्भिः सुभाण्ड [20]
 इज्योऽसि सुमेधोऽसि समिधस्त्वमेव मतिर् गतिर्
 दाता त्वमसि । मोक्षोऽसि योगोऽसि । सृजसि ।
 धाता परमवज्ञोऽसि सोमोऽसि दीक्षितोऽसि दक्षि-
 णाऽसि विश्वमसि । स्थविर हिरण्यनाभ नारायण
 त्रिनयन आदित्यवर्ण आदित्यतेजः महापुरुष [25]
 पुरुषोत्तम आदिदेव सुविक्रम प्रभाकर

शमो स्वयंभो भूतादिः महाभूतोऽसि विश्वभूत
 विश्वं त्वमेव विश्वगोप्ताऽसि पवित्रमसि विश्वभव
 ऊर्ध्वकर्म अमृत दिवस्पते वाचस्पते घृताचं
 अनन्तकर्म वश प्राग्वंश विश्वपास्त्वमेव [30]
 वरार्थिना वरदोऽसि त्वम् ।
 चतुर्भिश्च चतुर्भिश्च द्वाभ्या पञ्चभिरेव च ।
 ह्यते च पुनर्द्वाभ्या तुभ्य होत्रात्मने नमः ॥ १

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये पञ्चमोऽध्याय ॥४॥

६

लोमहर्षण उवाच ।

नारायणस्तु भगवान्छ्रुत्वैवं परमं स्तवम् ।
 ब्रह्मज्ञेन द्विजेन्द्रेण कश्यपेन समीरितम् ॥ १
 उवाच वचनं सम्पक् तृष्टः पृष्टपदाक्षरम् ।
 श्रीमान् प्रीतमना देवो यद्भदेत् प्रभुरीश्वरः ॥ २

वर च्युष्वं भद्रं वो वरदोऽस्मि सुरोत्तमाः ।

कश्यप उवाच ।

प्रीतोऽसि नः सुरश्रेष्ठ सर्वेषामेव निधयः ॥ ३
 वासवस्यानुजो भ्राता ज्ञातीना नन्दिवर्धनः ।
 अदित्या अपि च श्रीमान् भगवानस्तु वै सुतः ॥ ४

एव होमहेतु हैं । आप ही विरवतेज के द्वारा अग्रथ हैं
 और दिशाओं के द्वारा सुभाण्ड है अर्थात् दिशाएँ आपमे
 समाविष्ट हैं । आप इज्य, सुमेध, समिधा, मति, गति
 एव दाता हैं । आप ही मोक्ष, योग, स्रष्टा, धाता, परमवज्ञ,
 सोम, दीक्षित, दक्षिणा एव विरव है । आप ही स्थविर,
 हिरण्यनाभ, नारायण, त्रिनयन, आदित्यवर्ण, आदित्यतेज,
 महापुरुष, पुरुषोत्तम, आदिदेव, सुविक्रम, प्रभाकर, शम्भु,
 स्वयम्भु, भूतादि, महाभूत, विरवभूत एव विश्व हैं । आप

ही ससार के रक्षक, पवित्र, विश्वभव, ऊर्ध्वकर्म, अमृत,
 दिवस्पति, वाचस्पति, घृताचि, अनन्तकर्म, वश, प्राग्वंश,
 विश्वपा तथा वरार्थियों के वरदाता हैं ।

चार (आश्रावय), चार (अस्तु श्रीपद्), दो (यज) तथा
 पाच (ये यज्ञपदे) और पुन दो (वपद्) अक्षरों (इस
 प्रकार ४+४+२+१+२-१७ अक्षरों) से तिसको हवन
 होता है उस होत्रात्त्वक को नमस्कार है ।

॥ श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में पौर्वर्षी अध्याय समाप्त ॥५॥

६

लोमहर्षण ने कहा—इस प्रकार ब्रह्मज्ञ द्विनवर कश्यप
 द्वारा की गई श्रेष्ठ स्तुति को सुन कर श्रीमान्, प्रभु, ईश्वर
 देव भगवान् नारायण ने अत्यन्त तृष्ट होकर प्रसन्नमन से
 पृष्टपदाक्षरों से युक्त उपयुक्त वचन कहा—हे श्रेष्ठ देवताओ !
 वर मागो । तुम्हारा कल्याण हो, मैं वर दूँगा ।

कश्यप ने कहा—' हे सुरश्रेष्ठ ! यदि आप प्रसन्न हैं तो हम
 सभी का यह निरचय है कि आप श्रीमान् भगवान् स्वय इन्द्र
 के लघु भ्राता के रूप से अदिति के ज्ञातिजनों के आनन्द
 वर्षक पुत्र बनें ।' (१-४)

अदितिर्देवमाता च एतमेवार्थमुत्तमम् ।
 पुत्रार्थं वरदं प्राह भगवन्त वरार्थिनी ॥ ५
 देवा ऊचुः ।
 निःश्रेयसार्थं सर्वेषां दैवतानां महेश्वर ।
 त्राता भर्ता च दाता च शरणं भव नः सदा ॥ ६
 वतस्तानब्रवीद्विष्णुर्देवान् कश्यपमेव च ।
 सर्वेषामेव पुष्पाकं ये भविष्यन्ति शत्रवः ।
 मूर्च्छमपि ते सर्वे न स्थास्यन्ति ममाग्रतः ॥ ७
 हत्वाऽसुरगणान् सर्वान् यज्ञभागाप्रभोजिनः ।
 हृष्यादांश्च सुरान् सर्वान् कृष्यादांश्च पितृनपि ॥ ८
 करिष्ये विदुश्श्रेष्ठाः पारमेष्ठ्येन कर्मणा ।
 यथायातेन मार्गेण निवर्तस्व सुरोत्तमाः ॥ ९
 लोमहर्षण उवाच ।
 एवमुक्ते तु देवेन विष्णुना प्रभविष्णुना ।
 ततः प्रहृष्टमनसः पूजयन्ति स्म त प्रभुम् ॥ १०
 विश्वेदेवा भद्रात्मानः कश्यपोऽदितिरेव च ।
 नमस्कृत्य सुरेशाय तस्मै देवाय रंहसा ॥ ११

वरार्थिनी देवमाता अदिति ने भी वरदाता भगवान् से पुत्रार्थं इसी उत्तम प्रयोजन को कहा । (५)
 देवों ने कहा—हे महेश्वर ! सभी देवों के परम कल्याण के निमित्त आप हमारे सदा रक्षक, नरण कर्ता, दाता एवं शरण बनें । (६)
 तदनन्तर भगवान् विष्णु ने उन देवताओं तथा कश्यप से कहा—आप सभी के जितने भी शत्रु होंगे वे क्षणमात्र भी मेरे सम्मुख नहीं ठहरेंगे । (७)
 हे देवश्रेष्ठो ! पारमेष्ठ्य कर्म द्वारा मैं सभी असुरों को मार कर देवताओं को यज्ञभागप्रभोजी एवं हृष्यभोजी तथा पितृमर्णों को कश्यभोजी बनाऊँगा । हे श्रेष्ठदेवो ! आप लोग जिस मार्ग से आये हैं उसी से लौट जाय । (८-९)
 लोमहर्षण ने कहा—प्रभावशाली देव विष्णु के ऐसा कहने पर सभी महात्मा देवगण, कश्यप एवं अदिति ने प्रसन्न मन से प्रभु का पूजन किया एवं सुरेश्वर को प्रणाम करने के उपरान्त पूर्व दिशा में स्थित कश्यप के विपुल आश्रम को वेगपूर्वक चले गये । कुरुक्षेत्रवन में स्थित कश्यप के महान् आश्रम में पहुँच कर उन लोगों ने अदिति को प्रसन्न करने के उपरांत उसे तप करने में नियोजित

प्रयाताः प्रादिदशं सर्वे विपुलं कश्यपाश्रमम् ।
 ते कश्यपाश्रमं गत्वा कुरुक्षेत्रवनं महत् ॥ १२
 प्रसाद्य ह्यदितिं तत्र तपसे तां न्ययोजयन् ।
 सा चचार तपो घोरं वर्षाणाम्युतं तदा ॥ १३
 तस्या नाम्ना वनं दिव्यं सर्वकामप्रदं शुभम् ।
 आराधनाय कृष्णस्य वाग्जिता वायुभोजना ॥ १४
 दैत्यैर्निराकृतान् दृष्ट्वा तनयानृषिसत्तमाः ।
 वृथापुत्राऽहमिति सा निर्वेदात् प्रणयाद्धरिम् ।
 तुष्टाव वागिरउयाभिः परमार्थावधोधिनी ॥ १५
 शरण्यं शरणं विष्णु प्रणता भक्तवत्सलम् ।
 देवदैत्यमय चादिमन्थमान्तस्वरूपिणम् ॥ १६
 अदि तित्वाच ।
 नमः कृत्यार्तिनाशाय नमः पुष्करमालिने ।
 नमः परमकल्याण कल्याणायादिवेषसे ॥ १७
 नमः पङ्कजनेत्राय नमः पङ्कजनाभये ।
 नमः पङ्कजसंभूतिसंभवायात्मयोनये ॥ १८
 श्रियः कान्ताय दान्ताय दान्तदृश्याय चक्रिणे ।

किया तदनन्तर उसने दश सहस्र वर्षों तक घोर तप किया । (१०-१३)
 हे ऋषि श्रेष्ठो ! (जिस वन में उसने तप किया) उस सर्व कामनाओं को देने वाले, कल्याणकारी दिव्य वन का उस (अदिति) के नाम पर (अदितिवन) नाम पडा । हे ऋषिश्रेष्ठो ! दैत्यों के द्वारा अपने पुत्रों को तिरस्कृत देसकर अपने को व्यर्थपुत्रवाली समझती हुई कृष्ण की आराधना के लिए वाणी को जीतकर तथा वायु का भोजन करती हुई परमार्थ को जानने वाली अदिति ने रत्नानियुक्त तथा विनश होकर शरण्य, शरण, भक्तवत्सल, देवदैत्यमय, आदि मन्थ अन्तस्वरूपी विष्णु की श्रेष्ठ यागियों से स्तुति की । (१४-१६)
 अदिति ने कहा—कृत्या से उत्पन्न हुआ के नाशक को नमस्कार है, पुष्कर की माला धारण करने वाले को नमस्कार है हे परम मंगलकारी ! कल्याणस्वरूप आदिविधाता आप को नमस्कार है । (१७)
 पङ्कजनेत्र को नमस्कार है । पङ्कजनाभि को नमस्कार है । पङ्कजसंभूति (ज्ञाना) के सभब (उत्पत्तिस्थान) को एवं आत्मयौनि को नमस्कार है । (१८)

नमः पद्मासिहस्ताय नमः कनकरतेसे ॥ १९
 तथात्मज्ञानयज्ञाय योगिचिन्त्याय योगिने ।
 निर्गुणाय विशेषाय हरये ब्रह्मरूपिणे ॥ २०
 जगच्च तिष्ठते यत्र जगतो यो न दृश्यते ।
 नमः स्थूलातिसूक्ष्माय तस्मै देवाय शार्ङ्गिणे ॥ २१
 यं न पश्यन्ति पश्यन्तो जगदप्यखिलं नराः ।
 अपश्यद्भिर्जगद्यश्च दृश्यते हृदि संस्थितः ॥ २२
 वह्निर्ज्योतिरलक्ष्यो यो लक्ष्यते ज्योतिषः परः ।
 यस्मिन्नेव यतश्चैव यस्यैतदखिलं जगत् ॥ २३
 तस्मै समस्तजगताममराय नमो नमः ।
 आद्यः प्रजापतिः सोऽपि पितृणां परमः पतिः ।
 पतिः सुराणां यस्तस्मै नमः कृष्णाय वेधसे ॥ २४
 यः प्रवृत्तैर्निवृत्तैश्च कर्मभिस्तु विरज्यते ।
 स्वर्गापवर्गफलदो नमस्तस्मै गदाभृते ॥ २५
 यस्तु सचित्यमानोऽपि सर्वं पापं व्यपोहति ।

लक्ष्मीपति, इन्द्रियदमनकारी, सयमित्यो से दृश्य, चक्र-
 धारी, हाथ में कमल तथा तलवार धारण करने वाले
 कनकरतेता से नमस्कार है । (१९)
 आत्मज्ञानयज्ञ, योगिचिन्त्य, योगी, निर्गुण, विशेष,
 हरि एव ब्रह्मरूपी को नमस्कार है । (२०)
 जिनमें जगत् स्थित है किन्तु जो जगत् से दृश्य नहीं
 है ऐसे स्थूल तथा अति सूक्ष्म उन शार्ङ्गधारी देव को
 नमस्कार है । (२१)
 सम्पूर्ण जगत् को देखने वाले मनुष्य जिनको नहीं
 देख सकते, किन्तु जगत् को न देखने वाले जिन्हें हृदय
 स्थित देखते हैं, जो वह्निर्ज्योति एव अलक्ष्य हैं तथा ज्योति में
 श्रेष्ठ लक्षित होते हैं एव यह सम्पूर्ण जगत् जिनमें स्थित
 है, जिनसे (उत्पन्न) है तथा जिनका है उन समस्त
 जगत् के देव को बार-बार नमस्कार है । जो आद्य प्रजापति,
 पितृगणों के श्रेष्ठ स्वामी एव देवों के प्रति हैं उन
 विधाता कृष्ण को नमस्कार । (२२-२४)
 जो प्रवृत्त एव निवृत्त कर्मों से विरक्त तथा स्वर्ग और मोक्ष
 फल को देने वाले हैं उन गदाधारी को नमस्कार है । (२५)
 जो सत्यक स्मरण करने पर सब पापों को नष्ट कर
 देते हैं, उन विशुद्ध हरिमिथा परमात्मा को नमस्कार

नमस्तस्मै विशुद्धाय परस्मै हरिमेधसे ॥ २६
 ये पश्यन्त्यखिलाधारमीशानमजमव्ययम् ।
 न पुनर्जन्ममरण प्राप्नुवन्ति नमामि तम् ॥ २७
 यो यज्ञो यज्ञपरमैरिज्यते यज्ञसंस्थितः ।
 तं यज्ञपुरूप विष्णुं नमामि प्रभुमीश्वरम् ॥ २८
 गीयते सर्ववेदेषु वेदविद्धिर्निदां गतिः ।
 यस्तस्मै वेदवेद्याय नित्याय निष्णवे नमः ॥ २९
 यतो विश्वं समुद्भूतं यस्मिन् प्रलयमेण्यति ।
 विश्वोद्भवप्रतिष्ठाय नमस्तस्मै महात्मने ॥ ३०
 आब्रह्मस्तम्पर्यन्तं व्याप्तं येन चराचरम् ।
 मायाजालसमुद्भूतं तद्गुणेन्द्र नमाम्यहम् ॥ ३१
 योऽत्र तीयस्वरूपस्यो निमर्त्यखिलमीश्वरः ।
 विश्वं विश्वपतिं विष्णुं तं नमामि प्रजापतिम् ॥ ३२
 मूर्त्तं तमोऽसुरमयं तद्विधो विनिहन्ति यः ।
 रात्रिजं सूर्यरूपी च तद्गुणेन्द्रं नमाम्यहम् ॥ ३३

है । (२६)
 अखिलाधार, ईशान, अज और अव्यय भगवान् को
 जो देखते हैं वे जन्म और मरण को पुन नहीं प्राप्त होते । उन
 भगवान् को मैं प्रणाम करती हूँ । (२७)
 परम यज्ञों द्वारा आराधित होते हैं उन यज्ञस्वरूप, यज्ञ-
 संस्थित, यज्ञपुरूप, ईश्वर, प्रभु विष्णु को मैं नमस्कार करती
 हूँ । (२८)
 वेदज्ञों द्वारा सभी वेदों में प्रगीत, विद्वज्जनों की गति
 स्वरूप, वेदवेद्य, नित्यस्वरूप विष्णु को मेरा नमस्कार
 है । (२९)
 विश्व जिनसे समुद्भूत हुआ है, जिनमें विघ्नी होमा
 तथा जो विश्व के उद्भव तथा प्रतिष्ठास्वरूप हैं उन महात्मा
 को नमस्कार है । (३०)
 जिनके द्वारा मायाजाल से क्या हुआ आब्रह्मस्तम्ब
 चराचर (विश्व) व्याप्त है उन गुणेन्द्र को मैं नमस्कार करती
 हूँ । (३१)
 जो जल स्वरूपस्य ईश्वर अखिल विश्वका भरण करते
 हैं उन विश्वपति एव प्रजापति विष्णु को मैं नमस्कार करती
 हूँ । (३२)
 जो सूर्यरूपी गुणेन्द्र असुरमय रात्रिज मूर्त्तं तम का
 विनाश करते हैं मैं उनको प्रणाम करती हूँ । (३३)

यस्याखिणी चन्द्रसूर्यौ सर्वलोकशुभाशुभम् ।
पश्यतः कर्म सततं तद्युगेन्द्रं नमाम्यहम् ॥ ३४
यस्मिन् सर्वेश्वरे सर्वे सत्यमेतन्मयोदितम् ।

नानृतं तमजं विष्णुं नमामि प्रभवाच्ययम् ॥ ३५
यद्येतत्सत्यमुक्तं मे भूयश्वातो जनादेन ।
सत्येन तेन सकलाः पूर्वन्तां मे मनोरथाः ॥ ३६

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये पद्योऽध्याय ॥६॥

७

लोकहर्षण उवाच ।

एवं स्तुतोऽथ भगवान् वासुदेव उवाच ताम् ।
अदृश्यः सर्वभूतानां तस्याः संदर्शने स्थितः ॥ १
श्रीभगवानुवाच ।
मनोरथास्त्वमदिते यानिच्छस्यमिवाञ्छितान् ।
तांस्त्वं प्राप्स्यसि धर्मज्ञे मत्प्रसादान्न संशयः ॥ २
शृणु त्वं च महाभागो वरो यस्ते हृदि स्थितः ।
मदर्शनं हि विफलं न वदाचिद् भविष्यति ॥ ३
यश्चेह त्वदने स्थित्वा त्रिरात्रं वै करिष्यति ।
सर्वे कामाः सम्पृष्यन्ते मनसा यानिहेच्छति ॥ ४

जिनकी सूर्य चन्द्रमा रूप दोनों आँखे समस्त लोकों के
शुभाशुभ कर्मों को सतत देखती रहती हैं उन उपेन्द्र को मैं
नमस्कार करती हूँ । (३४)

जिन सर्वेश्वर के विषय मे मेरा यह समस्त कथन सत्य

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य मे दृढवाँ अध्याय समाप्त ॥६॥

७

लोकहर्षण ने कहा—इस प्रकार सस्तुत समस्त प्राणियों
से अदृश्य भगवान् वासुदेव उसके सम्मुख प्रत्यक्ष होकर
बोले । (१)

श्रीभगवान् ने कहा—“हे धर्मज्ञ अदिति ! जिन अभि
वाञ्छित मनोरथों को तुम चाहती हो उन्हें मेरी कृपा से
तुम निस्सन्देह प्राप्त करोगी । (२)

हे महाभागो ! सुनो, तुम्हारे मन मे जो वर है (उसे
मालों) मेरा दर्शन कभी विफल नहीं होगा । (३)

तुम्हारे इस वन मे रह कर जो तीन रात्रियों तक
निवास करेगा उसकी सभी मनोवाञ्छित कामनायें सफल
होंगी । (४)

दूरस्थोऽपि वनं यस्तु अदित्याः स्मरते नरः ।
सोऽपि याति परं स्थानं किं पुनर्निवसन् नरः ॥ ५
यश्चेह ब्राह्मणान् पञ्च त्रीन् वा द्वावेकमेव वा ।
भोजयेच्छुद्धया युक्तः स याति परमां गतिम् ॥ ६

अदितिरुवाच ।

यदि देव प्रसन्नस्त्वं भक्त्या मे भक्तवत्सल ।
त्रैलोक्याधिपतिः पुत्रस्तदस्तु मम वासनः ॥ ७
हंसं राज्यं हृतवाप्त्य यज्ञभाग इहासुरैः ।
त्वयि प्रसन्ने वरद त्त् प्राप्नोतु सुतो मम ॥ ८

हे तथा असत्य नहीं है वन अनन्ता, अन्यय एव स्वप्ना
विष्णु को मैं नमस्कार करती हूँ । (३५)

हे जनादेन ! यदि मैंने यह सत्य कहा है, तो उस
सत्य के प्रभाव से मेरे सब मनोरथ परिपूर्ण हों । (३६)

दूर रह कर भी जो मनुष्य अदिति के वन का स्मरण
करता है वह भी परम धाम को प्राप्त कर लेता है । फिर
यहाँ रहने वाले मनुष्य की तो बात ही क्या है ? (५)

जो इस स्थान पर पाँच, तीन, दो या एक भी ब्राह्मण
को श्रद्धा युक्त होकर भोजन करायेगा वह उत्तम गति
को प्राप्त करेगा । (६)

अदिति ने कहा—हे भक्तवत्सल देव ! यदि आप मेरी
भक्ति से प्रसन्न हैं तो मेरे पुत्र इन्द्र त्रैलोक्य के
स्वामी बनें । (७)

जसुरों ने उसके राज्य और यज्ञभाग का अपहरण कर
लिया है । हे वरद ! आपके प्रसन्न होने पर मेरा पुत्र उसे

हृतं राज्यं न दुःखाय मम पुत्रस्य केशव ।
 प्रपन्नदापविभ्रंशो याधां मे कुस्ते हृदि ॥ ९
 श्रीभगवानुवाच ।
 कृतः प्रसादो हि मया तव देवि यथेप्सितम् ।
 स्वांशेन चैव ते गर्भे संभविष्यामि कश्यपात् ॥ १०
 तव गर्भे समुद्भूतस्तत्स्ते ये त्वरातयः ।
 तानहं च हनिष्यामि निवृत्ता भव नन्दिनि ॥ ११
 अदितिरुवाच ।
 प्रसीद देवदेवेश नमस्ते विश्वभाजन ।
 नाहं त्वाद्यदरे घोढुमीश शक्यामि केशव ।
 यस्मिन् प्रतिष्ठितं सर्वं विश्वयोनिस्तृमीश्वरः ॥ १२

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये सप्तमोऽध्याय ॥७॥

श्रीभगवानुवाच ।

अहं त्वां च वहिष्यामि आत्मानं चैव नन्दिनि ।
 न च पीडा करिष्यामि स्वस्ति तेऽन्तु व्रजाम्बहम् ॥ १३
 इत्युक्त्वान्तर्हिते देवेऽदितिर्गर्भं समादधे ।
 गर्भस्थिते ततः कृष्णे च्चाल सकला क्षितिः ।
 चक्षुष्पिरे महाशैला जग्मुः क्षीमं महाग्धयः ॥ १४
 यतो यतोऽदितिर्याति ददाति पदमुचमम् ।
 ततस्ततः क्षितिः खेदाननाम द्विजपुंगवाः ॥ १५
 दैत्यानामपि सर्वेषां गर्भस्थे मधुसूदने ।
 बभूव तेजसो हानिर्यथोक्तं परमेष्ठिना ॥ १६

प्राप्त करे । (८)
 हे केशव ! पुत्र का राज्यापहरण मेरे दुःख का कारण नहीं है अपि तु शरणागत के दाय (हिस्से) का छिन जाना मेरे हृदय को पीड़ित कर रहा है । (९)
 श्रीभगवान् ने कहा—हे देवि ! तुम्हारी इच्छा के अनुसार मैंने तुम्हारे ऊपर अनुग्रह किया है । अपने अश से कश्यप के द्वारा तुम्हारे गर्भ से मैं जन्म धारण करूँगा । (१०)
 तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न होकर तुम्हारे सभी शत्रुओं को मैं मारूँगा । हे नन्दिनि ! छोट जाओ । (११)
 अदिति ने कहा—हे देवदेवेश ! आप प्रसन्न हो । हे विश्वभाजन ! आपको नमस्कार है । हे केशव ! हे ईश ! जिसके भीतर सभी बुद्ध प्रतिष्ठित हैं ऐसे आपको मैं अपने उदर में वहन न कर सकूँगी । आप विश्वयोनि एवं ईश्वर हैं । (१२)

श्रीभगवान् ने कहा—हे नन्दिनी ! मैं तुमको और अपने को भी वहन करूँगा । मैं तुम्हें कष्ट न दूँगा । तुम्हारा कल्याण हो, मैं जाता हूँ । (१३)

यह कह कर भगवान् के अन्तर्हित हो जाने पर अदिति ने गर्भधारण किया । कृष्ण के गर्भ में जाने पर समस्त पृथ्वी चञ्चल हो उठी । पर्वत प्रकम्पित होने लगे एवं महासमुद्र प्रभुत्व्य हो गए । (१४)

हे द्विजश्रेष्ठो ! अदिति जहाँ जहाँ जाती या पैर रखती थी वहाँ वहाँ की पृथ्वी खेद के कारण नष्ट हो जाती थी । (१५)

जैसा कि ब्रह्मा ने (पहले) कहा था मधुसूदन के गर्भस्थ होने पर सभी दैत्यों के तेज की हानि हो गई । (१६)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में सातवा अध्याय समाप्त ॥७॥

लोमहर्षण उवाच ।

निस्तेजसोऽसुरान् दृष्ट्वा समस्तानसुरेश्वरः ।
प्रह्लादमथ पप्रच्छ बलिरात्मपितामहम् ॥ १

बलिरुवाच ।

ताव निस्तेजसो दैत्या निर्दग्धा इव बह्विना ।
किमेते सदसैवाद्य ब्रह्मदण्डहता इव ॥ २
दुरिष्टं किं तु दैत्यानां किं कृत्या विधिनिर्मिता ।
नाशायैषां समुद्रूता येन निस्तेजसोऽसुराः ॥ ३

लोमहर्षण उवाच ।

इत्यसुरवरस्तेन श्रुतः पौत्रेण ब्राह्मणः ।
चिरं ध्यात्वा जगादेदमसुरं तं तदा बलिम् ॥ ४
प्रह्लाद उवाच ।

चलन्ति गिरयो भूमिर्जहाति सहसा धृतिम् ।
सद्यः समुद्राः क्षुभिता दैत्या निस्तेजसः कृताः ॥ ५
सूर्योदये यथा पूर्वं तथा गच्छन्ति न ग्रहाः ।

देवानां च परा लक्ष्मीः क्षारणेनात्तुमीयते ॥ ६
महदेतन्महाबाहो कारणं दानवेश्वर ।
न ह्यल्पमिति मन्तव्यं त्वया कार्यं कथंचन ॥ ७

लोमहर्षण उवाच ।

इत्युक्त्वा दानवपतिं प्रह्लादः सोऽसुरोत्तमः ।
अत्यर्थमक्तो देवेशं जगाम मनसा हरिम् ॥ ८
स ध्यानपथगं कृत्वा प्रह्लादश्च मनोऽसुरः ।
विचारयामास ततो यथा देवो जनार्दनः ॥ ९
स ददर्शोदरेऽदित्याः प्रह्लादो वामनाकृतिम् ।
तदन्तश्च वसून् रुद्रानधिभो मरुतस्तथा ॥ १०
साध्यान् विश्वे तथादित्यान् गन्धर्वोरगराक्षसान् ।
विरोचनं च तनयं बलिं चासुरनायकम् ॥ ११
ब्रह्मं कुजब्रह्मं नरकं बाणमन्यांस्तथासुरान् ।
आत्मानमुर्वीं गगनं वायुं वारिं हुवाशनम् ॥ १२
समुद्राद्रिसरिद्वीपात् सरांसि च पशुन् महीम् ।

लोमहर्षण ने कहा—तदनन्तर असुरराज बलि ने समस्त असुरों को निस्तेज हुआ देख कर अपने पितामह प्रह्लाद से पूछा ।

बलि ने कहा—हे ताव ! अग्निदग्ध के सदृश दैत्य निस्तेज हो गए हैं । ये आज सदसा ब्रह्मदण्ड से हत के सदृश क्यों हो गये हैं ?

क्या देवों का कोई अनिष्ट उपस्थित हुआ है ? अथवा क्या इनके नाश हेतु विधिनिर्मित कृत्या समुद्रयूथ हुई हैं जिससे असुर लोग निस्तेज हो गए हैं ।

लोमहर्षण ने कहा हे ब्राह्मणो ! पीत्र से इस प्रकार पूछे जाने पर असुरश्रेष्ठ प्रह्लाद ने देर तक ध्यान लगाने के उपरान्त असुर बलि से कहा ।

प्रह्लाद ने कहा—पर्वत डगमगा रहे हैं, पृथ्वी सदसा धैर्य को छोड़ रही है, समुद्र सद्यः क्षुब्ध हो रहे हैं पव दैत्य निस्तेज कर दिये गये हैं ।

पहले के सदृश सूर्योदय होने पर प्रह नहीं चल रहे हैं । कारण के द्वारा देवताओं की उत्कृष्ट लक्ष्मी का अतु-मान होता है ।

हे महाबाहु ! हे दानवेश्वर ! यह कोई महान कारण है । इसे कोई छोटी बात नहीं समझनी चाहिये और इसका आपको कोई उपाय करना चाहिये (अथवा इसके कार्य (परिष्कार) को आप किसी भी भाति छोटा न समझें) ।

लोमहर्षण ने कहा—दैत्यराज बलि से ऐसा कह कर असुरश्रेष्ठ महाभक्त प्रह्लाद मन से भगवान् के शरणागत हुए ।

असुर प्रह्लाद मन को ध्यानपथगामी बना कर जनार्दन देव के स्वरूप का चिन्तन करने लगे ।

उन्होंने अदिति के उदर में वामनाकृति (भगवान्) को देखा । उनके भीतर यमुण्य, रद्रीं, दोनो अधिनीकुमारों, मरुतों, साध्यों, विश्वेदेवाण्य, आदित्यों, गन्धर्वों, उरगों,

चपोमनुष्यानखिलस्तैश्च च सरीसृपान् ॥ १३
 समस्तलोकस्यैतारं ब्रह्माणं भवमेव च ।
 प्रहनस्रत्रताराश्च दत्ताद्यांश्च प्रजापतीन् ॥ १४
 संपदयन् विस्मयापिष्टः प्रकृतिस्थः क्षणात् पुनः ।
 प्रह्लादः प्राह दैत्येन्द्रं बलिं वैरोचनि ततः ॥ १५
 तत्संज्ञातं मया सर्वं यदर्थं भवतामिद्यम् ।
 तेजसो हानिरूपमा मृष्वन्तु तदशेषतः ॥ १६
 देवदेवो जगद्योनिरयोनिर्जगदादिजः ।
 अनादिरादिर्विश्वस्य चरेण्यो चरदो हरिः ॥ १७
 परानराणां परमः परापरसतां गतिः ।
 प्रस्युः प्रमाणं मानानां समलोकयुरोर्गुर्नृः ।
 स्थितिं कर्तुं जगन्नाथः सोऽचिन्त्यो गर्भतां गतः ॥ १८
 प्रस्युः प्रमूणां परमः पराणा-
 मनादिमध्यो भगवाननन्तः ।
 त्रैलोक्यमंशेन सनाथमेकः

राक्षसों, अपने पुत्र विरोचन, अमुरनायक बलि, जम्भ, बुजम्भ, नरर, बाग, अन्व अनेक असुरों र्व स्वयं को तथा शृष्यी, आमाश, वायु, जल, अग्नि, समुद्रों, परियों, नदियों, द्वीपों, सरो, पशुओं, शृष्यी, पक्षियों, समस्त मनुष्यों, सरीसृपों, समस्त लोको के सृष्टा ब्रह्मा, शिव, महो, नशत्रे, ताराओं तथा इत्यादि प्रजापतियों को देखने से इन्द्राद विमया पिष्ट हो गए । किन्तु क्षणमात्र में पुन प्रकृतिस्थ होकर उन्होंने विरोचनपुत्र दैत्येन्द्र बलि से कहा— (१०-११)

तुम लोगों की यह तेज हानि जिस कारण उत्पन्न हुई है उसे मैं पूरा जान गया । तुम लोग उमें पूर्णरूपेण सुनो— (१६)

वेषदेव, जगद्योनि, अयोनि, जगदादि में उत्पन्न, अनादि, विदयके आदि, चरेण्य, चरद, हरि, परापरों में सर्वश्रेष्ठ, परापर-सज्जनों की गति, मानों के प्रमादभूत प्रसु, सत्त लोके के गुरुओं के गुरु एवं अचिन्त्य जगन्नाथ (जगत् में) स्थिति करने के निमित्त गर्भरथ हुए हैं । (१७-१८)

प्रसुओं के प्रसु, भेषों में भेष, आदि सप्य-हीन, अनन्त

कर्त्तृ महात्माऽदितिः स्वतीर्णः ॥ १९
 न यस्य स्त्रो न च पश्योनि-
 नेंद्रो न सूयेंद्रुमरीचिमिथाः ।
 जानन्ति दैत्याधिप यत्स्वरूपं
 स वासुदेवः कलयावतीर्णः ॥ २०
 यमक्षरं वेदविदो वदन्ति
 विद्यन्ति यं ज्ञानरिधृतपापाः ।
 यस्मिन् प्रविष्टा न पुनर्भवन्ति
 तं वासुदेवं प्रणमामि देवम् ॥ २१
 भूतान्यशेषाणि यतो भवन्ति
 यथोमंस्तोयनिषेरजस्रम् ।
 लयं च यस्मिन् प्रलये प्रयान्ति
 तं वासुदेवं प्रणतोऽस्म्यचिन्त्यम् ॥ २२
 न यस्य रूपं न पलं प्रभावो
 न च प्रतापः परमस्य पुंसः ।
 विज्ञायते सर्वपितामहायै-
 स्तं वासुदेवं प्रणमामि नित्यम् ॥ २३

महात्मा भगवान् अकेले जगत् को सनाथ करने के लिये अदिति के पुत्र रूप में अज्ञानतार प्रहण किये हैं । (१९)

हे दैत्याधिप । रद्र, ब्रह्मा, इन्द्र, सूर्य, चन्द्रमा एवं मरीचि आदि जिनके स्वरूप को नहीं जानने के ही वासुदेव एक कला से अन्तर्गो हुए हैं । (२०)

वेदज्ञ लोग जिन्हें अक्षर कहते हैं, ज्ञान से पापरहित हुए प्राणी जिनमें प्रविष्ट होते हैं एवं जिनके भीतर प्रविष्ट हुए लोग पुन उत्पन्न नहीं होते ऐसे उन वासुदेव को मैं प्रणाम करता हूँ । (२१)

मनुष्य की तरङ्गों के सदृश जिनसे समस्त भूत सत्त उत्पन्न होते तथा प्रलयकाल में जिनके भीतर विडीन होते हैं उन अचिन्त्य वासुदेव को मैं प्रणाम करता हूँ । (२२)

ब्रह्मा आदि जिन परम पुरुष के रूप, बन्, प्रभाव और प्रताप को नहीं जानने उन वासुदेव को मैं नित्य प्रणाम करता हूँ । (२३)

रूपस्य चक्षुर्ग्रहणे त्वगोपा
स्पर्शग्रहित्री रसना रसस्य ।
घ्राणं च गन्धग्रहणे नियुक्तं
न घ्राणचक्षुः श्रवणादि तस्य ॥ २४
स्वयंप्रकाशः परमार्थतो यः
सर्वेश्वरो वेदितव्यः स युक्त्या ।
शक्यं तमीड्यमनघं च देवं
ग्राह्यं नलोऽह हरिमीक्षितारम् ॥ २५
येनैकदंष्ट्रेण समुद्धृतेयं
धराऽचला धारयतीह सर्वम् ।
शेते ग्रसित्वा सकलं जगद् य-
स्तमीड्यमीशं प्रणतोऽस्मि विष्णुम् ॥ २६
अंशावतीर्णेन च येन गर्भे
हृतानि तेजांसि महाऽसुराणाम् ।
नमामि तं देवमनन्तमीश-
मशेषसंसारतरोः कुठारम् ॥ २७
देवो जगद्द्योतिरयं महात्मा
स षोडशांशेन महाऽसुरेन्द्राः ।
सुरेन्द्रभातुर्जठरं प्रविष्टो

नेत्र को रूप देखने के लिये, त्वचा को स्पर्श ग्रहण करने के लिये, जिह्वा को स्वाद लेने के लिये और नासिका को गन्ध सूंघने के लिये जिन्होंने नियुक्त किया है उन्हें नासिका, नेत्र और श्रवण आदि नहीं है। (२४)

जो वस्तुतः स्वयं प्रकाश है वे सर्वेश्वर युक्ति से ज्ञेय है। उन समर्थ, स्तुत्य, निष्पाप, ग्राह्य, ईश हरि देव को मैं प्रणाम करता हूँ। (२५)

जिनके द्वारा एक दृष्टा से निकाली गई अचला धरा सभी बुद्ध धारण करती है तथा जो समस्त जगत् को अपने में विलीन कर शयन करते हैं उन स्तुत्य ईश विष्णु को मैं प्रणाम करता हूँ। (२६)

जिन्होंने अश से गर्भ में अवतीर्ण होकर महासुरों के तेज का हरण कर लिया उन समस्त संसाररूपी वृक्ष के कुठार स्वरूप अनन्त देवेश को मैं प्रणाम करता हूँ। (२७)

हे महासुरो! जगद्द्योतिस्वरूप वे ही महात्मा देव अपनी षोडशांश फला से इन्द्र की माता के गर्भ में प्रविष्ट हुए हैं एव वन्होंने ही तुम लोगों के शरीर के बल का अपहरण

हृतानि वस्तेन षलं वर्षूपि ॥ २८
बलिरुवाच ।

तात कोऽयं हरिर्नाम यतो नो भयमागतम् ।
सन्ति मे शतशो दैत्या वासुदेवलाधिकाः ॥ २९
विप्रचित्तिः त्रिभिः शंकरयःशंभुस्तथैव च ।
हयशिरा अश्वशिरा भङ्गकारो महाहतुः ॥ ३०
प्रतापी प्रघ्नः शंभुः कुक्कुराश्च दुर्जयः ।
एते चान्ये च मे सन्ति दैत्या दानवास्तथा ॥ ३१
महाबला महावीर्या भूभारधरणक्षमाः ।
एषामेकैकशः कृष्णो न वीर्याद्देन संमितः ॥ ३२

लोमहर्षण उवाच ।

पौत्रस्यैतद् वचः श्रुत्वा प्रह्लादो दैत्यसत्तमः ।
सत्रोधश्च बलिं प्राह वैकुण्ठाक्षेपवादिनम् ॥ ३३
विनाशमृपयास्यन्ति दैत्या ये चापि दानवाः ।
येषां त्वमीदृशो राजा दुर्बुद्धिरविवेकवान् ॥ ३४
देवदेवं महाभागं वासुदेवमजं विभुम् ।
त्वामृते पापसङ्कल्प कोऽन्य एव वदिष्यति ॥ ३५

किया है। (२८)

बलि ने कहा—हे तात! जिनसे हमें भय प्राप्त हुआ है वे हरि कौन हैं? हमारे पास वासुदेव से अधिक बलवान् सैकड़ों दैत्य हैं। (२९)

विप्रचित्ति, त्रिभिः, शंभु, अयं शकु, हयशिरा, अश्वशिरा, भङ्गकार, महाहतुः, प्रतापी, प्रघ्नः, शंभु, दुर्जय एव कुक्कुराश्च ये तथा अन्य भी मेरे अनेक दैत्य तथा दानव हैं। (३०-३१)

ये सभी महाबलवान् एव महापराक्रमी तथा भूभार को धारण करने में समर्थ हैं। इनमें से एक एक के आधे बल के भी तुल्य कृष्ण नहीं हैं। (३२)

लोमहर्षण ने कहा—पौत्र के इस वचन को सुन क्रुद्ध दैत्यश्रेष्ठ प्रह्लाद ने भगवान् पर आक्षेप करने वाले बलि से कहा—

तुम्हें दुर्बुद्धि एव अविवेकी राजा से युक्त ये सभी दैत्य एव दानव विनष्ट हो जायेंगे। (३४)

हे पापसङ्कल्प! तुम्हारे अतिरिक्त ऐसा कौन है जो देवाधि- देव महाभाग अज एव विभु वासुदेव को ऐसा कहेगा। (३५)

य एते भवता प्रोक्ताः समस्ता दैत्यदानवाः ।
सन्नद्धकास्तथा देवाः स्थावरान्ता विभूतयः ॥ ३६
त्वं चाहं च जगच्चेदं साद्रिद्रुमनदीवनम् ।
ससमुद्रद्वीपलोकोऽयं यथेदं सचराचरम् ॥ ३७
यस्याभिवाद्यवन्द्यस्य व्यापिनः परमात्मनः ।
एकांशांशकलाजन्म कस्तमेवं प्रवक्ष्यति ॥ ३८
श्रुते विनाशामिष्टुखं त्वामेकमविवेकिनम् ।
दुर्बुद्धिमजितात्मानं वृद्धानां शामनातिगम् ॥ ३९
शोच्योऽहं यस्य मे गोहे जातस्तव पिताऽधमः ।
यस्य त्वमीदृशः पुत्रो देवदेवावमानकः ॥ ४०
तिष्ठत्यनेकसंसारसंघातोषयिनायिनि ।
कृष्णे भक्तिरहं तावदवेक्ष्यो भवता न किम् ॥ ४१
न मे प्रियतरः कृष्णादपि देहोऽयमात्मनः ।
इति जानात्ययं लोको भवांश्च दितिनन्दन ॥ ४२

जानन्नपि प्रियतरं प्राणेभ्योऽपि हरिं मम ।
निन्दां करोपि तस्य त्वमकुर्वन् गौरवं मम ॥ ४३
विरोचनस्तव गुरुर्गुरुस्तस्याप्यहं बले ।
ममापि सर्वजगतां गुरुनारायणो हरिः ॥ ४४
निन्दां करोपि तस्मिंस्त्वं कृष्णे गुरुगुरोर्गुरो ।
यस्मात् तस्मादिहैव त्वमैश्वर्याद् अंशमेष्यसि ॥ ४५
स देवो जगतां नायो बले प्रभुर्जनार्दनः ।
नन्वहं प्रत्यवेक्ष्यन्ते भक्तिमानत्र मे गुरुः ॥ ४६
एतावन्मात्रमप्यत्र निन्दता जगतो गुरुम् ।
नापेक्षितन्वया यस्मात् तस्मान्नाप्यं ददामि ते ॥ ४७
यथा मे शिरसश्छेदादिदं गुरुतरं बले ।
त्वयोक्तमच्युताक्षेप राज्यभ्रष्टस्त्वथा पत ॥ ४८
यथा न कृष्णादपरः परित्राणं भवार्णवे ।
तथाऽचिरेण पश्येयं भवन्तं राज्यविच्युतम् ॥ ४९

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

तुम्हारे द्वारा कथित ये सभी दैत्य एवं दानव, ब्रह्मा सहित सभी देवता तथा स्थावरपर्यन्त विभूतियाँ, तुम, मैं, पर्वत, वृक्ष, नदी और वन से युक्त जगत्, तथा समुद्रों एवं द्वीपों से युक्त यह लोक तथा सचराचर जिन वन्दनीय श्रेष्ठ सर्वव्यापी परमात्मा के एकांश की अशकला से उत्पन्न हुआ है उनके विषय में विनाशामिष्टुख, अविवेकी, दुर्बुद्धि, अजिवात्मा, वृद्धों के शासन वा अतिक्रमण करने वाले तुम्हारे अतिरिक्त कौन ऐसा कहेगा ? (३६-३९)
मैं भी शोचनीय हूँ जिसके घर में तुम्हारा अधम पिता उत्पन्न हुआ जिसका तुम्हारे जैसा देवदेव (विष्णु) का अपमानकारी पुत्र है । (४०)
अनेक संसार समूह के प्रवाह के विनाशक कृष्ण मे भक्ति करना तो अलग रहा तुम्हें क्या मेरा भी ख्याल नहीं करना चाहिये था ? (४१)
हे दितिनन्दन ! समस्त संसार एव तुम भी यह जानते हो कि मुझे मेरी यह देह भी कृष्ण से प्रियतर नहीं है । (४२)
यह जानने हुए भी कि हरि मुझे प्राणों से भी प्रिय तर है तुम मेरा अनादर करते हुए बनने निन्दा

कर रहे हो । (४३)
हे बलि ! तुम्हारा गुरु (पिता) विरोचन है, उसका गुरु (पिता) मैं हूँ तथा मेरे भी गुरु सर्वजगत् के स्वामी नारायण हरि हैं । (४४)
यत तुम अपने गुरु (पिता विरोचन) के गुरु (पिता मैं प्रह्लाद) के भी गुरु श्रीकृष्ण की निन्दा कर रहे हो अत तुम यहाँ ऐश्वर्य से भ्रष्ट हो जाओगे । (४५)
हे बलि ! ये प्रभु जनार्दन देव जगत् के नाथ हैं । इसमें मेरा गुरु (अर्थात् मैं) भक्तिमान हूँ यह समझकर तुझे मेरी अशकला नहीं करना चाहिए । (४६)
यत जगद्गुरु की निन्दा करने वाले तुमने मेरी इतनी भी अपेक्षा नहीं की अत मैं तुम्हें शाप देता हूँ । (४७)
हे बलि ! यत तुम्हारे द्वारा अच्युत के प्रति कदा गया आक्षेपयुक्त बचन मेरे शिरसश्छेद से भी गुरुतर है अत तुम राज्यभ्रष्ट होकर गिर जाओ । (४८)
क्योंकि भरसागर में कृष्ण को छोड़कर दूसरा कोई परित्राण नहीं है अत श्रीव्र ही मैं तुम्हें राज्य से विच्युत हुआ दे रहा हूँ । (४९)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में आठवाँ अध्याय समाप्त ॥८॥

लोमहर्षण उवाच ।

इति दैत्यपतिः श्रुत्वा वचनं रौद्रमप्रियम् ।
प्रसादयामास गुरुं प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥ १

बलिहवाच ।

प्रसीद तात मा कोपं कुरु मोहहते मयि ।
बलाबलेपमूढेन मयैतद्वाक्यमोरितम् ॥ २
मोहापहतविज्ञानः पापोऽहं दितिजोचम ।
यच्छ्रोऽस्मि दुराचारस्तस्माद्यु भवता कृतम् ॥ ३
राज्यभ्रंशं यशोभ्रंशं प्राप्स्यामीति ततस्त्वहम् ।
विषण्णोऽसि यथा तात तथैवाविनये कृते ॥ ४
त्रैलोक्यराज्यमैश्वर्यमन्यद्वा नातिदुर्लभम् ।
ससारे दुर्लभास्तात गुरो ये भवद्विधाः ॥ ५
प्रसीद तात मा कोपं कर्तुमर्हसि दैत्यप ।
त्वत्कोपपरिदग्धोऽहं परितप्ये दिवानिशम् ॥ ६

प्रहाद उवाच ।

वत्स कोपेन मे मोहो जनितस्तेन ते मया ।
शापो दत्तो विवेकश्च मोहेनापहतो मम ॥ ७
यदि मोहेन मे ज्ञानं नाशितं स्यान्महासुर ।
तत्कथं सर्वगं जानन् हरिं कश्चिच्छपाम्यहम् ॥ ८
यो यः शापो मया दत्तो भवतोऽसुरपुंगव ।
भाव्यमेतेन नून ते तस्मात्त्व मा विपीद वै ॥ ९
अद्यप्रभृति देवेशे भगवत्पच्युते हरो ।
भवेथा भक्तिमानीशे स ते त्राता भविष्यति ॥ १०
शापं प्राप्य च मे वीर देवेशः समसृतस्त्वया ।
तथा तथा वदिव्यामि श्रेयस्त्वं प्राप्स्यसे यथा ॥ ११

लोमहर्षण उवाच ।

अदितिर्वरमासाद्य सर्वकामसमृद्धिदम् ।

९

लोमहर्षण ने कहा—दैत्यपति बलि ने इस प्रकार के उप एव अप्रिय वचन सुनकर पुन पुन प्रणाम कर गुरु (प्रह्लाद) को प्रसन्न किया । (१)

बलि ने कहा—हे तात । आप प्रसन्न हों, मुझ मोहप्रस्त पर क्रोध न करें । बल के घमण्ड से विमूढ होकर मैंने यह वाक्य कहा था । (२)

हे दैत्यश्रेष्ठ ! मोह के कारण मेरा ज्ञान मारा गया था, मैं पापी हूँ । मुझ दुराचारी को आपने जो शाप दिया, वह बहुत अच्छा किया । (३)

हे तात ! मेरे द्वारा उस प्रकार का अविनय किये जाने से यत आप विषण्ण हुए हैं अत मैं राज्यभ्रंश एव यशोभ्रंश को प्राप्त करूँगा । (४)

हे तात ! ससार में त्रैलोक्य का राज्य, ऐश्वर्य अथवा अन्य कोई (पदार्थ) अतिदुर्लभ नहीं है, किन्तु आप ऐसे गुरु दुर्लभ होते हैं । (५)

हे दैत्यरक्षक ! हे तात । आप प्रसन्न हों कोप न करें ।

आपके क्रोध से परिदग्ध होकर मैं दिन-रात परितप्त हो रहा हूँ । (६)

प्रह्लाद ने कहा—हे वत्स ! क्रोध के कारण मुझे मोह पैदा हो गया था और मोह ने मेरा विवेक भी नष्ट कर दिया था इसी से मैंने तुम्हें शाप दिया । (७)

हे महासुर ! यदि मोह के कारण मेरा ज्ञान नष्ट नहीं हुआ होता तो भगवान् को सर्वव्यापी जानते हुए भी मैं शाप कैसे देता । (८)

हे असुरपुङ्गव ! मैंने तुम्हें जो शाप दिया है वह निश्चय ही पूर्ण होगा । अतः तुम डु खी मत हो । (९)

आज से तुम उस देवेश्वर भगवान् अच्युत हरि के प्रति भक्तिमान् बनो । वे ही तुम्हारे त्राता होंगे । (१०)

हे वीर ! मेरा शाप पाकर तुमने देवेश्वर का स्मरण किया है । अत मैं बड़ी कर्तुंगा जिससे तुम्हें श्रेय की प्राप्ति होगी । (११)

लोमहर्षण ने कहा—अदिति के, सर्वकामनाओं को

क्रमेण ह्यदरे देवो वृद्धिं प्राप्नो महायशाः ॥ १२
 ततो मासेऽथ दशमे काले प्रसव आगते ।
 अजायत स गोविन्दो भगवान् वामनाकृतिः ॥ १३
 अयतीर्णं जगन्नाथे तस्मिन् सर्गमरेश्वरे ।
 देवाश्च ह्यमुच्युर्दुःखं देवमाताऽदितिस्तथा ॥ १४
 यवुर्वाताः सुरस्पर्शा नीरजस्करमभूजम ।
 धर्मे च सर्वभूतानां तदा मतिरजायत ॥ १५
 नोद्रेगथाप्यभूद् देहे मनुजानां द्विजोत्तमाः ।
 तदा हि सर्वभूतानां धर्मे मतिरजायत ॥ १६
 तं जातमात्रं भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ।
 जातकर्मादिकां कृत्वा क्रियां तुष्टाव च प्रभुम् ॥ १७
 ब्रह्मोवाच ।
 जयाधोश्च जयाज्ञेय जय विश्वसुरो हरे ।
 जन्ममृत्युजरातीत जयानन्त जयाच्युत ॥ १८

जयाज्ञित जयाशेष जयाव्यक्तस्थिते जय ।
 परमार्थार्थं सर्वज्ञ ज्ञानज्ञेयार्थनिःसृत ॥ १९
 जयाशेष जगत्साक्षिजगत्कर्चर्जगद्गुरो ।
 जगतोऽजगदन्तेश स्थितौ पालयते जय ॥ २०
 जयासिल जयाशेष जय सर्वहृदिस्थित ।
 जयादिमध्यान्तमय सर्वज्ञानमयोत्तम ॥ २१
 ह्यमुच्युभिरनिर्देश्य नित्यहृष्ट जयेश्वर ।
 योगिभिर्हृत्किकामैस्तु दमादिगुणभूषण ॥ २२
 जयातिसूक्ष्म दुर्ज्ञेय जय स्थूल जगन्मय ।
 जय सूक्ष्मातिसूक्ष्म त्वं जयानिन्द्रिय सेन्द्रिय ॥ २३
 जय स्वमायायोगस्य शेषभोग जयाक्षर ।
 जयैकदद्रूपान्तेन समुद्धृतवसुंधर ॥ २४
 नृकैसरिन् सुरारातिप्रस्थलविदारण ।
 साम्प्रतं जय विधात्मन् मायावामन केशव ॥ २५

समूह करनेवाला, घर प्राप्त करने के उपरांत उसके लक्ष्य में महायशस्वी देव श्रमश हृद्धि प्राप्त करने लगे । (१२)
 तदनन्तर दसवें मास में प्रसव काल के आने पर वे भगवान् गोविन्द वामनाकार में उत्पन्न हुए । (१३)
 उन सर्वदेवेश्वर जगन्नाथ के अयतीर्ण होने पर देवताओं और देवमाता अदिति ने अपने दुःख को छोड़ दिया । (१४)
 स्वर्ग में सुखकारी पवन चलने लगा, आनाश धूलिविहीन (निर्मल) हो गया एवं सभी जीवों की मति धर्म में लगी गई । (१५)
 हे द्विजोत्तमो ! उस समय मनुष्यों के शरीर में बहने लगी रक्षा तथा समस्त प्राणियों की मति धर्म में लगी गई । (१६)
 लोकपितामह ब्रह्मा ने सद्य उत्पन्न प्रभु की जातकर्मादि क्रिया करण स्तुति की । (१७)
 ब्रह्मा ने कहा—हे अधीश ! आपनी जय हो । हे अज्ञेय ! आपनी जय हो । हे विश्वगुरु हरि ! आपनी जय हो । हे जन्ममृत्युजरातीत अनन्त ! आपनी जय हो । हे अच्युत ! आपनी जय हो । (१८)
 हे अज्ञित ! आपनी जय हो । हे अशेष ! आपनी जय हो । हे अयत्नरहित यति ! आपनी जय हो । हे परमार्थार्थ ! हे ज्ञान और शेष अर्थ जिससे निष्पन्न है

ऐसे सर्वज्ञ ! आपकी जय हो । (१९)
 हे अशेष ! हे जगत्सार्थ ! हे जगत्कर्ता ! हे जगद्गुरु ! आपकी जय हो ! हे जगन् (चर) एव अजगन् (अचर) के स्थिति, पालन एवं प्रलय के ईश ! आपकी जय हो । (२०)
 हे अचित् ! आपकी जय हो । हे अशेष ! आपकी जय हो । हे सभी के हृदय में स्थित ! आपनी जय हो । हे आदि, मध्य और अन्तस्वरूप ! हे सर्वज्ञानमय ! हे उत्तम ! आपनी जय हो । (२१)
 हे सुमुखों के द्वारा अनिर्देश्य ! हे नित्यहृष्ट ! हे ईश्वर ! आपनी जय हो । हे मुक्ति चाहने वाले योगियों से सेवित ! हे दम आदि गुणों से विभूषित ! आपनी जय हो । (२२)
 "हे अतिसूक्ष्म ! हे दुर्ज्ञेय ! आपकी जय हो । हे स्थूल ! हे जगन्मय ! आपनी जय हो । हे सूक्ष्मातिसूक्ष्म ! आपनी जय हो । हे अनिन्द्रिय ! हे सेन्द्रिय ! आपनी जय हो । (२३)
 हे अपनी माया से योगमय ! आपनी जय हो । हे शेष की शण्या पर साने वाच अक्षर ! आपकी जय हो । हे एकदद्रूप के कोने पर समुन्मत्ता को उठाने वाच ! आपकी जय हो । (२४)
 हे नृसिंह ! हे देव शत्रु के पञ्चस्थल वा विदारण करने

निजमायापरिच्छिन्न जगद्वातर्जनार्दन ।
 जयाचिन्त्य जयानेकस्वरूपैकविध प्रभो ॥ २६
 वर्द्धस्व वर्धितानेकविकारप्रकृते हरे ।
 त्वद्येषा जगत्तामीशे मंस्थिता धर्मपद्धतिः ॥ २७
 न त्वामहं न चेशानो नेन्द्राधास्त्रिदश हरे ।
 ज्ञातुमीशा न मृणयः सनकाया न योगिनः ॥ २८
 त्वं मायापटसंचीतो जगत्पत्र जगत्पते ।
 कस्तवां वेत्स्यति सर्वेश तत्प्रसादं विना नरः ॥ २९
 त्वमेवाराधितो यस्य प्रसादमुपैच्छ, प्रभो ।
 स एव केवलं देयं धेति त्वां नेतरो जनः ॥ ३०
 तदीश्वरेश्वरेशान विभो वर्द्धस्व भावन ।
 प्रभवायास्य विश्वस्य विश्वात्मन् पृथुलोचन ॥ ३१
 लोमहर्षण उवाच ।
 एष स्तुतो हृषीकेशः स तदा वामनाकृतिः ।
 प्रहस्य भावगम्भीरमुवाचारूढसंपदम् ॥ ३२

वान् । हे विख्यातम् । हे मायाजामन । हे केशव । आपकी जय हो । (२५)

हे अपनी माया से परिच्छिन्न ! हे जगद्वाता ! हे जनार्दन ! आपकी जय हो । हे अचिन्त्य । हे अनेकरूप । हे एकविध प्रभो ! आपकी जय हो । (२६)

बढाये गये हैं अनेक विकार प्रकृति से जिनके द्वारा ऐसे हे हरि ! आपकी वृद्धि हो । जगत् की यह धर्म-पद्धति आप ईश में स्थित है । (२७)

हे हरे ! मैं, शंकर, इन्द्रादि देव, सनकादि मुनि या योगीगण आपको जानने में समर्थ नहीं हैं । (२८)

हे जगत्पते ! आप इस ससार में माया रूपी बख से आच्छादित हैं । हे सर्वेश ! आपके प्रसाद के बिना कौन मनुष्य आपको जान सकता है । (२९)

हे प्रभो ! आपही आराधित होकर जिस पर प्रसन्न होते हैं केवल वही मनुष्य आपको जानता है, दूसरा नहीं । (३०)

हे ईश्वरेश्वर ! हे ईशान ! हे विभो ! हे भावन ! हे विश्वात्मन् ! हे पृथुलोचन ! इस विश्व के प्रभव (उत्पत्ति = सृष्टि) के निमित्त आपकी वृद्धि हो । (३१)

लोमहर्षण ने कहा—तदनन्तर इस प्रकार स्तुत वामना-

स्तुतोऽहं भवता पूर्वमिन्द्रायैः कश्यपेन च ।
 मया च वः प्रतिज्ञातमिन्द्रस्य भुवनत्रयम् ॥ ३३
 भूयश्वाहं स्तुतोऽदित्या तस्याश्चापि मयाश्रुतम् ।
 यथा शक्राय दास्यामि त्रैलोक्यं हतकण्ठकम् ॥ ३४
 सोऽहं तथा करिष्यामि यथेन्द्रो जगतः पतिः ।
 भविष्यति सहस्राक्षः सत्यमेतद् भ्रवीमि वः ॥ ३५
 ततः कृष्णाजिनं ब्रह्मा हृषीकेशाय दत्तवान् ।
 यज्ञोपनीतं भगवान् ददौ तस्य बृहस्पतिः ॥ ३६
 आषाढमददाद् दण्डं मरीचिर्ब्रह्मणः सुतः ।
 कमण्डलुं वसिष्ठश्च कौशं चीरमथाङ्गिराः ।
 आसनं चैव पुलहः पुलस्त्यः पीतवाससी ॥ ३७
 उपतस्थुश्च तं वेदाः प्रणवस्वरभूषणाः ।
 शास्त्राण्यशेषाणि तथा सांख्ययोगोक्तयश्च याः ॥ ३८
 स वामनो जटी दण्डी छत्री धृतकमण्डलुः ।
 सर्वदेवमयो देवो बलेरध्वरमभ्यगात् ॥ ३९

कृति हृषीकेश हूँसनर भावगम्भीर तथा ऐश्वर्ययुक्त वाली बोले— (३२)

पूर्वकाल में आपने, इन्द्रादि देवों एव कश्यप ने मेरी स्तुति की थी । मैंने भी आप लोगों से इन्द्र के लिए त्रिभुवन देने की प्रतिज्ञा की थी । (३३)

तदनन्तर अदिति ने मेरी स्तुति की तो उससे भी मैंने प्रतिज्ञा की थी कि मैं इन्द्र को निष्कण्ठक त्रैलोक्य दूँगा । (३४)

अतः मैं ऐसा करूँगा जिससे सहस्राक्ष इन्द्र जगत् के पति होंगे । आप लोगों से मैं यह सत्य कह रहा हूँ । (३५)

तदुपरात ब्रह्मा ने हृषीकेश को कृष्ण सृगचर्म दिया एव भगवान् बृहस्पति ने उन्हें यज्ञोपवीत प्रदान किया । (३६)

ब्रह्मपुत्र मरीचि ने उन्हें पालाशवण्ड दिया । वसिष्ठ ने कमण्डलु तथा अगिरा ने रेशमी वस्त्र दिया । पुलह ने आसन और पुलस्त्य ने दो पीले बख दिये । (३७)

आँकार के स्वर से अलंकृत वेद, सभी शास्त्र तथा सांख्ययोगादि दर्शनों की उक्तियाँ उन्हें उपस्थित हो गयीं । (३८)

जटा, दण्ड, छत्र एवं कमण्डलुधारी सर्वदेवमय वे वामन धरि के वक्ष में गये । (३९)

यत्र यत्र पदं विप्रा भूमामे वामनो ददौ ।
 ददाति भूमिर्धिवर तत्र तत्रामिषीडिता ॥ ४०
 स वामनो जहगतिर्भृद् गच्छन् मपर्वताम् ।
 सान्निवहोपयतीं सर्वां चालयामास मेदिनीम् ॥ ४१
 बृहस्पतिन्तु शनैर्भूमिं दर्शयते शुभम् ।

तथा श्रीडानिनोदार्यमतिनाह्यगतोऽभवत् ॥ ४२
 ततः श्रेयो महानागो निःसृत्यासौ रसावलात् ।
 साहाय्य कल्पयामास देवदेवस्य चक्रिणः ॥ ४३
 तदद्यापि च निरचातमहोर्विलमनुत्तमम् ।
 तस्य संदर्शनादेव नामेभ्यो न भयं भवेत् ॥ ४४

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये नवमोऽध्याय ॥१॥

१०

लोमहर्षण उवाच ।

सपरिव्रजनाश्रुयैर् इष्टुय सभुसिद्धां वलिः ।
 पत्रच्छोशनस शुक्रं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ॥ १
 आचार्यं श्लोभमायाति सान्निभूमिधरा मही ।
 कम्माद्य नायुरान् भागान् प्रतिगृह्णन्ति बह्वयः ॥ २
 इति पृष्टोऽथ वलिना काव्यो वेदविदा वरः ।
 उवाच दैत्याधिपतिं चिर ध्यात्वा महामतिः ॥ ३

अवतीर्णो जगयोनिः कश्यपस्य गृहे हरिः ।
 शशनेनेह रूपेण परमात्मा सनातनः ॥ ४
 स नूनं यत्प्रमायाति तत्र दानरपुंगव ।
 तत्पाद्व्यासत्रिजोभादियं प्रचलिता मही ॥ ५
 कम्पने निरयथेमे क्षुभिता मकरालयाः ।
 नेयं भूतपतिं भूमिः ममर्षां वोढुमीश्वरम् ॥ ६
 सदेवासुरगन्धर्वा यक्षराक्षसपन्नगा ।

हे विप्रो ! जिस जिन भू भाग में वामन पेर रखने थे
 वहाँ वहाँ दूरी हुई भूमि में पियर (गर्त) हो जाता
 था । (४०)

उन मन्दगति वामन ने सृष्टुभाय से चलने हुए ममुद्रों,
 द्वीपों तथा पर्वतों वाली समस्त पृथ्वी को प्ररम्पित कर
 दिया । (४१)

बृहस्पति धीरे धीरे ३१ शुभ मार्ग दिग्गणे लगे
 एवं व भी श्रीडानिनोदार्य अत्यन्त मन्दगामी हो गए । (४२)
 नन्दनवर महानाग शेष रसावला से निकल कर देवदेय
 चक्रघाटी की सहायता करने लगे । (४३)

आज भी यह प्रेत स्थान 'अद्विजिल' के नाम से प्रसिद्ध
 है । उसका दर्शनमात्र से नागों से भय नहीं होता । (४४)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्ये नवमोऽध्याय समाप्त ॥१॥

१०

लोमहर्षण ने कहा—यत्र-यत्रेतो सहित पृथ्वी को संजुष्य
 हुई देगर्गर वलि ने प्रणाम कर तथा हाथ जोड़कर टुका
 पायों से पूजा— (१)

हे आचार्य ! क्या कारण है कि ममुद्रों तथा पर्वतों
 सहित यह पृथ्वी क्षुब्ध हो रही है और अर्ध आगुओं
 के भागों को मह्य नहीं कर रहे हैं ? (२)

वलि ने ऐसा पूछने पर वेदज्ञोष्ठ महामति गुदाचार्य
 ने चिरचात तह ध्यान कर देवदेव से कहा— (३)

कश्यप व गृह में जगद्वयोनि (जगत् के कारण)
 सनातन परमात्मा वामन रूप से अवतीर्ण हुए हैं । (४)
 हे दानवेन्द्र ! पिछर ही वे पुग्दारे यत्र में आ रहे
 हैं । पृथ्वी के पेर रखने में अत्यन्त विज्ञोम के कारण यह
 पृथ्वी क्षुब्ध हो रही है । (५)

ये पर्वत क्षुब्ध हो रहे हैं एवं ममुद्र क्षुब्ध हो गए
 हैं । यह भूमि भूतपति ईश्वर का यदा काल में समर्प
 नहीं है । (६)

अनेनैव धृता भूमिरापोऽग्निः पवनो नभः ।
 धारयत्यखिलान् देवान् मनुष्यांश्च महासुरान् ॥ ७
 इयमस्य जगद्धातुर्माया कृष्णस्य गह्वरी ।
 धार्यधारकभावेन यया संपीडितं जगत् ॥ ८
 तत्सन्निधानादसुरा न भागार्हाः सुरद्विपः ।
 भुञ्जते नासुरान् भागानपि तेन त्रयोऽन्ययः ॥ ९
 शुक्रस्य वचनं श्रुत्वा हृष्टरोमाऽब्रवीद् बलिः ।
 धन्योऽहं कृतपुण्यश्च यन्मे यज्ञपतिः स्वयम् ।
 यज्ञमभ्यागतो ब्रह्मन् मत्तः कोऽन्योऽधिकः पुमान् ॥ १०
 यं योगिनः सदोद्युक्ताः परमात्मानमव्ययम् ।
 द्रष्टुमिच्छन्ति देवोऽसौ ममाध्वरमुपेयति ।
 यन्मयाचार्यं कर्त्तव्यं तन्ममादेष्टुमर्हसि ॥ ११
 शुक्र उवाच ।
 यज्ञभागस्तुजो देवा वेदप्रामाण्यतोऽसुर ।
 त्वया तु दानवा दैत्य यज्ञभागस्तुजः कृताः ॥ १२

देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष राक्षस एवं पन्नगों युक्त पृथ्वी, जल, अग्नि, पवन, आकाश, समस्त देवों, मनुष्यों एवं महासुरों को ये ही धारण करते हैं । (७)

जगद्धाता कृष्ण की ही यह गभीर माया है जिसके द्वारा यह जगत् धार्यधारक भाव से संपीडित हो रहा है । (८)

उन्हीं का सान्नीप्य होने से देवशत्रु असुर लोग यज्ञ भाग योग्य नहीं रहे तथा उसी से अग्नित्रय भी असुरों के भाग का भोग नहीं कर रहे हैं । (९)

शुक्राचार्य के वचन को सुन कर रोमाञ्चित होकर बलि ने कहा—हे ब्रह्मन् मैं धन्य एवं सफल पुण्य बाला हूँ जो स्वयं यज्ञपति मेरे यज्ञ में आ रहे हैं । मुझ से कौन अन्य पुरुष श्रेष्ठ है ? (१०)

सदा जागरूक योगी लोग जिन अव्यय परमात्मा को देखना चाहते हैं वे ही देव मेरे यज्ञ में आ रहे हैं । हे आचार्य ! आप मुझे आशा दें कि मेरा क्या कर्त्तव्य है ? (११)

शुक्र ने कहा—हे असुर ! वेदप्रामाण्य से देवता यज्ञभाग के भोगी होते हैं । किन्तु हे दैत्य ! तुमने दानवों को यज्ञभाग का भोगी बना दिया है । (१२)

अयं च देवः सत्त्वस्यः करोति स्थितिपालनम् ।
 विसृष्टं च तथाऽयं च स्वयमपि प्रजाः प्रभुः ॥ १३
 भवांस्तु वन्दी भविता नूनं विष्णुः स्थितौ स्थितः ।
 विदित्वैवं महाभाग कुरु यत् ते मनोगतम् ॥ १४
 त्वयाऽस्य दैत्याधिपते स्वल्पकेऽपि हि वस्तुनि ।
 प्रतिज्ञा नैव वोढव्या वाच्यं साम तथाऽफलम् ॥ १५
 कृतकृत्यस्य देवस्य देवार्थं चैव कुर्वतः ।
 अलं दयां धनं देवं त्वेतद्वाच्यं तु याचतः ।
 कृष्णस्य देवभूत्यर्थं प्रवृत्तस्य महासुर ॥ १६
 बलिहवाच ।
 ब्रह्मन् कथमहं भ्रूयामन्येनापि हि याचितः ।
 नस्तीति किञ्च देवस्य संसारस्यावहारिणः ॥ १७
 प्रतोपवासैर्विविधैर्यैः प्रभुर्गृह्यते हरिः ।
 स मे वक्ष्यति देहीति गोविन्दः किमतोऽधिकम् ॥ १८
 यदर्थं सुमहारम्भा दमशौचगुणान्वितैः ।

ये ही देव सत्त्व गुण का आश्रय लेकर स्थिति और पालन करते हैं तथा ये ही सृष्टि करते हैं और ये ही प्रभु स्वयं प्रजा का भक्षण करते हैं । (१३)

विष्णु स्थिति के कार्य में तत्पर हुए हैं । अतः आप निश्चय ही वन्दी होने वाले हैं । हे महाभाग ! यह जानकर तुम्हारा जो अभीष्ट हो उसे करो । (१४)

हे दैत्यपति ! तुम स्वल्प वस्तु के लिए भी उनसे प्रतिज्ञा न करना तथा फलहीन सान्त्वना युक्त मीठी बातें करना । (१५)

हे महासुर ! कृतकृत्य, देवों का कार्य सम्पादन करने वाले तथा देवों की सम्पत्ति के लिए प्रयत्नशील देव कृष्ण के याचना करने पर तुम उनसे यह कहना कि मैं देव के हेतु पर्याप्त धन दूँगा । (१६)

बलि ने कहा—हे ब्रह्मन् ! दूसरों अर्थात् सामान्य जनों से याचित होने पर भी मैं "मेरे पास नहीं है" ऐसा कैसे कह सकता हूँ फिर ससार के पापों का सहार करने वाले देवेश्वर से ऐसा कैसे कहूँगा ? (१७)

अनेक प्रकार के प्रतों एवं उपवासों से जो प्रभु हरि प्राप्त किये जाते हैं जब वे ही गोविन्द मुझ से 'दो' ऐसा कहेंगे तो इससे बच कर और क्या हो सकता है ? (१८)
 जिनके निमित्त दम, शौच गुणों से युक्त लोग बृहद्

यज्ञाः क्रियन्ते यज्ञेशः स मे देहीति वक्ष्यति ॥ १९
 तत्साधु सुकृतं कर्म तपः सुचरितं च नः ।
 यन्मां देहीति विश्वेशः स्वयमेव वदिष्यति ॥ २०
 नास्तीत्यहं गुरो वक्ष्ये तमभ्यागतमीश्वरम् ।
 प्राणत्यागं करिष्येऽहं न तु नास्ति जने क्वचित् ॥ २१
 नास्तीति यन्मया नोक्तमन्येषामपि याचताम् ।
 वक्ष्यामि कथमायाते तदद्य चामरेऽच्युते ॥ २२
 श्लाघ्य एव हि वीराणां दानाच्चापत्समागमः ।
 न बाधाकारि यद्दानं तदङ्ग बलवत् स्मृतम् ॥ २३
 मद्राज्ये नासुखी कश्चिन्न दरिद्रो न पातुरः ।
 न दुःखितो न चोद्विग्नो न शमादिविबर्जितः ॥ २४
 हृष्टस्तुष्टः सुगन्धी च वृषः मर्षसुप्रान्वितः ।
 जनः सर्वो महाभाग किमुताहं मदा सुखी ॥ २५
 एतद्विशिष्टमन्नाहं दानवीजफलं लभे ।
 विदितं मुनिशार्दूल मयैतन् त्वन्मुखच्छ्रुतम् ॥ २६

सभार वाले यह करते हैं वे ही यज्ञेश गुरुसे "दो" ऐसा कहेंगे । (१९)
 मेरा सुकर्म सफल है तथा मेरी तपस्या भी भली भाँति आचरित है क्यों कि स्वयं विश्वेश मुझ से 'दो' ऐसा कहेंगे । (२०)
 हे गुरु ! क्या मैं उन अभ्यागत ईश्वर से "नहीं है" ऐसा कहूँ ? मैं भले ही प्राणत्याग कर दूँ किन्तु किसी मनुष्य से 'नहीं है' यह नहीं कह सकता । (२१)
 दूसरों के भी माँगने पर जब मैंने "नहीं है" ऐसा नहीं कहा तो आज अच्युत देव के आने पर कैसे कहूँगा ? (२२)
 वीर पुरुषों के लिये दान से आपत्ति का समागम हीन श्लाघ्य ही होता है । किन्तु हे गुरो ! जो दान बाधाकारी नहीं होता वह निःसन्देह श्रेष्ठतर माना गया है । (२३)
 मेरे राज्य में कोई भी असुखी, दरिद्र, आतुर (रोगी), दुःखित, उद्विग्न एवं शमादि गुणों से हीन नहीं है । हे महाभाग ! सभी लोग हृष्ट, तुष्ट, सुगन्धी, वृष एवं सुखों से युक्त हैं ! अधिक क्या ? मैं तो सदा सुखी हूँ । (२४-२५)
 हे मुनिशार्दूल ! आपके मुख से सुन कर मुझे यह ज्ञात हो गया कि मैं यहाँ पर विशिष्ट दानरूपी बीज का

मत्प्रसादपरो नूनं यज्ञेनाराधितो हरिः ।
 मम दानमवाप्यासौ पुष्पाति यदि देवताः ॥ २७
 एतद्बीजवरे दानबीजं पतति चेद् गुरो ।
 जनार्दने महापात्रे किं न प्राप्तं ततो मया ॥ २८
 विशिष्टं मम तद्दानं परितुष्टाश्च देवताः ।
 उपभोगाच्छतगुणं दानं सुखकरं स्मृतम् ॥ २९
 मत्प्रसादपरो नूनं यज्ञेनाराधितो हरिः ।
 तेनान्येति न संदेहो दर्शनादुपकारकृत् ॥ ३०
 अथ क्रोपेन चाभ्येति देवभागोपरोधतः ।
 मां निहन्तुं ततो हि स्वाद्बन्धः श्लाघ्यतरोऽच्युतात् ॥ ३१
 एतज्ज्ञात्वा मुनिश्रेष्ठ दानविघ्नकरणे मे ।
 नैव भाव्यं जगन्नाथे गोविन्दे समुपस्थिते ॥ ३२
 लोमहर्षण उवाच ।
 इत्येवं वदतस्तस्य प्राप्तस्तत्र जनार्दनः ।
 सर्वदेवमयोऽचिन्त्यो मायावामनरूपधृक् ॥ ३३

फल प्राप्त कर रहा हूँ । (२६)
 वे मुझसे दान लेकर यदि देवताओं को पुष्ट करते हैं तो यज्ञ से आराधित हरि मुझ पर निश्चय ही प्रसन्न हैं । (२७)
 यदि बीजवरे, महान् पात्र, पूज्य जनार्दन में मेरे दान का बीज पड़ गया तो फिर मुझे क्या प्राप्त नहीं हुआ ? मेरा यह दान विशिष्ट प्रकार का है और देवता मेरे ऊपर प्रसन्न हैं । उपभोग की अपेक्षा दान को सी गुना सुखकर माना गया है । (२८-२९)
 यज्ञ से आराधित हरि निश्चय ही मेरे ऊपर प्रसन्न हैं । निरुदेह इसी से दर्शन द्वारा उपकार करने वाले वे आ रहे हैं । (३०)
 देवभाग का उपरोध होने के कारण यदि वे कोपवश मुझे मारते आ रहे हैं तो अच्युत से होने वाला कथ भी श्लाघ्यतर होगा । (३१)
 हे मुनिश्रेष्ठ ! यह जानकर गोविन्द के समुपस्थित होने पर आप मेरे दान में विघ्न न करें । (३२)
 लोमहर्षण ने कहा—उसके ऐसा कहने के समय ही सर्वदेवमय, अचिन्त्य माया से वामनरूपधारी जनार्दन यहाँ पहुँचे । (३३)

तं दृष्ट्वा यज्ञवाटं तु प्रविष्टमसुराः प्रभृम् ।
जग्मुः प्रभावतः क्षोभं तेजसा तस्य निष्प्रभाः ॥ ३४
जेपुत्रं ह्यनयस्तत्र ये समेता महाध्वरे ।
वसिष्ठो गार्गीजो गर्गो अन्ये च मुनिसत्तमाः ॥ ३५
बलिश्चैवाखिलं जन्म भेने सफलमात्मनः ।
ततः संशोभमापन्नो न कश्चित् किंचिदुक्तवान् ॥ ३६
प्रत्येकं देवदेवेशं पूजयामास तेजसा ।
अवासुरपतिं प्रह्वं दृष्ट्वा मुनिवरांश्च तान् ॥ ३७
देवदेवपतिः साक्षाद् विष्णुर्गामनरूपवृक् ।
तुष्टाव यज्ञं बलिं च यजमानमर्वाचितः ।
यज्ञकर्माधिकारस्थानं सदस्यान् द्रव्यसंपदम् ॥ ३८
सदस्याः पात्रमखिलं वामनं प्रति तत्क्षणम् ।
यज्ञवाटस्थित विप्राः साधु साध्वित्युदीरयन् ॥ ३९
स चार्घ्यमादाय बलिः प्रोद्धतपुलकस्तदा ।
पूजयामास गोविन्दं प्राह चेद महासुरः ॥ ४०
बलिरुवाच ।
सुवर्णरत्नसंधातो गजाश्वसमितिस्तथा ।

उन प्रभु को यज्ञस्थल में प्रविष्ट हुआ देख कर असुरलोग उनके प्रभाव से क्षुब्ध एवं तेज से निष्प्रभ हो गये । (३४)

उस महायज्ञ में उपस्थित वसिष्ठ, विश्वामित्र, गर्ग एवं अन्य मुनिश्रेष्ठ जप करते लगे । (३५)

बलि ने अपना सम्पूर्ण जन्म सफल माना । तदनन्तर सक्षोभमत्न होने से क्रिदी ने डुल्ल नहीं कहा । (३६)

उनके तेज के कारण प्रत्येक ने देवदेवेश का पूजन किया । तदुपपन्न विनीत असुरपति एवं उन मुनिवरां को देखकर देवदेवेश्वर वामनरूप धारण करने वाले साक्षात् विष्णु भगवान् ने पूजित होने के बाद यज्ञ, अग्नि, यजमान, यज्ञरूप में अधिष्ठत सदस्यों एवं द्रव्य सामग्रियों की स्तुति की । (३७-३८)

हे विप्रो ! तत्क्षण सभी सदस्य लोग यज्ञमण्डप में उपस्थित पात्ररूप वामन के प्रति 'साधु साधु' कहने लगे । (३९)

उस समय पुलकित महासुर बलि ने अर्घ्य लेकर गोविन्द की पूजा की और उनसे यह कहा । (४०)

स्त्रियो वस्त्राण्यलंकारान् गावोग्रामाश्च पुष्कलाः ॥ ४१
सत्रं च सकला पृथ्वी भवतो वा यदीप्सितम् ।
तद् ददामि वृणुष्वेदं ममार्याः सन्ति ते प्रियाः ॥ ४२
इत्युक्तो दैत्यपतिना प्रीतिगर्भान्वितं वचः ।
प्राह सस्मितगम्भीर भगवान् वामनाकृतिः ॥ ४३
मत्प्राप्तिसुरपार्थाय देहि राजन् पदत्रयम् ।
सुवर्णग्रामरत्नादि तदार्घ्यम्यः प्रदीयताम् ॥ ४४

बलिरुवाच ।

त्रिभिः प्रयोजनं किं ते पदैः पदवतां वर ।
श्रुत श्रुतमहस्रं वा पदानां मार्गतां भवान् ॥ ४५

श्रीवामन उवाच ।

एतारता दैत्यपते कृतकृत्योऽस्मि मार्गणे ।
अन्येषामर्घिनां वित्तमिच्छया दास्यते भवान् ॥ ४६
एतच्छ्रुत्वा तु गदितं वामनस्य महात्मनः ।
वाचयामास वै तस्मै वामनाय महात्मने ॥ ४७

बलि ने कहा—सुवर्ण और रत्नों का समूह, हाथी, घोड़े, स्त्रियाँ, वस्त्र, भूषण, गाँवें तथा ग्रामसमूह—ये सभी वस्तुएँ, समस्त पृथ्वी अथवा आपका जो अभीष्ट हो वह मैं देता हूँ । आप अभीष्ट का वरण करें । मेरे प्रिय अर्घ्य आपके हैं । (४१-४२)

दैत्यपति के इस प्रकार प्रीति युक्त वचन कहने पर वामनाकृति भगवान् ने हँसते हुए गम्भीर वचन कहा । (४३)

हे राजन् ! मुझे अग्नि शाला के निमित्त तीन पग (भूमि) दें । सुवर्ण, ग्राम एवं रत्नादि उनके याचकों को प्रदान करें । (४४)

बलि ने कहा—हे पदधारियों में श्रेष्ठ ! तीन पग भूमि से आपका कौन प्रयोजन सिद्ध होगा । सौ अथवा सौ हजार पग भूमि आप माँगिये । (४५)

श्रीवामन ने कहा—हे दैत्यपति ! इतना पाने से ही मैं दृष्ट्यष्टव्य हूँ आप अन्य याचकों को इच्छानुसार दान दीजियेगा । (४६)

महात्मा वामन का यह वचन सुनकर (बलि ने) उन महात्मा वामन को वचन दे दिया । (४७)

पाणी तु पतिते तोये वामनोऽभूद्दामनः ।
 सर्वदेवमयं रूपं दर्शयामास तत्क्षणम् ॥ ४८
 चन्द्रसूर्यौ तु नयने धौ शिरश्चरणौ खितिः ।
 पादाङ्गुल्यः पिशाचास्तु हस्ताङ्गुल्यश्च गुह्यकाः ॥ ४९
 त्रिभुजो देवाश्च जानुस्था जङ्घे साध्याः सुरोत्तमाः ।
 यक्षा नखेषु संभृता रेखास्वप्सरसस्तथा ॥ ५०
 दृष्टिर्ऋक्षाण्यशेषाणि केशाः सूर्यांशवः प्रभोः ।
 तारका रोमकृपाणि रोमेषु च महर्षयः ॥ ५१
 वाहवो विदिशस्तस्य दिशः श्रोत्रे महात्मनः ।
 अश्विनौ श्रवणे तस्य नासा वायुर्महात्मनः ॥ ५२
 प्रसादे चन्द्रमा देवो मनो धर्मः समाश्रितः ।
 सत्यमस्यामवद् वाणी जिह्वा देवी सरस्वती ॥ ५३
 ग्रीवाऽदितिर्देवमाता विद्यास्तद्वलयस्तथा ।
 स्वर्गद्वारमन्मैत्रं त्वष्टा पूषा च वै भ्रुवौ ॥ ५४
 मूसे वैश्वानरश्चास्य वृषणौ तु प्रजापतिः ।

हाथ पर जब गिरते ही वामन अवामन (विराट्) हो
 गये । तत्क्षण उन्होंने सर्वदेवमय स्वरूप को दिखाया । (४८)
 चन्द्र और सूर्य उनके दोनों नेत्र, आकाश शिर, पृथ्वी
 दोनों चरण, पिशाच पैर की अँगुलियों एवं गुह्यक हाथों की
 अँगुलियों थे । (४९)
 जानु में विभुदेवगण, दोनों जङ्घाओं में सुरश्रेष्ठ साध्य गण,
 नखों में यक्षा एवं रेखाओं में अप्सरायें थीं । (५०)
 समस्त नक्षत्र उनकी दृष्टियों, सूर्यकिरण प्रभु के केश,
 तारकायें उनके रोम कूप एवं रोमों में महर्षिगण स्थित
 थे । (५१)
 विदिशायें उनकी बाहें, दिशाएँ उन महात्मा के दोनों कर्ण,
 दोनों अश्विनीकुमार श्रवण एवं वायु उन महात्मा के
 नासिका स्थान पर थे । (५२)
 उनके प्रसाद में चन्द्रदेव तथा मन में धर्म आश्रित
 थे । सत्य उनकी वाणी तथा जिह्वा सरस्वती देवी
 थी । (५३)
 देवमाता अदिति उनकी ग्रीवा, विद्या उनकी बलियों,
 स्वर्ग द्वार उनकी गुदा तथा त्वष्टा एवं पूषा उनकी भौहें
 थे । (५४)
 वैश्वानर उनके मुख तथा प्रजापति वृषण थे । पर

हृदयं च परं ब्रह्म पुंस्त्वं वै कथयपो मुनिः ॥ ५५
 पृष्टेऽस्य वसवो देवा मत्तः सर्वसंधिषु ।
 बक्षस्थले तथा रुद्रो धैर्यं चास्य महार्णवः ॥ ५६
 उदरे चास्य गन्धर्वा मत्तश्च महाबलाः ।
 लक्ष्मीर्मेधा धृतिः कान्तिः सर्वविद्याश्च वै कटिः ॥ ५७
 सर्वज्योतीषि यानीह तपश्च परमं महत् ।
 तस्य देवाधिदेवस्य तेजः प्रोद्भूतवृत्तमम् ॥ ५८
 तनो कुक्षिषु वेदाश्च जानुनी च महामयाः ।
 इष्टयः पशुबन्धास्य द्विजानां चेष्टितानि च ॥ ५९
 तस्य देवमयं रूपं दृष्ट्वा विष्णोर्महात्मनः ।
 उपसर्पन्ति ते दैत्याः पतङ्गा इव पावकम् ॥ ६०
 चिक्षुरस्तु महादैत्यः पादाङ्गुलं गृहीतवान् ।
 दन्ताभ्यां तस्य वै ग्रीवामङ्गुष्ठेनाहनद्धरिः ॥ ६१
 प्रमथ्य सर्वानसुरान् पादहस्ततलैर्विभुः ।
 कृत्वा रूपं महाकायं संजहारानु मेदिनीम् ॥ ६२

ब्रह्म उनके हृदय तथा करवप मुनि उनके पुत्र्य थे । (५५)
 उनकी पीठ में वसु देवता, सभी सन्धियों में मरुद्गण,
 बक्ष स्थल में रुद्र, तथा उनके धैर्य में महार्णव आश्रित
 थे । (५६)
 उनके उदर में गन्धर्व एवं महाबली मरुद्गण स्थित थे ।
 लक्ष्मी, मेधा, धृति, कान्ति एवं सर्व विद्यायें उनकी कटि में
 स्थित थीं । (५७)
 समस्त ज्योतियाँ एवं परम महत् तप उन देवाधिदेव के
 उत्तम तेज थे । (५८)
 उनके शरीर एवं कुक्षियों में वेद थे, तथा बड़े बड़े ब्रह्म
 श्रष्टियों, पशु एवं ब्रह्मणों की चेष्टायें उनकी दोनों जानु थीं । (५९)
 उन महात्मा विष्णु के सर्वदेवमय रूप को देखकर वे
 दैत्य उनके निकट उसा प्रकार जाते थे जिस प्रकार अग्नि
 के निकट पतङ्ग जाते हैं । (६०)
 महादैत्य चिक्षुर ने दाँतों से उनके पैर के अँगुठे को
 पकड़ लिया । भगवान् ने अँगुठे से उसकी ग्रीवा को आहत
 किया । (६१)
 अपन पैरों एवं हाथों के तलों से समस्त असुरों को
 मथित कर तथा महाकायरूप धारण कर शीघ्र ही उन्होंने
 पृथ्वी को क्षीन किया । (६२)

तस्य विक्रमतो भूमिं चन्द्रादित्यौ स्तनान्तरे ।
 नभो विक्रममाणस्य सक्थिव्यदेशे स्थितायुभौ ॥ ६३
 परं विक्रममाणस्य जानुमूले प्रभाकरौ ।
 विष्णोरास्तां स्थितस्यैतौ देवपालनकर्मणि ॥ ६४
 जित्वा लोकत्रयं तांश्च हत्वा चासुरपुंगवान् ।
 पुरंदराय त्रैलोक्यं ददौ विष्णुरुत्तमः ॥ ६५
 सुतलं नाम पातालमधस्ताद्बुधातलान् ।
 वलेर्दत्त भगवता विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ ६६
 अथ दैत्येश्वरं प्राह विष्णुः सर्वेश्वरेश्वरः ।
 यत् त्वया सलिलं दत्त गृहीतं पाणिना मया ॥ ६७
 कल्पप्रमाणं तस्मान् ते भविष्यत्यायुरुत्तमम् ।
 वैवस्वते तथाऽतीते काले मन्वन्तरे तथा ॥ ६८
 सार्वर्णिके तु संप्राप्ते भवानिन्द्रो भविष्यति ।
 इदानीं भुवन सर्वं दत्त शक्राय वै पुरा ॥ ६९
 चतुर्भुगव्यवस्था च साधिका ह्येकसप्ततिः ।
 नियन्त्वया मया सर्वं ये तस्य परिपन्थिनः ॥ ७०

भूमि का मापन करते समय चन्द्र और सूर्य उनके स्तनों के मध्य स्थित थे तथा आकाश का मापन करते समय वे उनके सक्थिव्य प्रदेश में स्थित हुए । (६३)
 परम् (ऊर्ध्व) लोक का विक्रमण करते समय देवपालन कर्म में स्थित श्रीविष्णु के जानुमूल में चन्द्र एव सूर्य स्थित हुए । (६४)

उत्तम (भारी ढाँगे वाले) विष्णु ने तीनों लोकों का जीत एवं उन बड़े-बड़े असुरों को मारकर इन्द्र को त्रैलोक्य दे दिया । (६५)

सामर्थ्यशाली भगवान् विष्णु ने बुधातल के नीचे स्थित सुतल नामक पाताल बलि को दिया । (६६)

तदनन्तर सर्वेश्वर विष्णु ने दैत्येश्वर से कहा—“क्योंकि तुम्हारे द्वारा प्रदत्त जल को मैंने हाथ में ग्रहण किया अतः कल्पप्रमाण की तुम्हारी उत्तम आयु होगी तथा वैवस्वत मन्वन्तर का काल उद्यतीत होने तथा सार्वर्णिक मन्वन्तर आने पर तुम इन्द्र बनोगे । इस समय के लिये मैंने पहले ही समस्त भुवन इन्द्र को दे रक्खा है । (६७-६८)

इकहत्तर चतुर्भुगी के काल से कुछ अधिक काल तक जो समय की व्यवस्था है अर्थात् एक मन्वन्तर के काल तक मैं उसके (इन्द्र के) विरोधियों का नियमन करूँगा । (७०)

तेनाहं परया भक्त्या पूर्वमाराधितो बले ।
 सुतलं नाम पातालं समासाद्य वचो मम ॥ ७१
 वसासुर ममादेशं यथावत्परिपालयन् ।
 तत्र देवसुखोपेते प्रासादशतसंकुले ॥ ७२
 प्रोत्फुल्लपद्मसरसि हृदशुद्धसरिद्वरे ।
 सुगन्धी रूपसंपन्नो वराभरणभूषितः ॥ ७३
 स्रक्चन्दनादिदिग्धाङ्गो नृत्यगीतमनोहरान् ।
 उपभुञ्जन् महाभोगान् विविधान् दानवेश्वर ॥ ७४
 ममाज्ञया कालमिमं तिष्ठ स्त्रीशतसंवृत ।
 यावत्सुरैश्च विप्रैश्च न विरोधं गमिष्यसि ॥ ७५
 तावत् त्वं सुहृद्भ्य संभोगान् सर्वकामसमन्वितान् ।
 यदा सुरैश्च विप्रैश्च विरोधं त्वं करिष्यसि ।
 वन्धिष्यन्ति तदा पाशा वारुणा घोरोदर्शनाः ॥ ७६
 बलिरुवाच ।

तत्रासतो मे पाताले भगवन् भवदाज्ञया ।
 किं भविष्यत्युपादानमपमोगोपापादकम् ।

हे बलि ! पूर्वकाल में उसने परमभक्तिपूर्वक मेरी आराधना की थी । अतः मेरे कहने से सुतल नामक पाताल मे जाकर मेरे आदेश का यथावत् पालन करते हुये देव-सुख से सम्पन्न सैकड़ों प्रासादों से पूर्ण विकसित कमलों वाले सरोवरों, हृदों एवं शुद्ध श्रेष्ठ सरिताओं वाले उस स्थान पर निवास करो । हे दानवेश्वर ! सुगन्ध धारण कर, श्रेष्ठ आभरणों से भूषित एवं माला तथा चन्दनादि से अलङ्कृत सुन्दर स्वरूप से तुम नृत्य और गीत से युक्त विविध प्रकार के महान् भोगों का उपभोग करते हुये सैकड़ों स्त्रियों से आवृत्त होकर इतने काल तक मेरी आज्ञा से वहाँ निवास करो । जब तक देवताओं एवं ब्राह्मणों से तुम विरोध न करोगे तब तक समस्त कामनाओं से युक्त भोगों को भोगोगे । किन्तु जब तुम देवों एवं ब्राह्मणों के साथ विरोध करोगे तो देखने में भयकर वरुण के पाश तुम्हें बाँधेंगे । (७१-७६)

बलि ने कहा—हे भगवन् ! हे देव ! आपकी आज्ञा से वहाँ पाताल में निवास करने वाले मेरे भोगों की सामग्री क्या होगी ? जिससे रक्त होकर मैं सदा आपका स्मरण

आप्यायितो येन देव सरेयं त्वामहं सदा ॥ ७७

श्रीभगवानुवाच ।

दानान्यविधिदानि श्राद्धान्यश्रोत्रियाणि च ।

हुतान्यश्रद्धया यानि तानि दासन्ति ते फलम् ॥ ७८

अदक्षिणास्तथा यज्ञाः क्रियाश्चाविधिना कृताः ।

फलानि तत्र दासन्ति अधीतान्यव्रतानि च ॥ ७९

उदकेन पिना पूजा विना दर्भेण वा क्रिया ।

आज्येन च पिना होमं फलं दासन्ति ते बले ॥ ८०

यश्चेदं स्थानमाश्रित्य क्रियाः काश्चित्करिष्यति ।

न तत्र चासुरो भागो भविष्यति कदाचन ॥ ८१

ज्येष्ठश्रमे महापुण्ये तथा विष्णुपदे हृदे ।

ये च श्राद्धानि दासन्ति व्रतं नियममेव च ॥ ८२

क्रिया कृता च या काश्चिद् विधिनाऽविधिनापि वा ।

सर्वं तदश्चर्यं तस्य भविष्यति न संशयः ॥ ८३

ज्येष्ठे मासि सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः ।

द्वादश्यां वामनं हृष्ट्वा स्नात्वा विष्णुपदे हृदे ।

कहूँगा । (७७)

श्रीभगवान् ने कहा—अविधिपूर्वक दिये गये दान, श्रोत्रिय ब्राह्मण रहित श्राद्ध तथा विना श्रद्धा के किये गये जो हवन हैं वे तुम्हें फल देगे । (७८)

दक्षिणा रहित यज्ञ, अविधिपूर्वक किये गये कर्म और व्रतरहित अध्ययन तुम्हें फल प्रदान करेंगे । (७९)

हे बलि! जल के विना की गई पूजा, विना धुआँ की की गई क्रिया और विना धी के किये गये हवन तुमको फल देंगे । (८०)

इस स्थान का आश्रय कर जो मनुष्य किन्हीं भी क्रियाओं को करेगा, उसमें कभी भी असुरों का अधिकार न होगा । (८१)

अत्यन्त पवित्र ज्येष्ठश्रम तथा विष्णुपद सरोवर में जो धाढ़, दान, व्रत, या नियम करेगा एव विधि या अविधि पूर्वक जो कोई क्रिया वहाँ की जायेगी उसके लिये वह सभी निस्सन्देह अक्षय फलदायी होगा । (८२-८३)

ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष में एकादशी के दिन उपवास कर द्वादशी के दिन विष्णुपद हृद में स्नान करके तथा वामन का दर्शन करने के उपरान्त यथाशक्ति दान देकर

दानं दत्त्वा यथाशक्त्या प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ८४

लोमहर्षण उवाच ।

बलेर्ब्रह्मिणं दत्त्वा शक्राच च त्रिषष्टिपम् ।

व्यापिना तेन रूपेण जगामादर्शनं हरिः ॥ ८५

शशास च यथापूर्वमिन्द्रस्त्रैलोक्यमूर्जितः ।

निःश्रेयं च तदा कालं बलिः पातालमाश्रितः ॥ ८६

इत्येतत् कथितं तस्य विष्णोर्माहात्म्यमुत्तमम् ।

वामनस्य शृण्वन् यस्तु सर्वपापैः शृण्वत्येते ॥ ८७

बलिप्रह्लादमंवादां मन्त्रितं बलिशुकयोः ।

बलेर्विष्णोश्च चरितं ये स्मरिष्यन्ति मानवाः ॥ ८८

नाधयो व्याधयस्तेषां न च मोहाकुलं मनः ।

भविष्यति द्विजश्रेष्ठाः पुंसस्तस्य कदाचन ॥ ८९

च्युतराज्यो निजं राज्यमिष्टप्राप्तिं गियोगवान् ।

मनुष्य परम पद को प्राप्त करता है । (८४)

लोमहर्षण ने कहा—बलि को यह वर तथा इन्द्र को त्रिषष्टिप देकर भगवान् उस सर्वव्यापी रूप से तिरोहित हो गये । (८५)

(तदनन्तर) बलवान् इन्द्र पूर्ववन् त्रैलोक्य का शासन करने लगे एव बलि ने सम्पूर्ण समय पाताल में निवास किया । (८६)

इस प्रकार उन भगवान् (वामन) विष्णु का उत्तम माहात्म्य कहा गया जो इसे (वामन माहात्म्य को) सुनेगा वह सभी पापों से मुक्त हो जायेगा । (८७)

हे द्विजश्रेष्ठो! बलि एव प्रह्लाद के सम्वाद, बलि एवं शुक की मन्त्रणा तथा बलि एव विष्णु के चरित का जो मनुष्य स्मरण करेगे उन्हें कभी कोई आधि एव व्याधि न होगी तथा उनका मन भी माहाकुल नहीं होगा । (८८-८९)

हे महाभागो! इस कथा को सुनकर राज्यच्युत व्यक्तिके अपने राज्य को एव गियोगी मनुष्य अपने प्रिय को प्राप्त

समान्प्रोति महाभागा नरः श्रुत्वा कथामिमाम् ॥ ९० ॥
ब्राह्मणो वेदमान्प्रोति क्षत्रियो जयते महीम् ।

वैश्यो धनसमृद्धिं च शूद्रः सुखमवाप्नुयात् ।
वामनस्य च माहात्म्यं शृण्वन् पापैः प्रमुच्यते ॥ ९१ ॥

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये दशमोऽध्याय ॥१०॥

११

ऋषय ऊचुः ।

कथमेषा समुत्पन्ना नदीनामृत्तमा नदी ।
सरस्वती महाभागा कुरुक्षेत्रप्रवाहिनी ॥ १ ॥
कथं सरः समासाद्य कृत्वा तीर्थानि पार्श्वतः ।
प्रयाता पश्चिमामाशां दृश्यादृश्यगतिः शुभा ।
एतद् निस्तरतो ब्रूहि तीर्थवंशं सनातनम् ॥ २ ॥
लोमहर्षण उवाच ।
प्लक्षवृक्षात् समुद्भूता सरिच्छ्रेष्ठा सनातनी ।
सर्वपापक्षयकरी स्मरणादेव नित्यशः ॥ ३ ॥

करता है ।

(९०)

(इसको सुनने से) ब्राह्मण को वेद की प्राप्ति होती है,
क्षत्रिय पृथ्वी की जय प्राप्त करता है तथा वैश्य को धन

सैषा शैलसहस्राणि विदार्य च महानदी ।
प्रविष्टा पुण्यतीर्थोच्चा वनं द्वैतमिति स्मृतम् ॥ ४ ॥
तस्मिन् प्लक्षे स्थितां दृष्ट्वा मार्कण्डेयो महाह्युनिः ।
प्रणिपत्य तदा मूर्ध्ना तुष्टावाथ सरस्वतीम् ॥ ५ ॥
त्वं देवि सर्वलोकानां माता देवारणिः शुभा ।
सदसद् देवि यत्किञ्चिन्मोक्षदाप्यर्थयत् पदम् ॥ ६ ॥
तत् सर्वं त्वयि संयोगि योगिवद् देवि संस्थितम् ।
अक्षरं परमं देवि यत्र सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
अक्षरं परमं ब्रह्म विधं चैतत् क्षरात्मकम् ॥ ७ ॥

समृद्धि एवं शूद्र को सुख की प्राप्ति होती है । वामन का
माहात्म्य सुनने से पापों से मुक्ति होती है । (९१)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में दसवाँ अध्याय समाप्त ॥१०॥

११

ऋषियों ने पूछा—कुरुक्षेत्र में प्रवाहित होने वाली
नदियों में श्रेष्ठ महाभागा यह सरस्वती नदी कैसे
उत्पन्न हुई ?

(१)

सरोवर में जाकर पार्श्वों में तीर्थों की सृष्टि करते हुये
दृश्यादृश्य गति से यह शुभ नदी किस प्रकार पश्चिम दिशा
को गई ? विस्तारपूर्वक इस सनातन तीर्थवंश (परम्परा-
क्रम, विस्तार) का वर्णन करे ।

(२)

लोमहर्षण ने कहा—अरण्यमात्र से नित्य सर्वपापक्षय
करने वाली यह सनातनी श्रेष्ठ नदी प्लक्षवृक्ष से समुद्भूत
हुई है ।

(३)

यह पुण्यसलिला महानदी हजारों पर्वतों को विदारित
कर द्वैतनाम से प्रसिद्ध वन में प्रविष्ट हुई ।

(४)

महाह्युनि मार्कण्डेय ने उस प्लक्ष में सरस्वती को स्थित
देखकर शिर से प्रणाम करने के उपरान्त उसकी स्तुति
की—

(५)

हे देवि ! आप सर्वलोकों की माता एवं देवों की शुभ
अरणि (उत्पादक = जननी) हैं । हे देवि ! समस्त सद्,
असद्, मोक्षदायी एवं अर्थयुक्त पद योगयुक्त पदार्थ, की
भौति आप में समुक्त होकर स्थित हैं । हे देवि ! अक्षर
परम ब्रह्म, तथा यह विनाशशील विध्वं आप में प्रतिष्ठित
है ।

(६-७)

दारुण्यवस्थितो वह्निर्भूमौ गन्धो यथा ध्रुवम् ।
 तथा त्वयि स्थितं ब्रह्म जगच्चेदमशेषतः ॥ ८
 ॐकाराक्षरसंस्थानं यत् तद् देवि स्थिरास्थिरम् ।
 तत्र मात्रात्रयं सर्वमस्ति यद् देवि नास्ति च ॥ ९
 त्रयो लोकास्त्रयो वेदास्त्रैविद्यं पापकत्रयम् ।
 त्रीणि ज्योतीनि वर्णाश्च त्रयो धर्मादयस्तथा ॥ १०
 त्रयो गुणास्त्रयो वर्णास्त्रयो देवास्तथा क्रमात् ।
 त्रैधातवस्तथाऽवस्थाः पितरश्चैवमादयः ॥ ११
 एतन्मात्रात्रयं देवि तत्र रूपं सरस्वति ।
 विभिन्नदर्शनामायां ब्रह्मणो हि सनातनीम् ॥ १२
 सोमसंस्था हविःसंस्था पाकसंस्था सनातनी ।
 तास्त्वद्बुद्धाचारणाद् देवि क्रियन्ते ब्रह्मवादिभिः ॥ १३
 अनिर्देश्यपदं त्वेतद्ब्रह्ममात्राश्रितं परम् ।
 अविष्कार्यक्षयं दिव्य परिणामविवर्जितम् ॥ १४
 तत्रैतत् परमं रूपं यत्र शक्य मयोदितम् ।

न चाख्येन न वा जिह्वाताल्लोष्ट्रादिभिरुच्यते ॥ १५
 स विष्णुः स वृषो ब्रह्मा चन्द्रार्कज्योतिरेव च ।
 विश्वावासं विश्वरूपं विश्वात्मानमनीश्वरम् ॥ १६
 साहस्यसिद्धान्तवेदोक्तं बहुशाखात्पिरीकृतम् ।
 अनादिमध्यनिधनं सदसच सदेव तु ॥ १७
 एकं त्वनेकधाप्येकमाववेदसमाश्रितम् ।
 अनाख्यं पद्भूगुणख्यं च बह्नाख्यं त्रिगुणाश्रयम् ॥ १८
 नानाशक्तिविभावज्ञं नानाशक्तिविभावकम् ।
 सुखात् सुखं महत्सौख्यं रूपं तत्त्वगुणात्मकम् ॥ १९
 एवं देवि त्वया व्याप्तं सकलं निष्कलं च यत् ।
 अद्वैतावस्थितं ब्रह्म यच्च द्वैते व्यवस्थितम् ॥ २०
 येऽर्था नित्या ये विनश्यन्ति चान्ये
 येऽर्थाः स्थूला ये तथा सन्ति सूक्ष्माः ।
 ये वा भूमौ येऽन्तरिक्षेऽन्वतो वा
 तेषां देवि त्वत्त एवोपलब्धिः ॥ २१

जिस प्रकार काष्ठ में वह्नि एव भूमि में गन्ध की शाश्वत स्थिति होती है उसी प्रकार तुम्हारे भीतर ब्रह्म एव यह सम्पूर्ण जगत् स्थित है । (८)

हे देवि ! जो कुछ भी स्थिर तथा अस्थिर है वह सब ओंकार अक्षर में स्थित है । जो कुछ भी अस्ति या नास्ति है उन सब में ओंकार की तीन मात्रायें अनुस्यूत हैं । (९)

(भू, भुव, स्व) तीनों लोक, (ऋतु, यजु, साम) तीन वेद, (आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्व) तीन विद्यायें, (गार्हपत्य, आबहनीय, दक्षिणाग्नि) तीन जमिनियाँ, (सूर्य, चन्द्र, अग्नि) तीनों ज्योतियाँ, (धर्मादि) तीन वर्ण, (सत्त्वादि) तीनों गुण, (ब्राह्मणादि) तीनों वर्ण, तीनों देव, (वात, पितृ, कफ) तीनों धातुएँ तथा (जामत, स्वप्न, सुषुप्ति), तीन अवस्थायें एव तीन (पिता आदि) पितर आदि ये सभी मात्रा त्रय, हे सरस्वति ! आप कं रूप हैं । आप को ब्रह्म की विभिन्न रूपों वाली आद्या एव सनातनी (मूर्ति कहा जाता है) । (१०-१२)

हे देवि ! ब्रह्मवादी लोग आप के नाम का उच्चारण करके सोमसंस्था, हवि संस्था एव सनातनी पापसंस्था को करते हैं । (१३)

अर्धमात्रा में आश्रित आप का यह अनिर्देश्य पद अविचारी, अक्षय, दिव्य तथा अपरिणामी है । (१४)
 यह आप का अनिर्देश्य पद परम रूप है जिसका वर्णन

में नहीं कर सकता । न तो सुप्त से ही इसका वर्णन हो सकता है और न जिह्वा, घालु, ओष्ठ्रादि से ही । (१५)

तुम्हारा वह रूप ही विष्णु, वृष (धर्म) ब्रह्मा, चन्द्रमा, सूर्य एव ज्योति है । उसी को विश्वावास, विश्वरूप, विश्वात्मा एव अनीश्वर (स्वतन्त्र) कहते हैं । (१६)

आप का यह रूप साख्य सिद्धान्त तथा वेद द्वारा वर्णित, बहुत सी शाखाओं द्वारा स्थिर किया हुआ, आदि मध्य अन्त विहीन, सत्-असत् तथा एकमात्र सत् है । (१७)

यह एक तथा अनेक प्रकार का, वेदों द्वारा एकाम भक्ति से आश्रित, आख्या विहीन, ऐश्वर्यादि पद्भूगुणों से युक्त, बहुत सी आख्याओं वाला तथा त्रिगुणाश्रय है । (१८)

आप का यह तत्त्वगुणात्मक रूप नाना शक्तियों के विभाव (उद्भव) को जानने वाला, तथा नाना शक्तियों का विभावन (जनक) है । यह सुखों से बढ़कर सुख तथा महत्सुख है । (१९)

हे देवि ! इस प्रकार से अद्वैत तथा द्वैत में आश्रित निष्कल तथा सकल ब्रह्म आप के द्वारा व्याप्त है । (२०)

हे देवि ! जो पदार्थ नित्य है तथा जो विनाष्ट हो जाने वाला है, जो पदार्थ स्थूल है तथा जो सूक्ष्म है, जो भूमि पर है तथा जो अन्तरिक्ष में है या जो अन्यत्र है उन समस्त पदार्थों की उपलब्धि आप से ही होती है । (२१)

यद्वा मूर्तं यदमूर्तं समस्तं
 यद्वा भूतेश्वेकमेकं च किञ्चित् ।
 यच्च द्वैते व्यस्तमूर्तं च लक्ष्य
 तत्संचहं त्वत्स्वरैर्व्यञ्जनैश्च ॥ २२
 एवं स्तुता तदा देवी विष्णोर्जिह्वा सरस्वती ।
 प्रत्युवाच महात्मानं मार्कण्डेयं महाहृदिनिम् ।

यत्र त्वं नेष्यसे विप्र तत्र यास्याम्यतन्द्रिता ॥ २३
 मार्कण्डेय उवाच ।
 आद्यं ब्रह्मसरः पुण्यं ततो रामहृदः स्मृतः ।
 कुरुणा ऋषिणा कृष्टं कुरुक्षेत्रं ततः स्मृतम् ।
 तस्य मध्येन वै गाढं पुण्या पुण्यजलावहा ॥ २४

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये एकादशोऽध्याय ॥११॥

१२

लोमहर्षण उवाच ।

इत्युपेर्वचनं श्रुत्वा मार्कण्डेयस्य धीमतः ।
 नदी प्रवाहसंयुक्ता कुरुक्षेत्र विवेश ह ॥ १
 तत्र सा रन्तुकं प्राप्य पुण्यतोया सरस्वती ।

जो मूर्त है या जो अमूर्त है यह सब कुछ और जो
 सब भूतों में एक रूप से स्थित है और जो केवल एक मात्र
 है और जो द्वैत में अलग अलग रूप से दिखाई पड़ता है
 वह सब कुछ आपके स्वर व्यञ्जनों से सम्बद्ध है । (२२)

इस प्रकार स्तुति किये जाने पर विष्णु की जिह्वा
 स्वरूपिणी सरस्वती ने महासुनि महात्मा मार्कण्डेय से कहा—
 हे विप्र ! तुम जहाँ ले जाओगे मैं वहाँ आलस्य रहित

कुरुक्षेत्रं समाप्लान्य प्रयाता पश्चिमां दिशम् ॥ २
 तत्र तीर्थसहस्राणि ऋषिभिः सेवितानि च ।
 तान्ह्यहं कीर्तयिष्यामि प्रसादात् परमेष्ठिनः ॥ ३
 तीर्थानां स्मरणं पुण्यं दर्शनं पापनाशनम् ।

होकर जाऊँगी । (२३)
 मार्कण्डेय ने कहा—पूर्वकाल में पवित्र ब्रह्मसर (नाम से
 प्रसिद्ध) तदनन्तर रामहृद (नाम से) अभिहित एवं
 तदुपरान्त कुरु ऋषि द्वारा कृष्ट होने से कुरुक्षेत्र कहे जाने
 वाले क्षेत्र में आप अत्यन्त पवित्र तथा पुण्यजलवाली
 हों अर्थात् वहाँ प्रवाहित हों । (२४)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में म्यारहवा अध्याय समाप्त ॥११॥

१२

लोमहर्षण ने कहा—बुद्धिमान् मार्कण्डेय ऋषि के इस
 वचन को सुनकर प्रवाह-संयुक्त नदी कुरुक्षेत्र में प्रविष्ट
 हुई । (१)

वह पुण्यतोया सरस्वती नदी वहाँ रन्तुक में जाकर
 कुरुक्षेत्र को प्लावित करती हुई पश्चिम दिशा की ओर बहती

गई । (२)
 वहाँ (कुरुक्षेत्र में) ऋषियों से सेवित सहस्रों तीर्थ हैं ।
 परमेष्ठी (ब्रह्मा) के प्रसाद से मैं उनका वर्णन करूँगा । (३)
 पापियों के लिये भी तीर्थों का स्मरण पुण्यदायक,
 उनका दर्शन पापनाशक और स्नान मुक्तिदायक कहा

स्नानं मुक्तिकरं प्रोक्तमपि दुष्कृतकर्मणः ॥ ४
 ये स्मरन्ति च तीर्थानि देवताः प्रीणयन्ति च ।
 स्नान्ति च श्रद्धयानाथ ते यान्ति परमां गतिम् ॥ ५
 अपवित्रः पवित्रो वा सर्वोवस्थां गतोऽपि वा ।
 यः स्मरेत् कुरुक्षेत्रं स वासाभ्यन्तरः शुचिः ॥ ६
 कुरुक्षेत्रं गमिष्यामि कुरुक्षेत्रे वसाम्यहम् ।
 इत्येवं वाचमुत्सृज्य सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ७
 ब्रह्मज्ञानं गयाथाङ्गं गोप्रहे मरणं तथा ।
 वामः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरुक्ता चतुर्विधा ॥ ८
 सरस्वतीद्वययोर्देवयोर्दन्तरम् ।
 तं देवनिर्मितं देशं ब्रह्मार्पणं प्रचक्षते ॥ ९
 दूरस्थोऽपि कुरुक्षेत्रे गन्ध्यामि च वसाम्यहम् ।
 एवं यः सततं भूयात् मोक्षोऽपि पापैः प्रमुच्यते ॥ १०
 तत्र चैनं सरःस्नायी सरस्वत्याम्बुदे स्थितः ।
 तस्य ज्ञानं ब्रह्ममयमुत्पत्यति न संशयः ॥ ११

गया है । (४)

जो ब्रह्म-सिद्धि तीर्थों का स्मरण करते हैं, देवताओं को प्रसन्न करते हैं और उनमें स्नान करते हैं, वे परम गति को प्राप्त करते हैं । (५)

अपवित्र या पवित्र अथवा सर्वोवस्थागत भी जो व्यक्ति कुरुक्षेत्र का स्मरण करे तो वह पादर तथा भीतर से पवित्र हो जाता है । (६)

“मैं कुरुक्षेत्र में जाऊँगा और मैं कुरुक्षेत्र में निवास पहुँगा” इस प्रकार का वचन कहने से मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है । (७)

मानवों के लिये ब्रह्मज्ञान, गया में पाद, गोवों की रक्षा के लिये धृष्ट्यु और कुरुक्षेत्र में निवास, यह चार प्रकार की मुक्ति कही गई है । (८)

सरस्वती और द्वयधारी इन दो देव नदियों के मध्य के देव निर्मित देश को ब्रह्मार्पण कहते हैं । (९)

दूर रहकर भी जो मनुष्य “मैं कुरुक्षेत्र जाऊँगा, वहाँ निवास करूँगा” इस प्रकार वादा करता है वह भी सभी पापों से मुक्त हो जाता है । (१०)

वहाँ सरस्वती के तट पर रहने लुके सरोवर में स्नान करने वाले मनुष्य को निसिद्ध ब्रह्मज्ञान उत्पन्न होगा है । (११)

देवता ऋषयः सिद्धाः सेवन्ते कुरुजाज्ञलम् ।
 तस्य संसेवनाश्रित्यं ब्रह्म चात्मनि पश्यति ॥ १२

चञ्चलं हि मनुष्यत्वं प्राप्य ये मोक्षरुद्धिणः ।
 सेरन्ति नियतात्मानो अपि दुष्कृतकारिणः ॥ १३

ते विमुक्ताश्च फलुपरनेकजन्मसंभरैः ।
 पश्यन्ति निर्मलं देवं हृदयस्थं सनातनम् ॥ १४

ब्रह्मवेदिः कुरुक्षेत्रं पुण्यं साभिहितं सरः ।
 सेवमाना नरा नित्यं प्राप्नुवन्ति परं पदम् ॥ १५

श्रद्धनश्रुताराणां कालेन पतनाद् भयम् ।
 कुरुक्षेत्रे मृतानां च पतनं नैव नियते ॥ १६

यत्र ब्रह्मादयो देवा ऋषयः सिद्धचारणाः ।
 गन्धर्वाप्सरसो यज्ञाः सेरन्ति स्थानकाङ्गिणः ॥ १७

गत्वा तु श्रद्धया युक्तः स्नात्वा स्थाणुमहाबदे ।
 मनसा चिन्तितं कामं लभते नात्र संशयः ॥ १८

देवता ऋषि और सिद्धलोग सदा कुरुक्षेत्र का सेवन करते हैं । यहाँ नित्य रहने में मनुष्य अपने भीतर ब्रह्म का दर्शन करता है । (१२)

चञ्चल मानव जीवन पादर जो पापों भी जितेन्द्रिय होकर मोक्ष को इच्छा से यहाँ निवास करते हैं वे अनेक जन्मों के पापों से मुक्त हो अपने हृदयस्थ सनातन निर्मल देव का दर्शन करते हैं । (१३-१४)

ब्रह्मवेदि, कुरुक्षेत्र एवं पवित्र साभिहित सरोवर का जो मनुष्य सतत सेवन करते हैं वे परम पद को प्राप्त करते हैं । (१५)

समय पर मह, नश्रुत एवं ताराओं के भी पतन का भय होता है, किन्तु कुरुक्षेत्र में रहने वालों का कभी पतन नहीं होगा । (१६)

ब्रह्मादि देवता, ऋषि, सिद्ध, पादर, गन्धर्व, अप्सराएँ और यज्ञ इत्यादि स्थान की प्राप्ति के लिये यहाँ निवास करते हैं । (१७)

वहाँ जाकर स्थाणु नामक महासरोवर में महा पूज्य स्नान करने से मनुष्य निसिद्ध ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर लेता है । (१८)

नियम पुराण होने के कारण सरोवर की प्रशंसा

नियमं च ततः कृत्वा गत्वा सरः प्रदक्षिणम् ।
रन्तुकं च समासाद्य ध्यायित्वा पुनः पुनः ॥ १९
सरस्वत्यां नरः स्नात्वा यथं दृष्ट्वा प्रणम्य च ।

पुष्पं धूपं च नैवेद्यं दत्त्वा वाचस्पदीरयेत् ॥ २०
तव प्रसादाद् यक्षेत्रं वनानि सरितश्च याः ।
भ्रमिष्यामि च तीर्थानि अविभ्रं कुरु मे सदा ॥ २१

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये द्वादशोऽध्याय ॥१२॥

१३

ऋषय ऊचुः ।

वनानि सप्त वो ब्रूहि नय नद्यश्च याः स्मृताः ।
तीर्थानि च समग्राणि तीर्थस्नानफलं तथा ॥ १
येन येन विधानेन यस्य तीर्थस्य यत् फलम् ।
तद् सर्वं विस्तरेणेह ब्रूहि पौराणिकोत्तम ॥ २
लोमहर्षण उवाच ।

शृणु सप्त वनानीह कुरुक्षेत्रस्य मध्यतः ।
येषां नामानि पुण्यानि सर्वपापहराणि च ॥ ३
क्षाम्यकं च वनं पुण्यं तथाऽदितिवनं महत् ।
व्यासस्य च वनं पुण्यं फलकीयनमेव च ॥ ४

तत्र सूर्यवनस्थानं तथा मधुवनं महत् ।
पुण्यं शीतवनं नाम सर्वकल्मषनाशनम् ॥ ५
वनान्येतानि वै सप्त नदीः शृणुत मे द्विजाः ।
सरस्वती नदी पुण्या तथा वैतरणी नदी ॥ ६
आपगा च महापुण्या गङ्गा मन्दाकिनी नदी ।
मधुस्रवा वासुनदी कौशिकी पापनाशिनी ॥ ७
दृषद्गती महापुण्या तथा हिरण्यती नदी ।
वर्षाकालवहाः सर्वा वर्जयित्वा सरस्वतीम् ॥ ८
एतासामुदकं पुण्यं प्रावृट्काले प्रकीर्तितम् ।
रजस्वलत्वमेतासां विद्यते न कदाचन ।

करके रन्तुक मे जाकर पुन पुन क्षमा प्रार्थना करने के बाद सरस्वती में स्नान कर यक्ष का दर्शन और प्रणाम करे तथा पुष्प, धूप एवं नैवेद्य देकर इस प्रकार

वचनबहे—हे यक्षेत्र ! आपकी कृपासे मैं वनों, नदियों और तीर्थों में भ्रमण करूँगा उसे आप सदा विघ्न रहित करें । (१९-२१)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में बारहवाँ अध्याय समाप्त ॥१२॥

१३

ऋषियों ने कहा—उन सात वनों, नय नदियों, समस्त तीर्थों एवं तीर्थ स्नान के फल का हमसे वर्णन करें । (१) हे पौराणिकोत्तम ! जिस जिस विधान से जिस तीर्थ का जो फल होता है उन सबको विस्तार पूर्वक बतलायें । (२) लोमहर्षण ने कहा—कुरुक्षेत्र के मध्य में जो सात वन हैं उन्हें सुनो ! उनके नाम सभी पापों को नाश करने वाले तथा पवित्र हैं । (३)

पवित्र काम्यकवन, महान् अदितिवन, पुण्यप्रद व्यासवन, फलश्रीवन, सूर्यवन, महान् मधुवन तथा

सर्वकल्मषनाशक पवित्र शीतवन ये ही सात वन हैं । हे द्विजो ! नदियों को मुझसे सुनो । पवित्र सरस्वती नदी, वैतरणी नदी, महापवित्र आपगा, मन्दाकिनी गङ्गा, मधुस्रवा, वासु नदी, पापनाशिनी कौशिकी, महापवित्र दृषद्गती तथा हिरण्यती नदी । इनमें सरस्वती के अतिरिक्त सभी नदियों वर्षाकाल में बहने वाली हैं । (४-८)

वर्षाकाल में इनका जल पवित्र माना जाता है । इनमें कभी भी रजस्वलत्व दोष नहीं होता । तीर्थ के प्रभाव

तीर्थस्य च प्रभावेण पुण्या द्योताः सरिद्वराः ॥ ९
 शृण्वन्तु ह्यनयः श्रीतास्तीर्थस्नानफलं महत् ।
 गमनं स्मरणं चैव सर्वकल्मषनाशनम् ॥ १०
 रन्तुकं च नरो दृष्ट्वा द्वारपालं महानलम् ।
 यत्वं समभिवर्चयैत् तीर्थयात्रां ममाचरेत् ॥ ११
 ततो गच्छेत् विप्रेन्द्रा नाम्नाऽदितिवन महत् ।
 अदित्या यत्र पुत्रार्थं कृतं घोरं महत्तपः ॥ १२
 तत्र स्नात्वा च दृष्ट्वा च अदितिं देवमातरम् ।
 पुत्रं जनयते शूरं सर्वदोषविचर्जितम् ।
 आदित्यशतमक्राशं विमानं चाधिरोहति ॥ १३
 ततो गच्छेत् विप्रेन्द्रा विष्णोः म्यानमनुचमम् ।
 सवनं नाम विख्यातं यत्र संनिहितो हरिः ॥ १४
 विमले च नरः स्नात्वा दृष्ट्वा च निमग्नेधरम् ।
 निर्मलं स्वर्गमायाति रुद्रलोकं च गच्छति ॥ १५
 हरिं च बलदेवं च एकस्नासतमन्वितौ ।

दृष्ट्वा मोक्षमाप्नोति कलिकल्मषमर्षयैः ॥ १६
 ततः पारिप्लवं गच्छेत् तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
 तत्र स्नात्वा च दृष्ट्वा च ब्रह्माणं वेदमप्युतम् ॥ १७
 ब्रह्मवेदफलं प्राप्य निर्मलं स्वर्गमाप्नुयात् ।
 तत्रापि संगमं प्राप्य फौशिक्यां तीर्थसंभारम् ।
 संगमे च नरः स्नात्वा प्राप्नोति परमं पदम् ॥ १८
 धरण्यास्तीर्थमायाय सर्वपापनिमोचनम् ।
 धान्तिपुक्तो नरः स्नान्या प्राप्नोति परमं पदम् ॥ १९
 धरण्यामपराधानि कृतानि पुरुषेण वै ।
 सर्वाणि क्षमते तस्य स्नातमात्रस्य देहिनः ॥ २०
 ततो दद्यात्प्रभं गत्वा दृष्ट्वा दक्षेधरं गिरम् ।
 अश्वमेधस्य यज्ञस्य फलं प्राप्नोति मानवः ॥ २१
 ततः शाळकिनीं गत्वा स्नात्वा तीर्थे द्विजोत्तमाः ।
 हरिं हरेण संयुक्तं पूज्य भक्तिसमन्वितः ।
 प्राप्नोत्यभिमतौल्लोकात् सर्वपापविचर्जितान् ॥ २२

से ये सभी श्रेष्ठ नदियों पवित्र हैं । (६)
 हे मुनियो ! धारलोक प्रसन्न होकर तीर्थस्नान का महाफल मुझे देना । वहाँ जाना एवं उनका स्मरण करना समस्त पापों का नाशक होता है । (१०)
 महानलवान् रन्तुक नामक द्वारपाल का दर्शन करने के उपरान्त यज्ञ को प्रणाम कर तीर्थयात्रा प्रारम्भ करनी चाहिये । (११)
 हे विप्रेन्द्रो ! तदनन्तर महान् अदिति-वन में जाना चाहिये, जहाँ अदिति ने पुत्र के लिए अत्यन्त कठोर तप किया था । (१२)
 वहाँ स्नानकर देवमाता अदिति का दर्शन करने से मनुष्य समस्त दोषों से रहित हुए पुत्र उत्पन्न करता है और सैकड़ों नृपों के समान प्रदासमान विमाता पर आरूढ़ होता है । (१३)
 हे विप्रेन्द्रो ! तदुपरान्त 'सवन' नाम से प्रसिद्ध सर्पों नाम विष्णु-स्थान को जाना चाहिये, जहाँ मगधान् हरि सदा सन्निहित रहते हैं । (१४)
 विमलतीर्थ में स्नान कर विमलेधर का दर्शन करने से मनुष्य निर्मल स्वर्ग तथा रुद्रलोक में जाता है । (१५)
 आसन पर पड़कर आरूढ़ हुए और बलदेव का दर्शन

करने से मनुष्य कलिकल्मष-सम्भूत पापों से मुक्त हो जाता है । (१६)
 तदनन्तर त्रैलोक्य प्रसिद्ध पारिप्लव नामक तीर्थ में जाय । वहाँ स्नान करने के पश्चात् वेद-समुत्त ब्रह्मा का दर्शन करने से ब्रह्मज्ञान का फल एवं निर्मल स्वर्ग की प्राप्ति होती है । फौशिक्य व तीर्थसंभार नाम से जानकर स्नान करने से मनुष्य परम पद प्राप्त करता है । (१७-१८)
 सर्वपापनिमोचक धरणी के तीर्थ में जाकर स्नान करने से कामाशील मनुष्य परम पद प्राप्त करता है । (१९)
 वहाँ स्नान करने मात्र से दृष्ट्वा पर मनुष्य द्वारा हन समस्त अपराध क्षमित हो जाते हैं । (२०)
 तदनन्तर दक्षप्रभ में जाकर दक्षेधर (विष्णु) का दर्शन करने से मनुष्य अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता है । (२१)
 हे द्विजोत्तमा ! तदनन्तर शाळकिनी तीर्थ में जाकर स्नान करने के उपरान्त भक्तितैर्क्य हर से संयुक्त हरि का पूजन कर मनुष्य सर्वपापविचर्जित अभिमत श्रेष्ठों को प्राप्त करता है । (२२)

सर्पिर्दधि समासाद्य नागानां तीर्थमृत्तमम् ।
 तत्र स्नानं नरः कृत्वा मुक्तो नागभयाद् भवेत् ॥ २३
 ततो गच्छेत् विप्रेन्द्रा द्वारपालं तु रन्तुकम् ।
 तत्रोष्य रजनीमेकां स्नात्वा तीर्थवरे शुभे ॥ २४
 द्वितीयं पूजयेद् यत्र द्वारपालं प्रयत्नतः ।
 ब्राह्मणान् भोजयित्वा च प्रणिपत्य क्षमापयेत् ॥ २५
 तत्र प्रसादाद् यक्षेन्द्र मुक्तो भवति क्लिबिपैः ।
 सिद्धिर्मयाभिलषिता तथा साद्धं भवाम्यहम् ।
 एवं प्रसाद्य यक्षेन्द्रं ततः पञ्चनदं प्रवेत् ॥ २६
 पञ्चनदाद्य रूढेण कृता दानवभीषणाः ।
 तत्र सर्वेषु लोकेषु तीर्थं पञ्चनद स्मृतम् ॥ २७
 कोटितीर्थानि रूढेण समाहृत्य यत् स्थितम् ।
 तेन त्रैलोक्यविल्याप्तं कोटितीर्थं प्रचक्षते ॥ २८
 तस्मिन् तीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा कोटीश्वरं हरम् ।
 पञ्चयज्ञानवाप्नोति नित्यं श्रद्धासमन्वितः ॥ २९

सर्पिर्दधि नामक नागों के उत्तम तीर्थ में जाकर स्नान करने से मनुष्य नाग भय से मुक्त हो जाता है । (२३)

हे विप्रेष्टो! तदनन्तर रन्तुक नामक द्वारपाल में जाना चाहिये । वहाँ एक रात्रि निवास करे तथा कल्याणकारी श्रेष्ठतीर्थ में स्नान करने के उपरान्त दूसरे दिन प्रयत्नपूर्वक द्वारपाल का पूजन करे एवं ब्राह्मणों को भोजन करावे । तदनन्तर प्रणाम कर इस प्रकार क्षमा-प्रार्थना करे—‘हे यक्षेन्द्र! तुम्हारी कृपा से मनुष्य पापों से मुक्त हो जाता है । मैं अपनी अधीष्ट सिद्धि को प्राप्त करूँ’ इस प्रकार यक्षेन्द्र को प्रसन्न करने के पश्चान् पञ्चनद तीर्थ में जाना चाहिये । जहाँ भगवान् रुद्र ने दानवों के लिये भयकर पाँच नदों का निर्माण किया है वहाँ समस्त ससार में प्रसिद्ध पञ्चनद तीर्थ है । (२४-२७)

क्योंकि करोड़ों तीर्थों का समाहरण कर रुद्र वहाँ स्थित है अतः उसे त्रैलोक्यविल्याप्त कोटितीर्थ कहा जाता है । (२८)

श्रद्धा-समन्वित मनुष्य उस तीर्थ में स्नान कर तथा कोटीश्वर हर का दर्शन कर पञ्चयज्ञानुष्ठान का फल प्राप्त करता है । (२९)

तत्रैव वामनो देवः सर्वदेवैः प्रतिष्ठितः ।
 तत्रापि च नरः स्नात्वा ह्यग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ ३०
 अश्विनोस्तीर्थमासाद्य श्रद्धावान् यो जितेन्द्रियः ।
 रूपस्य भागी भवति यशस्वी च भवेन्नरः ॥ ३१
 वाराहं तीर्थमाख्यातं विष्णुना परिकीर्तितम् ।
 तस्मिन् स्नात्वा श्रद्धाधानः प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ३२
 ततो गच्छेत् विप्रेन्द्राः सोमतीर्थमनुत्तमम् ।
 यत्र सोमस्तपस्तपत्वा व्याधिमुक्तोऽभवत् पुरा ॥ ३३
 तत्र सोमेश्वरं दृष्ट्वा स्नात्वा तीर्थवरे शुभे ।
 रात्रिसूयस्य यज्ञस्य फल प्राप्नोति मानवः ॥ ३४
 व्याधिभिश्च विनिर्मुक्तः सर्वदोषपरिवर्जितः ।
 सोमलोकमवाप्नोति तत्रैव रमते चिरम् ॥ ३५
 भूतेश्वरं च तत्रैव ज्वालामालेश्वरं तथा ।
 तावुभौ लिङ्गावभ्यर्च्य न भूयो जन्म चाप्नुयात् ॥ ३६
 एकहंसे नरः स्नात्वा गौसहस्रफलं लभेत् ।

उसी स्थान पर सब देवताओं ने भगवान् वामनदेव की प्रतिष्ठा की है । वहाँ भी स्नान करने से मनुष्य को अग्निष्टोम यह ऋषि फल मिलता है । (३०)

श्रद्धावान् जितेन्द्रिय मनुष्य अश्विनोक्तुमारों के तीर्थ में जाकर रूपवान् और यशस्वी होता है । (३१)

विष्णु द्वारा वर्णित प्रसिद्ध वाराह नामक तीर्थ में स्नान कर श्रद्धालु पुरुष परम पद प्राप्त करता है । (३२)

हे विप्रेन्द्रो! तदनन्तर सर्वश्रेष्ठ सोमतीर्थ में जाना चाहिये, जहाँ पूर्वकाल में तपस्या करने से चन्द्रमा व्याधि-मुक्त हुए थे । (३३)

उस शुभ तीर्थ में स्नान कर सोमेश्वर का दर्शन करने से मनुष्य यज्ञसूय यज्ञ का फल प्राप्त करता है तथा व्याधियों और सभी दोषों से मुक्त होकर सोमलोक में जाता है, एवं चिरकाल तक वहाँ रमण करता है । (३४-३५)

वहाँ पर भूतेश्वर एवं ज्वालामालेश्वर नामक लिङ्ग है । उन दोनों लिङ्गों की पूजा करने से पुनर्जन्म नहीं होता । (३६)

‘एकहंस’ में स्नान कर मनुष्य हजारों गीर्णों के दान का फल प्राप्त करता है । ‘कुवशीच’ नामक तीर्थ में जाने से तीर्थसेवी द्विजोत्तम पुण्डरीक (यज्ञविशेष) के फल को प्राप्त

कृतशोचं समामाद्य तीर्थसेनो द्विजोत्तमः ॥ ३७
 पुण्डरीकमवाप्नोति कृतशौचो भवेन्नरः ।
 ततो मूञ्जवटं नाम महादेवस्य धीमतः ॥ ३८
 उपोष्य रजनीमेकां गाणपत्यमनाप्नुयात् ।
 तत्रैव च महाप्राही यक्षिणी लोकरिथुता ॥ ३९
 स्नात्वाऽभिगत्वा तत्रैव प्रसाद्य यक्षिणीं ततः ।
 उपवामं च तत्रैव महापातकनाशनम् ॥ ४०
 कुरुक्षेत्रस्य तद् द्वारं निथुत पुण्यवर्द्धनम् ।
 प्रदक्षिणमुपातर्यं द्वाद्वापान् भोजयेत् ततः ।
 पुष्करं च ततो गत्वा अन्वचर्यं पितृदेवताः ॥ ४१
 जामदग्न्येन रामेण आहृतं तन्महात्मना ।
 कृतकृत्यो भवेद् राजा अधर्मेधं च विन्दति ॥ ४२
 कन्यादानं च यस्त्र कार्तिक्यां वै करिष्यति ।
 प्रसन्ना दयतास्तस्य दास्यन्त्यभिमतं फलम् ॥ ४३

कपिलश्च महायक्षो द्वारपालः स्वयं स्थितः ।
 विन्नं करोति पापानां दुर्गतिं च प्रयच्छति ॥ ४४
 पत्नी तस्य महायक्षी नाम्नोद्भूतलमेरुला ।
 आहत्य दुन्दुभिं तत्र भ्रमते नित्यमेव हि ॥ ४५
 सा ददर्श स्त्रियं चैकां सपुत्रां पापदेशजाम् ।
 ताम्वाच तदा यक्षी आहत्य निधिं दुन्दुभिम् ॥ ४६
 युगन्धरे दधि प्राश्य उपित्वा चाच्युतम्यले ।
 वदद् भूतालये स्नात्वा मधुव्रतं वस्तुमिच्छसि ॥ ४७
 दिवा मया ते कथितं रात्रौ भक्ष्यामि निश्चितम् ।
 एतच्छ्रुत्वा तु वचनं प्रणिपत्य च यक्षिणीम् ॥ ४८
 उवाच दीनया वाचा प्रसादं कुरु भामिनि ।
 ततः सा यक्षिणी तां तु प्रोवाच कृपयान्विता ॥ ४९
 यदा सूर्यस्य ग्रहणं कालेन भविता क्वचित् ।
 सन्निहत्यां तदा स्नात्वा पूता स्वर्गं गमिष्यमि ॥ ५०

इति श्रीबामनपुराणे सरोमाहात्म्ये त्रयोदशोऽध्याय ॥१३॥

करता है तथा उसकी शुद्धि हो जाती है। तदनन्तर
 शुद्धिमान् महादेव के गुञ्जवट नामक तीर्थ में एक
 रात्रि निरास करके मनुष्य गाणपत्य प्राप्त करता है।
 वही सप्तरप्रसिद्ध महा प्राही यक्षिणी है। वहाँ जाकर स्नान
 करने के उपरान्त यक्षिणी को प्रसन्न कर उपवास करने से
 महान् पातकों का नाश होता है। (३७-४०)

कुरुक्षेत्र के उस विश्रुत पुण्यवर्द्धक द्वार की प्रदक्षिणा
 कर द्वाद्वागों को भोजन कराये। तदनन्तर पुष्कर में जाकर
 पितृदेवों की अर्चना करे। (४१)

जामदग्न्य राम उस तीर्थ को लाये थे। वहाँ (जाकर)
 मनुष्य कृतकृत्य होता है और राजा को अधर्मेध के
 फल की प्राप्ति होती है। (४२)

कार्तिकी पूर्णिमा को जो वहाँ कन्यादान करेगा, देवना
 उसके ऊपर प्रसन्न होकर उसे अभिमत फल देगा। (४३)

वहाँ स्वयं कपिल नामक महायक्ष द्वारपालरूप से
 स्थित है, जो पापियों के मार्ग में विघ्न उपस्थित कर उनकी

दुर्गति करते हैं। (४४)

उद्भूलमेखला नामक उसकी महायक्षी पत्नी दुन्दुभि
 यज्ञ कर वहाँ नित्य भ्रमण करती रहती है। (४५)

उस यक्षी ने पाप देश में उत्पन्न एक सपुत्रा स्त्री को देवने
 के उपरान्त रात्रि में दुन्दुभि यज्ञकर उससे कहा— (४६)

युगन्धर में दही खाने तथा अच्युतम्यल में निरास करने
 के उपरान्त भूतालय में स्नान कर तुम पुत्र के साथ निरास
 करना चाहती हो। (४७)

मैंने दिन में यह बात कहा है। रात्रि में मैं अवश्य
 तुम्हें खा जाऊँगी। उसने यह बात सुनने के अनन्तर
 यक्षिणी को प्रणाम कर उसने दीन वाणी से कहा "हे
 भामिनी मेरे ऊपर अनुग्रह करो।" तदनन्तर उस यक्षिणी
 ने उससे कृपापूर्वक कहा— (४८-४९)

जब किसी समय सूर्य ग्रहण होगा उस समय
 सान्निह्य में स्नान कर पत्रित होकर तुम स्वर्ग
 जाओगी। (५०)

श्रीबामनपुराण के सरोमाहात्म्य में देखें ॥ अध्याय समाप्त ॥१३॥

लोमहर्षण उवाच ।

ततो रामहृदं गच्छेत् तीर्थसेवी द्विजोत्तमः ।
यत्र रामेण विप्रेण तरसा दीप्रतेजसा ॥ १
क्षत्रघ्नत्साद्य वीरेण हृदाः पञ्च निवेशिताः ।
पूरयित्वा नरण्याग्र रुधिरणेति नः श्रुतम् ॥ २
पितरस्तर्पितास्तेन तथैव च पितामहाः ।
ततस्ते पितरः प्रीता राममृचुर्द्विजोत्तमाः ॥ ३
राम राम महाबाहो प्रीताः स्मस्तव भार्गव ।
अनया पितृभक्त्या च विक्रमेण च ते विभो ॥ ४
वरं वृणीष्य भद्रं ते किमिच्छसि महायशः ।
एवमुक्तस्तु पितृभो राम. प्रभवतां वरः ॥ ५
अन्नवीतु प्राञ्जलिर्वाक्यं स पितॄन् गगने स्थितान् ।
मयन्तो यदि मे प्रीता यद्यनुब्राह्मता मयि ॥ ६
पितृप्रसादादिच्छेयं तपसाप्यायन पुनः ।
यच्च रोपाभिभूतेन क्षत्रघ्नत्सादितं मया ॥ ७

ततश्च पापान्मुच्येयं युष्माकं तेजसा ह्यहम् ।
हृदाथैते तीर्थमृता भवेयुर्भुवि विश्रुताः ॥ ८
एवमुक्त्वाः क्षुभ वाक्यं रामस्य पितरस्तदा ।
प्रत्युचुः परमप्रीता रामं हर्षपुरस्कृताः ॥ ९
तपस्ते वर्द्धतां पुत्र पितृभक्त्या विशेषतः ।
यच्च रोपाभिभूतेन क्षत्रघ्नत्सादितं त्वया ॥ १०
ततश्च पापान्मुक्तस्त्वं पातित्वास्ते स्वकर्मभिः ।
हृदाश्च तप तीर्थत्वं गमिष्यन्ति न संशयः ॥ ११
हृदेष्वेतेषु ये स्नात्वा स्वान् पितॄन् तर्पयन्ति च ।
तेभ्यो दास्यन्ति पितरो यथाभिलषितं वरम् ॥ १२
ईप्सितान् मानसान् कामान् स्वर्गवान् च शाश्वतम् ।
एवं दत्त्वा वरान् विप्रा रामस्य पितरस्तदा ॥ १३
आमन्त्र्य भार्गवं प्रीतास्तत्रैवान्तरिहास्तदा ।

१४

लोमहर्षण ने कहा—तदनन्तर तीर्थसेवी द्विजोत्तम को रामहृद जाना चाहिये। जहाँ दीप्रतेजा विप्र वीर राम (परशुराम) ने बल पूर्वक क्षत्रियों को नष्ट कर पाँच हृदों का निवेश किया था। हे नरक्याग्र! हम लोगों ने ऐसा सुना है कि वन्होंने उन (हृदों) को रुधिर से पूरित कर उससे अपने पितरों एवं पितामहों को उत्पन्न किया। हे द्विजोत्तमो! तदनन्तर उन प्रसन्न पितरों ने परशुराम से कहा— (१-३)

हे महाबाहु! हे भार्गव राम! हे विष्णु! तुम्हारी इस पितृभक्ति और विद्वम से हम तुम्हारे ऊपर प्रसन्न हैं। (४)

हे महायशस्वी! तुम वर माँगो! क्या चाहते हो? पितरों के ऐसा बहने पर प्रभावशालियों में श्रेष्ठ राम ने आकाशस्थित पितरों से हाथ जोड़कर कहा—यदि आप लोग मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तथा मेरे ऊपर अनुभव करना चाहते हैं तो आप पितरों के प्रसाद से मैं पुनः तप से पूर्ण होना चाहता

हूँ। रोपाभिभूत होकर मैंने जो क्षत्रियों का विनाश किया है, आप के तेज द्वारा मैं उस पाप से मुक्त होजाऊँ एवं तीर्थ भूत ये हृद ससार मे प्रसिद्ध हों। (५-८)

राम के द्वारा इस प्रकार क्षुभ वचन कहे जाने पर उनके परमानन्दित पितरों ने हर्षपूर्वक उनसे कहा— (९)

हे पुत्र! पितृभक्ति से तुम्हारा तप विशेष रूप से बढ़े। क्रोधाभिभूत होकर तुमने जो क्षत्रियों का विनाश किया उस पाप से तुम मुक्त हो क्योंकि वे क्षत्रिय अपने कर्म से मारे गये हैं। तुम्हारे (द्वारा निवेशित) ये हृद निःसशय तीर्थ बनेगे। (१०-११)

इन हृदों में स्नान कर जो अपने पितरों का तर्पण करेंगे वन्हें पितृगण यथाभिलषित वर, मनोभिलषित कामनायें एवं स्वर्गों में शाश्वत निवास प्रदान करेंगे। हे विभो! इस प्रकार वर देने के उपरान्त भार्गव राम के पितर उनकी धनुमति

एवं रामहृदाः पुण्या मार्गवस्य महात्मनः ॥ १४
 स्नात्वा हृदेषु रामस्य ब्रह्मचारी शुचिन्वतः ।
 राममभ्यर्च्य ब्रह्मवान् विन्देद् बहु सुवर्णकम् ॥ १५
 वंशमूलं ममासाद्य तीर्थसेरी सुर्मन्वतः ।
 स्ववंशमिद्वये विप्राः स्नात्वा वै वंशमूलके ॥ १६
 कायशोधनमासाद्य तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
 शरीरशुद्धिमाप्नोति स्नातस्तस्मिन् न संशयः ॥ १७
 शुद्धदेहश्च त याति यस्मान्नाश्वरते पुनः ।
 तावद् भ्रमन्ति तीर्थेषु मिद्वान्त्योर्षपरायणाः ।
 यावन्न प्राप्तुवन्तोह तीर्थं तत्कार्यशोधनम् ॥ १८
 तस्मिन्तीर्थे च सप्तशतं कार्यं मन्वतमानसः ।
 परं पदमवाप्नोति यस्मान्नावर्तते पुनः ॥ १९
 ततो गच्छेत् त्रिप्रेन्द्रास्त्योर्षं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
 लोका यत्रोद्धृताः सर्वे विष्णुना प्रभविष्णुना ॥ २०
 लोकोद्धार समासाद्य तीर्थस्मरणतत्परः ।

स्नात्वा तीर्थेषु तस्मिन् लोकान् पश्यति शाश्वतान् ॥ २१
 यत्र विष्णुः स्थितो नित्यं शिवो देवः सनातनः ।
 तौ देवौ प्रणिपातेन प्रसाद्य मुक्तिमाप्नुयात् ॥ २२
 श्रीतीर्थं तु ततो गच्छेत् शालग्राममनुचमम् ।
 तत्र स्नातस्य सान्निध्यं सदा देवी प्रयच्छति ॥ २३
 कपिलाहृदमासाद्य तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
 तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च दैवतानि पितृस्तया ॥ २४
 कपिलानां सहस्रस्य फलं विन्दति मानसः ।
 तत्र स्थित महादेवं क्वापिलं वपुरास्वितम् ॥ २५
 दृष्ट्वा ह्युक्तिमवाप्नोति श्रुतिभिः पूजितं शिवम् ।
 सूर्यतीर्थं समासाद्य स्नात्वा नियतमानसः ॥ २६
 अर्चयित्वा पितृन् देवानुपवासपरायणः ।
 अग्निष्टोममवाप्नोति सूर्यलोकं च गच्छति ॥ २७
 सहस्रकिरणं देव भानुं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।

लेख प्रसन्नता पूर्वक बही अ रहित हो गये । इस प्रकार
 महात्मा परशुराम के रामहृद पुण्यप्रदायक है । (१२-१४)
 ब्रह्मवान्, शुचिन्वत व्यक्ति ब्रह्मचर्य पूर्वक राम के हृदों
 में स्नान करने के उपरान्त परशुराम वा अपने करने से
 बहुत परिमाण में सुवर्ण प्राप्त करता है । (१५)

हे ब्राह्मणो ! तीर्थसेरी जिनेन्द्रिय मनुष्य वंशमूल तीर्थ
 में जाकर उसमें स्नान करने से अपने वंश की सिद्धि प्राप्त
 करता है । (१६)

त्रैलोक्य प्रसिद्ध कायशोधन तीर्थ में जाकर उसमें स्नान
 करने से मनुष्य का नित्यसन्देह शरीर की शुद्धि प्राप्त होती
 है । (१७)

और शुद्धदेह मनुष्य उस स्थान वा जाता है जहाँ से वह
 पुन नहीं डीटना । तीर्थपरायण मिद्ध पुण्य तीर्थों में तब तब
 भ्रमण करने रहने हैं जब तक वे उस कायशोधन नामक
 तीर्थ में नहीं पहुँचते । (१८)

सन्वचित्त मनुष्य उस तीर्थ में शरीर को धोकर उस
 परम पद को प्राप्त करना है जहाँ से पुन डीटना नहीं
 पड़ता । (१९)

हे विपराण ! तदनन्तर त्रिष्टोत्रप्रसिद्ध लोकोद्धार तीर्थ में
 जाना चाहिए जहाँ सर्वसमर्थ विष्णु ने समस्त लोकोद्धार

उद्धार किया था । लोकोद्धार नामक तीर्थ में जाकर उसमें
 स्नान करने से तीर्थस्मरण तत्पर व्यक्ति शाश्वत लोकोद्धार
 दर्शन करता है । (२०-२१)

वहाँ विष्णु एव सनातन देव शिव दोनों ही
 स्थित हैं । प्रणाम द्वारा उन दोनों देवों को प्रसन्न कर
 मुक्ति प्राप्त करे । (२२)

तदनन्तर तीर्थश्रेष्ठ शालग्राम नामक क्षीरीय में जाना
 चाहिए । वहाँ स्नान करने से भगवती अपने निरट्ट वा
 निवास प्रदान करती है । (२३)

तदुपरान्त त्रैलोक्यविश्रुत कपिलाहृद नाम तीर्थ में
 जाकर उसमें स्नान करने के पश्चात् देवता तथा पितरों की
 पूजा करने से मनुष्य को सहस्र कपिला गायों व दान वा
 फल प्राप्त होता है । वहाँ पर स्थित क्वापिल शरीरधारी
 ऋषियों से पूजित महादेव शिव का दर्शन करने से मुक्ति
 की प्राप्ति होती है । शिवरचित ७७ उपवास-परायण व्यक्ति
 सूर्यतीर्थ में जाकर स्नान करने के उपरान्त पितरों का अर्चना
 करने से अग्निष्टोम यज्ञ वा फल प्राप्त करना है एवं सूर्यश्रेष्ठ
 को जाना है । (२४-२५)

श्रेष्ठक्य विष्णु सहस्रकिरण सूर्यदेव वा दर्शन करने से

दृष्ट्वा मुक्तिमवाप्नोति नरो ज्ञानसमन्वितः ॥ २८
 भवानीवनमासाद्य तीर्थसेवी यथाक्रमम् ।
 तत्राभिपेकं कुर्वाणो गोसहस्रफलं लभेत् ॥ २९
 पितामहस्य पित्रतो ह्यमृतं पूर्वमेव हि ।
 उद्गारात् सुरभिर्जाता सा च पातालमाश्रिता ॥ ३०
 तस्याः सुरभयो जाताः तनया लोकमातरः ।
 तामिस्त्वत्सकलं व्याप्तं पातालं मुनिरन्तरम् ॥ ३१
 पितामहस्य यजतो दक्षिणार्थमुपाहृताः ।
 आहृता ब्रह्मणा ताश्च विभ्रान्ता विचरेण हि ॥ ३२
 तस्मिन् विवरद्वारे तु स्थितो गणपतिः स्वयम् ।
 यं दृष्ट्वा सकलान् कामान् प्राप्नोति संयतेन्द्रियः ॥ ३३
 संगिनीं तु समासाद्य तीर्थं मुक्तिसमाश्रयम् ।
 देव्यास्तीर्थे नरः स्नात्वा लभते रूपसुत्तमम् ॥ ३४
 अनन्तां श्रियमाप्नोति पुत्रपौत्रसमन्वितः ।
 भोगांश्च विपुलान् धुक्त्वा प्राप्नोति परम पदम् ॥ ३५
 ब्रह्मावर्त्तं नरः स्नात्वा ब्रह्मज्ञानसमन्वितः ।

ज्ञान समन्वित मनुष्य मुक्ति को प्राप्त करता है । (२८)
 तीर्थसेवी मनुष्य क्रमानुसार भवानीवन में जाकर वहाँ
 अभिपेक करने से सहस्र गोदान का फल प्राप्त करता
 है । (२९)

प्राचीन काल में अमृत पीते हुए ब्रह्मा के उद्गार
 (डकार) से सुरभि की उत्पत्ति हुई और वह पाताल लोक
 में चली गई । (३०)

उस सुरभि से लोकमातये गायें उत्पन्न हुईं । उनसे
 समस्त पाताल लोक व्याप्त हो गया । (३१)

पितामह के यज्ञ करते समय दक्षिणार्थ लाथी गई एव ब्रह्मा
 के द्वारा आहूत वे गायें विवर के कारण भटकने लगीं । (३२)

उस विवर के द्वार पर स्वयं गणपति विराजमान है ।
 सयतेन्द्रिय मनुष्य उनका दर्शन करने से समस्त कामनाओं
 को प्राप्त करता है । (३३)

देवी के मुक्ति के आश्रयभूत संगिनी तीर्थ में जाकर
 स्नान करने से मनुष्य को सुन्दर रूप की प्राप्ति
 होती है तथा वह पुत्र पौत्र समन्वित होकर अनन्त ऐश्वर्य को
 प्राप्त करता है और विपुल भोगों का उपभोग कर परम पद
 प्राप्त करता है । (३४-३५)

ब्रह्मावर्त्त तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य निःसन्देह

भवते नात्र सन्देहः प्राणान् मुञ्चति स्वेच्छया ॥ ३६
 ततो गच्छेत् विप्रेन्द्रा द्वारपालं तु रन्तुकम् ।
 तस्य तीर्थं सरस्वत्यां यक्षेन्द्रस्य महात्मनः ॥ ३७
 तत्र स्नात्वा महाप्राज्ञ उपवासपरायणः ।
 यश्च स च प्रसादेन लभते कामिकं फलम् ॥ ३८
 ततो गच्छेत् विप्रेन्द्रा ब्रह्मावर्त्तं मुनिस्तुतम् ।
 ब्रह्मावर्त्तं नरः स्नात्वा ब्रह्म चाप्नोति निश्चितम् ॥ ३९
 ततो गच्छेत् विप्रेन्द्राः सुतीर्थकमुत्तमम् ।
 तत्र संनिहिता नित्यं पितरो दैवतैः सह ॥ ४०
 तत्राभिपेकं कुर्यात् पितृदेवार्चने रतः ।
 अधमेधमवाप्नोति पितृन् प्रीणाति शाश्वतात् ॥ ४१
 ततोऽभ्युत्थनं धर्मज्ञ समासाद्य यथाक्रमम् ।
 कामेश्वरस्य तीर्थं तु स्नात्वा ब्रह्मासमन्वितः ॥ ४२
 सर्वव्याधिविनिर्मुक्तो ब्रह्मावाप्तिर्भवेद् ध्रुवम् ।
 मातृतीर्थं च तत्रैव यत्र स्नातस्य भक्तितः ॥ ४३
 प्रजा विवर्द्धते नित्यमनन्तां चाप्नुयाच्छ्रियम् ।

ब्रह्मज्ञानी हो जाता है एव वह स्वेच्छानुसार प्राणों का
 परित्याग करता है । (३६)

हे विप्रेन्द्रो ! तदनन्तर द्वारपाल रन्तुक के तीर्थ में जाय ।
 उन महात्मा यक्षेन्द्र का तीर्थ सरस्वती नदी में है । वहाँ
 स्नान कर उपवास परायण महाप्राज्ञ व्यक्ति यक्ष के प्रसाद
 से इच्छित फल प्राप्त करता है । (३७-३८)

हे विप्रेन्द्रो ! तदनन्तर मुनिप्रशंसित ब्रह्मावर्त्त तीर्थ में
 जाना चाहिए । ब्रह्मावर्त्त में स्नान करने से मनुष्य निश्चय
 ही ब्रह्म को प्राप्त करता है । (३९)

हे विप्रेन्द्रो ! तदुपरान्त श्रेष्ठ सुतीर्थक नामक स्थान
 पर जाना चाहिए । वहाँ देवताओं के साथ पितृगण नित्य
 स्थित रहते हैं । पितरों प्य देवों की अर्चना में रत
 व्यक्ति वहाँ स्नान कर अधमेध यज्ञ का फल प्राप्त करता
 है तथा शाश्वत पितरों को प्रसन्न करता है । (४०-४१)

हे धर्मज्ञ ! तदनन्तर क्रमानुसार कामेश्वर के तीर्थ अश्रु
 वन में जाकर ब्रह्मापूर्वक स्नान करने से मनुष्य सभी
 व्याधियों से विनिर्मुक्त होकर निश्चय ही ब्रह्म की प्राप्ति
 करता है । वहाँ स्थित मातृतीर्थ में भक्ति पूर्वक स्नान करने से
 मनुष्य की प्रजा (सतति) की नित्य वृद्धि होती है तथा
 उसे अनन्त लक्ष्मी की प्राप्ति होती है । तदुपरान्त नियत-

ततः शीतवनं गच्छेन्नियतो नियताशनः ॥ ४४
तीर्थं तत्र महाविप्रा महदन्यत्र दुर्लभम् ।
पुनाति दर्शनादेव दण्डकं च द्विजोत्तमाः ॥ ४५
केशानभ्युक्ष्य वै तस्मिन् पूतो भवति पापतः ।
तत्र तीर्थवरं चान्यत् स्वानुलोमाशनं महत् ॥ ४६
तत्र विप्रा महाप्राज्ञा विद्वान्स्तीर्थतत्पराः ।
स्वानुलोमायने तीर्थे विप्रास्त्रैलोक्यविश्रुते ॥ ४७
प्राणायामैर्निर्हरन्ति स्वलोमानि द्विजोत्तमाः ।
पूतात्मानश्च ते विप्राः प्रयान्ति परमां गतिम् ॥ ४८
दशाश्वमेधिकं चैव तत्र तीर्थं सुविश्रुतम् ।
तत्र स्नात्वा भक्तियुक्तस्तेऽव लभते फलम् ॥ ४९
ततो गच्छेत् श्रद्धावान् मानुषं लोकरिभ्रुवम् ।
दर्शनात् तस्य तीर्थस्य मृषतो भवति क्लिन्नपैः ॥ ५०

पुरा कृष्णमृगास्तत्र व्याधेन शरपीडिताः ।
विगाह्य तस्मिन् सरसि मानुषत्वमुपागताः ॥ ५१
ततो व्याधाथ ते सर्वे तानपृच्छन् द्विजोत्तमान् ।
मृगा अनेन वै याता अस्माभिः शरपीडिताः ॥ ५२
निमग्नास्ते सरः प्राप्य क्व ते याता द्विजोत्तमाः ।
तेऽन्नर्वन्तत्र वै पृष्टा वयं ते च द्विजोत्तमाः ॥ ५३
अस्य तीर्थस्य माहात्म्यान्मानुषत्वमुपागताः ।
तस्माद् यूय श्रद्धावानाः स्नात्वा तीर्थे विमत्सराः ॥ ५४
सर्वपापविनिर्मुक्ता भविष्यथ न संशयः ।
ततः स्नात्वाथ ते सर्वे शुद्धदेहा दिवं गताः ॥ ५५
एतत् तीर्थस्य माहात्म्यं मानुषस्य द्विजोत्तमाः ।
ये श्रुण्वन्ति श्रद्धावानास्तेऽपि यान्ति परां गतिम् ॥ ५६

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

भोजी एव जितेन्द्रिय होकर शीतवन नामक तीर्थ में जाना चाहिये । हे महाविप्रा ! वहाँ पर अन्यत्र दुर्लभ दण्डक नामक महान् तीर्थ है । हे द्विजोत्तमो ! वह दर्शनात्न से मनुष्य को पवित्र कर देता है । (४२-४४)
उस तीर्थ में वेदों का मुण्डन कराने से मनुष्य पाप से मुक्त हो जाता है । वहाँ स्वानुलोमायन नामक एक अन्य महान् तीर्थ है । (४६)
हे द्विजोत्तमो ! वहाँ पर स्थित उस त्रैलोक्य विद्वान् स्वानुलोमायन नामक तीर्थ में तीर्थ-तत्पर महाप्राज्ञ विद्वान् विप्र श्रेय प्राणायामों के द्वारा अपने लोमों का परित्याग करते हैं और वे पूतात्मा निम परम गति को प्राप्त करते हैं । (४७-४८)
यही पर परमप्रसिद्ध दशाश्वमेधिक तीर्थ है । भक्तिपूर्वक उसमें स्नान करने से पूर्वोक्त फल की ही प्राप्ति होती है । (४९)
तदनन्तर श्रद्धावान् मनुष्य को लोक-प्रसिद्ध मानुष तीर्थ में जाना चाहिये । उस तीर्थ का दर्शन करने से ही पापों से मुक्ति हो जाती है । (५०)

पूर्वकाल में व्याध द्वारा शरपीडित कृष्णमृग उस सरोवर में स्नान करने से मनुष्यत्व को प्राप्त हुए थे । (५१)
तदनन्तर इन सभी व्याधों ने इन द्विजोत्तमों से पूछा—हे द्विजोत्तमो ! हम लोगों द्वारा शरपीडित मृग इस मार्ग से जाते हुए सरोवर में निमग्न होकर कहीं चले गये? उनके पछाने पर उन्होंने उत्तर दिया—हम द्विजोत्तम ही थे मृग थे । इस तीर्थ के माहात्म्य से हम मनुष्य बन गये हैं । अब एय मात्सरहित होकर श्रद्धा पूर्वक तीर्थ में स्नान करने से तुम लोग निःसन्देह समस्त पापों से विनिर्मुक्त हो जाओगे । तदनन्तर स्नान करने से शुद्ध देह होकर वे सभी स्वर्ग चले गये । (५२-५५)
हे द्विजोत्तमो ! जो श्रद्धापूर्वक मानुष तीर्थ के इस माहात्म्य को सुनते हैं वे भी परम गति को प्राप्त करने हैं । (५६)

लोमहर्षण उवाच ।

मानुषस्य तु पूर्वेण क्रोशमात्रे द्विजोत्तमा ।
 आपगा नाम विख्याता नदी द्विजनिषेविता ॥ १
 श्यामाकं पयसा सिद्धमाज्येन च परिप्लुतम् ।
 ये प्रयच्छन्ति विप्रेभ्यस्तेषां पापं न विद्यते ॥ २
 ये तु श्राद्धं करिष्यन्ति प्राप्य तामापगां नदीम् ।
 ते सर्वकामसंयुक्ता भविष्यन्ति न संशयः ॥ ३
 शंसन्ति सर्वे पितरः स्मरन्ति च पितामहाः ।
 अस्माकं च कुले पुत्रः पौत्रो वापि भविष्यति ॥ ४
 य आपगां नदीं गत्वा तिलैः संतर्पयिष्यति ।
 तेन तन्ना भविष्यामो यावत्कल्पशतं गतम् ॥ ५
 नभस्ये मासि सम्प्राप्ते कृष्णपक्षे विशेषतः ।
 चतुर्दश्यां तु मध्याह्ने पिण्डदो मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ६

ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा ब्रह्मणः स्थानमुत्तमम् ।
 ब्रह्मोदुम्बरमित्येवं सर्पलोकेषु विश्रुतम् ॥ ७
 तत्र ब्रह्मपिकुण्डेषु स्नातस्य द्विजसत्तमाः ।
 सप्तर्षीणां प्रसादेन सप्तसोमफलं भवेत् ॥ ८
 भरद्वाजो गौतमश्च जमदग्निश्च कश्यपः ।
 विश्वामित्रो वसिष्ठश्च अत्रिश्च भगवानृषिः ॥ ९
 एतैः समेत्य तत्कुण्डं कल्पितं भुवि दुर्लभम् ।
 ब्रह्मणा सेवितं यस्माद् ब्रह्मोदुम्बरमुच्यते ॥ १०
 तस्मिंस्तीर्थवरे स्नातो ब्रह्मणोऽन्यक्तजन्मनः ।
 ब्रह्मलोकमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा ॥ ११
 देवान् पितॄन् सप्तुद्दिश्य यो विप्रं भोजयिष्यति ।
 पितरस्तस्य सुखिता दास्यन्ति भुवि दुर्लभम् ॥ १२
 सप्तर्षीश्च सप्तुद्दिश्य पृथक् स्नानं समाचरेत् ।

१५

लोमहर्षण ने कहा—“हे द्विजात्तमो ! मानुष तीर्थ की पूर्व दिशा में एक फोहर पर द्विजों से सेवित आपगा नामक एक विख्यात नदी है । (१)

वहाँ सौवा के चावल को दूध में पकाकर और उसमें धी मिलाकर जो ब्राह्मणों को देते हैं उनके पाप नहीं रह जाते । (२)

यस आपगा नदी के तट पर जाकर जो श्राद्ध करेगे वे नि सवेह समस्त कामनाओं से युक्त होंगे । (३)

पितृगण यह कहते हैं तथा पितामहगण यह स्मरण करते हैं कि हमारे कुल में कोई ऐसा पुत्र या पौत्र उत्पन्न होगा जो आपगा नदी के तट पर जाकर तिल से तर्पण करेगा जिससे हम सभी सैकड़ों कल्प तक तृप्त रहेंगे । (४-५)

भाद्रपद मास में, विशेषतः कृष्ण पक्ष में, चतुर्दशी को मध्याह्न में पिण्ड दान करने वाला मनुष्य मुक्ति को प्राप्त करता है । (६)

हे विप्रोत्तमो ! तदनन्तर समस्त लोक में ब्रह्मोदुम्बर नाम से प्रसिद्ध ब्रह्मा के उत्तम स्थान में जाना चाहिए । (७)

हे द्विजसत्तमो ! वहाँ ब्रह्मपिकुण्डों में स्नान करने वाले को सप्तर्षियों की कृपा से सात सोम यज्ञों का फल मिलता है । (८)

भरद्वाज, गौतम, जमदग्नि, कश्यप, विश्वामित्र, वसिष्ठ एवं भगवान् अत्रि ऋषि ने मिलकर पृथ्वी में दुर्लभ इस कुण्ड को बनाया था । ब्रह्मा द्वारा सेवित होने से यह ब्रह्मोदुम्बर कहलाता है । (९-१०)

अन्यकजन्मा ब्रह्मा के उस उत्तम तीर्थ में स्नान करके मनुष्य निस्सन्देह ब्रह्मलोक प्राप्त करता है । (११)

जो मनुष्य वहाँ देवताओं और पितरों क उद्देश्य से ब्राह्मणों को भोजन कराएगा, उसके पितर सुखी होकर उसे संसार में दुर्लभ वस्तु प्रदान करेंगे । (१२)

सात ऋषियों के उद्देश्य से जो पृथक् रूप से

नारसिंहं चपुः कृत्वा हत्वा दानवमूर्जितम् ।
 तिर्यग्योनिं स्थितो विष्णुः सिंहेषु रतिमाप्नुवन् ॥ २९
 ततो देवाः सगन्धर्वा आराध्य वरदं शिवम् ।
 ऊचुः प्रणतसर्वाङ्गा विष्णुदेहस्य लम्बने ॥ ३०
 ततो देवो महात्माऽसौ शारभं रूपमास्थितः ।
 युद्धं च कारयामास दिव्यं वर्षसहस्रकम् ।
 युध्यमानौ तु तौ देवौ पतितौ सरमण्यतः ॥ ३१
 तस्मिन् सरस्तटे विप्रो देवर्षिर्नारदः स्थितः ।
 अश्वत्थवृक्षमाश्रित्य घ्यानस्थस्तो ददर्श ह ॥ ३२
 विष्णुधनुर्भुञ्जो वने लिङ्गाकारः शिवः स्थितः ।
 तौ दृष्ट्वा तत्र पुरुषौ तुष्टाव भक्तिभाषितः ॥ ३३
 नमः शिवाय देवाय विष्णवे प्रभविष्णवे ।
 हरये च उमाभर्त्रे स्थितिकालभृते नमः ॥ ३४
 हराय बहुरूपाय विश्वरूपाय विष्णवे ।
 त्र्यम्बकाय सुसिद्धाय कृष्णाय ज्ञानहेतवे ॥ ३५

नरसिंह दारी धारण कर बलवान दानव का चष करने के उपरान्त तिर्यग्योनि में स्थित विष्णु सिंहां में प्रेम करने लगे । (२६)

तदनन्तर गन्धर्वों सहित सभी देवों ने बरदाता शिव की आराधना कर साष्टाङ्ग प्रणाम पूर्वक विष्णु के पुन देह (स्वरूप) धारण की प्रार्थना की । (३०)

तदनन्तर महादेव ने सरभ रूप धारण कर (नरसिंह से) सहस्र दिव्य वर्षों तक युद्ध किया । दोनों देवता युद्ध करते हुए सरोवर में गिर पड़े । उस सरोवर के तट पर अश्वत्थ वृक्ष के नीचे देवर्षि नारद ध्यानस्थ होकर बैठे थे । उन्होंने उन दोनों को देखा । चतुर्भुज रूप में विष्णु और लिङ्ग रूप में शिव हो गये । उन दोनों पुरुषों को देखकर उन्होंने भक्ति भाव से उनकी स्तुति की । (३१-३२)

शिव देव को नमस्कार है । प्रभावशाली विष्णु को नमस्कार है । स्थिति तथा संहार के आधार-स्वरूप हरि एवं उमापति को नमस्कार है । (३४)

बहुरूपधारी हर एवं विवरूपधारी विष्णु को नमस्कार है । सुसिद्ध त्र्यम्बर एवं ज्ञान के हेतु कृष्ण को नमस्कार है । (३५)

धन्योऽहं सुकृती नित्यं यद् दृष्टो पुरुषोत्तमौ ।
 ममाश्रममिदं पुण्यं युवाभ्यां विमलीकृतम् ।
 अद्यप्रभृति त्रैलोक्ये अग्यजन्मेति विश्रुतम् ॥ ३६
 य इहागत्य स्नात्वा च पितृन् संतर्पयिष्यति ।
 तस्य श्रद्धान्वितस्येह ज्ञानपैत्रं मयिष्यति ॥ ३७
 अश्वत्थस्य तु यन्मूलं सदा तत्र वसाम्पहम् ।
 अश्वत्थवन्दनं कृत्वा यमं रौद्रं न पश्यति ॥ ३८
 ततो गच्छेत् विप्रेन्द्रा नामस्य हृदयत्तमम् ।
 पौण्डरीके नरः स्नात्वा पुण्डरीकफलं लभेत् ॥ ३९
 दशम्यां शुक्लपक्षस्य चैत्रस्य तु विशेषतः ।
 स्नानं जपं तथा श्राद्धं मुक्तिमार्गप्रदायकम् ॥ ४०
 ततस्त्रिविष्टपं गच्छेत् तीर्थं देवानिषेवितम् ।
 तत्र चैतरणी पुण्या नदी पापप्रमोचनी ॥ ४१
 तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च शूलपाणिं वृषध्वजम् ।

मैं धन्य तथा सदा पुण्यवान हूँ क्योंकि मुझे दोनों पुरुष श्रेष्ठों का दर्शन प्राप्त हुआ । आप दोनों पुरुषों द्वारा शुद्ध किया गया मेरा यह आश्रम पवित्र हो गया । आज से त्रैलोक्य में यह 'अग्यजन्म' नाम से प्रसिद्ध होगा । (३६) जो व्यक्ति यहाँ आकर स्नान कर पितरों का तर्पण करेगा उस श्रद्धालु पुरुष को यहाँ ऐन्द्र ज्ञान प्राप्त होगा । (३७)

अश्वत्थ वृक्ष के मूल में मैं सदा निवास करूँगा । अश्वत्थ का वन्दन करने वाले व्यक्ति भयंकर यमराज को नहीं देखता । (३८)

हे विप्रेन्द्रो ! तदनन्तर उत्तम नागहृद में जाना चाहिए । पौंडरीक में स्नान कर मनुष्य पुण्डरीक (यज्ञ विशेष) का फल प्राप्त करता है । (३९)

शुक्ल पक्ष की, विशेषत चैत्र मास की, दशमी तिथि में वहाँ स्नान, जप और श्राद्ध करने से मुक्तिमार्ग की प्राप्ति होती है । (४०)

तदनन्तर देवताओं से नियेधित त्रिविष्टप नामक तीर्थ में जाना चाहिये वहाँ पाप को छुड़ाने वाली पवित्र चैतरणी नदी है । (४१)

वहाँ स्नानकर शूलपाणि वृषध्वज की पूजा कर

सर्वपापविशुद्धात्मा गच्छत्येव परां गतिम् ॥ ४२
 ततो गच्छेत विप्रेन्द्रा रसावर्चमनुत्तमम् ।
 तत्र स्नात्वा भक्तियुक्तः सिद्धिमान्पोत्यनुत्तमाम् ॥ ४३
 चैत्र शुक्लचतुर्दश्यां तीर्थं स्नात्वा ह्यलेपके ।
 पूजयित्वा शिवं तत्र पापलेपो न विद्यते ॥ ४४
 ततो गच्छेत विप्रेन्द्राः फलकीयनमुत्तमम् ।
 यत्र देवाः सगन्धर्वाः साध्याश्च ऋषयः स्थिताः ।
 तपश्चरन्ति त्रिपुल दिव्यं वर्षसहस्रकम् ॥ ४५
 दृषद्वत्या नरः स्नात्वा तर्पयित्वा च देवताः ।
 अग्निष्टोमातिरात्राम्या फलं विन्दति मानवः ॥ ४६
 सोमद्यये च संप्राप्ते सोमस्य च दिने तथा ।
 यः श्राद्धं कृते नर्त्यस्तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ ४७
 गद्यायां च यथा श्राद्धं पितृन् प्रीणाति नित्यशः ।
 तथा श्राद्धं च कर्तव्यं फलकीयनमाश्रितैः ॥ ४८
 मनसा स्मरते यस्तु फलकीयनमुत्तमम् ।

तस्यापि पितरस्त्वमि प्रयास्यन्ति न सशयः ॥ ४९
 तत्रापि तीर्थं सुमहत् सर्वदैवैरलंकृतम् ।
 तस्मिन् स्नातस्तु पुरुषो गोसहस्रफलं लभेत् ॥ ५०
 पाणिप्राते नरः स्नात्वा पितृन् संतप्य मानवः ।
 अवाप्नुयाद् राजसूयं सांख्यं योगं च विन्दति ॥ ५१
 ततो गच्छेत सुमहतीर्थं मिश्रकमुत्तमम् ।
 तत्र तीर्थानि मुनिना मिश्रितानि महात्मना ॥ ५२
 व्यासेन मुनिशार्दूला दधीच्यैर् महात्मना ।
 सर्वतीर्थेषु स स्नाति मिश्रके स्नाति यो नरः ॥ ५३
 ततो व्यासवनं गच्छेन्नियतो नियताशनः ।
 मनोजवे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवमणिं शिवम् ॥ ५४
 मनसा चिन्तितं सर्वं सिध्यते नात्र संशयः ।
 गत्वा मधुवर्दीं चैव देव्यास्तीर्थं नरः शुचिः ॥ ५५
 तत्र स्नात्वाऽर्चयेद् देवान् पितृंश्च प्रयतो नरः ।
 स देव्या समनुज्ञातो यथा सिद्धिं लभेन्नरः ॥ ५६

मनुष्य समस्त पापों से विशुद्ध होकर निरचय ही परमागति प्राप्त करता है । (४२)
 हे विप्रश्रेष्ठो ! तदुपरान्त उत्तम रसावर्त नामक तीर्थ में जाना चाहिये । वहाँ भक्ति-युक्त होकर स्नान करने से अति उत्तम सिद्धि मिलती है । (४३)
 चैत्र मास की शुक्ल चतुर्दशी तिथि को अलेपक नामक तीर्थ में स्नान करके वहाँ शिव की पूजा करने से पाप का स्पर्श नहीं होगा । (४४)
 हे विप्रश्रेष्ठो ! वहाँ से उत्तम फलकीयन में जाना चाहिये । वहाँ देवता, गन्धर्व साध्य और ऋषि लोग रहते एव दिव्य सहस्र वर्ष पर्यन्त विपुल तप करते हैं । (४५)
 दृषद्वती नदी में स्नान कर देवताओं का तर्पण करने से ऋतुबद्ध अग्निष्टोम और अतिरात्र नामक यज्ञों का फल पाता है । (४६)
 सोमवार के दिन चन्द्र का क्षय (अमानस्या) होने पर जो मनुष्य वहाँ श्राद्ध करता है उसका पुण्यफल सुनो- (४७)
 गया क्षेत्र में जिस प्रकार किया गया श्राद्ध पितरों को नित्य दत्त करता है उसी प्रकार श्राद्ध फलकीयन में रहने वालों को करना चाहिये । (४८)
 जो मनुष्य श्रेष्ठ फलकीयन का मन में भी स्मरण करता है

उसके भी पितृगण निःसन्देह तृप्ति लाभ करते हैं । (४९)
 वही सभी देवों से अलंकृत एक सुमहत् तीर्थ है जिसमें स्नान करने वाला पुरुष सहस्र गोदान का फल प्राप्त करता है । (५०)
 पाणिप्रात तीर्थ में स्नान कर पितरों का तर्पण करने से मनुष्य राजसूय यज्ञ तथा सांख्य (ज्ञान) और योग (कर्म) का अनुष्ठान का फल प्राप्त करता है । (५१)
 वदनन्तर मिश्रक नामक महान् तथा उत्तम तीर्थ में जाना चाहिये । हे मुनिश्रेष्ठो ! वहाँ महात्मा व्यास मुनि ने दधीचि के हेतु तीर्थों को मिश्रित किया था । मिश्रक तीर्थ में स्नान करने वाला मनुष्य सभी तीर्थों में स्नान कर लेता है । (५२-५३)
 वदन्तर सयमी तथा नियमित भोजनवाला होकर व्यास वन में जाना चाहिये । 'मनोजव' में स्नान कर देवमणि शिव का दर्शन करने से निःसन्देह मनुष्य को अभीष्ट सिद्धि होती है । मनुष्य को देवीके मधुवर्दी नामक तीर्थ में जाकर स्नान कर देवों एव पितरों की पूजा करनी चाहिये । ऐसा करने वाला व्यक्ति देवी की आज्ञा से सिद्धि की प्राप्ति करता है । (५४-५६)

कोशिक्याः संगमे यस्तु द्बद्धत्वां नरोत्तमः ।
 स्नायीत नियताहारः सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ५७
 ततो व्यासस्थली नाम यत्र व्यासेन धीमता ।
 पुत्रशोकाभिभूतेन देहत्यागाय निश्चयः ॥ ५८
 कृतो देवैश्च विप्रेन्द्राः पुनस्त्यापितस्तदा ।
 अभिगम्य स्थलीं तस्य पुत्रशोकं न विन्दति ॥ ५९
 किंचित् कूपमासाद्य तिलप्रस्थं प्रदाय च ।
 गच्छेत् परमां सिद्धिं ऋणैर्मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ६०
 अहं च सुदिनं चैव द्वे तीर्थे भुवि दुर्लभे ।
 तयोः स्नात्वा विशुद्धात्मा सूर्यलोकमवाप्नुयात् ॥ ६१
 कृतज्ञपथं ततो गच्छेत् त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
 तत्राभिषेकं कुर्यात् गङ्गायां प्रयतः स्थितः ॥ ६२
 अर्चयित्वा महादेवमश्वमेधफलं लभेत् ।
 कोटितीर्थं च तत्रैव दृष्ट्वा कोटीश्वरं प्रभुम् ॥ ६३
 तत्र स्नात्वा श्रद्धानः कोटियज्ञफलं लभेत् ।

कोशिकी और द्बद्धती के संगम में स्नान करने वाला नियताहारी श्रेष्ठ पुरुष सभी पापों से मुक्त हो जाता है। (५७) है विप्रेन्द्रो! तदनन्तर व्यासस्थली है जहाँ पुत्रशोकाभिभूत बुद्धिमान् वेदव्यास ने शरीरत्याग का निश्चय किया था एवं तत्परचात् देवों ने उन्हें पुनः उठाया था। उस स्थल में जाकर मनुष्य को पुत्रशोक नहीं होता। (५८-५९)

विद्वत्कूप में जाकर एक प्रस्थ (परिमाण विशेष) तिलदान करने से मनुष्य परमासिद्धि एवं ऋण से मुक्ति प्राप्त करता है। (६०)

अहं एव सुदिन नामक दो तीर्थे दृष्टी में दुर्लभ हैं। उन दोनों में स्नान करने से विशुद्धात्मा मनुष्य सूर्यलोक प्राप्त करता है। (६१)

तदनन्तर त्रैलोक्यविभूत श्रुतज्ञपथ नामक तीर्थ में जाना चाहिये। वहाँ निवमपूर्वक रहते हुए गंगा में स्नान करना चाहिये। यहाँ महादेव का अर्चन करने से श्वमेध का फल प्राप्त होता है। वदुपरान्त यहाँ पर श्रद्धा पूर्वक कोटितीर्थ में स्नान कर कोटीश्वर प्रभु का दर्शन करने से मनुष्य को कोटि यज्ञों का फल प्राप्त होता है। तदनन्तर त्रैलोक्य प्रसिद्ध वामनक तीर्थ में जाना चाहिये जहाँ वामनरूपधारी प्रमाच-

ततो वामनकं गच्छेत् त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥ ६४
 यत्र वामनरूपेण विष्णुना प्रभविष्णुना ।
 बलेरपहृतं राज्यमिन्द्राय प्रतिपादितम् ॥ ६५
 तत्र विष्णुपदे स्नात्वा अर्चयित्वा च वामनम् ।
 सर्वपापविशुद्धात्मा विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥ ६६
 ज्येष्ठाश्रमं च तत्रैव सर्वपापकरुणाशनम् ।
 तं तु दृष्ट्वा नरो मुक्तिं संप्रयाति न संशयः ॥ ६७
 ज्येष्ठे मामि सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः ।
 द्वादश्यां च नरः स्नात्वा ज्येष्ठं लभते नृपु ॥ ६८
 तत्र प्रतिष्ठिता विप्रा विष्णुना प्रभविष्णुना ।
 दीक्षाप्रतिष्ठासंयुक्ता विष्णुप्रीणनत्पराः ॥ ६९
 तेभ्यो दक्षानि श्राद्धानि दानानि विधिधानि च ।
 अथ्याणि भविष्यन्ति धावन्मन्वन्तरस्थितिः ॥ ७०
 तत्रैव कोटितीर्थं च त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ।
 तस्मिंस्तीर्थे नरः स्नात्वा कोटियज्ञफलं लभेत् ॥ ७१

शाली विष्णु ने बलि से राज्य अपहृत कर इन्द्र को आर्पण किया था। (६२-६५)

वहाँ विष्णुपद तीर्थ में स्नान कर वामनदेव की पूजा करने से मनुष्य समस्त पापों से मुक्त होकर विष्णुलोक प्राप्त करता है। (६६)

वहाँ पर अवस्थित सर्वपापनाशक ज्येष्ठाश्रम का दर्शन कर मनुष्य निरसन्देह मुक्ति प्राप्त करता है। (६७)

ज्येष्ठ मास के शुक्ल पक्ष की एकादशी तिथि को उपवास कर द्वादशी के दिन स्नान करने से मानव मनुष्यों में श्रेष्ठता प्राप्त करता है। (६८)

वहाँ प्रभावशाली विष्णु ने यज्ञादि में संश्रित तथा प्रतिष्ठित एवं अपनी आराधना में उत्तर ब्रह्मणों को प्रतिष्ठित किया था। (६९)

उन्हें दिये गये श्राद्ध और विविध दान अन्नय एवं मन्वन्तर पर्यन्त स्थिर रहने वाले होते हैं। (७०)

वहाँ त्रैलोक्यविभूत कोटि तीर्थ है। उस तीर्थ में स्नान कर मनुष्य कोटि यज्ञों के फल को प्राप्त करता है। (७१)

यत्र देवैः सगन्धर्वैः हनुमान् प्रकटीकृतः ॥ ३
 तत्र तीर्थे नरः स्नात्वा अमृतत्वमवाप्नुयात् ।
 कुलोच्चारणमासाद्य तीर्थसेवी द्विजोद्यमः ॥ ४
 कुलानि तारयेत् सर्वान् मातामहपितामहान् ।
 शालिहोत्रस्य राजपंतीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ५
 तत्र स्नात्वा विमुक्तस्तु कलुषैर्देहसंभवे ।
 श्रीकुञ्जं तु सरस्वत्यां तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ॥ ६
 तत्र स्नात्वा नरो भक्त्या अग्निष्टोमफलं लभेत् ।
 ततो नैमिषकुञ्जं तु समासाद्य नरः शुचिः ॥ ७
 नैमिषस्य च स्नानेन यत् पुण्यं तन् समाप्नुयात् ।
 तत्र तीर्थं महाख्यातं वेदवत्या निपेयितम् ॥ ८
 रावणेन गृहीतायाः केशेषु द्विजसत्तमाः ।
 तद्वधाय च सा प्राणान् मृष्यचे शोकरुशिता ॥ ९
 ततो जाता गृहे राज्ञो जनकस्य महात्मनः ।
 सीता नामेति विख्याता रामपत्नी पतिव्रता ॥ १०

वहाँ से शूलपाणि के अमृत स्थान में जाना चाहिये, जहाँ गन्धर्वों सहित देवताओं ने हनुमान् को प्रकट किया था । (३)

उस तीर्थ में स्नान करके मनुष्य अमृतत्व प्राप्त करता है । तीर्थ सेवी उत्तम ब्राह्मण कुलोच्चारण तीर्थ में जाकर मातामह और पितामह के समस्त बंधों का उद्धार करता है । राजर्षि शालिहोत्र के त्रैलोक्यविश्रुत तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य वेदजनित पापों से विमुक्त हो जाता है । सरस्वती में श्रीकुञ्ज नामक त्रैलोक्य प्रसिद्ध तीर्थ है । उसमें सक्तिपूर्वक स्नान करने से मनुष्य अग्निष्टोम यज्ञ का फल प्राप्त करता है । वहाँ से नैमिषकुञ्ज तीर्थ में जाकर स्नान करने से पवित्र मनुष्य नैमिषारण्य तीर्थ में स्नान से मिलने वाला पुण्य प्राप्त करता है । वहाँ वेदवती से निपेयित अति प्रख्यात तीर्थ है । (४-८)

हे द्विजश्रेष्ठो ! रावण के द्वारा केश पकड़ने पर शोकाभिभूत होकर उसने उन्दी के बंध हेतु प्राणों का परित्याग किया था । (९)

तदनन्तर महात्मा राजा जनक के गृह में उत्पन्न होकर वे राम की सीता नामक विख्यात पतिव्रता पत्नी हुई । (१०)

सा हृता रावणेनेह विनाशायात्मनः स्वयम् ।
 रामेण रावणं हत्वा अमिपिन्य विभीषणम् ॥ ११
 समानीता गृह सीता कीर्तिरात्मवता यथा ।
 तस्यास्तीर्थे नरः स्नात्वा कन्यायाश्च फलं लभेत् ॥ १२
 विमुक्तः कलुषैः सर्वैः प्राप्नोति परम पदम् ।
 ततो गच्छेत् सुमहद् ब्रह्मणः स्थानमृत्तमम् ॥ १३
 यत्र वर्णांशरः स्नात्वा ब्राह्मण्यं लभते नरः ।
 ब्राह्मणश्च विशुद्धात्मा पर पदमवाप्नुयात् ॥ १४
 ततो गच्छेत् सोमस्य तीर्थं त्रैलोक्यदुर्लभम् ।
 यत्र सोमस्वपस्तप्त्वा द्विजराज्यमवाप्नुयात् ॥ १५
 तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च स्वपितृन् देवतानि च ।
 निर्मलः स्वर्गमायाति कार्तिक्यां चन्द्रमा यथा ॥ १६
 सममारस्तत्र तीर्थं त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम् ।
 यत्र सप्त सरस्वत्य एकीभूता वहन्ति च ॥ १७
 सुप्रभा काञ्चनाक्षी च विशाला मानसहृदा ।

रावण ने स्वयं अपने विनाश के लिये वनका हरण किया । रावण को मारने के पश्चात् विभीषण का अभिषेक कर राम सीता को उसी प्रकार पर लिये जैसे जितचित्त व्यक्ति कीर्ति को प्राप्त करता है । उनके तीर्थ में स्नान कर मनुष्य कन्यायाज्ञ (कन्यादान) का फल प्राप्त करता है एवं समस्त कलुषों से मुक्त होकर परम पद को जाता है । तदनन्तर ब्रह्मा के उत्तम और महान् स्थान को जाना चाहिये जहाँ स्नान करने से अवर (निम्न) वर्ण का व्यक्ति ब्राह्मणत्व प्राप्त करता है एवं ब्राह्मण विशुद्धात्मा होकर परम पद की प्राप्ति करता है । (११-१४)

तदनन्तर त्रैलोक्यदुर्लभ सोमतीर्थ में जाना चाहिये, जहाँ चन्द्रमा ने तपस्या कर द्विजराज्यत्व की प्राप्ति की थी । (१५)

वहाँ स्नान कर अपने पितरों और देवताओं की पूजा करने से मनुष्य कार्तिकी पूर्णिमा के चन्द्र-सदृश निर्मल होकर स्वर्ग को प्राप्त करता है । (१६)

त्रैलोक्य-दुर्लभ सप्तसारस्वत नामक एक तीर्थ है जहाँ सुप्रभा, काञ्चनाक्षी, विशाला, मानसहृदा, सरस्वती ओषणा, विमलोदका एव सुवेषु नाम की सात सरस्वतियाँ एक

सरस्वत्योपनामा च सुवेश्यर्विमलोदका ॥ १८
 पितामहस्य यजतः पुष्करेषु स्थितस्य ह ।
 अश्र्वन् श्र्वयः सर्वे नायं यज्ञो महाफलः ॥ १९
 न दृश्यते सरिच्छ्रेष्ठा यस्मादिह सरस्वती ।
 तदुत्था भगवान् प्रीतः सस्माराथ सरस्वतीम् ॥ २०
 पितामहेन यजता आहूता पुष्करेषु वै ।
 सुप्रभा नाम सा देवी तत्र ख्याता सरस्वती ॥ २१
 तां दृष्ट्वा मुनयः प्रीता वेगयुक्तां सरस्वतीम् ।
 पितामहं मानयन्तीं ते तु तां बहु मेनिरे ॥ २२
 एवमेवा सरिच्छ्रेष्ठा पुष्करस्था सरस्वती ।
 समानीता कुरुक्षेत्रे मङ्गणेन महात्मना ॥ २३
 नैमिषे मुनयः स्तिपत्वा श्रौनकायास्तपोधनाः ।
 ते पृच्छन्ति महात्मानं पौराणं लोमहर्षणम् ॥ २४
 कथं यज्ञफलोऽस्माकं वर्ततां सत्ये भवेत् ।
 ततोऽश्र्वीन्महाभागः प्रणम्य शिरसा श्र्वपीन् ॥ २५

मे मिलकर प्रवाहित होती हैं । (१७-१८)

पुष्करतीर्थ में अवस्थित पितामह के यज्ञानुष्ठान में प्रयुक्त होने पर सभी ऋषियों ने उनसे कहा "आपका यह यज्ञ महाफलजनक नहीं होगा। क्योंकि यहाँ सरिच्छ्रेष्ठा सरस्वती नहीं दिखलाई पड़ रही हैं।" यह सुन कर प्रसन्नतापूर्वक भगवान् ने सरस्वती का स्मरण किया । (१९-२०)

पुष्कर में यज्ञ कर रहे पितामह द्वारा आहूत सुप्रभा नाम की देवी यहाँ सरस्वती नाम से प्रख्यात हुई । (२१)

पितामह का मान करने वाली वेगयुक्ता उस सरस्वती को देख कर प्रसन्न मुनियों ने उनका अत्यधिक सम्मान किया । (२२)

इस प्रकार पुष्कर में स्थित इस सरिच्छ्रेष्ठा सरस्वती को महात्मा मङ्गण कुरुक्षेत्र में लाये । (२३)

नैमिषारण्य में स्थित तपोधन शौनकादि मुनियों ने पीतामह महात्मा लोमहर्षण से पूछा । (२४)

"सम्मान में चले जाने हम लोगों को यज्ञ का फल कैसे प्राप्त होगा?" बदनन्तर उन महाभाग ने ऋषियों को निरसे प्रणाम कर कहा— (२५)

सरस्वती स्थिता यत्र तत्र यज्ञफलं महत् ।
 एतच्छ्रुत्वा तु मुनयो नानास्वाभ्यासवेदिनः ॥ २६
 समागम्य ततः सर्वे सम्मरुहते सरस्वतीम् ।
 सा तु ध्याता ततस्त्वत्र ऋषिभिः सत्रयाजिभिः ॥ २७
 समागता प्लावनार्थं यज्ञे तेषां महात्मनाम् ।
 नैमिषे काञ्चनाक्षी तु स्मृता मङ्गणकेन सा ॥ २८
 समागता कुरुक्षेत्रं पुण्यतोया सरस्वती ।
 गयस यजमानस्य गयेष्वेव महाकृतम् ॥ २९
 आहूता च सरिच्छ्रेष्ठा गययत्ने सरस्वती ।
 विशालां नाम तां प्राहृश्र्वयः सशितत्रताः ॥ ३०
 सरिच् सा हि समाहूता मङ्गणेन महात्मना ।
 कुरुक्षेत्रं समायाता प्रविष्टा च महानदी ॥ ३१
 उत्तरे कोशलभागे पुण्ये देवर्षिसेविते ।
 उद्दालकेन मुनिना तत्र ध्याता सरस्वती ॥ ३२
 आनगाम सरिच्छ्रेष्ठा तं देशं मुनिकारणात् ।

जहाँ सरस्वती अवस्थित हैं वहाँ यज्ञ का महान् फल होता है। यह सुनकर त्रिविध वेदों का अध्ययन करने वाले मुनियों ने समवेत होकर सरस्वती का स्मरण किया। सत्र (दीर्घ काल में समाप्त होने वाले यज्ञ) को करने वाले ऋषियों के ध्यान करने पर वे यहाँ नैमिष क्षेत्र में उन महात्माओं के यज्ञ में प्लवनार्थ काञ्चनाक्षी नाम से समागत हुईं। वहाँ प्रसिद्ध नदी मङ्गण द्वारा स्मरण किये जाने पर पुण्यतोया सरस्वती के रूप में कुरुक्षेत्र में आयी। गयाक्षेत्र में महायज्ञ करने वाले गय के यज्ञ में आहूत श्रेष्ठ सरस्वती नदी का प्रसिद्ध बन जाने वाले ऋषियों ने "विशाल" के नाम से अभिहित किया। (२६-३०)

महात्मा मङ्गण ऋषि द्वारा समाहूत यह नदी कुरुक्षेत्र में आकर प्रविष्ट हो गई । (३१)

देवर्षियों द्वारा सेवित परम पवित्र उत्तर कोशल प्रदेश में उद्दालक मुनि ने सरस्वती का ध्यान किया । (३२)

उन मुनि के कारण सरिच्छ्रेष्ठा सरस्वती उस देश में आयी एवं बालकमुनिगर्भारो मुनियों द्वारा पूजित हुईं। सम्पूर्ण पारो की नासिद्ध वे मनोहरा नाम से विख्यात १. बृहत् दिनों में धरत होने वाले यो यो वरुहते हैं ।

पूज्यमाना मुनिगणैर्वल्कलाजिनसंभृतैः ॥ ३३
 मनोहेरेति विख्याता सर्वपापक्षयावहा ।
 आहूता सा कुरुक्षेत्रे मङ्गणेन महात्मना ।
 ऋषेः संमाननाथीय प्रविष्टा तीर्थमुत्तमम् ॥ ३४
 सुवेशुरिति विख्याता केदारे या मरस्वती ।
 सर्वपापक्षया ज्ञेया ऋषिसिद्धनिषेविता ॥ ३५
 सापि तेनेह मुनिना आराभ्य परमेश्वरम् ।
 ऋषीणाष्टपकारार्थं कुरुक्षेत्रं प्रवेशिता ॥ ३६

दक्षेण यज्ञता सापि गङ्गाद्वारे सरस्वती ।
 विमलोदा भगवतो दक्षेण प्रकटीकृता ॥ ३७
 समाहूता ययो तत्र मङ्गणेन महात्मना ।
 कुरुक्षेत्रे तु कुरुणा यजिता च सरस्वती ॥ ३८
 सरोमध्ये समानीता मार्कण्डेयेन धीमता ।
 अभिपूय महाभागां पुण्यतोषां सरस्वतीम् ॥ ३९
 यत्र मङ्गणकः सिद्धः सप्तमारस्वते स्थितः ।
 नृत्यमानश्च देवेन शंकरेण निवारितः ॥ ४०

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये षोडशोऽध्याय ॥१६॥

१७

ऋषय ऊचुः ।
 कथं मङ्गणकः सिद्धः कस्माज्जातो महानृषिः ।
 नृत्यमानस्तु देवेन किमर्थं स निवारितः ॥ १
 लोमहर्षण उवाच ।
 कश्यपस्य सुतो जज्ञे मानसो मङ्गणो मुनिः ।

हुई । (३३)
 वे महात्मा मरुग द्वारा आहूत होकर ऋषि के सम्मानार्थं कुरुक्षेत्र के उत्तम तीर्थ में प्रविष्ट हुई । (३४)
 केदार तीर्थ में जो सरस्वती "सुवेशु" नाम से प्रसिद्ध है वे ऋषियों और सिद्धों के द्वारा सेविन तथा सर्वपापनाशक रूप से विदित हैं । (३५)
 उसे भी उन मुनि ने परमेश्वर की आराधना कर ऋषियों के उपकारार्थं इस कुरुक्षेत्र में प्रविष्ट किया । (३६)

स्नानं कर्तुं व्ययसितो गृहीत्वा वल्कलं द्विजः ॥ २
 तत्र गता ह्यप्सरसो रम्भाद्याः प्रियदर्शनाः ।
 स्नायन्ति रुचिराः स्निग्धाम्बनेन सार्धमनिन्दिताः ॥ ३
 ततो मूनेस्त्वदा क्षोभाद्रेतः स्फुरं यदम्भसि ।
 तद्रेतः स तु अग्राह कलशे वै महातपाः ॥ ४

गङ्गाद्वार में यज्ञ कर रहे दक्ष ने विमलोदा नामक भगवती सरस्वती को प्रकट किया । (३७)
 कुरुक्षेत्र में कुरु द्वारा पूजित सरस्वती मङ्गण द्वारा बुलायी जानेपर यहाँ गईं । (३८)
 बुद्धिमान् मार्कण्डेय पवित्र जल वाली महाभागा सरस्वती की स्तुति कर उन्हें सरोवर के मध्य में ले गये । वहीं सप्तसारस्वनतीर्था में सिद्धि प्राप्तकर स्थित नृत्य कर रहे मङ्गणक को शंकर ने रोका था । (३९-४०)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में सोलहवाँ अध्याय समाप्त ॥१६॥

१७

ऋषियों ने कहा—मङ्गणक कैसे सिद्ध हुए ? वे महान् ऋषि किसके पुत्र हुए थे ? नृत्य कर रहे उन्हें महादेव ने क्यों रोका ? (१)

लोमहर्षण ने कहा—मङ्गणक मुनि महर्षि कश्यप के मानसपुत्र थे । (एक समय) वे द्विज वल्कल लेकर स्नान

करने गए । (२)
 रम्भादि सुन्दरी अप्सरायें भी यहाँ गईं एवं वे सभी अनिन्य, कोमल एवं मनोहर (अप्सरायें) उनके साथ स्नान करने लगीं । (३)
 तदनन्तर क्षोभवश मुनि का वीर्य जल में स्थलित हो गया जिसे उन महातपस्वी ने पड़े में उठा लिया । (४)

समधा प्रविभागं तु कल्युत्सवं जगाम ह ।
 तत्रर्षयः सम जाता विदुर्मान् मस्तां गगान् ॥ ५
 वायुवेगो वायुबलो वायुहा वायुमण्डलः ।
 वायुजालो वायुरेतो वायुचक्रश्च वीर्यवान् ॥ ६
 एते क्षपस्वाग्न्त्यर्षेर्घोररन्ति चराचरम् ।
 पुरा मङ्गलकः निडः कुशाग्रोऽपि मे श्रुतम् ॥ ७
 क्षतः किल करे विप्रान्तस्य शारुरमोऽन्यथम् ।
 स वै शारुरमं दृष्ट्वा हर्षाविष्टः प्रनृत्तवान् ॥ ८
 ततः सर्वं प्रनृत्तं च स्वानरं जङ्गमं च यत् ।
 प्रनृत्तं च जगत् दृष्ट्वा तेजसा तस्य मोहितम् ॥ ९
 भद्रादिभिः सुरैस्त्वत्र ऋषिभिश्च तपोधनैः ।
 त्रिगुप्तो वै महादेवो ह्यनेरर्थे द्विजोत्तमाः ॥ १०
 नाथं नृरपेद् यथा देव तथा त्वं कर्तुमर्हसि ।
 ततो देवो ह्यनि दृष्ट्वा हर्षाविष्टमतो न हि ॥ ११
 सुराणां हितरामार्थे महादेवोऽभ्यभाषत ।
 हर्षस्थानं क्रिमर्थं च तपेदं ह्यनिमतम ।
 तपस्विनो धर्मपथे स्थितस्य द्विजमतम ॥ १२

ऋषिह्वाच ।

किं न पश्यसि मे अत्रन् कराञ्छारुरमं सुतम् ।
 यं दृष्ट्वाऽहं प्रनृत्तो वै हर्षेण महताऽनिरतः ॥ १३
 तं प्रहम्याप्रवीद् देवो ह्यनि रागेण मोहितम् ।
 अहं न विम्मयं विप्र गञ्जामीह प्रपश्यताम् ॥ १४
 एवमुक्त्वा ह्यनिश्रेष्ठं देवदेवो महापतिः ।
 अद्गुन्त्यग्रेण विप्रेन्द्राः भ्वाद्गुण्ट ताडयद् भवः ॥ १५
 ततो भम्म क्षतान् तस्माद्भिर्गतं हिममग्निभम् ।
 तद् दृष्ट्वा श्रीडितो विप्रः पादयोः पतितोऽप्रवीत् ॥ १६
 नान्यं देवादहं मन्ये शूलपाणेषुहात्मनः ।
 चराचरस्य जगतो वरम्भ्रमसि शूलशृङ् ॥ १७
 त्वदाश्रयाथ दृश्यन्ते सुरा भद्रादयोऽनप ।
 पूर्वस्त्वमसि देवानां कर्ता कारयिता महत् ॥ १८
 त्वत्प्रसादान् सुराः मयै मोदन्ते क्षततोभयाः ।

एवं स्तुत्वा महादेवमुपिः स प्रणतोऽब्रवीत् ॥ १९
भगवंस्त्वत्प्रसादाद्दि तपो मे न क्षय्य जयेत् ।
ततो देव. प्रसन्नात्मा तर्प्यं वाक्यमब्रवीत् ॥ २०
ईश्वर उवाच ।
तपस्ते वर्द्धतां विप्र मत्प्रसादात् सहस्रधा ।

आश्रमे चेह वत्स्यामि त्वया सार्द्धमहं सदा ॥ २१
सप्तसारस्वते स्नात्वा यो मामर्चिष्यते नरः ।
न तस्य दुर्लभं किञ्चिदिह लोके परत्र च ॥ २२
सारस्वतं च तं लोकं गमिष्यति न संशयः ।
शिवस्य च प्रसादेन प्राप्नोति परमं पदम् ॥ २३

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये सप्तदशोऽध्याय ॥१७॥

१८

लोमहर्षण उवाच ।

तत्तत्तवौशनसं तीर्थं गच्छेत् शुद्धयान्वितः ।
उशना यत्र संसिद्धो ग्रहत्वं च समाप्तवान् ॥ १
तस्मिन् स्नात्वा विमुक्तस्तु पातकैर्जन्मसभैः ।
ततो याति परं ब्रह्म यस्मान्नावर्तते पुनः ॥ २
रहोदरो नाम मुनिर्यत्र मुक्तो ध्रुव ह ।
महता शिरसा ग्रस्तस्तीर्थमाहात्म्यदर्शनात् ॥ ३

आपकी कृपा से सभी देवगण निर्भय होकर आनन्दित होते हैं। इस प्रकार महादेव की स्तुति करने के अनन्तर ऋषि ने प्रणाम कर कहा— (१९)

हे भगवन् । आपकी कृपा से मेरे तप का क्षय न हो। तदनन्तर महादेव ने प्रसन्न होकर उन ऋषि से यह वचन कहा। (२०)

ईश्वर ने कहा—हे विप्र । मेरी कृपा से तुम्हारी तपस्या

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में सत्रहवाँ अध्याय समाप्त ॥१७॥

१८

लोमहर्षण ने कहा—तदनन्तर श्रद्धान्वित होकर औशनस तीर्थ में जाना चाहिये, जहाँ उशना (शुक) ने सिद्धि प्राप्त कर महत्व प्राप्त किया था। (१)

वहाँ स्नानकर पुरुष विभिन्न जन्मों के पातकों से विमुक्त होकर परब्रह्म को प्राप्त करता है जहाँ से उसे पुन लौटना नहीं पड़ता। (२)

यहाँ तीर्थ-दर्शन के माहात्म्य से महान् शिर से ग्रस्त रहोदर नामक मुनि मुक्त हुए थे। (३)

ऋषय ऊचुः ।

कथं रहोदरो ग्रस्त. कथं मोक्षमवाप्तवान् ।
तीर्थस्य तस्य माहात्म्यमिच्छामः श्रोतुमादरात् ॥ ४

लोमहर्षण उवाच ।

पुरा वै दण्डकारण्ये राघवेण महात्मना ।
वसता द्विजशार्दूला राक्षसास्तत्र हिंसिताः ॥ ५
तत्रैकस्थं शिरश्छिद्यं राक्षसस्य दुरात्मनः ।

सहस्र प्रकार से बड़े। मैं तुम्हारे साथ इस आश्रम में सदा निवास करूँगा। (२१)

जो मनुष्य इस सप्त सारस्वत में स्नान कर के मेरी पूजा करेगा उसे इस लोक और परलोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं होगा। वह निस्सन्देह सारस्वत लोकको जायेगा एवं (मुझ) शिव के अनुग्रह से परम पद प्राप्त करेगा। (२२-२३)

ऋषियों ने कहा—रहोदर मुनि कैसे (शिर से) ग्रस्त हुए थे एवं वे कैसे मुक्त हुए ? हम लोग उस तीर्थ के माहात्म्य को आत्र पूर्वक सुनना चाहते हैं। (४)

लोमहर्षण ने कहा—हे द्विजभेषो ! प्राचीन काल में दण्डकारण्य में रहते हुए महात्मा राघव ने राक्षसों का वध किया। (५)

धुरेण शिवधारेण सद् पपात महावने ॥ ६
 रहोदरस्य तल्लनं जङ्घायां वै यदच्छया ।
 वने विचरतरत्र अस्थि भित्त्वा विवेश ह ॥ ७
 स तेन लम्बेन तदा द्विजातिर्न शशाक ह ।
 अभिगन्तुं महाप्राज्ञस्तीर्थान्यायतनानि च ॥ ८
 स पूतिना विस्रवता वेदनात्तो महाह्रुनिः ।
 जगाम सर्वतीर्थानि पृथिव्यां यानि कानि च ॥ ९
 ततः स कथयामास ऋषीणां भावितात्मनाम् ।
 तेऽभ्रुवन् ऋषयो विप्रं प्रयाहौशनसं प्रति ॥ १०
 तेषां तद्वचनं श्रुत्वा जगाम स रहोदरः ।
 ततस्त्वौशनसे तीर्थं तस्वोपस्पृशतस्तदा ॥ ११
 तच्छिरश्चरणं मृक्त्वा पपातान्तर्जले द्विजाः ।
 ततः स विरजो भूत्वा पूतात्मा वीतकल्मषः ॥ १२
 आजगामाश्रमं प्रीतः कथयामास चाखिलम् ।
 ते श्रुत्वा ऋषयः सर्वे तीर्थमाहात्म्यमृत्तमम् ।
 कपालमोचनमिति नाम चन्द्रुः समागताः ॥ १३

वहाँ एक दुर्गाला राक्षस का शिर वीत्रधार वाले धुर
 बाण से कटकर उस महावन में गिरा । (६)
 सयोगवश यह वन में विचरण कर रहे रहोदर मुनि की
 जपा में हृद्दी की तोड़कर सलग्न हो गया । (७)
 यह महाप्राज्ञ ब्राह्मण उस मस्तक के लग जाने
 से तीर्थों और देवालयों में नहीं जा पाते थे । (८)
 दुर्गन्धपूर्ण स्त्राय से वेदनार्त वे महाह्रुनि पृथ्वी के
 समस्त तीर्थों में गये । (९)
 तदनन्तर उन्होंने पवित्र ऋषियों से (अपना वृत्तान्त)
 कहा । ऋषियों ने विप्र से कहा—औशनस (तीर्थ) में
 जाओ । (१०)
 हे द्विजो! उनका यह वचन सुनकर रहोदर वहाँ से औश-
 नस तीर्थ में गये एवं उसके (जल का) स्पर्श करते ही
 यह मस्तक उनके चरणों को छोड़कर जल में
 गिर गया । तदनन्तर वे मुनि निर्मल, पवित्रात्मा एवं पाप-
 रहित होकर प्रसन्नता पूर्वक आश्रम में आए एवं (ऋषियों से)
 समस्त (वृत्तान्त) कहा । उन सभी समागत ऋषियों ने
 उत्तम तीर्थ के माहात्म्य को सुनकर (उस तीर्थ का) 'कपाल-
 मोचन' नाम रक्खा । (११-१३)

तत्रापि सुमहत्तीर्थं विश्वामित्रस्य विश्रुतम् ।
 ब्राह्मण्यं लब्धवान् यत्र विधामित्रो महाह्रुनिः ॥ १४
 तस्मिंस्तीर्थधरे स्नात्वा ब्राह्मण्यं लभते ध्रुवम् ।
 ब्राह्मणस्तु विश्रुत्वात्मा परं पदमवाप्नुयात् ॥ १५
 ततः प्रधृदकं गच्छेन्नियतो नियताशनः ।
 तत्र सिद्धस्तु ब्रह्मर्षी रूपदृग्नुर्नाम मतः ॥ १६
 जातिम्मरौ रूपदृग्मुत्तु गङ्गाद्वारे सदा स्थितः ।
 अन्तर्गलं ततो दृष्ट्वा पुत्रान् वचनमब्रवीत् ।
 इह श्रेयो न पश्यामि नष्वर्षं मां प्रधृदकम् ॥ १७
 विज्ञाय तस्य तद्भाव एवङ्गोस्ते तपोधनाः ।
 त वै तीर्थं उपानिन्युः सरस्वत्यास्वपोधनम् ॥ १८
 स तैः पुत्रैः तमानीतः सरस्वत्या सभाश्रुतः ।
 स्मृत्वा तीर्थशुणान् सर्वान् प्राहेदमृषिसत्तमः ॥ १९
 सरस्वत्युचरे तीर्थं यस्त्यजेदात्मनस्तनुम् ।
 प्रधृदके लज्जपरो नूनं चामरतां व्रजेत् ॥ २०
 तत्रैव ब्रह्मयोन्यग्निं ब्रह्मणा यत्र निर्मिता ।

वहीं विश्वामित्र का विख्यात महान् तीर्थ है । जहाँ पर
 महाह्रुनि विश्वामित्र ने ब्राह्मणत्व प्राप्त किया था । (१४)
 उस श्रेष्ठ तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य निरचय ही
 ब्राह्मणत्व को प्राप्त करता है तथा विश्रुत्वात्मा ब्राह्मण
 परं पद की प्राप्ति करता है । (१५)
 तदनन्तर नियमपूर्वक नियताशी होकर प्रधृदक तीर्थ में
 जाना चाहिये । वहाँ रूपदृग् नामक ब्रह्मर्षि सिद्ध हुए थे । (१६)
 सदा गङ्गाद्वार में रहने वाले जातिस्मर रूपदृग् ने अन्त-
 काल उपरिष्ठित देवतक पुत्रों से कहा—यहाँ मैं कल्याण नहीं
 देखता । मुझे प्रधृदक में ले चलो । (१७)
 रूपदृग् के उस भाव को जानकर वे वपरी उन तपोधन
 को सरस्वती के तीर्थ में ले गए । (१८)
 उन पुत्रों द्वारा समानीत ऋषिश्रेष्ठ ने सरस्वती में स्नान
 करने के उपरान्त समस्त तीर्थगुणों का स्मरण कर यह
 कहा—सरस्वती के उत्तरस्थ प्रधृदक तीर्थ में शरीरत्याग करने
 वाला जपपरायण मनुष्य निरचय ही देवत्व प्राप्त करता
 है । (१९-२०)
 वही ब्रह्मा द्वारा निर्मित ब्रह्मयोनि तीर्थ है जहाँ सरस्वती
 के किनारे अवस्थित प्रधृदक में स्थित हो ब्रह्मा पातुर्वर्ण्य की

पृथूदकं समाश्रित्य सरस्वत्यास्तटे स्थितः ॥ २१
 चातुर्वर्ण्यस्य सृष्ट्वर्थमात्मज्ञानपरोऽभवत् ।
 तस्याभिष्यायतः सृष्टिं ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ॥ २२
 मुखतो ब्राह्मणा जाता बाहुभ्यां स्त्रियारतथा ।
 ऊरुभ्यां वैश्यजातीयाः पद्भ्यां शूद्रास्ततोऽभवन् ॥ २३
 चातुर्वर्ण्यं ततो षट्धा आश्रमस्थं ततस्ततः ।
 एवं प्रतिष्ठितं तीर्थं ब्रह्मयोनीति संज्ञितम् ॥ २४
 तत्र स्नात्वा मुक्तिकामः पुनर्योनि न पश्यति ।
 तत्रैव तीर्थं विख्यातमवकीर्णंति नामतः ॥ २५
 यस्मिन् तीर्थे वको दाल्भ्यो धृतराष्ट्रमर्षणम् ।
 जुहाव वाहनैः सार्धं तत्रानुष्पत् ततो नृपः ॥ २६
 ऋषय ऊचुः ।
 कथं प्रतिष्ठितं तीर्थमवकीर्णंति नामतः ।
 धृतराष्ट्रेण राज्ञा च स क्रिमर्थं प्रसादितः ॥ २७
 लोमहर्षण उवाच
 ऋषयो नैमिषेया ये दक्षिणार्थं यदुःपुरा ।

सृष्टि हेतु आत्मज्ञान मे तत्पर हुये थे । अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा
 के सृष्टि का चिन्तन करने पर उनके मुख से ब्राह्मण,
 भुजाओं से क्षत्रिय, दोनों ऊरुओं से वैश्य जाति के लोग और
 दोनों पैरों से शूद्र उत्पन्न हुये । (२१-२३)

तदनन्तर उन्होंने चातुर्वर्ण्य को विभिन्न आश्रमों में
 स्थित हुआ देखा । ब्रह्मयोनि नामक तीर्थ की इस प्रकार प्रतिष्ठा
 हुई थी । (२४)

वहाँ स्नान करने से मुक्तिकामी व्यक्ति पुनर्जन्म नहीं
 देखता । वहीं अवकीर्ण नामक विख्यात तीर्थ है ।
 जहाँ पर दाल्भ्य (दल्भ या दल्भि गोत्र में उत्पन्न)
 वक नामक ऋषि ने क्रीधी धृतराष्ट्र को वाहन के साथ
 हवन कर दिया था एवं उत्तरवाट राजा को ज्ञान हुआ
 था । (२५-२६)

ऋषियों ने कहा—अवकीर्ण नामक तीर्थ कैसे प्रतिष्ठित
 हुआ एवं राजा धृतराष्ट्र ने उसे (दाल्भ्य वक को) क्यों
 प्रसन्न किया था ? (२७)

लोमहर्षण ने कहा—प्राचीनकाल में नैमिषारण्यवासी
 ऋषि लोग दक्षिणा देतु (राजा धृतराष्ट्र के यहाँ गए) ।

तत्रैव च वको दाल्भ्यो धृतराष्ट्रमाचत ॥ २८
 तेनापि तत्र निन्दार्थंमुक्तं पथनृतं तु यत् ।
 ततः क्रोधेन महता मांसमुत्कृत्य तत्र ह ॥ २९
 पृथूदके महातीर्थे अवकीर्णंति नामतः ।
 जुहाव धृतराष्ट्रस्य राष्ट्रं नरपतेस्ततः ॥ ३०
 ह्यमाने तदा राष्ट्रं प्रवृत्ते यज्ञकर्मणि ।
 अक्षीयत ततो राष्ट्रं नृपतेर्दुष्कृतेन वै ॥ ३१
 ततः स चिन्तयामास ब्राह्मणस्य विचेष्टितम् ।
 पुरोहितेन सपुक्तो रत्नान्यादाय सर्वश्वः ॥ ३२
 प्रसादनार्थं विप्रस्य श्वकीर्णं ययौ तदा ।
 प्रसादितः स राज्ञा च तुष्टः प्रोवाच तं नृपम् ॥ ३३
 ब्राह्मया नावमन्तव्याः पुरुषेण विज्ञानता ।
 अवज्ञातो ब्राह्मणस्तु हन्यात् त्रिपुरुष कुलम् ॥ ३४
 एवमुक्त्वा स नृपतिं राज्येन यशसा पुनः ।
 उत्थापयामास ततस्तस्य राज्ञो हिते स्थितः ॥ ३५
 तस्मिंस्तीर्थे तु यः स्नाति श्रद्धधानो जितेन्द्रियः ।

वहाँ दलिभवशीय वक ऋषि ने धृतराष्ट्र से याचना
 की । (२८)

उसने भी निन्दार्थक मान्य और असत्य बात कही ।
 तदनन्तर वे (वकदाल्भ्य) अत्यन्त क्रोधपूर्वक मांस काट
 कर पृथूदक में स्थित अवकीर्ण नामक तथे में राजा धृतराष्ट्र
 के राष्ट्र का हवन करने लगे । (२९-३०)

यत् में राष्ट्र का हवन प्रारम्भ होने पर राजा के दुष्कर्म
 से राष्ट्र का क्षय होने लगा । (३१)

तदनन्तर उसने विचार किया और इसे ब्राह्मण का कर्म
 जान समस्त रत्नों को लेकर पुरोहित के साथ विप्र को
 प्रसन्न करने के लिये अवकीर्ण तीर्थ में गया । राजा द्वारा
 प्रसन्न किये जाने पर उन्होंने प्रसन्न होकर राजा से कहा—
 विद्वान् मनुष्य को ब्राह्मण की अवमानना नहीं
 करनी चाहिये । अपमानित ब्राह्मण मनुष्य के कुल के तीन
 पुरुषों (पीढियों) का नाश कर देता है । (३२-३४)

ऐसा कह कर उन्होंने पुन राजा को राज्य एवं यश के
 साथ उत्थापित कर दिया तथा उस राजा के हित-
 कारी हो गए । (३५)

उस तीर्थ में ब्रह्मपूर्वक स्नान करने वाला जितेन्द्रिय

स प्राप्नोति नरो नित्यं मनसा चिन्तितं फलम् ॥ ३६
 तत्र तीर्थं सुविष्ट्यात् यायात् नाम नामतः ।
 यस्येह यत्रमानस्य मधु सुस्राव वै नदी ॥ ३७
 तस्मिन् स्नातो नरो भक्त्या मृच्यते सर्वक्रियैः ।
 फलं प्राप्नोति यज्ञस्य अश्वमेधस्य मानवः ॥ ३८

मधुस्रावं च तत्रैव तीर्थं पुण्यतमं द्विजाः ।
 तस्मिन् स्नात्वा नरो भक्त्या मधुना तर्पयेत् पितृन् ॥ ३९
 तत्रापि सुमहतीर्थं वसिष्ठोद्गाहसंज्ञितम् ।
 तत्र स्नातो भक्तियुक्तो वासिष्ठ लोकमाप्नुयात् ॥ ४०

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये अष्टादशोऽध्याय ॥१८॥

१६

ऋषय ऊचुः ।

वसिष्ठस्यापवाहोऽसौ कथं वै संभूय ह ।
 किमर्थं सा सरिच्छ्रेष्ठा तर्पिणी प्रत्यवाहयत् ॥ १
 लोमहर्षण उवाच ।
 विश्वामित्रस्य राजर्षेर्वसिष्ठस्य महात्मनः ।

सृष्टं वैरं बभूवेह तपःस्पृहाकृते महत् ॥ २
 आश्रमो वै वसिष्ठस्य स्थाणुतीर्थे बभूव ह ।
 तस्य पश्चिमदिग्भागे विश्वामित्रस्य धीमतः ॥ ३
 यत्रेष्ट्वा भगवान् स्थाणुः पूजयित्वा सरस्वतीम् ।
 स्थापयामास देवेशो लिङ्गाकारां सरस्वतीम् ॥ ४

मनुष्य नित्य मनोभिलषित फल प्राप्त करता है । (३६)
 वहाँ यायात (यवाति का तीर्थ) नाम से सुविख्यात
 तीर्थ है । वहाँ यज्ञ करने वाले के लिये
 नदी ने मधु बहाया था । (३७)
 उसमें भक्तिपूर्वक स्नान करने से मनुष्य समस्त पापों
 से मुक्त हो जाता है एवं उसे अश्वमेध यज्ञ का फल प्राप्त
 होता है । (३८)

हे द्विजो । वही मधुस्राव नामक पवित्र तीर्थ है । उसमें
 भक्तिपूर्वक स्नान कर मनुष्य को मधु द्वारा नितरों का तर्पण
 करना चाहिये । (३९)
 वही पर वसिष्ठोद्गाह नामक सुन्दर महान् तीर्थ है ।
 उसमें भक्तिपूर्वक स्नान करने वाला वासिष्ठ लोक प्राप्ति
 करता है । (४०)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में अष्टादशोऽध्याय समाप्त ॥१८॥

१९

ऋषियों ने पूछा-वसिष्ठोद्गाह कैसे हुआ ? उस श्रेष्ठ
 सरिता ने उन ऋषि को क्यों प्रतिवाहित किया ? (१)
 लोमहर्षण ने कहा-राजर्षि विश्वामित्र एवं महात्मा
 वसिष्ठ ने तप स्पर्द्धा के कारण महान् धैर्य उत्पन्न

हुआ । (२)
 वसिष्ठ का आश्रम स्थाणुतीर्थ में था । उसकी परिचय
 दिशा में बुद्धिमान् विश्वामित्र का आश्रम था । (३)
 जहाँ देवाधिदेव भगवान् स्थाणु (शिव) ने यज्ञ करने

वसिष्ठस्तत्र तपसा घोररूपेण संस्थितः ।
 तस्येह तपसा हीनो विश्वामित्रो वभूव ह ॥ ५
 सरस्वतीं समाहूय इदं वचनमब्रवीत् ।
 वसिष्ठं मुनिशार्दूल स्वेन वेगेन आनय ॥ ६
 इहाहं तं द्विजश्रेष्ठं हनिष्यामि न संशयः ।
 एतच्छ्रुत्वा तु वचनं व्यथिता सा महानदी ॥ ७
 तथा तां व्यथितां दृष्ट्वा वेपमानां महानदीम् ।
 विश्वामित्रोऽब्रवीत् क्रुद्धो वसिष्ठं शीघ्रमानय ॥ ८
 ततो गत्वा सरिच्छ्रेष्ठा वसिष्ठं घृणिसत्तमम् ।
 कथयामास रुदती विश्वामित्रस्य तद् वचः ॥ ९
 तपःक्रियाविशीर्णां च शृशं शोकसमन्विताम् ।
 उवाच स सरिच्छ्रेष्ठां विश्वामित्राय मां वह ॥ १०
 तस्य तद् वचनं श्रुत्वा कृपाशीलस्य सा सरित् ।
 चालयामास तं स्थानात् प्रवाहेणाम्भस्तदा ॥ ११
 स च कृलापहारेण मित्रावरुणयोः सुतः ।
 उद्धमानश्च तुष्टाव तदा देवीं सरस्वतीम् ॥ १२

के उपरान्त सरस्वती की पूजा कर लिङ्गाकार सरस्वती की स्थापना की थी । वही वसिष्ठ घोर तपस्या में सलग्न थे । उनकी तपस्या से विश्वामित्र हीन हो गये । (४-५)
 उन्होंने सरस्वती को बुलाकर यह वचन कहा—तुम मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ को अपने वेग से लाओ । मैं उन द्विजश्रेष्ठ को नि सग्रेह यहाँ मारूँगा । यह सुनकर वह महानदी व्यथित हो गई । (६-७)

उस प्रकार व्यथित एव कम्पित होती हुई उस महानदी को देखकर क्रुद्ध विश्वामित्र ने कहा—वसिष्ठ को शीघ्र लाओ । (८)

तदनन्तर श्रेष्ठ सरिता ने मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठ के पास जाकर उनसे विश्वामित्र के उस वचन को रोते हुए कहा । (९)

उन्होंने तप क्रिया से कृष्ण एव अविशय शोक समन्वित श्रेष्ठ सरिता से कहा—विश्वामित्र के यहाँ मुझे ले चलो । उन दयालु के उस वचन को सुनकर उस सरिता ने जल के प्रवाह द्वारा उन्हें उस स्थान से प्रवाहित कर दिया । (१०-११)

किनारे से ले जाये जाने के कारण वह रहे मित्रावरुण के पुत्र (वसिष्ठ ऋषि) देवी सरस्वती की स्तुति करने लगे— (१२)

पितामहस्य सरमः प्रवृत्ताऽपि सरस्वति ।
 व्याप्तं त्वया जगत् सर्वं तवैवात्म्योभिरुत्तमैः ॥ १३
 त्वमेवाकाशया देवी मेवेषु मुजसे पयः ।
 सर्वांस्त्वापस्त्यमेवेति त्वत्तो वयमधीमहे ॥ १४
 पुष्टिर्धृतिस्तथा कीर्त्ति मिद्धिः कान्तिः क्षमा तथा ।
 स्वधा स्वाहा तथा वाणी तत्रायत्तमिदं जगत् ॥ १५
 त्वमेव सर्वभूतेषु वाणीरूपेण संस्थिता ।
 एवं मरस्वती तेन स्तुता भगवती तदा ॥ १६
 सुखेनोवाह तं विप्रं विश्वामित्राश्रमं प्रति ।
 न्यवेदयत्तदा सिद्धा विश्वामित्राय तं घृणम् ॥ १७
 तमानीतं सरस्वत्या दृष्ट्वा कोपसमन्वितः ।
 अथान्विपत् प्रहरणं वसिष्ठान्तरु तदा ॥ १८
 तं तु क्रुद्धमभिप्रेक्ष्य ब्रह्महत्याभयान्दी ।
 अपोवाह वसिष्ठं तं मध्ये चैवाम्भसस्तदा ।
 उभयोः कुर्वती वाक्यं वञ्चयित्वा च गाधिजम् ॥ १९
 ततोऽपवाहितं दृष्ट्वा वसिष्ठमृषिसत्तमम् ।

हे सरस्वती ! आप धर्रा के सरोवर से निकली हैं । आपने अपने उत्तम जल से समस्त जगत् को व्याप्त किया है । (१३)

आपही आकाशगामी देवी बनकर मेघों में जल की सृष्टि करती हैं । आप ही समस्त जलों के रूप में वर्तमान हैं । आप से हम लोग अभयन करते हैं । (१४)

आप ही पुष्टि, धृति, कीर्त्ति, सिद्धि, कान्ति, क्षमा, स्वधा, स्वाहा तथा वाणी हैं । समस्त ससार आपका ही वशवर्ती है । (१५)

आप ही समस्त प्राणियों में वाणी रूप से स्थित हैं । उनके द्वारा इस प्रकार स्तुता भगवती सरस्वती उस विप्र को सुख पूर्वक विश्वामित्र के आश्रम में ले गई एव खिलवा पूर्वक उन मुनि को विश्वामित्र के लिये निवेदित किया । (१६-१७)

सरस्वती द्वारा वसिष्ठ को लाया गया देखकर क्रुद्ध विश्वामित्र उन्हें मारने के लिए शस्त्र खोजने लगे । (१८)

उन्हें क्रुद्ध हुआ देख ब्रह्महत्या के भय से भीत नदी गाधिपुत्र को वञ्चित कर दोनों के वाक्य का पालन करती हुई उन वसिष्ठ को जल में बहा ले गई । (१९)

अब्रवीत् क्रोधरक्ताक्षो विश्वामित्रो महातपाः ॥ २०
यस्मान्मां सरितां श्रेष्ठे बध्नयित्वा विनिर्गता ।
शोणितं बहू कल्याणि रक्षोभ्रामणिसंयुता ॥ २१
ततः सरस्वती शम्भा विश्वामित्रेण धीमता ।
अग्रहञ्जोणितोन्मिथ्रं तोयं मंत्रसरं तदा ॥ २२
अथर्षयश्च देवाश्च गन्धर्वाप्सरसस्तदा ।
सरस्वतीं तदा दृष्ट्वा बभूवुर्भृशदुःखिताः ॥ २३
तस्मिन्तीर्थवरे पुण्ये शोणितं समुपावहत् ।
ततो भूतपिशाचाश्च राक्षसाश्च समागताः ॥ २४
ततस्ते शोणितं सर्वं पिबन्तः सुखमासते ।
वृश्नाश्च सुमृशं तेन सुखिता विगतज्वराः ।
दूत्यन्तश्च हसन्तश्च यथा स्वर्गजितस्तथा ॥ २५
कस्यचित्त्वथ कालस्य ऋषयः सतपोधनाः ।
तीर्थयात्रां समाजग्धुः सरस्वत्यां तपोधनाः ॥ २६
तां दृष्ट्वा राक्षसैर्घोरैः पीयमानां महानदीम् ।

परित्राणे सरस्वत्याः परं यत्नं प्रचक्रिरे ॥ २७
ते तु सर्वे महाभागाः समागन्व महाप्रताः ।
आहूय सरितां श्रेष्ठामिदं वचनमब्रुवन् ॥ २८
किं कारणं सरिच्छ्रेष्ठे शोणितेन ह्यदो क्षयम् ।
एवमाकुलतां यातः श्रुत्वा वेत्स्यामहे वयम् ॥ २९
ततः सा सर्वमाचष्ट विश्वामित्रविचेष्टितम् ।
सतस्ते ह्यनयः प्रीताः सरस्वत्यां समानयन् ।
अरुणां पुण्यतोयोषां सर्वदुष्कृतनाशनीम् ॥ ३०
दृष्ट्वा तोयं सरस्वत्या राक्षसा दुःखिता मृशम् ।
ऊचुस्तान् सर्वे ह्यनोन् सर्वान् दैन्ययुक्ताः पुनः पुनः ॥ ३१
वयं हि क्षुधिताः सर्वे धर्महीनाश्च शाश्वताः ।
न च नः कामकारोयं यद् वयं पापकारिणः ॥ ३२
युष्माकं चाप्रसादेन दुष्कृतेन च कर्मणा ।
पयोऽयं वर्धतेऽस्माकं घतः स्मो ब्रह्मराक्षसाः ॥ ३३
एवं वैश्याश्च शूद्राश्च क्षत्रियाश्च विकर्मभिः ।

तदनन्तर ऋषिप्रवर ससिष्ठ को (बहाया गया) देवकर
क्रोध से रक्त नेत्रों वाले महातपस्वी विश्वामित्र ने
कहा— (२०)
हे श्रेष्ठनदी ! क्योंकि तुम मुझे बध्निचत कर चली गई हो
अतः हे कल्याणी ! तुम श्रेष्ठ राक्षसों से संयुक्त होकर शोणित
का बहान करो । (२१)
तदनन्तर बुद्धिमान् विश्वामित्र से शाप पाकर सरस्वती
ने एक वर्ष तक रक्त से मिश्रित जल का बहान किया । (२२)
तदुपरान्त सरस्वती को देवकर ऋषि, देवता गन्धव
एवं अप्सरायें अत्यन्त दुःखित हुए । (२३)
उस पवित्र श्रेष्ठ तीर्थ में रथिण बहनें लगा । इससे वहाँ
भूत, पिशाच एकत्रित हो गये । (२४)
वे सभी रक्त का पात्र कपते हुए यहाँ सुखपूर्वक रहने
लगे । इससे अत्यन्त दुःख, सुखी एवं विगतज्वर होकर वे
इस प्रकार नाचने एवं हँसने लगे मानो उन्होंने स्वर्ग को
जीत लिया हो । (२५)
कुछ समय बीतने पर तपोधन ऋषि लोग तीर्थ यात्रा
हैट सरस्वती के तट पर पहुँचे । (२६)
घोर राक्षसों द्वारा पान की जाती हुई महानदी सरस्वती
को देखकर घसकी रक्षा के लिए वे बल्लट यत्न करने

लगे । (२७)
महाभाग एवं महाव्रती वे सभी लोग एक साथ श्रेष्ठ
नदी को बुलाकर यह वचन बोले— (२८)
हे श्रेष्ठनदी ! हम सुनकर जानना चाहते हैं कि यह
हृद क्यों शोणित से पूर्ण है ? (२९)
तदनन्तर उसने विश्वामित्र के समस्त कर्मों का वर्णन
किया । तदुपरान्त प्रसन्न हुये मुनि लोग सरस्वती में पवित्र जल
वाली तथा सर्वपापों की नाशिनी अरुणा नदी को लाये ।
सरस्वती के जल को (इस प्रकार मृश हुआ) देखकर राक्षस
बहुत दुःखित हुए । वे दोगलापूर्वक सभी मुनियों से धार
वार कहने लगे— (३०-३१)
हम सभी निरन्तर क्षुधित एवं धर्महीन रहते हैं । यह
खेच्छा का परिणाम नहीं है कि हम पापकारी बने हुए
हैं, अपितु आप लोगों की अरुणा एवं पापकर्मा से हमारा पक्ष
बढ़ता रहता है क्योंकि हम सभी ब्रह्मराक्षस
हैं । (३२-३३)
इसी प्रकार विद्वत् कर्मों के कारण ब्राह्मणों से द्वेष करने
वाले वैश्य, शूद्र एवं क्षत्रिय भी राक्षस हो जाते

ये ब्राह्मणान् प्रद्विपन्ति ते भवन्तीह राक्षसाः ॥ ३४
 योषितां चैव पापानां योनिदोषेण वर्द्धते ।
 इयं संततिरस्माकं गतिरेषा सनातनी ॥ ३५
 शक्ता भवन्तः सर्वेषां लोकानामपि तारणे ।
 तेषां ते ह्यनयः श्रुत्वा कृपाशीलाः पुनश्च ते ॥ ३६
 ऊचुः परस्परं सर्वे तप्यमानाश्च ते द्वित्राः ।
 धुतक्रीटावपन्नं च यच्चोच्छिष्टाशितं भवेत् ॥ ३७
 केशावपन्नमाधृतं मास्तथासदृषितम् ।
 एभिः संसृष्टमन्नं च भागं वै रक्षसां भवेत् ॥ ३८
 तस्माद्भ्रातृणां सदा विद्वान् अन्यान्येतानि वर्जयेत् ।

राक्षसानामसौ भृङ्क्तेथो भृङ्क्ते अन्नमीदृशम् ॥ ३९
 शोधयित्वा तु तत्तीर्थमृषयस्ते तपोधनाः ।
 मोक्षार्थं रक्षसां तेषां संगमं तत्र कल्पयन् ॥ ४०
 अरुणायाः सरस्वत्याः संगमे लोकविश्रुते ।
 त्रिरात्रोपोषितः स्नातो मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ॥ ४१
 प्राप्ते कलियुगे घोरे अर्धमे प्रत्युपस्थिते ।
 अरुणासंगमे स्नात्वा मुवितमान्नोति मानवः ॥ ४२
 ततस्ते राक्षसाः सर्वे स्नाताः पापविनिर्जिताः ।
 दिव्यमालयाम्बरधराः स्वर्गस्थितिसमन्विताः ॥ ४३

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

हैं। (३४)
 पापयुक्त क्रियों के योनिदोष से हमारी इस सन्तति की
 वृद्धि होती रहती है। यह सनातनी गति है। (३५)
 आप लोग समस्त लोकों के उद्धार करने में समर्थ हैं।
 उनकी बात सुनकर सतप्त हो रहे कृपाशील मुनियों ने परस्पर
 परामर्श कर कहा—छीक तथा कीट के ससर्ग से दूषित,
 उच्छिष्ट भोजन, केशयुक्त, तिरस्कृत एवं श्वासवायु से दूषित
 अन्न राक्षसों का भाग होता है। (३६-३८)
 अतः इस बात को जानकर विद्वान् पुरुष इस प्रकार के अन्न
 को त्याग दे। इस प्रकार का अन्न खाने वाला राक्षसों का

भाग खाता है। (३६)
 उन तपोधन ऋषियों ने उस तीर्थ को शुद्ध कर उन
 राक्षसों की मुक्ति के लिए वहाँ एक सङ्गम की रचना की। (४०)
 अरुणा और सरस्वती के लोक विख्यात सङ्गम में तीन
 रात्रों तक उपवास पूर्वक स्नान करने वाला समस्त पापों से
 मुक्त हो जाता है। (४१)
 घोर कलियुग आने पर तथा अर्धम का प्रसार होने पर
 मनुष्य अरुणा के सङ्गम में स्नान करने पर मुक्ति प्राप्त
 करता है। (४२)
 तदनन्तर वे सभी राक्षस स्नान करने से पाप-रहित
 होकर दिव्य माला तथा वस्त्र धारण कर स्वर्ग में स्थान प्राप्त
 किये। (४३)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में अन्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥१९॥

लोमहर्षण उवाच ।

समुद्रास्त्र चत्वारो दर्विणा आहताः पुरा ।
 श्रत्येकं तु नरः स्नातो गोसहस्रफलं लभेत् ॥ १
 यतिरुचित् क्रियते तस्मिन्स्तपस्तोर्थं द्विजोत्तमाः ।
 परिपूर्णं हि तत्सर्वमपि दुष्कृतकर्मणः ॥ २
 शतसाहस्रिकं तोर्थं तथैव शक्तिं द्विजाः ।
 उभयोर्द्वि नरः स्नातो गोमहस्रफलं लभेत् ॥ ३
 सोमतीर्थं च तत्रापि सरस्वत्यास्तटे स्थितम् ।
 यस्मिन् स्नातस्तु पुरुषो राजसूयफलं लभेत् ॥ ४
 रेणुकाश्रममासाद्य श्रद्धधानो जितेन्द्रियः ।
 मातृभक्त्या च यस्पुण्यं तत्फलं प्राप्नुयान्नरः ॥ ५
 ऋणमोचनमासाद्य तीर्थं ब्रह्मनिषेवितम् ।
 ऋणोद्धृक्तो भवेन्नित्यं देवर्षिपितृसंभवेः ।
 कुमारस्वाभिपेकं च ओजसं नाम विश्रुतम् ॥ ६

लोमहर्षण ने कहा—प्राचीनकाल में दर्वि ऋषि वहाँ चार समुद्रों को ले आये । प्रत्येक में स्नान करने से मनुष्यों को सहस्र गोदान का फल मिलता है । (१)
 हे द्विजोत्तमो ! इस तीर्थ में जो कुछ तप किया जाता है वह पापी द्वारा किये जाने पर भी परिपूर्ण होता है । (२)
 हे द्विजो ! शतसाहस्रिक एव शक्ति नामक दोनों तीर्थों में स्नान करने वाला मनुष्य सहस्र गोदान का फल प्राप्त करता है । (३)
 वहीं सरस्वती के तट पर सोमतीर्थ विद्यमान है जिसमें स्नान करने से पुरुष राजसूय यज्ञ का फल प्राप्त करता है । (४)
 रेणुका तीर्थ में जाकर ब्रह्मालु और जितेन्द्रिय पुरुष मातृभक्ति से होने वाला पुण्य प्राप्त करता है । (५)
 ब्रह्मनिषेवित ऋणमोचन तीर्थ में जाकर मनुष्य देव, ऋषि एवं पितरों से उत्पन्न होने वाले ऋणों से मुक्त हो जाता है । कुमार (कर्तिकेय) के अभिषेकस्थल ओजस नामक प्रसिद्ध तीर्थ में स्नान करने से मनुष्य यशस्वी होता

तरिम्न् भ्नातस्तु पुरुषो यशसा च समन्वितः ।
 कुमारपुरमाणोति कृत्वा श्राद्धं तु मानवः ॥ ७
 चैत्रपञ्चमासते पक्षे यस्तु श्राद्धं करिष्यति ।
 गवाश्राद्धं च यस्पुण्यं तत्पुण्यं प्राप्नुयान्नरः ॥ ८
 संनिहित्यां यथा श्राद्धं राहुग्रस्ते दिवाकरे ।
 तथा श्राद्धं तत्र कृतं नात्र कार्या विचारणा ॥ ९
 ओजसे ह्यक्षयं श्राद्धं वायुना कथितं पुरा ।
 तस्मात् सर्पप्रयत्नेन श्राद्धं तत्र समाचरेत् ॥ १०
 यस्तु स्नानं श्रद्धधानश्चैत्रपञ्चमासं करिष्यति ।
 अक्षय्यमुदकं तस्य पितृणां पृजायते ॥ ११
 तत्र पञ्चवटं नाम तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुतम् ।
 महादेवः स्थितो यत्र योगमूर्तिधरः स्वयम् ॥ १२
 तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च देवदेव महेश्वरम् ।
 गाणपत्यमवाप्नोति देवतैः सह मोदते ॥ १३

२०

है एवं वहाँ श्राद्ध करने से उसे कुमारपुर की प्राप्ति होती है । (६-७)
 चैत्र शुक्ल पक्षी में जो मनुष्य वहाँ श्राद्ध करेगा उसे गया में श्राद्ध करने का फल प्राप्त होगा । (८)
 सूर्य के राहुग्रस्त हो जाने पर अर्थात् सूर्यग्रहण के समय सन्नहिव में किये गये श्राद्ध के सदृश यहाँ का श्राद्ध होता है । इसमें सन्देह नहीं करता चाहिये । (९)
 पूरे समय में वायु ने कहा था कि ओजसतीर्थ में किया गया श्राद्ध अक्षय होता है । अतः प्रयत्नपूर्वक वहाँ श्राद्ध करना चाहिये । (१०)
 चैत्र मास की शुक्ल पक्षी के दिन जो श्रद्धापूर्वक स्नान करेगा उसके पितरों को अक्षय उदक की प्राप्ति होगी । (११)
 वहाँ त्रैलोक्य विश्रुत पञ्चवट नामक तीर्थ है, जहाँ स्वयं योगमूर्ति धारी महादेव विराजमान हैं । (१२)
 वहाँ स्नान तथा देवाधिदेव महेश्वर की पूजा कर मनुष्य गाणपत्य प्राप्त करता है एवं देवताओं के साथ आनन्द करता है । (१३)

कुरुतीर्थं च विरयातं कुरुणा यत्र वै तपः ।
 तमं सुषोरं क्षेत्रस्य कर्षणार्थं द्विजोत्तमाः ॥ १४
 तस्य घोरेण तपसा तुष्ट इन्द्रोऽब्रवीद् वचः ।
 राजपं परितुष्टोऽस्मि तपसाऽनेन सुव्रत ॥ १५
 यज्ञं ये च कुरुक्षेत्रे करिष्यन्ति शतश्रुतोः ।
 ते गमिष्यन्ति सुकृताँल्लोकात् पापविधर्जितान् ॥ १६
 अवहस्य ततः शक्रो जगाम त्रिदिवं प्रभुः ।
 आगम्यागम्य चैवैनं भूयो भूयोऽवहस्य च ॥ १७
 शतक्रतुरनिर्विण्णः पृष्ट्वा पृष्ट्वा जगाम ह ।
 यदा तु तपसोऽग्रेण चर्षणं देहमात्मनः ।
 ततः शक्रोऽब्रवीत् प्रीत्या ब्रूहि यत्ते चिकीर्षितम् ॥ १८
 कुरुत्वा च ।
 ये श्रद्धयान्तास्तीर्थेऽस्मिन् मानवा निवसन्ति ह ।
 ते प्राप्नुवन्तु सदनं ब्रह्मणः परमात्मनः ॥ १९
 अन्यत्र कृतपापा ये पञ्चपातदूषिताः ।
 अस्मिन्तीर्थे नराः स्नात्वा मुक्ता यान्तु परां गतिम् ॥ २०

हे द्विजोत्तमा ! वहाँ प्रसिद्ध कुरुतीर्थ है जहाँ कुरु ने क्षेत्र-कर्षणार्थं घोर तप किया था । (१४)

उनके घोर तप से सन्तुष्ट होकर इन्द्र ने कहा—हे सुन्दर व्रतों वाले राजपि ! तुम्हारे इस तप से मैं सन्तुष्ट हूँ । (१५)

कुरुक्षेत्र में इन्द्र का व्रत करने वाले लोग पाप रहित पुण्य छोकों को जाते हैं । (१६)

तदनन्तर हँसकर इन्द्रदेव स्वर्ग चले गये । खेद रहित शतक्रतु (इन्द्र) पुनः पुनः आकर एवम्पहास पूर्वक पूछ पूछकर चले गये । कुरु ने जब उग्रतप द्वारा अपनी देह का कर्षण किया तो इन्द्र ने प्रेम पूर्वक कहा “आपना जो इच्छित हो उसे कहें ।” (१७ १८)

कुरु ने कहा—इस तीर्थ में निवास करने वाले श्रद्धालु मनुष्य ब्रह्मलोक प्राप्त करें । (१९)

अन्यत्र पाप करने वाले एवं पञ्चपातकों से दूषित मनुष्य इस तीर्थ में स्नान करने से मुक्त होकर परमगति को प्राप्त करें । (२०)

कुरुक्षेत्रे पुण्यतमं कुरुतीर्थं द्विजोत्तमाः ।
 तं पृष्ट्वा पापमुक्तस्तु परं पदमवाप्नुयात् ॥ २१
 कुरुतीर्थे नरः स्नातो मुक्तो भवति किन्त्विषैः ।
 कुरुणा समनुज्ञातः प्राप्नोति परमं पदम् ॥ २२
 स्वर्गद्वारं ततो गच्छेत् शिवद्वारे व्यवस्थितम् ।
 तत्र स्नात्वा शिवद्वारे प्राप्नोति परमं पदम् ॥ २३
 ततो गच्छेदनरकं तीर्थं त्रैलोक्यनिशुभम् ।
 यत्र पूर्वे स्थितो ब्रह्मा दक्षिणे तु महेश्वरः ॥ २४
 रुद्रपत्नी पश्चिमतः पद्मनाभोचरे स्थितः ।
 मध्ये अनरकं तीर्थं त्रैलोक्यस्यापि दुर्लभम् ॥ २५
 यस्मिन् स्नातस्तु मुच्येत पातकैरुपपातकैः ।
 वैशाखे च यदा पृष्ठी मङ्गलस्य दिनं भवेत् ॥ २६
 तदा स्नानं तत्र कृत्वा मुक्तो भवति पातकैः ।
 यः प्रयच्छेत् करकांश्चतुरो भक्ष्यमंयुतात् ॥ २७
 कलशं च तथा दद्यादप्यैः परिशोभितम् ।

हे द्विजोत्तमा ! कुरुक्षेत्र में कुरुतीर्थ अत्यन्त पवित्र है । उसका दर्शन कर पापी मनुष्य परमपद प्राप्त करता है । (२१)

कुरुतीर्थ में स्नान कर मनुष्य सब पापों से छूट जाता है और कुरु की आत्मा से परमपद प्राप्त करता है । (२२)

तदनन्तर शिवद्वार में स्थित स्वर्गद्वार को जाना चाहिये । शिवद्वार में स्नान करने से मनुष्य परमपद को प्राप्त करता है । (२३)

तदुपरान्त त्रैलोक्य प्रसिद्ध अनरक तीर्थ में जाना चाहिये । उसके पूर्व में ब्रह्मा, दक्षिण में महेश्वर, पश्चिम में रुद्रपत्नी एवं उत्तर में पद्मनाभ तथा इनके मध्य में त्रैलोक्य दुर्लभ अनरक तीर्थ स्थित है । (२४ २५)

इसमें स्नान करने वाला पातकों एवं उपपातकों से मुक्त हो जाता है । वैशाख की पृष्ठी तिथि को जब मङ्गलवार हो उस समय स्नान करने से मनुष्य पातकों से मुक्त हो जाता है ।

१. बहल्ल्या, मुरामान, घोरी, गुडनलीमधन और इन पापियों में से कितने के साथ सम्पर्क-ये पाँच महापातक माने गये हैं ।

देवताः प्रीणयेत् पूर्वं करकैरन्नमप्युतैः ॥ २८
ततस्तु कलशं दद्यात् सर्वपातरुनाशनम् ।
अनेनैव विधानेन यस्तु स्नानं समाचरेत् ॥ २९
स मुक्तः कलुषैः सर्वैः प्रयाति परमं पदम् ।
अन्यत्रापि यदा पृष्ठी मङ्गलेन भविष्यति ॥ ३०
तत्रापि मुक्तिरुल्लासा क्रिया तस्मिन् भविष्यति ।
तीर्थं च सर्वतीर्थानां यस्मिन् स्नातो द्विजोत्तमाः ॥ ३१

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये विंशोऽध्यायः ॥२१॥

सर्वदेवैरनुज्ञात. परं पदमवाप्नुयात् ।
काम्यकं च वनं पुण्यं सर्वपातरुनाशनम् ॥ ३२
यस्मिन् प्रविष्टमात्रस्तु ह्यवतो भवति किलिपैः ।
यमाश्रित्य वनं पुण्यं सविता प्रकट. स्थितः ॥ ३३
पूषा नाम द्विजश्रेष्ठा दर्शनान्गुणितमाप्नुयात् ।
आदित्यस्य दिने प्राप्ते तस्मिन् स्नातस्तु मानवः ।
विशुद्धदेहो भवति मनसा चिन्तितं लभेत् ॥ ३४

२१

ऋषय ऊचुः ।

काम्यकस्य तु पूर्वेण कुञ्ज देवैर्निषेधितम् ।
तस्य तीर्थस्य संभूतिं विस्तरेण ब्रवीहि नः ॥ १
लोमहर्षण उवाच ।
भृश्वन्तु मुनयः सर्वे तीर्थमाहात्म्यगुह्यतमम् ।

(उस दिन) भोजन से संयुक्त चार करक (पात्र-
विशेष) एवं अपूर्ण (मालपुत्रा) से युक्त कलश दान करना
चाहिये । प्रथम अन्नसंयुक्त करकों से देवता की पूजा करने
के अनन्तर सर्वपातक नाशक कलश का दान करे ।
इसी विधान से स्नान करने वाला समस्त पापों से मुक्त
होकर परम पद प्राप्त करता है । अन्य समय भी मङ्गल के
दिन पृष्ठी तिथि होने पर उस तीर्थ में पूर्वोक्त क्रिया मुक्ति
फलदायिनी होगी । (२६-३०)

हे द्विजोत्तमो ! सभी तीर्थों के तीर्थभूत जिस तीर्थ में

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में बौद्धों मध्याय समाप्त ॥२१॥

२१

ऋषियों ने कहा—आप हम लोगों से काम्यक के पूर्व
में देवों से निषेधित कुञ्जतीर्थ की उपपत्ति का वर्णन विस्तार
पूर्वक करें । (१)
लोमहर्षण ने कहा—हे मुनियों ! आप सभी तीर्थ के
उत्तम माहात्म्य को सुनें । ऋषियों का चरित्र सुनकर मनुष्य

श्रुतीपात्रा चरितं श्रुत्वा ह्यवतो भवति किलिपैः ॥ २
नैमिषेयाश्च ऋषयः कुक्षेत्रे समागताः ।
सरस्वत्यास्तु स्नानार्थं प्रवेशं ते न लेभिरे ॥ ३
ततन्ते कल्पयामासुस्तीर्थं यज्ञोपनीतिरुम् ।
शेषास्तु मुनयस्तत्र न प्रवेशं हि लेभिरे ॥ ४

स्नान करने से सर्वदेवों से अनुज्ञात होकर मनुष्य परम पद
प्राप्त करता है उसे सर्वपाप नाशक काम्यकवन (कहा
जाता है) । (३१-३२)

इतने प्रवेश करने से ही मनुष्य समस्त पापों से मुक्त
हो जाता है । इस पवित्र वन का आश्रय ग्रहण कर पूषा
नामक सविष्टदेव प्रकट रूप से स्थित हैं । (३३)
हे द्विजश्रेष्ठो ! उनके दर्शन से मुक्ति प्राप्त होती है ।
रविवार के दिन उस तीर्थ में स्नान करने वाला मनुष्य विशुद्ध
देहवाला हो जाता है और अभीष्ट को प्राप्त करता है । (३४)

पाप से मुक्त हो जाता है । (२)
नैमिषारण्य के श्रुति कुक्षेत्र में सरस्वती में स्नान करने
आये । परन्तु वे प्रवेश न कर पाये । (३)
तदनन्तर उन्होंने यज्ञोपवीतिक नामक तीर्थ की रचना
की । शेष मुनिलोग उसमें भी प्रवेश न कर पाये । (४)

रन्तुकस्याश्रमात्तावद् यावत्तीर्थं सचक्रकम् ।
 ब्राह्मणैः परिपूर्णं तु दृष्ट्वा देवी सरस्वती ॥ ५
 हितार्थं सर्वविप्राणां कृत्वा कुञ्जानि सा नदी ।
 प्रयाता पश्चिमं मार्गं सर्वभूतहिते स्थिता ॥ ६
 पूर्वप्रवाहे यः स्नाति गङ्गास्नानफल लभेत् ।
 प्रवाहे दक्षिणे तस्या नर्मदा सरितां वरा ॥ ७
 पश्चिमे तु दिशाभागे यमुना संथिता नदी ।
 यदा उत्तरतो याति सिन्धुर्भवति सा नदी ॥ ८
 एवं दिशाप्रवाहेण याति पुण्या सरस्वती ।
 तस्यां स्नातः सर्वतीर्थं स्नातो भवति मानवः ॥ ९
 ततो गच्छेद् द्विजश्रेष्ठा मदनस्य महात्मनः ।
 तीर्थं त्रैलोक्यविख्यातं विहारं नाम नामतः ॥ १०
 यत्र देवाः समागम्य शिवदर्शनकाङ्क्षिणः ।
 समागता न चापश्यन् देवं देव्या समन्वितम् ॥ ११
 ते स्तुवन्तो महादेवं नन्दिनं गगनायकम् ।
 ततः प्रसन्नो नन्दीशः कथयामास चैष्टितम् ॥ १२

रन्तुक के आश्रम से सचक्रक तीर्थ तक (समस्त स्थल को) ब्राह्मणों से परिपूर्ण देखकर देवी सरस्वती ने सभी विप्रों के हितार्थं कुञ्जों की सृष्टि की एवं तदनन्तर सर्वभूतों के हित में रह वह नदी पश्चिम की ओर चली गई। (५-६)
 उसके पूर्व प्रवाह में स्नान करने वालों को गङ्गा स्नान का फल प्राप्त होता है। उसके दक्षिण प्रवाह में सरित्वरा नर्मदा एवं पश्चिम दिशा की ओर यमुना नदी आश्रित है तथा जब उत्तर की ओर वह नदी जाती है तो सिन्धु होती है। (७-८)

इस प्रकार विभिन्न दिशाओं में पवित्र सरस्वती नदी प्रशंसित होती है। उसमें स्नान करने वाला मनुष्य सभी तीर्थों में स्नान कर लेता है। (९)

हे द्विजश्रेष्ठे ! तदनन्तर महात्मा मदन के विहार नामक त्रैलोक्य विख्यात तीर्थ में जाना चाहिये। (१०)

जहाँ शिवदर्शनाभिलाषी देवता सामूहिक रूप से आये किन्तु वे देवीसंयुक्त देव का दर्शन न कर पाये। (११)

वे लोग गगनायक महादेव नन्दी की स्तुति करने लगे। इससे प्रसन्न होकर नन्दीश ने (उन लोगों से) विहार में उमा के साथ की जा रही शिव की श्रीडा का वर्णन किया।

भवस्य उमया सार्धं विहारे क्रीडितं महत् ।
 तच्छ्रुत्वा देवतास्त्र पत्नीराहूय क्रीडिताः ॥ १३
 तेषां क्रीडाविनोदेन तुष्टः प्रोवाच शंकरः ।
 योऽस्मिंस्तीर्थे नरः स्नाति विहारे श्रद्धयाऽन्वितः ॥ १४
 धनधान्यप्रियैर्युक्तो भवते नात्र संसयः ।
 दुर्गातीर्थं ततो गच्छेद् दुर्गया सेवितं महत् ॥ १५
 यत्र स्नात्वा पितृन् पूज्य न दुर्गतिमवाप्नुयात् ।
 तथापि च सरस्वत्याः कूपं त्रैलोक्यविशुद्धम् ॥ १६
 दर्शनान्मुक्तिमान्नोति सर्वपातकवर्जितः ।
 यस्त्र तपयेद् देवान् पितृंश्च श्रद्धयान्वितः ॥ १७
 अक्षय्यं लभते सर्वं पितृतीर्थं विशिष्यते ।
 मातृहा पितृहा यश्च ब्रह्महा गुरुत्वपगः ॥ १८
 स्नात्वा शुद्धिमवाप्नोति यत्र प्राची सरस्वती ।
 देवमार्गप्रविष्टा च देवमार्गेण निःसृता ॥ १९
 प्राची सरस्वती पुण्या अपि दुष्कृतकर्मणाम् ।
 त्रिरात्रं ये करिष्यन्ति प्राचीं प्राप्य सरस्वतीम् ॥ २०

यह सुनकर देवताओं ने भी अपनी पत्तियों को बुलाकर क्रीडा की। (१२-१३)

उनके क्रीडा विनोद से प्रसन्न शंकर ने कहा—इस विहार तीर्थ में जो श्रद्धापूर्वक स्नान करेगा वह निरसदेह धन-धान्य एवं प्रिय से युक्त होगा। तदनन्तर दुर्गासेवित महान् दुर्गातीर्थ में जाना चाहिए। (१४-१५)

वहाँ स्नान कर पितरों की पूजा करने से मनुष्य की दुर्गति नहीं होती। वहाँ सरस्वती का त्रैलोक्य-विख्यात कूप है। (१६)

उसके दर्शन से ही मनुष्य सर्वपाप-रहित होकर मुक्ति प्राप्त करता है। वहाँ श्रद्धा से देवता और पितरों का तर्पण करने वाला व्यक्ति समस्त अक्षय (पदार्थों) को प्राप्त करता है। पितृतीर्थ विशेष (महत्त्वपूर्ण) है। माता, पिता और ब्राह्मण का घातक तथा गुरुपत्नी गमन करने वाला उस तीर्थ में स्नान करने से शुद्ध हो जाता है। वहाँ प्राचीप्रवाहिनी सरस्वती देव-मार्ग से प्रविष्ट होकर देवमार्ग से निःसृत हुई हैं। (१७-१९)

प्राची सरस्वती पापात्माओं के लिए भी पुण्यदायिनी हैं। प्राची सरस्वती के निकट जाकर जो त्रिरात्र व्रत करता है उसकी देह में, कोई दुष्कृत नहीं रह जाता। नर और

न तेषां दृष्टुं किंचिद् देहमाश्रित्य निवृत्ति ।
 नरनारायणौ देवौ ब्रह्मा शशुम्भया रविः ॥ २१
 प्राचीं दिशं निषेवन्ते नदा रेवा. मयानयाः ।
 ये तु श्राद्धं करिष्यन्ति प्राचीमाश्रित्य मानयाः ॥ २०
 तेषां न दुर्लभं किंचिदिह लोके परत्र च ।
 तस्मान् प्राचीं नदा सेव्या पश्चम्यां च विशेषतः ॥ २३
 पश्चम्यां सेवमानस्तु लक्ष्मीयान् ज्ञायते नरः ।
 तत्र तीर्थमौशनं ब्रह्मलोकस्यापि दुर्लभम् ॥ २४
 उद्यता यत्र संनिद्ध आराध्य परमेश्वरम् ।
 ब्रह्मण्येषु पूजयते तस्य तीर्थस्य सेवनात् ॥ २५

एवं शुक्रेण मुनिना सेवितं तीर्थमुत्तमम् ।
 ये सेवन्ते श्राद्धानाले यान्ति परमां गतिम् ॥ २६
 यस्तु श्राद्धं नरो मकत्या तस्मिन्तोषे करिष्यति ।
 पितरन्वारितान्मेन भविष्यन्ति न संशयः ॥ २७
 चतुर्भुजां ब्रह्मतीर्थं नरो मयादया म्वितम् ।
 ये सेवन्ते चतुर्दश्यां मोक्षमा वसन्ति च ॥ २८
 अष्टम्यां कृष्णपद्मस्य ध्ये मासि द्वित्रोत्तमाः ।
 ते पश्यन्ति परं मूर्ध्मं यस्मात्पारर्तते पुनः ॥ २९
 म्याशुवीर्यं तयो गच्छेत् महसन्निसोमितम् ।
 तत्र शशुवटं दृष्ट्वा मुक्तो भवति किल्बिषः ॥ ३०

इति श्रीयामनपुराणे मत्स्यब्राह्मणे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२॥

शृण्वन्तु ह्यनयः सर्वे पुराणं वामनं महत् ।
 यच्छ्रुत्वा मुक्तिमाप्नोति प्रसादाद् वामनस्य तु ॥ ३
 सनत्कुमारमासीनं स्थाणोर्वटसमीपतः ।
 ऋषिभिर्बालखिल्याद्यैर्ब्रह्मपुत्रैर्भहात्मभिः ॥ ४
 मार्कण्डेयो मुनिस्तत्र विनयेनाभिगम्य च ।
 पप्रच्छ सरमाहात्म्यं प्रमाणं च स्थितिं तथा ॥ ५

मार्कण्डेय उवाच ।

ब्रह्मपुत्र महाभाग सर्वशास्त्रविशारद ।
 ब्रूहि मे सरमाहात्म्यं सर्वपापक्षयवाहम् ॥ ६
 कानि तीर्थानि दृश्यानि गुह्यानि द्विजमत्तम ।
 लिङ्गानि ह्यतिपुण्यानि स्थाणोर्यानि समीपतः ॥ ७
 येषां दर्शनमात्रेण मुक्तिं प्राप्नोति मानवः ।
 वटस्य दर्शनं पुण्यमुत्पत्तिं कथयस्व मे ॥ ८
 प्रदक्षिणायां यत्पुण्यं तीर्थस्नानेन यत्फलम् ।
 गुह्येषु चैव दृष्टेषु यत्पुण्यमभिजायते ॥ ९
 देवदेवो यथा स्थाणुः सरोमच्ये व्यवस्थितः ।

लोमहर्षण ने कहा— हे समस्त मुनियो ! आप लोग
 महान् वामनपुराण को सुनें जिसे सुनकर मनुष्य वामन की
 कृपा से मुक्ति को प्राप्त करता है । (३)

ब्रह्माके पुत्र महात्मा बालखिल्यादि ऋषियों के साथ
 सनत्कुमार स्थाणु वट के पास बैठे हुए थे । (४)

महर्षि मार्कण्डेय ने उनके पास तद्व्रतापूर्वक जाकर
 सरोवर के माहात्म्य, उसके विस्तार और स्थिति के विषय में
 पूछा । (५)

मार्कण्डेय ने कहा— हे सर्वशास्त्र में कुशल महात्मा
 ब्रह्मपुत्र (सनत्कुमार) ! आप मुझसे सरोवर के सर्वपाप-
 नाशक माहात्म्य को कहिए । (६)

हे द्विजश्रेष्ठ ! स्थाणु के पास कौन-कौन तीर्थ दृश्य तथा
 कौन कौन अदृश्य हैं तथा कौन से अत्यन्त पवित्र लिङ्ग हैं ।
 जिनका दर्शन कर मनुष्य मुक्ति पाता है । वट के दर्शन का
 पुण्य तथा उत्पत्ति भी बताइये । (७-८)

इनकी प्रदक्षिणा से होने वाले पुण्य, तीर्थस्नान का
 फल एवं अदृश्य और दृश्य (तीर्थों) का पुण्य,
 किस प्रकार सरोवर के मध्य में देवाधिदेव स्थाणु स्थित

किमर्थं पांशुना शक्रस्तीर्थं पूरितवान् पुनः ॥ १०
 स्थाणुवीर्यस्य माहात्म्यं चक्रतीर्थस्य यत्फलम् ।
 सूर्यतीर्थस्य माहात्म्यं सोमतीर्थस्य ब्रूहि मे ॥ ११
 शंकरस्य च गुह्यानि विष्णोः स्वानानि यानि च ।
 कथयस्व महाभाग सरस्वत्याः सविस्तरम् ॥ १२
 ब्रूहि देवाधिदेवस्य माहात्म्यं देव तत्त्वतः ।
 विरिञ्चस्य प्रमादेन विदितं सर्वमेव च ॥ १३

लोमहर्षण उवाच ।

मार्कण्डेयवचः श्रुत्वा ब्रह्मात्मा स महासुनिः ।
 अतिभक्त्या तु तीर्थस्य प्रवणीकृतमानसः ॥ १४
 पर्वङ्कं शिपिलीकृत्वा नमस्कृत्वा महेश्वरम् ।
 कथयामास तत्सर्वं यच्छ्रुतं ब्रह्मणः पुरा ॥ १५

सनत्कुमार उवाच ।

नमस्कृत्य महादेवमीशानं वरदं शिवम् ।
 उत्पत्तिं च प्रवक्ष्यामि तीर्थानां ब्रह्मभाषिताम् ॥ १६
 पूर्वमेकार्णवं घोरे नष्टे स्यावरजङ्गमे ।

हूए, किस कारण से इन्द्र ने तीर्थ को पुन घूलि से भर
 दिया, स्थाणुतीर्थ के माहात्म्य, चक्रतीर्थ के फल, एवं सूर्य-
 तीर्थ तथा सोमतीर्थ के माहात्म्य-इन सबको आप मुझसे
 बताइये । (६-११)

हे महाभाग ! सरस्वती के समीप शंकर तथा विष्णु के
 गुह्य स्थानों को आप विस्तार से कहिए । (१२)

हे देव ! देवाधिदेव के माहात्म्य को आप यथार्थ रूप
 से बतायें क्योंकि ब्रह्मा की कृपा से आप को सब गुह्य
 ज्ञात है । (१३)

लोमहर्षण ने कहा— मार्कण्डेय वा वचन सुनकर
 ब्रह्मस्वरूप महामुनि का मन तीर्थ की अति भक्ति से आपूरित
 हो गया । (१४)

आसन को शिथिल करने के उपरान्त शंकर को प्रणाम
 कर उन्होंने प्राचीन काल में ब्रह्मा से सुनी हुई सभी बातों
 का वर्णन किया । (१५)

सनत्कुमार ने कहा—मंगल कारक, वरदावा महादेव,
 ईशान को प्रणाम कर मैं ब्रह्मा से कथित तीर्थों की उत्पत्ति
 को कहूँगा । (१६)

वृहदण्डमभूदेकं प्रजानां वीजसंभवम् ॥ १७
 तस्मिन्नण्डे स्थितौ ब्रह्मा शयनाद्योपपन्नम् ।
 सहस्रयुगपर्यन्तं सुप्त्या स प्रत्यनुष्यत ॥ १८
 सुप्तोत्थितस्तदा ब्रह्मा शून्यं लोरुपपश्यत ।
 सृष्टिं चिन्तयतस्तस्य रजसा मोहितस्य च ॥ १९
 रजः सृष्टिगुणं प्रोक्तं सत्त्वं स्थितिगुणं विदुः ।
 उपसंहारकाले च तमोगुणः प्रवर्तते ॥ २०
 गुणातीतः स भगवान् व्यापकः पुरुषः स्मृतः ।
 तेनेदं सकलं व्याप्य यदिकचिज्जीवसञ्चितम् ॥ २१
 स ब्रह्मा स च गोविन्द ईश्वरः स सनातनः ।
 यस्तं वेद महात्मानं स सर्वं वेद मोक्षवित् ॥ २२
 किं तेषां मरुहैस्तीर्थैराश्रमैर्वा प्रयोजनम् ।
 येषामनन्तकं चित्तमातन्व्येव व्यवस्थितम् ॥ २३
 आत्मा नदी संयमपुण्यतीर्था
 सत्योदका शूलसमाधियुक्ता ।
 तस्यां स्नातः पुण्यकर्मा पुनाति

पूर्व समय में घोर एकाग्रता में समस्त स्थानर जन्म के विनष्ट हो जाने पर प्रजाओं के बीजस्वरूप एक बृहद् अण्ड की उत्पत्ति हुई । (१७)
 इस अण्ड में स्थित ब्रह्मा ने शयन का उपक्रम किया । सहस्र युग पर्यन्त शयन करने के उपरान्त वे जगे । (१८)
 सोकर उठे हुए ब्रह्मा ने लोक की शून्य देखा । तदनन्तर रजोगुण से मोहित होकर ये सृष्टि की चिन्ता करने लगे । (१९)
 रजोगुण सृष्टिसारक एव सत्त्वगुण स्थितिसारक माना गया है । संहार के समय तमोगुण की प्रवृत्ति होती है । (२०)
 (वस्तुतः) वे भगवान् गुणातीत तथा व्यापक हैं । उन्हें ही पुरुष कहा जाता है । जीव नामक समस्त पदार्थ उन्हें ही व्याप्त हैं । (२१)
 वे ही ब्रह्मा, विष्णु और सनातन महेश्वर हैं । उन महात्मा को जानने वाला सर्वेश एव मोक्षवित् होता है । (२२)
 जिनका अनन्त चित्त आत्मा में ही व्यवस्थित है उनके लिए समस्त तीर्थों एवं आश्रमों से क्या प्रयोजन ? (२३)

न वारिणा शुद्धयति चान्तरात्मा ॥ २४
 एतत्प्रधानं पुरुषस्य कर्म
 यदात्मसंरोधमुत्थे प्रविष्टम् ।
 क्षेत्रं तदेष प्रवदन्ति सन्त-
 स्तत्प्राप्य देही विजहाति कामान् ॥ २५
 नैतादृशं ब्राह्मणस्यास्ति विघ्नं
 यथैकता समता सत्यता च ।
 शीले स्थितिर्दण्डविधानवर्जन-
 मक्रोधनशोपरमः क्रियाभ्यः ॥ २६
 एतद् ब्रह्म समासेन मयोक्तं ते द्विजोत्तम ।
 यज्ज्ञात्वा ब्रह्म परमं प्राप्स्यसि त्वं न सद्यः ॥ २७
 इदानीं शृणु चोत्पत्तिं ब्रह्मणः परमात्मनः ।
 इमं चोदाहरन्त्येन श्लोकं नारायणं प्रति ॥ २८
 आपो नारा वै तनव इत्येवं नाम शुद्धमः ।
 तासु शैते स यस्माच्च तेन नारायणः स्मृतः ॥ २९

शील-समाधियुक्त आत्मारूपी नदी समय रूपी पवित्र तीर्थों वाली एव सत्त्व रूपी उदक से पूर्ण है । इसमें स्नान करने वाला पुण्यात्मा पवित्र हो जाता है । अन्तरात्मा की शुद्धि जल से नहीं होती । (२४)
 आत्मज्ञान रूपी सुप्त में प्रवेश करना ही पुरुष का प्रधान कर्तव्य है । सन्त लोग वसी की होच बढ़ते हैं । उसको पाकर शरीरधारी सम्पूर्ण कामनाओं को छोड़ देता है । (२५)
 एकता, समता, सत्यता, शील में स्थिति, दण्ड विधान का त्याग, अक्रोध एव क्रियाओं से उपरम के सदृश ब्राह्मण के लिए कोई अन्य धन नहीं है । (२६)
 है द्विजोत्तम ! मैंने सत्येय में तुमसे यह ज्ञान कहा है इसे जानकर तुम निस्सन्देह परम ब्रह्म को प्राप्त करोगे । (२७)
 अब तुम परमात्मा ब्रह्म की उत्पत्ति सुनो । उस नारायण के विषय में लोग यह श्लोक उदाहृत करते हैं— (२८)
 'आप' अर्थात् जल ही को 'नार' (एवं परमात्मा की) 'तनु' कहा जाता है । वे उसमें शयन करते हैं अतः उन्हें 'नारायण' कहा जाता है । (२९)

विबुद्धः सलिले तस्मिन् विज्ञायान्तर्गतं जगत् ।
 अण्डं चिमेद भगवांस्तस्मादोमित्यजायत ॥ ३०
 ततो भूरभवत् तस्माद् भुव इत्यपरः स्मृतः ।
 स्वः स्रग्दध तृतीयोऽभूद् भूर्भुवः, स्वेति सञ्जितः ॥ ३१
 तस्मात्तेजः समभवत् तत्सन्निवृत्तं रेण्यं यत् ।
 उदकं शोपयामास यत्तेजोऽण्डविनिःसृतम् ॥ ३२
 तेजसा शोपितं शेषं कललत्यष्टपागतम् ।
 कललाद् बुद्बुदं त्रेयं ततः काठिन्यतां गतम् ॥ ३३
 काठिन्याद् धरणी त्रेया भूतानां धारिणी हि सा ।
 यस्मिन् स्थाने स्थितं दण्डं तस्मिन् संनिहितं सरः ॥ ३४
 यदाद्यं निःसृतं तेजस्तस्मादादित्य उच्यते ।
 अण्डमध्ये समुत्पन्नो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ ३५
 उत्वं तस्याभवन्मेरुर्जरायुः पर्वताः स्मृताः ।
 गर्भोदकं समुद्राश्च तथा नद्यः सहस्रशः ॥ ३६

जाग्रत होने के उपरान्त उस जल में जगन्को अन्तर्गत हुआ जानकर भगवान् ने अण्ड का भेदन किया । उससे 'ओम्' इस शब्द की उत्पत्ति हुई । (३०)

तदनन्तर उससे (प्रथम) भू, द्वितीय भुव एवं तृतीय स्व की उत्पत्ति हुई । इनका 'भूर्भुव स्व' वह नाम हुआ । (३१)

उससे उस सचिता देवता का वरेण्य तेज उत्पन्न हुआ । अण्ड विनिःसृत उस तेज ने जल को सुखाया । (३२)

तेज से जलके शोपित होने पर शेष कलल के रूप में परिवर्तित हुआ । कलल से बुद्बुद हुआ और तदनन्तर वह काठिन हो गया । (३३)

काठिन्य से भूतों का धारण करने वाली धरणी उत्पन्न हुई । जिस स्थान पर अण्ड स्थित था वहीं संनिहित सरोवर है । (३४)

तेज के आदि में उत्पन्न होने से उसे 'आदित्य' कहा जाता है । अण्ड के मध्य में लोकपितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुए । (३५)

उस अण्ड का उत्त्व (गर्भवेदन) मेरु पर्वत है एवं अन्य पर्वत उसके जरायु माने जाते हैं । समुद्र एवं सहस्रों

नाभिस्रयाने यदुदकं प्रद्वणो निर्मलं महत् ।
 महत्तरस्तेन पूर्णं विमलेन वराम्भसा ॥ ३७
 तस्मिन् मध्ये स्थाणुरूपो बटवृक्षो महामनः ।
 तस्माद् विनिर्गता वर्णा ब्राह्मणाः क्षत्रिया विश्वः ॥ ३८
 शूद्राश्च तस्मादुत्पन्नाः शुश्रूपायं द्विजन्मनाम् ।
 ततश्चिन्तयतः सृष्टिं ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः ।
 मनसा मानसा जाताः सनकाद्या महर्षयः ॥ ३९
 पुनश्चिन्तयतश्च प्रजाकामस्य धीमतः ।
 उत्पन्ना ऋषयः सप्त ते प्रजापतयोऽभवन् ॥ ४०
 पुनश्चिन्तयतश्च रजसा मोहितस्य च ।
 चालरित्याः समुत्पन्नास्तपस्वाध्यायतत्पराः ॥ ४१
 ते सदा स्नाननिरता देवार्चनपरायणाः ।
 उपवासैर्त्रैतैस्त्रीः शोपयन्ति कनेवरम् ॥ ४२
 वानप्रस्थेन विधिना अग्निहोत्रसमन्विताः ।
 तपसा परमेणोह शोपयन्ति कनेवरम् ॥ ४३

नदियाँ गर्भोदक हैं । ब्रह्मा के नाभिनयान में जो महान् निर्मल जल है उस रचक श्रेष्ठ जल से महान् सरोवर परिपूर्ण है । (३६-३७)

उसके मध्य में स्थाणु स्वरूप महा मनस्वी बटवृक्ष है । उससे ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य ये वर्ण निकले एवं द्विजों की शुश्रूपा हेतु उससे शूद्रों की उत्पत्ति हुई । तदनन्तर सृष्टि की चिन्ता कर रहे अव्यक्तजन्मा ब्रह्मा के मन से सनकादि महर्षियों की उत्पत्ति हुई । (३८-३९)

पुनः प्रजा की कामना से चिन्ता कर रहे धीमान् ब्रह्मा से सात ऋषि उत्पन्न हुए । वे प्रजापति हुए । (४०)

रजोगुण से मोहित ब्रह्मा ने जब पुनः चिन्ता की तो तपः स्वाध्याय परायण बालरित्यों की उत्पत्ति हुई । (४१)

वे सदा स्नाननिरत, देवपूजा परायण रहते तथा उपवासों एवं तीव्र व्रतों से अपने शरीर को शोपित करते हैं । (४२)

अग्निहोत्र से युक्त होकर वानप्रस्थ विधि से परम तपः द्वारा वे शरीर को शोपित करते हैं । (४३)

दिव्य वर्षसहस्रं ते कृशा धमनिसंतता ।
 आराधयन्ति देवेशं न च तुष्यति शंकरः ॥ ४४
 ततः कालेन महता उभया सह शंकरः ।
 आकाशमार्गेण तदा दृष्ट्वा देवीं सुदुःखिता ॥ ४५
 प्रसाद्य देवदेवेशं शंकरं प्राह मुजता ।
 क्लिश्यन्ते ते मृनिगणा देवदारवनाश्रयाः ॥ ४६
 तेषां क्लेशक्षय देव विधेहि हुरु मे दयाम् ।
 किं वेदधर्मनिष्ठानामनन्त दय दुष्कृतम् ॥ ४७
 नाद्यापि येन शुद्धयन्ति शुष्कस्नाप्यस्थिशोपिताः ।
 तच्छ्रुत्वा वचनं देव्याः पिनाकी पातितान्धकः ।
 प्रोवाच प्रहसन् मूर्ध्नि चारुचन्द्रांशुशोभितः ॥ ४८
 श्रीमहादेव उवाच ।
 न वेत्सि देवि तत्त्वेन धर्मस्य गहना गतिः ।
 नैते धर्मं विजानन्ति न च कामधियाजिताः ॥ ४९
 न च क्रोधेन निर्मुक्ताः केवलं मूढबुद्धयः ।
 एतच्छ्रुत्वाऽप्रवीद् देवी मा मेवं शसितत्रतान् ॥ ५०

अत्यन्त दुर्बल एव धमनिमात्रावशेषोपर होकर वे लोग सहस्र दिव्य वर्षों तक देवेश की आराधना करते रहे किन्तु शंकर प्रसन्न नहीं हुए । (४४)

तदनन्तर चिरकाल के पश्चात् आकाश मार्ग से उभा सहित शंकर भ्रमण कर रहे थे । उस समय (बालखिलियों को) देख कर सुन्दर प्रतीत वाली देवी ने दुःखी होकर देवदेवेश शंकर को प्रसन्न कर वहाँ—देवदारवचन में रहने वाले वे मुनिगण क्लेशित हो रहे हैं । हे देव ! मुझ पर दया कर आप उनके क्लेश को दूर करें । हे देव ! क्या इन वेद धर्मनिष्ठों का दुष्कृत अनन्त है जिससे स्नायु एव अस्थि मात्र अवशिष्ट होने पर भी ये आज तक शुद्ध नहीं हुए । देवी के वचन को सुनकर चार चन्द्राणु से शोभित अन्धक के शत्रु शंकर ने हँसते हुए कहा । (४५-४८)

श्रीमहादेव ने कहा—हे देवि ! धर्म की गति गहन होती है । तुम उसे यथार्थ रूप में नहीं जानती । ये लोग न तो धर्म को जानते हैं और न कामरहित ही हैं । (४९)

क्रोध से भी वे मुक्त नहीं हैं । ये केवल मूढबुद्धि हैं । यह मुन कर देवी ने कहा—प्रशस्त धत वाली के लिये ऐसा न कदिए । हे देव ! आप अपने स्वरूप को प्रकट करें । मुझे बहुत

देव प्रदर्शयात्मानं परं कौतूहलं हि मे ।
 स इत्युक्त उवाचेदं देवीं देवः स्मिताननः ॥ ५१
 तिष्ठ त्वमत्र यास्यामि यत्रैते मृनिपुंगवाः ।
 साधयन्ति तपो घोरं दर्शयिष्यामि चेष्टितम् ॥ ५२
 इत्युक्त्वा तु ततो देवी शंकरेण महात्मना ।
 गच्छस्वेत्याह मृदिता भर्तारं हृयनेश्वरम् ॥ ५३
 यत्र ते मृनयः सर्वे काष्ठलोष्ठसमाः स्थिताः ।
 अधीयाना महाभागाः कृताग्निमदनक्रियाः ॥ ५४
 तान् विलोक्य ततो देवो नग्नः सर्वाङ्गसुन्दरः ।
 वनमालाकृतापीडो युवा भिक्षाकपालभृत् ॥ ५५
 आश्रमे पर्यटन् भिक्षा मृनीनां दर्शनं प्रति ।
 देहि भिक्षा ततश्चोक्तवा ह्याश्रमादाश्रमं यवौ ॥ ५६
 त विलोक्याश्रमगतो योपितो ब्रह्मवादिनाम् ।
 सकौतुकस्वभावेन तस्य रूपेण मोहिताः ॥ ५७
 प्रोचुः परस्परं नार्य एहि पश्याम भिक्षुकम् ।
 परस्परमिति चोक्त्वा गृह्य मूलफलं बहु ॥ ५८

कौतूहल हो रहा है । ऐसा कहने पर शंकर ने हँसकर देवी से इस प्रकार कहा— (५०-५१)

तुम यहाँ रुको । ये मुनिगण जहाँ घोर तप कर रहे हैं वहाँ जाकर मैं कर्म दिखलाता हूँ । (५२)

महात्मा शंकर के ऐसा कहने पर प्रसन्न देवी ने (अपने) पति भुवनेश्वर से कहा—आप वहाँ जाँय जहाँ अग्निहोत्र परायण, अध्ययनशील एव काष्ठ तथा लोष्ठ सदृश वे मुनिगण स्थित हैं । (५३-५४)

तदनन्तर उन्हें देखकर देव शंकर वनमालाधारी, भिक्षा कपाल को धारण किये, सर्वाङ्ग-सुन्दर नग्न युवा के रूप में मुनिगणों के समक्ष भिक्षाहेतु पर्यटन करते हुए 'भिक्षा दो' यह कह कर एक आश्रम से दूसरे आश्रम में जाने लगे । (५५-५६)

आश्रम में पर्यटन कर रहे उनको देखकर ब्रह्मवादियों की स्त्रियों ने कौतुकपूर्ण स्वभावशः उनके रूप से मोहित होकर एक दूसरे से कहा—आओ भिक्षुक को देखें ।

परस्पर ऐसा कहने के उपरान्त पर्याप्त मूलफल लेकर मुनि पतिगणों ने उन देव से कहा 'भिक्षा लो !' उन्होंने भी

शृहाण भिक्षामृचुस्तास्तं देवं मुनियोषितः ।
 स तु भिक्षाकपालं तं प्रसार्य बहु सादरम् ॥ ५९
 देहि देहि शिवं वोऽस्तु भवतीभ्यस्तपोवने ।
 हसमानस्तु देवेशस्तत्र देव्या निरीक्षितः ।
 तस्मै दत्त्वैव तां भिक्षां पप्रच्छुस्तं स्मरातुराः ॥ ६०
 नार्य ऊचुः ।
 कोऽसौ नाम व्रतविधिस्त्वया तापस सेव्यते ।
 यत्र नग्नेन लिङ्गेन वनमालाविभूषितः ।
 भवान् वै तापसो ह्यो हृषाः स्मो यदि मन्यसे ॥ ६१
 इत्युक्तस्तापसीभिस्तु प्रोवाच हसिताननः ।
 इदमीदम् व्रतं किञ्चिन्न रहस्यं प्रकाशयते ॥ ६२
 शृण्वन्ति बहवो यत्र तत्र व्याख्या न विद्यते ।
 अत्य व्रतस्य सुभगा इति मत्वा गमिष्यथ ॥ ६३
 एवमुक्त्वास्तदा तेन ताः प्रत्यूचुस्तदा मुनिम् ।
 रहस्ये हि गमिष्यामो मुने नः कौतुकं महत् ॥ ६४
 इत्युक्त्वा तास्तदा तं वै जगृहः पाणिपल्लवैः ।

अत्यन्त आदर पूर्वक उस भिक्षा-कपाल को फैला कर
 कहा—

(५७-५९)

हे तपोवनवासिनियो! “दो दो! आप सभी का कल्याण
 हो।” वहाँ हँस रहे देवेश को पार्वती देख रही थीं। उन्हें
 भिक्षा देकर कामातुर मुनि पत्नियों ने उनसे पूछा। (६०)

स्त्रियों ने कहा—हे तापस! हम किस व्रतविधि का पालन कर
 रहे हो जिससे वनमाला विभूषित सुन्दर स्वरूपधारी आपको
 नग्नलिङ्ग विशिष्ट तापस बनाए पड़ा है। यदि आप चाहे
 तो हम आप की प्रिया हो सकती हैं। (६१)

तपस्त्रिणियों के ऐसा कहने पर हँसते हुए (शङ्कर ने)
 कहा—यह व्रत इस प्रकार का है जिसका कुछ भी रहस्य
 प्रकाशित नहीं किया जा सकता। (६२)

हे सौभाग्यशालिनियो! जहाँ बहुत मुनने वाले हैं
 वहाँ इस व्रत की व्याख्या नहीं की जा सकती। यह जानकर
 आप सभी चली जाँय। (६३)

उनके ऐसा बहने पर उन्होंने मुनि से कहा—हे
 मुनि! हम एकान्त में चलेगी (क्योंकि) हमें महान् कुतुहल
 हो रहा है। (६४)

काचित् कण्ठे सकन्दर्पा बाहुभ्यामपरास्तथा ॥ ६५
 जानुभ्यामपरा नार्यः केशेषु ललितापराः ।
 अपरास्तु कटीरन्त्रे अपराः पादयोरपि ॥ ६६
 क्षोभं विलोक्य मुनय आश्रमेषु स्वयोषिताम् ।
 हन्यतामिति संभाष्य काष्ठपापाणपाणयः ॥ ६७
 पातयन्ति स्म देवस्य लिङ्गमुद्धृत्य भीषणम् ।
 पातिते तु ततो लिङ्गे गतोऽन्तर्धानमीश्वरः ॥ ६८
 देव्या स भगवान् रुद्रः कैलासं नगमाश्रितः ।
 पतिते देवदेवस्य लिङ्गे नष्टे चराचरे ॥ ६९
 क्षोभो बभूव सुमहानृषीणा भावितात्मनाम् ।
 एवं देवे तदा तत्र वर्तति व्याकुलीकृते ॥ ७०
 उवाचैको मुनिवरस्तत्र बुद्धिमतां वरः ।
 न वयं विद्मः सद्भावं तापसस्य महात्मनः ॥ ७१
 विरिञ्चि शरणं यामः स हि ज्ञास्यति चेष्टितम् ।
 एवमुक्त्वाः सर्व एव प्रपयो लजिता भुशम् ॥ ७२
 ब्रह्मणः सदनं जग्मुर्देवैः सह निषेचितम् ।

यह कहकर उन सभी ने उनको अपने पाणिपल्लवों से
 पकड़ लिया। कुल कामातुरा हो कण्ठ में लिपट गई, कुल ने उन्हें
 बाहुओं में आवेष्टित कर लिया, कुल स्त्रियों ने उन्हें जानुओं
 से पकड़ लिया, कुल सुन्दर स्त्रियों उनके केश का स्पर्श करने
 लगीं, कुल उनकी कटि से लिपट गई एवं वृद्ध ने उनके पैरों को
 पकड़ लिया। (६५-६६)

मुनियों ने आश्रम में अपनी स्त्रियों का क्षोभ देखकर
 ‘मारो मारो’ ऐसा कहते हुए हाथों में काष्ठ और पापाण लेकर
 शिव के लिङ्ग को उखाड़ कर फेंक दिया। लिङ्ग गिरा दिये जाने
 पर ईश्वर अन्तर्धान हो गये। (६७-६८)

भगवान् रुद्र देवी के साथ कैलाश पर्वत पर चले गये।
 देवविदेव का लिङ्ग गिरने पर चराचर का नाश होने लगा।
 इससे पवित्र मर्दियों को क्षोभ हुआ। इस प्रकार देव के
 व्याकुल होने पर एक अत्यन्त बुद्धिमान श्रेष्ठ मुनि ने
 कहा—“हम उन महात्मा तापस के अस्तित्व को नहीं
 जानते। हम सभी ब्रह्मा की शरण में चले। वे ही उनकी
 चेष्टा (रहस्य) को समझेंगे।” ऐसा कहे जाने पर सभी
 ऋषि अत्यन्त लजित हुए। (६९-७२)

वे लोग देवताओं से सेवित ब्रह्मा के लोक में गये एवं

प्रणिपत्याय देवेभ्यं लज्जयाऽधोमुखः स्थिताः ॥ ७३
अथ तान् दुःखितान् दृष्ट्वा ब्रह्मा वचनमप्रवोत् ।
अहो मुग्धा यदा युयं क्रोधेन क्लृपीकृताः ॥ ७४
न धर्मस्य क्रिया काचिज्ज्ञायते मूढबुद्धयः ।
श्रूयतां धर्मसर्वस्वं तापसाः क्रूरचेष्टिताः ॥ ७५
विदित्वा यद् बुधः क्षिप्रं धर्मस्य फलमाप्नुयात् ।
योऽसावात्मनि देहेऽस्मिन् विभृर्नित्यो व्यवस्थितः ॥ ७६

सोऽनादिः स महास्थायुः पृथक्त्वे परिमूचितः ।
मणिर्यथोपधानेन धत्ते वर्णोज्ज्वलोऽपि वै ॥ ७७
तन्मयो भवते तद्वदात्माऽपि मनसा कृतः ।
मनसो भेदमाश्रित्य कर्मभित्रोपचीयते ॥ ७८
ततः कर्मवशाद् भुङ्क्ते संनोगान् स्वर्गनारकान् ।
तन्मनः शोभयेद् धीमान् ज्ञानयोगायुषकर्मः ॥ ७९
तस्मिन् शुद्धे ह्यन्तरात्मा स्वयमेव निराकुलः ।
न शरीरस्य संकेशैरपि निदहनात्मकैः ॥ ८०

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये द्वाविंशोऽध्याय ॥२२॥

देवेश को प्रणाम कर लज्जा से मुख नीचा किये लड़े हो गये । (७३)

तदनन्तर उन्हें दुःखित देखकर ब्रह्मा ने यह वचन कहा अहो! क्रोध से क्लृपित चित्त वाले तुम लोग मूढ़ हो । हे मूढ़बुद्धियालौ ! तुमलोग धर्म की कोई क्रिया नहीं जानते । हे क्रूरमाँ तापसो ! धर्म के उस रहस्य को सुनो जिसे जानकर बुद्धिमान् मनुष्य शीघ्र धर्म का फल प्राप्त करता है । हमारे इस शरीर में रहने वाला जो नित्य विभु है वह अनादि एवं महास्थायु है । यह इस शरीर से पृथक् प्रतीत होता है । जैसे उज्ज्वल वर्ण का भी मणि आश्रय के प्रभाव से उती रूप का दीखता है उसी प्रकार आत्मा भी मन से संयुक्त होकर मन के भेद का आश्रय कर कर्मों से उपचित होता है । तदनन्तर कर्मयशान् यह स्वर्ग एवं नरक के भोगों को भोगता रहता है । बुद्धिमान् व्यक्ति को ज्ञान तथा योग इत्यादि उपचारों द्वारा उस मन का शोधन करना चाहिए । (७४-७९)

उस मन के शुद्ध होने पर अन्तरात्मा स्वयमेव निराकुल हो जाता है । जिसका मन शुद्ध नहीं है ऐसा पुरुष शरीर

शुद्धिमाप्नोति पुरुषः संशुद्धं यस्य नो मनः ।
क्रिया हि नियमार्थाय पातकेभ्यः प्रकीर्तिताः ॥ ८१
यस्मादस्याविलं देहं न शीघ्रं शुद्धयते किल ।
तेन लोकेषु मार्गोऽयं सत्पथस्य प्रवर्तितः ॥ ८२
वर्णाश्रमविभागोऽयं लोकाध्यक्षेण केनचित् ।
निर्मितो मोहमाहात्म्यं चिह्नं चोचमभागिनाम् ॥ ८३
भवन्तः क्रोधकामाभ्यामभिभूताश्रमे स्थिताः ।
ज्ञानिनामाश्रमो वैश्व अनाश्रममयोगिनाम् ॥ ८४
क्व च न्यस्तसमस्तेच्छा क्व च नारीमयो ब्रमः ।
क्व क्रोधमीदृशं घोरं येनात्मानं न जानय ॥ ८५

यत्क्रोधनो यजति यद् ददाति

यद् वा तपस्तपति यज्जुहोति ।

न तस्य प्राप्नोति फलं हि लोके

मोघं फलं तस्य हि क्रोधनस्य ॥ ८६

के शोषक कलेशों द्वारा नहीं शुद्ध होता । पातकों से यचने के लिये ही क्रियाओं का विधान हुआ है । यत अत्यन्त क्लृपित देह शीघ्र शुद्ध नहीं होता अत एव लोक में सत्पथ का यह मार्ग प्रवर्तित हुआ है । (८०-८२)

क्रिसी लोकाध्यक्ष ने उत्तममाग्य वालों के लिये मोह-माहात्म्य के चिह्न स्वरूप इस वर्णाश्रम विभाग का निर्माण किया है । (८३)

आप लोग आश्रम में रहते हुये भी क्रोध तथा काम से अभिभूत हैं । ज्ञानियों के लिये पर आश्रम है और अयोगियों (अज्ञानियों) के लिये अनाश्रम है । (८४)

वहाँ समस्त वामनजनों का त्याग वहाँ नारीमय यह भ्रम एवं कहीं इस प्रकार का जोष जिससे तुम लोग अपनी आत्मा को नहीं पहचान पाते । (८५)

क्रोधी पुरुष लोक में जो यज्ञ करना है, जो दान देना है अथवा जो तप या हवन करता है उसका कोई फल उसे नहीं मिलता । उस क्रोधी के सभी फल व्यर्थ होते हैं । (८६)

सनत्कुमार उवाच ।

ब्रह्मणो वचनं श्रुत्वा ऋषयः सर्व एव ते ।

पुनरेव च प्रपञ्चुर्जगतः श्रेयकारणम् ॥ १

ब्रह्मोवाच ।

गच्छामः शरणं देवं शूलपाणिं त्रिलोचनम् ।

प्रसादाद् देवदेवस्य भविष्यथ यथा पुरा ॥ २

इत्युक्त्वा ब्रह्मणा साङ्गं कैलासं गिरिमुत्तमम् ।

ददृशुस्ते समासीनममया सहितं हरम् ॥ ३

ततः स्तोतुं समारब्धो ब्रह्मा लोकपितामहः ।

देवाधिदेवं वरदं त्रैलोक्यस्य प्रभुं शिवम् ॥ ४

ब्रह्मोवाच ।

अनन्ताय नमस्तुभ्यं वरदाय पिनाकिने ।

महादेवाय देवाय स्थाणवे परमात्मने ॥ ५

नमोऽस्तु भुवनेशाय तुभ्यं तारक सर्वदा ।

ज्ञानानां दायको देवस्त्वमेकः पुरुषोत्तमः ॥ ६

नमस्ते पद्मगर्भाय पद्मेशाय नमो नमः ।

घोरशान्तिस्वरूपाय चण्डक्रोध नमोऽस्तु ते ॥ ७

नमस्ते देव विश्वेश नमस्ते सुरनायक ।

शूलपाणे नमस्तेऽस्तु नमस्ते विश्वभावन ॥ ८

एवं स्तुतो महादेवो ब्रह्मणा ऋषिभिस्तदा ।

उवाच मा भैर्त्रजत लिङ्गं वो भविता पुनः ॥ ९

क्रियतां मद्बचः शीघ्रं येन मे प्रीतिरुत्तमा ।

भविष्यति प्रतिष्ठायां लिङ्गस्त्वात्र न संशयः ॥ १०

ये लिङ्गं पूजयिष्यन्ति मामकं भक्तिमाश्रिताः ।

न तेषां दुर्लभं किञ्चिद् भविष्यति कदाचन ॥ ११

सर्वेषामेव पापानां कृतानामपि जानता ।

२३

सनत्कुमार ने कहा—ब्रह्मा के वचन को सुन कर उन सभी ऋषियों ने पुन ससार के कल्याण का उपाय पूछा । (१)

ब्रह्मा ने कहा—हम सभी शूलपाणि त्रिलोचन की शरण में चलें। उन्हीं देवदेव की कृपा से तुम सभी लोग पूर्वसदृश हो जाओगे । (२)

ऐसा कहे जाने पर वे लोग ब्रह्मा के साथ पर्वतश्रेष्ठ कैलास पर गये। वहाँ उन लोगों ने ब्रमा के साथ बैठे हुए शंकर को देखा । (३)

तदनन्तर लोकपितामह ब्रह्मा ने देवाधिदेव, त्रैलोक्य के प्रभु वरद शंकर की स्तुति करनी प्रारम्भ की । (४)

ब्रह्मा ने कहा—वरदाता, पिनाकधारी, महादेव, स्थाणु-स्वरूप, परमात्मा, अनन्त देव को मेरा नमस्कार है । (५)

हे तारने वाले भुवनेश्वर ! आपको सदा नमस्कार है। आप ही एकमात्र पुरुषोत्तम एवं ज्ञानदायक देव हैं । (६)

पद्मगर्भ के लिये नमस्कार है एव पद्मेश को वारम्बार नमस्कार है। हे चण्डक्रोध ! आप घोरशान्तिस्वरूप को नमस्कार है । (७)

हे विदवेश्वर देव ! आपको नमस्कार है। हे सुरनायक ! आपको नमस्कार है। हे शूलपाणि ! आपको नमस्कार है। हे विश्वभावन ! आपको नमस्कार है । (८)

ब्रह्मा एव ऋषियों के इस प्रकार स्तुति करने पर महादेव ने कहा—भयभीत मत होओ। तुम लोग सभी जाओ। लिङ्ग पुन हो जायेगा । (९)

मेरे वचन का शीघ्र पालन करो। लिङ्ग की प्रतिष्ठा करने पर निरसन्देह मुझे अत्यन्त प्रसन्नता होगी । (१०)

मेरे लिङ्ग की भक्तिपूर्वक पूजा करने वालों को कभी कोई पदार्थ दुर्लभ नहीं होगा । (११)

शुद्धयते लिङ्गपूजायां नात्र कार्या विचारणा ॥ १२
 युष्माभिः पातितं लिङ्गं सारयित्वा महत्सरः ।
 सांनिहत्यं तु विख्यातं तस्मिञ्क्षीघ्रं प्रतिष्ठितम् ॥ १३
 यथाभिलषितं कामं ततः प्राप्स्यथ ब्राह्मणाः ।
 स्थाणुनाम्ना हि लोकेषु पूजनीयो दिवौकसाम् ॥ १४
 स्थाण्वीश्वरे न्यितो यस्मात्स्थाण्वीश्वरस्ततः स्मृतः ।
 ये स्मरन्ति सदा स्थाणुं ते मुक्ताः सर्वकिल्बिषैः ॥ १५
 भविष्यन्ति शुद्धदेहा दर्शनान्मोक्षगामिनः ।
 इत्येवमुक्त्वा देवेन ऋषयो ब्रह्मणा सह ॥ १६
 तस्माद् दाहवनालिङ्गं नेतुं समुपवक्रुःम् ।
 न तं चालयितुं क्षत्वास्ते देवा ऋषिभिः सह ॥ १७
 श्रेमेण महता युक्ता ब्रह्माणं शरणं ययुः ।
 तेषां श्रमाभितप्तानामिदं ब्रह्माऽब्रवीद् वचः ॥ १८
 किं वा श्रेमेण महता न पुयं वहनक्षमाः ।
 स्वेष्वेव्या पातितं लिङ्गं देवदेवेन शूलिना ॥ १९

तस्मात् वमेव शरणं यास्यामः सहिताः सुरीः ।
 प्रसन्नश्च महादेवः स्वयमेव नयिष्यति ॥ २०
 इत्येवमुक्त्वा ऋषयो देवाश्च ब्रह्मणा सह ।
 कैलासं गिरिमासेद् रुद्रदर्शनकाङ्क्षिणः ॥ २१
 न च पश्यन्ति तं देवं ततश्चिन्तासमन्विताः ।
 ब्रह्माण्मूचुर्मुनयः क्व स देवो महेश्वरः ॥ २२
 ततो ब्रह्मा चिरं ध्यात्वा ज्ञात्वा देवं महेश्वरम् ।
 हस्तिरूपेण तिष्ठन्तं मुनिभिर्माननैः स्तुतम् ॥ २३
 अथ ते ऋषयः सर्वे देवाश्च ब्रह्मणा सह ।
 गत्वा महत्सरः पुण्यं यत्र देवः स्वयं स्थितः ॥ २४
 न च पश्यन्ति तं देवमन्विष्यन्तस्ततस्ततः ।
 ततश्चिन्तान्विता देवा ब्रह्मणा सहिता स्थिताः ॥ २५
 पश्यन्ति देवीं सुप्रीतां ऋण्डलुविभूषिताम् ।
 प्रीयमाणा तदा देवी हृदं वचनमब्रवीत् ॥ २६
 श्रेमेण महता युक्ता अन्विष्यन्तो महेश्वरम् ।

लिङ्ग-पूजा करने से बुद्धिपूर्वक भी किये गये समस्त पापों की शुद्धि होती है। इसमें कोई सन्देह नहीं करना चाहिये। (१२)
 अपने द्वारा गिराये गये लिङ्ग को उठाकर सानिहित्य नाम से विख्यात महा सरोवर तीर्थ में शीघ्र प्रतिष्ठित करो। (१३)
 हे ब्राह्मणो! उससे यथेच्छ कामनाओं की प्राप्ति करोगे। संसार में स्थाणु नाम से (प्रसिद्ध वह लिङ्ग) देवनाओं का पूजनीय होगा। (१४)
 स्थाण्वीश्वर में स्थित रहने से (उस लिङ्ग को) स्थाण्वीश्वर कहा जायेगा। सदा स्थाणु का स्मरण करने वाले सभी पापों से मुक्त एवं शुद्ध देह होकर (स्थाण्वीश्वर का) दर्शन करने से मोक्षगामी हो जायेंगे। शङ्कर के ऐसा रहने पर ब्रह्मा के सहित ऋषि लोग लिङ्ग को उस दारवन से ले जाने का उपक्रम करने लगे। किन्तु ऋषियों के सहित देवगण उसे पालित करने में असमर्थ रहे। (१५-१७)
 महान् धर्म से युक्त होकर वे ब्रह्मा की शरण में गए। धर्म से अभितप्त उन लोगों से ब्रह्मा ने यह वचन कहा—(१८)
 महान् धर्म का क्या प्रयोजन ? तुम लोग इसे उठाने में समर्थ नहीं हो सको। देवाधिदेव शंकर ने स्वच्छा से लिङ्ग को गिराया है। (१९)

अत हे देवो! इमलोग एक साथ वहाँ की शरण में चले। महादेव प्रसन्न होकर स्वयं ही (लिङ्ग को) ले जायेंगे। (२०)
 ऐसा कहे जाने पर सभी ऋषि और देवता ब्रह्मा के साथ शकर के दर्शन की इच्छा से कैलास पर्वत पर पहुँचे। (२१)
 वहाँ उन्होंने शकर को नहीं देखा। इससे चिन्तित होकर मुनियों ने ब्रह्मा से पूछा कि "वे महेश्वर देव कहाँ हैं?" (२२)
 तदनन्तर ब्रह्मा ने देर तक ध्यान लगा कर देखा कि मुनियों के मानस द्वारा सस्तुत महेश्वर देव हाथी के रूप में स्थित हैं। (२३)
 तदुपसन्त वे सभी ऋषि और देवता ब्रह्मा के साथ उस पवित्र महान् सरोवर पर पहुँचे जहाँ शंकर स्वयं उपस्थित थे। (२४)
 वे लोग इपर-उपर दूँढने पर भी शकर की न देखा सके। तदनन्तर ब्रह्मा के साथ चिन्तायुक्त होकर रखे हुए उन लोगों ने कमण्डलुविभूषित परमप्रसन्न देवी को देखा। प्रसन्न किये जाने पर देवी ने कहा— (२५-२६)
 महेश्वर को ढूँढते हुये तुम लोग अत्यन्त पक गये हो। हे देवो! अमृत का पान करो। तदनन्तर तुम शंकर को

पीयतामस्रैतं देवास्ततो ज्ञास्यथ शंकरम् ।
 एतच्छ्रुत्वा तु वचन भवान्या समुदाहृतम् ॥२७
 सुखोपविष्टास्ते देवाः पपुस्तदमृतं शुचि ।
 अनन्तरं सुरासीनाः प्रपच्छुः परमेश्वरीम् ॥२८
 क स देव इहायातो हस्तिरूपधरः स्थितः ।
 दर्शितव्य तदा देव्या सरोमध्ये व्यवस्थितः ॥२९
 दृष्ट्वा देवं हर्षयुक्ताः सर्वे देवाः सहर्षिभिः ।
 ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा इद वचनमब्रुवन् ॥३०
 त्वया त्यक्तं महादेव लिङ्गं त्रैलोक्यवन्दितम् ।
 तस्य चानयने नान्यः समर्थः स्यान्महेश्वर ॥३१
 इत्येवमुक्तो भगवान् देवो ब्रह्मादिभिर्हरः ।
 जगाम ऋषिभिः सार्द्धं देवदारुवनाश्रमम् ॥ ३२
 तत्र गत्वा महादेवो हस्तिरूपधरो हरः ।
 कोण जग्राह ततो लीलया परमेश्वरः ॥ ३३
 तमादाय महादेवः स्थयमानो महर्षिभिः ।
 निवेशयामास तदा सरःपार्श्वे तु पश्चिमे ॥ ३४
 ततो देवाः सर्वे एव ऋषयश्च तपोधनाः ।

जानोगे । भवानी द्वारा कथित इस वचन को सुन कर देवताओं ने सुखपूर्वक बैठ कर उस पवित्र असृत का पान किया । तदनन्तर सुख से बैठे उन लोगों ने परमेश्वरी से पूछा—

(२७-२८)

हस्तिरूपधारी वे देव यहाँ आकर क्यों स्थित हैं ? देवी ने सरोवर के मध्य ऊँहें स्थित दिखाया । (२९)

देव को देख कर ऋषियों सहित हर्षयुक्त सभी देवताओं ने ब्रह्मा को आगे कर यह वचन कहा । (३०)

हे महादेव । आपने त्रैलोक्य-वन्दित जिस लिङ्ग का त्याग किया है उसे लाने में दूसरा कोई समर्थ नहीं है । (३१)

ब्रह्मादि देवों के ऐसा कहने पर भगवान् महादेव ऋषियों के साथ देवदारुवन के आश्रम में गए । (३२)

यहाँ जाकर हस्तिरूपधारी परमेश्वर महादेव ने लील्य पूर्वक (लिङ्गको) लूँहें में उठा लिया । (३३)

महर्षियों से सन्तुष्ट हो रहे महादेव ने उसे लाकर सरोवर के पश्चिम पार्श्व में निवेशित किया । (३४)

तदनन्तर सभी देवता एवं तपोधन ऋषि स्वयं को सफल

आत्मान सफल दृष्ट्वा स्तवं च नुर्महेश्वरे ॥ ३५
 नमस्ते परमात्मन् अनन्तयोने लोकसाक्षिन्
 परमेष्ठिन् भगवन् सर्वज्ञ क्षेत्रज्ञ परावरज्ञ
 ज्ञानज्ञेय सर्वेश्वर महाविरिञ्च महाविभूते
 महाक्षेत्रज्ञ महापुरुष सर्वभूतावास
 मनोनिवास आदिदेव महादेव सदाशिव [5]
 ईशान दुर्विज्ञेय दुराराध्य महाभूतेश्वर
 परमेश्वर महायोगेश्वर ज्यम्बरु महायोगिन्
 परब्रह्मन् परमज्योतिः ब्रह्मविदुत्तम ॐकार
 वपट्टकार स्वाहाकार स्वधाकार परमकारण
 सर्वगत सर्वदर्शिन् सर्वशक्ते सर्वदेव अज [10]
 सहस्राक्षिः पृषार्चिः सुधामन् हरधाम अनन्तधाम
 संवर्त संकर्षण वडवानल अग्नीपोमात्मक
 पवित्र महापवित्र महामेष महामायाधर महाकाम
 कामहन् हंस परमहंस महाराजिक महेश्वर
 महाकामुक महाहंस भवक्षयकर सुरसिद्धार्चित [15]
 हिरण्यवाह हिरण्योतः हिरण्यनाभ हिरण्याप्रवेश

हुआ देख महेश्वर की स्तुति करने लगे— (३५)

हे परमात्मन् । हे अनन्तयोने । हे लोकसाक्षिन् । हे परमेष्ठिन् । हे भगवन् । हे सर्वज्ञ । हे क्षेत्रज्ञ । हे परावरज्ञ । हे ज्ञानज्ञेय । हे सर्वेश्वर । हे महाविरिञ्च । हे महाविभूति ! हे महाक्षेत्रज्ञ । हे महापुरुष । हे सर्वभूतावास । हे मनोनिवास । हे आदिदेव । हे महादेव । हे सदाशिव । हे ईशान । हे दुर्विज्ञेय । हे दुराराध्य । हे महाभूतेश्वर । हे परमेश्वर । हे महायोगेश्वर । हे ज्यम्बरु । हे महायोगिन् । हे परमब्रह्मन् । हे परमज्योति । हे ब्रह्मविद् । हे उत्तम । हे ॐकार । हे वपट्टकार । हे स्वाहाकार । हे स्वधाकार । हे परमकारण । हे सर्वगत । हे सर्वदर्शिन् । हे सर्वशक्ति । हे सर्वदेव । हे अज । हे सहस्राक्षि । हे पृषार्चि । हे सुधामन् । हे हरधाम । हे अनन्तधाम । हे संवर्त । हे संकर्षण । हे वडवानल । हे अग्नीपोमात्मक । हे पवित्र । हे महापवित्र । हे महामेष । हे महामायाधर । हे महाकाम । हे कामहन् । हे हंस । हे परमहंस । हे महाराजिक । हे महेश्वर । हे महाकामुक । हे महाहंस । हे भवक्षयकर । हे सुरसिद्धार्चित । हे हिरण्यवाह । हे हिरण्योतः । हे हिरण्यनाभ । हे हिरण्याप्रवेश । हे सुअकेशिन् । हे सर्वलोकवरप्रद । हे सर्वानुभद

मुञ्जकेशिन् सर्वलोकरप्रद सर्वानुग्रहकर
कमलेशय कुशेशय हृदयेशय ज्ञानोदधे शंभो
विभो महायज्ञ महायाज्ञिक सर्वयज्ञमय
सर्वयज्ञहृदय सर्वयज्ञसस्तुत निराश्रय [20]
समुद्रेशय अत्रिसंभव भक्तानुकम्पिन्
अभग्नयोग योगधर वासुकिमहामणि-
विद्योतितविग्रह हरितनयन त्रिलोचन जटाधर

नीलकण्ठ चन्द्रार्धधर उमाशरीरार्धहर
गजचर्मधर दुस्तरसंसारमहासंहारकर [25]
प्रसीद भक्तजनवत्सल

एवं स्तुतो देवगणैः सुभक्त्या
सप्रदाम्मुख्यैश्च पितामहेन ।
त्यक्त्या तदा इस्तिरूपं महात्मा
लिङ्गे तदा संनिधानं चकार ॥ ३६

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये त्रयोविंशोऽध्याय ॥२३॥

२४

सनत्कुमार उवाच ।

अथोवाच महादेवो देवान् ब्रह्मपुरोगमान् ।
शृषीणां चैव प्रत्यर्धं तीर्थमाहात्म्यमुत्तमम् ॥ १
एतत् सानिहितं प्रोवर्तं सरः पुण्यतम महद् ।
मयोपसेवितं यस्मात् तस्मान्मुक्तिप्रदायकम् ॥ २

कर । हे कमलेशय । हे कुशेशय । हे हृदयेशय । हे ज्ञानो
दधि । हे शंभो । हे विभो । हे महायज्ञ । हे महायाज्ञिक ।
हे सर्वयज्ञमय । हे सर्वयज्ञहृदय । हे सर्वयज्ञसस्तुत ।
हे निराश्रय । हे समुद्रेशय । हे अत्रिसंभव । हे भक्तानुवन्धी ।
हे अभग्नयोग । हे योगधर । हे वासुकिमहामणि से विद्योतित
विग्रह याले । हे हरितनयन । हे त्रिलोचन । हे जटाधर । हे

इह ये पुरुषाः केचिद् ब्राह्मणाः क्षत्रिया विशः ।
लिङ्गस्य दर्शनादेष पश्यन्ति परमं पदम् ॥ ३
अहन्यहनि तीर्थानि आसमुद्रसरांसि च ।
स्थाणुतीर्थं समेप्यन्ति मर्ष्यं प्राप्ते दिवाकरे ॥ ४
स्तोत्रेणानेन च नरो यो मा स्तोष्यति भक्तितः ।

नीलकण्ठ । हे चन्द्रार्धधर । हे उमाशरीरार्धहर । हे गजचर्मधर ।
हे दुस्तरसंसार के महासंहारकर । आप को नमस्कार है ।
हे भक्तजनवत्सल । आप प्रसन्न हों ।

इस प्रकार श्रेष्ठ ऋषियों से युक्त सभी देवों के साथ
पितामह ब्रह्मा के भक्तिपूर्वक स्तुति करने पर उन महात्मा ने
स्तिरूप का त्यागकर लिङ्ग में संनिधान किया । (३६)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य के त्रैलोक्या अध्याय समाप्त ॥२३॥

२४

सनत्कुमार ने कहा—तदनन्तर महादेव ने ऋषियों के
समक्ष ब्रह्मादि देवों से उत्तम तीर्थमाहात्म्य को कहा । (१)

यह सानिहित नामक सरोवर महान् पुण्यतम कहा गया
है । मुञ्जसे सेवित होने के कारण यह मुक्तिदायक
है । (२)

यहाँ ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य वर्गों के पुरुष
लिङ्ग का दर्शन करने से परम पद का दर्शन करते
हैं । (३)

समुद्र से लेकर सरोवर पर्यन्त सभी तीर्थ प्रतिदिन
मग्न्याह्न के समय स्थाणु तीर्थ में आते हैं । (४)
इस स्तोत्र से भक्तिपूर्वक जो मनुष्य मेरी स्तुति करेगा

तस्याहं सुलभो नित्यं भविष्यामि न संशयः ॥ ५
 इत्युक्त्वा भगवान् रुद्रो ह्यन्तर्धानं गतः प्रभुः ।
 देवाश्च ऋषयः सर्वे स्वानि स्थानानि मेजिरे ॥ ६
 ततो निरन्तरं स्वर्गं मानुषैर्मिश्रितं कृतम् ।
 स्थायुलिङ्गस्य महात्म्य दर्शनात्स्वर्गमाप्नुयात् ॥ ७
 ततो देवाः सर्वे एव ब्रह्माणं शरणं ययुः ।
 तानुवाच तदा ब्रह्मा किमर्थमिह चागताः ॥ ८
 ततो देवाः सर्वे एव इदं वचनमब्रुवन् ।
 मानुषेभ्यो भयं तीव्रं रक्षस्माकं पितामह ॥ ९
 तानुवाच तदा ब्रह्मा सुरांस्त्रिदशनायकः ।
 पांशुना पूर्वतां शीघ्रं सरः शक्रो हितं कुरु ॥ १०
 ततो वर्षर्ष भगवान् पांशुना पाकशासनः ।
 सप्ताहं पूरयामास सरो देवैस्तदा घृतः ॥ ११
 तं दृष्ट्वा पांशुवर्षं च देवदेवो महेश्वरः ।
 कोषेण धारयामास लिङ्गं तीर्थवटं तदा ॥ १२

उसे निम्नस्त्रेह मैं नित्य सुलभ होऊँगा । (५)

यह कहकर भगवान् प्रभु रुद्र अन्तर्हित हो गए । सभी देवता और ऋषिगण अपने अपने स्थान को चले गये । (६)

तदनन्तर सम्पूर्ण स्वर्ग मनुष्यों से भर गया । स्थायु-लिङ्ग का यह महात्म्य है कि उसके दर्शन से मनुष्य स्वर्ग प्राप्त करता है । (७)

तदुपरान्त सभी देवता ब्रह्मा की प्राण ने गए । तब ब्रह्मा ने उनसे पूछा—आप लोग किस लिए यहाँ आए हैं ? (८)

तदनन्तर सभी देवों ने यह वचन कहा है पितामह ! हम लोगों को मनुष्यों से तीव्र भय हो रहा है । हमारी आप रक्षा करें । (९)

तदनन्तर देवश्रेष्ठ ब्रह्माने उन देवों से कहा—“हे इन्द्र ! सरोवर को शीघ्र धूलि से भर दो और अपना अभीष्ट सम्पन्न करो । (१०)

तदुपरान्त देवों से पिरे पाकराक्षस के हन्ता भगवान् इन्द्र ने एक सप्ताह तक धूलि की वर्षा कर सरोवर को भर दिया । (११)

इस धूलि-वर्षा को देख कर देवदेव महेश्वर ने लिङ्ग और तीर्थवट को अपने हाथ में धारण कर लिया । (१२)

तस्मात् पुण्यतम तीर्थमाद्यं यत्रोदकं स्थितम् ।
 तस्मिन् स्नातः सर्वतीर्थैः स्नातो भवति मानवः ॥ १३
 यस्तत्र कुरुते श्राद्धं बटलिङ्गस्य चान्तरे ।
 तस्य प्रीताश्च पितरो दास्यन्ति भुवि दुर्लभम् ॥ १४
 पूरितं च ततो दृष्ट्वा ऋषयः सर्वे एव ते ।
 पांशुना सर्वगात्राणि स्पृशन्ति श्रद्धया युताः ॥ १५
 तेषु निर्धूतपापास्ते पांशुना मुनयो गताः ।
 पूजयमानाः सुरगणैः प्रयाता ब्रह्मणः पदम् ॥ १६
 ये तु सिद्धा महात्मानस्ते लिङ्गं पूजयन्ति च ।
 व्रजन्ति परमां सिद्धिं पुनरावृत्तिदुर्लभाम् ॥ १७
 एवं ज्ञात्वा तदा ब्रह्मा लिङ्गं शैलमयं तदा ।
 आद्यलिङ्गं तदा स्थाप्य तस्योपरि दधार तत् ॥ १८
 ततः कालेन महता तेजसा तस्य रक्षितम् ।
 तस्यापि स्पर्शनात् सिद्धः परं पदनवाप्नुयात् ॥ १९
 ततो देवैः पुनर्ब्रह्मा विज्ञप्तो द्विजसत्तम ।

अतएव आदि मे जहाँ जल था वह तीर्थ पुण्यतम है । उसमें स्नान करने वाला मनुष्य सभी तीर्थों में स्नान कर लेता है । (१३)

वट और लिङ्ग के मध्य में जो श्राद्ध करता है उसके पितृगण उस पर प्रसन्न होकर उसे पृथ्वी में दुर्लभ पदार्थ प्रदान करते हैं । (१४)

वे सभी ऋषि सरोवर को धूलि से पूरित हुआ देखकर श्रद्धापूर्वक समस्त शरीर में धूलि लगाने लगे । (१५)

वे मुनि भी धूलि से पापरहित होकर देवताओं से पूजित होते हुए ब्रह्मलोक चले गये । (१६)

जो तपस्वी महात्मा उस लिङ्ग की पूजा करते थे वे आवागमन से रहित परमसिद्धि प्राप्त करने लगे । (१७)

ऐसा जान कर ब्रह्मा ने आदि लिङ्ग को नीचे कर उसके ऊपर शैलमय लिङ्ग को रख दिया । (१८)

बुद्ध समय व्यतीत होने पर उसके (आद्य लिङ्ग के) तेज से (वह शैलमय लिङ्ग भी) रक्षित हो गया । सिद्ध गण उसके भी स्पर्श से परम पद प्राप्त करने लगे । (१९)

हे द्विजश्रेष्ठ ! तदनन्तर देवताओं ने पुनः ब्रह्मा को सूचित किया कि मनुष्य इस लिङ्ग के भी दर्शन से परम

एते यान्ति परां सिद्धिं लिङ्गस्य दर्शनान्नराः ॥ २०
 तच्छ्रुत्वा भगवान् ब्रह्मा देवान् । हतकाम्यया ।
 उपर्युपरि लिङ्गानि सप्त तत्र चकार ह ॥ २१
 ततो ये मुनिस्तकामाश्च सिद्धाः शमपरारणयाः ।
 सेव्य पांशुं प्रयत्नेन प्रयाताः परमं पदम् ॥ २२
 पांशवोऽपि कुरुक्षेत्रे वायुना समुदीरिताः ।
 महादुष्कृतकर्माणं प्रयान्ति परमं पदम् ॥ २३
 अज्ञानान्जानतो वापि स्त्रियो वा पुरुषस्य वा ।
 नश्यते दुष्कृत सर्वं स्याद्युतीर्थप्रभावतः ॥ २४
 लिङ्गस्य दर्शनान्मुक्तिः स्पर्शनाच्च वटस्य च ।
 तत्संनिधौ जले स्नात्वा प्राप्नोत्यभिमतं फलम् ॥ २५
 पितृणां तर्पणं यस्तु जले तस्मिन् करिष्यति ।

विन्दो विन्दौ तु तोयस्य अनन्तफलभागवत् ॥ २६
 यस्तु कृष्णतिलैः सार्द्धं लिङ्गस्य पश्चिमे स्थितः ।
 तर्पयेच्छूद्रया युक्तः स श्रीणाति युगत्रयम् ॥ २७
 यात्रन्मन्वन्तरं प्रोक्षतं यावच्छिङ्गस्य संस्थितिः ।
 तान्त्प्रीताश्च पितरः पिबन्ति जलमुत्तमम् ॥ २८
 कृते युगे सान्निहत्य श्रेतायां वायुसंज्ञितम् ।
 कलिद्वापरयोर्मध्ये कूपं रुद्रहृद स्मृतम् ॥ २९
 चैत्रस्य कृष्णपक्षे च चतुर्दश्या नरोत्तमः ।
 स्नात्वा रुद्रहृदे तीर्थे परं पदमवाप्नुयात् ॥ ३०
 यस्तु वटे स्थितो रात्रिं ध्यायते परमेश्वरम् ।
 स्थाणोर्वटप्रसादेन मनसा चिन्तित फलम् ॥ ३१

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये चतुर्विंशोऽध्याय ॥२४॥

सिद्धि प्राप्त कर रहे हैं ।

(२०)

वह सुन कर भगवान् ब्रह्मा ने देवताओं के हित की कामना से एक के ऊपर एक सात लिङ्गों को स्थापित किया ।

(२१)

तदनन्तर मुक्ति की कामना वाले विरक्त सिद्धराण प्रयत्नपूर्वक धूलि का सेवन कर परमपद प्राप्त करने लगे ।

(२२)

कुरुक्षेत्र में वायु प्रेरित धूलि भी महादुष्कर्मियों को परमपद देती है ।

(२३)

स्त्री या पुरुष के ज्ञान अथवा अज्ञान से किये गये समस्त पाप स्थाणुतीर्थ के प्रभाव से नष्ट हो जाते हैं ।

(२४)

लिङ्ग के दर्शन और वट के स्पर्श से मुक्ति मिलती है । उसके निकट जल में स्नान करने से मनुष्य अभिमत फल

प्राप्त करता है ।

(२५)

उस जल में पितरों का तर्पण करने वाला जल के प्रत्येक विन्दु में अनन्त फल प्राप्त करता है ।

(२६)

लिङ्ग से पश्चिम दिशा में श्रद्धापूर्वक काले तिलों से तर्पण करने वाला तीन युगों तक (पितरों को) उत्तम करता है । जब तक मन्वन्तर है और जब तक लिङ्ग की संस्थिति है तब तक पितृगण प्रसन्न होकर उत्तम जल का पान करते हैं ।

(२७-२८)

कृतयुग में सान्निहत्य सर सेव्य है त्रेता में वायु नामक हृद सेव्य है । कलि एवं द्वापर में रुद्रहृद नामक वृष सेव्य माना गया है ।

(२९)

चैत्र के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में रुद्रहृद नामक तीर्थ में स्नान कर उत्तम पुरुष परमपद को प्राप्त करता है ।

(३०)

रात्रि में वट के नीचे रह कर परमेश्वर का ध्यान करने वाले को स्थाणुवट की छ्पा से मनोपाञ्चित फल प्राप्त होता है ।

(३१)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में चौबीसवां अध्याय समाप्त ॥२४॥

सनत्कुमार उवाच ।

स्थाणोर्वटस्योचरतः शुक्रतीर्थं प्रकीर्तितम् ।
 स्थाणोर्वटस्य पूर्वेण सोमतीर्थं द्विजोत्तम ॥ १
 स्थाणोर्वटं दक्षिणतो दक्षतीर्थंमुद्राहृतम् ।
 स्थाणोर्वटात् पश्चिमतः स्कन्दतीर्थं प्रतिष्ठितम् ॥ २
 एतानि पुण्यतीर्थानि मध्ये स्थाणुरिति स्मृतः ।
 तस्य दर्शनमात्रेण प्राप्नोति परमं पदम् ॥ ३
 अष्टम्यां च चतुर्दश्यां यस्त्वेतानि परिक्रमेत् ।
 पदे पदे यज्ञफलं स प्राप्नोति न संशयः ॥ ४
 एतानि ह्यनिभिः साध्वैरादित्यैर्वसुभिस्तदा ।
 मरुद्भिर्वह्निभिश्चैव सेवितानि प्रयत्नतः ॥ ५
 अन्ये ये प्राणिनः केचित् प्रविष्टाः स्थाणुमुचमम् ।
 सर्वपापविनिर्मुक्ताः प्रयान्ति परमां गतिम् ॥ ६
 अस्ति तत्संनिधौ लिङ्गं देवदेवस्य शूलिनः ।
 उमा च लिङ्गरूपेण हरपार्श्वे न गृह्यति ॥ ७

तस्य दर्शनमात्रेण सिद्धिं प्राप्नोति मानवः ।
 वटस्य उत्तरे पार्श्वे तक्षकेण महात्मना ॥ ८
 प्रतिष्ठितं महालिङ्गं सर्वकामप्रदायकम् ।
 वटस्य पूर्वदिग्भागे विश्वकर्मकृतं महत् ॥ ९
 लिङ्गं प्रत्यद्मुखं दृष्ट्वा मिद्धिमान्प्रोति मानवः ।
 तत्रैव लिङ्गरूपेण स्थिता देवी मरस्वती ॥ १०
 प्रणम्य तां प्रयत्नेन बुद्धिं मेधां च विन्दति ।
 वटपार्श्वे स्थितं लिङ्गं ब्रह्मणा तत् प्रतिष्ठितम् ॥ ११
 दृष्ट्वा वटेश्वरं देवं प्रयाति परमं पदम् ।
 ततः स्थाणुवटं दृष्ट्वा कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ॥ १२
 प्रदक्षिणीकृत्वा तेन सप्तद्वीपा यमुंधरा ।
 स्थाणोः पश्चिमदिग्भागे नकुलीशो गणः स्मृतः ॥ १३
 तमभ्यर्च्य प्रयत्नेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
 तस्य दक्षिणदिग्भागे तीर्थं रुद्रकरं स्मृतम् ॥ १४
 तस्मिन् स्नातः सर्वतीर्थे स्नातो भवति मानवः ।

२५

सनत्कुमार ने कहा, “हे द्विजोत्तम! स्थाणुवट के उत्तर में शुक्रतीर्थ और स्थाणुवट के पूर्व में सोमतीर्थ कहा गया है ।
 (१)
 स्थाणुवट के दक्षिण में दक्षतीर्थ एवं उसके पश्चिम में स्कन्दतीर्थ प्रतिष्ठित हैं ।
 (२)
 इन पवित्र तीर्थों के मध्य में स्थाणु नामक तीर्थ है ।
 उसके दर्शनमात्र से परमपद की प्राप्ति होती है ।
 (३)
 अष्टमी और चतुर्दशी को इनकी परिक्रमा करने वाले को निस्तान्देह पग पग पर यज्ञ का फल प्राप्त होता है ।
 (४)
 मुनियों, साध्वों, आदित्यों, वसुओं, मरुतों एवं अग्निवों ने प्रयत्नपूर्वक इन तीर्थों का सेवन किया है ।
 (५)
 उत्तम स्थाणुतीर्थ में प्रवेश करने वाले अन्य प्राणी भी सर्वपाप-विनिर्मुक्त होकर परम गति की प्राप्ति करते हैं ।
 (६)
 उसके समीप देवाधिदेव भगवान् रुद्र का लिङ्ग स्थित है । यहाँ लिङ्गरूप से (विद्यन) उमा भी हर के पार्श्व का स्थाण नहीं करती ।
 (७)

उसके दर्शनमात्र से मनुष्य सिद्धि प्राप्त करता है । वट के उत्तर पार्श्व में महात्मा तक्षक ने सर्वकाम-प्रदायक महालिङ्ग प्रतिष्ठित किया है । वट की पूर्व दिशा में विश्वकर्मा का बनाया महान् लिङ्ग है । उस पश्चिमाम्बुस्य लिङ्ग का दर्शन करने से मनुष्य को सिद्धि प्राप्त होती है । यही देवी सरस्वती लिङ्ग रूप से स्थित है ।
 (८-१०)
 उसे प्रयत्न पूर्वक प्रणाम कर मनुष्य बुद्धि एवं मेधा प्राप्त करता है । वट के पार्श्व में स्थित लिङ्ग को ब्रह्मा ने प्रतिष्ठित किया है । वटेश्वर देव का दर्शन करने से परमपद की प्राप्ति होती है । तदनन्तर स्थाणुवट का दर्शन और उसी प्रदक्षिणा करने वाला सप्तद्वीपा यमुन्धरा की प्रदक्षिणा कर लेता है । स्थाणु की पश्चिम दिशा में नकुलीश नामक गण स्थित है ।
 (११-१२)
 प्रयत्न पूर्वक इनकी पूजा कर मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जाता है । उसके दक्षिण भाग में रुद्रकर तीर्थ है ।
 (१४)

तस्य चोत्तरदिग्भागे रावणेन महात्मना ॥ १५
 प्रतिष्ठितं महालिङ्गं गोकर्णं नाम नामतः ।
 आपाढमासे या कृष्णा भविष्यति चतुर्दशी ।
 तस्यां योऽर्चति गोकर्णं तस्य पुण्यफलं शृणु ॥ १६
 कामतोऽकामतो वापि यत् पापं तेन संचितम् ।
 तस्माद् विमुच्यते पापात् पूजयित्वा हरं शुचिः ॥ १७
 कौमारघ्नन्नचर्षणे यत्पुण्यं प्राप्यते नरैः ।
 तत्पुण्यं सकलं तस्य अष्टम्यां योऽर्चयेच्छिवम् ॥ १८
 यदीच्छेत् परमं रूपं सौभाग्यं धनसंपदः ।
 कुमारेश्वरमाहात्म्यात् सिद्धयते नात्र संशयः ॥ १९
 तस्य चोत्तरदिग्भागे लिङ्गं पूज्य विभीषणः ।
 अजरश्वामरश्चैव कल्पयित्वा वभूव ह ॥ २०
 आपाढस्य तु मातस्य शुक्ला या चाष्टमी भवेत् ।
 तस्यां पूज्य सोपवासो ह्यमृतत्वमशानुयात् ॥ २१
 खरेण पूजितं लिङ्गं तस्मिन् स्थाने द्वित्रोचम ।

उसमे स्नान करने वाला पुरुष समस्त तीर्थों में स्नान कर लेता है । उसके उत्तर की दिशा में महात्मा रावण के द्वारा प्रतिष्ठित गोकर्ण नामक महालिङ्ग है । आपाढ़ मास के कृष्णपक्ष की चतुर्दशी में गोकर्ण की अर्चना करने वाले मनुष्य के पुण्यफल को सुनो । (१५-१६)

पवित्रता पूर्वक हर की पूजा करने से वह अपने द्वारा इच्छा या अनिच्छा पूर्वक संचित पाप से मुक्त हो जाता है । (१७)

अष्टमी में शिव का अर्चन करने वाला मनुष्य कौमार घ्नन्नचर्षे से प्राप्त होने वाले समस्त पुण्य को उपलब्ध करता है । (१८)

यदि मनुष्य सुन्दर रूप, सौभाग्य या धन सम्पत्ति की इच्छा करता है तो कुमारेश्वर के माहात्म्य से उसे निसन्देह उत्तरी सिद्धि होती है । (१९)

उसकी उत्तर दिशा में लिङ्ग की स्थापना तथा पूजा करने से विभीषण अजर एवं अमर हुए । (२०)

आपाढ़ मास की शुक्लाष्टमी को उपवास पूर्वक पूजा करने से मनुष्य को अमरत्व की प्राप्ति होती है । (२१)

द्वे द्वित्रोचम । उस स्थान पर खर द्वारा पूजित लिङ्ग है उसकी यत्पूर्वक पूजा करने से समस्त कामनाओं की

तं पूजयित्वा यत्नेन सर्वकामानवाप्नुयात् ॥ २२
 दूषणस्त्रिशिराश्चैव तत्र पूज्य महेश्वरम् ।
 यथाभिलषितान् कामानापनुस्तौ मुदान्वितौ ॥ २३
 चैत्रमासे सिते पक्षे यो नरस्तत्र पूजयेत् ।
 तस्य तौ वरदौ देवौ प्रयच्छेतेऽभिव्यञ्जितम् ॥ २४
 स्थाणोर्वटस्य पूर्वेण हस्तिपादेश्वरः शिवः ।
 तं दृष्ट्वा मुच्यते पापैरन्यजन्मनि संभवेः ॥ २५
 तस्य दक्षिणतो लिङ्गं हारीवस्य ऋषेः स्थितम् ।
 यत् प्रणम्य प्रयत्नेन सिद्धिं प्राप्नोति मानवः ॥ २६
 तस्य दक्षिणपार्श्वं तु वापीतस्य महात्मनः ।
 लिङ्गं त्रैलोक्यविख्यातं सर्वपापहरं शिवम् ॥ २७
 कङ्कालरूपिणा चापि रुद्रेण सुमहात्मना ।
 प्रतिष्ठितं महालिङ्गं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २८
 मुक्तिदं मुक्तिदं प्रोषत् सर्वकिल्बिषनाशनम् ।
 लिङ्गस्य दर्शनाच्चैव अग्निष्टोमफलं लभेत् ॥ २९

प्राप्ति होती है । (२२)

दूषण एवं त्रिशिरा वहाँ पर महेश्वर की पूजा कर प्रसन्नचित्त हो यथाभिलषित कामनाओं को प्राप्त किये । (२३)

चैत्र मास के शुक्लपक्ष में वहाँ पूजन करने वाले मनुष्य को वे दोनों वरद देव अभिव्यञ्जित फल प्रदान करते हैं । (२४)

स्थाणुवट के पूर्व में हस्तिपादेश्वर शिव है उनका दर्शन करने से मनुष्य अन्य जन्मों में किये गये पापों से मुक्त हो जाता है । (२५)

उसके दक्षिण में हारीव ऋषि द्वारा स्थापित लिङ्ग है । उसने प्रयत्नपूर्वक प्रणाम करने से मनुष्य को सिद्धि प्राप्त होती है । (२६)

उसके दक्षिण पार्श्व में महात्मा वापीव द्वारा प्रतिष्ठित त्रैलोक्य विख्यात, सर्वपापहारी एव कल्याणकारी लिङ्ग स्थित है । (२७)

कङ्कालरूपी महात्मा रुद्र ने भी सर्वपापनाशक महालिङ्ग की स्थापना की है । (२८)

वह लिङ्ग मुक्ति एवं मुक्ति का दायक तथा सर्वपापनाशक है तथा उस लिङ्ग का दर्शन करने से अग्निष्टोम यज्ञ के फल की प्राप्ति होती है । (२९)

तस्य पश्चिमदिग्भागे लिङ्गं सिद्धप्रतिष्ठितम् ।
 सिद्धेश्वरं तु विख्यातं सर्वसिद्धिप्रदायकम् ॥ ३०
 तस्य दक्षिणदिग्भागे मृकण्डेन महात्मना ।
 तत्र प्रतिष्ठितं लिङ्गं दर्शनात् सिद्धिदायकम् ॥ ३१
 तस्य पूर्वं च दिग्भागे आदित्येन महात्मना ।
 प्रतिष्ठितं लिङ्गवरं सर्वकिल्बिषनाशनम् ॥ ३२
 चित्राङ्गदस्तु गन्धर्वो रम्भा चाप्सरसां वरा ।
 परस्परं सातुरागौ स्थाणुदर्शनकाङ्क्षिणौ ॥ ३३
 दृष्ट्वा स्थाणुं पूजयित्वा सातुरागौ परस्परम् ।
 आराध्य वरदं देवं प्रतिष्ठाप्य महेश्वरम् ॥ ३४
 चित्राङ्गदेश्वरं दृष्ट्वा तथा रम्भेश्वरं द्विज ।
 सुभगो दर्शनीयश्च बृहले जन्म समाप्नुयात् ॥ ३५
 तस्य दक्षिणतो लिङ्गं वज्रिणा स्थापितं पुरा ।
 तस्य प्रसादात् प्राप्नोति मनसा चिन्तितं फलम् ॥ ३६
 पराशरेण मुनिना त्र्यैवाराध्य शंकरम् ।
 प्राप्तं कवित्वं परमं दर्शनाच्छंकरस्य च ॥ ३७

उसके पश्चिम में सिद्धप्रतिष्ठित लिङ्ग है । यह सिद्धे-
 श्वर नाम से विख्यात है तथा सर्वसिद्धि प्रदायक है । (३०)

उसके दक्षिण भाग में महात्मा मृकण्ड ने लिङ्ग की
 प्रतिष्ठा की है । उसके दर्शन से सिद्धि प्राप्त होती है । (३१)

उसके पूर्व में महात्मा आदित्य ने समस्त पापों का
 नाशक श्रेष्ठ लिङ्ग प्रतिष्ठित किया है । (३२)

परस्पर अनुराग युक्त चित्राङ्गद नामक गन्धर्व और
 रम्भा नाम की श्रेष्ठ अप्सरा ने स्थाणु का दर्शन करने की
 इच्छा से स्थाणु का दर्शन एवं पूजा करने के उपरान्त वर-
 दाता महेश्वर देव की प्रतिष्ठा की । (३३ ३४)

हे द्विज ! चित्राङ्गदेश्वर एवं रम्भेश्वर का दर्शन
 कर मनुष्य सौभाग्य, सौन्दर्य, एवं सत्कुलोत्पत्ति की प्राप्ति
 करता है । (३५)

उसके दक्षिण में इन्द्र ने प्राचीन काल में लिङ्ग
 की स्थापना की थी । उसके प्रसाद से मनुष्य को मनोभि-
 लषित फल प्राप्त होता है । (३६)

उसी प्रकार पराशर मुनि ने शंकर की आराधना कर
 उनके दर्शन से कवित्व प्राप्त किया । (३७)

वेदव्यासेन मुनिना आराध्य परमेश्वरम् ।
 सर्वज्ञत्वं ब्रह्मज्ञानं प्राप्तं देवप्रसादतः ॥ ३८
 स्थाणोः पश्चिमदिग्भागे वायुना जगदायुना ।
 प्रतिष्ठितं महालिङ्गं दर्शनात् पापनाशनम् ॥ ३९
 तस्यापि दक्षिणे भागे लिङ्गं हिमवतेश्वरम् ।
 प्रतिष्ठितं पुण्यकृतां दर्शनात् सिद्धिकारकम् ॥ ४०
 तस्यापि पश्चिमे भागे कार्तवीर्येण स्थापितम् ।
 लिङ्गं पापहरं सद्यो दर्शनात् पुण्यमाप्नुयात् ॥ ४१
 तस्याप्युत्तरदिग्भागे सुपार्श्वे स्थापितं पुनः ।
 आराध्य हनुमांश्चाप सिद्धिं देवप्रसादतः ॥ ४२
 तस्यैव पूर्वदिग्भागे विष्णुना प्रभविष्णुना ।
 आराध्य वरदं देवं चक्रं लब्धं सुदर्शनम् ॥ ४३
 तस्यापि पूर्वदिग्भागे मित्रेण वरुणेन च ।
 प्रतिष्ठितौ लिङ्गवरो सर्वकामप्रदायकौ ॥ ४४
 एतानि मुनिभिः साध्यैरादित्यैर्वसुभिस्तथा ।
 सेवितानि प्रयत्नेन सर्वपापहराणि वै ॥ ४५

वेदव्यास मुनि ने परमेश्वर की आराधना कर देव के
 प्रसाद से सर्वज्ञता एवं ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया । (३८)

स्थाणु की पश्चिम दिशा में ससार के आयु स्वरूप वायु
 ने महालिङ्ग प्रतिष्ठित किया है जो दर्शनमात्र से पाप-
 नाशक है । (३९)

उसके भी दक्षिण भाग में पुण्यधानों को दर्शन से सिद्धि
 प्रदान करने वाला हिमवतेश्वर लिङ्ग प्रतिष्ठित है । (४०)

उसके भी पश्चिम भाग में कार्तवीर्य ने लिङ्ग की स्था-
 पना की है । यह लिङ्ग पापहारी है तथा इसके दर्शन से सदा
 पुण्य की प्राप्ति होती है । (४१)

उसके भी उत्तर भाग में सुपार्श्व में स्थापित लिङ्ग की
 आराधना कर हनुमान ने देव के प्रसाद से सिद्धि प्राप्त
 की थी । (४२)

उसके भी पूर्व भाग में प्रभावशाली विष्णु ने वरद देव की
 आराधना कर सुदर्शन चक्र प्राप्त किया था । (४३)

उसके भी पूर्व भाग में मित्र एवं वरुण ने सर्वकामप्रदा-
 यक दो लिङ्गों की प्रतिष्ठा की है । (४४)

मुनिनों, साध्यों, आदित्यों एवं वसुओं द्वारा ये सभी
 लिङ्ग प्रयत्नपूर्वक सेवित हैं तथा ये समस्त पापों को नष्ट
 करने वाले हैं । (४५)

स्वर्णलिङ्गस्य पश्चात् ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ।
 प्रतिष्ठितानि लिङ्गानि येषां सरया न विद्यते ॥ ४६ ॥
 तथा ह्युत्तरतस्तस्य यानदोषवती नदी ।
 सहस्रमेक लिङ्गानां द्रवपश्चिमत् ॥ ४७ ॥
 तस्यापि पूर्वदिग्भागे वालखिल्यैर्महात्मभिः ।
 प्रतिष्ठिता रुद्रकोटिर्योवत्संनिहित मरः ॥ ४८ ॥
 दक्षिणेन तु देवस्य गन्धर्वैर्धक्षकिन्नरैः ।
 प्रतिष्ठितानि लिङ्गानि येषां सरया न विद्यते ॥ ४९ ॥
 तिस्रः कोट्योऽर्धकोटी च लिङ्गानां वायुरग्रवीत् ।
 असंरपादाः सहस्राणि ये रुद्राः स्थाणुमाश्रिताः ॥ ५० ॥
 एतज्ज्ञात्वा श्रद्धधानः स्थाणुलिङ्गं समाश्रयेत् ।

यस्य प्रसादात् प्राप्नोति मनसा चिन्तित फलम् ॥ ५१ ॥
 अकामो वा सकामो वा प्रविष्टः स्थाणुमन्दिरम् ।
 विमुक्तः पातकैर्घोरैः प्राप्नोति परम पदम् ॥ ५२ ॥
 चैत्रे मासे त्रयोदश्या दिव्यनक्षत्रयोगतः ।
 शुक्रार्कचन्द्रसंयोगे दिने पुण्यतमे शुभे ॥ ५३ ॥
 प्रतिष्ठित स्थाणुलिङ्गं ब्रह्मणा लोकधारिणा ।
 ऋषिभिर्देवसर्वैश्च पूजितं श्वाश्वतीः समा ॥ ५४ ॥
 तस्मिन् काले निराहारा मानवाः श्रद्धयान्विताः ।
 पूजयन्ति शिवं ये वै ते यान्ति परम पदम् ॥ ५५ ॥
 तदारूढमिदं ज्ञात्वा ये कुर्वन्ति प्रदक्षिणम् ।
 प्रदक्षिणीकृता तैस्तु सप्तद्वीपा वसुधरा ॥ ५६ ॥

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये पञ्चविंशोऽध्याय ॥२५॥

स्वर्णलिङ्ग के षष्ठ भाग में तत्त्वदर्शी ऋषियों द्वारा असंख्य लिङ्ग प्रतिष्ठित हैं। इसी प्रकार उसके उत्तर में ओषधवती नदी तक देव के पश्चिम भाग में एक सहस्र लिङ्ग प्रतिष्ठित हैं। (४६-४७)

उसके पूर्व की दिशा में महात्मा वालखिल्यों ने सन्निहित सरोवर तक कोटि रुद्रों की प्रतिष्ठा की है। (४८)

देव के दक्षिण भाग में गन्धर्वों, यक्षों एवं किन्नरों ने असंख्य लिङ्गों को प्रतिष्ठित किया है। (४९)

वायु ने साठे तीन करोड़ लिङ्गों का वर्णन किया है। स्थाणुतीर्थ में असंख्य सहस्र रुद्र लिङ्ग वर्तमान हैं। (५०)

यह जानकर श्रद्धापूर्वक स्थाणुलिङ्ग का समाश्रयण करना चाहिये जिसके प्रसाद से मनुष्य मनोभिलषति फल

प्राप्त करता है। (५१)

सकाम वा निष्काम भाव से स्थाणु मंदिर में प्रवेश करने वाला मनुष्य घोर पातकों से विमुक्त होकर परम पद प्राप्त करता है। (५२)

चैत्रमास की त्रयोदशी तिथि को दिव्यनक्षत्रों के योग में शुक्र सूर्य तथा चन्द्र का संयोग होने पर पुण्यतम शुभ दिन में लोकधारी ब्रह्मा न स्थाणु लिङ्ग को प्रतिष्ठित किया था। ऋषियों एवं देवों द्वारा शाश्वत वर्षों तक अर्थात् सदैव इसकी पूजा होती है। (५३-५४)

उस समय निराहार रहकर ब्रह्मापूर्वक शिव की पूजा करने वाले मनुष्य परम पद प्राप्त करते हैं। (५५)

(स्थाणुलिङ्ग को) उनसे (शिव से) आरूढ मानकर उसकी प्रदक्षिणा करने वाले सप्तद्वीपा वसुधरा की प्रदक्षिणा कर लेते हैं। (५६)

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में पञ्चविंशोऽध्याय समाप्त ॥२५॥

मार्कण्डेय उवाच ।

स्थाणुतीर्थप्रभावं तु श्रीतुमिच्छाम्यह मुने ।
केन सिद्धिरथ प्राप्ता सर्वपापभयापहा ॥ १

सनत्कुमार उवाच ।

शृणु सर्वमशेषेण स्थाणुमाहात्म्यमुत्तमम् ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो मुक्तो भवति मानवः ॥ २
एकार्णवे जगत्प्रसिद्धे नष्टे स्थावरजङ्गमे ।
विष्णोर्नाभिसमुद्भूते पद्ममध्यक्तजन्मनः ।
तस्मिन् ब्रह्मा समुद्भूतः सर्वलोकपितामहः ॥ ३
तन्मान्मरीचिरभवन्मरीचैः कश्यपः सुतः ।
कश्यपादभवद् भास्वास्तस्मान्मनुजजायत ॥ ४
मनोस्तु क्षुवतः पुत्र उत्पन्नो मुखसंभवः ।
पृथिव्यां चतुरन्तायां राजासीद् धर्मरक्षिता ॥ ५
तस्य पत्नी बभूवाथ भया नाम भयावहा ।

मृत्योः सकाशादुत्पन्ना कालस्य दुहिता तदा ॥ ६
तस्यां समभवद् वेनो दुरात्मा वेदनिन्दकः ।
स दृष्ट्वा पुत्रवदनं क्रुद्धो राजा वनं ययौ ॥ ७
तत्र कृत्वा तपो घोरं धर्मेणावृत्य रोदसी ।
प्राप्तवान् ब्रह्मसदनं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥ ८
वेनो राजा समभवत् समस्ते खितिमण्डले ।
स मातामहदोषेण तेन कालात्मजात्मजः ॥ ९
घोषयामस नगरे दुरात्मा वेदनिन्दकः ।
न दातव्यं न यष्टव्यं न होतव्यं कदाचन ॥ १०
अहमेकोऽत्र वै वन्द्यः पूज्योऽहं भवतां सदा ।
मया हि पालिता युयं निवसन्व यथासुखम् ॥ ११
तन्मत्तोऽन्यो न देवोऽस्ति युष्माकं यः परायणम् ।
एतच्छ्रुत्वा तु वचनमृषयः सर्व एव ते ॥ १२
परस्परं समागम्य राजानं वाक्यमब्रुवन् ।

मार्कण्डेय ने कहा—हे मुनि ! मैं स्थाणुतीर्थ का प्रभाव
सुनना चाहता हूँ । यहाँ किसने समस्त पापों के भय को
दूर करने वाली सिद्धि प्राप्त की ? (१)

सनत्कुमार ने कहा—स्थाणु के उत्तम माहात्म्य को
पूर्णतया सुनो जिसे सुनकर मनुष्य सभी पापों से मुक्त
हो जाता है । (२)

इस स्थावर जंगमात्मक संसार के एकार्णव में नष्ट हो
जाने पर अव्यक्तजन्मा विष्णु की नाभि से एक पद्म उत्पन्न
हुआ । उसमें लोकपितामह ब्रह्मा उत्पन्न हुए । (३)

उससे मरीचि उत्पन्न हुए । मरीचि के पुत्र कश्यप
हुए । कश्यप से सूर्य की उत्पत्ति हुई एवं उनसे मनु का
जन्म हुआ । (४)

मनु के झींकेने पर उनके मुख से एक पुत्र उत्पन्न
हुआ । वह सम्पूर्ण पृथ्वी का धर्मरक्षक राजा हुआ । (५)
उसकी भया नाम की भयंकर पत्नी थी । वह मृत्यु से

उत्पन्न काल की पुत्री थी । (६)
उससे दुरात्मा वेदनिन्दक वेन उत्पन्न हुआ । उस
पुत्र के मुख को देखकर क्रुद्ध हुआ राजा वन में चला
गया । (७)

वहाँ घोर तपस्या कर, पृथ्वी एवं आकाश के मध्य
भाग को धर्म से आवृत कर वह राजा पुनरावृत्ति रहित
ब्रह्मलोक को चला गया । (८)

वेन समस्त पृथ्वीमण्डल का राजा हो गया । अपने
नाता के उस दोषवश उस दुरात्मा वेदनिन्दक कालात्मजा
(काल की पुत्री भया) के पुत्र ने नगर में यह घोषित
कराया कि “कभी भी दान, यज्ञ एवं हवन न किया
जाय।” (९-१०)

इस संसार में एकमात्र मैं ही आप लोगों का वन्द्य
और पूज्य हूँ । मेरे द्वारा पालित होकर आप लोग सुख-
पूर्वक निवास करें । (११)

इसलिये मुझसे अतिरिक्त अन्य कोई देवता नहीं है,

श्रुतिः प्रमाणं धर्मस्य ततो यज्ञः प्रतिष्ठितः ॥ १३
 यज्ञैर्विना नो प्रीयन्ते देवाः स्वर्गनिवासिनः ।
 अश्रीता न प्रयच्छन्ति वृष्टिं सम्यस्य वृद्धये ॥ १४
 तस्माद् यज्ञैश्च देवैश्च धार्यते सचराचरम् ।
 एतच्छ्रुत्वा क्रोधदृष्टिवेनः प्राह पुनः पुनः ॥ १५
 न यष्टव्यं न दातव्यमित्याह क्रोधमूर्च्छितः ।
 ततः क्रोधसमाविष्टा ऋषयः सर्वे एव ते ॥ १६
 निजघ्नुर्मन्त्रपूर्तस्ते कुशैर्वज्रसमन्वितैः ।
 ततस्त्वराजके लोके तमसा संवृते तदा ॥ १७
 दस्युभिः पीड्यमानास्तान् ऋषींस्ते शरणं ययुः ।
 ततस्ते ऋषयः सर्वे ममन्युस्तस्य वै करम् ॥ १८
 सव्यं तस्मात् समुचस्थौ पुरुषो ह्रस्वदर्शनः ।
 तमूचुर्ऋषयः सर्वे निपीदतु भवानिति ॥ १९
 तस्मान्निषादा उत्पन्ना वेनकल्पमपसंभवाः ।

जो आप लोगों का आश्रय हो सके । यह वचन सुनने के उपरान्त सभी ऋषियों ने परस्पर मिल कर राजा से यह वचन कहा—धर्म के लिये श्रुति ही प्रमाण है । उसी से यज्ञ प्रतिष्ठित होता है । (१२-१३)

यज्ञों के बिना स्वर्गनिवासी देवता प्रसन्न नहीं होती एव बिना प्रसन्न हुए वे अन्न की वृद्धि हेतु वृष्टि नहीं करते । (१४)

अतएव यज्ञों और देवताओं से ही चराचर ससार का धारण होता है । यह सुनकर क्रुद्ध वेन ने बार-बार कहा— (१५)

“यज्ञ और दान नहीं करना चाहिए” ऐसा कह कर वह क्रोधान्न हो गया । तदनन्तर क्रुद्ध उन सभी ऋषियों ने मन्त्र से पवित्र वज्रमय कुशों से उसे मार डाला । तब राजा से विद्वीन होने के कारण सारे ससार के अन्धकार से आच्छादित हो जाने पर दस्युओं से पीडित सभी लोग उन ऋषियों की शरण में गए । तदनन्तर सभी ऋषियों ने उसके बाएँ हाथ का मन्थन किया । उससे एक ह्रस्व दिव्यार्ई पढ़ने वाला (वीना) पुरुष निकल्य, उससे ऋषियों ने कहा—“निपीदतु भवान्”, अर्थात् आप बैठें । (१६-१९)

उससे वेन के पाशों से सम्भूत निषाद उत्पन्न हुए । तदनन्तर उन समस्त ऋषियों ने उसके दाहिने हाथ का

ततस्ते ऋषयः सर्वे ममन्युर्दक्षिणं करम् ॥ २०
 मन्थमाने करे तस्मिन् उत्पन्नः पुरुषोऽपरः ।
 वृहद्सालप्रतीकाशो दिव्यलक्षणलक्षितः ॥ २१
 धनुर्बाणाङ्कितकरश्चक्रध्वजसमन्वितः ।
 तद्वत्पन्नं तदा दृष्ट्वा सर्वे देवाः सवासवाः ॥ २२
 अन्यपिञ्चनं पृथिव्यां तं राजानं भूमिपालकम् ।
 ततः स रञ्जयामास धर्मेण पृथिवीं तदा ॥ २३
 पित्राऽपरञ्जिता तस्य तेन सा परिपालिता ।
 तत्र राजेतिशब्दोऽस्य पृथिव्या रञ्जनादभूत् ॥ २४
 स राज्यं प्राप्य तेभ्यस्तु चिन्तयामास पार्थिवः ।
 पिता मम अधर्मिष्ठो यज्ञच्युञ्चितिकारकः ॥ २५
 कथं तस्य क्रिया कार्या परलोकसुखावहा ।
 इत्येवं चिन्तयानस्य नारदोऽभ्याजगाम ह ॥ २६
 तस्मै स चासनं दत्त्वा प्रणिपत्य च पृष्टवान् ।

मन्थन किया । (२०)

उस हाथ के मये जाने पर ऊँचे शाल वृक्ष के समान और दिव्य लक्षणों से युक्त एक दूसरा पुरुष उत्पन्न हुआ । (२१)

उसके हाथ में धनुष बाण, चक्र और ध्वजा का चिह्न था । उस समय उसे उत्पन्न हुआ देवदत्त इन्द्र सहित सभी देवताओं ने उसको पृथ्वी में भूपालक राजा के रूप में अभिषिक्त किया । तदनन्तर उसने धर्मपूर्वक पृथ्वी का रजन किया अर्थात् प्रसन्न किया । (२२-२३)

उसके पिता ने पृथ्वी का अपरञ्जित (विरक्त, दुःखी) किया था और उसने उसका पालन किया । पृथ्वी का रजन करने से ही उसका राजा यह नाम हुआ । (२४)

उससे राज्य प्राप्त करने के उपरान्त उस राजा ने विचार किया कि मेरे पिता अधर्मिष्ठ ए यज्ञ के उच्छेदकर्ता थे, अतः उनकी परलोक-सुखावह क्रिया किस प्रकार की जाय । उसके ऐसा विचार करते समय नारद जी आ पहुँचे । (२५-२६)

उन्हें आसन देने के उपरान्त उसने प्रणाम कर पूछा— हे भगवन् । आप सभी लोगों के शुभाशुभ को जानते हैं । हे विप्र । मेरे दुराचारी, देव माराण निन्दक एवं स्वकर्मरहित

भगवन् सर्वलोकस्य वानामि त्वं शुभाशुभम् ॥ २७

पिता मम दुराचारो देवब्राह्मणनिन्दकः ।

स्वकर्म्मरहितो विप्र परलोकमवाप्तवान् ॥ २८

ततोऽप्रवीच्यारदस्तं ह्यात्वा दिव्येन चक्षुषा ।

श्लेच्छमध्ये समुत्पन्नं क्षयकृष्टसमन्वितम् ॥ २९

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य नारदस्य महात्मनः ।

चिन्तयामास तु श्चार्चः कथं कार्यं मया भवेत् ॥ ३०

इत्येवं चिन्तयानस्य मतिर्जाता महात्मनः ।

पुत्रः स कथ्यते लोके यः पितुंस्त्रायते भयात् ॥ ३१

एवं संचिन्त्य स तदा नारदं पृष्टवान् मुनिम् ।

तारणं मरिपतुस्तस्य मया कार्यं कथं ह्यने ॥ ३२

नारद उवाच ।

गच्छ त्वं तस्य तं देहं तीर्थेषु कुरु निर्मलम् ।

यत्र स्याणोर्महतीर्थं सरः संनिहितं प्रति ॥ ३३

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं नारदस्य महात्मनः ।

सचिचे राज्यमाधाय राजा स तु जगाम ह ॥ ३४

म गत्वा चोत्तरां भूमिं श्लेच्छमध्ये ददर्श ह ।

पिता परलोकगामी हो गए हैं ।

(२७-२८)

तदनन्तर दिव्य दृष्टि से उसको देव कर नारद ने कहा—यह क्षय और कुष्ठ रोग से आक्रान्त होकर श्लेच्छों के मध्य उत्पन्न हुआ है ।

(२९)

उन महात्मा नारद के इस वचन को सुनकर दुःखी हो उसने विचार किया मुझे क्या करना चाहिये ?

(३०)

इस प्रकार विचार कर रहे महात्मा के मन में यह सुद्धि उत्पन्न हुई कि संसार में पुत्र उसी को कहा जाता है जो पित्रों का भय से प्राण करता है ।

(३१)

इस प्रकार विचार कर उसने नारद मुनि से पूछा—हे मुने ! मैं अपने पिता को कैसे वास्तुं ?

(३२)

नारद ने कहा—तुम स्याणु के मर्दवर्धिरूप संनिहित सर की ओर जाओ पर्यं वस्तकं शरीर को तीर्थों में निर्मल करो ।

(३३)

महात्मा नारद की यह बात सुन कर वह राजा मन्त्री पर राज्य का भार देकर पला गया ।

(३४)

उत्तर दिया मैं जाकर उसने श्लेच्छों के बीच महात्

कुष्ठरोगेण महता क्षयेण च समन्वितम् ॥ ३५

ततः शोकेन महता संतप्तो वाक्यमब्रवीत् ।

हे श्लेच्छा नौमि पुरुषं स्वगृहं च नयाम्यहम् ॥ ३६

तत्राहमेनं निरुजं करिष्ये यदि मन्यथ ।

तथेति सर्वे ते श्लेच्छाः पुरुषं तं दयापरम् ॥ ३७

ऊचुः प्रणतमर्वाङ्गा यथा जानासि तत्कुरु ।

तत आनीय पुरुषान् शिविकावाहनोचितान् ॥ ३८

दत्त्वा शुल्कं च द्विगुणं सुतेन नयत द्विजम् ।

ततः श्रुत्वा तु वचनं तस्य राज्ञो दयावतः ॥ ३९

गृहीत्वा शिविकां क्षिप्रं कुरुक्षेत्रेण यान्ति ते ।

तत्र नीत्वा स्थापुतीर्थे अवतार्य च ते गताः ॥ ४०

ततः स राजा मष्पाह्ने तं स्नापयति वै तदा ।

ततो वायुरन्तरिक्षे इदं वचनमब्रवीत् ॥ ४१

मा तात साहसं कार्षीस्तीर्थं रक्ष प्रयत्नतः ।

अयं पापेन धारेण अतीव परिवेष्टितः ॥ ४२

वेदनिन्दा महत्पापं यस्यान्तो नैव लभ्यते ।

सोऽयं स्नानान्महतीर्थं नाशयिष्यति तत्क्षणत् ॥ ४३

कुष्ठ और क्षय रोग से आक्रान्त अपने पिता को देसा ।

(३५)

तदनन्तर महान् शोक सन्तप्त हो उसने कहा—हे श्लेच्छो ! मैं प्रणाम करता हूँ और इस पुरुष को अपने घर ले जाता हूँ ।

(३६)

यदि तुम लोगों की अनुमति हो तो इस पुरुष को मैं यहाँ नीरोग करूँगा । सभी श्लेच्छों ने सर्वांग प्रणिपात पूर्वक उस दयालु पुरुष से कहा—'अच्छा ! तुम जैसा समझो वैसा करो । तदनन्तर शिविकावाहकों को बुलाकर उन्हें दुगुना पारिव्रजिक देने के उपरान्त उसने कहा—इस द्विज को सुनपूर्वक ले चलो । उस दयालु राजा के वचन को सुन कर उन्होंने पालकी बटायी और शीघ्रता से कुरुक्षेत्र होते हुए स्थापुतीर्थ में ले जाकर उसे उत्तारने के पश्चात् वे चले गए ।

(३७-४०)

तदनन्तर जब वे राजा मष्पाहन में इसे स्नान कराने लगे तो अन्तरिक्ष से थायु ने यह वचन कहा—हे तात ! साहस मत करो । तीर्थ की प्रयत्नपूर्वक रक्षा करो । यह धीर पाप से अत्यन्त आहत है । वेदनिन्दा महापाप है, जिसका जल्प

एतद् वायोर्बचः श्रुत्वाद्दुःखेन महताऽन्वितः ।
 उवाच श्लोकसंततस्तस्य दुःखेन दुःखितः ।
 एष घोरेण पापेन अतीव परिचेष्टितः ॥ ४४
 प्रायश्चित्तं करिष्येऽहं यद्दृदिष्यन्ति देवताः ।
 ततस्ता देवताः सर्वा इदं वचनमब्रुवन् ॥ ४५
 स्नात्वा स्नात्वा च तीर्थेषु अभिषिञ्चस्व वारिणा ।
 ओजसा शुद्धं यावत् प्रसिद्धे सरस्वतीम् ॥ ४६
 स्नात्वा मुक्तिमवाप्नोति पुरुषः श्रद्धयान्वितः ।
 एष स्वपोषणपरो देवदूषणतत्परः ॥ ४७
 ब्राह्मणैश्च परित्यक्तो नैष शुद्ध्यति कर्हिचिद् ।
 तस्मादेनं समुद्दिश्य स्नात्वा तीर्थेषु भक्तितः ॥ ४८
 अभिषिञ्चस्व तोयेन ततः पूतो भविष्यति ।
 इत्येतद्वचनं श्रुत्वा कृत्वा तस्याश्रमं ततः ॥ ४९
 तीर्थयात्रां ययौ राजा उद्दिश्य जनकं स्वकम् ।
 स तेषु प्लावभं कुर्वस्तीर्थेषु च दिने दिने ॥ ५०
 अभ्यषिञ्चत् स्वपितरं तीर्थतोयेन नित्यशः ।

नहीं होता। अतएव यह स्नान द्वारा इस महान् तीर्थ को तत्काल नष्ट कर देगा। (४१-४३)

बापु के इस वचन को सुन कर दुःखी एवं शोक-सन्तप्त राजा ने पढ़ा—यह घोर पाप से सुतरां व्याप्त है। (४४)

देवगण जो प्रायश्चित्त करेंगे उसे मैं करूँगा। तदनन्तर वन सभी देवताओं ने यह बात कही—तीर्थों में स्नान करके जल द्वारा इसे अभिषिक्त करो। सरस्वती के किनारे ओजस से पुत्ररूप पर्यन्त प्रत्येक तीर्थ में स्नान करने वाला ब्रह्मालु पुरुष मुक्ति प्राप्त करता है। यह स्वपोषण मे रत एवं वैवर्निन्दा मे तत्पर था तथा ब्राह्मणों ने इसका परित्याग कर दिया था। यह कदापि शुद्ध नहीं हो सकता। अतः इसके उद्देश्य से भक्तिपूर्वक तीर्थों में स्नान कर जल से इसे अभिषिक्त करो। इससे यह शुद्ध हो जायगा। यह वचन सुनने के उपरान्त वहाँ उसका आश्रम बनाकर राजा अपने पिता के निमित्त तीर्थयात्रा करने गये। प्रतिदिन वन तीर्थों में स्नान कर वे तीर्थजल से अपने पिता को अभिषिक्त करने लगे। इसी समय वहाँ एक कुत्ता आया। (पूर्वकाल में) वह स्थाणु तीर्थ स्थित मठ में

एतस्मिन्नेव काले तु सारमेयो जगाम ह ॥ ५१
 स्थाणोर्मठे कौलपतिर्देवद्रव्यस्य रक्षिता ।
 परिग्रहस्य द्रव्यस्य परिपालयिता सदा ॥ ५२
 प्रियश्च सर्वलोकेषु देवकार्यपरायणः ।
 तस्यैवं वर्त्तमानस्य धर्ममार्गे स्थितस्य च ॥ ५३
 कालेन चलिता बुद्धिर्देवद्रव्यस्य नाशने ।
 तेनाधर्मेण युक्तस्य परलोकगतस्य च ॥ ५४
 दृष्ट्वा यमोऽब्रवीद् वक्तव्यं स्वयोजिं प्रज मा चिरम् ।
 तद्वापयानन्तरं जातः श्वा वै सौगन्धिके वने ॥ ५५
 ततः कालेन महता श्वपुत्रपरिवारितः ।
 परिभूतः सरमया दुःखेन महता घृतः ॥ ५६
 त्यक्तवा द्वैतवनं पुण्यं सान्निहित्यं ययौ सरः ।
 तस्मिन् प्रविष्टमात्रस्तु स्थाणोरेव प्रसादतः ॥ ५७
 अतीव तृपया युक्तः सरस्वत्यां ममज्ज ह ।
 तत्र मंशुवदेहस्तु विमुक्तः सर्वकिल्बिषैः ॥ ५८
 आहारलोभेन तदा प्रविवेश कुटीरकम् ।

देव द्रव्य का रक्षक, परिग्रह के द्रव्य का सदा पालक, सर्वलोकप्रिय एवं देव-कार्य में रत (महन्त) था। इस प्रकार जीवनयापन कर रहे तथा धर्म मार्ग में स्थित उस कौलपति की बुद्धि कालान्तर में विचलित हो गई। वह देवद्रव्य का नाश करने लगा। उस अधर्म से युक्त होकर उसके परलोक में जाने पर यमराज ने उसे देखकर कहा "कुत्ते की योजि में जाओ, देर मत करो।" उनके कहने के पश्चात् वह सौगन्धिक वन में घुत्ता बनकर उत्पन्न हुआ। (४५-४९)

तदनन्तर दीर्घ काल बीतने पर कुत्तों के समूह से आवृत वह कुतिया से अपमानित होने के कारण अत्यन्त दुःखित हुआ। (५६)

द्वैतवन को छोड़ कर वह पवित्र सान्निहित्य सरोवर में पहुँचा। उसमें प्रवेश करते ही स्थाणु की कृपा से अत्यन्त तृपायुक्त होकर उसने सरस्वती नदी में डुबकी लगाई। उसमें स्नान करने के उपरान्त वह समस्त पापों से विमुक्त हो गया। (५७-५८)

तदनन्तर आहार के लोभवश वह कुटी में प्रविष्ट हुआ। कुत्ते को प्रवेश करते देख भयमत्त हो उसने (बेन) में उसका

प्रविशन्तं तदा दृष्ट्वा श्वानं भयसमन्वितः ॥ ५९ ॥
 स तं पस्पर्श शनकैः स्थाणुतीर्थं ममज ह ।
 पततः पूर्वतीर्थेषु त्रिप्रुपैः परिपिञ्चतः ॥ ६० ॥
 शुनोऽस्य गात्रसभूतैरन्विन्दृभिः स सिञ्चितः ।
 विरक्तदृष्टिश्च शुनः क्षेपेण च ततः परम् ॥ ६१ ॥
 स्थाणुतीर्थस्य माहात्म्यात् स पुत्रेण च तारितः ।
 नियतस्तत्क्षणाज्जातो दिव्यदेहसमन्वितः ।
 ग्रणिपत्य तदा स्थाणुं स्तुतिं कर्तुं प्रचक्रमे ॥ ६२ ॥
 वेन उवाच ।

प्रपद्ये देवमीशान त्वामजं चन्द्रभूषणम् ।
 महादेवं महात्मान विश्वस्य जगतः पतिम् ॥ ६३ ॥
 नमस्ते देवदेवेश सर्वशत्रुनिपूदन ।
 देवेश बलिविष्टम्भदेवदैत्यूथ पूजित ॥ ६४ ॥
 विरूपाक्ष सहस्राक्ष त्र्यक्ष यक्षेश्वरप्रिय ।
 सर्वतः पाणिपादान्त सर्वतोऽक्षिशिरोमुख ॥ ६५ ॥
 सर्वतः श्रुतिमण्डोके सर्वमादृत्य तिष्ठति ।

धीरे से स्पर्श किया एव धीरे धीरे स्थाणुतीर्थ में मज्जन किया । पूर्वतीर्थों में स्नान कर तीर्थ जल से अभिषिक्त करने वाले पुत्र से परिपिञ्चित होने, एव उस कुत्ते के शरीर से निकले जलचिन्तुओं से सिञ्चित होने तथा कुत्ते (के भय वग) स्थाणुतीर्थ में गिरने से वह विरक्तदृष्टि हो गया । (५९-६१)

स्थाणुतीर्थ के माहात्म्य से पुत्र द्वारा तारित होने से नियमधारी वह तक्षण दिव्यदेह युक्त होकर स्थाणु को प्रणाम करने के उपरान्त स्तुति करने लगा । (६२)

वेन ने कहा—मैं आप अज, चन्द्रभूषण, ईशान, देव, महात्मा, महादेव, समस्त जगत् के पति की शरण ग्रहण करता हूँ । (६३)

हे देवदेवेश ! हे समस्त शत्रुओं के निपूतन ! हे देवेश ! हे बलि को निरूद्ध करने वाले ! हे देव-दैत्यों से पूजित ! आपने नमस्कार हे । (६४)

हे विरूपाक्ष ! हे सहस्राक्ष ! हे त्र्यक्ष ! हे यक्षेश्वर प्रिय ! हे चारों ओर से पाणिपादयुक्त ! हे चारों ओर और एवं मुखवाले ! आपको नमस्कार हे । (६५)

आपका भोग्य सभी स्थानों पर व्याप्त है । ससार में आपने सभी को आशुत कर रखा है । हे शङ्करण ! हे

शङ्करण महाकर्ण कुम्भकर्णार्णवालय ॥ ६६ ॥
 गजेन्द्रकर्ण गोकर्ण पाणिकर्ण नमोऽस्तु ते ।
 शतजिह्व शतावत शतोदर शतानन ॥ ६७ ॥
 गायन्ति त्वां गायत्रिणो ह्यर्चयन्त्यर्कमर्चिणः ।
 ब्रह्माणं त्वा शतक्रतो उदंशमिव मेनिरे ॥ ६८ ॥
 मूर्त्तौ हि ते महामूर्त्तौ समुद्राम्बुधरात्म्या ।
 देवताः सर्व एवात्र गोष्ठे गाव इवास्ते ॥ ६९ ॥
 शरीरे तव पश्यामि सोममग्निं जलेश्वरम् ।
 नारायणं तथा सूर्यं ब्रह्माणं च बृहस्पतिम् ॥ ७० ॥
 भगवान् कारणं कार्यं क्रियाकारणमेव तत् ।
 प्रभवः प्रलयश्चैव सदसचापि दैवतम् ॥ ७१ ॥
 नमो भवाय शर्वाय वरदायोरुप्ररूपिणे ।
 अन्धकासुरहन्ते च पशूनां पतये नमः ॥ ७२ ॥
 त्रिजटाय त्रिशीपीय त्रिशूलासक्तपाणये ।
 त्र्यम्बकाय त्रिनेत्राय त्रिपुरस्र नमोऽस्तु ते ॥ ७३ ॥
 नमो मण्डाय चण्डाय अण्डायोत्पत्तिहेतवे ।

महाकर्ण ! हे कुम्भकर्ण ! हे समुद्र निवासी ! (आपको नमस्कार हे) । (६६)

हे गजेन्द्रकर्ण ! हे गोकर्ण ! हे पाणिकर्ण ! हे शतजिह्व ! हे शतावत ! हे शतोदर ! हे शतानन ! आपको नमस्कार हे । (६७)

गायत्री जपने वाले आपकी ही महिमा गाते हैं । सूर्योपासक आपकी ही सूर्य रूप से उपासना करते हैं । आप को ही सभी लोग इन्द्र से उत्पन्न बंशवाला ब्रह्मा मानते हैं । (६८)

हे महामूर्त्ति ! आपकी मूर्त्ति में समुद्र, मेघ और समस्त देवता इस प्रकार स्थित जैसे गोशाला में गौएँ निवास करती हैं । (६९)

आपके शरीर में मैं सोम, अग्नि, वरुण, नारायण, सूर्य, ब्रह्मा, और बृहस्पति को देख रहा हूँ । (७०)

आप भगवान्, कारण, कार्य, क्रिया-कारण, प्रभव, प्रलय, सन्, असत् एवं दैवत हैं । (७१)

भव, राधे, वरद, उग्रहृषी, अन्धकासुरहन्ता और पशुओं के पति को नमस्कार हे । (७२)

हे त्रिपुरनाशक ! तीन जटा वाले, तीन शिर वाले, त्रिशूल में आसक्तपाणि वाले, त्र्यम्बक, त्रिनेत्र स्वरूप आप को नमस्कार हे । (७३)

द्विण्डिमासक्तहस्ताय द्विण्डिमण्डाय ते नमः ॥ ७४ ॥
 नमोर्ध्वकेशदंष्ट्राय शुष्काय विकृताय च ।
 भृशलोहितकृष्णाय नीलप्रीषाय ते नमः ॥ ७५ ॥
 नमोऽस्त्वप्रतिरूपाय विरूपाय शिवाय च ।
 सूर्यमालाय सूर्याय स्वरूपध्वजमालिने ॥ ७६ ॥
 नमो मानाविमानाय नमः पटुतराय ते ।
 नमो गणेन्द्रनाथाय वृषस्कन्धाय धन्विने ॥ ७७ ॥
 सस्कन्धनाय चण्डाय पर्णधारपुटाय च ।
 नमो हिरण्यवर्णाय नमः कनकवर्चसे ॥ ७८ ॥
 नमः स्तुताय स्तुत्याय स्तुतिस्त्राय नमोऽस्तु ते ।
 सर्वाय सर्वभक्षाय सर्वभूतशरीरिणे ॥ ७९ ॥
 नमो होत्रे च हन्त्रे च सितोदप्रपताकिने ।
 नमो नम्याय नम्राय नमः कटकटाय च ॥ ८० ॥
 नमोऽस्तु कृशनाशाय शयितायोत्थिताय च ।
 स्थिताय धावमानाय मण्डाय कुटिलाय च ॥ ८१ ॥
 नमो नर्त्तनशीलाय लयवादित्रशालिने ।
 नाट्योपहारलुब्धाय मुखवादित्रशालिने ॥ ८२ ॥

मुण्ड, चण्ड, अण्ड, उत्पत्तिहेतु, द्विण्डिमपाणि एव
 द्विण्डिमण्ड आप को नमस्कार है । (७४)
 ऊर्ध्वकेश, ऊर्ध्वदंष्ट्र, शुष्क, विकृत, धूस, लोहित,
 कृष्ण एव नीलप्रीष आपको नमस्कार है । (७५)
 अप्रतिमस्वरूप, विरूप, शिव, सूर्यमालाधारी, सूर्य एव
 स्वरूपध्वजमाली को नमस्कार है । (७६)
 मानाविमान को नमस्कार है । आप पटुतर को नमस्कार है ।
 गणेन्द्रनाथ, वृषस्कन्ध एव धन्वी को नमस्कार है । (७७)
 सकन्द, चण्ड, पर्णधारपुट एवं हिरण्यवर्ण को नम
 स्कार है । कनकवर्चस् को नमस्कार है । (७८)
 स्तुत तथा स्तुत्य को नमस्कार है । स्तुतिस्त्र, सर्व,
 सर्वभक्ष एव सर्वभूतशरीरी आप को नमस्कार है । (७९)
 होता, हन्ता तथा सितोदप्रपताकी को नमस्कार है ।
 नम्य एव नम्र का नमस्कार है । कटकट को नमस्कार
 है । (८०)
 कृशनाश, शयित, उत्थित, स्थित, धावमान, मुण्ड एव
 कुटिल को नमस्कार है । (८१)
 नर्त्तनशील, लयवादित्रशाली, नट्योपहारलुब्ध एव
 मुखवादित्रशाली को नमस्कार है । (८२)

नमो ज्येष्ठाय श्रेष्ठाय बलातिबलघातिने ।
 कालनाशाय कालाय ससारक्षयरूपिणे ॥ ८३ ॥
 हिमवद्दुहितुः कान्त भैरवाय नमोऽस्तु ते ।
 उग्राय च नमो नित्य नमोऽस्तु दक्षनाहवे ॥ ८४ ॥
 चितिभस्मप्रियायैव कपालासक्तपाणये ।
 विभीषणाय भीष्माय भीमव्रतधराम च ॥ ८५ ॥
 नमो विकृतवक्त्राय नमः प्लुतोब्रह्मण्ये ।
 पकाममासलुब्धाय तुम्बिवीणाप्रियाय च ॥ ८६ ॥
 नमो वृषाङ्कवृक्षाय गोवृषाभिस्तुते नमः ।
 कटकटाय भीमाय नमः परपराय च ॥ ८७ ॥
 नमः सर्ववरिष्ठाय वराय वरदायिने ।
 नमो विरक्तरक्ताय भावनायाक्षमालिने ॥ ८८ ॥
 विभेदभेदभिन्नाय छायायै तपनाय च ।
 अघोरघोररूपाय घोरघोरतराय च ॥ ८९ ॥
 नमः शिवाय शान्ताय नमः शान्ततरमाय च ।
 बहुनेत्रत्रपात्राय एकमूर्धे नमोऽस्तु ते ॥ ९० ॥
 नमः क्षुद्राय लुब्धाय यज्ञभागप्रियाय च ।

ज्येष्ठ, श्रेष्ठ, बलातिबलघाती, कालनाश, काल एव ससार-
 क्षयरूपीको नमस्कार है । (८३)
 हे हिमालय की दुहिता के पति ! आप भैरव को
 नमस्कार है । उग्र को नित्य नमस्कार है । दक्ष बाहों वाले को
 नमस्कार है । (८४)
 चितिभस्मप्रिय, कपालपाणि, विभीषण, भीष्म एवं
 भीमव्रतधर को (नमस्कार है) । (८५)
 विकृतवक्त्र को नमस्कार है । प्लुतोब्रह्मण्य, पकाममासलुब्ध
 एव तुम्बिवीणाप्रिय को नमस्कार है । (८६)
 वृषाङ्कवृक्ष को नमस्कार है । गोवृषाभिस्तुत को नमस्कार
 है । कटकट, भीम एव परपर को नमस्कार है । (८७)
 सर्ववरिष्ठ, वर एव वरदायी को नमस्कार है । विरक्तरक्त,
 भावन एव अक्षमाली को नमस्कार है । (८८)
 विभेदभेदभिन्न, छाया, तपन, अघोरघोररूप एव घोर
 घोरतर (को नमस्कार है) । (८९)
 शिव एव शान्त को नमस्कार है । शान्ततम, अनेकनेत्र
 एव कपालधारी को नमस्कार है । हे एकमूर्ति ! आपका
 नमस्कार है । (९०)
 क्षुद्र, लुब्ध, यज्ञभागप्रिय, पञ्चाक्ष एव सितान्न का

पञ्चालाय सिताङ्गाय नमो यमनियामिने ॥ ९१
 नमश्चित्रोहघण्टाय घण्टायष्टनिषण्टिने ।
 सहस्रशतघण्टाय घण्टामालाविभूषिणे ॥ ९२
 प्राणसंघट्टगर्वाय नमः किलिकिलिप्रिये ।
 हुंहुंकाराय पाराय हुंहुंकारप्रियाय च ॥ ९३
 नमः समममे नित्यं शृद्धृङ्गनिकेतने ।
 गर्भमांसशृङ्गालाय तारकाय तराय च ॥ ९४
 नमो यज्ञाय यज्ञिने हुताय प्रहुताय च ।
 यज्ञवाहाय हव्याय तप्याय तपनाय च ॥ ९५
 नमस्तु पयसे तुभ्यं तुण्डानां पतये नमः ।
 अन्नदायान्नपतये नमो नानान्नभोजिने ॥ ९६
 नमः महश्शीर्षाय सहस्रचरणाय च ।
 सहस्रोद्यतशलाय सहस्राभरणाय च ॥ ९७
 पालानुचरगोष्ये च पालश्रीलानिलासिने ।
 नमो बालाय वृद्धाय ध्रुवधाय क्षोभणाय च ॥ ९८
 गङ्गातुलितकेशाय मुञ्जकेशाय च नमः ।
 नमः पट्कर्मतुष्टाय त्रिकर्मनरत्नाय च ॥ ९९

नमस्कार है । यम के नियमनकर्ता को नमस्कार है । (९१)
 चित्रोरुपष्ट, घण्टापष्टनिषण्टी, सहस्रशतघण्ट
 एवं घण्टामालाविभूषित को नमस्कार है । (९२)
 प्राणसंघट्टगर्भ, किलिकिलिप्रिय, हुंहुंकार, पार एवं
 हुंहुंकारप्रिय को नमस्कार है । (९३)
 समसम, शृद्धृङ्गनिकेती, गर्भमांसशृङ्गाल, तारक
 एवं तर को नित्य नमस्कार है । (९४)
 यम, यजमान, हुन, प्रहुन, यज्ञवाह, हव्य, तप्य
 और तपन को नमस्कार है । (९५)
 पयस आपसे नमस्कार है । गुण्डों के पति को नम-
 स्कार है । अन्नद, अन्नपति एवं नानान्नभोजी को नमस्कार
 है । (९६)
 सहस्रशीर्ष, सहस्रचरण, सहस्रोद्यतशला एवं सहस्रा-
 भरण को नमस्कार है । (९७)
 बालानुचरगोष्या, ध्रुवश्रीलानिलासिनी, बाल, वृद्ध, ध्रुव
 एवं क्षोभन को नमस्कार है । (९८)
 गंगातुलितकेश, और मुञ्जकेश को नमस्कार है । पट-
 कर्म शृद्धृङ्गनिकेतन को नमस्कार है । (९९)

नग्नप्राणाय चण्डाय कृशाय स्फोटनाय च ।
 धर्मार्थकाममोक्षाणां कथ्याय कथनाय च ॥ १००
 साह्वयाय साह्वयमुख्याय साह्वययोगमुखाय च ।
 नमो विरथरथ्याय चतुष्पथरथाय च ॥ १०१
 कृष्णाजिनोत्तरीयाय व्यालयज्ञोपवीतिने ।
 वक्त्रसंधानकेशाय हरिकेश नमोऽस्तु ते ।
 त्र्यम्बिकात्मिकनायायव्यक्ताव्यक्ताय वेधसे ॥ १०२
 कामकामदकामन्न तृमाहृषविचारिणे ।
 नमः सर्वद पापघ्न कल्पसंख्याविचारिणे ॥ १०३
 महामत्स्य महाबाहो महारत्न नमोऽस्तु ते ।
 महामेघ महाप्ररथ महाकाल महाद्युते ॥ १०४
 मेयावर्च युगावर्च चन्द्रार्कपतये नमः ।
 त्वमन्नमन्नमोक्षता च पक्षुक् पावनोत्तम ॥ १०५
 जरायुनाण्डजाश्रयै स्वेदजोद्धिद्रजाश्रये ।
 त्वमेव देवदेवेश भूतप्रामथतुरिधः ॥ १०६
 स्रष्टा चराचरस्यास्य पाता हन्ता तथैव च ।

नग्नप्राण, चण्ड, कृश, स्फोटन तथा धर्म, अर्थ, काम
 और मोक्ष के कथ्य और कथन को नमस्कार है । (१००)
 साह्वय, साह्वयमुख्या, साह्वय-योगमुख, विरथरथ्य
 तथा चतुष्पथरथ को नमस्कार है । (१०१)
 हे हरिकेश ! कृष्णाजिनोत्तरीय, व्यालयज्ञोपवीती,
 वक्त्रसंधानकेश, त्र्यम्बिकात्मिकनाय, व्यक्ताव्यक्त एवं वेधा
 स्वरूप आपको नमस्कार है । (१०२)
 हे काम ! हे कामद ! हे कामन्न ! आप तृमाहृष-
 विचारी, को नमस्कार है । हे सर्वद ! हे पापघ्न ! आप
 कल्पसंख्याविचारी को नमस्कार है । (१०३)
 हे महास्रव ! हे महाबाहु ! हे महाबल ! हे महामेघ !
 हे महाप्ररथ ! हे महाकाल ! एवं हे महाद्युति ! आपको
 नमस्कार है । (१०४)
 हे मेयावर्च ! हे युगावर्च ! आप चन्द्रार्कपति को
 नमस्कार है । आप ही अन्न, अन्न के मोक्ष, पक्षुक् एवं
 पावनोत्तम हैं । (१०५)
 हे देवदेवेश ! आप ही जरायुज, अण्डज, स्वेदज,
 इन्द्रिमात्र चतुरिध भूतनाम हैं । (१०६)

त्वामाहुर्मन्त्रं विद्वांसो ब्रह्म ब्रह्मविदां गतिम् ॥ १०७
 मनसः परमज्योतिस्त्वं वायुज्योतिषामपि ।
 हंसवृक्षे मधुकरमाहुस्त्वां ब्रह्मवादिनः ॥ १०८
 यजुर्मयो ऋहृमयस्त्वामाहुः साममयस्तथा ।
 पठ्यसे स्तुतिभिर्नित्यं वेदोपनिषदां गणैः ॥ १०९
 ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा वर्णावराथ ये ।
 त्वमेव मेघसंधाश्च विद्युतोऽग्निगजितम् ॥ ११०
 संवत्सरस्त्वमृतयो मासो मासार्थमेव च ।
 युगा निमेषाः काष्ठाश्च नक्षत्राणि ग्रहाः कलाः ॥ १११
 वृक्षाणां ककुभोऽसि त्वं गिरीणां हिमवान् गिरिः ।
 व्याघ्रो मृगाणां पत्तां तार्क्ष्योऽनन्तश्च भोगिनाम् ॥ ११२
 क्षीरोदोऽस्युदधीनां च यन्त्राणां धनुरेव च ।
 वज्रं प्रहरणानां च व्रतानां सत्यमेव च ॥ ११३
 त्वमेव द्वेष इच्छा च रागो मोहः क्षमाद्यमे ।
 व्यवसायो धृतिर्लोभः कामक्रोधौ ज्ञानयौ ॥ ११४

त्वं शरी त्वं गदी, चापि खट्वाह्नी च शरासनी ।
 छेत्ता भेत्ता प्रहर्ताऽसि मन्ता नेता सनावनः ॥ ११५
 दशलक्षणसंयुक्तो धर्मोऽर्थः काम एव च ।
 समुद्राः सरितो गङ्गा पर्वताश्च सरांसि च ॥ ११६
 लतावल्गवस्तृणौषध्यः पशवो मृगपक्षिणः ।
 द्रव्यकर्मगुणारम्भः कालपुष्पफलप्रदः ॥ ११७
 आदिशान्तश्च वेदानां गायत्री प्रणवस्तथा ।
 लोहितो हरितो नीलः कृष्णः पीतः सितस्तथा ॥ ११८
 कद्रुश्च कपिलश्चैव कपोतो मेचकस्तथा ।
 सवर्णश्चाप्यवर्णाश्च कर्ता हर्ता त्वमेव हि ॥ ११९
 त्वमिन्द्रश्च यमश्चैव वरुणो धनदोऽनिलः ।
 उपप्लवश्चित्रमातुः स्वर्मातुरेव च ॥ १२०
 शिक्षाहोत्रं त्रिसौपर्णं यजुषां शतरुद्रियम् ।
 पवित्रं च पवित्राणां मङ्गलानां च मङ्गलम् ॥ १२१
 तिन्दुको गिरिजो वृक्षो ह्यद्रं चाखिलजीवनम् ।

आप इस चराचर के स्रष्टा, पाता एवं हन्ता हैं ।
 ब्रह्मवेत्ता लोग आप को ब्रह्म एवं ब्रह्मवेत्ताओं की
 गति कहते हैं । (१०७)
 आप मन की परमज्योति एवं ज्योतियों (नक्षत्रों) को
 भी (धारक) वायु हैं । ब्रह्मवादी जन आपको हंसवृक्ष पर
 रहने वाला मधुकर कहते हैं । (१०८)
 आप को यजुर्मय, ऋहृमय एवं साममय कहते हैं ।
 वेद और उपनिषदों के समूहों द्वारा आप स्तुतियों से पूजे
 जाते हैं । (१०९)
 आपही ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, वर्णों से
 हीन (वर्णावर), मेघसमूह, विद्युत तथा मेघगर्जन
 हैं । (११०)
 आप संवत्सर, ऋतु, मास, पक्ष, युग, निमेष, काष्ठा,
 नक्षत्र, मद्र तथा कला हैं । (१११)
 आप वृक्षों में ककुभ (अजुन वृक्ष), पर्वतों में हिमा-
 लय, मृगों(पशुओं)में व्याघ्र, पक्षियों में तार्क्ष्य (गरुड) और
 सर्पों में अनन्त (शेषनाग) हैं । (११२)
 आप समुद्रों में क्षीरसागर, यन्त्रों में धनुष, अस्त्रों
 में वज्र और व्रतों में सत्य हैं । (११३)
 आप ही द्वेष, इच्छा, राग, मोह, क्षमा, अक्षमा,
 व्यवसाय, धैर्य, लोभ, काम, क्रोध, जय और पराजय
 हैं । (११४)

आप शरघारी, गदाघारी, खट्वाह्नी एवं धनुर्धारी
 हैं । आप छेत्ता, भेत्ता, प्रहर्ता, मन्ता (मनन करने वाले)
 नेता और सनावन हैं । (११५)
 आप दश लक्षणों से संयुक्त धर्म, अर्थ एवं काम
 तथा समस्त समुद्र, नदियाँ, गङ्गा, पर्वत एवं सरोवर
 हैं । (११६)
 आप समस्त लताएँ, वल्लियों, कृष्ण, औषधियों
 पशु, मृग, पक्षी, द्रव्यकर्मगुणारम्भ एवं समय पर पुष्पफल-
 प्रद हैं । (११७)
 आप वेदों के आदि और अन्त, गायत्री तथा प्रणव
 हैं । आप ही लोहित, हरित, नील, कृष्ण, पीत, सित,
 कद्रु, कपिल, कपोत, मेचक, सवर्ण, अवर्ण, कर्ता एवं हर्ता
 हैं । (११८-११९)
 आप इन्द्र, यम, वरुण, कुबेर, पवन, उपप्लव, चित्र-
 मातु, स्वर्मातु एवं मातु हैं । (१२०)
 आप शिक्षा, होत्र, त्रिसौपर्ण, यजुर्वेद का शत-
 रुद्रिय, पवित्रों में पवित्र एवं मङ्गलों में मङ्गल
 हैं । (१२१)
 आप तिन्दुक, गिरिज (शिलाजतु!) वृक्ष, मुद्ग,
 अखिल जीवन, प्राय, सत्त्व, रज, तम तथा प्रतिपत्पति
 हैं । (१२२)
 आप ही प्राण, अपान, समान, वदान, व्यान, धम्मैष,

प्राणाः सत्त्वं रजयैव तमश्च प्रतिपत्पतिः ॥ १२२
 प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च ।
 उन्मेषश्च निमेषश्च क्षुत्तं जृम्भितमेव च ॥ १२३
 लोहितान्तर्गतो दृष्टिर्भहावक्त्रो महोदरः ।
 शुचिरोमा हरिश्मश्रुर्ध्वकेशश्चलाचलः ॥ १२४
 गीतवादित्रनृत्यज्ञो गीतवादित्रकप्रियः ।
 मत्स्यो जालो जलौकाश्च कालः केलिकला कलिः ॥ १२५
 अकालश्च विकालश्च दुष्कालः काल एव च ।
 मृत्युश्च मृत्युकर्त्ता च यज्ञो यक्षभयकरः ॥ १२६
 संवर्त्तकोऽन्तरुश्चैव संवर्त्तकबलाहकः ।
 घण्टो घण्टी महाघण्टी चिरी माली च मातलिः ॥ १२७
 ब्रह्मकालयमाश्रीना दण्डी गुण्डी त्रिगुण्डधृक् ।
 चतुर्गुणश्चतुर्वेदश्चातुर्होत्रप्रवर्त्तकः ॥ १२८
 चातुराश्रम्यनेता च चातुर्वर्ण्यकरस्तथा ।
 नित्यमक्षप्रियो धूर्त्तो गणाध्यक्षो गणाधिपः ॥ १२९
 रक्तमालयाम्बरधरो गिरिको गिरिकप्रियः ।

निमेष, क्षुत् (छोक) एव जृम्भित है । (१२३)

आप लोहितान्तर्गत, दृष्टि, महावक्त्र, महोदर, शुचि रोमा, हरिश्मश्रु, ऊर्ध्वकेश एव चल तथा अचल है । (१२४)

आप गीतवादित्रनृत्यज्ञ तथा गीतवादित्रकप्रिय है । आप मत्स्य, जाल, जलौका, काल तथा केलिकला एव कल्ह है । (१२५)

आप अनाल, विकाल, दुष्काल और कालस्वरूप है । आप मृत्यु, मृत्युकर्त्ता, यक्ष तथा यक्ष भयङ्कर है । (१२६)

आप सवर्त्तक, अन्तरु एव संवर्त्तकबलाहक है । आप घण्ट, घण्टी, महाघण्टी, चिरी, माली और मातलि है । (१२७)

आप ब्रह्मा, काल, यम और अग्नि को दण्ड देने वाले गुण्डी एव त्रिगुण्डधारी है । आप चतुर्गुण, चतुर्वेद एव चातुर्होत्र के प्रवर्त्तक है । (१२८)

आप चारों आश्रमों के नेता तथा चारों वर्गों की दृष्टि कर्त्ता है । आप नित्य एतप्रिय, धूर्त्त, गणाध्यक्ष और गणाधिप है । (१२९)

आप रक्तमालयाम्बरधारी, गिरिक, गिरिकप्रिय, शिल्प,

शिल्पं च शिल्पिनां श्रेष्ठः सर्वशिल्पप्रवर्त्तकः ॥ १३०
 भगनेत्राङ्कुशश्चण्डः पूष्णो दन्तविनाशनः ।
 स्वाहा स्वधा वषट्कारो नमस्कारो नमो नमः ॥ १३१
 गूढव्रतो गुह्यतपास्तारकास्तारकामयः ।
 धाता विधाता संधाता पृथिव्या धरणोऽपरः ॥ १३२
 ब्रह्मा तपश्च सत्यं च व्रतचर्यमथार्जवम् ।
 भूतात्मा भूतकृद् भूतिर्भूतभण्यभवोद्भवः ॥ १३३
 भूर्भुवः स्वर्गतं चैव ध्रुवो दान्तो महेश्वरः ।
 दीक्षितोऽदीक्षितः कान्तो दर्दान्तो दान्तसंभवः ॥ १३४
 चन्द्रावर्त्तो युगावर्त्तः संवर्त्तकप्रवर्त्तकः ।
 विन्दुः कामो बाणुः स्थूलः कर्णिकारस्रजप्रियः ॥ १३५
 नन्दीमुखो भीममुखः सुमुखो दुर्मुखस्तथा ।
 हिरण्यमर्भः शकुनिर्महोरगपतिरिराट् ॥ १३६
 अधर्महा महादेवो दण्डधारो गणोत्कटः ।
 गोनर्दो गोप्रतारश्च गोवृषेक्षरवाहनः ॥ १३७
 त्रैलोक्यगोप्ता गोविन्दो गोमार्गो मार्ग एव च ।

शिल्पिश्रेष्ठ तथा सर्वशिल्पप्रवर्त्तक है । (१३०)

आप भगनेत्रनाशक चण्ड एव पूषा के दातों के विनाशनक है । आप स्वाहा, स्वधा, वषट्कार और नमस्कार है । आप को धारण्यार नमस्कार है । (१३१)

आप गूढव्रत, आप गुह्यतपा, तारक और तारकामय है । आप धाता, विधाता, संधाता और पृथिवी के श्रेष्ठ धारणकर्त्ता है । (१३२)

आप ब्रह्मा, तप, सत्य, व्रत-चर्या और आर्जव है । आप भूतात्मा, भूतकृद् भूति और भूतभण्यभवोद्भव है । (१३३)

आप भू भुव स्व श्रुत, ध्रुव, दान्त तथा महेश्वर है । आप दीक्षित, अदीक्षित, कान्त, दुर्दान्त और दान्तसंभव है । (१३४)

आप चन्द्रावर्त्त, युगावर्त्त, सवर्त्तक और प्रवर्त्त है । आप विन्दु, काम, बाणु, स्थूल तथा कर्णिकार की माला के प्रेमी है । (१३५)

आप नन्दीमुख, भीममुख, सुमुख तथा दुर्मुख है । आप हिरण्यमर्भ, शकुनि, महासर्पपति तथा विराट् है । (१३६)

आप अधर्महन्ता, महादेव, दण्डधार, गणोत्कट, गोनर्द गोप्रतार तथा गोवृषेक्षरवाहन है । (१३७)

स्विरः श्रेष्ठश्च स्थापुश्च विक्रोशः क्रोश एव च ॥ १३८
 दुर्वारणो दुर्विपहो दुःसहो दुरतिक्रमः ।
 दुर्दुर्षो दुष्प्रकाशश्च दुर्दर्शो दुर्जयो जयः ॥ १३९
 शशाङ्कानलशीतोष्णः क्षुत्तृष्णा च निरामयः ।
 आधयो व्याधयश्चैव व्याधिहा व्याधिनाशनः ॥ १४०
 समूहश्च समूहस्य हन्ता देवः सनातनः ।
 शिखण्डी पुण्डरीकाक्षः पुण्डरीकवनालयः ॥ १४१
 ज्यम्बको दण्डधारश्च उग्रदंष्ट्रः कुलान्तरुः ।
 विपापहः सुरश्रेष्ठः सोमपास्त्वं मरुत्पते ।
 अमृताशी जगन्नाथो देवदेव गणेश्वरः ॥ १४२
 मधुश्च्युताना मधुपो ब्रह्मवाक् त्वं घृतच्युत ।
 सर्वलोकस्य भोक्ता त्वं सर्वलोकपितामह ॥ १४३

हिरण्यरेताः पुरुषस्त्वमेकः
 त्वं स्त्री पुमास्त्य हि नपुंसकं च ।

पालो युवा स्वविरो दचट्ट्रा
 त्वन्नो गिरिविषकृद् विश्वहर्ता ॥ १४४

आप त्रैलोक्यगोप्ता गोविन्द, गोमार्ग तथा मार्ग हैं ।
 आप शिखर, श्रेष्ठ, रक्षण, विक्रोश तथा क्रोश हैं । (१३८)
 आप दुर्वारण, दुर्विपह, दुःसह, दुरतिक्रम, दुर्धर्म,
 दुष्प्रकाश, दुर्दर्श, दुर्जय तथा जय हैं । (१३९)
 आप शशाङ्क, अनल, शीत, उष्ण, क्षुधा, तृष्णा,
 निरामय, आधि, व्याधि, व्याधिहा तथा व्याधिनाशक
 हैं । (१४०)

आप समूह के समूह, हन्ता तथा सनातन देव हैं ।
 आप शिखण्डी, पुण्डरीकाक्ष तथा पुण्डरीकवनालय
 हैं । (१४१)

हे मरुत्पति । हे देवदेव । आप ज्यम्बक, दण्डधारी,
 उग्रदंष्ट्र, कुलान्तरु, विपापह, सुरश्रेष्ठ, सोमपायी, अमृताशी,
 जगन्नाथ तथा गणेश्वर हैं । (१४२)

आप मधुश्च्युतों के मधुप, ब्रह्मवाक्, घृतच्युत,
 सर्वलोकभोक्ता एवं सर्वलोक-पितामह हैं । (१४३)

आप हिरण्यरेता एक पुरुष हैं । आप स्त्री, पुरुष
 तथा नपुंसक भी हैं । आप ही हमारे धान्यक, युवा, घृत्, देव
 -पट्टा, गिरि, विश्वहर्ता तथा विश्वहर्ता हैं । (१४४)

त्वं वै धाता विश्वकृतां वरेण्यस्
 त्वां पूजयन्ति प्रणताः सदैव ।
 चन्द्रादित्वौ चक्षुषी ते भवान् हि
 त्वमेव चाग्निः प्रपितामहश्च ।
 आराध्य त्वा सरस्वतीं वाग्लमन्ते
 अहोरात्रे निमिपोन्मेपकर्त्ता ॥ १४५

न ब्रह्मा न च गोविन्द. पौराणा श्रपयो न ते ।
 माहात्म्यं वेदितु शक्ता याथात्थमेन शकर ॥ १४६
 पुंसा शतसहस्राणि यत्समाहृत्य तिष्ठति ।
 महत्सप्तमस. पारे गोप्ता मन्ता भवान् सदा ॥ १४७
 य विन्द्रा जितश्वासा. सत्त्वस्था. सयतेन्द्रियाः ।
 ज्योतिःपश्यन्ति युञ्जानास्त्वस्मै योगात्मने नमः ॥ १४८
 या मूर्तयश्च सूक्ष्मास्ते न शक्या या निर्दाशितुम् ।
 ताभिर्मां सतत रक्ष पिता पुत्रमियौरसम् ॥ १४९
 रक्ष मा रक्षणीयोऽहं तजानथ नमोऽस्तु ते ।

आप विश्वनिर्माणकर्त्ताओं में श्रेष्ठ धाता हैं । प्रगत
 जन सदैव आप की पूजा करते हैं । चन्द्रमा एष सूर्य
 आप के नेत्रस्वरूप हैं । आप ही अग्नि एवं प्रपितामह
 हैं । सरस्वतीस्वरूप आप की आराधना कर लोग वाणी की
 प्राप्ति करते हैं । आप अहोरात्र में निमेष एव उन्मेष के
 कर्त्ता हैं । (१४५)

हे शकर । ब्रह्मा, गोविन्द तथा प्राचीन श्रपि भी
 यथार्थत आप के माहात्म्य को नहीं जान सकते । (१४६)
 आप व्यारों पुरुषों को समाहृत कर स्थित हैं ।
 आप सदा महान् तम से परे रहने वाले गोप्ता एवं मन्ता
 हैं । (१४७)

विन्द्रा, जितश्वास, सत्त्ववश एव संपतेन्द्रिय योगोपासक
 योगी लोग जिस ज्योति का दर्शन करते हैं उस योगात्मक को
 नमस्कार है । (१४८)

सूक्ष्म होने के कारण आप की जो मूर्तियाँ प्रदर्शित
 नहीं की जा सकती उनके द्वारा सदा आप मेरी इस प्रकार
 रक्षा करें जैसे पिता औरस पुत्र की रक्षा करता
 है । (१४९)

हे अनप । आप मेरी रक्षा करें । मैं आप का रक्षणीय

भक्तानुकम्पी भगवान् भक्त्याहं सदा त्वयि ॥ १५०
 वटिने दण्डिने नित्यं लम्बोदरशरीरिणे ।
 कमण्डलुनिपङ्गाय तस्मै रुद्रात्मने नमः ॥ १५१
 यस्य केशेषु जीमूता नद्यः सर्वाङ्गसन्धिषु ।
 कुसौ समुद्राश्रितवारस्तस्मै तोयात्मने नमः ॥ १५२
 संभस्य सर्वभूतानि युगान्ते पृथुपस्थिते ।
 य. श्रेते जलमध्यस्थस्त प्रपद्येऽम्बुयायिनम् ॥ १५३
 प्रविश्य वदनं राहोर्ध्वः सोम पिबते निशि ।
 अतत्यक्तं च स्वर्गान् रक्षितस्तव तेजसा ॥ १५४
 ये चात्र पतिता गर्भा रुद्रगन्धस्य रक्षणे ।
 नमस्तेऽस्तु स्वधा स्वाहा प्राप्नुवन्ति तदद्भुते ॥ १५५
 येऽङ्गुष्ठमात्राः पुरुषा देहस्थाः सर्वदेहिनाम् ।
 रक्षन्तु ते हि मा नित्य ते मामाप्यायन्तु वै ॥ १५६

ये नदीषु समुद्रेषु पर्वतेषु गुहासु च ।
 वृक्षमूलेषु गोष्ठेषु कान्तारगहनेषु च ॥ १५७
 चतुष्पथेषु रथ्यासु चत्वरेषु सभासु च ।
 हस्त्यश्वरथशालासु जीर्णोद्यानालयेषु च ॥ १५८
 ये च पञ्चसु भूतेषु दिशासु विदिशासु च ।
 चन्द्रार्कयोर्मध्यगता ये च चन्द्रार्करश्मिषु ॥ १५९
 रसातलगता ये च ये च तस्मात् परं गताः ।
 नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यो नमस्तेभ्यश्च नित्यशः ॥ १६०
 येषां न विद्यते संख्या प्रमाणं रूपमेव च ।
 अस्त्वेष्येयगणा रुद्रा नमस्तेभ्योऽस्तु नित्यशः ॥ १६१
 प्रसीद मम भद्रं ते तव भावगतस्य च ।
 त्वयि मे हृदय देव, त्वयि बुद्धिर्मतिस्त्वयि ॥ १६२
 स्तुत्वैवं स महादेव विरराम द्विजोत्तमः ॥ १६३

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये पद्मविंशोऽध्यायः ॥ २६ ॥

हैं। आप को नमस्कार है। आप भक्तानुक्म्पी भगवान् हैं एव मैं सदा आप का भक्त हूँ। (१५०)
 अटी, दण्डी, लम्बोदरशरीरी तथा कमण्डलुनिपङ्ग रुद्रात्मा को नमस्कार है। (१५१)
 जिनके केशों में मेघ, समस्त अंग की सन्धियों में नदियों एव वृक्षों में चारों सागर हैं उन तोयात्मा को नमस्कार है। (१५२)
 युगान्त उपस्थित होने पर समस्त भूतों का भक्षण कर जो जल के मध्य शयन करते हैं उन जलशायी की मैं शरण लेता हूँ। (१५३)
 रात्रि में जो आप राहु के मुख में प्रवेश कर सोम को पीते हैं हैं तथा आप के तेज से रक्षित राहु सूर्य को प्रसित करता है। (१५४)
 रुद्रगन्ध की रक्षा में यहाँ जो गर्भ गिरे हैं उन्हें नमस्कार है। उस अद्भुत को ही स्वाहा और रथ्या प्राप्त करते हैं। (१५५)
 समस्त देहियों की देह में स्थित अगुष्ठमात्रा वाले जो पुरुष हैं वे नित्य मेरी रक्षा करें तथा वे मुझे आप्यायित करें। (१५६)

जो नदियों, समुद्रों, पर्वतों, गुहाओं, वृक्षमूलों, गोष्ठों, गहनकान्तारों, चतुष्पथों, गलियों, चत्वरों, सभाओं, हस्त्यश्वरथ शालाओं, जीर्णोद्यानों, आलयों, पञ्चभूतों, दिशाओं एव विदिशाओं में स्थित, चन्द्रार्कमध्यगत, चन्द्र तथा सूर्य की रश्मियों में स्थित, रसातलगत एव उससे भी परगत हैं उनको नित्य बारम्बार नमस्कार है। (१५७-१६०)

जिनकी सख्या, प्रमाण और रूप नहीं है उन असंख्येय रुद्रगणों को सदा नमस्कार है। (१६१)

आप का भला हो। आप के भाव में स्थित मेरे ऊपर आप प्रसन्न हों। हे देव। आप ही में मेरा हृदय, मेरी बुद्धि एव मति है। (१६२)

इस प्रकार महादेव की स्तुति कर द्विजोत्तम ने बिराम किया। (१६३)

सनत्कुमार उवाच ।

अर्धेनमत्रवीद् देवस्त्रैलोक्याधिपतिर्मघः ।
 आश्वासनकरं चास्य वाक्यविद् वाक्यमृतमम् ॥ १
 अहो तुष्टोऽसि ते राजन् स्ववेनानेन सुव्रत ।
 बहुनाऽत्र किमुक्तेन मत्समीपे वसिष्यसि ॥ २
 उपित्वा सुचिरं कालं मम मात्रोद्भवः पुनः ।
 असुरो ह्यन्धको नाम भविष्यसि सुरान्तकृद् ॥ ३
 द्विरप्याक्षगृहे जन्म प्राप्य वृद्धिं गमिष्यसि ।
 पूर्वार्धमेष घोरेण वेदनिन्दाकृतेन च ॥ ४
 साभिलाषो जगन्मातुर्भविष्यसि यदा तदा ।
 देहं शूलेन हत्वाहं पावयिष्यामि समातुं दम् ॥ ५
 तत्राप्यकलमपो भूत्वा स्तुत्वा मां भक्तिः पुनः ।

सनत्कुमार ने कहा—तदनन्तर त्रैलोक्याधिपति वाक्यविद् शक्र देव ने उससे (वेन से) आश्वासनकारी उत्तम वचन कहा—

(१)
 हे राजन् ! हे सुव्रत ! तुम्हारी इस स्तुति से मैं सन्बुष्ट हूँ । अधिक कहने से क्या लाभ ? तुम मेरे समीप निवास करोगे ।

(२)
 चिरकाल तक निवास करने के उपरान्त पुन मेरे शरीर से उत्पन्न सुरों के नाशक अन्धक नामक असुर होंगे ।

(३)
 वेद-निन्दा करने से उत्पन्न पूर्वकालिक घोर अधर्म के कारण द्विरप्याक्ष के गृह में उत्पन्न होकर वृद्धि प्राप्त करोगे ।

(४)
 जब तुम जगज्जननी (पार्वती) की अभिलाषा करोगे उस समय मैं शूल द्वारा तुम्हारी देह की हत्या कर अर्धों वर्षों तक के लिए पवित्र करूँगा ।

(५)
 तदनन्तर वहाँ पुन पाप-रहित होकर भक्तिपूर्वक मेरी

ख्यातो गणाधिपो भूत्वानाम्नाभृद्गिरिटिः स्मृतः ॥ ६
 मत्सन्निधाने स्थित्वा त्वं ततः सिद्धिं गमिष्यसि ।
 वेनप्रोक्तं स्ववसिमं कीर्त्तयेद् यः शृणोति च ॥ ७
 नाशुभं प्राप्नुयात् किञ्चिद् दीर्घमायुरवाप्नुयात् ।
 यथा सर्वेषु देवेषु विशिष्टो भगवाञ्छिवः ॥ ८
 तथा स्ववो वरिष्ठोऽयं स्वयानां वेननिर्मितः ।
 यश्चोराज्यसुरैर्धर्मधनमानाय कीर्त्तितः ॥ ९
 श्रोतव्यो भक्तिमास्थाय विद्याकामैश्च यत्नतः ।
 व्याधितो दुःखितो दीनशौरराजभयान्वितः ॥ १०
 रात्रकार्यविमुक्तो वा मृच्यते महतो भयात् ।
 अनेनैव तु देहेन गणानां श्रेष्ठतां व्रजेत् ॥ ११
 तेजसा यशसा चैव युक्तो भवति निर्मलः ।

२७

स्तुति करने के उपरान्त तुम मृद्गिरिटि नामक प्रसिद्ध गणाधिप बनोगे ।

(६)

तदुपरान्त मेरे निरुद्ध रहकर तुम सिद्धि प्राप्त करोगे । वेन द्वारा कथित इस स्तुति का कीर्त्तन एवं श्रवण करने वाले वा कोई अशुभ नहीं होगा एवं वह दीर्घायु प्राप्त करेगा । जैसे सभी देवों में भगवान् शिव विशिष्ट हैं वैसे ही वेन निर्मित यह स्वयं सभी स्तवों में श्रेष्ठ है । इसका कीर्त्तन यश, राज्य, सुख, ऐश्वर्य, धन एवं मान का साधक है ।

(७-९)

विद्या को कामना रखने वाले जो यत्नपूर्वक भ्रष्टा से यह स्तव सुनना चाहिए । व्याधिप्रसन्न, दुःखित, दीन, चोर या राजा से भयभीत अथवा राजकार्य से विमुक्त पुरुष (इसके द्वारा) महान् भय से मुक्त होकर इसी देह से गर्णों में श्रेष्ठता प्राप्त कर निर्मल होकर तेज एवं यश से युक्त होता है । इस शतक का जहाँ पाठ होता है या उस गृह में राक्षस, पिशाच, भूत या विनायकगण

न राक्षसाः पिशाचा वा न भूता न विनायकाः ॥ १२
 विभ्रं कर्षुर्गृहे तत्र यत्रायं पत्यते स्तवः ।
 शृणुयाद् वा स्तवं नारी अनुज्ञां प्राप्य भर्तुतः ॥ १३
 मातृपक्षे पितुः पक्षे पूज्या भवति देववत् ।
 शृणुयाद् यः स्तवं दिव्यं कीर्तयेद् वा समाहितः ॥ १४
 तस्य सर्वाणि कार्याणि सिद्धिं गच्छन्ति नित्यशः ।
 मनसा चिन्तितं यच्च यच्च वाचाऽनुकीर्तितम् ॥ १५
 सर्वं संपद्यते तस्य स्तवनस्थानकीर्तनात् ।
 मनसा कर्मणा वाचा कृतमेनो विनश्यति ।
 वरं वरय भद्रं ते यत्रया मनसेभित्तम् ॥ १६

वेन उवाच ।

अस्य लिङ्गस्य माहात्म्याद् तथा लिङ्गस्य दर्शनात् ।
 हुक्तोऽहं पातकैः सर्वैस्तव दर्शनतः किल ॥ १७
 यदि तृणोऽपि मे देव यदि देवो वरो मम ।
 देवस्य भक्षणजातं श्वयोनौ तव सेवकम् ॥ १८
 एतस्यापि प्रसादं त्वं कर्षुर्भर्हि सि शंकर ।

विघ्न नहीं करते । पति की आज्ञा प्राप्त कर इस स्तव का
 श्रवण करने वाली नारी मातृपक्ष एवं पितृपक्ष में देवतुल्य
 पूज्या हो जाती है। एकाग्रतापूर्वक इस दिव्य स्तव को सुनने
 या कीर्तन करने वाले पुरुष के सभी कार्य नित्य सिद्ध होते
 हैं। इस स्तव का कीर्तन करने वाले मनुष्य की मनोभिलषित
 एवं वाणी से कथित सभी वस्तुएँ पूर्ण होती हैं तथा
 उसके मन, वाणी और कर्म से किये गये पाप विनष्ट होते
 हैं। तुम्हारा बह्याग हो, तुम मनोभिलषित कर
 माँगो।

(१०-१६)

वेन ने कहा—इस लिङ्ग के माहात्म्य, उसके दर्शन
 कृपा श्राप के दर्शन से मैं तमस्तु शरणों में मुक्त हो गया
 हूँ।

(१७)

हे देव ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और मुझ पर
 देना चाहते हैं तो हे शंकर ! अपने इस सेवक पर अनुग्रह
 करें जो देवपक्ष का भक्षण करने से कुत्ते की योगि में
 उत्पन्न हुआ है। पहले स्नानार्थ देवों के
 मना करने पर भी इसके भय से मैंने सरोवर में निमज्जन
 किया। इसने मेरा उपकार किया है। इसीलिए

एतस्यापि भवान्मध्ये सरसोऽहं निमज्जितः ॥ १९
 देवैर्निवारितः पूर्वं तीर्थेऽस्मिन् स्नानकारणात् ।
 अयं कृतोपकारश्च एतदर्थे वृणोम्यहम् ॥ २०
 तस्यैतद् वचनं श्रुत्वा तुष्टः प्रोवाच शंकरः ।
 एषोऽपि पापनिर्मुक्तो भविष्यति न संशयः ॥ २१
 प्रसादान्मे महाबाहो शिवलोकं गमिष्यति ।
 तथा स्तवमिमं श्रुत्वा मुच्यते सर्वपातकैः ॥ २२
 कुरुक्षेत्रस्य माहात्म्यं सरसोऽस्य महीपते ।
 मम लिङ्गस्य चोत्पत्तिं श्रुत्वा पापैः प्रमुच्यते ॥ २३

सनत्कुमार उवाच ।

इत्येवमुक्त्वा भगवान् सर्वलोकनमस्कृतः ।
 पश्यतां सर्वलोकानां तत्रैवान्तरधीयत ॥ २४
 स च आ तदक्षणादेव स्मृत्वा जन्म पुरातनम् ।
 दिव्यमूर्तिधरो भूत्वा तं राजानमुपस्थितः ॥ २५
 कृत्वा स्नानं ततो वैभ्यः पितृदर्शनलालसः ।
 स्थाणुतीर्थे कुटीं शून्यां-दृष्ट्वा शोकसमन्वितः ॥ २६

मैं इसके लिए वर माँगता हूँ।

(१८-२०)

उसके इस वचन को सुन कर सन्तुष्ट शंकर
 ने कहा—हे महाबाहु ! यह भी मेरी कृपा से
 निःसन्देह पाप से मुक्त हो जायेगा एवं शिवलोक प्राप्त
 करेगा। इस स्तव को सुनकर मनुष्य सभी पापों से
 मुक्त होगा। हे राजन् ! कुरुक्षेत्र तथा इस सरोवर
 के माहात्म्य तथा मेरे लिङ्ग की उत्पत्ति का वर्णन सुन
 कर मनुष्य पाप से विमुक्त होते।

(२१-२३)

सनत्कुमार ने कहा—ऐसा वह वर सर्व लोक-नमस्कृत
 भगवान् सभी लोगों के देखने हुए यहीं अन्वहित
 हो गए।

(२४)

यह श्वान भी तदक्षण ही पूर्व जन्म को स्मरण कर
 दिव्यशरीरधारी होकर उस राजा के सम्मुख उप-
 स्थित हुआ।

(२५)

तदन्तर स्नानोपरान्त पितृदर्शन की लालसा से स्थाणु-
 तीर्थ में आने पर वेन का पुत्र शृणु कुटी की भूमी देव शोक-
 मुक्त हो गया।

(२६)

दृष्ट्वा धेनोऽब्रवीद् वाक्यं हर्षेण महताऽन्वितः ।
 सत्पुत्रेण त्वया दत्तं व्रततोऽहं नरकार्णवात् ॥ २७
 त्वयाभिपिञ्चितो नित्यं तीर्थस्थपुत्रिणे स्थितः ।
 अस्य साधोः प्रसादेन स्थाणुदेवस्य दर्शनात् ॥ २८
 मुक्तपापश्च स्वर्लोकं यास्ये यत्र शिवः स्थितः ।
 इत्येवमुक्त्वा राजानं प्रतिप्राप्य महेश्वरम् ॥ २९
 स्थाणुतीर्थं ययौ सिद्धिं तेन पुत्रेण तारित ।
 स च श्वा परमा सिद्धिं स्थाणुतीर्थप्रभावतः ॥ ३०
 विमुक्तः कलुषैः सर्वैर्जगाम भवमन्दिरम् ।

राजा पितृश्रेणैर्मुक्तः परिपाल्य वसुन्धराम् ॥ ३१
 पुत्रानुत्पाद्य धर्मेण कृत्वा यज्ञं निरगलम् ।
 दत्त्वाकामार्थाविप्रेभ्यो भुक्त्वा भोगान् पृथगिधान् ॥ ३२
 सुहृदोऽथ श्रेणैर्मुक्त्वा कामैः संतर्प्य च स्त्रियः ।
 अभिपिच्य सुतं राज्ये कुरुक्षेत्रं ययौ नृपः ॥ ३३
 तत्र तप्तान् तपो घोरं पूजयित्वा च शंकरम् ।
 आत्मैच्छया तनुं त्यक्त्वा प्रयातः परमं पदम् ॥ ३४
 एतत्प्रभावं तीर्थस्थ स्थाणोर्यः शृणुयान्नरः ।
 सर्वपापविनिर्मुक्तः प्रयाति परमा गतिम् ॥ ३५

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२७॥

२८

मार्कण्डेय उवाच ।
 चतुर्मुखानामुत्पत्तिं विस्तरेण ममानय ।
 तथा ब्रह्मेश्वराणां च श्रोतुमिच्छा प्रवर्तते ॥ १
 सनत्कुमार उवाच ।

उसे देवदेव महाम् हर्ष से युक्त वेन ने कहा—हे
 कस! तुम जैसे सत्पुत्र ने नरक समुद्र से मेरी रक्षा
 की। (२७)
 तीर्थ के तट पर रहते हुए तुम्हारे द्वारा नित्य अभिपि
 ञ्चित होने से, इस साधु का अनुग्रह तथा स्थाणु देव का दर्शन
 करने से पापमुक्त होकर मैं उस स्वर्लोक को जा रहा हूँ जहाँ
 शिव स्थित है। राजा से ऐसा कहने के उपरान्त उस पुत्र द्वारा
 तारित (बिन ने) स्थाणु तीर्थ में महेश्वर को प्रतिप्रापित कर सिद्धि
 प्राप्त की। स्थाणु तीर्थ के प्रभाव से उस भ्रान्त को भी परम
 सिद्धि प्राप्त हुई यह सभी कलुषों से विमुक्त होकर वह
 शिवलोक चला गया। राजा ने पितृश्रेणों से मुक्त होकर वसु

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य ने

शृणु सर्वमशेषेण कथयिष्यामि तेऽनघ ।
 ब्रह्मणः सप्तदशकामस्य यद् वृत्तं पद्मजन्मनः ॥ २
 उत्पन्न एव भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ।
 ससर्ज सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ ३

न्धरा का पालन किया तथा धर्मपूर्वक पुत्रों को उत्पन्न कर
 निर्वाह यज्ञ किया। उन्होंने ब्राह्मणों को मनोभिलषित पदार्थों
 का दान दिया तथा अनेकविध भोगों का उपभोग
 किया। (२८-३२)

मित्रों को ऋण से मुक्त कर तथा जिन्यों के वामनाओं
 की सन्तुष्टि करने के उपरान्त पुत्र को राज्याभिषिक्त
 कर राजा कुरुक्षेत्र में चल गये। (३३)

वहाँ पोर तप एव शङ्कर का पूजन कर स्वेच्छा से
 शरीर का त्याग कर वे परमपद को प्राप्त किये। (३४)

स्थाणुतीर्थ के इस प्रभाव को सुनने वाला मनुष्य समस्त
 पापों से विनिर्मुक्त होकर परमगति प्राप्त करता है। (३५)

सत्ताईसवाँ अध्याय समाप्त ॥२७॥

२८

मार्कण्डेय ने कहा—हे अनघ! चतुर्मुखों
 तथा ब्रह्मेश्वरों की उत्पत्ति की विस्तार पूर्वक सुनने
 की मेरी इच्छा है। (१)
 सनत्कुमार ने कहा—हे अनघ! सुनो। सृष्टि की

कामना वाले पद्मजन्मा ब्रह्मा का पूर्ण वृत्तान्त मैं तुमसे
 कहता हूँ। (२)

लोक-पितामह भगवान् ब्रह्मा ने उत्पन्न होते ही स्थावर
 और जङ्गम रूप समस्त भूतों की सृष्टि की। (३)

पुनश्चिन्तयतः सृष्टिं जज्ञे कन्या मनोरमा ।
नीलोत्पलदलश्यामा वनुमध्या सुलोचना ॥ ४
तां दृष्ट्वाभिमतां ब्रह्मा मैथुनायाजुहाव ताम् ।
तेन पापेन महता शिरोऽशीर्यत वेधसः ॥ ५
तेन शीर्णेन स ययौ तीर्थं त्रैलोक्यमिथुतम् ।
सान्निहित्यं सरः पुण्यं सर्वपापक्षयावहम् ॥ ६
तत्र पुण्ये स्थाणुतीर्थे ऋषिसिद्धनिषेविते ।
सरम्बत्पुत्रे वीरे प्रतिप्राप्य चतुर्मुखम् ॥ ७
आराधयामास तदा पुण्यं न्यर्धर्मनोरमः ।
उपहारीस्त्वया हृद्यै रौरसूक्तदिने दिने ॥ ८
तस्यैवं भक्तिपुक्तस्य शिवपूजापरस्य च ।
स्वयमेवात्रगमाथ भगवान् नीललोहितः ॥ ९
समामतं त्रिवं दृष्ट्वा ब्रह्मा लोकपितामहः ।
प्रणम्य शिरसा भूमौ स्तुतिं तस्य चकार ह ॥ १०
ब्रह्मोवाच ।
नमस्तेऽस्तु महादेव भूतमध्य भवाश्रय ।

पुनः कन्ये सृष्टि की विन्ता करने पर एक नीलोत्पल
दल के समान श्याम, पतले मध्य भाग वाली, सुलोचना,
मुन्दरी कन्या उत्पन्न हुई । (४)

उस कन्येय कन्या को देकर ब्रह्मा ने उसे मैथुन
के लिये पुजाया। उस महान् पाप से ब्रह्मा का मतलब
गिर गया । (५)

वे उन्नी गिर शिर को लेकर त्रैलोक्य मिथुत सर्वपाप
क्षयकारी सांनिहित्य सर नामक तीर्थ में गये । (६)

ऋषि तथा सिद्धों ने निषेवित उस पवित्र स्थाणुतीर्थ में
सरम्बती के उन्नी वीर पर चतुर्मुख (शिखरिन्द्र) को प्रतिष्ठा
पित कर प्रतिदिन मनोरम भूष, गन्ध, मुन्दर उपहारों एवं
रत्न-मूर्त्तियों से उसकी आराधना करने लगे । (७-८)

कन्ये इम प्रकार भक्ति पुण्य-शिवपूजा पराधन
होने पर भगवान् नीललोहित स्वयं ही यहाँ आये । (९)

लोकपितामह ब्रह्माने आये हुए शिव की देण कर उन्हें
शिर से प्रणाम किया एवं कन्ये मुनि करने
लगे । (१०)

ब्रह्मा ने कहा—हे भूव, भव्य तथा भव के आत्म
महादेव! आप को नमस्कार है। शुचिन्तिय एवं त्रैलोक्य

नमस्ते स्तुतिन्तियाय नमस्त्रैलोक्यपालिने ॥ ११
नमः पवित्रदेहाय सर्वकल्मषनाशिने ।
चराचरगुरो मुद्गमुद्धानां च प्रकाशकृत् ॥ १२
रोगा न यान्ति निपजैः सर्वरोगविनाशन ।
रौरवाग्निनसंवीत वीतशोक नमोऽस्तु ते ॥ १३
वारिकह्योलमंशुष्यमहाजुद्विविषद्विने ।
त्वन्नामजापिनो देव न भवन्ति भवाश्रयाः ॥ १४
नमस्ते नित्यन्तियाय नमस्त्रैलोक्यपालन ।
शंकरायाप्रमेयाय व्याधीनां शमनाय च ॥ १५
परायापरिमेयाय सर्वभूतप्रियाय च ।
योगेश्वराय देवाय सर्वपापक्षयाय च ॥ १६
नमः स्थाणवे मिद्धाय मिद्धवन्दिस्तुताय च ।
भूतमंसारदुर्गाय विश्वरूपाय ते नमः ॥ १७
फणीन्द्रोक्तमहिम्ने ते फणीन्द्राङ्गधारिणे ।
फणीन्द्रवरहराराय भास्कराय नमो नमः ॥ १८
एवं स्तुतो महादेवो ब्रह्माणं प्राह शंकरः ।

पालक आप को नमस्कार है । (११)

पवित्रदेहाय एवं सर्वकल्मषनाशक को नमस्कार है।
हे पराचर के गुरु! आप रहस्यों के भी रहस्य के प्रकाशक
हैं । (१२)

भियजों से दूर न होने वाले सभी रोगों के आप
विनाशक हैं। हे रुरु शूण के चर्म को धारण करने वाले! हे
शोकरहित! आप को नमस्कार है । (१३)

हे वारिकह्योल-संशुष्य महाजुद्वि के विषट्टनकारी देव!
आप के नाम का जप करने वाले संसार में नहीं
पड़ते । (१४)

आप नित्य-नित्य को नमस्कार है। हे त्रैलोक्य पालन!
शंकर, अत्रनेय और व्याधियों के नाशक को नमस्कार
है । (१५)

पर, अपरिनेय, सर्वभूतप्रिय, योगेश्वर, देव एवं सर्व-
पापप्रक्षयकारी को नमस्कार है । (१६)

स्थाणु, सिद्ध एवं सिद्धों तथा मुनि-वाठियों द्वारा शूण
को नमस्कार है। भूतमंसारदुर्गा एवं विश्वरूप आपको
नमस्कार है । (१७)

भूतमंसार द्वारा धरिण महिमावाने, सर्वपाप के अन्धदपाटी
एवं सर्वपाप की माता होने एवं भास्करस्वरूप आपको
नमस्कार है । (१८)

न च मन्युस्त्वया कायों भाविन्यर्थे कदाचन ॥ १९
पुरा वराहकल्पे ते यन्मयाऽपहृतं शिरः ।
चतुर्मुखं च तदभून्न कदाचिन्नशिष्यति ॥ २०
अस्मिन् सान्निहिते तीर्थे लिङ्गानि मम भक्तितः ।
प्रतिष्ठाय विष्णुवत्स्त्वं सर्वपापैर्मविष्यसि ॥ २१
सृष्टिकामेन च पुरा त्वयाऽहं प्रेरितः किल ।
तेनाहं त्वां तथेत्युक्त्वा भूतानां देशवर्षाचिवत् ॥ २२
दीर्घकालं तपस्तप्त्वा मग्नः संनिहिते स्थितः ।
सुमहान्तं ततः कालं त्वं प्रतीक्षां ममाकरोः ॥ २३
स्रष्टारं सर्वभूतानां मनसा कल्पितं त्वया ।
सोऽग्रवीत् त्वां तदा दृष्ट्वा मां मग्नं तत्र चाम्भति ॥ २४
यदि मे नाग्रजस्त्वन्यस्तवः लक्ष्याभ्यहं प्रजाः ।
स्वयैवोक्तथ नैवास्ति त्वदग्न्यः पुरुषोऽग्रजः ॥ २५
स्थाणुरेष जले मग्नो विवशः कुह मद्भितम् ।

स सर्वभूतानसृजद् दक्षादींश्च प्रजापतीन् ॥ २६
यैरिमं प्रकरोत् सर्वं भूतग्रामं चतुर्विधम् ।
ताः सृष्टमात्राः क्षुधिताः प्रजाः सर्वाः प्रजापतिम् ॥ २७
विभक्षयिषवो ब्रह्मन् सहसा प्राद्रवंस्तथा ।
स भक्ष्यमाणस्त्राणार्थी पितामहसुधाग्रवत् ॥ २८
अयासां च महावृत्तिः प्रजानां संविधीयताम् ।
दत्तं ताम्यस्त्वया द्यन्नं स्थावराणां महौषधीः ॥ २९
जह्ममानि च भूतानि दुर्बलानि बलीयसाम् ।
विहितान्नाः प्रजाः सर्गाः पुनर्जग्मुर्वथागतम् ॥ ३०
ततो ववृधिरे सर्वाः प्रीतियुक्ताः परस्परम् ।
भूतग्रामे निवृद्धे तु तुष्टे लोकगुरौ त्वयि ॥ ३१
समुत्तिष्ठन् जलात् तस्मात् प्रजाः संदृष्टवानहम् ।
ततोऽहं ताः प्रजा दृष्ट्वा विहिताः स्वेन तेजसा ॥ ३२
क्रोधेन महता युक्तो लिङ्गमृत्पाठ्य चाधिपम् ।

सनस्त भूतों की सृष्टि की । (२६)

इस प्रकार स्तुति किये जाने पर शङ्कर ने ब्रह्मा से कहा—अग्रयंभायी अर्थ के विषय मे तुम्हें शोक नहीं होना चाहिए । (१६)

पहले वाराह कल्प मे मैंने आप का जो शिर अपहृत किया था वह चतुर्मुख हो गया । अब वह कभी विनष्ट नहीं होगा । (२०)

इस सान्निहित तीर्थ मे भक्ति पूर्वक मेरे लिङ्गों की प्रतिष्ठा करने से तुम सभी पापों से विसुक्त हो जाओगे । (२१)

प्राचीन काल मे सृष्टिकामना से तुमने मुझे प्रेरित किया । अतएव ऐसा ही होगा यह कहकर भूतों के देश वर्तों के सदृश (मैं) दीर्घकाल तक तप करने के उपरान्त संनिहित मे मग्न होकर स्थित रहा । तदनन्तर तुमने सुदीर्घ काल तक मेरी प्रतीक्षा की । (२२-२३)

तदनन्तर तुमने मन मे सर्वभूतों के स्रष्टा का ध्यान किया । मुझे वहाँ जल मे मग्न हुआ देवदत्त उन्हीं तुमसे कहा— (२४)

यदि मेरा कोई दूसरा अग्रज न हो तो मैं प्रजा की सृष्टि करूँगा । तुमने कहा—तुम्हारे अतिरिक्त कोई अन्य अग्रज पुरुष नहीं है । (२५)

ये श्यामु जल मे मग्न तथा विवश पड़े हैं । आप मेरा उपकार करें । उन्हींने दक्ष आदि प्रजापतियों तथा

इस प्रकार उन्होंने उनके द्वारा चतुर्विध भूतग्राम को कल्पन किया । हे ब्रह्मन् ! सृष्टि होते ही ये सभी प्रजायें क्षुधित होकर प्रजापति को खाने की इच्छा से दौड़ पड़ीं । भक्ष्यमाण होने पर त्राण की कामना से वे पितामह के पास भागे एव कहे—कि प्रजाओं की महान् वृत्ति का विधान करो । तुमने उन्हें अन्न प्रदान किया । महीषघ्नियों स्थावरों की तथा दुर्बल जह्म प्राणी बलवानों के अन्न देने । अन्न प्राप्त करने के उपरान्त सभी प्रजायें अपने स्थान को लौट गयीं । (२७-३०)

तदनन्तर वे सभी परस्पर प्रीतियुक्त होकर बढ़ने लगे । भूतसमूह के बढ़ने एवं आप लोकगुरु के सन्तुष्ट होने पर उस जल से निकल कर मैंने प्रजा को देखा । तदनन्तर अपने तेज से कल्पन उन प्रजाओं को देवदत्त महान् क्रोध से युक्त होकर लिङ्ग को उपाड़ कर पक दिया । सर के मध्य क्षिप्त (लिङ्ग) ऊपर स्थित

तद् क्षिप्रं सरसो मध्ये ऊर्ध्वमेव यदा स्थितम् ॥ ३३
 तदा प्रभृति लोकेषु स्थाणुरित्येष विश्रुतः ।
 सकृद् दर्शनमात्रेण विमुक्तः सर्वकिल्बिषैः ॥ ३४
 प्रयाति मोक्षं परमं यस्मान्नावर्तते पुनः ।
 यथेह तीर्थं निवसेत् कृष्णाष्टम्यां समाहितः ॥ ३५
 स मुक्तः पातकैः सर्वैरगम्यागमनोद्भवैः ।
 इत्युक्त्वा भगवान् देवस्तत्रैवान्तरधीयत ॥ ३६
 ब्रह्मा विशुद्धपापस्तु पूज्य देवं चतुर्मुखम् ।
 लिङ्गानि देवदेवस्य सत्सृजे सरमध्यतः ॥ ३७
 आद्यं ब्रह्मसरः पुण्यं हरिपार्श्वे प्रतिष्ठितम् ।
 द्वितीयं ब्रह्मसदनं स्वकीये द्वाश्रमे कृतम् ॥ ३८
 तस्यैव पूर्वदिग्भागे तृतीयं च प्रतिष्ठितम् ।
 चतुर्थं ब्रह्मणा लिङ्गं सरस्वत्यास्तटे कृतम् ॥ ३९
 एतानि ब्रह्मतीर्थानि पुण्यानि पावनानि च ।
 ये पश्यन्ति निराहारात्ते यान्ति परमां गतिम् ॥ ४०
 कृते युगे हरेः पार्श्वे त्रेतायां ब्रह्मणाश्रमे ।

हो गया ।

(३१-३३)

तमी से यह लोक मे स्थाणु नाम से विख्यात हुआ ।
 एकबार भी इसका दर्शन करने से मनुष्य सभी पापों से
 मुक्त होकर परम मोक्ष को प्राप्त करता है जहाँ से यह
 पुन आर्वाचित नहीं होता । कृष्णाष्टमी के दिन समाहित
 चित्त से इस तीर्थ में निरास करने वाला अगम्या-
 गमन से होने वाले सभी पापों से मुक्त हो जाता
 है । ऐसा बहकर भगवान् महादेव वही अन्तर्हित हो
 गये ।

(३४-३६)

पाप से विमुक्त ब्रह्मा ने भी चतुर्मुख महादेव का पूजन
 कर सर के मध्य देवाधिदेव के लिङ्गों की सृष्टि की । (३७)
 प्रथम उन्होंने हरि के पार्श्व में ब्रह्मसर को प्रतिष्ठित
 किया एवं तदनन्तर अपने द्वाश्रम में ब्रह्मसरतुल्य विमोक्ष
 किया ।

(३८)

उसी के पूर्व भाग में ब्रह्मा ने तृतीय लिङ्ग प्रतिष्ठित किया
 एवं सरावती नदी के तीर पर उन्होंने चतुर्थ लिङ्ग प्रतिष्ठित
 किया ।

(३९)

निराहार रहकर इन पवित्र और पापनाशक ब्रह्मतीर्थों
 का दर्शन करने वाले व्यक्ति परम गति प्राप्त करते हैं । (४०)
 कृतयुग में हरि के पार्श्व में, त्रेता में ब्रह्मा के आश्रम

द्वापरे तन्म पूर्वेषु सरस्वत्यास्तटे कलौ ॥ ४१
 एतानि पूजयित्वा च दृष्ट्वा भक्तिसमन्विताः ।
 विमुक्ताः कल्पैः सर्वैः प्रयान्ति परमां गतिम् ॥ ४२
 सृष्टिकाले भगवता पूजितस्तु महेश्वरः ।
 सरस्वत्युत्तरे तीरे नाम्ना ख्यातश्चतुर्मुखः ॥ ४३
 तं प्रणम्य श्रद्धानो मुच्यते सर्वकिल्बिषैः ।
 लोलासंकरसंभूतैस्तथा वैभाण्डसंकरैः ॥ ४४
 तथैव द्वापरे श्रामे स्वाश्रमे पूज्य शंकरम् ।
 विमुक्तो राजसैर्मावैर्घर्णसंकरसंभवैः ॥ ४५
 ततः कृष्णचतुर्दश्यां पूजयित्वा तु मानवः ।
 विमुक्तः पातकैः सर्वैरभोज्यस्थानसंभवैः ॥ ४६
 कलिकाले तु संप्राप्ते वसिष्ठश्रममास्थितः ।
 चतुर्मुखं स्थापयित्वा ययौ सिद्धिमनुचमाम् ॥ ४७

मे, द्वापर मे उसके पूर्व तथा कलि मे सरस्वती के तट पर
 स्थित लिङ्गों का भक्ति-पूर्वक पूजन एवं दर्शन करने से
 मनुष्य सभी पापों से विमुक्त होकर परम गति प्राप्त
 करते हैं ।

(४१-४२)

सृष्टि के समय सरस्वती के उत्तरी तट पर भगवान्
 ब्रह्मा से पूजित महेश्वर चतुर्मुख नाम से प्रसिद्ध
 हुये ।

(४३)

ब्रह्मापूर्वक इनसे प्रणाम कर मनुष्य लोलासादृश्य(?) तथा
 वैभाण्डसादृश्य(?) से उत्पन्न सभी पापों से मुक्त होता है (४४)

इसी प्रकार द्वापर आने पर अपने आश्रम में शङ्कर का
 पूजन कर ब्रह्मा वर्णसादृश्य से उत्पन्न होने वाले राजस
 भावों से विमुक्त हुये ।

(४५)

कृष्ण चतुर्दशी में यहाँ पूजन करने से मनुष्य अभोज्य
 के अन्न पाने से होने वाले समस्त पापों से विमुक्त हो
 जाता है ।

(४६)

कलिकाल आने पर वसिष्ठश्रम में स्थित ब्रह्मा ने चतु-
 र्मुख की स्थापना कर भेष सिद्धि प्राप्त की ।

(४७)

यहाँ भी जो लोग निराहार, ब्रह्मायुक्त और जिनेन्द्रिय
 होकर महादेव की पूजा करते हैं वे परम ब्रह्म को प्राप्त करते

तत्रापि ये निराहाराः श्रद्धधाना जितेन्द्रियाः ।
पूजयन्ति महादेवं ते यान्ति परमं पदम् ॥ ४८

इत्येवम् म्यायुतीर्थस्य माहात्म्यं कीर्तितं तत्र ।
यच्छ्रुत्वा सर्वपापेभ्यो ह्यवतो भवति मानवः ॥ ४९

इति श्रीवामनपुराणे सरोमाहात्म्ये अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

समाप्तं सरोमाहात्म्यम् ।

इं । यह स्थाणु तीर्थ का माहात्म्य मैंने तुझे बताया है । इसे सुनकर मनुष्य सभी पापों से मुक्त हो जाता है ।

श्रीवामनपुराण के सरोमाहात्म्य में अष्टाविंशोऽध्याय समाप्त ॥२८॥

सरोमाहात्म्य समाप्त ।

देवदेव उवाच ।

एवं पृथुदको देवाः पुण्यः पापमयापहः ।
 तं गच्छष्वं महातीर्थं यावत् संनिधियोधितम् ॥ १
 यदा मृगशिशोःश्ले शशिसूर्यौ बृहस्पतिः ।
 तिष्ठन्ति सा तिथिः पुण्या त्वक्षया परिगीयते ॥ २
 तं गच्छष्वं मुरश्रेष्ठा यत्र प्राची सरस्वती ।
 पितृनारायणध्वं हि तत्र श्राद्धेन भक्तितः ॥ ३
 ततो मुरारिवचनं श्रुत्वा देवाः सवासवाः ।
 समाजगमुः कुरुक्षेत्रे पुण्यतीर्थं पृथुदकम् ॥ ४
 तत्र स्नात्वा सुराः सर्वे बृहस्पतिमचोदयन् ।
 विश्वश्च भगवन् ब्रह्ममिदं मृगशिरं कुरु ।
 पुण्यां तिथिं पापहरां तव कालोऽयमागतः ॥ ५

प्रवर्तते रविस्तत्र चन्द्रमाऽपि विश्वत्यसौ ।
 त्वदायत्तं गुरो कार्यं सुराणां तत् कुरुष्व च ॥ ६
 इत्येवमुक्त्वो देवस्तु देवाचार्योऽप्रवीदिदम् ।
 यदि वर्षाधिपोऽहं स्यां ततो यास्यामि देवताः ।
 षाठ्मशुः सुराः सर्वे ततोऽसौ प्राक्रमन्मृगम् ॥ ७
 आपाटे मासि मार्गर्धे चन्द्रक्षयतिथिर्हि या ।
 तस्यां पुरंदरः प्रीतः पिण्डं पितृषु भक्तितः ॥ ८
 प्रादात् तिलमधूमिन्त्रं हविष्यान्नं कुरुष्वथ ।
 ततः प्रीतास्तु पितरस्तां प्राहुस्त्वनां निजाम् ॥ ९
 मेनां देवाश्च शैलाय हिमपुष्पाय वै ददुः ।
 तां मेनां हिमवाँहृष्या प्रसादाद् देवतेष्वथ ।
 प्रीतिमानभवद्यासौ रराम च यथेच्छया ॥ १०

२४

देवदेव ने कहा—हे देवताओ! इस प्रकार पृथुदक पवित्र तथा पाप-भय का नाशक है। तुमलोग सन्निहित सर तक ज्ञान होने वाले महातीर्थ में जाओ। (१)

जब चन्द्रमा, सूर्य एवं बृहस्पति मृगशिरा नक्षत्र में स्थित होते हैं उस पवित्र तिथि को अक्षया तिथि कहा जाता है। (२)

हे सुरश्रेष्ठो! जहाँ सरस्वती नदी पूर्व दिशा में बहती है वहाँ जाकर भक्ति से श्राद्ध करके पितरों की आराधना करो। (३)

तदनन्तर मुरारि का वचन सुनकर इन्द्र के सहित सभी देवता कुरुक्षेत्र में स्थित पृथुदक नामक पुण्य-तीर्थ में गये। (४)

वहाँ स्नान करने के उपरान्त सभी देवों ने बृहस्पति से कहा—हे भगवन्! इस मृगशिरा नक्षत्र में प्रवेश कर आप पवित्र पापहरा तिथि का निर्माण करें। यह आपका समय आ गया है। (५)

सूर्य वहाँ स्थित हैं तथा चन्द्रमा भी उसमें प्रवेश कर रहे हैं। हे गुरु! देवताओं का कार्य आप के अधीन है। आप इसे पूर्ण करें। (६)

देवों के ऐसा कहने पर देवों के गुरु बृहस्पति ने यह कहा—हे देवो! यदि मैं वर्षाधिप बनूँ तो जाऊँगा। सभी देवों ने कहा—ठीक है। तब उन्होंने मृगशिरा नक्षत्र में संक्रमण किया। (७)

आषाढ मास की मृगशिरा नक्षत्र में चन्द्रक्षय (अमा-याया) तिथि के उपस्थित होने पर पुरन्दर ने प्रसन्न होकर कुरुक्षेत्र में भक्ति से पितरों को तिल-मधु मिश्रित हविष्यान्न का पिण्ड प्रदान किया। तदनन्तर पितरों ने देवों को अपनी मेना नाम की कन्या को दिया। देवताओं ने हमें हिमालय को दे दिया। देवों के अनुग्रह ने इस मेना को प्राप्त करके हिमवान् प्रसन्न हो गये और यथेच्छ स्नान करने लगे। (८-१०)

ततो हिमाद्रिः पितृकन्यया समं
समर्पयन् वै, विषयान् यथेष्टम् ।

अजीजनत् सा तनयाश्च तिस्रो
रूपातिशुक्ताः सुरयोपितोपमाः ॥ ११

इति श्रीवामनपुराणे चतुर्विंशोऽध्याय ॥२५॥

२५

पुलस्त्य उवाच ।

मेनायाः कन्यकास्तिस्रो जाता रूपगुणान्विताः ।
सुनाम इति च ख्यातश्चतुर्थस्तनयोऽभवत् ॥ १
रक्ताङ्गी रक्तनेत्रा च रक्ताम्बरविभूषिता ।
रागिणी नाम संजाता ज्येष्ठा मेनासुता ह्यने ॥ २
शुभाङ्गी पद्मपत्राक्षी नीलकुञ्चितमूर्धञ्जा ।
श्वेतमाल्याम्बरधरा कुटिला नाम चापरा ॥ ३
नीलाञ्जनचयप्रख्या नीलेन्द्रीवरलोचना ।

तदनन्तर पितरों की कन्या मेना के साथ हिमालय यथेष्ट
विषय भोग करने लगे । उस मेना ने भी सुरनारियों के

रूपेणानुपमा काली जघन्या मेनकासुता ॥ ४
जातास्ताः कन्यकास्तिस्रः पदब्दात् परतो ह्यने ।
कर्तुं तपः प्रयातास्ता देवास्ता ददशुः शुभाः ॥ ५
ततो दिवाकरैः सर्वैर्वसुभिश्च तपस्विनी ।
कुटिला ब्रह्मलोकं तु नीता शशिकरप्रभा ॥ ६
अथोद्युर्देवताः सर्वाः किं त्विष्यं जनयिष्यति ।
पुत्रं महिषहन्तारं ब्रह्मन् व्याख्यातुमर्हसि ॥ ७
ततोऽब्रवीत् सुरपतिर्नेयं शक्ता तपस्विनी ।

सदश अतिरूपवती तीन कन्याओं को उत्पन्न
किया । (११)

श्रीवामनपुराण में चौबीसवाँ अध्याय समाप्त ॥२५॥

२५

पुलस्त्य ने कहा—मेना को रूपगुणसम्पन्न तीन
कन्यायें उत्पन्न हुईं और सुनाम नाम से विख्यात चौथा
पुत्र उत्पन्न हुआ । (१)

हे मुनि ! लाल अङ्गों वाली, लाल नेत्रों वाली तथा
लाल बश्रों से सुशोभित रागिणी नाम की मेना की
ज्येष्ठ कन्या उत्पन्न हुई । (२)

शुभाङ्गी, कमल-दल के समान नेत्रों वाली नीले एव मुँघराके
केसों वाली तथा श्वेत माला एव बल धारण करने वाली दूसरी
कुटिला नाम की कन्या थी । (३)

मेना की छोटी कन्या का नाम काली था । उसका
रंग नील अञ्जन पुञ्ज के समान तथा नेत्र नील बमल

के समान थे । यह अनुपम रूपवती थी । (४)

हे मुनि ! ये तीनों कन्यायें जन्म से द्वादश वर्ष के पश्चात्
तपस्या करने लगीं गयीं । देवताओं ने उन सुन्दरी
कन्याओं को देखा । (५)

उसके बाद सभी आदित्य तथा वसुगण चन्द्र-
किरण के सदृश प्रभा वाली तपस्विनी कुटिला को ब्रह्मलोक
में ले गये । (६)

तदनन्तर सभी देवताओं ने ब्रह्मा से कहा—हे ब्रह्मन् !
आप बतलायें कि क्या यह महिषहन्ता पुत्र को उत्पन्न
करेगी ? (७)

तब सुरपति ने कहा—यह तपस्विनी शर्व शिव का तेज नहीं

शार्वं धारयितुं तेजो वराकी मृच्यतां त्वियम् ॥ ८
 ततस्तु कुटिला क्रुद्धा ब्रह्मार्णं प्राह नारद ।
 तथा यत्विष्ये भगवन् यथा शार्वं सुदुर्द्धरम् ॥ ९
 धारयिष्याम्यहं तेजस्तथैव मृशु सचम ।
 तपसाहं सुतप्तोऽन समाराध्य जनार्दनम् ॥ १०
 यथा हरस्य मूर्धानं नमविष्ये पितामह ।
 तथा देव करिष्यामि सत्यं सत्यं भवोदितम् ॥ ११
 पुलस्त्य उवाच ।

ततः पितामहः क्रुद्धः कुटिलां प्राह दारुणाम् ।
 भगवानादिकृद् ब्रह्मा सर्वेशोऽपि महाह्मने ॥ १२
 ब्रह्मोवाच ।

यस्मान्मद्वचनं पापे न श्रान्तं कुटिले त्वया ।
 तस्मान्मञ्चापनिर्दग्धा सर्वा आपो भविष्यसि ॥ १३
 इत्येवं ब्रह्मणा शप्ता हिमवद्दुहिता मुने ।
 आपोमयी ब्रह्मलोकं प्लावयामास देगिनी ॥ १४
 तामुद्भृत्तजलां दृष्ट्वा प्रनबन्ध पितामहः ।

धारण कर सकती। इस बेचारी को छोड़ दो। (८)
 हे नारद! तदनन्तर क्रोधित होकर कुटिला ने ब्रह्मा
 से कहा—हे भगवन्! हे सत्तम! सुनिये। मैं ऐसा प्रयत्न
 करूँगी जिससे शङ्कर के सुदुर्द्धर तेज को धारण कर
 सकूँ। हे पितामह! मैं सत्य कहती हूँ कि घोर तप
 द्वारा जनार्दन की ऐसी आराधना करूँगी जिससे शङ्कर
 का मस्तक झुका देंगी। (९-११)

पुलस्त्य ने कहा—हे महागुनि! तदनन्तर क्रुद्ध होकर
 सर्वेश, पितामह, आदिकर्ता, भगवान् ब्रह्मा ने दारुण कुटिला
 से कहा—

ब्रह्मा ने कहा—हे पापिनी कुटिले! क्योंकि तुमने
 मेरे वचन को सहन नहीं किया अतः मेरे शाप से
 निर्दग्ध होकर तुम पूर्ण रूप से जल हो जाओगी। (१३)

हे मुनि! इस प्रकार ब्रह्मा से शापित हिमालय की पुत्री
 जलमयी होकर वेगपूर्वक ब्रह्मलोक को प्लावित करने
 लगी। (१४)

पितामह ने उसके बगड़कर बह रहे जल-प्रवाह को
 देखकर ऋक्ष, साय, अयवं और यजुर्पुरुष वाङ्मय के

ऋक्सामाथर्वयजुर्भिर्वाङ्मयैर्वन्धनैर्दृष्टम् ॥ १५
 सा बद्धा संस्थिता ब्रह्मन् तत्रैव गिरिकन्यका ।
 आपोमयी प्लावयन्ती ब्रह्मणो विमला जटाः ॥ १६
 या सा रागवती नाम सापि नीता सुरैर्दिवम् ।
 ब्रह्मणे तां निवेद्यैवं तामप्याह प्रजापतिः ॥ १७
 सापि क्रुद्धाऽप्रवीन्नूनं तथा तप्ये महत्तपः ।
 यथा मन्नामसंयुक्तो महिषो भविष्यति ॥ १८
 तामप्यथाशपद् ब्रह्मा सन्ध्या पापे भविष्यसि ।
 या महाक्यमलङ्घ्यं वै सुरैर्लङ्घयसे बलात् ॥ १९
 सापि जाता मुनिश्रेष्ठ सन्ध्या रागवती ततः ।
 प्रतीच्छत् कृत्तिकायोगं शैलेया विग्रहं दृष्टम् ॥ २०
 ततो गते कन्यके द्वे ज्ञात्वा मेना तपस्विनी ।
 तपसो चारयामास उमेत्येवाप्रवीच सा ॥ २१
 तदेव माता नामास्याश्चक्रे पितृसुता शुभा ।

बन्धन द्वारा उसे दृढ़ता पूर्वक बाँध दिया। (१५)
 हे ब्रह्मन्! आपोमयी वह गिरिकन्यका बद्ध होकर
 ब्रह्मा की विमल जटा को आप्लावित करती हुई बही
 रहने लगी। (१६)

देवतागण रागवती को भी स्वर्ग में ले गये एवं
 ब्रह्मा को उसे निवेदित किया। उससे भी ब्रह्मा ने उसी
 प्रकार कहा। (१७)

रस्ते भी क्रुद्ध होकर कहा—मैं निदचय ही ऐसा
 महान् तप करूँगी जिससे महिष को मारने वाला मेरे नाम
 से संयुक्त होगा। (१८)

ब्रह्मा ने उसे भी शाप दिया—हे पापिनी! देवों
 से अनुलङ्घनीय मेरे वचन का अहंकारवश उल्लङ्घन करने
 से तुम सन्ध्या हो जाओगी। (१९)

हे मुनिश्रेष्ठ! तदनन्तर वह शैल-पुत्री रागवती भी सन्ध्या
 होकर दृढ़विप्रद कृत्तिकायोग की प्रतीक्षा करने लगी। (२०)

तदनन्तर दो कन्याओं को गई जानकर तपस्विनी
 मेना ने (द्वितीय कन्या वाली को) तप से रोका।
 उसने 'द' 'मा' देसा कहा। (२१)

उमेत्थेव हि कन्यायाः सा जगाम तपोवनम् ॥ २२ ॥
 ततः सा मनसा देवं शूलपाणिं वृषध्वजम् ।
 रुद्रं चेतसि संधाय तपस्तेपे सुदुष्करम् ॥ २३ ॥
 ततो ब्रह्माऽब्रवीद् देवान् गच्छध्वं दिग्वत्सुताम् ।
 इहानयध्वं तां कालीं तपस्यन्तीं हिमालये ॥ २४ ॥
 ततो देवाः समाजगृहर्ददुःशुः शैलनन्दिनीम् ।
 तेजसा विजितास्तस्या न शेकुरुपसर्पितुम् ॥ २५ ॥
 इन्द्रोऽमरगणैः सार्द्धं निर्दूतस्तेजसा तथा ।
 ब्रह्मणोऽधिकतेजोऽस्या विनिवेद्य प्रतिष्ठितः ॥ २६ ॥
 ततो ब्रह्माऽब्रवीत् सा हि ध्रुवं शंकरवल्लभा ।
 वृषं यत्तेजसा नूनं विशिस्तास्तु हवप्रभाः ॥ २७ ॥
 तस्माद् भजध्वं स्वं स्वं हि स्थानं भो विगतज्वराः ।
 सतारकं हि महिषं विदध्वं निहतं रणे ॥ २८ ॥
 इत्येवमुक्त्वा देवेन ब्रह्मणा सेन्द्रकाः सुराः ।

जगुः स्वान्येव विष्ण्वानि सद्यो वै विगतज्वराः ॥ २९ ॥
 उमामपि तपस्यन्तीं हिमवान् पर्वतेश्वरः ।
 निवर्त्य तपसस्तस्मात् सदारीं ह्यनयद्गृहान् ॥ ३० ॥
 देवोऽप्याश्रित्य तद्रौद्रं व्रतं नाम्ना निराश्रयम् ।
 विचचार महाशैलान् मेरुप्राड्यान् महामतिः ॥ ३१ ॥
 स कदाचिन्महाशैलं हिमवन्तं समागतः ।
 तेनार्चितः श्रद्धयाऽसौ तां रात्रिमवसद्धरः ॥ ३२ ॥
 द्वितीयेऽह्नि गिरीशेन महादेवो निमग्नितः ।
 हृद्वै तिष्ठत्य विभो तपःसाधनकारणात् ॥ ३३ ॥
 इत्येवमुक्त्वो गिरिणा हरश्चक्रे मतिं च ताम् ।
 तस्थावाश्रममाश्रित्य त्यक्त्वा वासं निराश्रयम् ॥ ३४ ॥
 वसतोऽप्याश्रमे तस्य देवदेवस्य शूलिनः ।
 तं देशमगमत् काली गिरिराजसुता शुभा ॥ ३५ ॥
 तामागतां हरो दृष्ट्वा भूयो जातां प्रियां सतीम् ।
 स्वागतनाभिसंपूज्य तस्यै योगरतो हरः ॥ ३६ ॥

गये । (२९)
 तप करती हुई उमा को भो उस तप से निवर्तित कर
 पत्नी-सहित हिमवान् घर ले आये । (३०)
 महाज्ञानी महादेव भी निराश्रय नामक उस भयंकर
 व्रत का अवलम्बन कर मेरु आदि महाशैलों पर विचरण
 करने लगे । (३१)
 एक समय वे महारौल हिमाचल पर गये । उस
 (हिमालय) से भद्रापूर्वक पूजित होने पर उन्होंने उस रात
 यहीं निवास किया । (३२)
 दूसरे दिन गिरिराज ने महादेव को निमग्नित कर
 कहा—“हे विभु ! तपस्या-हेतु आप यहीं रहें ।” (३३)
 पर्वत के ऐसा कदने पर हर ने भी यही विचार किया
 एवं निराश्रयवास छोड़कर आश्रम में रहने लगे । (३४)
 देवाधि देव त्रिशूलधारी शङ्कर के आश्रम में रहने पर
 गिरिराज पुत्री कल्याणी काली उस स्थान पर गयीं । (३५)
 पुन उत्पन्न प्रिया सती को आई हुई देख हर ने
 स्वागत द्वारा उनका स्तुति किया और पुनः योगरत हो
 गये । (३६)

उस सुन्दरानी ने यहाँ जाने के उपरान्त हाथ

पितरों की पुत्री, कल्याणमयी, माता (मेना) ने
 कन्या का वही 'उमा' यह नाम रखा । वह भी तपोवन में
 चली गयी । (२२)
 तदनन्तर उसने मन में शूलपाणि वृषध्वज रुद्र को
 रखकर घोर तप किया । (२३)
 तदुपरान्त ब्रह्मा ने देवताओं से कहा—तुम
 लोग हिमालय पर तप कर रही हिमालय की
 पुत्री काली के पास जाओ और उसे यहाँ
 लओ । (२४)
 तदनन्तर देवता आये और उन्होंने शैलनन्दिनी को देखा ।
 किन्तु उसके तेज से विजित हो जाने से वे निकट न
 जा सके । (२५)
 देवताओं के साथ इन्द्र उसके तेज से धूमिल
 हो गये । वे ब्रह्मा से उसके तेज की अधिकता का निवे-
 दन कर पड़े हो गये । (२६)
 तदनन्तर ब्रह्मा ने कहा—वह अवश्य ही शङ्कर की
 पत्नी होगी । क्योंकि उसके तेज से तुम लोग विक्षिप्त
 और हतप्रभ हो गये हो । (२७)
 अतः हे देवो ! तुम लोग चिन्ता छोड़कर अपने-अपने
 स्थान को जाओ । युद्ध में तारक के साथ महिष को मारा गया
 समझो । (२८)
 ब्रह्मदेव के ऐसा कदने पर इन्द्र सहित सभी देवता
 सुरान्त निदिचन्त होकर अपने-अपने स्थान पर चले

सा चाम्भेत्य वरारोहा कृताञ्जलिपरिग्रहा ।
 चवन्दे चरणौ शैवौ सखीभिः सह मामिनी ॥ ३७
 ततस्तु मुचिराब्धर्वः समीक्ष्य गिरिकन्यकाम् ।
 न युक्तं चैवभृक्त्वाऽथ सगणोऽन्तर्दधे ततः ॥ ३८
 साऽपि शर्ववचो रौद्रं श्रुत्वा ज्ञानसमन्विता ।
 अन्तर्दुःखेन दधन्ती पितरं प्राह पार्वती ॥ ३९
 तात चास्ये महारण्ये तप्तुं घोरं महत्तपः ।
 आराधनाय देवस्य शंकरस्य पिनाकिनः ॥ ४०
 तथेत्युक्तं वचः पित्रा पादे तस्यैव विस्तृते ।
 ललिताख्या तपस्तेये हराराधनकाम्यया ॥ ४१
 तस्याः सत्यस्तदा देव्याः परिचर्यां तु कुर्वते ।
 समित्कृद्यफलं चापि मूलाहरणमादितः ॥ ४२
 विनोदनार्थं पार्वत्या मृन्मयः शूलशृङ्ग हरः ।
 कृतस्तु तेजसा युक्तो भद्रमस्तिवति साऽत्रवीत् ॥ ४३
 पूजां करोति तस्यैव तं पश्यति मुहुर्मुहुः ।

जोह कर सखियों के साथ शिव के दोनों चरणों में प्रणाम किया ।

तदनन्तर गिरिकन्या को देर तक देखकर 'यह अचित नहीं है' ऐसा कहने के उपरान्त शङ्कर गणों के साथ अन्तर्दित हो गये ।

शङ्कर के भयङ्कर वचन को सुनकर अन्तर्दुःख से जलती हुई ज्ञान समन्वित उन पार्वती ने भी पिता से कहा—

हे तात ! पिनाकधारी देव शङ्कर की आराधना-हेतु मैं महारण्य में घोर तथा महान् तप करने जाऊँगी ।

पिता ने 'ठीक है' यह कहा । तदनन्तर हर के आराधना की कामना से ललिता (पार्वती) उसी (हिमालय) की विस्तृत तटद्वीपों में तप करने लगी ।

उस समय उनकी सखियों समिधा, इरा, फल मूलादि लानर देवी की सेवा करने लगी ।

(उन सखियों ने) पार्वती के विनोदनार्थ मिट्टी के तेजस्वी त्रिशूलधारी शङ्कर का निर्माण किया । पार्वती ने भी 'ठीक है' कहा—

वे उसी की पूजा करती एवं पुनः पुनः उसे देखती रहती थीं । तदनन्तर उनकी भद्रा से त्रिपुरान्तकारी शंकर

ततोऽस्यास्तुष्टिमगमच्छ्रद्धया त्रिपुरान्तरकृत् ॥ ४४
 बहुरूपं समाधाय आपाटी मुञ्जमेखला ।
 यज्ञोपवीती छत्री च मृगाजिनधरस्तथा ॥ ४५
 कमण्डलुव्यग्रकरो भस्मारुणितविग्रहः ।
 प्रत्याश्रमं पर्यटन् स तं काल्याश्रममागतः ॥ ४६
 तक्ष्मथाय तदा काली सखीभिः सह नारद ।
 पूजयित्वा यथान्यायं पर्यपृच्छदिदं ततः ॥ ४७
 उमोवाच ।

कस्मादागम्यते भिक्षो कुत्र स्थाने तथाश्रमः ।
 क्व च त्वं प्रतिगन्तासि मम शीघ्रं निवेदय ॥ ४८

भिक्षुवाच ।

ममाश्रमपदं बाले वाराणस्यां शुचित्रते ।
 अथातस्तीर्थयात्रायां गमिष्यामि पृथूदकम् ॥ ४९
 देव्युवाच ।

किं पुण्यं तत्र विप्रेन्द्र लब्धासि त्वं पृथूदके ।

सन्तुष्ट हो गये ।

(४४)

तदुपरान्त वे पाठाशदण्ड, मुञ्ज की मेखला, यज्ञोपवीत, ध्वज एवं मृगचर्म धारण कर बहु के रूप में हाथ में कमण्डलु छिप एवं शरीर में भ्रम लगाये हुए प्रत्येक आश्रम में भ्रमण करते हुए काली के आश्रम में पहुँचे ।

(४५-४६)

हे नारद ! तदनन्तर सखियों-सहित काली ने उठकर उनका यथोचित पूजन किया एवं तदनन्तर उनसे यह पूछा ।

(४७)

उमा ने कहा—हे भिक्षु ! आप शीघ्र मुझे बतलाएँ कि आप कहाँ से आ रहे हैं ? आप का आश्रम कहाँ है एवं आप कहाँ जायेंगे ?

(४८)

भिक्षु ने कहा—'हे पवित्रत्राओं वाली बाले ! वाराणसी में मेरा आश्रम है । मैं तीर्थयात्रा कर रहा हूँ । यहाँ से मैं पृथूदक में जाऊँगा ।

(४९)

देवी ने कहा—हे विप्रेन्द्र ! पृथूदक में तुम्हें कौन सा पुण्य उपलब्ध होगा ? मार्ग में किन-किन तीर्थों में

पथि स्नानेन च फलं केषु किं लब्धवानसि ॥ ५०

भिक्षुरावच ।

मया स्नानं प्रयागे तु कृतं प्रथममेव हि ।

ततोऽप्य तीर्थे कुञ्जात्रे जयन्ते चण्डिकेश्वरे ॥ ५१

बन्धुद्वन्द्वे च कर्कन्धे तीर्थे कनखले तथा ।

सरस्वत्यामग्निद्वण्डे भद्राया तु त्रिविष्टपे ॥ ५२

कोनटे कोटितीर्थे च कुञ्जके च वृशोदरि ।

निष्कामेन कृतं स्नानं ततोऽभ्यागा तवाश्रमम् ॥ ५३

इहस्थां त्वा समाभाष्य गमिष्यामि पृथूदकम् ।

पृच्छामि यदहं त्वां वै तत्र न श्रोद्धमर्हसि ॥ ५४

अहं वचपसात्मानं शोषयामि कुशोदरि ।

वाल्पेऽपि संयतवतुस्तच्च श्लाघ्यं द्विजन्मनाम् ॥ ५५

किमर्थं भवती रौद्रं प्रथमे वयसि स्थिता ।

तपः समाधिता भीरु संशयः प्रतिभाति मे ॥ ५६

प्रथमे वयसि स्त्रीणा सह भर्ता विलासिनि ।

सुभोगा भोगिताः काले व्रजन्ति स्थिरयोषणे ॥ ५७

तपसा वाञ्छयन्तीह गिरिजे सचराचराः ।

स्नान करने से तुम्हें कौन कौन फल प्राप्त हुआ ? (५०)

भिक्षु ने कहा—हे कुशोदरि ! मैंने पहले प्रयाग में स्नान किया है, तदनन्तर कुञ्जात्र, जयन्त, चण्डिकेश्वर बन्धुद्वन्द्व, कर्कन्ध, कनखलीर्थ, सरस्वती, अग्निद्वण्ड, भद्रा, त्रिविष्टप, कोनट कोटितीर्थ और कुञ्जक में निष्काम भाव से स्नान कर मैं तुम्हारे आश्रम में आया हूँ । (५१-५३)

यहाँ स्थित तुमसे बातें करने के पश्चात् मैं पृथूदक तीर्थ में जाऊँगा । मैं तुमसे जो कुछ पूछता हूँ उस पर क्रोध न करना । (५४)

हे कुशोदरि ! वाल्पानस्था मे भी संयत शरीर दीकर मैं जो तपस्या से अपने को मुजा रहा हूँ वह तो ब्राह्मणों के लिए प्रशंसनीय ही है । (५५)

परन्तु, हे भीरु ! इस प्रथमाश्रम मे ही तुम क्यों भयान्तर तप कर रही हो ? (इसमें मुझे) संशय हो रहा है । (५६)

हे स्थिरयोषणे ! हे विलासिनि ! प्रथमावस्था के काल में पति के साथ स्त्रियाँ सुन्दर भोगों वा भोग करती हैं । (५७)

हे गिरिजे ! चराचर जीव तपस्या से ससार में रूप, सत्त्व और देशवर्ष पाते हैं, वे सभी तुम्हें प्रचुर-

रूपामिजनमैश्वर्यं तच्च ते विद्यते बहु ॥ ५८

तत् किमर्थमपास्यैतानलकाराञ्जटा धृताः ।

चीनाशुक्रं परित्यज्य किं त्वं पल्कलभारिणी ॥ ५९

पुलस्त्य उवाच ।

ततस्तु तपसा वृद्धा देव्याः मोमप्रभा सखी ।

मिश्रं कथयामास यथावत् सा हि नारद ॥ ६०

सोमप्रभोवाच ।

तपश्चर्यां द्विजश्रेष्ठ पार्वत्या येन हेतुना ।

त शृणुष्व स्विय काली हर भर्तारमिच्छति ॥ ६१

पुलस्त्य उवाच ।

सोमप्रभाया वचनं श्रुत्वा संकल्प्य वै शिरः ।

विहस्य च महाहासं भिक्षुराह वचस्त्विदम् ॥ ६२

भिक्षुरावच ।

वदामि ते पार्वति शश्वमेवं

केन प्रदत्ता तत्र बुद्धिरेया ।

कथं करः पल्लवकोमलते

समेप्यते शार्वकरं ससर्पम् ॥ ६३

मात्रा में प्राप्त हैं ।

(५८)

तो इन अलङ्कारों को छोड़कर तुमने जटा क्यों धारण किया है ? चीनाशुक्र देशी वस्त्र का परित्याग कर तुम पल्कल क्यों पहन ली ? (५९)

पुलस्त्य ने कहा—हे नारद ! तदनन्तर पार्वती की, तप से शूद्ध सोमप्रभा नामक सखी ने भिक्षु से वस्तुस्थिति वा वर्णन किया । (६०)

सोमप्रभा ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! पार्वती जिस कारण से तपस्या कर रही हैं, उसे मुनिये । यह काली शिव को अपना पति बनाना चाहती है । (६१)

पुलस्त्य ने कहा—सोमप्रभा की बात सुनकर शिर हिलाते हुये बड़े जोर से हँसकर भिक्षु ने यह वचन कहा । (६२)

भिक्षु ने कहा—हे पार्वति ! मैं तुमसे यह बात पूछता हूँ कि तुम्हें यह बुद्धि किसने दी ? तुम्हारा पहलव के समान कोमल हाथ शहर के सर्पयुक्त हाथ से कैसे मिलेगा । (६३)

तथा दुह्लाम्बरशालिनी त्वं
मृगारिचर्माभिष्टुतस्तु रुद्रः ।
त्वं चन्दनाक्ता स च भस्ममृषिति
न युक्तरूपं प्रतिभाति मे त्विदम् ॥ ६४

पुलस्त्य उवाच ।

एवं वादिनि विप्रेन्द्र पार्वती भिक्षुमग्रधीव ।
मा भवं वद भिक्षो त्वं हरः सर्वशुणाधिकः ॥ ६५
शिवो वाप्यथवा भीमः सधनो निर्धनोऽपि वा ।
अलंकृतो वा देवेशस्तथा वाप्यनलंकृतः ॥ ६६
यादृशस्तादृशो वापि स मे नाथो भविष्यति ।
निवार्यतामग्र भिक्षुर्विचक्षुः स्फुरिताधरः ।
न तथा निन्दकः पापी यथा शृण्वन् शशिप्रभे ॥ ६७
पुलस्त्य उवाच ।

इत्येवमुक्त्वा वरदा समुत्थातुमथैच्छत ।
ततोऽत्यजद् भिक्षुरूपं स्वरूपस्योऽभ्यर्च्छितः ॥ ६८

और तुम सुन्दरब्रह्म धारण करने वाली हो किन्तु
रुद्र व्याघ्रचर्म धारण करते हैं । तुम चन्दन-चर्चित हो
एवं शंकर भस्म मृषित हैं । अतः मुझे यह उपयुक्त नहीं
प्रतीत होता । (६४)

पुलस्त्य ने कहा—हे विप्रेन्द्र ! भिक्षु के ऐसा कहने
पर पार्वती ने उससे कहा—हे भिक्षुक ! तुम ऐसा मत
कहो । शंकर सब गुणों में श्रेष्ठ हैं । (६५)

वे देवेश शिव या भयङ्कर, सधन या निर्धन तथा
अलंकृत अथवा अलङ्कारविहीन हों । वे जैसे वैसे कथों
न हों वे ही मेरे स्वामी होंगे । हे शशिप्रभे ! इसे
मना करो । यह भिक्षुक पुनः कुछ बहना चाहता है
जिससे इसके ओठ फड़क रहे हैं । निन्दक वैसे पापी नहीं
होता वैसे (निन्दा को) सुनने वाला होता है । (६६-६७)

पुलस्त्य ने कहा—ऐसा बहकर वरदा पार्वती ने यहाँ
से उठ कर जाना चाहा । तदनन्तर शंकर भिक्षुरूप को त्याग
कर स्वरूप हो गये । (६८)

वे स्वरूप होकर बोल—हे प्रिये ! अपने पिता के

भूत्वोवाच प्रिये गच्छ स्वमेव भवनं पितुः ।
तगार्थाय प्रहेष्यामि महर्षीन् हिमवद्गृहे ॥ ६९
यद्येह रुद्रमीहन्त्या मृन्मयश्वेश्वरः कृतः ।
असौ भद्रेश्वरेत्येवं ख्यातो लोके भविष्यति ॥ ७०

देवदानवगन्धर्वा यक्षः किंपुत्पोरगाः ।
पूजयिष्यन्ति सततं मानवाश्च शुभेभ्यः ॥ ७१

इत्येवमुक्त्वा देवेन गिरिराजसुता धृने ।
जगामाम्बरमाविश्य स्वमेव भवनं पितुः ॥ ७२
शकरोऽपि महातेजा विसृज्य गिरिकन्यकाम् ।
पृथूदकं जगामाथ स्नानं चक्रो विधानतः ॥ ७३

ततस्तु देवप्रवरो महेश्वरः

पृथूदके स्नानमपास्तकल्मषः ।

कृत्वा सनन्दिः सगणः सवाहनो

महागिरिं मन्दरमाजगाम ॥ ७४

पर जाओ । तुम्हारे लिये मैं हिमवान् के घर पर
मर्दियों को भेजूँगा । (६९)

रुद्र को चाहने वाली तुमने यहाँ जिस मृन्मय
ईश्वर को बनाया है वे सत्सर मैं भद्रेश्वर नाम से प्रसिद्ध
होगे । (७०)

देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर, उरग एवं मनुष्य
मागल की इच्छा से सदा उनकी पूजा करेंगे । (७१)

हे मुनि ! शङ्कर के ऐसा कहने पर हिमालय-पुत्री
पार्वती आकाश मार्ग से अपने पिता के घर चली
गयीं । (७२)

महातेजस्वी शङ्कर भी गिरिराज की कन्या को
विदाकर पृथूदक तीर्थ में गये एवं विधान पूर्वक स्नान
किया । (७३)

तदनन्तर देवप्रवर महेश्वर पृथूदक में स्नान से पाप
विमुक्त होकर नन्दी, गणों एवं बहान के बहित महापर्वत
मन्दर पर आये । (७४)

ततोऽप्रवीत् सुरपतिर्धर्म्यं वाक्यं हितं सुरान् ।
आत्मनो यद्यसौ बृहस्पै सप्तर्षीन् विनयान्वितान् ॥ ८

हर उवाच ।

कश्यपात्रे वारुणेय गाधेय शृणु गौतम ।
भरद्वाज शृणुष्व त्वमङ्गिरस्त्वं शृणुष्व च ॥ ९
ममासीद् दक्षतनुजा प्रिया सा दक्षकोपतः ।
उत्ससर्ज सती प्राणान् योगदृष्ट्या पुरा किल ॥ १०
साऽथ भूयः सङ्गृह्णाता शैलराजसुता उमा ।
सा मदर्याय शैलेन्द्रो यान्वता द्विजसत्तमाः ॥ ११

पुलस्त्य उवाच ।

सप्तर्षयस्त्वेवमुक्ता धाढमित्यब्रुवन् वचः ।
ॐ नमः शंकरायैति श्रोक्त्वा जग्मुर्हिमालयम् ॥ १२
ततोऽप्यहन्धर्ता शर्वः प्राह गच्छस्व सुन्दरि ।
पुरन्तरो हि पुरन्तीणां गतिं धर्मस्य वै विदुः ॥ १३
इत्येवमुक्त्वा दुर्लभ्यं लोकाचारं त्वरन्धती ।

तदनन्तर सुरपति शिव ने विनयान्वित सप्तर्षियों से अपने यश वा वृद्धिप्राप्ति, देवताओं के लिये हितकर एष धर्म युक्त वचन कहा । (८)

शहर ने कहा—हे कश्यप । हे अत्रि । हे पसिष्ठ । हे विश्वामित्र । हे गौतम । हे भरद्वाज । हे अङ्गिरा । आप लोग सुनो— (९)

प्राचीनकाल में दक्ष की कन्या सती मेरी प्रिया थी । उसने दक्ष के ऊपर क्रुद्ध होकर योगदृष्टि से अपने प्राणों का त्याग कर दिया । (१०)

वही आज पुन उमा नाम से गिरिपुत्र हिमालय की कन्या हुई है । हे द्विजसत्तमो । आप लोग मेरे लिए इसे पथंतराज से माँगो । (११)

पुलस्त्य ने कहा—वेला कहे जाने पर सप्तर्षियों ने 'भरद्वाज' यह वचन कहा एवं 'ॐ नमः शंकराय' कहकर वे हिमालय पे चले गये । (१२)

तदनन्तर शहर ने अरुन्धती से कहा—हे सुन्दरि । तुम भी जाओ । शिवों के धर्म की गति को शिवों ही जानती है । (१३)

इम प्रकार दुर्लभ्य लोकाचार जिनसे कहा गया है ऐसी अरुन्धती 'निमतेन्द्र' ऐसा कहकर अपने पति के

नमस्ते रुद्र इत्युक्त्वा जगाम पतिना सह ॥ १४
गत्वा हिमाद्रिशिखरमोषधिप्रस्थमेव च ।

ददृशुः शैलराजस्य पुरीं सुरपुरीमिव ॥ १५
ततः संपूज्यमानास्ते शैलयोषिद्धिरादरात् ।

सुनाभादिभिरगन्धर्वैः पूज्यमानास्तु पर्वतैः ॥ १६
गन्धर्वैः किनैर्यक्षैस्तथान्यैस्तत्पुरस्सरीः ।

विविशुर्भवंतं रम्य हिमाद्रेर्हृदिकोज्ज्वलम् ॥ १७
ततः सर्वे महात्मानस्तपसा धौतकल्मषाः ।

समासाद्य महाद्वार संतस्थुर्द्वास्थकारणात् ॥ १८
ततस्तु त्वरितोऽभ्यागाद् द्वास्थोऽद्रिर्गन्धमादनः ।

धारयन् वै करे दण्ड पद्मरागमय महत् ॥ १९
ततस्तमूत्रुर्धनयो गत्वा शैलपतिं शुभम् ।

निवेदयास्मान् संप्रामान् महत्कार्यायिनो वयम् ॥ २०
इत्येवमुक्त्वा शैलेन्द्रो ऋषिभिर्गन्धमादनः ।

जगाम तत्र यत्रास्ते शैलराजोऽद्रिभिर्दृतः ॥ २१
निषण्णो भुवि जानुभ्यां दत्त्वा हस्तौ मुखे गिरिः ।

साथ गई । (१४)

औषधियों से युक्त हिमालय के शिखर पर जाकर सुर-पुरी के सदृश शैलराज हिमालय की नगरी को देखा । (१५)

तदनन्तर शैलराज की पत्नियों, सिधरचित्त वाते सुना-भादि पर्वतों, गन्धर्वों, किन्नरों, यक्षों एवं अन्यो से पूजित होकर वे हिमालय के स्वर्ण की तरह प्रकाशमान रमणीय भवन में प्रविष्ट हुए । (१६-१७)

तदनन्तर तपस्या से पाप-रहित वे सभी महात्मा महाद्वार पर जाकर द्वारपाल के पास रुक गये । (१८)

तदुपरांत हाथ में पद्मरागमय महान् दण्ड धारण किये हुए द्वार स्थित गन्धमादन पर्वत शीघ्र धनके निष्कट गया । (१९)

तदनन्तर मुनियों ने उससे कहा—श्रीमान् शैलपति से जाकर यह संवाद कहे कि हम लोग महान् कर्य के निमित्त आये हैं । (२०)

ऋषियों के ऐसा कहने पर शैलेन्द्र गन्धमादन, पर्वतों से पिरे हुए शैलराज के समीप गये । (२१)

पृथ्वी पर घुटनों के बल बैठकर दोनों हाथ युग्म के निष्कट ले जाकर एवं दण्ड को बाँध ले द्वापर उसने यह

दण्डं निःश्लिष्य कक्षायामिदं वचनमब्रवीत् ॥ २२
गन्धमादन उवाच ।

इमे हि ऋषयः प्राप्ताः शैलराज तवारिणः ।
द्वारे स्थिताः कार्ष्णिगस्तै तत्र दर्शनलालसाः ॥ २३
पुलस्त्य उवाच ।

द्वाःस्थयाकथं समाकर्ण्यं समुत्थायाचलेश्वरः ।
स्वयमभ्यागमद् द्वारि समादावार्यमुत्तमम् ॥ २४
तानर्च्यार्ध्यादिना शैलः समानीय सभातलम् ।
उवाच वाक्यं वाक्यशः कृतासनपरिश्रहान् ॥ २५
हिमवानुवाच ।

अनभ्रवृष्टिः क्रिमियमुताहोऽश्रुसुमं फलम् ।
अप्रतर्क्यमचिन्त्यं च भवदागमनं त्विदम् ॥ २६
अजप्रभृति घन्योऽस्मि शैलराज्य सचत्माः ।
संशुद्धदेहोऽस्म्यथैव यद् भवन्तो मभाजिरम् ॥ २७
आत्मसंसर्गमंशुद्धं कृतवन्तो द्विजोत्तमाः ।
दृष्टिपूर्तं पदाक्रान्तं तीर्थं सारस्वतं यथा ॥ २८
दातोऽहं भवतां विप्राः कृतपुण्यश्च सांप्रतम् ।

वचन पढ़ा । (२२)
गन्धमादन ने कहा—हे शैलराज ! ये ऋषिगण किसी प्रयोजनयुक्त आप के पास आये हैं और दर्शन करने की कामना से द्वार पर खड़े हैं । (२३)

पुलस्त्य ने कहा—द्वारपाल की बात सुनने के उपरान्त पर्यंतराज लठहर तथा उत्तम अर्च्यं लेकर स्वयं द्वार पर गये । (२४)

अर्च्यं आदि द्वारा उनका अर्पण करने के उपरान्त सभा में लहर उन लोगों से यात्राया शैल ने उनके आसन प्रदण्य करने पर यह वाक्य कहा । (२५)

हिमवान् ने कहा— यह किता भेद्य की कर्ण अथवा किता फूल का फल कैसा क्योंकि आप लोगों का यह आगमन कल्पनागीत एवं अपिन्त्य है । (२६)

हे सत्तमो ! आज ने मैं घन्य हुआ । धाज ही मैं शैलराज हुआ । आज ही भेद्य शरीर शुद्ध हुआ है क्योंकि कि हे द्विजोत्तमो ! आज आप ने मेरे आंगर को दृष्टि-पूल, पराध्वन्य एवं आत्मसंसर्ग से सारस्वत तीर्थ के सहज शुद्ध किया है । (२७-२८)

हे माण्डो ! मैं आप लोगों का दास हूँ । मन्प्रति

येनार्थिनो हि ते पुत्र्यं तन्ममाज्ञातुमर्हथ ॥ २९
सदारोऽहं समं पुत्रीर्मुत्पैर्नन्दुमिन्वययाः ।
क्रिकरोऽस्मि स्थितो युष्मदाज्ञाकारो तदुच्यताम् ॥ ३०
पुलस्त्य उवाच ।

शैलराजवचः श्रुत्वा ऋषयः संशितप्रताः ।
ऊचुरद्विरसं वृद्धं कार्यमत्री निवेदय ॥ ३१
इत्येवं चोदितः सर्वैर्ऋषिभिः कश्यपादिभिः ।
प्रत्युवाच परं वाक्यं गिरिराजं तपह्विराः ॥ ३२
अद्विरा उवाच ।

श्रूयतां पर्वतश्रेष्ठ येन कार्ष्णेण वै वयम् ।
समागततास्त्रसदनमरुन्धत्या समं गिरे ॥ ३३
योऽमौ महात्मा सर्वात्मा दक्षयज्ञशंकरः ।
शंकरः शूलशूक् सर्वरिनेत्रो वृषवाहनः ॥ ३४
जीमूतकेतुः शत्रुघ्नो यज्ञभोक्ता स्वयं प्रभुः ।
यमीश्वरं चदन्त्येके शिष्यं स्व्याणुं भवं हरम् ॥ ३५
भीममूयं महेशानं महादेवं पशोः पतिम् ।
वयं तेन प्रेषिताः स्मस्तवत्सत्तयं गिरीश्वर ॥ ३६

पुण्यवान् हुआ हूँ । आप लोग जो चाहते हैं उसके लिए मुझे आशा है । (२९)

हे महर्षियो ! मैं स्त्री, पुत्र, नावी, भृत्यों के सहित आप का आज्ञाकारी सेवक हूँ । अन आशा है । (३०)

पुलस्त्य ने कहा—गिरिराज की बात सुनकर प्रसार प्रन वाले ऋषियों ने वृद्ध अद्विरा मुनि से कहा—हिमवान् को आप प्रयोजन बनलायें । (३१)

इस प्रसार पद्यपादि ऋषियों से प्रेरित अद्विरा ने उन गिरिराज हिमालय से यह भेद्य वचन कहा । (३२)

अद्विरा ने कहा—हे पर्यंतराज ! हम लोग अरुन्धनी के साथ आप के पर जिस कार्य से आये हैं उसे सुनिये । (३३)

हे गिरीश्वर ! जिन महात्मा, सर्वात्मा, दक्ष-यज्ञ-विनाशक, शूलधारी, शं, त्रिनेत्र, वृषमवाहन, जीमूतकेतु, शत्रुघ्न, यज्ञभोक्ता, स्वयंप्रभु, भगवान् शत्रु के बुद्ध ह्येग शिष्य, स्व्याणु, भन, हर, भीम, वन, महेशान, महादेव एवं परमपति कहते हैं उन्होंने ही हम लोगों को आप के निराट भेजा है । (३४-३६)

इयं या स्वस्तुता काली सर्वलोकेषु सुन्दरी ।
 तां प्रार्थयति देवेशस्तां भवान् दातुमर्हति ॥ ३७
 स एव धन्यो हि पिता यस्य पुत्री शुभं पतिम् ।
 रूपाभिजनसंपत्त्या प्राप्नोति गिरिसत्तम ॥ ३८
 यावन्तो जङ्गमागम्या भूताः शैल चतुर्विधाः ।
 तेषां माता त्वियं देवी यतः प्रोक्तः पिता हरः ॥ ३९
 प्रणम्य शंकरं देवाः प्रणमन्तु तुतां तव ।
 शूरुप पादं शङ्खान् मूर्ध्नि भस्मपरिष्कृतम् ॥ ४०
 याचितारो वयं शनो वरो दाता त्वमप्युमा ।
 वयुः मर्त्यगन्माता कुरु यच्छ्रेयसे तव ॥ ४१
 पुलस्त्य उवाच ।

तद्वयोऽङ्गिरसः श्रुत्वा काली तन्धावधोमुप्री ।
 हर्षभागत्य महमा पुनर्देव्यमृषामाता ॥ ४२
 ततः शैलपतिः प्राह पर्वतं गन्धमादनम् ।
 गच्छ शैलानुपामन्त्र्य मरानागन्तुमर्हमि ॥ ४३
 ततः श्रीघतरः शैलो गृहाह गृहमगाञ्जरी ।

आप की इस समस्त लोकों में सुन्दरी पुत्री वाली वो
 देवेश (शहर) माँगते हैं। आप उसे प्रदान करें। (३७)
 हे गिरिसत्तम! परी पिता धन्य होता है जिसकी पुत्री
 रूप, पुत्र और सम्पत्ति से युक्त शुभ पति को प्राप्त करती
 है। (३८)

हे शैल! मे देवी चतुर्विध समस्त धराचर जीवों
 की माता हैं क्योंकि हर उन (प्राणियों) के पिता पद
 गये हैं। (३९)

समस्त देवता शहर की प्रणाम पर तुम्हारी पुत्री को
 प्रणाम करें। अपने शत्रुओं के द्वार पर अपना भस्म
 युक्त पैर रखते। (४०)

हम लोग याचना करने वाले हैं, शहर पर है,
 आप दाता हैं और समस्त संसार की जननी उमा वयु
 हैं। आप जो अग्नि सामने करें। (४१)

पुलस्त्य ने कहा अङ्गिरा की यह बात सुनकर बाजी
 ने मुझ नीचे कर दिया। मद्रता प्रसन्न होकर वे पुत्र निम्न
 हो गयीं। (४२)

तदनन्तर गिरिराज ने गन्धमादन पर्वत से कहा—
 जाओ। सब पर्वतों को बुझा जाओ। (४३)

मेवादीन् पर्वतश्रेणानाजुहाय समततः ॥ ४४
 तेऽप्याजगमस्त्वरावन्तः कार्यं मत्वा महत्तदा ।
 विविशुर्विस्मयानिष्टाः सौवर्णेष्वामनेषु ते ॥ ४५
 उदयो हेमकूटश्च रम्यको मन्दरस्तथा ।
 उदालको वारुणश्च वराहो गरुडासनः ॥ ४६
 शुक्तिमान् वेगसानुश्च दृढशृङ्गोऽथ शृङ्गवान् ।
 चित्रकूटस्त्रिकूटश्च तथा मन्दरकाचलः ॥ ४७
 विन्ध्यश्च मलयश्चैव पारियात्रोऽथ दुर्दरः ।
 कैलामाद्रिमहेन्द्रश्च निषधोऽञ्जनपर्वतः ॥ ४८
 एते प्रधाना गिरवस्तथाऽन्ये ध्रुवपर्वताः ।
 उपविष्टाः सभायां वै प्रणिपत्य श्रुषींश्च तान् ॥ ४९
 ततो गिरीशः स्वां भार्यां मेनामाहृत्वाथ सः ।
 ममागच्छत वक्ष्यामीं समं पुत्रेण भागिनी ॥ ५०
 साऽभिवन्द्य श्रुषीणां हि चरणाथ तपस्विनी ।
 सत्रान् ध्यातीन् समाभाष्य विवेश सगुता ततः ॥ ५१
 ततोऽग्निषु महाशैल उपविष्टेषु नारद ।

तदुपस्थान वेगवान् पर्वत (गन्धमादन) शीघ्रता-
 पूर्वक पर पर जाकर मेरु आदि सभी श्रेष्ठ पर्वतों को
 चारों ओर से घुला लाया। (४४)

वे सभी पर्वत भी कोई मदान् कार्यं समझ कर शीघ्रता
 से आ गये और सुवर्णमय आसनों पर विस्मयपूर्वक बैठ
 गये। (४५)

उदय, हेमकूट, रम्यक, मन्दर, उदालक, वारुण,
 वराह, गरुडासन, शुक्तिमान्, वेगसानु, दृढशृङ्ग, शृङ्गवान्,
 चित्रकूट, त्रिकूट, मन्दरकाचल, विन्ध्य, मलय, पारियात्र,
 दुर्दर, कैलास, महेन्द्र, निषध, अञ्जन-ये सभी प्रमुख पर्वत
 तथा छोटे-छोटे अन्य पर्वत उन ऋषियों को प्रणाम
 कर समा में बैठ गये। (४६-४८)

तदनन्तर उन गिरिराज ने अपनी भार्या मेना को
 बुलाया। (४९) वक्ष्यामीं भागिनी अपने पुत्र के
 साथ आइं। (५०)

तदनन्तर वे शास्त्री ऋषियों के घरलों में प्रणाम
 कर एवं समस्त ऋषियों से अनुज्ञा लेकर पुत्र के साथ
 बैठ गईं। (५१)

हे नारद! तदुपस्थान सभी पर्वतों के बैठ जाने

उवाच वाक्यं वाक्यज्ञः सर्वानामप्य सुस्तरम् ॥ ५२
हिमवानुवाच ।

इमे सर्पर्षयः पुण्या याचितारः सुतां मम ।
महेश्वरार्थं कन्यां तु तत्रावेयं भवस्तु वै ॥ ५३
तद् वदस्व यथाप्रज्ञं ज्ञातव्यं युयमेव मे ।
नोऽहृद्ध्य युष्मान् दास्यामि तत्क्षमं वक्तुमर्हथ ॥ ५४
पुलस्त्य उवाच ।

हिमवद्वचनं श्रुत्वा मेवाद्याः स्थावरोत्तमाः ।
सर्व एवाश्रुवन् वाक्यं ग्थिताः स्वेष्वामनेषु ते ॥ ५५
याचितारश्च पुनर्यो वरस्त्रिपुरहा हरः ।
दीयतां शैल कालीयं जामाताऽभिमतो हि नः ॥ ५६
मेनाप्यवाह भर्तारं शृणु शैलेन्द्र महत्तमः ।
पितृनाराप्य देवैर्भर्तृचाऽनेनैव हेतुना ॥ ५७
यस्तस्यां भूतपतिना पुत्रो जातो भविष्यति ।
स हनिष्यति दैत्येन्द्रं महिषं तारकं तथा ॥ ५८
इत्येयं मेनया प्रोक्तः शैलः शैलेश्वरः सुताम् ।

पर उनीहि अनुमति लेखर पाक्यज्ञ महाशैल ने मधुर वचन
पदा । (५२)
हिमवान् ने कहा—ये पुण्यात्मा सर्पर्षि शङ्कर के
लिए मेरी कन्या को माँग रहे हैं। यही आप लोगों से
निवेदन करना है। (५३)
आप ही मेरे ज्ञाति-बन्धु हैं अत अपनी बुद्धि के
अनुसार परामर्श दें। आप का उल्लङ्घन कर मैं (कन्या
का) दान नहीं करूँगा, अत आप लोग उचित परामर्श
दें। (५४)

पुलस्त्य ने कहा—हिमवान् की बात सुनकर मेरे
प्रभृति सभी गिरिवरों ने अपने-अपने आसन पर घंटे
हुप ही कहा—
याचना करने वाले सर्पर्षि हैं, और त्रिपुरासुर का वध
करने वाले शङ्कर पर हैं। हे शैलराज ! इस काली की
आप प्रदान करें। जामाता हम लोगों को पसन्द है। (५६)
तदनन्तर मेना ने पति से कहा—हे शैलेन्द्र ! मेरी
बात सुनिये। पित्रों की आराधना कर उन देवों ने
मुझे इसलिये दिया था कि भूतपति द्वारा इससे जो पुत्र
उत्पन्न होगा, वह दैत्येन्द्र महिष एवं तारक का वध
करेगा। (५७-५८)
मेना तथा पर्वतों के इस प्रहार करने पर हिमवान्

प्रोवाच पुत्रि दत्ताऽमि शर्वाय त्वं मयाऽधुना ॥ ५९
ऋषीनुवाच कालीयं मम पुत्री तपोधनाः ।
प्रणामं शंकरवधूर्भक्तितनत्रा करोति वः ॥ ६०
ततोऽप्यस्त्वथी कालीमङ्गमारोप्य चातुर्यैः ।
लज्जमानां समाश्रास्य हरनामोदिनैः शुभैः ॥ ६१
ततः सर्पर्षयः प्रोचुः शैलराज निशामय ।
जामित्रगुणसंबुक्तां तिथिं पुण्यां सुमङ्गलाम् ॥ ६२
उत्तराफाल्गुनीयोगं तृतीयेऽद्वि हिमांशुमान् ।
गमिष्यति च तत्रोक्तो मूर्ध्नो मंत्रनामकः ॥ ६३
तस्यां तिथ्यां हरः पाणिं ग्रहीष्यति समन्त्रकम् ।
तत्र पुण्या वयं यामस्तदनुष्ठातुमर्हामि ॥ ६४
ततः संख्यं विधिना कलमूलादिभिः शुभैः ।
विमर्जयामाम शनैः शैलराज् ऋषिपुंगवान् ॥ ६५
तेऽप्याजगमुर्महावेगान् त्वाकम्ब्य मरुदालयम् ।
आमाद्य मन्दरगिरिं भूयोऽवन्दन्त शंकरम् ॥ ६६
प्रणम्योचुर्महेशानं भवान् भर्ताऽद्रिजा वधुः ।

ने अपनी कन्या से कहा—हे पुत्रि ! अब मैंने तुम्हें शङ्कर
को दे दिया। (५९)
ऋषियों से उन्होंने कहा—हे तपोधनो ! यह मेरी
पुत्री तथा शङ्कर की वधु काली मणि से नम्र हो कर आप
लोगों को प्रणाम करती है। (६०)
तदनन्तर अरुण्यती ने खिन्न हो रही काली को गोद
में बैठा कर शङ्कर के शुभ नामों के उच्चारण से उसे
समाधस्त किया। (६१)
तदपरांत सर्पर्षियों ने कहा—हे शैलराज !
जामित्रगुणसबुक्त मङ्गलमय पवित्र तिथि को सुनिये।
तीसरे दिन चन्द्रमा उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र से योग
करेगा। उसे मंत्र नामक मूर्च्छा कहते हैं। (६२-६३)
उस तिथि में शङ्कर मन्त्र के साथ आप की पुत्री
का पाणि ग्रहण करेंगे। आप अनुमति दें, हम लज्ज
जाने हैं। (६४)
तदनन्तर शैलराज ने सुन्दर कलमूलों से विधिपूर्वक
पूजा कर उन ऋषियों को विदा किया। (६५)
वे आकाशमार्ग से अत्यन्त वेग से मन्दरगिरि पर
आये एवं महेश को प्रणाम कर कहा—आप पर एवं
गिरिजा वधु हैं। जगत् सहित तीनों लोक पनवाहन (गिर)

सम्राजकास्त्रयो लोका द्रक्ष्यन्ति धनवाहनम् ॥ ६७
 ततो महेश्वरः प्रीतो ह्यनीन् सर्वाननुक्रमात् ।
 पूजयामास विधिना अरुन्धत्या समं हरः ॥ ६८
 ततः संपूजिता जग्मुः सुराणां मन्त्रणाय ते ।
 तेऽप्याजग्मूर्हरं द्रष्टुं ब्रह्मविष्णिन्द्रभास्कराः ॥ ६९
 गेहं ततोऽभ्येत्य महेश्वरस्य
 कृतप्रणामा विविशुर्महर्षे ।

इति श्रीवामनपुराणे पद्मविंशोऽध्याय ॥२६॥

सस्मार नन्दिप्रमृखांश्च सवो-
 नभ्येत्य ते वन्द्य हरं निषण्णाः ॥ ७०
 देवैर्गणैश्चापि धृतो गिरीशः
 स शोभते मृक्षतटाग्रभारः ।
 यथा वने सर्जकदम्बमप्ये
 प्ररोहमूलोऽथ वनस्पतिर्वै ॥ ७१

२७

पुलस्त्य उवाच ।

समागतान् सुरान् दृष्ट्वा नन्दिराख्यातवान् विभोः ।
 अद्योत्थाय हरिं भक्त्या परिध्वज्य न्यपीडयत् ॥ १
 ब्रह्माणं शिरसा नत्वा समाभाष्य शतकलुम् ।
 आलोकयान्यान् सुरगणान् सभावयत् स शंकरः ॥ २
 गणाश्च जय देवेति वीरभद्रपुरोगमाः ।

ना दर्शन करेगे ।

(६६-६७)

तदनन्तर शङ्कर ने प्रसन्न होकर क्रमानुसार अरुन्धती
 सहित सप्तर्षियों की विधिपूर्वक पूजा की । (६८)

(शिव द्वारा) भली भाँति पूजित होकर ये देवों को निम
 नित्रत करने गये । (तदनन्तर) वे ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र एवं सूर्य
 आदि (देवता) भी शिव का दर्शन करने आये । (६९)

हे महर्षि ! यहाँ जाकर (शङ्कर को) प्रणाम करने

श्रीवामनपुराण में छप्पीतमोऽध्याय समाप्त ॥२६॥

२७

पुलस्त्य ने कहा—नन्दी ने आये हुए समस्त देवताओं
 को देकर शङ्कर से यथाया । शङ्कर ने बठकर भक्तिपूर्वक
 विष्णु का गाढ़ आलिङ्गन किया । (१)

उन शङ्कर ने ब्रह्मा को शिर से प्रणाम किया एं इन्द्र
 से कुशल समाचार पूछा तथा अन्य देवों की ओर
 देखकर उनका आदर किया । (२)

वीरभद्रादि शीव एव पाशुपत गण 'जय देव' बहते हुए

मन्दराचल में प्रविष्ट हुए ।

(३)

तदनन्तर भगवान् शिव वैवाहिक विधि सम्पन्न करने
 के लिए देवताओं सहित कैलास नामक महान् पर्वत पर
 गये । (४)

तदुरान्त उस महान् पर्वत पर देवमाता कन्याणी
 अदिति, सुरभि, सुरसा एवं अन्य स्त्रियों ने शीघ्रता से शङ्कर का
 मण्डन किया । (५)

महास्थिशेखरी चारुरोचनातिलको हरः ।
 सिंहाजिनी चालिनीलभुजंगद्वतवृण्डलः ॥ ६
 महाहिरत्नवलमो हारकेयूरनूपुरः ।
 समुन्नतजटाभारो वृषभस्थो विराजते ॥ ७
 तस्याग्रतो गणाः स्रैः स्वैरारूढा यान्ति वाहनैः ।
 देवाश्च पृष्ठतो जग्मूर्हुताशनपुरोगमाः ॥ ८
 वैनतेयं समारूढः सह लक्ष्म्या जनार्दनः ।
 प्रयाति देवपार्श्वस्थो हंसेन च पितामहः ॥ ९
 गजाधिरोहो देवेन्द्रश्छत्रं शुक्लपटं मिथः ।
 धारयामास विततं शय्या सह सहस्रदृक् ॥ १०
 यमुना सरितां श्रेष्ठा बालक्यजनपुत्रचमम् ।
 श्वेत प्रगृह्य हस्तेन कच्छपे मन्थिता ययौ ॥ ११
 हसद्वन्देन्द्रसंकाशं बालक्यजनपुत्रचमम् ।
 सरस्वती सरिच्छ्रेष्ठा गजारूढा समादधे ॥ १२
 ऋतवः पट् समादाय कुसुमं गन्धसयुतम् ।
 पञ्चवर्णा महेशानं जग्मस्तु कामचारिणः ॥ १३
 मत्स्यैरावणनिभं गजमारुह्य वेगवान् ।

नरकपाल धारी, सुन्दर गोरोचन के तिलक वाले, व्याघ्र चर्मधारी, भ्रमर के सदृश नीले (काले) सर्प का कुण्डल धारण किये, महान् सर्पों का स्तनरक्षण पहने, हार, केयूर एवं नूपुर धारण किये तथा लम्बी, उन्नत जटा समूह वाले शंकर वृषभ पर विराजित हुए । (६-७)

शङ्कर के आगे अपने-अपने वाहनों पर बैठे उनके गण एवं उनके पीछे अग्नि आदि देवता चले । (८)

शङ्कर के पार्श्व में लक्ष्मी सहित गरुडारूढ विष्णु एवं हसारूढ ब्रह्मा चलते लगे । (९)

शची सहित गजारूढ सहस्रनेत्र इन्द्र ने शुक्ल यष्ट्र निर्निन्दित किरूट छत्र धारण किया । (१०)

नदियों में श्रेष्ठ यमुना कच्छप पर सवार हो अपने हाथ में उत्तम श्वेत बैर लेकर चलने लगी । (११)

सरिच्छ्रेष्ठा सरस्वती भी हाथी पर चढ़कर हंस, कुन्द एवं इन्दु सदृश बैर लेकर चलने लगी । (१२)

कामचारी ह्य ऋतुर्षे पाँच वर्णों के सुगन्धित पुष्प लेकर शङ्कर के साथ चलने लगी । (१३)

ऐरावत तुल्य मत्स्य गज पर आरूढ पृथुदक अनुलेपन

अनुलेपनमादाय ययौ तत्र पृथुदकः ॥ १४
 गन्धर्वास्तुभ्ररुमुखा गायन्तो मधुरस्वरम् ।
 अनुजग्मूर्महादेवं वादयन्तश्च किन्नराः ॥ १५
 नृत्यन्त्योऽप्सरश्चैव स्तुवन्तो मृगयश्च तम् ।
 गन्धर्वा यान्ति देवेश त्रिनेत्रं शूलपाणिनम् ॥ १६
 एकादश तथा क्रौञ्चो रुद्राणां तत्र वै ययुः ।
 द्वदशैवादिदेयानामथौ क्रौञ्चो बभूवपि ॥ १७
 सप्तपटिस्तथा क्रौञ्चो गणानामृषिसचम ।
 चतुर्विंशत् तथा जग्मूर्सपीणामूर्ध्वरेतसाम् ॥ १८
 असंख्यातानि ययानि यक्षकिन्नररक्षसाम् ।
 अनुजग्मूर्महेशानं विवाहाय समाकुलाः ॥ १९
 ततः क्षणेन देवेशः स्माधराधिपतेस्तलम् ।
 संप्राप्तास्त्वामगमन् शैलाः कुञ्जरस्वाः समन्ततः ॥ २०
 ततो ननाम भगवांस्रिनेत्रः स्थावराधिपम् ।
 शैलाः प्रणेष्टुरीशानं ततोऽसौ मुदितोऽभवत् ॥ २१
 समं सुतैः पार्षदैश्च विवेश वृषकेतनः ।
 नन्दिना दर्शिते मार्गे शैलराजपुरं महत् ॥ २२

लेकर चला । (१४)

मधुर स्वर से गायन कर रहे तुम्बरप्रभृति गन्धर्व एवं बाजा बजा रहे किन्नर शङ्कर के पीछे पीछे चले । (१५)

नृत्य कर रही अप्सरायें तथा देवेश शूलपाणि त्रिलोचन की स्तुति करते हुए मुनि तथा गन्धर्व चले । (१६)

हे ऋषिसचम ! ग्यारह कोटि रुद्र, बारह कोटि आदित्य, आठ कोटि वसु, सनसठ कोटि गण एवं चौबीस (कोटि) ऊर्ध्वरेता ऋषियों ने प्रस्थान किया । (१७-१८)

महेश के पीछे यक्ष किन्नर एवं राक्षसों के असंख्य यूथ विवाह के लिए आकुलापूर्वक चले । (१९)

तदुपरात्तं देवेश क्षणमात्र में पर्वतराज हिमालय पर पहुँच गये । चारों ओर से गजारूढ पर्वत उनके पास परन्तित हो गये । (२०)

तदुपरात्तं त्रिलोचन भगवान् शंकर ने पर्वतराज को प्रणाम किया तथा अन्ध पर्वतों ने शिव को प्रणाम किया जिससे वे प्रसन्न हो गये । (२१)

नन्दी द्वारा दिखाये गये मार्ग से देवताओं एवं पार्षदों सहित वृषकेतन शंकर पर्वतराज के महान् पुर में प्रविष्ट हुए । (२२)

जीमूतकेतुरायात् इत्येषं नगरस्त्रिय ।
 निजं कर्म परित्यज्य दर्शनव्यापृताभवत् ॥ २३
 माल्यार्द्धमन्या चादाय क्रौणिकेन भामिनी ।
 केशपाशं द्वितीयेन शंकरामिहुरी गता ॥ २४
 अन्याऽलक्तकरागाढ्यं पादं कृत्वाकुलेक्षणा ।
 अनलक्तकमेकं हि हरं द्रष्टुमुपागता ॥ २५
 एकेनाक्ष्णाञ्जितेनैव श्रुत्वा भीममुपागतम् ।
 साञ्जनां च प्रशुभान्या शलाकां सुष्ठु धावति ॥ २६
 अन्या सरसनं वासः पाणिनादाय सुन्दरी ।
 उन्मत्तौवागमन्नग्न्या हरदर्शनलालसा ॥ २७
 अन्यात्तिक्रान्तमीशानं श्रुत्वा स्तनभरालसा ।
 अनिन्दत् रूपा बाला यौवनं स्वं क्रुशोदरी ॥ २८
 इत्थं स नागरस्त्रीणां श्लोभं सजनयत् हरः ।
 जगाम वृषभारूढो दिव्यं श्वशुरमन्दिरम् ॥ २९
 ततः प्रविष्टं प्रसमीक्ष्य शंभुं
 शैलेन्द्रवेश्मन्यबला प्रवृन्ति ।

जीमूतकेतु शकर को आया जान नगर की स्त्रियों अपना काम छोड़कर उनके दर्शन में सबलग्न हो गईं । (२३)
 एक स्त्री एक हाथ में आधी माला और दूसरे हाथ में अपने केशपाश को पकड़े हुए शङ्कर की ओर दौड़ी । (२४)
 अन्य उत्सुक नेत्रों वाली एक पैर में महावर लगा कर तथा दूसरे में विना महावर लगाये शङ्कर को देखने चली आयी । (२५)
 कोई महिला शङ्कर को आया सुनकर एक ओख में आँजन लगाये और दूसरी ओख के लिए अजनयुक्त शलाका लिये दौड़ पड़ी । (२६)
 शकर के दर्शन की लालसा से दूसरी सुन्दरी उन्मत्ता की तरह करधनी सहित वस्त्र को हाथ में लिए नद्री ही चली आयी । (२७)
 महादेव का आना सुनकर दूसरी स्तन के भार से अलसायी क्रुशोदरी बाला क्रोध से अपने यौवन को निन्दा करने लगी । (२८)
 इस प्रकार नगर की महिलाओं को भ्रुष्य करते हुए वृषभारूढ शङ्कर अपने श्वशुर के दिव्य मन्दिर में गये । (२९)
 तदनन्तर पर में प्रविष्ट शम्भु को देखकर शैलेन्द्र के घर में

स्थाने तपो दुश्चरमग्निकाया-
 शचीर्णं महानेप सुरस्तु शंभुः ॥ ३०
 स एष येनाङ्गमनङ्गतां कृतं
 कन्दर्पनाम्नः कुसुमायुधस्य ।
 ऋतोः क्षयी दक्षविनाशकर्ता
 भगादिहा शूलधरः पिनाकी ॥ ३१
 नमो नमः शंकर शूलपाणे
 मृगारिचर्माम्बर कालशत्रो ।
 महाहिराराङ्गितकुण्डलाय
 नमो नमः पार्वतिवल्लभाय ॥ ३२
 इत्थं संन्तूयमानः सुरपतिविभूतेनात्पत्रेण शंभुः
 सिद्धैर्नन्यः सयशैरहितवलयी चारुभस्मोपलितः ।
 अग्रस्थेनाग्रजेन प्रमुदितमनसा विष्णुना चासुमेन
 वैवाहीं मङ्गलाढ्यां हुतमहमुदितामारुहोहाय वेदीम् ॥ ३३
 आयाते त्रिपुरान्तके सहचरैः सार्धं च सप्तर्षिभि-
 र्व्यग्रोऽभूद्गिरिराजवेश्मनिजनः काल्याः समालंकृतौ ।

आई हुई स्त्रियों कहने लगीं कि पार्वती द्वारा किया गया पोर तप उचित है । क्योंकि ये शङ्कर महान् देव हैं । (३०)
 ये बही हैं जिन्होंने कन्दर्प नामक कुसुमायुध के अङ्ग को नष्ट कर दिया । ये ही ऋतुक्षयी, दक्षविनाशक, भगादि-हन्ता, शूलधर एव पिनाकी हैं । (३१)
 हे शङ्कर ! हे शूलपाणि ! हे व्याघ्रचर्मधारिन् ! हे काल-शत्रो ! हे महान् सर्पों का हार और कुण्डल धारण करने वाले पार्वतीवल्लभ ! आप को बारम्बार नमस्कार है । (३२)
 इस प्रकार संस्तुत तथा इन्द्र के द्वारा धारण किये छत्र से युक्त, सिद्धों एव यशों द्वारा वन्दनीय, सर्पों का कण्ठ पढ़ने सुन्दर भस्म से उपलित, ब्रह्मा को आगे किये हुये एव विष्णु द्वारा अनुगत शिव मङ्गलमयी अग्निपूर्ण वैवाहिक वेदी पर गये । (३३)
 सहचरों और सप्तर्षियों के साथ त्रिपुरान्तक शिव के आने पर हिमवान् के घर के लोग वाली के सजाने में एव आये हुए पर्वत देवताओं की पूजा, और सत्कार में व्यस्त

व्याहृत्यं सधुपागतत्र च गिरयः पूजादिना देवताः
प्रापोव्याकुलिता भवन्ति सुहृदः कन्यागिवाहोस्तुकाः ॥३४

प्रसाध्य देवीं गिरित्रां ततः स्त्रियो
दुःखलशुक्लाभिष्टुताङ्गयष्टिकाम् ।

आत्रा गुनामेन तदोत्सवे कृते
सा शंकराभ्याश्रमयोपपादिता ॥ ३५

ततः शुभे हर्म्यतले हिरण्यमे
स्थिताः सुराः शंकरकालिचेष्टितम् ।

पश्यन्ति देवोऽपि समं कृपाङ्गया
लोकानुजुष्ट पदमाससाद ॥ ३६

यत्र क्रीडा विचित्राः सङ्घसुमतरवो वारिणो विन्दुपातै-
र्गन्धाद्यैर्गन्धचूर्णैः प्रविरलमयनौ गुण्डितौ गुण्डिकायाम् ।
मुक्तादामैः प्रकाम हरगिरितनया क्रीडनार्थं तदाऽनन्त
पथात्सिन्दूरपुञ्जैरविरतवितर्तश्चतुःक्ष्मां सुरक्ताम् ॥३७

एवं क्रीडां हरः कृत्वा समं च गिरिकन्यया ।
आगच्छद् दक्षिणां वेदिमृषिभिः सेवितां दृष्टाम् ॥ ३८

हो गये । कन्या के विवाह में उत्सुक सुहृद् लोग प्राय
व्याकुल हो ही जाते हैं । (३४)

तदनन्तर पार्वती ने शरीर को स्त्रियों ने
उज्वल रेशमी वस्त्रों से आच्छादित कर सजाया एव
भाई सुनाम वैवाहिक उत्सव के लिए उसे शङ्कर के निकट
ले गये । (३५)

तदनन्तर सुरगणमय प्रासाद के भीतर बैठे हुए देवगण
शङ्कर और पार्वती को वैवाहिक चेष्टाओं को देखने लगे और
महादेव भी कृशाङ्गी पार्वती के साथ लोक सेवित स्थान
को प्राप्त किये । (३६)

सुन्दर पुष्पों वाले वृक्षों से अलङ्कृत भूमि के घेरे में
क्रीडा करते हुए शङ्कर और पार्वती ने एक दूसरे पर
सुगन्धित जलविन्दुओं और गन्धचूर्णों की अविरल वर्षा
की । तदनन्तर उन दोनों ने क्रीडनार्थं एक दूसरे को
सुखा-दान से मारने के उद्योग सिन्दूरपुञ्ज की अविरत
वर्षा से पृथ्वी को छाल कर दिया । (३७)

इस प्रकार पार्वती के साथ क्रीडा कर शङ्कर ऋषियों
से सेवित सुहृद् दक्षिण वेदी पर आये । (३८)

अयाजगाम हिमवान् शुक्लाम्बरधरः शुचिः ।
पवित्रपाणिरादाय मधुपर्कमयोज्ज्वलम् ॥ ३९

उपविष्टस्त्रिनेत्रस्तु शार्ङ्गो दिशमपश्यत् ।
सप्तर्षिकांश्च शैलेन्द्रः सूपविष्टोऽश्वलोकयन् ॥ ४०

सुखासीनस्य शर्वस्य कृताञ्जलिपुटो गिरिः ।
श्रोत्राच वचनं श्रीमान् धर्मसाधनमात्मनः ॥ ४१

हिमवानुवाच ।
मत्पुत्रां भगवन् कालीं पौत्रीं च पुलहाग्रजे ।

पितृणामपि दौहित्रीं प्रतीच्छेमां मयोद्यताम् ॥ ४२
एलस्य उवाच ।

इत्येवमकृत्वा शैलेन्द्रो हस्तं हस्तेन योनयन् ।
प्रादात् प्रतीच्छ भगवन् इदमुच्चैरुदीरयन् ॥ ४३

हर उवाच ।
न मेऽस्ति माता न पिता तथैव
न ज्ञातव्यो वाऽपि च बान्धवाश्च ।

निराश्रयोऽहं गिरिशृङ्गवासी
सुतां प्रतीच्छामि तवाद्रिराज ॥ ४४

तदनन्तर पवित्री पहने तथा श्वेतवस्त्र धारण किये
हिमवान् उज्ज्वल मधुपर्क लेकर आये । (३९)

त्रिनेत्र बैठे हुए ऐन्द्री (पूर्व) दिशा को देख रहे थे
तथा शैलेन्द्र ने सप्तर्षियों की ओर देखते हुये भली भाँति
आसन ग्रहण किया । (४०)

सुरासीन शङ्कर से गिरि ने हाथ जोड़कर अपने धर्म
का साधक वचन कहा । (४१)

हिमवान् ने कहा—हे भगवन् ! मेरे द्वारा ही जा
रही पुलहाग्रज का पीत्री, पितरों की दौहित्री एव मेरी पुत्री,
को आप स्वीकार करें । (४२)

पुलस्त्य ने कहा—यह कहकर शैलेन्द्र ने (शङ्कर के)
हाथ से (पार्वती के) हाथ को मिलाकर उच्च स्वर से
यह कहते हुये कि 'हे भगवन् ! इसे स्वीकार करें' दिया । (४३)

शङ्कर ने कहा—हे परवताज ! मेरे पिता, माता,
दायाद या कोई बान्धव नहीं है । मैं निराश्रय होकर
गिरिशिखर पर रहता हूँ । मैं आप की पुत्री को स्वीकार
करता हूँ । (४४)

इत्येवमुक्त्वा चरदोऽप्यपीडयत्
 करं करेणाद्रिभुमारिफायाः ।
 सा चापि संपर्शमवाप्य शंभोः
 परां मुदं लब्धवती सुरपे ॥ ४५
 तथाधिरुढो चरदोऽथ वेदिं
 सहाद्रिपुत्र्या मधुपर्कमश्नत् ।
 दत्त्वा च लानान् कलमस्य शुक्ला-
 स्ततो विरिश्चो गिरिजामुवाच ॥ ४६
 कालि पश्यस्व वदनं भर्तुः शशधरप्रभम् ।
 समदृष्टिः स्थिरा भूत्वा कुरुष्वान्तेः प्रदक्षिणम् ॥ ४७
 उतोऽग्निंका हरमुत्तं दृष्टे शैत्यमुपागता ।
 यथाकर्करिमसंतमा प्राप्य वृष्टिमिवाग्निः ॥ ४८
 भूमः प्राह विभोर्वक्त्रमौक्षस्वेति पितामहः ।
 लजया साऽपि दृष्टेति शनेर्ब्रह्माणमब्रवीत् ॥ ४९
 समं गिरिजया तेन हुताग्निप्रदक्षिणम् ।
 वृत्तो लानाश्च हविषा समं क्षिमा हुताशने ॥ ५०
 ततो हराद्रिप्रमालिन्या गृहीतो दायकारणात् ।

यह कहकर परदायक शहर ने परंनपुत्री पार्वती के हाथ को अपने हाथ में लिया है देखिए । शहर के हाथ का दर्शन प्राप्त कर उसे भी अत्यन्त आनन्द हुआ । (४५)

तदनन्तर मधुपर्क राने हुए परदाता शहर परंनपुत्री के माथ वेदी पर बैठे । बहुपरात्म धान का सफेद लाया देख कर ब्रह्मा ने गिरिजा से कहा—

हे वाली ! पति के चन्द्र सदृश मुख को देखो । य समदृष्टि से निधन होकर अग्नि की प्रदक्षिणा करो । (४६)

तदनन्तर शहर का मुख देखने पर अग्निसा को इस प्रकार की शैत्यला प्राप्त हुई जैसी सूर्यविरागसज्जता सूर्य की वृष्टि से प्राप्त होती है । (४७)

विनामह ने पुन कहा—यिन्तु का मुख देखो । उसने भी लज्जा पूर्वक धीरे में ब्रह्मा से कहा—देख लिया । (४८)

तदनन्तर गिरिजा के साथ उन्होंने अग्नि की लीन प्रदक्षिणा की एवं अग्नि में हविष्य के साथ हाथा की आहुति दी । (५०)

तदनन्तर मालिनी ने हाथ (अर्थात् नेत्र) के लिए शहर

किं याचसि च दास्यामि मुञ्चस्वेति हरोऽब्रवीत् ॥ ५१
 मालिनी शंकरं प्राह मत्सरया देहि शंकर ।
 सौभाग्यं निजगोत्रीयं ततो मोक्षमवाप्स्यसि ॥ ५२
 अथोवाच महादेवो दत्तं मालिनि मुञ्च माम् ।
 सौभाग्यं निजगोत्रीयं वोऽस्यास्तं शृणु वच्मि ते ॥ ५३
 योऽसौ पीताम्बरधरः शङ्खचक्र मधुसूदनः ।
 एतदीयो हि सौभाग्यो दत्तोऽस्मद्गोत्रमेव हि ॥ ५४
 इत्येवमुक्ते उचने प्रभुमोच वृषध्वजम् ।
 मालिनी निजगोत्रस्य शुभचारित्रमालिनी ॥ ५५
 यदा हरो हि मालिन्या गृहीतधरणे शुभे ।
 तदा कालीमुखं प्रदा ददर्श शशिनोऽधिकम् ॥ ५६
 तद् दृष्ट्वा क्षोभमगमत् शुक्लच्युतिमवाप च ।
 तच्छुक्लं बालुनायां च खिलोचके ससाधनमः ॥ ५७
 ततोऽग्नीन्द्रो ब्रह्मन् न द्विजान् हन्तुमर्हसि ।

का पैर पूरक लिया । शहर ने कहा—क्या माँगनी हो ? मैं दूंगा । पर छोड़ दो । (५१)

मालिनी ने शहर से कहा—हे शहर ! मेरी माँगी को अपने गोत्र का सौभाग्य वाञ्छित तभी छुटकारा मिलेगा । (५२)

तदनन्तर महादेव ने कहा—हे मालिनी ! मैंने दिया । मुझे छोड़ो । इसका जो गोत्रीय सौभाग्य होगा उसे मैं सुन्दर बनलाता हूँ । तुम मुझे । (५३)

हे जो पीताम्बर शय्यापी मधुसूदन हे मैंने इनके ही सौभाग्य को तथा अपने गोत्र को दिया । (५४)

इस प्रकार शहर के बहने पर अपने कुछ ही मुख सन्परिग्रहा की माया धारण करने वाली मालिनी ने शहर को छोड़ दिया । (५५)

जब मालिनी ने शहर के दोनों पराणों को पकड़ा तब समय ब्रह्मा ने चन्द्रमा मे भी अधिक सुन्दर वाली के मुख को देगा । (५६)

वने देखने में क्षोभ होने के कारण उनका मुख च्युत हो गया । भयपन्न उन्होंने उस शुक को वापुश में टिप्पा दिया । (५७)

तदनन्तर शहर ने कहा—हे ब्रह्मन् ! माँगी का क्या

अमी महर्षयो धन्या बालखिल्याः पितामह ॥ ५८
 ततो महेश्वकाभ्यान्तो समुत्स्युस्तपस्विनः ।
 अष्टाश्रीतिसहस्राणि बालखिल्या इति स्मृताः ॥ ५९
 ततो विवाहे निवृत्ते प्रविष्टः कौतुकं हरः ।
 रेमे सहोमया रात्रिं प्रभाते पुनरुत्थितः ॥ ६०
 ततोऽत्रिपुरीं समवाप्य शंभुः
 सुरैः समं भूतगणैश्च दृष्टः ।

संपूजितः पर्वतपार्थिवेन
 स मन्दरं शीघ्रमुपाजगाम ॥ ६१
 ततः सुरान् ब्रह्महरीन्द्रहृत्पुत्रान्
 प्रथम्य संपूज्य यथाविभागम् ।
 विसर्ज्य भूतैः सहितो महीध्र-
 मध्यावमन्मन्दरमष्टमूर्तिः ॥ ६२

इति श्रीवामनपुराणे सप्तविंशोऽध्याय ॥२७॥

२८

पुलस्त्य उवाच ।

ततो गिरौ वसन् रुद्रः स्वेच्छया विचरन् ह्यने ।
 विश्वकर्माणमाहूय प्रोवाच कुरु मे गृहम् ॥ १
 ततश्चकार शर्वस्य गृहं स्वस्तिकलक्षणम् ।
 योजनानि चतुःषष्टिः प्रमाप्येन हिरण्यम् ॥ २

मव कीर्त्तिः । हे पितामह ! ये सभी बालखिल्य महर्षि
 हैं, जो वन्दे ही धन्य हैं । (५८)
 तदुपरान्त शङ्कर के कहने के अनन्तर अष्टाश्री हजार
 बालखिल्य नामक तपस्वी छठ रज्जु हुए । (५९)
 तदनन्तर विवाह हो जाने पर शङ्कर कौतुकागार
 (बोहबर) में गये । उन्होंने रात्रि में पार्वती के साथ रमण
 किया और पुन प्रात वाळ घटे । (६०)
 तदुपरान्त पार्वती को प्राप्त कर प्रसन्न हुये शङ्कर

दन्ततोरणनिर्घृहं मुक्ताजालान्तरं शुभम् ।
 शुद्धस्फटिकनोपानं वैदूर्यवृत्तरूपकम् ॥ ३
 सप्रकथं सुविस्तीर्णं सर्वैः समुदितं गुणैः ।
 ततो देवपतिश्चक्रे यज्ञं गार्हस्थ्यलक्षणम् ॥ ४
 तं पूर्वचरितं मार्गमनुयाति स्म शंकरः ।

पर्वतराज से पूजित होने के उपरान्त देवों एवं भूतगणों के
 साथ शीघ्रता पूर्वक मन्दराचल पर आ गये । (६१)

तदनन्तर अष्टमूर्ति शङ्कर ने ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र आदि
 देवताओं का यथोचित पूजन तथा प्रणाम कर उन्हें विदा
 किया और रम्य अपने भूतगणों के साथ मन्दर पर्वत
 पर रहने लगे । (६२)

श्रीवामनपुराणे मे षष्ठादशोऽध्याय समाप्त ॥२७॥

२८

पुलस्त्य ने कहा—हे सुने ! मन्दर पर्वत पर रहते हुए
 और इच्छानुसार विचरण करते हुए शङ्कर ने विश्वकर्मा
 को बुलाकर कहा—मेरे लिए घर बना दो । (१)

तदनन्तर उसने शंकर के लिए चौंसठ योजन विस्तृत
 सुवर्णमय तथा स्वस्तिक चिह्नों से युक्त गृह बनाया । (२)

उसमें हाथी के दाँतों के तोरण और मोतियों के मुन्दर
 झालर लगे थे एव उसमें वैदूर्यमणिखचित शुद्ध स्फटिक
 के नोपान थे । (३)
 सात बश्यों से युक्त वह सुविस्तीर्ण गृह सभी गुणों से
 सम्पन्न था । तदनन्तर देवार्थिदेव ने गार्हस्थ्य रूपी यज्ञ
 किया । (४)
 शङ्कर भगवान् पूर्वचरित मार्ग का अनुसरण

तथा मतश्चिन्नेत्रस्य महान् कालोऽभ्यगान्मुने ॥ ५
 रमतः मह पार्वत्या धर्मापेक्षी जगत्पतिः ।
 ततः कदाचिन्नर्मायै कालीत्युक्ता भवेन हि ॥ ६
 पावती मन्युनाविष्टा शंकरं वाक्यमब्रवीत् ।
 संरोहतीपुणा विद्धं वनं परशुना हतम् ।
 वाचा दुहक श्रीमत्तं न प्ररोहति वाक्यतम् ॥ ७
 वाक्सायका वदनान्निष्पतन्ति
 तैराहतः शोचति रात्र्यहानि ।
 न तान् निश्च्येत हि पण्डितो जन-
 न्तमद्य धर्मं वितयं तस्या वृतम् ॥ ८
 तस्माद् ज्ञानामि देवेश तपस्वधुमनुत्तमम् ।
 तथा यत्किप्ये न यथा भवान् कालीति वस्यति ॥ ९
 इत्येवमुक्त्वा गिरिजा प्रणम्य च महेश्वरम् ।
 अनुष्ठाता त्रिनेत्रेण दिवमेवोत्पपात ह ॥ १०
 मस्यत्पत्य च वेगेन हिमाद्रिशिखरं शिवम् ।
 दङ्कन्धिर्ध्रं प्रयत्नेन निपात्रा निर्मित यया ॥ ११

ततोऽवतीर्य सस्मार जयां च विजयां तथा ।
 जयन्तीं च महापुण्यां चतुर्थीमपराजिताम् ॥ १२
 ताः संस्मृताः समाजगृह्यः कालीं द्रष्टुं हि देवताः ।
 अनुष्ठातास्तथा देव्या शुश्रूषां चक्रिरे शुभाः ॥ १३
 ततस्तपसि पार्वत्यां स्थितायां हिमवद्वनात् ।
 समाजगाम तं देशं व्याघ्रो दंष्ट्रानरुपापुषः ॥ १४
 एकपाद्भिश्चितायां तु देव्यां व्याघ्रस्त्वचिन्तपत् ।
 यदा पतिष्यते चेयं तदादास्यामि वै अहम् ॥ १५
 इत्येवं चिन्तयन्नेव दत्तदृष्टिर्मृगाधिपः ।
 पदयमानस्तु वदनमेरुदण्डिरजायत ॥ १६
 ततो वर्षशत देवीं गृणन्तीं ब्रह्मणः पदम् ।
 तपोऽतप्यत ततोऽभ्यागाद् ब्रह्मा त्रिभुवनेधरः ॥ १७
 पितामहस्ततोषाच देवीं प्रीतोऽस्मि शाश्वते ।
 तपसा धूतपापाऽपि वरं घृणु यथेप्सितम् ॥ १८

अथोवाच वचः काली व्याघ्रस्य कमलोद्भव ।
 वरदो भव तेनाह यास्ये प्रीतिमनुत्तमाम् ॥ १९
 ततः प्रादाद् वरं ब्रह्मा व्याघ्रस्याद्भुतकर्मणः ।
 गाणपत्यं त्रिभौ भक्तिमजेयत्व च धर्मिताम् ॥ २०
 वरं व्याघ्राय दत्त्वेवं शिवकान्तामथात्रवीत् ।
 वृणीष्व वरमन्यग्रा वरं दास्ये तत्राम्बिके ॥ २१
 ततो वरं गिरिसुता प्राह देयी पितामहम् ।
 वरः प्रदीयतां मद्यं वर्णं कनकमनिभम् ॥ २२
 तथेत्सुकृत्वा गतो ब्रह्मा पावती चाभन्त् ततः ।
 कोशं कृष्णं परित्यज्य पद्मकिञ्चिद्वरुमश्रिताम् ॥ २३
 तस्मात् कोशाच्च संजाता भूयः कात्यायनी मुने ।
 तामभ्येत्य सहस्राक्षः प्रतिब्रूयाद् दक्षिणाम् ।
 प्रोवाच गिरिजां देवो वाक्यं स्वार्थाय चासवः ॥ २४
 इन्द्र उवाच ।

इयं प्रदीयतां मद्य भगिनी मेऽस्तु कौशिकी ।
 त्वत्स्रोत्रमभरा चेयं कौशिकी कौशिकोऽप्यहम् ॥ २५

तदनन्तर काली ने कहा—हे कमलोद्भव । इस व्याघ्र को आप वर दें । इसी से मैं भी अतिप्रसन्न होऊँगी । (१९)

तदुपरान्त ब्रह्म ने उस अद्भुतकर्मा व्याघ्र को गर्भों का स्वामित्व, शक्र की भक्ति, अजेयता और धार्मिकता का वर दिया । (२०)

इस प्रकार व्याघ्र को वर देकर (उन्हींने) शिवकान्ता से कहा—हे अम्बिके ! तुम अव्यय चित्त से वर माँगो । मैं तुम्हें वर दूँगा । (२१)

तदनन्तर गिरिनन्दिनी देवी ने पितामह से कहा—हे ब्रह्मन् ! मुझे यही वर दीजिए कि मेरा वर्ण सुवर्णरुप्य हो जाय । (२२)

'पिता ही हो' कहकर ब्रह्मा चले गये । पार्वती भी अपने कृष्ण आरण्य को छोड़कर कमल के केसर के समान हो गयी । (२३)

हे मुनि ! उस कृष्ण कोश से पुन कात्यायनी उत्पन्न हुई । सहस्राक्ष इन्द्र ने इनके निम्न जाकर दक्षिणा प्रदत्त की । उन्हींने अपने लिए गिरिजा से यह वचन कहा— (२४)

इन्द्र ने कहा—आप इसे मुझ प्रदान करें । यह कौशिकी मेरी भगिनी बने । आप के कोश से उत्पन्न होने से यह कौशिकी हुई एव मैं भी कौशिक हूँ । (२५)

तां प्रादादिति संश्रुत्य कौशिकीं रूपसंपुताम् ।
 सहस्राक्षोऽपि तां गृह्य विन्ध्यं वेगाजगाम च ॥ २६
 तत्र गत्वा स्वथोवाच त्रिपुरात्र महानले ।
 पूज्यमाना सुरैर्नाम्ना रुचाता त्वं विन्ध्यवासिनी ॥ २७
 तत्र स्वाप्य हरिर्देवीं दत्ता सिंहं च वाहनम् ।
 भवामरारिहन्वीति उक्त्वा स्वर्गमुपागमत् ॥ २८
 उमाऽपि तं वरं लब्ध्वा मन्दरं पुनरेत्य च ।
 प्रणम्य च महेशान स्थिता मदिनयं मुने ॥ २९
 ततोऽमरगुरुः श्रीमान् पार्वत्या सहितोऽन्यथः ।
 तभ्यौ वर्षसदृशं हि महामोहनकं मुने ॥ ३०
 महामोहस्थिते रुद्रे भुवनाथेऽलुतद्वताः ।
 सुक्षुप्तः सागराः सम देवाश्च भयमागमन् ॥ ३१
 ततः सुराः सहेन्द्रेण ब्रह्मणः सदनं गताः ।
 प्रणम्योत्सुर्महेशान जगत् क्षुब्धं तु किं त्विदम् ॥ ३२
 तानुवाच भयो नूनं महामोहनके स्थितः ।

'उसको दिया' यह सुनने के अनन्तर उस रूपवती कौशिकी को लवर दवराज इन्द्र वेग से विन्ध्याचल पर गये । (२६)

वहाँ जाकर (उन्हींने) कहा—हे महाबल ! आप यहाँ रहें । देवताओं द्वारा पूजित होती हुई आप विन्ध्यवासिनी नाम से प्रख्यात होंगी । (२७)

वहाँ देवी को स्थापित कर और इन्हें वाहन रूप में सिंह देने के उपरान्त "आप देवताओं के शत्रुओं को मारने वाली बनें" यह कहकर इन्द्र स्वर्ग चले गये । (२८)

हे मुनि ! उमा भी वह वर प्राप्त करने के उपरान्त मन्दर पर्वत पर गयी एव महेश को प्रणाम कर वितनपूर्वक रहने लगी । (२९)

हे मुनि ! तदनन्तर श्रीमान्, अन्यथ, अमरगुरु एक महस्र वर्ष पर्यन्त महामोहनक में स्थित रहे । (३०)

रुद्रदेव के महामोह में स्थित होने पर समस्त भुवन उद्धत होकर विचलित हो गये । सातों सागर क्षुब्ध हो हो उठे और देवगण भयभीत हो गये । (३१)

तब देवता स्त्रेग इन्द्र के साथ ब्रह्मलोक गये तथा महेशान ब्रह्मा को प्रणाम कर बोले—यह जगत क्यों क्षुब्ध हो गया है ? (३२)
 उन्हींने इन लोगों से कहा—महादेव निजय ही

तेनाक्रान्तास्त्वमे लोका जग्मुः क्षोभं दुरत्ययम् ॥ ३३
 इत्युक्त्वा सोऽभवत् तूर्णान् ततोऽप्युचुः सुरा हरिम् ।
 आगच्छ शक्र गच्छामो यावत् तत्र समाप्यते ॥ ३४
 समाप्ते मोहने बालो यः समुत्पत्यतेऽव्ययः ।
 स नूनं देवराजस्य पदमैत्रं हरिष्यति ॥ ३५
 ततोऽमराणां वचनाद् विवेकी धलघातिनः ।
 भयाञ्जलानं ततो नष्टं भाविकर्मप्रचोदनात् ॥ ३६
 ततः शक्रः सुरैः सार्धं वह्निना च सहस्रदक् ।
 जगाम मन्दरगिरिं तच्छृङ्गे न्वयिशततः ॥ ३७
 अशक्ताः सर्व एवैते प्रवेष्टुं तद्गवाजिरम् ।
 चिन्तयित्वा तु सुचिरं पानकं ते व्यसर्जयन् ॥ ३८
 स चाम्येत्य सुरश्रेष्ठो दृष्ट्वा द्वारे च नन्दिनम् ।
 दुष्प्रवेशं च तं मत्वा चिन्तां वह्निः परां गतः ॥ ३९
 स तु चिन्तार्णवे मग्नः प्रापश्यच्छंभुसञ्जनः ।

महामोहनकर्म स्थित हैं। उसी से आनात हो ये लोक अत्यन्त
 दुःख हो रहे हैं। (३३)

इतना कहकर वे मीन हो गये। उसके बाद
 देवताओं ने इन्द्र से कहा—हे शक्र! जब तक वह
 (महामोहनकर्म) समाप्त नहीं हो जाता तब तक हम लोग
 चले। (३४)

मोह समाप्त होने पर उत्पन्न होने वाला अविनाशी
 बालक निश्चय ही देवराज के ऐन्द्रपद का हरण
 करेगा। (३५)

तदनन्तर भाविकर्म की प्रेरणावश देवताओं के घबरा
 से बलघाती (इन्द्र) वा विवेक एवं भय के कारण
 झान नष्ट हो गया। (३६)

तब सहस्रानेन इन्द्र अग्नि और देवों के साथ मन्दर
 पर्वत पर गये एवं उसके शिखर पर बैठे। (३७)

विशुद्धे सभी महादेव के भवन में प्रविष्ट नहीं हो
 सके। बहुत देर तक विचार कर उन लोगों ने अग्नि
 को भेजा। (३८)

सुरश्रेष्ठ अग्नि वहाँ गये और द्वार पर नन्दी को
 दार पर, यहाँ प्रवेश करना दुःसाध्य जानकर अत्यन्त
 चिन्तित हुए। (३९)

चिन्ता-सागर में मग्न उन्होंने शम्भु के भयन से निरुद्ध

निष्क्रामन्तीं महापङ्क्तिं हंसानां विमलां तथा ॥ ४०
 असावुपाय इत्युक्त्वा हंसरूपो हुताशनः ।
 वञ्चयित्वा प्रतीहारं प्रविशेश हरारजिरम् ॥ ४१
 प्रविश्य सूक्ष्ममूर्तिश्च शिरोदेशे कपर्दिनः ।
 प्राह प्रहस्य गम्भीरं देवा द्वारि स्थिता इति ॥ ४२
 तच्छ्रुत्वा सहस्रोत्थाय परित्यज्य गिरेः सुताम् ।
 विनिष्क्रान्तोऽजिराच्छर्वो वह्निना सह नारद ॥ ४३
 विनिष्क्रान्ते सुरपती देवा मृदितमानसाः ।
 शिरोभिरवनीं जग्मुः सेन्द्रार्कशशिपावकाः ॥ ४४
 ततः प्रीत्या सुरानाह वदध्वं कार्यमाशु मे ।
 प्रणामावनतानां वो दास्येऽहं वरमुत्तमम् ॥ ४५
 देवा ऊचुः ।
 यदि तुष्टोऽसि देवानां वरं दातुमिहेच्छसि ।
 तदिदं त्यज्यतां तावन्महामैथुनिमश्वर ॥ ४६

रही हसीं की विमल महापङ्क्ति को देवा। (४०)

‘यही उपाय है’ ऐसा कहकर अग्नि हंस रूप में द्वार-
 पाल को धोखा देकर महादेव के घर में प्रवेश
 किए। (४१)

प्रविष्ट होने के उपरान्त सूक्ष्म शरीरधारी अग्निदेव
 ने महादेव के शिर के पास बैठते हुए गम्भीर स्वर से
 कहा—देवता लोग दरवाजे पर पड़े हैं। (४२)

हे नारद! महादेव उस यात को सुनकर उसी क्षण
 उठे और हिमालय की कन्या को छोड़कर अग्नि के साथ
 आंगन से निकल पड़े। (४३)

सुरपति शक्र के निकल आने पर इन्द्र सहित चन्द्र,
 सूर्य और अग्नि आदि सभी देवताओं ने आनन्दित
 होकर पृथ्वी पर शिर झुकाया। (४४)

तदनन्तर (भगवान् महादेव ने) प्रार्थितपूर्वक देवताओं
 से कहा—शीघ्र मुझे कार्य्य यथाह्ये। प्रणाम के लिए अवनत
 आप लोगों को मैं उत्तम वर दूँगा। (४५)

देवताओं ने कहा—हे ईश्वर! यदि आप प्रसन्न हैं
 और देवों को वर देना चाहते हैं तो आप इस महामैथुन
 वा त्याग करें। (४६)

ईश्वर उवाच ।

एवं भवतु संत्यक्तो मया भावोऽमरोत्तमाः ।
ममेदं तेज उद्रिक्तं कश्चिद् देवः प्रतीच्छतु ॥ ४७

पुलस्त्य उवाच ।

इत्युक्त्वाः शंभुना देवाः सेन्द्रचन्द्रदिवाकराः ।
असीदन्त यथा मग्नाः पङ्के धृन्दारका इव ॥ ४८
सीदन्तु दैवतेष्वेवं हुताशोऽभ्येत्य शंकरम् ।
श्रोवाच मुञ्च तेजस्वं प्रतीच्छाम्येष शंकर ॥ ४९
ततो ह्यमोच भगवांस्त्रेतः स्फुन्नमेव तु ।
जलं तृपान्ते वै यद्वत् तैलपानं पिपासितः ॥ ५०
ततः पीते तेजसि वै शार्वे टेवेन वह्निना ।
स्वस्थाः सुराः समामन्व्य हरं जग्मुस्त्रिविधपम् ॥ ५१
संप्रयातेषु देवेषु हरोऽपि निजमन्दिरम् ।
समभ्येत्य महादेवीमिदं वचनमश्रवीत् ॥ ५२
देवि देवैरिहाभ्येत्य यत्नात् प्रेष्य हुताशनम् ।
नीतः प्रोक्तो निपिद्वस्तु पुत्रोत्पत्तिं तपोदरात् ॥ ५३

ईश्वर ने कहा—हे देवप्रेषे! ऐसा ही हो ।
मैंने आसक्ति छोड़ दिया । कोई देवता मेरे इस निकले
हुए तेज को ग्रहण करे । (४७)

पुलस्त्य ने कहा—शम्भु के ऐसा कहने पर इन्द्रसहित
चन्द्रमा एवं सूर्यादि देवता पङ्कमग्न गज के सदृश
हु ली हुए । (४८)

देवताओं के इस प्रकार दुःखी होने पर अग्नि ने
शहर के निरुद्ध जाकर कहा—हे शहर! आप तेज को
मुक्त करें । मैं ग्रहण करूँगा । (४९)

वदन्त्वर भगवान् ने (तेज को) छोड़ दिया । उस
स्थिति रेतम् को (अग्निदेव इस प्रकार पी गये) जैसे
जल का प्यासा व्यक्ति तैलपान कर जाता है । (५०)

अग्निदेव द्वारा शम्भु का वीर्य पी लेने पर स्वर्ष
देवता लोग महादेव की अनुमति लेकर रत्न चले गये । (५१)

देवताओं के चले जाने पर महादेव ने भी अपने मन्दिर
में जाकर महादेवी से यह वचन कहा— (५२)

हे देवि! देवी ने यहाँ आकर प्रयत्नपूर्वक अग्नि
को (मेरे पास) भेजकर मुझे बुलाया और तुम्हारे उदर
से पुत्रोत्पत्ति न करने के लिये कहा । (५३)

साऽपि भर्तुर्वचः श्रुत्वा क्रुद्धा रक्तान्तलोचना ।
शयाप दैवतान् सर्वान् नष्टपुत्रोद्भवा शिवा ॥ ५४
यस्मान्नेच्छन्ति ते दुष्टा मम पुत्रमथौरसम् ।
तस्मात् ते न जनिष्यन्ति स्वास्तु योपित्सु पुत्रकान् ॥ ५५
एवं श्रुत्वा सुरान् गौरी शौचशालामुपागमत् ।
आहूय मालिनीं स्नातुं मतिं चक्रे तपोधना ॥ ५६
मालिनी सुरभि गृह्य श्लक्ष्णमुद्वर्तनं शुभा ।
देव्यङ्गमुद्वर्तयते कराम्यां कनकरुप्रभम् ।
तत्स्वेदं पार्वती चैव मेने कीदृग्गुणेन हि ॥ ५७
मालिनी तूर्णमगमद् गृहं स्नानस्थ कारणात् ।
तम्यां गतायां शैलेयी मलाशक्रे गजाननम् ॥ ५८
चतुर्ध्वजं पीनवक्षं पुरुषं लक्ष्णान्वितम् ।
कुर्यात्ससर्ज भूम्यां च स्थिता भद्रासने पुनः ॥ ५९
मालिनी तच्छिरःस्नानं ददौ विहसती तदा ।

पति का वचन सुनकर विनष्ट पुत्र-जन्म वाली शिवा
ने क्रोध से आँखें टाळ कर समस्त देवताओं को शाप
दिया । (५४)

क्यों कि वे दुष्ट मेरे उदर से पुत्र का जन्म नहीं
चाहते अतः वे भी अपनी पत्नियों से पुत्र नहीं उत्पन्न
करेंगे । (५५)

इस प्रकार देवताओं को शाप देकर तपोधना गौरी
शौचालय में गयी और मालिनी को बुलाकर स्नान करने
का विचार किया । (५६)

सुन्दरी मालिनी सुगन्धयुक्त कोमल उद्वर्तन लेकर
देवी के स्वर्णिम आभा से युक्त शरीर में दोनों हाथों
से लगाने लगी । पार्वती विचार करने लगी कि इस स्वेद
में क्या गुण है । (५७)

मालिनी स्नान (करने) के लिए शीघ्र स्नानागार
में चली गयी । उसके चले जाने पर शैलनन्दिनी ने
(उस) मल से गजानन को बनाया । (५८)

चार भुजाओं से युक्त, पीन पक्षस्थल वाले, लक्ष्णान्वित
पुरुष को यत्नपूर्वक भूमि पर रख दिया एवं पुन उत्तम
आसन पर बैठ गई । (५९)

उस समय मालिनी ने हँसते हुए देवी को शिर से

ईषद्धासामुमा दृष्ट्वा मालिनीं प्राह नारद ॥ ६०
 किमर्थं भीरु शनकैर्हससि त्वमतीव च ।
 साऽथोवाच हसाम्येव भवत्यास्तनयः किल ॥ ६१
 भविष्यतीति देवेन प्रोक्तो नन्दी गणाधिपः ।
 तच्छ्रुत्वा मम हासोऽयं संजातोऽय कृशोदरि ॥ ६२
 यस्माद् देवैः पुत्रकामः शंकरो विनिधारितः ।
 एतच्छ्रुत्वा वचो देवी सन्नौ तत्र विधानतः ॥ ६३
 स्नात्वाऽर्च्यं शंकर भक्त्या समभ्यागाद् गृह प्रति ।
 ततः शशुः समागत्य तस्मिन् भद्रासन त्वपि ॥ ६४
 स्नातस्तस्य ततोऽधस्तात् स्थितः स मलपूरुषः ।
 उमास्वेद भवस्वेद जलभूतिसमन्वितम् ॥ ६५
 तत्सपर्कात् समुत्तस्यौ फूत्कृत्य करमुचम् ।
 अपत्य हि विदित्वा च प्रीतिमान् भुवनेश्वरः ॥ ६६
 त चादाय हरो नन्दिमुवाच भगनेत्रहा ।
 इन्द्रः स्नात्वाऽर्च्यं देवादीन् वाग्भिरद्भिः पितृनपि ॥ ६७
 जप्त्वा सहस्रनामानमुमापार्थमुपागतः ।

स्नान कराया । हे नारद । मालिनी को मुखराते हुए देख कर देवी ने कहा—

(६०)

हे भीरु ! तुम धीरे धीरे इतना क्यों हँस रही हो ? मालिनी ने कहा—मैं इसलिए हँस रही हूँ कि आप को अवश्य पुत्र होगा, ऐसा महादेव ने गणपति नन्दी से कहा था । हे कृशोदरि ! उसे सुनकर (स्मरण कर) आज मुझे हँसी आ गयी क्यों कि देवताओं ने शंकर को पुत्र की कामना करने से रोक दिया है । इस बात को सुनकर देवी ने यहाँ विधिपूर्वक स्नान किया ।

(६१-६३)

स्नान करने के उपरान्त भक्ति से शंकर की पूजा कर देवी गृह में चली गयीं । तदनन्तर महादेव ने भी आकर उसी पवित्र आसन पर स्नान किया । उसी आसन के नीचे वह मलपूरुष पड़ा था । उमा के स्वेद एव जल और भस्म से युक्त शंकर के स्वेद का सम्पर्क होने से वह वस्त्र शुद्ध से फूत्कार करते हुए उठा । उसे अपना पुत्र जानकर भुवनेश्वर प्रसन्न हो गये ।

(६४-६६)

भग के नेत्र को नष्ट करने वाले महादेव ने उसे लेकर नन्दी से कहा—(यह मेरा पुत्र है) । स्नानोपरांत शिव ने श्रुतियों से देवताओं की तथा जल से पितरों की भी पूजा की ।

(६७)

तदनन्तर सहस्रनाम का जप कर वे उमा के पास

समेत्य देवीं विहसन् शंकरः शूलशृङ्गवचः ॥ ६८
 प्राह त्वं पश्य शैलेषु स्वसुतं गुणसंयुतम् ।
 इत्युक्त्वा पर्वतसुता समेत्यापश्यदद्भुतम् ॥ ६९
 यत्तदङ्गमलाह्वयं कृत गजमुखं नरम् ।
 ततः प्रीता गिरिसुता तं पुत्रं परिषपञ्जे ॥ ७०
 सूर्ध्वि चैनमुपाग्राय ततः शशोऽन्नवीदुमाम् ।
 नायकन विना देवि तव भूतोऽपि पुत्रकः ॥ ७१
 यस्माज्जातस्ततो नाम्ना भविष्यति विनायकः ।
 एष विघ्नसहस्राणि सुरादीना करिष्यति ॥ ७२
 पूजयिष्यन्ति चैवास्य लोका देवि चराचराः ।
 इत्येनमुक्त्वा देव्यास्तु दत्तवास्वनायाय हि ॥ ७३
 सहायं तु गणश्रेष्ठं नाम्ना रयात शटोदरम् ।
 तथा मानुषाणा घोरा भूता विघ्नकराश्च ये ॥ ७४
 ते सर्वे परमेशेन देव्याः प्रीत्योपपादिताः ।
 देवी च स्वसुत दृष्ट्वा परां मुदमवाप च ॥ ७५
 रमेऽथ शंभुना सार्धं मन्दरे चारुमन्दरे ।

गये । देवी ने पास जाकर शूलधारी शंकर ने हँसते हुए यह वचन कहा—हे शैलनन्दिनी ! तुम अपने गुणयुक्त पुत्र को देखो । ऐसा कहे जाने पर पार्वती ने जाकर यह आश्चर्य देखा कि उनके अंग के मल से दिव्य हाथी के मुख बाला मनुष्य बन गया है । तदनन्तर गिरिजा ने श्रुतिपूर्वक उस पुत्रका आलिङ्गन किया ।

(६८-७०)

तदुपरांत उसके सिर को शृंषकर शम्भु ने उमा से कहा—हे देवि ! तुम्हारा यह पुत्र विना नायक के उत्पन्न हुआ है अत इस्का नाम विनायक होगा । यह देवादिजनों के सहस्रों विघ्नों को बरेगा ।

(७१-७२)

हे देवि ! समस्त चराचर लोक इसकी पूजा करेगे । देवी ने ऐसा कहकर ऊर्ध्वेन पुत्र विनायक को प्रदोष्ट नामक श्रेष्ठ गण, घोर मानुषगण तथा विघ्नकारी भूतों को सहायन बनाया । देवी की प्रीति के लिए परमेश ने उन सबकी सृष्टि की । अपने पुत्र को देखकर देवी को भी परम आनन्द प्राप्त हुआ ।

(७३-७५)

तदनन्तर देवी शम्भु के साथ सुन्दर कन्दराओं वाल मन्दराचल पर रमण करने लगीं । हे विभो ! इसी प्रकार यह देवी पुन कात्यायनी हुई थी जिन्होंने प्राचीन समय

एवं भूयोऽभवद् देवी इयं काल्यायनी विभो ।
या जघान महादैत्यौ पुरा शुम्भनिशुम्भकौ ॥ ७६
एतत् तवोक्तं वचनं शुभालयं

यथोद्धवं पर्वततो मृडान्याः ।
स्वर्ग्यं यशस्यं च तयाघहारि
आख्यानमूर्जस्करमद्रिपुण्याः ॥ ७७

इति श्रीवामनपुराणे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

२६

पुलस्त्य उवाच ।

करपपस्य दनुर्नाम भार्यासीद् द्विजसत्तम ।
तस्याः पुत्रत्रयं चामीत् सहस्राक्षाद् बलाधिकम् । १
ज्येष्ठः शुम्भ इति ख्यातो निशुम्भयापरोऽसुरः ।
तृतीयो नमुचिर्नाम महाबलसमन्वितः ॥ २
योऽसौ नमुचिरित्थेवं ख्यातो दनुसुतोऽसुरः ।
तं हन्तुमिच्छति हरिः प्रगृह्य कुलिशं करे ॥ ३
त्रिदिवेशं समाधान्तं नमुचिस्तद्गदाद्यत् ॥

प्रविवेश रथं भानोस्ततो नाशकदच्युतः ॥ ४
शक्रस्तेनाथ समयं चक्रे सह महात्मना ।
अवच्यर्थं वरं प्रादाच्छस्त्रैरस्त्रैश्च नारद ॥ ५
ततोऽवच्यस्वमाज्ञाय शस्त्रादस्त्राच्च नारद ।
संत्यज्य भास्कररथं पातालमूपवाद्यत् ॥ ६
स निमज्जन्पि जले सामुद्रं फेनमूचमम् ।
दृष्टो दानवपतिस्त प्रगृह्येदमव्रवीत् ॥ ७
यदुक्तं देवपतिना वासयेन धनोऽस्तु तत् ।

मे शुम्भ और निशुम्भ नामक दो महान् दैत्यों का संहार
किया था । (७६)
मृडानी जिस प्रकार पर्वत से उत्पन्न हुई थी उस

शुभ आख्यान को मैंने तुमसे कहा । पर्वतनन्दिनी का यह
आख्यान स्वर्ग एवं यश को देने वाला, अपहारी तथा
ओजस्वी है । (७७)

श्रीवामनपुराण में अष्टाविंशोऽध्याय समाप्त ॥२८॥

२९

पुलस्त्य ने कहा—हे द्विजसत्तम । करप की दनु
नाम की पत्नी थी । उसे इन्द्र से अधिक बल वाले तीन
पुत्र थे ।

उनमें बड़े का नाम शुम्भ, मझने का नाम
निशुम्भ, और महाबलवान् तृतीय पुत्र का नाम नमुचि
था । (१)

हाथ में वज्र धारण कर इन्द्र ने नमुचि नाम से
प्रसिद्ध दनुपुत्र असुर को मारना चाहा । (२)

तदनन्तर इन्द्र को आते देखकर उनके भय से नमुचि
सूर्य के रथ में प्रविष्ट हो गया । इससे इन्द्र उसे मार
न सके । (३)

हे नारद । तदुपान्त महात्मा इन्द्र ने उससे सन्धि
कर लिया और उसे अस्त्र शस्त्रों से अवच्य होने का
वर दिया । (५)

हे नारद । तदनन्तर अपने को अस्त्र शस्त्रों से अवच्य
हुआ जानकर वह असुर सूर्य के रथ को छोड़कर पाताल
चला गया । (६)

उस दानवपति ने जल में स्नान करते हुए समुद्र के
उत्तम फेन को देखा और उसे ग्रहण कर यह वचन
कहा— (७)

देवराज इन्द्र ने जो वचन कहा वह सफल हो । यह

अयं स्पृशतु मां फेनः कराम्भ्यां गृह्य दानवः ॥ ८
 मुखनासाक्षिकर्णादीन् संममार्जं यथेच्छया ।
 तस्मिञ्छश्रोऽसृजद् वज्रमन्तर्हितमपीश्वरः ॥ ९
 तेनासौ भग्ननासास्यः पपात च ममार च ।
 समये च तथा नष्टे ब्रह्महत्याऽस्पृशद्दरिम् ॥ १०
 स वै तीर्थे समासाद्य स्नातः पापादमुच्यत ।
 ततोऽस्य भ्रातरौ वीरौ क्रुद्धौ शुम्भनिशुम्भकौ ॥ ११
 उद्योगं सुमहत्कृत्वा सुरान् धाधितुमागतौ ।
 सुरास्तेऽपि सहस्राक्षं पुरस्कृत्य विनिर्ययुः ॥ १२
 जितास्तवाक्रम्य दैत्याभ्यां सनता, सपदानुगाः ।
 शकस्याहृत्य च गजं याम्यं च महिषं धलात् ॥ १३
 वरुणस्य मणिच्छत्रं गदां वै मात्स्वस्य च ।
 निधयः पद्मशृङ्गाद्या हतास्ताक्रम्य दानतः ॥ १४
 त्रैलोक्यं वशगं चास्ते ताभ्यां नारद सर्वतः ।
 तदाजगृह्मर्हीषृष्टं ददृशुस्ते महासुरम् ॥ १५
 रक्तबीजमयोऽनुस्ते को भवानिति सोऽब्रवीत् ।

फेन मेरा स्पर्श करे । ऐसा बहुर बह दानव दोनों हाथों से फेन लेकर अपनी इच्छा के अनुसार उससे अपने मुख, नाक और कर्ण आदि का मार्जन करने लगा । उस (फेन) में इन्द्र देव ने छिपे हुए वज्र की छुट्टि की । (८-९)

उससे नाक और सुर दूट जाने से वह गिर पड़ा और मर गया । प्रतिज्ञा के दूट जाने पर इन्द्र को ब्रह्महत्या का पाप लगा । (१०)

वे तीर्थों में जाकर स्नान करने से पापमुक्त हुए । तदनन्तर शुम्भ और निशुम्भ नामक उसके दो वीर भाई अत्यन्त क्रुद्ध हुए । (११)

वे दोनों महान् उद्योग कर देवताओं को मारने के लिए आये । वे सभी देवता भी इन्द्र को आगे कर निकल पड़े । (१२)

उन दोनों दैत्यों ने आक्रमण कर सेना और अनुचरों के साथ देवताओं को हरा दिया । इन्द्र के हाथी, यम के महिष, वरुण के मणिमय छत्र, धातु की गदा तथा पद्मशृङ्गादि निधियों को भी दानवों ने आक्रमण कर हरण कर लिया । (१३-१४)

हे नारद ! उन दोनों ने तीनों लोकों को वशीभूत कर

स चाह दैत्योऽस्मि विमो सचिधो महिपरय तु ॥ १६
 रक्तनीजेति विख्यातो महावीर्यो महासुजः ।
 अमात्यौ रुचिरौ वीरौ चण्डमुण्डाविति श्रुतौ ॥ १७
 तावास्तां सलिले मग्नौ भयाद् देव्या महाभुजौ ।
 यस्तवासीत् प्रभुरस्माकं महिषो नाम दानवः ॥ १८
 निहतः स महादेव्या विन्ध्यशैले सुविस्तृते ।
 भवन्तौ वस्य तनयौ कौ वा नाम्ना परिश्रुतौ ।
 किंवीर्यो किंप्रभावौ च एतच्छंसितुमर्हथः ॥ १९
 शुम्भनिशुम्भावृचतुः ।

अहं शुंभ इति रयातो दनोः पुत्रस्तयोरसः ।
 निशुम्भोऽयं मम भ्राता कनीयान् शत्रुपूगहा ॥ २०
 अनेन वदुशो देवाः सेन्द्रस्त्रदिवाकराः ।
 समेत्य निर्जिता वीरा येऽन्ये च यलवत्तराः ॥ २१
 तदुच्यतां कया दैत्यो निहतो महिषासुरः ।

लिया । उसके बाद वे सभी भूतल पर आये और रक्तबीज नामक एक महान् असुर को देव कर उससे पूछे—आप कौन हैं ? उसने उत्तर दिया—हे विमो ! मैं महिषासुर का मन्त्रो एक दैत्य हूँ । (१५-१६)

मैं रक्तबीज नाम से प्रसिद्ध महापराक्रमी एवं विशाल भुजाओं वाला (दैत्य) हूँ । चण्ड और मुण्ड नाम से प्रसिद्ध (महिष) के सुन्दर वीर महासुहृद् दो अमात्य देवी के भय से जल में मग्न हो गये हैं । महादेवी ने सुविस्तृत विन्ध्यपर्वत पर हमारे स्वामी महिष नामक दानव को मार डाला है । आप मुझे बतलावें कि आप किसका पुत्र हैं ? तथा आप किस नाम से प्रसिद्ध हैं ? आप में कितना पराक्रम एवं प्रभाव है ? (१७-१९)

शुम्भ और निशुम्भ ने कहा—मैं दनु वा औरस पुत्र शुम्भ नाम से विख्यात हूँ । यह मेरा छोटा भाई निशुम्भ शत्रुसमूह का नाराक है । (२०)

इस निशुम्भ ने इन्द्र, रुद्र, दिवाकर आदि देवताओं तथा अन्य अनेक बलवान् वीरों को बहुत बार आक्रमण कर हरा दिया है । (२१)

अब बतलाओ कि किस स्त्री ने दैत्य महिषासुर को

यावचां घातयिष्यावः स्वमैत्र्यपरिवारितौ ॥ २२
इत्थं तयोस्तु वदतोर्नर्मदायास्तटे मृगे ।
जलवासाद् विनिष्क्रान्तो चण्डमृगडौ च दानवौ ॥ २३
ततोऽभ्येत्यासुरश्रेष्ठौ रक्तबीजं समाश्रितौ ।
ऊचतुर्वचनं श्लक्ष्णं कोऽयं तव पुरस्सरः ॥ २४
स चोभौ प्राह दैतयोऽसौ शुम्भो नाम सुरार्दनः ।
कनीयानस्य च भ्राता द्वितीयो हि निशुम्भकः ॥ २५
एतावाश्रित्य ता दुष्टां महिषघ्नीं न संशयः ।
अहं विवाहयिष्यामि रत्नभूतां जगत्त्रये ॥ २६
चण्ड उवाच ।

न सम्पशुक्त भवता रत्नाहोऽसि न साम्प्रतम् ।
यःप्रहृः स्यात्स रत्नाहं तस्मान्चुम्भाय योजयताम् ॥ २७
तदाचक्षे शुम्भाय निशुम्भाय च कौशिकीम् ।
भूयोऽपि तद्विधां जाता कौशिकी रूपशालिनीम् ॥ २८
ततः शुम्भो निजं दूतं सुग्रीवं नाम दानवम् ।

मारा है ? हम दोनों अपने सौम्यों को साथ लेकर उस
स्त्री का सहाय करेगे । (२२)

हे मुनि! नर्मदा तट पर इस प्रकार दोनों के वात
करते समय चण्ड और मुण्ड नामक दोनों दानव जल से
निकल आये । (२३)

उन दोनों ने रक्तबीज के पास जाकर मधुर शब्दों
में पूछा—तुम्हारे सम्मुख यह कौन खड़ा है ? उसने वन
दोनों से कहा—यह देववाओं को कष्ट देने वाला शुम्भ
नामक दैत्य है एवं वह दूसरा निशुम्भ नामका इसका छोटा
भाई है । (२४-२५)

मैं निरसन्देह इन दोनों की सहायता से त्रिलोक
में रत्नस्वरूपा तथा महिषासुर का नाश करने वाली उस
दुष्टा से विवाह करूँगा । (२६)

चण्ड ने कहा—आप ने उचित नहीं कहा । आप
अभी रत्न के योग्य नहीं हैं । राजा ही रत्न के
योग्य होता है । अतः शुम्भ का ही इससे संयुक्त
करो । (२७)

तदनन्तर उन्होंने शुम्भ और निशुम्भ से उस प्रकार
वत्पत्र स्वरूपवती कौशिकी का वर्णन किया । (२८)

तब शुम्भ ने अपने दूत सुग्रीव नामक दानव को विन्ध्य-

दैत्यं च प्रेषयामास मरुतां विन्ध्यवासिनीम् ॥ २९
स गत्वा तद्वचः श्रुत्वा देव्यागत्य महासुरः ।
निशुम्भशुम्भावाहेदं मन्युनाभिपरिप्लुतः ॥ ३०
सुग्रीव उवाच ।

सुतयोर्वचनाद् देवीं प्रद्रेष्टुं दैत्यनायकी ।
गत्वानहमथैव तामहं वाक्यमब्रुवम् ॥ ३१
पथा शुम्भोऽतिविरघातः ककुभी दानवेष्वपि ।
स त्वां प्राह महाभागे प्रभुरस्मि जगत्त्रये ॥ ३२
यानि स्वर्गे महीपृष्ठे पाताले चापि सुन्दरि ।
रत्नानि सन्ति त्वानि मम वेदमनि नित्यशः ॥ ३३
त्वमुक्ता चण्डमृगडाभ्यां रत्नभूता कृशोदरि ।
तस्माद् भजस्वमां वा त्वं निशुम्भं वा ममानुजम् ॥ ३४
सा चाह मां विहसती शृणु सुग्रीव मद्रवचः ।
सत्यमृषत्वं त्रिलोकेशः शुम्भो रत्नाहं एव च ॥ ३५
किं त्वरितं दुर्विनीताया हृदये मे मनोरथः ।

वासिनी के पास भेजा । (२९)

वह महासुर सुग्रीव वहाँ गया एवं देवी की बात सुनकर
क्रोध से जलते हुए उसने आनर निशुम्भ और शुम्भ से
कहा । (३०)

सुग्रीव ने कहा—हे दैत्यनायको ! आप लोगों के
कथनानुसार देवी से कहने के लिये मैं गया था । मैंने
अभी जानर उससे कहा— (३१)

हे भाग्यशालिनी ! अतिविरघात दानवश्रेष्ठ शुम्भ ने
तुमसे कहा है—कि मैं तीनों लोगों का स्वामी हूँ ।
हे सुन्दरी ! स्वर्ग, पृथ्वी एवं पाताल के सभी रत्न मेरे
शुद्ध मे नित्य रहते हैं । हे कृशोदरी ! चण्ड और मुण्ड ने
तुम्हें रत्नारूपा बतलाया है । अतः तुम मुझे या मेरे
अनुज निशुम्भ का उरण करो । (३२-३४)

हँसती हुई उसने मुझसे कहा—हे सुग्रीव ! मेरी
बात सुनो । तुमने यह सत्य कहा है कि तीनों लोकों का
स्वामी शुम्भ रत्न के योग्य हैं । (३५)

किन्तु हे महासुर ! सुन्न दुर्विनीता के हृदय का यह
मनोरथ है कि युद्ध में मुझे जीतने यात्रा ही मेरा पति

अयं स्पृशतु मां फेनः कराभ्यां गृह्य दानवः ॥ ८
 मुखनासाक्षिकर्णादीन् संममार्जं यथेच्छया ।
 तस्मिन्क्रोशोऽसृजद् वज्रमन्तार्हितमयीश्वरः ॥ ९
 तेनासौ भग्ननासास्यः पपात च ममार च ।
 समये च तथा नष्टे ब्रह्महत्याऽस्पृशद्भरिम् ॥ १०
 स वै तीर्थं समासाद्य स्नातः पापादमुच्यत ।
 ततोऽस्य भ्रातरौ वीरौ क्रुद्धौ शुम्भनिशुम्भकौ ॥ ११
 उद्योगं सुमहत्कृत्वा सुरान् बाधितुमागतौ ।
 सुरास्तेऽपि सहस्राक्षं पुरस्कृत्य विनिर्ययुः ॥ १२
 जितास्त्वाक्रम्य दैत्याभ्यां सवलाः सपदानुगाः ।
 शत्रुत्याहृत्य च गजं याम्यं च महिषं वलात् ॥ १३
 वरुणस्य मणिच्छत्रं गदां चै मारुतस्य च ।
 निधयः पद्मशङ्खाया हृतास्त्वाक्रम्य दानवैः ॥ १४
 त्रैलोक्यं वशगं चास्ते ताभ्यां नारद सर्वतः ।
 तदानुगम्यहीपृष्ठं ददृशुस्ते महासुरम् ॥ १५
 रक्तवीजमथोत्सृजे को भवानिति सोऽग्रवीत् ।

फेन मेरा स्पर्श करे। ऐसा कहकर वह दानव दोनों हाथों से फेन लेकर अपनी इच्छा के अनुसार उससे अपने मुख, नाक और कर्ण आदि का मार्जन करने लगा। उस (फेन) में इन्द्र देव ने छिपे हुए वज्र की सृष्टि की।

(८-९)

उससे नाक और मुख टूट जाने से वह गिर पड़ा और मर गया। प्रतिष्ठा के टूट जाने पर इन्द्र को ब्रह्महत्या का पाप लगा।

(१०)

वे तीर्थों में जाकर स्नान करने से पापमुक्त हुए। वदनवर शुम्भ और निशुम्भ नामक उससे दो वीर भारी अतन्त्र क्रुद्ध हुए।

(११)

वे दोनों महान् उद्योग पर देवताओं को मारने के लिए आये। वे सभी देवता भी इन्द्र को आगे कर निकल पड़े।

(१२)

उन दोनों दैत्यों ने आक्रमण पर सेना और अनुचरों के साथ देवताओं को हरा दिया। इन्द्र के हाथी, यम के महिष, वरुण के मणिमय छत्र, वायु की गदा तथा पद्मशङ्खादि निधियों को भी दानवों ने आक्रमण कर हरण कर लिया।

(१३-१४)

हे नारद! इन दोनों ने तीनों लोकों को पशोभूत कर

स चाह दैत्योऽस्मि विभो सचिवो महिपस्य तु ॥ १६
 रक्तवीजेति विख्यातो महावीर्यो महामुजः ।
 अमात्यौ रुचिरौ वीरौ चण्डमुण्डाविति श्रुतौ ॥ १७
 तावार्तां सलिले मग्नौ भयाद् देव्या महाशुनौ ।
 यस्तवासीत् प्रभुरस्माकं महिपो नाम दानवः ॥ १८
 निहतः स महादेव्या विन्ध्यशैले सुविस्वृते ।
 भवन्तौ कस्य तनयौ कौ वा नाम्ना परिश्रुतौ ।
 किंवीर्यं किंप्रभावी च एतच्छंसितुमर्हथः ॥ १९
 शुम्भनिशुम्भावृचतुः ।

अहं शुंभ इति ख्यातो दनोः पुत्रस्तघोरसः ।
 निशुम्भोऽयं मम भ्राता कनीयान् शत्रुपूगहा ॥ २०
 अनेन बहुशो देवाः सेन्द्ररुद्रदिवाकराः ।
 समेत्य निर्जिता वीरा येऽन्ये च बलवतराः ॥ २१
 तदुच्यतां कया दैत्यो निहतो महिपासुरः ।

लिया। उसके बाद वे सभी भूतल पर आये और रणप्रेत नामक एक महान् असुर को देख कर उससे पूछे—आप कौन हैं? उसने उत्तर दिया—हे विभो! मैं महिपासुर का मन्त्री एक दैत्य हूँ।

(१५-१६)

मैं रक्तबीज नाम से प्रसिद्ध महापराक्रमी एवं विराट् मुजाओं वाला (दैत्य) हूँ। चण्ड और मुण्ड नाम से प्रसिद्ध (महिष) के सुन्दर वीर महाबाहु दो अमात्य देवी के भय से जल में मग्न हो गये हैं। महादेवी ने सुविस्वृत विन्ध्यपर्वत पर हमारे स्वामी महिष नामक बानव को मार डाला है। आप मुझे बतलाएं कि आप किसके पुत्र हैं? तथा आप किस नाम से प्रसिद्ध हैं? आप ने कितना पराक्रम एवं प्रभाव है?

(१७-१९)

शुम्भ और निशुम्भ ने कहा—मैं दनु वा औरस पुत्र शुम्भ नाम से विख्यात हूँ। यह मेरा छोटा भाई निशुम्भ शत्रुसमूह का नाराक है।

(२०)

इस निशुम्भ ने इन्द्र, रुद्र, दिवावर आदि देवताओं तथा अन्य अनेक बलवान् वीरों को बहुत बार आक्रमण कर हरा दिया है।

(२१)

अब बतलाओ कि किस स्त्री ने दैत्य महिपासुर को

घातयिष्याव. स्वमैत्र्यपरिवारितौ ॥ २२

योस्तु वदतो नर्मदायास्तटे ध्रुने ।

राद् विनिष्क्रान्तो चण्डमुण्डौ च दानवौ ॥ २३

येत्यासुरश्रेष्ठौ रक्तरीज समाश्रितौ ।

चिन इक्षण कोऽय तत्र पुरस्मरः ॥ २४

नौ प्राह दैत्योऽनौ शुम्भो नाम सुरार्दनः ।

नस्य च भ्राता द्वितीयो हि निशुम्भकः ॥ २५

श्रित्य ता दुष्टा महिषघ्नीं न सक्षयः ।

वाहयिष्यामि रत्नभूता जगत्त्रये ॥ २६

चण्ड उवाच ।

यगुक्त भवता रत्नार्होऽसि न साम्प्रतम् ।

स्यात्स रत्नार्हस्तस्माच्छुम्भाय योज्यताम् ॥ २७

वक्षे शुम्भाय निशुम्भाय च कौशिकीम् ।

पि तद्विधा जाता कौशिकी रूपशालिनीम् ॥ २८

शुम्भो निज दूत सुग्रीव नाम दानवम् ।

ह ? हम दोनों अपने सैन्यों को साथ लेकर उस

सहारा करेंगे । (२२)

सुनि। नर्मदा तट पर इस प्रकार दोनों के बात

समय चण्ड और मुण्ड नामक दोनों दानव जल से

आये । (२३)

न दोनों ने रक्तरीज के पास जाकर मधुर शब्दों

।—तुम्हारे सम्मुख यह कीन खड़ा है ? उसने उन

से कहा—यह देवताओं को बध देने वाला शुम्भ

दैत्य है एव यह दूसरा निशुम्भ नामका इसका छोटा

। (२४-२५)

निरसन्देह इन दोनों की सहायता से त्रिकाक

स्वरूपा तथा महिषासुर का नाश करने वाली उस

विवाह करेगा । (२६)

ण्ड ने कहा—आप ने उचित नहीं कहा । आप

रत्न के योग्य नहीं है । राधा ही रत्न के

होता है । अतः शुम्भ का ही इससे समुक्त

(२७)

दनन्तर उन्होंने शुम्भ और निशुम्भ से उस प्रकार

स्वरूपवती कौशिकी का वर्णन किया । (२८)

दैत्यं च प्रेषयामास सत्ताश विन्ध्यवासिनीम् ॥ २९

स मत्वा तद्वचः श्रुत्वा देव्यागत्य महासुरः ।

निशुम्भशुम्भावाहेद मन्युनाभिपरिप्लुतः ॥ ३०

सुग्रीव उवाच ।

पुत्रयोर्वचनाद् देवीं प्रदेष्टुं दैत्यनायकौ ।

गतवानहमथैव तामह वाक्त्रयमब्रुवम् ॥ ३१

यथा शुम्भोऽतिविख्यातः ककुदी दानवेष्वपि ।

स त्वा प्राह महाभागे प्रभुरस्मि जगत्त्रये ॥ ३२

यानि स्वर्गे महीपृष्ठे पाताले चापि सुन्दरि ।

रत्नानि सन्ति तपन्ति मम वेश्मनि नित्यशः ॥ ३३

त्वमुक्ता चण्डमुण्डाभ्या रत्नभूता कृशोदरि ।

तस्माद् भजस्वमा मा त्व निशुम्भवाममानुजम् ॥ ३४

सा चाह मा विहसती शृणु सुग्रीव मद्रचः ।

सत्यमुक्त त्रिलोकेशः शुम्भो रत्नार्ह एव च ॥ ३५

किं तस्ति दुर्निनीताया हृदये मे मनोरथः ।

वासिनी के पास भेजा । (२९)

यह महासुर सुमीव वहाँ गया एव देवी की बात सुनकर

क्रोध से जलते हुए उसने आकर निशुम्भ और शुम्भ से

कहा । (३०)

सुग्रीव ने कहा—हे दैत्यनायको ! आप लोगों के

कथनानुसार देवी से कहने के लिये मैं गया था । मैंने

अभी जाकर उससे कहा— (३१)

हे माग्यशालिनी ! अतिविख्यात दानवश्रेष्ठ शुम्भ ने

तुमसे कहा है—कि मैं तीनों लोकों का स्वामी हूँ ।

हे सुन्दरी ! स्वर्ग, पृथ्वी एव पाताल के सभी रत्न मेरे

गृह में नित्य रहते हैं । हे कृशादरी ! चण्ड और मुण्ड ने

तुम्हें रत्नस्वरूपा बतलाया है । अतः तुम मुझे या मेरे

अनुच निशुम्भ का षरण करो । (३२-३४)

हँसती हुई उसने मुझसे कहा—हे सुमीव ! मेरी

बात सुनो । तुमने यह सत्य कहा है कि तीनों लोकों का

स्वामी शुम्भ रत्न के योग्य है । (३५)

किन्तु हे महासुर ! तुझ दुर्निनीता के हृदय का यह

किन्तु हे महासुर ! तुझ दुर्निनीता के हृदय का यह

यो मा विजयते युद्धे स भता स्यान्महासुर ॥ ३६
मया चोक्त्वाऽग्लिप्ताऽसि यो जयेत् सत्पुरासुरान् ।
स त्वां कथं न जयते सा त्वमुचिष्ठ भामिनी ॥ ३७
साऽथ मा प्राह किं कुर्मि यदनालोचितं कृतं ।
मनोरथस्तु तद् गच्छ शुम्भाय त्व निवेदय ॥ ३८
तयैवमुक्तस्तवभ्यागा त्वत्सकाशं महासुर ।
सा चाग्निकोटिसदृशी मत्तैर्वं हुरु यत्क्षमम् ॥ ३९

पुलस्त्य उवाच ।

इति सुग्रीववचन निशम्य स महासुरः ।
प्राह दूरस्थित शुम्भो दानवं धूम्रलोचनम् ॥ ४०

शुम्भ उवाच ।

धूम्राक्ष गच्छ ता दुष्टा केशकर्षणविह्वलाम् ।
सापराधा यथा दासीं कृत्वा शीघ्रमिहानय ॥ ४१
यथास्याः पक्षकृत् कथिद् भविष्यति महानलः ।

होगा । (३६)

मैंने कहा—तुम गर्विता हो गई हो । भला जिसने
सभी सुरासुरों को जीत लिया है वह तुम्हें क्यों नहीं जीत
लेगा । अतः हे भामिनी ! तुम उठो । (३७)

तदनन्तर उसने मुझसे कहा—मैं क्या करूँ ? बिना
विचारे मैंने वैसा सकल्प कर लिया है । अतः जाकर शुम्भ
से मेरी बात कहो । (३८)

अतः हे महासुर ! उसके ऐसा कहने पर मैं आप के
पास आया हूँ । वह अग्निशिखा के समान है । यह जानकर
आप जैसा उचित हो वैसा कार्य करें । (३९)

पुलस्त्य ने कहा—सुग्रीव के इस वचन को सुनकर
उस महासुर शुम्भ ने दूर में स्थित धूम्रलोचन दानव से
कहा । (४०)

शुम्भ ने कहा—हे धूम्राक्ष ! तुम जाओ । उस दुष्टा को
अपराधिनी दासी की भाँति केश रसोचने से ब्याकुल बना
कर शीघ्र यहाँ ल्याओ । (४१)

यदि कोई बलशाली उसका पक्ष ग्रहण करे तो बिना
विचार किये तुम उसे मार डालना । चाहे वह ब्रह्मा ही

स हन्तव्योऽविचार्यैव यदि हि स्यात् पितामहः ॥ ४२
स एवमुक्तः शुम्भेन धूम्राक्षोऽशौहिणीशतैः ।
वृतः पट्भिर्महातेजा विन्ध्यं गिरिगुप्ताद्रवम् ॥ ४३
स तत्र दृष्ट्वा तां दुर्गा आन्तदष्टिरुवाच ह ।
एव्वेहि मूढे भर्तारं शुम्भमिच्छस्व कौशिकी ।
न चेद् बलान्मयिष्यामि केशकर्षणविह्वलाम् ॥ ४४

श्रीदेव्युवाच ।

प्रेषितोऽसीह शुम्भेन बलान्नेतुं हि मां किल ।
तत्र किं ह्यनला कुर्याद् यथेच्छसि तथा कुरु ॥ ४५

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्तो विभावर्या बलवान् धूम्रलोचनः ।
समभ्यधावत् त्वरितो गदामादाय वीर्यवान् ॥ ४६
तमापतन्तं समद हुकारेणैव कौशिकी ।
सपलं भ्रमसाचक्रे शुष्कमग्निरिवेन्धनम् ॥ ४७

क्यों न हो । (४२)

शुम्भ के ऐसा कहने पर वह महातेजस्वी धूम्राक्ष
द्व सो अशौहिणी सेना के साथ विन्ध्य पर्वत पर
गया । (४३)

वहाँ दुर्गा को देखकर उसने भ्राम्न दृष्टि होकर कहा—
हे मूढे ! आओ, आओ । कौशिकी ! तुम शुम्भ को पति
बनाने की इच्छा करो । अन्यथा केशकर्षण से ब्याकुल कर
तुमको मैं बलपूर्वक ले जाऊँगा । (४४)

श्रीदेवी ने कहा—निश्चय ही शुम्भ ने मुझे बलपूर्वक
ले जाने के लिए तुम्हें भेजा है । इसमें एक अबला क्या
करेगी ? तुम जैसा चाहो वैसा कर । (४५)

पुलस्त्य ने कहा—विभावरी (देवी) के ऐसा कहने पर
बलवान् पर वीर्यवान् धूम्रलोचन शीघ्र गदा लेकर दौड़
पड़ा । (४६)

कौशिकी ने गदा लेकर आ रहे उसको हुँकार द्वाय
ही सेना सहित इस प्रकार भ्रमसात् कर दिया जैसे अग्नि
शुष्क ईंधन को जला देता है । (४७)

१ एक अर्से हिणो सेना म १०६३२० पदल सिपाही, ६३२१०

२ पुण्डववार, २१८७० रथी घोडा २१८७० गजारोही चहते हैं ।

ततो हाहाकृतमभूजगत्परिमथराचरे ।
 सयलं भस्मसानीतं कौशिक्या धीस्य दानवम् ॥ ४८
 तच्च शुम्भोऽपि शुश्राव महच्छब्दमुदीरितम् ।
 अयादिदेश बलिनी चण्डमुण्डौ महासुरौ ॥ ४९
 रुहं च बलिनां श्रेष्ठं तथा जगृह्मुदान्विताः ।
 तेषां च सैन्यमतुलं गजाश्वरथसंकुलम् ॥ ५०
 समाजगाम महता यत्रास्ते कौशमंभवा ।
 तदायान्तं रिपुवलं दृष्ट्वा कोटिशतावरम् ॥ ५१
 मिहोऽब्रवद् बहु वृतसटः पाटयन् दानवान् रणे ।
 कांश्चित् करप्रहारेण कांश्चिदास्येन लीलया ॥ ५२
 नरैरैः कांश्चिदाक्रम्य उरसा प्रपमाथ च ।
 ते बध्मयानाः मिहेन गिरिकन्दरवासिना ॥ ५३
 भूनिश्च दैव्यनुचरैश्चण्डमुण्डौ समाश्रयन् ।
 तावाचं स्वबलं दृष्ट्वा क्षोपप्रस्फुरिताधरौ ॥ ५४
 समाद्रचेतां दुर्गां चै पतङ्गाविध पायकम् ।
 तावापतन्तौ रौद्रीं चै दृष्ट्वा क्रोधपरिप्लुता ॥ ५५

कौशिकी द्वारा बलवान् दानव को सेना सहित भस्म किये जाते देखकर चराचर संसार में हाहानार मच गया । (४८)

शुम्भ ने भी उस महान् शब्द को सुना । तदनन्तर उसने चण्ड एव मुण्ड नामक दोनों महान् एव बलवान् असुरों तथा बलवानों में श्रेष्ठ रुहू को आदेश दिया । वे प्रसन्नतापूर्वक चल दिये । हाथी, घोड़ों और रथ से पूर्ण उनका अतुल सेना शीघ्र वहाँ पहुँची जहाँ कौशिकी उपस्थित थीं । उस समय सैन्धवों शत्रुसेना को आते देख दिल्ली हुई सटाओं बाल्य सिद्ध युद्ध में दानवों को विदारित करते हुए दीक्षे लगा । उसने लोलापूर्वक युद्ध को हाथ के प्रहार से, युद्ध को मुट से, युद्ध को नर से एव युद्ध को अपनी छाती के प्रहार से व्याकुल कर दिया । गिरिकन्दरवासी सिद्ध एवं देवी के अनुचरस्वरूप भूतों से मारे जा रहे वे सभी चण्ड-मुण्ड की शरण में गये । अपनी सेना को आर्चं हुई देव उन दोनों के जोठ कोप से प्रस्फुरित होने लगे । (४९-५४)

अग्नि की ओर दीक्षे जाने पतङ्गों के सदृश वे दोनों दैत्य देवी की ओर दीक्षे । उन दोनों भयङ्कर दानवों को आते देखकर वेची अत्यन्त क्रोधित हुई । (५५)

विशाखां भ्रुकुटीं वक्त्रे चकार परमेश्वरी ।
 भ्रुकुटीकृटिलाद् देव्या ललाटफलकाद् द्रुतम् ।
 काली करालवदना निःसृता योगिनी शुभा ॥ ५६
 खट्वाङ्गमादाय करेण रौद्र-
 मसिञ्च कालाञ्जनकोशमुग्रम् ।
 संशुष्कगात्रा हृथिराप्लुताङ्गी
 नरेन्द्रमूर्ध्ना स्रजमुद्रहन्ती ॥ ५७
 कांश्चित् रड्भेन चिच्छेद खट्वाङ्गेन परान् रणे ।
 न्यपूदयद् भृशं क्रुद्धा सरथाश्वगजान् रिपून् ॥ ५८
 चर्माङ्कशं मुद्रं च सधनुष्कं स्वष्टिकम् ।
 कुञ्जरं मह यन्त्रेण प्रचिक्षेप मृशेऽम्बिका ॥ ५९
 सचक्रवृवररथं ससारथिुरङ्गमम् ।
 समं योधेन वदन्ते क्षिप्य चर्वयन्तेऽम्बिका ॥ ६०
 एकं जग्राह केशेषु श्रीवायामपरं तथा ।
 पादनाक्रम्य चैवान्यं प्रेषयामास मृत्यवे ॥ ६१
 ततस्तु तद् बलं देव्या मक्षितं सखलाधिपम् ।

परमेश्वरी ने मुट में तीन देव्याओं वाली भ्रुकुटि चढ़ायी । देवी के कृटिल भ्रुकुटियुक्त ललाट फलक से शीघ्र विकटमुत्पन्नाली महलमयी योगिनी काली निकल आयी । (५६)

उनके हाथ में भयंकर खट्वाङ्ग और कालाञ्जन तुल्य कोश से युक्त उग्र तलवार थी । उनका शरीर सृष्टा और रक्त से सना हुआ था तथा उनके गले में राजाओं के शिर की माला था । (५७)

अत्यन्त मूढ़ होकर उन्होंने युद्ध में युद्ध को लक्ष्य से नाट बाला और हाथी, रथ एवं घोड़ों से युक्त अन्य शत्रुओं को खट्वाङ्ग से मार डाला । (५८)

तदनन्तर अम्बिका चर्म, अक्षु, मुद्गर, धनुष, घटियों और यन्त्र सहित हाथी को अपने मुट में फेंकने लगी । (५९)

चक्र और धूमर युक्त रथ को सारथी, घोड़े और योद्धा के साथ मुट में डालकर अम्बिका चमत्कृत लगी । (६०)

उन्होंने किसी को केश पकड़कर, किसी को गला पकड़कर और अन्य किसी को चरण से प्रहार कर मृत्यु के पास पहुँचा दिया । (६१)

तदनन्तर सेनापति सहित उस सेना को देवी द्वारा मक्षित हुआ देव रुह दीक्षे पड़ा । चण्डी ने रथ उसे देवा

रुहृष्ट्वा प्रदुद्राव तं चण्डी ददशे स्वयम् ॥ ६२
 आजघानाय शिरसि खट्वाङ्गेन महासुरम् ।
 स पपात हतो भूम्यां छिन्नमूल इष द्रुमः ॥ ६३
 ततस्तं पतितं दृष्ट्वा पशोरिव विभावरी ।
 कोशमृत्कर्तव्यामास कर्णादिचरणान्तिरुम् ॥ ६४
 सा च कोशं समादाय बन्ध विमला जटाः ।
 एका न बन्धमगमत् तामुत्पाद्याक्षिपद् भुवि ॥ ६५
 सा जाता सुतरां रौद्री तैलाभ्यक्तशिरोरुहा ।
 कृष्णार्धमर्धशुकलं च धारयन्ती स्वकं वपुः ॥ ६६
 साऽग्नवीद् वरमेकं तु मारयामि महासुरम् ॥
 तस्या नाम तदा चक्रे चण्डमारीति विश्रुतम् ॥ ६७
 प्राह गच्छस्व सुभगे चण्डमृण्डाविहानय ।
 स्वयं हि मारयिष्यामि तायानेतुं त्यमहंसि ॥ ६८
 श्रुत्वैवं वचनं देव्याः साऽभ्यद्रवत् तानुभी ।
 प्रदुद्रुवतुर्भयाचां दिशमाश्रित्य दक्षिणाम् ॥ ६९

और खट्वाङ्ग से उस महानुर के शिरपर प्रहार किया ।
 वह मरकर जड़ से कटे हुये वृक्ष के सदृश शृण्खी पर गिर
 पड़ा । (६२-६३)

देवी ने उसे भूमि पर गिरा हुआ देखकर पशु
 के सदृश उसके कान से पैर तक का कोश काट
 लिया । (६४)

उस कोश (चमड़े) को लेकर उन्होंने अपनी विमल जटाओं
 को बाँधा । उनमें एक जटा बाँधी नहीं गयी । उसे खण्ड
 पर उन्होंने धरती पर फेंक दिया । (६५)

यह जटा एक भयङ्कर देवी हो गयी । उसके
 मरक के बँदा तैलाभ्यक्त थे एवं वह आधा फाटा
 तथा आधा सफेद पर्ण का शरीर धारण किये हुए
 थी । (६६)

उसने कहा—मैं एक भेष्ट महासुर को मारूँगी । देवी
 ने तब बराका प्रसिद्ध नाम चण्डमारी रखा । (६७)

देवी ने कहा—हे सुभगे । तुम जाकर चण्ड और
 मुण्ड को यहाँ लाओ । मैं स्वयं उन्हें मारूँगी । उन्हें लाने
 में तुम समर्थ हो । (६८)

देवी ने इस कथन को सुनकर यह दीक्ष पड़ी ।
 वे दोनों भयाचं होकर दक्षिण दिशा की ओर भाग
 गये । (६९)

ततस्तावपि वेगेन प्राधावत् त्यक्तवाससौ ।
 साऽधिरुह्य महावेगं रासभं गरुडोपमम् ॥ ७०
 यतो गतौ च तौ दैत्यौ तत्रैवानुचयौ शिवा ।
 सा ददर्श तदा पौण्ड्रं महिषं वै यमस्य च ॥ ७१
 सा तस्योत्पाटयामास विषाणं भुजगाकृतिम् ।
 तं प्रगृह्य करेणैव दानवाबन्धगाज्जवात् ॥ ७२
 तौ चापि भूमि संत्यज्य जग्मतुर्गगनं तदा ।
 वेगेनाभिसृता सा च रासभेन महेश्वरी ॥ ७३
 ततो ददर्श गरुडं पद्मेनेन्द्रं विषादिपुम् ।
 कर्कोटकं स दृष्ट्वैव ऊर्ध्वरोमा व्यजायत ॥ ७४
 भयान्मायाश्च गरुडो मांसपिण्डोपमो यभौ ।
 न्यपतंस्तस्य पत्राणि रौद्राणि हि पतत्रिणः ॥ ७५
 खगेन्द्रपत्राण्यादाय नागं कर्कोटकं तथा ।
 वेगेनानुसरद् देवी चण्डमृण्डौ भयातुरौ ॥ ७६
 संप्राप्तौ च तदा देव्या चण्डमृण्डौ महासुरौ ।

तब चण्डमारी गरुड के सदृश महावेगयुक्त गर्दभ
 पर सवार होकर वेग से बरगहीन उन दोनों के पीछे
 दौड़ी । (७०)

जहाँ वे दोनों दैत्य गये उनके पीछे शिवा भी वहाँ
 गई । उस समय उन्होंने यमराज के पीण्ड नामक महिष
 को देखा । (७१)

उन्होंने उस महिष के सर्पाकार शृङ्ख को खण्ड
 और उसे हाथ में लेकर वेगपूर्वक दानों के पीछे
 दौड़ी । (७२)

दोनों दैत्य भूमि छोड़कर आकाश में चले गये । तब
 महेश्वरी ने अपने गये के साथ वेगपूर्वक उन
 दोनों का पीछा किया । (७३)

(देवी ने) सर्पराज कर्कोटक को खाने की इच्छा पाके
 गरुड को देखा । (देवी को) देखते ही उनके रोंगटे
 खड़े हो गये । (७४)

चण्डमारी के भय से गरुड मांसपिण्ड के समान
 हो गया । उस पत्नी के भयङ्कर पर गिर गये । (७५)

खगेन्द्र की पालों तथा कर्कोटक सर्प को लेकर देवी
 भयानक चण्ड और मुण्ड के पीछे दौड़ी । (७६)
 तदनन्तर देवी चण्ड और मुण्ड नामक दोनों महानुरों
 के पास पहुँच गई एवं उन दोनों को कर्कोटक नाम से

बद्धौ कर्कोटकेनैव बद्ध्वा विन्ध्यमुपागमत् ॥ ७७
 निवेदयित्वा कौशिक्यै कौशमादाय भैरवम् ।
 शिरोमिर्दानवेन्द्राणां तार्क्ष्यपत्रैश्च शोभनैः ॥ ७८
 कृत्वा स्रजमनौपम्यां चण्डिकायै न्यवेदयत् ।
 धर्षरा च मृगेन्द्रस्य चर्मण, सा समारपयत् ॥ ७९
 स्रजमन्यैः खगेन्द्रस्य पत्रैर्मूर्ध्नि निनय्य च ।
 आत्मना सा पपौ पानं रुधिर दानवेभ्यपि ॥ ८०
 चण्डा त्वादाय चण्डं च मुण्डं चासुरनायरुम् ।
 चकार कुपिता दुर्गा विशिरस्कौ महासुरौ ॥ ८१
 तयोरेवाहिना देवी शेरखरं शुम्भरेवती ।
 कृत्वा जगाम कौशिक्या, सकाश मार्यया सह ॥ ८२
 समेत्य साप्रवीद् देवि गृह्णता शेरखरोत्तम ।
 ग्रथितो दैत्यशीर्षाभ्या नागराजेन वेष्टितः ॥ ८३
 त शेरखर शिवा गृह्य चण्डाया मूर्ध्नि विस्तृतम् ।
 वयन्य प्राह चैवैना कृत कर्म सुदारुणम् ॥ ८४

शेरखरं चण्डमुण्डाभ्यां यस्माद् धारयसे शुभम् ।
 तस्माद्धोके तव ख्यातिश्चासुण्डेति भविष्यति ॥ ८५
 इत्येवमुक्त्वा वचन त्रिनेत्रा
 सा चण्डमुण्डस्रजधारिणीं वै ।
 दिग्वाससं चाभ्यवदत् प्रतीता
 निपूदय खारिषलान्यमूनि ॥ ८६
 सा त्वेवमुक्त्वाऽथ विपाणकोट्या
 सुवेगद्युम्भतेन च रासभेन ।
 निपूदयन्ती रिपुमैन्यमुग्रं
 चचार चान्यानसुराश्रयाद् ॥ ८७
 ततोऽम्बिकायास्त्वय चर्ममुण्डया
 मार्यां च सिंहेन च भूतसंघैः ।
 निपात्यमाना दनुपुगवास्ते
 ककुच्चिन शुम्भमुपाश्रयन्त ॥ ८८

इति श्रीवामनपुराणे एकोनत्रिंशोऽध्याय ॥२९॥

बाँधकर तथा लेकर विन्ध्य पर्वत पर आयी । (७७)
 उसने देवी के पास उन दानवों को निवेदित करने के
 बाद भयङ्कर कोश लेकर दानवों के मस्तकों तथा गरुड के
 सुन्दर पत्रों से बनी अनुपम माला बनाकर देवी को दिया
 एषतिह चर्म का घाघरा देवी को अर्पित किया । (७८-७९)
 उन्होंने स्वयं गरुड के अन्यपदों से दूसरी माला बनाकर
 उसे अपने सिर में बाँध लिया और दानवों का रक्त
 पीने लगी । (८०)
 तदनन्तर प्रचण्ड दुर्गा ने चण्ड और असुरनायक
 मुण्ड को पकड़ लिया एवं क्रुद्ध होकर उन दोनों महाव्र
 असुरों का शिर काट डाला । (८१)
 शुम्भरेवती देवी सर्प द्वारा उन के मस्तक का शिरो
 भूषण बनाकर चण्डमारी के साथ कौशिकी के निकट
 गई । (८२)
 वहाँ जाकर उन्होंने कहा—हे देवि ! देवी के मस्तक
 से प्रथित एवं नागराज से वेष्टित इस उत्तम शिरोभूषण
 को ग्रहण करें । (८३)

शिवा देवी ने उस विस्तृत शिरोभूषण को लेकर
 चासुण्डा के सिर पर उसे बाँध दिया और वनसे
 ब्रह्मा—आपने अति भयङ्कर कार्य सम्पन्न किया
 है । (८४)
 क्योंकि आप ने चण्ड और मुण्ड के शिरों का शुभ
 शिरोभूषण धारण किया है अतः आप ससार में चासुण्डा
 नाम से विख्यात होंगी । (८५)
 चण्ड और मुण्ड की माला धारण करने वाली उन देवी से
 त्रिनेत्रा ने ऐसा कहकर दिग्भ्रता से ब्रह्मा—तुम अपने
 इन शत्रुसैन्यों का संहार करो । (८६)
 ऐसा ब्रह्म जाने पर अत्यन्त वेगयुक्त रासभ के
 साथ वह देवी विपाण के अग्र भाग द्वारा उग्रशत्रु
 सैन्य का संहार करती हुई घूमने एवं असुरों को
 खाने लगी । (८७)
 तदनन्तर अम्बिका के अनुयायियों, चर्ममुण्डा मार्या,
 सिंह एवं भूतगणों द्वारा मारे जा रहे वे श्रेष्ठ दानव अपने
 नायक शुम्भ की शरण में गये । (८८)

श्रीवामनपुराण में अन्तीतमोऽध्याय समाप्त ॥२९॥

पुलस्त्य उवाच ।

चण्डमण्डौ च निहतौ दृष्ट्वा सैन्यं च विद्वृतम् ।
समादिदेशातिमलं रक्तबीजं महासुरम् ।
अश्वीहिणीनां त्रिशङ्घिः कोटिभिः परिवारितम् ॥ १
तमापतन्तं दैत्यानां बलं दृष्ट्वैव चण्डिका ।
सुमोच सिंहनादं वै ताम्भ्यां सह महेश्वरी ॥ २
निनदन्त्यास्ततो देव्या ब्रह्मणी मुखतोऽभवत् ।
हंसयुक्तविमानस्था साक्षसूत्रकमण्डलुः ॥ ३
माहेश्वरी त्रिनेत्रा च दृषारूढा त्रिशूलिनी ।
महाह्वयलया रौद्रा जाता कण्डलिनी क्षणात् ॥ ४
कण्ठादय च कौमारी बर्हिपत्रा च शक्तिनी ।
समुद्भूता च देवपै मयूरवरवाहना ॥ ५
वाहुभ्यां गरुडारूढा शङ्खचक्रगदासिनी ।
शाङ्खाणधरा जाता वैष्णवी रूपशालिनी ॥ ६

महोग्रमुशला रौद्रा दंष्ट्रोच्छिखितभृतला ।
वाराही प्रप्लुतो जाता शेषनागोपरि स्थिता ॥ ७
वज्राङ्कुशोयतकरा नानालंकारभूषिता ।
जाता गजेन्द्रपृष्ठस्था माहेन्द्री स्तनमण्डलात् ॥ ८
चिक्षिपन्ती सटाक्षेपैर्ग्रहनक्षत्रतारकाः ।
नखिनी हृदयाज्जाता नारसिंही सुदारुणा ॥ ९
ताभिर्निपात्यमानं तु निरीक्ष्य बलमासुरम् ।
ननाद भूयो नादान् वै चण्डिका निर्भया रिपून् ।
तन्निनादं महच्छ्रुत्वा त्रैलोक्यप्रतिपूरकम् ॥ १०
समाजगाम देवेशः शूलपाणित्रिलोचनः ।
अभ्येत्य वन्द्य चैत्रैनां प्राह वाक्यं तदाऽम्बिके ॥ ११
समायातोऽस्मि वै दुर्गे देह्याज्ञां किं करोमि ते ।
तदाक्यसमकालं च देव्या देहोद्भवा शिवा ॥ १२
जाता सा चाह देवेशं गन्ध दौत्येन शंकर ।

३०

पुलस्त्य ने कहा—चण्ड-मुण्ड को मरा हुआ और सैनिकों को पलायित देखकर शुम्भ ने अत्यधिक बलवान् महासुर रक्तबीज को आदेश दिया । तीस करोड़ अश्वीहिणी सेना से युक्त दैत्यों की उस सेना को आती हुई देवस्वर महेश्वरी चण्डिका ने उन दोनों देवियों के साथ सिंहनाद किया। (१-२) इसके बाद सिद्धानाद करती हुई देवी के मुख से हंस-युक्त विमान पर बैठी हुई तथा अक्षमाला और कमण्डलु से युक्त ब्रह्मणी उत्पन्न हुई तथा तीन नेत्रोंवाली, घृष पर आरूढ़, त्रिशूल को धारण करने वाली, महासूर्य के रगन से युक्त बुधरधारिणी माहेश्वरी भी उसी क्षण उत्पन्न हुई। (३-४) हे देवपै! देवी के कण्ठ से मोरपंख से अलङ्कृत, शक्ति धारिणी एवं मयूर के श्रेष्ठ वाहन पर आरूढ़ कौमारी उत्पन्न हुई। (५) देवी की दोनों भुजाओं से गरुड़ पर सवार, शंख, चक्र, गदा, तलवार एवं धनुष बाण धारण करने वाली रूप धरती वैष्णवी शक्ति उत्पन्न हुई। (६)

देवी के पीठ से महाभयङ्कर मुशल से युक्त, दाढ़ों से पृथ्वी को लोदने वाली शेषनाग के ऊपर आरूढ़ वाराही शक्ति उत्पन्न हुई। (७)

हाथ में वज्र और अङ्कुरा को लिये, अनेक प्रकार के आभूषणों से विभूषित गजराज की पीठ पर बैठी हुई माहेन्द्री शक्ति स्तनमण्डल से उत्पन्न हुई। (८)

अयाल के हिलाने से प्रह, नक्षत्र और ताराओं को विक्षिप्त करती हुई नखोंवाली अत्यन्त भयंकर नारसिंही-शक्ति देवी के हृदय से उत्पन्न हुई। (९)

उन शक्तियों द्वारा मारी जाती हुई असुर-सेना एवं शत्रुओं को देतकर चण्डिका ने घोर गर्जन किया । तीनों लोकों को पूरित करने वाले उस गर्जन को सुनकर शूलपाणि, त्रिलोचन महादेव देवी के समीप आए और उनको प्रणाम कर यह कहा—‘हे अम्बिके! हे दुर्गे! मैं आ गया हूँ । मैं तुम्हारा क्या कार्य करूँ? मुझे आज्ञा दो । उस वाक्य के साथ ही देवी के वैद्य से शिवा उत्पन्न हुई । उन्होंने देवेश्वर से कहा, ‘हे शङ्कर!

श्रुहि शुम्भं निशुम्भं च यदि जीवितुमिच्छथ ॥ १३
 तद् गच्छध्वं दुराचाराः सप्तमं हि रसातलम् ।
 वासवो लभतां स्वर्गं देवाः सन्तु गतव्यथाः ॥ १४
 यन्नन्तु ब्राह्मणाद्यामी वर्णा यज्ञांश्च साम्प्रतम् ।
 नोचेद् बलाबलेपेन भवन्तो योद्धुमिच्छथ ॥ १५
 तदागच्छध्वमव्यग्रा एषाऽहं विनिपूदये ।
 यतस्तु सा शिवं दैत्ये न्ययोजयत नारद ॥ १६
 ततो नाम महादेव्याः शिववृतीत्यजायत ।
 ते चापि शंकरवचः श्रुत्या गर्वसमन्वितम् ॥
 हुंकृत्वाऽभ्यग्नवन् सर्वे यत्र कात्यायनी स्थिता ॥ १७
 ततः शरैः शक्तिभिरङ्कुर्वन् शरैः
 परश्वधैः शूलशुण्डिपट्टिशैः ।
 ग्रामैः सुतीक्ष्णैः परिधैश्च विम्वृत-
 र्ववर्षतुदैत्यवरी सुरेश्वरीम् ॥ १८
 सा चापि शार्णवैर्कर्कामुक्च्युतैश्च
 चिच्छेद शस्त्राण्यथ बाहुभिः सह ।

आप दूत बनर जाइये और शुम्भ-निशुम्भ से कहिए कि हे दुराचारियो ! यदि तुम लोग जीना चाहते हो, तो सातवें रसातल लोक में चले जाओ। इन्द्र को स्वर्ग की प्राप्ति हो एवं देवगण व्यथा रहिन हो जाँव। (१०-१४) वे ब्राह्मण आदि वर्ण उचित रीति से यज्ञ करें। अन्यथा यदि तुम लोग बल के धमण्ड से युद्ध करना चाहते हो—तो आ जाओ। यह मैं वचन न होती हुईं तुम लोगों का संहार करूँगी। हे नारद ! क्योंकि उन्होंने शिव को दूत बनाया अतः महादेवी का नाम शिवदूती हुआ। वे सारे असुर भी शङ्कर के गर्वशुक वचन को सुनकर हँकार करने हुए जहाँ कात्यायनी स्थित थीं वहाँ दीड़े। (१५-१७) तदनन्तर दोनों असुर सुरेश्वरी के ऊपर बाण, शक्ति, अंकुश, श्रेष्ठ कुटार, शूल, सुशुण्डी, पट्टिश, तीक्ष्ण प्रास और विशाल परिघ आदि व्याघ्रों की वर्षा करने लगे। (१८) संभाम में प्रबण्ड विक्रमशालिनी उल महेश्वरी ने भी

जघान चान्यान् रणचण्डविक्रमा
 महासुरान् वाणशतैर्महेश्वरी ॥ १९
 मारी त्रिशूलेन जघान चान्यान्
 रघ्ट्वाङ्गपातैरपरांश्च कौशिकी ।
 महानलक्षैपहतप्रभावान्
 भ्राज्जी तथान्यान्सुरांश्चकार ॥ २०
 माहेश्वरी शूलविदारितोरसश्च
 चक्रार दग्धानपरांश्च वैष्णवी ।
 श्वत्स्या कुमारी कुलिशेन चैन्द्री
 तुण्डेन चक्रेण वराहरूपिणी ॥ २१
 नरैर्विभिन्नानपि नारसिंही
 अट्टाट्टाहार्मरपि रुद्रदूती ।
 रुद्रशिशूलेन तथैव चान्यान्
 विनायकश्चापि परश्वधेन ॥ २२
 एवं हि देव्या विविधैस्तु रूप-
 निपात्यमाना दनुपुंगवास्ते ।

श्रेष्ठ धनुष से निकले बाणों द्वारा असुरों के शस्त्रों को डबरी बाटुओं सहित काट दिया एवं सैकड़ों बाणों से अन्य असुरों को मार डाला। (१९) मारी ने त्रिशूल से अनेकों को मारा, कौशिकी ने रघ्ट्वाङ्ग के प्रहार से वहुतों का वध किया तथा ब्राह्मी ने जल के प्रक्षेप से दूसरे अनेक असुरों को हतप्रभ कर दिया। (२०) माहेश्वरी ने शूल से बहुत से असुरों का वधस्थलविदीर्घ किया। वैष्णवी ने बहुतों को जला डाला। कुमारी ने शक्ति से, ऐन्द्री ने चक्र से, वाराही ने मुट तथा चक्र से असुरों का संहार किया। (२१) नारसिंही ने नलों के प्रहार से दैत्यों को विदीर्घ किया, शिवदूती ने अट्टाहास से, रुद्र ने त्रिशूल से एवं विनायक ने फरसे के प्रहार से अन्य असुरों नष्ट किया। (२२) इस प्रकार देवी के अनेक रूपों द्वारा मारे जाते हुए

पेतुः पृथिव्यां सुवि पापि भूतै-
 स्ने भक्ष्यमानाः प्रलयं प्रवृत्तः ॥ २३

ने पच्यमानान्तरय द्रेषताभि-
 मीहामुसा मातृमिराहुलाद्य ।
 निवृत्तवेप्राश्वरयेधपा भवात्
 ने रक्षतरीजं शरणं हि त्रयम् ॥ २४

म रक्षतरीजः महामाम्युपेत्य
 पराम्प्रमादाय च मातृमण्डलम् ।
 रिद्रायदन् भृगवान् ममन्त ह
 विनेय सोपात् स्फुरितापरथ ॥ २५

तमापतन्तं प्रमर्माक्ष्य मातरः
 शयैः निजाप्रैदित्तं वरपुं ।
 यो रक्षानिन्दुर्न्यपत्त्वं पृथिव्यां
 म त्प्रमानान्तरपुरोऽपि जगो ॥ २६

ताम्प्रदाधर्यमयं निरीक्ष्य
 गा कीर्तिहं केतिनिमम्पुयाच ।
 पित्रर पन्दे रधिरं हराने-

वितत्य वक्ष्यं चढवानलामम् ॥ २७
 सा त्वेवमुक्त्वा वरदाश्रमिका हि
 वितत्य वक्षं विरुरान्ममम् ।
 ओष्ठं नभम्पृक् प्रथिवीं सृशन्तं
 कृत्वाऽधरं तिष्ठति चर्ममुग्डा ॥ २८

ततोऽश्रमिका केन्द्रनिर्मुपातुलं
 कृत्वा रिपुं प्राधिपत स्ववक्ष्ये ।
 विभेद् शूत्रेण तथाऽप्युरलः
 धृतोऽत्रवान्ये न्यपतथ वक्ष्ये ॥ २९

तन्म शोषं प्रजगाम रक्षतं
 रक्षतय्ये हीनयलो यभूय ।
 सं हीनरीयं शतथा चकार
 चर्येण चार्माकरभूषितेन ॥ ३०

तन्मिन्न विशम्ने द्युर्गन्धनाथे
 ने दानया हीनतरं विनेद्दुः ।
 हा ताव हा भ्रातरिति भ्रुयन्तः
 क नामि तिष्ठस्य मुर्षामिहि ॥ ३१

दानव हृष्यं पर गिरिने मने । हृष्यो पर (गिरि हृष्य) इन
 दानवो को भूषण्य क्कार म् करेने मने । (२३)

देवताभी द्वारा एवं मातृमण्डलो मे माते जा रहे एवं
 कदाचु विने मने मे मदी महागुर मुने केतो की भय मे
 कायत मेयो मे मुत्र हो क्कार कीच की करत मे मने । (२४)

येच मे अपरा को वक्ष्यदाने हृष्य क्कार कीच केच
 यरी को करर कृत्वा करिष्य कृत्वा एवं भूषण्यो को
 इना करर क्कार हृष्य क्कार करर मे प्रविष्ट कृत्वा । (२५)

वक्ष्ये मने हृष्य देवता क्कार मण्डलो मे वम अगुर
 पर काये मीच कृती को कर्मा कः । (वर्मा देर मे)
 म क्कार को देर हृष्यं पर गिरि को कर्मा क्कार ही
 क्कार अगुर क्कार हो क्कार का । (२६)

कृत्वा म वम विचर क्कार को देवता कीर्तियो मे
 कीर्तियो मे कर्मा-दे कर्मादे । कर्मा मे कर्मा

अपने मुत्र को क्कार कर क्कार वा कर्मा यी क्कारो । (२३)

देवा क्कारे पर कर्मादिनी कर्माका मे अपना विचरत
 क्कार मुत्र कर्मा । कर्मा ओष्ठ मे कर्माका का एवं कर्मा
 मे हृष्यं का क्कार कर्मा हृष्य कर्माकृता गिरि हृष्य । (२८)

कृत्वाकाम कर्माका मे क्कार को क्कार कर्मा मे क्कार क्कार
 क्कार मने मुत्र मे कर्मा कर कर्मा क्कारो मे क्कार का
 करर कर्मा क्कार कर्मा मे कर्मा होने का क्कार कर्मा
 की कर्मा मुत्र मे ही गिरि । (२९)

कर्माकाम कर्माका क्कार क्कार कर्मा और कर्माकाम मे
 क्कार कर्मा हो कर्मा । कीर्तियो होने पर कर्मा कर्मा मे कर्मा
 कर्मा कर्मा मे ही कर्मा मे कर्मा कर्मा । (३०)

कर्मा कर्मा कर्माकाम के माते कर्मा पर के मदी कर्मा
 कर्मा ! कर्मा ! कर्मा ! कर्मा ! कर्मा ! कर्मा ! कर्मा !
 कर्मा कर्मा । कर्मा कर्मा कर्मा कर्मा कर्मा कर्मा । (३१)

तवाऽपरे विदुलितकेशपाशा
 विशीर्णवर्माभरणा दिग्म्बराः ।
 निपातिता धरणितले मृडान्या
 प्रदुदुर्गारिवरमृदा दैत्याः ॥ ३२
 विशीर्णवर्मायुधभूषणं तन्
 चलं निरीक्ष्यैव हि दानवेन्द्रः ।
 विशीर्णचक्राधरयो निशुम्भः
 क्रोधान्मृदानां सष्टपाजगाम ॥ ३३
 खड्गं समादाय च चर्म भास्वरं
 धुन्वन् शिरः प्रेक्ष्य च रूपमस्याः ।
 संस्तम्भमोहज्वरपीडितोऽथ
 चित्रे यथाऽसौ लिखितो घभूव ॥ ३४
 तं स्तम्भितं वीक्ष्य सुरारिमघ्रे
 प्रोवाच देवी वचनं विहस्य ।
 अनेन वीर्येण सुरास्त्वया जित्वा
 अनेन मां प्रार्थयसे वलेन ॥ ३५

मृदानी ने अस्त-व्यस्त केशपाश और छिन्न-भिन्न कवच वाले अनेक नग्न दैत्यों को पृथ्वी पर पटक दिया । वे दैत्य पर्वत-श्रेष्ठ को छोड़कर भाग गए । (३२)

टूटे कवच, आयुधों एवं आभूषणों से युक्त अपनी सेना को देखकर टूटे चक्र एवं घुरी वाले रथ पर आरूढ़ दानवेन्द्र निशुम्भ घोषपूर्वक मृदानी के निकट गया । (३३)

तटवार और चमकती हुई ढाल लेकर सिर हिलते हुए वह देवी का रूप देखकर मोहज्वर से पीडित हो चित्र लिखित की भाँति स्तम्भित हो गया । (३४)

उस स्तम्भित देवशत्रु को सामने देखकर देवी ने हँसते हुए यह वचन कहा—क्या इसी पराक्रम से तुमने देवताओं को जीता है ? तथा क्या इसी बल से मुझ को (पत्नीरूप में) पाने के लिए प्रार्थना करते हो ? (३५)

श्रुत्वा तु वाक्यं कौशिक्या दानवः सुचिरादिव ।
 प्रोवाच चिन्तयित्वाऽथ वचनं वदतां वरः ॥ ३६
 सुकुमारशरीरोऽयं मञ्जुस्त्रपतनादपि ।
 शतधा वास्यते भीरु आमपात्रमिवाम्भसि ॥ ३७
 एतद् विचिन्तयन्नर्थं त्वां प्रहृत्तुं न सुन्दरि ।
 करोमि बुद्धिं तस्मात् त्वं मां भजस्वायतेक्षणे ॥ ३८
 मम रङ्गनिपातं हि नेन्द्रो धारयितुं क्षमः ।
 निवर्त्तय मां युद्धाद् भार्या मे भव साम्प्रतम् ॥ ३९
 इत्थं निशुम्भवचनं श्रुत्वा योगीश्वरी मुने ।
 विहस्य भावगम्भीरं निशुम्भं वाक्प्रमथवीत् ॥ ४०
 नाजिताऽहं रणे वीर भवे भार्या हि कस्यचित् ।
 भवान् यदिह भार्याधी ततो मां जय संयुगे ॥ ४१
 इत्येवमुक्ते वचने रङ्गमुद्यम्य दानवः ।
 प्रचिक्षेप तदा वेगात् कौशिकीं प्रति नारद ॥ ४२

कौशिकी की बात सुनने के उपरान्त देव तक सोचकर वक्ताओं में श्रेष्ठ यह दानव यह वचन बोला—(३६) हे भीरु ! यह तुम्हारा अत्यन्त सुकुमार शरीर मेरे शत्रुओं के प्रहार से जल में डूबे बतन की भाँति सैकड़ों टुकड़ों में विभक्त हो जायगा । (३७)

हे सुन्दरी ! यह सोच कर मैं तुम्हारे ऊपर प्रहार करने का विचार नहीं कर रहा हूँ । अतः हे पिशाचाक्षी ! तुम मुझे स्वीकार कर लो । (३८)

मेरे खड्ग के प्रहार को इन्द्र भी नहीं सहन कर सकते । तुम युद्ध की बुद्धि छोड़ दो एवं अब मेरी पत्नी बन जाओ । (३९)

हे मुनि ! योगीश्वरी ने निशुम्भ की यह बात सुन कर हँसते हुए उस से अर्थयुक्त वचन कहा— (४०)

हे वीर ! सवाम में बिना पराजित हुये मैं किसी की भार्या नहीं बन सकती, यदि तुम मुझे स्त्री बनाना चाहते हो तो मुझे मे गुहं पराजित करो । (४१)

हे नारद ! यह बात कहे जाने पर इस दानव ने रङ्ग बठा कर कौशिकी की ओर वेग से चलाया । (४२)

तमापतन्तं निस्त्रिंशं पट्टिर्भर्हिणराजितैः ।
 चिच्छेद चर्मणा सार्द्धं तदद्भुतविभाववत् ॥ ४३
 खड्गे सचर्मणि छिन्ने गदां शृङ्ख महासुरः ।
 समाद्रवद् कोशभवां वायुवेगसमो जवे ॥ ४४
 तस्यापतत् एवाशु करौ श्लिष्टौ समौ दृढौ ।
 गदया सह चिच्छेद क्षुरग्रेण रणेऽम्बिका ॥ ४५
 तस्मिन्निपतिते रौद्रे सुरशत्रौ भयंकरे ।
 चण्डाद्या मातरो हृष्टाश्चक्रुः क्लिकिलाध्वनिम् ॥ ४६
 गगनस्थास्ततो देवाः शतक्रतुपुरोगमाः ।
 जयस्य विजयेत्युचुर्हृष्टाः शत्रौ निपातिते ॥ ४७
 ततस्तूर्याण्यवाद्यन्त भूतमंत्रैः समन्ततः ।
 पुष्पघृष्टिं च मृगुचुः सुराः कात्यायनीं प्रति ॥ ४८
 निशुम्भं पतितं दृष्ट्वा शुम्भः क्रोधान्महाद्युने ।
 चन्दारकं समास्त्र पाशपाणिः समभ्यगात् ॥ ४९
 तमापतन्तं दृष्ट्वाऽथ सगजं दानवेश्वरम् ।
 अग्राह चतुरो बाणांश्चन्द्रार्धोकारवर्चसः ॥ ५०

ढाल के साथ अपनी ओर आती हुई उस तलवार को देवी ने मयूरचक्र से सुशोभित छः बाणों से काट दिया । वह (हरय) बड़ा ही अद्भुत हुआ । (४३)

ढाल के सहित तलवार के फट जाने पर वह महान् असुर गदा लेकर वायु के समान वेग से कौशिकी पर झपटा । (४४) अम्बिका ने युद्ध में आक्रमण करने वाले उस असुर की गदा सहित सुगठित एवं दृढ़ भुजाओं को क्षुरग्र (बाणों) से तलवार काट डाला । (४५)

उस अति भयंकर देवशत्रु के गिरने पर चण्डी आदि मातृदेवों प्रसन्न होकर क्लिष्टगरी करने लगीं । (४६) तदनन्तर आकाश में स्थित इंद्रादि देवगण शत्रु के गिर जाने पर प्रसन्न होते हुए बोले हे विजये ! तुम्हारी जय हो । (४७)

गणपतन्तार शत्रों और भूतगण भेरी बजाने लगे और देवगण कात्यायनी के ऊपर पुष्पघृष्टि करने लगे । (४८) हे महाशक्ति ! निशुम्भ को गिरा हुआ देखकर शुम्भ मोघ से हाथ में पाश लिये हाथी पर चढ़कर आया । (४९) गजारूढ़ दानवेश्वर को आपने देख (देवी ने) चमकने हुए अर्धचन्द्राकार चार बाणों को प्रहण किया । (५०)

क्षुरग्राभ्यां समं पादौ द्वौ चिच्छेद द्विपस्य सा ।।
 द्वाभ्यां कुम्भे जघानापहसन्तीलीलयाऽम्बिका ॥ ५१
 निकृचाभ्यां गजः पद्भ्यां निपपात यथेच्छया ।
 शक्रवज्रसमाक्रान्तं शैलराजशिशरो यथा ॥ ५२
 तस्यावर्जितनागस्य शुम्भस्थाप्युत्पतित्यवतः ।
 शिरश्चिच्छेद बाणेन कुण्डलालंकृत शिवा ॥ ५३
 छिन्ने शिरसि दैत्येन्द्रो निपपात सकुञ्जरः ।
 यथा समहिपः क्रौञ्चो महासेनसमाहतः ॥ ५४
 श्रुत्वा सुराः सुररिपू निहतौ मृडान्या
 सेन्द्राः ससूर्यमरुदधिवसुप्रधानाः ।
 आगत्य तं गिरिवरं विनवावनत्रा
 देव्यास्तदा स्तुतिपदं त्विदमीरयन्तः ॥ ५५
 देवा ऊचुः ।
 नमोऽस्तु ते भगवति पापनाशिनि
 नमोऽस्तु ते सुररिपुदर्पशातनि ।
 नमोऽस्तु ते हरिहरराज्यदायिनि

उस अम्बिका ने लीलापूर्वक हँसते हुए दो तीक्ष्ण बाणों से उस हाथी के दो पैरों को काट दिया एवं दो बाणों से उसके कुम्भस्थल पर प्रहार किया । (५१)

दोनों पैरों के कट जाने पर वह हाथी इन्द्र के वज्र से आहत शैलराज के शिशुर की भाँति अपने आप ही गिर पड़ा । (५२)

शिवा ने मारे गए हाथी पर से उठलने वाले शुम्भ का कुण्डलभूषित शिर बाण से काट दिया । (५३)

शिर कट जाने पर दैत्येन्द्र हाथी सहित इस प्रकार गिर पड़ा जैसे महासेन कातिकेय द्वारा आहत क्रौञ्च महिप के साथ गिरा था । (५४)

मृडानी द्वारा दोनों देवशत्रुओं का मारा जाना सुन कर इंद्रसहित सूर्य, मरु, अश्विनीकुमार एवं वसुगण इत्यादि देवता उस श्रेष्ठ पर्वत पर आए एवं विनयपूर्वक देवी की इस प्रहार स्तुति करने लगे । (५५)

देवताओं ने कहा—हे भगवति ! हे पापनाशिनि ! आप को नमस्कार है । हे सुरशत्रुओं के दर्प का संहार करने वाली ! आप को नमस्कार है । हे विष्णु और शंकर को राज्य देने वाली ! आप को नमस्कार है । हे यत्नमोघा

नमोऽस्तु ते मण्डलनकार्यकारिणि ॥ ५६
 नमोऽस्तु ते त्रिदशरिपुत्रयंकरि
 नमोऽस्तु ते शतमखपादपूजिते ।
 नमोऽस्तु ते महिषविनाशकारिणि
 नमोऽस्तु ते हरिहरभास्करस्तुते ॥ ५७
 नमोऽस्तु तेऽष्टादशगह्वशालिनि
 नमोऽस्तु ते घुम्भनिघुम्भवातिनि ।
 नमोऽस्तु लोकातिहरे त्रिशूलिनि
 नमोऽस्तु नारायणि चक्रधारिणि ॥ ५८
 नमोऽस्तु वाराहि सदा धराधरे
 त्वा नारसिंहि प्रणता नमोऽस्तु ते ।
 नमोऽस्तु ते वज्रधरे गनध्वजे
 नमोऽस्तु कौमारि मयूरवाहिनि ॥ ५९
 नमोऽस्तु पैतामहहंसगह्वने
 नमोऽस्तु मालाविक्रंटे सुकेशिनि ।
 नमोऽस्तु ते रासभयद्रुवाहिनि

देवों का कार्य करने वाली । आपको नमस्कार है । (५६)
 हे देवशत्रुविनाशिनी ! आपको नमस्कार है । हे इन्द्र
 द्वारा पूजित चरणों वाली ! आप को नमस्कार है । हे
 महिषासुर विनाशिनी ! आप को नमस्कार है । हे विष्णु,
 शंकर एवं सूर्य से स्तुति की जाने वाली ! आपको नमस्कार
 है । (५७)

हे अष्टादश भुजाओंवाली ! आप को नमस्कार
 है । हे घुम्भनिघुम्भ का वध करने वाली ! आप को
 नमस्कार है । हे लोभों का दुष्ट हरण करने वाली !
 हे त्रिशूलधारिणी ! आप को नमस्कार है । हे चक्रधारिणि
 नारायणि ! आपको नमस्कार है । (५८)

हे वाराहि ! हे धरा को सदा धारण करने वाली !
 आप को नमस्कार है । हे नारसिंह ! आप को हम प्रणत
 हैं, आपको नमस्कार है । हे वज्रधारिणि ! हे गजध्वजे !
 आप को नमस्कार है । हे कौमारि ! हे मयूरवाहिनि !
 आप को नमस्कार है । (५९)

हे ब्रह्मा के हंस पर बैठने वाली ! आप को नमस्कार
 है । हे विष्णुमाला धारण करने वाली ! हे सुन्दर केशों
 वाली ! आप को नमस्कार है । हे गर्दभ की पीठ पर बैठने
 वाली ! आप को नमस्कार है । हे समस्त कलेशों का नाश

नमोऽस्तु सर्गातिहरे जगन्मये ॥ ६०
 नमोऽस्तु त्रिधेश्वरि पाहि विश्व
 निपूदयारीन् द्वित्रिवेदानाम् ।
 नमोऽस्तु ते सर्वमयि त्रिनेत्रे
 नमो नमस्ते वरदे प्रसीद ॥ ६१
 प्रह्लाणीत्व मृदानी वरशिखिगमना शक्तिहस्ता कुमारी
 वाराही त्वं सुप्रकृता स्वगपतिगमना वैष्णवी त्वं सशङ्कणी ।
 दुर्दृश्या नारसिंही घुरघुरितरवा त्वं तथैन्द्री सवञ्चा
 त्वमारी चर्मसुण्डा श्वगमनरत्ना योगिनी योगसिद्धा ॥ ६२
 नमस्ते त्रिनेत्रे भगवति तत्रचरणानुपिता ये
 अहरहर्निनवशिरसोऽननता ।
 नहि नहि परिभयमस्त्यशुभ च
 स्तुतिशक्तिमुमकरा, मतत ये ॥ ६३
 एव स्तुता सुरर्षे, सुरशत्रुनाशिनी
 प्राह प्रहस्य सुरसिद्धमहर्षिचर्यान् ।
 प्राप्तो मयाऽद्भुततमो भवता प्रसादात्

करने वाली । हे जगन्मये ! आप को नमस्कार है । (६०)
 हे त्रिधेश्वरि ! आप को नमस्कार है । आप विश्व की रक्षा
 करें तथा ब्राह्मणों और देवताओं के शत्रुओं का संहार करें ।
 हे त्रिनेत्रे ! हे सर्वमयि ! आपको नमस्कार है । हे वरदे !
 आपको बारम्बार नमस्कार है । आप प्रसन्न हों । (६१)

“प्रह्लाणी और मृदानी आप ही हैं । आप ही सुन्दर
 मयूर पर चढ़ने वाली और हाथ में शक्ति धारण करने वाली
 कुमारी हैं । सुन्दर सुस्वगली वाराही आप ही हैं तथा
 गरुड से चढ़ने वाली, शङ्ख धनुष धारण करने वाली
 वैष्णवी आप ही हैं । घुर घुर शब्द करने वाली, देखने में
 भयंकर नारसिंही आप ही हैं । आप ही वज्रधारिणी ऐन्द्री
 एवं महाभारी चर्मसुण्डा हैं, श्व पर चढ़ने वाली तथा
 योगसिद्धा योगिनी भी आप ही हैं । (६२)

हे तीन नेत्रोंवाली भगवति ! आप को नमस्कार है ।
 आप के चरणों का आश्रय कर तत्रता से प्रतिदिन अपना
 शिर झुकाने वाली तथा बलि एवं पूज्यों को हाथ में लिये
 सर्वदा आपकी स्तुति करने वालों का कोई परिभय और
 अमङ्गल नहीं होता । (६३)

देवकेतों के इस प्रकार स्तुति करने पर सुरशत्रुओं का
 संहार करने वाला देवी ने देवताओं, सिद्धों तथा श्रेष्ठ

संग्राममूर्ध्नि सुरशत्रुजयः प्रमदात् ॥ ६४
इमां स्तुतिं भक्तिपरा नरोत्तमा
भवद्भिरुक्तामनुकीर्त्तयन्ति ।
दुःस्वप्ननाशो भविता न संशयो
वरस्तथान्यो त्रियतामभीप्सितः ॥ ६५

देवा ऊचुः ।

यदि वरदा भवती त्रिदशानां
द्विजशिशुगोषु यतस्व हिताय ।
पुनरपि देवरिपूनपरांस्त्वं
प्रदह हुताशनतुल्यशरीरे ॥ ६६

देवबुवाच ।

भूयो भविष्याम्यसगुक्षितानना
हराननस्वेदजलोद्भवा सुराः ।

अन्धासुरस्याप्रतिषोषणे रता
नाम्ना प्रसिद्धा सुवनेषु चर्चिका ॥ ६७
भूयो वधिष्यामि सुरारिसूतमं
सभूय नन्दस्य गृहे यशोदया ।
तं विप्रचित्तिं लवणं तथाऽपरौ

महर्षियों से हैंसर कहा—आप लोगों के अनुग्रह से मैंने
संभाम मे (शत्रु का) मर्दन कर देवशत्रुओं पर अत्यन्त
बहुत विजय प्राप्त की है । (६४)

आप लोगों से कही गई इस स्तुति को पढ़ने वाले
भक्तिपरायण श्रेष्ठ मनुष्यों के दुःस्वप्नों का निःसन्देह नाश
होगा । आप लोग अन्य अभिलषित वर माँगे । (६५)

देवताओं ने कहा—यदि आप देवताओं को वर देना
चाहती हैं तो प्राङ्गणों, घाँस और गीओं के हित के लिए
यत्न कीजिये । हे पात्रक के समान शरीरवाली । अन्य देव-
शत्रुओं को आप पुनः (भविष्य मे) भस्म करें । (६६)

देवी ने कहा—हे देवो ! पुनः शत्रु के मुख के स्वेदजल
से उत्पन्न होकर रक्त से रजित सुतपाठी होकर संसार में
परिचया नामसे प्रसिद्ध मैं अन्धासुर का वध करूँगी । (६७)

पुनः नन्द के घर मे यशोदा से उत्पन्न होकर मैं
प्रथम सुर शत्रु का वध करूँगी । यहाँ अवगार लेकर दौनों के
प्रहार से मैं विप्रचित्ति, लवणामुर एवं अन्य शुम्भ नियुम्भ

शुम्भं निशुम्भं दशनप्रहारिणी ॥ ६८

भूयः सुरास्तिष्यपुगे निराश्विनो
निरीक्ष्य मारी च गृहे शक्तोः ।

संभूय देव्याऽमितसत्यधामया
सुरा भरिष्यामि च शाकम्भरी वै ॥ ६९

भूयो विपक्षक्षपणाय देवा
विन्ध्ये भविष्याम्यृषिरक्षणार्थम् ।

दुर्द्युत्तचेष्टान् विनिहत्य दैत्यान्
भूयः समेष्यामि सुरालयं हि ॥ ७०

यदाऽरुणाक्षो भविता महासुरः
तदा भविष्यामि हिताय देवताः ।

महालिरूपेण विनष्टजीवितं
कृत्वा समेष्यामि पुनस्त्रिविष्टपम् ॥ ७१

इत्येवमुक्त्वा वरदा सुराणां
कृत्वा प्रणामं द्विजपुंगवानाम् ।

विसृज्य भूतानि जगाम देवी
सं सिद्धसंघैरनुगम्यमाना ॥ ७२

दानवों का संहार करूँगी । (६८)

हे देवताओ ! कलियुग में भोजन न मिलने से उत्पन्न
होने वाली मारी को देखकर मैं पुनः अमितसत्यधामा
देवी के साथ इन्द्र के घर शाकम्भरी के रूप मे प्रकट होकर
भरण करूँगी । (६९)

हे देवताओ ! पुनः मैं शत्रुओं के संहार तथा ऋषियों
की रक्षा के लिये विन्ध्याचल में उत्पन्न होऊँगी । हे देवो !
यहाँ दुराचारी दैत्यों का नाश करने के उपरान्त पुनः स्वर्ग
चली जाऊँगी । (७०)

हे देवताओ ! अरुणाक्ष नामक महासुर के उत्पन्न
होने पर महाभ्रमर के रूप से पुनः उत्पन्न होऊँगी एवं
उसका वध कर पुनः स्वर्ग चली जाऊँगी । (७१)

पुत्रस्य मे कहा—ऐसा पढ़ने के उपरान्त द्विजपरी को
प्रणाम कर एवं अन्य प्राणियों को बिनाश देवों को वर
देनेवाली देवी सिद्धों सहित आश्रम में चली गई । (७२)

इदं पुराणं परमं पवित्रं
देव्या जयं मङ्गलदायि पुंसां ।

श्रोतव्यमेतन्निघ्नैः सदैव
रक्षोभमेतद्भगवानुवाच ॥ ७३

इति श्रीभामनपुराणे त्रिंशोऽध्याय ॥३॥

३१

नारद उवाच ।

कथं तमहिषः त्रीञ्जो भिन्नः स्मन्देन मुग्रत ।
एतन्मे विस्तराद् भ्रष्टन् कथयस्वामितयुते ॥ १

पुनश्च उवाच ।

मृणुष्य कथयिष्यामि कथां पुण्यां पुरातनीम् ।
यशोवृद्धिं कृमारम्य वार्षिकेयस्य नारद ॥ २
यत्तत्पीत हुताशेन स्यञ्च शुभ्रं पिनाग्निः ।
तेनाक्रान्तोऽभवद् भ्रष्टन् मन्दतेजा हुताशन ॥ ३
सतो जगाम देवानां मरुतमभितपुति ।

तथापि प्रहितस्त्रुणं ब्रह्मलोकं जगाम ह ॥ ४
स गच्छन् कृटिलां देवीं ददर्श पयि पायकः ।
तं दृष्ट्वा प्राह कृटिले तेन एतस्सुदुर्जरम् ॥ ५
महेश्वरेण संत्यक्तं निर्देहेद्भुवनान्यपि ।
तस्मान् प्रतीच्छ पुत्रोऽयं तत्र धन्यो भविष्यति ॥ ६
इत्यग्निना मा कृटिना स्मृत्या स्मृतमुच्यते ।
प्रतिपश्चाम्ममि मम प्राह वृद्धि महापगा ॥ ७
तत्रस्त्रुणपारपदेवी शायं तेनस्त्रुणपुत्रम् ।

यद् प्राचीन, परम पवित्र, मनुष्यों को मङ्गल देने वाली
देवी की विषयकथा संवाचित मनुष्यों को सदा सुखी

प्राहिये । भगवान् ने इमे रक्षोघ्न कहा है । (७३)

श्रीभामनपुराण में तीसरा अध्याय समाप्त ॥ ३० ॥

हुताशनेऽपि भगवान् कामचारी परिभ्रमन् ॥ ८
 पञ्चवर्षसहस्राणि धृतवान् हृद्यभुक् ततः ।
 मांसमस्वीनि रुधिरं मेदोन्वरेवसी त्वचः ॥ ९
 रोमश्मद्रक्षिकेशाद्याः सर्वे जाता हिरण्मयाः ।
 हिरण्यरेता लोकेषु तेन गीतश्च पावकः ॥ १०
 पञ्चवर्षसहस्राणि कुटिला ज्वलनोपमम् ।
 धारयन्ती तदा गर्भं ब्रह्मणः स्थानमागता ॥ ११
 तां दृष्टवान् पद्मजन्मा संतप्यन्तीं महापगाम् ।
 दृष्ट्वा पप्रच्छ केनायं तव गर्भः समाहितः ॥ १२
 सा चाह शाङ्करं यत्तच्छुक्रं पीतं हि वक्षिना ।
 उदश्रवतेन तेनाद्य निश्चिंमं मयि सत्तम ॥ १३
 पञ्चवर्षसहस्राणि धारयन्त्याः पितामह ।
 गर्भस्य पचते कालो न पपात च फर्हिचित् ॥ १४
 तच्छ्रुत्वा भगवानाह गच्छ त्वमुदयं गिरिम् ।
 तत्रास्ति योजनशतं रौद्रं शरवणं महत् ॥ १५

घरने लगी। भगवान् अग्नि भी इच्छानुसार भ्रमण करने लगे।

(८)
 अग्नि ने उस तेज को पाँच हजार वर्षों तक धारण किया था। इसलिए अग्नि के मांस, हड्डी, रुधिर, मेद, आँत, रेतसू, त्वचा, रोम, दाढ़ी, मूँछ, नेत्र एवं केश आदि सभी सुवर्णमय बन गये। इसी से संसार में अग्नि को हिरण्यरेता कहा जाता है।

(९-१०)
 तदनन्तर अग्नि मुख्य उस गर्भ को पाँच हजार वर्षों तक धारण करती हुई कुटिला ब्रह्मा के स्थान पर गई। (११)

पद्मजन्मा ब्रह्मा जी ने उस महानदी को सन्मत्त होती देग्मर पूछा तुम्हारा यह गर्भ किसके द्वारा स्थापित है?

(१२)
 उसने कहा— हे सत्तम! अग्नि ने पिये हुए शङ्कर के उस शुक्र को असमर्थ होने के कारण मुझ में छोड़ दिया। (१३)

हे पितामह! गर्भ धारण करते हुए पाँच सहस्र वर्ष का समय बीत गया, किन्तु किसी प्रकार इसका निर्गमन नहीं हो रहा है।

(१४)
 यह सुनकर भगवान् ब्रह्मा ने कहा—तुम उदयाचल पर जाओ। वहाँ शतयोजन विस्तृत सरपती का महान् अयंकर पन है।

तत्रैवं क्षिप सुश्रोणि विस्तीर्णे गिरिसानुनि ।
 दशवर्षसहस्रान्ते ततो बालो भविष्यति ॥ १६
 सा श्रुत्वा ब्रह्मणो वाक्यं रूपिणी गिरिमागता ।
 आगत्य गर्भं तत्याज मुखेनैवाद्रिनन्दिनी ॥ १७
 सा तु संत्यज्य तं बालं ब्रह्माणं सहस्रागमत् ।
 आपोमयी मन्त्रवशात् संजाता कुटिला सती ॥ १८
 तेजसा चापि शार्वेण रौक्मं शरवणं महत् ।
 तन्निवासरताश्चान्ये पादपा मृगपक्षिणः ॥ १९
 सतो दशसु पूर्णेषु शरदशशतेष्वथ ।
 बालार्कदीप्तिः संजातो बालः कमललोचनः ॥ २०
 उत्तानशायी भगवान् दिव्ये शरवणे स्थितः ।
 घृतेऽशुष्टं समाक्षिप्य रूरोद घनराडिष ॥ २१
 एतस्मिन्नन्ते देव्य कृत्तिकाः पटु सुतेजसः ।
 ददशुः श्वेच्छया यान्त्यो बालं शरवणे स्थितम् ॥ २२
 कृषायुक्ताः समाजगुः यत्र स्कन्दः स्थितोऽभवत् ।

हे सुन्दर कटि बालो! उस विस्तृत गिरिशिखर पर इसे छोड़ दो। दश हजार वर्षों के बाद यह बालक हो जायेगा।

(१६)
 ब्रह्मा की बात सुनने के उपरान्त वह सुन्दरी पर्वतनन्दिनी पर्वत पर गई एवं गुप्त से ही (उसने) गर्भ का त्याग कर दिया। (१७)

वह उस बालक को छोड़कर शीघ्र ही ब्रह्मा के निम्न गई। राती कुटिला मन्त्र (शाप) के कारण जलमयी बन गई।

(१८)
 शंकर के तेज से यह विशाल सरपती का पन सुवर्णमय बन गया। वहाँ के निवासी वृक्ष, मृग एवं पक्षी भी सुवर्णमय हो गये।

(१९)
 तदनन्तर दश सहस्र वर्ष बीतने पर बाण भृश के समान तेजस्वी तथा कमल के समान नेत्रोवाला बालक उत्पन्न हुआ।

(२०)
 दिव्य शरवण में स्थित उत्तानशायी भगवान् मुत्र में अंगुष्ठ डालकर बड़े मेघ के सदृश रुदन करने लगे। (२१)

इसी बीच श्वेच्छा से जाती हुई दिव्य तेजस्विनी दुर्वा वृत्तिकार्त्ती ने शरवण में स्थित उस बालक को देखा। (२२)
 ये वृत्तिकार्त्ती क्यायुक्त होकर बड़ी गई जहाँ कुमार स्कन्द थे। उसे दुःखपान करने हेतु वे परस्पर 'हम पहने,

अहं पूर्वमहं पूर्वं तस्मै स्तन्येऽभिचुक्रुशुः ॥ २३
 विवदन्तीः स ता दृष्ट्वा पण्मुखः समजायत ।
 अघोभरंश्च ताः सर्वाः शिशुं स्नेहाच्च कृत्तिकाः ॥ २४
 त्रियमाणः स ताभिस्तु बालो वृद्धिमगान्मुने ।
 कार्तिकेयेति विख्यातो जातः स बलिनां वरः ॥ २५
 एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन् पावकं प्राह पमजः ।
 कियत्प्रमाणः पुत्रस्ते वर्चते साम्प्रतं गुहः ॥ २६
 स तद्वचनमाकर्ण्य अजानंस्तं हरात्मजम् ।
 प्रोवाच पुत्रं देवेश न वेत्ति कतमो गुहः ॥ २७
 तं प्राह भगवान् यत्तु तेजः पीतं पुरा त्वया ।
 त्रैयम्बकं त्रिलोकेश जातः शरवणे शिशुः ॥ २८
 श्रुत्वा पितामहवचः पावकस्त्वरितोऽभ्यगात् ।
 वेगिनं मेपमाहृद्य कुटिला तं ददर्श ह ॥ २९
 ततः पप्रच्छ कुटिला शीघ्रं क्व व्रजसे कवे ।
 सोऽब्रवीत् पुत्रदृष्ट्यर्थं जातं शरवणे शिशुम् ॥ ३०

साऽब्रवीत् तनयो मयं ममेत्याह च पावकः ।
 विवदन्तौ ददर्शाथ स्वेच्छाचारी जनार्दनः ॥ ३१
 तौ पप्रच्छ किमर्थं वा विवादमिह चक्रथः ।
 तावृत्तुः पुत्रहतेो रुद्रशुक्रोद्भवाय हि ॥ ३२
 तावुवाच हरिर्देवो गच्छ तं त्रिपुरान्तकम् ।
 स यद् वक्ष्यति देवेशतत्कुरुष्वमस्तंशयम् ॥ ३३
 ह्युक्तौ वासुदेवेन कुटिलाप्री हरान्तिकम् ।
 समभ्येत्योचतुस्तथ्यं कस्य पुत्रेति नारद ॥ ३४
 रुद्रस्वद्राक्यमाकर्ण्य हर्षनिर्भरमानसः ।
 दिष्टथा दिष्ट्येति गिरिजां प्रोद्धृतपुलकोऽब्रवीत् ॥ ३५
 ततोऽम्बिका प्राह हरं देव गच्छाम शिशुम् ।
 प्रष्टुं समाश्रयेद् यं स तस्य पुत्रो भविष्यति ॥ ३६
 श्राद्धमित्येव भगवान् समुत्तस्थो वृषध्वजः ।
 सहीमया कुटिलया पावकेन च धीमता ॥ ३७
 संप्राप्तास्ते शरवणं हराभिकुटिलाम्बिकाः ।

हम पहले' कहकर विवाद करने लगी। (२३)
 उन्हें परस्पर विवाद करती हुई देखकर यह कुमार
 पण्मुख (छः मुख वाले) बन गये। तदनन्तर उन वृत्तिज्ञाओं
 ने स्नेह पूर्वक शिशु या पोषण किया। (२४)
 हे मुने! उनके द्वारा पालित होकर यह बालक
 पड़ा हुआ। यह बलवानों के श्रेष्ठ कार्तिकेय नाम से
 विख्यात हुआ। (२५)
 हे ब्रह्मन्! इसी बीच ब्रह्मा ने अग्नि से पूछा—तुम्हारा
 पुत्र गुह इस समय जितना पड़ा हुआ है? (२६)
 ब्रह्मा की बात सुनकर शीघ्र के उस पुत्र को न जानने के
 कारण अग्नि ने कहा—हे देवेश! मैं पुत्र को नहीं जानता।
 गुह कौन है? (२७)
 भगवान् ने उनसे कहा—हे त्रिलोकेश! पूर्वकाल में
 तुम्हारे द्वारा पान किया गया शंकर का तेज शरवण में
 शिशुरूप से उत्पन्न हुआ है। (२८)
 पितामह का वचन सुनने के उपरान्त अग्निदेव वेगवान्
 बहुरे पर आरुढ़ होकर शीघ्र (पहले) गए। कुटिला ने उन्हें
 जाने देखा। (२९)
 सदान्तर कुटिला ने पूछा—हे अग्निदेव! आप कहाँ
 जा रहे हैं? उन्होंने कहा—शरवण में उत्पन्न पुत्र
 शिशु को देखने जा रहा हूँ। (३०)

उसने बड़ा कि पुत्र मेरा है एवं अग्नि ने कहा कि
 मेरा है। स्वेच्छा से भूम रहे जनार्दन ने उन दोनों को
 विवाद करते हुए देखा। (३१)
 उन्होंने उन दोनों से पूछा—तुम दोनों क्यों विवाद कर
 रहे हो? उन दोनों ने कहा—रुद्र के शुक्र से उत्पन्न पुत्र
 के लिए। (३२)
 पिष्णु ने उन दोनों से कहा—तुम लोग त्रिपुरान्तक के
 समीप जाओ। ये देवेश जो कहे उसे गिरस्तवेह करो। (३३)
 हे नारद! वासुदेव के ऐसा कहने पर कुटिला एवं
 अग्नि शङ्कर के निष्ठ गए एवं उनसे यह तथ्य पूछा
 कि पुत्र किसका है? (३४)
 उनके वचन को सुनकर शङ्कर का मन आनन्द से
 परिपूर्ण हो गया। उन्होंने पुलकित होकर गिरजा से कहा—
 माग्य की बात है, माग्य की बात है! (३५)
 तदनन्तर अम्बिका ने शङ्कर से कहा—हे देव! हम
 लोग उस बालक से पूछने चलें। यह जिसका आशय मह्य
 करेगा उसी का पुत्र होगा। (३६)
 'ठीक है' ऐसा कहने हुए वृषध्वज भगवान् शङ्कर
 पार्थिवी, कुटिला तथा बुद्धिमान् पावक के साथ
 उठ खड़े हुए। (३७)
 शङ्कर, पार्थिवी, कुटिला एवं पावक शरवण में गये।

ददशुः शिशुं सं च कृत्तिकोत्सङ्गशायिनम् ॥ ३८
 ततः स बालकस्तेषां मत्वा चिन्तितमादरात् ।
 योगी चतुर्मूर्तिरभूत् पण्डितः स शिशुस्त्वपि ॥ ३९
 कुमारः शंकरमगाद् विशाखो गौरिमागमत् ।
 कुटिलामगमच्छाखो महासेनोऽग्निमभ्ययात् ॥ ४०
 ततः प्रीतियुतो रुद्र उमा च कुटिला तथा ।
 पावकश्चापि देवेशः परां मुदमवाप च ॥ ४१
 ततोऽधुवच कृत्तिकास्ताः पण्डितः किं हरात्मजः ।
 ता अग्रवीद्धरः प्रीत्या विधिवद् वचनं मुने ॥ ४२
 नाम्ना तु कार्तिकेयो हि युष्माकं तनयस्त्वसौ ।
 कुटिलायाः कुमारेति पुत्रोऽयं भविताऽप्ययः ॥ ४३
 स्कन्द इत्येव विख्यातो गौरीपुत्रो भवत्वसौ ।
 गुह इत्येव नाम्ना च ममासौ तनयः स्मृतः ॥ ४४
 महासेन इति ख्यातो हुताशस्यास्तु पुत्रकः ।
 शारद्वत् इति ख्यातः सुतः शरवणस्य च ॥ ४५

इन लोगों ने कृत्तिका की गोद में लेते हुए उस शिशु को देखा । (३८)

तदनन्तर वह पण्डित बालक आदरपूर्वक उनके विचार को समझ कर शिशु होते हुए भी योगी सदृश चार मूर्तियों का हो गया । (३९)

कुमार शङ्कर के समीप, विशाल गिरजा के निकट, शार कुटिला के पास एवं महासेन अग्नि के समीप पले गए । (४०)

तदनन्तर प्रीतियुक्त रुद्र, उमा, कुटिला तथा देवेश्वर अग्नि के चारों अत्यन्त आनन्दित हुए । (४१)

तदुपरान्त उन कृत्तिकाओं ने पूछा—क्या पहचान शङ्कर के पुत्र हैं ? हे मुने ! शङ्कर ने उन सभी से प्रीतिपूर्वक विधिवद् वचन कहा— (४२)

हे कृत्तिकाओ ! कार्तिकेय नाम से ये तुम्हारे पुत्र होंगे तथा ये अग्निनाशी कुमार नाम से कुटिला के पुत्र होंगे । (४३)

ये ही स्कन्द नाम से विख्यात गौरी के पुत्र होंगे तथा गुह नाम से मेरे पुत्र होंगे । (४४)

महासेन नाम से ये अग्नि के विख्यात पुत्र होंगे तथा शारद्वत् इस नाम से विख्यात ये शरवण के पुत्र होंगे । (४५)

एवमेव महायोगी पृथिव्यां ख्यातिमेप्यति ।
 पडास्यत्वान् महाबाहुः पण्डितो नाम गीयते ॥ ४६
 इत्येवमुक्त्वा भगवान् शूलपाणिः पितामहम् ।
 सरमार दैवतैः सार्द्धं तेऽप्याजगमुस्वरान्विताः ॥ ४७
 प्रणिपत्य च कामारिभ्रमां च गिरिनन्दिनीम् ।
 दृष्ट्वा हुताशनं प्रीत्या कुटिलां कृत्तिकास्तथा ॥ ४८
 ददशुर्बालमत्युग्रं पण्डितं सूर्यसंनिभम् ।
 मुष्णन्त्वमिव चक्षुषि तेजसा स्वेन देवताः ॥ ४९
 कौतुकाभिवृताः सर्वे एवमूचुः सुरोत्तमाः ।
 देवकार्यं त्वया देव कृतं देव्याऽग्निना तथा ॥ ५०
 तदृत्तिष्ट व्रजामोऽथ तीर्थमौजसमन्वयम् ।
 कुरुक्षेत्रे सरस्वत्यामभिषिञ्चाम पण्डितम् ॥ ५१
 सेनायाः पतिरस्त्वेष देवगन्धर्वकिंनराः ।
 महिषं घातयस्वेष तारकं च सुदारुणम् ॥ ५२
 पाटमित्यग्रवीन्धर्वः सप्ततस्थुः सुरास्ततः ।

इस प्रकार ये महायोगी पृथ्वी में विख्यात होंगे । वह मुक्त होने से महाबाहु ने पण्डित नाम से प्रसिद्ध होंगे । (४६)

इस प्रकार कह कर शूलपाणि शङ्कर ने देवताओं सहित पितामह ब्रह्मा का स्मरण किया । वे सभी शीघ्रता से वहाँ आ गए । (४७)

कामारि शङ्कर और गिरिनन्दिनी पार्वती को प्रणाम कर तथा हुताशन, कुटिला तथा कृत्तिकाओं को प्रीतिपूर्वक देखकर उन देवों ने—अतिशय उप, सूर्य के समान एवं अपने तेज से सभी के नेत्रों को धुराने वाले उस पण्डित बालक को देला । (४८-४९)

कीर्तुरागित उन श्रेष्ठ देवों ने कहा—हे देव ! आपने, देवों ने एवं अग्नि ने देवताओं का कार्य कर दिया । (५०)

अत आप उठें ! अब हम लोग अग्निनाशी अजीत तीर्थ को चले । कुरुक्षेत्र में चल कर सरस्वती में हम लोग इस पण्डित को अभिषिञ्चित करें । (५१)

हे देवो, गन्धर्वों और किन्नरों ! ये हमारे सेनापति यों और महिष तथा मर्यक तारक का वध करें । (५२)

शङ्कर ने कहा—बहुत अच्छा । तदनन्तर सभी देवता

शुमारमदित्वा जग्मुः बृहद्वेशं महाफलम् ॥ ५३

तत्रैव देवताः मेन्द्रा रश्मिज्जनादनाः ।

वत्नमभ्याभिपेक्षार्थं चक्रुर्मुनिगणैः मह ॥ ५४

ततोऽभ्युना ममममुद्रवादिनी-

नदीजलेनापि महाफलेन ।

वरोपधीमिथ महामूर्तिभि-

स्वदाभ्यपिश्रन् शुभमच्युतायाः ॥ ५५

अभिपिश्रति मेनान्यां वृमारे दिव्यरूपिणि ।

जगुर्मन्धर्वपतयो ननृतुध्याप्मरोगणाः ॥ ५६

अभिपिश्रतं शुमारं च गिरिपुत्रीं निरीःय हि ।

स्नेहादूतमद्गगं स्वन्दं मूर्ध्न्यजिघ्रन्तुर्मुमुक्षुः ॥ ५७

जिघ्र्वा कानिक्त्रेयस्य अभिपेक्षार्त्माननम् ।

मात्पट्टिना यथेन्द्रस्य देवमाताऽदितिः पुरा ॥ ५८

तदाऽभिपिश्रतं तनयं दृष्ट्वा शर्वो मुदं ययौ ।

पावरः वृगिराधैव कुटिता च यशस्विनी ॥ ५९

ततोऽभिपिश्रत्स्य हरः सेनापत्ये गुहस्प तु ।

प्रमयाश्चतुरः प्रादाञ्चक्रतुन्यपरावमान् ॥ ६०

षण्ठाकर्णं लोहितार्धं नन्दिमेने च दाण्यम् ।

चतुर्थं पत्निनां सुख्यं न्यातं शुभ्रदमालिनम् ॥ ६१

हरदत्तान् गणान् दृष्ट्वा देवाः स्वन्दस्य नारद ।

प्रददुः प्रमथान् स्यान् स्यान् सर्वे प्रसन्नपूरोगमाः ॥ ६२

स्वायुं मन्ना गणं प्रादाद् रिपुन् प्रादाद् ययश्चयम् ।

संक्रमं विक्रमं चैव तृतीयं च पराक्रमम् ॥ ६३

उत्केशं पद्भुजं शक्रो रविर्दण्डरूपिद्वलौ ।

चन्द्रो मणि वसुमणिमधिनी वत्सनन्दिनी ॥ ६४

ज्योतिर्दुवाशनः प्रादाञ्चक्रजिह्वं तथापरम् ।

दृष्टं दृष्टं दृष्टुमं श्रीम् धाताऽमुचरान् ददौ ॥ ६५

पक्रानुचक्रौ रश्मा च वेधातिमिरगुम्भिरौ ।

पाणिरयजं कालरश्म प्रादात् पूषा महापत्नी ॥ ६६

स्वर्णमालं घनाहं च हिमवान् प्रमथोचमी ।

प्रादादेवोच्छ्रितो विन्ध्यस्त्वतिशृङ्गं च पार्षदम् ॥ ६७
 सुवर्चसं च वरुणः प्रददौ चाखिवर्चसम् ।
 संग्रहं विग्रहं चाग्निर्नागा जयमहाजयौ ॥ ६८
 उन्मादं शङ्कुर्णं च पुष्पदन्तं तथाऽम्बिका ।
 घसं चातिघसं वायुः प्रादादनुचरानुभौ ॥ ६९
 परिघं चटकं भीमं दहतिदहनौ तथा ।
 प्रदावांशुमान् पञ्च प्रमथान् पण्डुस्त्राय हि ॥ ७०
 यमः प्रमाथग्न्यायं कालसेनं महासुखम् ।
 तालपत्रं नाडिजह्वं पडेवानुचरान् ददौ ॥ ७१
 सुप्रभं च सुकमीणं ददौ धाता गणेश्वरौ ।
 सुव्रतं सत्यसन्धं च मित्रः प्रादाद् द्विजोत्तम ॥ ७२
 अनन्तः शङ्कुपीठश्च निकुम्भः कुष्ठदोऽम्बुजः ।
 एकाक्षः कुनटी चक्षुः फिरीटी कलशोदरः ॥ ७३
 सूचीवक्त्रः कोफनदः प्रहासः प्रियकोऽच्युतः ।
 गणाः पञ्चदशैते हि यदैर्दत्ता गुहस्य तु ॥ ७४
 कालिन्याः कालकन्दश्च नर्मदाया रणोत्कटः ।

तथा ऊँचे विन्ध्याचल ने अतिशृङ्ग नामक पार्षद को दिया । (६७)

वरुण ने सुवर्चा एवं अतिवर्चा को, सगुह्र ने संग्रह तथा विग्रह को एवं नागों ने जय तथा महाजय को दिया । (६८)

अम्बिका ने उन्माद, शङ्कुर्ण और पुष्पदन्त को तथा पवन ने घस और अतिघस नामक दो अनुचरों को दिया । (६९)

अंशुमान ने पण्डुस को परिघ, चटक, भीम, दहति तथा दहन नामक पाँच प्रमथों को दिया । (७०)

यमराज ने प्रमाथ, वन्माथ पालसेन, महासुख, तालपत्र और नाडिजह्व नामक छः अनुचरों को दिया । (७१)

हे द्विजोत्तम ! धाता ने सुप्रभ और सुकर्मा नामक गणेश्वरों को, तथा मित्र ने सुव्रत तथा सत्यसन्ध नामक अनुचरों को दिया । (७२)

यज्ञो ने अनन्त, शङ्कुपीठ, निकुम्भ, कुष्ठद, अम्बुज, एकाक्ष, कुनटी, चक्षुः, फिरीटी, कलशोदर, सूचीवक्त्र, कोफनद, प्रहास, प्रियक एवं अच्युत-इन पन्द्रह गणों को कार्तिकेय के लिये दिया । (७३-७४)

कालिन्दी ने कालकन्द को, नर्मदा ने रणोत्कट को,

गोदावर्याः सिद्धयात्रस्तमसायाद्रिकम्पकः ॥ ७५
 सहस्रबाहुः सीताया वञ्जुलायाः सितोदरः ।
 मन्दाकिन्यास्तथा नन्दो विपाशायाः प्रियंकरः ॥ ७६
 ऐरावत्याश्रतुर्दृष्टः षोडशाक्षो चित्ररथा ।
 मार्जारं कौशिकी प्रादात् क्रथकौश्वौ च गौतमी ॥ ७७
 बाहुदा शतशीर्षं च वाहा गोनन्दनन्दिकौ ।
 भीमं भीमरथी प्रादाद् वेगारिं सरपूर्वदौ ॥ ७८
 अष्टबाहुं ददौ काशी सुबाहुमपि गण्डकी ।
 महानदी चित्रदेवं चित्रा चित्ररथं ददौ ॥ ७९
 क्लृः क्लृवल्यं प्रादान्मधुवर्णं मधूदका ।
 जम्बूकं धृतपापा च वेणा श्वेताननं ददौ ॥ ८०
 श्रुतवर्णं च पर्णासा रेवा सागरवेगिनम् ।
 प्रभावार्यं सहं प्रादात् काञ्चना कनकेश्वणम् ॥ ८१
 गृध्रपत्रं च विमला चारुवक्त्रं मनोहरा ।

गोदावरी ने सिद्धयात्र को एवं तमसा ने अद्रिकम्पक को दिया । (७५)

सीता ने सहस्रबाहु को, वञ्जुला ने सितोदर को मन्दाकिनी ने नन्द को एवं विपाशा ने प्रियंकर को दिया । (७६)

ऐरावती ने चतुर्दृष्ट को, वितस्वाने षोडशाक्ष को, कौशिकी ने मार्जार को एवं गोमती ने क्रथ और कौश्व को दिया । (७७)

बाहुदा ने शतशीर्ष को, वाहा ने गोनन्द और नन्दिक को, भीमरथी ने भीम को, और सरयू ने वेगारि को दिया । (७८)

काशी ने अष्टबाहु को, गण्डकी ने सुबाहु को, महानदी, ने चित्रदेव को तथा चित्रा ने चित्ररथ को दिया । (७९)

शुहू ने क्लृवल्य को, मधूदका ने मधुवर्ण को, धृतपापा ने जम्बूक को और वेणा ने श्वेतानन को समर्पित किया । (८०)

पर्णासा ने श्रुतवर्ण को, रेवा ने सागरवेगी को, प्रभावा ने धार्य और सह को एवं काञ्चना ने कनकेश्वण को दिया । (८१)

विमला ने गृध्रपत्र को, मनोहरा ने चारुवक्त्र को, धृत-

धृतपापा महारावं कर्णा विद्रुमसन्निभम् ॥ ८२
 सुप्रसादं सुवेषुश्च जिष्णुमोघवती ददौ ।
 यन्मयाहं विशाला च सरस्वत्यो ददुर्गणान् ॥ ८३
 इटिला तनयस्यादाइ दश शक्रवलात् गणान् ।
 करालं सितकेशं च कृष्णकेशं जटाधरम् ॥ ८४
 मेघनादं चतुर्दंष्ट्रं विद्युजिह्वं दद्यान्ननम् ।
 सोमाप्यायनमेधोग्रं देवयाज्ञिनमेध च ॥ ८५
 हंसास्यं कुण्डजठरं ब्रह्मग्रीवं ह्यान्ननम् ।
 कूर्मग्रीवं च पञ्चैतान् ददुः पुत्राय कृचिकाः ॥ ८६
 स्थायुजट्टं कुम्भधक्त्रं लोहजड्यं महाननम् ।
 पिण्डाकारं च पञ्चैतान् ददुः स्कन्दाय चर्पयः ॥ ८७
 नागजिह्वं चन्द्रभासं पाणिहर्मं शशीधकम् ।
 चापधक्त्रं च जम्बूकं ददौ तीर्थैः प्रधूदकः ॥ ८८
 चक्रतीर्थं सुचक्रार्क्षं मकरार्क्षं गयाशिरः ।
 गणं पञ्चशिखं नाम ददौ कनरालः स्वकम् ॥ ८९

पापा ने महापार को एवं कर्णा ने विद्रुमसन्निभ को दिया । (८२)
 सुवेषु ने सुप्रसाद को, एवं ओघवती ने जिष्णु को दिया। विशाला ने यन्मयाह को दिया। इस प्रकार इन नन्दियों ने अनेक गर्गों को दिया। (या सरस्वती नदियों ने अनेक गर्गों को दिया) । (८३)
 इटिला ने अपने पुत्र को कराल, सितकेश, कृष्णकेश, जटाधर, मेघनाद, चतुर्दंष्ट्र, विद्युजिह्व, दद्यान्नन, सोमाप्यायन एवं तम देवयाज्ञी नामक दश गर्गों को दिया । (८४-८५)
 कृचिकाओं ने अपने पुत्र को हंसास्य, कुण्डजठर, ब्रह्मग्रीव, ह्यान्नन तथा कूर्मग्रीव इन पाँच अनुचरों को प्रदान किया । (८६)
 ऋषियों ने रकन्द को स्थायुजट्ट, पुम्भधक्त्र, लोहजट्ट, महानन और पिण्डाकार इन पाँच अनुचरों को दिया । (८७)
 प्रधूदक तीर्थ ने नागजिह्व, चन्द्रभास, पाणिहर्म, शशीधक, चापधक्त्र तथा जम्बूक नामक अनुचरों को दिया । (८८)
 चक्रतीर्थ ने सुचक्रार्क्ष तथा मकरार्क्ष ने मकरार्क्ष को और कनराल ने पञ्चशिख नामक अपने गण को दिया । (८९)

बन्धुदत्तं वाजिशिरो वाहुशालं च पुष्करम् ।
 सर्वोत्तमं माहिपकं मानम. पिङ्गलं यथा ॥ ९०
 रुद्रमौशनसः प्रादान् ततोऽन्ये मातरौ ददुः ।
 वसुदामां सोमतीर्थैः प्रभासो नन्दिनीमपि ॥ ९१
 इन्द्रतीर्थे विशोकां च उदपानो घनस्थनाम् ।
 समसारस्वतः प्रादान्मातरश्चतुरोद्भवाः ॥ ९२
 गीतप्रियां माधवीं च तीर्थनेमिं स्मिताननाम् ।
 एकचूडं नागतीर्थैः कुक्षेत्रं पलामदाम् ॥ ९३
 ब्रह्मयोनिश्चण्डशिलां भद्रकालीं त्रिविष्टपः ।
 चौण्डीं भैण्डीं योगभैण्डीं प्रादाचरणपावनः ॥ ९४
 सोपानीयां महौ प्रादाञ्जलिकां मानसो हृदः ।
 शतघण्टं शतानन्दां तथोत्पलमेखलाम् ॥ ९५
 पञ्चावती माधवीं च ददौ वदरिकाश्रमः ।
 सुपमामेकचूडं च देवीं धमवमां तथा ॥ ९६
 उत्क्रान्तीं वेदमित्रां वेदारो मातरौ ददौ ।

वाजिशिर ने बन्धुदत्त और पुष्कर ने वाहुशाल को तथा मानस ने सर्वोत्तम, माहिपक और पिङ्गल को दिया । (९०)
 औशनस ने रुद्र को दिया, तथा अन्यो ने मातृकाओं को दिया। सोमतीर्थ ने वसुदामा को और प्रभास ने नन्दिनी को और इन्द्र तीर्थ ने विशोका को अर्पित किया। उदपान ने घनस्थना को एवं समसारस्वत ने गीतप्रिया, माधवी, तीर्थनेमि एवं स्मितानना नामक चार अद्भुत मातृकाओं को प्रदान किया। नागतीर्थ ने एकचूड को एवं कुक्षेत्र ने पलामदा को दिया । (९१-९३)
 ब्रह्मयोनि ने चण्डशिला को, त्रिविष्टप ने भद्रकाली को तथा चरणपावन ने चौण्डी, भैण्डी तथा योगभैण्डी को दिया । (९४)
 महो ने सोपानीया को, मानसहृद ने शालिग्र को एवं वदरिकाश्रम ने शतानन्दा, शतघण्टा, उत्पलमेखला, पञ्चावती और माधवी को दिया। वेदार तीर्थ ने सुपमा, एकचूड, धमवमा देवी, उत्पलाननी तथा वेदमित्रा नामक मातृकाओं को दिया। रुद्रमहादेव ने सुनक्षत्रा, कन्दूला, सुपमाया, सुमङ्गला, देवमिता और विश्वसेना को दिया। प्रयाग ने छंटला उर्ध्वेयी, भीमवी,

सुनक्षत्रां कद्रूलां च सुप्रभातां सुमङ्गलाम् ॥ ९७
 देवमित्रां चित्रसेनां ददौ रुद्रमहालयः ।
 कोटराम् ध्रुवेषीं च श्रीमतीं बहुपुत्रिकाम् ॥ ९८
 पल्लितां कमलाक्षीं च प्रयागो मातरो ददौ ।
 सूपलां मधुकुम्भां च ख्यातिं दहदहां पराम् ॥ ९९
 प्रादात् खटकटां चान्यां सर्वपापविमोचनः ।
 संतानिकां विकलिकां क्रमश्चत्वरवासिनीम् ॥ १००
 जलेश्वरीं कुक्कुटिकां सुदामां लोहमेखलाम् ।
 ध्रुवम्बतुल्यकाशीं च कोकनामा महाशनी ।
 रौद्रा कर्कटिका तुण्डा श्वेततीर्थो ददौ त्रिवामः ॥ १०१
 एतानि भूतानि गणांश्च मातरो

दृष्ट्वा महात्मा विनतातनूजः ।
 ददौ मयूरं स्वसुतं महाजवं
 तथाऽरुणस्ताम्रचूडं च पुत्रम् ॥ १०२
 शक्तिं हुताशोऽद्रिसुता च वस्त्रं
 दण्डं गुरुः सा कुटिला कमण्डलुम् ।
 मालां हरिः शूलधरः पताकां
 कण्ठे च हारं मधवानुररतः ॥ १०३
 गणैर्वृतो मातृभिरन्वयातो
 मयूरसंस्थो वरशक्तिपाणिः ।
 सैन्याधिपत्ये स कृतो भवेन
 रराज सूर्येव महावपुष्मान् ॥ १०४

इति श्रीधामनपुराणे एकत्रिंशोऽध्याय ॥३१॥

बहुपुत्रिका, पल्लिता तथा कमलाक्षी नामक मातृकाओं को अर्पित किया। सर्वपापविमोचन ने सूपला, मधुकुम्भा, ख्याति, दहदहा, परा और खटकटा को दिया। क्रम ने संतानिनारा, विकलिका और चत्वरवासिनी को प्रदान किया। (९५-१००)

श्वेततीर्थ ने जलेश्वरी, कुक्कुटिका, सुदामा, लोहमेखला, ध्रुवम्बती, तुल्यकाशी, कोकनामा महाशनी रौद्रा, कर्कटिका और तुण्डा नामक अनुचरियों को दिया। (१०१)

इन भूर्तों, गणों और मातृकाओं को देखकर विनतापुत्र गरुड ने अपने पुत्र महावेगशाही मयूर को समर्पित किया

और अरुण ने अपने पुत्र ताम्रचूड को दिया। (१०२)

अग्नि ने शक्ति, पार्वती ने वस्त्र, बृहस्पति ने दण्ड, उस कुटिला ने कमण्डलु, विष्णु ने माला, शंकर ने पताका तथा इन्द्र ने अपने वक्षस्थल का हार कार्तिकेय के कण्ठ में अर्पित किया। (१०३)

गणों से युक्त, मातृकाओं से अनुसरित, मयूर पर बैठे एवं श्रेष्ठ शक्ति को हाथ में लिये हुए महाशरीरधारी कुमार कार्तिकेय शंकर के द्वारा सेनाधिपति के पद पर अभिषिक्त होकर सूर्य के समान प्रकाशित होने लगे। (१०४)

धामनपुराण में इक्ष्वाकुवंश प्रथमः समाप्त ॥३१॥

पुलस्त्य उवाच ।
 सेनापत्येऽभिषिक्तस्तु कुमारो दैवतैरथ ।
 प्रणिपत्य भवं भक्त्या गिरिजां पावकं शुचिम् ॥ १
 पट् कृत्तिकाश्च शिरसा प्रणम्य कुटिलामपि ।
 ब्रह्माणं च नमस्कृत्य इदं वचनमब्रवीत् ॥ २
 कुमार उवाच ।
 नमोऽस्तु भवतां देवा ओ नमोऽस्तु तपोधनाः ।
 पुष्पप्रसादाज्जेष्यामि शत्रु महिषवारकौ ॥ ३
 शिशुरस्मि न जानामि वक्तुं किञ्चन देवताः ।
 दीयतां ब्रह्मणा सार्द्धमतुज्ञा मम साम्प्रतम् ॥ ४
 इत्येवमुक्ते वचने कुमारेण महात्मना ।
 मूर्धं निरीक्षन्ति सुराः सर्वे विगतसाध्वताः ॥ ५
 शंकरोऽपि सुतस्नेहात् समुत्थाय प्रजापतिम् ।
 आदाय दक्षिणे पाणौ स्कन्दान्तिरुमुपागमत् ॥ ६

अयोमा प्राह तनय पुत्र एहोहि शत्रुह्वर ।
 वन्दस्व चरणौ दिव्यौ विष्णोर्लोकनमस्कृतौ ॥ ७
 तवो विहस्याह गुहः कोऽयं मातर्वदस्व माम् ।
 यम्यादरात् प्रणामोऽयं क्रियते मद्विधैर्जनैः ॥ ८
 त माता प्राह वचन कृते कर्मणि पद्मभूः ।
 वक्ष्यते तव योऽयं हि महात्मा गरुडध्वजः ॥ ९
 केवलं त्विह मां देवस्त्वत्पिता प्राह शंकरः ।
 नान्यः परतरोऽस्माद्भि वयमन्ये च देहिनः ॥ १०
 पार्वत्या गदिते स्कन्दः प्रणिपत्य जनार्दनम् ।
 तस्यै कृताञ्जलिपुटस्त्वाज्ञां प्रार्थयतेऽच्युतात् ॥ ११
 कृताञ्जलिपुटं स्कन्दं भगवान् भूतभाजनः ।
 कृत्वा स्तस्ययनं देवो ब्रह्मज्ञां प्रददौ तवः ॥ १२
 नारद उवाच ।
 यत्तु स्वस्त्ययनं पुण्यं कृतवान् गरुडध्वजः ।

३२

पुलस्त्य ने कहा—देवताओं द्वारा सेनापति के पद पर अभिषिक्त कुमार ने भक्ति पूर्वक शङ्कर, पार्वती और विजय अग्नि को प्रणाम करने के उपरान्त छ कृत्तिकाओं एव कुटिला को शिरसे प्रणाम कर तथा ब्रह्मा को नमस्कार कर यह वचन कहा—

(१-२)

कुमार ने कहा—हे देवताओ ! आप लोगों को नमस्कार है । हे तपोधनो ! आप लोगों को ओंकार के साथ नमस्कार है । आप लोगों के अनुग्रह से मैं महिष एवं तारक दोनों शत्रुओं को जीवूँगा ।

(३)

हे देवताओ ! मैं बालक हूँ, कुछ बोलना नहीं जानता । ब्रह्मा सहित आप लोग इस समय मुझे अनुमति दें । (४)
 महात्मा कुमार के ऐसा कहने पर सभी देवता निर्भय होकर रजसा मुख देराने लगे ।

(५)

पुत्र के नेह से शंकर बैठे और ब्रह्मा को दाहिने हाथ से पकड़कर स्कन्द के निरुत्त आये ।

(६)

तदनन्तर उमा ने पुत्र से कहा—हे शत्रुनाशक पुत्र ! आओ आओ ! लोक द्वारा नमस्कृत विष्णु के दिव्य चरणों की वन्दना करो ।

(७)

तदनन्तर गुह ने हँसकर कहा—हे माता ! मुझे पतलाओ कि ये कौन हैं जिन्हें हमारे जैसे लोग भी आदर पूर्वक प्रणाम करते हैं ?

(८)

माता ने उनसे कहा—कार्य कर लेने पर ब्रह्मा तुम्हें पतलाधेगे कि ये महात्मा गरुडध्वज कौन हैं ।

(९)

तुम्हारे पिता देव शंकर ने मुझसे केवल यही कहा है कि इनसे बढ़कर हम लोग या अन्य कोई देहधाधी नहीं है ।

(१०)

पार्वती के कहने पर स्कन्द ने जनार्दन को प्रणाम किया तथा हाथों को जोड़कर राहें हो गये और अच्युत से आश्रम माँगने लगे ।

(११)

सूतमानन भगवान् विष्णुदेव ने हाथ जोड़कर शिव स्कन्द का स्वस्त्ययन कर उन्हें अनुमति दी ।

(१२)

नारद ने कहा—हे त्रिपिपी ! मयूरध्वज की विधिके ये छिपे

शिखिष्वजाय त्रिप्रपे तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १३
पुलस्त्य उवाच ।

शृणु स्वस्त्ययनं पुण्य मत्प्राह भगवान् हरिः ।
स्कन्दस्य विनयार्थीय महिषस्य वधाय च ॥ १४
स्वस्ति ते कृता प्रज्ञा पद्मयोनी रजोगुणः ।
स्वस्ति चक्राङ्कितकरो निष्णुस्ते विदधत्वातः ॥ १५
स्वस्ति ते शकरो भक्त्या सपत्नीको वृषध्वजः ।
पावकः स्वस्ति तुभ्यं च करोतु त्रिखिवाहन ॥ १६

दिवाकरः स्वस्ति करोतु तुभ्यं
सोमः सभौमः सतुथो गुरुश्च ।
काण्वः सदा स्वस्ति करोतु तुभ्यं
शनैधरः स्वस्त्ययनं करोतु ॥ १७
मरीचिरत्रिः पुलहः पुलस्त्यः
ऋतुर्वसिष्ठो भृगुरङ्गिराश्च ।
मृकण्डजस्ते कृता हि स्वस्ति
स्वस्ति सदा साम महर्षयश्च ॥ १८
विधेधिनौ साध्यमरुद्गणानयो

गरुडध्वज विष्णु द्वारा त्रिये गण पुण्यजनक स्वस्त्ययन को
आप मङ्गलसे कहें । (१३)

पुलस्त्य ने कहा—स्कन्द को विनय एवं महिष के वध
हेतु भगवान् हरि द्वारा कहे गये पुण्य-जनक स्वस्त्ययन को
सुनो । (१४)

पद्मयोनि रजोगुणी प्रज्ञा तुम्हारा मङ्गल करें । हाथ में चक्र
धारण करनेवाले अङ्गमाविष्णु तुम्हारा मङ्गल करें । (१५)

पत्नी सहित वृषभध्वज शकरो स्कन्द पूर्वक तुम्हारा
मङ्गल करें । हे त्रिखिवाहन ! जनिनेश्वर तुम्हारा मङ्गल
करें । (१६)

भूयं तुम्हारा मङ्गल करें भौम सहित सोम तथा पुष्य
सहित वृषध्वज तुम्हारा मङ्गल करें । गुरु भदेव तुम्हारा
मङ्गल करें तथा शनैश्वर तुम्हारा मङ्गल करें । (१७)

मरीचि, अत्रि, पुण्ड्र, पुलस्त्य, मनु, वसिष्ठ, भृगु,
अङ्गिर, मार्कण्डेय ये ऋषि तुम्हारा मङ्गल करें तथा सप्तपि
ण्य तुम्हारा सदा मङ्गल करें । (१८)

विधेधेव, अधिनीकुमार, साध्य, मरुद्गण, अग्नि,

दिवाकरा शूलधरा महेश्वराः ।

यश्चा पिशाचा वसवोऽथ किन्नराः
ते स्वस्ति कुर्वन्तु सदीपतास्तथमी ॥ १९

नागाः सुपर्णाः सरितः सरासि
तीर्थानि पुण्यायतनाः समुद्राः ।

महाराला भूतगणा गणेश्वराः
ते स्वस्ति कुर्वन्तु सदा समुद्यताः ॥ २०

स्वस्ति द्विपादिकेभ्यस्ते चतुष्पादेभ्य एव च ।
स्वस्ति ते बहुपादेभ्यस्त्वपादेभ्योऽप्यनामयम् ॥ २१
प्राचीं दिग् रक्षता वज्री दक्षिणा दण्डनायकः ।
पार्श्वी प्रतीचीं रक्षतु लक्ष्माणुः पातु चोत्तराम् ॥ २२
वह्निर्दक्षिणपूर्वां च कुबेरो दक्षिणापराम् ।
प्रतीचीं च चरा वायुः शिवः पूर्वोत्तरामपि ॥ २३
उपरिष्ठाद् भ्रुवः पातु अघस्ताश्च धराधरः ।
मुसली लाङ्गली चञ्ची धनुष्मानन्तरेषु च ॥ २४
वाराहोऽम्बुनिधौ पातु दुर्गे पातु नृकेसरी ।

सूर्य, शूलधर, महेश्वर, यक्ष, पिशाच वसु और निर्र-
ये सब तत्परता से सदा तुम्हारा मङ्गल करें । (१९)

नाग, पक्षी, नदियों, सरोवर, तीर्थ पुण्यायन,
समुद्र महाबलशाली भूतगण तथा विनायकगण सदा
तत्पर होकर तुम्हारा मङ्गल करें । (२०)

द्विपदों एवं चतुष्पदों से तुम्हारा मङ्गल हो । बहुपदों द्वारा
तुम्हारा मङ्गल हो एवं विना पैर वालों से तुम्हारा अनामय
हो । (२१)

यज्ञधारी (इन्द्र) पूर्व दिशा की, दण्डनायक (यम)
दक्षिण दिशा की, पाश धारी (वरुण) पश्चिम दिशा की
तथा चन्द्रमा उत्तर दिशा की रक्षा करें । (२२)

अग्नि अग्निभोग की, कुबेर नैऋत्य भोग की, पयन
वायव्य भोग की और शिव ईशान भोग की रक्षा
करें । (२३)

ऊपर की ओर भ्रुव, नीचे की ओर धराधर (सोम या
पर्वत) तथा अन्तरालों में मुसल, दह, पञ्च तथा धनुष
धारण करने वाले (विष्णु) रक्षा करें । (२४)

समुद्र में वाराह, दुर्गमस्थान में नरसिंह तथा साम-

सामवेदध्वनिः श्रीमान् सर्वतः पातु माधवः ॥ २५

पुलस्त्य उवाच ।

एवं कृतस्वस्त्ययनो गुहः शक्तिधरोऽग्रणीः ।

प्रणिपत्य सुरान् सर्वान् समुत्पतत भूतलात् ॥ २६

तमन्वेच गणाः सर्वे दत्ता ये मुदितैः सुरैः ।

अनुजग्मुः कुमारं ते कामरूपा विहङ्गमाः ॥ २७

मातरश्च तथा सर्वाः समुत्पेतुर्नभस्तलम् ।

समं स्कन्देन वलिना हन्तुकामा महासुरान् ॥ २८

ततः सुदीर्घमध्वानं गत्वा स्कन्दोऽप्रवीद् गणान् ।

भूम्यां तूर्णं महावीर्याः कुरुध्वमवतारणम् ॥ २९

गणा गुह्वचः श्रुत्वा अवतीर्य महीतलम् ।

आरात् पतन्तस्वदेशं नादं चक्रुर्भयंकरम् ॥ ३०

तन्निनादो महीं सर्वाभापूर्य च नभस्तलम् ।

विवेशार्णवमन्त्रेण पातालं दानवालयम् ॥ ३१

श्रुतः स महिषेणाथ तारकेण च धीमता ।

विरोचनेन जम्भेन कुजम्भेनासुरेण च ॥ ३२

वेदध्वनि रूप श्रीमान् माधव तुम्हारी सभी ओर से रक्षा करें । (२५)

पुलस्त्य ने कहा—इस प्रकार स्वस्त्ययन हो जाने पर शक्ति धारी सेनापति गुह समस्त देवताओं को प्रणाम कर भूतल से उड़े । (२६)

प्रसन्न देवताओं द्वारा दिये गये सभी गण यथेच्छरूपधारी पक्षी बन कर कुमार का अनुसरण किये । (२७)

सभी मातायें भी बलवान् स्कन्द के साथ महान् असुरों को मारने के लिए आकाश में उड़ीं । (२८)

तदनन्तर बहुत दूर जाने पर स्कन्द ने गणों से कहा—हे महा-बल-शालियो ! शीघ्र ही तुम लोग पृथ्वी पर उतरो । (२९)

गुह की बात सुनकर सभी गण पृथ्वी पर उतरे एवं उतरते समय दूर से ही उस स्थान पर भयङ्कर नाद किये । (३०)

यह निनाद समस्त पृथ्वी एवं आकाश को आपूरित कर समुद्र-रश्मि से दानवों के निवास स्थान पाताल में प्रविष्ट हुआ । (३१)

सुद्धिमान् महिष, तारक, विरोचन, जम्भ तथा कुजम्भ प्रभृति असुरों ने उस ध्वनि को सुना । (३२)

ते श्रुत्वा सहसा नादं वज्रपातोपमं दृढम् ।

किमेतदिति संचिन्त्य तूर्णं जग्मुस्तदान्यकम् ॥ ३३

ते समेत्यान्धकेनैव समं दानवर्षुंगवाः ।

मन्त्रचामासुरुद्भिस्तास्तं शब्दं प्रति नारद ॥ ३४

मन्त्रयस्तु च दैतयेषु भूतलात् सूकराननः ।

पातालकेतुर्दैत्येन्द्रः संग्राप्तोऽथ रसातलम् ॥ ३५

स वाणविद्धौ व्यथितः कम्पमानो मुहुर्मुहुः ।

अत्रवीद् वचनं दीनं समभ्येत्यान्धकासुरम् ॥ ३६

पातालकेतुरुवाच ।

गतोऽहमासं दैत्येन्द्र गालवस्याश्रमं प्रति ।

तं विध्वंसयित्वा यत्नं समारब्धं बलान्मया ॥ ३७

यावत्सूकररूपेण प्रविशामि तमाश्रमम् ।

न जाने तं नरं राजन् येन मे प्रहितः शरः ॥ ३८

शरसंभिन्नजत्रुश्च भयात् तस्य महाजवः ।

सहसा वज्रपात-तुल्य उस घोर शब्द को सुनकर 'यह क्या है' यह सोचकर ये सभी शीघ्रता से अन्धक के समीप गये । (३३)

हे नारद ! ये सभी असुपुद्गव उद्बिग्न होकर उस शब्द के विषय में अन्धक के साथ मिलकर विचार करने लगे । (३४)

उन दैत्यों के मन्त्रणा करते समय सूकर के समान सुल वाला दैत्येन्द्र पातालकेतु भूतल से रसातल में आया । (३५)

वाण विद्ध होने से व्यथित एवं बारम्बार कौपता हुआ यह अन्धकासुर के निरुद्ध जाकर दीन वचन कहा । (३६)

पातालकेतु ने कहा—हे दैत्येश्वर ! गालव के आश्रम में मैं गया था । मैं उससे बलपूर्वक नष्ट करने का यत्न करने लगा । (३७)

हे राजन् ! मैं सूकर का रूप धारण कर जैसे ही उस आश्रम में गया वैसे ही न जाने किस मनुष्य ने मेरे ऊपर वाण चलाया । (३८)

वाण से जत्रु के टूट जाने पर मैं उसकी भय के कारण

प्रणष्ट आश्रमात् तस्मात् स च मां वृष्टवोऽन्वगात् ॥ ३९
 तुरङ्गपुरनिर्घोषः श्रूयते परमोऽसुर ।
 तिष्ठ तिष्ठेति वदतस्तस्य शूरस्य वृष्टवः ।
 तद्भयादास्मि जलधिं संप्राप्तो दक्षिणार्णवम् ॥ ४०
 यावत्पश्यामि तत्रस्थान् नानावेषाकृतीन् नरान् ।
 केचिद् गर्जन्ति घनवत् प्रतिगर्जन्ति चापरे ॥ ४१
 अन्ये चोच्चूर्वधं नूनं निघ्नामो महिषासुरम् ।
 तारकं घातयामोऽथ वदन्त्यन्ये सुतेजसः ॥ ४२
 तच्छ्रुत्वा सुवरां त्रासो मम जातोऽसुरेश्वर ।
 महार्णवं परित्यज्य पतितोऽस्मि भयातुरः ॥ ४३
 धरण्यां विवृष्टं गृहं स मामन्वपतद् वली ।
 तद्भयात् संपरित्यज्य हिरण्यपुरमात्मनः ॥ ४४
 तयान्विक्रमनुप्राप्तः प्रसादं कर्तुमर्हसि ।
 तच्छ्रुत्वा चान्धको वाक्यं प्राह मेघस्वनं वचः ॥ ४५
 न भेतव्यं त्वया तस्मात् सत्यं गोमाऽस्मि दानव ।
 महिषन्तारकशोभौ वाणथ वलिनां वरः ॥ ४६

आश्रम से वेग पूर्वक भागा । उसने भी मेरा -पीड़ा किया । (३९)

हे असुर ! हमारे पीछे आ रहे 'रुको रुको' कहने वाले उस वीर के पीछे की खुर का महान् शब्द सुनाई पड़ रहा था । उसके भय से मैं दक्षिण समुद्र में आ गया । (४०)

वहाँ मैंने अनेक प्रकार के वेष तथा आकार वाले मनुष्यों को देखा । उनमें कुछ मेघ के समान गर्जन कर रहे थे तथा अन्य वैसा ही प्रतिगर्जन कर रहे थे । (४१)

दूसरे कह रहे थे कि हम महिषासुर को अवश्य मारेंगे और परमतेजावी दूसरे लोग कह रहे थे कि आज हम तारक को मारेंगे । (४२)

हे असुरेश्वर ! उसमें सुनकर मुझे अत्यन्त भय उत्पन्न हो गया । पिशाच समुद्र को छोड़कर मैं भयातुर हो पृथ्वी के विवृत गर्त में भागा । उस बलवान् ने मेरा पीड़ा किया । उसके भय से मैं अपना हिरण्यपुर छोड़कर आप के निम्न आया हूँ । मेरे ऊपर दृषा पीजिए । यह बात सुनकर अन्यक ने मेघ-सदृश ध्वनि से यह वचन कहा— (४३-४५)

हे दानव ! तुम इससे मत डरो । मैं यथार्थतः तुम्हारा रक्षक

अनाश्रयपैव ते वीरास्त्वन्धकं महिषादयः ।
 स्वपरिग्रहसंयुक्ता भूमिं युद्धाय निर्ययुः ॥ ४७
 यत्र ते दाक्षिणाकारा गणाश्चक्रुर्महास्वनम् ।
 तत्र दैत्याः समाजगृहः सायुधाः सवला घ्ने ॥ ४८
 दैत्यानापततो दृष्ट्वा कार्तिकेयगणास्तव ।
 अम्यद्रवन्त सहसा स चोग्रो मातृमण्डलः ॥ ४९
 तेषां पुरस्तरः स्थाणुः प्रगृह्य परिधं वली ।
 निपूदयत् परबलं क्रुद्धो रुद्रः पशुनिव ॥ ५०
 तं निघ्नन्त महादेवं निरीक्ष्य कलशोदरः ।
 कुठारं पाणिनादाय हन्ति सर्वान् महासुरान् ॥ ५१
 ज्वालामुखो भयकरः क्रेणादाय चासुरम् ।
 सरथ सगजं माधं विस्तृते वदनेऽक्षिपत् ॥ ५२
 दण्डकथापि संक्रुद्धः प्राप्तपाणिर्महासुरम् ।
 सवाहनं प्रक्षिपति समुत्पाट्य महार्णवे ॥ ५३
 शक्रुर्कर्णधं भुसली हलेनाकृष्य दानवान् ।

हूँ । तदनन्तर महिष एव तारक से दोनों तथा बलवानों ने श्रेष्ठ बाण से सभी अन्यक से पूछे बिना ही अपने अतुष्यों के साथ युद्धार्थ पृथ्वी पर निकल पड़े । (४६-४७)

हे सुने ! आयुधधारी दैत्य सेना-सहित उस स्थान पर गये जहाँ भयंकर आकार वाले गण गर्जन कर रहे थे । (४८)

दैत्यों को आते हुए देखकर कार्तिकेय के गण तथा उप मातृकाओं का समूह सहसा द्रुट पड़ा । (४९)

उन सभी के अप्रभाग में बलवान् स्थाणु-रुद्र-परिष लेकर क्रोधपूर्वक पशुओं के सदृश शत्रु सेना को मारने लगे । (५०)

महादेव को असुरों को मारते हुए देख करलशोदर हाथ में कुठार लेकर महासुरों को मारने लगा । (५१)

मयङ्कर ज्वालामुख रथ, हाथी और घोड़ों के सहित असुरों को हाथ पकड़ कर अपने विस्तृत मुल में फेंकने लगा । (५२)

हाथ में घाँटें लिए हुये क्रुद्ध दण्डक महासुरों को घाहन सहित उठाकर समुद्र में फेंकने लगा । (५३)

सुसल रथ प्राप्तधारी जितेन्द्रिय शक्रुर्कर्ण दानवों को हल

संचूर्णयति मंत्रीव राजानं प्रासभृद् वशी ॥ ५४
 रङ्गचर्मधरो वीरः पुष्पदन्तो गणेश्वरः ।
 द्विधा त्रिधा च बहुधा चक्रो दैतयदानवान् ॥ ५५
 पिङ्गलो दण्डगुह्यम्य यत्र यत्र प्रधावति ।
 तत्र तत्र श्रद्धयन्ते राशयः शायदानवैः ॥ ५६
 सहस्रनयनः शूलं भ्रामयन् वै गणाग्रणीः ।
 निजधानानुरान् वीरः सान्निरथकुञ्जरान् ॥ ५७
 भीमो भीमशिलावर्षः स पुरस्सरतोऽसुरान् ।
 निजधान ययैवेन्द्रो वज्रवृष्ट्या नभोत्तमान् ॥ ५८
 रौद्रः शकटचक्राक्षो गणः पञ्चशिखो बली ।
 भ्रामयन् मृतरं वेगाच्चिजधान बलाद् रिपून् ॥ ५९
 गिरिभेदी तलेनैव सारोहं कुञ्जरं रये ।
 मम्म चक्र महावेगो रथं च रथिना सह ॥ ६०
 नाडीजज्ञोऽद्विप्रपार्थिव्य सुष्टिभिर्जासुनाऽसुरान् ।

कीलाभिर्वज्रतुल्याभिर्जधान बलवान् मुने ॥ ६१
 कर्मग्रीवो ग्रीवयैव शिरसा चरणेन च ।
 लुण्ठनेन तथा दैत्यान् निजधान सनाहनात् ॥ ६२
 पिण्डारकस्तु तुण्डेन शृङ्गाभ्यां च कलिप्रिय ।
 विदारयति संग्रामे दानवान् समरोद्धतान् ॥ ६३
 ततस्तत्सैन्यमतुल बध्यमान गणेश्वरैः ।
 प्रदुद्रावाय महिपस्तारकश्च गणाग्रणीः ॥ ६४
 ते हन्यमानाः प्रमथा दानवाभ्यां वरापुधैः ।
 परिवार्य समन्तात् ते युयुधुः वृषितास्तदा ॥ ६५
 हसास्य, पट्टिशेनाय जघान महिपासुरम् ।
 षोडशाक्षरिप्रशूलेन शतशीर्षो वरामिना ॥ ६६
 श्रुतायुधस्तु भद्रया विशोको मुसलेन तु ।
 वन्धुदत्तस्तु शूलेन मूर्ध्नि दैत्यमताडयत् ॥ ६७
 तथानयैः पार्षदैर्धुंद्वे शूलशक्यवृष्टिपट्टिशैः ।

से तीच वर-हसप्रवार पूर्ण करने लगा जैसे मन्त्री (अना
 मवान्) राजा को नष्ट करता है । (५४)
 रङ्गगडाल को धारण करने वाला गणों का स्वामी
 वीर पुष्पदन्त भी दैत्यों का दानवों को दो, तीन और
 अनेक तरहों से धाटने लगा । (५५)
 दण्ड को बढाकर-पिङ्गल जहाँ-जहाँ दीकता
 था यहाँ-यहाँ दैत्यों के शय का डेर दिखलाई पड़ता
 था । (५६)
 गणों में श्रेष्ठ वीर सहस्रनयन शूल घुमाते हुए
 षोड, रथ और हाथियों के सहित जसुतों को मार रहे
 थे । (५७)
 भीम भयङ्कर शिलाओं की पर्वों से आगे आ रहे
 असुरों को इस प्रकार मार रहा था जैसे इन्द्र बल की वृष्टि
 से उत्तम पर्वतों को नष्ट करते हैं । (५८)
 भयङ्कर शकटचक्राक्ष पञ्चशिख नामक बलवान् गण
 वेगपूर्वक मुदगर घुमाते हुए बलपूर्वक शत्रुओं का वध कर
 रहा था । (५९)
 महावेगशाली गिरिभेदी समान में धरपकड़ों
 के प्रहार से ही सबार के सहित हाथी को
 एवं रथी के सहित रथ को बधनापूर करने
 लगा । (६०)
 हे मुने! बलवान् नाडीजज्ञ पति, युध्वं जासुनां एव ।

वज्रतुल्य कोहनियों के प्रहार से असुरों को मारने
 लगा । (६१)
 कर्मग्रीव भीवा, शिर एवं चरणों के प्रहारों से तथा
 धक्का देकर घाटनों के साथ दैत्यों को मारने लगा । (६२)
 हे नारद! पिण्डारक अपने गुप्त तथा शृङ्गों
 से समरोद्धत दानवों को तमाम में विदीर्ण करने
 लगा । (६३)
 तदनन्तर गणेश्वरों द्वारा उस अतुल सैन्य को मारा
 जाया देख गणाग्रणी महिप एवं तारक दौड़े । (६४)
 उन दोनों दानवों द्वारा श्रेष्ठ आयुधों से मारे
 जा रहे थे सभी प्रमथगण चारों ओर से घेरकर क्रोधपूर्वक
 युद्ध करने लगे । (६५)
 षोडशाक्षरिप्रशूल से, षोडशाक्षरि श्रुल से एवं शतशीर्ष
 श्रेष्ठ तलवार से महिपासुर को मारने लगा । (६६)
 श्रुतायुध ने मग्न से, विशोक ने मुसल से तथा
 बन्धुदत्त ने शूल से उस दैत्य के मस्तक पर प्रहार
 किया । (६७)
 इसी प्रकार अन्य पार्षदों द्वारा शूल, शक्ति, वृष्टि एवं
 पट्टिशों से ताड़ित होने पर भी बहू मैनाक पर्वत के मन्दरा
 अक्षिण रहा । (६८)
 एन में भद्रवाले, वन्धुदत्त एवं एकपुत्रा ने श्रेष्ठ
 [२५७]

नाकम्पत् ताड्यमानोऽपि मैनाक इव पर्यतः ॥ ६८
 तारको भद्रकाल्या च तथोलूखलया रणे ।
 वक्ष्यते चैकचूडाया दार्यते परमायुधैः ॥ ६९
 तौ ताड्यमानौ प्रथमैर्मातृमित्र महासुरौ ।
 न क्षोभं जम्भतुर्वीरौ क्षोभयन्तौ गणानपि ॥ ७०
 महिषो गदया तूर्णं प्रहारैः प्रमथानथ ।
 पराजित्य पराधाक्त् कुमारं प्रति सायुधः ॥ ७१
 तमापतन्तं महिषं सुचक्राक्षो निरीक्ष्य हि ।
 चक्रमुद्यम्य संक्रुद्धो हरोध दनुनन्दनम् ॥ ७२
 गदाचक्राङ्कितकरो गणासुरमहारथौ ।
 अयुधेतां तदा ब्रह्मन् लघु चित्रं च मुष्टु च ॥ ७३
 गदां मुमोच महिषः समाविध्य गणाय तु ।
 सुचक्राक्षो निजं चक्रमुत्ससज्रासुरं प्रति ॥ ७४
 गदां लिप्त्वा सुवीक्षणं चक्रं महिषमाद्रयत् ।
 घत उच्युक्तुर्द्वैत्या हा हतो महिपस्त्विति ॥ ७५
 तच्छ्रुत्वाऽम्बद्रवद् वाणः प्रासमाविध्य वेगवान् ।

आयुधों से तारक के ऊपर प्रहार किया । (६८)
 वे दोनों महान् असुर पार्षदों और मातृशक्तियों
 से प्रताडित होने पर भी क्षुब्ध न होकर गणों को क्षुब्ध
 कर रहे थे । (७०)
 तदनन्तर गदा और प्रहारों से प्रमथों का शीघ्र
 पराजित कर महिषासुर आयुध सहित कुमार की ओर
 दौड़ा । (७१)
 उस महिष को आते देखकर अत्यन्त क्रुद्ध सुचक्राक्ष
 ने चक्र उठा कर दनुनन्दन को रोका । (७२)
 हे ब्रह्मन् ! हाथों में गदा और चक्रधारण किये असुर
 और गण दोनों महात्मी उस समय परस्पर लघु, विचित्र
 और सुन्दर युद्ध करने लगे । (७३)
 महिष ने गदा घुमा कर सुचक्राक्ष के ऊपर फेंका ।
 सुचक्राक्ष ने भी अपनी चक्र को उस असुर की ओर
 फेंका । (७४)
 सुवीक्षण अर्थात् से युक्त यह चक्र गदा को क्षिप्र भिन्न
 कर महिष के ऊपर चला । तदनन्तर दैत्यलोग 'हाथ !
 महिष मारा गया' यह कहते हुए जोर से चिल्ला
 पड़े । (७५)

उसे सुनने के उपरान्त छान नेत्रों वाला वाणासुर प्रास

जघान चक्रं रक्ताक्षः पञ्चदृष्टिशतेन हि ॥ ७६
 पञ्चबाहुशतेनापि सुचक्राक्षं धमन्ध सः ।
 बलवानपि बाणेन निष्प्रयत्नगतिः कृतः ॥ ७७
 सुचक्राक्षं सचक्रं हि बद्धं वाणासुरेण हि ।
 षट्पञ्चाक्षरवद्गदापाणिर्मकराक्षो महाबलः ॥ ७८
 गदया मूर्ध्नि वाणं हि निजवान महाबलः ।
 वेदनात्तो मुमोचाथ सुचक्राक्षं महासुरः ।
 स चापि तेन संयुक्तो व्रीडायुक्तो महामनाः ॥ ७९
 स संग्रामं परित्यज्य सालिग्राममुपाययौ ।
 वाणोऽपि मकराक्षेण ताडितोऽभूत्पराहृष्टः ॥ ८०
 प्रभज्यत बलं सर्वं दैत्यानां सुरतापस ।
 ततः स्वबलमीक्ष्यैव प्रभग्नं तारको बली ।
 खड्गोद्यतकरो दैत्य, प्रदुद्राव गणेश्वरान् ॥ ८१
 ततस्तु तेनाप्रतिभेन सासिना
 ते हंसवक्त्रप्रमूखा गणेश्वराः ।
 समातरथापि पराजिता रणे

लेनर वेग पूर्वक दौड़ा एवं पाँच सौ मुष्टियों से चक्र
 पर प्रहार किया । (७६)
 और पाँच सौ भुजाओं से सुचक्राक्ष को घोंप
 लिया । वाणासुर के द्वारा बलवान् होते हुए भी सुचक्राक्ष
 प्रयासशून्य कर दिया गया । (७७)
 वाणासुर के द्वारा सुचक्राक्ष को चक्र सहित बँधा हुआ
 देखकर महाबली मकराक्ष हाथ में गदा लेकर
 दौड़ा । (७८)
 महाबली मकराक्ष ने गदा से वाण के मस्तक पर
 प्रहार किया । तदनन्तर चोट से न्याहल वाण ने सुचक्राक्ष
 को छोड़ दिया । वह मनस्वी भी उससे घृष्टकर लजित
 हुआ और युद्ध छोड़कर शालिग्राम के समीप चला गया ।
 वाण भी मकराक्ष से चोट खाकर युद्ध से विमुक्त हो
 गया । (७९-८०)
 हे नारद ! दैत्यों की तारी सेना क्षिप्र-भिन्न
 हो गई । तदुपरान्त अपनी सेना को नष्ट हुआ वेर बलवान्
 दैत्य तारक हाथ में लखार लेभर गणेश्वरों की ओर
 दौड़ा । (८१)

तदनन्तर खड्गधारी उस अप्रतिम वीर ने धन

स्कन्दं भयार्ताः शरणं प्रपेदिरे ॥ ८२
 भगवान् गणान् वीक्ष्य महेश्वरात्मज-
 स्तं तारकं सासिनमापतन्तम् ।
 दृष्ट्वैव शक्त्या हृदये रिभेद
 स भिन्नमर्मा न्यपत्त्वं पृथिव्याम् ॥ ८३
 तस्मिन्हते भ्रातरि भग्नदर्शो
 भयातुरोऽभून्महिषो महर्षे ।
 संत्यज्य संग्रामशिरो दुरात्मा
 जगाम शैलं स हिमाचलाख्यम् ॥ ८४
 बाणोऽपि वीरे निहतेऽथ तारके
 गते हिमाद्रिं महिषे भयार्ते ।
 यथाद् विवेशोग्रमपा निधानं
 गर्णैर्बले वष्यति सापराधे ॥ ८५
 हत्वा कुमारो रणमूर्धनं तारकं
 प्रगृह्य शक्तिं महता जवेन ।
 मयूरमारुह्य शिखण्डमण्डितं
 ययौ निहन्तु महिषासुरस्य ॥ ८६

मातृकाओं सहित दसवज्रादि गणेश्वरों को पराजित कर दिया। वे सभी भयार्त होकर स्कन्द को शरण में गये। (८२)

महाेश्वर के पुत्र कुमार ने अपने गणों को बस्तादहीन तथा उलवारघारी वारकासुर को आते हुए देखकर शक्ति के प्रहार से उसका हृदय विदीर्ण कर दिया। मर्म का भेद हो जाने से वह धरती पर गिर पड़ा। (८३)

हे महर्षि! उस भाई के मरने पर महिषासुर का अभिमान चूर हो गया। वह दुष्टात्मा भय से व्याकुल हो युद्ध छोड़कर हिमालय पर्वत पर भाग गया। (८४)

वीर तारक के मारे जाने, भयार्त महिष के हिमालय पर भाग जाने एवं गणों द्वारा अपराधी सेना का वध किये जाने पर बाण भी भय वज्र उपा (गम्भीर) समुद्र में प्रविष्ट हो गया। (८५)

रण में तारक का वध कर कुमार शक्ति लेकर शिखण्ड-युक्त मयूर पर आरूढ़ हुए एवं अत्यन्त वेगपूर्वक महिषासुर को मारने चले। (८६)

स पृष्ठतः प्रैक्ष्य शिखण्डिकेतनं
 समापतन्तं चरञ्छक्तिपाणिनम् ।
 कैलासमुत्सृज्य हिमाचलं तथा
 क्रौञ्चं समभ्येत्स्व गुहां विवेश ॥ ८७
 दैत्यं प्रविष्टं स पिनाक्सूनु-
 र्जुगोप यत्नाद् भगवान् गुहोऽपि ।
 स्वचक्षुहन्ता भरिता कथं त्वहं
 संचिन्तयन्नेव ततः स्थितोऽभूत् ॥ ८८
 ततोऽभ्यगात् पुष्करसंभवस्तु
 हरो मुरारिस्त्रिदशेश्वरश्च ।
 अभ्येत्स्य चोच्चूर्महिषं सर्वैलं
 भिन्दस्व शक्त्या इह देवकार्यम् ॥ ८९
 तत् कार्तिकेयः प्रियमेव तथ्यं
 श्रुत्वा वचः प्राह सुरान् विहस्य ।
 कथं हि मातामहनष्टकं वधे
 स्वभ्रातरं त्रात्रुष्टं च मातुः ॥ ९०
 एषा श्रुतिश्चापि पुरातनी किल

हाथ में श्रेष्ठ शक्ति लिए हुए शिखण्डिकेतन (कुमार) को पीछे आते देख वह महिषासुर कैलास एवं हिमालय को छोड़कर क्रौञ्च पर्वत पर गया एवं उसकी गुफा में प्रविष्ट हो गया। (८७)

महादेव के पुत्र भगवान् गृह पर्वतगुफा में प्रविष्ट दैत्य की यत्न पूर्वक रणवाली करने लगे। अपने बन्धु की हत्या कैसे करें यह सोचकर वे खड़े रहे। (८८)

तदनन्तर पद्मयोगिन ब्रह्मा, भगवान् शंकर, विष्णु और इन्द्र वहाँ आ गये और आकर उन्होंने कहा—शक्ति के प्रहार से पर्वत सहित महिष को मारो और देवताओं का कार्य पूर्ण करो। (८९)

कार्तिकेय ने इस प्रिय एवं यथार्थ वचन को सुनकर हँसते हुए देवताओं से कहा—“मैं मातामह के नाती, अपने भाई और माता के भतीजे को कैसे मारूँ? (९०)

(इस विषय में) यह प्राचीन श्रुति भी है जिसे वेदज्ञानी महर्षिगण (आमणक) कहते हैं। इस उत्तम श्रुति के

गायन्ति यां वेदविदो महर्षयः ।

कृत्वा च यस्या मत्प्रमुचमायाः

स्वर्गं व्रजन्ति त्वतिपापिनोऽपि ॥ ९१

यां ब्राह्मणं बृह्मयामशाक्यं

बालं स्वबन्धुं ललनामदुष्टाम् ।

कृतापराधा अपि नैव वष्या

आचार्यमुखाद्या गुरवस्तथैव ॥ ९२

एवं जानन् धर्ममडयं सुरेन्द्रा

नाहं हन्यां भ्रातरं मातुलेयम् ।

यदा दैत्यो निर्गमिष्यद् गुहान्तः

तदा शक्यता धातयिष्यामि शत्रुम् ॥ ९३

श्रुत्वा कुमारवचनं भगवान्महर्षे

कृत्वा मतिं स्वहृदये गुहमाह शक्रः ।

मत्तो भवान् न मतिमान् वदसे किमर्थे

वाक्यं मृगुष्व हरिणा गदितं हि पूर्वम् ॥ ९४

नैरुस्थार्थे बहून् हन्यादिति शास्त्रेषु निधयः ।

एकं हन्याद् बहुभ्योऽर्थे न पापी तेन जायते ॥ ९५

एतच्छ्रुत्वा मया पूर्वं समयस्थेन चाग्निज ।

अनुसार आचरण कर महान् पापी भी स्वर्ग जाते हैं । (६१)

गौ, ब्राह्मण, बृह, यथार्थवत्ता, बालक, अपना सम्बन्धी, दोषरहित स्त्री तथा आचार्य आदि गुरुजन अपराध करने पर भी अवश्य होते । (९२)

हे सुरेन्द्रो ! मैं इस श्रेष्ठ धर्म को जानते हुए अपने भाई को नहीं मार सखुंगा। गुहा के भीतर से जब वह दैत्य निकलेगा तब मैं शक्ति द्वारा उस शत्रु का वध करूंगा । (९३)

हे महर्षे ! कुमार का वचन सुनने के उपरांत इन्द्र ने अपने हृदय में विचार कर गुह से कहा—आप मुझ-ने अधिक बुद्धिमान् नहीं हैं। आप क्यों बोल रहे हैं। पूर्वज्ञान में हरि द्वारा यही बात की सुनिये । (९४)

यह शास्त्रों का नियम है कि एक व्यक्ति के लिए बहुतों की हत्या नहीं करनी चाहिये। परन्तु बहुतों के हित के लिए एक को मारने से मनुष्य पापी नहीं होता । (६५)

हे अग्नि पुत्र ! इस (वपदेव) को सुनकर पूर्वजाल में मैंने सन्धि के रहने पर भी अपने सादोदर अलुख नमुचि को

निहतो नमुचिः पूर्वं सोदरोऽपि ममातुजः ॥ ९६

तस्मात् बहूनामर्थाय सकौञ्चं महिषासुरम् ।

धातयस्व पराक्रम्य शक्यता पावकदत्तया ॥ ९७

पुरंदरवचः श्रुत्वा क्रोधादारक्तलोचनः ।

कुमारः प्राह वचनं कम्पमानः शतक्रतुम् ॥ ९८

मूढ किं ते बलं बाहोः शारीरं चापि वृत्रहन् ।

येनाधिक्षिपसे मां त्वं ध्रुवं न मतिमानसि ॥ ९९

तमुवाच सहस्राक्षस्त्वचोऽहं बलवान् गुह ।

तं गुहः प्राह एहोहि युद्धयस्व बलवान् यदि ॥ १००

शक्रः प्राहाथ बलवान् ज्ञायते कृत्तिकासुत ।

प्रदक्षिणं शीघ्रतरं यः कुर्यात् क्रौञ्चमेव हि ॥ १०१

श्रुत्वा तद्वचनं स्कन्दो मयूरं प्रोक्ष वेगवान् ।

प्रदक्षिणं यादचारी कर्तुं तूर्णतरोऽभ्यगात् ॥ १०२

शक्रोऽवतीर्थ नागेन्द्रात् पादेनाथ प्रदक्षिणम् ।

मार । (९६)

अतः बहुतों के हित के लिए तुम कौञ्च सहित महिषासुर को पराक्रमपूर्वक अग्नि-प्रदत्त शक्ति से मार डालो । (९७)

इन्द्र का वचन सुनकर क्रोध से रक्त नेत्रों वाले कर्षणे हुये कुमार ने शतमतु इन्द्र से कहा । (९८)

हे मूढ घृत्रारि ! तुम्हारी बाहों एवं शरीर में कितना बल है जिससे तुम मुझपर आक्रमण कर रहे हो ? तुम निग्रय ही बुद्धिमान् नहीं हो । (९९)

सहस्राक्ष इन्द्र ने उनसे कहा—हे गुह ! मैं तुमसे बलवान् हूँ। गुह ने इन्द्र से कहा—यदि तुम बलवान् हो तो आज, युद्ध करो । (१००)

तब इन्द्र ने कहा—हे कृत्तिसानन्दन ! हम दोनों में जो पहले कौञ्च पर्वण की प्रदक्षिणा कर संजगा वही बलवान् समझा जायेगा । (१०१)

इस बात को सुनकर स्कन्द मयूर छोड़कर पैदल प्रदक्षिणा करने के लिये वेग पूर्वक चल पड़े । (१०२)

कृत्वा तस्यौ गुहोऽभ्येत्य मूर्धं किं संस्थितो भवान् ॥ १०३
 तमिन्द्रः प्राह कौटिल्यं मया पूर्वं प्रदक्षिणः ।
 कृतोऽस्य न स्वया पूर्वं कुमारः शकमप्रवीत् ॥ १०४
 मया पूर्वं मया पूर्वं विवदन्तौ परस्परम् ।
 प्राण्योचतुर्महेशाय ब्रह्मणे माधवाय च ॥ १०५
 अथोवाच हरिः स्कन्दं पण्डुमहसि पर्वतम् ।
 योऽयं वक्ष्यति पूर्वं स भविष्यति महानलः ॥ १०६
 तन्माधववचः श्रुत्वा क्रौञ्चमभ्येत्य पावकिः ।
 पप्रच्छाद्रिमिदं केन कृतं पूर्वं प्रदक्षिणम् ॥ १०७
 इत्येवमुक्तः क्रौञ्चस्तु प्राह पूर्वं महामतिः ।
 चकार गोत्रभिन् पश्चात्तथा कृतमयो गुह ॥ १०८
 एवं ब्रुवन्त क्रौञ्चं स क्रोधात्प्रस्फुरिताधरः ।

निभेद शक्त्या कौटिल्यो महिषेण समं तदा ॥ १०९
 तस्मिन्हृतेऽथ तनये बलवान् सुनाभो
 वेगेन मूमिधरपार्थिवजस्तयागात् ।
 ब्रह्मेन्द्ररुद्रमसदधिवसुप्रधाना
 जग्मुर्दिवं महिषमीक्ष्य हतं गुहेन ॥ ११०
 स्वमातुलं वीक्ष्य बली कुमारः
 शक्तिं समुत्पाद्य निहन्तुकामः ।
 निवारितश्चक्रधरेण वेगा-
 दालिङ्ग्य दोम्पां गुरुरित्युदीर्य ॥ १११
 सुनाभमभ्येत्य हिमाचलस्तु
 प्रगृह्य हस्तेऽन्यत एव नीतवान् ।
 हरिः कुमारं सशिराण्डिनं नय-
 द्वेगादिवं पन्नगशत्रुपत्रः ॥ ११२
 ततो गुहः प्राह हरिं सुरेशं
 मोहेन नष्टो भगवन् विवेकः ।

इन्द्र भी गजराज से उतर कर पैर से प्रदक्षिणा कर यहाँ आ गये । स्कन्द ने उनके निकट जाकर कहा—हे मूढ ! क्यों बैठे हो ? (१०३)

इन्द्र ने उन कौटिल्य (कुटिला के पुत्र स्कन्द) से कहा—मैंने तुमसे पहले ही इसनी प्रदक्षिणा कर लिया । कुमार ने इन्द्र से कहा—तुमने पहले नहीं किया है । (१०४)

“मैंने पहले किया, मैंने पहले किया” इस प्रकार आपस में विवाद करते हुए उन दोनों ने शकर, ब्रह्मा एवं विष्णु से जाकर कहा । (१०५)

तदनन्तर विष्णु ने स्कन्द से कहा—तुम पर्वत से पूछो वह जिसे पहले आया हुआ कहेगा, वही महाबलवान् माना जायेगा । (१०६)

माधव की वह बात सुनकर अग्निनन्दन ने क्रौञ्च पर्वत के निकट जाकर उससे यह पूछा कि पहले किसने प्रदक्षिणा की है ? (१०७)

इस बात को सुनकर महामति क्रौञ्च ने कहा—हे गुह ! पहले इन्द्र ने प्रदक्षिणा की तदनन्तर तुमने की है । (१०८)

ऐसा कहने वाले क्रौञ्च को क्रोध से अचर बपाते हुए उस कौटिल्य (कुटिलानन्दन कुमार) ने शक्ति के प्रहार से

महिषासुर के साथ विदीर्ण कर दिया । (१०९)

उस पुत्र के बारे जाने पर गिरिराजतनय बलवान् सुनाभ वेगपूर्वक वहाँ आये । ब्रह्मा, इन्द्र, रुद्र, वायु, अधिनीकुमार, वसु आदि देवता गुह के द्वारा महिष को मारा गया देखकर स्वर्ग चले गये । (११०)

अपने मातुल को देखने के उपरान्त बलवान् कुमार ने शक्ति लेकर (उसे) नारना चाहा । किन्तु विष्णु ने वेगपूर्वक मुजाओं से आलिङ्गन करते हुए “ये गुरु हैं” ऐसा कहकर उन्हें रोक दिया । (१११)

हिमालय सुनाभ के पास आये एवं उनका हाथ पकड़ कर दूसरी ओर ले गये तथा गरुडवाहन हरि मयूर सहित कुमार को वेग पूर्वक स्वर्ग ले गये । (११२)

तदनन्तर गुह ने सुरेश्वर हरि से कहा—“हे भगवन् ! मोह से मेरा विवेक नष्ट हो गया । मैंने अपने ममेरे भाई को मारा है । अतः मैं अपने शरीर पर शोषण

भ्राता मया मातुलजो निरस्त-
 स्तस्मात् करिष्ये स्वशरीरशोपम् ॥ ११३
 तं प्राह विष्णुर्ब्रज तीर्थधर्मं
 पृथुदकं पापतरोः कुठारम् ।
 स्नातवौषवत्यां हरमौक्ष्य भक्त्या
 भविष्यसे सूर्यसमप्रभावः ॥ ११४
 इत्येवमुक्तो हरिणा कुमार-
 स्त्वन्भ्येत्य तीर्थं प्रसमीक्ष्य शशुम् ।
 स्नातवाच्यं देवान् स रविप्रकाशो
 जगाम शैलं सदन हरस्य ॥ ११५
 सुचक्रनेत्रोऽपि महाभ्रमे तप-
 श्रचार शैले पवनाशनस्तु ।
 आराधयानो द्रुपमध्वज तदा
 हरोऽस्य तुष्टो वरदो पभूव ॥ ११६
 देवात् स वने वरमायुधार्थं

चक्र तथा वै रिपुबाहुपण्डम् ।
 छिन्द्याद्यथा त्वप्रतिमं कोण
 बाणस्य तन्मे भगवान् ददातु ॥ ११७
 तमाह शंभुर्ब्रज दत्तमेतद्
 वरं हि चक्रस्य तवायुधस्य ।
 बाणस्य तद्बाहुबल प्रवृद्धं
 सच्छेत्स्यते नात्र विचारणाऽस्ति ॥ ११८
 वरे प्रदत्ते त्रिपुरान्तवनेन
 गणेश्वरः स्कन्दसुपाजगाम ।
 निपत्य पादौ प्रतिबन्ध हृष्टो
 निवेदयामास हरप्रसादम् ॥ ११९
 एवं तवोक्त महिपासुरस्य
 वधं त्रिनेत्रात्मजशक्तिभेदात् ।
 क्रीडस्य मृत्युः शरणागतार्थं
 पापापहं पुण्यविवर्धनं च ॥ १२०

इति श्रीवामनपुराणे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

करूँगा । (११३)
 विष्णु ने उनसे कहा—हे कुमार ! तुम पापरूपी
 वृक्ष के लिये कुठार स्वरूप भ्रेष्ट तीर्थं पृथुदक में जाओ ।
 वहाँ ओषवती के जल में स्नान कर भक्तिपूर्वक महादेव का
 दर्शन करने से तुम सूर्य के समान प्रभायुक्त हो
 जाओगे । (११४)
 हरि के ऐसा कहने पर कुमार (पृथुदक) तीर्थ में गये
 रथ चढ़ाकर महादेव का दर्शन किया । स्नान करने के
 उपरान्त देवताओं की पूजा कर सूर्य के समान प्रभायुक्त हो
 के महादेव के गृहभूत पयत पर चले गये । (११५)
 सुचक्रनेत्र नामक गणेश्वर वायु मात्र भक्षण कर पर्वत
 पर महाभ्रम में शरर की आराधना करता हुआ तपस्या
 करने लगा । तब प्रसन्न होकर शक्र उसे वर देने के लिए
 उद्यत हुए । (११६)
 उसने अस्त्र के निमित्त वर माँगा । 'हे भगवन् ! शत्रु

क बाहु समूह को काटने वाला ऐसा अनुपम चक्र मुझे दे
 जिससे मैं दास से ही बाणासुर की बादलों को काट
 सकूँ । (११७)
 महादेव ने उससे कहा—जाओ । तुमने चक्र
 आयुध के निमित्त जो वर माँगा, मैंने उसे दिया । यह
 निस्तन्देह बाणासुर के अतिशय बड़े हुए बाहुबल को
 काटेगा । (११८)
 त्रिपुरान्तक महेश्वर के वर देने पर गणेश्वर स्कन्द के
 पास गया और उनके चरणों में गिरकर चन्दना करने के
 उपरान्त उनसे प्रसन्नता पूर्वक महादेव की कृपा का वर्णन
 किया । (११९)
 इस प्रकार मैंने तुमसे शंकरपुत्र द्वारा शक्ति से महिपा
 सुर के मारे जाने का वर्णन किया । शरणागत के लिये
 क्रीड की मृत्यु हुई । यह आख्यान पापनाशक एवं
 पुण्यवर्धक है । (१२०)

श्रीवामनपुराण में बत्तीसवाँ अध्याय समाप्त ॥ ३२ ॥

नारद उवाच ।

योऽसौ मन्त्रवतां प्राप्नो दैत्यानां शरताडितः ।
स केन वद् निर्भिन्नः श्रेण दितिजेश्वरः ॥ १

पुलस्त्य उवाच ।

आसीन्नृपो रघुकुले रिपुजिन्महर्षे
तस्यात्मजो गुणगणैकनिर्धिर्महात्मा ।

शूरोऽरिसैन्यदमना बलवान् सुहृत्सु
विप्रान्धदीनकृपणेषु समानभावः ॥ २

श्रुतध्वजो नाम महान् महीधान्
स गालवार्थे तुरगाधिरूढः ।

पातालकेतुं निजघान पृष्ठे
बाणेन चन्द्रार्थनिभेन वेगात् ॥ ३

नारद उवाच ।

किमर्थं गालवस्यासौ साधयामास सचमः ।
येनासौ पवित्रा दैत्यं निजघान नृपात्मजः ॥ ४

पुलस्त्य उवाच ।

नारद ने कहा—आप यह बतलाये कि दैत्यों के मन्त्रणा करते समय आने वाले बाण से बिन्दु दैत्यश्रेष्ठ को किसने मारा था ? (१)

पुलस्त्य ने कहा—हे महर्षे ! रघुकुल में रिपुजित राजा थे । उनको श्रुतध्वज नामक सभी गुणों का निधि, महात्मा, शूर, शत्रुसैन्यनाशक, बलवान्, सुहृदों, ब्राह्मणों, अर्थों, वरिष्ठों एवं कृपणों में समान भाव रखने वाला महा मनस्वी पुत्र था । उस ने गालव के लिए अश्व पर सवार होकर अर्धे चन्द्रतुल्य बाण के द्वारा बड़े वेग से पातालकेतु की पीठ में आपात किया । (२-३)

नारद ने कहा—उस उस श्रेष्ठ राजपुत्र ने बाण से उस दैत्य के ऊपर प्रहार कर गालव का क्या कार्य सम्पन्न किया ? (४)

पुलस्त्य ने कहा—प्राचीन काल में महर्षि गालव

पुरा तपस्तप्यति गालवर्षि-

महाश्रमे स्वे सततं निविष्टः ।

पातालकेतुस्तपसोऽस्य विघ्नं
करोति मौह्यात् स समाधिमङ्गम् ॥ ५

न चेप्यतेऽसौ तपसो व्ययं हि
शक्तोऽपि कर्तुं त्वथ भस्मसात् तम् ।

आकाशमीक्ष्याथ स दीर्घमुष्णं
सुमोच निःश्वांसमनुत्तमं हि ॥ ६

ततोऽम्बराद् वाजिवरः पपात
बभूव वाणी त्वशरीरिणी च ।

असौ तुरङ्गो बलवान् क्रमेत्
अह्ना सहस्राणि तु योजनानाम् ॥ ७

स तं प्रमृष्ट्वाश्ववरं नरेन्द्रं
श्रुतध्वजं योज्य तदाचशस्त्रम् ।

स्थितस्तपस्येव तजो महर्षि-
दैत्यं समेत्य विशिखैर्नृपजो विभेद ॥ ८

३३

अपने आश्रम में सदा रहते हुए तपस्या कर रहे थे । दैत्य पातालकेतु मूर्खतावश उनकी तपस्या में विघ्न और उनकी समाधि का भंग करता था । (५)

उसको भस्म करने में समर्थ होते हुए भी वे तपस्या का व्यय नहीं करना चाहते थे । उन्होंने आकाश की ओर देरकर दीर्घ, उष्ण एवं अत्युत्तम निःश्वास छोड़ा । (६)

तदनन्तर आकाश से एक सुन्दर अश्व गिरा और आकाशवाणी हुई कि यह बलवान् अश्व एकदिन में सहस्र योजन जा सकता है । (७)

श्रुतध्वज नामक राजा श्रुतध्वज को यह अश्व देकर वे महर्षि तप करने लगे । तदनन्तर दैत्य के समीप जाकर राजपुत्र ने उसे बाण द्वारा आदत किया । (८)

नारद उवाच ।

केनाम्बरतलाद् वाजी निसृष्टो वद सुव्रत ।
वाक् कस्याऽदेहिनी जाता परं कौतूहलं मम ॥ ९

पुलस्त्य उवाच ।

विश्वावसुर्नाम महेन्द्रगायनो
गन्धर्वराजो बलवान् यशस्वी ।
निसृष्टवान् भूवलये तुरङ्गं
श्रुतध्वजस्यैव सुतार्थमाशु ॥ १०

नारद उवाच ।

कोऽर्थो गन्धर्वराजस्य येनाप्रैपीमहाजवम् ।
राज्ञः कुवलयाम्बस्य कोऽर्थो नृपसुतस्य च ॥ ११

पुलस्त्य उवाच ।

विश्वावसोः शीलगुणोपपन्ना
आसीत्पुरंध्रीषु वरा त्रिलोके ।
लावण्यराशिः शशिकान्तिवत्या
मदालसा नाम मदालसैव ॥ १२
तां नन्दने देवरिपुस्वरस्वी
संक्रोडतीं रूपवतीं ददर्श ।

नारद ने कहा—हे सुव्रत ! यह मतलब कि किसने
आकाश से अश्व गिराया एवं अशरीरिणी वाणी
किसकी थी ? (इस विषय में) मुझे अत्यन्त कौतूहल
है । (९)

पुलस्त्य ने कहा—महेन्द्र के गायक बलवान् विश्वावसु
नामक यशस्वी गन्धर्वराज ने अपनी पुत्री के लिए
श्रुतध्वज के निमित्त उस समय अश्व को पृथ्वी पर
गिराया था । (१०)

नारद ने कहा—महाबेगवान् अश्व भेजने में गन्धर्व-
राज का क्या प्रयोजन था तथा राजपुत्र राजा कुवलयाम्ब
का इसमें क्या प्रयोजन था ? (११)

पुलस्त्य ने कहा—त्रिशावसु की मद से अलसायी
मदालसा नाम की एक कन्या थी । यह शील-गुण सम्पन्न,
त्रिलोक की स्त्रियों में श्रेष्ठ, सुन्दरता की राशि और चन्द्रमा
की धान्ति के समान थी । (१२)

नन्दनयन में मीठा कर रही उस रूपवती को
देवराज पातालकेतु ने देखा और बेगपूर्वक उसे उठा

पातालकेतुस्तु जहार तन्वीं

तस्यार्थतः सोऽश्ववरः प्रदत्तः ॥ १३

हृत्वा च दैत्यं नृपतेस्तनूजो

लब्ध्वा वरोरुमपि संस्थितोऽभूत् ।

दृष्टो यथा देवपतिर्महेन्द्रः

शक्या तथा राजसुतो मृगाक्ष्या ॥ १४

नारद उवाच ।

एवं निरस्ते महिषे तारके च महासुरे ।

हिरण्याक्षसुतो धीमान् किमचेष्टत वै पुनः ॥ १५

पुलस्त्य उवाच ।

तारकं निहतं दृष्ट्वा महिषं च रणेऽन्धकः ।

क्रोधं चक्रे सुदुर्बुद्धिर्देवानां देवसैन्यहा ॥ १६

ततः स्वल्पपरीवारः प्रगृह्य परिचं करे ।

निर्जगामाय पातालाद् विचचार च मेदिनीम् ॥ १७

ततो विचरता तेन मन्दरे चारुमन्दरे ।

ले गया । उसी के निमित्त यह श्रेष्ठ अश्व दिया गया
था । (१३)

दैत्य को मारने के उपरान्त श्रेष्ठ नितम्बों वाली स्त्री
को प्राप्त कर राजपुत्र संस्थित हुए । मृगनयनी के साथ
राजपुत्र इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे जैसे इन्द्राणी के
साथ इन्द्र शोभित होते हैं । (१४)

नारद ने कहा—इस प्रकार महासुर तारक और महिष
के निहत होने पर हिरण्याक्ष के बुद्धिमान पुत्र (अन्धक)
ने पुनः क्या किया ? (१५)

पुलस्त्य ने कहा—तारक और महिष दोनों को युद्ध
में निहत हुआ देवराज देवसैन्यों का नाशक, अत्यधिक
दुर्बुद्धियाला, अन्धक देवताओं पर क्रुद्ध हुआ । (१६)

तदनन्तर स्वल्प सेना के साथ वह हाथ में परिच लेकर
पाताल से निकल पड़ा और पृथ्वी पर घूमने
लगा । (१७)

तदुपरान्त घूमते हुए उसने सुन्दर कन्दराओं से

रटा गौरी च गिरिजा सखीमध्ये स्थिता शुभा ॥ १८
 ततोऽभूत् कामवापार्षत्ः सहमैनान्धकोऽसुरः ।
 तां दृष्ट्वा चारुसर्वाङ्गीं गिरिराजसुता वने ॥ १९
 अथोवाचासुरो मूढो वचनं मन्मथान्धकः ।
 कस्येयं चारुमर्वाङ्गी वने चरति सुन्दरी ॥ २०
 इयं यदि भवेन्नैव ममान्ध, पुरवासिनी ।
 तन्मदीयेन जीवेन क्रियते निष्कण्ठेन किम् ॥ २१
 यदस्यास्तनुमध्याया न परिष्वङ्गवानहम् ।
 अतो घिहृ मम रूपेण किं स्थियेण प्रयोजनम् ॥ २२
 स मे वन्दुः स सचिवः स भ्राता साम्परायिकः ।
 यो मामसितकेशं ता योजयेत् मृगलोचनाम् ॥ २३
 इत्थं वदति दैत्येन्द्रे प्रह्लादो बुद्धिसागरः ।
 पिधाप कर्णो हस्ताभ्यां शिरःकम्प वचोऽश्रवीत् ॥ २४
 मा मेवं वद दैत्येन्द्र जगतो जननी त्वियम् ।
 लोकनाथस्य भार्येयं शंकरस्य त्रिशूलिनः ॥ २५

युक्त मन्दर पर्वत पर सरियों के बीच में गिरिनन्दिनी वल्गानी गौरी को देखा । (१८)
 वन में उस सर्वाङ्गसुन्दरी गिरिराजनन्दिनी को देखकर अन्धकासुर सहसा काम वाण से पीड़ित हो गया । (१९)
 तदनन्तर उस मूढ कामान्ध असुर अन्धक ने कहा—वन में विचरण कर रही यह सर्वाङ्गसुन्दरी ललना किसकी है ? (२०)
 यदि यह मेरी अन्तःपुर निवासिनी न हुई तो मेरे इस निष्कल जीवन से क्या लाभ ? (२१)
 यदि इस वृशोदरी सुन्दरी ललना का आलङ्घन मुझ प्राप्त न हुआ तो मेरे इस स्थिर रूप को धिक्कार है । इसना क्या प्रयोजन है ? (२२)
 यही मेरा वन्दु, यही सचिव, यही भ्राता तथा यही युद्ध का साथी है जो इस बाले केश वाली मृगलोचना सुन्दरी को मुझसे मिला दे । (२३)
 दैत्येन्द्र के ऐसा कहने पर बुद्धिमान प्रह्लाद दोनों दायों से वानों को उकरकर चिर हिलाते हुए कहने लगे—
 हे दैत्येन्द्र ! ऐसा मत कहो । यह तो सप्तरा की जननी और लोकनाथ, त्रिशूलधारी शङ्कर की पत्नी हैं । (२४)
 (२५)

मा कुरुष्व सुदुर्बुद्धि सद्यः कुलविनाशिनीम् ।
 भवतः परदारोप मा, निमज्ज रसातले ॥ २६
 सत्सु कुत्सितमेवं हि असत्स्वपि हि कुत्सितम् ।
 शत्रवस्ते प्रकुर्वन्तु परदारावगाहनम् ॥ २७
 किञ्चित् त्वया न श्रुत दैत्यनाथ
 गीत श्लोकं गाधिना पार्थिवेन ।
 दृष्ट्वा मेन्यं विप्रधेनुप्रसक्तं
 तथ्य पथ्य सर्वलोके हितं च ॥ २८
 वरं प्राणास्त्याज्या न च पिशुनवादेऽभिरतिः
 वर मौनं कार्यं न च वचनमुक्तं यदनुत्तरम् ।
 वरं स्त्रीपैर्भाष्यं न च परकलत्राभिगमनं
 वरं भिक्षार्थित्यं न च परधनास्वादमसक्तम् ॥ २९
 स प्रह्लादवचः श्रुत्वा क्रोधान्धो मदनादितः ।
 इयं सा शत्रुजननीत्येवमुक्त्वा प्रदुष्टुवे ॥ ३०
 ततोऽन्वधान् दैत्या यन्ममुक्ता इवोपलाः ।

तुम तत्काल कुल का नाश करने वाली ऐसी दुर्बुद्धि मत करो । तुम्हारे लिए यह परलौ है । अतः रसातल में मत गिरो । (२६)
 सज्जनों तथा बुद्धों में भी अत्यन्त निन्दित ऐसा परलौ गमन (कर्म) आप के शत्रु करें । (२७)
 हे दैत्यनाथ ! विप्र की गौ के लिए आसक्त सैन्य को वेदपङ्क गाधिराज द्वारा कहे गये समस्त लोभ के लिये द्वितीयकारी, तथ्य एव पथ्य शृगक को क्या आप ने नहीं सुना है ? (२८)
 प्राणों का परित्याग करना अच्छा है, किन्तु चुगुल-खोरों की बात में आसक्ति उचित नहीं । मौन रहना अच्छा है, किन्तु झूठ बोलना अच्छा नहीं । नपुंसक होकर रहना ठीक है, किन्तु परलौगमन कभी उचित नहीं । भीष मौगना अच्छा है किन्तु दूसरे के धन का चार-चार आस्वादन करना उचित नहीं । (२९)
 प्रह्लाद का वचन सुनने के उपरान्त वामार्त्त अन्धक मोघान्ध होकर 'यही वह शत्रु की जननी' है यह कहते हुए दौड़ पड़ा । (३०)
 तदनन्तर अन्यान्य दानव यन्त्र से छूटे हुए पथर के सहज उसके पीछे दौड़े । अन्याय नन्दी ने हाथ में धनु

तान् रुरोध घलासन्दी वज्रोद्यतकरोऽन्धयः ॥ ३१
 मयतारपुरोगास्ते धारिता द्रवितास्तथा ।
 कुलिनेनाहतास्त्वं जग्मुर्भोता दिशो दक्ष ॥ ३२
 तानर्दितान् रणे दृष्ट्वा नन्दिनाऽन्धकदानवः ।
 परिधेण समाहृत्य पातयामास नन्दिनम् ॥ ३३
 शैलादिं पतित दृष्ट्वा धावमान तथान्धकम् ।
 शतरूपाऽभवद् गौरी भयात् तस्य दुरात्मनः ॥ ३४
 ततः स देवीगणमध्यसंस्थितः
 परिभ्रमन् भाति महाऽसुरेन्द्रः ।
 यथा वने मत्तकरी परिभ्रमन्
 कोशुमध्ये मदलोलदृष्टिः ॥ ३५
 न परिज्ञातवांस्तत्र का तु सा गिरिकन्यका ।
 नात्राश्रयं न पश्यन्ति तत्वारोऽसौ सदैव हि ॥ ३६
 न पश्यतीह जात्यन्धो रागान्धोऽपि न पश्यति ।
 न पश्यति मदोन्मत्तो लोभाक्रान्तो न पश्यति ।
 सोऽपश्यमानो गिरिजां पश्यन्नपि तदान्धकः ॥ ३७

लेकर धलपूर्वक उन्हें रोक दिया । (३१)

वज्र के प्रहार से रोके गये एव भगाये गये वे मय एव
 तारकादि सभी देव्य मयभीत होकर दशो दिशाओं में भाग
 गये । (३२)

युद्ध में उन सभी को नन्दी द्वारा पीडित देखकर
 अन्धरासुर ने नन्दी को परिध से मान्त्र गिरा
 दिया । (३३)

नन्दी को गिरा हुआ और अन्धक को दीड़ पर आते देखकर
 गौरी ने उस दुरात्मा के भय से सैकड़ों रूप धारण कर
 लिया । (३४)

तदनन्तर देवियों के मध्य भ्रमण कर रहा महान्
 असुरेन्द्र इस प्रहार सुशोभित हो रहा था जैसे घन में
 हथिनियों के बीच घूमता हुआ मद से चञ्चल दृष्टिपाला
 मतवाला हाथी सुशोभित होता है । (३५)

वह यह नदी जान राधा कि वनमें वह गिरिनन्दिनी
 कीन है ? इसमें कोई आश्चर्य नहीं है । क्योंकि संसार
 में ये चार प्रहार के व्यक्ति सदा ही नदी देखने । (३६)

प्रहारं नादद् तासां युवत्य इति चिन्तयन् ।
 ततो देव्या स दुष्टात्मा शतावर्या निराकृतः ॥ ३८
 कुट्टितः प्रवरैः शस्त्रैर्निपपात महीतरे ।
 योऽस्यान्धक निपवितं शतरूपा विभावरी ॥ ३९
 तस्मात् स्थानादपाकम्य गताऽन्तर्धानमम्बिका ।
 पतितं चान्धकं दृष्ट्वा दैत्यदानवयुथपाः ॥ ४०
 कुर्वन्तः सुमहाशब्दं प्राद्रवन्त रणार्थिनः ।
 तोषामापततां शब्दं श्रुत्वा तस्यौ गणेश्वरः ॥ ४१
 आदाय वज्रं बलवान् मघवानिव कोपितः ।
 दानवान् समयान् वीरः पराजित्य गणेश्वरः ॥ ४२
 समभ्येत्याम्बिका दृष्ट्वा वचन्दे चरणौ शुभ्रौ ।
 देवी च ता निजा मूर्तीः प्राह गच्छध्वमिच्छया ॥ ४३
 विहरध्वं महीपृष्ठे पूज्यमाना नरैरिह ।
 वसतिर्भवतीनां च उद्यानेषु वनेषु च ॥ ४४
 वनस्पतिषु वृक्षेषु गच्छध्वं विगतज्वरा ।
 तास्त्वेषुक्ताः शैलेभ्यः प्रणिपत्याम्बिकां क्रमात् ॥ ४५

जन्मान्व नदी देखता, रागान्ध भी नही देखता, मदोन्मत्त
 को दिखाई नहीं पड़ता, एव लोभाक्रान्त को नदी
 दिखाई पड़ता । अत उस समय अन्धक देखते हुए भी
 गिरिजा को नहीं देख पाया । (३७)

उन सभी को युवती समझकर उस दानव ने उन पर
 प्रहार नहीं किया । तदनन्तर शतावरी देवी ने उस दुष्टात्मा
 पर प्रहार किया । (३८)

श्रेष्ठ शस्त्रों द्वारा हुचले जाने से वह पृथ्वी पर गिर पड़ा ।
 अन्धक को गिरा हुआ देख कर शतरूपा विभावरी अम्बिका
 उस स्थान से दृष्टकर अन्तर्हित हो गयीं । अन्धक को
 गिरा हुआ देखकर दैत्यों एव दानवों के यूथपति महाय
 शब्द करने हुए युद्ध के लिये दौड़े । आक्रमण करने वाले वन
 (दैत्यों) के शब्द को सुनकर गणेश्वर रडे हो गये । (३९ ४१)

इन्द्र के सहस्र वज्र लेकर बृद्ध गणेश्वर ने मय सहित
 दानवों को पराजित कर अम्बिका के पास जाकर
 उनके शुभ चरणों में प्रणाम किया । देवी ने भी अपनी
 उन मूर्तियों से कदा—तुम सभी यथेच्छ स्थानों में जाओ ।
 एवं मनुष्यों से पूजित होती हुई पृथ्वी पर भ्रमण
 करो । तुम सभी वा निजास ध्यानो, वनो, वनस्पतियों

दिक्षु सवारु जग्मुस्ताः स्तूयमानाश्च किन्नरैः ।
अन्धकोऽपि स्मृतिं लब्ध्वा अपश्यन्नद्रिनन्दिनीम् ।
स्ववलं निजितं दृष्ट्वा ततः पातालमाद्रवत् ॥ ४६
ततो दुरात्मा स तदान्धको मृने

पातालमध्येत्य दिवा न भुङ्क्ते ।
रात्रौ न शैते मदनपुताडितो
गौरौ स्मरन्कामवलाभिपन्नः ॥ ४७

इति श्रीवामनपुराणे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

३४

नारद उवाच ।

एक गतः शंकरो ह्यासीद्येनाम्बा नन्दिना सह ।
अन्धकं योधयामास एतन्मे वक्तुमर्हसि ॥ १
पुलस्त्य उवाच ।
यदा वर्षसहस्रं तु महामोहे स्थितोऽभवत् ।
तदाप्रभृति निस्तेजाः क्षीणवीर्यः प्रदृश्यते ॥ २
स्वमात्मानं निरीक्ष्याथ निस्तेजोङ्गं महेश्वरः ।

एवं वृक्षों में होमा । अब तुम सभी निश्चित होकर
जाओ । पार्वती के ऐसा कहने पर वे सभी अम्बिका को
प्रणाम कर किन्नरों से स्तुत होती हुई समस्त दिशाओं
में चली गयीं । अन्धक भी चेतना प्राप्त करने के उपरान्त
गिरिजा को न देखकर तथा अपनी सेना को पराजित
देखकर पाताल में चला गया । (४२-४६)

श्रीवामनपुराण में तैत्तिरीय अध्याय समाप्त ॥३३॥

३४

नारद ने कहा—आप मुझे यह बातें कि शङ्कर
वहाँ चले गये थे जिससे नन्दी सहित अम्बिका ने
अन्धक से युद्ध किया । (१)
पुलस्त्य ने कहा—वे जिस समय एक सहस्र वर्ष तक
महामोह में स्थित थे वही समय से वे निस्तेज एवं शक्ति-
हीन प्रतीत होने लगे । (२)
बुद्धिमानों ने भेष महेश्वर ने स्वयं अपने अङ्गों को

उपोष्य तथा चक्रे मतिं मतिमतां वरः ॥ ३

स महाव्रतमुत्पाद्य समाश्रास्याम्बिकां विभुः ।
शैलादिं स्थाप्य गोप्सरं विचचार महीतलम् ॥ ४
महामुद्रार्पितश्रीवो महाहिक्वतकुण्डलः ।
पारयाणः कटीदेशे महाशङ्खस्य मेखलाम् ॥ ५
कपालं दक्षिणे हस्ते सन्धे गृह्य क्मण्डलुम् ।

हे मुने ! तदनन्तर कामवाण से आहत एवं काम के वेग
से पीड़ित दुरात्मा अन्धक पाताल में जाकर गौरी का
स्मरण करता हुआ न दिन में खाता था और रात में
सोता था । (४७)

तेजरहित देखकर तपस्या करने का निश्चय किया । (३)
वे विभु शङ्कर महाव्रत का अत्यल्पन करने के
उपरान्त अम्बिका को आश्राय किये और शैलादि (नन्दी)
को रक्षक नियुक्त कर पृथ्वी पर घूमने लगे । (४)
उन्होंने गङ्गे में महामुद्रा धारण कर, महासर्पों का
कुण्डल एवं कटि-प्रदेश में महाशङ्ख की मेखला धारण
की । (५)
दाहिने हाथ में नरकपाल एवं बायें हाथ में क्मण्डलु

एकाह्वसो वृक्षे हि शैलसानुनदीष्वटन् ॥ ६
 स्थानं त्रैलोक्यमास्थाय मूलाहारोऽम्बुभोजनः ।
 वाय्वाहारस्तदा तस्थौ नम्रार्णशतं क्रमात् ॥ ७
 ततो वीटां हृद्ये क्षिप्य निरुच्छ्वासोऽभवद् यतिः ।
 विस्तृते हिमवत्शृष्टे रम्ये समशिलातले ॥ ८
 ततो वीटा विदार्यैव कपालं परमेष्ठिनः ।
 सार्चिष्मती जटामध्यान्निपण्णा घरणीतले ॥ ९
 वीटया तु पतन्त्याऽद्रिर्दारितः क्ष्मासमोऽभवत् ।
 जावस्तीर्थवरः पुण्यः केदार इति विश्रुतः ॥ १०
 ततो हरो वरं प्रादात् केदाराय वृषध्वजः ।
 पुण्यवृद्धिकरं ब्रह्मन् पापघ्नं मोक्षसाधनम् ॥ ११
 ये जल तावके तीर्थे पीत्वा सपमिनो नराः ।
 मधुमासनिवृत्ता ये ब्रह्मचारित्रते स्थिताः ॥ १२
 पुष्पासाद् धारयिष्यन्ति निवृत्ताः परपाकतः ।
 तेषां हृत्पद्मेऽप्येव महिद्भ्रं सविता ध्रुवम् ॥ १३

लेखर वे वृक्षों के नीचे, पहाड़ों के शिखरों पर तथा नदियों के किनारे घूमने लगे । (६)

क्रमशः मूल, अम्बु एव वायु का आहार करते हुए वे तीनों लोगों में नौ सौ वर्ष व्यतीत किये । (७)

तदनन्तर हिमालय के ऊपर रमणीय तथा सम शिलातल पर आसीन उन यति ने मूल में वीटा लगाकर भासाव रोध किया । (८)

तदुपरान्त शङ्कर ने कपाल को विदारित कर ज्वालामुखी वृक्ष वीटा जटा के मध्य से निकली घष पृथ्वी पर गिर पड़ी । (९)

उस वीटा के गिरने से पर्यन्त विद्रीर्ण होकर समतल पृथ्वी वाला हो गया और वहाँ केदार नामक विस्तृत तीर्थ हुआ । (१०)

हे ब्रह्मन् ! तदनन्तर वृषध्वज महादेव ने केदार को पुण्यवृद्धक, पापनाशक और मोक्षसाधक कर दिया । (११)

माधु, मास ०४ परामभोजन का त्यागकर तथा ब्रह्मचर्य ब्रत धारण कर तुम्हारा जल पीने हुए जो सयमी मनुष्य वहाँ ९९ मास तक स्थित रहेंगे उनके हृत्पद्म में निश्चय ही मेरा छिद्र प्रकट होगा । (१२-१३)

न चास्य पापाभिरर्तर्भविष्यति कदाचन ।
 पितृणामक्षयं श्राद्धं भविष्यति न संशयः ॥ १४
 स्नानदानतपांसीह होमजप्यादिकाः क्रियाः ।
 भविष्यन्त्यक्षया नृणां मृतानामपुनर्भवः ॥ १५
 एतद् वरं हरात् तीर्थं प्राप्य पुष्पाति देवताः ।
 पुनाति पुंसां केदारस्त्रिनेत्रवचनं यथा ॥ १६
 केदाराय वरं दत्त्वा जगाम त्वरितो हरः ।
 स्नातुं भानुसुतां देवीं कालिन्दीं पापनाशिनीम् ॥ १७
 तत्र स्नात्वा शुचिर्भूत्वा जगामाय सरस्वतीम् ।
 वृतां तीर्थशतैः पुण्यैः प्लक्ष्वां पापनाशिनीम् ॥ १८
 अचतीर्णस्ततः स्नातुं निमग्नश्च महाम्भसि ।
 द्रुपदां नाम गायत्रीं जनापान्तर्जले हरः ॥ १९
 निमग्ने शंकरे देव्यां सरस्वत्यां कलिप्रिय ।
 साग्रः सरस्वरो जातो न चोन्मज्जत ईधरः ॥ २०
 एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन् भुवनाः सम सार्चयाः ।

वे कभी पाप में रत नहीं होंगे तथा नि सन्देह उनके द्वारा किया गया पितरों का श्राद्ध अभय होगा । (१४)

मनुष्यों द्वारा यहाँ की गई स्नान, दान, तपस्या, होम एवं जप आदि क्रियाएँ अक्षय होंगी तथा मरने पर उनका पुनर्जन्म नहीं होगा । (१५)

महादेव से ऐसा वर पाकर वह केदारतीर्थ त्रिनेत्र महादेव के वचन के अनुसार लोगों को पवित्र एवं देवताओं को पुष्ट करने लगा । (१६)

केदार को वर देकर महादेव सूर्यतनया पापविनाशिनी, देवी कालिन्दी यमुना में स्नान करने के लिए शीघ्र चले गये । (१७)

वहाँ स्नानकर तथा पवित्र होकर भगवान् शङ्कर सैद्धों पुण्यतीर्थों से विधि हुई पापनाशिनी प्लक्ष्वा वृक्ष से श्लपन्न सरस्वती के पास गये । (१८)

तदनन्तर वे स्नानार्थ उतरे एवं महान् जल में निमग्न होकर द्रुपदा गायत्री का जप करने लगे । (१९)

हे कलिप्रिय ! देवी सरस्वती के जल में शङ्कर के निमग्न हुए एक वर्ष से अधिन धीत गया किन्तु भगवान् ऊपर नहीं उठे । (२०)

हे ब्रह्मन् ! उसी समय सागरो सहित सत भुजा हिलने लगे और तारकाओं के साथ नक्षत्र पृथ्वी पर गिने

चेतुः पेतुर्धरण्यां च नक्षत्रास्तारकैः सह ॥ २१
 आसनेभ्यः प्रचलिता देवाः शक्रपुरोगमाः ।
 स्वस्त्वस्तु लोकेभ्य इति जपन्तः परमर्षयः ॥ २२
 ततः क्षुब्धेषु लोकेषु देवा ब्रह्माणमागमन् ।
 दृष्ट्वोचुः किमिदं लोकाः क्षुब्धाः संशयमागताः ॥ २३
 तानाह पद्मसंभूतो नैतद् वेद्मि च कारणम् ।
 तदागच्छत वो युक्तं द्रष्टुं चक्रगदाधरम् ॥ २४
 पितामहेनैवमुक्ता देवाः शक्रपुरोगमाः ।
 पितामहं पुरस्कृत्य मुरारिसदनं गताः ॥ २५

नारद उवाच ।

कोऽसौ मुरारिर्दिव्यं देवो यश्चो नु किन्नरः ।
 दैत्यो राक्षसो वापि पार्थिवो वा तदुच्यताम् ॥ २६
 पुलस्त्य उवाच ।

योऽसौ रजःसत्त्वमयो गुणवांश्च तमोभयः ।
 निर्गुणः सर्षगो व्यापी मुरारिर्मधुसूदनः ॥ २७
 नारद उवाच ।

योऽसौ मुर इति ख्यातः कस्य पुत्रः स गीयते ।

लगे । (२१)
 इन्द्रप्रमुख देवता अपने-अपने आसनों से हिल उठे और
 महर्षि गण 'सत्तार का भस्त्रा हो' जप करने लगे । (२२)
 तदनन्तर लोको के क्षुब्ध होने पर देवगण ब्रह्मा के
 पास जाये और उन्हें देखकर पूछा—लोक क्षुब्ध होकर
 क्यों संशयमस्त हुए हैं ? (२३)
 पद्मपोनि ब्रह्मा ने उनसे कहा—इतना कारण मैं यहाँ
 जानता । तुम लोग आओ, (इसके लिए) चक्र तथा गदा
 धारण करने वाले विष्णु के पास जाना उचित है । (२४)
 पितामह के ऐसा कहने पर इन्द्रादि सभी देवता
 पितामह को आगे कर मुरारि के लोक में गये । (२५)
 नारद ने कहा—हे देवर्षि ! आप यह बतलायें कि ये
 मुरारि कौन हैं ? क्या देवता, यक्ष, किन्नर, दैत्य, राक्षस
 या मनुष्य हैं ? (२६)

पुलस्त्य ने कहा—सत्त्व रज तममय, गुणमय, निर्गुण,
 सर्वव्यापी मधुसूदन ही मुरारि नाम से प्रसिद्ध हैं । (२७)
 नारद ने कहा—आप मुझे यह बतलायें कि यह मुर
 नामधारी दानव किसका पुत्र था ? विष्णु के द्वारा युद्ध में
 वह कैसे मारा गया । (२८)

कयं च निहतः संख्ये विष्णुना तद् वदस्व मे ॥ २८
 पुलस्त्य उवाच । -

श्रूयतां कवयिष्यामि मुरासुरनिवर्हणम् ।
 विचित्रमिदमाख्यानं पुण्यं पापप्रणाशनम् ॥ २९
 कश्यपस्यौरसः पुत्रो मुरो नाम दनुर्भवः ।
 स ददर्श रणे शस्ताञ्च दितिपुत्राञ्च सुरोत्तमैः ॥ ३०
 ततः स मरणाद् भीतस्तप्त्वा वर्षगणान्महून् ।
 आराधयामास विभुं ब्रह्माणमपराजितम् ॥ ३१
 ततोऽस्य तुष्टो वरदः प्राह वत्स वरं वृणु ।
 रा च वझे वरं दैत्यो वरमेनं पितामहात् ॥ ३२
 यं यं करत्तेनाहं स्पृशेयं तमरे विभो ।
 स स मद्भक्तसंस्पृष्टस्त्वमरोऽपि मरत्वतः ॥ ३३
 घाटमित्याह भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ।
 ततोऽभ्यागान्महातेजा मुरः सुरगिरिं बली ॥ ३४
 समेत्याह्वयते देवं यक्षं किन्नरमेव वा ।
 न कश्चिद् युयुधे तेन समं दैत्येन नारद ॥ ३५
 ततोऽमरावतीं क्रुद्धः स गत्वा शक्रमाह्वयत् ।

पुलस्त्य ने कहा—सुनो ! मैं मुरासुर के वप की विचित्र
 पवित्र एवं पापनाशक कथा कहता हूँ । (२६)

दनु के गर्भ से कश्यप का मुर नामक औरस पुत्र
 उत्पन्न हुआ । उसने श्रेष्ठ देवों द्वारा युद्ध में दैत्यों को
 पराजित देखा । (३०)

तदनन्तर सूर्यु के भय से डरकर उसने अनेक वर्षों तक
 तपस्या कर अपराजित विभु ब्रह्मा की आराधना किया । (३१)
 तदनन्तर उसके ऊपर प्रसन्न होकर ब्रह्मा ने कहा—दे
 वत्स ! वर माँगो । उस दैत्य ने पितामह से यह वर
 माँगा । (३२)

हे विभो ! युद्ध में मैं जिसे कतल से स्पर्श करूँ वह
 मेरे हाथ के स्पर्श से अमर होते हुए भी मर जाय । (३३)
 लोकपितामह भगवान् ब्रह्मा ने कहा—ऐसा ही
 होगा । तदनन्तर महातेजस्वी बलवान् मुर सुरगिरि पर
 पहुँचा । (३४)

हे नारद ! वहाँ पहुँचकर उसने देवता, यक्ष, किन्नर
 आदि को युद्ध के लिये ललकारा, किन्तु किसी ने भी उसके
 साथ युद्ध नहीं किया । (३५)

तदनन्तर क्रुद्ध होकर वह अमरावती में गया एवं इन्द्र

न चास्य सह योद्धुं वै मतिं चक्रे पुरंदरः ॥ ३६
 ततः स करमुद्यम्य प्रविवेशामरावतीम् ।
 प्रविशन्तं न तं कश्चिन्निवारयितुमुत्सहेत् ॥ ३७
 स गत्वा शक्रसदनं प्रोवाचेन्द्रं मुरस्तदा ।
 देहि युद्धं महस्ताक्ष नो चेत् स्वर्गं परित्यज ॥ ३८
 इत्येवमुक्त्वा मुरुणा ब्रह्मन् हरिहयस्तदा ।
 स्वर्गराज्यं परित्यज्य भूचरः समजायत ॥ ३९
 ततो गजेन्द्रकुलिशौ हतौ शक्रस्य शत्रुणा ।
 सकलत्रो महातेजाः सह देवैः सुतेन च ॥ ४०
 कालिन्या दक्षिणे कूले निवेश्य स्वपुरं स्थितः ।
 मुरुधापि महाभोगान् बुभुजे स्वर्गसंस्थितः ॥ ४१
 दानवाश्चापरे रैद्रा भयतारपुरोगमाः ।
 मुरमासाय मोदन्ते स्वर्गे सुकृतिनो यथा ॥ ४२
 स कदाचिन्महीपृष्ठं समायातो महासुरः ।
 एकाकी कुञ्जराढः सरयुं निम्नगां प्रति ॥ ४३

स सरयवास्तटे वीरं राजानं सूर्यवंशजम् ।
 ददशे रघुनामानं दीक्षितं यज्ञकर्मणि ॥ ४४
 तमुपेत्यात्रचीद् दैत्यो युद्धं मे दीयतामिति ।
 नो चेन्निवर्ततां यज्ञो नेष्टव्या देवतास्त्वया ॥ ४५
 तमुपेत्य महातेजा मित्रावरुणसंभवः ।
 प्रोवाच बुद्धिमान् ब्रह्मन् वसिष्ठस्तपतां वरः ॥ ४६
 किं ते जितैर्नरैर्दैत्य अजितानुशासय ।
 प्रहर्तुमिच्छसि यदि तं निवारय चान्तकम् ॥ ४७
 स बली शासनं तुभ्यं न करोति महासुर ।
 तस्मिञ्जिते हि विजितं सर्वं मन्यस्व भूतलम् ॥ ४८
 स तद् वसिष्ठवचनं निशम्य दनुपुंगवः ।
 जगाम धर्मराजानं विजेतुं दण्डपाणिनम् ॥ ४९
 तमायान्तं यमः श्रुत्वा मत्वाऽवश्यं च संयुगे ।
 स समारुह्य महिषं केशवान्तिकमागमत् ॥ ५०
 समेत्य चाभिवाचैनं प्रोवाच मुरचेष्टितम् ।

को युद्ध के लिए ललराजे लया । किन्तु इन्द्र ने उसके साथ युद्ध करने का विचार नहीं किया । (३६)

तदुपरान्त हाथ उठाये हुए वह अमरावती में प्रविष्ट हुआ । किन्तु किसी ने भी उस प्रवेश करते हुए को रोकने का उत्साह नहीं किया । (३७)

तदन्तर इन्द्र के भवन में जाकर मुर ने इन्द्र से कहा— हे सहस्ताक्ष ! मुझसे युद्ध करो, अन्यथा स्वर्ग छोड़ दो । (३८)

हे ब्रह्मन् ! मुर के ऐसा कहने पर इन्द्र स्वर्ग का राज्य छोड़कर पृथ्वी पर विचरण करने लगे । (३९)

तदुपरान्त शत्रु ने इन्द्र के गजराज और वरुण को खीन लिया । महातेजस्वी इन्द्र अपनी पत्नी, पुत्र और देवताओं के साथ कालिन्दी के दक्षिण कूल पर अपना नगर बसाकर रहने लगे पर मुर भी स्वर्ग में रहते हुए महान् भोगों का उपभोग करने लगा । (४०-४१)

यम और तारक आदि दूसरे अर्यवर दानव भी मुर के पास पहुँच कर स्वर्ग में पुण्यवानों के समान आमोद प्रमोद करने लगे । (४२)

वह महासुर किसी समय पृथ्वी पर आया और अकेला हाथी पर सवार होकर सरयू नदी के तट पर उपस्थित हुआ । (४३)

उसने सरयू के तट पर सूर्यवंश में उत्पन्न यज्ञकर्म में दीक्षित रघु नामक राजा को देखा । (४४)

उसके निष्ठ जाकर उस दैत्य ने कहा— मुझ से युद्ध करो, नहीं तो यह बन्द कर दो । तुम देवताओं की पूजा नहीं कर सकते । (४५)

हे ब्रह्मन् ! मित्रावरुणनन्दन, महातेजस्वी, बुद्धिमान् और तपस्वियों में श्रेष्ठ वसिष्ठ ने उस दैत्य के पास जाकर कहा— (४६)

हे दैत्य ! मनुष्यों को जीतने से तुम्हें क्या लाभ होगा ? अजितों को पराजित करो । यदि आक्रमण करना चाहते हो तो उन यमराज को रोको । (४७)

हे महासुर ! वे बलवान् हैं । तुम्हारा शासन नहीं मानते । उनके जीत लेने पर समस्त भूतल को विजित हुआ समझो । (४८)

वसिष्ठ का वह वचन सुनकर दानवश्रेष्ठ दण्डधारी धर्मराज को जीतने के लिए गया । (४९)

उसे आता हुआ सुनकर तथा 'संयाम मे वह अवश्य है' ऐसा सोच कर वे यम महिष पर सवार होकर भगवान् केशव के पास गये । (५०)

उनके पास जाकर प्रणाम करने के उपरान्त (यमराज ने) मुर की चेष्टाओं को बताया । उन्होंने कहा— तुम जाकर

स चाह गच्छ मामथ प्रेषयस्व महासुरम् ॥ ५१
 स वासुदेववचनं श्रुत्वाऽभ्यागात् त्वरान्वितः ।
 एतस्मिन्नन्तरे दैत्यः सप्राप्तो नगरीं ह्युरः ॥ ५२
 तमागतं यमः प्राह किं मुरो कर्त्तुमिच्छसि ।
 वदस्व वचनं कर्त्वा त्वदीयं दानवेश्वर ॥ ५३
 मुरुरुवाच ।

यम प्रजासंयमनाश्रित्य कर्त्तुमर्हसि ।
 नो चेत् त्वाद्य छित्त्वाऽहं मूर्धानं पातये भुवि ॥ ५४
 तमाह धर्मराड् ब्रह्मन् यदि मां संयमाद् भवान् ।
 गोपायति ह्युरो सत्यं करिष्ये वचनं तव ॥ ५५
 ह्यस्तमाह भवतः कः संयन्ता वदस्व माम् ।
 अहमेनं पराजित्य वारयामि न संशयः ॥ ५६
 यमस्तं प्राह मां विष्णुर्देवश्चक्रगदाधरः ।
 श्वेतद्वीपनिवासी यः स मां संयमतेऽभ्ययः ॥ ५७
 तमाह दैत्यशार्दूलः क्वाप्तौ वसति दुर्जयः ।
 स्वयं तत्र गमिष्यामि तस्य संयमनोद्यतः ॥ ५८

अभी उस महासुर को मेरे पास भेज दो । (५१)
 वासुदेव के वाक्य को सुनकर वे शीघ्र चले आये ।
 ज्ञाने में सुर दैत्य उनसे नगरी में आया । (५२)
 उसके आने पर यम ने कहा—हे मुर ! वतलाओ तुम
 क्या करना चाहते हो ? हे दानवेश्वर ! मैं तुम्हारे आज्ञा
 का पालन करूँगा । (५३)
 मुर ने कहा—हे यम ! तुम प्रजाओं का नियमन धन्द
 धरो, नहीं तो मैं तुम्हारा मस्तरु फाट कर पृथ्वी पर गिरा
 दूँगा । (५४)
 हे ब्रह्मन् ! धर्मराज ने उससे कहा—यदि तुम मेरे
 नियामक से मेरी रक्षा कर सरो तो वस्तुतः मैं तुम्हारे
 वचन का पालन करूँगा । (५५)
 मुर ने उनसे कहा—मुझे वतलाओ तुम्हारा नियामक
 कौन है ? मैं निरस्तर्पेह उसे पराजित कर दूँगा । (५६)
 यम ने उससे कहा—श्वेतद्वीपनिवासी, चक्रगदाधर,
 अभ्यय भगवान् विष्णु मुझे ज्ञानने में रखने हैं । (५७)
 दैत्यशार्दूल मुर ने धर्मराज से कहा—वह दुर्जय कहाँ
 रहता है ? मैं स्वयं उसका संयमन करने के लिए यहाँ
 जाऊँगा । (५८)

तस्युवाच यमो गच्छ क्षीरोदं नाम सागरम् ।
 तत्रास्ते भगवान् विष्णुर्लोकनाथो जगन्मयः ॥ ५९
 मुरस्तद्वाक्यमाकर्ण्य प्राह गच्छामि केशवम् ।
 किं तु त्वया न तावद्दि संयम्या धर्म मानवाः ॥ ६०
 स प्राह गच्छ त्वं तावत् प्रवर्तिष्ये जयं प्रति ।
 संयन्तुर्वा यथा स्याद्दि ततो युद्धं समाचर ॥ ६१
 ह्ययेवमुक्त्वा वचनं दुग्धाब्धिगमगन्धुरः ।
 यत्रास्ते शेषपर्यङ्के चतुर्मूर्तिर्जनार्दनः ॥ ६२
 नारद उवाच ।
 चतुर्मूर्तिः कथं विष्णुरेक एव निगद्यते ।
 सर्वगतत्वात् कथमपि अव्यक्तत्वाच्च तद्वद ॥ ६३
 पुलस्त्य उवाच ।
 अव्यक्तः सर्वगोऽपीह एक एव महामुने ।
 चतुर्मूर्तिर्जगन्नाथो यथा ब्रह्मंस्तथा मृणु ॥ ६४
 अत्रतर्क्यमनिर्देश्यं शुद्धं ज्ञानं परं पदम् ।
 वासुदेवाख्यमव्यक्तं स्मृतं द्वादशपत्रकम् ॥ ६५

यमराज ने उससे कहा—तुम क्षीरसागर में जाओ ।
 वहाँ लोकनाथ जगन्मय भगवान् विष्णु रहते हैं । (५९)
 मुर ने उनकी बात सुनकर कहा—हे धर्मराज ! मैं
 केशव के पास जाता हूँ । किन्तु तुम तब तक मनुष्यों का
 नियमन मत करना । (६०)
 उस मुर ने कहा—तुम जाओ । तब तक मैं तुम्हारे
 नियामक को जैसे भी हो जीतने का प्रयत्न करूँगा ।
 तदनन्तर तुम युद्ध करना । (६१)
 इतना कह कर, मुर दैत्य क्षीर सागर में पहुँचा ।
 वहाँ चतुर्मूर्ति जनार्दन अनन्त नाग की शय्या पर
 थे । (६२)
 नारद ने कहा—आप यह वतलाएँ कि विष्णु को एक
 होने पर भी चतुर्मूर्ति क्यों कहा जाता है । क्या सर्वगत
 एवं अव्यक्त होने से तो नहीं कहा जाता ? (६३)
 पुलस्त्य ने कहा—हे ब्रह्मन् ! अव्यक्त एव सर्वव्यापी
 होने पर भी वे एक ही हैं । जगन्नाथ जिस प्रकार चतुर्मूर्ति
 कहे जाते हैं उसे सुनो । (६४)
 वासुदेव नामक श्रेष्ठ पद अत्रतर्क्य अनिर्देश्य, शुद्ध,
 ज्ञान, अव्यक्त एवं द्वादशपत्रक कहा गया है । (६५)

नारद उवाच ।

कथं शुद्धं कथं शान्तमप्रतर्क्यमनिन्दितम् ।
कान्यस्य द्वादशैवोक्ता पत्रका वानि मे वद ॥ ६६

पुलस्त्य उवाच ।

शृणुष्व शुद्धं परमं परमेष्ठिप्रभाषितम् ।
श्रुतं सनत्कुमारेण तेनाख्यातं च तन्मम ॥ ६७

नारद उवाच ।

कोऽयं सनत्कुमारेति यस्योक्तं ब्रह्मणा स्वयम् ।
तवापि तेन गदितं वद मामनुपूर्वशः ॥ ६८

पुलस्त्य उवाच ।

धर्मस्य भार्याहिंसाख्या तस्यां पुत्रचतुष्टयम् ।
संजातं मुनिशार्दूल योगशास्त्रविचारकम् ॥ ६९
ज्येष्ठः सनत्कुमारोऽभूद् द्वितीयश्च सनातनः ।
तृतीयः सनको नाम चतुर्थश्च सनन्दनः ॥ ७०
सांख्यवेत्तारमपरं कपिलं बौद्धमासुरिम् ।
दृष्ट्वा पञ्चशिक्षं श्रेष्ठं योगयुक्तं तपोनिधिम् ॥ ७१
ज्ञानयोगं न ते दद्युर्ज्यायांसोऽपि कनीयसाम् ।

नारद ने कहा—किस प्रकार वे शुक्ल, शान्त, अप्र-
तर्क्य एवं अनिन्दित हैं ? मुझे बतलाएँ कि उनके तथा-
कथित द्वादशपत्रक कौन हैं ? (६६)

पुलस्त्य ने कहा—पितामह ब्रह्मा के द्वारा कथित
वह गुप्त वाक्य सुनिए। सनत्कुमार ने उसे सुना था
और उन्होंने मुझसे कहा था। (६७)

नारद ने कहा—मुझे क्रमपूर्वक यह बतलायें कि
स्वयं ब्रह्मा ने जिनसे कहा और जिन्होंने आपसे कहा वे
सनत्कुमार कौन हैं ? (६८)

पुलस्त्य ने कहा—धर्म की पत्नी अहिंसा हैं। उससे
चार पुत्र हुए। हे मुनिश्रेष्ठ ! वे सभी योगशास्त्र में
प्रवीण थे। (६९)

उनमें सनत्कुमार ज्येष्ठ, सनातन द्वितीय, सनक तृतीय
एव सनन्दन चतुर्थ हुए। (७०)

वे सभी सांख्यवेत्ता कपिल, बौद्ध, आसुरी एव योगयुक्त
तपोनिधि श्रेष्ठ पञ्चशिक्ष नामक (श्रापियों) को देखकर
(उनके पास गये)। (७१)

बड़ा होने पर भी उन लोगों ने अपने से छोटों को
ज्ञानयोग का का उपदेश नहीं दिया। कपिलादि की
उपासना करने वालों को महायोग का परिमाण मात्र

मानस्युक्तं महायोगं कपिलादीनुपासतः ॥ ७२

सनत्कुमारश्चाभ्येत्य ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ।

अपृच्छद् योगविज्ञानं तद्युवाच प्रजापतिः ॥ ७३

ब्रह्मोवाच ।

कथयिष्यामि ते साध्य यदि पुत्रत्वमिच्छसि ।

यस्य कस्य न वक्तव्यं तःसत्यं नान्यथेति हि ॥ ७४

सनत्कुमार उवाच ।

पुत्र एवास्मि देवेश यतः शिष्योऽस्म्यहं विभो ।

न विशेषोऽस्ति पुत्रस्य शिष्यस्य च पितामह ॥ ७५

ब्रह्मोवाच ।

विशेषः शिष्यपुत्राभ्यां विद्यते धर्मनन्दन ।

धर्मकर्मसमायोगे तथापि गदतः शृणु ॥ ७६

पुत्रान्नो नरकात् त्राति पुत्रस्तेनेह गीयते ।

शेषपापहरः शिष्य इतीयं वैदिकी श्रुतिः ॥ ७७

सनत्कुमार उवाच ।

कोऽयं पुत्रामको देव नरकात् त्राति पुत्रकः ।

कस्माच्छ्रेष्ठं ततः पापं हरेच्छिष्यश्च तदद ॥ ७८

बतलाया गया।

(७२)

सनत्कुमार ने कमलोद्भव ब्रह्मा के पास जाकर योग
विज्ञान पूछा। प्रजापति ने उनसे कहा—

(७३)

हे साध्य। यदि तुम पुत्र होना चाहो तो मैं तुमसे
वहूँगा। इसे जिस किसी से नहीं कहना चाहिए। क्योंकि
यह सत्य है, अन्यथा नहीं है। (७४)

सनत्कुमार ने कहा—हे देवेश ! मैं पुत्र ही हूँ।
क्यों कि हे विभो ! मैं शिष्य हूँ। हे पितामह ! पुत्र
और शिष्य में कोई अन्तर नहीं होता। (७५)

ब्रह्मा ने कहा—हे धर्मनन्दन ! धर्म कर्मों के अनुष्ठान
के समय शिष्य और पुत्र में कुछ अन्तर होता है। उसे
बताता हूँ, सुनो। (७६)

यह वैदिकी श्रुति है कि पुम् नामक नरक से उद्धार
करने से पुत्र कहलाता है। एव शेष पापों का हरण करने
वाला शिष्य कहलाता है। (७७)

सनत्कुमार ने कहा—हे देव ! यह आप बतलाएँ कि
पुत्र जिस नरक से ब्राप्य करता है वह पुम् नामक नरक
कौन है एव शिष्य किससे अवशिष्ट पाप का हरण
करता है। (७८)

मद्वोवाच ।
एतन् पुराणं परमं महर्षे
योगाङ्गयुक्तं च सदैव यत् ।
इति श्रीवामनपुराणे चतुस्त्रिंशोऽध्याय ॥ ३४ ॥

तथैव चोग्रं भयद्वारि मानवं
यदामि ते साध्य निशामयैनम् ॥ ७९ ॥

३५

मद्वोवाच ।

परदारभोगमनं पापीयांशोपसेवनम् ।
पारुष्यं सर्वभूतानां प्रथमं नरकं स्मृतम् ॥ १ ॥
फलस्तेयं महापापं फलहीनं तथाऽऽनम् ।
छेदनं घृष्टजातीनां द्वितीयं नरकं स्मृतम् ॥ २ ॥
वज्र्यादानं तथा दुष्टमवधवधवन्वनम् ।
विवादमर्थहेतुत्यं तृतीयं नरकं स्मृतम् ॥ ३ ॥
भयदं सर्वसत्त्वानां भवभूतिविनाशनम् ।
भ्रंशनं निजधर्माणां चतुर्थं नरकं स्मृतम् ॥ ४ ॥
मारणं मित्रकौटिल्यं मिथ्याऽभिप्रायनं च यत् ।

मद्वोवाच—हे महर्षि ! मैं तुमसे अत्यन्त प्राचीन, योगाङ्ग युक्त, सब भय दूर करने वाली परम मन्त्र

मिष्टैकाशनमित्युक्तं पञ्चमं तु नृपाचनम् ॥ ५ ॥
यन्त्रः फलादिहरणं यमनं योगनाशनम् ।
यानयुगस्य हरणं षष्ठ्युक्तं नृपाचनम् ॥ ६ ॥
राजभागहरं मूढं राजजायानिषेवणम् ।
राज्ये त्वहितकारित्वं सप्तमं निरयं स्मृतम् ॥ ७ ॥
लुब्धत्वं लोलुपत्वं च लब्धधर्मार्थविनाशनम् ।
लालसासंकीर्णमेषोक्तमष्टमं नरकं स्मृतम् ॥ ८ ॥
विशेष्यं ब्रह्महरणं ब्राह्मणानां विनिन्दनम् ।
विरोधं बन्धुमित्रोक्तं नवमं नरपाचनम् ॥ ९ ॥
श्लिष्टाचारविनाशं च श्लिष्टत्रेयं शिरोवर्धम् ।

क्या सुनाता हूँ । हे साध्य ! इसे सुनो । (७९)

श्रीवामनपुराण में चतुस्त्रिंशोऽध्याय समाप्त ॥ ३४ ॥

३५

मद्वोवाच—परस्त्रीगमन, पापियों की सज्जति और सब प्राणियों के प्रति परपता को प्रथम नरक कहा जाता है । (१)
फलों की चोरी, स्वर्ण भ्रमण एवं वृक्षों का काटना महापाप तथा द्वितीय नरक माना गया है । (२)
विपिद्ध वस्तुओं का ग्रहण, अवैध प्राणियों का वध और बन्धन तथा अर्थ के लिए होने वाला विवाद दोषयुक्त तृतीय नरक होता है । (३)
सभी प्राणियों को भय देना, संसार की विभूति का विनाशन तथा स्वयं का भ्रमण चतुर्थ नरक कहलाता है । (४)
मारण, मित्र के साथ बुदिच्छा, मिथ्या शपथ, तथा अपने मित्रों का भ्रमण पञ्चम नृपाचन (नरक) कहा

जाता है । (५)
यन्त्र, फलादि का हरण, किसी को बंधना, योग नाशन अर्थात् किसी की अगाति की प्रति बाधित और यान के जूए की चोरी को षष्ठो नृपाचन (नरक) कहते हैं । (६)
सूरेवाज्य राजा के अंश का हरण, राजपत्नी-गमन तथा राज्य का अहित करना सप्तम नरक कहा जाता है । (७)
लुब्धता, लोलुपता, प्राप्त धर्मयुक्त अर्थ का विनाश और साधुमित्रित्त वाग्य को अष्टम नरक कहते हैं । (८)
ब्राह्मण को देशनिष्ठा देना, ब्राह्मण का मन पुराना, ब्राह्मणों की निन्दा करना तथा बन्धुओं से विरोध करने को नवम नरपाचन (नरक) कहते हैं । (९)
श्लिष्टाचार का नाश, श्लिष्टत्रेयों से विद्वेष, शत्रु की हत्या, शात्रु की चोरी तथा स्वयं के नाश को दशम नरक

द्यास्त्रस्तेषु धर्मनाशं दशमं परिकीर्तितम् ॥ १०
 पडङ्गनिधनं घोरं पाडगुण्यप्रतिषेधनम् ।
 एकादशममेवोक्तं नरकं सद्भिरुच्यते ॥ ११
 सत्सु नित्यं सदा वैरमनाचारमसत्क्रिया ।
 संस्कारपरिहीनत्वमिदं द्वादशमं स्मृतम् ॥ १२
 हानिर्धर्मार्थकामानामपवर्गस्य हारणम् ।
 संभेदः संविदामेव तु त्रयोदशममुच्यते ॥ १३
 कृपणं धर्महीनं च यद् ब्रह्मं यच्च बह्निदम् ।
 चतुर्दशममेवोक्तं नरकं तद् विगर्हितम् ॥ १४
 अज्ञानं चाप्यसूयत्वमशौचमशुभावहम् ।
 स्मृतं तु पञ्चदशममसत्यवचनानि च ॥ १५
 आलस्यं वै षोडशममाक्रोशं च विशेषतः ।
 सर्वस्य चाततायित्वमावासेष्वग्निदीपनम् ॥ १६
 इच्छा च परदारेषु नरकाय निगद्यते ।
 ईर्ष्याभावश्च सत्येषु उद्धृतं तु विगर्हितम् ॥ १७
 एतैस्तु पापैः पुरुषः पुत्रामायेर्न संशयः ।

कहते हैं ।

(१०) पडङ्गनिधन-अर्थात् छ' अङ्गों वाली वेद-विद्या का विनाश, ष्य पाडगुण्य अर्थात् मन्त्रि विग्रहादि राजगुणों के प्रतिषेध को सज्जनों ने ग्यारहवों घोर नरक कहा है। (११)

सज्जनों से सदा दूर-भाव, अनाचार, अस्तरायें एवं संस्कार-राहित्य इन को बारहवों नरक कहते हैं। (१२)

धर्म, अर्थ ष्य काम की हानि, मोक्ष का नाश एवं इनके समूह में विशेष उत्पन्न करने को तेरहवों नरक कहा जाता है। (१३)

कृपण, धर्महीन, धर्म्य एवं अग्न्य एगाने वचने को विगर्हित चौदहवों नरक कहते हैं। (१४)

अज्ञान, अमृया, अशुभकारी, अजीव एवं असत्यवचनों को पन्द्रहवों नरक कहते हैं। (१५)

आलस्य, विशेष रूप से क्रोध, सभी के प्रति आवतायित्व एवं गूढ में आग्य एगाना सोलहवों नरक कहलाता है। (१६)

परस्त्री की वामना, मत्स्य के प्रति ईर्ष्याभाव एवं निन्दित उच्छ्वस्यपहार नरक देने वाला पन्द्रहवा है। (१७)

संयुक्तः प्रीणयेद् देवं संतत्या जगतः पतिम् ॥ १८
 शीतः सृष्ट्या तु शुभया स पापाद्येन मृच्यते ।
 पुंनामनरकं घोरं विनाशयति सर्वतः ॥ १९
 एतस्मात् कारणात् साध्यं सुतः एत्रेति गद्यते ।
 अतः परं प्रवक्ष्यामि शेषपापस्य लक्षणम् ॥ २०
 ऋणं देवर्षिभूतानां मनुष्याणां विशेषतः ।
 पितृणां च द्विजश्रेष्ठ सर्ववर्णेषु चैकता ॥ २१
 ओंकारादपि निर्द्विजः पापकार्यकृतश्च यः ।
 मत्स्याद्यथ महापापमगम्यागमनं तथा ॥ २२
 घृतादिविक्रयं घोरं चण्डालादिरिग्रहः ।
 स्वदोषाच्छादनं पापं परदोषप्रकाशनम् ॥ २३
 मत्सरित्वं ब्राह्मणैस्त्वं निष्ठुरत्वं तथा परम् ।
 टाकित्वं बाल्यादित्यं नाम्ना वाचाऽप्यधर्मजम् ॥ २४
 दाहणत्वमधार्मिक्यं नरकावहमुच्यते ।
 एतैश्च पापैः संयुक्तः प्रीणयेद् यदि शंकरम् ॥ २५
 ज्ञानाधिकमशेषेण शेषपापं जयेत् ततः ।

पुत्र के द्वारा देव जगत्पति जनार्दन को प्रसन्न करता है। (१८)

पापहारिणी शुभ सन्तति के द्वारा प्रसन्न जनार्दन पुत्रामनरक को पूर्णतया नष्ट कर देते हैं। (१९)

हे साध्य ! इसीलिए सुत को पुत्र कहा जाता है कि जो अतः शेष पाप का उद्धार करता है। (२०)

हे द्विजश्रेष्ठ ! बंधता, श्रद्धा, प्राणियों, विद्वान्, मनुष्यों एवं पितरों का श्रेष्ठ, सभी वर्णों में एकता, ओंकार का परित्याग, पापकर्म का आचरण, मत्स्य भक्षण तथा मत्स्य के अयोग्य स्त्री के साथ सहवास—ये महापाप हैं। (२१-२२)

घृत आदि का विक्रय, चाण्डाल आदि का दान ग्रहण करना, अपना दोष द्विजाना और दूसरे का दोष प्रकट करना—ये घोर पाप हैं। (२३)

मात्सर्ग्य, बटु-भाषण, निष्ठुरता, नाम कहने से भी अधर्मजनक टाकित्वा और बाल्यादान, भयङ्करता तथा अधार्मिकता के कार्य नरक के हेतु हैं। इन पापों से युक्त मनुष्य यदि परमात्मा शंकर को प्रसन्न करता है तो शेष पाप को वह पूर्ण रूप में जीत लेता है। हे धर्मपुत्र !

शारीरं वाचिकं च त्वं तु मानसं कायिकं तथा ॥ २६
 पितृमातृकृतं यच्च कृतं यथाश्रितैर्नरैः ।
 भ्रातृभिवोन्धवैश्चापि तस्मिन् जन्मनि धर्मज ॥ २७
 तत्सर्वं विलयं याति स धर्मः सुतशिष्ययोः ।
 विपरीते भवेत् साध्यं विपरीतः पदक्रमः ॥ २८
 तस्मात् पुत्रश्च शिष्यश्च विधातव्यौ विपश्चिता ।
 एतदर्थमभिध्याय शिष्याच्छ्रेष्ठतरः सुतः ।
 शेषात् तारयते शिष्यः सर्वतोऽपि हि पुत्रकः ॥ २९
 पुलस्त्य उवाच ।

पितामहवचः श्रुत्वा साध्यः प्राह तपोधनः ।
 त्रिः सत्यं तव पुत्रोऽहं देव योगं वदस्व मे ॥ ३०
 तद्गवाच महायोगी त्वन्मातापितरौ यदि ।
 दास्येते च तवः सूनुर्दायादो मेऽसि पुत्रक ॥ ३१
 सनत्कुमारः प्रोवाच दायादपरिकल्पना ।
 येयं हि भवता प्रोक्ता तां मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३२

एष जन्म में क्रिये गये सभी कायिक, वाचिक एवं मानसिक कर्म; माता, पिता तथा आश्रित जन और भाई एवं बान्धवों द्वारा किये गये कर्म विलीन हो जाते हैं । हे साध्य! सुत एवं शिष्य का यही धर्म है । इसके विपरीत होने पर विपरीत गति प्राप्त होती है । (२४-२८)

अतएव विद्वान् व्यक्ति को पुत्र और शिष्य की (परम्परा) बनानी चाहिए । इसी प्रयोजन की दृष्टि से शिष्य की अपेक्षा पुत्र श्रेष्ठ होता है । क्योंकि शिष्य शेष पापों से मुक्त करता है और पुत्र सभी पापों से बचाता है । (२९)

पुलस्त्य ने कहा—पितामह का वचन सुनकर तपोधन सनत्कुमार ने कहा—हे देव । तीन बार सत्य उच्चारण करके कहता हूँ कि मैं आप का पुत्र हूँ । अतः मुझे आप योग का उपदेश दीजिए । (३०)

तब महायोगी पितामह ने उनसे कहा—हे पुत्र ! तुम्हारे मातापिता यदि तुमको मुझे दे दें तो तुम मेरे दायाद पुत्र हो जाओगे । (३१)

सनत्कुमार ने कहा—हे भगवन् ! आप ने जो दायाद शब्द कहा है उसका अर्थ क्या है ? यह मुझे बतलाइये । (३२)

तदुक्तं साध्यहृत्स्थेन वाक्ये श्रुत्वा पितामहः ।
 प्राह प्रहस्य भगवान् शृणु वत्सेति नारद ॥ ३३
 ब्रह्मोवाच ।

औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिम एव च ।
 गृहोत्पन्नोऽपि विद्वद्वादायादा बान्धवास्तु पट ॥ ३४
 अमीषु पट्षु पुत्रेषु ऋणपिण्डधनक्रियाः ।
 गोत्रसाम्यं कुले वृत्तिः प्रतिष्ठा शाश्वती तथा ॥ ३५
 कानीनश्च सहोदथ क्रीतः पौनर्भवस्तथा ।
 स्वयंदत्तः पारश्रवः पलदायादबान्धवाः ॥ ३६
 अमीभिर्रूणपिण्डादिकथा नैवेह विद्यते ।
 नामधारका एवेह न गोत्रकुलसंमताः ॥ ३७
 तत् तस्य वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणः सनकाग्रजः ।
 उवाचैषां विशेषं मे ब्रह्मन् व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३८
 ततोऽब्रवीत् सुरपतिविशेषं शृणु पुत्रक ।
 औरसो यः स्वयं जातः प्रतिविम्बमिवात्मनः ॥ ३९

हे नारद ! भगवान् पितामह साध्यप्रधान सनत्कुमार का वचन सुनकर हैसते हुए बोले—हे वत्स ! सुनो । (३३)

ब्रह्मा ने कहा—औरस, क्षेत्रज, दत्त, कृत्रिम, गृहोत्पन्न और अपविद्ध-ये छ. बान्धव दायाद होते हैं । (३४)

इन छ. पुत्रों से ऋण, पिण्ड, धन की क्रिया गोत्रसाम्य, कुलवृत्ति और स्थिर प्रतिष्ठा रहती है । (३५)

इसके अतिरिक्त कानीन, सहोदथ, क्रीत, पौनर्भव, स्वयंदत्त और पारश्रव ये छ अदानद बान्धव कहे जाते हैं । (३६)

इनके द्वारा ऋण एवं पिण्डादि का कार्य नहीं होता । ये नामधारी-मात्र होते हैं । गोत्र एव कुल से ये सम्बन्ध नहीं होते । (३७)

सनत्कुमार ने उनकी बात सुनकर कहा—हे ब्रह्मन् ! आप इन सभी का विशेष लक्षण मुझे बतलायें । (३८)

तदनन्तर सुरपति ब्रह्मा ने कहा—हे पुत्र ! मैं विशेषरूप से बतलाता हूँ । सुनो ! अपने द्वारा उत्पन्न क्रिया गया पुत्र औरस कहलाता है । यह अपना प्रतिबिम्ब होता है । (३९)

ह्रीद्योन्मचे व्यसनिनि पत्यौ तस्याज्ञया तु या ।
 भार्या क्षनातुरा पुत्रं जनयेत् क्षेत्रजस्तु सः ॥ ४०
 मातापितृभ्यां यो दत्तः स दत्तः परिगीयते ।
 मित्रपुत्रं मित्रदत्तं कृत्रिमं प्रादुरुक्तमाः ॥ ४१
 न ज्ञायते गृहे केन जातस्त्विति स गूढकः ।
 बाह्यतः स्वयमानीतः सोऽपविद्धः प्रकीर्तितः ॥ ४२
 कन्याजातस्तु कानीनः सगर्भोदः सहोदकः ।
 मूल्यैर्गृहीतः श्रौतः स्वाद् द्विविधः स्यात् पुनर्भवः ॥ ४३
 दत्तैकस्य च या कन्या हृत्वाऽन्यस्य प्रदीयते ।
 तजातस्तनयो ज्ञेयो लोके पौनर्भवो मृने ॥ ४४
 दुर्भिक्षे व्यसने चापि येनात्मा विनिषेदितः ।
 स स्वयंदत्त इत्युक्तस्तथान्यः कारणान्तरैः ॥ ४५

पति के नपुंसक, उन्नत या व्यसनी होने पर उसकी आशा से अनातुरा (निष्काम भाव से) पत्नी (अन्य पुरुष के संयोग से) जो पुत्र उत्पन्न करती है उसे क्षेत्रज कहा जाता है । (४०)

माता-पिता यदि दूसरे को अपना पुत्र दे दें तो यह दत्तक कहा जाता है । मित्र के पुत्र और मित्र द्वारा दिये गये पुत्र को उत्तम पुरुष कृत्रिम पुत्र कहते हैं । (४१)

यह पुत्र गूढ़ होता है जिसके विषय में यह हात न हो कि गृह में जिसके द्वारा यह उत्पन्न हुआ है । बाहर से स्वयं लये हुए पुत्र को अपविद्ध कहते हैं । (४२)

हमारी कन्या के गर्भ से उत्पन्न पुत्र का नाम कानीन है । गर्भिणी कन्या से विवाह के अनन्तर उत्पन्न पुत्र को सहोद कहते हैं । मूल्य देकर रखीया हुआ पुत्र श्रौत पुत्र कहलाता है । पुनर्भव पुत्र दो प्रकार का होता है । (४३)

एक कन्या को एक पति के हाथ में देकर पुनः उससे हीनकर दूसरे पति के हाथ में देने पर जो पुत्र उत्पन्न होता है उसे पुनर्भव पुत्र कहते हैं । (४४)

दुर्भिक्ष, व्यसन या अन्य किसी कारण से जो स्वयं

प्राक्षणस्य सुतः शूद्राणां जायते यस्तु सुव्रत ।
 ऊढायां वाप्यनृढायां स पारश्व उच्यते ॥ ४६
 एतस्मात् कारणात् पुत्र न स्वयं दातुमर्हसि ।
 स्वमात्मानं गच्छ शीघ्रं पितरौ समुपाह्वय ॥ ४७
 ततःस मातापितरौ सस्मार वचनाद् विभोः ।
 तावाजन्मतुरीशानं द्रष्टुं वै दम्पती मृने ॥ ४८
 धर्मोऽर्हिंसा च देवेशं प्रणिपत्य न्यपीदताम् ।
 उपविष्टौ सुखासीनौ साध्यो वचनमब्रवीत् ॥ ४९
 सनत्कुमार उवाच ।

योगं जिगमिपुस्तात प्रह्लाणं समचूचुदम् ।
 स चोक्तवान् मां पुत्रार्थे तस्मात् त्वं दातुमर्हसि ॥ ५०
 तावेवमुक्तौ पुत्रेण योगाचार्यं पितामहम् ।

को (किसी दूसरे के हाथ में) समर्पित कर देता है उसे स्वयंदत्त पुत्र कहते हैं । (४५)

हे सुव्रत ! विवाहित या अविवाहित शूद्रा के गर्भ से प्राक्षण का जो पुत्र होता है उसका नाम पारश्व पुत्र है । (४६)

हे पुत्र ! इन कारणों से तुम स्वयं आत्मदान नहीं कर सकते । अतः शीघ्र जाकर अपने माता-पिता को बुला लाओ । (४७)

हे मुनि ! तदनन्तर सनत्कुमार ने विभु ब्रह्मा के कहने से अपने माता-पिता का स्मरण किया । हे मुनि ! वे दम्पती पितामह का दर्शन करने के लिए यहाँ आ गये । (४८)

धर्म और अर्हिंसा ब्रह्मा को प्रणाम कर बैठ गये । उनके मुखा से बैठ जाने पर सनत्कुमार ने यह वचन कहा— (४९)

सनत्कुमार ने कहा— हे तात ! मैंने योग जानने के लिए पितामह से प्रार्थना की थी । उन्होंने मुझसे अपना पुत्र होने के लिए कहा । अतः आप मुझे प्रदान कर दें । (५०)

पुत्र के ऐसा कहने पर उन दोनों ने योगाचार्य पितामह से कहा— हे प्रभो ! हम दोनों का यह पुत्र

उक्तवन्तौ प्रमोऽयं हि आवयोस्तनयस्तव ॥ ५१
अथप्रमृत्ययं पुत्रस्तव ब्रह्मन् भविष्यति ।
इत्युक्त्वा जगमतुस्पूर्णं येनैनाभ्यागतौ यथा ॥ ५२
पितामहोऽपि तं पुत्रं साध्यं सद्दिनयान्वितम् ।
सनत्कुमारं प्रोवाच योगं द्वादशपत्रकम् ॥ ५३
शिखासंस्थं तु ओङ्कारं मेपोऽस्य शिरसि स्थितः ।
मासो वैशाखनामा च प्रथमं पत्रकं स्मृतम् ॥ ५४
नकारो मृगसंस्थो हि धृपस्तत्र प्रकीर्तितः ।
ज्येष्ठमासश्च तत्पत्रं द्वितीयं परिकीर्तितम् ॥ ५५
मोकारो भुजयोर्युग्मं मिथुनस्तत्र संस्थितः ।
मासो आपाढनामा च तृतीयं पत्रकं स्मृतम् ॥ ५६
भकारं नेत्रयुगलं तत्र कर्कटकः स्थितः ।
मासः श्रावण इत्युक्तश्चतुर्थं पत्रकं स्मृतम् ॥ ५७
गकारं हृदयं प्रोक्तं सिंहो वसति तत्र च ।
मासो भाद्रपदाया प्रोक्तः पञ्चमं पत्रकं स्मृतम् ॥ ५८
वकारं कवचं विद्यात् कन्या तत्र प्रतिष्ठिता ।

आप का हो ।

हे ब्रह्मन् ! आज से यह पुत्र आप का होगा ।
इतना कहकर वे शीघ्र ही जिस मार्ग से आये थे उसी से
चले गये ।

पितामह ने भी उस विनय युक्त पुत्र सनत्कुमार को
द्वादशपत्र योग का उपदेश किया ।

भाग्यान् वासुदेव ची शिखा में स्थित 'ओंकार', शिर
पर स्थित मेघ राशि और वैशाख मास ये इतके प्रथम
पत्र हैं ।

सुर में स्थित 'नकार' और वहीं पर विद्यमान
धृपराशि तथा ज्येष्ठ मास ये उनसे द्वितीय पत्र बड़े गये
हैं ।

दोनों भुजाओं में स्थित 'मोकार', मिथुन राशि पद्म
आपाढ मास-ये उनके तृतीय पत्र हैं ।

उनके नेत्रयुगल में विद्यमान 'भकार', कर्कट राशि
और श्रावण मास-ये चतुर्थ पत्र हैं ।

(उनके) हृदय में रूप में विद्यमान 'गकार', सिंहराशि
और भाद्रपद मास-ये पञ्चम पत्र हैं ।

(उनके) कवच के रूप में विद्यमान 'वकार', कन्याराशि

मासश्चाश्वयुजो नाम षष्ठं तत्र पत्रकं स्मृतम् ॥ ५९
तेकारमस्त्रग्रामं च तुलाराशिः कृताश्रयः ।
मासश्च कार्तिको नाम सप्तमं पत्रकं स्मृतम् ॥ ६०
वाकारं नाभिसंयुक्तं स्थितस्तत्र तु घृथिकः ।
मासो मार्गशिरो नाम अष्टमं पत्रकं स्मृतम् ॥ ६१
सुकारं जघनं प्रोक्तं तत्रस्थश्च धनुर्धरः ।
पौषेति गदितो मासो नवमं परिकीर्तितम् ॥ ६२
देकारधोरुपुगलं मकरोऽप्यत्र संस्थितः ।
माघो निगदितो मासः पत्रकं दशमं स्मृतम् ॥ ६३
वाकारो जानुयुग्मं च कुम्भस्तत्रादिसंस्थितः ।
पत्रकं फाल्गुनं प्रोक्तं तदेकादशपुत्रकम् ॥ ६४
पादौ वकारो मीनोऽपि स चैत्रे वसते मृने ।
इदं द्वादशमं प्रोक्तं पत्रं वै कैशवस्य हि ॥ ६५
द्वादशार तथा चक्रं पष्णाभि द्विपुतं तथा ।
त्रिव्यूहमेकमूर्तिश्च तथोक्तः परमेश्वरः ॥ ६६
एतन् तथोक्तं देवस्य रूपं द्वादशपत्रकम् ।

और आश्विन मास-ये षष्ठ पत्रक है ।

(उनके) अस्त्र-समूह के रूप में विद्यमान 'तेकार', तुला-
राशि और कार्तिक मास-ये सप्तम पत्रक हैं ।

हे मुनि ! (उनके) नाभि-रूप में विद्यमान 'वाकार',
घृथिक राशि और मार्गशीर्ष मास-ये अष्टम पत्रक हैं ।

(उनके) जघन-रूप में विद्यमान 'सुकार', धनुराशि और
पौष मास ये नवम पत्रक हैं ।

(उनसे) ऊरु-युगल-रूप में विद्यमान 'देकार', मकर
राशि और माघ मास-ये दशम पत्रक हैं ।

(उनके) दोनों घुटनों के रूप में विद्यमान 'वाकार', कुम्भ
राशि और फाल्गुन मास ये ग्यारहवें पत्रक हैं ।

(उनके) चरणद्वय रूप में विद्यमान 'वकार', मीन राशि
और चैत्र मास ये बारहवें पत्रक हैं । ये ही वैशव के द्वादश
पत्र हैं ।

उनका चक्र बारह अंशों, बारह-नाभियों और त्रिव्यूह
से युक्त है । इस प्रकार ही उन परमेश्वर की एकमूर्ति

है ।

हे मुनिश्रेष्ठ ! मैंने तुमसे भाग्यान् के इस द्वादश पत्रक
स्वरूप का वर्णन किया जिससे जानने से पुन मरण

यस्मिन् ज्ञाते मुनिश्रेष्ठ न भूयो मरणं भवेत् ॥ ६७
 द्वितीयस्रक्त्वं सत्त्वाद्यं चतुर्वर्णं चतुर्मुखम् ।
 चतुर्नाहुमुदाराङ्गं श्रीवत्सधरमन्ययम् ॥ ६८
 तृतीयस्तामसो नाम शेषमूर्तिः सहस्रपात् ।
 सहस्रवदनः श्रीमान् प्रजाप्रलयकारकः ॥ ६९
 चतुर्थो राजसो नाम रक्तवर्णश्चतुर्मुखः ।
 द्विभ्रुजो धारयन् मालां सृष्टिकृचादिभूतः ॥ ७०
 अन्यकृतात् संभवन्त्येते त्रयो व्यक्ता महासुने ।
 अतो मरीचिप्रमृष्टास्तथान्येऽपि सहस्रसः ॥ ७१
 एतत् त्रयोक्तं मुनिवर्षं रूपं
 विभो. पुराणं मतिपुष्टिवर्धनम् ।
 चतुर्भुजं तं स मूर्तुर्हारात्मा
 कृतान्तनाक्यात् शुनराससाद ॥ ७२
 तमागतं प्राह मुने मधुघ्न.
 प्राप्तोऽसि केनासुर कारणेन ।
 स प्राह योद्धुं सह वै त्वयाऽद्य

इति श्रीयामनपुराणे

नहीं होगा ।

उनका द्वितीय सत्त्वमय, श्रीवत्सधारी अविनाशी स्वरूप,
 चतुर्वर्ण, चतुर्मुख, चतुर्बाहु एव उदार अङ्गों से युक्त है । (६८)
 सहस्र पैरों एवं सहस्र मुखों से सम्पन्न श्रीसुयुक्त
 तमोगुणमयी उनकी तृतीय शेषमूर्ति प्रजाओं का प्रलय
 करती है । (६९)

उनका चतुर्थ रूप राजस है । वह रक्तवर्ण, चार मुख
 एवं दो भुजाओं से सम्पन्न तथा माला से अलङ्कृत है ।
 यही रूप सृष्टिवर्त्ता आदिपुरुष है । (७०)

हे महासुनि ! ये तीन व्यक्त मूर्तियाँ अन्यक्त से उत्पन्न
 होती हैं । इनसे ही मरीचि आदि ऋषि तथा अन्यान्
 हजारों पुरुष उत्पन्न हुए हैं । (७१)

हे मुनिवर ! तुम्हारे सामने मैंने विष्णु के अत्यन्त
 प्राचीन और मति-सुष्टि-वर्द्धक रूप का वर्णन किया । दुरात्म
 मरु यमराज के पहने से पुन उन चतुर्भुज (विष्णु) के
 नाम गया । (७२)

हे मुनि ! मधुघ्न ने आये हुए उससे पूछा—हे असुर !

श्री वामनपुराण न देवोत्तरौ अध्याय समाप्त ॥ १२ ॥

तं प्राह भूयः सुरशत्रुहन्ता ॥ ७३
 यदीह मां योद्धुमुपागतोऽसि
 तत् कम्पते ते हृदयं किमर्थम् ।
 ज्वरातुरस्येव मृदुर्मुहुर्
 तन्नास्मि योस्त्ये सह कातरेण ॥ ७४
 इत्येवमुक्तो मधुसूदनेन
 मृत्स्तदा स्वे हृदये स्वहस्तम् ।
 कथं क्व कस्येति मुहुस्तयोक्त्वा
 निपातयामास विपन्नशुद्धिः ॥ ७५
 हरिश्च चक्र मृदुलाघवेन
 ह्रमोच तद्भ्रुकमलस्य शत्रोः ।
 चिच्छेद देवास्तु गतव्यथाभवन्
 देवं प्रशंसन्ति च पद्मनाभम् ॥ ७६
 एतत् त्रयोक्तं मुरदैत्यनाशनं
 कृत हि युक्त्या शितचक्रपाणिना ।
 अतः प्रसिद्धिं सम्प्राप्तवान्
 मुरारिरित्येव विद्वन्मूर्तिहः ॥ ७७

पञ्चात्रिंशोऽध्याय ॥३२॥

तुम किस लिए आये हो ? उसने कहा—तुम्हारे साथ आज
 युद्ध करने आया हूँ । असुरारि ने उससे पुन कहा— (७३)

यदि तुम मेरे साथ युद्ध करने आये हो तो ज्वरातुर के
 सटका तुम्हारा हृदय धारम्बार क्यों कम्पित हो रहा है ?
 अत मैं कातर के साथ युद्ध नहीं करूँगा । (७४)

मधुसूदन ने ऐसा बहने पर 'कैसे ? कहाँ ? किसका ?'
 ऐसा बार बार कहने हुए नष्ट बुद्धि मरु ने अपने हृदय पर
 हाथ रक्खा । (७५)

इसे देखकर हरि ने धीरे से चक्र निशालकर उस शत्रु
 के हृदय कमल को छिन्न कर दिया । तदनन्तर सभी देवता
 दुरास रहित होकर भगवान् पद्मनाभ विष्णु की प्रशंसा
 करने लगे । (७६)

मैंने तुमसे तीक्ष्ण चक्र धारण करने वाले विष्णु द्वारा
 युधिपूर्वक किये गए मुर दैत्य के विनाश का वर्णन किया ।
 इसी से विद्वन्मूर्तिह 'मुरारि' नाम से प्रसिद्ध हुए । (७७)

पुलस्त्य उवाच ।

ततो ह्यारिभयं समभ्येत्य सुरास्ततः ।
ऊचुर्देवं नमस्कृत्य जगत्संशुद्धिकारणम् ॥ १
तच्छ्रुत्वा भगवान् ग्राह गन्धामो हरमन्दिरम् ।
स वेत्स्यति महाज्ञानी जगत्क्षुब्ध चराचरम् ॥ २
तयोक्त्वा वासुदेवेन देवाः शक्रपुरोगमाः ।
जनार्दनं पुरस्कृत्य प्रजगद्धर्मन्दर गिरिम् ।
न तत्र देवं न घृषं न देवीं न च नन्दिनम् ॥ ३
शून्यं गिरिमपश्यन्त अज्ञानतिमिराधृता ।
तान् मूढदृष्टीन् संप्रेक्ष्य देवान् विष्णुर्महाद्युतिः ॥ ४
प्रोवाच किं न पश्यध्वं महेश पुरतः स्थितम् ।
तम्युक्तैव देवेशं पश्यामो गिरिजापतिम् ॥ ५
न विद्यः कारणं तच्च येन दृष्टिर्हता हि नः ।

तातुवाच जगन्मूर्तिर्युधिं देवस्य सागसः ॥ ६
पापिष्ठा गर्भहन्तारो मृडान्याः स्वार्थतत्पराः ।
तेन ज्ञानविधेको वै हृतो देवेन शुलिना ॥ ७
येनाग्रतः स्थितमपि पश्यन्तोऽपि न पश्यथ ।
तस्मात् कायनिशुद्धयर्थं देवदृष्टयर्चयामादरात् ॥ ८
तप्तकृच्छ्रेण संशुद्धाः कुरुध्वं स्नानमीश्वरे ।
क्षीरस्नाने प्रयुञ्जीत सार्द्धं कुम्भशतं सुराः ॥ ९
दधिस्नाने चतुःषष्टिर्द्वानिशुद्धविपोऽर्हणे ।
पञ्चगव्यस्य शुद्धस्य कुम्भाः षोडश कीर्तिताः ॥ १०
मधुनोऽष्टौ जलम्योक्त्वाः मर्वे ते द्विगुणाः सुराः ।
ततो रोचनया देवमष्टोत्तरशतेन हि ॥ ११
अनुलिम्पेत् कङ्कुमेन चन्दनेन च भक्षिततः ।
मिल्वपत्रैः सफमलैः धत्तूरसुरचन्दनैः ॥ १२

३६

पुलस्त्य ने कहा—तदनन्तर सभी देवता विष्णु के यहाँ
गये एव उन्हें प्रणाम कर उनसे जगत के सक्षोभ का
कारण पूछा । (१)

भगवान् सुरारि ने उसे मुनिर कहा—हम लोग
शिव के घर बसे । वे महाज्ञानी चराचर जगत् के क्याकुल
होने का कारण जानते होंगे । (२)

वासुदेव के ऐसा कहने पर इन्द्र आदि देवगण जनार्दन
को आगे कर मन्दर पर्वत पर गये । वहाँ उन्होंने न महादेव
को, न घृष को, न देवी पार्वती को और न नन्दी
को ही देखा । (३)

अज्ञानान्धकार से आवृत उन लोगों ने पर्वत को शून्य
वेत्ता । महातेजवी विष्णु ने देवों को मूढदृष्टि हुआ
देखकर कहा—क्या आप लोग सम्मुख स्थित महादेव को
नहीं देख रहे हैं ? उन्होंने उत्तर दिया—हम लोग गिरिजा-
पति देवेश को नहीं देख रहे हैं । (४५)

हम लोग उस कारण को नहीं जानते जिससे

हमारी दृष्टि नष्ट हो गयी है । जगन्मूर्ति (विष्णु)
ने उनसे कहा—आप लोग देव के अपराधी
हैं । (६)

तुम लोग स्वार्थतत्पर होकर मृडानी वा गर्भ
नष्ट करने से महापापमत्त हुए हो इस लिए शूलपाणि
महादेव ने तुम लोगों का ज्ञान और विवेक अपहृत कर
लिया है । (७)

इससे तुम लोग सम्मुख स्थित (शुद्ध) को देखकर
भी नहीं देख रहे हो । अतः सब लोग श्रद्धा के साथ
शरीर की शुद्धि और देव का दर्शन प्राप्त करने के लिए
तप्त कृच्छ्र व्रत द्वारा शुद्ध होकर स्नान करा
है देवों । ईश्वर के स्नानार्थ डेढ़ सौ पदों का द्रुप
प्रयुक्त करो । (८-९)

(तदुपराज उनके स्नानार्थ) चौसठ पदों की दधि,
बत्तीस पदों का घृत एव सोलह पदों शुद्ध पञ्चगव्य का
विधान किया गया है । (१०)

है देवताओं । मधु का स्नान आठ पदों से तथा

मन्दारैः पारिजातैश्च अतिमृकतैस्तथाऽर्चयेत् ।
अगुरुं सह कालेयं चन्दनेनापि धूपयेत् ॥ १३
जलपत्रं शतलक्ष्मीयं श्रग्वेदोक्तैः पदत्रयैः ।
एवं कृते तु देवेशं पश्यध्वं नेत्रेण च ॥ १४
इत्युक्त्वा वासुदेवेन देवाः केशवमधुयन् ।
विधानं तप्तकृच्छ्रस्य कथ्यतां मधुसूदन ।
यस्मिंश्चीर्णं कायशुद्धिर्भवते सार्वकालिकी ॥ १५

वासुदेव उवाच ।

त्रयहृष्ट्वाणं पित्रेदापः त्रयहृष्ट्वाणं पयः पित्रेत् ।
त्रयहृष्ट्वाणं पित्रेत्सर्पिर्वायुभक्षी दिनत्रयम् ॥ १६
पला द्वादश तोयस्य पलाष्टी पयसः सुराः ।
पट्पलं सर्पिपः श्रोक्तं दिवसे दिवसे पित्रेत् ॥ १७

पुलस्त्य उवाच ।

इत्येवमुक्ते वचने सुराः कायविशुद्धये ।

जल वा स्नान वन सभी के दुग्ध से कड़ा गया है। तदनन्तर भक्ति पूर्वक देव को एक सौ आठ बार गोरोचना, कुङ्कुम और चन्दन का लेप करे। तदुपरान्त विल्वपत्र, कमल, धत्तूर, सुरचन्दन, मन्दार, पारिजात एव अतिमुक्त नामक पुष्पों से देव का अर्चन करे एव ध्रुगरु, कालेय तथा चन्दन का धूप दे। (११-१३)

तदनन्तर श्रग्वेद में कथित पदत्रयों का साथ शत-रुद्रीय का जप करना चाहिए। ऐसा करने से आप लोग देवेश्वर का दर्शन कर सकेगे। अन्य किसी उपाय से नहीं। (१४)

वासुदेव के द्वारा ऐसा करने पर देवताओं ने वेश्य से कहा—हे मधुसूदन! तप्तकृच्छ्र (घृत) का विधान बनलाएँ जिससे करने से सार्वकालिकी कायशुद्धि होती है। (१५)

वासुदेव ने कहा—तीन दिन उष्ण जल का पान करे, तीन दिन उष्ण दुग्धपान करे, तीन दिन उष्ण घृत का पान करे एवं तीन दिन वायुमात्र या भक्ष्यण करे। (१६)

हे देवताओं! जल द्वादश पल, दुग्ध आठ पल एव घृत ६ पल की मात्रा में कथित दिनों में पान करना चाहिए। (१७)

पुलस्त्य ने कहा—ऐसा करने पर इन्द्रादि देवताओं

तप्तकृच्छ्ररहस्यं वै चक्रुः शक्रपुरोगमाः ॥ १८
ततो व्रते सुरार्थीर्णे विमुक्ताः पापतोऽभवन् ।
विमुक्तपापा देवेशं वासुदेवमथाधुयन् ॥ १९
कसौ वद जगन्नाथ शंभुरितिप्रति केशव ।
य क्षीराद्यभिषेकेण स्नापयामो विधानतः ॥ २०
अथोवाच सुरान्विष्णुरेव तिष्ठति शङ्करः ।
मद्देहे किं न पश्यध्वं योगध्यायं प्रतिष्ठितः ॥ २१
तमूचुर्नैव पश्यामस्त्वचो वै त्रिपुरान्तकम् ।
सत्यं वद सुरेशान महेशानः क्व तिष्ठति ॥ २२
ततोऽव्ययात्मा स हरिः स्वहृत्पङ्कजशायिनम् ।
दर्शयामास देवानां सुरारिरिन्द्रमैश्वरम् ॥ २३
ततः सुराः क्रमेणैव क्षीरादिभिरनन्तरम् ।
स्नापयार्चक्रिरे लिङ्गं शाश्वतं ध्रुवमव्ययम् ॥ २४
गोरोचनया त्वालप्य चन्दनेन सुगन्धिना ।

ने शरीर की शुद्धि के लिये तप्तकृच्छ्र व्रत का अनुष्ठान किया। (१८)

तदनन्तर उस व्रत का पालन हो जाने पर देवता पाप से मुक्त हो गये। पाप विमुक्त देवताओं ने देवेश वासुदेव से कहा। (१९)

हे जगन्नाथ! हे केशव! आप बतलाएँ कि शम्भु वहाँ अवस्थित है? जिन्हें हम लोग दुष्ट आदि के अभिषेक द्वारा विधिपूर्वक स्नान करावें। (२०)

तदुपरान्त विष्णु ने देवताओं से कहा—मेरे शरीर में ये शङ्कर संयुक्त होकर स्थित हैं। क्या आप लोग नहीं देख रहे हैं? (२१)

उन लोगों ने उनसे कहा—हम लोग आप में भी त्रिपुरान्तक शङ्कर को नहीं देख रहे हैं। हे सुरेशान! सत्य बतलावें कि महेश वहाँ स्थित हैं। (२२)

तदनन्तर अव्ययात्मा सुरारि हरि ने देवताओं को अपने हृदय कमल में शयन करने वाले ईश्वरीय लिङ्ग का दर्शन कराया। (२३)

तदुपरान्त देवताओं ने धमश दुग्ध आदि के द्वारा उस निरत्य, स्थिर एवं अश्वय लिङ्ग को स्नान कराया। (२४)

तत्पश्चात् वे गोरोचन और सुगन्धित चन्दन का लेप कर विल्वपत्रों और कमलों के द्वारा भक्तिपूर्वक देव की

विल्वपत्राम्बुजैर्देवं पूजयामासु रञ्जसा ॥ २५
 प्रधूप्यागुरुणा भक्त्या निवेद्य परमौपधीः ।
 जप्त्वाऽष्टशतनामानं प्रणामं चक्रे ततः ॥ २६
 इत्येवं चिन्तयन्तश्च देवावेतो हरीधरौ ।
 कथं योगत्वमापन्नौ सत्त्वान्धतमसोद्भवौ ॥ २७
 सुराणां चिन्तितं ज्ञात्वा विश्वमूर्तिरभूद्विभुः ।
 सर्वलक्षणसंयुक्तः सर्वायुधधरोऽव्ययः ॥ २८
 सार्द्धं त्रिनेत्रं कमलाहिकुण्डलं
 जटाशुभाकेशशल्पर्णमध्वजम् ।
 समाध्वं हारशुभ्रवक्षसं
 पीताजिनाञ्जनकटिप्रदेशम् ॥ २९
 चक्रासिंहस्तं हलशार्ङ्गपाणिं
 पिनाकशूलाजगवान्धितं च ।
 कपर्दखट्वाङ्गकपालयन्टा-
 सशङ्खटङ्कारवरं महर्षे ॥ ३०
 दृष्ट्वैव देवा हरिशङ्करं तं

पूजा किये । (२५)
 तदनन्तर देवों ने भक्तिपूर्वक धूप दान कर परमौ-
 पधीयों को अर्पित किया । एध (शङ्कर के) एक सौ
 आठ नामों का जप करने के बाद उन्हें प्रणाम किया । (२६)
 सभी देवता यह सोचने लगे कि सस्व गुण से उत्पन्न
 हरि एवं तमोगुण से उत्पन्न शङ्कर में एकत्व किस प्रकार
 हुआ ? (२७)
 देवताओं के विचार को जानकर अव्यय, विष्णु,
 सर्वलक्षण संयुक्त एवं सर्वायुधधारी विश्वमूर्ति हो गये । (२८)
 हे महर्षि ! देवताओं ने एक ही क्षीरी में
 साथ-साथ अहिदण्डल, जटा, वृष, मुजङ्गहार, पिनाक, शूला,
 आजगव घनुष, कपर्द, खट्वाङ्ग षण् पन्था से युक्त अजिनधारी
 त्रिनेत्र महादेव एवं कमलकुण्डल, गुडाकेश, गरुड पक्षी,
 हार, पीताम्बर, चक्र, असि, हल, शार्ङ्ग घनुष, शङ्ख
 के दण्डार शब्द से समन्वित विष्णु को देखा । तद्
 परान्त 'सर्वगत अव्यय को नमस्कार है' ऐसा कहकर
 ब्रह्मादि देवताओं ने उन हरि एवं शङ्कर को समवेत रूप

नमोऽस्तु ते सर्वगताव्ययेति ।
 प्रोक्त्वा प्रणामं कमलासनाद्या-
 श्चकूर्मति चैकतरां नियुज्य ॥ ३१
 तानेकचित्तान् विज्ञाय देवान् देवपतिर्हरिः ।
 प्रगृह्णाम्यद्रवचूर्णं कुरुक्षेत्रं स्वमाश्रमम् ॥ ३२
 ततोऽपश्यन्त देवेशं स्थाणुभृतं जले शुचिम् ।
 दृष्ट्वा नमः स्थाणवेति प्रोक्त्वा सर्वैर्ह्युपाविशन् ॥ ३३
 ततोऽप्रवीत् सुरपतिरेवोहि दीयतां वरः ।
 क्षुब्धं जगज्जगन्नाथ उन्मज्जस्व प्रियातिथे ॥ ३४
 ततस्तां मधुरां वाणीं शुश्राव वृषभध्वजः ।
 श्रुत्वोत्तस्थौ च वेगेन सर्वव्यापी निरञ्जनः ॥ ३५
 नमोऽस्तु सर्वदेवेभ्यः प्रोवाच प्रहसन् हरः ।
 स चागतः सुरैः सेन्द्रैः प्रणतो विनयान्वितैः ॥ ३६
 तमूचुर्देवताः सर्वास्त्यज्यतां शङ्कर द्रवम् ।
 महाव्रतं त्रयो लोकाः क्षुब्धास्त्वत्तेजसावृताः ॥ ३७
 अयोवाच महादेवो मया त्यक्तो महाव्रतः ।

समज्ञा । (२६-३१)
 उन देवताओं को एकत्वशुद्धि वाला जानकर देवपति
 हरि उन सभी को लेकर शीघ्र अपने आश्रम कुरुक्षेत्र
 में गये । (३२)
 तदनन्तर उन लोगों ने जल के भीतर पवित्र स्थाणुभृत
 देवेश को देखा । उन्हें देखकर 'स्थाणु को नमस्कार है' यह
 कहकर वे सभी बैठ गये । (३३)
 तद्दुपरान्त इन्द्र ने कहा—हे जगन्नाथ ! हे प्रियातिथि !
 संसार क्षुब्ध हो उठा है । आप बाहर निकलकर हमारे
 निकट आये और हम पर दें । (३४)
 तदनन्तर वृषभध्वज महादेव ने उस मधुर वाणी को
 सुना । सुनकर वे सर्वव्यापी निरञ्जन हर वेग से उठ खड़े
 हुए । (३५)
 उन्होंने हँसते हुए कहा—सभी देवताओं को नमस्कार
 है । विनयान्वित इन्द्रादि देवताओं ने उन आये हुए शङ्कर
 को प्रणाम किया । (३६)
 सभी देवताओं ने उनसे कहा—हे शङ्कर ! शीघ्र इस
 महाव्रत को छोड़िये । आपके तेज से आवृत तीनों लोक
 क्षुब्ध हो उठे हैं । (३७)
 तदनन्तर महादेव ने कहा—मैंने महाव्रत का त्याग कर

ततः सुरा दिवं जग्मूर्हृष्टाः प्रयतमानसाः ॥ ३८
 ततोऽपि कम्पते पृथ्वी साब्धिद्वीपाचला ह्यने ।
 ततोऽमिचिन्तयद्गुद्रः किमर्थं क्षुभिता मही ॥ ३९
 ततः पर्यचरच्छ्रुती कुरुक्षेत्र समन्ततः ।
 ददर्शाववतीतीरे उशनसं तपोनिधिम् ॥ ४०
 ततोऽब्रवीत्सुरपतिः किमर्थं तप्यते तपः ।
 जगत्क्षोभकरं विप्र तच्छीघ्रं कथ्यतां मम ॥ ४१
 उशना उवाच ।
 तवाराधनकामार्थं तप्यते हि महत्तपः ।
 संजीवनीं शुभा विद्यां ज्ञातुमिच्छे त्रिलोचन ॥ ४२
 हर उवाच ।
 तपसा परितुष्टोऽस्मि सुतप्तेन तपोधन ।
 तस्मात् संजीवनीं विद्या भवान् ज्ञास्यति तत्त्वतः ॥ ४३
 वरं लब्ध्वा ततः शुक्रस्तपसः संन्यवर्षत ।
 तथापि चलते पृथ्वी साब्धिभूमृन्नागवृता ॥ ४४
 ततोऽगमन्महादेवः सप्तसरस्वतं शुचिः ।

विद्या । तदनन्तर देवता प्रसन्न होकर सयतचित्त हो र्कर्म
 चले गये । (३८)

हे मुनि ! इतने पर भी समुद्र, द्वीप और पर्वतों
 सहित पृथ्वी कम्पित हो रही थी । तब रुद्र ने सोचा कि
 पृथ्वी क्यों क्षुब्ध हो रही है ? (३९)

तदुपरान्त त्रिशूलधारी (शङ्कर) कुरुक्षेत्र के चतुर्विध
 विचरण करने लगे । उन्होंने ओषधती के तट पर तपोनिधि
 उशना को देखा । (४०)

तदनन्तर सुपति शङ्कर ने उनसे कहा—हे विप्र !
 मुझे शीघ्र बतलाओ कि जगत् को क्षुब्ध करने वाला तप क्यों
 कर रहे हो ? (४१)

उशना ने कहा—आपकी आराधना की कामना से मैं
 महात्तप कर रहा हूँ । हे त्रिलोचन ! मैं मद्गलमयी
 सजीवनी विद्या को जानना चाहता हूँ । (४२)

महादेव ने कहा—हे तपोधन ! मैं मलीभौति की गर्ह
 कुम्हारी तपस्या से प्रसन्न हूँ । अतः आप सजीवनी विद्या को
 यथार्थ रूप में जानेंगे । (४३)

शुक्र वर प्राप्त कर तपस्या से निवृत्त हुए । इस पर भी

ददर्श नृत्यमानं च ऋषिं मङ्गणसङ्घितम् ॥ ४५
 भावेन पोप्लवति चालयत् स
 भुजौ प्रसार्यैव ननर्त्त वेगात् ।
 तस्यैव वेगेन समाहता तु
 चचाल भूर्भूमिधरैः सहैव ॥ ४६
 तं शङ्करोऽभ्येत्य करे निगृह्य
 प्रोवाच वाक्यं प्रहसन् महर्षे ।
 किं भावितो नृत्यसि केन हेतुना
 यदस्य मामेत्य किमत्र तुष्टिः ॥ ४७
 स ब्राह्मणः प्राह ममाद्य तुष्टि-
 येनेह जाता मृणु तद् द्विजेन्द्र ।
 यहून् गणान् वै मम तप्यतस्तपः
 संवत्सरान् कायपिशोपणार्थम् ॥ ४८
 ततोऽनुपश्यामि करात् क्षतोत्थं
 निर्गच्छते शाकरसं ममेह ।
 तेनाद्य तुष्टोऽस्मि भृश द्विजेन्द्र

सागर, पर्वत, वृक्ष आदि के साथ पृथ्वी हिल
 रही थी । (४४)

तदनन्तर पवित्र महादेव सप्तसरस्वत में गये । वहाँ
 उन्होंने मङ्गण नामक महर्षि को नाचते हुए देखा । (४५)

वे बालक के समान भाव विभोर होकर दोनों हाथ
 फैलाकर वेग से उड़ल-उड़लकर नाच रहे थे । उसके वेग से
 आहत पृथ्वी पर्वतों सहित प्रकम्पित हो रही थी । (४६)

उनके निकट जाकर एवं उनका हाथ पकड़कर हँसते
 हुए शङ्कर ने यह कहा—हे महर्षि ! क्या सोचकर एव किस
 कारण से आप नाच रहे हैं ? मुझसे बतलायें कि आप क्यों
 प्रसन्न हैं ? (४७)

उस ब्राह्मण ने कहा—हे द्विजेन्द्र ! आज मुझे जिस
 कारण संतुष्टि हो रही है उसे सुनिये । शरीर शोषण के
 लिए तपस्या करते हुए मेरे अनेक वर्ष व्यतीत हो
 गये हैं । (४८)

अब मैं देखता हूँ कि मेरे हाथ के पाव से शाकरस
 निकल रहा है । हे द्विजेन्द्र ! इसी से मुझे बहुत आनन्द प्राप्त

येनामि नृपानि सुभाविताम्ना ॥ ४९
 तं प्राद शंसुद्विज पन्ध मयं
 भव्य प्रवृत्तोऽङ्गुनिजोऽर्थासुवनम् ।
 मंशाटनादेष न च प्ररथो
 मनामि नूनं दि भवान् प्रमगः ॥ ५०
 भुशःच वाक्यं एव भव्यवन्ध
 मया हृनिर्मद्वनरो मरथे ।
 नृत्यं पतिवचन सुनिमित्तोऽय
 पन्ध पारी विनयानमः ॥ ५१
 वनाद शंसुद्विज मण्ड शोकं
 तं प्रमनो हर्ममन्दवदव्य ।
 इदं च शोधे प्ररथं प्रपिप्या
 शृष्टदवम्भान्तु मम कलेन ॥ ५२
 मानिष्यमथैव सुमापुराणां
 मन्थर्वविषापरद्विप्रराणाम् ।

मदास्तु धर्मस्य निधानमयं
 माररथं पावमतापदादि ॥ ५३
 सुवना काभानार्थी च सुवेसुर्विमनोदरा ।
 मनोदरा वीचरणी विद्याया च माररथी ॥ ५४
 एता. मम माररथयो निवनिष्यन्ति निष्यद्यः ।
 मोमदानवर्नं मरथं. प्रवन्तानि सुशुष्यदाः ॥ ५५
 भवानदि दृष्टये मृतिं म्याप्य मरीचमीम् ।
 मनिष्यति मदापुत्र्यं प्रमनोकं सुशुर्मम् ॥ ५६
 इत्येवमुक्त्वा देवेन शंभवेण शरोधनः ।
 मृतिं म्याप्य दृष्टये मन्मथोरमगात् पथी ॥ ५७
 मने मशुनये कृपां निधन्ता ममतापत ।
 भयागामन्दरं शंसुनिजमावमयं सुविः ॥ ५८
 एतत् शरोकं द्विज शंकरम्
 मन्मदागीन् शपनेऽथ वीने ।

दृष्टा दे और में भावविष्ट होकर जाच रहा हूँ । (४९)
 अन्तु ने जनमे कहा—दे द्विज ! सुते देनो । प्रहा
 वरने पर मेरी प्रहसुद्विज में अतिशय भय निरत्र रहा दे,
 चित्र सुते मरथे नहीं देगा । आप निमय हो प्रमग हो
 गये है । (५०)
 हे मरथे ! शृषभवन्ध को बाध सुने के पदाम्बु जने
 मानकर मशुनक सुनि ने गुण छोड़ दिया एवं विमयाभिन
 तथा विनयानम्र होकर जनके चरणों में प्रणाम
 किया । (५१)
 शम्भुने जनमे कहा—हे द्विज ! तुम अदरय मदा के
 सुगम शोक को जाओ । दृष्टी में वह भेष्ट तीर्थे शृष्टक
 तीर्थे के समान कष्टदायी होगा । (५२)
 सुद, अशुद, मन्थर्व, विषापर और विप्रद शोक
 सदा यहाँ उपस्थित रहेंगे । यह भेष्ट माररथ । जले मये ।

तीर्थे मदा यमं वा निधान एवं पावमतापराधि
 होया । (५३)
 यहाँ सुवना, वज्रगायी, सुवेसु, विमलेष्वा, मनो-
 दरा, भोपवरी, विद्याया माररथी नामकी म्याव नदियों
 निष्य निवास करेगी । ये सभी पुण्यदायिनी नदियों
 सेमपान वा पत्र देनवायी है । (५४-५५)
 सुम भी शृष्टये में अतिभेष्ट मृतिं म्यापित करके
 परम पवित्र सुशुर्मम मदा शोक में जाओगे । (५६)
 मदादेव के देगा बहने पर अतिशय शरोधन मशुनक
 श्रुति शृष्टये में मृतिं म्यापित करके मन्मथोक चले
 गये । (५७)
 मशुनक श्रापि के चले जाने पर दृष्टी स्थिर हो
 गयी । मदादेव भी अपने पवित्र निवास मन्दर पर्वत पर
 (५८)

शून्येऽन्धगाद् दृष्टमतिर्हि देव्या

संयोधितो येन हि कारणेन ॥ ५९

इति श्रीवामनपुराणे पटत्रिंशोऽध्याय ॥३६॥

३७

नारद उवाच ।

गतोऽन्धकस्तु पाताले किमचेष्टत दानवः ।

शंकरो मन्दरस्थोऽपि यच्चकार तदुच्यताम् ॥ १

पुलस्त्य उवाच ।

पातालस्थोऽन्धको ब्रह्मन् वाध्यते मदनान्गिना ।

संतप्रविग्रहः सर्वान् दानयानिदमब्रवीत् ॥ २

स मे सुहृत्स मे बन्धुः स भ्राता स पिता मम ।

यस्तानद्रिसुता शीघ्रं ममान्तिरुद्रुपानयेत् ॥ ३

एवं ब्रुवति दैत्येन्द्रे अन्धके मदनान्धके ।

मेघगम्भीरनिषीधं प्रहृलादो वाक्यमब्रवीत् ॥ ४

धैर्यं गिरिसुता धीर सा माता धर्मतस्तव ।

हे द्विज । मैंने तुमसे यह बातलया कि उस समय शङ्कर के तपस्या हेतु जाने के कारण शून्य पर्वत पर जानर

पिता त्रिनयनो देवः धृतमामत्र कारणम् ॥ ५

तु पुत्रा ब्रह्मपुत्रेण धर्मनित्येन दानव ।

आराधितो महादेवः पुत्रार्थाय पुत्रा क्रिज ॥ ६

तस्मै त्रिलोचनेनासीद् दत्तोऽन्धोऽप्येव दानव ।

पुत्रकः पुत्रकामस्य प्रोक्तत्वेत्थं वचनं विभो ॥ ७

नेत्रत्रय हिरण्याक्ष नमार्थं हृमया मम ।

पिहितं योगसंस्थस्य ततोऽन्धमभवत्तम ॥ ८

तस्माच्च तमसो जातो भूतो नीलघनस्त्रनः ।

तदिदं गृह्यता दैत्य तवौपयिकमात्मजम् ॥ ९

यदा तु लोकनिद्रिष्टं दुष्टं कर्म करिष्यति ।

दुष्टमति (अन्धक) ने देवी से युक्त किया ।

(५९)

श्रीवामनपुराण म दत्तोसर्वो अध्याय समाप्त ॥३६॥

३७

नारद ने कहा—अन्धक दानव ने पाताल में जाकर क्या किया ? महादेव ने भी मन्दर पर्वत पर रहकर जो कुछ किया उसे बतलाइये ।

(१)

पुलस्त्य ने कहा—हे ब्रह्मन् । अन्धक पाताल में रहकर कामग्नि से पीडित होने लगा । उसका शरीर सन्तप्त हो गया । उसने सभी दानवों से यह कहा—

(२)

वही मेरा सुहृद्, बन्धु, भाई और पिता है जो उस पर्वत नन्दिनी को मेरे पास शीघ्र लाये ।

(३)

मदनानुर दैत्येन्द्र अन्धक के इस प्रकार कहने पर प्रहृलाद ने मेघ के समान गम्भीर शब्द से इस प्रकार कहा—

(४)

हे धीर । ये जो गिरिनन्दिनी हैं वे धर्मव तुम्हारी माता

हैं और त्रिलोचन महादेव तुम्हारे पिता हैं । इसका कारण सुनो—

(५)

हे दानव । प्राचीन काल में धर्म में सदा उत्तर रहने वाले पुत्रहीन तुम्हारे पिता ने पुत्र की अभिलाषा से महादेव की आराधना की ।

(६)

हे दानव । हे विभो । त्रिलोचन ने पुत्र की कामना वाले उसको अन्ध पुत्र दिया और यह कहा—

(७)

हे हिरण्याक्ष । एक समय जब मैं योगस्थ था, उमा ने परिहासार्थ मेरे तीनों नेत्रों को बन्द कर दिया था । तदनन्तर अन्धकाररूप तम उत्पन्न हुआ ।

(८)

उस तम से नील मेघ सदृश शब्द करने वाला एक भूत (प्राणी) उत्पन्न हुआ । हे दैत्य । इसे प्रहृण करो । यह तुम्हारे उपयुक्त पुत्र है ।

(९)

त्रैलोक्यजननीं चापि अभिवाञ्छित्पतेऽधमः ॥ १०
 पातपिप्यति वा विप्रं यदा प्रक्षिप्य चासुरान् ।
 तदास्य स्वयमेवाहं करिष्ये कायशोधनम् ॥ ११
 एवमुक्त्वा गतः शंभुः स्वस्थानं मन्दराचलम् ।
 त्वरिपिताऽपि समभ्यागान् त्वामादाय रसातलम् ॥ १२
 एतेन कारणेनाम्ना शैलेयी भविता तव ।
 सर्वस्यापीह जगतो गुरुः शंभुः पिता ध्रुवम् ॥ १३
 नवानपि तपोयुक्तः श्वाभ्यवेत्ता गुणाद्भुतः ।
 नेदो पापमंस्वये मतिं बुधाद् भवद्विधः ॥ १४
 त्रैलोक्यप्रभुरण्यक्तो भवः गर्वैर्नमस्कृतः ।
 अजेयस्तस्य भार्गव्यं न तस्महोऽस्मरार्त्न ॥ १५
 न चापि शक्तः प्राप्तुं तां भवाञ्छैलनृपात्मजाम् ।
 अजित्ना सगणं रटं म न कामोऽत्र दुर्लभः ॥ १६
 यस्तोत् सागरं दौर्भ्यां पातयेद् मुनि मारुतरम् ।

मेरुत्पाटयेद् वापि स जयेच्छूलपाणिनम् ॥ १७
 उदाहोरिरिदिमाः शक्याः क्रियाः कर्तुं नैर्षलात् ।
 न च शक्यो हरो जेतुं सत्यं सत्यं मयोदितम् ॥ १८
 किं त्वया न ध्रुवं दैत्य वया दण्डो महीपतिः ।
 परस्त्रीकामवान् मूढः सराष्ट्रो नाश्रमामवान् ॥ १९
 आमीद् दण्डो नाम नृपः प्रभूतनलनाहनः ।
 स च वने महातेजाः पीरोहित्याय भार्गवम् ॥ २०
 ईजे च निरिधैर्यैर्नृपतिः शुक्रपालितः ।
 शुक्रस्यामीघ दुहित्वा अरजा नाम नामतः ॥ २१
 शुक्रः कदाचिदगमद् ध्रुवपवांगमासुरम् ।
 तेनार्चितधिरं तत्र तस्यै भार्गवसत्तमः ॥ २२
 अरजा स्वगृहे धदिं शुश्रूषन्ती महासुर ।
 अतिष्ठत् सुनार्यहो सतोऽभ्यागाच्चराधिपः ॥ २३
 म प्रच्छ कः शुभ्रेति तमूचुः परिचारिकाः ।

यह अधम जब लोमरिरोधी दृष्टकर्म करेगा तथा त्रैलोक्य-जननी की कामना करेगा अथवा असुरों को भेज कर जब यह विप्रों का ध्वज करेगा, उस समय मैं स्वयं इसकी शरीर का शोधन करूँगा । (१०-११)
 ऐसा कहकर शम्भु अपने स्थान मन्दराचल पर चले गये एवं तुम्हारे पिता तुमको लेकर रसातल में आये । (१२)
 इसीलिए शैलनन्दिनी तुम्हारी माता हैं एवं रामत्व जगत् के गुरु शम्भु निश्चय ही तुम्हारे पिता हैं । (१३)
 तुम तपस्वी, शास्त्रज्ञ तथा अनेक अद्भुत गुणों से भूषित हो । अतः तुम्हारे जैसे पुरुष को इस प्रकार के पाप सङ्कल्प में बुद्धि नहीं लगानी चाहिए । (१४)
 हे देवदातु ! त्रैलोक्य के प्रभु अजयक शिव सभी के वन्दनीय एवं अजेय हैं । उनही इस भार्या की हृच्छा तुम्हें नहीं करनी चाहिए । (१५)
 गणों-सहित शङ्कर को बिना हरये तुम उस शैलपुत्री को प्राप्त भी नहीं कर सकते । अतः तुम्हारी वह अभिछापा दुर्लभ है । (१६)
 शूलपाणि को वही जीत सकता है, जो भुजाओं से सागर को पार कर जाय, अथवा सूर्य को पृथ्वी पर गिरा

दे, अथवा मेरु पर्वत को उखाड़ दे । (१७)
 अथवा उपर्युक्त सभी कार्य मनुष्य बल से कर सकते हैं, किन्तु शङ्कर नहीं जीते जा सकते, यह मैंने सच सच कहा है । (१८)
 हे दैत्य ! तुमने क्या वह नहीं सुना है कि परस्त्री की कामना करने वाला दण्ड नामक मूढ़ राजा अपने राष्ट्र के सहित नष्ट हो गया । (१९)
 प्रचुर सेना एवं वाहनों से युक्त दण्ड नामक एक राजा था । उस महानेजारी ने शुक्राचार्य को पुरोहित बनाया । (२०)
 शुक्राचार्य द्वारा रक्षित होकर उस राजा ने अनेक यज्ञों का अनुष्ठान किया । शुक्राचार्य की अरजा नाम की एक कन्या थी । (२१)
 शुक्राचार्य किसी समय असुर ध्रुवपर्वत के समीप गये थे । उसके अनुत्थेय करने पर भार्गव श्रेष्ठ बहुत बालक वहाँ रुक गये । (२२)
 हे महासुर ! सुन्दरी अरजा अपने घर में रहकर अग्नि की सेवा करती हुई स्थित थी । इतने में एक दिन वहाँ गये । (२३)
 उन्होंने पूछा—शुक्राचार्य कहाँ हैं ? पर की सेविकाओं

गतः स भगवान् शुक्रो याज्ञनाय दनोः सुतम् ॥ २४ ॥
 पप्रच्छ नृपतिः का तु तिष्ठते भार्गवाश्रमे ।
 तास्त्वमृचुर्गुरोः एव्री संतिष्ठत्यरजा नृप ॥ २५ ॥
 तामाश्रमे शुक्रसुतां द्रष्टुमिक्ष्वाकुनन्दनः ।
 प्रविशेश महागर्हददर्शरजसं ततः ॥ २६ ॥
 तां दृष्ट्वा कामसंतप्तस्तत्क्षणादेव पार्थिवः ।
 सजातोऽन्धक दण्डस्तु कृतान्तःकलचोदितः ॥ २७ ॥
 ततो विसर्जयामास श्रुत्यान् भ्रातृन् सुहृत्तमान् ।
 शुक्रशिष्यानापि बली एकाकी नृप आग्रजत् ॥ २८ ॥
 तमागतं शुक्रसुता प्रत्युत्थाय यज्ञस्तिनी ।
 पूजयामास संहृष्टा भ्रातृभावेन दानव ॥ २९ ॥
 तवस्तामाह नृपतिर्बाले कामाग्नितापितम् ।
 मां समाह्लादयस्वाद्य स्परिष्वङ्गचारिणा ॥ ३० ॥
 साऽपि प्राह नृपश्रेष्ठ मा विनीनश आंतरः ।
 पिता मम महाक्रोधात् त्रिदशानपि निर्दहेत् ॥ ३१ ॥

ने उनसे कहा—वे भगवान् शुक्र दतुनन्दन के यहाँ यश कराने गये हैं । (२४)

राजा ने पूछा—भार्गव के आश्रम में कौन स्त्री है ? उन लोगों ने उत्तर दिया—हे राजन् । गुरु की कन्या अरजा यहाँ है । (२५)

महाबाहु इक्ष्वाकुनन्दन शुक्राचार्य की उस पुत्री को देखने के लिए आश्रम में प्रविष्ट हुए एष अरजा को देखा । (२६)

हे अन्धक ! कालबल से प्रेरित राजा उसे देतकर वल्लण ही काम से सन्नत हो गये । (२७)

तदनन्तर भृत्यों, भाइयों पतिष्ठानियों एवं शुक्राचार्य के शिष्यों को भी बलवान राजा ने वहाँ से हटा दिया एवं अकेले गये । (२८)

यशस्विनी शुक्रपुत्री प्रसन्नतापूर्वक उस आये हुए राजा की भ्रातृभाव से पूजा की । (२९)

तदनन्तर राजा ने उससे कहा—हे बाले ! मैं कामाग्नि से तापित हूँ । आज तुम अपने आलिङ्गन रूपी जल से मुझे शीतल करो । (३०)

उस (अरजा) ने कहा—हे नृपश्रेष्ठ ! आतुर होकर अपने को नष्ट न करो । मेरे पिता अत्यधिक क्रोध से देवताओं को भी जला सकते हैं । (३१)

मृदुबुद्धे भवान् भ्राता ममासि त्वनवाप्युतः ।
 भगिनी धर्मतस्तेऽहं भवाञ्छिष्यः पितुर्मम ॥ ३२ ॥
 सोऽग्रनीड् भीरु मां शुक्रः कालेन परिधक्ष्यति ।
 कामाग्निर्निर्दहेति मामद्यैव तनुमभ्यमे ॥ ३३ ॥
 सा प्राह दण्डं नृपतिं मूढतं परिपालय ।
 तमेव याचस्य गुरुं स ते दास्यत्यतंशयम् ॥ ३४ ॥
 दण्डोऽग्रवीत् सुतन्वङ्गि कालक्षेपो न मे क्षमः ।
 च्युतावसरकर्मृते विघ्नो जायेत सुन्दरि ॥ ३५ ॥
 ततोऽग्रवीच विरजा नाहं त्वा पार्थिवात्मज ।
 दग्तु शक्ता रजमात्मान स्वतन्त्रा न हि धोषितः ॥ ३६ ॥
 किं वा ते बहुनोक्तेन मा त्वं नाश नराधिप ।
 गच्छस्व शुक्रशापेन सभृत्यञ्जातिगन्धवः ॥ ३७ ॥
 ततोऽग्रवीचरपतिः सुतनु मृषु चेष्टितम् ।
 चित्राङ्गदाया यद् दृचं पुरा देवयुगे शुभे ॥ ३८ ॥

हे मृदुबुद्धि ! तुम मेरे भाई हो । किन्तु अनिती से व्याप्त हो गये हो । मैं धर्म से तुम्हारी बहिन् हूँ । क्यों कि तुम मेरे पिता के शिष्य हो । (३२)

उस (दण्डक) ने कहा—हे भीरु ! शुक्र (भविष्य में) किसी समय मुझे दग्ध करेगा । किन्तु हे कृशोदरी ! काम की आग मुझे अभी दग्ध कर रही है । (३३)

उस (अरजा) ने राजा दण्ड से कहा—हे राजन् ! एक मुहूर्त तक प्रतीक्षा कीजिए । आप उस गुरु से ही याचना करिये वे मुझे आपको निरसग्देह प्रदान कर देंगे । (३४)

दण्ड ने कहा—हे सुन्दरी ! मैं कालक्षेप करने में असमर्थ हूँ । अदसर चूक कर कार्य करने में विघ्न होता है । (३५)

उसके अनन्तर विरजा ने कहा—हे राजपुत्र ! मैं अपने को तुम्हें देने में असमर्थ हूँ । क्योंकि स्त्रियों स्वतन्त्र नहीं होती । (३६)

हे नराधिप ! अथवा अधिक कहने से क्या लाभ ? तुम शुक्र के शाप से दृश्य, जाति और वस्तुओं के साथ अपना नाश मत करो । (३७)

इसके बाद राजा ने कहा—हे सुन्दरि ! प्राचीन काल में देवयुग में पठित चित्राङ्गदा वा वृत्तान्त सुभे । (३८)

विश्वकर्म्ममुता साध्वी नाम्ना चित्राङ्गदाऽभवत् ।
 रूपयौवनमंपक्वा पद्महीनेव पद्मिनी ॥ ३९
 सा कदाचिन्महारण्यं सखीभिः परिवारिता ।
 जगाम नैमिषं नाम स्नातुं कमललोचना ॥ ४०
 सा स्नातुमवतीर्णा च अयाभ्यागाक्षरेक्षरः ।
 सुदेवतनयो धीमान् सुरथो नाम नामतः ॥
 ता ददर्श च तन्वङ्गी शुभाङ्गो मदनातुरः ॥ ४१
 तं दृष्ट्वा सा सखीराह वचनं सत्यमंप्रुतम् ।
 अतो नराधिपसुतो मदनेन वदद्ध्यते ॥ ४२
 मदर्शं च धर्मं मेऽस्य स्नप्रदानं सुरूपिणः ।
 सख्यस्तामनुवन् गाला न प्रगल्भाऽसि सुन्दरि ॥ ४३
 अस्वातन्त्र्यं तज्यास्तीह प्रदाने स्नात्मनोऽनघे ।
 पिता तनास्ति धर्मिष्ठः सर्वशिल्पनिशारदः ॥ ४४
 न ते पुक्तमिहात्मान दातुं नरपतेः म्यधम् ।

विश्वकर्मा की चित्राङ्गदा नामक एक साध्वी
 कन्या थी। यह रूप यौवन सम्पन्न एवं मानो
 पद्म प्रिहीन पद्मिनी थी। (३९)

कमल के समान नेत्रगरी वह किसी समय अपनी
 सखियों से घिरी हुई नैमिष नामक महारण्य में स्नान
 करने के लिए गई। (४०)

और वह स्नान करने के लिए जल में उतरी। उसी
 समय सुदेव के पुत्र बुद्धिमान राजा सुरथ यहाँ पहुँचे
 और उस कृशाङ्गी को देखकर शुभ अर्णो वान वे कामातुर
 हो गये। (४१)

उनको देखकर उस (चित्राङ्गदा) ने सखियों से
 सत्य-सयुक्त वचन कहा—यह राजपुत्र मेरे लिए कामवीक्षित
 हो रहा है। अतः इस सुन्दर रूप वाले को मुझे अपने को
 समर्पित कर देना उचित है। बाला सखियों ने उससे
 कहा—हे सुन्दरि तू म प्रगल्भा नहीं हो। (४२-४३)

हे पापराहित बालिके! आत्मदान करने में तुम्हें
 स्वतन्त्रता नहीं है। क्योंकि तुम्हारे पिता परमधार्मिक
 तथा सर्वशिल्पों में विशारद है। (४४)

अतः तुम्हें यहाँ राजा को स्वतः आत्मदान करना
 उचित नहीं है। इसी बीच कामबाण वीक्षित सत्यवादी

एतस्मिन्नन्तरे राजा सुरथः सत्यवाक् सुधीः ॥ ४५
 समन्पेत्याऽध्वरीदेना कन्दर्पशरपीडितः ।
 त्वं मृगधे मोहयसि मा दृष्टयैव मदिरक्षणे ॥ ४६
 त्वद्दृष्टिशरपातेन स्मरेणाम्येत्य ताडितः ।
 तन्मां कुचतके तल्पे अभिशायितुमर्हसि ॥ ४७
 नोचेत् प्रथक्ष्यते कामो भूयो भूयोऽतिदर्शनात् ।
 ततः सा चारुसर्पाङ्गी राज्ञो राजीवलोचना ॥ ४८
 वार्यमाणा सखीभिस्तु प्रादादात्मानमात्मना ।
 एव पुरा तथा तन्व्या परित्रातः स भूपतिः ॥ ४९
 तस्मान्नामपि सुश्रोणि त्वं परित्रातुमर्हसि ।
 अरजस्ताऽध्वरीद् वण्ड तस्या यद् वृचसुचरम् ॥ ५०
 किं त्वया न परिज्ञातं तस्मात् ते कथयाम्यहम् ।
 तदा तथा तु तन्वङ्गवा सुरथस्य महीपतेः ॥ ५१
 आत्मा प्रदत्तः स्वातन्त्र्यात् ततस्तानशपत् पिता ।

बुद्धिमान् सुरथ ने उससे निजट जानर कहा—हे मृगधे!
 हे मदिरक्षणे! तुम दृष्टि से ही मुझे मृग्य कर रही
 हो। (४५-४६)

मदन न आकर तुम्हारी दृष्टि रूपी बाण द्वारा मुझ
 आहत किया है। अतः तुम मुझ अपने कुचतल रूपां
 शय्या पर लिटाओ। (४७)

अन्यथा बार-बार अतिदर्शन से नाम मुझे दग्ध कर
 डालेगा। तदनन्तर उस राजीवलोचना सर्पाङ्गसुन्दरी ने
 सखियों के मना करने पर भी स्वयं को राजा के प्रति
 अर्पित कर दिया। इस प्रकार प्राचीन काल में उस
 कृशाङ्गी ने उस राजा की रक्षा की थी। (४८-४९)

अतः हे सुश्रोणि! तुम मेरा भी परित्राण करो।
 शुक्रतन्दिनी अरजा ने राजा वण्ड से कहा—क्या तुम
 उसके पश्यात् की घटना को नहीं जानते? अतः मैं
 तुमसे कहती हूँ। राजा सुरथ को जब उस तन्वङ्गी ने स्वयं
 को स्वतन्त्रता से अर्पित कर दिया तो पिता ने उसको
 शाप दिया। हे मन्दचेतसे! यद्यत् तुमने स्त्रीत्वभाववशा
 धर्म का परित्राण कर स्वयं को प्रदान किया है अतः
 तुम्हारा विवाह नहीं होगा। विवाहप्राप्त होने से तुम्हें

यस्माद् धर्मं परित्यज्य स्त्रीभावान् मन्दचेतसे ॥ ५२
 आत्मा प्रदत्तस्तस्माद्दि न विवाहो भविष्यति ।
 विवाहरहिता नैव सुखं लप्स्यसि भर्तृतः ॥ ५३
 न च पुत्रफलं नैव पतिना योगमेष्यसि ।
 उत्सृष्टमात्रे शापे तु ह्यपोवाह सरस्वती ॥ ५४
 अकृतार्थं नरपतिं योजनानि त्रयोदश ।
 अपकृष्टे नपरपतौ साऽपि मोहहृत्पामता ॥ ५५
 ततस्तां सिषिषुः सख्यः सरस्वत्या जलेन हि ।
 सा सिच्यमाना सुतरां शिशिरेणाप्यथामभा ॥ ५६
 मृतकल्पा महाबाहो विश्वकर्मासुताऽभवत् ।
 तां मृतमिति चिन्नाय जग्मुः सख्यस्त्वरान्विताः ॥ ५७
 काष्ठान्याहर्तुमपरा वह्निमानेतुमाकुलाः ।
 सा च तास्वपि सर्वासु गतासु वनमृत्तमम् ॥ ५८
 संज्ञां लेभे सुचार्वङ्गी दिशश्चाप्यवलोकयत् ।
 अपश्यन्ती नरपतिं तथा स्निग्धं सखीजनम् ॥ ५९
 निपपात सरस्वत्याः पयसि स्फुरितेशुगा ।

तां वेगात् काञ्चनाक्षी तु महानद्यां नरेध्वर ॥ ६०
 गोमत्यां परिचिक्षेप तरङ्गकुटिले जले ।
 तथाऽपि तस्यास्तद्भाष्यं विदित्वाऽप्य विशां पते ॥ ६१
 महायने परिक्षिप्रा सिंहव्याघ्रभयाकुले ।
 एवं तस्याः स्वतन्त्राया एपाऽवस्था श्रुता मया ॥ ६२
 तस्मान्न दास्याम्यात्मानं रक्षन्ती शीलमृत्तमम् ।
 तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा दण्डः शक्रममो बली ॥
 विहस्य त्वरजां ग्राह स्वार्थमर्थक्षयंकरम् ॥ ६३
 दण्ड उवाच ।

तस्या यदुत्तरं घृत्तं त्वपितुश्च कृद्योदरि ।
 सुरयस्य तथा राज्ञस्तच्छ्रोतुं मतिमादध ॥ ६४
 यदाऽवकृष्टे नृपतौ पतिता सा महायने ।
 तदा गगनसंचारी दृष्टयान् शुद्धकोऽञ्जनः ॥ ६५
 ततः सोऽभ्येत्य तां वालां परिसान्त्वय प्रयत्नतः ।
 ग्राह मा गच्छ सुमगे विपादं सुरथं प्रति ॥ ६६
 ध्रुवमेष्यसि तेन त्वं संयोगमसितिक्षणे ।

पति का सुख नहीं मिलेगा । (५०-५३)
 तुम्हें न तो पुत्रफल की प्राप्ति होगी और न पति से
 संयोग प्राप्त होगा । शाप देते ही सरस्वती नदी अकृतार्थ
 राजा को तैरह योजन तक बहा ले गई । राजा के दूर
 चले जाने पर वह भी मूर्च्छित हो गई । (५४-५५)
 तदनन्तर सखियों ने सरस्वती के जल से उसने
 सिक्त किया । हे महाबाहो ! उस अत्यन्त शील जल
 से सिक्त होने पर वह विश्वकर्मा की पुत्री मृतकल्प
 हो गयी । उसे मृत जानकर बुद्ध सखियाँ शीघ्रता
 पूर्वक काष्ठ एवं वृद्ध आहुल होकर अग्नि लेने
 गईं । उन सभी के वचन वत में जाने पर उसे चेतना
 प्राप्त हुई । उस सुन्दरी ने चतुर्दिक् देखा । राजा एवं
 पिय सखियों को न देखकर वह पाञ्चलनेत्रा सरस्वती
 के जल में गिर पड़ी । हे नरेध्वर ! काञ्चनाक्षी ने वेगपूर्वक
 उसे महानदी योगती के सङ्गों से हटिल जलमें फेंक दिया ।
 हे राजन् ! उसकी भविष्यता को जानकर उस
 (गोमती) ने भी उसे सिद्ध एवं न्याय से पूर्ण बन

मे फेंक दिया । इस प्रकार मैंने उस स्वतन्त्रा की इस अवस्था
 का वर्णन सुना है । (५६-६२)
 अत उत्तम शील की रक्षा करती हुई मैं अपने को
 तुम्हें समर्पित नहीं करूँगी । इन्द्र के समान बलवान
 राजा दण्ड ने उसके उस वचन को सुनकर हँसते हुए अरजा
 से अर्थ को नष्ट करने वाला स्वाथ युक्त वचन
 कहा । (६३)
 दण्ड ने कहा—हे वृशोदरि ! उसके पिता तथा राजा
 सुरथ के साथ घटित वाद के घृत्तान्त को सुनने के लिए
 तुम सावधान हो जाओ । (६४)
 राजा के दूर चले जाने पर जब वह महायन में गिरी
 उस समय गगनसञ्चारी अञ्जन नामक शुद्धक ने उसे
 देखा । (६५)
 तदनन्तर वह वाला के निकट गया एवं प्रयत्न पूर्वक
 उसे सान्त्वना देते हुए कहा—सुमगे ! सुरथ के लिए दुःख
 मत करो । (६६)
 हे कृष्णनेत्रों वाली ! तुम इससे अवश्य मिलोगी । अतः

तस्माद् गच्छन् शीघ्रं तं द्रष्टुं श्रीकण्ठमीश्वरम् ॥ ६७
इत्येवमुक्त्वा सा तेन गुह्यकेन सुलोचना ।
श्रीकण्ठमागता तूर्णं कालिन्ध्या दक्षिणे तटे ॥ ६८
दृष्ट्वा महेश्वरं श्रीकण्ठं स्नात्वा रत्नसुताजले ।
अतिष्ठत् शिरोनम्रा यान्मग्न्यस्थितो रविः ॥ ६९
अथात्रगाम देवस्य स्नानं कर्तुं तपोधनः ।
शुभः पाशुपताचार्यः सामवेदी ऋतध्वजः ॥ ७०
दर्शं तत्र तन्नङ्गीं मुनिश्चिन्नाङ्गदां शुभाम् ।
रतीमिव स्थितां पुण्यामनङ्गपरिवर्णिताम् ॥ ७१
तां दृष्ट्वा स मुनिर्घ्यानमगमत् केयमित्युत ।
अथ सा तमूर्षिं वन्द्य कृताञ्जलिहस्त्यया ॥ ७२
तां प्राह पुत्रि कस्यासि सुता सुरसुतोपमा ।
किमर्थमागतामीह निर्मनुष्यमृगे वने ॥ ७३
ततः सा प्राह तमूर्षिं ययातप्यं वृशोदरी ।
श्रुत्वाऽर्षिः क्रोषमगमदशपन्धिलिपना वरम् ॥ ७४

यस्मात् स्वतनुजातेयं परदेयाऽपि पापिना ।
योजिता नैन पतिना तस्माच्छाखात्मगोऽस्तु सः ॥ ७५
इत्युक्त्वा स महायोगी भूयः स्नात्वा त्रिधानतः ।
उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां पूजयामास शंकरम् ॥ ७६
सपूज्य देवदेवेशं यथोक्तनिधिना हरम् ।
उवाचागम्यतां सुभ्रूं सुदर्तीं पतिलाजसाम् ॥ ७७
गच्छन् सुमने देशं मत्प्रगोदारं शुभम् ।
तत्रोपास्य महेशानं महान्तं हाटकेश्वरम् ॥ ७८
तत्र स्थिताया रम्भोरु रयाता देवपती शुभा ।
आगमिष्यति दैत्यस्य पुत्री कन्दरमालिनः ॥ ७९
तथाऽन्या गुह्यसुता नन्दयन्तीति निश्च्युता ।
अञ्जनस्यैव तत्रापि समेष्यति तपसिनी ।
तयाऽपरा वेदवती पर्जन्यदुहिता शुभा ॥ ८०
यदा तिम्रः समेष्यन्ति सप्तगोदारने जले ।
हाटकाराचे महादेवे तदा संयोगमेष्यति ॥ ८१

तुम शीघ्र भगवान् श्रीकण्ठ का दर्शन करने जाओ । (६७)

उस गुह्यक के ऐसा कहने पर यह सुन्दर नेत्रों वाली शोभतापूर्वक कालिन्दी के दक्षिण तट पर स्थित श्रीकण्ठ के पास गई । (६८)

यह महेश्वर श्रीकण्ठ का दर्शन तथा कालिन्दी के जल में स्नान कर दोपहर तक सिर झुमाये रखी रही । (६९)

इतने में देव श्रीकण्ठ के पास शुभलक्षणयुक्त पाशुपताचार्य, सामवेदी, तपोधन, ऋतध्वज स्नान करने के लिए आये । (७०)

मुनि ने काम से विहीन रति के तुल्य वृशाङ्गी कल्याणी चिन्नाङ्गदा को वहाँ देखा । (७१)

उन मुनि ने उसको देदरकर सोचा कि यह कीन है । इसी बीच यह उन ऋषि के पास जाकर उन्हें प्रणाम कर हाथ जोड़कर रखी हो गयी । (७२)

(ऋषि ने) उससे पूछा—हे पुत्री ! देवकन्या के समान तुम किसरी पुत्री हो ? इस मनुष्य तथा पशुरहित वन में तुम क्यों आयी हो ? (७३)

तदनन्तर उस वृशोदरी ने उन ऋषि से यथार्थ बात कही । उसे सुनकर ऋषि क्रुद्ध हुए एवं शिल्पियों में श्रेष्ठ विन्धकर्मा को शाप दिया । (७४)

यत उस पापी ने दूसरे के देने योग्य भी अपनी इस पुत्री को पति से युक्त नहीं किया अतः वह शाखात्मग (यन्दर) हो जाय । (७५)

यह कहने के उपरान्त उन महायोगी ने पुनः विधिवत् स्नान एवं पश्चिम सन्ध्या कर शङ्कर का पूजन किया । (७६)

शास्त्रोक्त विधि से देवेश्वर शंकर की पूजा कर उन्होंने पति को चाहने वाली तथा सुन्दर भौंहों और दातों वाली चिन्नाङ्गदा से कहा— (७७)

हे सुभगे ! कल्याणदायक सप्तगोदार नामक देश में जाओ । वहाँ हाटकेश्वर महादेव की पूजा करते हुए निवास करो । (७८)

हे रम्भोरु ! वहाँ पर रहनी हुई तुम्हारे पास दैत्य कन्दरमाली की देवपती नामक कल्याणी पुत्री आवेगी । (७९)

इसके अतिरिक्त वही पर अञ्जन नामक गुह्यक की नन्दयन्ती नामक तपसिनी पुत्री तथा वेदवती नामक पर्जन्य की कल्याणी पुत्री भी आवेगी । (८०)

जब वे तीनों हाटकेश्वर महादेव के पास सप्तगोदार में आयेंगी उस समय तुम उनसे मिलोगी । (८१)

इत्येवमुक्त्वा मुनिना बाला चित्राङ्गदा उवा ।
 सप्तगोदावरं तीर्थमगमत् स्वरिता ततः ॥ ८२
 संप्राप्य तत्र देवेशं पूजयन्ती त्रिलोचनम्
 समध्यास्ते शुचिपरा फलमूलाशनाऽभवत् ॥ ८३
 स चर्पिर्ज्ञानसंपन्नः श्रीकण्ठाद्यतनेऽलिरत् ॥
 श्लोकमेकं महाख्यानं तस्याथ प्रियकाम्यया ॥ ८४
 न सोऽस्ति कश्चित् त्रिदशोऽसुरो वा

यद्योऽथ मर्त्यो रजनीचरो वा ।
 इदं हि दुःखं मृगशावनेभ्या
 निर्मार्जयेद् यः स्वपराक्रमेण ॥ ८५
 इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्जगाम
 द्रष्टुं विधुं पुष्करनाभमीश्वरम् ।
 नदीं पयोष्णीं मुनिवृन्दयन्वां
 संचिन्तयन्नेव विशालनेत्राम् ॥ ८६

इति श्रीवामनपुराणे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

३८

दण्ड उवाच ।

चित्राङ्गदायास्त्वरजे तत्र सत्या यथासुखम् ।
 स्मरन्त्याः सुरथं वीरं महान् कालः समभ्यगात् ॥ १
 विश्वकर्माऽपि मुनिना शप्तो वानरतां गतः ।

मुनि के ऐसा कहने पर बाला चित्राङ्गदा वहाँ से श्रीप्र
 सप्तगोदावर नामक तीर्थ में गईं । (८२)
 वहाँ जाने के उपरान्त वह देवाधिदेव त्रिलोचन की
 पूजा करती तथा फल-मूल का भक्षण करती हुई पवित्रता-
 पूर्वक रहने लगी । (८३)
 उन ज्ञान-सम्पन्न ऋषि ने उसकी हित-कामना से प्रेरित
 होकर श्रीकण्ठ के मन्दिर में महाख्यानयुक्त एक श्लोक
 लिखा । (८४)

न्यपतन्मेहशिखराद् भूपृष्ठं विधियोदितः ॥ २
 वनं धोरं सुगुल्मालं नदीं शालुकिनीमनु ।
 शाल्वेयं पर्वतश्रेष्ठं समावसति सुन्दरि ॥ ३
 तत्रासतोऽस्य सुचिरं फलमूलान्यथाऽनतः ।

ऐसा कोई देवता, असुर, यक्ष, मनुष्य या राक्षस नहीं
 है जो अपने पराक्रम से मृगनेत्री का दुःख दूर
 कर सके । (८५)
 ऐसा कहने के उपरान्त उस विशालाक्षी के विषय में
 विचार करते हुए वे मुनि पूज्य विभु पुष्कर-नाभ का दर्शन
 करने के लिये मुनिवृन्द से कथ पयोष्णी नदी के तट पर
 गये । (८६)

श्रीवामनपुराण में शैतीश्वरा अध्याय समाप्त ॥ ३७ ॥

३८

दण्ड ने कहा—हे अरजे ! वहाँ वीर सुरथ का ध्यान
 करते हुए सुखपूर्वक चित्राङ्गदा को दीर्घ समय व्यतीत
 हुआ । (१)
 मुनि से अभिशप्त विश्वकर्मा भी वानर हो गये ।
 भवितव्यतापन्न के मेरु शिखर से भ्रष्ट होकर पृथ्वी पर

आ गये । (२)
 हे सुन्दरि ! वे 'शालुकिनी' नदी के समीप पने गुरुओं
 से पूर्ण भयङ्कर वन वाले पर्वत-श्रेष्ठ शाल्वेय पर रहने
 लगे । (३)
 हे वरारोहे ! उस वन में फल-मूल खाकर रहते हुए

कालोऽप्यगाद् वरारोहे बहुवर्षगणो वने ॥ ४
 एकदा दैत्यशार्दूलः कन्दराख्यः सुतां प्रियाम् ।
 प्रतिगृह्य समभ्यागात् रयातां देवतीमिति ॥ ५
 तां च तद् वनमायान्तीं सम पित्रा वराननाम् ।
 ददर्श वानरश्रेष्ठः प्रजग्राह वलात् करे ॥ ६
 ततो गृहीतां कपिना स दैत्यः स्वसुतां शुभे ।
 कन्दरो वीक्ष्य संक्रुद्धः सङ्गमृद्यम्य चाद्रवत् ॥ ७
 तमापतन्तं दैत्येन्द्रं दृष्ट्वा शाखाभृगो घली ।
 तथैव सह चार्षङ्गवा हिमाचलमृपागतः ॥ ८
 ददर्श च महादेवं श्रीकण्ठं यमुनावटे ।
 हस्पाग्निद्रे गहनमाश्रमं ऋषिर्जितम् ॥ ९
 तस्मिन् महाश्रमे पुण्ये स्थाप्य देवतीं कपिः ।
 न्यमज्जत स कालिन्यां पश्यतो दानवस्य हि ॥ १०
 सोऽजान्त् तां मृतां पुत्रीं समं शाखाभृगेण हि ।
 जगाम च महातेजाः पातालं निलभं निजम् ॥ ११

स चापि वानरो देव्या कालिन्ध्या वेगतो हतः ।
 नीतः शिवीति विख्यात देशं शुभजनापृतम् ॥ १२
 ततस्तीर्त्वाऽथ वेगेन स कपिः पर्वतं प्रति ।
 गन्तुकामो महातेजा यत्र न्यस्ता सुलोचना ॥ १३
 अयापश्यत् समायान्तमज्जनं शुद्धकोचमम् ।
 नन्दयन्त्या समं पुत्र्या गतरा जिगमिपुः कपिः ॥ १४
 तां दृष्ट्वाऽमन्यत श्रीमान् सेयं देवती ध्रुवम् ।
 तन्मे वृथा श्रमो जातो जलमज्जनमभवः ॥ १५
 इति संचिन्त्यद्येन समाद्रवत सुन्दरीम् ।
 सा तद् भयाच्च न्यपतन्नदीं चैव हिरण्यतीम् ॥ १६
 शुद्धको वीक्ष्य तनयां पतितामापमानजे ।
 दुःखशोकममाक्रान्तो जगामाज्जनपर्वतम् ॥ १७
 तत्रासौ तप आभ्याय मौनप्रतपधरः शुचिः ।
 समास्ते वै महातेजाः संरत्सरगणान् बहून् ॥ १८
 नन्दयन्त्यपि वेगेन हिरण्वत्याऽपवाहिता ।

उन्होंने अनेक वर्षों का समय न्यतीत किया । (४)
 एक समय 'कन्दर' नामक श्रेष्ठ दैत्य 'देवती' नाम
 से प्रसिद्ध अपनी प्रिय पुत्री को साथ लेकर वहाँ
 आया । (५)
 तदनन्तर वानरश्रेष्ठ ने पिता के साथ वन में आ रही
 उस सुन्दरी को देखा एवं बलपूर्वक उसका हाथ पकड़
 लिया । (६)
 हे शुभे ! दैत्य कन्दर अपनी कन्या को वानर के द्वारा
 पकड़ी गयी देखकर अत्यन्त क्रोध से सङ्ग उठाकर
 दौड़ा । (७)
 बलवान् वानर उस दैत्येन्द्र को आने देखकर उस
 सुन्दरी कन्या के साथ हिमालय पर चला गया । (८)
 उसने 'यमुना' तट पर महादेव श्रीकण्ठ का दर्शन
 किया एवं वहाँ से थोड़ी दूर पर ऋषिबिरहित गहन आश्रम
 देखा । (९)
 उस पवित्र महाश्रम में देवती को रखकर वह वानर
 दैत्य कन्दर के सामने कालिन्दी (वे जल) में डूब
 गया । (१०)
 वम कन्दर ने समझा कि उसकी कन्या उस वानर के
 साथ डूब गयी । अतः वह तेजानी पातालस्थित अपने
 गृह में चला गया । (११)

देवी कालिन्दी वेगपूर्वक उस कन्दर को शुभ नदियों
 से परिपूर्ण शिवि नाम से प्रसिद्ध देश में बहा कर ले
 गयी । (१२)
 तदनन्तर महातेजस्वी वानर ने वेगपूर्वक उसे तैर कर
 पार करने के बाद उस पर्वत पर जाने की इच्छा की
 जहाँ वह सुलोचना रती गयी थी । (१३)
 तदनन्तर उसने 'नन्दयन्ती' नामक पुत्री के साथ
 आने हुए श्रेष्ठ शुद्धक 'अज्जन' को देखा । जाने की इच्छा
 करने वाला वानर (उतने) निरुत्त गया । (१४)
 उसे देखकर श्रीमान् रवि ने सोचा कि बरतुन यह यही
 देवती है । जन जल में डूबने का मेरा परिश्रम व्यर्थ हो
 गया । (१५)
 वह वानर ऐसा सोचता हुआ उस सुन्दरी की ओर
 दौड़ा । उसने दूर से वह कन्या हिरण्यती नदी में गिर
 पडी । (१६)
 कन्या को नदी-जल में गिरी हुई देखकर शुद्धक दुःख
 और शोक से निरुत्त होता हुआ अज्जन पर्वत पर चला
 गया । (१७)
 यहाँ महानिजस्वी वह पवित्रतापूर्वक मौन प्रतपार्य कर
 अनेक वर्षों तट तप करता रहा । (१८)
 हिरण्यती वेगपूर्वक नन्दयन्ती को बहाकर साधुओं से

नीता देशं महापुण्यं कोशलं साधुमिर्षुतम् ॥ १९
 गच्छन्ती सा च हृदवी ददशे वटपादपम् ।
 प्ररोहप्रावृत्तत्वं जटाधरमियेश्वरम् ॥ २०
 तं दृष्ट्वा विपुलच्छायं विशश्राम वरानना ।
 उपविष्टा शिलापद्मे ततो वाचं प्रशुश्रवे ॥ २१
 न तोऽस्ति पुरुषः कश्चिद् यस्तं धूयात् तपोधनम् ।
 यथा स तनयस्तुभ्यमुद्बुद्धो वटपादपे ॥ २२
 सा श्रुत्वा तां तदा वाणीं विस्पष्टाक्षरमंशुताम् ।
 तिर्यगूर्ध्वमधश्चैव समन्तादवलोकयत् ॥ २३
 ददशे वृक्षशिखरे शिशुं पश्चाद्भिकं स्थितम् ।
 पित्रलामिर्जटाभिस्तु उद्भूद् यत्नतः शुभे ॥ २४
 तं विभ्रुवन्तं दृष्ट्वैव नन्दयन्ती सुदुःखिता ।
 प्राह केनासि यद्भस्त्रं पापिना वद बालक ॥ २५
 स तामाह महाभागे यद्तोऽस्मि कपिना वटे ।
 जटास्त्रेव सुदृष्टेन जीवामि तपसो बलात् ॥ २६

युक्त महापवित्र कोशल देश में ले गई । (१९)
 जाते समय रोती हुई उसने एक वट वृक्ष को देखा ।
 वह वट वृक्ष जटाधर महेश्वर के समान अनेक प्ररोहों
 से युक्त था । (२०)
 वह सुन्दरमुखी विपुल-छाया युक्त उस वृक्ष को देख
 कर एक पत्थर पर विश्राम करने के लिए बैठ गयी ।
 तदनन्तर उसने यह वाणी सुनी । (२१)
 क्या ऐसा कोई पुरुष नहीं है जो उस तपोधन
 (श्रुतध्वज) से जाकर कहे कि तुम्हारा वह पुत्र वटवृक्ष में
 बैधा है । (२२)
 उसने उस समय विशेष स्पष्ट अक्षर युक्त उस वाणी
 को सुनकर चारों ओर ऊपर नीचे देखा । (२३)
 हे शुभे ! उसने वृक्ष के शिखर पर पित्रल जटाओं
 से यत्नपूर्वक आबद्ध एक पञ्चवर्षीय शिशु को देखा । (२४)
 अत्यन्त बुद्धि नन्दयन्ती ने उस बालके वाले को
 देकर कहा—हे बालक ! बतलाओ तुम्हें किस पापी ने
 बाँधा है ? (२५)
 उस शिशु ने इससे कहा—हे महाभागे ! एक
 महादुष्ट वाक्त्र ने मुझे जटाओं के द्वारा इस वट में बाँध
 दिया है । मैं तपोधन से ही जी रहा हूँ । (२६)
 पहले वनमत्तपुर में देव महेश्वर प्रतिष्ठित थे ।

पुरोन्मत्तपुरेत्येव तत्र देवो महेश्वरः ।
 तत्रासि तपसो राशिः पिता मम श्रुतध्वजः ॥ २७
 तस्यास्मि जपमानस्य महायोगं महात्मनः ।
 जातोऽलिवृन्दसंयुक्तः सर्वशास्त्रविशारदः ॥ २८
 ततो मामग्रवीत् तातो नाम कृत्वा शुभानने ।
 जारालीति परिख्याय तच्छृणुष्व शुभानने ॥ २९
 पञ्चवर्षसहस्राणि बाल एव भविष्यसि ।
 दशवर्षसहस्राणि कुमारत्वे चरिष्यसि ॥ ३०
 त्रिंशत्ति यौवनस्थायी वीर्येण द्विगुणं ततः ।
 पञ्चवर्षतान् बालो भोक्ष्यसे बन्धनं दृढम् ॥ ३१
 दशवर्षतान्येव कौदारो कायपीडनम् ।
 यौवने परमान् भोगान् दिसहस्रसमास्तथा ॥ ३२
 चत्वारिंशच्छतान्येव वार्धके वृेशमुत्तमम् ।
 लप्स्यसे भूमिच्छयाब्ज कदभाशनभोजनम् ॥ ३३
 इत्येवमुक्तः पित्राऽहं बालः पश्चाद्देशिकः ।

वहाँ तपोराशि में दे पिता श्रुतध्वज निवास करते थे । (२७)
 महायोग का जप कर रहे उन महात्मा का मैं सभी
 शास्त्रों में निपुण एवं ध्रुमर समूह से युक्त पुत्र उत्पन्न
 हुआ । (२८)
 हे शुभानने ! पिता ने मेरा जानालि नाम रखकर मुझ
 से जो कुछ कहा उसे सुनो । (२९)
 उन्हीं के फहा—तुम पाँच हजार वर्षों तक बालक
 रहोगे, एवं दस हजार वर्षों तक कुमार रहोगे । (३०)
 बीस हजार वर्षों तक तुम्हारा पराक्रमपूर्ण यौवन रहेगा
 एवं तदुपरान्त उसके द्विगुणित कालक वाढ्ढेय की स्थिति
 रहेगी । चाल्थावस्था में पाँच सौ वर्षों तक तुम्हें दृढ बन्धन
 भोगना पड़ेगा । (३१)
 उसके बाद एक हजार वर्षों तक कुमार अवस्था में
 तुम्हें शारीरिक क्लेश भोगना होगा तथा यौवन काल में दो
 हजार वर्षों तक तुम उत्तम भोगों का आनन्द प्राप्त
 करोगे । (३२)
 दृढावस्था में चालीस सौ वर्षों तक अत्यन्त क्लेश
 भोगना होगा । उस समय तुम्हें भूमि पर शयन तथा
 निच्छन्न अन्न का भोजन करना पड़ेगा । (३३)
 पिता के ऐसा कहने के उपरान्त पाँच वर्ष की अवस्था

विचरामि महीपृष्ठं गच्छन् स्नातुं हिरण्यतीम् ॥ ३४
 ततोऽपश्यं कपिवरं मोऽवदन्मां क वास्यसि ।
 इमां देववतीं गृह्यं मृद न्यस्तां महाश्रमे ॥ ३५
 ततोऽसौ मां समादाय विस्फुरन्तं प्रयत्नतः ।
 वटाश्रेऽस्मिन्नुद्भवन्ध जटामिरपि सुन्दरि ॥ ३६
 तथा च रक्षा कपिना कृता मीरु निरन्तरैः ।
 लतापाशैर्महायन्त्रमथस्ताद् दुष्टवुद्धिना ॥ ३७
 अमेघोऽयमनाक्रम्य उपरिष्ठात् तथाप्यधः ।
 दिशां मुखेषु सर्वेषु कृतं यन्त्रं लतामयम् ॥ ३८
 संयम्य मां कपिवरः प्रयातोऽमरपर्वतम् ।
 यथेच्छया मया दृष्टमेव ते गदितं शुभे ॥ ३९
 भवती का महारण्ये ललना परिवर्जिता ।
 समायाता सुचार्वङ्गी केन सार्धेन मां वद ॥ ४०
 साऽप्रवीदञ्जनो नाम गुह्यकेन्द्रः पिता मम ।

मैं मैं हिरण्यती मैं स्नानार्थ जाते हुए पृथ्वी पर विचरण
 कर रहा था । (३४)

उस समय मैंने एक श्रेष्ठ वानर देखा । उसने मुझ से
 कहा—हे मुझ् ! इस महाश्रम में रानी हुई इस देववती को
 लेकर कहाँ जा रहा है ? (३५)

हे सुन्दरि ! तदुपरान्त कौंपने हुए मुझ को पकड़ कर
 उसने प्रयास पूर्वक इस बट वृक्ष के शिखर पर जटाओं
 से बाँध दिया । (३६)

हे मीरु ! उस दुष्टवुद्धि वानर ने अनेक लतापाशों से
 एक महान् यन्त्र बनाकर उसके नीचे मुझे रतल दिया
 और निरन्तर मेरी रक्षा करता रहा । (३७)

सभी दिशाओं में अर्थात् चारों ओर से निर्मित किया
 गया यह लतायन्त्र अमेघ है तथा ऊपर या नीचे से भी
 आक्रमण करने योग्य नहीं है । (३८)

वह श्रेष्ठ वानर मुझको बाँधकर खेच्छा से अमर
 पर्वत पर चला गया । हे शुभे ! मैंने जो कुछ कहा था
 उसे तुमसे कह दिया । (३९)

हे सुन्दरी ! मुझे बतलाओ कि तुम कौन हो एवं
 इस घोर जंगल में अकेली तुम किसके साथ आयी
 हो । (४०)

उसने कहा—गुह्यकराज अञ्जन मेरे पिता हैं ।

नन्दयन्तीति मे नाम प्रम्लोचागर्भसंभवा ॥ ४१

तत्र मे जातके प्रोक्तमृपिणा मुद्गलेन हि ।

इयं नरेन्द्रमहिषी भविष्यति न संशयः ॥ ४२

तद्वाक्यसमकालं च व्यनदद् देवदुन्दुभिः ।

श्रिवा चाशिवनिघोषां ततो भूयोऽत्रवीन्धुनिः ॥ ४३

न संदेहो नरपतेर्महाराज्ञी भविष्यति ।

महान्तं संशयं घोरं कन्याभावे गमिष्यसि ॥

ततो जगाम स श्रपिरेवमुक्त्वा यचोऽद्भुतम् ॥ ४४

पिता मामपि चादाय समागन्तुमथैच्छत ।

तीर्थं ततो हिरण्यत्यास्तीरात् कपिरयोत्पतत् ॥ ४५

तद् भयाच्च मया ह्यात्मा क्षिप्तः सागरगाजले ।

तयाऽस्मि देशमानीता इमं मानुषवर्जितम् ॥ ४६

श्रुत्वा जायालिरथ तद् वचनं वै तयोदितम् ।

प्राह सुन्दरि गच्छस्व श्रीकण्ठं यमुनातटे ॥ ४७

मेरा नाम नन्दयन्ती है । मैं प्रम्लोचा के गर्भ से उत्पन्न
 हुई हूँ । (४१)

मेरे जन्म के समय मुद्गल ऋषि ने कहा था
 कि यह कन्या निस्सन्देह राजरानी बनेगी । (४२)

उसके कहने के समय ही स्वर्गीय दुन्दुभि का
 नाद हुआ और उसी समय शृगालीका अशुभ निघोष
 हुआ । तदनन्तर मुनि ने पुनः कहा— (४३)

इसमें सन्देह नहीं कि यह कन्या महाराज की
 महारानी होगी । किन्तु कन्या अस्तथा में यह घोर
 विपत्ति में पड़ जायेगी । इस प्रकार का अद्भुत वचन
 बहकर वे ऋषि चले गये । (४४)

तदनन्तर मुझे लेकर मेरे पिता तीर्थ जाने की
 इच्छा किये । इसी बीच हिरण्यती के तीर से वानर
 उड़ला । (४५)

उसके भय से मैंने अपने को नदी के जल में गिरा
 दिया । उस नदी के प्रवाह से मैं इस मनुष्य-रहित देश
 में आ गयी हूँ । (४६)

जागलिन ने उसकी वही बात को सुनकर कहा—
 हे सुन्दरि ! तुम यमुना तट पर श्रीकण्ठ के पास
 जाओ । (४७)

तत्रागच्छति मध्याह्ने मत्पिता शर्षमार्षतुम् ।
 तस्मै निवेद्यात्मानं तत्र श्रेयोऽधिहल्प्यसे ॥ ४८
 तवस्तु त्वरिता काले नन्दयन्ती तपोनिधिम् ।
 परित्राणार्थमगमद्विमाद्रेर्षमृनां नदीम् ॥ ४९
 सा त्वदीर्घेण कालेन कन्दमूलफलाशना ।
 संप्राप्ता शंकरस्थानं यत्रागच्छति तापसः ॥ ५०
 ततः सा देवदेवेशं श्रीकण्ठं लोकवन्दितम् ।
 प्रतिबन्ध ततोऽपश्यदक्षरांस्वान्महायुने ॥ ५१
 तेपामर्थे हि विज्ञाय सा तदा चारुहासिनी
 तज्ञापत्युदितं श्लोकमलिख्यान्यमात्मनः ॥ ५२
 मृदूलेनास्मि गदिता राजपत्नी भविष्यति ।
 सा चावस्थामिमां प्राप्ता कश्चिन्मा त्रातुमीश्वरः ॥ ५३
 इत्युल्लिख्य शिलापट्टे गता स्नातुं यमस्वसाम् ।
 ददृशे चाश्रमवर मत्तकोकिलनादितम् ॥ ५४
 ततोऽमन्यत सात्प्रार्थनं तिष्ठति सत्तमः ।

वहाँ मेरे पिता दोपहर को शिवपूजा करने के लिए आते हैं। तुम वहाँ जाकर उनको अपना वृत्तान्त सुनाओ। इससे तुम्हारा कल्याण होगा। (४८)
 तदनन्तर नन्दयन्ती अपनी रक्षा हेतु शीघ्रतापूर्वक हिमाचल से निकली एवं यमुना के तट पर स्थित तपोनिधि (ऋतध्वज) के निरुक्त पहुँची। (४९)
 कन्दमूल फल खाती हुई वह अल्प काल में शङ्कर के उस स्थान पर पहुँची जहाँ तपस्वी आया करते थे। (५०)
 हे महायुने! तदनन्तर उसने लोकवन्दित देवदेवेश श्रीकण्ठ की पूजा कर उन अक्षरों को देखा। (५१)
 उनका अर्थ जानकर उस सुन्दरी ने जाबालि द्वारा कथित श्लोक तथा अपना एक अन्य श्लोक लिखा। (५२)
 महर्षि सुदगल ने कहा था कि मैं राजपत्नी होऊँगी। किन्तु मैं इस अवस्था में पड़ी हूँ। क्या कोई मेरा उद्धार करने में समर्थ है? (५३)
 शिलापट्ट पर यह लिखकर वह स्नानार्थ यमुना तट पर गयी एवं वहाँ पर मत्त कोकिलों के स्वरों से पूर्ण एक सुन्दर आश्रम देखा। (५४)
 तदनन्तर उसने सोचा—यहाँ पर श्रेष्ठ ऋषि अथर्व

इत्येवं चिन्तयन्ती सा संप्रविष्टा महाश्रमम् ॥ ५५
 ततो ददर्श देवाभां स्थितां देववतीं शुभाम् ।
 संशुष्कास्यां चलन्नेत्रां परिम्लानामिवाञ्जिनीम् ॥ ५६
 सा चापतन्वी ददृशे यक्षजां दैत्यनन्दिनी ।
 केयमित्येव संचिन्त्य समुत्थाय स्थिताभवत् ॥ ५७
 ततोऽन्योन्यं समालिङ्ग्य गाढं गाढं सुहृत्तया ।
 प्रपञ्चतुस्तथान्योऽन्यं कथयामासतुस्तदा ॥ ५८
 ते परिज्ञाततत्त्वार्थे अन्योन्यं ललनोत्तमे ।
 समासीने कथाभिस्ते नानारूपाभिरादरात् ॥ ५९
 एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता श्रीकण्ठं स्नातुमादरात् ।
 स तत्त्वज्ञो मृनिश्रेष्ठो अक्षराण्यवलीकयत् ॥ ६०
 स दृष्ट्वा वाचयित्वा च तमर्थमधिगम्य च ।
 मृदुतं ध्यानमास्थाय व्यजानाच्च तपोनिधिः ॥ ६१
 ततः संपूज्य देवेशं स्वरया स ऋतध्वजः ।
 अयोध्यामगमत् क्षिप्रं द्रष्टुमिच्छाकुमीश्वरम् ॥ ६२

रहते हैं। इस प्रकार सोचती हुई वह महान् आश्रम में प्रविष्ट हुई। (५५)
 तदनन्तर उसने देवी शोभा से सम्पन्न शुष्क मुख एवं चञ्चलनेत्रों वाली देववती को परिम्लान पद्मिनी के सदृश यहाँ बैठी हुई देखा। (५६)
 देवपत्नी ने यक्षपुत्री को आती हुई देखा। 'यह कौन है' ऐसा विचार कर वह उठ खड़ी हुई। (५७)
 तदनन्तर सखीभाव से उन दोनों ने परस्पर गाढ़ आलिङ्गन किया और परस्पर पूछताछ और बातचीत करने लगीं। (५८)
 वे दोनों उत्तम ललनार्थ एक दूसरे की यथार्थ घटनाओं को जानकर बैठ गईं एवं आदरपूर्वक अनेक प्रकार की कथार्यं कहने लगीं। (५९)
 इसी बीच वे तत्त्वज्ञ मुनिश्रेष्ठ श्रीकण्ठ के निरुक्त स्नानार्थ आये और परस्पर पर लिखित अक्षरों को देखा। (६०)
 उसे देखकर, पढ़कर और उसका अर्थ समझकर उस तपोनिधि ने एक क्षण ध्यान लगाया एवं जान गये। (६१)
 तदनन्तर महर्षि ऋतध्वज शीघ्रता से देवेश्वर की पूजा कर राजा इत्वाङ्ग से मिलने के लिए शीघ्र अयोध्या चले गये। (६२)

सं दृष्ट्वा भूपतिश्रेष्ठं तापसो वाक्यमब्रवीत् ।
 श्रूयतां नरशार्दूल विज्ञमिर्मम पार्ष्वि ॥ ६३
 मम पुत्रो गुणैर्वृक्तः सर्वशस्त्रविशारदः ।
 उद्बद्धः कपिना राजन् विपयान्ते तत्रैव हि ॥ ६४
 तं हि मोचयितुं नान्यः शक्तस्त्वत्तनयादृते ।
 शकुनिर्नाम राजेन्द्र स क्षत्रविधिपारगः ॥ ६५
 तन्मृतेर्वाक्यमाकर्ण्य पिता मम कृशोदरि ।
 आदिदेश प्रियं पुत्रं शकुनिं तापसान्वये ॥ ६६
 ततः स प्रहितः पित्रा भ्राता मम महाभुजः ।
 संप्राप्तो बन्धनोद्देशं समं हि परमर्षिणा ॥ ६७
 दृष्ट्वा न्यग्रोधमत्युचं प्ररोहास्तुतद्विद्विभ्रमम् ।
 ददर्श पृथश्चिररे उद्बद्धमृषिपुत्रकम् ॥ ६८
 तांश्च सर्वाह्वतापाशान् दृष्टवान् स समंततः ।
 दृष्ट्वा स मुनिपुत्रं तं स्वजटासंयतं वटे ॥ ६९
 धनुरादाय फलवानधिज्यं स चकार ह ।

लाघवाद्दृष्ट्वा तं रक्षश्चिच्छेदमार्गैः ॥ ७०
 कपिना यत् कृतं सर्वं लतापाशं चतुर्दिशम् ।
 पञ्चवर्षशते काले गते शक्तस्तदा शरैः ॥ ७१
 लताच्छन्नं तवस्तूर्णमारुरोह मुनिर्घटम् ।
 प्राप्तं स्वपितरं दृष्ट्वा जावालिः संयतोऽपि सन् ॥ ७२
 आदरात् पितरं मूर्च्छां यवन्दत् विधानतः ।
 संपरिष्वज्य स मुनिर्मूर्च्छ्याघ्राय सुतं ततः ॥ ७३
 उन्मोचयितुमारब्धो न दशकं सुसंयतम् ।
 तवस्तूर्णं धनुर्न्यस्य बाणांश्च शकुनिर्वली ॥ ७४
 आरुरोह वटं तूर्णं जटा मोचयितुं तदा ।
 न च शक्नोति संच्छन्नं दृढं कपिवरेण हि ॥ ७५
 यदा न शक्तिता स्तेन संप्रमोचयितुं जटाः ।
 तदाऽवतीर्णः शकुनिः सहितः परमर्षिणा ॥ ७६
 जग्राह च धनुर्बाणांश्चकार शरमण्डपम् ।
 लाघवादद्दृचन्द्रैस्तां शारां चिच्छेद स त्रिधा ॥ ७७

श्रेष्ठ नरपति से मिल कर तापस ने कहा—हे नरशार्दूल !
 हे राजन् ! मेरी विज्ञप्ति सुनिये । (६३)
 हे राजन् ! आप के राज्य की सीमा पर एक धानर
 ने मेरे सर्वशस्त्रविशारद, गुणयुक्त पुत्र को बाँध रखा
 है । (६४)

हे राजेन्द्र ! आप के अस्त्र-विधिपारणामी शकुनि
 नामक पुत्र के अतिरिक्त दूसरा कोई वृक्ष मुक्त नहीं कर
 सकता । (६५)

हे कृशोदरि ! मुनि के वस बचन को सुन कर मेरे
 पिता ने अपने पुत्र शकुनि को तपस्वी के पुत्र के सम्बन्ध
 में आदेश किया । (६६)

तदनन्तर पिता द्वारा प्रेषित पराक्रमी मेरा भाई
 श्रेष्ठ ऋषि के साथ वन्यन के स्थान पर पहुँचा । (६७)

चतुर्दिक् प्ररोही से आच्छन्न अत्युच्च घटपृष्ठ को
 देखने के उपरान्त उसने पृथश्चिर पर बंधे हुए ऋषि
 के पुत्र को देखा । (६८)

उसने (विस्मृत) इन समस्त लतापाशों से पाशों और
 से देखा एवं वट में अपनी जटाओं से बंधे मुनिपुत्र को
 देखकर उस वन्यन ने धनुष लेकर उसी प्रत्यक्षा को
 चढ़ाया एवं पुत्र को बंधाने हुए छापनपूर्वक बानों से पाशों

को काटने लगा । (६९-७०)
 बँध सी अंध व्यतीत हो जाने पर चतुर्दिक्
 धानर द्वारा बंधाया गया लतापाश बाणों से काट
 दिया गया । (७१)

तदनन्तर ऋषि शनभजन शीघ्र लताओं से आच्छन्न
 उस घटपृष्ठ पर चढ़ गये । जावालि ने अपने
 पिता को आया देना कर बँधे रहने पर भी आश्चर्यपूर्वक
 यथाविधि शिरसा प्रणाम किया । उन मुनि ने मस्तक
 मूर्धपर पुत्र का आलिङ्गन किया । (७२-७३)

तदुपरान्त वे वन्यन खोलने लगे । किन्तु अत्यन्त
 दृढ़ बन्धन को खोल न सके । तब वन्यन शकुनि
 शीघ्र धनुष और बाणों को रखकर उठा खोलने के लिए
 घट पर चढ़ गये । किन्तु (वे भी) श्रेष्ठ ऋषि द्वारा दृढ़ता
 पूर्वक बनाए गये बन्धन को न खोल सके । (७४-७५)

जब वे जटाओं को नहीं खोल सके तो श्रेष्ठ ऋषि
 के साथ शकुनि नीचे उतर गये । (७६)

उन्होंने धनुष पथं बान लिया तथा एक शरमण्डप
 बनाया । तदनन्तर उन्होंने लाघवपूर्वक अर्द्धपद्म
 बाणों से उस शरणा को तीन स्थानों में काट
 दिया । (७७)

शास्त्रया कृचया चासौ भारवाही तपोधनः ।
शरसोपानमार्गेण अयतीर्णोऽथ पादपात् ॥ ७८
तस्मिंस्तदा स्वे तनये ऋतभ्यज-

स्त्राते नरेन्द्रस्य सुतेन धन्विना ।
जावालिना भारवहेन संयुतः
समाजगामाथ नदीं स सूर्यवाम् ॥ ७९

इति श्रीवामनपुराणे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥३८॥

३६

दण्डक उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे बाले यथासुरसुते शुभे ।
समागते हरं द्रष्टुं श्रीकण्ठं योगिनां वरम् ॥ १
ददृशाते परिम्लानसशुष्कहृत्सुमं विभुम् ।
बहुनिर्माल्यसंपुक्तं गते तस्मिन् ऋतभ्यजे ॥ २
ततस्तं वीक्ष्य देवेशं ते उभे अपि कन्यके ।
स्नापयेतां विधानेन पूजयेतामर्हनिशम् ॥ ३
ताभ्यां स्थिताभ्यां तत्रैव ऋपिरभ्यागमद् वनम् ।

कटी हुई शाला के साथ भारवाही तपोधन बाण की
सीदियों के मार्ग से वृक्ष के नीचे उतरे । (७८)
राजा के धनुर्धारी पुत्र द्वारा अपने पुत्र की रक्षा

द्रष्टुं श्रीकण्ठमव्यक्तं गालवो नाम नामतः ॥ ४
स दृष्ट्वा कन्यकाद्युग्मं कस्येदमिति चिन्तयन् ।
प्रविशेश शुचिः स्नात्वा कालिन्ध्या विमले जले ।
ततोऽनुपूजयामास श्रीकण्ठं गालवो मुनिः ।
गायेते सुस्वरं भीतं यथासुरसुते ततः ॥ ६
ततः स्वरं समाकर्ण्य गालवस्ते अजानव ।
गन्धर्वकन्यके चैते संदेहो नात्र विद्यते ॥ ७
संपूज्य देवमीशानं गालवस्तु विधानतः ।

हो जाने के उपरान्त ऋतभ्यज भारवाही जावालि
के साथ सूर्य-पुत्री (यमुना) नदी के तट पर
गए । (७६)

श्रीवामनपुराणे अष्टाविंशोऽध्याय समाप्त ॥३८॥

३९

दण्डक ने कहा—हे बाले ! इसी बीच यक्ष और असुर
दोनों की कन्याएँ योगियों में श्रेष्ठ श्रीकण्ठ महादेव का दर्शन
करने आईं । (१)

उन ऋतभ्यज के चले जाने के कारण उन दोनों ने
देखा कि महादेव के (चतुर्दिक्) म्लान एवं शुष्क पुष्प तथा
प्रचुर निर्माल्य पहा है । (२)

तदनन्तर उस देवेश का दर्शन कर वे दोनों कन्याएँ
विधिपूर्वक अहोरात्र श्रीकण्ठ को स्नान कराने एवं उनका
पूजन करने लगीं । (३)

उन दोनों के वहीं रहते समय गालव नामक ऋषि

अव्यक्त स्वरूप श्रीकण्ठ का दर्शन करने के लिए इस वन में
आये । (४)

उन्होंने दोनों कन्याओं को देखकर 'ये किसकी कन्याएँ
हैं' ऐसा सोचते हुए कालिन्धी के विमल जल में प्रवेश
किया । स्नान करने के बाद पवित्र होकर गालव ऋषि ने
श्रीकण्ठ महादेव की पूजा की । तदनन्तर यक्ष और असुर
दोनों की कन्याओं ने बाधुर स्वर से गान किया । (५-६)

तदुपरान्त (उनके) स्वर को सुनकर गालव ने यह समझा
कि ये दोनों निरसन्देह गन्धर्व की कन्याएँ हैं । (७)
गालव ने विधिपूर्वक श्रीकण्ठदेव की पूजाकर जय

कृतज्ञप्यः समध्यास्ते कन्याभ्यामभिवादिताः ॥ ८
 ततः पप्रच्छ स मुनिः कन्यके कस्य कथ्यताम् ।
 कुलालङ्कारकरणे भक्तियुक्ते भवस्य हि ॥ ९
 तमूचतुर्मुनिश्रेष्ठं यायातध्वं शुभानने ।
 जातो विदितवृचान्तो गालवस्तपतां वरः ॥ १०
 समुप्य तत्र रजनीं ताम्यां संपूजितो मुनिः ।
 प्रातस्त्रयाय गौरीशं संपूज्य च विधानतः ॥ ११
 ते उपेत्याग्रवीघास्ये पुष्करारण्यमुत्तमम् ।
 आमन्त्रयामि वां कन्ये समनुज्ञातुमर्हथः ॥ १२
 ततस्ते ऊचतुर्ब्रह्मन् दुर्लभं दर्शनं तर ।
 किमर्थं पुष्करारण्यं भवान् यास्यत्ययादरात् ॥ १३
 ते उवाच महातेजा महत्कार्यसमन्वित ।
 कार्त्तिकी पुण्यदा भाविमासान्ते पुष्करेषु हि ॥ १४
 ते ऊचतुर्वयं यामो भवान् यत्र गमिष्यति ।

न त्वया स्म विना ब्रह्मन्निह स्थातुं हि शक्युवः ॥ १५
 षाढमाह ऋषिश्रेष्ठस्ततो नत्वा महेश्वरम् ।
 गते ते ऋषिणा साद्वं पुष्करारण्यमादरात् ॥ १६
 तथाऽन्ये ऋषयस्तत्र समायाताः सहस्रशः ।
 पार्थिवा जानपथाश्च मुक्त्यैकं तमृतव्रजम् ॥ १७
 ततः स्नाताश्च कार्त्तिक्यामृषयः पुष्कोष्वथ ।
 राजानश्च महाभागा नाभागेश्चाकुसंयुताः ॥ १८
 गालवोऽपि तमं ताम्यां कन्यकान्यामवावहत् ।
 स्नातुं स पुष्करे तीर्थे मध्यमे धनुषाकृतौ ॥ १९
 निमग्नश्चापि ददृशे महामत्स्यं जलेश्वरम् ।
 पद्मीभिर्मत्स्यकन्याभिः श्रीयमाणं पुनः पुनः ॥ २०
 स ताश्चाह तिमिर्गुग्धाः यूयं धर्मं न जानथ ।
 जनापवादं धोरं हि न शक्तः सोढुमुत्वनम् ॥ २१
 तास्तमूचुर्महामत्स्यं किं न पश्यसि गालवम् ।

विद्या । तदनन्तर दोनों कन्याओं से अभिवादिता होकर वे
 बैठ गये । (८)

तत्पश्चात् उन मुनि ने पूछा—यह बतलाओ कि कुलाल-
 ङ्कार स्वरूप एवं शंकर मे भक्ति करने वाली तुम दोनों
 किसकी कन्याएँ हो ? (९)

हे शुभानने ! दोनों कन्याओं ने मुनिश्रेष्ठ से वयार्थ
 वृत्तान्त बतलाया तब श्रेष्ठ तपस्वी गालव को सम्पूर्ण वृत्तान्त
 विदित हो गया । (१०)

उन दोनों से पूजित मुनि ने वहाँ रात्रि में निवास
 किया । प्रातःकाल उठकर उन्होंने विधानपूर्वक गौरीश
 शंकर का पूजन किया । (११)

मृदगन्तर उन दोनों के समीप जाकर उन्होंने कहा—
 मैं परमश्रेष्ठ पुष्कर वन मे जाऊँगा । मैं तुम दोनों की
 अनुमति चाहता हूँ । मुझे अनुमति दो । (१२)

तदुपरान्त उन दोनों ने कहा—हे ब्रह्मन् । आपका दर्शन
 दुर्लभ है । आप आदर पूर्वक पुष्करारण्य मे क्यों जा
 रहे हैं । (१३)

महत्कार्य युक्त महातेजस्वी (मुनि) ने उन दोनों से
 कहा—आगे मासान्त में कार्त्तिकी पूर्णिमा होगी जो पुष्कर में
 हुप्कर पुण्यदायिनी है । (१४)

उन दोनों ने कहा—आप जहाँ जायेंगे हम भी वही

चलेंगी । "हे ब्रह्मन् । आपके बिना हम यहाँ नहीं रह
 सकेंगी । (१५)

ऋषिश्रेष्ठ ने कहा—ठीक है । तदनन्तर महेश्वर को
 प्रणाम कर ऋषि के साथ वे दोनों आदर पूर्वक पुष्करारण्य
 गयीं । (१६)

वहाँ केवल उन ऋतभृज को छोड़कर सहस्रों ऋषि,
 राजा एवं जनपद निवासी एकत्रित हुए । (१७)

तदनन्तर ऋषियों एवं नाभाग तथा इक्ष्वाकु आदि
 महाभाग्यवान् राजाओं ने कार्त्तिकी पूर्णिमा के दिन पुष्कर
 तीर्थ मे स्नान किया । (१८)

गालव भी उन दोनों कन्याओं के साथ धनुष के समान
 आकार वाले मध्यम पुष्कर तीर्थ मे स्नान करने के लिये
 धवरे । (१९)

(जलमे) निमग्न होने पर उन्होंने देखा कि एक महा-
 मत्स्य जल मे स्थित है एवं अनेक मत्स्य-कन्याएँ वारंवार
 उसे प्रसन्न करने मे लगी हैं । (२०)

उस मत्स्य ने उन (मठलियों) से कहा—मुग्ध होने के
 कारण तुम सभी धर्म नहीं जानती । मैं तीव्र एवं भयङ्कर
 जनापवाद नहीं सहन कर सकता । (२१)

उन सभी (मठलियों) ने कहा—क्या तुम दो कन्याओं

वापसं कन्यकाभ्यां वै विचरन्तं यथेच्छया ॥ २२
 यद्यसावपि धर्मात्मा न रिभेति तपोधनः ।
 जनापवादात् तस्मिन् त्वं विभेति जलमप्यगः ॥ २३
 ततस्ताथाह स तिमिर्नैप वेति तपोधनः ।
 रागान्धो नापि च भयं विजानाति सुगलिधः ॥ २४
 तच्छ्रुत्वा मत्स्यवचनं गालयो ग्रीडया युतः ।
 नोचत्तार निमयोऽपि तस्यै स विजितेन्द्रियः ॥ २५
 ज्ञात्वा ते अपि रम्भोरु समुत्तीर्य तटे स्थिते ।
 प्रतीक्षन्त्यौ मुनिवर तदर्शनसमृत्कुके ॥ २६
 घृता च पुष्करे यात्रा गता लोका यथागतम् ।
 ऋषयः पार्थिवाश्वान्ये नाना जानपदास्तदा ॥ २७
 तत्र स्थितेका सुदती विश्वकर्मतनूकहा ।
 चित्राङ्गदा सुचार्वङ्गी वीक्षन्ती तनुमध्यमे ॥ २८
 ते स्थिते चापि वीक्षन्त्यो प्रतीक्षन्त्यो च गालवम् ।

के साथ यथेच्छ विचरण करने वाले तपस्वी गालव को नहीं
 देख रहे हो ? (२२)

यदि धर्मात्मा एव तपस्वी होते हुए भी वे जनापवाद से
 भयभीत नहीं होते तो जल में रहने वाले आप क्यों डर
 रहे हैं ? (२३)

तदनन्तर उस तिमि (मत्स्य) ने उनसे कहा—
 यह रागान्ध तपस्वी जनापवाद को नहीं जानता एव
 मूर्खतावश जनापवादजन्य भय को भी नहीं जानता । (२४)

मत्स्य के उस वचन को सुनकर गालव लज्जित हो
 गये । वे जितेन्द्रिय ऊपर नहीं आये, भीतर ही झूठे
 रहे । (२५)

वे दोनों सुन्दरियाँ स्नानोपरान्त जल से निकल कर
 तट पर खड़ी हो गईं एव मुनिश्रेष्ठ के दर्शन के लिए
 उत्सुकता पूर्वक वनकी प्रतीक्षा करने लगीं । (२६)

पुष्करकी यात्रा समाप्त होने पर सभी ऋषि, राजा
 और नगरवासी लोग जहाँ से आये थे वहाँ चले गये । (२७)

वहाँ केवल सुन्दर दातों वाली एव शोभनाङ्गी
 विश्वकर्मा की पुत्री चित्राङ्गदा उन दोनों वृशोदरी
 (कन्याओं को) देखती हुई खड़ी थी । (२८)

वे दोनों भी देखती हुई एव गालव की प्रतीक्षा करती हुई

सस्थिते निर्जने तीर्थे गालवोऽन्तर्जले तथा ॥ २९
 ततोऽभ्यागाद् वेदवती नाम्ना गन्धर्वकन्यका ।
 पर्जन्यतनया साध्वी घृताचीगर्भसंभवा ॥ ३०
 सा चाम्भेत्य जले पुण्ये स्नात्वा मध्यमपुष्करे ।
 ददर्श कन्यावितयमुभयोस्तदयोः स्थितम् ॥ ३१
 चित्राङ्गदामथाम्भेत्य पर्यपृच्छदनिष्कुरम् ।
 कासि केन च कायैण निर्जने स्थितवत्ससि ॥ ३२
 सा ताम्भवाच पुत्रीं मां विन्दस्व सुरवर्धकैः ।
 चित्राङ्गदेति सुश्रोणि विरयातां विश्वकर्मणः ॥ ३३
 साहमभ्यागता भद्रे स्नातु पुण्यां सरस्वतीम् ।
 नैमिषे काञ्चनाधीं तु विख्यातां धर्ममातरम् ॥ ३४
 तत्रागताय राज्ञाऽहं दृष्टा वैदर्भकेण हि ।
 सुरयेन स कामार्तो मामेव धरणं गतः ॥ ३५
 मयात्मा तस्य दत्तश्च ससीभिवार्यमाणया ।

निर्जन तीर्थ में खड़ी रहीं एव गालव जल के भीतर ही
 रहे । (२९)

तदनन्तर वेदवती नामक गन्धर्व-कन्या वहाँ आईं । वह
 साध्वी घृताची के गर्भ से उत्पन्न पर्जन्य नामक गन्धर्व की
 पुत्री थी । (३०)

उसने जाकर मध्यम पुष्कर तीर्थ के पवित्र जल में
 स्नान किया और दोनों तटों पर अवस्थित तीन कन्याओं को
 देखा । (३१)

तदनन्तर चित्राङ्गदा के पास जाकर उसने सुदता पूर्वक
 पूछा—तुम कौन हो ? किस कार्य से इस निर्जन स्थान में
 स्थित हो ? (३२)

उस (चित्राङ्गदा) ने उस (वेदवती) से कहा—हे
 सुन्दर नितम्बोंवाली ! मुझे देवशिल्पी विश्वकर्मा की
 चित्राङ्गदा नाम से प्रसिद्ध पुत्री जानो । (३३)

हे भद्रे ! वह (मैं) नैमिष में धर्म की जननी काचनाक्षी
 नाम से विख्यात पवित्र नदी में स्नान करने गईं
 थी । (३४)

वहाँ जाने पर विदर्भ-वशीव राजा सुरथ ने मुझे देखा
 और कामार्तो होकर मेरी धरण में आया । (३५)

सखियों के मना करने पर भी मैंने उन्हें आत्मसमर्पण
 कर दिया । तदनन्तर पिता के श्राप से मैं राजा से चिपुक

ततः शमाऽस्मि तातेन विभुक्तास्मि च भूधना ॥ ३६
 मर्तुं कृत्वमतिर्भद्रे वारिता गुह्यकेन च ।
 श्रीकण्ठमगमं द्रष्टुं ततो गोदावरं जलम् ॥ ३७
 तन्मादिम समायाता तीर्थप्रवरस्य चम् ।
 न चापि दृष्टं सुरयः स मनोह्वाननः पतिः ॥ ३८
 भवती चात्र फा बाले वृत्ते यात्राफलेऽधुना ।
 समागता हि तच्छंभ मम सत्येन भामिनि ॥ ३९
 सात्रवीच्छ्रयतां याऽस्मि मन्दभाग्या कुशोदरी ।
 यथा यात्राफले वृत्ते समायाताऽस्मि पुष्करम् ॥ ४०
 पर्जन्यस्य घृताच्यां तु जाता वेदवतीति हि ।
 रममाण्णा वनोद्देशे दृष्टाऽस्मि कपिना सरि ॥ ४१
 स चाभ्येत्याज्रवीत् का त्व यासि दववतीति हि ।
 आनीतास्त्राश्रमात् केन भूपृष्ठान्मेरुपर्वतम् ॥ ४२
 ततो मयोक्त्वो नैयासि कपे देववतीत्यद्मम् ।
 नाम्ना वेदवतीत्येव मेरोरपि कृताश्रया ॥ ४३

हो गयी । (३६)
 हे भद्रे ! मैंने मरने का विचार किया किन्तु गुह्यक ने मुझे रोक दिया । उसके बाद मैं श्रीकण्ठ के दर्शन हेतु गई और वहाँ से गोदावर जल के निष्कट गयी । (३७)
 वहाँ से मैं इस श्रेष्ठ उत्तम तीर्थ में आयी । किन्तु वे मन को प्रसन्न करने वाले पति सुरय मुझे नहीं दिखलाई पड़े । (३८)
 हे बाले ! यात्राफल समाप्त हो जाने पर आज वहाँ आने वाली आप कौन हैं ? हे भामिनि ! मुझे सत्य सत्य पतलाओ । (३९)
 उसने कहा—हे वृशोवरि ! मैं मन्दभागिनी कौन हूँ तथा यात्राफल समाप्त होने पर पुष्कर में क्यों आई हूँ, उठो मुझे । (४०)
 मैं घृताची के गर्भ से उत्पन्न वेदवती नामक पर्जन्य का पुत्री हूँ । हे सरि ! पनप्रदेश में घूम रही मुझसे एक वानर ने देखा । (४१)
 उसने समीप आकर कहा—तुम कौन हो ? वहाँ जा रही हो ? (निधय ही तुम) देववती हो । पृथ्वी पर स्थित आत्म से मेरे पर्वत पर तुम्हें कौन लाया है ? (४२)
 इस पर मैंने कहा—हे वानर ! मैं देववती नहीं हूँ मेरा नाम वेदवती है । मैं मेरुपर्वत पर ही रहती हूँ । (४३)

ततस्तेनातिदुष्टेन वानरेण क्षमिद्वृता ।
 समारूढास्मि सहसा बन्धुजीवं नगोचमम् ॥ ४४
 तेनापि वृक्षस्तरसा पादाक्रान्तस्त्रभज्यत ।
 ततोस विपुलां शारया समालिङ्ग्य स्थिता त्वद्मम् ॥ ४५
 ततः प्लवङ्गमो वृक्षं प्रादिपत् मागराम्भसि ।
 सह तेनैव वृक्षेण पतितास्त्वहमाकुला ॥ ४६
 ततोम्वरतलाद् वृक्षं निपतन्त यदच्छ्रया ।
 ददशुः सर्वभूतानि स्थावराणि चराणि च ॥ ४७
 ततो हाहाकृत लोक्रैर्मा पतन्ती निरीक्ष्य हि ।
 ऊचुश्च सिद्दगन्धर्वाः कष्ट सेयं महात्मनः ॥ ४८
 इन्द्रघ्नस्य महिषी गदिता ध्रुवणा स्वधम् ।
 मनोः पुत्रस्य वीरस्य सहस्रक्रतुयाजिनः ॥ ४९
 ता चार्णो मधुरा भुत्वा मोहमस्यागता ततः ।
 न च जाने स केनापि वृक्षरिठन्, सहस्रधा ॥ ५०
 ततोऽस्मि वेगाद् बलिना हतानलसतेन हि ।

तदनन्तर उस अति दुष्ट वानर ने मेरे ऊपर आक्रमण कर दिया । मैं सहसा बन्धुजीव के उत्तम वृक्ष पर चढ़ गयी । (४४)
 उसने भी वेगपूर्वक पैर से प्रहार कर वृक्ष को तोड़ दिया । तदनन्तर मैं उसनी एक बड़ी शारया को पकड़ कर स्थित रही । (४५)
 वदुपतान्त वानर ने उस वृक्ष को समुद्र के जल में फेंक दिया । मैं अत्यन्त व्याकुल होकर उस वृक्ष के साथ ही जल में गिर पड़ी । (४६)
 तदनन्तर सभी षटाक्ष प्राणियों ने आनाश से गिरने वाले उस वृक्ष को देखा । (४७)
 तत्पश्चात् मुझसे गिरता देखकर सभी लोग हा हाकार करने लगे । सिद्ध और गन्धर्व लोग कहने लगे—हाय ! यह वृक्ष की भाव है । प्रह्ला ने स्वयं कहा है कि यह कन्या मनु के वीर पुत्र सहस्र यमों के कर्ता इन्द्रघ्न की महिषी होगी । (४८-४९)
 उस मधुर वानो को सुनने पर उपतान्त मुझे मूर्च्छा आ गई । मैं नहीं जानती कि किसने उस वृक्ष को सहस्रों दुर्गों में काट डाला । (५०)
 तदनन्तर अग्नि के मित्र बलयान् वायु वेगपूर्वक मुझे

समानीतास्म्यहमिमं त्वं दृष्टा चाद्य सुन्दरि ॥ ५१
 तदुच्छिद्यस्व गच्छावः पृच्छावः क इमे स्थिते ।
 कन्यके अनुपश्ये हि पुष्करस्योत्तरे तटे ॥ ५२
 एवमुक्त्वा वराङ्गी सा तथा सुतनुकन्यया ।
 जगाम कन्यके द्रष्टुं प्रष्टुं कार्यसमस्तसुखा ॥ ५३
 ततो गत्वा पर्यप्रच्छत् ते ऊचतुरुभे अपि ।
 याथातथ्यं तयोस्ताभ्यां समात्मानं निवेदितम् ॥ ५४
 ततस्ताश्चतुरोपीह सप्रगोदावरं जलम् ।
 संप्राप्य तीर्थे तिष्ठन्ति अर्चन्त्यो हाटकेश्वरम् ॥ ५५
 ततो बहून् वर्षगणान् बभ्रमुन्ते जनास्त्रयः ।
 तासामर्थाय शङ्खनिर्जानलिः समुद्रध्वजः ॥ ५६
 भारवाही ततः सिन्धो दशान्दशदिने गते ।
 काले जगाम निवेदात् समं पित्रा तु शाकलम् ॥ ५७
 तस्मिन्नरपतिः श्रीमानिन्द्रधुम्नो मनोः सुतः ।

यहाँ लाये हैं । हे सुन्दरी ! तुमसे आज यहाँ मेरी भेंट हुई है ।

इसलिए उठो, हम दोनों चले, पूँछे और देखें कि पुष्कर तीर्थ के उत्तरी किनारे पर विद्यमान वे दोनों कन्याएँ कौन हैं ?

ऐसा बहकर कार्य में वसुक बड़ सुन्दरी उस सुन्दर तथा छद्म अपवालि कन्या के साथ दोनों कन्याओं को देखने तथा पूछने के लिए यहाँ गयी ।

तदनन्तर वहाँ जाकर उसने पूछा । उन दोनों ने अपना यथार्थ वृत्तान्त उन दोनों से कहा ।

तदुपरान्त चारों कन्यायें सप्रगोदावर के जल के निकट जाकर हाटकेश्वर की पूजा करती हुई तीर्थ में रहने लगीं ।

तदनन्तर शङ्खनि, जावालि और ऋतध्वज ये तीनों व्यक्ति उन कन्याओं के लिए अनेक वर्षों तक भ्रमण करते रहे ।

वदुपरान्त एक सहस्र वर्ष न्यतीत हो जाने पर भारवाही सिन्धु (जावालि) उवास होकर पिता के साथ शाकल जनपद में चले गये ।

यहाँ मनु के पुत्र श्रीमान् राजा इन्द्रधुम्न मिश्रित कर रहे थे । समाचार जानकर वे अर्धपात्र हाथ में लिए

समन्वास्ते स विज्ञाय सार्धपात्रो निनिर्ययौ ॥ ५८
 सम्यक् संयुजितस्तेन सजावालिक्रतध्वजः ।
 स चेश्वाङ्कुसुतो धीमान् शङ्खनिर्घ्रातृजोर्षितः ॥ ५९
 ततो वाक्यं मुनिः प्राह इन्द्रधुम्नं ऋतध्वजः ।
 राजन् नष्टाऽनलास्माकं नन्दयन्तीति मिश्रुता ॥ ६०
 तस्यार्थं चैव वसुधा अस्माभिरदिता नृप ।
 तस्माद्दुच्छिद्य मार्गस्य साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥ ६१
 अथोवाच नृपो ब्रह्मन् ममापि ललनोत्तमा ।
 नष्टा कृतश्रमस्यापि कस्याहं कथयामि ताम् ॥ ६२
 आकाशात् पर्यवाकारः पतमानो नगोत्तमः ।
 सिद्धान्ता वाक्यमाकर्ण्य घाणैश्चिन्नः सहस्रधा ॥ ६३
 न चैव सा वरारोहा विभिन्ना लापवानमया ।
 न च जानामि सा कुत्र तस्माद् गच्छामि मार्गितुम् ॥ ६४
 इत्येवमुक्त्वा स नृपः समुत्थाय त्वरान्वितः ।

याहर निकडे ।

वहोंने जावालि और ऋतध्वज की विधि पूर्वक सुन्दर ढग से पूजा की तथा उस इश्वराकुतन्दन दुद्धिमान् भतीजे शङ्खनि की भी पूजा की ।

तदनन्तर ऋतध्वज मुनि ने इन्द्रधुम्न से कहा— राजन् ! नन्दयन्ती नाम से विख्यात हम लोगों की अवल कन्या लो गयी है ।

हे राजन् ! उसके लिए हमलोगों ने वसुधा का भ्रमण किया है । इसलिए उठिए, खोजिए और हमारी सहायता कीजिए ।

सदुपरान्त राजा ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मेरी भी एक उत्तम कन्या लो गयी है । उसको योजने में मैं परिश्रम कर चुका हूँ । मैं उसके विषय में किससे कहूँ ।

सिद्धों का वचन सुनकर आकाश से गिरने वाले पर्यवाकार श्रेष्ठ वृक्ष को मैंने घाणों से सहस्रों टुकड़ों में काट डाला ।

मैंने कुशलता से उस सुन्दरी कन्या को चोट नहीं आने दी । मैं नहीं जानता कि वह कहाँ है ? अतः उसे खोजने के लिए मैं चल रहा हूँ ।

ऐसा कहने के उपरान्त वे राजा शीघ्रता पूर्वक उठे

स्यन्दनानि द्विजाम्भ्यां स भ्रातृपुत्राय चार्पयत् ॥ ६५
 तेऽधिरुह्य रथांस्तूर्णं मार्गन्ते वसुधां क्रमात् ।
 वदयिथममासाद्य ददृशुस्तपसां निधिम् ॥ ६६
 तपसा कथितं दीनं मलपङ्कजादधरम् ।
 निःश्वासायासपरमं प्रथमे वयसि स्थितम् ॥ ६७
 तमुपेत्याब्रवीद् राजा इन्द्रधुम्नो महाशुभ्रः ।
 तपस्विन् यौवने घोरमास्थितोऽसि सुदुधरम् ॥ ६८
 तपः क्रिमर्थं तच्छंस क्रिमभिप्रेतमृच्छताम् ।
 सोऽब्रवीत् को गवान् ब्रूहि ममात्मानं सुदृच्छया ॥ ६९
 परिपृच्छसि शोकार्थं परिसिन्नं तपोन्वितम् ।
 स प्राह राजाऽस्मि विभो तपस्विन् शाकले पुरे ॥ ७०
 मनोः पुत्रः प्रियो भ्राता इक्ष्वाकोः कथितं तव ।
 स चामै पूर्वचरितं तत्र कथितवान् नृपः ॥ ७१
 श्रुत्वा श्रोत्राय राजर्षिर्मा मुश्चम्य कलेररम् ।
 आगच्छ यामि तन्वह्नीं विचेतुं भ्रातृजोऽसि मे ॥ ७२
 इत्युक्त्वा संपरिष्वज्य नृपं धननिस्ततम् ।

एवं उन दोनों द्वाहाणों तथा अपने भ्रातृज को रथ प्रदान किया । (६५)

वे रथों पर आरूढ़ होकर शीघ्रता से क्रमानुसार पृथ्वी पर अन्वेषण करने लगे। बदरिनाश्रम में पहुँच कर उन लोगों ने तप से दृश, धूल मिट्टी से भरे, जटाधारी जोर-जोर से साँस ले रहे एक तपोनिधि युवक को देखा । (६६-६७)

उसके समीप जाकर महापाहु राजा इन्द्रधुम्न ने कहा—हे तपस्विन् ! यह वनलाओ कि युवावस्था में ही तुम सुदुधर घोर तप क्यों कर रहे हो ? यह भी वनलाओ कि तुम्हारा क्या अभीष्ट है ? उसने कहा—आप मुझे यह पतञ्जय कि शोनाचर्च, अतिरिक्त एव तपोन्वित मुझसे सीँहाई पूर्वक पूछने वाले आप कौन हैं ? उसने कहा—हे तपस्विन् ! हे विभो ! मैं मनु का पुत्र एवं इक्ष्वाकु का प्रियभ्राता शाकलपुर का राजा हूँ। उस राजा ने भी उससे समस्त पूर्ण प्रशान्त कह दिया । (६८-७१)

उपर्युक्त बातों को सुनकर राजर्षि ने कहा—शरीर मत छोड़ो ! हम भेरे भतीजे हो। जाओ उस सुन्दरी का अन्वेषण करने चलो । (७२)

इतना कहकर उन्होंने सभी शिवाओं से आच्छन्न राजा का आलिङ्गन किया एवं उन्हें रथ पर चढ़ा

समारोप्य रथं तूर्णं तापसाम्भ्यां न्यवेदयत् ॥ ७३
 ऋतध्वजः सपुत्रस्तु तं दृष्ट्वा पृथिवीपतिम् ।
 श्रोत्राय राजन्नेहोहि करिष्यामि तव प्रियम् ॥ ७४
 यासौ चित्राङ्गदा नाम त्वया दृष्टा हि नैमिषे ।
 सप्तगोदावरं तीर्थं सा मयैव विसर्जिता ॥ ७५
 तदागच्छथ गच्छामः सीदेवस्यैव कारणात् ।
 तत्रास्माकं समेष्यन्ति कन्यास्तिस्रस्तथापराः ॥ ७६
 इत्येवमुक्त्वा स ऋषिः समाश्वास्य सुदेवजम् ।
 शकुनिं पुरतः कृत्वा सेन्द्रधुम्नः सपुत्रकः ॥ ७७
 स्यन्दनेनाथसुभक्तेन गन्तुं ससृषचक्रमे ।
 सप्तगोदावरं तीर्थं यत्र ताः कन्यका गताः ॥ ७८
 एतस्मिन्नन्तरे तन्वी घृताची शोकमंयुता ।
 विचचारोदयगिरिं विचिन्वन्ती तुतां निजाम् ॥ ७९
 तमाससाद च कपिं पर्यपृच्छत् तथाप्सराः ।
 किं बाला न त्वया दृष्टा कपे सत्यं वदस्व मां ॥ ८०

कर शीघ्र उन दोनों तपस्वियों के सामने पहुँचा दिया । (७३)

पुत्र के साथ ऋतध्वज ने उन राजा को देकर कहा—हे राजन् ! आइये आइये, मैं आपका प्रिय कार्य करूँगा । (७४)

आपने नैमिषारण्य में जिस चित्राङ्गदा को देखा था उसे मैं ही सप्तगोदावर नामक तीर्थ में छोड़ आया हूँ । (७५)

इस लिए आइये, हमलोग सुदेव के पुत्र के ही निमित्त चले। वहाँ पर हम लोगों की अन्य तीन कन्यायें मिलेंगी । (७६)

ऐसा कहने के उपरान्त वे ऋषि सुदेव के पुत्र को सान्त्वना देकर एव शकुनि को आगे कर इन्द्रधुम्न और पुत्र के साथ अरथ युक्त रथ से सप्तगोदावर तीर्थ में जाने का उपक्रम किये जहाँ वे कन्यायें गयी थीं । (७७-७८)

इसी बीच कृशाद्गो घृताची शोकाग्नि होकर अपनी कन्या रोजनी हुई उदयगिरि पर विचरण कर रही थी। (७९)

वहाँ अप्सरा को यह बन्दर मिला। अप्सरा ने उससे पूछा—हे कपि ! मुझसे सत्य कहो कि क्या तुमने बाळा को देखा है ? (८०)

तस्मात्सद् वचनं श्रुत्वा स कपिः प्राह बालिकाम् ।
 दृष्टा देववती नाम्ना मया न्वस्ता महाश्रमे ॥ ८१
 कालिन्या विमले तीर्थे मृगपक्षिसमन्विते ।
 श्रीकण्ठायतनस्याग्रे मया सत्यं तवोदितम् ॥ ८२
 सा प्राह वानरपते नाम्ना वेदवतीति सा ।
 न हि देववती ख्याता तद्रागञ्च व्रजावहे ॥ ८३
 घृताच्यास्तद्वचः श्रुत्वा वानरस्त्वस्तिरुमः ।
 प्रुष्टोऽस्याः समागञ्चन्नदीमन्वेव कौशिकीम् ॥ ८४
 ते चापि कौशिकीं प्राप्ता राजर्षिप्रवरास्त्रयः ।
 द्वितयं तापसाम्यां च रयैः परमवेगिभिः ॥ ८५
 अवतीर्य रथेभ्यस्ते स्नातुमम्यागमन् नदीम् ।
 घृताञ्चपि नदीं स्नातुं सुपुण्यसज्जगाम ह ॥ ८६
 तामन्वेव कपिः प्रायाह दृष्टो जाबालिना तथा ।
 दृष्ट्वैव पितरं प्राह पार्थिवं च महाबलम् ॥ ८७
 स एव पुनरायाति वानरस्तात वेगवान् ।

उसके उस वचन को सुनकर उस कपि ने कहा—मैंने देववती नामक बालिका को देखा है एवं उसे कालिन्दी के मृगपक्षिसमन्वित विमल तीर्थ में श्रीकण्ठ के मन्दिर के समुद्र स्थित महाश्रम में रक्खा है । मैंने तुमसे यह सत्य पात कही है । (८१-८२)

उसने (घृताची ने) कहा—हे वानरराज ! यह वेदवती नाम से प्रसिद्ध है देववती नहीं है । अरु, आओ, हम दोनों वहाँ चलो । (८३)

घृताची की मात सुनकर वानर लड़लता हुआ उसके पीछे-पीछे कौशिकी नदी की ओर चला । (८४)

वे दोनों श्रेष्ठ राजपि भी दोनों तपस्वियों (जाबालि और श्रुतञ्चज) के साथ अत्यधिक वेगशाली रथों पर चढ़कर कौशिकी नदी के समीप पहुँचे । (८५)

वे लोग रथ से उतर कर स्नान करने के लिए नदी के समीप आये । घृताची भी उस परम पवित्र नदी में स्नान करने आयी । (८६)

वानर भी कनने पीछे पीछे आया और जाबालि ने उसे देखा । देखने ही उन्होंने पिता और महाबली राजा से कहा— (८७)

हे तात ! यह कही वेगवान् वानर पुन आ रहा है

पूर्वं जटास्वेव वलाद्येन बद्धोऽस्मि पादपे ॥ ८८
 तज्जाबालिवचः श्रुत्वा शकुनिः क्रोधसंयुतः ।
 सशरं धनुरादाय इदं वचनमब्रवीत् ॥ ८९
 ब्रह्मन् प्रदीयतां मद्यमाज्ञा तात वदस्व माम् ।
 यावदेनं निहन्म्यद्य श्रेणैकेन वानरम् ॥ ९०
 इत्येवमुक्ते वचने सर्वभूतहिते रतः ।
 महर्षिः शकुनिं प्राह हेतुयुक्तं वचो महत् ॥ ९१
 न कश्चित् केनापि बध्यते हन्यतेऽपि वा ।
 वधधन्वौ पूर्वकर्मवशयौ नृपतिनन्दन ॥ ९२
 इत्येवमुक्त्वा शकुनिमुपिर्षानरमब्रवीत् ।
 एहोहि वानरास्माकं साहाय्यं कर्तुमर्हसि ॥ ९३
 इत्येवमुक्ते मुनिना घाले स कपिकुञ्जरः)
 कृताञ्जलिपुटो भूत्वा प्रणिपत्येदमब्रवीत् ॥
 ममाज्ञा दीयतां ब्रह्मन् शशधि किं करवाण्यहम् ॥ ९४
 इत्युक्ते प्राह स मुनिस्तं वानरपति वचः ।

जिसने पहले बलपूर्वक जटापाश के द्वारा मुझे बंधने में बाँध दिया था । (८८)

जाबालि के उस वचन को सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध शकुनि ने बाणयुक्त धनुष लेकर यह वचन कहा— (८९)

हे ब्रह्मन् ! मुझे आज्ञा दीजिए, हे तात ! मुझसे कहिए कि क्या मैं अभी एक बाण से इस वानर को मार डालूँ । (९०)

ऐसा वचन कहने पर समस्त प्राणियों के हित में तत्पर महर्षि ने शकुनि से अत्यधिक मुक्ति-युक्त श्रेष्ठ वचन कहा— (९१)

हे तात ! कोई किसी को न तो बाँधता और न मारता ही है । हे नृपतिनन्दन ! वध और वधन पूर्व-कर्मधीन होते हैं । (९२)

शकुनि से ऐसा कह कर मुनि ने वानर से कहा— हे वानर ! आओ, आओ । तुम हम लोगों को सहायता कर सन्ते हो । (९३)

हे घाले ! मुनि के ऐसा कहने पर उस श्रेष्ठ कपि ने हाथ जोड़ कर प्रणाम करते हुये यह कहा—हे ब्रह्मन् ! मुझे आज्ञा दीजिए कि मैं क्या करूँ ? (९४)

उसके ऐसा कहने पर मुनि ने उस वानरपति से यह

मम पुत्रस्त्वयोद्भवद्वो जटासु वटपादपे ॥ ९५
 न चोन्मोचयितुं घृताच्छक्नुयामोऽपि बन्तवः ।
 तदनेन नरेन्द्रेण त्रिधा कृता त्तु शास्त्रिनः ॥ ९६
 शाखां बहति मत्सूनुः शिरसा तां त्रिमोचय ।
 दशरथशवान्यस्व शाखां वै बहतोऽगमन् ॥ ९७
 न च सोऽस्मि तुमान् कश्चिद् यो तुन्मोचयितुं क्षमः ।
 न क्रपेयैक्यमारुण्य कपिजांशान्तिनो जटाः ॥ ९८
 शनैरुन्मोचयामाम धृणादुन्मोचिताथ ताः ।
 तवः प्रीतो मुनिश्रेष्ठो वरदोभूत्तव्यज्रः ॥ ९९
 कपिं प्राह शृणोष्य त्वं वरं यन्मनसोऽस्मिन्वत् ।
 क्रतव्यज्रवचः श्रुत्वा इमं वरमवाचत ॥ १००
 विश्वकर्मा महातेजाः कपित्वे प्रतिगच्छितः ।
 मन्त्र भवान्तरं मयं यदि दातुमिदंन्दति ॥ १०१
 तन्दरदो महाधरो मम शापो निवर्त्यताम् ।
 निशाङ्गदायाः पितरं मां त्वष्टारं तपोऽन ॥ १०२

अभिजानीहि भवतः शापादानरतां शतम् ।
 सुवह्नि च पापानि मया यानि कृतानि हि ॥ १०३
 कपिचापत्वदोपेण तानि मे यान्तु संधयम् ।
 ततो ऋतव्यज्रः प्राह शापस्यान्तो भविष्यति ॥ १०४
 यदा घृताच्यां तनयं जनिष्यमि महानलम् ।
 इत्येवमुक्तः संहृष्टः स तदा कपिहृत्तरः ॥ १०५
 स्नातुं तूर्णं महानयामवतीर्णः कृशोदरि ।
 ततस्तु सर्वे क्रमशः स्नात्वाऽर्च्यं विवृण्वताः ॥ १०६
 जगमुर्द्धा रथेभ्यस्त्वे घृताची दिवमुत्पतत् ।
 तामन्वेन महावेगः स कपिः प्लवगां वरः ॥ १०७
 ददशे रूपमंपन्नां घृताचीं स प्लवंगमः ।
 गापि तं कलिनां श्रेष्ठं दृष्ट्वा कपिहृत्तरम् ॥ १०८
 शान्ताऽव निश्चरुमीषं कामयामाम शमिनी ।
 ततोऽस्तु परंतश्रेष्ठे रचाने कोलाहले कपिः ॥ १०९
 रमयामाग तां तन्वीं सा च तं यानरोत्तमम् ।
 एवं रमन्ती सुचिरं मंत्रामो विन्ध्यपर्वतम् ॥ ११०

रथैः पश्चापि तत्तीर्थं संप्राप्तास्ते नरोत्तमाः ।
 मध्याह्नसमये प्रीताः सप्तगोदावरं जलम् ॥ १११
 प्राप्य विश्रामहेत्वर्थमवतैरुस्त्वरान्विताः ।
 तेषां सारथयश्चान्ध्रान् स्नात्वा पीतोदकाप्लुतान् ॥ ११२
 रमणीये वनोद्देशे प्रचारार्थं समुत्सृजन् ।
 शब्द्वलाढयेषु देशेषु गृह्णन्तदेव वाजिनः ॥ ११३
 वृक्षाः समावृणन् सर्वे देवायतनम्लचमम् ।
 तुरङ्गखुरनिर्घोषं श्रुत्वा ता योपितां वराः ॥ ११४
 किमेतदिति चोक्तवैव प्रजग्मूर्हाटकेश्वरम् ।
 आरुह्य बलमीं तास्तु समुद्वैक्षन्त सर्वशः ॥ ११५
 अपश्यंस्तीर्थसलिले स्नायमानान् नरोत्तमान् ।
 ततश्चिन्नाङ्गदा दृष्ट्वा जटामण्डलधारिणम् ॥
 सुरर्षं हसती प्राह संरोहत्पुलका सखीम् ॥ ११६
 योऽसौ युवा नीलघनप्रकाशः
 संदृश्यते दीर्घक्षुजः सुरूपः ।
 स एव नूनं नरदेवसूनु-

वे पाँचो श्रेष्ठ लोग भी प्रसन्नमन से रथ द्वारा मध्याह्न के समय सप्तगोदावर जल के उस तीर्थ में पहुँचे। (१११)

वहाँ जाकर वे शीघ्रता पूर्वक विश्राम करने के लिए नीचे उतरे। उनके सारथियों ने भी स्नान किया एवं घोड़ों को जल पिटाकर रमणीय वन प्रदेश में विचरण करने के लिए छोड़ दिया। सुहृत् भर नें ही हरियाली से पूर्ण स्थान में वे घोड़े रुत हो गये। तदनन्तर वे सभी (घोड़े) लचम देवायतन के निकट दीखने लगे। घोड़ों के शुर का शब्द सुनकर श्रेष्ठ स्त्रियाँ 'यह क्या है' ऐसा कहकर हाटकेश्वर (के मन्दिर में) गईं एवं छत पर चढ़कर सभी ओर देखने लगीं। (११२-११४)

उन कन्याओं ने तीर्थसलिल में स्नान करते हुए उन श्रेष्ठ पुरुषों को देखा। तदनन्तर चिन्नाङ्गदा ने जटामण्डलधारी सुरर्ष नृपति को देखा एवं रोमांचित होकर हँसती हुई सती से कहा— (११६)

नील मेघ के वर्ण वाटा यह जो दीर्घबाहु सुन्दर युवा पुरुष दिखलाई पड़ा है निश्चय ही वसी राजपुत्र को मैंने पहले पहल से परण किया था। (११७)

वृत्तो मया पूर्वतरं पतिर्षः ॥ ११७
 यथैव जाम्बूनवतुल्यवर्णः
 श्वेतं जटामारमधारयिष्यत् ।
 स एष नूनं तपतां वसिष्ठो
 श्रुतश्चजो नात्र विचारमस्ति ॥ ११८

ततोऽप्रवीदयो हृष्टा नन्दयन्ती सखीजनम् ।
 एषोऽपरोऽप्यैव तुतो जावालिनत्रि संशयः ॥ ११९
 इत्येवमुक्त्वा वचनं बलभ्या अवतीर्थं च ।
 समासताप्रतः शंभोर्गीयन्त्यो गीतिकां शुभाम् ॥ १२०

नमोऽस्तु शर्वं शंभो त्रिनेत्र चारुगात्र त्रैलोक्यनाथ
 उमापते दक्षयज्ञविश्वंसकर कामाङ्गनाशन धीर
 पापप्रणाशन महापुरुष महोग्रमूर्ते सर्व-
 सत्त्वक्षयकर शुभंकर महेश्वर त्रिशूलधारिन्
 स्मरारे गुहावासिन् दिग्वासः महाशङ्खशेखर [5]
 जटाधर कपालमालाविभूषितशरीर धामचक्षुः
 वामदेव प्रजापत्यक्ष भगाङ्गोः क्षयंकर भीमसेन

इसमें कुछ विचार करने की आवश्यकता नहीं है कि स्वर्णतुल्य वर्ण वाले जो व्यक्ति श्वेत जटामार को पारण कर रहे हैं वे निश्चय ही तपस्वियों में श्रेष्ठ श्रुतश्चज हैं। (११८)

तदनन्तर नन्दयन्ती ने सखियों से प्रसन्न होकर कहा— यह दूसरा व्यक्ति निस्सन्देह इन्हीं श्रुतश्चज का पुत्र जावालि है। (११९)

ऐसा कहकर वे सभी छत से उतरी एवं शंकर के सम्मुख बैठकर कल्याणकारी (निम्न) गीत गाने लगीं। (१२०)

हे शर्व! हे शम्भु! हे त्रिनेत्र! हे चारुगात्र! हे त्रैलोक्यनाथ! हे उमापति! हे दक्षयज्ञविश्वंसकर! हे कामाङ्गनाशन! हे धीर! हे पाप प्रणाशन! हे महापुरुष! हे महोग्रमूर्ति! हे समस्त प्राणियों के क्षयकारी! हे शुभकर! हे महेश्वर! हे त्रिशूलधारिन्! हे स्मरारि! हे गुहासिन्! हे दिग्म्वर! हे महाशङ्खशेखर! हे जटाधर! हे कपालमाला विभूषित शरीर! हे धामचक्षु! हे वामदेव! हे प्रजापत्यक्ष! हे भगाङ्गि के क्षयकारी! हे भीमसेन! हे

महासेननाथ पशुपते कामाङ्गदहन चत्वरवासिन्
शिव महादेव ईशान शंकर भीम भव
वृषभध्वज जटिल प्रौढ महानाट्येश्वर भूरिरत्न [10]

अविमुक्तक रुद्र रुद्रेश्वर स्थाणो एकलिङ्ग
कालिन्दीप्रिय श्रीकण्ठ नीलकण्ठ अपराजित
रिपुभयंकर संतोषपते वामदेव अधोर
वत्पुरुष महाघोर अधोरमूर्त्तेशान्त
सरस्वतीकान्त कीनाट सहस्रमूर्त्तेश महोद्भव [15]

विभो कालाग्निरुद्र रुद्र हर महीधरप्रिय
सर्वतीर्थीधिवास हंस कामेश्वर केदारधिपते
परिपूर्ण मञ्जुकन्द मधुनिवासिन् कृपाणपाणे
भयंकर विद्याराज सोमराज कामराज रज्जक
अञ्जनराजकन्याहृदचलवसते समुद्रशायिन् [20]
गर्जमुख घण्टेश्वर गोकर्ण ब्रह्मयोगे
सहस्रवक्त्राक्षिचरण हाटकेश्वर नभोऽस्तु ते ॥

महासेननाथ ! हे पशुपति ! हे कामाङ्गदहन ! हे चत्वर-
वासिन् ! हे शिव ! हे महादेव ! हे ईशान ! हे शङ्कर !
हे भीम ! हे भव ! हे वृषभध्वज ! हे जटिल ! हे प्रौढ ! हे
महानाट्येश्वर ! हे भूरिरत्न ! हे अविमुक्तक ! हे रुद्र !
हे रुद्रेश्वर ! हे स्थाणु ! हे एक लिङ्ग ! हे कालिन्दीप्रिय !
हे श्रीकण्ठ ! हे नीलकण्ठ ! हे अपराजित ! हे
रिपुभयङ्कर ! हे संतोषपति ! हे वामदेव ! हे अधोर !
हे वत्पुरुष ! हे महाघोर ! हे अधोरमूर्ति ! हे शान्त ! हे
सरस्वतीकान्त ! हे कीनाट ! हे सहस्रमूर्ति ! हे महोद्भव !
हे विभो ! हे कालाग्निरुद्र ! हे रुद्र ! हे हर ! हे
महीधरप्रिय ! हे सर्व तीर्थीधिवास ! हे हंस ! हे कामेश्वर !
हे केदारधिपति ! हे परिपूर्ण ! हे मञ्जुकन्द ! हे मधु-
निवासिन् ! हे कृपाणपाणि ! हे मयङ्कर ! हे विद्याराज !
हे सोमराज ! हे कामराज ! हे रज्जक ! हे अञ्जनराजकन्याहृद-
चलवसति ! हे समुद्रशायी ! हे गर्जमुख ! हे घण्टेश्वर ! हे
गोकर्ण ! हे ब्रह्मयोगि ! हे सहस्रवक्त्राक्षिचरण ! हे
हाटकेश्वर ! आपत्ते नमस्कार है ।

एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ताः सर्वे एवर्षिपार्थिवाः ।
द्रष्टुं त्रैलोक्यकर्तारं त्र्यम्बकं हाटकेश्वरम् ॥ १२१
समारूढाश्च सुस्नाता ददृशुर्घोषितश्च ताः ।
स्थितास्तु पुरतस्तस्य गायन्त्यो गेयमृत्तमम् ॥ १२२
ततः सुदेवतनयो विश्वकर्मसुतां प्रियाम् ।
दृष्ट्वा हृषितचित्तस्तु संरोहत्पुलकौ बभौ ॥ १२३
श्रुतध्वजोऽपि तन्वङ्गी दृष्ट्वा चित्राङ्गदां स्थिताम् ।
प्रत्यभिज्ञाय योगात्मा बभौ मुदितमानसः ॥ १२४
ततस्तु सहसाऽभ्येत्य देवेशं हाटकेश्वरम् ।
संपूजयन्तस्त्रयसं ते स्तुवन्तः संस्थिताः क्रमात् ॥ १२५
चित्राङ्गदापि तान् दृष्ट्वा श्रुतध्वजपुरोगमान् ।
समं तामिभिः कृशाङ्गीनिरभ्युस्थायाम्यथादयत् ॥ १२६
स च ताः प्रतिनञ्चैव समं पुत्रेण तापमः ।
समं नृपतिभिर्दृष्टः संविवेश यथासुखम् ॥ १२७
ततः कपिवरः प्राप्नो घृताच्या सह सुन्दरि ।

इसी बीच समस्त ऋषि एवं राजायोग त्रैलोक्यकर्ता,
त्र्यम्बक हाटकेश्वर का दर्शन करने वहाँ पहुँचे । (१२१)
स्नानोपरान्त ऊपर चढ़ते पर उन लोगों ने देवता
के सम्मुख बैठकर गीत गाती हुई त्रिघों को
देखा । (१२२)
तदनन्तर सुदेव के पुत्र अपनी प्रिया विश्वकर्मा की
पुत्री को देकर प्रसन्नता से पुलकित हो गये । (१२३)
योगी श्रुतध्वज भी तन्वङ्गी चित्राङ्गदा को
वहाँ स्थित देख तथा पहचान कर अत्यन्त आनन्दित
हुए । (१२४)
तदनन्तर सभी लोग श्रीश्री ही देवाधिदेव हाटकेश्वर
के समीप गए एवं त्रिलोचन की पूजा कर रखे होकर
रतुति करने लगे । (१२५)
उन श्रुतध्वज आदि को देखकर चित्राङ्गदा ने भी
उन कृशाङ्गी (कन्याओं) के साथ वठकर प्रणाम
किया । (१२६)
पुत्र सहित उन तपस्वी ने उन्हें आशीर्वाद दिया
एवं प्रसन्नतापूर्वक राजाओं सहित सुखपूर्वक बैठ
गये । (१२७)
हे सुन्दरी ! तदनन्तर गोदावरीतीर्थ मैं स्नान कर

स्नात्वा गोदावरीतीर्थे दिदुर्हृष्टकेधरम् ॥ १२८
 ततोऽपश्यत् सुता तन्वीं घृताची शुभदर्शनाम् ।
 साऽपि तां मातरं दृष्ट्वा हृष्टाऽभूद्धरवाणिनी ॥ १२९
 ततो घृताची स्वां पुत्रीं परिष्वज्य न्यपीडयत् ।
 स्नेहात् सवाष्पनयनां मृहस्तां परिजिघ्रती ॥ १३०
 ततो क्रतुष्वज्ज् श्रीमान् कपि वचनमब्रवीत् ।
 गच्छानेतुं शुक्रं त्वमञ्जनाद्री महाञ्जनम् ॥ १३१
 पातालादपि दैत्येश वीरं कन्दरमालिनम् ।
 स्वर्गाद् गन्धर्वराज्ञानं पर्जन्यं शीघ्रमानय ॥ १३२
 इत्येवमुक्ते मुनिना प्राह दशरथी कपिम् ।
 गालं वानरश्रेष्ठ इहोत्तुं त्वमर्हसि ॥ १३३
 इत्येवमुक्ते वचने कपिर्मस्तविक्रमः ।
 गत्वाऽञ्जनं समामन्य जगामानरपर्वतम् ॥ १३४
 पर्जन्यं तत्र चामन्य प्रेषयित्वा महाश्रमे ।
 सप्तगोदावरे तीर्थे पातालमगमत् कपिः ॥ १३५

हाटकेश्वर के दर्शन का इच्छुक श्रेष्ठ कपि भी घृताची सहित
 वहाँ पहुँचा । (१२८)

बहुपरास्त घृताची ने अपनी शुभदर्शना कृशाङ्गी पुत्री
 को देखा । वह सुन्दरी भी अपनी उस माता को देखकर
 प्रसन्न हुई । (१२९)

तदनन्तर घृताची ने अपनी पुत्री का गाढ़ आलिङ्गन
 किया । अश्रुपूर्ण नेत्रों वाले (अपनी पुत्री) को वह बार बार
 स्नेह से छूँपने लगी । (१३०)

वत्परपात्र श्रीमान् ऋतुष्वज्ज ने कपि से कहा—तुम
 महाञ्जन नामक शुक्र को लाने अञ्जन पर्वत पर
 जाओ । (१३१)

पाताल से वीर देवेश्वर कन्दरमाली को तथा
 स्वर्ग से गन्धर्वराज पर्जन्य को यहाँ शीघ्र लाओ । (१३२)

मुनि के ऐसा कहने पर देवनी ने वानर से कहा—
 हे कपिश्रेष्ठ ! गाल को भी आप यहाँ लायें । (१३३)

ऐसा बट्टे जाने पर वायुसदृश पराञ्जम पाठाकपि अञ्जन
 पर्वत पर गया एव (शुक्र) को आमन्त्रित कर सुमेरु पर्वत
 पर चला गया । (१३४)

यहाँ दसने पर्जन्य को आमन्त्रित किया एव सप्त-
 गोदावर तीर्थ में शिव महाश्रम में उन्हें भेजने के बाद
 पाताल चला गया । (१३५)

तत्रामन्य महावीर्यं कपिः कन्दरमालिनम् ।
 पातालादभिनिष्कम्य महीं पर्यचरञ्जवी ॥ १३६
 गालवं तपसो योनिं दृष्ट्वा माहिष्मतीमनु ।
 समुत्पत्यानयच्छीघ्रं सप्तगोदावरं नलम् ॥ १३७
 तत्र स्नात्वा विधानेन संप्राप्तो हाटकेश्वरम् ।
 ददशे नन्दयन्ती च स्थितां देववतीमपि ॥ १३८
 तं दृष्ट्वा गालव चैव समुत्थायाम्भवाद्यत् ।
 स चार्चिष्यन्महादेव महर्षिर्नभ्यवाद्यत् ।
 ते चापि नृपतिश्रेष्ठस्तं संपूज्य तपोधनम् ॥ १३९
 प्रहर्षमनुल गत्वा उपविष्टा यथासुप्तम् ।
 तेषूपविष्टेषु तदा वानरोपनिमन्त्रिताः ॥ १४०
 समायाता महात्मानो यक्षगन्धर्वदानवाः ।
 तानागतान् समीक्ष्यैव पुष्यस्ताः पृथुलोचनाः ॥ १४१
 स्नेहर्दनयनाः सर्वास्तदा सस्त्रजिरे पितृन् ।
 नन्दयन्वादिक्ता दृष्ट्वा सपितृका वरानना ॥ १४२

यहाँ महापराक्रमी कन्दरमाली को आमन्त्रित कर
 वेगवान् वानर पाताल से निकलकर पृथ्वी पर विचरण
 करने लगा । (१३६)

माहिष्मती के निकट तपोनिधि गालव ने देवकर
 यह उल्लास एव शीघ्र उन्हें सप्तगोदावर के जल के निकट
 ले आया । (१३७)

यहाँ विधिपूर्वक स्नान कर यह हाटकेश्वर के समीप
 पहुँचा एव नन्दयन्ती तथा देववती को भी यहाँ बैठी
 हुई देखा । (१३८)

गालव को देखकर उन सभी ने उठकर इनका
 अभिवादन किया । उन्होंने भी महादेव की पूजा कर
 महर्षियों को प्रणाम किया । उन श्रेष्ठ राजाओं ने भी उन
 तपोधन की पूजा की एवं अरबन्त प्रसन्न होकर सुतपूर्वक
 बैठ गये । उनके बैठ जाने पर वानर द्वारा आमन्त्रित यक्ष,
 गन्धर्व एव दानव तीनों महात्मा यहाँ आए । उन्हें
 आया देखने ही उन विशालाक्षी पुत्रियों के नेत्र
 स्नेहाश्रुपूर्ण हो गये । उन सभी ने अपने अपने पिता का
 आलिङ्गन किया । नन्दयन्ती आदि को पिता से मुक्त हुई
 देवकर विरयस्त्री की सुन्दरी पुत्री के नेत्र अश्रुपूर्ण हो

सचाप्यनयना जाता विश्वकर्मासुता तदा ।
 अथ तामाह स मुनिः सत्यं सत्यवचनो वचः ॥ १४३
 मा विपादं कृयाः पुत्रि पिताऽयं तव वानरः ।
 सा तद्वचनमाकर्ण्य व्रीडोपहतचेतना ॥ १४४
 कथं तु विश्वकर्माऽमौ वानरत्वं गतोऽधुना ।
 दुष्पुत्र्यां भविजातायां तस्मात् त्यक्षे कलेवरम् ॥ १४५
 इति संचिन्त्य मनसा ऋतवचनमुवाच ह ।
 परित्रायम्ब मां ब्रह्मन् पापोपहतचेतनाम् ॥ १४६
 पित्रुन्नी मर्तुमिच्छामि तदनुधातुमर्हामि ।
 अथोवाच मुनिस्तर्नां मा विपाद कृथाधुना ॥ १४७
 भाव्यस्य नैव नाशोऽस्ति तन्मा त्याधीः कलेवरम् ।
 भविष्यति पिता तुभ्यं भूयोऽप्यमरवर्द्धकिः ॥ १४८
 जातेऽपत्ये घृताच्यां तु नात्र कार्या विचारणा ।
 इत्येनमुक्तं वचने मुनिना भावितात्मना ॥ १४९
 घृताची तां समभ्येत्य प्राह चित्राङ्गदां वचः ।
 पुत्रि त्यजस्व शोकं त्वं मार्मर्दशभिरात्मनः ॥ १५०
 भविष्यति पितुस्तुभ्य मत्सकाशाज संशयः ।

इत्येनमुक्ता संहृष्टा यमौ चित्राङ्गदा तदा ॥ १५१
 प्रतीक्षन्ती सुचार्वर्द्धी विवाहे पितृदर्शनम् ।
 सर्वास्ता अपि तानन्तं जालं सुतनुऋण्यकाः ॥ १५२
 प्रत्यैऽन्त विनाहं हि तस्या एव प्रियेभ्यया ।
 ततो दशतु मासेषु समतीनेष्ववाप्सराः ॥ १५३
 तस्मिन् गोदाररीतीर्थे प्रसूता तनयं नलम् ।
 जातेऽपत्ये कपिवाच विश्वकर्माप्यमुच्यत ॥ १५४
 समभ्येत्य प्रिया पुत्रां पर्यगन्तवत चादरात् ।
 ततः प्रीतेन मनसा सम्मार सुरवर्द्धकिः ॥ १५५
 सुराणामधिपं शक्र सहैव सुरकिन्नरैः ।
 त्वष्ट्राऽथ सम्भृतः शक्रो मरुदण्डवत्तदा ॥ १५६
 सुरैः सरट्रैः संप्राप्तस्ततीर्थे हाटकद्वयम् ।
 समायातेषु देवेषु गन्धर्वेष्वपसरसु च ॥ १५७
 इन्द्रधुम्नो मुनिश्रेष्ठमृतध्वजमुवाच ह ।
 जानालेर्देवता ब्रह्मन् सुताकन्दरमालिनः ॥ १५८
 गृह्णातु विधिवत् पाणिं दैतेभ्यास्त्वनयस्त्वव ।
 नन्दयन्तीं च शकुनिः परिणेतुं स्वरूपवान् ॥ १५९

गये । तदनन्तर ऋतवचन मुनि ने उससे सत्यवचन
 कहा । (१३६-१४३)
 हे पुत्री । विपाद मत करो । यह वानर तुम्हारा पिता
 है । उस वचन को सुनकर यह उज्जित हो गई । (१४४)
 क्योंकि मुझ कुपुत्री के वत्पत्र होने से ये विश्वकर्मा
 इस समय वानर हो गये हैं अतः मैं शरीर का त्याग
 करूँगी । (१४५)
 मन में ऐसा विचार कर उसने ऋतवचन से कहा—
 हे ब्रह्मन् । मुझ पापके कारण नष्ट बुद्धिवाली का आप परित्राय
 करें । मैं पितृप्राप्तिकी प्ररक्षा चाहती हूँ । जत आप अतुमप्रति
 हूँ । तब मुनि ने उस वृशाङ्गी से कहा—अब विपाद
 मत करो । (१४६-१४७)
 भारी का नाश नहीं होता । अतः शरीर का त्याग मत
 करो । घृताची के गर्भ से पुत्र उत्पन्न हो जाने पर तुम्हारे
 पिता पुनः देवताओं के शिल्पी हो जायेंगे । इसमें सन्देह
 नहीं । सत्यचिन्तित मुनि के ऐसा कहने पर घृताची ने
 चित्राङ्गदा के समीप जाकर उससे कहा—हे पुत्री ।
 तुम शोक छोड़ दो । निःसन्देह इस महीनों में तुम्हारे
 पिता द्वारा मुझ से एक पुत्र उत्पन्न होगा । ऐसा कहे
 जाने पर चित्राङ्गदा प्रसन्न हो गई । (१४८-१५१)

सुन्दरी (चित्राङ्गदा) अपने विवाह में मिलने वाले पिता
 के दर्शन की प्रतीक्षा करने लगी । वे सुन्दरी कन्याओं भी
 प्रिय की प्राप्ति की कामना से उनके ही विवाह के समय की
 प्रतीक्षा करने लगी । इस मास व्यतीत हो जाने पर
 अप्सरा ने उस गोदाररीतीर्थ में नल नामक पुत्र को जन्म
 दिया । पुत्र उत्पन्न हो जाने पर विश्वकर्मा भी कपिल
 से मुक्त हो गये । (१५२-१५४)
 अपनी प्रिय पुत्री के समीप जाकर उन्होंने उसका
 आश्रयपूर्वक आलङ्घन किया । तदनन्तर प्रसन्न मन से देव
 शिल्पी ने देवताओं एवं किन्नरों सहित सुराधिप इन्द्र का
 स्मरण किया । त्वष्टा के स्मरण करने पर इन्द्र मरुदगणों, देवों
 एवं रुद्रों के साथ हाटक नामके तीर्थ में आये ।
 देवताओं, गन्धर्वों और अप्सराओं के आने पर इन्द्रधुम्न
 ने मुनिश्रेष्ठ ऋतवचन से कहा—हे ब्रह्मन् । जाबाल को
 कन्दरमाली की कन्या प्रदान करें । आपका पुत्र विधिवत्
 दैत्यनग्निनी का पाणिप्रदण करे । स्वरूपवान् शकुनि
 नन्दयन्ती से विवाह करे । (१५५-१५९)

ममेयं वेदवत्यस्तु त्वाष्ट्रेयी सुरवस्य च ।
 वाढमित्यन्नवीदृष्टो मृनिर्मनुसुतं नृपम् ॥ १६०
 ततोऽनुचक्रुः संहृष्टा विवाहविधिमुत्तमम् ।
 श्रुतिवजोऽभूद् गालवस्तु हुत्वा ह्ययं विधानतः ॥ १६१
 गायन्ते तत्र गन्धर्वा नृत्यन्तेऽप्सरसस्तथा ।
 आदौ जावालिनः पाणिर्गृहीतो दैत्यकन्यया ॥ १६२
 इन्द्रधुम्नेन तदनु वेदवत्या विधानतः ।
 ततः शकुनिना पाणिर्गृहीतो यक्षकन्यया ॥ १६३
 चित्राङ्गदायाः कल्याणि सुरथः पाणिमग्रहीत् ।
 एवं क्रमाद् विवाहस्तु निर्वृत्तस्तनुमध्यमे ॥ १६४
 वृत्ते मृनिर्विवाहे तु शक्रादीन् प्राह दैवतान् ।
 अस्मिंस्तोर्थे भवद्भिस्तु सप्तगोदावरे सदा ॥ १६५

स्थेयं विशेषतो मासमिमं माघवमुत्तमम् ।
 वाढमुक्त्वा सुराः सर्वे जग्मूर्हृष्टा दिवं क्रमात् ॥ १६६
 मृनयो मृनिमादाय सपुत्रं जग्मुरादरात् ।
 भार्याश्चादाय राजानः स्वै स्वै नगरमागताः ॥ १६७
 प्रहृष्टाः सुखिनस्तस्युः भुङ्गते विषयान् प्रियान् ।
 चित्राङ्गदायाः कल्याणि एवं वृत्तं पुरा किल ।
 तन्मां कमलपत्राक्षि भजस्व ललनोत्तमे ॥ १६८
 इत्येवमुक्त्वा नरदेवसूनु-
 स्तां भूमिदेवस्य सुतां वरोरुम् ।
 स्तुवन्मृगाक्षीं मृदुना क्रमेण
 सा चापि वाक्यं नृपतिं वभापे ॥ १६९

इति श्रीवामनपुराणे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

यह वेदवती नेरी तथा स्वष्टा (विश्वन्मती) की पुत्री (चित्राङ्गदा) सुरथ की पत्नी हो। मुनि ने मनुपुत्र राजा से कहा—ठीक है।

तदनन्तर उन लोगों ने आनन्दपूर्वक मञ्जीभाँति विवाह की विधि को सम्पन्न किया। विधिपूर्वक ह्यय का हयन कर गालव श्रुतिवृत्तने।

उस समय यहाँ गन्धर्वों ने गाना गाया और अप्सराओं ने नृत्य किया। सर्वे प्रथम दैत्यकन्या ने जावालिन का पाणिग्रहण किया।

हे कल्याणी! तदनन्तर इन्द्रधुम्न ने विधिपूर्वक वेदवती का, शकुनि ने यक्षकन्या का तथा सुरथ ने चित्राङ्गदा का पाणिग्रहण किया। हे वृशोदरी! इस प्रकार क्रम से विवाहसर्व्य पूर्ण हुआ।

विवाहसर्व्य सम्पन्न हो जाने पर मुनि (श्रुतध्वज) ने

इन्द्र आदि देवताओं से कहा—इस सप्तगोदावरतीर्थ में आप लोग सदा निवास करें। विशेष रूप से इस उत्तम वैशाख मास में आप लोग यहाँ अवश्य रहें। देवता लोग 'देसा ही हो' यह कर आनन्द से स्वर्ग चले गये।

मुनिलोग पुत्र-सहित मुनि (श्रुतध्वज) को सम्मान के साथ लेजर चले गये। राजा लोग भी अपनी-अपनी पत्नी लेकर अपने नगर में आ गये।

सभी लोग प्रिय विषय का उपभोग करते हुए सुख पूर्वक रहने लगे। हे कल्याणि! चित्राङ्गदा का पूर्व वृत्तान्त इस प्रकार का है। अतः हे कमलनयना ललनोत्तमा! तुम मुझ स्वीकार करो।

ऐसा कहकर राजपुत्र (दण्ड) ब्राह्मण की उस सुन्दरी मृगाक्षी पुत्री की कोमलतापि से स्तुति करने लगे। उसने भी राजा से कहा।

श्रीवामनपुराण में सत्रतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥३९॥

अरजा उवाच ।

नात्मानं तत्र दास्यामि बहुनोक्तेन किं तत्र ।
रक्षन्ती भवतः श्लापादात्मानं च महीपते ॥ १

प्रहाद उवाच ।

इत्थं विवदमानां तां भार्गवेन्द्रसुतां वलात् ।
कामोपहतचित्तात्मा व्यघ्नंसचत मन्दीः ॥ २
तां कृत्वा च्युतचारित्रां मदान्धः पृथिवीपतिः ।
निश्रमामाश्रमात् तस्माद् गतथ नगरं निजम् ॥ ३
साऽपि शुक्रसुता तन्मी अरजा रजसाप्लुता ।
आश्रमादथ निर्गत्य वदित्स्वभावधोमुखी ॥ ४
चिन्तयन्ती स्वपितरं रुदती च मृदुर्मुहुः ।
महाग्रहोपमेष रोहिणी शशिनः प्रिया ॥ ५
उतो बहुतिथे काले समाप्ते यज्ञकर्मणि ।
पातालादागमच्छुक्रः स्वमाश्रमपदं मुनिः ॥ ६
आश्रमान्ते च ददशे सुतां दैत्य रजखलाम् ।

मेघलेरागिवाकाशे संघ्यारामेण रंजिताम् ॥ ७
तां दृष्ट्वा परिपप्रच्छ पुत्रि केनासि धर्षिता ।
कः श्रीडति सरोपेण सममाशीविषेण हि ॥ ८
कोऽत्रैव याम्यां नगरिं गमिष्यति सुदुर्मतिः ।
यस्तवां शुद्धसमाचारां विध्वंसयति पापदृत् ॥ ९
ततः स्वपितरं दृष्ट्वा कम्पमाना पुनः पुनः ।
रुदन्ती व्रीडयोपेता मन्दं मन्दमवाच ह ॥ १०
तत्र शिष्येण दण्डेन वार्यमाणेन चासकृत् ।
वलादनाथा रुदती नीताऽहं वचनीयताम् ॥ ११
एतत् पुत्र्या वचः श्रुत्वा क्रोधमंरकलोचनः ।
उपस्पृश्य शुचिर्भूत्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥ १२
यस्मात् तेनाविनीतेन मत्तो ह्यभयम्वचमम् ।
गौरवं च तिरस्कृत्य च्युतधर्माऽरजा कृता ॥ १३
तस्मात् सराष्टः सगलः समृत्यो वाहनैः सह ।

४०

अरजा ने कहा—हे महीपति! आपके अधिक कहने से क्या होगा? (पिता के) शाप से आपकी एवं अपनी रक्षा करती हुई मैं आपकी आलमदान नहीं करूँगी। (१)
प्रह्लाद ने कहा—कामान्ध उस मूर्ख ने इस प्रकार विवाद करती हुई शुक्र की उस पुत्री को बलपूर्वक भ्रष्ट कर दिया। (२)

मदान्ध राजा उसका चरित्र भ्रष्ट कर उस आश्रम से निकल कर अपने नगर चला गया। (३)

तदनन्तर रज से आप्लुत वह तन्वद्गी शुभसुता अरजा भी आश्रम से निकलकर नीचा मुख किये हुए बाहर चैठ गई। (४)

महाप्रह्म से उपतप्त चन्द्र प्रिया रोहिणी के सदृश वह अपने पिता का चिन्तन करती हुई बारम्बार रोने लगी। (५)

तदनन्तर बहुत समय के बाद यज्ञ समाप्त होने पर शुक्रमुनि पाताल से अपने आश्रम में आये। (६)
हे दैत्य! उन्हीं आश्रम से बाहर आकाश में सम्भवा-

कालीन लालिमा से रजित मेघ माला की तरह अपनी रजतलला पुत्री को देखा। (७)

उसे देखकर उन्हींने पूछा—हे पुत्री! किराने तुम्हारा धर्षण किया है? रोपयुक्त सपे से कौन खेड़ा कर रहा है। (८)

शुद्ध-चारित्र्यसम्पन्न तुम्हें भ्रष्ट कर कौन दुर्मति पापी आज ही यम पुरी जाने वाला है? (९)

तदनन्तर अपने पिता को देखकर बारम्बार कौपती एवं रोती हुई लज्जायुक्त अरजा ने धीरे धीरे कहा— (१०)

बार-बार मना करने पर भी आपके शिष्य दण्ड ने रोती हुई मुझ अनाथा को बल पूर्वक कलङ्कित किया। (११)

पुत्री का यह वाक्य सुनकर शुक्राचार्य के नेत्र क्रोध से लाल हो गये। उन्हींने आचमन कर शुद्ध होकर यह वचन कहा— (१२)

क्योंकि उस अविनीत ने मुझसे प्राप्त सत्तम अभय एवं गौरव को तिरस्कृत कर अरजा को धर्मभ्रष्ट किया है अतः

सप्तरात्रान्तराद् भस्म प्रायश्चित्त्वा भविष्यति ॥ १४
 इत्येवमुक्त्वा मुनिपुंगवोऽसौ
 शप्त्वा स दण्डं स्वसुतामुवाच ।
 त्वं पापमोक्षार्थमिहैव पुत्रि
 तिष्ठस्व कल्याणि तपश्चरन्ती ॥ १५
 शप्त्वेत्यं भगवान् शुक्रो दण्डमिक्ष्वाकुनन्दनम् ।
 जगाम शिष्यसहितः पातालं दानवालयम् ॥ १६
 दण्डोऽपि भस्माद् भूतः सरापृथक्वाहनः ।
 महता प्रायवर्षेण सप्तरात्रान्तरे तदा ॥ १७
 एवं तद्दण्डकारण्यं परित्यज्यन्ति देवताः ।
 आलयं राक्षसानां तु कृतं देवेन शंभुना ॥ १८
 एवं परकलत्राणि नयन्ति सुकृतीनपि ।
 भस्मभूतान् प्राकृतांस्तु महान्तं च पराभवम् ॥ १९
 तस्मादन्धक दुर्षुद्धिर्न कार्या भवता त्विषम् ।
 प्राकृताऽपि दहेन्नारी किमुताहोत्रिनन्दिनी ॥ २०

यह सात रात्रियों में उपलवृष्टि के कारण राष्ट्र, सेना, भृत्य एवं वाहनों सहित विनष्ट हो जायेगा । (१३-१४)
 उन मुनिश्रेष्ठ ने ऐसा कहकर दण्ड को शाप देने के उपरान्त अपनी पुत्री से कहा—हे पुत्री! हे कल्याणी! पाप से मुक्त होने के लिए तुम तप करती हुई यहीं रहो । (१५)

भगवान् शुक्र इक्ष्वाकुनन्दन दण्ड को इस प्रकार श्राप देकर शिष्य के साथ दानवों के निवास स्थान पाताल में चले गये । (१६)

तदनन्तर दण्ड भी महती उपलवृष्टि के द्वारा सात-रात्रियों के भीतर अपने राज्य, सेना, और वाहनों के साथ नष्ट हो गया । (१७)

इसी से देवताओं ने दण्डकारण्य का परित्याग कर दिया एवं शम्भु ने उसे राक्षसों का स्थान बना दिया । (१८)

इस प्रकार परशिवों सुकृतियों को भी भस्मभूत कर देवी हैं । सामान्य मनुष्य तो महान पराभव प्राप्त करते हैं । (१९)

अतः हे अन्धक! आपको ऐसी दुर्बुद्धि नहीं करनी चाहिए । साधारण स्त्री भी जडा सजती है तो पार्वती का क्या कहना (२०)

शंकरोऽपि न दैत्येश शक्यो जेतुं सुरासुरैः ।
 द्रष्टुमप्यमितीजस्कः किमु योधयितुं रणे ॥ २१
 पुलस्त्य उवाच ।

इत्येवमुक्ते वचने क्रुद्धस्ताप्रेक्षणः श्वसन् ।
 वाक्यमाह महातेजाः प्रह्लादं चान्धकःसुरः ॥ २२
 किं ममासौ रणे योद्धुं शकतित्रयनोऽसुर ।
 एकाकी धर्मरहितो नस्मारुणितविग्रहः ॥ २३
 नान्धको विभियादिन्द्रान्नामरेभ्यः कथंचन ।
 स कथं वृषपत्राक्षाद् विभेति स्त्रीद्विदोक्षकाद् ॥ २४
 तच्छ्रुत्वाऽप्य वचो घोरं प्रह्लादः प्राह नारद ।
 न सम्भ्यशुक्तं भवता विरुद्धं धर्मतोऽर्थतः ॥ २५
 हुताशनपतङ्गाभ्यां सिंहक्रोष्टुकयोरिव ।
 गजेन्द्रमशकाभ्यां च रुम्मपापाणयोरिव ॥ २६
 एतेषामभिर्दितं याचदन्तरमन्धक ।
 तावदेवान्तरं चास्ति भवतो वा हरस्य च ॥ २७

हे दैत्येश्वर! सुर या असुर कोई भी महादेव को जीत नहीं सकता । जब अमित ओजस्वी शंकर को रणे में देखा भी नहीं जा सकता तो उनसे युद्ध करना कैसे सम्भव है ? (२१)
 पुलस्त्य ने कहा—ऐसा वचन कहने पर क्रुद्ध एवं रक्तनेत्र महातेजस्वी अन्धकासुर ने दीर्घ श्वास लेते हुए प्रह्लाद से (यह) वाक्य कहा— (२२)

हे असुर! क्या भस्मलित शरीर वाला धर्म रहित एकाकी यह त्रिलोचन संग्राम में मुझसे युद्ध कर सकता है ? (२३)

जो अन्धक इन्द्र या (अन्य) देवताओं से कभी भयभीत नहीं होता यह वृषवाहन एवं स्त्री का मुख देखने वाले त्रिनेत्र से कैसे डर सकता है ? (२४)

हे नारद! उसके उस घोर वचन को सुनकर प्रह्लाद ने कहा—आप ने यह ठीक नहीं कहा है । आपका कथन धर्म एवं अर्थ के विरुद्ध है । (२५)

हे अन्धक! अग्नि एवं पतङ्ग, सिंह एवं शृगाल, गजेन्द्र एवं मशक तथा स्वर्ण एवं पापाण में जितना अन्तर कहा जाता है उतना ही अन्तर आप और शङ्कर के मध्य है । (२६-२७)

वारितोऽसि मया धीर भूयो भूयश्च वार्यसे ।
 शृणुष्व वाचयं देवर्षेरसितस्य महात्मनः ॥ २८
 यो धर्मशीलो जितमानरोपी
 विद्याविनीतो न परोपतापी ।
 स्वदारतुष्टः परदारवर्जी
 न तस्य लोके भयमस्ति किञ्चित् ॥ २९
 यो धर्महीनः कलहप्रियः सदा
 परोपतापी श्रुतिशान्धवर्जितः ।
 परार्थदोषेषु रवर्णमंगमी
 सुखं न विन्देत् परत्र चेह ॥ ३०
 धर्मान्वितोऽभूद् भगवान् प्रभाकरः
 संत्यक्तरोपश्च धृनिः स वारुणिः ।
 विद्याऽन्वितोऽभून्मनु रर्कपुत्रः
 स्वदारसंतुष्टमनास्त्वरास्त्यः ॥ ३१
 एतानि पुण्यानि कृतान्धर्मोभि-
 र्मया निवद्धानि कुलकर्मोक्त्या ।
 तेजोन्विताः शापवरदमाश्च
 ज्ञाताश्च सर्वे सुरसिद्धपूज्याः ॥ ३२

हे धीर ! आपने मेने रोना है एवं बार-बार रोक रहा हूँ । आप देवर्षि अस्ति का वचन सुनें । (२८)
 जो व्यक्ति धर्मशील, अभिमान एवं क्रोध को जीवने वाला, विद्या से विनीत, किसी को दुःख न देने वाला, अपनी पत्नी में सन्तुष्ट तथा परत्री का वर्जन करने वाला होता है उसे संसार में कोई भय नहीं होता । (२९)
 जो व्यक्ति धर्महीन, कलहप्रिय, सदा दूसरों को दुःख देने वाला, वेद-शास्त्र रहित, दूसरे के धन और स्त्री की इच्छा रखने वाला, तथा भिन्न वर्ण के साथ संसर्ग करने वाला होता है, वह इस लोक और परलोक में सुख नहीं प्राप्त करता । (३०)

भगवान् भास्कर धमेयुक्त थे, महर्षि वारुणि (वशिष्ठ) क्रोधत्यागी थे, सुर्वपुत्र मनु विद्यावान् थे एवं अमास्य ऋषि अपनी पत्नी में सन्तुष्ट थे । (३१)
 मैंने कुल के क्रमानुसार इन पुण्य करने वालों का उल्लेख किया है । शाप एवं वर देने में समर्थ वे सभी तेजस्वी लोग देवताओं और सिद्धों के पूजनीय हुए । (३२)

अधर्मऽयुक्तोऽङ्गुततो यमूय
 विशुध्य नित्यं कलहप्रियोऽभूत् ।
 परोपतापी नमृचिर्दुरात्मा
 परारलेप्सुर्नहुपश्च राजा ॥ ३३
 परार्थलिप्सुर्दिविजो हिरण्यरक्
 मूर्खस्तु तस्याप्यनुजः सुदुर्मतिः ।
 अवर्णसंगी यदुरुचमौजा
 एते विनष्टास्त्वनयात् पुरा हि ॥ ३४
 तस्माद् धर्मो न संत्याज्यो धर्मो हि परमा गतिः ।
 धर्महीना नरा यान्ति रौरवं नरकं महत् ॥ ३५
 धर्मस्तु गदितः पुंभित्सारणे दिवि चेह च ।
 पतनाय तथाऽधर्म इह लोके परत्र च ॥ ३६
 त्याज्यं धर्मोन्वितैश्चित्यं परदारोपसेवनम् ।
 नयन्ति परदारा हि नरकानेकविंशतिम् ॥
 सर्वेषामपि वर्णानामेष धर्मो भ्रूयोऽन्धक ॥ ३७
 परार्थपरदारेषु यदा वाञ्छां करिष्यति ।

अङ्ग-पुत्र (वेन) अधर्म युक्त था, विमुं नित्य कलहप्रिय था, दुरात्मा नमुचि दूसरे को संताप देने वाला था एवं राजा नहुप दूसरे की स्त्री प्राप्त करना चाहता था । (३३)
 द्विति पुत्र हिरण्यरक् परधन का लोभी था, उसका अनुज दुर्मति एवं मूल था एवं पराक्रमी यदु भिन्न-वर्ण के साथ संसर्ग करने वाला था । ये सभी पूर्वकाल में दुर्नीति के कारण नष्ट हो गये । (३४)
 इसलिए धर्म का त्याग नहीं करना चाहिए क्योंकि धर्म ही परम गति है । धर्महीन मनुष्य महान् रौरव नरक में जाते हैं । (३५)
 मनुष्यों ने धर्म को लोभ तथा परलोक पार करने वाला बताया है तथा अधर्म को इस लोक और परलोक में पतन का कारण बताया है । (३६)
 धार्मिक व्यक्तियों को परस्त्री-सेवन सदैव त्याज्य बताया है । परस्त्रियों इकट्ठी नरकों में ले जाती हैं । हे अन्धक ! सभी वर्णों के लिए यह निश्चित धर्म है । (३७)
 जो मनुष्य परधन और परस्त्री में इच्छा करता है वह

स याति नरकं घोरं रौरवं बहुलाः समाः ॥ ३८
 एवं पुराऽसुरपते देवर्षिरसितोऽव्ययः ।
 प्राह धर्मव्यवस्थानं सगोन्द्राचारुणाद्य हि ॥ ३९
 तस्मान् सुदरतो वर्जितं परदारान् विचक्षणः ।
 नयन्ति निकृतिप्रज्ञं परदाराः परामवम् ॥ ४०
 पुलस्त्य उवाच ।

इत्येवमुक्ते वचने प्रह्लादं प्राह चान्धकः ।
 भवान् धर्मपरस्त्वेको नाहं धर्मं समाचरे ॥ ४१
 इत्येवमुक्त्वा प्रह्लादमन्धकः प्राह शम्बरम् ।
 गच्छ शम्बर शैलेन्द्रं मन्दरं यद् शंकरम् ॥ ४२
 भिक्षो किमर्थं शैलेन्द्रं स्वर्गोपम्य सकन्दरम् ।
 परिश्रज्जसि केनाद्य तव दत्तो वदस्व माम् ॥ ४३
 तिष्ठन्ति शासने मद्य देवाः शक्रपुरोगमाः ।
 तत् किमर्थं निवससे मामनाहत्य मन्दरे ॥ ४४
 यदीदृस्तव शैलेन्द्रः क्रियतां वचनं मम ।

घोर रौरव नरक में बहुत धरों के लिये चला जाता है । (३८)

हे राक्षसराज ! प्राचीन काल में महात्मा देवर्षि अस्तित्व में गरुड तथा अरुण से यह धर्म व्यवस्था कही थी । (३९)

अतः बुद्धिमान् मनुष्य परस्त्रियों का दूर से ही परित्याग कर दे । क्योंकि निरुद्ध बुद्धि वाले मनुष्यों को परस्त्रियों परामव को प्राप्त कराती हैं । (४०)

पुलस्त्य ने कहा—ऐसा वचन कहने पर अन्धक ने प्रह्लाद से कहा कि आप अकेले धार्मिक हैं । मैं धर्म का आचरण नहीं करता । (४१)

प्रह्लाद से ऐसा कहकर अन्धक ने शम्बर से कहा—हे शम्बर ! तुम मन्दर पर्वत पर जाओ और शंकर से कहो— (४२)

हे भिक्षुक ! तुम शुफार्जों से युक्त तथा स्वर्ग तुल्य मन्दर पर्वत का उपभोग क्यों कर रहे हो ? सुते बतलाओ कि इसे तुमको किसने दिया है ? (४३)

इन्द्रादि समस्त देवता मेरा शासन मानते हैं । अतः तुम मेरी अवज्ञा करके इस मन्दर पर्वत पर कैसे रह रहे हो ? (४४)

यदि यह शैलेन्द्र तुम्हें प्रिय है तो मेरे कथन के

येयं हि भवतः पत्नी सा मे शीघ्रं प्रदीयताम् ॥ ४५
 इत्युक्तः स तदा तेन शम्बररो मन्दरं द्रुत्वम् ।
 जगाम तत्र यत्रास्ते सह देव्या पिनाकधृक् ॥ ४६
 गत्वोवाचान्धकरचो याथातथ्यं दनोः सुतः ।
 तमुच्चरं हरः प्राह मृप्यत्या गिरिकन्धया ॥ ४७
 ममायं मन्दरो दत्तः सहस्राक्षेण धीमता ।
 तत्र शक्नोम्यहं त्यक्तुं विनाज्ञां घृत्रवैरिणः ॥ ४८
 यथाश्रधीद् दीयतां मे गिरिपुत्रीति दानवः ।
 तदेया यातु स्वं कामं नाहं धारयितुं क्षमः ॥ ४९
 ततोऽग्रवीत् गिरिसुता शम्बरं मुनिसत्तम ।
 ब्रूहि गत्वान्धकं वीर मम वाक्यं विपश्चितम् ॥ ५०
 अहं पताका सप्रामे भवानीशश्च देविनौ ।
 प्राणघृतं परिस्तीर्य यो जेष्यति स लप्स्यते ॥ ५१
 इत्येवमुक्त्वा मतिमान् शम्बररोऽन्धकमागमत् ।
 समागम्यात्रवीद् वाक्यं शर्वगैश्वोक्ष भाषितम् ॥ ५२

अनुसार कार्य करो । तुम्हारी जो यह पत्नी है उसे सुते शीघ्र दे दो । (४५)

उसने ऐसा कहने पर शम्बर शीघ्रता पूर्वक उस मन्दर पर्वत पर गया जहाँ पिनाकपाणि शंकर देवी के साथ निवास करते थे । (४६)

दनुपुत्र ने वहाँ जाकर यथावत् अन्धक का वचन कहा । शंकर ने पर्वतनग्दिनी के सुनते हुए उसे उत्तर दिया । (४७)

बुद्धिमान् इन्द्र ने सुते यह मन्दर पर्वत दिया है । अतः घृत्रासुर वैरी इन्द्र को आज्ञा विना मैं इसे नहीं छोड़ सकता । (४८)

दानव ने जो यह कहा कि गिरिनग्दिनी को सुते दे दो, तो ये अपनी इच्छा से जा सकती हैं । मैं इन्हें नहीं रोक सकता । (४९)

हे मुनिसत्तम ! तदनन्तर गिरिसुता पार्वती ने शम्बर से कहा—हे वीर ! तुम जानकर बुद्धिमान् अन्धक से मेरी बात कहो— (५०)

सप्राम मे मैं पताना हूँ । आप और शंकर खेलने वाले हैं । प्राणों का घृत कैलाकर जो जीतेगा वह सुते प्राप्त करेगा । (५१)

ऐसा कहने पर बुद्धिमान् शम्बर अन्धक के

तच्छ्रुत्वा दानवपतिः क्रोधदीप्तेक्षणः श्वसन् ।
समाह्वयान्नवीद् वाक्यं दुर्योधनमिदं वचः ॥ ५३
गच्छ शीघ्रं महानाहो मेरीं साक्षाद्दृष्ट्वा दृढाम् ।
ताडयस्व सुनिश्चय्य दुःशीलामिन योषितम् ॥ ५४
समादिष्टोऽन्धकेनाथ मेरीं दुर्योधनो वलात् ।
ताडयामास वेगेन यथाप्राणेन मुयसा ॥ ५५
सा ताडिता वलरता मेरी दुर्योधनेन हि ।
सत्वरं भैरवं रावं रुराव सुरभी यथा ॥ ५६
तस्यास्तं स्मरमाकर्ण्य सर्व एव महासुराः ।
समायाताः सर्वां तूर्णं किमेतदिति वादिनः ॥ ५७
याथातथ्यं च तान् सर्वानाह सेनापतिर्वली ।
ते चापि वलिना श्रेष्ठाः सन्नद्धा युद्धकाङ्क्षिणः ॥ ५८
सहान्वका निर्ययुस्ते गजैस्त्रैर्हयै रथैः ।
अन्धको रथमास्थाय पञ्चनलवप्रमाणतः ॥ ५९

इति श्रीरामनपुराणे चत्वारिंशोऽध्याय ॥ ४० ॥

सभीप गया एव शङ्कर तथा गौरी की कही हुई बात को
उससे कहा । (५२)

वसे सुनकर दानवपति के नेत्र क्रोध से दीप्त हो
गये । दीर्घ श्वास लेते हुए दुर्योधन को बुलाकर उसने
कहा— (५३)

हे महाबाहु ! शीघ्र जाओ एव दुश्चरित्रा स्त्री के
सदृश दृढ़ सप्राप्तिकी भेरी को भली भाँति चलाओ । (५४)

तदनन्तर अन्धक से आदेश प्राप्त कर दुर्योधन
अत्यन्त बल, प्राण एव वेग पूर्वक भेरी को बजाने
लगा । (५५)

बलवान् दुर्योधन द्वारा ताडित भेरी सुरभी के
शब्द सदृश शीघ्र भयङ्कर शब्द करने लगी । (५६)

उसके उस श्वर को सुनकर सभी महान असुर
'यह क्या है ?' ऐसा कहते हुए शीघ्रता से सभा में आ
गये । (५७)

बलवान् सेनापति ने उन सभी से यथार्थ तथ्य
कहा । बलवानों में श्रेष्ठ वे सभी युद्ध की आकांक्षा से

अत्यन्तं स पराजेतुं कृतमुद्धिर्निर्ययौ ।
जम्भः कुजम्भो हुण्डश्च तुहुण्डः शम्भरो वलिः ॥ ६०
बाणः कार्तस्वरो हस्ती सूर्यशत्रुर्महोदरः ।
अयःशंकुः शिनिः शाल्यो वृषपर्वा विरोचनः ॥ ६१
हयप्रीवः कालनेमिः संह्रादः कालनाशनः ।
शरभः शलभश्चैव विप्रचिचिथ वीर्यवान् ॥ ६२
दुर्योधनश्च पाकथ विपाकः कालशम्भरौ ।
एते चान्ये च बहवो महावीर्या महानलाः ।
प्रजगमृस्तसुका योद्धुं नानापुषधरा रणे ॥ ६३
इत्वं दुरात्मा दनुर्मन्यपाल-
स्तदान्धको योद्धुमना हरेण ।
महाचलं मन्दरमभ्युपेयिवान्
स कालपाशावसितो हि मन्दधीः ॥ ६४

तैयार हो गये । (५८)

हाथी, ऊँट, घोड़ों और रथों सहित वे सभी अन्धक
के साथ बाहर निकले । पाँच नलव—अर्थात् ४०० हाथके
प्रमाण वाले रथ पर आरूढ होकर अन्धक
त्रिलोचन शंकर को जीतने का निश्चय कर बाहर
निकला । जम्भ, कुजम्भ, हुण्ड, तुहुण्ड, शम्भर, वलि, बाण,
कार्तस्वर, हस्ती, सूर्यशत्रु, महोदर अय शत्रु, शिनि,
शाल्य, वृषपर्वा, विरोचन, हयप्रीव, कालनेमि, संह्राद,
कालनाशन, शरभ, शलभ, वीर्यवान् विप्रचित्ति, दुर्योधन,
पाक, विपाक, काल एव शम्भर—ये सभी तथा अन्य अनेक
महावीर्यशाली तथा महाबलवान् राक्षस नाना प्रकार के
आयुधों की धारणकर उत्सुकता पूर्वक सभाम में
लड़ने के लिए चल पड़े । (५९-६३)

इस प्रकार कालपाश से आवद्ध वह मन्दबुद्धि दनु
सैन्यपति दुरात्मा अन्धक शङ्कर से युद्ध करने के बिना
से महापर्वत मन्दर पर गया । (६४)

श्रीरामनपुराण में बालीसर्वो अध्याय समाप्त ॥४०॥

पुलस्त्य उवाच ।

हरोऽपि शम्भरे याते समाह्वयाथ नन्दिनम् ।
प्राहामन्त्रय शैलादे ये स्थितास्तव शासने ॥ १
ततो महेश्वचनान् नन्दी तूर्णवर्णं गतः ।
उपस्पृश्य जलं श्रीमान् सस्मार गणनायकान् ॥ २
नन्दिना संस्मृताः सर्वे गणनायाः सहस्रशः ।
सष्टत्पत्य त्वरायुक्ताः प्रणवास्त्रिदशेश्वरम् ॥ ३
आगतांश्च गणान् नन्दी कृताञ्जलिपुटोऽन्ययः ।
सर्वान् निवेदयामास शंकराय महात्मने ॥ ४

नन्द्युवाच ।

यानेतान् पश्यसे शभो त्रिनेत्राञ्जलिपुत्रोऽन्ययः ।
एते रुद्रा इति ख्याताः कोट्य एकादशैव तु ॥ ५
यानरास्थान् पश्यसे यान् शार्दूलसमविक्रमान् ।
एतेषां द्वारपालास्ते मन्नामानो यथोधनाः ॥ ६

४१

पुलस्त्य ने कहा—शम्भर के चले जाने पर शङ्कर ने भी नन्दी को बुलाकर कहा—हे नन्दी ! तुम्हारे शासन में जो रहते हैं उन्हें बुलाओ ।

(१) तदनन्तर महेश के कहने से नन्दी अतिशीघ्र गए और जल का आचमन कर गणनायकों का स्मरण किया ।

(२) नन्दी से स्मरण किंचे गए सभी गणनाथ सहस्रों की सख्या में शीघ्रता पूर्वक आकर त्रिदशेश्वर शंकर को प्रणाम किये ।

(३) हाथ जोड़कर अविनाशी नन्दी ने सभी आये हुए गणों को महारामा शङ्कर से निवेदित किया ।

(४) नन्दी ने कहा—हे शम्भो ! तीन नेत्रों वाले, जटा धारी एवं पवित्र जिन गणों को आप देख रहे हैं उन्हें रुद्र कहते हैं । इनकी सख्या ग्यारह कोटि है ।

(५) यानर सहस्र मुख एवं सिंह गुल्य विक्रम सम्पन्न जिन्हें आप देख रहे हैं वे मेरा नाम धारण करने वाले यशस्वी इनके द्वारपाल हैं ।

(६) हाथ में शक्ति लिपि, मयूरप्वज वाले जिन छ मुख वाले

पण्डितान् पश्यसे यांश्च शक्तिपाणीन्श्चिखिष्वजान् ।
पद् च पटिशतया कोट्यः स्कन्दनाम्नः कुमारकान् ॥ ७
एतावत्यस्तया कोट्यः शाखा नाम पठाननाः ।
विशाखास्तावदेवोक्ता नैगमेयाश्च शंकर ॥ ८
सप्तकोटिशतं शंभो अमी वै प्रमथोत्तमाः ।
एकैरुं प्रति देवेश तारत्यो ह्यपि मातरः ॥ ९
भस्मारुणितदेहाश्च त्रिनेत्राः शूलपाणयः ।
एते शैवा इति प्रोक्ताम्वन भक्ता गणेश्वराः ॥ १०
तथा पाशुपताश्चान्ये भस्मप्रहरणा रिभो ।
एते गणास्त्वसंख्याताः सहायार्थं समागताः ॥ ११
पिनाकधारिणो रौद्रा गणाः कालमुख्यापरे ।
तत्र भक्ताः समायाता जटामण्डलिनोद्भवाः ॥ १२
खट्वाङ्गयोधिनी वीरा रक्तचर्मसमावृताः ।
इमे प्राप्ता गणा योद्गुं महाव्रतिन उच्यताः ॥ १३

को आप देख रहे हैं वे स्कन्द नामक कुमार हैं । इनकी सख्या छासठ करोड़ है ।

(७) हे शङ्कर ! इतने ही पण्डितधारी शाख नामक गण हैं एवं उतने ही विशाल और नैगमेय नामक गण हैं ।

(८) हे शम्भो ! इन उत्तम प्रमथों की सख्या सात सौ करोड़ है । हे देवेश ! प्रत्येक के साथ उतनी ही मातृकाएँ भी हैं ।

(९) इन भस्म भूषित देहवाले शूलपाणि त्रिनेत्रधारियों को शैव कहा जाता है । ये सभी गणेश्वर आपके भक्त हैं ।

(१०) हे विभो ! भस्माध्वारी अन्य असंख्य पाशुपत गण सहायार्थं आये हैं ।

(११) पिनाकधारी, जटामण्डल युक्त, भयङ्कर कालमुख नामक आपके अन्य गण आये हैं ।

(१२) खट्वाङ्ग से युद्ध करने वाले, लाल ढाल से युक्त महाव्रती नामक ये उत्तम गण युद्ध करने आये हैं ।

दिग्वासतो मौनिनश्च घण्टाप्रहरणास्तथा ।
 निराश्रया नाम गणाः समायाता जगद्गुरो ॥ १४
 सार्धद्विनेत्राः पद्माक्षाः श्रीवत्साङ्गितवक्षसः ।
 समायाताः रमास्त्रुटा वृषभध्वजिनोऽप्ययाः ॥ १५
 महापाशुपता नाम चक्रशूलधरास्तथा ।
 भैरवो विष्णुना सार्द्धमभेदेनाचिंतो हि यैः ॥ १६
 इमे मृगेन्द्रवदनाः शूलनाथघनुर्धराः ।
 गणास्त्वद्रोमसंभूता वीरभद्रपुरोगमाः ॥ १७
 एते चान्ये च बहवः शतशोऽप्य सहस्रशः ।
 महायार्थं तवायाता यथाप्रीत्यादिशस्व तान् ॥ १८
 ततोऽभ्येत्य गणाः सर्वे प्रणेष्टुर्दृपभध्वजम् ।
 तान् करैर्णव भगवान् समाश्वास्योपवेशयत् ॥ १९
 महापाशुपतान् दृष्ट्वा सष्टृथाय महेश्वरः ।
 संपरिष्वजताभ्यक्षंस्ते प्रणेष्टुर्महेश्वरम् ॥ २०
 ततस्तद्भ्रुततमं दृष्ट्वा सर्वे गणेश्वराः

हे जगद्गुरु! दिगम्बर, मौनी, एव घण्टायुधधारी
 निराश्रय नामक गण आये हैं। (१४)
 तीन नेत्रों वाले, पद्माक्ष एव श्रोत्रस से अंकित
 वक्षस्थल वाले रमास्त्रुट तथा अविनाशी वृषभध्वजी गण यहाँ
 आये हैं। (१५)
 चक्र तथा शूलधारी महापाशुपत नामक गण आये हैं,
 जिन्होंने अभेद भाव से विष्णु के साथ भैरव की पूजा
 की है। (१६)
 आपके रोमों से उत्पन्न ये सभी सिंह के मुँह वाले शूल,
 बाण और घनुषधारी वीरभद्र आदि गण आये हैं। (१७)
 ये तथा अन्य अनेक सैकड़ों एव सहस्रों गण भी
 आपकी सहायता हेतु आये हैं। अपनी रुचि के अनुसार
 आप इन्हें आदेश दें। (१८)
 तदनन्तर सभी गणों ने निरुद्ध जाकर वृषभध्वज को
 प्रणाम किया। भगवान् ने हाथ से ही उन्हें समाश्रित
 कर बैठाया। (१९)
 महापाशुपत नामक अपने अप्सुक्षों को देखने के
 उपरान्त महेश्वर ने उठकर उनका आलिङ्गन किया। उन
 लोगों ने महेश्वर को प्रणाम किया। (२०)
 तदनन्तर उस अत्यन्त अद्भुत दृश्य को देखकर सभी
 गणेश्वरों के नेत्र विस्मयान्वित हो गये। तदनन्तर वे सभी

सुचिरं विस्मिताश्च वैलक्ष्यमगमत् परम् ॥ २१
 विस्मिताश्चान् गणान् दृष्ट्वा शैलादियोगिनां वरः ।
 प्राह प्रहस्य देवेशं शूलपाणिं गणाधिपम् ॥ २२
 विस्मितामी गणा देव सर्व एव महेश्वर ।
 महापाशुपतानां हि यत् त्वयालिङ्गनं कृतम् ॥ २३
 तदेतेषा महादेव स्फुट त्रैलोक्यविन्दकम् ।
 रूपं ज्ञानं विवेकं च वदस्व स्वेच्छया विभो ॥ २४
 प्रमथाधिपतेर्वाक्यं निन्दित्वा भूतभावनः ।
 वभाषे तान् गणान् सर्वान् भावाभावविचारिणः ॥ २५
 रुद्र उवाच ।
 भवद्भिर्भक्तिसंयुक्तैर्हीरो भावेन पूजितः ।
 अहंकारविमूर्द्धश्च निन्दद्भिर्वैष्णव पदम् ॥ २६
 तेनाज्ञानेन भवतोनादृश्यानुनिरोधिताः ।
 योऽहं स भगवान् विष्णुर्निष्णुयः सोऽहमव्ययः ॥ २७
 नावयोर्धै विशेषोऽस्ति एका मूर्तिर्द्विधा स्थिता ।

अत्यन्त लज्जित हो गये। (२१)
 गणों को भिरमितनेत्र वाला देखकर योगिष्ठेय शैलादि
 नन्दी ने हैंस कर गणाधिप देवेश शूलपाणि से
 कहा। (२२)
 हे देव महेश्वर! महापाशुपतों का आपने जो आलिङ्गन
 किया है उससे ये सभी गण विस्मयान्वित हो
 गये हैं। (२३)
 अत हे महादेव! हे विभो! इनके त्रैलोक्य विद्युत
 रूप, ज्ञान एव विवेक का अपनी इच्छानुसार वर्णन
 करें। (२४)
 प्रमथाधिपति नन्दी की बात सुनकर भूतभावन महादेव
 भाव और अमात्र का विचार करने वाले उन गणों से
 कहने लगे। (२५)
 रुद्र ने कहा-अहंकार से विमूढ़ तथा भक्ति युक्त आप लोगों
 ने वैष्णव पद की निन्दा करते हुए भाव पूर्वक हर की पूजा
 की है। (२६)
 इसी अज्ञान के कारण आप सभी का अनादर कर
 उनका विशेष अनुरोध किया गया। जो मैं हूँ वही भगवान्
 विष्णु है एव जो विष्णु हैं वही अविनाशी मैं हूँ। (२७)
 हम दोनों में कोई भेद नहीं है। एक ही मूर्ति दो रूपों
 में अवस्थित है। अत भक्ति भाव से युक्त इन पुरुषार्थ

तद्भीभिर्नरव्याघ्रैर्भक्तिभावयुतैर्गणैः ॥ २८
 यथाहं वै परिज्ञातो न भयङ्गिस्तथा ध्रुवम् ।
 येनाहं निन्दितो नित्यं भवद्भिर्मूढबुद्धिभिः ॥ २९
 तेन ज्ञानं हि वै नष्टं नातस्त्यालिङ्गिता मया ।
 इत्येवमुक्ते वचने गणाः प्रोचुर्महेश्वरम् ॥ ३०
 कथं भवान् यथैक्येन संस्थितोऽस्ति जनार्दनः ।
 भवान् हि निर्मलः शुद्धः शान्तः शुक्लो निरञ्जनः ॥ ३१
 स चाप्यञ्जनसंकाशः कथं तेनेह युज्यते ।
 तेपा वचनमर्थात्वं श्रुत्वा जीमूतयाहनः ॥ ३२
 विहस्य मेघगम्भीर गणानिदमुवाच ह ।
 श्रुत्वा सर्वमार्यास्ये स्वयशोमर्दनं वचः ॥ ३३
 न त्वेव योग्या वृष्यं हि महाज्ञानस्य कर्हिचिद् ।
 अपवादभयाद् गुह्यं भवतां हि प्रकाशये ॥ ३४
 प्रियञ्जमपि चैतेन यन्मच्चिचास्तु नित्यशः ।
 एकरूपात्मकं देहं कुरुष्वं यत्नमास्थिताः ॥ ३५
 पयसा हविषाचैथ स्नपनेन प्रयत्नतः ।

गणों ने जैसा मुझे जाना है निश्चय ही आप लोग इस प्रकार मुझे नहीं जानते । मूढ बुद्धि वाले आप लोगों ने यत नित्य मेरी निन्दा की है अतः आप लोगों का ज्ञान नष्ट हो गया । इसीलिये मैंने आप लोगों का आलिङ्गन नहीं किया है । ऐसा कहने पर गणों ने महेश्वर से कहा—

(२८-३०)

आप एव जनार्दन ऐक्य भाव से कैसे रहते हैं ? आप निर्मल, शुद्ध, शान्त, शुक्ल एव निरञ्जन हैं । किन्तु वे अञ्जन तुल्य हैं अतः उनसे अपना योग कैसे होता है ? उनके अर्थ पूरा वचन को सुनने के उपरान्त जीमूत याहन शस्त्र ने हँस कर कहा—अपना यश बटाने वाली सम्पूर्ण वात मैं बतलाता हूँ । उसे सुनो । (३१-३३)

तुम लोग कदापि महाज्ञान के योग्य नहीं हो । पर अपवाद के भय से मैं आप सभी के सम्मुख गुह्य वचन प्रकाशित करता हूँ । (३४)

मुझसे नित्य आसक्तचित्त होने से भी अन्य लोग प्रिय हैं । जिसके भक्त हो उसके साथ एक त्पात्मक अपना सम्बन्ध बनाओ । (३५)

प्रत्यपूर्वक दुग्ध या घृत से स्नान करने एव पद्मपत्रपूर्वक चन्दनादि द्वारा लेप करने से मुझे प्रीति नहीं

चन्दनादिभिरेकाग्रैर्न मे प्रीतिः प्रजायते ॥ ३६
 यत्नात् क्रकचमादाय छिन्दध्वं मम विग्रहम् ।
 नरकाहां भवद्भक्ता रक्षामि स्वयशोऽर्षतः ॥ ३७
 माऽयं वदिष्यते लोको महान्तमपवादिनम् ।
 यथा पतन्ति नरके हरभक्तास्तपस्विनः ॥ ३८
 व्रजन्ति नरकं घोरं इत्येवं परिवदिनः ।
 अतोऽर्थं न क्षिपाम्यद्य भवतो नरकेऽद्भुते ॥ ३९
 यन्निन्दध्वं जगन्नाथं पुष्कराक्षं च मन्मथम् ।
 स चैव भगवाञ्शर्वः सर्वव्यापी गणेश्वरः ॥ ४०
 न तस्य सदृशो लोके विद्यते सचराचरे ।
 श्वेतमूर्तिः स भगवान् पीतो रक्तोऽञ्जनप्रभः ॥ ४१
 तस्मात् परतरं लोके नान्यद् धर्मं हि विद्यते ।
 सात्त्विक राजसं चैव तामसं मिश्रक तथा ।
 स एव धचे भगवान् सर्वपूज्यः सदाशिवः ॥ ४२
 शंकरस्य वचः श्रुत्वा शैवाद्याः प्रमथोत्तमाः ।
 प्रत्युचुर्भगवन् ब्रूहि सदाशिवविशेषणम् ॥ ४३

उत्पन्न होती । (३६)

आरा लेकर मेरे शरीर का छेदन कर डालो । किन्तु अपने यश के लिए नरक के योग्य आप भक्तों की मैं रक्षा करता हूँ । (३७)

(क्योंकि) यह लोक मुझे इस प्रकार का महान् अपवाद न लगावे कि तपस्वी शङ्कर के भक्त नरक में जाते हैं । (३८)

इस प्रकार का परिवाद करने वाले लोग घोर नरक में जाते हैं । इसीलिए आप लोगों को मैं अद्भुत नरक में नहीं डालता । (३९)

आप लोग मत्स्वरूप जिन पुष्कराक्ष जगन्नाथ की निन्दा करते हैं वे ही सर्वव्यापी गणेश्वर भगवान् शर्व हैं । (४०)

इस चराचर लोक में उनके सदृश कोई नहीं है । वे भगवान् श्वेतमूर्ति, पीत, रक्त एव अञ्जन के समान प्रभा वाले हैं । (४१)

लोक में उनसे श्रेष्ठ कोई अन्यधर्म नहीं है । वे सर्वपूज्य सदाशिव भगवान् ही समस्त सात्त्विक, राजस, तामस एव मिश्रित भावों को धारण करते हैं । (४२)

शङ्कर का वचन सुनकर शैव आदि श्रेष्ठ गणों ने कहा— हे भगवान् ! सदा शिव के विशेषण कदिये । (४३)

तेषां तद् भाषितं श्रुत्वा प्रमथानामधेश्वरः ।
 दर्शयामास तद्रूपं सदाशैवं निरञ्जनम् ॥ ४४
 सतः पश्यन्ति हि गणाः तमोशं वै सहस्रशः ।
 सहस्रपञ्चचरणं सहस्रसुजमीश्वरम् ॥ ४५
 दण्डपाणिं सुदुर्दृश्यं लोकैर्व्याप्तं समन्ततः ।
 दण्डसंस्थाऽस्य दृश्यन्ते देवप्रहरणास्तथा ॥ ४६
 तत एकमुद्यं भूयो दृष्टुः शंकरं गणाः ।
 रौद्रैश्च वैष्णवैश्चैव घृतं चिह्नैः सहस्रशः ॥ ४७
 अङ्गेन वैष्णववपुरङ्गेन हरविग्रहः ।
 रागपञ्चजं वृषारूढं रागारूढं वृषपञ्चजम् ॥ ४८
 यथा यथा त्रिनयनो रूपं घञ्चे गुणाग्रणीः ।
 तथा तथा स्वजायन्त महापाशुपता गणाः ॥ ४९
 ततोऽभवच्चैकरूपी शंकरो बहुरूपवान् ।
 द्विरूपधामभवद् योगी एकरूपोऽप्यरूपवान् ।
 क्षणाच्छ्रुतः क्षणाद् रक्तः पीतो नीलः क्षणादपि ॥ ५०
 मिश्रतो वर्णहीनश्च महापाशुपतस्तथा ।

क्षणाद् भवति रुद्रेन्द्रः क्षणाच्छंभुः प्रभाकरः ॥ ५१
 क्षणाद्धाच्छंकरो विष्णुः क्षणाच्छर्वः पितामहः ।
 ततस्तद्दृष्टतमं दृष्ट्वा शैवाद्यो गणाः ॥ ५२
 अज्ञानन्त तर्दक्येन ब्रह्मविष्णुश्रीशमास्करान् ।
 यदाऽभिन्नममन्यन्त देवदेवं सदाशिवम् ॥ ५३
 तदा निर्धूतपापास्ते समजायन्त पार्षदाः ।
 तेष्वेवं धूतपापेषु अभिन्नेषु हरीश्वरः ॥ ५४
 प्रीतात्मा विषमौ शंभुः प्रीतियुक्तोऽब्रवीद् वचः ।
 परितुष्टोऽस्मि वः सर्वे ज्ञानेनानेन सुप्रताः ॥ ५५
 वृणुष्वं वरमानन्त्यं दास्ये वो मनसेप्सितम् ।
 ऊचुस्ते देहि भगवन् वरमस्माकमीश्वर ।
 मिन्नदृष्ट्श्चूडवं पापं यत्तद् अंशं प्रयातु नः ॥ ५६
 पुलस्त्य उवाच ।
 यादमित्यब्रवीच्छर्वथक्रो निर्धूतकल्मषान् ।
 संपरिष्पन्नताव्यक्ततरान् सत्तान् गणयूथपान् ॥ ५७
 इति त्रिसुना प्रणतार्तिहरेण

प्रमथेश्वर ने उनके इस वचन को सुनकर उन्हें निरञ्जन सदाशिव रूप को दिखलाया ।

तदनन्तर सहस्रों गणों ने उन ईश्वर को सहस्र मुख, चरण एवं भुजाओं वाला देखा ।

वे छोरों से सदैवः व्याप्त, दण्डपाणि एवं सुदुर्दृश्य थे । उनके दण्ड में देवताओं के अस्त्र दिखलाई पड़ रहे थे ।

तदनन्तर गणों ने रुद्र एवं विष्णु के सहस्रों चिह्नों से कुछ एकमुख शंकर को देखा ।

उत्त रूप का अर्द्धांश हरशरीर था और अर्द्ध भाग रागपञ्च था । एक अर्द्धांश रागपञ्च वृषारूढ था एवं अन्य अर्द्धांश वृषपञ्च रागारूढ था ।

गुणाग्रणी त्रिशोचन ने जैसा-जैसा रूप धारण किया महापाशुपतमग्न करी प्रकार के होते गये ।

तदनन्तर प्यरूपी शङ्कर बहुरूपवान् हो गये । वे योगी द्विरूपधारी, एकरूपी एवं अमरुपवान् भी हो गये । वे प्रतिक्षण श्वेत, रक्त, पीत, नील मिश्र वर्ण एवं वर्णहीन होते गए । महापाशुपती का भी स्वरूप तदनु रूप होगा गया ।

श्री शङ्कर किसी क्षण में रुद्र, किसी क्षण में प्रभाकर, किसी क्षण में विष्णु एवं किसी क्षण में पितामह के रूप में परिवर्तित होने गये । यह अद्भुततम दृश्य देखकर शैवादि गणों ने प्रता, विष्णु, ईश एवं भास्कर को एक भाव से कुछ समझा । उन लोगों ने जब देवाधिदेव सदाशिव को अभिन्न मान लिया तो वे सभी पार्षद पापरहित हो गये । इस प्रकार अवेद-मुक्ति के कारण उनके पापविमुक्त होने ने हरीश्वर शम्भु प्रसन्न हो गये । उन्होंने प्रीतिकर्षक कहा—हे मुझने ! तुम्हारे इस प्रकार के ज्ञान से मैं प्रसन्न हूँ ।

अब अनन्त पर माँगो ! मैं तुम्हें मनोवांछित कर दूँगा । उन्होंने कहा—हे भगवान् ! हे मठेश्वर ! हमें यह पर दें कि भेददृष्टि के कारण कल्पित हमारे पाप नष्ट हो जायें ।

पुलस्त्य ने कहा—शङ्कर ने कहा 'दिमा ही होगा' । तदनन्तर अल्पक शङ्कर ने उन सभी गाथापियों का आलिङ्गन कर उन्हें पापरहित कर दिया ।

तदनन्तर भूति की रक्ति का जेने अनुगमन होगा है सभी प्रकार वृष एवं मेघरहन प्रणकारिहारी शङ्कर के साथ

गणपतयो वृषभेश्वरधेन ।
 श्रुतिगदितानुगमेनेव मन्दरं
 गिरिमवतत्य समध्यवसन्तम् ॥ ५८
 आञ्छादितो गिरिवरः प्रमथैर्षनाभै-

राभाति शुक्लतनुरीश्वरपादजुष्टः ।
 नीलाजिनातवतनुः शरदभ्रवर्णो
 यद्भद्र विभाति बलवान् वृषभो हरस्य ॥ ५९

इति श्रीवामनपुराणे एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

४२

पुलस्त्य उवाच ।

एतस्मिन्नन्तरे प्रापः सगं दैत्यैस्तथाऽन्धकः ।
 मन्दरं पर्वतश्रेष्ठं प्रमथाश्रितकन्दरम् ॥ १
 प्रमथा दानवान् दृष्ट्वा चक्रुः किलकिलाध्वनिम् ।
 प्रमथाश्चापि संरब्धा जघ्नुस्तूर्पाण्यनेकशः ॥ २
 स चावृणोन्महानादो रोदसी प्रलयोपमः ।
 शुश्राव वायुमार्गस्थो विघ्नराजो विनायकः ॥ ३

सभी गणपति मन्दरपर्वत को चतुर्दिक् आवृत कर रहने लगे ।

मेवाभ प्रमथों से आच्छादित शङ्करपादसेवी शुक्ल शरीर गिरिवर इस प्रकार सुशोभित हो रहा था जैसे नील

समभ्ययात् सुसंक्रुद्धः प्रमथैर्भिसंवृतः ।
 मन्दरं पर्वतश्रेष्ठं दृष्टो पितरं तथा ॥ ४
 प्राणिपत्य तथा भक्त्या वाक्यमाह महेश्वरम् ।
 किं तिष्ठसि जगन्नाथ सद्यस्तिष्ठ रणोत्सुकः ॥ ५
 ततो विघ्नेश्वरचनाजगन्नाथोऽम्बिकां वचः ।
 प्राह यास्येऽन्धकं हन्तुं स्थेयमेवाप्रमत्तया ॥ ६
 ततो गिरिसुता देवं समालिङ्ग्य पुनः पुनः ।

शृगर्भ से आच्छादित शरीरवाला एवं शरदभ्रवर्ण भेष के वर्णवाला शङ्कर का बलवान् वृषभ सुशोभित होता है ।

श्रीवामनपुराणे में इकतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४१॥

४२

पुलस्त्य ने कहा—इसी बीच अन्धक दैत्यों के साथ प्रमथों से सेवित कन्दराओं वाले पर्वतश्रेष्ठ मन्दर पर आया ।

दानवों को देखकर प्रमथों ने किलकिला ध्वनि की एक उत्तेजनापूर्वक अनेक तूर्य बजाने लगे ।

उस प्रलय-तुर्य तुमुलध्वनि ने आकाश और पृथ्वी के अन्तराल को आवृत कर लिया । वायुमार्गस्थ विघ्नराज विनायक ने उस शब्द को सुना ।

प्रमथों से आवृत अत्यन्त क्रुद्ध वे पर्वत श्रेष्ठ

मन्दर पर गये एवं अपने पिता को देखा ।

भक्तिपूर्वक प्रणामकर उन्होंने महेश्वर से कहा—हे जगन्नाथ ! आप बैठे क्यों हैं ? रण के लिए उत्सुक होकर आप क्यों हैं ।

विघ्नेश्वर गणेश के कहने पर जगन्नाथ महादेव ने अम्बिका से कहा—मैं अन्धक को मारने के लिए जाऊँगा, तुम सावधानी से रहना ।

तद्दुपरान्त गिरिनन्दिनी ने महादेव को धार-धार आलिङ्गन कर एवं सप्रेम दृष्टि से उन्हें देखकर कहा—

समीक्ष्य सस्नेहहरं प्राह गच्छ जयान्वकम् ॥ ७
 ततोऽमरगुरोर्गौरी चन्दनं रोचनाञ्जनम् ।
 प्रतिबन्ध सुसंग्रीता पादावेवाम्बवन्दत ॥ ८
 ततो हरः प्राह वचो यशस्यं मालिनीमपि ।
 जयां च विजयां चैव जयन्तीं चापराजिताम् ॥ ९
 शुभामिरप्रमत्ताभिः श्रेयं गोहे सुरक्षिते ।
 रक्षणया प्रयत्नेन गिरिपुत्री प्रमादतः ॥ १०
 इति संदिश्य ताः सर्वाः समाह्वयं वृषं विष्टुः ।
 निर्जगाम गृहात् तुष्टो जयेभ्युः शूलशृगु वली ॥ ११
 निर्गच्छतस्तु भवनादीधरस्य गणाधिपाः ।
 समंतात् परिवार्यैव जयशब्दांश्च चक्रिरे ॥ १२
 रणाय निर्गच्छति लोकपाले
 महेश्वरे शूलधरे महर्षे ।
 शुभानि सौम्यानि सुमङ्गलानि
 जातानि चिह्नानि जयाय शंभोः ॥ १३
 शिवा स्थिता यामतरेऽथ भागे
 प्रयाति चाग्रे रवनघ्नदन्ती ।

जाइए एव अन्धक पर विजय प्राप्त कीजिए । (७)
 तदनन्तर गौरी ने देवश्रेष्ठ शङ्कर को चन्दन, रोचना एवं
 अञ्जन लगाया एव अति प्रीतिपूर्वक उनके चरणों की बन्दना
 की । (८)
 तदनन्तर महादेव ने मालिनी, जया, विजया, जयन्ती
 और अपराजिता से यह यशस्वर वचन कहा— (९)
 तुम लोग सुरक्षित गृह में सावधानी से रहना एवं
 प्रयत्नपूर्वक गिरिपुत्री की प्रमाद करने से रक्षा करना । (१०)
 उन सभी को ऐसा निर्देश देने के उपरान्त वृष पर
 आरुढ़ होकर शूलधारी बलवान् शङ्कर जय की आवांश से
 प्रसन्नतापूर्वक पर से निकले । (११)
 गृह से निरल रहे शङ्कर को चारों ओर से आटूट कर
 गणाधिपों ने “जय जयगार” किया । (१२)
 हे महर्षि ! लोकपाल शूलधारी महेश्वर के
 शुद्धार्थे निकलने पर उनकी जय के लिये शुभ, सौम्य और
 मङ्गलजनक चिह्न प्रकट हुए । (१३)
 उनके याम भाग में शृगालिनी स्थित थी एवं रर
 करती हुई आगे जा रही थी । मांस-लोभी प्राणो

क्रव्यादसंघाद्य तथाभिर्पैपिणः
 प्रयान्ति हृष्टास्तृपितासुगर्भे ॥ १४
 दक्षिणाङ्गं नखान्तं वै समकम्पत शूलिनः ।
 शकुनिश्चापि हारीतो मौनी याति पराडसुखः ॥ १५
 निमित्तानोदशान् दृष्ट्वा भूतभयभयो विष्टुः ।
 शैलादिं प्राह वचनं सस्मितं शशिशेखरः ॥ १६
 हर उवाच ।
 नन्दिन् जयोऽय मे भावी न कथंचित् पराजयः ।
 निमित्तानोह दृश्यन्ते संभूतानि गणेश्वर ॥ १७
 तच्छंभुवचनं ध्रुत्वा शैलादिः प्राह शंकरम् ।
 कः संदेहो महादेव यत् त्व जयसि शश्रवात् ॥ १८
 इत्येवमुक्त्वा वचनं नन्दी रुद्रगणांस्तथा ।
 समादिदेश युद्धाय महापाशुपतैः सह ॥ १९
 तेऽभ्येत्य दानवबलं मर्दयन्ति स्म वेगिताः ।
 नानाद्यस्त्रधरा वीरा वृक्षानशनयो यथा ॥ २०
 ते वध्यमाना बलिभिः प्रमथैर्दैन्यदानवाः ।
 प्रवृत्ताः प्रमथान् हन्तुं कूटमुद्गरपाणयः ॥ २१

प्रसन्नतापूर्वक हृषिके के लिये जा रहे थे । (१४)
 शूलपाणि का दाहिना अंग नख तक सँप उठा ।
 हारीत पक्षी चुपचाप पीठे की ओर जा रहा था । (१५)
 भूत, भविष्य एवं वर्चमानवरूप शशिशेखर विष्टु
 महादेव ने इस प्रकार के निमित्तों को देखकर शैलादि नन्दी से
 हास्ययुक्त वचन कहा । (१६)
 शङ्कर ने कहा—हे नन्दी ! हे गणेश्वर ! यहाँ शुभ निमित्त
 दृष्टिगोचर हो रहे हैं । अब आज मेरी विजय होगी ।
 किसी भी प्रसार पराजय नहीं हो सकती । (१७)
 शम्भु के उस वचन को सुनकर शैलादि ने शङ्कर से
 कहा हे महादेव आप शत्रुओं को जीतेंगे इसमें सन्देह
 क्या है ? (१८)
 ऐसा बहकर नन्दी ने महापाशुपत सहित रुद्रगणों
 को युद्ध के लिए आदेश दिया । (१९)
 नाना प्रसार के शत्रुओं को धारण करने वाले वे वीर
 दानवनेत्र के निकट जाकर उसे इस प्रकार मर्दित करने
 लगे जैसे यज्ञ वृक्षों को नष्ट करता है । (२०)
 बलवान् प्रमथों द्वारा मारे जा रहे वे दैन्यदानव गण

ततोऽम्बरतले देवाः सेन्द्रविष्णुपितामहाः ।
 समूर्थाधिष्ठुरोगास्तु समायाता दिदृक्षुवः ॥ २२
 ततोऽम्बरतले घोषः सस्वनः समजायत ।
 गीतनाद्यादिसंमिश्रो दुन्दुभीनां कलिप्रिय ॥ २३
 ततः पश्यत्सु देवेषु महापाशुपतादयः ।
 गणास्तदानवं सैन्यं त्रिचामन्ति स्म कोपिताः ॥ २४
 चतुरङ्गबलं दृष्ट्वा हन्यमानं गणेश्वरैः ।
 क्रोधान्वितस्तुष्टुण्डस्तु वेगेनाभिसगार इ ॥ २५
 आदाय परिघं घोरं पट्टोद्वडमयस्मयम् ।
 राजतं राजतेऽत्यर्थमिन्द्रश्चजमिवोच्छ्रितम् ॥ २६
 तं भ्रामयानो षलवान् निजघान रणे गणान् ।
 रुद्राद्याः स्कन्दपर्यन्तास्तेऽभज्यन्त शयातुराः ॥ २७
 तत्प्रभयं षलं दृष्ट्वा गणनाथो विनायकः ।
 समाद्रवत वेगेन तुष्टुण्डं दत्तुर्गुणवध् ॥ २८
 आपतन्तं गणपतिं दृष्ट्वा दैत्यो दुरात्मवान् ।
 परिघं पातवामास दृम्भपृष्ठे महानलः ॥ २९

विनायकस्य तत्कुम्भे परिघं वज्रभूषणम् ।
 शतधा त्वगमद् ब्रह्मन् मेरोः कूट इवाशनिः ॥ ३०
 परिघं विफलं दृष्ट्वा समायान्तं च पार्षदम् ।
 वयन्ध बाहुपाशेन राहू रक्षन् हि मातुलम् ॥ ३१
 स वदो बाहुपाशेन षलादाकृष्य दानवम् ।
 समाजघान शिरमि कुठारेण महोदरः ॥ ३२
 काष्ठवद् स द्विधा भूतो निपपात धरातले ।
 तथाऽपि नात्यजद् राहुर्बलवान् दानवेश्वरः ।
 स मोक्षार्थेऽकरोद् यत्नं न शशाक च नारद ॥ ३३

विनायकं संयतमीक्ष्य राहुणा
 कुण्डोदरो नाम गणेश्वरोऽथ ।
 प्रगृह्य तूर्णं मुशलं महात्मा
 राहुं दुरात्मानमगौ जघान ॥ ३४
 ततो गणेशः कलशध्वजस्तु
 प्रासेन राहुं हृदये धिमेद ।
 घटोदरो वै गदया जघान

रुद्धेन रक्षोऽधिपतिः सुकेशी ॥ ३५
 स तैश्वर्यमिः परिवार्यमानो
 गणाधिपं राहुरयोत्ससर्ज ।
 संत्यक्तमात्रोऽथ परश्वधेन
 तुहुण्डमूर्धानमथो रिभेद ॥ ३६
 हते तुहुण्डे विम्वसे च राहौ
 गणेश्वराः क्रोधविपं मृष्टक्षवः ।
 पश्वैककालानलसन्निकाशा
 विशन्ति सेनां दत्तुपुंगवानाम् ॥ ३७
 तां वष्यमानां स्वचर्म समीक्ष्य
 बलिर्वली मात्त्वतुल्यवेगः ।
 गदां समाधिष्य जघान मूर्ध्नि
 विनायकं कुम्भतटे करे च ॥ ३८
 कुण्डोदरं भग्नकर्ट्टि चकार
 महोदरं शीर्णशिरःश्रुपालम् ।
 कुम्भश्वजं चूर्णितसंधिपथं
 घटोदरं चौरुविभिन्नसंधिम् ॥ ३९

हृदय में भेदन किया । घटोदर ने गदा से तथा राक्षसों के अधिपति सुकेशी ने खड्ग से प्रहार किया । (३५)
 उन चारों द्वारा आघात किये जाने पर राहु ने गणाधिपति को छोड़ दिया । छूटते ही उन्होंने फरसे से तुहुण्ड के शिर को काट दिया । (३६)
 तुहुण्ड के मारे जाने पर राहु के विमुक्त हो जाने पर क्रोधरूपी विप को छोड़ने की इच्छा वाले कालानलतुल्य पौरो गणेश्वर एक साथ दानवश्रेष्ठों की सेना में प्रविष्ट हुए । (३७)
 अपनी उस सेना को मारी जाते देखकर वायु के सदृश वेगयाले बलवान् बलि ने गदा लेकर विनायक के कुम्भखल, मस्तक एवं सूँड़ पर प्रहार किया । (३८)
 कुण्डोदर की बटि को भग्न कर दिया, महोदर के शिरःश्रुपाल को शिरीर्ण कर दिया, कुम्भध्वज के जोड़ों को चूर्ण पर ढाला एवं घटोदर की जाँघों को तोड़ दिया । (३९)

गणाधिपांस्तान् विमुक्तान् स कृत्वा
 बलान्वितो वीरवरोऽसुरेन्द्रः ।
 समभ्यधावत् त्वरितो निहन्तुं
 गणेश्वरान् स्कन्दविशासमुत्थान् ॥ ४०
 तमापतन्तं भगवान् समीक्ष्य
 महेश्वरः श्रेष्ठतमं गणानाम् ।
 शीलादिमामन्य वचो वभापे
 गच्छत्व दैत्यान् जहि वीर युद्धे ॥ ४१
 इत्येवमुक्तो घृपभध्वजेन
 वज्रं समादाय शिलादसूतुः ।
 बलिं समभ्येत्य जघान मूर्ध्नि
 संमोहितः सोऽवनिमाससाद ॥ ४२
 संमोहितं भ्रातृसुतं विदित्वा
 बली कुजम्भो मुसलं प्रगृह्य ।
 संभ्रामयंस्तूर्णतरं स वेगात्
 ससर्ज नन्दि प्रति जातकोपः ॥ ४३
 तमापतन्तं मुसलं प्रगृह्य

उन गणाधिपों को विमुक्त कर वीर श्रेष्ठ यह बलवान् असुरेन्द्र शीमवा से स्कन्द, विशाख आदि प्रमुख गणेश्वरों को मारने के लिए दौड़ा । (४०)
 भगवान् महेश्वर ने उसे आते हुए देखकर गणों में सर्वश्रेष्ठ शीलादि को बुलाकर कहा—हे वीर! जाओ वीर युद्ध में दैत्यों को मारो । (४१)
 घृपभध्वज के ऐसा कहने पर शिलाद के पुत्र नन्दी वज्र लेकर बलि के समीप गये एवं उसके मस्तक पर प्रहार किया जिससे यह मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा । (४२)
 अपने भनीजे को मूर्च्छित जानकर बलवान् कुजम्भ ने क्रोधपूर्वक मुसल लेकर घुमाते हुये उसे नन्दी की ओर वेगपूर्वक फेंका । (४३)
 भगवान् नन्दी ने आते हुये उस मुसल को शीमवापूर्वक हाथ से पकड़ लिया एवं उसी से युद्ध में कुजम्भ

करेण तूर्णं भगवान् स नन्दी ।
 जवान तेनैव कुजम्भमाहवे
 स प्राणहीनो निपपात भूमौ ॥ ४४
 हत्वा कुजम्भं ह्यसलेन नन्दी
 वज्रेण वीरः शतशो जवान ।
 ते वध्यमाना गणनायकेन
 दुर्योधनं वै शरणं प्रपन्नाः ॥ ४५
 दुर्योधनः प्रेक्ष्य गणाधिपेन
 वज्रप्रहारैर्निहतान् द्वितीशान् ।
 प्राप्तं समाधिष्य तडितप्रकाशं
 नन्दिं प्रचिक्षेप हतोऽसि वै श्रुवन् ॥ ४६
 तमापतन्तं वृलिशेन नन्दी
 रिभेद गुह्यं पिशुनो यथा नरः ।
 तत्प्रासगालक्ष्य तदा निकृच
 सवर्त्यं मूर्ध्नि गणमाससाद ॥ ४७
 ततोऽस्य नन्दी कुलिशेन तूर्णं
 शिरोऽच्छिन्नत् तालफलप्रकाशम् ।
 हतोऽथ भूमौ निपपात वेगाद्

को मारा । वह निष्प्राण होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा । (४४)
 वीर नन्दी ने सुसल से कुजम्भ को मार कर
 वज्र द्वारा सैकड़ों दानवों को मार डाला । गणनायक द्वारा
 मारे जा रहे थे दानव दुर्योधन की शरण में गये । (४५)
 दुर्योधन ने गणाधिप द्वारा वज्र प्रहार से दैत्यो
 को निहत देखकर बिजली के समान प्रकाश से युक्त प्रास लिया
 तथा 'तुम मारे गये' ऐसा कहते हुये उसे नन्दी की ओर
 फेंका । (४६)
 नन्दी ने आ रहे उस (प्रास) को वज्र से इस
 प्रकार काट दिया जैसे पिशुन व्यक्ति रहस्य का
 भेदन कर देता है । तदनन्तर उस प्रास को कटा
 हुआ देख (दुर्योधन) मुट्ठी बौध कर गण नन्दी
 के पास गया । (४७)
 तदनन्तर नन्दी ने वेगपूर्वक कुलिश द्वारा तालफल के
 सदृश उसके मस्तक को काट डाला । मारे जाने
 पर वह भूमि पर गिर पडा एव भयभीत दैत्य वेगपूर्वक
 दसों दिशाओं में भाग गए । (४८)

दैत्याश्च भीता विगता दिशो दश ॥ ४८
 ततो हतं स्वं तनयं निरीक्ष्य
 हस्ती तदा नन्दिनमाजगाम ।
 प्रगृह्य वाणासनमुपवेग
 विभेद वाणैर्यमदण्डकल्पैः ॥ ४९
 गणान् सनन्दीन् वृषभध्वजास्तान्
 धाराभिरेवाम्बुधरास्तु शैलान् ।
 ते छाद्यमानासुरवाणजालै-
 र्विनायकाद्या वलिनोऽपि वीराः ।
 सिंहप्रपुच्छा वृषभा यथैव
 भयातुरा दुद्रुविरे समन्तात् ॥ ५०
 पराद्दृष्टान् वीक्ष्य गणान् कुमारः
 शक्त्या वृषत्कानथ वारयित्वा ।
 तूर्णं सभभ्येत्य रिपुं समीक्ष्य
 प्रगृह्य शक्त्या हृदये विभेद ॥ ५१
 शक्तिनिर्भिन्नहृदयो हस्ती भूम्यां पपात ह ।
 ममार चारिपृतना जाता भूयः पराद्दृष्टुषी ॥ ५२
 अमारारिबलं दृष्ट्वा भग्नं क्रुद्धा गणेश्वराः ।

हस्ती (नामक असुर) अपने पुत्र को मारा गया देकर
 नन्दी के पास आया । उसने धनुष लेकर तीक्ष्णवेग से यमदण्ड
 तुल्य बाणों से प्रहार किया । (४९)
 मेघ जिस प्रकार जलधाराओं से पर्वतों को आच्छा
 दित करता है, उसी प्रकार उसने नन्दी के सहित
 वृषभध्वज के उन गणों को आच्छादित किया । असुर के
 वाणजाल से आच्छादित हो रहे थे विनायक आदि
 बलवान् वीर सिंह के द्वारा आक्रान्त वृषभों के सदृश
 भयातुर होकर चारों ओर भागने लगे । (५०)
 कुमार ने गणों को पराद्दृष्टुष्य देख शक्ति
 द्वारा बाणों को निवारित किया । एव शीघ्रतापूर्वक
 शत्रु के पास पहुँचे तथा शक्ति से उसका हृदय
 भिन्न कर दिये । (५१)
 शक्ति से हृदय के फट जाने पर हस्ती पृथ्वी
 पर गिर पड़ा एवं मर गया तथा शत्रु सेना पुन पराद्दृष्टुष्य
 हो गई । (५२)
 दैत्यसेना को क्षिप्त भिन्न हुई देखकर क्रुद्ध गणेश्वर

पुरतो नन्दिनं कृत्वा जिघांसन्ति स्म दानवान् ॥ ५३
 ते वध्यमानाः प्रमथेदंत्याश्चापि पराङ्मुखः ।
 भूयो निवृत्ता बलिनः कार्तस्वरपुरोगमाः ॥ ५४
 तान् निवृत्तान् समीक्ष्यैव क्रोधदीप्तैः श्वसन् ।
 नन्दिपेणो व्याघ्रमुखो निवृत्तश्चापि वेगवान् ॥ ५५
 तस्मिन् निवृत्ते गणपे पट्टिशप्रकरे तदा ।
 कार्तस्वरो निवृत्ते गदामादाय नारद ॥ ५६
 तमापतन्तं ज्वलनप्रकाशं
 गण, समीक्ष्यैव महासुरेन्द्रम् ।
 त पट्टिशं भ्राम्य जघान मूर्ध्नि
 कार्तस्वरं विस्वरहृन्नदन्तम् ॥ ५७
 तस्मिन् हते भ्रातरि मातुलेये
 पाशं समाधिष्य तुरंगकन्धरः ।
 वयन्ध वीरः सह पट्टिशेन
 गणेश्वरं चाप्यय नन्दिपेणम् ॥ ५८

नन्दी को आगे कर दानवों को मारने लगे । (५३)

प्रमथों द्वारा मारे जा रहे थे सभी पराङ्मुख बलवान् कार्तस्वरादि दैत्य पुनः लौट पड़े । (५४)

उन्हें लौटते देखकर वेगवान् व्याघ्रमुख नन्दिपेण भी क्रोध से आँखें लालकर लम्बी साँस छोड़ते हुए लौट पड़ा । (५५)

हे नारद! तदन्तर हाथ के अग्रभाग में पट्टिश लिये हुये उस गणाधिप के लोटने पर कार्तस्वर गदा लेकर लौटा । (५६)

उस जग्मि के सहस्र तेजस्वी महासुरेन्द्र को आगे देखकर गणपति ने पट्टिश घुमाकर उसके शिर पर मारा । कार्तस्वर चीत्कार करता हुआ मर गया । (५७)

उस ममेरे माई के मारे जाने पर वीर तुरङ्गकन्धर ने पाश को लेकर पट्टिश के सहित नन्दिपेण गणेश्वर को बाँध लिया । (५८)

नन्दिपेण को धँसा देखकर बलवानों ने श्रेष्ठ विशाख क्रोधपूर्वक उसके समीप गए एवं हाथ में शक्ति लिये हुए

नन्दिपेणं तथा बद्धं समीक्ष्य बलिनां वरः ।
 विशाखः कुपितोऽभ्येत्य शक्तिपाणिरवस्थितः ॥ ५९
 तं दृष्ट्वा बलिनां श्रेष्ठः पाशपाणिरयःशिराः ।
 संघोषयामास बली विशाखं कुक्कुटप्वजम् ॥ ६०
 विशाखं मंनिरुद्धं वै दृष्ट्वाऽप्य शिरसा रणे ।
 शास्त्रं नैगमेयश्च तूर्णमाद्रवतां रिपुम् ॥ ६१
 एकतो नैगमेयेन भिन्नः शक्त्या त्वयःशिराः ।
 एकतश्चैव शस्त्रेण विशाखप्रियकाम्गया ॥ ६२
 स त्रिभिः शंकरसुतैः पीड्यमानो जहौ रणम् ।
 ते प्राप्ताः शम्बरं तूर्णं प्रेक्ष्यमाणा गणेश्वराः ॥ ६३
 पाशं शक्त्या समाहृत्य चतुर्भिः शंकरात्मजैः ।
 जगाम विलयं तूर्णमाकाशादिव भूतलम् ॥ ६४
 पाशे निराशतां याते शम्बरः कातरेक्षणः ।
 दिशोऽथ भेजे देवेषु कुमारः सैन्यमर्दयत् ॥ ६५

(उसके सम्मुख) खड़े हो गए । (५९)
 उन्हें देखकर बलवानों ने श्रेष्ठ अय शिरा हाथ में पाश लेकर कुक्कुटप्वज विशाख के साथ युद्ध करने लगा । (६०)

विशाख को अयःशिरा के द्वारा युद्ध में अवरुद्ध हुआ देखकर शाख एवं नैगमेय नामक गए शीघ्रतापूर्वक शत्रु की ओर दौड़ पड़े । (६१)

विशाख का प्रिय करने की इच्छा से एक ओर से नैगमेय ने एवं दूसरी ओर से शाख ने शक्ति द्वारा अय शिरा को मारा । (६२)

शङ्कर के बीनों पुत्रों द्वारा पीड़ित होने पर उस अय शिरा ने युद्ध छोड़ दिया । वे गणेश्वर शम्बर को देखकर शीघ्र उसके पास पहुँचे । (६३)

शम्बर ने उनपर पाश को घुमा कर चलाया शङ्कर के चारपुत्रों ने पाश पर प्रहार किया । (इससे वह पाश) आकाश से भूतल पर गिर कर नष्ट हो गया । (६४)

पाश के नष्ट हो जाने पर भयभीत शम्बर

तैर्वाच्यमाना प्रवृत्ता महर्षे
सादानयी रुद्रसुतैर्गणेश्वर ।

विषण्णरूपा मयविह्वलाङ्गी
जगाम शुक्रं शरणं भयार्ता ॥ ६६

इति श्रीवामनपुराणे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

४३

पुलस्त्य उवाच ।

ततः स्वसैन्यमालक्ष्य निहतं प्रमथैरथ ।
अन्धकोऽन्धेत्य शुक्रं तु इदं वचनमब्रवीत् ॥ १
भगवंस्त्वां समाश्रित्य घयं वाधाम देवताः ।
अथान्यानपि विप्रपेणं गन्धर्वसुरकिन्नरात् ॥ २
तदियं पश्य भगवन् मया गुमा वरुधिनी ।
अनाथैव यथा नारी प्रमथैरपि काल्यते ॥ ३
कुजम्भावाश्च निहता भ्रातरौ मम भार्गव ।

दिशाओं में भाग गया एवं तुमार सेना का मर्दन करने लगे । (६५)

हे महर्षि ! उन रुद्र-पुत्रों एवं गणों द्वारा मारी जा रही

अक्षयाः प्रमथाश्चामी कुरुक्षेत्रफलं यथा ॥ ४

तस्मात् कुरुष्व श्रेयो नो न जीयेम यथा परैः ।

जयेम च परात् युद्धे तथा त्वं कर्तुमर्हसि ॥ ५

शुक्रोऽन्धकवचः श्रुत्वा सान्त्वयन् परमाद्भुतम् ।

घचनं ग्राह्यं देवपेणं घ्नन्नापिर्दानिवेश्वरम् ।

त्वद्विद्वार्थं यतिष्यामि करिष्यामि तव प्रियम् ॥ ६

इत्येवमुक्त्वा वचनं विद्यां संजीवनीं कविः ।

आवर्तयामास तदा विधानेन शुचित्रतः ॥ ७

यह दानवी सेना दुःखी एवं भय से विह्वल होकर शुक्र की शरण में गई । (६६)

श्रीवामनपुराणे में बयांनित्तवो अध्याय समाप्त ॥४२॥

४३

पुलस्त्य ने कहा—तदनन्तर प्रमथों द्वारा अपनी सेना को मारी गयी देखकर अन्धक ने शुक्राचार्य के पास जाकर यह बात कही— (१)

हे भगवन् ! हे विप्रपेण ! हम आपही का आश्रय लेकर देवता, गन्धर्व, असुर, किन्नर एव अन्यो को बाधित करते हैं । (२)

हे भगवन् ! आप यह देखें कि मेरे द्वारा रक्षित यह सेना अनाथ नारी के सदृश प्रमथों द्वारा विनष्ट की जा रही है । (३)

हे भार्गव ! कुजम्भ आदि मेरे भाई मारे गये पर

ये प्रमथ कुरुक्षेत्र तीर्थ के फल समान अक्षय हैं । (४)

अतः आप हमलोगों का कल्याण करें जिससे शत्रुओं के द्वारा हमलोग न जीते जाय तथा आप ऐसा उपाय करें जिससे हमलोग दूसरों को युद्ध में जीत सकें । (५)

हे देवपेण ! ब्रह्मर्षि शुक्राचार्य ने अन्धक की बात सुनकर दानवेश्वर को साम्बन्धना देते हुए उससे कहा— मैं तुम्हारे द्विदार्थ यत्न करूँगा और तुम्हारा प्रिय करूँगा । (६)

ऐसा कहकर शुचि व्रतों वाले शुक्राचार्य ने विधानानुसार संजीवनी विद्या को प्रकट किया । (७)

तस्यामावर्त्यमानायां विद्यायामसुरेश्वराः ।
 ये हताः प्रथमं युद्धे दानवास्ते समुत्थिताः ॥ ८
 कुञ्जमादिषु दैत्येषु भूय एवोत्थितेष्वपि ।
 युद्धायाम्यायतेष्वेव नन्दी शंकरमब्रवीत् ॥ ९
 महादेव वचो मह्यं शृणु त्वं परमाद्भुतम् ।
 अविचिन्त्यमसह्यं च मृतानां जीवनं पुनः ॥ १०
 ये हताः प्रमथैर्दैत्या यथाशक्त्या रणाजिरे ।
 ते समुज्जीविता भूयो भार्गवेणाय विद्यया ॥ ११
 तदिदं तैर्महादेव महत्कर्म कृतं रणे ।
 संजातं स्वल्पमेवेश्य शुक्रविद्यागलाश्रयात् ॥ १२
 इत्येवमुक्ते वचने नन्दिना कुलनन्दिना ।
 प्रत्युवाच प्रभुः प्रीत्या स्वार्थमाघनसुप्तम् ॥ १३
 गच्छ शुक्रं गणपते ममान्विरुद्धपानय ।
 अहं सं संयमित्यामि यथायोगं समेत्य हि ॥ १४
 इत्येवमुक्त्वा रूढेण नन्दी गणपतिस्ततः ।

समाजगाम दैत्यानां चमूं शुक्रजिघृक्षया ॥ १५
 तं ददर्शासुरश्रेष्ठो पलवान् ह्यकन्धरः ।
 संरुरोध तदा मार्गं सिंहस्येव पशुर्वने ॥ १६
 समुपेत्याहननन्दी वज्रेण शतपर्यणा ।
 स पपाताय निगंघ्रो ययौ नन्दी ततस्त्वरत् ॥ १७
 ततः कुञ्जम्भो जम्भश्च पलो वृत्रस्त्वयःशिराः ।
 पञ्च दानवशार्दूला नन्दिनं समुपाद्रवत् ॥ १८
 तथाऽन्ये दानवश्रेष्ठा मपहादपुरोगमाः ।
 नानाप्रहरणा युद्धे गणनाथमभित्रवत् ॥ १९
 ततो गणानामधिपं कुट्यमानं महाबलैः ।
 समपश्यन्त देवास्तं पितामहपुरोगमाः ॥ २०
 तं दृष्ट्वा भगवान् ब्रह्मा प्राह शक्रपुरोगमान् ।
 साहाय्यं क्रियतां शंभोरेतदन्तरसुप्तम् ॥ २१
 पितामहोक्तं वचनं श्रुत्वा देवाः सवासवाः ।
 समापतन्त वेगेन शिवसैन्यमथाम्बरान् ॥ २२

उस विद्या के प्रकट होने पर युद्ध में पहले मारे गये असुरेश्वर एवं दानव जीवित हो गये । (८)
 तदनन्तर कुञ्जम्भ आदि दैत्यों के पुनः उठ खड़े होने तथा युद्ध करने के लिए आने पर नन्दी ने शंकर से कहा— (९)
 हे महादेव ! आप मेरा परम अद्भुत वचन सुनिये । मेरे हुए लोगों का पुनः जीवन हो जाना अचर्यनीय तथा असह्य है । (१०)
 प्रमथों ने युद्ध में पराक्रमपूर्वक जिन दैत्यों को मारा था वह भार्गव ने विद्या द्वारा फिर जीवित कर दिया । (११)
 अतः हे महादेव ! हे ईश ! उन सभी ने युद्ध में जो बदलाप्यो किया था वह शुक्र की विद्या के बल से अरप हो गया । (१२)
 युद्ध की आनन्द देनेवाले नन्दी के ऐसा बहने पर महादेव ने प्रेमपूर्वक स्वार्थसाधक उत्तम वचन कहा— (१३)
 हे गणपति ! तुम जाओ और शुक्र को मेरे पास लाओ । मैं उन्हें पात्र उपयुक्त बोग का आग्रह कर संयत करूँगा । (१४)
 रत्न के ऐसा बहने पर गणपति नन्दी मुद्राचार्य को

परकूलाने की इच्छा से दैत्यों की सेना में गये । (१५)
 ह्यकन्धर नामक बलवान् श्रेष्ठ असुर ने उन्हें देखा और जिस प्रकार वन में सिंह का मार्ग पशु रोक्ता है, उसी प्रकार उनके मार्ग को रोका । (१६)
 नन्दी ने समीप जाकर शनपर्व (वक्र) के द्वारा उसे मारा वह अचेत होकर गिर पड़ा । तदनन्तर नन्दी शीघ्र वहाँ से चले गये । (१७)
 तदनन्तर कुञ्जम्भ, जम्भ, पलो, वृत्र, एवं अयशिरा नामक पाँच श्रेष्ठ दानव नन्दी को और दौड़े । (१८)
 इसी प्रकार युद्ध में अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्रों को धारण करने वाले मय एवं द्यूताद आदि दानवश्रेष्ठ भी नन्दी की ओर दौड़े । (१९)
 तदनन्तर पितामहादि दैत्यों ने महाबलवान् (दानवों) द्वारा घूटे जा रहे गणाधिप को देखा । (२०)
 उसे देख कर भगवान् ब्रह्मा ने इन्द्र आदि देवतार्जों से कहा—तुम उत्तम अवसर पर धाय लगे शम्भु की सहायता करें । (२१)
 पितामह के बड़े वचन को सुनकर इन्द्रादि देवता ब्राह्मण से वेगपूर्वक शिव की सेना में आये । (२२)

तेषामापततां वेगः प्रमथानां बले बभौ ।
 आपगाना महावेग पतन्तीना महार्णवे ॥ २३
 ततो हलहलाशब्दः समजायत चोभयोः ।
 बलयोर्घोरसंकाशो सुरप्रमथयोश्च ॥ २४
 तमन्तरुपागम्य नन्दी सशुभ वेगवान् ।
 रथाद् भार्गवमात्रामत् सिंहः क्षुद्रमृग यथा ॥ २५
 तमादाय हराभ्याश्चमागमद् गणनायकः ।
 निपात्य रक्षिणः सर्वानथ शुक्रं न्यवेदयत् ॥ २६
 तमानीत कर्षिं शर्वः प्राक्षिपद् वदने प्रभुः ।
 भार्गवं त्वावृत्ततनुं जठरे स न्यवेदयत् ॥ २७
 स शंभुना कविश्रेष्ठो ग्रस्तो जठरमास्थितः ।
 तुष्टाव भगवन्तं तं घृनिर्वाग्भिरथादरात् ॥ २८
 शुक्र उवाच ।
 वरदाय नमस्तुभ्यं हराय गुणशालिने ।
 शंकराय महेशाय श्यम्भकत्रय नमो नमः ॥ २९
 जीवनाय नमस्तुभ्यं लोकनाथ वृषाकपे ।

समुद्र मे जाती हुई नदियों के महावेग के समान प्रमथों की सेना मे (आकाश से) आते हुए देवताओं का वेग शोभित हुआ । (२३)

उसके अनन्तर प्रमथों और असुरों दोनों पक्षों के सैन्यों मे भयकर हलहला शब्द उत्पन्न हुआ । (२४)

उसी समय अक्सर पाकर वेगवान् नन्दी जैसे सिंह क्षुद्रमृग को पकड़ता है उसी प्रकार रथ से भार्गव को लेकर भागे । (२५)

गणनायक उन्हें लेकर सभी रक्षकों को मारते हुए शङ्कर के समीप पहुँचे एव उनके पास शुक्राचार्य को निवेदित किया । (२६)

प्रभु शंकर ने लाये गये उन शुक्र को अपने मुख में फँका और आवृत्त शरीर भार्गव को अपने उदर मे सन्नविष्ट कर लिया । (२७)

कम्बु से मस्त होकर उनके उदर में स्थित हुए वे मुनि श्रेष्ठ शुक्र आदरपूर्वक वन भगवान् की स्तुति करने लगे । (२८)

शुक्र ने कहा—आप गुणशाली हर वरदाता को नमस्कार है । शङ्कर, महेश श्यम्भक को बार-बार नमस्कार है । (२९)

मदनाग्रे कालशत्रौ वामदेवाय ते नमः ॥ ३०

स्थाणवे विश्वरूपाय वामनाय सदागते ।

महादेवाय शर्वाय ईश्वराय नमो नमः ॥ ३१

त्रिनयन हर भव शंकर उमापते जीमूतकेतो
 गुहागृह श्मशाननिरत भूतिविलेपन शूलपाणे
 पशुपते गोपते तत्पुरुषसत्तम नमो नमस्ते ।

इत्थं स्तुतः कत्रिवरेण हरोऽथ भक्त्या

प्रीतो वरं चरय दधि तवेत्युवाच ।

स प्राह देववर देहि वरं ममाद्य

यद्वै तवीव जठरात् प्रतिनिर्गमोऽस्तु ॥ ३२

ततो हरोऽक्षीणि तदा निरुध्य

प्राह द्विजेन्द्राय विनिर्गमस्य ।

इत्पुक्तमात्रो विशुना चचार

देवोदरे भार्गवपुंगवस्तु ॥ ३३

परिभ्रमन् ददर्शाय शंभोरेवोदरे कविः ।

भुवनार्णवपातालान् घृतान् स्थावरजङ्गमैः ॥ ३४

हे लोकरनाथ ! हे वृषाक्षि ! आप जीवन्स्वरूप को नमस्कार है । हे वामदेव के लिये अग्निस्वरूप ! हे कालशत्रु ! आप वामदेव को नमस्कार है । (३०)

स्थाणु, विश्वरूप, वामन, सदागति, महादेव, शर्व और ईश्वर आपको बार बार नमस्कार है । (३१)

हे त्रिनयन ! हे हर ! हे भव ! हे शङ्कर ! हे उमापति ! हे जीमूतकेतु ! हे गुहागृह ! हे श्मशाननिरत ! हे भूति-विलेपन ! हे शूलपाणि ! हे पशुपति ! हे गोपति ! हे तत्पुरुष-सत्तम ! आपको बार बार नमस्कार है ।

इस प्रकार कत्रिवर के भक्ति से स्तुति करने पर शङ्कर ने कहा—मैं तुम से प्रमन्न हूँ । तुम वर माँगी मैं तुम्हें दूँगा । उन्होंने कहा—हे देववर ! इस समय मुझ यही वर दीजिये कि मैं पुन आपक जठर से बाहर निकरूँ । (३२)

तदनन्तर शङ्कर ने नेत्रों को बन्द कर कहा—हे द्विजेन्द्र ! अब तुम निकल आओ । विष्णु के एसा कहन पर व भार्गव श्रेष्ठ महादेव के उदर में विचरण करने लगे । (३३) शुक्राचार्य ने परिभ्रमण करते हुए शंकर के ही उदर में स्थावर एव जङ्गम प्राणियों से आवृत्त भुवन, समुद्र, एव पातालों को देखा । (३४)

प्रादित्वात् षमसो ऋत्वा विश्वेदेवान् गणांशया ।
 मयान् द्विदृग्वापादान् गन्धशोष्मरमां गणान् ॥ ३५ ।
 हृत्वात् मनुजनास्यांश्च पशुकीटपिपांनिरान् ।
 पृथगुन्मान् गिरान् यन्त्र्यः कन्दमूलीवपानि च ॥ ३६ ।
 श्वदृग्वांश्च ब्रह्मणांश्चानिमिषाप्रिमिषानपि ।
 पशुष्वशान् मद्भिषदान् ग्यारगान् ब्रह्ममानपि ॥ ३७ ।
 अन्वक्तृषीश्च प्यक्तृषि ममुनाद्रिमुंनानपि ।
 म हृत्वा षीपुषारिष्टः परिरभाम मार्गवः ।
 यदागतो भार्गवस्य दिव्यः गंत्तमसो मत्तः ॥ ३८ ।
 न पान्यमन्मद् भ्रंशंन्यत्र धान्तोऽभयत् करिः ।
 म धान्तं चांश्च पाप्मानं नात्तन्निर्गमं यतो ।
 भक्तिनसो महादेवं शरणं ममुपागमत् ॥ ३९ ।
 शुभ उवाच ।

विश्वस्य महाम्य विश्वरूपाऽगृह्यत् ।
 गत्पाठ महादेव रामदेवं शरणं मत्तः ॥ ४० ।
 मसोऽपु मे शंकर शरं शंभो
 गत्पानेपाट्मिद्वंममूत्तन ।
 हृत्वेव मसोन् सुवनांश्वरोदं

धान्तो भरन्तं शरणं प्रदन्तः ॥ ४१ ।
 हृत्वेवमुक्ते पयने महाराना
 शंभुर्वचः प्रादृ हतो रिहस्य ।
 निर्गन्धं पुत्रोऽपि ममापुना त्वं
 मिदनेन भो भार्गवशंशयन् ॥ ४२ ।
 नाम्ना तु शुश्रूषि शराचराम्नां
 श्लोत्पन्वि नैराश विचारमन्वत् ।
 हृत्वेवमुक्त्वा भगवान् सुमोच
 मिदनेन दुष्टं म च निर्जगाम ॥ ४३ ।
 विनिर्गतो भार्गवशंशयन्तः
 शुक्तरमापव महानुभावः ।
 प्रणम्य शंभुं म उवाच नूनं
 महानुभावो पामुपनीताः ॥ ४४ ।

भार्गवे पुनरावातो दानवा मुदिताभयत् ।
 पुनरुदाव दिदृशुर्नति गद गप्सेभोः ॥ ४५ ।
 गप्सेभसाम्पानमुत्तान महामरगर्परथ ।
 मुपुपुः शंहर्तं मुदं मरं एव उदंगरः ॥ ४६ ।
 हतोऽप्युरगनात्तां च देवतातां च मुप्यजाम् ।

इन्द्रयुद्धं समभवद् घोररूपं तपोधन ॥ ४७
 अन्धको नन्दिन युद्धे शङ्कुकर्णं त्वयःशिराः ।
 कुम्भध्वजं बलिर्धीमान् नन्दिपेणं विरोचनः ॥ ४८
 अश्वघ्रीवो विशाखं च शालो वृत्रमयोधयत् ।
 पाणस्तथा नैगमेयं बल राक्षसपुंगवः ॥ ४९
 विनायको महावीर्यः परश्वधधरो रणे ।
 संक्रुद्धो राक्षसश्रेष्ठं तुहुण्डं समयोधयत् ।
 दुर्योधनश्च बलिनं घण्टाकर्णमयोधयत् ॥ ५०
 हस्ती च कुण्डजठरं ह्लादो वीरं घटोदरम् ।
 एते हि बलिना श्रेष्ठा दानवाः प्रमथास्तथा ।
 संयोधयन्ति देवेषु दिव्याब्दानां शतानि पट् ॥ ५१
 शतक्रतुमथायान्त वज्रपाणिमभिस्थितम् ।
 वारयामास बलवान् जम्भो नाम महासुरः ॥ ५२
 शम्भुनामाऽसुरपतिः स ब्रह्माणमयोधयत् ।
 महौजसं कुजम्भश्च विष्णुं दैत्यान्तकारिणम् ॥ ५३

में भयङ्कर इन्द्र युद्ध हुआ ।

(४७)

अन्धक नन्दी के साथ, अय शिरा शङ्कुकर्ण के साथ, बुद्धिमान् बलि कुम्भध्वज के साथ एव विरोचन नन्दिपेण के साथ युद्ध करने लगा ।

(४८)

अश्वमीय विशाख के साथ और शाल वृत्र के साथ, पाण नैगमेय के साथ एव राक्षसपुंगव बल के साथ लड़ने लगा ।

(४९)

महावीरवान् परशुधारी विनायक युद्ध में क्रुद्ध होकर राक्षसश्रेष्ठ तुहुण्ड के साथ लड़ने लगे एव दुर्योधन बलवान् घण्टाकर्ण के साथ युद्ध करने लगा ।

(५०)

हस्ती कुण्डजठर के साथ एव ह्लाद वीर घटोदर से लड़ने लगा । हे देवर्षि ! बलवानों में श्रेष्ठ ये सभी दानव एव प्रमथाग परस्पर छ ली दिव्य बर्षों तक युद्ध करते रहे ।

(५१)

जम्भ नामक बलवान् महान् असुर ने आ रहे ब्रह्मपाणि इन्द्र को रोका ।

(५२)

शम्भु नामक असुरराज ब्रह्मा से लड़ने लगा एव कुजम्भ महाम् औजस्वी दैत्यान्तकारी विष्णु से युद्ध करने लगा ।

(५३)

विष्वस्वन्तं रणे शालो वरुणं त्रिशिरास्तथा ।
 द्विमूर्धा पवनं सोमं राहुर्मित्रं विरुपधृक् ॥ ५४
 अष्टौ ये वसवः रथात्ता धराधास्ते महासुरान् ।
 अष्टावेन महेश्पासान् वारयामासुराहवे ॥ ५५
 सरभः शलभः पाकः पुरोऽथ विप्रधुः पृथुः ।
 वातापी चेल्वलश्रैव नानाशस्त्रास्त्रयोधिनः ॥ ५६
 विधेदेवगणान् सर्वान् विष्वक्सेनपुरोगमान् ।
 एक एव रणे रौद्रः कालनेमिर्महासुरः ॥ ५७
 एकादशैश्च ये रुद्रास्तानेकोऽपि रणोत्कटः ।
 योधयामास तेजस्वी विद्युन्माली महासुरः ॥ ५८
 द्वायश्विनौ च नरको भास्करानेव शम्बरः ।
 साध्वान् मरुद्गणाश्चैव निवातकवचादयः ॥ ५९
 एव इन्द्रसहस्राणि प्रमथामरदाननैः ।
 कृतानि च सुराब्दानां दशतीः पट् महामुने ॥ ६०
 यदा न शकित्वा योद्धुं देवतैरमरारयः ।

शाल्व सूर्य से, त्रिशिरा वरुण से, द्विमूर्धा पवन से, राहु सोम से एव विरुपधृक् मित्र से युद्ध करने लगा ।

(५४)

षरादि नाम से प्रसिद्ध आठ वसुओं ने सरभ, शलभ, पाक पुर, विप्रधु, पृथु, वातापी एव चेल्वल-इन आठ महान् घतुर्धर असुरों का युद्ध में सामना किया । ये असुर अनेक प्रकार के शस्त्राद्य लेकर लड़ने लगे । कालनेमि नामक भयङ्कर महासुर युद्ध में एकाकी ही विष्वक्सेनादि विश्वेदेव गणों से युद्ध करने लगा ।

(५५-५७)

रणोत्कट तेजस्वी विद्युन्माली नामक महासुर ने अकेले ही एकादश रुद्रों का सामना किया ।

(५८)

नरक ने दोनों अश्विनीकुमारों से, शम्बर ने (द्वादश) भास्वरों से एव निवातकवचादि ने साध्वों तथा मरुद्गणों से युद्ध किया ।

(५९)

हे महामुने ! इस प्रकार साठ दिव्य बर्षों तक प्रमथों एव दानवों के सहस्रों युग्म परस्पर इन्द्रयुद्ध करते रहे ।

(६०)

जब असुर गण देवों से युद्ध करने में असमर्थ हो गए तो उन लोगों ने माया का आश्रयकर देवों का क्रमशः

तदा मायां समाश्रित्य प्रमन्त नमजोऽन्ययात्र ॥ ६१
 ततोऽभवच्छैलपृष्ठं प्रावृढभ्रममप्रभैः ।
 आवृत्तं वर्णितं मर्यैः प्रमथैरमरैरपि ॥ ६२
 दृष्ट्वा शून्यं गिरिप्रस्थं अस्ताश्च प्रमयामरान् ।
 क्रोधादुत्पादयामास रत्रो जृम्भायिका वशी ॥ ६३
 तथा स्पृष्टा दनुसुता अलमा मन्दभाषिणः ।
 वदनं विहृतं कृत्वा मुक्तशस्त्रं निज्जम्भिरे ॥ ६४
 जृम्भमाणेषु च तदा दानवेषु गणेश्वराः ।
 सुराश्च नियंयुस्तूर्णं दैत्यदेहेभ्य आकुलाः ॥ ६५
 मेघप्रभेभ्यो दैत्येभ्यो निर्गच्छन्तोऽमरोत्तमाः ।
 शोभन्ते पद्मपत्राङ्गा मेघेभ्य इव वियुतः ॥ ६६
 गणामोरुषु च समं निर्गतेषु तपोधन ।
 अयुधन्त महात्मानो भूय एजातिकोपिताः ॥ ६७
 ततस्तु देवैः सगणैः दानवाः शर्वपालिनः ।
 पराजीयन्त सग्रामे भूयो भूयस्सहनिशम् ॥ ६८
 ततस्त्रिनेत्रः स्यां संच्यां सप्तादशतिके गते ।

कालेऽभ्युपामत तदा सोऽष्टादशशुनोऽन्ययः ॥ ६०
 संस्पृश्यापः मस्सत्या स्तात्वा च विविना हरः ।
 कृतार्थो भक्तिमान् मूर्ध्ना पुष्पाङ्गलिमुपाश्रिपत् ॥ ७०
 ततो ननाम शिरसा ततश्चक्रे प्रदक्षिणम् ।
 हिरण्यगर्भेत्यादित्यमुपतस्थे जज्ञाप ह ॥ ७१
 तद्गू नमो नमस्तेऽस्तु सन्यगुचार्य शूलशृक् ।
 ननर्त भागमन्मीरं दौर्दण्ड आमयन् नलात् ॥ ७२
 परिनृत्यति देवेशे गणाश्रैवामारस्तथा ।
 नृत्यन्ते भागमंयुक्ता हरस्यानुमिलासिनः ॥ ७३
 सन्ध्यामुपास्य देवेशः परिनृत्य यथेच्छया ।
 युद्धाय दानरैः सार्द्धं मतिं भूयः समादधे ॥ ७४
 ततोऽमरगर्णैः सर्वैस्त्रिनेत्रमुजपालिनः ।
 दानवा निर्णिताः सर्वे त्रिभिर्भयं रणितः ॥ ७५
 स्मरन्तं निर्णितं दृष्ट्वा मत्साऽजेय च शंक्म् ।
 अन्धकः सुन्दमाहूय हृद वचनमनवीत् ॥ ७६
 सुन्द अत्राऽसि मे वीर विद्यास्यः सर्ववस्तुषु ।

मास करना प्रारम्भ किया । (६१)
 तदनन्तर समस्त प्रमथों एवं देवों से रहित पर्वत वर्षा-
 कालीन मेघ के सदृश दानवों से आवृत हो गया । (६२)
 पर्वत प्रदेश को शून्य एवं प्रमथों तथा देवों को मल
 हुआ देखकर जितेन्द्रिय रुद्र ने क्रोध से जृम्भायिका को
 हतपत्र किया । (६३)
 उसके स्पर्श करने पर अर्जों को छोड़कर मन्दभाषण
 करने हुए आलस्यपूर्ण दानव सुदर का विहृत कर जम्हाई
 लेने लगे । (६४)
 दानवों के जम्हाई लते समय आकुल गणेश्वर एवं देवता
 लोग शीघ्रता पूर्वक दैत्यों की देह से बाहर निकल गये । (६५)
 मेघ सदृश दैत्यों के (शरीर से) बाहर निकल रहे फल
 के समान नेत्र वाले श्रेष्ठ देवगण मेघ से प्रकट होने वाली
 विद्युत् के सदृश शोभित हो रहे थे । (६६)
 हे तपोधन ! गणों और देवों के निकल आन पर वे
 महात्मा (दैत्य) अति क्रुद्ध होकर युद्ध करने लगे । (६७)
 तदनन्तर शम्भुपालित गणों एवं दैत्यों ने सग्राम में
 दानवों को अहनिश बाण्यार पराजित किया । (६८)
 तदनन्तर सात सौ वर्षों का समय व्यतीत हो
 जाने पर अष्टादश मुजाओं वाले अन्वय त्रिनेत्र अपनी

सन्ध्या करने लगे । (६९)
 जल का स्पर्श कर विविधपूर्व सरस्वती में स्नान कर
 हृत्कार्य भक्तिमान् शक्रे ने मत्तक से पुष्पाङ्गलि अर्पित
 की । (७०)
 तदनन्तर शिर से प्रणाम एवं तदनन्तर प्रदक्षिणा कर
 'हिरण्यगर्भ' इत्यादि मन्त्र से सूर्य की बन्दना और
 जप किया । (७१)
 तदुपरान्त 'स्वगू नमो नमस्तेऽस्तु' इसका सम्यक् रूप
 से उच्चारण कर शूलपाणि बलपूर्वक सुजदण्ड घुमाते हुए
 भाग्यमन्धीर हारं नचने लगे । (७२)
 देवेश्वर क नाचने पर गण और देवता भी भक्तिपुक्त
 होकर हर का अनुगमन करते हुए नाचने लगे । (७३)
 सन्ध्यापासन कर यथेच्छ नृत्य के बाद देवेश ने पुनः
 दानवों से युद्ध करने का विचार किया । (७४)
 तदनन्तर शक्रे की मुजाओं से रहित बलवान् एवं भय-
 रहित समस्त दैत्यों ने समस्त दानवों को जीत लिया । (७५)
 अपना सना पा पराजित देख तथा महादेव को अजेय
 जानकर अन्धक ने सुन्द को बुलाकर यह वचन कहा— (७६)
 हे वीर सुन्द ! तुम मेरे भाई हो और सभी विषयों में
 तुम मेरे विधातपति हो । अतः आन मैं तुमसे जो बहता हूँ

तद्दाम्यद्य यद्वाक्यं तच्छ्रुत्वा यत्क्षमं कुरु ॥ ७७
 दुर्जयोऽसौ रणपटुर्धर्मात्मा कारणात्तरैः ।
 समासते हि हृदये पद्माक्षी शैलनन्दिनी ॥ ७८
 तदुत्तिष्ठस्व गच्छामो यत्रास्ते चारुहासिनी ।
 तत्रैना मोहयिष्यामि हररूपेण दानव ॥ ७९
 भवान् भवस्यानुचरो भव नन्दी गणेश्वरः ।
 ततो गत्वाऽथ भूक्त्वा तां जेष्यामि प्रथमान् सुरान् ॥ ८०
 इत्येवमुक्ते वचने षाटं सुन्दोऽभ्यभाषत ।
 समन्नायत शैलादिन्धकः शंकरोऽप्यभूत् ॥ ८१
 नन्दिरुद्रौ ततो भूत्वा महासुरचमूपती ।
 सप्तमौ मन्दरगिरिं प्रहारैः क्षतविग्रहौ ॥ ८२
 हस्तमालम्ब्य सुन्दस्य अन्धको हरमन्दिरम् ।
 विवेश निर्विशङ्केन चित्तेनासुरसत्तमः ॥ ८३
 ततो गिरिसुता दूरादायान्त वीक्ष्य चान्धकम् ।
 महेश्वरवपुश्छत्रं प्रहारैर्जर्जरच्छविम् ॥ ८४
 सुन्दं शैलादिरूपस्थमवष्टभ्याविशत् ततः ।

उत्ते सुनकर यथाशक्ति पूर्ण करो । (७७)
 किसी कारणवश यह रणपटु धर्मात्मा दुर्जेय है । मेरे
 हृदय मे कमलनयनी पार्वती समासीन है । (७८)
 अत बडो । हम यहाँ चले जहाँ वह सुहासिनी
 स्थित है । हे दानव ! वहाँ मैं शङ्कर के रूप से उत्ते
 मोहित करूँगा । (७९)

तुन शङ्कर का अनुचर गणेश्वर नन्दी बनो । तदनन्तर
 वहाँ जाकर उसका भोगकर प्रथमों एव देवों को
 जीतूँगा । (८०)

ऐसा कहने पर सुन्द ने कहा—ठीक है । तदनन्तर वह
 शैलादि (नन्दी) बन गया एव अन्धक शिव बन गया । (८१)

तदनन्तर महासुर (अन्धक) ए सेनापति (सुन्द)
 प्रहारों से क्षत विक्षत शरीर वाले रुद्र और नन्दी का रूप
 धारण कर मन्दर गिरि पर पहुँचे । (८२)

सुन्द का हाथ पकड़कर असुरश्रेष्ठ अन्धक निर्भयचित्त
 से महादेव के मन्दिर में प्रविष्ट हुआ । (८३)

तदनन्तर शैलादि नन्दी के वेश में स्थित सुन्द को पकड़कर
 प्रहारों से जर्जरित महादेव के शरीर में प्रच्छन्न अन्धक को
 दूर से आते हुए देखकर पार्वती ने यशस्विनी मालिनी,

तं दृष्ट्वा मालिनीं प्राह सुयशां विजयां जयाम् ॥ ८५
 जये पश्यस्व देवस्य मदर्थे विग्रहं कृतम् ।
 शत्रुभिर्दानववरैस्तदुत्तिष्ठस्व सत्वरम् ॥ ८६
 घृतमानय पौराणं वीजिकां लणणं दधि ।
 त्रणभङ्गं करिष्यामि स्वयमेव पिनाकिनः ॥ ८७
 कुरुष्व शीघ्रं सुयशे स्वभर्तुर्त्रणनाशनम् ।
 इत्येवमुक्त्वा वचनं समुत्थाय वरामनात् ॥ ८८
 अभ्युद्ययौ तदा भक्त्या मन्यमाना वृषध्वनम् ।
 शूलपाणेस्ततः स्थित्वा रूपं चिह्नानि यत्नतः ॥ ८९
 अन्धियेष ततो ब्रह्मन्नोभौ पार्श्वस्थितौ वृषौ ।
 सा ज्ञात्वा दानवं रौद्रं मायाच्छादितनिग्रहम् ॥ ९०
 अपयानं तदा चक्रे गिरिराजसुता मुने ।
 देव्याश्चिन्तितमाज्ञाय सुन्दं त्यक्त्वान्धकोऽसुरः ॥ ९१
 समाद्रवत वेगेन हरकान्तां विभावरीम् ।
 समाद्रवत दैतयो येन मार्गेण साऽगमत् ॥ ९२
 अपस्कारान्तरं भञ्जत् पादस्तुतिभिराकुलः ।

विजया तथा जया से कहा— (८४ ८५)

हे जये ! देखो । दानव-शत्रुओं ने मेरे लिए स्वामी का
 शरीर कैसा कर डाला है । अत शीघ्र बडो । (८६)

पुराना घृत, बीजिका, लणण एव दधि लाओ । मैं
 स्वय ही पिनाकी शकर के त्रणों को भूँगी । (८७)

हे यशस्विनी ! शीघ्र अपने स्वामी के पावों को भरो ।
 ऐसा कहते हुए आसन से उठकर उन्हें वृषभ्वज मालती हुई
 वे भक्ति पूर्वक उसके समीप गईं । तदनन्तर खडी होकर
 वे शकर के रूप रथ लक्ष्णों को भलीभाँति देखने
 लगीं । हे ब्रह्मन् ! उन्होंने देखा कि उनके पार्व मे स्थित
 दोनों वृष नहीं हैं । अत उन्हें ज्ञात हो गया कि यह
 माया से प्रच्छन्न शरीर वाला भयङ्कर दानव है । (८८ ९०)

हे मुने ! तदनन्तर गिरिराजपुत्री भाग गईं । देवी
 के विचार को जानकर अन्धकसुर सुन्द को छोड़कर वेग
 पूर्वक शकर प्रिया विभावरी के पीछे वही मार्ग से दौड़ने
 लगा जिससे वे गई थीं । (९१ ९२)

चरणचपेटों से राह के अवरोधों को धूर धूर करते हुए

तमापवन्तं दृष्ट्वैव गिरिजा प्राद्रवद् मयात् ॥ ९३
 गृहं त्यक्त्वा ह्यपवनं सखीभिः सहिता तदा ।
 तत्राप्यनुजगामामौ मदान्धो मुनिपुंगव ॥ ९४
 तथापि न शशापैनं तपसो गोपनाय तु ।
 तद्भयादाविशद् गौरी श्वेतार्कंडसुमं शुचि ॥ ९५
 त्रिजयाद्या महागुल्मे संप्रयाता लयं ह्यने ।
 नष्टायामथ पार्वत्यां भूयो हैरण्यलोचनिः ॥ ९६
 मुन्दं हस्ते समादाय स्वसैन्यं पुनरागमत् ।
 अन्धके पुनरायाते स्ववलं मुनिसत्तम ॥ ९७
 प्रावर्तत महायुद्धं प्रयासुरयो रथ ।
 ततोऽमरगणश्रेष्ठो विष्णुश्चक्रगदाधरः ॥ ९८
 निजघानासुररथलं शंकरप्रियकाम्यया ।
 शार्ङ्गचापञ्चुतेर्नाणैः सत्पृथा दानवर्षभाः ॥ ९९
 पञ्च पट् सप्त चाष्टौ वा घ्नन्पादैर्धना इव ।
 गदया काश्चिद्वधधीतु चक्रेणान्यान् जनार्दनः ॥ १००
 खड्गेन च चकृतीन्यात् दृष्ट्याऽन्यान् भस्मसाद् व्यधात् ।

वह अमाकुलतापूर्वक दौड़ा। उसे आते देख गिरिजा भय से भार्गी। (९३)

हे मुनिपुंगव ! तदनन्तर देवी सत्रियों के साथ गृह छोड़कर उपवन में चली गयीं। वहाँ भी मदान्ध (अन्धक) ने उनका अनुसरण किया। (९४)

इतने पर भी अपने तप की रक्षा के लिए उन्होंने उसे शाप नहीं दिया। गौरी उसके भय से पवित्र शुश्रूष अर्पणुष्य मे लीन हो गयीं। (९५)

हे मुने ! विजया आदि भी यनी श्राद्धियों मे लीन हो गयीं। तदनन्तर पार्वती के क्रुम हो जाने पर हिरण्या क्षुपत्र (अधक) सुन्द का हाथ पकड़कर पुन अपनी सेना में चला गया। हे मुनिसत्तम ! अन्धक के पुन अपनी सेना में लौट आने पर प्रमथों एव असुरों मे महायुद्ध होने लगा। तदनन्तर सुश्रेष्ठ चक्रगदाधर विष्णु शङ्कर का प्रिय करने की वामना से असुर सेना वा वध करने लगे। शार्ङ्ग धनुष से निकले धाणों से पौंच, छ, सात या आठ श्रेष्ठ दानव उसी प्रकार विद्ध होते लगे जैसे सूर्य की किरणों से मेघ विद्ध होते हैं। जनार्दन ने बुद्ध को गदा से एव बुद्ध को चक्र से

हलेनाकुप्य चैमान्यान् मुसलेन व्यचूर्णयत् ॥ १०१
 गरुडः पक्षपाताभ्यां तुण्डेनाप्युरसाऽहनत् ।
 स चादिपुरुषो धाता पुराणः प्रपितामहः ॥ १०२
 भ्रामयन् विपुलं पद्मभ्यपिश्रत वारिणा ।
 संस्पृष्टा ब्रह्मतोयेन सर्वतीर्थमयेन हि ॥ १०३
 गणामरगणाश्चासन् नवनागशताधिकाः ।
 दानवास्तेन तोयेन संस्पृष्टाश्चाघारिणा ॥ १०४
 सवाहनाः क्षयं जग्मुः कुलिशेनेन पर्वताः ।
 दृष्ट्वा ब्रह्महरी युद्धे धातयन्तौ महासुरान् ॥ १०५
 घटकतुल्य बुद्धाव प्रगृह्य कुलिशं नली ।
 तमापवन्तं तं प्रेक्ष्य बलो दानवसत्तम ॥ १०६
 मृक्त्वा देवं गदापाणिं विमानस्ये च पञ्चजम् ।
 शक्रमेवाद्रवद् योद्धुं हृष्टिहृद्यम्य नारद ।
 बलवान् दानवपतिरजेयो देवदानरैः ॥ १०७
 तमापवन्तं त्रिदशेश्वरस्तु
 दोष्णा सहस्रेण यथानलेन ।

मार डाल। (९६-१००)

किन्हीं को रड्डग के द्वारा बाट डाला और किन्हीं को दृष्टि से भाम कर दिया तथा बुद्ध असुरों को हल द्वारा खींचकर मुसल से पूर्ण कर दिया। (१०१)

गरुड़ ने अपने दोनों पतों, चौंच तथा वक्ष से अनेक देवों को मार डाला। पुरातन आदिपुरुष धाता प्रपितामह ने महान् पद्म को घुमाते हुए सभी को जल से सिद्धित किया। सर्वतीर्थमय ब्रह्मतोय वा स्पर्श होने से गण एवं देवता लोग सौ गुना हाविया से अधिक बलवान् हो गए। तथा उस पापहारी जल के स्पर्श से वाहन-सहित दानव इस प्रकार नष्ट होने लगे जैसे वज्र से पर्वत नष्ट होते हैं। ब्रह्मा एव विष्णु को युद्ध मे महासुरों को मारते देखकर बलवान् इन्द्र भी अपना वज्र लेकर दीड़े। हे नारद ! उन्हें आते देखकर देवों तथा दानवों से अनेय दानवश्रेष्ठ बलवान् दानवपति बल देव गदाधर एवं विमानरथ ब्रह्मा को छोड़कर बुद्धि को उठाये हुए इन्द्र से क्षी लड़ने के लिए दीड़ा। (१०२-१-७)

उसे आते देव त्रिदशेश्वर इन्द्र ने सहस्र मुनाओं से अपनी शक्ति भर वज्र को घुमाते हुए बल के मत्कर परदे मूढ।

वज्रं परिभ्राम्य बलस्य मूर्ध्नि
 चिक्षेप हे मूढ हतोऽस्युदीर्य ॥ १०८
 स तस्य मूर्ध्नि प्रवरोऽपि वज्रो
 जगाम तूर्णं हि सहस्रधा घृणे ।
 बलोऽद्रवद् देवपतिश्च भीतः
 पराह्मुखोऽभूत् समरान्महर्षे ॥ १०९
 तं चापि जम्भो विष्णुखं निरीक्ष्य
 भूत्वाऽग्रतः प्राह न युक्तमेवत् ।
 तिष्ठस्व राजाऽसि चराचरस्य
 न राजधर्मे गदितं पलायनम् ॥ ११०
 सहस्राक्षो जम्भवाक्यं निशम्य
 भीतस्तूर्णं विष्णुमागामहर्षे ।
 उपेत्याह श्रूयता वाक्यमीश
 त्वं मे नाथो भूतभव्येश पिण्णो ॥ १११
 जम्भस्तर्जयतेऽस्यर्थं मां निरायुधमीक्ष्य हि ।
 आयुधं देहि भगवन् त्वामहं शरणं गतः ॥ ११२
 तमुवाच हरिः शक्र त्वक्त्वा दर्पं व्रजायुना ।

तुम मारे गये' कह कर केका । (१०८)
 हे मुनि! वह श्रेष्ठ वज्र भी उसके शिर पर शीघ्र
 हजारों खण्डों में विभक्त हो गया। बल (इन्द्र की
 ओर) दौड़ा। हे महर्षि! भयभीत होकर देवराज युद्ध से
 पराहमुख हो गये। (१०९)
 उन्हें विमुख होते देख जम्भ ने आगे आकर कहा—
 यह उचित नहीं है। रक्षिण, आप चराचर के राजा हैं।
 राजधर्म में पलायन करने का विधान नहीं है। (११०)
 हे महर्षि! जम्भ का वचन सुनकर भयभीत इन्द्र शीघ्र
 विष्णु के समीप गये। वहाँ जाकर उन्होंने कहा—हे ईश!
 मेरी बात आप सुनें। हे भूत तथा भव्य के स्वामी विष्णु!
 आप मेरे नाथ हैं। (१११)
 निरायुध देखकर जम्भ मुझे अतिशय तर्जित
 कर रहा है। हे भगवन्! आप मुझे आयुध प्रदान करें। मैं
 आपकी शरण में आया हूँ। (११२)
 विष्णु ने इन्द्र से कहा—इस समय दर्प छोड़कर तुम
 अग्नि के समीप जाकर उनसे आयुध की प्रार्थना करो।
 वे निरसन्देह तुम्हें प्रदान करेंगे। (११३)

प्रार्थयस्वायुधं वह्निं स ते दास्यत्यतंशयम् ॥ ११३
 जनार्दनवचः श्रुत्वा शक्रस्त्वरितविक्रमः ।
 शरणं पावकमगादिदं चोवाच नारद ॥ ११४
 शक्र उवाच ।
 निम्नतो मे बलं वज्रं कृशानो शतधा गतम् ।
 एष चाहूयते जम्भस्तस्माद्देहायुध मम ॥ ११५
 पुलस्त्य उवाच ।
 तमाह भगवान् वह्निं प्रीतोऽस्मि तव वासव ।
 यत्त्वं दर्पं परित्यज्य मामेव शरणं गतः ॥ ११६
 इत्युवाचै स्वशक्त्यास्तु शक्तिं निष्क्राम्य भावतः ।
 प्रादादिन्द्राय भगवान् रोचमानो दिव गतः ॥ ११७
 तामादाय तदा शक्तिं शतघण्टां सुदरुणाम् ।
 प्रत्युद्ययौ तदा जम्भं हन्तुकामोऽरिमर्दनः ॥ ११८
 तेनातिशयसा दैत्यः सहसैवामितंद्रुतः ।
 क्रोधं चक्रे तदा जम्भो निजघान गजाधिपम् ॥ ११९
 जम्भमुष्टिनिपातेन भयङ्कुरम्भकटो गजः ।
 निपपात यथा शैलः शक्रवज्रहतः पुरा ॥ १२०

हे नारद! जनार्दन की बात सुनकर शीघ्र गति वाले
 इन्द्र अग्नि की शरण में गये और यह कहा। (११४)
 इन्द्र ने कहा—हे अग्नि! बल को मारने में मेरा वज्र
 सैन्धों खण्ड हो गया। यह जम्भ मुझे ललकार रहा है।
 अब आप मुझे आयुध प्रदान करें। (११५)
 पुलस्त्य ने कहा—भगवान् वह्निं ने उनसे कहा—हे
 वासव! मैं आपके ऊपर प्रसन्न हूँ। क्योंकि आप दर्प को
 छोड़ कर मेरी शरण में आये हैं। (११६)
 ऐसा कहने के उपरान्त प्रकाशमान भगवान् अग्नि ने
 भावपूर्वक अपनी शक्ति से एक अन्य शक्ति निकाल कर इन्द्र
 को दिया एव स्वर्ग चले गये। (११७)
 शत्रुमर्दन इन्द्र उस शतघण्टाओं से युक्त भीषण शक्ति
 को लेकर जम्भ को मारने के लिए गये। (११८)
 उन अति यशस्वी के सहसा पीछा करने पर जम्भ ने
 क्रोधपूर्वक गजाधिप (पिरावत) पर प्रहार किया। (११९)
 जम्भ को सुट्टी के प्रहार से हाथी या दुग्भस्थल भग्न
 हो गया। तदनन्तर वह इस प्रकार गिर पड़ा जैसे पूर्वकाल
 में इन्द्र के वज्र से आहत पर्वत गिरता था। (१२०)

पतमानाद् द्विपेन्द्रात्तु शक्रश्चाप्लुत्य वेगवान् ।
 त्यक्त्वाैव मन्दरगिरिं पपात चसुधातले ॥ १२१
 पतमानं हरिं सिद्धाधारणाश्च तदाश्रुवान् ।
 मा मा शक्र पतस्वाद्य भूतके तिष्ठ वासव ॥ १२२
 स तेषां वचनं श्रुत्वा योगी तस्यै क्षणं तदा ।
 ग्राह चैतान् कथं योत्स्ये अपत्रः शत्रुभिः सहः ॥ १२३
 तमूचुर्देवगन्धर्वा मा विपादं ब्रजेश्वर ।
 युष्यस्व त्वं समास्त्रमेपयिष्याम यद् रथम् ॥ १२४
 इत्येवमुक्त्वा विपुलं रथं स्वस्तिकलक्षणम् ।
 वानरभ्यजस्युक्तं हरिभिर्हरिभिर्भुतम् ॥ १२५
 शुद्धजाम्बूनदमयं किङ्किणीजालमण्डितम् ।
 शक्राय प्रेषयामासुर्विधावसुपुरोगमाः ॥ १२६
 तमागतमुदीक्ष्याथ हीनं मारयिना हरिः ।
 ग्राह योत्स्ये कथं युद्धे संयमिष्ये कथं हयान् ॥ १२७
 यदि कश्चिद्दि सारथ्यं करिष्यति ममाधुना ।
 ततोऽहं घातये शत्रून् नान्यथेति कथंपन ॥ १२८

गिर रहे गजेन्द्र से इन्द्र वेग पूर्वक उड़ले एव मन्दर पर्वत को भी छोड़कर पृथ्वी पर गिरे। (१२१)
 तदनन्तर गिर रहे इन्द्र से सिद्धों एव चारणों ने कहा—हे इन्द्र ! पृथ्वी पर न गिरें। आप रुकें। (१२२)
 वनरी बात सुनकर योगी इन्द्र उस समय क्षणभर के लिए ठहर गए और बोले—मैं वाहन रहित होकर इन शत्रुओं से कैसे लड़ूँगा ? (१२३)
 देवताओं और गन्धर्वों ने उत्तर दिया—हे ईश्वर ! आप विपण्य न हों। हम लोग जो रथ भेज रहे हैं, उस पर आरूढ़ होकर आप युद्ध करें। (१२४)
 ऐसा कहकर विश्वासु आदि ने स्वस्तिकारार, कपिष्यज संयुक्त, हरितवर्ण के अर्धों से युक्त, शुद्ध रत्नों से नितित तथा किङ्किणीजालमण्डित विपुल रथ इन्द्र के लिये भेजा। (१२५-१२६)
 इन्द्र उस सारथिरहित रथ को देखकर बोले—कैसे मैं युद्ध में लड़ूँगा और कैसे पौदों को सत्य कहूँगा ? (१२७)
 इस समय यदि कोई मेरे सारथि का नाम करे तो मैं क्षणों का नाश कर सकता हूँ, अन्य किसी प्रकार नहीं। (१२८)
 वदनन्तर गन्धर्वों ने कहा—हे विभो ! हमारे पास कोई

ततोऽश्रुवंस्ते गन्धर्वा नात्माकं सारथिर्विभो ।
 वियते स्वयमेवाश्वस्त्वं संयन्तुमिहार्हसि ॥ १२९
 इत्येवमुक्ते भगवांस्त्यक्त्वा स्वन्दनमृत्तमम् ।
 क्षमातलं निपपातैव परिभ्रष्टस्रगन्धरः ॥ १३०
 चलन्मौलिर्मुक्तकचः परिभ्रष्टायुधाङ्गदः ।
 पतमानं सहस्राक्षं दृष्ट्वा भूः समकम्पत ॥ १३१
 प्रथिच्यां कम्पमानायां शमीरुपैस्तपरिजनी ।
 भार्याऽश्रुवीत् प्रभो बालं वहिः कुरु यथातुष्टम् ॥ १३२
 स तु शीलान्वचः श्रुत्वा किमर्थमिति चाश्रुवीत् ।
 सा चाह श्रुयतां नाय देवज्ञपरिभाषितम् ॥ १३३
 यदेयं कम्पते भूमिस्तदा प्रक्षिप्यते वहिः ।
 यद्वाह्यतो मुनिश्रेष्ठ तद् भवेद् द्विगुणं मुने ॥ १३४
 एतद्वाक्यं तदा श्रुत्वा बालमादाय पुत्रकम् ।
 निराशङ्को वहिः शीघ्रं प्रक्षिपत् क्षमातले द्विजः ॥ १३५
 भूयो गोगुलार्थाय प्रविष्टो भार्याया द्विजः ।
 निचारितो गता वेला अर्द्धहानिर्भविष्यति ॥ १३६

सारथि नहीं है। आप रथय अर्धों को सत्य कर सकते हैं। (१२९)
 ऐसा कहने पर भगवान् इन्द्र अस्तव्यस्त माझ और बरजों के साथ पृथ्वी पर गिरे। (१३०)
 (पृथ्वी पर गिरते समय इन्द्र ऋ) शिर हिल रहा था, वनके केश विरार गये थे एव वनके आमुध तथा अङ्गद नीचे गिर पड़े थे। इन्द्र को गिरते देख पृथ्वी कम्पित होने लगी। (१३१)
 पृथ्वी के कंपने पर शमीरु ऋषि की तपस्विनी पत्नी ने कहा—प्रभो ! बालक को सुगुणपूर्वक वाहर ले जाइये। (१३२)
 उन्होंने शीला की बात सुनकर कहा—क्यों ? वसने कहा—हे नाथ ! सुनिये, ज्यातिषियों का कथन है कि इस भूमि के कम्पन होने पर वस्तुएँ बाहर निशाल दी जाती हैं। क्योंकि हे मुनिश्रेष्ठ ! उस समय बाहर स्थित वस्तु द्विगुणित हो जाती है। (१३३-१३४)
 इस वाक्य को सुनकर उस समय ब्राह्मण ने अपने बालक पुत्र को लेकर तत्काल शीघ्रपहित होकर बाहर भूतल पर फेंक दिया। (१३५)
 पुन दो गायों के लिये भीवर प्रथित होने पर पत्नी ने ब्राह्मण को मना करने हुए कहा—बेटा समाप्त हो गईं थय

इत्येवमुक्ते देवेषु बहिर्निर्गम्य वेगवान् ।
 ददर्श चालद्वितयं सपरूपमवस्थितम् ॥ १३७
 तं दृष्ट्वा देवताः पूज्य भार्या चाद्भुतदर्शनाम् ।
 प्राह तत्त्वं न विन्दामि यत् पृच्छामि वदस्व तत् ॥ १३८
 चालस्यास्य द्वितीयस्य के भविष्यद्गुणा वद ।
 भाग्यानि चास्य यद्योऽतं कर्म तत् कथयाधुना ॥ १३९
 साऽप्रवीक्षाद्य ते वक्ष्ये वदिष्यामि पुनः प्रभो ।
 सोऽप्रवीद् वद मेऽद्यैव नोचेन्नाशनामि भोजनम् ॥ १४०
 सा प्राह श्रूयतां ब्रह्मन् वदिष्ये वचनं हितम् ।
 कवचरेणाद्य वत्सृष्टं भाव्यः कारुरयं किल ॥ १४१
 इत्युक्तवति वाक्ये तु चाल एव त्वचेतनः ।
 जगाम साद्यं शक्रस्य कर्तुं सौत्यविशारदः ॥ १४२
 तं ब्रजन्तं हि गन्धर्वा विश्वावसुपुरोगमाः ।
 श्रात्वेन्द्रस्यैव साहाय्ये तेजसा समवर्धयन् ॥ १४३
 गन्धर्वतेजसा युक्तः शिशुः शक्रं समेत्य हि ।

इस समय अर्धांश की हानि हो जायेगी । (१३६)
 हे देवर्षि ! ऐसा बहने पर (ब्राह्मण ने) वेगपूर्वक
 बाहर निकल कर देखा कि समानरूप के दो बालक पड़े
 हुए हैं । (१३७)

उन्हें देवदरर उसने देवताओं की पूजा करने के
 उपरान्त अपनी अद्भुत ज्ञानी भार्या से कहा—मैं
 इसका वचन नहीं जानता । अतः मैं जो पूछता हूँ उसे
 बतलाओ । (१३८)

यद् बतलाओ कि इस दूसरे बालक में कौन से गुण
 होंगे ? इसके भाग्यो एवं कर्मों को भी तुम अभी
 बतलाओ । (१३९)

पत्नी ने कहा—हे प्रभो ! मैं तुम्हें आज नहीं
 बतलाऊँगी । दूसरे समय बहूँगी । उन्होंने कहा—आज ही
 मुझे बतलाओ, अन्यथा मैं भोजन नहीं करूँगी । (१४०)

उसने कहा—हे ब्रह्मन् ! सुनिये, मैं सही बात बतती
 हूँ । आपने कारला पूर्वक जो पूछा है उससे यह
 (बालक) निश्चय ही वाक (जिन्सी) होगा । (१४१)

पेसा बदे जाने पर अर्धोष (अथवा मे) होने
 हुए भी वह बृन्दर्मे बुद्धि बालक इन्द्र की साहाय्यता
 हेतु गया । (१४२)

विष्वावसु आदि गन्धर्वों ने इन्द्र की सहाय्यता हेतु जा रहे
 उस बालक को जानकर उससे तेज हो बढ़ाया । (१४३)

प्रोवाचैहोहि देवेश प्रियो यन्ता भवामि ते ॥ १४४
 तच्छ्रुत्वास्य हरिः प्राह कस्य पुत्रोऽसि बालक ।
 संयन्ताऽसि कथं चाश्वान् संशयः प्रतिभाति मे ॥ १४५
 सोऽब्रवीद्विषतेजोत्थं क्ष्माभवं विद्धि वासव ।
 गन्धर्वतेजसा युक्तं वाजियानविशारदम् ॥ १४६
 तच्छ्रुवा भगवाञ्छक्रः सं भेजे योगिनां वरः ।
 स चापि विप्रतनयो मातलिर्नामविश्रुतः ॥ १४७
 ततोऽधिह्रुदस्तु रथं शक्रस्त्रिदशपुंगवः ।
 रश्मीन् शमीकतनयो मातलिः प्रगृहीतवान् ॥ १४८
 ततो मन्दरमागम्य विवेश रिपुवाहिनीम् ।
 प्रविशन् दृष्ट्वा श्रीमान् पतितं कार्मुकं महत् ॥ १४९
 सशरं पञ्चवर्णामं सितरक्तासितारुणम् ।
 पाण्डुच्छायं सुरश्रेष्ठस्तं जप्राह समार्गणम् ॥ १५०
 ततस्तु मनसा देवान् रजःसत्त्वमोमपान् ।
 नमस्कृत्य शरं चापे साधिज्ये विनियोजयत् ॥ १५१

गन्धर्वों के तेज से सम्पन्न शिशु ने इन्द्र के
 समीप जाकर कहा—हे देवेश ! आइये, मैं आपका प्रिय
 साथी बनूँगा । (१४४)

उसे सुनकर इन्द्र ने कहा—हे बालक ! तुम किसके
 पुत्र हो ? कैसे तुम अश्वों या सायमान करोगे ? इस विषय
 में मुझे संशय हो रहा है । (१४५)

उसने कहा—हे वासव ! मुझे ऋषि के तेज से उत्पन्न,
 भूमि से उद्भूत एवं गन्धर्वों के तेज से युक्त अश्वयान-
 विशारद समझो । (१४६)

उसे सुनकर योगिश्रेष्ठ भगवान् इन्द्र आकाश में गये एवं
 मातलि नाम से प्रसिद्ध वे ब्राह्मणपुत्र भी आकाश में गए ।
 (१४७)

तदनन्तर देव भेष्ट इन्द्र रथ पर आरूढ़ हुए एवं
 शमीरुपुत्र मातलि ने प्रमद (लगाम) ग्रहण किया । (१४८)

तदुपरान्त मन्दर पर पहुँचकर वे रिपुमेता में प्रविष्ट
 हुए । प्रवेश करने समय दूरभेष्ट भीमान् (इन्द्र) ने एक
 बाणयुक्त, रवेत, रक्त, दृष्ट्य, अरुण एवं पाण्डु इन पाँच
 वर्णों वाले महान् धनुष को पकड़ा देकर बाणतटित उसे
 टिका लिया । (१४९-१५०)

तदनन्तर रज सत्त्वमोमपान (मद्य, पिप्लु और मदेस)
 देवों को मन से नमस्कार कर उन्होंने प्रत्यन्ता बढ़ा कर
 बाण विनियोजित किया । (१५१)

ततो निश्चेरुत्पुत्राः शरा बर्हिणवाससः ।
 प्रलेशविष्णुनामाङ्गाः सूदन्यतोऽसुरान् रणे ॥ १५२
 आकाशं विदिशः पृथ्वीं दिशश्च स शरीत्करैः ।
 सहस्राक्षोऽतिपटुभिश्चादयामास नारद ॥ १५३
 गतो विद्वो ह्यो भिन्नः प्रथिव्यां पवित्रो रथः ।
 महामात्रो घरां प्राणः सद्यः सीदञ्छरातुरः ॥ १५४
 पदातिः पतितो भूम्यां शक्रमार्गताडितः ।
 हतप्रधानभृयिष्ठं वलं तदभवद् रिपोः ॥ १५५

तं शक्रवाणाभिहतं दुरासदं
 सैन्यं समालक्ष्य तदा कुजम्भः ।

जम्भामसुरस्थापि सुरेशमव्ययं
 प्रजग्मतुर्गृह्य गदे सुचोरे ॥ १५६

तावापतन्तौ भगवान् निरीक्ष्य
 सुदर्शनेनारिविनाशनेन ।

विष्णुः कुजम्भं निजघान वेगात्
 स स्यन्दनाद् गामगमद् गतासुः ॥ १५७

उससे ब्रह्मा, विष्णु महेश्वर के नामों से अङ्कित मयूर-
 पुच्छयुक्त अति बल बाण निकले और असुरों का विनाश
 करने लगे । (१५२)

हे नारद ! उन सहस्राक्ष ने अतिपटुतापूर्वक बाणों की
 वर्षा से आकाश, पृथ्वी, दिशाओं एवं विदिशाओं को
 आच्छादित कर दिया । (१५३)

हाथी विद्व हो गए, घोड़े विदीर्ण हो गये, रथ पृथ्वी
 पर गिर पड़े एवं बाणों से व्याकुल हाथी चालक क्लेशपूर्वक
 पृथ्वी पर पतित हो गया । (१५४)

इन्द्र के बाणों से आहत पदाति खोद्दा भूमि पर गिर पड़े ।
 शत्रु की सेना के अधिकांश प्रधान मारे गए । (१५५)

उस दुर्धर्ष सेना को इन्द्र के बाणों से निहत हुई देव
 कर असुर कुजम्भ और जम्भ मर्यकर गदा लेकर अविनाशी
 सुरेन्द्र की ओर दौड़े । (१५६)

उन दोनों को आते देखकर भगवान् विष्णु ने शत्रु-
 विनाशक सुदर्शनचक्र से वेगपूर्वक कुजम्भ को मारा । वह

तस्मिन् हते आतरि माधवेन
 जम्भस्ततः क्रोधवृशं जगाम ।

क्रोधान्वितः शक्रमुपाद्रवद् रणे
 सिंहं ययैषोऽतिविपन्नबुद्धिः ॥ १५८

तमापतन्तं प्रसमीक्ष्य शक्र-
 स्वयत्त्रैव चापं सशरं महात्मा ।

जग्राह शक्तिं यमदण्डकल्पां
 तामग्निदत्तां रिपवे ससर्ज ॥ १५९

शक्तिं सघण्टां कृतनिःस्वनां वै
 दृष्ट्वा पतन्तीं गदया जघान ।

गदां च कृत्वा सहसैव भस्मसाद्
 विभेद जम्भं हृदये च तूर्णम् ॥ १६०

शक्त्या स भिन्नो हृदये सुरारिः
 पपात भूम्यां विगतासुरेव ।

तं वीक्ष्य भूमौ पतितं विसंज्ञं
 दैत्यास्तु भीता विमृष्टा वभूवुः ॥ १६१

निष्प्राण होकर रथ से पृथ्वी पर गिर पड़ा । (१५७)

माधव द्वारा उस माई के मारे जाने पर जम्भ क्रोध
 के वशीभूत हो गया । क्रोधान्वित होकर वह युद्ध में इन्द्र
 की ओर इत प्रनार दौड़ा जैसे हतबुद्धि मृग सिंह की ओर
 दौड़ता है । (१५८)

उसे आते देखकर महात्मा इन्द्र ने धनुष बाण को
 छोड़ कर अग्नि द्वारा प्रदत्त यमदण्डतुल्य शक्ति को ग्रहण
 कर उसे शत्रु की ओर फेंका । (१५९)

शब्द करती हुई घण्टायुक्त शक्ति को देखकर (जम्भ ने)
 उस पर गदा से प्रहार किया । (उस शक्ति ने) गदा को
 सहसा भस्मशात् कर जम्भ का हृदय शीघ्र ही विदीर्ण
 कर दिया । (१६०)

शक्ति से हृदय के विदीर्ण हो जाने पर वह देवशत्रु
 निष्प्राण होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा । उसे निष्प्राण होकर
 पृथ्वी पर गिरा देखकर दैत्यगण भयभीत होकर
 पराङ्मुख हो गए । (१६१)

जन्मे हते दैत्यबले च भग्ने
गण्यस्तु हृष्टा हरिर्मर्चयन्तः ।

वीर्यं प्रशंसन्ति शतशतोश्च
स गोत्रभिर्च्छर्व्वमुपेत्य तस्यौ ॥ १६२

इति श्रीवामनपुराणे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४३ ॥

४४

पुलस्त्य उवाच ।
वस्मिस्तदा दैत्यबले च भग्ने
शुक्रोऽप्रवीदन्धकमासुरेन्द्रम् ।
एहोहि वीराय गृहं महासुर
योत्स्वाम भूयो हरमेत्य शैलम् ॥ १
तप्तुवाचान्धवो प्रह्वन् न सम्पद्भवतोदितम् ।
रगान्नैवापयास्यामि कुलं व्यपदिशन् स्वयम् ॥ २
पश्य त्वं द्विजशार्दूल मम वीर्यं सुदुर्धरम् ।
देवदानवगन्धर्वान् जेष्ये सेन्द्रमहेश्वरम् ॥ ३

जन्म के मारे जाने एवं दैत्य सेना के भग्न हो जाने पर सभी गण हरि का अर्चन एवं इन्द्र की पराक्रम की

इत्येवमुक्त्वा वचनं हिरण्याक्षसुतोऽन्धकः ।
समाश्वास्यान्नवीच्छंभुं सारथिं मधुराक्षरम् ॥ ४
सारथे वाहय रथं हराभ्याशं महाबल ।
यावन्निहन्मि वाणौघैः प्रमथामरवाहिनीम् ॥ ५
इत्यन्धकवचः श्रुत्वा सारथिस्तुरगांस्तदा ।
कृष्णवर्णान् महावेगान् कश्याऽभ्याहनन्धने ॥ ६
ते यत्नतोऽपि तुरगाः प्रेर्यमाणा इरं प्रति ।
जघनेष्ववसीदन्तः कृच्छ्रेणोद्बुध त रथम् ॥ ७
वहन्तस्तुरगा दैत्यं प्राप्ताः प्रमथवाहिनीम् ।

प्रशंसा करने लगे । वे इन्द्र शङ्कर के समीप जाकर रुढ़े हो गये । (१६२)

श्रीवामनपुराण में तैत्तिरीयो अथर्व्व समाप्त ॥४३॥

४४

पुलस्त्य ने कहा—उस समय दैत्य सेना के भग्न हो जाने पर शुक्र ने असुरेन्द्र अन्धक से कहा—हे वीर महासुर ! इस समय घर चलो । पुन पर्यंत पर आकर शङ्कर से युद्ध करोगे ।

(१)
अन्धक ने उनसे कहा—हे ब्रह्मन् ! आपने उचित बात नहीं कही । अपने कुल को कलङ्कित करते हुए मैं युद्ध से परापन नहीं करूँगा ।

(२)
हे द्विजश्रेष्ठ ! मेरा दुर्घर्ष वीर्य हैनिय । मैं इन्द्र और महेश्वर सहित सभी देवों, दानवों और गन्धर्वों को जीतूँगा ।

(३)
इस प्रकार के वचन को कहकर हिरण्याक्ष-पुत्र अन्धक

ने शम्भु (नामक) सारथि से मधुरवाणी से समाश्वासन देते हुये कहा—

(४)
हे महाबलशाली सारथि ! तुम रथ को महादेव के सामने ले चलो । मैं वाणों की वर्षा से प्रमथों एवं देवों की सेना को मारूँगा ।

(५)
हे सुने ! अन्धक का वचन सुनकर सारथि ने महावेगवान् कृष्णवर्ण के घोड़ों को घोड़े से मारा ।

(६)
शङ्कर के प्रति प्रयत्नपूर्वक घेरित किये जा रहे थे अथ जांघों में कीटा का अनुभव करते हुए कष्टपूर्वक उस रथ को धीरे रहे थे ।

(७)
दैत्य को दोने वाले थे अथ वायुवेग-मुक्त होने पर भी

संबलसेन साप्रेण वायुवेगसमा अपि ॥ ८
 ततः कार्मुकमानस्य वाणजालैर्गणेश्वरान् ।
 सुरान् संछादयामास सेन्द्रोपेन्द्रमहेश्वरान् ॥ ९
 गणेश्छादितमीर्ष्वयं बलं त्रैलोक्यरक्षिता ।
 सुरान् प्रोवाच भगवांश्चक्रपाणिर्जनादर्दनः ॥ १०
 विष्णुरूपाच ।

किं तिष्ठध्वं सुरश्रेष्ठा हतेनानेन वै जयः ।
 तस्मान्मद्वचन शीघ्रं त्रियतां वै जयेत्सवः ॥ ११
 श्वात्सन्तामस्य तुरगाः समं रथकुटुम्बिना ।
 भज्यतां स्पन्दनश्चापि त्रिरथः त्रियतां रिपुः ॥ १२
 त्रिरथं तु कृतं पश्चादेनं धक्ष्यति शंकरः ।
 नोपेक्ष्यः शत्रुरदिष्टो देवाचार्येण देवताः ॥ १३
 इत्पेवमुषताः प्रमथा वामुदेवेन सामराः ।
 चन्द्रवेगं सहेन्द्रेण सम चक्रधरेण च ॥ १४
 तुरगाणां सहस्रं तु मेधामानां जनार्दनः ।
 निमिषान्तरमात्रेण गदया विनिषोययत् ॥ १५

एक वर्ष से अधिक समय में प्रमथों की सेना में बहूँके । (८)
 तदनन्तर (अन्यक ने) घनुप को हुवाकर वाणसमूहों
 द्वारा गणेश्वरों पर इन्द्र, उपेन्द्र (विष्णु) तथा महेश्वर सहित
 सभी देवों को लक्ष्म्यादित कर दिया । (९)
 सेना की बाणों से आच्छादित देवदर प्रेलोक्यरक्षक
 चक्रपाणि भगवान् जनार्दन ने देवों से कहा । (१०)
 विष्णु ने कहा—हे सुरश्रेष्ठो ! आप लोग बैठे क्यों हैं ?
 इसके भारे जाने से ही विजय होगी । अतः विजयाराक्षी
 आप लोग शीघ्र मेरे धनतानुमार कार्य करें । (११)
 रथ में सारथि सहित इसके अर्धों को मार डालो एव
 रथ को तोड़कर शत्रु को रथहीन बना दो । (१२)
 रथहीन करने में उपरान्त शत्रु इसे भस्म करेगा ।
 हे देवों ! देवाचार्य घृष्टपति ने कहा हे कि शत्रु की उपेक्षा
 नहीं करनी चाहिए । (१३)
 वामुदेव के ऐसा कहने पर इन्द्र एवं विष्णु सहित
 प्रमथों तथा देवों ने वेगपूर्वक आक्रमण किया । (१४)
 जनार्दन ने क्षणमात्र में गदा व आपात से मेघ के
 समान बनी वा—सहस्र पौदों को मार डाला । (१५)
 इन्द्र ने मारे गये पौदों वाले रथ से सारथि को
 सीककर शक्ति द्वारा उसके हृदय में भिन्न कर दिया एवं

हताधात् स्पन्दनात् स्कन्दः प्रशुद्ध रथमारविम् ।
 शक्त्या विभिन्नहृदयं गतानुं व्यसृजद् भुवि ॥ १६
 विनायकाद्याः प्रमथाः समं शक्रेण दैवतैः ।
 राष्वजाश्वं रथं तूर्णमभञ्जन्त तपोधनाः ॥ १७
 सहसा स महातेजा विरयस्त्वज्य कार्मुकम् ।
 गदामादाय बलजानभिदुष्टाय दैवतान् ॥ १८
 पदान्यष्टौ ततो गत्वा मेघगम्भीरया गिरा ।
 स्थित्या प्रोवाच दैत्येन्द्रो महादेवं स हेतुमत् ॥ १९
 मिथो भवान् सहानीकरस्वसहायोऽस्मि साम्प्रतम् ।
 तथाऽपि त्वां विजेष्यामि पश्य मेऽद्य पराक्रमम् ॥ २०
 तदाश्वयं शंकरः श्रुत्वा सेन्द्रान्तुरगणांस्त्वदा ।
 प्रवृत्तना सहितान् सर्वान् स्वशरीरे न्यवेशयत् ॥ २१
 शरीरस्थास्तान् प्रमथान् कृत्वा देवांश्च शंकरः ।
 प्राह एषोहि दुष्टात्मन् अहमेकोऽपि संस्थितः ॥ २२
 तं दृष्ट्वा महादाशयं सर्वाभरणयुग्मम् ।
 दैत्यः शंकरसभ्यागाद् गदामादाय वेगवान् ॥ २३

निष्पन्न हो जाने पर उसे भूमि पर फेंक दिया । (१६)
 इन्द्र आदि देवों के साथ तपोधन विनायकादि
 प्रमथों ने शीघ्र प्यजा एवं अस्त्र सहित रथ को तोड़
 डाला । (१७)
 महातेजस्वी बलवान् (अन्यक) ने रथहीन होने
 पर घनुप को छोड़ दिया एवं गदा लेकर वह देवों की
 ओर दौड़ा । (१८)
 तदनन्तर आठ पग चलने के उपरान्त खड़े होकर
 दैत्येन्द्र ने मेघट्टय गम्भीर वाणी में महादेव से हेतुमुक्त
 वचन कहा । (१९)
 हे भि उक्त ! सम्प्रति तुम सेनायुक्त हो एवं मैं असहाय
 हूँ तथापि मैं तुमसे जैतूँगा । आज मेरा पराक्रम
 देखो । (२०)
 वमथा वचन सुनकर शंकर ने इन्द्र और ब्रह्मा के साथ
 सभी देवशत्रुओं को अपने शरीर में संनिविष्ट कर लिया । (२१)
 उन प्रमथों पर देवों को अपने शरीर में संनिविष्ट
 करने के उपरान्त शत्रु ने कहा—हे दुष्टात्मा ! जाओ,
 जाओ ! मैं लक्ष्मी गदा हूँ । (२२)
 समान देवों के विलयन का यह मरान् आशय
 देखने के उपरान्त वह दैत्य गदा लेकर वेगपूर्वक शत्रु

तमापवन्तं भगवान् दृष्ट्वा त्यक्त्वा वृषोत्तमम् ।
 शूलपाणिर्गिरिप्रस्थे पदातिः प्रत्यतिष्ठत् ॥ २४
 वेगेनैवापवन्तं च निभेदोरसि भैरवः ।
 दारुणं सुमहद् रूपं कृत्वा प्रैलोक्यभीषणम् ॥ २५
 दंष्ट्राकरालं रविकोटिसंनिभं
 मृगारिचर्माभिष्टुतं जटाधरम् ।
 भुजंगहारामलकण्ठकन्दरं
 विशार्धनाहुं सपडर्धलोचनम् ॥ २६
 एतादृशेन रूपेण भगवान् भूतभावनः ।
 निभेदं शृष्टुं शूलेन शुभदः शश्वतः शिनः ॥ २७
 सशूलं भैरवं गृह्य मन्दिनेष्वुरामि दानवः ।
 निवहारातिवेगेन श्रोत्रमात्रं महाहृत्ने ॥ २८
 ततः कर्णचिद् भगवान् संस्तभ्यात्मानमात्मना ।
 तूर्णमुत्पाटयामास शूलेन मगदं रिपुम् ॥ २९
 दैत्याधिपस्तवपि गर्दा हरमूर्ध्नि न्यपातयत् ।

के समीप गया ।

(२३)

भगवान् दृष्ट्वागि उसे आते देख भेष्ट वृषभ को
 छोड़कर पर्वत पर पीरल खड़े हो गए ।

(२४)

भैरव ने अतिभयङ्कर प्रैलोक्यभीषण रूप धारण
 पर वेगपूर्ण आ रहे (अन्यक था) बरस्यल विदीर्ण
 कर दिया ।

(२५)

(शङ्कर का तटराशीन रूप) भयङ्कर दाढ़ों से युक्त,
 कोटिभूयं के सदृश प्रकाशमान, इयाम्रचर्मावृत्त, जटामण्डित
 सर्प के हार से अलङ्कृत मीयाशाला, दस भुजाओं से युक्त
 तथा त्रिनेत्रसम्पन्न था ।

(२६)

इस प्रकार के रूप में संयुक्त शुभद, शश्वत,
 भूतभावन भगवान् शिन ने शूल द्वारा शत्रु का भेदन
 किया ।

(२७)

हे महाहृत्ने ! उर स्थल के विभेदित होने पर भी दानव
 शूलमण्डित भैरव को पकड़ कर एक कोस तक चन्दे स्तीच
 से गया ।

(२८)

तदनन्तर भगवान् ने शिरी प्रसार मन द्वारा त्वयं
 को उठाया एवं इन्द्रावृष्ट शूल में गतायुक्त शत्रु को
 मारा ।

(२९)

दैत्याधिप ने भी शङ्कर के मगद पर गया था
 प्रहार किया एवं शूल को हाथों से पकड़ कर वर ऊपर

कराम्यां गृह्य शूलं च समुत्पतत दानवः ॥ ३०
 संस्थितः स महायोगी सर्वाधारः प्रजापतिः ।
 गदापातक्ष्वाद् भूरि चतुर्धाऽस्तृगयापवत् ॥ ३१
 पूर्वधारासमुद्भूतो भैरवोऽप्रिसमप्रभः ।
 विद्याराजेति विख्यातः पद्ममालाविभूषितः ॥ ३२
 तथा दक्षिणधारोत्यो भैरवः प्रेतमण्डितः ।
 कालराजेति विख्यातः कृष्णाञ्जनसमप्रभः ॥ ३३
 अथ प्रतीचीधारोत्यो भैरवः पत्रभूषितः ।
 अतसीधुसुमप्रख्यः कामराजेति विश्रुतः ॥ ३४
 उदग्धाराभवधान्यो भैरवः शूलभूषितः ।
 सोमराजेति विख्यातश्चक्रमालाविभूषितः ॥ ३५
 धृतस्य रुधिरात् जातो भैरवः शूलभूषितः ।
 स्वच्छन्दराज्ञो विख्यातः इन्द्रायुधसमप्रभः ॥ ३६
 भूमिस्थाद् रुधिराज्ञातो भैरवः शूलभूषितः ।
 रूपातो ललितराजेति सीमाञ्जनसमप्रभः ॥ ३७

उद्धला ।

(३०)

सथके आधार के महायोगी प्रजापति खड़े रहे किन्तु,
 गदापात से हुए छत द्वारा चार धाराओं में अत्यन्त रुधिर
 प्रवाहित होने लगा ।

(३१)

पूर्व दिशा की धारा से अग्नि के समान प्रभ था-ने
 पद्ममाता से विभूषित 'विद्याराज' नाम से विख्यात भैरव
 उत्पन्न हुये ।

(३२)

तथा दक्षिण की धारा से प्रेतमण्डित कृष्णा-
 ञ्जन तुल्य प्रभावात् 'कालराज' नाम से प्रसिद्ध भैरव उत्पन्न
 हुए ।

(३३)

तदनन्तर पश्चिम की धारा से आसीपुत्र के सदृश पत्र-
 भूषित 'शामराज' नाम से प्रसिद्ध भैरव उत्पन्न हुये ।

(३४)

उत्तर की धारा से चक्रमालाविभूषित शूलमण्डित
 'सोमराज' नाम से प्रसिद्ध अथ भैरव उत्पन्न हुए ।

(३५)

धन के शिपर से इन्द्रायुध के समान शान्ति पाते
 शूलभूषित 'स्वच्छन्दराज' नाम से विख्यात भैरव
 उत्पन्न हुये ।

(३६)

भूमि पर गिरे हुए रुधिर से सीमाञ्जन के सदृश
 शूलभूषित 'ललितराज' नाम से विख्यात
 भैरव उत्पन्न हुए ।

(३७)

एवं हि सन्नम्नोऽसौ कथ्यते भैरवो मुने ।
 विमराजोऽष्टमः प्रोक्तो भैरवाष्टकमुच्यते ॥ ३८
 एवं महात्मना दैत्यः शूलप्रोतो महासुरः ।
 छत्रवद् धारितो ब्रह्मन् भैरवेण त्रिशुलिना ॥ ३९
 तस्यासुगुह्यगणं ब्रह्मच्छूलभेदादवापतत् ।
 येनाकण्ठ महादेवो निमग्नः सप्तमूर्तिमान् ॥ ४०
 ततः स्वेदोऽभवद् भूरि श्रमजः शंकरस्य तु ।
 ललाटकलके तस्माज्जाता कन्याऽसृगाप्सुता ॥ ४१
 यद्गम्यां न्यपतद् विप्र स्वेदविन्दुः शिवाननात् ।
 तस्माद्भ्रारपुञ्जाभो बालकः समजायत ॥ ४२
 स बालस्तुपितोऽत्यर्थं पपौ रधिरमान्धकम् ।
 कन्या चोत्कृत्य संजातमसृग्विलिहोऽद्भुता ॥ ४३
 ततस्तामाह बालार्कप्रभा भैरवमूर्तिमान् ।
 शंकरो वरदो लोके श्रेयोऽर्थाय पचो महत् ॥ ४४
 त्वां पूजयिष्यन्ति सुरा श्रवणः पितरोरगाः ।
 यक्षविद्याधराद्यैव मानवाश्च शुभकरि ॥ ४५
 त्वां स्तोष्यन्ति सदा देवि बलिपुष्पोत्कारीः करैः ।

चर्चिकेति शुभं नाम यस्माद् रुधिरचर्चिता ॥ ४६
 इत्येवमुक्ता वरदेन चर्चिका
 भूतासुजाता हरिचर्मवासिनी ।
 महीं समन्ताद् भिचचार मुन्दरी
 स्थानं गता ह्येद्गुलताद्रिमुचमम् ॥ ४७
 तस्यां गतायां वरदः कुचम्य
 प्रादाद् वरं सर्ववरोचमं यत् ।
 ब्रह्माधिपत्यं जगतां शुभाशुभ
 भविष्यति रजदशगं महात्मन् ॥ ४८
 हरोऽन्धकं वर्षसहस्रमात्रं
 दिव्यं स्वनेत्रार्कद्रुताद्यनेन ।
 चकार संशुष्पतनुं त्वशोणितं
 त्वगतिशेषं भगवान् स भैरवः ॥ ४९
 तत्राग्निना नेत्रभवेन शुद्धः
 स मुक्तपापोऽगुरुराह् पभूव ।
 ततः प्रजानां बहुरूपमीशं
 नायं हि सर्वस्य चराचरस्य ॥ ५०

हे मुनि ! इस प्रकार इन भैरव का सात रूप कहा जाता है । 'विमराज' नाम के अष्टम भैरव पहले जाने हैं । इस प्रकार आठ भैरव पहले जाने हैं । (३८)
 हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार महात्मा त्रिशुली भैरव ने शूलविद्ध महासुर दैत्य को छत्र की तरह धारण किया । (३९)
 हे ब्रह्मन् ! शूलभेद से उसका अर्थाधिक रुधिर गिरा । उससे सप्तमूर्तिमान् महादेव आकण्ठ निमग्न हो गए । (४०)
 परिधम के कारण शहर के ललाटकला पर अतिशय स्वेद उत्पन्न हुआ । उससे रुधिराप्सुत एक कन्या उत्पन्न हुई । (४१)
 हे विप्र ! शिव के मुख से पृथ्वी पर गिरे स्वेदविन्दुओं से अद्भारपुञ्ज की शोभा वाला एक बालक उत्पन्न हुआ । (४२)
 अत्यन्त प्यासा वह बालक अन्धन को रुधिर पान करने लगा एवं अद्भुत कन्या भी उठकर उत्पन्न हुए रुधिर को पीने लगी । (४३)
 तदनन्तर भैरवरूपधारी वरद शहर ने बाल सूर्य के सदृश प्रभा वाली उस कन्या से शोक-वर्षापावारी महान् वषट्पन करा— (४४)

हे शुभकारिणी ! देवता, श्रुति, पितर, उरग, यक्ष, विद्यापर एवं मानव तुम्हारी पूजा करेंगे । (४५)
 हे देवि ! (वे लोग) बलि एवं पुण्याङ्गलि से तुम्हारी स्तुति करेंगे । यत तुम रुधिर से लिपि हो अतः तुम्हारा शुभ नाम 'चर्चिका' यह होगा । (४६)
 वरद शहर के ऐसा करने पर व्याघ्रचर्म का बदन धारण करने वाली भूतानुजाता मुन्दरी चर्चिका पृथ्वी पर पतुर्दिक् भ्रमण करती हुई उच्चम हैद्गुलताद्रि पर चली गई । (४७)
 उससे 'च' जाने पर वरदाभा शंकर ने कुच (मगल) को सर्वभद्र कर दिया । (उन्होंने कहा) — हे महात्मन् ! तुम मूर्धों के अधिपति बनोगे तथा जगत् का शुभाशुभ सुधारके बन में होगा । (४८)
 इन भगवान् भैरव हर ने अपने अग्निमूर्तिमान् नेत्रों से सहस्र दिव्य वर्षों तक अन्धक के शरीर को मुक्ता कर शूलितशून्य एवं अधिधर्माश्रित बना दिया । शहर के नेत्र ने उत्पन्न अग्नि द्वारा शुद्ध होने से वह अमुरराज पापमुक्त हो गया । तदनन्तर ब्रह्मजो के बहुरूपवान् निवामक, समान चराचर के स्वामी, सर्वपर, अस्पृश्य, ईश प्रेतोऽव्ययाय, वरद, वरेण्य, समस्त सुप्रदो द्राघ सन्निव

ज्ञात्वा स सर्वेश्वरमीशमव्ययं
 त्रैलोक्यनाथं वरदं वरेण्यम् ।
 सर्वैः सुरार्चयैर्नतमीव्यमाद्यं
 ततोऽन्धकः स्तोत्रमिदं चकार ॥ ५१
 अन्धक उवाच ।
 नमोऽस्तु ते भैरव भीममूर्ते
 त्रिलोकगोष्ठ्रे शिवशूलधारिणे ।
 विशार्द्धवाहो भुजगेश्वर
 त्रिनेत्र मां पाहि विपन्नबुद्धिम् ॥ ५२
 जपस्व सर्वेश्वर विश्वमूर्ते
 सुरासुरैर्वन्दितपादपीठ ।
 त्रैलोक्यमातुर्गुरवे वृषाङ्ग
 भीतः शरण्यं शरणागतोऽस्मि ॥ ५३
 त्वां नाथ देवाः शिवमीरयन्ति
 सिद्धा हरं स्थापुं महर्षयश्च ।
 भीमं च यक्षा मनुजा महेश्वरं
 भूताथ भूताधिपमामनन्ति ॥ ५४

स्तुत्य एष आद्य शङ्कर को जानकर अन्धक ने यह स्तुति की । (४९-५१)

हे भीममूर्ति भैरव ! हे त्रिलोक रक्षक ! तेजशूलधारी ! आपने नमस्कार है। हे दश भुजाओं वाले तथा भुजगेश का हार धारण करने वाले त्रिनेत्र ! मुझ विपन्नबुद्धि को रक्षा करो । (५२)

हे देवों तथा असुरों से वन्दित पादपीठ वाले विरत्रमूर्ति सर्वेश्वर ! आप ही जय हो। हे त्रैलोक्यजननी के स्वामी वृषाङ्ग ! मैं भयभीत होकर आप शरण देने वाले ही शरण में आया हूँ । (५३)

हे नाथ ! देवता आपने शिव (मंगलमय) कहते हैं। आपने सिद्ध लोग हर (पाप दारी), महर्षि लोग स्थापु (अपछ), यक्ष लोग भीम, मनुष्य महेश्वर और भूत भूताधिपति मानते हैं । (५४)

निशाचर छत्र नाम से आपका अर्चन करते हैं एष पुण्यवान् पितागम भय नाम से आपको नमस्कार करते हैं। हे हर ! मैं आपका दास हूँ, मेरी रक्षा करें। हे लोकनाथ ! मेरे पापों का नाश कीजिए । (५५)

निशाचरा उग्रमुपार्चयन्ति
 भवेति पुण्याः पितरो नमन्ति ।
 दासोऽस्मि तुभ्यं हरं पाहि मह्यं
 पापक्षयं मे कुरु लोकनाथ ॥ ५५
 मवांस्त्रिदेवस्त्रियुगस्त्रिधर्मा
 त्रिपुष्करश्चासि विमो त्रिनेत्र ।
 त्रय्यारुणिस्त्रियुतिरव्ययात्मन्
 पुनीहि मां त्वां शरणं गतोऽस्मि ॥ ५६
 त्रिणाचिकेतस्त्रिपदप्रतिष्ठः
 पद्भ्रवित् त्वं विषयेष्वलुब्धः ।
 त्रैलोक्यनाथोऽसि पुनीहि शंभो
 दासोऽस्मि भीतः शरणागतस्ते ॥ ५७
 छतं महत् शंकर तेऽपराधं
 मया महामृतपते गिरीश ।
 कामारिणा निजितमानसेन
 प्रसादये त्वां शिरसा नतोऽस्मि ॥ ५८
 पापोऽहं पापकर्माऽहं पापात्मा पापसंभवः ।

हे विष्णु त्रिनेत्र ! आप त्रिदेव, त्रियुग, त्रिधर्मा, तथा त्रिपुष्कर हैं। हे अव्ययात्मन् ! आप त्रय्यारुणि, तथा त्रियुति हैं। आप मुझे पवित्र करें। मैं आपकी शरण में आया हूँ । (५६)

आप त्रिणाचिकेत, त्रिपदप्रतिष्ठ, (स्वर्ग, मर्त्य, पाताल रूप तीन पदों पर प्रतिष्ठित), पद्भ्रवित्, (पेद के शिक्षा, कल्प, व्याकरण, गिरुका, दान्द, और ज्योतिष इन छ अंगों के ज्ञाता), विषयों के प्रति अलुब्ध तथा त्रैलोक्यनाथ हैं। हे शंभो ! आप मुझे पवित्र करें। मैं आपका दास हूँ। भयभीत होकर मैं आपकी शरण में आया हूँ । (५७)

हे शङ्कर ! हे महामृतपति ! हे गिरीश ! मामहरी यजु ने मेरे मन को जीत लिया था इसलिए मैंने आपका महान् अपराध किया है। मैं आपकी दिर से प्रणाम करता हूँ । (५८)

मैं पापी, पापकर्मा, पापात्मा तथा पापसंभूत हूँ। हे

प्राहि मां देव ईशान सर्वपापहरो भव ॥ ५९
 मा मे ऋषयस्व देवेश त्वया चैवाद्योऽस्म्यहम् ।
 सृष्टः पापसमाचारी मे प्रसन्नो भवेश्वर ॥ ६०
 त्वं कर्त्ता चैव धाता च त्वं जयस्त्वं महानजयः ।
 त्वं भङ्गत्वयस्त्वमोकारस्त्वमीशानो ध्रुवोऽव्ययः ॥ ६१
 त्वं ब्रह्मा सृष्टिकृन्नायस्त्वं विष्णुस्त्वं महेश्वरः ।
 त्वमिन्द्रस्त्वं वषट्कारो धर्मस्त्वं च तुरोचमः ॥ ६२
 सूक्ष्मस्त्वं व्यक्तरूपस्त्वं त्वमव्यक्तस्त्वमीश्वरः ।
 त्वया सर्वनिदं व्याप्तं जगत् स्थावरजङ्गमम् ॥ ६३
 त्वमादिरन्तो मध्यश्च त्वमनादिः सहस्रपात् ।
 विजयस्त्वं महत्प्रारो विरूपाक्षो महाभुजः ॥ ६४
 अनन्तः सर्वगो व्यापी हंसः प्राणाधिपोऽन्युतः ।
 गीर्वाणपतिरव्यग्रो रजः पशुपतिः शिवः ॥ ६५
 वैश्वित्यस्त्वं त्रितक्रोधो त्रितारिर्निजितेन्द्रियः ।
 जयश्च शूलपाणिस्त्वं प्राहि मां शरणागतम् ॥ ६६

देव ईशान । हे सर्वपापहारी महादेव । मेरी रक्षा
 कीजिये । (५९)

हे देवेश ! आप मेरे ऊपर ऋद्ध न हों । आपने ही
 मुझे इस प्रकार या पापाचारी बनाया है । हे ईश्वर ! मेरे
 ऊपर प्रसन्न होइये । (६०)

आप कर्ता, एवं धाता हैं । आप ही जय हैं और आप
 महाजय हैं । आप भगवत् मय हैं । आप औरार हैं । आप
 ही ईशान, अव्यय तथा ध्रुव हैं । (६१)

आप सृष्टिकर्ता ब्रह्मा तथा मनु हैं । आप विष्णु एवं
 महेश्वर हैं । आप इन्द्र हैं, आप वषट्कार हैं, आप धर्म
 तथा सुरभेष्ट हैं । (६२)

आप सूक्ष्म हैं, आप व्यक्तरूप हैं, आप अव्यक्त हैं,
 आप ईश्वर हैं, आप ही से यह चराचर जगत् व्याप्त
 है । (६३)

आप आदि, मध्य एवं अन्त हैं, आप अनादि एव
 सदस्यपात् हैं । आप विजय हैं । आप सहस्राक्ष, विरूपाक्ष
 एवं महाभुज हैं । (६४)

आप अनन्त, सर्वगत, व्यापी, हंस, प्राणाधिप, अष्टयुग,
 गीर्वाणपति, अव्यग्रज, रजः, पशुपति एवं शिव हैं । (६५)
 आप वैश्वित्य भोग्यत्री, शत्रुघ्नवी, शत्रुघ्नवी, जय एवं ।

पुलस्त्य उवाच ।

इत्थं महेश्वरो ब्रह्मन् स्तुतो दैत्याधिपेन तु ।
 प्रीतियुक्तः पिङ्गलाक्षो हरिण्याश्लिषुवाच ह ॥ ६७
 सिद्धोऽसि दानवपते परितुष्टोऽस्मि तेऽन्धक ।
 परं वरय भद्रं ते यमिच्छसि विनाऽम्बिकाम् ॥ ६८

अन्धक उवाच ।

अम्बिका जननी मह्यं भगवांस्व्यम्बरकः पिता ।
 वन्दामि चरणौ मातुर्वन्दनीया ममाम्बिका ॥ ६९
 वन्दोऽसि यदीशान तयात्त रिलयं मम ।
 शारीरं मानसं वाग्जं दुष्टृतं दुर्ध्विचिन्वितम् ॥ ७०
 तथा मे दानयो भावो व्यपयात् महेश्वर ।
 स्थिराऽस्तु त्वयि भक्तिस्तु वरमेतत् प्रयच्छ मे ॥ ७१

महादेव उवाच ।

एवं भवतु दैत्येन्द्र पापं ते यातु संशयम् ।
 मुक्तोऽसि दैत्यमानाश्च भृङ्गी गणपतिर्विव ॥ ७२

शूलपाणि है । आप मुझ शरणागत की रक्षा करें । (६६)
 पुलस्त्य ने कहा—हे ब्रह्मन् ! दैत्याधिपति के इस
 प्रकार स्तुति करने पर पिङ्गलाक्ष महेश्वर ने मीतिपूर्वक
 द्विरण्याश्ल के पुत्र अन्धक से कहा— (६७)

हे दानवपति अन्धक । तुम सिद्ध हो गए हो मैं तुम्हारे
 ऊपर प्रसन्न हूँ । अम्बिका के अतिरिक्त तुम जो चारो
 बहू धर माँगो । तुम्हारा क्याग हो । (६८)

अन्धक ने कहा—अम्बिका मेरी जननी और आप
 व्यम्बरक मेरे पिता हैं । माता के चरणों की मैं वन्दना
 करता हूँ । अम्बिका मेरी वन्दनीया हैं । (६९)

हे ईशान ! यदि आप पर देना चाहते हैं तो मेरे
 शारीरिक, मानसिक एवं वाचिक पाप तथा कृतित्त विचार
 नष्ट हो जायें । (७०)

हे महेश्वर ! मेरा दानव भाव भी दूर हो जाय
 एवं आप में मेरी स्थिर भक्ति हो । यदी वर मुझे
 दीजिये । (७१)

महादेव ने कहा—हे दैत्येन्द्र ! ऐसा ही हो । तुम्हारे
 पाप नष्ट हो जायें । तुम देवभाव से मुक्त हो गये ।
 अब तुम गणपति की सेवा करो । (७२)

इत्येवमृक्त्वा वरदः शूलाप्रादवतार्यं तम् ।
 निर्माज्यं निजहस्तेन चक्रे निर्घणमन्धकम् ॥ ७३
 ततः स्वदेहतो देवान् ब्रह्मदीनाशुदाय सः ।
 ते निथेरुर्महात्मानो नमस्यन्तस्त्रिलोचनम् ॥ ७४
 गणान् सनन्दीनाहूय सन्निवेश्य वदाग्रतः ।
 भृङ्गिनं दर्शयामास ध्रुवं नैपोऽन्धकेति हि ॥ ७५
 तं दृष्ट्वा दानवपतिं संशुष्कपिण्डितं रिपुम् ।
 गणाधिपत्यमापन्नं प्रशशंसुर्वृषध्वजम् ॥ ७६
 ततस्तान् प्राह भगवान् संपरिष्वज्य देवताः ।
 गच्छध्वं स्वानि धिष्ण्यानि भृङ्गध्वं त्रिदिशं सुरम् ॥ ७७
 सहस्राक्षोऽपि सयातु पर्वतं मलयं शुभम् ।
 तत्र स्वकार्यं कृत्वैव पश्चाद् यातु त्रिविष्टपम् ॥ ७८
 इत्येवमृक्त्वा त्रिदशान् समाभाष्य व्यसर्जयत् ।
 पिमामहं नमस्कृत्य परिष्वज्य जनार्दनम् ।
 ते विस्मृष्टा महेशेन सुरा जग्मुस्त्रिविष्टपम् ॥ ७९

ऐसा कहकर वरदाता महादेव ने उस अन्धक को शूल की नोक से उगारा एव अपने हाथ से सहला कर क्षत रहित कर दिया । (७३)

तदनन्तर उन्होंने अपने शरीर में स्थित ब्रह्मादि देवों का आह्वान किया । त्रिलोचन को नमस्कार करते हुए वे सभी महात्मा बाहर निकले । (७४)

नन्दी सहित गणों को बुलाकर एव सम्मुख बैठानर भृङ्गी को दिललाते हुए कहा—निश्चय ही यह अन्धक नहीं है । (७५)

उस शुष्क मांस वाले दानवपति शत्रु को गणाधिप हुआ देखकर वे सभी वृषध्वज की प्रशंसा करने लगे । (७६)

तदनन्तर उन देवों का आलिङ्गन कर भगवान् ने कहा—हे देवताओं ! आप लोग अपने स्थान को जाइये एवं मुखपूर्वक स्वर्ग में रहिये । (७७)

सहस्राक्ष इन्द्र भी शुभ मलय पर्वत पर जाँय तथा वहाँ अपना काम समाप्त कर स्वर्ग चले जाँय । (७८)

ऐसा कहकर देवों से सम्भाषण, पितामह को नमस्कार तथा जनार्दन का आलिङ्गन कर उन्होंने सभी को विदा किया । मद्देश से विदा किये गए वे देवगण स्वर्ग चले गए । (७९)

महेन्द्रो मलयं गत्वा कृत्वा कार्यं दिवं गतः ।
 गतेषु शत्रुप्रायेषु देवेषु भगवाञ्छिवः ॥ ८०
 विसर्जयामास गणाननुमान्य यथार्हतः ।
 गणाश्च शंकरं दृष्ट्वा स्वं स्वं वाहनमास्थिताः ॥ ८१
 जग्मुस्ते शुभलोकानि महामोगानि नारद ।
 यत्र कामदुधा गावः सर्वकामफलद्रुमाः ॥ ८२
 नद्यस्तवमृतमाहिन्यो हृदाः पायसकर्दमाः ।
 स्वां स्वां गतिं प्रयातेषु प्रमयेषु महेश्वरः ॥ ८३
 ममादायान्धकं हस्ते सनन्दिः शैलमन्धगात् ।
 द्वाभ्यां वर्षसहस्राभ्यां पुनरागादुरो गृहम् ॥ ८४
 दृश्ये च गिरेः पुत्रां श्वेतार्ककुसुमस्थिताम् ।
 समायातं निरीक्ष्यैव सर्वलक्षणसंयुतम् ॥ ८५
 त्यक्त्वाऽर्कपुष्पं निर्गत्य सतीस्ताः समुपाह्वयत् ।
 समाहृताश्च देव्या ता जवाद्यास्तूर्णमागमन् ॥ ८६
 ताभिः परिवृता तस्थौ हरदर्शनलासता ।

महेन्द्र भी मलयाचल पर जाकर कार्य सम्पादन कर स्वर्ग चले गये । शत्रुादि देवों के चले जाने पर भगवान् शिव ने यथायोग्य सम्मान कर गणों को विदा किया । हे नारद ! गण भी शङ्कर का दर्शन कर अपने वाहनों पर आरूढ़ होकर महाभोगयुक्त उन शुभलोकों को चले गए जहाँ की गौर्षे इच्छित वस्तु देने वाली तथा वृक्ष सर्वकामरूपी फलों के दाता, नदियों अमृतवाहिनी तथा हृद पायसरूपी कर्म से पूर्ण थे । प्रमयों के अपने-अपने स्थानों पर चले जाने पर अन्धक का हाथ पकड़ कर नन्दी सहित महेश्वर पर्वत पर चले गए । दो सहस्र वर्षों के उपरान्त शङ्कर पुन अपने घर लौटे । (८०-८४)

उन्होंने रयेत अर्कपुष्प में स्थित गिरिजा को देखा । सर्वलक्षणसयुक्त शङ्कर को आया हुआ देखते ही पार्वती अर्कपुष्प को छोड़कर बाहर निकली एव उन्होंने उन सत्त्वियों को पुकारा । वे सभी जयादि देवियों पुकारी जाने पर क्षीम चली आयीं । (८५-८६)

उनसे बिरी हुई पार्वती हर के दर्शन की लासता सं खड़ी हो गई । गिरिजा को देखने के बाद दानव एव नन्दी क ऊपर दृष्टिपात कर त्रिलोचन ने हर्षपूयुक्त गिरिसुता का आलिङ्गन किया । तदनन्तर उन्होंने

ततस्त्रिनेत्रो गिरिजा दृष्ट्वा प्रेक्ष्य च दानवम् ॥ ८७
नन्दिनं च तथा हर्षादालिल्लिङ्गे गिरेः सुताम् ।
अथोवाचैष दासस्ते कृतो देवि भयाऽन्धकः ॥ ८८
पश्यस्व प्रणतिं यातं स्वयुतं चारुहासिनि ।
इत्युवाचार्यान्धकं चैव पुत्र एषोहि सत्पत्नम् ॥ ८९

अथ स्वयं शरणं मातुरेया श्रेयस्करो तव ।
इत्युक्तो निमुना नन्दी अन्धकश्च गणेश्वरः ॥ ९०

समागम्याम्रिकापादौ चन्द्रतुरुभापयि ।
अन्धकोऽपि तदा गौरीं भन्तिवन्नो महामुने ।
स्तुतिं चक्रे महापुण्यां पापघ्नीं श्रुतिमंगिताम् ॥ ९१

अन्धक उवाच ।

ॐ नमस्ये भवानी भूतभव्यप्रिया लोभघात्री
जननी स्तुन्दमातरं महादेवप्रिया धारिणी
स्वन्दिनी चेतनां त्रैलोक्यमातरं धरित्रीं देवमातर-
मयेज्यां श्रुति स्मृति दयां लज्जां कान्तिमउया-
मसूयां मति सदापावनीं दैत्यैर्वन्यभयकरां [१]

कदा—हे देवि ! मैंने अन्धक को तुम्हारा दास बना
लिया है ।

हे चन्द्रासिनि ! प्रणाम कर रहे अपने पुत्र को
देरों। ऐसा कहने से उपरान्त उन्होंने कहा—हे पुत्र !
शीघ्र आओ। अपनी इस माता की शरण में जाओ। ये
तुम्हारा कल्याण करेगी। विष्णु के ऐसा कहने पर गणेश्वर
नन्दी एवं अन्धक दोनों ने जाकर अभिषेक के चरणों में
प्रणाम किया। हे महामुनि ! तदनन्तर भक्तिमय अन्धक
ने गौरी की अति पवित्र पापघ्नी एवं स्तुतिसम्पन्न स्तुति
की। (८९-९१)

अन्धक ने कहा—ओं भवानी को प्रणाम है। मैंमूल
भव्यप्रिया लोभघात्री, जननी, कान्तिदय जननी,
महादेवप्रिया, धारिणी, स्वन्दिनी, चेतना, त्रैलोक्य जननी,
धरिणी, देवमाता, इत्यादि, श्रुति, स्मृति, दया, लज्जा,
भेद कान्ति, असूया, मति, सदापावनी, दैत्यैर्वन्यभय-
करिणी, सदापावनी, चन्द्रासिनी, अन्धककोमा पात्री, चन्द्रासिनि,

महामायां वैनयन्तीं सुशुभां कालरात्रिं
गोविन्दभगिनीं शैलराजपुत्रीं सर्वदेवाचितां
सर्वभूताचितां नियां सरस्वतीं त्रिनयनमहिषिं
नमस्वामि मृदानीं शरण्यां शरणमुपागतोऽहं
नमो नमस्ते ॥ [10]

इत्थं स्तुता माऽन्धकेन परितुष्टा विभावरी ।
प्राह पुत्र प्रमत्ताऽग्नि वृष्टुष्व वरसूक्तमम् ॥ ९२

भृङ्गिस्तथाच ।

पाप प्रक्षममायातु त्रिविधं मम पार्वति ।
तवेधरे च सततं भक्तिरस्तु ममाभिरु ॥ ९३

पुलस्त्य उवाच ।

वाढमित्यत्रवीद् गौरी हिरण्याऽसुतं तत ।
म चास्ते पूज्यञ्चावै गणानामधिपोऽभवत् ॥ ९४

एवं पुरा दानवसत्तमं सं
महेधरेणाय विरूपश्या ।

कुर्वन् रूपं भयदं च भीरवं

गोविन्द भगिनी, शैलराजपुत्री, सर्वदेवाचिता, सर्वभूतपूजिता,
विद्या, सरस्वती, त्रिनयनमहिषी को प्रणाम करता हूँ।
मैं शरण्या मृदानी की शरण में आया हूँ। आपके चार
चार प्रणाम है।

अन्धक के इस प्रकार स्तुति करने पर भवानी ने
प्रसन्न होकर कहा—हे पुत्र ! मैं प्रसन्न हूँ। तुम वचन
कर नाँगे। (९२)

भृङ्गि ने कहा—हे पार्वती ! हे अग्निदे ! मेरे त्रिविध
पाप दूर हो जाँय एवं ईश्वर में मदा मेरी भक्ति
बनी रहे। (९३)

पुलस्त्य ने कहा—नदान्तर गीत ने हिरण्यासुता ने
कहा—ऐसा दो दो। वह यहाँ रहकर त्रिभु को पूजा
करने हुए माताधिप हो गया। (९४)

इस प्रकार पूर्वकाल में इस दासभेद को महेधर ने
अपनी विरूपशक्ति से भयदायक भँगा रूप प्रदान कर

भृङ्गित्वमीशेन कृतं स्वभक्त्या ॥ ९५ |
एतत् तवोक्तं हरकीर्तिवर्धनं
पुण्यं पवित्रं शुभदं महर्षे ।

संकीर्तनीयं द्विजसत्तमेपु
धर्मापुरारोग्यधनैषिणा सदा ॥ ९६

इति श्रीवामनपुराणे चतुश्चत्वारिंशोऽध्याय ॥४४॥

~

४५

नारद उवाच ।

मलयेऽपि महेन्द्रेण यत्कृतं ब्राह्मण्यर्षभ ।
निष्पादितं स्वकं कार्यं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ १

पुलस्त्य उवाच ।

श्रूयतां यन्महेन्द्रेण मलये पर्वतोत्तमे ।
कृतं लोकहितं ब्रह्मन्नात्मनश्च तथा हितम् ॥ २
अन्धगुरुरस्यानुचरा मयतारपुरोगमाः ।
ते निजिताः सुरगणैः पातालगमनोत्सुकाः ॥ ३

अपनी भक्ति से भृङ्गी बना दिया । (९५)
हे महर्षि ! मैंने आपसे हर की कीर्ति को बढ़ाने वाला
यह पुण्य पवित्र एव शुभद आख्यात कहा । धर्म, आयु,

दृष्टशुर्मलयं शैलं सिद्धाध्युषितकन्दरम् ।

लतावितानसंछन्नं मत्तसत्त्वतमाकुलम् ॥ ४

चन्दनैरहरगाक्रान्तैः सुशीतैरभिसेवितम् ।

माधवीकुसुमामोदं श्रेष्ठ्यचितहरं गिरिम् ॥ ५

तं दृष्ट्वा शीतलच्छायं श्रान्ता व्यायामकर्षिताः ।

मयतारपुरोगास्ते निवासं समरोचयन् ॥ ६

तेषु तत्रोपविष्टेषु प्राणशृम्निप्रदोऽनिलः ।

विषासि शीतः शनकैर्दक्षिणौ गन्धसंयुतः ॥ ७

आरोग्य एवं धन को चाहने वालों को श्रेष्ठ द्विजों में सदा
इसन कीर्तन करना चाहिए । (९६)

श्रीवामनपुराणे में बंवालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४४॥

४५

नारद ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! महेन्द्र ने मलयपर्वत
पर भी अपना जो कार्य सम्पन्न किया उसे आप मुझसे
बुझिये । (१)

पुलस्त्य ने कहा—हे ब्रह्मन् ! महेन्द्र ने भोग मलयपर्वत
पर संसार के द्विज तथा अपने कल्याण के लिए जो कार्य
किया था, उसे मुझिये । (२)

मय, तार आदि अन्धगुरुर के अनुचर अमुर देवताओं
से पराजित होकर पाताल जाने की इच्छा करने
लगे । (३)

उन लोगों ने सिद्धों द्वारा सेवित कन्दराओं वाले, लता-
वितान से आच्छन्न मत्त प्राणियों से परिपूर्ण, सुशीतल सर्पों से
आक्रान्त चन्दन से युक्त तथा माधवीकुसुम के आमोद से पूर्ण
श्रीमियों से अर्चित हर के मलय गिरि को देखा । (४-५)

व्यायाम से श्रम एवं त्रिभिन्न मय, तार आदि दानों ने
शीतल छायावाले उस पर्वत को देख कर यहाँ निवास
करने की इच्छा की । (६)

उन लोगों के यहाँ बैठने पर प्राणों को रुग्ण प्रदान
करने वाला सुगन्धपूर्ण तथा शीतल दक्षिण वायु मन्दगति से
प्रवाहित होने लगा । (७)

तत्रैव च रतिं चक्रः सर्वे एव महासुराः ।
 कुर्वन्तो लोकमंपूज्ये विद्वेषं देवतागण्ये ॥ ८
 ताञ्ज्ञात्वा शंकरः शत्रुं प्रेषयन्मलयेऽसुरान् ।
 स चापि ददृशे गच्छन् पथि गोमातर हरिः ॥ ९
 तस्याः प्रदक्षिणां कृत्वा दृष्ट्वा शैलं च सुप्रभम् ।
 ददृशे दानवान् सर्वान् संहृष्टान् भोगसयुतान् ॥ १०
 अथाजुहाव धलहा सर्वानेन महासुरान् ।
 ते चाप्यावपूरुष्यग्रा निक्किरन्तः शरोत्करान् ॥ ११
 तानागतान् वाणजालैः रथस्थोऽद्भुतदर्शनः ।
 छादयामास निरपेयं गिरीन् दृष्ट्वा यथा धनः ॥ १२
 ततो वाणैरवच्छाद्य मयादीन् दानवान् हरिः ।
 पाकं जवान् सीक्षणाग्निमार्गणैः कङ्कवामनैः ॥ १३
 तत्र नाम विभ्रुल्लेभे शासनत्वात् शरैर्दृढैः ।
 पारुश्यासनतां शत्रुः सर्वाभरपतिर्विभ्रुः ॥ १४
 तथाऽन्य पुरनामानं वाणासुरसुत शरैः ।

लोक-पूज्य देवताओं से विद्वेष करते हुए सभी श्रेष्ठ
 असुर सुसपूर्वक वहाँ रहने लगे । (८)

उन असुरों को मलय पर्वत पर जानकर शङ्कर ने इन्द्र
 को वहाँ भेजा । इन्द्र ने जाते हुए मार्ग में गोमाता को
 देखा । (९)

उसकी प्रदक्षिणा करने के उपरान्त उन्होंने प्रभा
 सम्पन्न पर्वत पर भोगसयुत तथा प्रसन्न समस्त दान्यों को
 देखा । (१०)

तदनन्तर इन्द्र ने सभी महासुरों को ललकारा । वे भी
 विना व्यग्रता के वाणों की वर्षा करते हुए आए । (११)

हे त्रिपति ! रथासीन अद्भुत दिग्गामी पदने वाले इन्द्र
 ने आये हुए उन दान्यों को वाणजाल से इस प्रकार
 आच्छादित कर दिया जैसे मेघ वृष्टि से पर्वतों को
 आच्छादित करता है । (१२)

तदनन्तर इन्द्र ने मय आदि दान्यों को वाणों से
 आच्छादित कर कङ्कपशुपुत्र सुवीर्य वाणों से पारु नामक
 दान्य वध किया । (१३)

दृष्ट वाणों द्वारा पारु का शासन करने के कारण सभी
 असुरों के पति विभ्रु इन्द्र को पारुश्यासनता की प्राप्ति
 हुई । (१४)

सुपुह्वैर्दारयामास ततोऽभूत् स पुरंदरः ॥ १५
 हृतेत्यं समरेऽजैपीद् गोत्रभिद् दानवं बलम् ।
 तत्रापि विनित ब्रह्मन् रसातलमुपागमत् ॥ १६
 एतदर्थं सहस्राक्षं प्रेषितो मलयाचलम् ।
 ज्यम्भकेन मृनिश्रेष्ठं किमन्यच्छ्रोतुमिच्छसि ॥ १७
 नारद उवाच ।

किमर्थं देवतपतिगोत्रभिद् कथ्यते हरिः ।
 एष मे सशयो ब्रह्मन् हृदि सपरिवर्तते ॥ १८
 पुलस्त्य उवाच ।

श्रूयता गोत्रभिच्छत्रं फीर्तितो हि यथा मया ।
 हते हिरण्यकशिपौ यच्चकारारिमर्दनं ॥ १९
 दिर्तिर्निनष्टपुत्रा तु कश्यपं प्राह नारद ।
 विनो नापोऽसि मे दहि शक्रहन्तारमात्मजम् ॥ २०
 कश्यपस्तामुवाचाथ यदि त्वमसितेक्षणे ।
 शीचाचारसमायुक्ता रथाससे दशतीर्दश ॥ २१

इसी प्रकार उन्होंने सुन्दर पुच्छयुक्त वाणों से दूसरे पुर
 नामक वाणासुर के पुत्र का वध किया । इसी से वे पुरन्दर
 हुए । (१५)

हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार उन दान्यों का वध कर इन्द्र ने
 युद्ध में दानव सेना को पराजित कर दिया । विजित यह
 दानवसैन्य रसातल में चला गया । (१६)

हे मुनिश्रेष्ठ ! इसीलिये शङ्कर ने सहस्राक्ष को
 मलय पर्वत पर भेजा था । अब आप और क्या सुनना
 चाहते हैं ? (१७)

नारद ने कहा हे ब्रह्मन् ! मेरे हृदय में यह
 संदेह है कि देवपति को गोत्रभिद् क्यों कहा जाता
 है ? (१८)

पुलस्त्य ने कहा—आप सुनें कि मैंने इन्द्र को गोत्र
 भिद् क्यों कहा तथा हिरण्यकशिपु के मारे जाने पर
 अरिमर्दन इन्द्र ने क्या किया ? (१९)

हे नारद ! पुत्र के मर जाने पर दिग्नि ने कल्प से
 कहा—हे प्रभु ! आप मेरे पति हैं, मुझे इन्द्र को मारने
 वाला पुत्र दीजिए । (२०)

कश्यप ने उनसे कहा—हे कृष्णनेत्रोंवाली ! यदि
 तुम सी दिव्य वर्षों तक शीचाचार से सम्पन्न होकर

संवरसराराणां दिव्यानां ततस्त्रैलोक्यनायकम् ।
 जनयिष्यसि पुत्रं त्वं शत्रुघ्नं नान्यथा प्रिये ॥ २२
 इत्येवमुक्त्वा सा भर्ता दितिर्नियममास्थिता ।
 गर्भाधानं ऋषिः कृत्वा लगामोदयपर्वतम् ॥ २३
 गते तस्मिन् मृनिश्रेष्ठे सहस्राक्षोऽपि सत्वरम् ।
 तमाश्रममृपागम्य दितिं वचनमब्रवीत् ॥ २४
 करिष्याम्यनुशुभ्रपां भवत्या यदि मन्यसे ।
 वाढमित्यब्रवीद् देवी भाविकर्मप्रचोदिता ॥ २५
 समिदाहरणादीनि तस्याश्चक्रे पुरंदरः ।
 विनीतात्मा च कार्यार्थी छिद्रान्वेषी भ्रजंगवत् ॥ २६
 एकदा सा तपोयुक्ता शौचं महति संस्थिता ।
 दशवर्षशतान्ते तु शिरःस्नाता तपस्विनी ॥ २७
 जानुभ्यामपरि स्याप्य मृक्तकेशा निजं शिरः ।
 सुष्याप केशप्रान्तस्तु संश्लिष्टचरणाऽभवत् ॥ २८
 तमन्तरमशौचस्य ज्ञातरा देवः सहस्ररक् ।

रहोगी तभी तुम त्रिलोकनायक शत्रुघ्नता पुत्र उत्पन्न करोगी ।
 हे प्रिये ! इसके अतिरिक्त अन्य कोई उपाय नहीं
 है । (२१-२२)

पति के ऐसा बहने पर दिति ने नियम का अवलम्बन
 किया । कश्यप ऋषि गर्भाधान करके उदयगिरि पर
 चले गये । (२३)

उन मुनिश्रेष्ठ के चले जाने पर इन्द्र ने शीघ्रता से उस
 आश्रम में जाकर दिति से यह वाक्य कहा— (२४)

यदि आप अनुमति प्रदान करें तो मैं आपकी
 सेवा करूँ । भवितव्यता से प्रेरित देवी ने कहा—ठीक
 है । (२५)

विनीतात्मा पुरन्दर अपने कार्य की सिद्धि हेतु भुजङ्ग-
 यात् छिद्रान्वेषण करते हुए उन (दिति) के छिद्रे समिधा
 आदि राने का कार्य करने लगे । (२६)

एक सहस्र वर्ष व्यतीत हो जाने पर एक दिन अतिशय
 शीघ्रपरायण यह तपस्विनी शिर से स्नान करने के
 उपरान्त केशों को खोले हुए अपने जानुओं पर शिर
 रख कर सो गईं । उसके केशप्रान्त से परण सदिलष्ट
 हो गए । (२७-२८)

हे नारद ! देव सहस्राध इन्द्र अशौच के उस छिद्र को
 जानकर नाक के छिद्र से माता के उदर में प्रविष्ट हो

बिबेध मातृहृदरं नासारन्त्रेण नारद ॥ २९
 प्रविश्य जठरं ऋद्धो दैत्यमातुः पुरंदरः ।
 ददशोर्ध्वमुखं बालं कटिन्यस्तकरं महत् ॥ ३०
 तस्पर्शास्येऽथ ददृशे पेशीं मांसस्य वासवः ।
 शुद्धस्फटिकसंकाशां कराभ्यां जगृहेऽथ ताम् ॥ ३१
 ततः कोपसमाध्मातो मांसपेशीं शतक्रतुः ।
 कराभ्यां मर्दयामास ततः सा कठिनाऽभवत् ॥ ३२
 ऊर्ध्वेनार्थं च वष्टुधे त्वघोऽर्धं वष्टुधे तथा ।
 शतपर्वाऽथ कुलिशः संजातो मांसपेशितः ॥ ३३
 तेनैव गर्भं दितिजं वज्रेण शतपर्वणा ।
 चिच्छेद सप्तधा ब्रह्मन् स रुरोद च त्रियरम् ॥ ३४
 ततोऽप्यबुध्यत दितिरजानाच्छक्रचेष्टितम् ।
 शुश्राव वाचं पुत्रस्य रुदमानस्य नारद ॥ ३५
 शक्रोऽपि प्राह मा मृद रुदन्नेति सुधर्वरम् ।
 इत्येवमुक्त्वा चैकैक भूयश्चिच्छेद सप्तधा ॥ ३६

गए । (२९)
 क्रुद्ध पुरन्दर ने दैत्यमाता के गद्दान जठर में
 प्रवेश कर कटि पर हाथ रखते ऊपर को मुख किये एक
 बालक को देखा । (३०)

वासव ने उस बालक के मुँह में एक शुद्ध स्फटिक
 लुप्य मांसपेशी को देखा । उन्होंने उस मांसपेशी को दोनों
 हाथों से पकड़ लिया । (३१)

तदनन्तर क्रोधाग्ण्य शतक्रतु ने दोनों हाथों से उस
 मांसपेशी को मर्दित किया जिससे यह कठोर हो गई । (३२)
 उस पिंड का आधा भाग ऊपर को और आधा भाग
 नीचे की ओर बढ़ गया । इस प्रकार उस मांसपेशी से
 शतपर्वयुक्त वज्र बन गया । (३३)

हे ब्रह्मन् ! (इन्द्र ने) उसी शतपर्व वज्र से दिति के
 गर्भ को सात भागों में छिद्र कर दिया । वह गर्भस्थ बालक
 भीषण स्वर से रोने लगा । (३४)

हे नारद ! तदनन्तर तिति जग गई एवं उन्हें इन्द्र
 का धृत्य ज्ञात हो गया । उन्होंने रो रहे पुत्र की धागी को
 सुना । (३५)

इन्द्र ने भी कहा—हे मूर्ख ! पथैर शक्र से मत रुदन
 करो । ऐसा कह कर उन्होंने प्रत्येक लण्ड को पुन सात-
 सात लण्डों में बाटा । (३६)

ते जाता मरुतो नाम देवभृत्याः शतक्रतोः ।
 मातुरेवापचारेण चलन्ते ते पुरस्कृताः ॥ ३७
 ततः सकुलिशः शक्रो निर्गम्य जठरात् तदा ।
 दितिं कृताञ्जलिपुटः प्राह भीतस्तु शापतः ॥ ३८
 ममास्ति नापराधोऽयं यच्छस्तस्तनयस्त्वन ।
 त्वैवापनयाच्छस्तस्मने न क्रोद्धमर्हसि ॥ ३९
 दितिरुवाच ।
 न तथात्रापराधोऽस्ति मन्ये दितमिदं पुरा ।

संपूर्णे त्वपि काले वै या शौचत्वमुपागता ॥ ४० -
 पुलस्त्य उवाच ।
 इत्येवमुक्त्वा तान् बालान् परिसान्त्वय्य दितिः स्वयम् ।
 देवराज्ञा सहैतांस्तु प्रेषयामास भामिनी ॥ ४१ -
 एवं पुरा स्वानपि सोदरान् स
 गर्भस्थितानुञ्जरितुं भयार्तः ।
 निमेद वज्रेण ततः स गोत्रभिन्
 ल्यातो महर्षे भगवान् महेन्द्रः ॥ ४२

इति श्रीवामनपुराणे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

४६

नारद उवाच ।
 यदमी भवता प्रोक्ता मरुतो दितिजोचमाः ।
 तत् केन पूर्वमासन् वै मरुन्मार्गेण कथ्यताम् ॥ १
 पूर्वमन्वन्तरेष्वेव समतीतेषु सत्तम ।

वे इन्द्र के मरुत नामक देवभृत्य हो गए । माता के ही अपचार के कारण वे आगे चलते हैं । (३७)
 तदनन्तर जठर से कुलिश सहित बाहर आकर शाप से भयभीत इन्द्र ने हाथ जोड़ कर दिति से कहा— (३८)
 आपके पुत्र को कष्टने में मेरा अपराध नहीं है । आपके ही अपनय से यह धांटा गया । अतः मेरे ऊपर आपको क्रुद्ध नहीं होना चाहिए । (३९)
 दिति ने कहा—इतने में तुम्हारा कोई अपराध नहीं है ।

के त्वासन् वायुमार्गस्थास्तन्मे व्यात्यातुमर्हसि ॥ २
 पुलस्त्य उवाच ।
 श्रूयतां पूर्वमस्तामुत्पत्तिं कथयामि ते ।
 स्वायंभुवं समारभ्य यावन्मन्वन्तरं त्विदम् ॥ ३

मैं इसे पूर्व से ही निरिखत मानती हूँ । इसी से काल पूर्ण होने पर भी मैंने अशौचाचरण कर दिया । (४०)
 पुलस्त्य ने कहा—भामिनी दिति ने ऐसा कहने के उपरान्त उन बालकों को सान्त्वना दिया एवं उन्हें देवराज के साथ ही भेज दिया । (४१)
 हे महर्षे ! इस प्रकार पूर्वकाल में नयार्त्त महेन्द्र ने वज्र द्वारा गर्भस्थित अपने ही सहोदरों के विनाश के लिये कष्ट खला । इसीसे वे गोत्रभिन् नाम से प्रसिद्ध हुए । (४२)

श्रीवामनपुराण में पंचालिखतं अध्याय समाप्त ॥ ४६ ॥

४६

नारद ने कहा—आपने दितिजोचम मरुद्गणों का जो वर्णन किया उसके विषय में यह बातलायें कि पहले वे मरुत् किस मार्ग में अवस्थित थे ? (१)
 हे सत्तम ! आप मुझे विशेषरूप से यह बातलायें कि

पूर्व मन्वन्तर के व्यतीत होने पर कौन (मरुत) वायुमार्ग में स्थित थे ? (२)
 पुलस्त्य ने कहा—स्वायंभुव मन्वन्तर से लेकर इस मन्वन्तर तक के पूर्व मरुद्गणों की उत्पत्ति आपसे कहता हूँ

स्वायंभुवस्य पुत्रोऽभूमनोर्नाम प्रियव्रतः ।
 तस्यासीत् सवनो नाम पुत्रश्चैलोक्यपूजितः ॥ ४
 स चानपत्यो देवर्षे नृपः प्रेतर्षति गतः ।
 ततोऽरुदत् तस्य पत्नी सुदेवा शोकविह्वला ॥ ५
 न ददाति तदा दग्धुं समालिङ्ग्य स्थिता पतिम् ।
 नाथ नाथेति बहुशो विलपन्ती त्वनाथवद् ॥ ६
 तामन्तरिक्षादशरीरिणी वाक्
 श्रोवाच मा राजपत्नीह रोदीः ।
 यद्यस्ति ते सत्यमनुचमं तदा
 भवत्वयं ते पतिना सहाग्निः ॥ ७
 सा तां बाणोमन्तरिक्षान्निशम्य
 श्रोवाचेद् राजपुत्री सुदेवा ।
 शोचाम्येनं पार्थिवं पुत्रहीनं
 नैवात्मानं मन्दभाग्यं विहङ्ग ॥ ८
 सोऽथानवीन्मा रुद्रस्वायताधि
 पुत्रास्त्वत्तो भूमिपालस्य सप्त ।
 भविष्यन्ति बद्धिमारोह शीघ्रं

उसे सुनिये । (२)

स्वायम्भुव मनु के पुत्र का नाम प्रियव्रत था ।
 ऐलोक्यपूजित सवन वन प्रियव्रत के पुत्र थे । (४)

हे देवर्षि ! वे राजा पुत्रहीन ही प्रेतर्षति को प्राप्त हुए ।
 तदनन्तर उनकी सुदेवा नामक पत्नी शोकविलिखी होकर रोने
 लगी । (५)

वसने (भूतशरीर को) जलाने के डिये नहीं दिया ।
 पति का आलिंगन किन् 'नाथ नाथ' कहती हुई वह
 अनायास के सदृश व्यसन्न रहन करने लगी । (६)

उस समय अन्तरिक्ष से अशरीरिणी वाणी ने इससे
 कहा—हे राजपत्नी ! रोओ नहीं । यदि पुत्रद्वारा सत्य श्रेष्ठ
 है तो यह धर्म पति के साथ तुम्हारे डिये हो । (७)

अन्तरिक्ष से हुई उस वाणी को सुनकर राजपुत्री
 सुदेवा ने कहा—हे आशुषापति ! मैं इस पुत्रहीन राजा के
 डिये शोक कर रही हूँ न कि अपने मन्दभाग्य के
 डिये । (८)

वसने (आशुषापत्नी ने) पुनः कहा—हे पिराजशी !

सत्यं प्रोक्तं श्रद्धयस्त्व त्वमथ ॥ ९
 इत्येवमुक्त्वा खचरेण बाला
 चितौ समारोप्य पतिं वरार्हम् ।
 हुताशमासाद्य पतिव्रता तं
 संचिन्तयन्ती ज्वलनं प्रपन्ना ॥ १०
 ततो मूर्ध्वान्नुपतिः श्रिया युतः
 समुत्स्यौ सहितो भार्ययाऽसौ ।
 खसृत्पपाताय स कामचारी
 समं महिष्या च सुनाभपुत्र्या ॥ ११
 तस्याम्बरे नारद पार्थिवस्य
 जाता रजोगा महिषी तु गच्छतः ।
 स दिव्ययोगान् प्रतिसंस्थितोऽम्बरे
 भार्यासहायो दिवसानि पञ्च ॥ १२
 ततस्तु पण्डेऽहनि पार्थिवेन
 ऋतुर्न वन्द्योऽद्य भवेद् विचिन्त्य ।
 रराम तन्व्या सह कामचारी
 ततोऽम्बरान् प्राच्ययतास्य शुक्रम् ॥ १३

तुम मत रोओ । तुम्हारे गर्भ से राजा को सात पुत्र होंगे ।
 तुम शीघ्र अग्नि पर आरोहण करो । मैं सत्य कहती हूँ ।
 इसपर तुम आज बद्धा करो । (९)

आशुषाचारी के ऐसा बहने पर उस बाला ने श्रेष्ठ
 पति को चिता पर रसा एवं उस पति का चिन्ता
 करती हुई अग्नि में प्रवेश कर वह पतिव्रता अग्नि की
 शरण में गई । (१०)

तदनन्तर मूर्ध्वान्नुपति में यह भी-सम्पन्न नृपति भार्या
 के साथ बड़ा एवं सुनाम-पुत्री अपनी महिषी के साथ
 आशुषा में जाकर कपेन्द्र विचरण करने लगी । (११)

हे नारद ! आशुषा में जाने हुए उस राजा की महिषी
 रजस्वला हो गई । वह राजा दिव्ययोग से आशुषा में
 भार्या (सुदेवा) के साथ पाँच दिनों तक रहा । (१२)

तदनन्तर छठे दिन आज ऋतु कर्षण न हो जाए ऐसा
 सोच कर कामचारी राजा भार्या के साथ रमन करने
 लगा । तदुपपन्न आशुषा से वनछा शुक्र इन्द्र
 हुआ । (१३)

शुक्रोत्सर्गावसाने तु नृपतिर्भार्यया सह ।
जगाम दिव्यया गत्या ब्रह्मलोकं तपोधन ॥ १४
तदभ्यरात् प्रचलितमभ्रवर्णं
शुक्रं समाना नलिनी वपुष्मती ।
चित्रा विशाला हरितालिनी च
सप्तर्षिपत्न्यो ददृशुर्धेच्छया ॥ १५
तद् दृष्ट्वा पुष्करे न्यस्तं प्रत्यैच्छन्त तपोधन ।
मन्यमानास्तदमृतं सदा यौवनलिप्सया ॥ १६
ततः स्नात्वा च विधिवत् संपूज्य तान् निजान् पतीन् ।
पतिभिः समनुज्ञाताः पपुः पुष्करसंस्थितम् ॥ १७
तच्छुक्रं पार्थिवेन्द्रस्य मन्यमानास्तदाऽमृतम् ।
पीतमात्रेण शुक्रेण पार्थिवेन्द्रोद्भवेन वाः ॥ १८
ब्रह्मतेजोविहीनास्ता जाताः पत्न्यस्तपस्विनाम् ।
ततस्तु तत्पशुः सर्वे सदोपास्ताश्च पत्नयः ॥ १९
सुपुत्रः सप्त तनयान् रुदतो भैरवं मुने ।
तेषां रुदितशब्देन सर्वमापूरितं जगत् ॥ २०

हे तपोधन! शुक्र-त्याग करने के उपरान्त राजा पत्नी के साथ दिव्यगति से ब्रह्मलोक चला गया। (१४)
समाना, नलिनी, वपुष्मती, चित्रा, विशाला, हरिता एवं अलिनी इन सात ऋषि पत्नियों ने आकाश से गिरते हुए अभ्रक-सुल्य वर्ण वागे शुक्र को चचेच्छापूर्वक देखा। (१५)

हे तपोधन! उसे देखकर उसको अमृत मानती हुई शारदव यौवन प्राप्त करने की इच्छा से (वे सभी) उसको पुष्कर में रख लीं। (१६)

तदनन्तर स्नानोपरान्त अपने-अपने पतियों का पूजन कर उन पतियों की आज्ञा से पुष्कर में स्थित पार्थिवेन्द्र के उस शुक्र को अमृत मानती हुई वे पान कर गईं। राजा के शुक्र का पान करते ही तपस्वियों की वे पत्नियों ब्रह्मतेज से विहीन हो गईं। तदनन्तर उन तपस्वी लोगों ने अपनी उन दोषयुक्त पत्नियों का त्याग कर दिया। (१७-१९)

हे मुने! उन ऋषि पत्नियों ने भयङ्कर रुदन करते हुए सात पुत्रों को उत्पन्न किया उनके रुदन के शब्द से समस्त जगत आपूरित हो गया। (२०)

तदनन्तर भगवान् लोकापितामह ब्रह्मा आये। बालों

अथाजगाम भगवान् ब्रह्मा लोकपितामहः ।
समभ्येत्याब्रवीद् बालान् मा रुदध्वं महाबलाः ॥ २१
मरुतो नाम युवं वै भविष्यध्वं विद्यचराः ।
इत्येवमुक्त्वा देवेशो ब्रह्मा लोकपितामहः ॥ २२
तानादाय विद्यचारी भारुतानादिदेश ह ।
ते त्वासन् मरुतस्त्वाद्या मनोः स्वायंभुवेऽन्तरे ॥ २३
स्वारोचिषे तु मरुतो वक्ष्यामि शृणु नारद ।
स्वारोचिषस्य पुत्रस्तु श्रीमानासीत् क्रतुध्वजः ॥ २४
तस्य पुत्राभवन् सप्त सप्तार्धिःप्रतिमा मुने ।
तपोऽर्थं ते गताः शैलं महामेरुं नरेश्वराः ॥ २५
आराधयन्तो ब्रह्माणं पद्मैन्द्रनधेपस्यः ।
ततो विपश्चिन्नाम्नाथ सहस्राहो भयातुरः ॥ २६
पूतनामप्सरोमुख्यां प्राह नारद वाक्यवित् ।
गच्छन्स्य पूतने शैलं महामेरुं विशालिनम् ॥ २७
तत्र तप्यन्ति हि तपः क्रतुध्वजसुता महत् ।
यथा हि तपसो विघ्न तेषां भवति सुन्दरि ॥ २८

के निम्न जाकर उन्होंने कहा—हे महाबलवानों! रोओ नहीं। (२१)

तुम्हारा नाम मरुत होगा। तुम आकाशचारी बनोगे। इतना कहकर लोक पितामह देवेश ब्रह्मा उन मरुतों को लेकर आकाश में गये एवं उन्हें (आकाश में रहने का) आदेश दिया। वे ही स्वायम्भुव मनु के काल में आद्य मरुत हुए। (२२-२३)

हे नारद! स्वारोचिष मन्वन्तर के मरुतों का वर्णन करता हूँ। इसे सुनो। स्वारोचिष के पुत्र श्रीमान् क्रतुध्वज थे। (२४)

हे मुने! उनके अग्नि तुल्य सात पुत्र थे। वे सभी नरेश्वर तपत्या हेतु महामेरु पर्वत पर गए। (२५)

इन्द्रपद प्राप्त करने की इच्छा से वे ब्रह्मा की आराधना करने लगे। तदनन्तर बुद्धिमान् इन्द्र भयातुर हो गये। (२६)

हे नारद! वाक्यविद् इन्द्र ने अप्सराओं में प्रथम पूतना से वधा—हे पूतने! तुम विशाल महामेरु पर्वत पर जाओ। (२७)

वहाँ क्रतुध्वज के पुत्र महान् तप कर रहे हैं।

तया कुरुष्व मा तेषां मिद्धर्मवत् सुन्दरि ।
 इत्येवमुक्त्वा शक्रेण पूतना रूपशालिनी ॥ २९
 तत्राजगाम त्वरिता यत्रावपन्त ते तपः ।
 आश्रमस्याविद्रे तु नदी मन्दोदवाहिनी ॥ ३०
 तस्यां स्नातुं समायाताः सर्वे एव सहोदराः ।
 साऽपि स्नातुं सुचार्वङ्गी त्वरतीर्णा महानदीम् ॥ ३१
 ददशुस्ते नृपाः स्नातां तत्रयुधुभिरे मुने ।
 तेषां च प्राच्यवच्छुक्रं तत्पथौ जलचारिणी ॥ ३२
 शक्तिनी ब्राह्मरूपस्य महाशहस्रस्य बह्वभा ।
 तेषु निमग्नवपसो जग्मु राज्यं तु पैतृकम् ॥ ३३
 मा चाभ्रराः शुक्रमेत्य याथातथ्यं न्यवेदयन् ।
 ततो बहुविधे काले सा श्रादी शहस्ररूपिणी ॥ ३४
 मधुदृष्टा महानालैर्मत्स्यवन्द्येन मानिनी ।
 म तां दृष्ट्वा महाशह्रीं स्वन्द्यां मत्स्यजीविकः ॥ ३५
 निवेदयामास तदा ऋतुघ्नजसुनेषु वै ।

हे सुन्दरि । तनये तप में जिस प्रकार जिन हो तथा हे सुन्दरि । उन्हें सिद्धि प्राप्ति न हो सके ऐसा करो । इन्द्र के बहने पर रूपवती पूतना शीघ्र यहाँ गई जहाँ वे तप कर रहे थे । आश्रम के निम्न ही मन्द जलप्रवाह वाली नदी थी । (२८-३०)

सभी शत्रु माई उस नदी में स्नान करने के लिये आये । यह सुन्दरी भी स्नान करने के लिये उस महानदी में गयी । (३१)

हे मुने ! इन राजपुत्रों ने स्नान परती हुई उससे देगा धीरे से सुमित दृष्ट । उनका दृष्ट गिर गया । ब्राह्म-सुत्र महाशहरी की प्रिया शक्तिनी ने उसे ही लिया । तब वे भट हो जाने पर वे भी अपने पिता के राज्य में चले गए । (३२-३३)

इस अक्षरा ने भी इन्द्र के समीप जाकर उनसे वचार्थ तप्य को निवेदिता किया । मदनभार विरहात्त के बाद बिगी धीरे ने महाशहरी द्वारा कम शक्तिनी मानिनी श्रादी को पकड़ लिया । मत्स्यजीवी (धीरे) ने शय्य पर पत्नी हुई कम महाशहरी को देकर ब्रह्मभय के पुत्रों से निर्भय किया । वेग धारण करने का वे महाशहरी को भी पकड़ती थी । (३४-३५)

तयाऽभ्येत्य महात्मानो योगिनो योगधारिणः ॥ ३६
 नीत्या स्वमन्दिरं सर्वे पुरवाप्यां समुत्सृजन् ।
 ततः क्रमाच्छङ्खिनी सा सुपुत्रे मम वै शिशून् ॥ ३७
 जातमात्रेषु पुत्रेषु मोक्षभावमगाच्च सा ।
 अमातृपितृका बाला जलमघ्यविहारिणः ॥ ३८
 स्तन्यार्थिनो वै रुद्ररुधाभ्यागात् पितामहः ।
 मा रुदधमितीत्याह मरुतो नाम पुत्रकाः ॥ ३९
 सृयं देवा भविष्यच्च वायुस्कन्धविचारिणः ।
 इत्येवमुक्त्वायादाय सर्वोत्तान् देवतान् प्रति ॥ ४०
 नियोज्य च मरुत्तमो वैराजं भवनं गतः ।
 एवमाम्बु मरुतो मनोः स्मारोचिषेऽन्तो ॥ ४१
 उत्तमे मरतो ये च ताञ्छृणुष्व तपोधन ।
 उत्तमस्यान्ववाये तु राजासीन्निपघाधिपः ॥ ४२
 वपुष्मानिति विरवातो वपुषा भास्करोपमः ।
 तस्य पुत्रो गुणश्रेष्ठो ज्योतिष्मान् धार्मिकोऽभवत् ॥ ४३

वे सभी उससे अपने पर छात्र नगर थी वापी में छोड़ दिये । इस शक्तिनी ने प्रमदा सा । पुत्रों को धरम किया । (३७)

पुत्रों का जन्म होते ही वह शक्तिनी मुक्त हो गई । मातृ-पितृपिहीन वे बालर जल में विपण्य करने लगे । (३८)

दुग्ध के लिए वे रोने लगे । इस समय पितामह यहाँ आये । उन्होंने कहा—हे पुत्रो ! रोओ मत । मुग्धाए नाम मरुत् होगा । (३९)

तुम लोग वापु के रुद्र पर विचरण करने वाले देवता होगे । यह बहने के उपान्त हम सभी वेषत्राओं को ले जाकर उन्हें वापु मार्ग में नियोजित कर ब्रह्मदेव चले गए । इस प्रकार शारोचिष मनु के बरत में मरुत् हुए । (४०-४१)

हे तपोधन ! इसम (मन्वन्तर) में जो मरुत् थे, उनके विषय में सुनि । उत्तम के बरत में शरीर में सृय के समान वपुष्मान् नाम का विदवात् निपघाधिप राजा था । उत्तम गुणश्रेष्ठ ज्योतिष्मान् नामक धार्मिक पुत्र था । (४२-४३)

स पुत्रार्थी तपस्तेपे नदीं मन्दाकिनीमनु ।
 तस्य भार्या च सुश्रेणी दवाचार्यसुता शुभा ॥ ४४
 तपधरणयुक्तस्य वभूव परिचारिका ।
 सा स्वयं फलपुष्पाभ्युसमित्कृशं समाहरत् ॥ ४५
 चकार पद्मपत्राक्षी सम्यक् चातिथिपूजनम् ।
 पतिं शुश्रूषमाणा सा कृशा धमनिसंतता ॥ ४६
 तेजोयुक्ता सुचार्वङ्गी दृष्टा सप्तर्षिभिर्यने ।
 तां तथा चारुसर्वाङ्गीं दृष्ट्वाऽथ तपसा कृशाम् ॥ ४७
 पप्रच्छस्तपसो हेतुं तस्यास्तद्गुरुं च ।
 साऽप्रवीत तनयावीर्या आद्याभ्यां वै तपःक्रिया ॥ ४८
 ते चास्यै वरदा प्रदत्तं जाताः सप्त सहर्षयः ।
 प्रजध्वं तनयाः सप्त भविष्यन्ति न संशयः ॥ ४९
 सुवयोगुणसंयुक्ता महर्षीणां प्रमादतः ।
 इत्येवमुक्त्वा जग्मुस्ते सर्व एव महर्षयः ॥ ५०
 स चापि राजर्षिरगात् सभार्यां नगरं निजम् ।
 ततो बहुविधे कान्ते सा राज्ञो महिषी प्रिया ॥ ५१

यह पुत्र की कामना से मन्दाकिनी नदी के तट पर तपस्या करने लगी। देवाचार्य बृहस्पति की सुन्दरी पुत्री बनरी कल्याणी भार्या थी वह उन तपस्त्री की परिचारिका बनी। यह स्वयं फल, पुष्प, जल, समिधा एवं कुश लाती थी। (४४-४५)

फलदल के सदृश लोचनों वाली यह अच्छी तरह अतिथियों का पूजन करती थी। पति की सेवा करते हुए उसका शरीर कृश हो गया तथा शिपयें प्रकट हो गईं। (४६)

सप्तर्षियों ने उस तेजस्विनी सर्वांगसुन्दरी को धन में देखा। तप से कृश उस सर्वांगसुन्दरी को देखकर उन लोगों ने उससे तथा उसके पति की तपस्या का कारण पूछा। उसने कहा—हम दोनों पुत्र के लिए तप कर रहे हैं। (४७-४८)

हे प्रदत्त! सातो महर्षियों ने उसे वर दिया—तुम जाओ। महर्षियों के अनुग्रह से तुम दोनों को निरसन्देह सात गुणवान् पुत्र होंगे ऐसा वह वर वे सभी महर्षि चले गए। (४९-५०)

यह राजर्षि भी पत्नी सहित अपने नगर में गये। वनन्तर बहुत थक ब्यथित हो जाने पर राजा की उस प्रिय महिषी ने उस नृपतिभूषण से गर्म धारण किया। भार्या

अवाप गर्भं तन्वङ्गी तस्मान्नुपतिसत्तमात् ।
 गुर्विष्यामय भार्यायां भमारासी नराधिपः ॥ ५२
 सा चाप्यारोदुमिच्छन्ती भर्तारं वै पतिव्रता ।
 निवारिता तदामात्यैर्न तथापि व्यतिष्ठत् ॥ ५३
 समारोप्याय भर्तारं चित्वायामारुह्य सा ।
 ततोऽग्निमध्यात् सलिले मांसपेक्ष्यपतन्मुने ॥ ५४
 साऽभ्रसा सुखशीतेन संसिक्ता समधाऽभवत् ।
 तेऽजायन्ताथ मरुत उत्तमस्यान्तरे मनोः ॥ ५५
 ताममस्यान्तरे ये च महतोऽप्यभवन् पुरा ।
 तानहं कीर्तयिष्यामि गीतनृत्यकलिप्रिय ॥ ५६
 ताममस्य मनोः पुत्रो ऋतव्यज इति श्रुतः ।
 स पुत्रार्थी जुहावाग्नीं स्वमांसं रुधिरं तथा ॥ ५७
 अश्वीनि रोमकेशांश्च स्नायुमजायकृद्भनम् ।
 शुक्रं च चित्रगी राजा सुतार्थी इति नः श्रुतम् ॥ ५८
 सप्तस्वेवार्चिषु ततः शुक्रपातादनन्तरम् ।
 मा मा क्षिपस्वेदयभवच्छब्दः सोऽपि मृतो नृपः ॥ ५९

के गर्भिणी होने पर वह राजा मर गया। (५१-५२)

यह पतिव्रता पति के साथ चितारोहण के लिए उत्सुक हुई। मन्त्रियों ने उसे निवारित किया। किन्तु वह निवृत्त न हुई। (५३)

पति को चित्ता पर समारोपित कर वह भी उस पर आरोढ़ हो गई। हे मुने! तदनन्तर अग्नि के मध्य से जल में एक मांसपेक्षी गिरी। (५४)

सुशीतल जल से तसिक होने पर यह (मांसपेक्षी) सात रावणों में विभक्त हो गई। वे ही उत्तम मनु के वाट में मरन्त हुए। (५५)

हे गीतनृत्य इतिप्रिय (नारद)! पहले तामसमन्तर में जो मरन्त हुए (अथ में) उनका वर्णन करूँगा। (५६)

तामस मनु के पुत्र ऋतव्यज नाम से विख्यात थे। उन्होंने पुत्र की कामना से अग्नि में अपने शरीर के मांस और रुधिर का हवन किया। (५७)

हम लोगों ने सुना है कि पुत्रार्थी राजा ने अग्नि, रोम, केश, स्नायु, मग्ना, यज्ञ और पने गुक की अग्नि में आरोढ़ि दी। (५८)

तदनन्तर सातों अग्निवर्षों में हुएराव होने पर भ्रत

ततस्तस्माद्भुतवहात् सप्त तच्चेजसोपमाः ।
 शिशवः समजायन्त ते रुदन्तोऽभवन् मृने ॥ ६०
 तेषां तु ध्वनिमाकर्ण्य भगवान् पद्मसभयः ।
 समागम्य निवार्यार्थं स चक्रे मरुतः सुताम् ॥ ६१
 ते त्वासन् मरुतो ब्रह्मंस्तामसे देवतागणाः ।
 येऽभवन् रैवते तांश्च शृणुष्व त्वं तपोधन ॥ ६२
 रैवतस्यान्ववाये तु राजासीद् रिपुजिद् वशी ।
 रिपुजिन्नामतः ख्यातो न तस्यासीत् सुतः किल ॥ ६३
 स समाराध्य तपसा भास्करं तेजसा निधिम् ।
 अवाप कन्यां सुरतिं तां प्रगृह्य गृहं ययौ ॥ ६४
 तस्या पितृगृहे ब्रह्मन् वसन्त्यां स पिता मृतः ।
 साऽपि दुःखपरीताङ्गी स्वा तनुं त्यक्तुमुद्यता ॥ ६५
 ततस्ता चारयामासुर्ऋषयः सप्त मानसाः ।
 तस्यामासक्तचित्तास्तु सर्व एव तपोधनाः ॥ ६६
 अपारयन्ती तद्दुःखं प्रज्वालयाग्निं विवेश ह ।

पेंको, मत फेंको, इस प्रकार का शब्द होने लगा ।
 वह राजा भी मर गया । (५६)

हे मुने ! तदनन्तर उस अग्नि से सात तेजस्वी शिशु
 उत्पन्न हुए और वे रोने लगे । (६०)

उनके रोदन की ध्वनि सुनकर भगवान् पद्मयोनि
 ने आकर मना किया और उन पुत्रों को मरुत नामक देवता
 बना दिया । (६१)

हे ब्रह्मन् ! वे ही तामस मन्वन्तर में (मरुद्गण)
 नामक देवता हुए थे । हे तपोधन ! रैवत मन्वन्तर में जो (मरुद्-
 गण) हुए थे उनका विवरण सुनिए । (६२)

रैवत के यंत्र में शत्रुजयी सयमी रिपुजिन् नाम से
 विख्यात राजा थे । उनको पुत्र नहीं था । (६३)

उन्होंने तप द्वारा तेजोनिधि भास्कर की अराधना कर
 सुरति नामक कन्या प्राप्त की और उसे लेकर वे घर चले
 गये । (६४)

हे ब्रह्मन् ! उस कन्या के पितृ-गृह में रहते हुए पिता
 का देहाण्त हो गया । वह भी शोकाकुल होकर अपने शरीर का
 पार्श्वभाग कटने के लिए उद्यत हुई । (६५)

तदनन्तर सात मानस ऋषियों ने उसे मना किया ।
 वे सभी तपोधन उस में आसक्त हो गये थे । (६६)

शिशु पद कन्या उस दुःख को सदन न कर सके

ते चापयन्त ऋषयस्तच्चित्ता भावितास्तथा ॥ ६७
 तां मृतामृपयो हृष्ट्वा कष्टं कष्टेति वादिनः ।
 प्रजग्मुर्ज्वलनाचापि सप्तजायन्त दारकाः ॥ ६८
 ते च मात्रा निनामृता रुद्रुस्तान् पितामहः ।
 निवारयित्वा कृतवांल्लोकनाथो मरुद्गणान् ॥ ६९
 रैवतस्यान्तरे जाता महतोऽमी तपोधन ।
 शृणुष्व कीर्तयिष्यामि चाक्षुपस्यान्तरे मनोः ॥ ७०
 आसीन्मङ्किरिति रयावस्तपस्वी सत्यवाक् शुचिः ।
 सप्तसारस्यते तीर्थं सोऽस्तप्यत महत् तपः ॥ ७१
 विघ्नार्थं तस्य तुषिता देवाः सप्रेषयन् वपुम् ।
 सा चाभ्येत्य नदीतीरे क्षेमयामास भामिनी ॥ ७२
 ततोऽस्य प्राच्यवच्छुक्रं सप्तसारस्यते जले ।
 तां चैवाप्यशपन्मूढा मुनिर्मङ्गणको वपुम् ॥ ७३
 गच्छ लज्याऽस्ति मूढे त्व पापस्यास्य महत् फलम् ।
 विध्वंसयिष्यति हयो भवतीं यज्ञसंसदि ॥ ७४

के कारण आग जलाकर उसमें प्रविष्ट हो गई । उस में
 आसक्त तथा हीन ऋषियों ने उसे देखा । (६७)

उसे मृत देखकर वे ऋषि 'दुःख की बात है' 'दुःख
 की बात है' कहते हुए चले गये । तदनन्तर उस अग्नि से
 सात पुत्र उत्पन्न हुए । (६८)

माता के अभाव में वे रोने लगे । लोभनाथ पितामह
 ब्रह्मा ने उन्हें रोककर मरुद्गण का पद दिया । (६९)

हे तपोधन ! वे ही रैवत मन्वन्तर में मरुद्गण हुए
 थे । अब मैं पाक्षुप मनु के वाक्य के मरुद्गणों का वर्णन
 करूँगा । उसे सुनिये । (७०)

मङ्कि नाम से विख्यात सत्यवादी और पवित्र एकतपशी
 थे । उन्होंने सप्तसारस्य तीर्थ में महान् तप किया
 था । (७१)

देवताओं ने उनकी तपस्या में विघ्न डालने के लिये
 'वपु' नामक अप्सरा को भेजा । उस भामिनी ने नदी
 तट पर आकर मुनि को लुब्ध कर दिया । (७२)

तदनन्तर उनका शुक्र च्युत होकर सप्तसारस्य के जल में
 स्तब्धित हुआ । मुनि मङ्गणक ने उस मूढ़ 'वपु' को
 भी शाप दिया । (७३)

हे मूढ़े ! चली जाओ । तुम्हें इस पाप का दारुण फल
 प्राप्त होगा । यज्ञसंसद में तुमको अन्ध भ्यस्त करेगा । (७४)

एवं शप्त्वा ऋषिः श्रीमान् जगामाय स्वमाश्रमम् ।
सरस्वतीभ्यः सप्तभ्यः सप्त वै महतोऽभवन् ॥ ७५
एतन् तवोक्ता महतः पुरा यथा

ज्ञाता वियद्व्यापिकरा महर्षे ।
येषां श्रुते जन्मनि पापहानि-
र्भवेच्च धर्माभ्युदयो महान् वै ॥ ७६

इति श्रीवामनपुराणे पद्मचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४६ ॥

४७

पुलस्त्य उवाच ।

एतदर्थं बलिर्देव्यः कृतो राजा कलिप्रिय ।
मन्त्रप्रदाता प्रसादः शुक्रधासीत् पुरोहितः ॥ १
ज्ञात्वाऽभिरिक्तं दैतेयं विरोचनसुतं बलिम् ।
दिदक्ष्यमः समायाताः समयाः सर्व एव हि ॥ २
तानागताग्निरीक्ष्यैव पूजयित्वा यथाक्रमम् ।
पप्रच्छ कुलज्ञान् सर्वान् किन्तु श्रेयस्करं मम ॥ ३
समूचुः सर्व एवैनं शृणुष्व सुरमर्दन ।

श्रीमान् ऋषि इह प्रभार शाप देकर अपने आश्रम में
गये । तदनन्तर सप्त सरस्वतियों से सात महत् पुत्र
हूए ।

हे महर्षि ! पूर्ण काल में अन्तरिक्ष व्यापी महद्गण

श्रीवामनपुराण में चत्वारिंशोऽध्याय समाप्त ॥ ४६ ॥

यत् ते श्रेयस्करं कर्म यदस्माकं हितं तथा ॥ ४
पितामहस्तव बली आसीद् दानवपालकः ।
हिरण्यकशिपुर्वीरः स शक्तोऽमूञ्जगत्रये ॥ ५
तमागम्य सुरश्रेष्ठो विष्णुः सिंहवपुर्धरः ।
प्रत्यर्थं दानवेन्द्राणां नरीस्तं हि व्यदारयत् ॥ ६
अपकृष्टं तथा राज्यमन्वकस्य महात्मनः ।
तेषामर्थे महाबाहो शंकोण विशुलिना ॥ ७
तथा तव पितृव्योऽपि जन्मः शत्रुण धातितः ।

जिस प्रकार वृषभ हूए थे वैसे मैंने आप से कहा । इन
का धर्म मुझसे तो पाप का नाश तथा धर्म का महान्
अभ्युदय होता है ।

४७

पुत्रभ्य ने कहा—हे कलिप्रिय ! इसीलिये बलि देव्य
को राजा बनाया गया था । प्रह्लाद उसके मन्त्री तथा
शुक्र पुत्रोद्दिष्ट थे ।

विरोचन के पुत्र देव्य बलि को अभिरिक्त हुआ
जानकर मय सहित सभी देव्य उसे देवने की इच्छा से
भाये ।

अपने कुलपुरुषों को आया देगदर (बलि ने) यथाक्रम
बनती पूजा की एवं उनसे पूजा—मेरे लिये क्या
भेषादर दे ?

उन सभी ने वससे कहा—हे देवमर्दन ! तुम्हारे

लिये जो श्रेयस्कर तथा हमारे लिये हितावह कर्म है वही
मुझे ।

बलिवान् धीर दानवपालक हिरण्यकशिपु तुम्हारे
पित्राह धे । ये तीनों लोकों में इन्द्र हो गये
थे ।

सिंहराश्रीधारी सुरश्रेष्ठ विष्णु ने आकर भेठ जानने के
सम्मुख उन्हें जनों से विदीर्ण कर दिया ।

हे महाबाहु ! उन (देवों) के लिये प्रियुष्ठी तुम्हारे ने
महात्मा अण्वक का राज्य ले लिया था ।

इसी प्रकार इन्द्र ने तुम्हारे पित्रा के माई जन्म को

कुजम्भो विष्णुना चापि प्रत्यक्षं पशुवत् तव ॥ ८
 शम्भुः पाको महेन्द्रेण भ्राता तव सुदर्शनः ।
 विरोचनस्तव पिता निहतः कथयामि ते ॥ ९
 श्रुत्वा गोत्रक्षयं घ्नन्नन् कृतं शत्रेण दानवः ।
 उद्योगं कारयामास सह सर्वैर्महासुरैः ॥ १०
 रथैरन्ये गजैरन्ये वाजिभिश्चापरेऽसुराः ।
 पदातयस्तथैवान्ये जम्भुर्बुद्ध्याय दैवतैः ॥ ११
 मयोऽग्रे याति बलवान् सेनानाथो भयंकरः ।
 सैन्यस्य मध्ये च बलिः कालनेमिश्च प्रपृथ ॥ १२
 वामपार्श्वमवष्टभ्य शाल्वः प्रथितविक्रमः ।
 प्रयाति दक्षिणं घोरं तारकारयो भयंकरः ॥ १३
 दानवानां महस्राणि प्रयुतान्यवुर्दानि च ।
 संप्रयातानि युद्धाय दवैः सह कलिप्रिय ॥ १४
 श्रुत्वाऽसुराणांमुद्योगं शक्रः सुरपतिः सुरान् ।
 उवाच याम दैत्यांस्तान् योद्धुः सवलसंयुतान् ॥ १५

माय तथा विष्णु ने तुम्हारे सम्मुख कुजम्भ को पशु की
 तरह मार डाला था । (८)

शम्भु, पाक और तुम्हारे भाई सुदर्शन को महेन्द्र
 ने निहत किया था । तुम्हारे पिता विरोचन भी मारे
 गये थे । (९)

हे मदान् ! शक्र द्वारा किये गये गोत्रक्षय को सुनकर
 दानव ने समस्त महान् असुरों से युद्ध का उद्योग
 पराया । (१०)

कतिपय असुर रथों पर, कुछ हाथियों पर, कुछ
 घोड़ों पर तथा कुछ पैदल ही देवों से युद्ध करने के
 लिए गये । (११)

सेना के अग्रभाग में भयङ्कर एवं बलवान् सेनापति
 मय चला । सेना के मध्य में बलि, प्रथ में कालनेमि,
 वामभाग में प्रसिद्ध पराक्रमी शाल्व तथा दक्षिण पार्श्व में
 भयङ्कर तारक नामक असुर प्रतिधन हुआ । (१२-१३)

हे कलिप्रिय (नारद) ! हजारों, प्रयुक्तों एवं अर्बुदों दानव
 देवताओं से लड़ने के लिए प्रयाग किये । (१४)

अमुपैषा युद्धोद्योगं मुनिरसुरपति इन्द्र ने देवताओं
 से कहा—सेना से युद्ध उन देवों से लड़ने के लिए हम
 गए हैं । (१५)

इत्येवमुक्त्वा वचनं सुरराट् स्पन्दनं बली ।
 समारूरोह भगवान् यतमातलिवाजिनम् ॥ १६
 समारूढे सहस्राक्षे स्पन्दनं देवतागणाः ।
 स्वं स्वं वाहनमारुह्य निश्चेर्युद्धकाङ्क्षिणः ॥ १७
 आदित्या वसवो रुद्राः साध्या विश्वेऽश्विनौ तथा ।
 विद्याधरा गुह्यकाश्च यक्षराक्षसपन्नगाः ॥ १८
 राजर्षयस्तथा सिद्धा नानाभूताश्च संहताः ।
 गजानन्ये रथानन्ये हयानन्ये समारूहन् ॥ १९
 विमानानि च शुभ्राणि पक्षिवाहानि नारद ।
 समारूढाद्रवन् सर्वे यतो दैत्यबल स्थितम् ॥ २०
 एतस्मिन्मन्तरे धीमान् वैनतेयः समागतः ।
 तस्मिन् विष्णुः सुरश्रेष्ठ अधिरुह्य समभ्यगात् ॥ २१
 तमागमं सहस्राक्षैर्लोकपतिमपतिमग्यचम् ।
 वयन्द मूर्ध्नावनतः सह सर्वैः सुरोत्तमैः ॥ २२
 ततोऽग्रे देवसैन्यस्य कार्तिकेयो गदाधरः ।

ऐसा वचन कहकर बलवान् भगवान् सुरपति इन्द्र मातलि
 द्वारा नियन्त्रित अश्वों वाले रथ पर समारूढ हुए । (१६)

इन्द्र के रथारूढ़ होने पर देवगण अपने-अपने वाहनों
 पर आरूढ़ हो युद्ध की इच्छा से बाहर निकले । (१७)

आदित्य, वसु, रुद्र, साध्य, विश्वेदेव, अश्विनीकुमार,
 विद्याधर, गुह्यक, यक्ष, राक्षस, पन्नग, राजर्षि, सिद्ध तथा
 नाना प्रकार के भूत समवेत हुए । कुछ हाथियों
 पर, कुछ रथों पर तथा कुछ घोड़ों पर आरूढ़
 हुए । (१८-१९)

हे नारद ! कतिपय देवगण पक्षियों द्वारा ढोये जाने
 वाले शुभ्र विमानों पर आरूढ़ होकर वहाँ गये जहाँ दैत्य
 सेना स्थित थी । (२०)

इसी बीच युद्धिमान् गरुड आये । सुरश्रेष्ठ विष्णु
 वस पर आरूढ़ होकर चले । (२१)

सभी देवताओं के साथ शिर शुकानर सहस्रांश
 इन्द्र ने आये हुए त्रैलोक्यपति अग्न्य (विष्णु) की
 पन्दना की । (२२)

तदनन्तर कार्तिकेय देवसेना के अग्रभाग
 में, गदाधर विष्णु सेना के परपाद् भाग में तथा

पालयद्भयं विष्णुर्याति मध्ये सहस्रदृक् ॥ २३
 वामं पार्श्वमवष्टभ्य जयन्तो व्रजते ह्यने ।
 दक्षिणं वरुणः पार्श्वमवष्टभ्याव्रजद् वली ॥ २४
 ततोऽमराणां पृतना यशस्विनी
 स्कन्देन्द्रविष्णवभ्युपसूर्यपालिता ।
 नानास्त्रशस्त्रोद्यतोःसमुहा
 समासतादारिवलं महीध्रे ॥ २५
 उदयात्रितटे रम्ये शुभे समशिलावले ।
 निर्वृक्षे पश्चिरहिते जातो देवासुरो रणः ॥ २६
 संनिपातस्तयो रौद्रः सैन्ययोरभयगुह्ये ।
 महीधरोत्तमे पूर्वं यथा वानरहतितनोः ॥ २७
 रणोरेणुरयोद्भूतः पिङ्गलो रणमूर्धनि ।
 संप्यानुरक्तः सद्यो मेघः खे सुरतापस ॥ २८
 तदासीत् तुमुलं युद्धं न प्राज्ञायत किंचन ।
 श्रूयते त्वनिशं शब्दः छिन्धि भिन्धीति सर्वतः ॥ २९

सहस्रयोजन इन्द्र मध्यभाग की रक्षा करते हुए
 चले । (२३)

हे मुनि ! जयन्त वामपार्श्व को घेर कर चले एवं पलवान्
 वरुण दक्षिण पार्श्व में स्थित होकर पल । (२४)

तदनन्तर नाना प्रकार के अस्त्रशस्त्रों को धारण करने
 वालों से युक्त तथा स्कन्द, विष्णु, वरुण एवं सूर्य से पालित
 देवों की यशस्विनी सेना पर्वत पर शत्रुसैन्य के निम्न
 पहुँची । (२५)

युद्ध एवं पक्षियों से रहित उदयापल के रमणीय,
 शुभ एवं सम शिलावलय पर देवों एवं असुरों का महान् युद्ध
 हुआ । (२६)

हे मुनि ! पूर्वकाल में जैसा युद्ध घनर एवं शक्तिशाली
 के बीच हुआ था वैसा ही भयङ्कर संपर्क उन दोनों सेनाओं
 में हुआ । (२७)

हे सुरतापस ! रथ से उड़ी हुई युद्ध की पिङ्गलवर्ण
 पुलि युद्ध-भूमि के ऊपर आकाश में स्थित सन्ध्याछाडीन
 छाल मेघ की तरह प्रतीत होने लगी । (२८)

उस समय हो रहे तुमुलयुद्ध में युद्ध भी नहीं जान
 हो रहा था । सभी ओर निरन्तर 'जातो' 'मारो' का शब्द
 सुनाई पड़ता था । (२९)

तदनन्तर देवों के साथ देवों की भयङ्कर मार काट से

तवो विशसनो रौद्रो दैत्यानां दैवतैः सह ।
 जातो रुधिरनिष्पन्दो रजःसंपमनात्मकः ॥ ३०
 शान्ते रजसि देवाद्यास्तद् दानवयलं महत् ।
 अभिद्रवन्ति सहिताः समं स्कन्देन धीमता ॥ ३१
 निजघ्नुर्दानवान् देवाः कुमारभुजपालिताः ।
 देवान् निजघ्नुर्दैत्याश्च मयगुमाः प्रहारिणः ॥ ३२
 ततोऽमृतरसास्वादाद् विना भूताः सुरोत्तमाः ।
 निजिताः समरे दैत्यैः समं स्कन्देन नारद ॥ ३३
 विनिर्जितान् सुरान् दृष्ट्वा वैनतेयवज्रोऽरिहा ।
 शार्ङ्गमानम्य वाणीर्वनिजघान ततस्ततः ॥ ३४
 ते विष्णुना हन्यमानाः पतन्तिरिचरयोमुत्तैः ।
 दैतयाः शरणं जगुः कालनेमिं महासुरम् ॥ ३५
 तेभ्यः स चाभयं दत्त्वा ह्यारवाऽजेयं च माधवम् ।
 विवृद्धिमगमद् मज्जन् यथा व्याधिरुपेक्षितः ॥ ३६
 यं यं करेण स्पृशति देवं यत्नं मक्निन्नरम् ।

धूलि को शान्त करने वाला रुधिर-प्रवाह उरपन्न
 हुआ । (३०)

धूलि के शान्त होने पर देवताओं ने युद्धिमार
 कार्तिकेय के साथ महान् दानव-दल पर आक्रमण
 किया । (३१)

कुमार कार्तिकेय के बाहुपल से रक्षित देवताओं ने
 देवों को मारा तथा मय के द्वारा रक्षित प्रहार करने वाले
 देवों ने देवताओं को मारा । (३२)

हे नारद ! तदनन्तर अमृतरस के आस्वाद के विना
 स्कन्द सहित भेद्र देवगण युद्ध में देवों द्वारा पराजित
 हो गये । (३३)

देवों को पराजित हुआ वेरानर शत्रुसूदन गरुडभुज
 शार्ङ्ग धनुष को हुआकर चारों तरफ वाणों की वर्षा
 करने लगे । (३४)

विष्णु द्वारा लीहसुर वाणों से मारे जा रहे दैत्य
 कालनेमि नामक महान् असुर की शरण में
 गये । (३५)

हे ब्रह्मन् ! उन्हें अभय प्रदान कर तथा माधव को
 अजेय जानकर (यह) उपेक्षित व्याधि के सदृश बढ़ने
 लगा । (३६)

यह सबकार जिन देवता, यज्ञ या किन्नर को हाथ से

तं तमादाय चिक्षेप विस्तृते वदने वली ॥ ३७
 संरम्भाद् दानवेन्द्रो विमृदति दितिजैः संयुतो देवसैन्यं
 सेन्द्रं सार्कं सचन्द्रं करचरणनरैस्त्रहीनोऽपि वेगात् ।
 चक्रैर्वैश्वानरामैस्त्वबनिगनयोस्तिर्यग्भूर्ध्व समन्तात्
 प्रामोऽन्ते कालवह्नेर्जगदखिलमिदं रूपमासीद् दिग्धोः ॥ ३८
 तं दृष्ट्वा वर्द्धमानं रिपुमत्तिलिनं देवगन्धर्वमूल्याः
 सिद्धाःसाध्याश्चिह्नमूल्या भयतरलदृशः प्रादुर्भवन् दिक्षु सर्वे ।
 पोप्ल्यन्तश्च दैत्या हरिममरगणैरर्चितं चारुमौलिं
 नानाशस्त्रास्त्रपातैर्विगलितयज्ञसं चक्रुस्सिक्तदर्पाः ॥ ३९
 तानित्यं प्रेक्ष्य दैत्यान् मयनलिपुरगान् कालनेमिप्रधानान्
 वाणैराकृष्य शार्ङ्गं त्वनवरतमुरोमेदिभिर्विभ्रज्जल्पैः ।
 कोपादारक्तदृष्टिः सरधगजहयान् दृष्टिनिर्धृतवीर्यान्
 नाराचारपैः सुपुह्रैर्जलद् इव
 गिरीन् छादयामास विष्णुः ॥ ४०
 तैर्वाणैश्छाद्यमाना हरिकरनुदितैः कालदण्डप्रकाशै-

स्पर्श करता उसे लेकर अपने विस्तृत मुख में फेकने
 लगा । (३७)

वह दैत्येन्द्र कालनेमि अखीन होने पर भी दानवों
 के साथ मिलकर क्रोध से हाथ, पैर और नख के प्रहार से
 इन्द्र, सूर्य, चन्द्र सहित देव सेना को वेग से मारने
 लगा । वह अग्नि तुल्य चत्रों द्वारा आकाश एव पृथ्वी
 पर नीचे ऊपर चतुर्दिक् प्रहार करने लगा । उस समय
 उसका रूप प्रलय काल में समस्त जगत् को दग्ध करने
 की इच्छा याने अग्नि के सदृश था । (३८)

उस अति बलयान् शत्रु को बढ़ते देवतर
 देवता, गन्धर्व, सिद्ध साध्य, अधिनीकुमार आदि भय से
 चचल दृष्टि वाले होकर चारों ओर भागने लगे । दृष्टे हुए
 दैत्यों ने अत्यन्त गर्वित होकर अमरों से पूजित तथा सुन्दर
 मुकुट याने विष्णु के सामने जानर विविध शस्त्रास्त्रों
 के आपात से वनके यज्ञ को समाप्त कर दिया । (३९)

मय, गलि एव कालनेमि आदि दैत्यों को इस प्रकार
 देवतर विष्णु के नेत्र क्रोध से लाल हो गये ।
 उन्होंने अपनी दृष्टि से रथ, हाथी और घोड़ों को धीरेधीन
 धर दिया एव जैसे मेघ आकाश को आच्छादित करने
 हैं उसी प्रकार सुन्दर पुत्रों से युक्त नापच नामक वाणों

नाराचैर्धचन्द्रैर्बलिमयपुरगा भीतभीतात्स्वरन्तः ।
 प्रारम्भे दानवेन्द्रं शतवदनमथो प्रेषयन् कालनेमिं
 स प्रापाद् देवसैन्यप्रभुममितवलकेशवं लोकनाथम् ॥ ४१
 तं दृष्ट्वा शतशीर्षमृधतगदं शैलेन्द्रशृङ्गाकृतिं
 विष्णुः शार्ङ्गमपास्य सत्वरमथो जग्राह चक्रं करे ।
 सोऽप्येनं प्रसमीक्ष्य दैत्यपिटपप्रच्छेदन मानिनं
 प्रोवाचाथ विहस्य च च सुचिरं मेघस्फुरो दानवः ॥ ४२
 अयं स दनुपुत्रसैन्यवित्रासकृष्टिपुः
 परमकोपितः स मघोर्विधातकृत् ।
 हिरण्यनयनान्तकः कुसुमपूजारतिः
 कं याति मम दृष्टिगोचरे निपतितः खलः ॥ ४३
 यद्येव संप्रति ममाहवमभ्युपैति
 नूनं न याति निलयं निजमम्बुजाक्षः ।
 मन्मृष्टिपिष्टिशिलालङ्घ्यपाचभस्म
 संद्रक्ष्यते सुरजनो भयकातराक्षः ॥ ४४

द्वारा पर्वत को आच्छादित कर दिया । (४०)

विष्णु के हाथों से छोड़े गये कालदण्ड तुल्य अर्धचन्द्राकार
 उन नाराच नामक वाणों से आच्छादित बलि एव मय आदि
 दैत्यों ने मयभीत होकर शीघ्रता से पहले दानवेन्द्र शतमुख
 कालनेमि को प्रेषित किया । वह देव सेनाधिप अति
 बलयान् लोकनाथ केशव के सम्मुख गया । (४१)

गदा उठाये हुये सौ शिर वाले पर्वतशृङ्ग के सदृश
 कालनेमि को देखकर विष्णु ने शार्ङ्ग धनुष को छोड़कर हाथ में
 शीघ्र ही चक्र को लिया । इनको देखकर बहुत देर तक
 जोर से हँसते हुए मेघ के समान शब्द याने उस दानव
 ने दैत्यरूपी दृष्टों के नाशक मनाथी हरि से कहा— (४२)

यही दानव सेना को प्रत करने वाला शत्रु, अत्यन्त
 क्रोधी, मधु को मारने वाला, हिरण्याक्ष का नाशक तथा
 पुत्रों द्वारा की गई पूजा से प्रसन्न होने वाला है यह लज में
 आँसुओं के सामने आ कर अब फट्टा जाता है । (४३)

यह कमलाक्ष (विष्णु) यदि इस समय मेरे साथ युद्ध
 करे तो अपने पर नहीं जायेगा और देवता भयकार
 नेत्र से मेरी मुट्टी में पिसकर मिथिल आहों याने
 इस (विष्णु) को मूर्च्छित कर देलेंगे । (४४)

इत्येवमुक्त्वा मधुसूदनं वै
 स कालनेमिः स्फुरिताभरोष्ठः ।
 गदां खगेन्द्रोपरि वातक्रोपो
 मृमोच शैले कुलिशं यथेन्द्रः ॥ ४५
 तामापतन्तीं प्रसमीक्ष्य विष्णु-
 धोरां गदां दानवग्राह्यमुक्ताम् ।
 चनेण चिच्छेद सुदुर्गतस्य
 मनोरथं पूर्वकृतेव कर्म ॥ ४६
 गदां छित्त्वा दानवाम्याशमेत्य
 भुजौ पीनौ संप्रचिच्छेद वेगात् ।
 भुजाभ्यां कृत्वाभ्या दग्धशैलप्रकाशः
 सटथेताप्यपरः कालनेमिः ॥ ४७

सतोऽस्य माधवः कोपात् शिरश्चक्रेण भूत्ले ।
 छित्त्वा निपातयामास पकं तालफलं यथा ॥ ४८
 तथा विद्याहुर्विशिरा मृण्डतालो यथा वने ।
 तस्यौ मेरुरिवाकम्प्यः कनन्धः क्षमाधरोधरः ॥ ४९
 तं चैनतेयोऽप्युरसा खगोत्तमो
 निपातयामास मुने धरण्याम् ।
 यथाऽम्बराद् वाहुशिरः प्रणष्ट-
 वलं महेन्द्रः कुलिशेन भून्याम् ॥ ५०
 तस्मिन् हते दानवसैन्यपाले
 संपीड्यमानास्त्रिदशैस्तु दैत्याः ।
 निमुक्तशस्त्रालकचर्मवस्त्राः
 संप्रादवन् धाणमृतेऽसुरेन्द्राः ॥ ५१

इति श्रीवामनपुराणे सप्तचत्वारिंशोऽध्याय ॥४४॥

४८

पुलस्त्य उवाच ।
 संनिवृत्ते ततो बाणे दानवाः सत्वरं पुनः ।

मधुसूदन से इस प्रकार बहकर क्रोध से अपरोष्ठ को स्फुरित करते हुए कालनेमि ने, इन्द्र जिस प्रकार पर्वत पर चक्र फेरते हैं उसी प्रकार गदा को गरुड़ पर पेंवा । (४५)

भगवान् विष्णु ने दानव के हाथ से मुक्त उस भयङ्कर गदा को खाते देख उस चक्र से इस प्रकार नष्ट कर दिया जैसे पूर्वकृत कर्म भाग्यहीन मनुष्य के मनोरथ को नष्ट कर देता है । (४६)

गदा को काट कर विष्णु दानव के निवृत्त गये एवं वेगपूर्वक उसकी मोटी भुजाओं को काट डाले । भुजाओं के कट जाने पर कालनेमि दूसरे जले हुए पर्वत के तुल्य दिखलाई पड़ने लगा । (४७)

श्रीवामनपुराण में सैतालीसवाँ अध्याय समाप्त ॥४४॥

निवृत्ता देवतानां च सशस्त्रा युद्धलालसाः ॥ १
 विष्णुरप्यमितौजास्तं ज्ञात्वाऽज्येयं पलेः सुतम् ।

तदनन्तर माधव ने क्रोधपूर्वक चक्र द्वारा उसके शिर को काट कर पवन तालफल के सदृश पृथ्वी पर गिरा दिया । (४८)

वन में मृण्डताल के सदृश वाहु एवं मस्तकहीन कनन्ध निरन्मय पर्वतराज मेरु के सदृश खड़ा रहा । (४९)

हे मुने ! जैसे महेन्द्र ने कुलिश द्वारा नष्ट षाँह और शिर वाले बल को पृथ्वी पर गिराया था उसी प्रकार पक्षि श्रेष्ठ गरुड़ ने अपनी छाती के प्रहार से उस (कनन्ध) को पृथ्वी पर गिरा दिया । (५०)

उस दानव सेनापति के मारे जाने पर बाणासुर के अतिरिक्त देवों द्वारा अति पीडित सभी दैत्य शस्त्र, वेद्य, दाल और वस्त्र को छोड़कर भाग गये । (५१)

४८

पुलस्त्य ने कहा—तदनन्तर बाणासुर के डीटने पर इच्छा से डीटे । (१)
 दानव पुनः शस्त्र टेंकर शीघ्र देवताओं से युद्ध करने की अपरिमित तेजस्वी विष्णु ने पल्लि के पुत्र बाण को

प्राहामन्थ सुरान् सर्वान् युध्यध्वं विगतज्वराः ॥ २
 विष्णुनाऽथ समादिष्ट देवाः शक्रपुरोगमाः ।
 युयुधुर्दानवैः सार्धं विष्णुस्त्वन्तरधीयत ॥ ३
 माधवं गतमाज्ञाय शुको बलिमुवाच ह ।
 गोविन्देन सुरास्त्यक्तास्त्वं जयस्वाधुना पले ॥ ४
 स पुरोहितवाक्येन प्रीतो याति जनार्दने ।
 गदामादाय तेजस्वी देवसैन्यमभिदुतः ॥ ५
 वाणो बाहुसहस्रेण शूख प्रहरणान्यथ ।
 देवसैन्यमभिदुत्य निजघान सहस्रशः ॥ ६
 मयोऽपि मायामास्थाय तैस्ती रूपान्तैर्मुने ।
 योधयामास बलवान् सुराणां च वरूथिनीम् ॥ ७
 विद्युजिह्वः पारिमद्रो वृषपर्वा शतेक्षणः ।
 विपाको विश्वरः मैन्यं तेऽपि देवानुपाद्रवन् ॥ ८
 ते हन्यमाना दितिजैर्देवाः शक्रपुरोगमाः ।
 गते जनार्दने देवे प्रायशो विद्युराऽभवन् ॥ ९

अनेय जानकर देवताओं को घुलाकर कहा—आप लोग
 निर्भय होकर युद्ध कीजिये । (२)

विष्णु के द्वारा आदिष्ट इन्द्र आदि देवता दानवों के
 साथ युद्ध करने लगे और विष्णु अदृश्य हो गये । (३)

माधव को गया हुआ जानकर शुक ने बलि से कहा—
 हे बलि! गोविन्द ने देवताओं का परित्याग कर दिया
 है । अब तुम जय प्राप्त करो । (४)

जनार्दन के चले जाने पर तेजस्वी बलि पुरोहित के
 वाक्य से हर्षित हो गदा लेकर देवसेना की ओर
 दौड़ा । (५)

दृजा द्वापों में अक्षर-शस्त्र लेकर पाण्डुर ने देवसेना
 पर चढ़ाई कर सहस्रों का वध किया । (६)

हे मुने ! बलवान् मय दानव भी माया के द्वारा विभिन्न
 रूपों को धारण कर अमरों की सेना के साथ युद्ध
 करने लगा । (७)

विद्युजिह्व, पारिमद्र, वृषपर्वा, शनेक्षण, विपाक, तथा
 विश्वर भी देवताओं की सेना पर दृष्ट पड़े । (८)

भगवान् जनार्दन के चले जाने पर इन्द्रादि देव दैत्यों
 द्वारा मारे जाकर प्रायेण युद्ध से विमुक्त हो गये । (९)

बलि एवं बाण आदि श्रेष्ठोक्त्य को जीतने की इच्छा करने

तान् प्रभग्नान् सुरगणान् बलिप्राणपुरोगमाः ।
 पृष्टथाद्रवन् सर्वं त्रैलोक्यविजिगीषवः ॥ १०
 संवाच्यमाना दैतेर्यैर्देवाः सेन्द्रा भयातुराः ।
 त्रिविष्टपं परित्यज्य ब्रह्मलोकमुपागताः ॥ ११
 ब्रह्मलोकं गतेष्वित्यं सेन्द्रेष्वपि सुरेषु वै ।
 स्वर्गभोक्ता बलिर्जातः सपुत्रभ्रातृवान्धवः ॥ १२
 शक्रोऽभूद् भगवान् ब्रह्मन् बलिर्वाणो यमोऽभवत् ।
 वरुणोऽभून्मयः सोमो राहुर्हार्दो हुताशनः ॥ १३
 स्वर्मानुरभवत् सूर्यः शक्रभासीद् बृहस्पतिः ।
 येऽप्येऽप्यधिकृता देवास्तेषु जाताः सुरारयः ॥ १४
 पञ्चमस्य कलेरादौ द्वापरान्ते मुदात्तणः ।
 देवासुरोऽभूत् संग्रामो यत्र शक्रोऽप्यभूद् बलिः ॥ १५
 पातालाः सप्त तस्यासन् वशे लोकत्रयं तथा ।
 भूर्भुवःस्वरिति रूपांतं दशलोकाधिपो बलिः ॥ १६
 स्वर्गं स्वयं निवसति भुङ्क्ते भोगान् सुदुर्लभान् ।

सभी (दैत्य) भगवते देवों के पीछे दौड़े । (१०)

दैत्यों द्वारा पीड़ित इन्द्रादि भयातुर देवता स्वर्ग
 को छोड़कर ब्रह्मलोक चले गये । (११)

इस प्रकार इन्द्र सहित देवताओं के ब्रह्मलोक चले जाने
 पर पुत्रों, भाई और वान्धवों के साथ बलि स्वर्ग का भोक्ता
 हो गया । (१२)

हे ब्रह्मन् ! बलि भगवान् इन्द्र हुआ एवं बाण यम
 बना । मय दानव वरुण हुआ तथा राहु चन्द्र और हृदार
 अग्नि बना । (१३)

स्वर्मानु (केतु) स्वर्ग हुआ एवं शुक बृहस्पति बने । इसी
 प्रकार अन्य विभिन्न देवताओं के पदों पर असुरों ने
 अधिकार कर लिया । (१४)

पञ्चम कलियाग के आदि में और द्वापर युग के अन्तिम
 भाग में भयङ्कर देवासुर संग्राम हुआ था । उस समय
 बलि इन्द्र बना था । (१५)

सान पाताल और भू, भुव, स्वः नामक विख्यात तीनों
 लोक उसके अधिकार में थे । इस प्रकार बलि दश लोकों का
 अधिपति हो गया था । (१६)

सुदुर्लभ भोगों का उपभोग करने हुए स्वयं

तत्रोपासन्त गन्धर्वा विश्वावसुपुरोगमाः ॥ १७
तिलोत्तमाद्याप्सरसो नृत्यन्ति सुरतापस ।
वाद्यन्ति च वाद्यानि यक्षविद्याधरादयः ॥ १८
विविधानपि भोगांश्च भुङ्क्ते दैत्येश्वरो बलिः ।
सस्मार मनसा ब्रह्मन् प्रह्लादं स्वपितामहम् ॥ १९
संस्मृतो नष्ट्वा चासौ महाभागवतोऽसुरः ।
समभ्यागात् त्वरायुक्तः पातालात् स्वर्गमन्वयम् ॥ २०
तमागतं समीक्ष्यैव त्वक्त्वा सिंहासनं बलिः ।
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा वचन्द्रे चरणायुधौ ॥ २१
पादयोः पतितं वीरं प्रह्लादस्त्वरितो बलिम् ।
समुत्थाप्य परिष्वज्य विवेश परमासने ॥ २२
तं बलिः प्राह भोस्तात त्वत्प्रसादात् सुरा मया ।
निर्जिताः शक्रराज्यं च हृतं वीर्यबलान्मया ॥ २३
तदिदं तात मदीर्यं विनिर्जितसुरोत्तमम् ।
त्रैलोक्यराज्यं भुङ्क्त त्वं मयि भृत्ये पुरःस्थिते ॥ २४

बलि स्वर्ग में रहने लगा । विश्वावसु आदि गन्धर्व उसकी सेवा करने लगे । (१७)

हे देवपति ! तिलोत्तमा आदि अप्सराएँ नृत्य करती थीं एवं यक्ष तथा विद्यापरादि वाद्य बजाते थे । (१८)

हे ब्रह्मन् ! विविध भोगों का उपभोग करते हुए दैत्येश्वर बलि ने मन से अपने पितामह प्रह्लाद का स्मरण किया । (१९)

पौत्र के स्मरण करने पर वे महान् विष्णु-भक्त असुर शीघ्र पाताल से अक्षय स्वर्गलोक में आये । (२०)

बम्हे आया हुआ देवने ही बलि ने सिंहासन त्यागकर तथा हाथ जोड़कर उनके चरणों की चन्दना की । (२१)

चरणों में प्रणव धीर बलि ने शीघ्रतापूर्वक उठारकर तथा आलिङ्गन कर प्रह्लाद आसन पर बैठ गये । (२२)

बलि ने वनसे कहा—हे तात ! मैंने आपकी कृपा से अपनी शक्ति के द्वारा देवताओं को पराजित कर दिया और इन्द्र के राज्य को छीन लिया । (२३)

हे तात ! आप मेरे पराक्रम द्वारा जीते गये देवों के इस श्रेष्ठ त्रैलोक्य-राज्य का भोग करें एवं मैं आपके सम्मुख श्रुत्य रूप से उपरिथत हूँगा । (२४)

एतावता पुण्ययुतः स्यामहं तात यत् स्वयम् ।
त्वदङ्घ्रिपूजाभिरतस्त्वदुच्छिदाद्यभोजनः ॥ २५ ।
न सा पालयतो राज्यं धृतिर्भवति सत्तम ।
या धृतिर्गुरुशुभ्रूपां कुर्वतो जायते विभो ॥ २६
तवस्तदुक्तं बलिना वाक्यं श्रुत्वा द्विजोत्तम ।
प्रह्लादः प्राह वचनं धर्मकार्यसाधनम् ॥ २७

मया कृतं राज्यमकटकं पुरा
प्रशासिता भूः सुहृदोऽसुपूजिताः ।
दत्तं यथेष्टं जनितास्तथात्मजाः

स्थितो बले सम्प्रति योगसाधकः ॥ २८
गृहीतं पुत्र विधिघ्नमया भूयोऽर्पितं तव ।
एवं भव गुरुणां त्वं सदा शुश्रूषणे रतः ॥ २९
इत्येवमुक्त्वा वचनं करे त्वादाय दक्षिणे ।
शाक्रे सिंहासने ब्रह्मन् बलिं तूर्णं न्यवेशयत् ॥ ३०
सोपविष्टो महेन्द्रस्य सर्वरत्नमये शुभे ।

हे तात ! इस प्रकार आपके चरणों की पूजा में रत रहकर आपके उच्छिद्य अन्न वा भोजन करने से मैं पुण्यवान् हो जाऊँगा । (२५)

हे सत्तम ! हे विभो ! राज्य का पालन करने वालों में वह धृति नहीं होती जो धृति गुरु की शुश्रूषा करने वालों में होती है । (२६)

हे द्विज सराम ! तदनन्तर प्रह्लाद ने बलि द्वारा कहे वाक्य को सुनकर धर्म, अर्थ तथा नाम का साधक वचन कहा । (२७)

मैंने पहले अकटक राज्य किया है । पृथ्वी का शासन और मित्रों की पूजा कर चुका हूँ । यथेष्ट दान और अनेक सन्तानों को उत्पन्न किया है । किन्तु हे बलि ! इस समय मैं योगी हो गया हूँ । (२८)

हे पुत्र ! तुम्हारे दिये की विधिपूर्वक ग्रहण कर मैंने पुनः तुमको दे दिया । इसी प्रकार तुम गुरुओं की सेवा में सदा रत रहो । (२९)

हे ब्रह्मन् ! ऐसा वचन कहकर (प्रह्लाद ने) दाहिना हाथ पकड़ कर बलि को शीघ्र इन्द्र के सिंहासन पर बैठा दिया । (३०)

वह दैत्यपति बलि महेन्द्र के सर्वरत्नमय मङ्गलमय सिंहासन

सिंहासने दैत्यपतिः शुशुभे मघवानिव ॥ ३१
 तत्रोपविष्टथैवासौ कृताञ्जलिपुटो नतः ।
 प्रह्लादं प्राह वचनं मेघगम्भीरया गिरा ॥ ३२
 यन्मया तात कर्तव्यं त्रैलोक्यं परिरक्षता ।
 धर्मार्थकाममोक्षेभ्यस्त्वदादिशतु मे भवान् ॥ ३३
 तद्वाक्यसमकालं च शुक्रः प्रह्लादमब्रवीत् ।
 यद्युक्तं तन्महाबाहो वदस्वाद्योत्तरं वचः ॥ ३४
 वचनं बलिशुक्राभ्यां श्रुत्वा मागवतोऽसुरः ।
 प्राह धर्मार्थसंयुक्तं प्रह्लादो वाक्यम्लुचमम् ॥ ३५
 यदायत्यां क्षम राजन् बद्धितं ध्रुवनस्य च ।
 अविरोधेन धर्मस्य अर्थस्योपार्जनं च यत् ॥ ३६
 सर्वसत्त्वानुगमनं कामवर्गफलं च यत् ।
 परत्रेह च यच्छ्रेयः पुत्र तत्कर्म आचर ॥ ३७
 यथा श्लाघ्यं प्रयास्यद्य यथा कीर्तिभवेत्तद्य ।
 यथा नायशतो योगस्तथा कुरु महामते ॥ ३८
 एतदर्थं त्रिय दीप्तं काङ्क्षन्ते पुरुषोत्तमाः ।

पर बैठकर इन्द्र के समान शोभित हुआ । (३१)

उस पर बैठने के उपरान्त नम्रता पूर्वक हाथ जोड़कर
 उसने मेघ-गर्जन तुल्य गम्भीर वाणी में प्रह्लाद से
 कहा— (३२)

हे तात । त्रैलोक्य का रक्षण करते हुये मेरे धर्म, अर्थ,
 काम और मोक्ष के लिये कर्तव्य को मुझे आप बतलाएँ । (३३)
 उसके वाक्य के साथ ही साथ शुक्र ने प्रह्लाद
 से कहा—हे महानाहु । जो उचित हो वह उत्तर
 दीजिए । (३४)

विष्णु भक्त प्रह्लाद ने बलि और शुक्र की बात सुनकर
 धर्म और अर्थ युक्त उत्तम वाक्य कहा— (३५)

हे पुत्र । भविष्य के लिए समर्थ, ससार के लिए
 हितायुध एवं धर्म के अनुरुद्ध अर्थ का उपार्जन तथा सभी
 प्राणियों के अनुरुद्ध कामगर्गों के फल (का सेवन) एवं
 इह लोक और परलोक में श्रेयस्कर कर्म का आचरण
 करो । (३६-३७)

हे महामति । तुम जिस प्रकार दयापनीय बन सको
 एवं जिस प्रकार तुम्हें कीर्ति प्राप्त हो तथा अयत्न का योग
 न हो यही कर्म करो । (३८)

येनैतानि गृहेऽस्माकं निवसन्ति सुनिर्वृताः ॥ ३९

कुलजो व्यवसने भग्नः सरला चार्थबहिः कृतः ।

वृद्धो ज्ञातिर्गुणी विप्रः कीर्तिथ यशसा सह ॥ ४०

तस्माद् यथैते निवसन्ति पुत्र

रान्मस्थितस्येह कुलोद्गतायाः ।

तथा यतस्वामलसत्त्वचेष्ट

यया यशस्वी भविताऽसि लोके ॥ ४१

भूम्यां सदा प्राह्वणभूषितायां

क्षत्रान्विताया दृढवापितायाम् ।

शुश्रूषणासक्तसमुद्भवाया-

मृद्धिं प्रयान्तीह नराधिपेन्द्राः ॥ ४२

तस्माद् द्विजाद्याः श्रुतिशास्त्रयुक्ता

नराधिपांस्ते प्रतियाजयन्तु ।

दिव्यैर्यजन्तु क्रतुभिर्द्विजेन्द्रा

यज्ञान्निधूमेन नृपस्य शान्तिः ॥ ४३

तपोऽध्ययनसंपन्ना याजनाध्यापने रताः ।

श्रेष्ठ पुरुष इसीलिए उत्कृष्ट उद्भि की आकांक्षा करते हैं
 ताकि विपत्ति में पड़ा हुआ कुलीन व्यक्ति, धनहीन सरला,
 वृद्ध ज्ञाति, गुणी ब्राह्मण एवं यश से युक्त कीर्ति उनके
 गृह में शान्तिपूर्वक रह सकें । (३९-४०)

अतः हे पुत्र । हे पतिव्रत विचार एवं चेष्टा वाले । राज्य
 स्थित होने पर जिस प्रकार (उपयुक्त) कुलोत्पत्तादि (तुम्हारे
 गृह में) रह सकें एवं जिस प्रकार तुम लोक में यशस्वी हो
 सको वैसा ही प्रयत्न करो । (४१)

पृथ्वी के सदा ब्राह्मणों से भूषित होने, क्षत्रियों से
 युक्त होने, (धियों द्वारा) भलीभाँति (जोते) बोये जाने
 तथा सेवारत (शत्रुओं से) सम्पन्न होने पर श्रेष्ठ राजाओं
 को सम्पत्ति प्राप्त होती है । (४२)

अतः श्रुतिशास्त्र सम्पन्न श्रेष्ठ ब्राह्मण राजाओं से यज्ञ
 करायें एवं उत्तम द्विजगण दिव्य यज्ञ करें । यज्ञाग्नि के धूम
 से नृप की शान्ति होती है । (४३)

हे बलि । तपस्या और वेदाध्ययन से सम्पन्न यजन
 और अध्यापन में निरत ब्राह्मण तुम्हारी अनुमति पाकर

सन्तु विप्रा बले पूज्यास्त्वचोऽनुज्ञामवाप्य हि ॥ ४४
 स्वाध्याययज्ञनिरता दातारः शस्त्रजीविनः ।
 क्षत्रियाः सन्तु दैत्येन्द्र प्रजापालनधर्मिणः ॥ ४५
 यज्ञाध्ययनसपत्ना दातारः कृषिकारिणः ।
 पाशुपाल्यं प्रकुर्वन्तु वैश्या विपणिजीविनः ॥ ४६
 ब्राह्मणक्षत्रियविद्यां सदा शुभ्रपणे रताः ।
 शूद्रा. सन्त्वसुरश्रेष्ठ तथाज्ञाकारिणः सदा ॥ ४७
 यदा वर्णा. स्वधर्मस्था भवन्ति दितिजेश्वर ।

धर्मवृद्धिस्तदा स्याद्वै धर्मवृद्धौ नृपोदयः ॥ ४८
 तस्माद् वर्णाः स्वधर्मस्थास्त्वया कार्याः सदा बले ।
 तद्वृद्धौ भवतो वृद्धिस्तद्धानौ हानिरुच्यते ॥ ४९
 इत्थं वचः आग्य महासुरेन्द्रो
 बलि महात्मा स बभूव तूष्णीम् ।
 ततो यदाज्ञापयसे करिष्ये
 इत्थं बलिः प्राह वचो महर्षे ॥ ५०

इति श्रीवामनपुराणे अष्टचत्वारिंशोऽध्याय ॥४८॥

४६

पुलस्त्य उवाच ।

ततो गतेषु देवेषु ब्रह्मलोकं प्रति द्विज ।
 त्रैलोक्यं पालयामास बलिधर्मोन्वितः सदा ॥ १
 कलिस्तदा धर्मयुतं जगद् दृष्ट्वा कृते यथा ।

पूजित हों । (४४)
 हे दैत्येन्द्र ! क्षत्रिय स्वाध्याय एव यहाँ में निरत, दान
 देने वाले, शस्त्र जीवी तथा प्रजा पालन करने वाले
 हों । (४५)
 वैश्यागण यज्ञाध्ययन सम्पन्न, दाता कृषि-कर्ता एव
 पाणिज्यजीवी हों तथा पशुपालन का कर्म करें । (४६)
 हे असुरश्रेष्ठ ! शूद्रगण ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों को
 सदा सेवा में रत रहें और तुम्हारी आज्ञा का सदा पालन
 करें । (४७)
 हे दितिजेश्वर ! जब सभी वर्ण के लोग अपने अपने

श्रीवामनपुराण मे अठ्तालिसवाँ अध्याय समाप्त ॥४८॥

४९

पुलस्त्य ने कहा—हे द्विज ! देवों के ब्रह्मलोक चले
 जाने पर बलि सदा धर्मोन्वित रहते हुए त्रैलोक्य का पालन
 करने लगा । (१)
 उस समय जगन्मू को कृतयुग की तरह धर्मयुक्त हुआ
 देवप्रक कलियुग अपने स्वभाव का सेवन करने के निमित्त

ब्रह्मा की शरण में गया । (२)
 यहाँ जाकर उसने ब्रह्मा को इन्द्रादि देवों से मुक्त देखा ।
 वे अपनी दीप्ति से मुत्तासुर समन्वित अपने लोक को
 प्रशंसित कर रहे थे । (३)
 उन ईश्वर ब्रह्मा को प्रणाम कर कलि ने उनसे कहा—

मम स्वभावो बलिना नाशितो देवसत्तम ॥ ४
 तं प्राह भगवान् योगी स्वभावं जगतोऽपि हि ।
 न केवलं हि भवतो हृतं तेन बलीयसा ॥ ५
 पश्यस्व तिष्य देवेन्द्रं वरुणं च समाहृतम् ।
 मास्करोऽपि हि दीनत्वं प्रयातो हि बलाद् बलेः ॥ ६
 न तस्य कश्चित् त्रैलोक्ये प्रतिपेद्वाऽस्ति कर्मणः ।
 क्वने सहस्रं शिरसं हरिं दशशताह्निकम् ॥ ७
 म भूमिं च तथा नाकं राज्यं लक्ष्मीं यशोऽव्ययः ।
 समाहरिष्यति बलेः कर्तुः सद्धर्मगोचरम् ॥ ८
 इत्येवमुक्तो देवेन ब्रह्मणा कलिरव्ययः ।
 दीनान् दृष्ट्वा स शक्रादीन् विभीतकवनं गतः ॥ ९
 कृतः प्रावर्त्तत तदा कलेर्नाशात् जगत्त्रये ।
 धर्मोऽभवच्चतुष्पादश्चातुर्वर्ण्योऽपि नारद ॥ १०
 तपोऽहिंसा च सत्यं च शौचमिन्द्रियनिग्रहः ।
 दया दानं त्वानुशंस्य शुश्रूषा यज्ञकर्म च ॥ ११
 एतानि सर्वजगतः परिव्याप्य स्थितानि हि ।

हे देव श्रेष्ठ ! बलि ने मेरे स्वभाव को नष्ट कर दिया है । (४)
 योगी भगवान् ब्रह्मा ने उससे कहा—केवल तुम्हारा ही नहीं अपितु समस्त जगत् का स्वभाव उस बलवान् ने हरण कर लिया है । (५)

हे बलि ! मरुत् सहित वरुण एवं देवेन्द्र को देखो । बलि के बल से भास्कर भी दीन हो गये हैं । (६)
 सहस्रशीर्ष एव सहस्रपाद् (त्रिष्णु) के अतिरिक्त तीनों लोकों में उसके कर्म को रोकने वाला कोई नहीं है । (७)

वे अव्यय बलि द्वारा किए गये सद्धर्म के कारण प्राप्त उसकी भूमि, स्वर्ग, राज्य, लक्ष्मी एवं यश का अपहरण करेंगे । (८)

भगवान् ब्रह्मा के ऐसा कहने पर अव्यय बलि, इन्द्र आदि देवताओं को दीन हुआ देखकर विभीतक वन में चला गया । (९)

हे नारद ! बलि का लोप हो जाने से तीनों लोकों में चतुर्गुण प्रवृत्त हो गया । चारों वर्गों में चतुष्पाद् धर्म की व्याप्ति हो गई । (१०)

सप्तत्या, अहिंसा, सत्य, पवित्रता, इन्द्रिय निग्रह, दया, दान, श्रद्धा, सेवा और यज्ञ-कार्य-ये सभी समस्त

बलिना बलवान् ब्रह्मन् तिष्योऽपि हि कृतः कृतः ॥ १२
 स्वधर्मस्यापिनो वर्णां द्वाभ्रमांश्राविशन् द्विजाः ।
 प्रजापालनधर्मस्थाः सदैव मनुजर्षभाः ॥ १३
 धर्मोत्तरे वर्तमाने ब्रह्मन्स्मिन्नजगत्त्रये ।
 त्रैलोक्यलक्ष्मीर्वरदा त्वायाता दानवेश्वरम् ॥ १४
 तामागतां निरीक्ष्यैव सहस्राश्रयं बलिः ।
 पप्रच्छ काऽस्ति मां ब्रूहि केनास्यर्थेन चागता ॥ १५
 सा तद्वचनमाकर्ण्य प्राह श्रीः पद्ममालिनी ।
 बले शृणुष्व याऽस्मि त्वामायाता महिषी बलात् ॥ १६
 अग्रमेवबलो देवो योऽसौ चक्रगदाधरः ।
 तेन त्यक्तस्तु मधया ततोऽहं त्वामिहागता ॥ १७
 स निर्भमे पुत्रपथतन्नो रूपसंयुताः ।
 श्वेताम्बरधरा चैव श्वेतस्रगनुलेपना ॥ १८
 श्वेतवृन्दारकारुडा सत्वाढ्या श्वेतविग्रहा ।
 रक्ताम्बरधरा चान्या रक्तस्रगनुलेपना ॥ १९
 रक्तवाजिसमारुडा रश्मिनी राजसी हि सा ।

जगत् मे व्याप्त हो गये । हे ब्रह्मन् ! बलि ने बलवान् बलि को भी कृतयुग बना दिया । (११-१२)

सभी वर्ण अपने अपने धर्म में अर्चयित हो गए, द्विजगण विभिन्न आश्रमों का अवलम्बन करने लगे तथा राजा प्रजापालनरूपी धर्म का आचरण करने लगे । (१३)

हे ब्रह्मन् ! इन तीनों लोकों के धर्म परायण होने पर बरदात्री त्रैलोक्य-लक्ष्मी दानवेश्वर बलि के पास आयीं । (१४)

इन्द्र की लक्ष्मी को आयी हुई देखकर बलि ने पूछा—मुझे यह बतलाओ कि तुम कौन हो एव किस प्रयोजन से आयी हो । (१५)

पद्ममाला विभूषिता लक्ष्मी ने उसकी बात सुनकर कहा—हे बलि ! मैं बलात् तुम्हारे पास आई हुई जो स्त्री हूँ उसे सुनो । (१६)

अमित बलशाली चक्रगदाधर देव विष्णु ने इन्द्र को छोड़ दिया है । अतः मैं तुम्हारे समीप यहाँ आई हूँ । (१७)

उन्होंने (विष्णु ने) रूप युक्त चार युवतियों की सृष्टि की (प्रथम युवती) सत्त्व प्रधान, श्वेत शरीरिणी, श्वेताम्बरधारिणी श्वेतमान्यानुलेपन से युक्त एवं श्वेत गजासूद थी ।

पीताम्बरा पीतवर्णा पीतमाल्यानुलेपना ॥ २०
 सौवर्णस्यन्दनचरा तामसं गुणमाश्रिता ।
 नीलाम्बरा नीलमाल्या नीलगन्धानुलेपना ॥ २१
 नीलवृषसमारूढा त्रिगुणा सा प्रकीर्तिता ।
 या सा श्वेताम्बरा श्वेता सत्त्वाढ्या कुञ्जरस्थिता ॥ २२
 सा ब्रह्मणं सभायाता चन्द्रं चन्द्रानुमानपि ।
 या रक्ता रक्तवसना वाजिस्था रजसान्विता ॥ २३
 तां प्रादाद् देवराजाय मनवे तत्समेपु च ।
 पीताम्बरा या सुभगा रथस्था कनकप्रभा ॥ २४
 प्रजापतिभ्यस्तां प्रादात् शुक्राय च विश्वसु च ।
 नीलवस्त्राऽलिसदृशी या चतुर्थी वृषस्थिता ॥ २५
 सा दानवान् नैऋतांश्च शूद्रान् विद्याधरानपि ।
 विप्राद्याः श्वेतरूपां तां कथयन्ति सरस्वतीम् ॥ २६
 स्तुवन्ति ब्रह्मणा सार्धं मन्त्रे मन्त्रादिभिः सदा ।
 धन्त्रिया रक्तवर्णां तां जयश्रीमिति शंसिरे ॥ २७

(हृत्सरी युवती) रजोगुण प्रधान, रक्तशरीरिणी, रक्ताम्बर-
 धारिणी, रक्तमाल्यानुलेपन से युक्त एवं रत्नवर्ण के अक्ष
 पर आरूढा थी । (वृतीय युवती) तमोगुण-प्रधान, पीत वर्ण
 के शरीर वाली, पीताम्बरधारिणी, पीतमाल्यानुलेपन से युक्त
 एवं सुवर्ण रथ पर आरूढ थी । (चतुर्थ युवती) त्रिगुण
 प्रधान, नील शरीर वाली, नीलाम्बरधारिणी एवं नील वर्ण के
 माल्य, गन्ध एवं अनुलेपन से युक्त तथा नील वृषारूढ थी ।
 सत्त्वप्रधाना, श्वेतशरीरिणी, श्वेताम्बरधारिणी एवं
 कुञ्जरारूढा (युवती) ब्रह्मा, चन्द्रमा एवं चन्द्रमा के अनुयायियों
 के समीप चली गई । रजोगुण से युक्त, रक्तवर्णी, रक्ताम्बर-
 धारिणी एवं अम्भारूढा (युवती को उन्होंने) इन्द्र, मनु
 तथा उनके सट्टा लोगों को प्रदान किया । कनकवर्णाङ्गी,
 पीताम्बरधारिणी, सीभाग्यवती रथारूढा (युवती
 को उन्होंने) प्रजापतियों, शुक्र एवं वैश्वो को दिया ।
 नीलवस्त्रधारिणी, भ्रमरसदृशी, वृषस्थित चतुर्थी (युवती)
 दानवों, नैऋतों, शूद्रों एवं विद्याधरों के पास चली
 गई । उस श्वेतरूपा को विप्रादि सरस्वती कहते
 हैं । (१८-२६)

यज्ञ में ब्रह्मा सहित सदा मन्त्रादि से वे उसकी स्तुति
 करते हैं । क्षत्रिय लोग उस रक्तवर्णा को जयश्री कहते
 हैं । (२७)

सा चेन्द्रेणासुरश्रेष्ठ मनुना च यशस्विनी ।
 वैश्यास्तां पीतवसनां कनकाङ्गीं सदैव हि ॥ २८
 स्तुवन्ति लक्ष्मीमित्येवं प्रजापालास्तथैव हि ।
 शूद्रास्तां नीलवर्णाङ्गीं स्तुवन्ति च सुभक्तितः ॥ २९
 श्रिया देव्येति नाम्ना तां समं दैत्यैश्च राक्षसैः ।
 एवं विभक्तास्ता नार्यस्तेन देवेन चक्रिणा ॥ ३०
 एतासां च स्वरूपस्यास्तित्थन्ति निधयोऽव्ययाः ।
 इतिहासपुराणानि वेदाः साङ्गान्तयोक्तयः ॥ ३१
 चतुःषष्टिकलाः श्वेता महापद्मो निधिः स्थितः ।
 छक्तासुवर्णरजतं रथाश्वगजभूपणम् ॥ ३२
 शस्त्रास्त्रादिकवस्त्राणि रक्ता पद्मो निधिः स्मृतः ।
 गोमहिष्यः खरोष्ट्रं च सुवर्णोम्बरभूमयः ॥ ३३
 ओषध्यः पशवः पीता महानीलो निधिः स्थितः ।
 सर्वासामपि जातीनां जातिरेका प्रविष्टिता ॥ ३४
 अन्येयामपि संहर्त्री नीला शङ्खो निधिः स्थितः ।

हे असुरश्रेष्ठ ! यह इन्द्र तथा मनु के साथ यशस्विनी
 हुई । वैश्य एवं प्रजापतिगण उस पीतवसना कनकाङ्गी
 की सदा लक्ष्मी के नाम से स्तुति करते हैं । दैत्यों एवं राक्षसों
 सहित शूद्रगण श्री देवी के नाम से भक्तिपूर्वक उस नील-
 वर्णाङ्गी की स्तुति करते हैं । इस प्रकार उन चक्रधारी
 देव ने उन नारियों का विभाजन किया । (२८-३०)

अव्यय निधिघों इनके स्वरूप में स्थित हैं । इतिहास,
 पुराण, साङ्ग नेद, स्तुतियाँ, नौसठ कलाएँ एवं
 महापद्म निधि श्वेताङ्गी के अन्तर्भूत हैं । सुवता,
 सुवर्ण, रजत, रत्न, अश्व, गज, भूपण, शस्त्र, अस्त्र
 एवं वस्त्र स्वरूप पद्मनिधि रक्ताङ्गी के अन्तर्भूत
 हैं । गौ, भैंस, गर्दभ, उष्ट्र, सुवर्ण, वस्त्र, भूमि, औषधियाँ
 एवं पशु स्वरूप महानील निधि पीताङ्गी में
 स्थित है । अन्य सभी जातियों को अपने में
 समाविष्ट करने वाली समस्त जातियों में सर्वश्रेष्ठ जाति
 (पर सामान्यात्मक) स्वरूप शङ्खनिधि नीलाङ्गी देवी में
 स्थित है । हे दानव ! इन (निधिघों) के स्वरूपान्तर्गत पुरुषों
 के जो लक्षण होते हैं मैं उनका वर्णन कर रही हूँ । उन्हें

एतासु संस्थितानां च यानि रूपाणि दानव ॥
भवन्ति पुरुषाणां वै तान् निबोध वदामि ते ॥ ३५
सत्यशौचामिसंयुक्ता मखदानोत्सवे रताः ।
भवन्ति दानवपते महापद्माश्रिता नराः ॥ ३६
यज्विनः सुभगा द्वा मानिनो बहुदक्षिणाः ।
सर्वसामान्यसुखिनो नराः पद्माश्रिताः स्मृताः ॥ ३७

सत्यानृतसमायुक्ता दानाहरणदक्षिणाः ।
न्यायान्यायन्ययोपेता महानीलाश्रिता नराः ॥ ३८
नास्तिकाः शौचरहिताः कृपणा भोगवर्जिताः ।
स्तेयानृतकषायुक्ता नराः शङ्खश्रिता बले ॥ ३९
इत्येवं कथितस्तुभ्यं तेषां दानव निर्णयः ॥ ४०
अहं सा रागिणी नाम जयश्रीस्त्वामुपागता ।
ममास्ति दानवपते प्रविज्ञा साधुसंमता ॥ ४१
समाश्रयामि शौर्याद्वं न च ह्यीदं कथंचन ।
न चास्ति भवतस्तुर्यो त्रैलोक्येऽपि बलाधिकः ॥ ४२

समझो ।

(३१-३५)

हे दानवपते ! महापद्म से आश्रित पुरुष सत्य और शौच से युक्त तथा यजन, दान और उत्सव में रत रहते हैं । (३६)

पद्म से आश्रित मनुष्य यज्ञकारी, सीभाग्यवान्, अहंकारी, मानप्रिय, बहुत दक्षिणा देने वाले तथा सर्वसाधारण लोगों से सुखी होते हैं । (३७)

महानील द्वारा आश्रित व्यक्ति सत्य तथा असत्य से युक्त, देने और लेने में चतुर तथा न्याय, अन्याय और न्यय करने वाले होते हैं । (३८)

हे बलि ! शंफ से आश्रित पुरुष नास्तिक, शौच-रहित कृपण, भोगहीन, चोरी करने वाले एवं मिथ्याभाषी होते हैं । हे दानव ! मैंने इस प्रकार आपके इनके स्वरूप का वर्णन किया । (३९-४०)

यदी रागिणी नामक जयश्री मैं आपके पास आई हूँ । हे दानवपति ! मेरी साधुजनो से संमत एक प्रतिज्ञा है । (४१)

मैं और पुरुष का आश्रय करती हूँ । नपुंसक के समीप कदापि नहीं जाती । तीनों लोगों में आपके समान बलवान् दूसरा नहीं है । (४२)

तव्या बलविभूत्या हि प्रीतिर्मे जनिता ध्रुवा ।
यत्त्वया युधि विक्रम्य देवराजो विनिर्जितः ॥ ४३
अतो मम परा प्रीतिर्जाता दानव शाश्वती ।
दृष्ट्वा ते परमं सत्त्वं सर्वेभ्योऽपि बलाधिकम् ॥ ४४
शौण्डेय्यमानिनं वीरं ततोऽहं स्वयमागता ।
नाथर्यं दानवश्रेष्ठ हिरण्यकशिपोः कुले ॥ ४५
प्रसूतस्यासुरेन्द्रस्य तव कर्म यदीदृशम् ।
विशेषितस्त्वया राजन् दैतेयः प्रपितामहः ॥ ४६
विजितं विक्रमाद् येन त्रैलोक्यं वै परैर्हतम् ।
इत्येवम्वक्त्वा वचनं दानवेन्द्रं तदा बलिम् ॥ ४७
जयश्रीचन्द्रवदना प्रविष्टाऽद्योतयच्छुभा ।
तस्यां चाद्य प्रविष्टायां विधवा इव योपितः ॥ ४८
समाश्रयन्ति बलिनं ह्रीश्रीशीघ्रतकीर्त्तयः ।
प्रभा मतिः क्षमा भूतिर्विद्या नीतिर्दया तथा ॥ ४९
श्रुतिः स्मृतिर्वृतिः कीर्तिर्भूतिः शान्तिः क्रियान्विताः ।

अपनी बल संपत्ति से तुमने मेरी दृढ़ प्रीति उत्पन्न की है क्योंकि युद्ध में पराक्रम कर तुमने देवराज को जीता है । (४३)

हे दानव ! इसीसे आपके श्रेष्ठ सत्त्व एवं सभी से अधिक बल को देखकर (आपके प्रति) मेरी स्थिर एवं उत्तम प्रीति हो गई है । (४४)

अतः मैं स्वयमेव अतिपराक्रमी तथा मानी वीर आप के समीप आयी हूँ । हे दानवश्रेष्ठ ! हिरण्यकशिपु के कुल में उत्पन्न आप असुरेन्द्र के इस प्रकार के कर्मों में कोई आश्चर्य नहीं है । हे राजन् ! शत्रुओं से अपहृत त्रैलोक्य को विक्रम द्वारा जीतकर आपने दिति के पुत्र अपने प्रपितामह को और विशिष्ट कर दिया । दानवेन्द्र बलि से ऐसा कहकर चन्द्रवदना शुभ जयश्री (बलि मे) प्रविष्ट होकर (उन्हें) शोभित करने लगी । उनके प्रविष्ट हो जाने पर ह्री, श्री, बुद्धि, श्रुति, कीर्ति, प्रभा, मति, क्षमा, संपृद्धि, विद्या, नीति, दया, श्रुति, स्मृति, वृति, कीर्ति, भूति, शान्ति, क्रिया, पुष्टि, तुष्टि एवं अन्य सभी

पुष्टिस्तुष्टी रुचिस्त्वन्वा तथा सत्त्वाश्रिता गुणाः ॥
 ताः सर्वा वलिमाश्रित्य व्यश्रामन्वन् यथासुरसम् ॥ ५०
 एवं गुणोऽमृद् दनुपुंगवोऽसौ
 वलिर्महात्मा शुभनुद्धिरात्मवान् ।
 यज्वा तपस्वी मृदुरेव सत्यवाक्

दाता विभर्ता स्वजनाभिगोप्ता ॥ ५१
 त्रिविष्टपं शासति दानवेन्द्रे
 नासीत् क्षुधातो मलिनो न दीनः ।
 सदोज्ज्वलो धर्मरतोऽथ दान्तः
 कामोपभोक्ता मनुजोऽपि जातः ॥ ५२

इति श्रीबामनपुराणे एवोनपञ्चाशोऽध्यायः ॥ ४९ ॥

५०

पुलस्त्य उवाच ।

गते श्रीलोक्यराज्ये तु दानवेषु पुरंदरः ।
 जगाम ब्रह्मसदनं सह देवैः शचीपतिः ॥ १
 तत्रापश्यत् स देशेऽं भ्रान्णं कमलोद्भवम् ।
 ऋषिभिः सार्धमासीनं पितरं स्व च कश्यपम् ॥ २
 ततो ननाम शिरसा शक्रः सुरगणैः सह ।
 ब्रह्माणं कश्यपं चैव तांश्च सर्वास्तपोधानान् ॥ ३

सत्य गुणाभित अन्य देवियाँ भी विधना सित्रयो ते राटश यति
 के आश्रय मे सुरा पूर्वैरु रहने उगे । (४१-५०)
 शुभनुद्धि वाले, आसवान्, यज्ञ करने वाले, तपस्वी
 मृदु स्वभाव वाले, सत्यवादी, दाता, भ्रमरगणों, स्वजनों की
 रक्षा करने वाले देव्यभेद महात्मा यति इस प्रकार वे गुणों

प्रोवाचेन्द्रः सुरैः सार्धं देवनाथं पितामहम् ।
 पितामह हृतं राज्यं वलिना वलिना मम ॥ ४
 ब्रह्मा प्रोवाच शर्प्रैतद् भुज्यते स्वकृतं फलम् ।
 शक्रः पत्रञ्च भो मूहि किं मया दुष्कृतं कृतम् ॥ ५
 कश्यपोऽप्याह देवेशं भ्रूणहत्या कृता त्वया ।
 दित्युदरात् त्वया गर्भः कृत्तो वै बहुधा बलात् ॥ ६

से सम्पन्न थे । (५१)
 दानवेन्द्र यति के स्वर्ग का शासन करते समय कोह
 भूयसे पीड़ित, मलिन एवं दीन नहीं था । मनुष्य भी सदा
 उज्ज्वल धर्मरत, दान प्रिय कामोपभोगी हो गए । (५२)

श्रीबामनपुराण में उनवाचनों अध्याय समाप्त ॥ ४९ ॥

५०

पुलस्त्य ने कहा—तीनों लोकों का राज्य दानवाधीन हो
 जाने पर शचीपति पुरन्दर देवों के साथ ब्रह्मलोक चले
 गये । (१)
 उन्होंने वहाँ श्रियों सहित बैठे हुए वमउद्योगि ब्रह्मा
 एवं अपने पिता कश्यप को देखा । (२)
 तदनन्तर देवताओं सहित इन्द्र ने ब्रह्मा कश्यप एवं जन
 सभी तपोपनों को शिर से प्रणाम किया । (३)

देवों सहित इन्द्र ने देवनाथ पितामह से कहा—
 हे पितामह ! बलवान् यति ने मेरा राज्य छीन
 लिया है । (४)
 ब्रह्मा ने कहा—हे इन्द्र ! यह तुम अपने किये हुए
 कर्म का फल भोग रहे हो ! इन्द्र ने पूछा—आप बलवाय
 कि मैंने छीन सा दुष्कर्म किया है । (५)
 कश्यप ने भी इन्द्र से कहा—तुमने भ्रूण हत्या की है ।

पितरं प्राह देवेन्द्र. स मातुर्दोषतो विभो ।
 कृन्तनं प्राप्तवान् गर्भो यदशौचा हि सा भवत् ॥ ७
 ततोऽब्रवीत् कश्यपस्तु मातुर्दोषः स दासताम् ।
 गतस्ततो विनिहतौ दासोऽपि कुलिशेन भो ॥ ८
 तच्छ्रुत्वा कश्यपवचः प्राह शक्रः पितामहम् ।
 विनाशं पाप्मनो ब्रूहि प्रायश्चित्तं विभो मम ॥ ९
 ब्रह्मा प्रोवाच देवेशं वशिष्ठः कश्यपस्तथा ।
 हितं सर्वस्य जगतः शक्रस्यापि विदोषतः ॥ १०
 शङ्खचक्रगदापाणिर्माधव. पुरुषोत्तम. ।
 तं प्रपद्यस्य शरणं स ते श्रेयो विधास्यति ॥ ११
 सहस्राक्षोऽपि वचनं गुरूणां स निशम्य वै ।
 प्रोवाच स्वल्पकालेन कस्मिन् प्राप्यो बहूदयः ।
 तमसुर्देवता मर्त्ये स्वल्पकाले महोदयः ॥ १२
 इत्येवमुक्तः सुरराट् विरिश्चिना
 मरीचिपुत्रेण च कश्यपेन ।

तुमने दिति के उदर से गर्भ को बलपूर्वक अनेक टुकड़ों में काट डाला था । (६)

इन्द्र ने पिता से कहा—हे विभो ! जननी के दोष से वह गर्भ छिन्न हुआ था । क्योंकि वे अपवित्र हो गई थीं । (७)

तदनन्तर कश्यप ने कहा—माता के दोष से वह दासता को प्राप्त हो चुका था । गुरुपरान्त तुमने दास को भी यज्ञ से मारा । (८)

कश्यप के उस वचन को सुनकर इन्द्र ने पितामह से कहा—हे विभो ! मुझे पापनाशक प्रायश्चित्त बतलायें । (९)

ब्रह्मा, वसिष्ठ एवं कश्यप ने देवेश से समस्त जगत् पर्यं विरोधरूप से इन्द्र के लिये हितकर वचन कहा— (१०)

तुम शङ्खचक्र तथा गदाधारण करने वाले पुरुषोत्तम माधव की शरण में जाओ । वे तुम्हारा कल्याण करेंगे । (११)

उन सहस्राक्ष ने गुरुजनों का वचन सुनकर ब्रह्मा—स्वल्पकाल में प्रचुर अभ्युदय की प्राप्ति वहाँ सम्भव है । देवों ने उनसे कहा—मर्त्यलोक में स्वल्प समय में

तथैव मित्राचरुणात्मजेन
 वेगान्महीपृष्ठमवाप्य तस्यौ ॥ १३
 कालिञ्जरस्योत्तरतः सुपुण्य-
 स्तथा हिमाद्रेरपि दक्षिणस्यः ।
 कुशस्थलात् पूर्वत एव विश्रुतो
 वसतोः पुरात् पश्चिमतोऽवतस्थे ॥ १४
 पूर्वं भवेन नृधरेण यत्र
 यष्टोऽश्वमेधः शतकृत्सदक्षिणः ।
 मनुष्यमेधः शतकृत्सहस्रकृ-
 षेत्रेन्द्रसूयथ सहस्रकृद् वै ॥ १५
 तथा पुरा दुर्यजनः सुरासुरैः
 प्यातो महामेध इति प्रसिद्धः ।
 यत्रास्य चक्रे भगवान् मुरारिः
 वास्तव्यमव्यक्ततनुः खमूर्तिमत् ।
 रयातिं जगामाथ गदाधरेति

महान् अभ्युदय सम्भव है । (१२)

ब्रह्मा, मरीचिपुत्र कश्यप एवं वसिष्ठ के ऐसा कहने पर सुरराज इन्द्र वेगपूर्वक पृथ्वीतल पर गए । (१३)

कालिञ्जर पर्वत के उत्तर, हिमाद्रि के दक्षिण, कुशस्थल के पूर्व एवं वसुपुर के पश्चिम में स्थित क्लियात पुण्य स्थान में रहने लगे । (१४)

जहाँ पहले राजा गय ने दक्षिणा के साथ सौ अश्वमेध यज्ञ, ग्याह् सौ नरमेधयज्ञ तथा एक सहस्र राजपुत्र यज्ञ का अनुष्ठान किया था । (१५)

पहले (गयने) जहाँ पर सुरों एवं असुरोंसे दुष्कर महामेध नागक प्रसिद्ध यज्ञ सम्पादित किया था तथा उसके लिये आकाशस्वरूप अन्वयकशीर मुरारि ने वहाँ निवास किया था । महान् पापरूपी वृक्ष के लिये तीक्ष्ण कुटार स्वरूप ने

महापद्मस्य त्रिः वृदारः ॥ १६ ।
 यस्मिन् त्रिनेत्राः धुतिशायश्चिंताः
 गमस्वभावात्त्रि दिशामहेन ।
 गह्वरं दिशन् यत्र च मंभ्रुवच
 मंभ्रुवा रत्नस्येन दि वेत्तरीर ।
 कर्णं महामेधमगम्य मानसा
 म्भ्रुवचनन्त्यं भगवत्प्रकारान् ॥ १७
 महानदी यत्र गुरार्चिचन्वा
 यत्रादनेत्रादिमूर्तिमेव ।
 यत्रे त्रयशायसिन्दिमदा
 मंभ्रुवचनान्नमस्वनेन ॥ १८
 यत्र यत्रः समस्वस्य महानवाग्नेऽद्भुते ।
 आराधनाय देवस्य कृशभमस्यसिन्धिः ॥ १९
 प्रातःस्नानार्थं स्वपःप्रातः ०कमनम्भ्रुवचिः ।
 यत्रन्नेपं महामाधः शुभ्रं देवं गदाधरम् ॥ २०
 तस्मिन् तस्मिन्ः मन्मन्त्रितमर्षेन्द्रियस्य दि ।
 कामनोपविहीनस्य माधः संवत्सरो गतः ॥ २१

एते गदाधरः प्रीतो वाग्वं प्राह नारद ।
 गच्छ प्रीतोऽस्मि मयतो ह्युगपापोऽगि मास्वतम् ॥ २२ ।
 निजं राग्यं च देवेश प्राप्स्यमे न विरादिय ।
 यत्रिप्पामि तथा ह्यव नारि भेषो यथा हर ॥ २३
 इत्येवमुक्तोऽत्र गदाधरो
 विगर्हितः स्नाप्य मनोहराधाम् ।
 स्नात्वा देवस्य तस्मिन् नरा-
 म्यं प्रीत्युत्मानदुशामस्य ॥ २४
 प्रोवाच ह्यत्र भीषणकर्मशारात्
 नाम्ना दुश्चिन्दात्त मम वापनंमथाः ।
 यत्रादनेत्रादिमर्षिमुत्सवसो-
 दिनात्रिकादिभ्योः पुत्रिन्दाः ॥ २५
 इत्येवमुक्त्वा गुरुरात् पुत्रिन्दात्
 विष्णुं पात्रोऽमरनिद्रयैः ।
 मंभ्रुवचानोऽनुवगात् वाधम
 मातुस्तदा धर्मनिषागमीत्यम् ॥ २६
 त्प्राःदिति मूर्तिं कृत्वाञ्जलिम्

विनम्रमौलिः समुपाजगाम ।
 प्रणम्य पादौ कमलोदरामौ
 निवेदयामास तपस्तदात्मनः ॥ २७
 पप्रच्छ सा कारणमीश्वरं तम्
 आघ्राय चालिङ्ग्य सहाश्रुचष्ट्या ।
 स चाचचक्षै षलिना रणे जयं
 तदात्मनो देवगणैश्च सार्धम् ॥ २८
 श्रुत्वैव सा शोकपरिप्लुताङ्गी
 धात्वा जितं दैत्यसुतैः सुतं तम् ।
 दुःखान्विता देवमनाद्यमीळ्यं
 जगाम विष्णु शरणं वरेण्यम् ॥ २९
 नारद उवाच ।
 कस्मिन् जनित्री सुरसत्तमाना
 स्थाने हृषीकेशमन्तमायम् ।
 चराचरस्य प्रभवं पुराण-
 माराधयानास शुभे वद त्वम् ॥ ३०
 पुलस्त्य उवाच ।
 सुरारणिः शक्रमवेक्ष्य दीनं
 पराजितं दानवनायकेन ।

सितेऽय पक्षे मकरक्षणेऽर्के
 घृताधिप. स्यादय सप्तमेऽह्नि ॥ ३१
 दृष्ट्वैव देवं त्रिदशाधिपं तं
 महोदये शक्रदिशाधिहृदम् ।
 निराश्रुता संयतवाग् सुचिचा
 ततोपतन्धे शरणं सुरेन्द्रम् ॥ ३२
 अदितिरवाच ।
 जयस्व दिव्याम्बुनकोशचौर
 जयस्व संसारतरो. कुठार ।
 जपस्व पापेन्धननातवेद-
 स्तमौघसंरोध नमो नमस्ते ॥ ३३
 ननोऽस्तु ते भास्कर दिव्यमूर्ते
 त्रैलोक्यलक्ष्मीतिलकाय ते नमः ।
 त्वं कारण सर्वचराचरस्य
 नाथोऽसि मा पालय विश्वमूर्ते ॥ ३४
 त्वया जगन्नाथ जगन्मयेन
 नाथेन शक्रो निजराज्यहानिम् ।
 अवाप्तवान् शत्रुपरामर्शं च
 ततो भवन्त शरणं प्रपन्ना ॥ ३५

कमलों में प्रणाम करने के उपरान्त उन्होंने अपने तप का वर्णन किया । (२७)

उन (अदिति) ने अधुपूण दृष्टि से (इन्द्र को) सूँघ एव उनका आलिङ्गन कर (तप वा वारण) पूछा । इन्द्र ने बलि द्वारा देवों सहित अपने विजित होने का श्रुत्वांत कहा । (२८)

यह सुनने के उपरान्त अपने उस पुत्र को दिति के पुत्रों द्वारा विजित जानकर शोषाविष्ट एव दुःखान्वित (अदिति) वरेण्य, पूज्य एव अनादि देव विष्णु की शरण में गयीं । (२९)

नारद ने कहा—आप यह बतलायें कि सुरजननी ने किस शुभ स्थान पर अनादि, अनन्त, चराचरोत्पादक एव पुरातन हृषीकेश की अराधना की । (३०)

पुलस्त्य ने कहा—दानव नायक द्वारा पराजित हुए दीन इन्द्र को देखकर अदिति सूर्य के मकरस्थित होने पर शुकलपक्षीय सूर्य

सप्तमी के दिन उन सुपधिप (सूर्य) देव को महान् उदयाचल पर पूर्व दिशाहृद हुआ देखकर उपवास पूर्वक वाणी एवं मन को संयत कर सुरेन्द्र (सूर्य) की शरण में गयीं । (३१-३२)

अदिति ने कहा—हे दिव्याम्बुजकोश के चोर! आप की जय हो! हे सत्सारहृषी वृक्ष के कुठार! आपकी जप हो! हे पापहारी इन्धन के लिए अग्नि! आप की जप हो! हे तमसमूह के विनाशक! आपको बारम्बार नमस्कार है! (३३)

हे भास्कर! हे दिव्यमूर्ति! आपको नमस्कार है! हे त्रैलोक्य लक्ष्मी के पति! आपको नमस्कार है! आप समस्त चराचर जगत के कारण तथा नाथ हैं! हे विश्वमूर्ते! मेरी रक्षा कीजिए! (३४)

हे जगन्नाथ! जगन्मय आप नाथ के ही कारण इन्द्र को अपने राज्य की हानि एव शत्रु से परामर्श की प्राप्ति हुई है! अत मैं आपकी शरण में आयी हूँ! (३५)

इत्येवमुक्त्वा । सुरपूजितं सा ।
 आलिल्य रक्तैर्न हि चन्दनेन ।
 संपूजयित्वा । करवीरपुष्पैः ।
 संपूष्य धूपैः कणमर्कभोज्यम् ॥ ३६
 निवेद्य चैवाज्ययुतं महार्ह-
 मन्नं महेन्द्रस्य हिताय देवी ॥ ३७
 स्तवेन पुण्येन च संस्तुवन्ती
 स्थिता निराहारमधोपवासम् ॥ ३७
 ततो द्वितीयेऽह्नि कृतप्रणामा
 स्नात्वा विधानेन च पूजयित्वा ।
 दत्त्वा द्विलेम्भ्यः कणकं तिलाज्यं
 ततोऽग्रतः सा प्रयत्ना वभूव ॥ ३८
 ततः प्रीतोऽभवद् भासुर्धृताधिं सूर्यमण्डलात् ।
 विनिःसृत्याग्रतः स्थित्वा इदं घचनमब्रवीत् ॥ ३९
 श्रोतानेन सुप्रीतस्तवाहं दक्षनन्दिनि ।
 प्राप्स्यसे दुर्लभं कामं मत्प्रसादान्न संशयः ॥ ४०

ऐसा कहने के उपरान्त रक्तचन्दन द्वारा सुरपूजित (सूर्य) को चित्रितकर उन देवी (अदिति) ने करवीर (कनेल) के पुष्पों से बनाया पूजन किया एवं धूप से घृषित करने के पश्चात् महेन्द्र के हितार्थ अर्कभोज्य कण एवं घृतयुक्त उत्तम अन्न निवेदित किया तथा निराहार उपवास पूर्वक पवित्र स्तोत्रों से स्तुति करती हुई बैठी रही । (३६-३७)

तदनन्तर दूसरे दिन प्रणाम करने के उपरान्त विधान पूर्वक नाना एवं पूजन कर ब्राह्मणों को कणक, तिल एवं घृत प्रदान किया और तदनन्तर वे प्रकृत संयम करने लगीं । (३८)

इससे घृताधिं मातृ प्रसन्न हो गये । (बे) सूर्य मण्डल से निकले एवं अदिति के सम्मुख लड़े होकर यह वचन बोले— (३९)

दे दक्षनन्दिनि ! तुम्हारे इस व्रत से मैं बहुत प्रसन्न हूँ । अतः मेरी कृपा से तुम नि सन्देह मनोवाञ्छित दुर्लभ वस्तु प्राप्त करोगी । (४०)

राज्यं स्वत्तनयानां वै दास्ये देवि सुरारणि ।
 दानवान् ध्वंसयिष्यामिं समूयैवोदरे तव ॥ ४१
 तद् वाक्यं वासुदेवस्य श्रुत्वा ब्रह्मन् सुरारणि ।
 प्रोवाच जगतां योनिं वेपमानां पुनः पुनः ॥ ४२
 कथं त्वाद्गद्रेणाहं वोढुं शक्यामि दुर्धरम्
 यस्योदरे जगत्सर्वं वसते स्थाण्डिलमम् ॥ ४३
 कस्त्वां धारयितुं नाव शकस्त्रैलोक्यधारयति ।
 यस्य सप्तार्णवाः कुक्षौ निवसन्ति सहाद्रिभिः ॥ ४४
 तस्माद् यथा सुरपतिः शक्रः स्यात् सुरराडिह ।
 यथा च न मम क्लेशस्तथा कुरु जनार्दन ॥ ४५
 विष्णुरुवाच ।
 सत्यमेतन्महाभागो दुर्धरोऽस्मि सुरासुरैः ।
 तथापि संभविष्यामि अहं देव्युदरे तव ॥ ४६
 आत्मानं श्रयन्तान् शैलांस्त्वाश्च देवि सकश्याम् ।

हे देवि देवजननि ! मैं तुम्हारे उदर से उत्पन्न होकर तुम्हारे पुत्रों को राज्य दूँगा और दानवों का नाश करूँगा । (४१)

हे ब्रह्मन् ! वासुदेव का यह वाक्य सुनकर धार-धार काँपती हुई देवजननी अदिति ने जगद्भ्योनि विष्णु से कहा— (४२)

जिसके उदर में स्यावर-जङ्गमालोक समस्त जगत् निवास करता है ऐसे दुर्धर आपको मैं अपने उदर में कैसे धारण करूँगी । (४३)

हे नाथ ! आप त्रैलोक्य को धारण करने वाले हैं । जिसकी कुक्षि में पर्वतों सहित सारों समुद्र स्थित हैं ऐसे आपको कौन धारण कर सकता है । (४४)

अतः हे जनार्दन ! आप वैसा ही करें जिससे शूद्र देवताओं के अधिपति बन जाय एवं मुझे भी शोभ न हो । (४५)

विष्णु ने कहा—हे महाभाग ! यह सत्य है कि समस्त सुर एवं असुर मुझे धारण नहीं कर सकते । तथापि हे देवि ! मैं आपके उदर से उत्पन्न होऊँगा । (४६)
 हे देवि ! स्वयं को, सुवर्णों को, पर्यंतों को एवं करयप सहित आपको मैं योग द्वारा धारण करूँगा । हे मातः !

धारयिष्यामि योगेन मा विपादं कृथाऽप्यिके ॥ ४७
 तदोदरेऽहं दाक्षैषि संभविष्यामि वै यदा ।
 तदा निस्तेजसो दैत्याः संभविष्यन्त्यसंशयम् ॥ ४८
 इत्येवमुक्त्वा भगवान् विवेश

तस्याश्च भूयोऽरिगणप्रमर्दी ।
 स्वतेजसोऽज्ञेन विवेश देव्याः
 तदोदरे शक्रहिताय विप्र ॥ ४९

इति श्रीवामनपुराणे पञ्चाशोऽध्यायः ॥६८॥

५१

पुलस्त्य उवाच ।

देवमातुः स्थिते देवे उदरे वामनाकृतौ ।
 निस्तेजसोऽसुरा जाता यथोक्तं विश्वयोनिना ॥ १
 निस्तेजसोऽसुरान् दृष्ट्वा प्रह्लादं दानवेध्वरम् ।
 वलिर्दानवशार्दूल इदं वचनमब्रवीत् ॥ २
 बलिरुवाच ।
 ताव निस्तेजसो दैत्याः केन जातास्तु हेतुना ।

आप विपाद मत करें । (४७)
 हे दक्षामजा ! जब मैं आपके उदर में आऊँगा
 उस समय दैत्य निस्सन्देह निस्तेज हो
 जायेंगे । (४८)

श्रीवामनपुराणमे पञ्चाशोऽध्याय समाप्त ॥ ५० ॥

५१

पुलस्त्य ने कहा—विश्वयोनि के कथनानुसार वामनामार
 देव के देवमाता के गर्भ में स्थित होने पर असुराण
 निस्तेज हो गये । (१)
 असुरों को तेजहीन देखकर दानव श्रेष्ठ बलि ने दानवेध्वर
 प्रह्लाद से यह वचन कहा । (२)
 बलि ने कहा—हे ताव ! आप यह वचनार्थ कि दानव
 किस कारण से निस्तेज हो गये हैं ? हे शुभाशुभ के ज्ञाता !

आप परम ज्ञानी हैं । (३)
 पुलस्त्य ने कहा—वीत्र के उस वचन को सुन कर
 (दानवोंके) तेज की अत्यधिक हानि किससे एवं क्यों हुई है ।
 (यह जानने के लिये) प्रह्लाद सनभर ध्यानस्थ रहे । (४)
 दैत्यों के लिये वासुदेव के कारण उत्पन्न भव को
 जानकर उन योगात्मा ने यह सोचा कि सम्प्रति विष्णु
 कहाँ स्थित है ? (५)

नामेरुपरि भुरादील्लोकांश्चतुर्मियाद् वशी ॥ ६
भूमिं स पङ्कजाकारां तन्मध्ये पङ्कजाकृतिम् ।
मेरुं ददर्श शैलेन्द्रं शतकौम्भं महर्द्धिमम् ॥ ७
तस्योपरि महापुर्वस्त्वष्टी लोरुपर्वोस्तथा ।
तेपाद्युपरि वैराजीं ददृशे ब्रह्मणः पुरीम् ॥ ८
तदधस्तान्महापुण्यमाश्रमं सुरपूजितम् ।
देवमातुः स ददृशे मृगपक्षिगणैर्वृतम् ॥ ९
तां दृष्ट्वा देवजननीं सर्वतेजोधिकां मुने ।
विवेश दानवपतिरन्वेष्टुं मधुसूदनम् ॥ १०
स दृष्ट्वाज्ञगन्तार्यं माधवं वामनाकृतिम् ।
सर्वभूतवरोप्यं तं देवमातुरथोदरे ॥ ११
तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
सुरासुरगणैः सर्वैः सर्वतो व्याप्तविग्रहम् ॥ १२
तेनैव क्रमयोगेन दृष्ट्वा वामनतां गतम् ।
दैत्यतेजोहरं विष्णुं प्रकृतिस्थोऽभवत् ततः ॥ १३
अथोवाच महातुद्धिर्विरोचनसुतं बलिम् ।

हे नारद ! नाभिके अयोभागमें सात पातालों का चिन्तन कर वे पक्षी नाभिके ऊपर भू आदि लोकों को देखने के लिये पहुँचे। (६)
उन्होंने पङ्कजाकार भूमि एवं उसके मध्यमें महान् समृद्धिसे सम्पन्न सुवर्णमय पङ्कजाकार पर्वतश्रेष्ठ मेरु को देखा। (७)
उसके ऊपर महापुरियोंमें बैाठ लोकपति एवं उनके ऊपर ब्रह्म की वैराजपुरी को देखा। (८)
उसके नीचे उन्होंने महापुण्ययुक्त देवताओंसे पूजित तथा मधु-पक्षियोंसे पूर्ण देवमाता अदिति के आश्रम को देखा। (९)
हे मुने ! समस्त तेजोंसे अधिक तेजस्विनी अदिति को देखकर दानवपति (प्रह्लाद) मधुसूदन को खोजने के लिए (इतने उदरमें) प्रविष्ट हुए। (१०)
उन्होंने समस्त प्राणियोंमें श्रेष्ठ वामनाकृति जनजगन्नाथ माधव को देवमाता के उदरमें देखा। (११)
समस्त सुरों एवं असुरोंसे सर्वतः व्याप्त शरीर बाले शङ्ख, चक्र, एवं गदा धारण करने वाले उन पुण्डरीकाक्ष को देख कर उसी योगशक्तसे वामनत्व का प्राप्त देखतेजोहर विष्णु को जानकर वे प्रकृतिस्थ हो गए। (१२-१३)

प्रह्लादो मधुरं वाक्यं प्रणम्य मधुसूदनम् ॥ १४
प्रह्लाद उवाच ।
श्रुयतां सर्वमाख्यास्ये यतो वो भयमागतम् ।
येन निस्तेजसो दैत्या जाता दैत्येन्द्र हेतुना ॥ १५
भवता निर्रिता देवाः सेन्द्ररुद्रार्कपावकाः ।
प्रयाताः शरणं देवं हरिं त्रिभुवनेश्वरम् ॥ १६
स तेपामभयं दत्त्वा शक्रादीनां जगद्गुरुः ।
अवतीर्णो महाबाहुरदित्या जठरे हरिः ॥ १७
हृतानि वस्तेन बले तेजांतीति मतिर्मम ।
नालं तमो विषदितुं स्यातुं सूर्योदयं बले ॥ १८
पुलस्त्य उवाच ।
प्रह्लादवचनं श्रुत्वा क्रोधप्रफुरिताधरः ।
प्रह्लादमाहाय बलिर्भाविकर्मप्रचोदितः ॥ १९
बलिरुवाच ।
तात कोऽयं हरिर्नाम यतो नो भयमागतम् ।
सन्ति मे शतशो दैत्या वामुदेवलाधिकाः ॥ २०

तदनन्तर मधुसूदन को प्रणाम कर महातुद्धिमान् प्रह्लाद ने विरोचनपुत्र बलिसे मधुर वचन कहा। (१४)
प्रह्लाद ने कहा—हे दैत्येन्द्र ! आप लोगोंको जिससे भय उपपन्न हुआ है एवं जिस कारण दैत्यगण निर्रित हो गये हैं वह सब मैं कहता हूँ। सुनो। (१५)
आपके द्वारा पराजित हुए इन्द्र सहित रुद्र, सूर्य एवं अग्नि आदि देवता त्रिभुवनेश्वर देव हरिकी शरणमें गए। (१६)
वे जगद्गुरु महाबाहु हरि इन्द्र आदि देवताओंको अभय देकर अदिति के उदरमें अवतीर्ण हुए हैं। (१७)
हे बलि ! मेरा ऐसा मन है कि उन्होंने तुम लोगोंका तेजोहरण कर लिया है। हे बलि ! अन्धकार सूर्योदय को सहन करनेमें समर्थ नहीं होता। (१८)
पुलस्त्य ने कहा—प्रह्लाद का वचन सुनकर क्रोधसे प्रफुरित अशरोप वाच बलिने भाविकर्मसे प्रेरित होकर प्रह्लादसे कहा। (१९)
बलिने कहा—हे तात ! यह हरि कौन है ? जिनके कारण हमें भय उपपन्न हुआ है। हमारे पास वामुदेवसे अधिक बलवान् सीकड़ों देव हैं। (२०)

सहस्रशो वैरमराः सेन्द्ररुद्राग्निमारुताः ।
 निर्व्रित्य त्याजिताः स्वर्गं भग्नदर्पा रणाजिरे ॥ २१
 येन सूर्यरथाद् वेगात् चक्रं कृष्टं महात्रयम् ।
 स विप्रचित्चिर्बलवान् मम सैन्यपुरस्तरः ॥ २२
 अयःशङ्कुः शिवः शंभुरसिलोमा विलोमकृत् ।
 त्रिशिरा मकराक्षश्च धृपपर्वा नतेक्षणः ॥ २३
 एते चान्ये च बलिने नानायुधविशारदाः ।
 वेगामेकैकशो विष्णुः कलां नार्हति षोडशीम् ॥ २४
 पुलस्त्य उवाच ।

पौत्रस्वैतद् वचः श्रुत्वा प्रह्लादः क्रोधमूर्छितः ।
 धिग्धिमित्याह स बलि वैकुण्ठाक्षेपवादिनम् ॥ २५
 धिक् त्वां पापसमाचारं दुष्टबुद्धिं सुबालिशम् ।
 हरिं निन्दयतो जिह्वा कथं न पतिता तव ॥ २६
 शोच्यस्त्वमसि दुर्बुद्धे निन्दनीयश्च साधुभिः ।
 यत् त्रैलोक्यगुरुं विष्णुमभिनन्दसि दुर्मते ॥ २७
 शोच्यश्चास्मि न संदेहो येन जातः पिता तव ।

उन लोगों ने इन्द्र सहित रुद्र, अग्नि एवं वायु आदि सहस्रों देवों को युद्ध में पराजित कर उनके दर्प को नष्ट किया एवं उन्हें स्वर्ग से भगा दिया । (२१)

वह बलवान् विप्रचित्ति मेरी सेना का अप्रगामी है जिसने वेगपूर्वक सूर्य के रथ से महावेगयुक्त चक्र को खींच लिया था । (२२)

अय शङ्कु, शिव, शंभु, असिलोमा, विलोमकृत्, त्रिशिरा, मकराक्ष, धृपपर्वा एवं नतेक्षण-ये तथा अन्य अनेकों नानायुद्ध-विशारद बलवान् (द्वैत्य मेरे सहायक हैं) जिनमें प्रत्येक की सोलहवीं बला के भी तुम्य विष्णु नहीं है । (२३-२४)

पुलस्त्य ने कहा—पौत्र के इस वचन को सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध उन प्रह्लाद ने विष्णु निन्दक बलि से कहा—तुम पापी दुष्टबुद्धि मूर्ख की धिक्कार है। हरि की निन्दा करते हुए तुम्हारी जिह्वा क्यों नहीं गिर गयी ? (२५-२६)

हे दुर्बुद्धि ! हे दुर्मति ! तुम सोचनीय एवं सज्जनों द्वारा निन्दनीय हो । क्योंकि तुम त्रिलोक के गुरु विष्णु की निन्दा कर रहे हो । (२७)

निसरन्देह मैं भी शोचनीय हूँ जिसने तुम्हारे उस

यस्य त्वं कर्कशः पुत्रो जातो देवावमान्यकः ॥ २८
 भवान् किल विजानाति तथा चामी महासुराः ।
 यथा नान्यः प्रियः कथिन्मम तस्माज्जनार्दनात् ॥ २९
 जानन्नपि प्रियतरं प्राणेश्योऽपि हरिं मम ।
 सर्वेश्वरेश्वरं देवं कथं निन्दितवानसि ॥ ३०
 गुरुः पूज्यस्तव पिता पूज्यस्तस्याप्यहं गुरुः ।
 ममापि पूज्यो भगवान् गुरुर्लोकगुरुर्हरिः ॥ ३१
 गुरोर्गुरुर्गुरुर्मूढ पूज्यः पूज्यतमस्तव ।
 पूज्यं निन्दयसे पाप कथं न पतितोऽस्यथः ॥ ३२
 शोचनीया दुराचारा दानवामी कृतास्त्वया ।
 येषां त्वं कर्कशो राजा वासुदेवस्य निन्दकः ॥ ३३
 यस्मात् पूज्योऽर्चनीयश्च भवता निन्दितो हरिः ।
 तस्मात् पापसमाचार राज्यनाशमवाप्नुहि ॥ ३४
 यथा नान्यत् प्रियतरं विद्यते मम केशवात् ।

पिता को उत्पन्न किया जिससे तुम देवनिन्दक तथा क्रूर पुत्र हुए । (२८)

निश्चय ही तुम एवं ये महासुर भी जानते हैं कि जनार्दन से अधिक कोई अन्य मेरा प्रिय नहीं है । (२९)

हरि मुझे प्राणों से भी अधिक प्रिय हैं यह जानते हुए भी तुमने सर्वेश्वरेश्वर देव की निन्दा कैसे की ? (३०)

तुम्हारे पिता (तुम्हारे लिये) गुरु एवं पूज्य हैं । उनका भी गुरु एवं पूज्य मैं हूँ । लोकगुरु भगवान् हरि मेरे भी पूज्य एवं गुरु हैं । (३१)

हे मूढ़ पापी ! गुरु के गुरु के भी गुरु तुम्हारे लिए पूज्य एवं पूज्यतम हैं । तुम पूज्य की निन्दा करते हो अतः तुम अधः पतित क्यों नहीं हो गये । (३२)

तुमने इन दुराचारी दानवों को शोचनीय बना दिया । क्योंकि वासुदेव के निन्दक मूढ़ तुम इनके राजा हो । (३३)

हे पापाचारी ! क्योंकि तुमने पूज्य एवं अर्चनीय हरि की निन्दा की है अतः तुम्हारे राज्य का नाश होगा । (३४)
 - क्योंकि मन, कर्म एवं वाणी से मेरा केशव से अधिक

मनसा कर्मणा वाचा राज्यभ्रष्टस्तथा पत ॥ ३५
 यथा न तस्मादपरं न्यतिरिक्तं हि विद्यते ।
 चतुर्दशसु लोकेषु राज्यभ्रष्टस्तथा पत ॥ ३६
 सर्वेषामपि भूतानां नान्यद्व्योके परायणम् ।
 यथा तथाऽनुपदेशेषु भवन्तः राज्यविच्युतम् ॥ ३७
 पुलस्त्य उवाच ।

एवमुच्चारिते वाक्ये षलिः सत्वरितस्तदा ।
 अवतीर्यासनाद् ब्रह्मन् कृताञ्जलिपृष्ठो षली ॥ ३८
 शिरसा प्रणिपत्वाह प्रसादं यातु मे गुरुः ।
 कृतापराधानपि हि ध्मन्ति गुरवः विश्व ॥ ३९
 तस्माद्यु यदहं शमो भवता दानवेधर ।
 न त्रिमेभि परेभ्योऽहं न च राज्यपरिध्यात् ॥ ४०
 नैव दुःखं मम विमो यदहं राज्यविच्युतः ।
 दुःखं कृतापराधत्वाद् भवतो मे महत्तरम् ॥ ४१

तन् ध्म्यतां तात ममापराधो
 बालोऽन्यनयोऽस्मि गुरुर्मित्रिम् ।

अन्य कोई प्रिय नहीं है अतः राज्यभ्रष्ट होकर तुम अथ
 पतित हो जाओ । (३५)

कर्मोंके चतुर्दश लोकों में उनमें मित्र दूख कोई नहीं
 है अतः राज्यभ्रष्ट होकर तुम पतित हो जाओ । (३६)

कर्मोंके सत्कार में सभी भूतोंका (वासुदेव के अतिरिक्त
 अन्य कोई) आश्रय नहीं है अतः मैं तुम्हें राज्यच्युत
 हुआ देखूँ । (३७)

पुलस्त्य ने कहा—हे ब्रह्मन् । ऐसा कहे जाने पर
 षलवाच षलि शीघ्र आसन से उतरा एवं हाथ जोड़ कर शिर
 से प्रणाम कर कहा—हे गुरु ! मेरे उपर आप प्रसन्न हों ।
 गुरुजन अपराध करने पर भी शिशुओं को क्षमा करते
 हैं । (३८-३९)

हे दानवेधर ! आपका मुझे शाप देना उचित है ।
 मैं शत्रुओं तथा राज्य के विनाश से भयभीत नहीं हूँ । (४०)

हे विश्व ! मुझे राज्यसे विच्युत हो जाने का दुःख नहीं
 है । आपका अपराध करने का मुझे सर्वाधिक दुःख
 है । (४१)

अतः हे तात ! मेरे अपराध को क्षमा करें । मैं एक

कृतेऽपि दोषे गुरवः विश्वानां
 ध्मन्ति दैन्यं सङ्घपागतानाम् ॥ ४२
 पुलस्त्य उवाच ।
 स एवमुक्तो वचनं महात्मा
 विमुक्तमोहो हरिपादभक्तः ।
 चिरं विचिन्त्याद्भुतमेतदित्य-
 भूवाच पौत्रं मधुरं वचोऽय ॥ ४३
 प्रह्लाद उवाच ।

तात मोहेन मे ज्ञानं विवेकथ विरस्कृतः ।
 येन सर्वगतं विष्णुं जानंस्त्वां शप्तवानहम् ॥ ४४
 नूनमेतेन भाव्यं वै भवतो येन दानव ।
 ममाविश्वन्महासाहो विवेकप्रतिषेधकः ॥ ४५
 तस्माद् राज्यं प्रति विभो न ज्वरं कर्तुमर्हसि ।
 अवश्यं भाविनो ह्यर्थां न त्रिनश्यन्ति कर्हिचित् ॥ ४६
 पुत्रमित्रकलसार्थं राज्यभोगधनाय च ।
 आगमे निर्गमे प्राप्नो न विपादं समाचरेत् ॥ ४७

अनाथ दुष्टयुद्धि मालव हूँ । गुरुजन दोष करने पर भी दीन
 बने हुए शिशुओं को क्षमा करते हैं । (४२)

पुलस्त्य ने कहा—ऐसा वचन कहने पर विष्णु के
 चरणों में भक्ति रखने वाले मोह-रहित महात्मा (प्रह्लाद)
 ने चिरकाल तक विचार कर पौत्र से इस प्रकार यह अद्भुत
 एवं मधुर वचन कहा । (४३)

प्रह्लाद ने कहा—हे तात ! मोह ने मेरे ज्ञान एवं
 विवेक को टूट दिया था । इसी से विष्णु को सर्वगत जानते
 हुए भी मैंने तुम्हें शाप दिया । (४४)

हे दानव ! निश्चय ही तुम्हारा ऐसा भविष्य था ।
 इसी से विवेक का प्रतिबंधक महामोह तुझमें प्रविष्ट हुआ
 था । (४५)

अतः हे विभो ! राज्य के लिए दुःख मत करो । अवश्य-
 म्भाषी विषय कदापि विनष्ट नहीं होते । (४६)

बुद्धिमान् न्यक्तिके को पुत्र, मित्र, पत्नी, राज्यभोग
 और धन के आने तथा जाने पर दुःखी नहीं होना
 चाहिये । (४७)

यथा यथा समाचान्ति पूर्वकर्मविधानतः ।
 सुखदुःखानि दैत्येन्द्र नरस्तानि सहेत् तथा ॥ ४८
 आपदामागम दृष्ट्वा न विपण्णो भवेद् वधी ।
 संपदं च सुविस्तीर्णा प्राप्य नोऽधृतिमान् भवेत् ॥ ४९
 धनक्षये न मृष्यन्ति न हृष्यन्ति घनागमे ।
 धीराः कार्येषु च सदा भवन्ति पुरुषोत्तमाः ॥ ५०
 एष विदित्वा दैत्येन्द्र न विपार्दं कथंचन ।
 कर्तुमर्हसि विद्वास्त्वय पण्डितो नावसीदति ॥ ५१
 तथाऽन्यच्च महाबाहो हितं शृणु महार्थकम् ।
 भवतोऽथ तथाऽन्येषा श्रुत्वा तच्च समाचर ॥ ५२
 शरण्यं शरण गच्छ तमेव पुरुषोत्तमम् ।
 स ते त्राता भयादस्माद् दानवेन्द्र भविष्यति ॥ ५३
 ये सश्रिता हरिमनन्तमनादिमभ्यं
 विष्णु चराचरगुहं हरिमीशितारम् ।

संसारगर्तपतितस्य करावलम्बं
 नूनं न ते श्रुवि नरा ज्वरिणो भवन्ति ॥ ५४
 वनमा दानवश्रेष्ठ उद्भक्तश्च भवाधुना ।
 स एष भवतः श्रेयो विधास्यति जनार्दनः ॥ ५५
 अहं च पापोपशमार्थमीश-
 माराध्य यास्ये प्रतितीर्थयात्राम् ।
 विष्णुकृतपापथ ततो गमिष्ये
 यत्राच्युतो लोकपतिर्नृसिंहः ॥ ५६
 पुरस्तस्य उवाच ।
 इत्येवमाश्वास्य बलिं महात्मा
 सस्मृत्य योगाधिपतिं च विष्णुम् ।
 आमन्त्र्य सर्वान् दनुयुधपालान्
 जगाम कर्तुं त्वथ तीर्थयात्राम् ॥ ५७

इति श्रीवामनपुराणे एकपञ्चाशोऽध्याय ॥ ५१ ॥

हे दैत्येन्द्र । पूर्वकर्मों के विधान से जैसे जैसे सुख और दुःख आते हैं, मनुष्य को उसी प्रकार उनको सदन करना चाहिये । (४८)

सचमी व्यक्ति को आपत्तियों का आगमन देखकर दुःखी नहीं होना चाहिए एव अत्यन्त विपुल सम्पत्ति को देखकर धैर्यच्युत नहीं होना चाहिए । (४९)

उत्तम पुरुष धन का क्षय होने पर मोह एव धन की प्राप्ति होने पर हर्ष नहीं करते । वे कर्त्तव्य के प्रति सदा धीर धने रहते हैं । (५०)

हे दैत्येन्द्र । ऐसा जानकर तुम्हें किसी प्रकार का विषाद नहीं करना चाहिये । तुम विद्वान् हो । विद्वान् दुःखी नहीं होता । (५१)

हे महाबाहो ! तुम्हारे लिये तथा अन्यो के लिये महान् अर्थपूर्ण तथा हितकर (वचन) सुनो एव सुनकर वैसा ही करो । (५२)

हे दानवेन्द्र । तुम उन्हीं शरण्य पुरुषोत्तम की शरण में जाओ । वे ही इस भय से तुम्हारी रक्षा करेंगे । (५३)

आदिमभ्यान्तहीन, चराचरगुरु, संसाररूपी गर्त में गिरे हुएों के हाथ को अवलम्ब देने वाले एव सर्वनियामक हरि विष्णु की शरण में जाने वाले मनुष्य निम्न्य ही संसार में दुःखी नहीं होते । (५४)

हे दानवश्रेष्ठ । अब तुम उन्हीं में मन लगाकर उनके भक्त बनो । वे जनार्दन ही तुम्हारा कल्याण करेंगे । (५५)

मैं भी पापक्षय के लिए ईश्वर की आराधना कर तीर्थ यात्रा करने जाऊँगा । पापविमुक्त होकर मैं वहाँ जाऊँगा जहाँ लोकपति अच्युत नृसिंह हैं । (५६)

पुरस्त्य ने कहा—इस प्रकार बलि को आश्वासन देने के उपरान्त महात्मा (प्रह्लाद) ने योगाधिपति विष्णु का स्मरण किया एव दानवसमूहों के पालकों से अनुमति ले कर तीर्थयात्रा करने चले गये । (५७)

श्रीवामनपुराण के इत्येवमन्तर्वो प्रथम्य समाप्त ॥५१॥

नारद उवाच ।

कानि तीर्थानि विप्रेन्द्र प्रह्लादोऽनुज्ञगाम ह ।
प्रह्लादतीर्थयात्रां मे सम्यगारभ्यातुमर्हसि ॥ १

पुलस्त्य उवाच ।

मृशुष्य कथयिष्यामि पापपङ्कप्रणाशिनीम् ।
प्रह्लादतीर्थयात्रां ते शुद्धपुण्यप्रदायिनीम् ॥ २

संत्यज्य मेरुं कनकाचलेन्द्रं

तीर्थं जगामामरसंघनुष्टम् ।

एयातं पृथिव्यां शुभदं हि मानसं

यत्र स्थितो मत्स्ववपुः सुरेशः ॥ ३

वस्मिस्तीर्थवरे स्नात्वा संतर्प्य पितृदेवताः ।

संपूज्य च जगन्नाथमच्युत श्रुतिभिर्पुतम् ॥ ४

उपोष्य भूयः संपूज्य देवर्षिपितृमानवान् ।

जगाम कच्छपं द्रष्टुं कौशिक्यां पापनाशनम् ॥ ५

तस्यां स्नात्वा महानद्यां संपूज्य च जगत्पतिम् ।

नारद ने कहा—हे विप्रेन्द्र ! प्रह्लाद किन तीर्थों में गये । आप मुझसे प्रह्लाद की तीर्थयात्रा का भली प्रकार वर्णन करें । (१)

पुलस्त्य ने कहा—सुनो, मैं तुमसे पापरूपी पङ्क को नष्ट करने वाली एवं शुद्ध पुण्य को प्रदान करने वाली प्रह्लाद की तीर्थयात्रा का वर्णन करता हूँ । (२)

श्रेष्ठ सुननेमय मेरु पर्वत को छोड़कर वे देवों से सेवित पृथ्वी में प्रसिद्ध कल्याणप्रद मानसतीर्थ में गये जहाँ मत्स्वशरीरधारी सुरेश निवास करते हैं । (३)

उस श्रेष्ठतीर्थ में स्नान एवं पितरों तथा देवों का तर्पण कर उन्होंने श्रुतियों से समन्वित अच्युत जगन्नाथ का पूजन किया । (४)

और पुन यहाँ उपवास पूर्णक देवों, ऋषियों पितरों एवं मानवों की पूजा कर कौशिकी में (अर्थात्) पापनाशक कच्छप का दर्शन करने गये । (५)

उस महानदी में स्नानकर उन्होंने जगत्पति जनादेन की

सम्पुष्य श्रुचिर्भूत्वा दत्त्वा विप्रेषु दक्षिणाम् ॥ ६

नमस्कृत्य जगन्नाथमयो कूर्मवपुर्धरम् ।

ततो जगाम कृष्णाख्यं द्रष्टुं वाजिमुखं प्रभुम् ।

तत्र देवहृदे स्नात्वा तर्पयित्वा पितॄन् सुरान् ॥ ७

संपूज्य हयग्रीवं च जगाम गजसाहयम् ।

तत्र देवं जगन्नाथं गोविन्दं चक्रपाणिनम् ॥ ८

स्नात्वा संपूज्य विधिवत् जगाम यमुनां नदीम् ।

तस्यां स्नातः श्रुचिर्भूत्वा संतर्प्यपिसुरान् पितॄन् ।

ददर्श देवदेवेशं लोकनाथं त्रिविक्रमम् ॥ ९

नारद उवाच ।

साम्प्रतं भगवान् विष्णुस्त्रैलोक्याक्रमणं वपुः ।

करिष्यति जगत्सामी यत्कर्तव्यममीधरः ॥ १०

तत्कथं पूर्वकालेऽपि विभूरासीत् त्रिविक्रमः ।

कथ्य वा वन्धनं विष्णुः कृतनात्तथ मे वद ॥ ११

पूजा की एवं उपवास करके पवित्र होकर ब्राह्मणों को दक्षिणा दिया । (६)

तदनन्तर कूर्मशरीरधारी जगन्नाथ को नमस्कार कर वे यहाँ से कृष्ण नाम के अश्वमुख प्रभु का दर्शन करने गये । यहाँ देवहृद में स्नान कर उन्होंने देवों एवं पितरों का तर्पण किया तथा हयग्रीव या पूजनर के हस्तिनापुर गये । यहाँ स्नान कर चक्रपाणि जगन्नाथ गोविन्द देव की विधिपूर्वक पूजा करने के बाद वे यमुना नदी के समीप गए । उसमें स्नान कर पवित्र होकर उन्होंने ऋषियों, पितरों एवं देवों का तर्पण किया एवं देवदेवेश लोकनाथ त्रिविक्रम का दर्शन किया । (७-९)

नारद ने पूछा—सम्प्रति जगत्पति भगवान् विष्णु त्रैलोक्य को आक्रान्त करने बाट शरीर धारण करेंगे तथा बलि को माँगेगे । तो फिर भगवान् विष्णु कैसे पूर्व समय में त्रिविक्रम हुए थे और (उस समय) उन्होंने किसका वन्धन किया था ? यह बात मुझे बताइये । (१०-११)

पुलस्त्य उवाच ।

श्रूयतां कथयिष्यामि योऽयं प्रोक्तस्त्रिविक्रमः ।
यस्मिन् काले संबभूव यं च वञ्चितवानसौ ॥ १२
आसीद् धुन्धुरिति न्यातः कश्यपभ्यौरसः सुतः ।
दनुर्गर्भसमुद्भूतो महाबलपराक्रमः ॥ १३
स समाराध्य वरदं ब्रह्माणं तपसाऽसुरः ।
अप्यत्वं सुरैः सेन्द्रैः प्रार्थयत् स तु नारद ॥ १४
तद् वरं तस्य च प्रादात् तपसा पङ्कजोद्भवः ।
परितुष्टः स च बली निर्जगाम त्रिनिष्टपम् ॥ १५
चतुर्थस्य कनेरादौ जित्वा देवान् सवासवान् ।
धुन्धुः शक्रत्वमकरोद्दिरण्यकशिपौ सति ॥ १६
तस्मिन् काले स बलवान् हिरण्यकशिपुस्ततः ।
चचार मन्दरगिरीं दैत्यं धुन्धुं समाश्रितः ॥ १७
ततोऽसुरा यथा कामं विहरन्ति त्रिनिष्टपे ।
ब्रह्मलोके च त्रिदशाः संस्थिता दुःखसंयुताः ॥ १८
ततोऽभरान् ब्रह्मसदो निवासिनः
श्रुत्वाऽथ धुन्धुर्दितिज्ञानुवाच ।
ब्रजाम दैत्या वयमग्रजस्य

पुलस्त्य ने कहा—धुनो, मैं बतलाना हूँ कि वे त्रिविक्रम कौन हैं, कितना समय हुए एवं उन्होंने किसकी ब्रह्मना की । (१२)
कश्यप का दनु के गर्भ से उत्पन्न धुन्धु नाम से प्रसिद्ध अत्यन्त बलवान् एवं पराक्रमी एक औरस पुत्र था । (१३)
हे नारद ! उस असुर ने तपस्या के द्वारा वरदाता ब्रह्मा की आराधना करके उनसे इन्द्र आदि देवताओं से अथर्व्य होने की प्रार्थना की । (१४)
(उसके) तप से प्रसन्न होकर कमलयोगिनि ब्रह्मा ने उसे वह वर दे दिया । तदनन्तर वह बलवान् धुन्धु स्वर्ग में गया । (१५)
चतुर्थ कलि के आदि में हिरण्यकशिपु के वर्तमान रहते समय धुन्धु ने इन्द्र सहित देवों को जीतकर इन्द्र बन गया । (१६)
उस समय धुन्धु का आश्रित होकर बलवान् दैत्य हिरण्यकशिपु मन्दर पर्वत पर विचरण करता था । (१७)
असुर लोग भी इच्छानुसार स्वर्ग में विहार करने लगे । सभी देवता दुःखी होकर ब्रह्मलोक में रहने लगे । (१८)

सदो विजेतुं त्रिदशान् सद्यन्तान् ॥ १९
ते धुन्धुवाक्यं तु निशम्य दैत्याः
प्रोचुर्न नो विपति लोकपाल ।
गतिर्यथा याम पितामहाजिर्नं
-सुदुर्गमोऽयं परतो हि मार्गः ॥ २०
इत्. सहस्रैर्दुःखयोजनारयै-
ल्लोको महर्नाम महर्षिजुष्टः ।
येषां हि दृष्ट्याऽर्पणचोदितेन
दहन्ति दैत्याः सहसेधितेन ॥ २१
ततोऽपरो योजनकोटिना वै
लोक्यो जनो नाम वसन्ति यत्र ।
गोमातरोऽस्मासु विनाशकारि
यासां रजोऽपीह महासुरेन्द्र ॥ २२
ततोऽपरो योजनकोटिभिस्तु
पड्भिस्तपो नाम तपस्विजुष्टः ।
तिवृन्ति यत्रासुर साध्यवर्गा
येषां हि निश्वासमरुत् त्वसह्यः ॥ २३
ततोऽपरो योजनकोटिभिस्तु

तब देवताओं का ब्रह्मलोक में रहना सुनकर धुन्धु ने दैत्यों से कहा—हे दैत्यो ! इन्द्र सहित देवों को जीतने के लिये हमलोग ब्रह्मलोक चलें । (१९)
धुन्धु का वचन सुनकर उन दैत्यों ने कहा—हे लोकपाल ! हम लोगों में वह गति नहीं है जिससे पितामह के लोक में जा सकें । (वहाँ का) मार्ग अत्यन्त दुर्गम एवं दूर है । (२०)
यहाँ से सहस्रों योजन दूर महर्षियों के द्वारा सेवित 'मह' नामक लोक है । उन ऋषियों की सहसा दृष्टि पड़ते ही समस्त दैत्य जल जाते हैं । (२१)
उससे भी आगे कोटि योजन दूर 'जन' नामक एक लोक है जहाँ गोमातार्य रहती है । हे महासुरेन्द्र ! उनकी वृत्ति भी हमलोगों का विनाशक है । (२२)
तदनन्तर छ कोटि योजन की दूरी पर तपस्वियों से सेवित 'तप' लोक है । हे असुर ! यहाँ श्रेष्ठ एवं साध्यगण निवास करते हैं । उनका निश्वास पवन असह्य है । (२३)
तदुपरान्त तीस कोटि योजन की दूरी पर सहस्र

त्रिशङ्करादित्यसहस्रदीप्तिः॥

मत्स्यमिधानो भगवन्नृचिवामो

वरप्रदोऽमुद्भवतो हि योऽसौ ॥ २४

यस्य वेदध्वनिं श्रुत्वा त्रिकमन्ति सुरादयः ।

संकोचमगुरा यान्ति ये च तेषां गर्धमिणः॥ २५

तस्मान्मा त्वं महाबाहो मतिमेतां ममादधः ।

वैराजध्वनं धुन्वो दुरारोहं सदा नृभिः ॥ २६

तेषां वचनमाकर्ण्य धुन्वुः प्रोवाच दानवान् ।

गन्तुकामः स मदत्तं ब्रह्मणो जेतुमीश्वरान् ॥ २७

कथं तु कर्मणा केन गम्यते दानवर्षभाः ।

कथं तत्र सहस्राक्षः संप्राप्तः सह दैवतैः ॥ २८

ते धुन्धुना दानमेन्द्राः मृष्टाः प्रोचुर्वचोऽधिपम् ।

कर्म तत्र वपं विद्यः शुक्रमत्तु वैश्यसंशयम् ॥ २९

दैत्यानां वचनं श्रुत्वा धुन्वुर्दैत्यपुरोहितम् ।

पप्रच्छ शुकं किं कर्म कृत्वा ब्रह्मसदोगतिः ॥ ३०

धादित्यों के समान दीप्त 'सत्य' नामक लोक है। वह लोक उन्हीं भगवान् का निवास स्थान है जिन्होंने आपकी वर प्रदान किया था। (२५)

उनकी वेदध्वनि सुनकर देवता आदि विरसित होते हैं और असुर तथा उनके समानधर्म वाले संवृचित होते हैं। (२५)

अतः हे महाबाहु धुन्वु! बाप ऐसा विचार न करे। क्योंकि मनुष्यों के लिये ब्रह्मलोक सर्वत्र दुरारोह है। (२६)

उनकी बात सुनकर देवों को जीतने के लिए ब्रह्मलोक को जाने की इच्छा वाले धुन्वु ने शर्मों से कहा— (२७)

हे दानवश्रेष्ठो! वहाँ कैसे और किस कर्म से जाया जाता है? देवों के साथ इन्द्र वहाँ कैसे पहुँचे? (२८)

स्वामी धुन्वु के पूछने पर उन श्रेष्ठ दानवों ने कहा— हमलोग उस कर्म को नहीं जानते। शुभाचार्य निरसन्देह प्रसन्नो जानते हैं। (२९)

दैवों की बात सुनकर धुन्वु ने देवों के पुरोहित शुभाचार्य से पूछा— किस कर्म को करने से ब्रह्मलोक में जाया जा सकता है? (३०)

ततोऽयं कथयामास दैत्याचार्यः कलिप्रिय । शक्रस्य चरितं श्रीमान् पुरा वृत्ररिपोः किल ॥ ३१ शक्रः शतं तु पुण्यानां कर्तृनामजयत् पुरा । दैत्येन्द्रः वाजिमेधानां तेन ब्रह्ममदो गतः ॥ ३२ तदाक्यं दानवपतिः श्रुत्वा शुकस्य वीर्यवान् । यष्टुं तुरगमेधानां चकार मतिमृचमाम् । अधामन्त्रयासुरगुरुं दानवांश्चाप्यनुत्तमान् ॥ ३३ प्रोवाच यक्ष्येऽहं यज्ञैरश्रमेधैः सदक्षिणैः । उदागच्छ भवमवनीं गच्छामो वसुधाधिपान् ॥ ३४ विजित्य हयमेधान् वै यथाकामगुणान्वितान् । आह्वयन्तां च निधम्रस्तावाप्यन्तां च गुह्यकाः ॥ ३५ आमन्त्रयन्तां च ऋषयः प्रयामो देविकाटतम् । सा हि पुण्या सरिच्छ्रेष्ठा सर्वसिद्धिकरी शुभा । स्थानं प्राचीनमासाद्य वाजिमेधान् यजामहे ॥ ३६ इत्थं सुरारोर्वचनं निश्शम्यासुरयाजकः ॥

हे कलिप्रिय! तदनन्तर उससे धुन्वुशु इन्द्र का चरित बहा। (उन्होंने कहा)— हे दैत्येन्द्र! प्राचीन काल में इन्द्र ने सौ पवित्र अश्वमेध यज्ञ किया था। इसी से वे ब्रह्मलोक चले गए। (३१-३२)

शुभाचार्य का वह वाक्य सुनकर बलवान् दानवपति ने अश्वमेध यज्ञ करने की उत्तम इच्छा की। तदनन्तर असुर-गुरु तथा श्रेष्ठ दानवों को आमंत्रित कर (उसने कहा— मैं दक्षिणा सहित अश्वमेध यज्ञों को करूँगा। अतः श्राव्ये, हमलोग पृथ्वी पर चलों एवं राजाओं को जीतकर इच्छा-तुष्टल गुणों से सम्पन्न अश्वमेधों का सम्पादन करें। निधियों को तुलाओं एवं गुह्यकों को आत्मा दे दो। (३३-३५)

श्रुतियोंको आमन्त्रित करे, हमलोग देविया के वट पर चलो। यह मवित्र श्रेष्ठ नदी कल्याणप्रद एवं सर्वसिद्धिकरी है। उस प्राचीन स्थान पर पहुँचकर हम अश्वमेध यज्ञ करेंगे। (३६)

सुर-शु के उस वचन को सुनकर असुरयाजक (शुक) ने शीक है ऐसा कहा एवं प्रसन्नगुरु के उन्हीं निधियों

षाढमित्यथ्रवीद् हृष्टो निधय, मदिदेश सः ॥ ३७
 ततो धुन्धुर्देविकायाः प्राचीने पापनाशने ।
 भार्गवेन्द्रेण शुक्रेण वाजिमेधाय दीक्षित, ॥ ३८
 सदस्या ऋतिवचथापि तत्रासन् भार्गना द्विजाः ।
 शुम्भस्यानुमते ब्रह्मन् शुकश्शिष्याथ पण्डिताः ॥ ३९
 यज्ञभागसुजस्तत्र स्वर्भानुप्रमुखा मुने ।
 कृताश्रासुरनाथेन शुम्भ्यानुमतेऽसुराः ॥ ४०
 ततः प्रवृत्तो यज्ञस्तु समुत्सृष्टस्तया हयः ।
 हयस्यानुययौ श्रीमानसिलोमा महासुरः ॥ ४१
 ततोऽग्निधूमेन मही सशैला
 व्याप्ता दिशः ख विदिशश्च पूर्णाः ।
 तेनोग्रगन्धेन दिवस्पृशेन
 मरुद् ययौ ब्रह्मलोके महर्षे ॥ ४२
 स गन्धमाग्राय सुरा विपण्णा
 जानन्त धुन्धु हयमेधदीक्षितम् ।

को आदेश दिया । (३७)
 तदनन्तर देविका के प्राचीन पापनाशक तट पर भार्गव
 श्रेष्ठ शुक ने अश्वमेध यज्ञ के लिये धुन्धु को दीक्षित
 किया । (३८)
 हे ब्रह्मन् ! शुक की अनुमति से शुक के शिष्य तथा
 भार्गव-नौखीय विद्वान् ब्राह्मण उस यज्ञ में सदस्य एव
 ऋत्विज बने । (३९)
 हे मुने ! शुकचार्य की अनुमति से असुरनाथ ने
 स्वर्भानु आदि असुरों को यज्ञभाग का भोगी
 बनाया । (४०)
 तदनन्तर यज्ञ आरम्भ हुआ एव अथ्र वीज्य गया ।
 असिलोमा नामक महान् असुर अथ्र के पीछे
 चला । (४१)
 हे महर्षे ! तदुपरान्त यज्ञ क धूम से पर्वतों सहित
 पृथ्वी, आकाश, दिशायें एव विदिशायें व्याप्त हो गईं ।
 आभाश स्पर्शी उस दम्र गन्ध से सुगन्धित वायु ब्रह्मलोक
 में प्रवाहित होने लगा । (४२)
 इस गन्ध को सूँघ कर देवगण विपण्ण हो गए ।
 उन्हें यह ज्ञात हो गया कि धुन्धु ने अश्वमेध की दीक्षा
 ग्रहण की है । तदुपरान्त वे इन्द्र सहित जगदाश्रय शरण

ततः शरण्यं शरण जनार्दनं
 जग्म, सशना जगत, परायणम् ॥ ४३
 प्रणम्य वरद देव पन्ननाम जनार्दनम् ।
 प्रोचुः सर्वे सुरगणा भयगद्गदया गिरा ॥ ४४
 भगवन् देवदेवेश चराचरपरायण ।
 विज्ञप्ति, श्रूयता विष्णो सुराणामार्तिनाशन ॥ ४५
 धुन्धुर्नामासुरपतिर्वलवान् वरश्चहित ।
 सर्वान् सुरान् विनिर्जित्य त्रैलोक्यमहरद् बलिः ॥ ४६
 ऋते पिनाकिनो देवात् त्राताऽस्मान् न यतो हरे ।
 अतो विवृद्धिमगमद् यथा व्याधिरुपेक्षित, ॥ ४७
 साम्प्रत ब्रह्मलोकस्थानपि जेतु सम्यगतः ।
 शुन्स्य मतमास्थाय सोऽश्वमेधाय दीक्षित, ॥ ४८
 शत क्रतूनामिष्ट्वाऽसौ ब्रह्मलोक महासुरः ।
 आरोढुमिच्छति वशी विजेतु त्रिदशानपि ॥ ४९
 तस्मादकालहीन तु चिन्तयस्व जगद्गुरो ।

जनार्दन की शरण में गए । (४३)
 ब्रह्माता पन्ननाम जनार्दन देव को प्रणाम कर सभी
 देवों ने भय से गद्गद् बाणी में कहा — (४४)
 हे देवों के दुःख को दूर करने वाले चराचरहितकारी
 भगवान् देवदेवेश विष्णु ! आप हमारा निवेदन सुनें । (४५)
 धुन्धु नामक बलवान् असुरपति वर से बद्ध गया है ।
 उस बलवान् ने सभी देवों को जीतकर त्रैलोक्य को छीन
 लिया । (४६)
 हे हरि ! पिनाकी देव के अतिरिक्त हम देवों का
 कोई रक्षक न होने से वह असुर उपेक्षित व्याधि के
 सदृश बट गया है । (४७)
 साम्प्रति ब्रह्मलोक में हम रहने वालों को भी जीतने के
 लिये उद्यत होकर वह शुक के मतानुसार अश्वमेध यज्ञ
 में दीक्षित हुआ है । (४८)
 सौ अश्वमेध यज्ञ करके वह महासुर देवताओं पर
 विजय पाने के लिए ब्रह्मलोक में आरोहण करना
 चाहता है । (४९)
 अतः हे जगद्गुरु ! आप शीघ्र यज्ञ को विच्छेद करने

उपायं मस्यविचरंसे येन स्याम तुनिर्बृताः ॥ ५०
 श्रुत्वा सुराणां वचनं भगवान्-मधुसूदनः ॥
 दत्त्वाऽभयं महाबाहुः प्रेपयामास साम्प्रतम् ॥
 विस्मय्य देवताः सर्वां ज्ञात्वाऽजेयं महासुरम् ॥ ५१
 वन्दनाय मतिं चक्रे धुन्धोर्धर्मध्वजस्य वै ।
 ततः कृत्वा स भगवान् वामनं रूपमीधरः ॥ ५२
 देहं त्यक्त्वा निरालम्बं काष्ठवद् देविकाजले ।
 क्षणान्मज्जंस्तयोन्मज्जन्मुक्तकेतो यदञ्जया ॥ ५३
 दृष्टोऽथ दैत्यपतिना दैत्यैश्चान्यैस्तर्षाभिः ।
 ततः कर्म परित्यज्य यज्ञियं ब्राह्मणोत्तमाः ॥ ५४
 समुत्तारयितुं विप्रमाद्रवन्त समाकुलाः ।
 सदस्या यजमानश्च श्रुत्वित्तोऽथ महौजसः ॥ ५५
 निमज्जमानमुल्लङ्घः सर्वे ते वामनं द्विजम् ।
 समुत्तार्य प्रसन्नास्ते पप्रच्छुः सर्वे एव हि ।
 किमर्थं पतितोऽसीह केनाश्लिष्टोऽसि नो वद ॥ ५६
 तेषामाकर्ण्य वचनं कम्पमानो मुहुर्मुहुः ।
 प्राह धुन्धुपुरोगांस्तान्छूयतामत्र कारणम् ॥ ५७

का उपाय सोचें जिससे हमलोग निश्चिन्त हो सकें । (५०)

सभी देवों को अभयदान देकर वन महाबाहु ने उन्हें विसर्जित किया एवं उस महान् असुर धर्मध्वज धुन्धु को अज्ञेय जानकर उन्होंने उसे धौंधने का विचार किया । तदनन्तर भगवान् विष्णु ने वामन का रूप धारण किया एवं देविना के जल में अपने शरीर को पादपद्म निरालम्ब छोड़ दिया । क्षणमात्र में खुले हुये कैशों वाले वे अपने आप डूबने उतराने लगे । (५१-५३)

तदनन्तर दैत्यपति, दैत्यों एवं अन्य ऋषियों ने उन्हें देखा । तदुपरान्त यशस्वी को छोड़कर श्रेष्ठ ब्राह्मण उपप्रतापपूर्वक उस ब्राह्मण को निरालम्ब के लिये देखे । सभी सत्वर, यजमान एवं अति शोचनीय ऋत्विजों ने दृष्ट रहै धामनाकार ब्राह्मण को निरालम्ब एवं उससे पूछा—हमें यह बनलाजो कि तुम यहाँ क्यों गिरे अथवा तुम्हें किसने फेंका ? (५४-५६)

वनके वचन को सुनकर बार-बार सँपते हुए उन्होंने धुन्धु आदि से कहा—आप लोग इसका कारण सुनें । (५७)

ब्राह्मणों गुणवान्नासीत् प्रभाम इति विद्युत् ।
 सर्वैश्वार्यवित् प्राज्ञो गोत्रतथापि वारुणः ॥ ५८
 तस्य पुत्रद्वयं जातं मन्दप्रज्ञं सुदुःखितम् ।
 तत्र ज्येष्ठो मम भ्राता कनीयानपरस्त्वहम् ॥ ५९
 नेत्रभाम इति ख्यातो ज्येष्ठो भ्राता ममासुर ।
 मम नाम पिता चक्रे गतिभासेति कौतुकात् ॥ ६०
 रम्यश्चावसथो वन्द्यो शुभशशासीत् पितुर्मम ।
 त्रिविष्टपगुणैर्षुक्तशारुरूपो महासुर ॥ ६१
 ततः कालेन महता आरयोः स पिता मृतः ।
 तस्यौर्ध्वदहिकं कृत्वा गृहमावां समागतौ ॥ ६२
 ततो मयोक्तः स भ्राता विभजाम गृहं वयम् ।
 तेनोक्तो नैव भवतो विद्यते भाग इत्यहम् ॥ ६३
 कुञ्जवामनउज्जानां क्लीशानां त्रिजिणामपि ।
 उन्मत्तानां तथान्धानां धनभागो न विद्यते ॥ ६४
 शय्यासनस्थानमात्रं स्वेच्छ्यान्नशुजक्रिया ।

वक्ष्य गोत्रोत्पन्न प्रभास नामक एक ब्राह्मण थे । सर्वैश्वार्यों के अर्थ के ज्ञाता तथा बुद्धिमान् थे । (५८) वनके दो पुत्र उत्पन्न हुए । दोनों ही अल्पबुद्धि और अत्यन्त दुःखप्रस्त थे । उनमें मेरा भाई बड़ा और मैं छोटा हूँ । (५९)

हे असुर! मेरा बड़ा भाई नेत्रभास नाम से विख्यात है । मेरे पिता ने कुन्जल्लयश मेरा नाम गतिभास रखा । (६०)

हे महासुर धुन्धु ! मेरे पिता का गृह रमणीय, सुरम्य, रमणीय गुणों से युक्त एवं सुन्दर था । (६१)

तदनन्तर बहुत दिनों के बाद हम दोनों के पिता दिवंगत हो गये । उनका प्रेतकर्म कर हम दोनों भाई पर आये । (६२)

तदुपरान्त मैंने बड़े भाई से कहा—हम दोनों गृह का विभाजन कर लें । उसने मुझसे कहा—तुम्हारा भाग नहीं है । (६३)

क्योंकि कुञ्ज, वामन, लँगड़े, नपुंसक, श्वेतपुष्टी, उन्मत्त और अन्धों का धन में भाग नहीं होता । (६४) उन्हें केवल शय्यासन का स्थान एवं स्वेच्छानुसार

एतावद् दीयते तेभ्यो नार्थभागहरा हि ते ॥ ६५.
 एवमुक्ते मया लोकतः किमर्थं पैतृकाद् गृह्णात् ।
 धनार्थभागमर्हामि नाहं न्यायेन केन वै ॥ ६६
 इत्युक्तवति वाक्येऽसौ भ्राता मे कोपसंयुतः ।
 समृद्धिक्षिप्याक्षिपन्नद्यामस्यां मामिति कारणात् ॥ ६७
 ममास्यां निम्नगायां तु मध्येन प्लवतो गतः ।
 कालः संवत्साराख्यस्तु युष्माभिरिह चोद्धृतः ॥ ६८
 के भवन्तोऽत्र संग्रामाः सस्नेहा वाग्धवा इव ।
 क्लोष्यं च शक्रप्रतिभो दीक्षितो यो महाभुजः ॥ ६९
 तन्मे सर्वं समाख्यात याथातथ्यं तपोधना ।
 परद्विंसंयुता गूयं सत्तुक्मप्यात्र मे मृशम् ॥ ७०
 तद् वामनवचः श्रुत्वा भार्गवा द्विजसत्तमाः ।
 प्रोचुर्बयं द्विजा धनम् गोव्रतथापि भार्गवाः ॥ ७१
 असावपि महातेजा धुन्धुर्नाम महासुरः ।
 दाता भोक्ता विभक्ता च दीक्षितो यज्ञकर्मणि ॥ ७२

अन्नभोग वा अधिकार दिया जाता है । वे अर्थ के भाग के अधिकारी नहीं होते । (६५)

ऐसा कहने पर मैंने उससे कहा कि मैं कितना वाय से और क्यों पैतृक गृह के धन के अर्थभाग वा अधिकारी नहीं हूँ ? (६६)

इस प्रश्न वा वाक्य कहने पर कोपयुक्त मेरे भ्राता ने इसी कारण मुझे डाँककर इस नदी में फेंक दिया । (६७)

मुझे इस नदी में तैरते हुए एक वर्ष का समय व्यतीत हो गया । आप लोगों ने यहाँ मेरा उद्धार किया है । (६८)

स्नेह युक्त वाक्यों के सहित यहाँ स्थित आप लोग यौन हैं तथा यह के लिए दीक्षित इन्द्रतुल्य वे महापराक्रमी कौन हैं ? (६९)

हे तपोधनो ! आप मुझे यह सब वथार्थ रूप में बतलायें । आपलोग महान् पैतृक से युक्त एवं मेरे ऊपर अतिशय अनुकम्पा करने वाले हैं । (७०)

वामन वा यह पाश्च मुनश्च भार्गवकुल के ब्राह्मण भेटों ने कहा—हे मन्धर ! हमलोग भार्गवगोत्रीय ब्राह्मण हैं । (७१)

ये धुन्धु नामक अति तेजस्वी दाता, भोला एवं विभक्ता महान् असुर हैं । ये यज्ञार्थ में दीक्षित हुए हैं । (७२)

इत्येवमुक्त्वा देवेशः वामनं भार्गवास्ततः ।
 प्रोचुर्दैत्यपतिं सर्वे वामनार्थकरं वचः ॥ ७३
 दीयतामस्य दैत्येन्द्र सर्वोपस्करसंयुतम् ।
 श्रीमदावसथं दास्यो रत्नानि विविधानि च ॥ ७४
 इति द्विजानां वचनं श्रुत्वा दैत्यपतिर्वचः ।
 प्राह द्विजेन्द्र ते दक्षि वावदिच्छसि वै धनम् ॥ ७५
 दास्ये गृहं हिरण्यं च वाजिनः स्पन्दनान् गजान् ।
 प्रयच्छाम्यथ भवतो जियतामीप्सितं विभो ॥ ७६
 तद्वाक्यं दानवपतेः श्रुत्वा देवोऽप्य वामनः ।
 प्राहासुरपतिं धुन्धुं स्वार्थसिद्धिकरं वचः ॥ ७७
 सोदरेणापि हि अत्रा हियन्ते यस्य संपदः ।
 तस्याक्षमस्य यदत्तं किमन्यो न हरिष्यति ॥ ७८
 दासीदासांश्च सुत्यांश्च गृहं रत्नं परिच्छदम् ।
 समर्थेषु द्विजेन्द्रेषु प्रयच्छस्व महाभुज ॥ ७९
 मम प्रमाणमालोक्य मामकं च पदत्रयम् ।

देवेश वामन से ऐसा कहकर सभी भार्गवगोत्रीय (ब्राह्मणों ने) दैत्यपति धुन्धु से वामन के प्रयोजन को सिद्ध करने वाला धन कहा— (७३)

हे दैत्येन्द्र ! इन्हें समस्त सामग्रियों से युक्त क्षीमम्पन्न गृह, दासियाँ एवं विविध प्रकार के रत्न प्रदान करें । (७४)

ब्राह्मणों के उस वचन को सुनकर दैत्यपति ने यह वचन कहा—हे द्विजेन्द्र ! मैं आपकी इच्छानुसार धन दूँगा । (७५)

हे विभु ! आप अपने ईक्षित पदार्थों का धरण करें । मैं आज आपसे गृह, रत्न, अथ, रथ एवं दासी प्रदान करूँगा । (७६)

दानवपति का यह वाक्य सुनकर वामनदेव ने असुरपति धुन्धु से अपना स्वार्थ सिद्ध करने वाला धन कहा— (७७)

सहोदर भाई ! ने जिसरी सम्पत्ति का अपहरण कर लिया उस असमर्थ को जा दिया जायेगा क्या उसे कोई दूसरा नदी छीन लेगा ? (७८)

हे महाबाहु ! आप समर्थ भेट ब्राह्मणों को दासी, दाम, रथ, गृह, रत्न एवं अच्छे वस्त्र प्रदान करें । (७९)

हे दैत्येन्द्र ! मेरा परिमाण बेशक मुझे तीन

संप्रबन्धस्व दैत्येन्द्र नाधिकं रक्षितुं क्षमः ॥ ८०

हृत्प्रेवमुक्ते वचने महात्मना

निहृत्स्व दैत्याधिपति. मरुत्विजः ।

प्रादाद् द्विजेन्द्राय पदत्रय तदा

यदास नान्यं प्रगृहाण किञ्चित् ॥ ८१

क्रमत्रयं तावदवेक्ष्य दत्तं

महासुरेन्द्रेण विभुर्यशस्वी ।

चने ततो लङ्घयितुं त्रिलोकैः

त्रिविक्रमं रूपमनन्तशक्तिः ॥ ८२

कृत्वा च रूपं दिक्षिञ्च हत्वा

प्रणम्य चर्षन् प्रथमक्रमेण ।

महीं महीधैः सहितां सहाणवां

जहार रत्नाकरपचनैर्ष्वाम् ॥ ८३

क्षयं सनाकं त्रिदशाधिवासं

सोमार्कऋक्षैरभिमण्डितं नभः ।

देवो द्वितीयेन जहार वेगात्

क्रमेण देवप्रियमीपुरीश्वरः ॥ ८४

क्रमं तृतीयं न यदाऽस्य पूरितं

तदाऽतिक्रोपाद् दनुर्गुणवस्य ।

पपात पृष्टे भगवांस्त्रिविक्रमो

मेरुप्रमाणेन तु विग्रहेण ॥ ८५

पतवा वासुदेवेन दानघोपरि नारद ।

त्रिंशद्योजनसाहस्री भूमेर्गता दृढीकृता ॥ ८६

ततो दैत्यं समुत्पाद्य तस्यां प्रक्षिप्य वेगतः ।

अवर्षत् सिकतावृष्ट्या तां गर्तामपूरयत् ॥ ८७

ततः स्वर्गं सहस्रांशो वासुदेवप्रसादतः ।

सुराश्च सर्वे श्रैलोक्यमवापुर्निरुपद्रवाः ॥ ८८

भगवानपि दैत्येन्द्रं प्रक्षिप्य सिकतार्णवे ।

कालिन्या रूपमाधाय तत्रैवान्तरधीयत् ॥ ८९

एव पुरा विष्णुरभुञ्च वामनो

धुन्धुं विजेतुं च त्रिविक्रमोऽभूत् ।

यस्मिन् स दैत्येन्द्रसुतो जगाम

महाश्रमे पुण्यपुतो महर्षे ॥ ९०

इति श्रीवामनपुराणे द्विपञ्चाशोऽध्याय ॥५२॥

पग (भूमि) प्रदान करे । मैं अधिक की रक्षा करने में समर्थ नहीं हूँ । (८०)

उन महात्मा के ऐसा वचन बहने पर जब उन्होंने अन्य बुद्ध ग्रहण नहीं किया तो ऋत्विजों सहित दैत्याधिपति ने हँसकर उन द्विजेन्द्र को तीन पग (भूमि) प्रदान की । (८१)

महान् असुरेन्द्र द्वारा तीन पग भूमि प्रदान की हुई देखकर अनन्त शक्ति वाले यशस्वी विष्णु ने त्रिलोकी का लङ्घन करने के लिये त्रिविक्रम रूप धारण किया । (८२)

(त्रिविक्रम) रूप धारण करने के उपरान्त उन्होंने दैत्यों का घबकर ऋषियों को प्रणाम किया एवं प्रथम पादग्यास में पर्वत, सागर, रत्नों की खान एवं नगरों से युक्त पृथ्वी को हरण कर लिया । (८३)

देवो का प्रिय करने की इच्छा वाले ईश्वर वामनदेव ने द्वितीय पादक्रम से वेगपूर्वक देवताओं के निवास स्वर्ग के सहित सुयलोक, चन्द्र, सूर्य एवं नक्षत्रों से मण्डित आकाश का हरण कर लिया । (८४)

उनका तृतीय पादक्रम जब पूरा नहीं हुआ तो अत्यन्त क्रोध से भगवान् त्रिविक्रम मेरु के तुल्य शरीर से दानश्रेष्ठ की पीठ पर गिरे । (८५)

हे नारद ! दान्य के उपर वासुदेव के गिरने से भूमि में तोस सहस्र योजन का दृढ़ गर्त बन गया । (८६)

तदनन्तर उन्होंने दैत्य को ठठानर वेग से उसमें फेंक दिया एवं बालु की वृष्टि से उस गर्त को भर दिया । (८७)

तदनन्तर वासुदेव के अनुग्रह से इन्द्र ने दर्शन पाया एवं उपद्रव रहित समस्त देवों को त्रिलोक्य की प्राप्ति हुई । (८८) कालिन्दी के बालुकार्णव में दैत्येन्द्र को फेंकने के उपरान्त भगवान् भी अपना रूप धारण कर वहीं अन्तर्हित हो गए । (८९)

प्राचीन काल में इस प्रकार धुन्धु को जीवने के लिये विष्णु वामन तथा त्रिविक्रम हुए थे । हे महर्षि ! वह पुण्यपुत्र दैत्येन्द्र पुत्र प्रह्लाद वसी आश्रम में गया । (९०)

श्रीवामनपुराण में वामनर्षि अध्याय समाप्त ॥५२॥

पुलस्त्य उवाच ।

कालिन्दीसलिले स्नात्वा पूजयित्वा त्रिविक्रमम् ।
 उपोष्य रजनीमेकां लिङ्गमेतं गिरिं ययौ ॥ १
 तत्र स्नात्वा च विमले भवं दृष्ट्वा च भक्तितः ।
 उपोष्य रजनीमेकां तीर्थं केदारमाव्रजत् ॥ २
 तत्र स्नात्वाऽर्च्यं चेशानं माधवं चाप्यभेदतः ।
 उपित्वा वासरान् सम कृञ्जाम्रं प्रजगाम ह ॥ ३
 ततः सुतीर्थे स्नात्वा च भोपवासी जितेन्द्रियः ।
 हृषीकेशं समभ्यर्च्य ययौ वदरिकाश्रमम् ॥ ४
 तत्रोष्य नारायणमर्च्यं भक्त्या
 स्नात्वाऽथ विद्वान् स सरस्वतीजले ।
 वराहतीर्थे गुरुडासनं च
 दृष्ट्वाऽथ संपूज्य सुभक्तिमांश्र ॥ ५
 भद्रकण्ठे ततो गत्वा जयेशं शशिशेखरम् ।

दृष्ट्वा संपूज्य च शिवं विपाशामभितो ययौ ॥ ६
 तस्यां स्नात्वा समभ्यर्च्यं देवदेवं द्विजप्रियम् ।
 उपवासी इरावत्यां ददर्श परमेश्वरम् ॥ ७
 यमाराध्यं द्विजश्रेष्ठ शकले वै पुरूरवाः ।
 समवाप परं रूपमैश्वर्यं च सुदुर्लभम् ॥ ८
 कृष्टरोगाभिभूतश्च यं समाराध्य वै भृगुः ।
 आरोग्यमदुर्लभं प्राप संतानमपि चाक्षयम् ॥ ९
 नारद उवाच ।

कथं पुरूरवा विष्णुमाराध्यं द्विजसत्तम ।
 विरूपत्वं सहस्रसृज्य रूपं प्राप श्रिया सह ॥ १०
 पुलस्त्य उवाच ।

श्रूयतां कथयिष्यामि कथां पापप्रणाशिनीम् ।
 पूर्वं त्रेतायुगस्यादौ ययावृत्तं तपोधन ॥ ११
 मद्रदेश इति कथातो देशो वै ब्रह्मणः सुत ।

५३

पुलस्त्य ने कहा—यमुनाजल में स्नान कर प्रह्लाद
 ने त्रिविक्रम की पूजा की एवं एक रात उपोषण करने
 के उपरान्त लिङ्गभेदनामक पर्वत पर चले गए । (१)
 वहाँ विमल (जल) में स्नान कर उन्होंने भक्ति पूर्वक
 शङ्कर का दर्शन किया एवं एक रात निवास कर केदार
 नामक तीर्थ में गए । (२)
 वहाँ स्नानोपरान्त (उन्होंने) अभेद बुद्धि से शिव
 एवं विष्णु का अर्चन किया एवं सात दिनों तक निवास
 कर कृञ्जाम्र में चले गये । (३)
 सदनन्तर उस सुन्दर तीर्थ में स्नान कर उपवास करने
 वाले जितेन्द्रिय (प्रह्लाद) हृषीकेश या अर्चन कर
 वदरिका आश्रम चले गये । (४)
 वहाँ निवास करते हुए सरस्वती के जल में स्नानकर
 एत विद्वान् (प्रह्लाद) ने नारायण का पूजन किया ।
 सदनन्तर अत्यन्त भक्तिपूर्वक उन्होंने वराहतीर्थ में गुरुडा-
 सन विष्णु का दर्शन एवं पूजन किया । (५)
 वहाँ से भद्रकण्ठ में जाकर जयेश शशिशेखर शिव

का दर्शन एवं पूजन करने के उपरान्त विपाशा की ओर
 चले गये । (६)
 उस विपाशा में स्नानोपरान्त द्विजप्रिय देवाधिदेव
 का अर्चन कर (प्रह्लाद) उपवास करते हुए इरावती की
 ओर गए । हे द्विजश्रेष्ठ ! (उन्होंने) वहाँ उन परमेश्वर का
 दर्शन किया जिनकी शाश्वत में आराधना करने से पुरूरवा
 को श्रेष्ठ रूप एवं सुदुर्लभ ऐश्वर्य प्राप्त हुआ था । (७-८)
 कृष्टरोगाभिभूत भृगु ने उन परमेश्वर की आराधना
 कर अतुल आरोग्य एवं अक्षय सन्तान प्राप्त किया
 था । (९)
 नारद ने कहा—हे द्विजसत्तम ! पुरूरवा ने विष्णु
 की आराधना करने से उपरान्त जिस प्रकार विरूपता को
 द्योङ्कर ऐश्वर्य के साथ सुदुर्लभ रूप प्राप्त किया । (१०)
 पुलस्त्य ने कहा—हे तपोधन ! मुने, मैं प्राचीनकाल
 में त्रेतायुग के आदि में पटित पापनाशिनी कथा कहता
 हूँ । (११)
 हे ब्रह्मपुत्र ! प्रसिद्ध मद्रदेश में शाश्वत नाम से प्रख्यात

शाकलं नाम नगरं ख्यातं स्थानीयवृक्षमम् ॥ १२ ॥
 तस्मिन् विषणिवृत्तिस्थः सुधर्माख्योऽभवद् वणिक् ॥ १३ ॥
 घनाच्छो गुणवान् भोगी नानाशास्त्रविशारदः ॥ १४ ॥
 स त्वेकदा निजाद् राष्ट्रात् सुराष्ट्रं गन्तुमुद्यतः ।
 सार्धेन महता युक्तो नानाविषणपण्यवान् ॥ १४ ॥
 गच्छतः पथि तस्मात् मरुभूमौ कलिप्रिय ।
 अभवद् दस्युतो रात्रौ अवस्कन्दोऽतिदुःमहः ॥ १५ ॥
 ततः स हतमर्षस्यो वणिग् दुःखमन्वितः ।
 अमहायो मरौ तस्मिन्श्चारोन्मत्तवद् वशी ॥ १६ ॥
 चरता तदरण्यं वै दुःखाक्रान्तेन नारद ।
 आत्मा इव शमीवृक्षो मरावासादितः शुभः ॥ १७ ॥
 तं मृतौः पक्षिभिश्चैव हीनं दृष्ट्वा शमीतरुम् ।
 श्रान्तः क्षुत्तृपरीतात्मा तस्मात्तः समुपाविशत् ॥ १८ ॥
 सुप्रश्नापि सुविश्रान्तो मज्जाह्ने पुनरुत्थितः ।
 समपश्यदयायान्तं प्रेतं प्रेतशर्तवृत्तम् ॥ १९ ॥

उत्तम नगर है । (१२)
 वहाँ सुधर्मा नामका एक घनाच्छ गुणवान्, भोगी एवं
 नानाशास्त्र विशारद व्यापारी रहता था । (१३)
 वह एक समय अपने राष्ट्र से सुराष्ट्र जाने को प्रस्तुत
 हुआ । हे कलिप्रिय ! अनेक विधेय वस्तुओं से सम्पन्न
 व्यापारियों के सहान् समूह के साथ मार्गस्थ मरुभूमि में से
 जाने समय रात्रि में (उसके ऊपर) ढाबुओं का अति-
 दुःख आक्रमण हुआ । (१४-१५)
 तदनन्तर सर्वस्य अपहृत हो जाने से दुःखित वह
 संयमी वणिक् मरुभूमि में उन्मत्तवत् विचरण करने
 लगा । (१६)
 हे नारद ! दुःखाक्रान्त होकर उस वन में विचरण
 करते हुए उसे मरुभूमि में आत्मीय के तुल्य एक शुभ
 शमी वृक्ष मिला । (१७)
 उस शमीवृक्ष को पशु-पक्षियों से रहित देवदर धका
 तथा मूल व्यास से अभिभूत वह वणिक् उसके नीचे बैठ
 गया । (१८)
 शयन द्वारा पर्याप्त विधान कर वह मज्जाह्न में उठा
 एवं सेरुहों प्रेतों से आहत एक प्रेत को आते हुए
 देखा । (१९)

उद्वाहान्तमथान्येन प्रेतैः प्रेतनायकम् ।
 पिण्डाक्षिभिश्च पुरतो धावन्त्री रूक्षविग्रहैः ॥ २० ॥
 अथाजगाम प्रेतोऽसौ पर्यटिष्या वनानि च ।
 उपागम्य शमीमूले वणिक्पुत्रं ददर्श सः ॥ २१ ॥
 स्वागतेनाभिवार्धनं समाभाष्य परस्परम् ।
 सुखोपविष्टश्चायायां पृष्ट्वा कुशलमाप्तवान् ॥ २२ ॥
 ततः प्रेताधिपतिना पृष्टः स तु वणिक्स्वरः ।
 कृत आगम्यते ब्रूहि ह साधो वा गमिष्यसि ॥ २३ ॥
 कथं चेदं महारण्यं मृगपक्षिविवाजितम् ।
 समापन्नोऽसि भद्रं ते सर्वमाख्यातुमर्हसि ॥ २४ ॥
 एवं प्रेताधिपतिना वणिक् पृष्टः समासतः ।
 सर्वमाख्यातवान् ब्रह्मन् स्वदेशधनविच्युतिम् ॥ २५ ॥
 तस्य श्रुत्वा स वृत्तान्तं तस्य दुःखेन दुःखितः ।
 वणिक्पुत्रं ततः श्राह प्रेतपालः स्वबन्धुवत् ॥ २६ ॥
 एवं गतेऽपि मा शोकं कर्तुमर्हसि सुव्रत ।

उस प्रेतनायक को एक अन्य प्रेत छो रहा था । एवं
 रूक्ष शरीरवाले पिण्डाक्षी (प्रेत) उसके आगे दौड़ रहे थे । (२०)
 पत्नों के पर्यटन करने के उपरान्त वह प्रेत लौटा एवं
 शमी वृक्ष के नीचे पहुँच कर उसने वणिक् पुत्र को
 देखा । (२१)
 स्वागत के साथ उसे अभिवादन करने के उपरान्त परस्पर
 वार्तालाप करके वह छाया में सुलपूँक बैठ गया और
 कुशल पूछकर जाना । (२२)
 तदनन्तर प्रेताधिपति ने वणिक् वन्धु से पूछा—
 हे साधु ! यह वनलाओ कि तुम कहाँ से आये हो एवं
 वहाँ जाओगे ? (२३)
 तुम्हारा कल्याण हो । मुझे यह वनलाओ कि पशु एवं
 पक्षियों से शून्य इस महान् अरण्य में कैसे आये । (२४)
 हे ब्रह्मन् ! प्रेतराज के ऐसा पूछने पर वणिक् ने
 संक्षेप में उसे अपने देश तथा धन-नाश का पूरा विवरण
 बतलाया । (२५)
 इसका श्रुतान्त सुनने के उपरान्त उसके दुःख से
 दुःखित होकर प्रेतपति ने स्वबन्धु के सदरा उस वणिक्
 पुत्र से कहा— (२६)
 हे सुव्रत ! ऐसा होने पर भी तुम्हें शोक नहीं करना

भूयोऽप्यर्थाः भविष्यन्ति यदि भाग्यबलं चत ॥ २७
 भाग्यस्यैऽर्थाः क्षीयन्ते भवन्त्यम्बुदधे पुनः ।
 धीणस्यास्य शरीरस्य चिन्तया नोदयो भवेत् ॥ २८
 इत्युच्चार्य समाहूय स्वान् भृत्यान् वाक्यमब्रवीत् ।
 अथातिथिरयं पूज्य, सदैव स्वजनो मम ॥ २९
 अस्मिन् दृष्टे धणिकपुत्रे यथा स्वजनदर्शनम् ।
 अस्मिन् समागते प्रेता, प्रीतिर्नावा ममातुला ॥ ३०
 एवं हि वदतस्त्वय मृत्पात्रं सुदृढं नवम् ।
 दध्योदनेन संपूर्णमाजगाम यथेगितवम् ॥ ३१
 तथा नवा च सुदृढा संपूर्णा परमात्मसा ।
 वारिधानी च संप्राप्ता प्रेतानामग्रतः स्थिता ॥ ३२
 तमागतं मतलिलमद्यं वीक्ष्य महामतिः ।
 प्राहोत्पिष्ट वणिक्पुत्र इत्माहिकपुत्राचर ॥ ३३
 तवस्तु वारिधान्यास्तौ मलिलेन विधानतः ।
 कृत्वाहिकपुत्रो जातौ वणिक् प्रेतपतितया ॥ ३४

चाहिये। यदि तुम्हारा भाग्यबल होगा तो सम्पत्तियाँ
 सुन हो जायगी। (२७)

भाग्य का क्षय होने पर धनों का क्षय हो जाता है
 एवं पुन भाग्योदय होने से धनागम भी हो जाता है।
 इस क्षीण शरीर की चिन्ता करने से उदय (वृद्धि) नहीं
 होता। (२८)

ऐसा कहकर उसने अपने भृत्यों को सुलाया एवं
 वचन कहा—मैंने स्वजन के लक्ष्य सर्वथा इस अतिथि या
 मृत्युन करी। (२९)

हे प्रेतों! स्वजन दर्शन के तुल्य मुझे इस वणिक् पुत्र
 या दर्शन हुआ है। इसी समागम से मुझे अगुल प्रीति
 हुई है। (३०)

उसके इस प्रकार बहने पर बधेच्छ दधि और ओदन
 से पूरे अल्पत्र दूध एक नया मिट्टी का बर्तन बना गया।
 इसी प्रकार वचन जल से पूर्ण एवं जलपात्र प्रेतों के समुत्प
 त्पतियत हुआ। (३१-३२)

इस वचन एवं जल के उपस्थित देखकर महामति
 प्रेत ने कहा—हे वणिक्पुत्र! तुम उठो एवं आहिक
 इत्य करो। (३३)

तदनन्तर वणिक् एवं प्रेतपति दोनों ने घट के जल से
 विधिपूर्वक स्नान करने किया। (३४)

ततो वणिक्सुतापादौ दध्योदनमधेच्छया ।
 दत्त्वा तेभ्यश्च मर्त्येभ्यः प्रेतैर्म्यो व्यददात् ततः ॥ ३५
 मृक्तवस्त्रं च सर्वेषु कामतोऽम्भसि सेविते ।
 अनन्तरं म तुभ्यजे प्रेतपालो वराशनम् ॥ ३६
 मृकामतृप्रे प्रेते च वारिधान्योदनं तथा ।
 अन्तर्धानमगाद् ब्रह्मन् वणिक्पुत्रस्य प्रपद्यतः ॥ ३७
 ततस्त्वद्भुततयं दृष्ट्वा स मतिमान् वणिक् ।
 प्रपच्छ तं प्रेतपालं कौतूहलमना वशी ॥ ३८
 अरण्ये निर्जने साधो कृतोऽद्यस्य समृद्धयः ।
 इतश्च वारिधानीयं संपूर्णा परमात्मसा ॥ ३९
 तथामी तव ये भृत्यास्त्वत्तस्ते वर्णतः कृशाः ।
 भवानपि च तेजस्वी किञ्चित्पुष्टवपुः शुभः ॥ ४०
 मृक्तवस्त्रपरीधानो बहूनां परिपालकः ।
 सर्वमेतन्ममाश्व को भवान् का शमी विवयम् ॥ ४१
 इत्थं वणिक्सुतवचः श्रुत्वाऽसौ प्रेतनाथकः ।

तदुपरान्त (प्रेतपति ने) पहले वणिक् पुत्र को बधेच्छ
 दधि एवं ओदन दिया तथा तदनन्तर उन प्रेतों को
 दिया। (३५)

सभी के बधेच्छ भोजन एवं जलपात्र बनने के पश्चात्
 उस प्रेतपति ने उत्तम भोजन किया। (३६)

हे मृक्तम्। प्रेत के पूर्ण रूप से मृत्यु हो जाने पर
 वणिक्पुत्र के देखने ही देखने जलपात्र एवं ओदन
 तैरिरोहित हो गया। (३७)

तदनन्तर वचन अत्यन्त अद्भुत देख कर वे देवदार
 बुद्धिमान् स्वामी वणिक् ने की [हल पर्यन्त उस प्रेतपति से
 पूछा— (३८)

हे साधु! इस निर्जन अरण्य में अन्न एवं वचन
 लभ से पूर्ण घट क्यों से आया? (३९)

तुम्हारी अपेक्षा पूर्ण की दृष्टि से वचन तुम्हारे से
 अल्प ही है। किन्तु घट शरीर पुत्र तुम्हारे तेज
 सम्पन्न शस्त्रात्रपायी बहूनों का परिपालन करने वाले
 आप भी वीर हैं? आप मुझे यह संपूर्ण वृक्षात्
 भवाजामें कि आप वीर हैं एवं शमीवृक्ष वीर
 हैं? (४०-४१)

वणिक्पुत्र के इस प्रकार के वचन को सुनकर वचन

शशंस सर्वमस्याद्यं यथावृत्तं पुरातनम् ॥ ४२
 अहमासं पुरा विप्रः द्याकले नगरोत्तमे ।
 सोमशर्मति विल्यातो बहुलागर्भसंभवः ॥ ४३
 ममास्ति च वणिक् धीमान् प्रातिवेश्यो महाभनः ।
 स तु सोमश्रवा नाम विष्णुभक्तो महावशाः ॥ ४४
 सोऽहं कदयं मूढात्मा धनेऽपि सति दुर्मतिः ।
 न ददामि द्विजातिभ्यो न चाऽनाम्यन्नम्लतमम् ॥ ४५
 प्रमादाद् यदि भुञ्जामि दधिधीरघृतान्वितम् ।
 ततो रात्रौ नृभिर्घोरैस्ताड्यते मम विग्रहः ॥ ४६
 प्रातर्भवति मे घोरा मृत्युतुल्या विपूचिका ।
 न च कश्चिन्ममान्यासे तत्र विष्टति पान्धवः ॥ ४७
 कथं कथमपि प्राणा मया संप्रतिधारिताः ।
 एवमेतादृशः पापी निवसाम्यतिनिर्धृणः ॥ ४८
 सौवीरतिलपिण्याकसक्तुशाकदिभोजनैः ।
 धूपयामि कदवाघैरात्मानं कालघापनैः ॥ ४९

प्रेतनायक ने उससे सम्पूर्ण प्राचीन वृत्तान्त कहा । (४२)
 (वसने कहा—) प्राचीनकाल में मैं उत्तम शानल नामक
 नगर में बहुला के गर्भ से उत्पन्न सोमशर्मा नामक
 विद्यवान् ब्राह्मण था । (४३)
 मेरा पड़ोसी एक अतिधनवान्, लक्ष्मीवान् सोमश्रवा
 नामक वणिक् था । यह महान् यशस्वी एवं विष्णुभक्त
 था । (४४)
 वृषण एवं मूर्ख मैं धन होते दूये भी न तो द्विजातियों को
 दान करता था और न उत्तम अन्न का भोग ही करता
 था । (४५)
 यदि प्रमादवश मैं दधि, खीर एवं घृतयुक्त पदार्थ
 भोजन करता था तो रात्रि में भयङ्कर मनुष्य मेरे शरीर को
 पीटते थे । (४६)
 प्रातः काल मुझे मृत्युतुल्य घोर विपूचिका (हेजा) हो
 जाता करता थी । उस समय कोई भी धनु मेरे समीप नहीं
 टहरता था । (४७)
 किसी प्रकार मैं अपने प्राणों को धारण करता था ।
 इस प्रकार मैं अति निर्द्वज पापयुक्त जीवन व्यतीत कर
 रहा था । (४८)
 घेर, तिलपिण्याक, सक्तु एवं शाकादि तराव अन्नो को त्याकर
 कालघापन करते हुए मैं स्वयं को क्षीण कर रहा था । (४९)

एवं तत्रासतो मह्यं महान् कालोऽभ्यगादथ ।
 श्रवणद्वन्द्वी नाम मासि भाद्रपदेऽभवत् ॥ ५०
 ततो नागरिको लोको गतः स्नातुं हि संगमम् ।
 इरावत्या नङ्चलाया ब्रह्मक्षत्रपुरस्सरः ॥ ५१
 प्रातिवेश्यद्रसंगेन तत्राप्यनुगतोऽस्म्यहम् ।
 छृतोपवासः शुचिमानेकादश्यां यतव्रतः ॥ ५२
 ततः संगमतोयेन वारिधानीं दृष्टां नवाम् ।
 संपूर्णां वस्तुसंवीतां छत्रोपानहसंपुताम् ॥ ५३
 मृत्पात्रमपि मिष्टस्य पूर्णं दध्योदनस्य ह ।
 प्रदत्तं ब्राह्मणेन्द्राय शुचये ज्ञानधर्मिणे ॥ ५४
 तदेष जीवता दत्तं मया दानं वणिक्सुत ।
 वर्षोणां सप्रतीनां वै नान्यद् दत्तं हि किञ्चन ॥ ५५
 मृतः प्रेतत्वमापन्नो दत्या प्रेताग्रमेव हि ।
 अमी चादत्तदानास्तु मदन्येनोपजीयिनः ॥ ५६
 एतत्ते कारणं प्रोक्तं यत्तदन्नं मयाम्भसा ।

मुझे इस प्रकार वर्षों रहते हुए बहुत काल व्यतीत हो गया ।
 (एक बार) भाद्रपदमास में श्रवणद्वन्द्वी की तिथि आई । (५०)
 नदनन्तर ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि नागरिक लोग इरावती
 और नङ्चला नदियों के संगम में स्नान करने के लिये
 गये । (५१)
 पड़ोसी के कारण मैं भी उनके पीछे-पीछे गया ।
 एकादशी के दिन व्रत धारण कर पवित्रवापूशैक मैंने
 उपवास किया । (५२)
 तदनन्तर मैंने अनेक घरगुप्तों, छाता एवं जुता सहित
 सङ्गम के जल से पूर्ण नदीन एवं दृढ़ जलपात्र तथा मिष्टान्न,
 दधि एवं ओदन से पूर्ण मिट्टी का पात्र ज्ञान एवं धर्म से
 युक्त पवित्र श्रेष्ठ ब्राह्मण को प्रदान किया । (५३-५४)
 हे वणिक्-पुत्र ! मैंने अपने मत्सर वर्षों के जीवन में
 बड़ी दान दिया था । इसके अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं
 दान किया । (५५)
 प्रेतान्न दान करके मृत्यु के उपरान्त मैं भ्रम हुआ ।
 मेरे अन्न से जीवन धारण करने वाले इन लोगों ने कभी
 दान नहीं किया है । (५६)
 मैंने तुम्हें यह कारण बतलाया जिससे मेरे द्वारा
 दिया गया जल एवं अन्न प्रतिदिन मत्स्याह के समय

दत्तं तदिदमायाति मध्याह्नेऽपि दिने दिने ॥ ५७
 यावन्नाहं च भुञ्जामि न तावत् क्षयमेति वै ।
 मयि युक्ते च पीते च सर्वमन्तर्हितं भवेत् ॥ ५८
 यथावत्प्रमददं सोऽयं जातः शमीतरुः ।
 उपानद्यगले दत्ते प्रेतो मे वाहनोऽभवत् ॥ ५९
 इयं तयोक्ता धर्मज्ञ मया कीनाशतात्मनः ।
 श्रवणद्वादशीपुण्यं तशेषत् पुण्यवर्धनम् ॥ ६०
 इत्येवमुक्ते वचने वणिक्पुत्रोऽब्रवीद् वचः ।
 यन्मया ताव कर्त्तव्यं तदनुज्ञातुमर्हसि ॥ ६१
 तत् तस्य वचनं श्रुत्वा वणिक्पुत्रस्य नारद ।
 प्रेतपालो वचः प्राह स्वार्थसिद्धिकरं ततः ॥ ६२
 यत् त्वया ताव कर्त्तव्यं मद्धितार्थं महामते ।
 कथयिष्यामि तत् मम्यक् तव श्रेयस्करं मम ॥ ६३
 गयायां तीर्थजुष्टायां स्नात्वा शौचसमन्वितः ।
 मम नाम समुद्दिश्य पिण्डनिर्घषणं कुरु ॥ ६४
 तत्र पिण्डप्रदानेन प्रेतभावादहं सखे ।

(मेरे समीप) उपस्थित होता है । (५७)

जब तक मैं नहीं जाना तब तक उसका क्षय नहीं होता । मेरे जाने और पीने के उपरान्त सभी बृद्ध तिरोहित हो जाता है । (५८)

मैंने जो वृद्ध दान किया था वही इस शमी वृक्ष के रूप में उत्पन्न हुआ है । एक लोढ़ी जूता या दान करने से प्रेत मेरा वाहन बना है । (५९)

हे धर्मज्ञ ! अपने प्रेतार प्राप्त का यह समस्त विवरण मैंने तुमसे कहा तथा परम पवित्र और पुण्य को बढ़ाने वाली श्रवणद्वादशी का भी वर्णन किया है । (६०)

प्रेत के पैसा बढ़ाने पर वणिक्-पुत्र ने कहा—हे तारु ! मुझे जो करना हो उसकी आज्ञा दे । (६१)

हे नारद ! वणिक्-पुत्र था यह वचन सुनकर प्रेतपति ने अपने स्वार्थ को सिद्ध करने वाला वचन कहा । (६२)

हे महात्मनि ! मेरे दिल के त्रिने मुग्धारे द्वारा किये जाने योग्य कर्म मैं मुग्धें वाञ्छता हूँ । भयो भौति उसको सम्पादन करने से मुग्धारा और मेरा कल्याण होगा । (६३)

गया तीर्थ में स्नान से पवित्र होकर मेरे नाम से तुम पिण्डदान करो । (६४)

हे गया ! वहाँ पिण्डदान करने से मैं प्रेताभार से मुक्त

मुक्तस्तु सर्वदावृणां यास्यामि सहलोकताम् ॥ ६५
 यथेयं द्वादशी पुण्या मासि प्रौष्ठपदे सिता ।
 बुधश्रवणसंयुक्ता साऽतिश्रेयस्करी स्मृता ॥ ६६
 इत्येवमुक्त्वा वणिजं प्रेतराजोऽनुगैः सह ।
 स्वनामानि यथान्यायं तस्यगारुयातवान्बुचिः ॥ ६७
 प्रेतस्कन्धे समारोप्य त्याजितो महामण्डलम् ।
 रम्येऽथ शूरसेनात्प्ये देशे प्राप्तः स वै वणिक् ॥ ६८
 स्वरुर्मधर्मयोगेन धनमुद्यावचं बहु ।
 उपार्जयित्वा प्रययौ गयातीर्थमनुत्तमम् ॥ ६९
 पिण्डनिर्घषणं तत्र प्रेतानामनुपूर्वशः ।
 चकार स्वपितृणां च दायादानामनन्तरम् ॥ ७०
 आत्मनश्च महाबुद्धिर्महाशेषं तिलैर्विना ।
 पिण्डनिर्घषणं चक्रे तथा न्यानपि गोत्रजान् ॥ ७१
 एवं प्रदत्तेऽप्य वै पिण्डेषु प्रेतभावतः ।
 विमुस्तास्ते द्विज प्रेता ब्रह्मलीकं ततो गताः ॥ ७२
 स चापि हि वणिक्पुत्रो निजमालयमाव्रजत् ।

होकर सर्वस्व दान करने वालों के लोक को प्राप्त रहूँगा । (६५)

पौष मास के शुक्लपक्ष की बुध एवं श्रवण नक्षत्र से युक्त पुण्य यदिश्री द्वादशी अत्यन्त माहात्मिक वही गर्द है । (६६)

वणिक् से ऐसा कहकर प्रेतराज ने अपने अनुगामियों सहित पवित्रतापूर्वक यथोचित रीति से अपने नामों को पठाय । (६७)

प्रेत के बन्धे पर आरुढ़ बराबर उसे महामुनि से यादर विस्मयित किया गया । इस प्रकार वह वणिक् रमणीक शूरसेन नामक देश में पहुँचा । (६८)

अपने कर्म तथा धर्म के द्वारा उसने प्रभुरा माया में उत्कृष्ट एवं हीन धन उपार्जित किया । तदनन्तर वह उत्तम गयातीर्थ नामक तीर्थ में गया । (६९)

वहाँ शमश प्रेतों के उद्देश्य से पिण्डदान करने के उपरान्त उसने अपने विरतों एवं दायादों को पिण्ड दान किया । (७०)

उस महाबुद्धि ने अपने छिपे विरहहित महाशेषरुपक पिण्डदान किया । तदन्तर अन्य गोत्रजों के निमित्त भी पिण्डदान किया । (७१)

हे द्विज ! इस प्रकार पिण्डदान करने पर ये प्रेत प्रेतभाव से मुक्त होकर ब्रह्मलोक को गये गये । (७२)

यह वणिक् पुत्र भी अपने घर चला गया और शपथ

श्रवणद्वादशीं कृत्वा कालधर्ममृपेयिवान् ॥ ७३
 गन्धर्वलोके सुचिरं भोगान् भुक्त्वा सुदुर्लभान् ।
 मानुष्य जन्ममासाद्य स बभौ शाकले विराट् ॥ ७४
 स्वधर्मकर्मवृत्तस्थः श्रवणद्वादशीरतः ।
 कालधर्ममवाप्यासौ मुखकावासमाश्रयत् ॥ ७५
 तत्रोष्य सुचिरं कालं भोगान् भुक्त्वाऽथ कामतः ।
 मर्त्यलोकेऽनुप्राप्य राजन्वतनयोऽभवत् ॥ ७६
 तत्रापि क्षत्रवृत्तिस्थो दानभोगरतो ऽशी ।
 गोग्रहेऽरिगणाङ्गित्वा कालधर्ममृपेयिवान् ।
 शनलोकं स संप्राप्य देवैः सर्वैः सुपूजितः ॥ ७७
 पुण्यक्षयात् परिभ्रष्टः शाकले सोऽभवद् द्विजः ।
 ततो विकटरूपोऽसौ सर्वशास्त्रार्थपारगः ॥ ७८
 विवाहयद् द्विजसुतां रूपेणानुपमां द्विज ।

सावमेने च भर्चारं सुशीलमपि भामिनी ॥ ७९
 विरूपमिति मन्वाना तत्सोभूत् सुदुःखितः ।
 ततो निर्वेदसंयुक्तो गत्वाश्रमपदं महत् ॥ ८०
 इरावत्यास्तटे श्रीमान् रूपधारिणमासदत् ।
 तमाराध्य जगन्नाथं नक्षत्रगुरुषु हि ॥ ८१
 सुरूपतामवाप्याग्रथां तस्मिन्नेव च जन्मनि ।
 ततः प्रियोऽभूद् भार्याया भोगनांशुभवद् वशी ।
 श्रवणद्वादशीभक्तः पूर्वाम्यासादजायत ॥ ८२
 एवं पुराऽसौ द्विजपुंगवन्तु
 कुरूपरूपो भगवत्प्रसादात् ।
 अनङ्गरूपप्रतिभो बभूव
 मृतश्च राजा स पुरुरवाऽभूत् ॥ ८३

इति श्रीवामनपुराणे त्रिपञ्चाशोऽध्याय ॥ ५३ ॥

द्वादशी का पाठन करते हुए वह भी यथासमय
 मर गया । (७३)
 गन्धर्वलोक में चिरकाल तक अत्यन्त दुर्लभ भोगों का
 उपभोग करने के उपरान्त मनुष्य जन्म प्राप्त कर वह
 शाकलपुरी का सम्राट् बना । (७४)
 अपने धर्म तथा कर्म में रत रहते हुए वह श्रवणद्वादशी में
 अतुरक्त रहा । मृत्यु के उपरान्त उसने सुखों के
 लोके को प्राप्त किया । (७५)
 वहाँ बहुत समय रहकर इच्छानुसार अनेक भोग्य
 पदार्थों का भोग करने के परचात् मर्त्यलोक में आकर वह
 राजपुत्र बना । (७६)
 वहाँ भी क्षत्रियों की वृत्ति से निर्वाह करते हुए वह
 समयपूर्वक दान और भोग में लगा रहा । एक समय
 गीर्वाण का अपहरण होने पर उसने शत्रुओं को जीत कर
 मृत्यु प्राप्त की । तदनन्तर वह इन्द्र लोक में गया एवं सभी
 देवों से पूजित हुआ । (७७)
 पुण्य फल क्षय होने से स्वर्गच्युत होकर वह शाकल देश
 में प्राङ्गण हुआ । उसका रूप अत्यन्त भयङ्कर था, किन्तु
 वह सर्वशास्त्रपारग था । (७८)

हे द्विज ! उसने अनुपम सुन्दरी प्राङ्गण वन्या से
 विवाह किया । वह भामिनी अत्यन्त शीलवान् पति का भी
 कुरूप समझ कर अनादर करती थी । इससे वह अत्यन्त
 दुःखित हुआ । तदनन्तर निर्वेदयुक्त होकर वह इरावती
 के तटपर स्थित महान् आश्रम में पहुँचा एवं नक्षत्र-
 गुरुषु द्वारा तत्रस्थ रूपधारी जगन्नाथ की आराधना
 की । (७९-८१)

इस प्रकार उसी जन्म में परम सुन्दररूप प्राप्त कर वह
 अपनी भार्या का प्रिय एवं ऐश्वर्यसम्पन्न हो गया । पूर्व
 के अभ्यास से वह समयी श्रवणद्वादशी का भक्त बना
 रहा । (८२)

इस प्रकार पहले कुरूप रहने पर भी भगवान् की
 कृपा से वह द्विजप्रेष्ठ कामदेव के समान रूपवान् हो गया
 और मृत्यु के बाद राजा पुरुरवा हुआ । (८३)

श्रीवामनपुराण में त्रिपञ्चाशोऽध्याय समाप्त ॥५३॥

नारद उवाच ।

पुरूरवा द्विजश्रेष्ठ यथा देवं धियः पतिम् ।
नक्षत्रपुरुषाख्येन आराधयत तद् वद ॥ १

पुलस्त्य उवाच ।

श्रूयतां कथयिष्यामि नक्षत्रपुरुषव्रतम् ।
नक्षत्राङ्गानि देवस्य यानि यानीह नारद ॥ २
मूलार्धं चरणौ विष्णोर्ब्रह्मे द्वे रोहिणी स्मृते ।
द्वे जानुनी तथाश्विन्यो संस्थिते रूपधारिणः ॥ ३
आपाटे द्वे द्रवं चोर्धोर्गुह्यस्यं फाल्गुनीद्वयम् ।
कटिस्थाः कृत्तिकाश्चैव वासुदेवस्य संस्थिताः ॥ ४
मौष्ट्यपादाद्यं पार्श्वं कुक्षिम्यां रेवती स्थिता ।
उरःसंस्था त्वनुराधा श्रविष्ठा षष्ठसंस्थिता ॥ ५
विद्याया भुजयोर्हस्तः करद्वयमृदाहृतम् ।
पुनर्वसुरथाद्गुप्त्यो नखाः सार्धं तयोच्यते ॥ ६

ग्रीवास्थिता तथा ज्येष्ठा श्रवणं कर्णयोः स्थितम् ।
मुखसंस्थस्तथा पुष्यः स्वातिर्दन्ताः प्रकीर्तिताः ॥ ७
हनु द्वे वारुणश्चोक्तो नासा पैत्र उदाहृतः ।
मृगशीर्षं नयनयो रूपधारिणि तिष्ठति ॥ ८
चित्रा चैव ललाटे तु भरणी तु तथा शिरः ।
शिरोरुहस्था चैवार्द्रा नक्षत्राङ्गमिदं हरेः ॥ ९
विधानं संप्रवक्ष्यामि यथायोगेन नारद ।
संपूजितो हरिः कामान् विदधाति यथेप्सितान् ॥ १०
चैत्रमासे सिताष्टम्यां यदा मूलगतः शशी ।
तदा तु भगवत्पादौ पूजयेत् तु विधानतः ।
नक्षत्रसन्निधौ दद्याद् विप्रेन्द्राय च भोजनम् ॥ ११
जानुनी चाश्विनौयोगे पूजयेदथ भक्तितः ।
दोहदं च हनिष्यात्तं पूर्ववद् द्विजभोजनम् ॥ १२

५४

नारद ने कहा—हे द्विजश्रेष्ठ ! पुरूरवा ने जिस प्रकार लक्ष्मीपति वासुदेव की नक्षत्रपुरुष नामक व्रत के द्वारा आराधना की थी उसका वर्णन करें । (१)

पुलस्त्य ने कहा—हे नारद ! मैं नक्षत्रपुरुष व्रत एवं देव के सभी नक्षत्ररूपी अङ्गों का वर्णन करता हूँ । आप सुनें । (२)

मूलनक्षत्र भगवान् विष्णु के दोनों चरण, रोहिणी दोनों जहा पर अरिपत्नी दोनों जानुओं का रूपधालन कर स्थित है । (३)

पूर्वाषाढ एवं उत्तराषाढ नामक दो नक्षत्र जानुदेव के दोनों ऊरु में, पूर्वाफाल्गुनी एवं उत्तराफाल्गुनी नामक दोनों नक्षत्र गुण प्रदेश में एवं कृत्तिका नक्षत्र कटि में स्थित है । (४)

पूर्वमास्य तथा उत्तरमास्य भगवान् के दोनों पार्श्व में, रेवती दोनों कुक्षियों में, अनुराधा हृदय में तथा पनिष्ठा नक्षत्र षष्ठदेव में स्थित है । (५)

दोनों भुजाओं के स्थान में विद्याया है । हस्त नक्षत्र को भगवान् का दोनों हाथ कहा गया है । पुनर्वसु भगवान् की अँगुलियों और आरनेया वनके नर है । (६)

मीमा में ज्येष्ठा, दोनों कर्णों में श्रवण तथा मुख में पुष्य नक्षत्र स्थित हैं । स्वाति नक्षत्र दन्त को कहा गया है । (७) शतभिषा नक्षत्र दोनों हनु तथा मया ओ नाक कहा गया है । रूपधारी भगवान् के दोनों नेत्रों में मृगशीर्षा का निवास है । (८)

चित्रा ललाटे में, भरणी शिर में तथा आर्द्रा नक्षत्र केश में रहता है । भगवान् विष्णु का यह नक्षत्र-शरीर है । (९)

हे नारद ! अब मैं उस व्रत के विधान का कथन करूँगा । जिनके द्वारा विधिपूर्वक पूजित भगवान् विष्णु अभिलषित फलों को प्रदान करते हैं । (१०)

चैत्र मास के शुक्ल पक्ष की अष्टमी तिथि में चंद्रमा के मूल नक्षत्र में होने पर भगवान् के दोनों चरणों की विधिवत् पूजा करनी चाहिए और नक्षत्र के वर्तमान रहने पर भेद्युक्त भोजन को भोजन करना चाहिए । (११)

अरिपत्नी नक्षत्र के योग में मत्स्यपूर्वक भगवान् के दोनों पुटनों की पूजा करनी चाहिए एवं हनिष्यात्त का दोहद तथा पूर्ववत् मास्यों को भोजन करना चाहिए । (१२)

आषाढाम्यां तथा द्वाभ्यां द्वावृरू पूजयेद् बुधः ।
 सलिलं त्रिशिरं तत्र दोहदे च प्रकीर्तितम् ॥ १३
 फाल्गुनीद्वितये शुद्धं पूजनीयं विचक्षणैः ।
 दोहदे च पयो गन्ध देयं च द्विजभोजनम् ॥ १४
 कृत्तिकासु कटिः पूज्या सोपवासो जितेन्द्रियः ।
 देयश्च दोहदं विष्णोः सुगन्धकुसुमोदकम् ॥ १५
 पार्श्वे भाद्रपदाशुभे पूजयित्वा विधानतः ।
 गुडं सलेहकं दद्याद् दोहदे देवकीर्तितम् ॥ १६
 द्वे कृषी रेवतीयोगे दोहदे मुद्गमोदका ।
 अनुराधासु जठरं पण्डितान्नं च दोहदे ॥ १७
 श्रविष्ठायां तथा पृष्ठं शालिभक्तं च दोहदे ।
 भुजयुग्मं विशाखासु दोहदे परमोदनम् ॥ १८
 हस्ते हस्तौ तथा पूज्यौ यामकं दोहदे स्मृतम् ।

पुनर्वसावङ्गुलीश्च पटोलस्तत्र दोहदे ॥ १९
 आश्लेषासु नखान् पूज्य दोहदे तित्तिरामिषम् ।
 ज्येष्ठायां पूजयेद् मीवा दोहदे तिलमोदकम् ॥ २०
 श्रवणे श्रवणौ पूज्यौ दधिभक्त च दोहदे ।
 पुष्ये मुखं पूजयेत् दोहदे घृतपायसम् ॥ २१
 स्वातियोगे च दशना दोहदे तिलशङ्कुली ।
 दातन्या केशवप्रीत्यै ब्राह्मणस्य च भोजनम् ॥ २२
 हन् शतमिपायोत्रो पूजयेच्च प्रयत्नतः ।
 प्रियङ्गुरक्तशाल्यन्नं दोहदं मधुविद्विषः ॥ २३
 मघासु नासिका पूज्या मधु दद्याच्च दोहदे ।
 मृशोत्तमाङ्गे नयने मृगमांसं च दोहदे ॥ २४
 चित्रायोगे ललाटं च दोहदे चारुभोजनम् ।
 भरणीषु शिरः पूज्यं चारु भक्तं च दोहदे ॥ २५

पूर्वाषाढ तथा उत्तराषाढा के योग मे ऊरुद्वय की विद्वान् पूजा करें तथा दोहद मे शीतल जल का विधान है । (१३)

विचारवान् पुरुष दोनों फाल्गुनी नक्षत्रों में भगवान् के मुख प्रदेश की पूजा करके ब्राह्मणों को भोजन कराये एव पय एव घृत का दोहद दे । (१४)

शुक्ल नक्षत्र मे उपवास पूर्वक जितेन्द्रिय रङ्कर भगवान् के कटि देश की पूजा करे एव सुगन्धित कुसुम युक्त जल का दोहद दान करे । (१५)

दोनों भाद्रपदा-सुगल में कथित विधान से भगवान् के दोनों पार्श्व की पूजा करके दोहद में देव द्वारा प्रशंसित लेहयुक्त गुड देना चाहिए । (१६)

रेवती नक्षत्र के योग मे भगवान् की दोनों कृक्षियों की पूजा के अन्तर दोहद म मृग के लहह प्रदान करना चाहिए । अनुराधा नक्षत्र में जठर की पूजा करके दोहद मे साठी का चावल देना चाहिए । (१७)

पनिष्ठा नक्षत्र में पृष्ठ की पूजा करके दोहद मे शालि का भात देना चाहिए । विशाखा नक्षत्र में भगवान् की दोनों भुजाओं की पूजा कर दोहद में दक्षम अन्न देना चाहिये । (१८)

हस्त में भगवान् के दोनों हाथों की पूजा कर दोहद में जी से बना पक्वान्न देना चाहिए । पुनर्वसु नक्षत्र

मे अँगुलियों की पूजा कर दोहद में पटोल प्रदान करना चाहिए । (१९)

आश्लेषा नक्षत्र मे नख की पूजा कर दोहद मे तित्तिर का मास प्रदान करे । ज्येष्ठा मे मीवा की पूजा कर दोहद मे तिल का लहह प्रदान करे । (२०)

श्रवण नक्षत्र मे दोनों कर्णों की पूजा कर दोहद मे दही और भात प्रदान करे । पुष्यनक्षत्र मे मुख की पूजा करे और दोहद मे घृत-युक्त पायस प्रदान करे । (२१)

स्वाति नक्षत्र के योग मे भगवान् के दातों का पूजन कर तिल और शङ्कुली (पूड़ी) का दोहद दे एव केशव को प्रसन्न करने के लिये ब्राह्मण को भोजन कराये । (२२)

शतमिवा नक्षत्र में प्रयत्नपूर्वक भगवान् के कृष्ठी की पूजा करे एव विष्णु को अतिप्रिय प्रियङ्गु एव रत्तशालि अन्न वा दोहद दे । (२३)

मघा म नासिका की पूजा करनी चाहिए एव दोहद मे मधु देनी चाहिए । मृशोत्तम नक्षत्र में मस्तक में स्थित नेत्रद्वय की पूजा करके दोहद मे मृग वा मांस देना चाहिए । (२४)

चित्रा नक्षत्र के योग मे ललाट की पूजा करके दोहद मे सुन्दर भोजन देना चाहिए । भरणी नक्षत्र में शिर की पूजा करनी चाहिए और दोहद में सुन्दर भात प्रदान करे । (२५)

संपूजनीया विद्वद्भिरार्द्रायोगे शिरोरुहाः ।
 विप्रांश्च भोजयेद् भक्त्या दोहदे च गुडार्द्रकम् ॥ २६
 नक्षत्रयोगेष्वेतेषु सम्पूज्य जगतः पतिम् ।
 पारिते दक्षिणां दद्यात् स्त्रीपुंसोश्चाह्वाससी ॥ २७
 छत्रोपानतस्वेतपुगं सप्रधान्यानि काञ्चनम् ।
 घृतपात्रं च मत्तिमान् ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥ २८
 प्रतिनक्षत्रयोगेन पूजनीया द्विजातयः ।
 नक्षत्रमय एवैव पुरुषः शाश्वतो मतः ॥ २९
 नक्षत्रपुरुषार्थं हि व्रतानामुच्यते व्रतम् ।
 पूर्वं कृतं हि भृगुणा सर्वपातकनाशनम् ॥ ३०
 अङ्गोपाङ्गानि देवेषु पूजयित्वा जगद्गुरोः ।
 सुरुपाण्यभिजायन्ते प्रत्यङ्गाङ्गानि चैव हि ॥ ३१
 समजन्मकृतं पापं कुलसंगागतं च यत् ।
 पितृमातृसमूह्यं च तत्सर्वं हन्ति वैश्रवः ॥ ३२
 सर्वाणि भद्राण्याप्नोति शरीरारोग्यमृचमम् ।

इति श्रीधामनपुराणे चतुष्पञ्चाशोऽध्यायः ॥५४॥

आर्द्रा के योग में विद्वानों को (भगवान् के) केशों की पूजा करनी चाहिए एव भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों को भोजन कराना तथा दोहद में गुड़ एवं अदरक का दान करना चाहिए । (२६)
 इन नक्षत्रयोगों में जगत्पति (विष्णु) का पूजन करने के पञ्चाङ्ग पात्र पर स्त्री और पुरुष को दो सुन्दर वस्त्र प्रदान करें । (२७)
 सुदिमान् पुरुष ब्राह्मण को छत्र, एक जोड़ी श्वेत जूता, सप्तधान्य, स्वर्ण एवं घृतपात्र का दान करें । (२८)
 प्रत्येक नक्षत्र के योग में ब्राह्मणों की पूजा करनी चाहिए । यही नक्षत्रमय शाश्वत पुरुष हैं । (२९)
 नक्षत्र पुरुष नामक व्रत सभी व्रतों में श्रेष्ठ है । प्राचीन समय में शुरु ने इस सर्वे पापनाशक व्रत को किया था । (३०)
 हे देवर्षि ! भगवान् के अंगों और उपरानों की पूजा करने से (मनुष्य के) सभी अंग प्रत्यंग सुन्दर होते हैं । (३१)
 सात जन्मों में (मनुष्य के स्वयं) दृष्ट पाप को, कुल-संगवश प्राप्त पाप को एवं माता पिता के कारण प्राप्त पापों को केशव पूर्णतया नष्ट कर देते हैं । (३२)
 यह पूजन करने से रामस्त प्रहार के कल्याण प्राप्त

अनन्तां मनसः प्रीतिं रूपं चातीव शोभनम् ॥ ३३
 वाह्माधुर्यं तथा कान्तिं यच्चान्यदभिवाञ्छितम् ।
 ददाति नक्षत्रपुमान् पूजितस्तु जनार्दन । ॥ ३४
 उपोष्य सम्पद्यतेषु क्रमेणर्षेषु नारद ।
 अरुन्धती महाभागा ह्यातिमश्यां जगाम ह ॥ ३५
 आदित्यस्तनयार्थाय नक्षत्राङ्ग जनार्दनम् ।
 संपूजयित्वा गोविन्दं रेवन्तं पुत्रमाप्तवान् ॥ ३६
 रम्भा रूपमवापाश्र्यं वाह्माधुर्यं च मेनका ।
 कान्तिं विधुरवापाश्र्यां राज्यं राजा पुरुरवाः ॥ ३७
 एवं विधानतो ब्रह्मन्नक्षत्राङ्गो जनार्दनः ।
 पूजितो रूपधारी वैस्तेः प्राप्ता तु सुकामिता ॥ ३८
 एतत् तत्रोक्तं परमं पवित्रं
 धन्यं यशस्यं शुभरूपदायि ।
 नक्षत्रपुंसः परमं विधानं
 मणुष्य गुण्यामिह तीर्थयात्राम् ॥ ३९

होते हैं शरीर उत्तम आरोग्य से सम्पन्न होता है, मन में अनन्त प्रीति की प्राप्ति होती है और रूप भी अत्यन्त शोभन हो जाता है । (३३)
 पूजित होने पर नक्षत्रपुरुष जनार्दन मधुर वाणी, कान्ति एवं अन्य अभिवाञ्छित पदार्थ प्रदान करते हैं । (३४)
 हे नारद ! इन नक्षत्रों के योग में क्रमशः उपवास कर महाभागा अरुन्धती ने उत्तम ख्याति प्राप्त की थी । (३५)
 आदित्य ने पुत्र की कामना से नक्षत्र पुरुष जनार्दन की पूजा कर रेवन्त नामक पुत्र प्राप्त किया था । (३६)
 (नक्षत्रांग जनार्दन की पूजा करके) रम्भा ने श्रेष्ठ रूप, मेनका ने वाणी की मधुरता, चन्द्र ने उत्तम कान्ति तथा पुरुरवा ने राज्य प्राप्त किया था । (३७)
 हे ब्रह्मन् ! इस प्रकार जिसने नक्षत्राङ्ग रूपधारी जनार्दन की पूजा की उसने अपनी कामनाओं की सुन्दर पूर्ति प्राप्त की । (३८)
 मैंने तुम से भगवान् नक्षत्रपुरुष के परम पवित्र धर्म, यशस्वर और सुन्दररूप को देने वाले व्रत के विधान का वर्णन किया । अथ पवित्र तीर्थयात्रा का वर्णन सुनो । (३९)

पुलस्त्य उवाच ।

इरावतीमनुश्राप्य इण्यां तामृषिरुच्यकाम् ।
 स्नात्वा संपूजयामास चैवाष्टम्यां जनार्दनम् ॥ १
 नक्षत्रपुरुषं चीर्त्वा त्रतं पुण्यप्रदं शुचिः ।
 जगाम स कुरुक्षेत्रं प्रह्लादो दानवेश्वरः ॥ २
 ऐरावतेन मन्त्रेण चतुर्थं सुदर्शनम् ।
 उपामन्य ततः मल्लौ वेदोक्तविधिना ह्यने ॥ ३
 लपोष्य क्षणदां भक्त्या पूजयत्वा कुरुध्वजम् ।
 कृतशौचो जगामाथ द्रष्टुं पुरुषकर्मिणम् ॥ ४
 स्नात्वा तु देविकायां च नृसिंहं प्रतिपूज्य च ।
 तत्रोष्य रजनीमेकां गोकर्णं दानत्रो ययौ ॥ ५
 तस्मिन् स्नात्वा तथा प्राचीं पूज्येशं विश्वकर्मिणम् ।
 प्राचीने चापरे दैत्यो द्रष्टुं कामेश्वरं ययौ ॥ ६
 तत्र स्नात्वा च दृष्ट्वा च पूजयित्वा च शंकरम् ।

द्रष्टुं ययौ च प्रह्लादः पुण्डरीकं महाम्नासि ॥ ७
 तत्र स्नात्वा च दृष्ट्वा च संतर्प्य पितृदेवताः ।
 पुण्डरीकं च संपूज्य उवाच दिवसत्रयम् ॥ ८
 विशालययुषे तदनु दृष्ट्वा देव तथाजितम् ।
 स्नात्वा तथा कृष्णतीर्थे त्रिरात्रं न्यसच्छुचिः ॥ ९
 ततो हंसपदे हंसं दृष्ट्वा सपूज्य चेश्वरम् ।
 जगामासौ पयोष्ण्यायामखण्डं द्रष्टुमीश्वरम् ॥ १०
 स्नात्वा पयोष्ण्या, सलिले पूज्याखण्डं जगत्पतिम् ।
 द्रष्टुं जगाम मतिमान् वितस्तायां कुमारिलम् ॥ ११
 तत्र स्नात्वाऽर्च्यं देवेश बालसिलस्यैमरीचिपैः ।
 आराध्यमानं यद्यत्र कृत पापप्रणाशनम् ॥ १२
 यत्र सा सुरभिर्देवी स्वमुवां कपिलां शुभाम् ।
 देवप्रियार्थमसृजद्विताथं जगतस्तथा ॥ १३
 तत्र देवहृदे स्नात्वा शंभुं संपूज्य भक्तितः ।

५५

पुलस्त्य ने कहा—प्रह्लाद ने परम पवित्र ऋषिपत्न्या
 एस इरावती में जाकर स्नान किया और चैत्र मास की
 अष्टमी तिथि में जनार्दन की पूजा की । (१)
 यहाँ पवित्रतापूर्वक पुण्यदायक नक्षत्रपुरुष त्रत का
 अनुष्ठान कर दानवेश्वर प्रह्लाद कुरुक्षेत्र गये । (२)
 हे मुने! उन्होंने ऐरावत मन्त्र से सुदर्शनचक्रीर्थ
 का आराधन करके वेदविहित विधि से उत्तम स्नान
 किया । (३)

यहाँ एक रात्रि निजाम कर भक्ति से कुरुक्षेत्र का
 पूजन किया एवं पवित्र होकर नृसिंह का दर्शन करने
 गये । (४)

दानत्र ने यहाँ देविका में स्नान कर नृसिंह की पूजा
 की एवं एक रात्रि निजाम कर (प्रह्लाद) गोकर्ण तीर्थ
 गये । (५)

यहाँ प्राची अहासे में स्नान कर पहले उन्होंने
 विश्वकर्मा भगवान् की पूजा की । तदुपरान्त दूसरे प्राचीन
 में कामेश्वर का दर्शन करने के लिए गए । (६)

यहाँ स्नानोपरान्त शंकर का दर्शन और पूजन कर

प्रह्लाद श्रेष्ठजलमें स्थित पुण्डरीक का दर्शन करने गए । (७)
 यहाँ स्नानोपरान्त पितरों का तर्पण कर उन्होंने पुण्डरीक
 का दर्शन और पूजन किया तथा तीन दिन तक यहाँ
 निजाम किया । (८)

तदनन्तर विशालययुष में देव अजित का दर्शन कर उन्होंने
 कृष्णतीर्थ में स्नान किया तथा तीन रात्रि तक यहाँ पवित्रता
 पूर्वक निजाम किया । (९)

तदनन्तर हंसपद में भगवान् हंस का दर्शन एवं पूजन
 कर वेष्णोष्णी में अखण्डेश्वर का दर्शन करने गए । (१०-१)
 पयोष्णी के जल में स्नान कर उन्होंने जगत्पति अखण्ड
 की पूजा की तदनन्तर कुमारिल (प्रह्लाद) वितस्ता में
 कुमारिल के दर्शनार्थ गये । (११)

यहाँ स्नानोपरान्त (भुयं की) त्रिरात्रों का पात करने
 यात्रे बालसिलस्यौ द्वारा आराध्यमान पापनाशक देवेश का
 पूजन किया । (१२)

यहाँ देवी सुरभि ने श्रेष्ठ की प्रीति एवं जगत् के
 हितार्थ अपनी पुत्री फजयायी कपिला का त्याग
 किया था । (१३)

यहाँ देवहृद में स्नान कर उन्होंने भक्तिपूर्वक शंभु

विधिबद्धि च प्राश्य मणिमन्तं ततो ययौ ॥ १४
 तत्र तीर्थवरे स्नात्वा प्राजापत्ये महामतिः ।
 ददर्श शंभुं ब्रह्माणं देवेशं च प्रजापतिम् ॥ १५
 विधानतस्तु तान् देवान् पूजयित्वा तपोधन ।
 पट्टरात्रं तत्र च स्थित्वा जगाम मधुनन्दिनीम् ॥ १६
 मधुमत्सलिले स्नात्वा देवं चक्रधरं हरम् ।
 शूलबाहुं च गोविन्दं ददर्श दनुपुंगवः ॥ १७
 नारद उवाच ।
 किमयं भगवान् शम्भुर्दधाराथ सुदर्शनम् ।
 शूलं तथा वासुदेवो ममैतद् ब्रूहि पृच्छतः ॥ १८
 पुलस्त्य उवाच ।
 श्रूयतां कथयिष्यामि कथामेतां पुरातनीम् ।
 कथयामास यां विष्णुर्मविष्यमनवे पुरा ॥ १९
 जलोद्भवो नाम महासुन्द्रो
 घोरं स तपसा तप उग्रवीर्यः ।
 आराधयामास विरश्चिमारत्

का पूजन किया एव विधिपूर्वक दधि खाने के बाद मणिमान् तीर्थ में गए । (१४)

प्रजापति के उस श्रेष्ठतीर्थ में स्नान कर महामति (प्रह्लाद) ने शङ्कर, ब्रह्मा एव देवेश प्रजापति का दर्शन किया । (१५)

हे तपोधन! विधानपूर्वक उन देवों का पूजन करने के पश्चात् छ शत्रियों तक वहाँ निवास कर (प्रह्लाद) मधुनन्दिनी में गए । (१६)

मधुमत् के जल में स्नान कर दनुपुङ्गव (प्रह्लाद) ने चक्रधर शिव एव शूलधारी गोविन्द का दर्शन किया । (१७)

नारद ने कहा—सुझ प्ररनकर्ता को आप यह बतलायें कि भगवान् शम्भु ने सुदर्शन और वासुदेव ने शूल क्यों धारण किया था ? (१८)

पुलस्त्य ने कहा—सुनो, मैं इस प्राचीन कथा को कहता हूँ। पूर्वकाल में इसे भगवान् विष्णु ने भावी मनु से कहा था । (१९)

जलोद्भव नामक एक महान् असुरपति था। उस

स तस्य तुष्टो वरदो बभूव ॥ २०
 देवासुराणामजयो महाहवे
 निजैश्च शस्त्रैरमरैरवध्यः ।
 ब्रह्मर्षिशापैश्च निरीप्सितार्थो
 जले च बह्वौ स्वगुणोपहर्ता ॥ २१
 एयंप्रभावो दनुपुंगवोऽसौ
 देवान् महर्षीन् नृपतीन् समग्रान् ।
 आराधमानो विचचार भूम्यां
 सर्वाः क्रिया नाश्रयदुग्मृतिः ॥ २२
 ततोऽमरा भूमिभवाः सभूपाः
 जम्बुः शरण्यं हरिमीशितारम् ।
 तैश्चापि साह्यं भगवाज्जगाम
 हिमालयं यत्र हरस्त्रिनेत्रः ॥ २३
 संमन्य देवर्षिहितं च कार्यं
 मतिं च कृत्वा निधनाय शत्रोः ।
 निजायुधानां च विपर्ययं तौ

शक्तिशाली असुर ने घोर तपस्या कर ब्रह्मा की परिश्रम से आपधना की। ब्रह्मा ने सुष्ट होकर उसे वर दिया कि युद्ध में उसे देवता एव असुर नहीं जीत सकेंगे। देवों के अपने शस्त्रों से भी उसका वध नहीं होगा। ब्रह्मर्षि के शपथों का भी उसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं होगा तथा जल एव अग्नि का भी प्रभाव नहीं होगा । (२०-२१)

इस प्रकार का प्रभावशाली वह दनुपुङ्गव सभी देवताओं, महर्षियों और राजाओं को कष्ट पहुँचाता हुआ पृथ्वी पर विचरण करने लगा। उस क्रूर ने समस्त क्रियाओं का विनाश कर दिया । (२२)

तदनन्तर भूमि पर प्रादुर्भूत देवगण राजाओं के सहित शरण्य तथा नियामक विष्णु की शरण में गए। भगवान् भी उन सभी के साथ हिमालय चर गए जहाँ त्रिनेत्र हर अवस्थित थे । (२३)

देवता एव श्रापियों के हितकारी कार्य की मन्त्रणा करने के उपरान्त शत्रु को मारने का निश्चय कर उन दोनों देवाधिपों ने अपने आयुधों का परिवर्तन उग्रकर्त

देवाधिपौ चक्रतुह्यकर्मिणौ ॥ २४
 तत्प्रथासौ दानयो विष्णुशर्षो
 समायातौ तजिषासु सुरेशौ ।
 मत्वाऽजेयौ शत्रुभिर्घोररूपौ
 भयात्तोये निम्नगायां विवेश ॥ २५
 शात्वा प्रनष्टं त्रिदिवेन्द्रशत्रुं
 नदीं विशालां मधुमत्सुपुण्याम् ।
 द्वयोः सशस्त्रौ तटयोर्हरिशौ
 प्रच्छन्नमूर्तीं सहता बभूवतुः ॥ २६
 जलोद्भवश्चापि जलं विमुच्य
 ज्ञात्वा गतौ शंकरवासुदेवौ ।
 दिशस्सामीप्य भयकातराक्षौ
 दुर्गं हिमार्द्रिं च तदारुरोह ॥ २७
 महीप्रभृद्भोपरि विष्णुशम्भू
 चञ्चूर्ध्वमाणं स्वरिपुं च दृष्ट्वा ।
 वेगाद्भ्रौ दुदुवतुः सशस्त्रौ
 विष्णुस्त्रिशूली गिरिशश्च चक्री ॥ २८
 ताभ्यां स दृष्टस्त्रिदशोत्तमाभ्यां

इति श्रीवामनपुराणे पञ्चपञ्चाशोऽध्यायः ॥५१॥

चनेण शूलेन च भिन्नदेहः ।
 पपात शैलात् तपनीयवर्णो
 यथान्तरिक्षाद् विमला च तारा ॥ २९
 एव त्रिशूलं च दधार विष्णु-
 ध्रकं त्रिनेत्रोऽप्यहिसूदनार्थम् ।
 यथाधहन्ती ह्यभवद् वितस्ता
 हराद्द्विपातात्त्रिशिराचलात् ॥ ३०
 तत्प्राप्य तीर्थं त्रिदशधिपाभ्यां
 पूजां च कृत्वा हरिसंकराभ्याम् ।
 उपोष्य भक्त्या हिमवन्तमागाद्
 द्रष्टुं गिरीशं शिवविष्णुगुप्तम् ॥ ३१
 तं समभ्यर्च्य विधिवद् दत्त्वा दानं द्विजातिषु ।
 विस्तृते हिमवत्पादे भृगुतुङ्गं जगाम सः ॥ ३२
 यत्रेश्वरो देववरस्य विष्णोः
 प्रादाद्रथाङ्गप्रवरारयुधं वै ।
 येन प्रविच्छेद त्रिवैव शंकरं
 जिज्ञासमानोऽस्त्रवलयं महात्मा ॥ ३३

किया । (२४)
 तदनन्तर मारने की इच्छा से आ रहे देवाधिप शङ्कर
 एवं विष्णु को देखकर तथा उन भयङ्कर मूर्त्तिधारियों को
 शत्रुओं से अजेय जानकर वह दानम भय से नदी के जल
 में प्रविष्ट हो गया । (२५)
 देवशत्रु को पुण्यशालिनी मधुमती विशाला नदी में
 ड़िपा हुआ जानकर शत्रु सहित शङ्कर और विष्णु सहसा
 नदी के दोनों तटों पर छिप गये । (२६)
 शङ्कर एवं वासुदेव को गया हुआ जानकर जलोद्भव
 जल से बाहर निकल आया भय से चञ्चल नेत्रों से दिशाओं
 में देखकर दुर्गम हिमालय पर्वत पर चढ़ गया । (२७)
 पर्वत के शृङ्ग पर अपने शत्रु को विचरण करते हुए
 देखकर त्रिशूलधारी विष्णु एवं चक्रधारी शिव शस्त्र लिये
 हुए वेगपूर्वक दौड़े । (२८)
 उन सुरोत्तमों ने उसे देखकर चक्र और शूल से
 उसके शरीर का भेदन किया । वह सुवर्ण के समान

वाग्नि वाला अन्तरिक्ष से गिरने वाले विमल तारे के सहस्र
 पर्वत से गिरा । (२९)
 इस प्रकार शत्रु के विनाश के लिए विष्णु ने त्रिशूल
 तथा शङ्कर ने चक्र धारण किया था । जहाँ शङ्कर का चरण
 गिरा था उस हिमालय पर्वत से पापविनाशिनी वितस्ता
 उपनद्ग हुई । (३०)
 उस तीर्थ में पहुँचकर प्रह्लाद ने उन विष्णु एवं
 शङ्कर इन दोनों देवों की पूजा की एवं भक्तिपूर्वक
 वहाँ निवास कर वे शिव एवं विष्णु से रक्षित गिरिराज
 हिमालय का दर्शन करने गए । (३१)
 प्रह्लाद वहाँ विधि के अनुसार उसरी पूजा करने
 के उपरान्त ब्राह्मणों को दान देकर हिमालय के विस्तृत
 चरण में (विद्यमान) भृगुतुङ्ग तीर्थ में गये । (३२)
 वहाँ भगवान् शम्भु ने देव श्रेष्ठ विष्णु को
 श्रेष्ठ शस्त्र दिया था । उस अस्त्र चक्र के बल को जानने
 की इच्छा से उन महारत्ना ने उससे शङ्कर को तीन टुकड़ों
 में काट दिया था । (३३)

श्रीवामनपुराण म पंचपनचो अध्याय समाप्त ॥ ५१ ॥

नारद उवाच ।

भगवँल्लोकनाथाय विष्णवे विषमेष्वणः ।

किमर्थमायुधं चक्रं दत्तवँल्लोकपूजितम् ॥ १

दुलस्त्य उवाच ।

शृणुष्यावहितो भूत्वा कथामेतां पुरातनीम् ।

चक्रप्रदानसंबद्धां शिवमाहात्म्यवर्धिनीम् ॥ २

आसीद् द्विजातिप्रवरो वेदवेदाङ्गपारगः ।

शृहाश्रमी महाभागो वीतमन्युरिति स्मृतः ॥ ३

तस्यात्रेयी महाभागा भार्यासीच्छीलसंमता ।

पतिव्रता पतिप्राणा धर्मशीलेति विश्रुता ॥ ४

तस्यामस्य महर्षेस्तु ऋतुकालभिगाभिनः ।

संबभूव सुतः श्रीमान् उपमन्युरिति स्मृतः ॥ ५

तं माता मुनिशार्दूल शालिपिष्टरसेन वै ।

पोषयामास बदती क्षीरमेतत् सुदुर्गता ॥ ६

सोऽजानानोऽथ क्षीरस्य स्वादुतां पय इत्यथ ।

संभावनामप्यकरोच्छालिपिष्टरसेऽपि हि ॥ ७

स त्वेकदा समं पित्रा कुत्रचिद् द्विजमेश्मनि ।

क्षीरोदनं च सुभुजे सुस्वादु प्राणपृष्टिदम् ॥ ८

स लब्धवानुपमं स्वादं क्षीरस्य क्वापिदारकः ।

मात्रा दत्तं द्वितीयेऽह्नि नादचे पिष्टवारि तत् ॥ ९

रुरोदाथ ततो वाल्यात् पयोऽर्थां चातको यथा ।

तं माता रुदती प्राह वाष्पगद्गदया गिरा ॥ १०

उमापतौ पशुपतौ शूलधारिणि शंकरे ।

अप्रसन्ने विरूपाक्षे हुतः क्षीरेण भोजनम् ॥ ११

यदीच्छसि पयो भोक्तुं तद्यः पुष्टिकरं हुत ।

तदारोधय देवेशं विरूपाक्षं त्रिशूलिनम् ॥ १२

तस्मिन्स्तुष्टे जगद्गाम्भिन् सर्वकल्याणदायिनि ।

५६

नारद ने कहा—भगवन्! त्रिनेत्र शंकर ने लोकपति विष्णु को लोकपूजित आयुध चक्र क्यों दिया था ? (१)

दुलस्त्य ने कहा—आप सावधान होकर चक्रप्रदान से सम्बद्ध और शिव की महिमा को बढ़ाने वाली इस प्राचीन कथा को सुनिये । (२)

वीतमन्यु नामक एक वेद-वेदांग-पारग, गृहस्थ और महाभाग्यशाली श्रेष्ठ ब्राह्मण थे । (३)

महाभाग्यवती, शीलसम्पन्ना, पतिव्रता एवं पतिप्राणा आज्ञेयी धर्मशीला नामक उनकी पत्नी थी । (४)

ऋतुकाल में उसके साथ समागम करने वाले उन महर्षि को उससे उपमन्यु नामक एक सुन्दर पुत्र उत्पन्न हुआ । (५)

हे मुनिशार्दूल! अत्यन्त दुर्गतिमस्त माता जिसे दूध चावल के रस को दूध कहकर उससे उस (पुत्र) का पालन करती थी । (६)

दुग्ध के स्वाद से अनभिज्ञ होने के कारण वह पिसे चावल के रस में ही दूध की संभावना करता था । (७)

एक दिन पिता के साथ उसने किसी द्विज के गृह में प्राण्य को पुष्ट करने वाला सुस्वादु क्षीर का भोजन किया । (८)

उस ऋषिपुत्र ने दूध के अनुपम स्वाद को पाकर दूसरे दिन माता के द्वारा दिए गये पिसे चावल के उस रस को नहीं लिया । (९)

तदनन्तर चाल स्वभाववश दुग्धार्थी बालक तृपित चातक की भाँति रोने लगा । रोती हुई माता ने उससे औंसू से गद्गद बाणी में कहा । (१०)

उमापति पशुपति शूलधारी विरूपाक्ष शंकर के अप्रसन्न रहते क्षीर का भोजन वहाँ से हो सक्ता है ? (११)

हे पुत्र! यदि तुम तत्क्षण पुष्टिकारक दूध पीना चाहते हो तो त्रिशूलधारी विरूपाक्ष महादेव की आराधना करो । (१२)

उन जगत् के आधार सर्वकल्याणदायक शंकर के संतुष्ट

प्राप्यतेऽमृतपायित्वं किं पुनः शीरभोजनम् ॥ १३
 तन्मातुर्वचनं श्रुत्वा वीतमन्युसुतोऽप्रवीत् ।
 कोऽयं विरूपाक्ष इति त्वयाराध्यस्तु कीर्तितः ॥ १४
 ततः सुत धर्मशीला धर्माढ्यं वाक्यमब्रवीत् ।
 योऽयं विरूपाक्ष इति श्रूयता कथयामि ते ॥ १५
 आसीन्महासुरपतिः श्रीदाम इति विभुतः ।
 तेनाक्रम्य जगत्सर्वं श्रीनीला स्वयंश पुरा ॥ १६
 निःश्रीकास्तु त्रयो लोकाः कृतास्तेन दुरात्मना ।
 श्रीतमं वासुदेवस्य हतुर्मच्छन्महानलः ॥ १७
 तमस्य दुष्ट भगवानभिप्राय जनार्दनः ।
 ज्ञात्वा तस्य वधाकाङ्क्षी महेश्वरगुणामगत् ॥ १८
 एतस्मिन्नन्तरे शम्भुयोगमूर्तिधरोऽन्यथः ।
 तस्यो हिमाचलप्रस्थमाश्रित्य श्लक्ष्णभूतलम् ॥ १९
 अवाभ्येत्य जगन्नाथ सहस्रशिरसं विभुम् ।
 आराधयामास हरिः स्वयमात्मानमात्मना ॥ २०

होने पर अमृतपान प्राप्त हो सकता है, दूध पीने की क्या बात है ? (१२)

माता के उस वचन को सुनकर वीतमन्यु के पुत्र ने कहा—आप जिनकी आराधना करने को कहती हैं वे विरूपाक्ष कौन हैं ? (१४)

तदनन्तर धर्मशीला ने पुत्र से पमयुक्त वचन कहा—सुनो, मैं तुम्हें बतलाती हूँ कि वे विरूपाक्ष कौन हैं ? (१५)

प्राचीनकाल में श्रीदाम नाम से प्रसिद्ध एक महान् असुरपति था । उसने समस्त जगत को आक्रान्त कर लक्ष्मी को अपनी दशवर्णिनी बना लिया । (१६)

उस दुरात्मा ने तीनों लोकों को धीहीन कर दिया । तदनन्तर उस महानलशाली असुर ने वासुदेव के शीवस्त को धीनने की इच्छा की । (१७)

उसके उस दुष्ट अभिप्राय को जानकर भगवान् जनार्दन उसके वध की वाग्ना से महेश्वर के समीप गए । (१८)

उस समय योगमूर्तिधारी अविनाशी शम्भु हिमालय के शिखर के चिन्ने भूतल पर बैठे थे । (१९)

तदनन्तर सहस्रशीर्ष त्रिसु जगन्नाथ के समीप जाकर

साग्रं वर्षसहस्रं तु पादाङ्गुष्ठेन तस्थिवात् ।
 गृणंस्तत्परमं ब्रह्म योगिज्ञेयमलक्षणम् ॥ २१
 ततः प्रीतः प्रभुः प्रादात् विष्णवे परमं वरम् ।
 प्रत्यक्षं तेजस श्रीमान् दिव्यं चक्रं सुदर्शनम् ॥ २२
 तद् दत्त्वा दशदेवाय मर्वमृतमथप्रदम् ।
 कालचक्रनिभं चक्रं शकरो विष्णुमब्रवीत् ॥ २३
 बरायुधोऽयं देवेश सर्वायुधनिर्हणः ।
 सुदर्शनो द्वादशारः पण्णाभिर्द्विगुणो जयी ॥ २४
 आरासस्थास्त्रामी चास्य देवा मासाश्च राक्षस्यः ।
 शिष्टानां रथणावांश्च सस्थिता श्वतश्च पट् ॥ २५
 अग्निः सोमस्तथा मित्रो वरुणोऽथ शचीपतिः ।
 इन्द्राग्नी चाप्यथो विश्वे प्रजापतय एव च ॥ २६
 हनुमाथाय नलगान् देवो धन्वन्तरिस्तथा ।
 तपश्चैव तपस्यथ द्वादशैते प्रतिष्ठिताः ॥
 चैत्राद्याः फाल्गुनान्ताथ मासास्तत्र प्रतिष्ठिताः ॥ २७

विष्णु ने अपने द्वारा स्वयं अपनी ही आराधना की । (२०)
 उस योगिज्ञेय अलक्षण परम ब्रह्म का जप करते हुए वे परम सहस्र वर्ष पर्यन्त से अधिक समय तक पैर के अँगुठे पर लगे रहे । (२१)

तदनन्तर श्रीमान् महादेव ने प्रसन्न होकर विष्णु को परमेश्वर प्रत्यक्ष तेजयुक्त दिव्य सुदर्शनचक्र प्रदान किया । (२२)

देवाधिदेव विष्णु को सभी प्राणियों को भय देने वाला कालचक्रतुल्य यह चक्र देकर शङ्कर ने उनसे कहा— (२३)

हे देवेश ! सुदर्शन नामक द्वादश अंगों, छ नाभियों एवं दशे दुर्गों से युक्त वेगवान् यह श्रेष्ठ आयुध समस्त आयुधों का नाशक है । (२४)

सज्जनों के रक्षणार्थ इसका अंगों में देवता, मास, राशियों, छ ऋतुएँ, अग्नि, साम, मित्र, वरुण, शचीपति इन्द्र, आग्नि, विदेवदेव, प्रजापति बलवान् हनुमान्, धन्वन्तरि देव, तप एव तपस्य य द्वादश तथा चैत्र से लेकर फाल्गुन तक के द्वादश मास प्रतिष्ठित हैं । (२५-२७)

त्वमेवमाधाय विभो वरायुधं
 शत्रुं सुराणां जहि मा विशङ्किथाः ।
 अमोघ एषोऽमरराजपूजितो
 धृतो मया नेत्रगतस्तपोमलात् ॥ २८
 इत्युक्तः शत्रुना विष्णुः भवं वचनमब्रवीत् ।
 कथं शमो विज्ञानीयाममोघो मोघ एव वा ॥ २९
 यद्यमोघो विभो चक्रुः सर्वत्राप्रतिघस्तम् ।
 विज्ञासार्थं तदैवेह प्रक्षेप्यामि प्रवीच्छ भोः ॥ ३०
 तद्वाक्यं वासुदेवस्य निश्चयाह पिनाकधृक् ।
 यद्येवं प्रक्षिपत्येति निर्निश्चङ्गेन चेतसा ॥ ३१
 तन्महेशानवचनं श्रुत्वा विष्णुः सुदर्शनम् ।
 सुमोच तेजोजिह्वास्तुः शंकरं प्रति वेगवान् ॥ ३२
 ग्यारिकरमिन्नष्ट चरमभ्येत्य शूलिनम् ।
 त्रिधा चकार विधेः शंको यज्ञयाजकम् ॥ ३३
 हरं हरिस्त्रिधाभूतं दृष्ट्वा कृचं महासुजः ।

हे विभो ! तुम इस श्रेष्ठ आयुध को लेकर निःशङ्क-
 भाव से देवों के शत्रु का वध करो । मैंने सुरराज से
 पूजित इस अमोघ आयुध को तप के बल से अपने नेत्र में
 धारण किया था । (२८)

शत्रु को ऐसा कहने पर विष्णु ने शङ्कर से यह वचन
 कहा—हे शत्रु ! मुझे यह कैसे ज्ञात होगा कि यह अमोघ
 या मोघ अथ है ? (२९)

हे विभो ! यदि आपका यह चक्र अमोघ तथा सर्वत्र
 अप्रतिघ्नगति है तो इससे जानने के लिये मैं आपके ही
 ऊपर इसे चलाता हूँ । आप इसे ग्रहण करें । (३०)

वासुदेव के उस वचन को सुनकर पिनाकधारी ने
 कहा—यदि ऐसा है तो निःशङ्क भाव से मेरे ऊपर
 चलाओ । (३१)

महेश के उस वचन को सुनकर विष्णु ने सुदर्शन के तेज
 को जानने की इच्छा से उसे वेगपूर्वक शङ्कर के ऊपर
 चलाया । (३२)

विष्णु के हाथ से छोड़ा गया वह चक्र शर के समीप
 गया और उन विधेय, यज्ञेय तथा यज्ञयाजक को तीन
 भागों में बाँट कर विभक्त कर दिया । (३३)

शङ्कर को तीन तण्डों में कटा हुआ देखकर महानाहु

ग्रीडोपप्लुतदेहस्तु प्रणिपातपरोऽभवत् ॥ ३४
 पादप्रणामावचनं वीक्ष्य दामोदरं भवः ।
 प्राह श्रीतिपरः श्रीमानुत्तिष्ठेति पुनः पुनः ॥ ३५
 प्राकृतोऽयं महागहो निकारश्चक्रनेमिना ।
 निकृतो न स्वभावो मे सोऽच्छेयोऽदाह एव च ॥ ३६
 तद्यदेतानि चक्रेण त्रीणि भागानि केशव ।
 कृतानि तानि पुण्यानि भक्षिष्यन्ति न संशयः ॥ ३७
 हिरण्वाक्षः स्मृतो लोकः सुवर्णाक्षस्तथा परः ।
 तृतीयश्च विरुपाक्षस्त्रयोऽमी पुण्यदा नृणाम् ॥ ३८
 उत्तिष्ठ गच्छस्व विभो निहन्तुममरार्दनम् ।
 श्रीदाम्नि निहते विष्णो नन्दविष्यन्ति देवताः ॥ ३९
 इत्येयमुक्तो भगवान् हरेण गरुडचरजः ।
 गत्वा सुरगिरिप्रस्थं श्रीदामानं ददर्श ॥ ४०
 सं दृष्ट्वा देवदर्पणं दैत्यं देववरो हरिः ।
 सुमोच चक्रं वेगाढ्यं हतोऽसीति भ्रुवन्मूहुः ॥ ४१

हरि लज्जित हो गये । वे (शङ्कर को) प्रणाम करने
 लगे । (३४)

चरखों ने प्रणत दामोदर को देखकर श्रीमान् भवशङ्कर
 ने प्रीतिपूर्वक चार चार उठो उठो कहते हुये कहा— (३५)

हे महाबाहु ! चक्र की नेमि द्वारा मेरा यह प्राकृत विकार
 ही कटा गया है । इसके द्वारा मेरा स्वभाव नहीं खण्डित
 हुआ है । वह तो अच्छेय एव अदाह है । (३६)

हे केशव ! चक्र द्वारा किये गये वे तीनों भाग
 निस्सन्देह पुण्यदायक होंगे । (३७)

एक भाग हिरण्वाक्ष नामधारी, द्वितीय सुवर्णाक्ष
 नामधारी एव तृतीय विरुपाक्ष नामक होगा । तीनों भाग
 मनुष्यों के लिये पुण्यदायक होंगे । (३८)

हे विभो ! उठो और देव शत्रु को मारने के लिये
 जाओ । हे विष्णु ! श्रीदामा के मारे जाने पर देवता
 प्रसन्न होंगे । (३९)

शङ्कर के ऐसा कहने पर भगवान् गरुडचरज ने गिरि-
 शिखर पर जाकर श्रीदामा को देखा । (४०)

देवदर्पणाशक उस दैत्य को देखकर देव श्रेष्ठ विष्णु ने
 चार चार 'तुम मारो गये' यह बहते हुये वेगयुक्त चक्र
 चलाया । (४१)

ततस्तु तेनाप्रतिपौरुषेण
चक्रेण दैत्यस्य शिरो निरुक्तम् ।
संछिन्नशीर्षो निपपात शैलाद्
वज्राहतं शैलशिरो यथैव ॥ ४२
तस्मिन् हते देवरिपौ सुरारि-
रीशं समाराध्य विरूपनेत्रम् ।
लब्ध्वा च चक्रं प्रवरं महायुधं
जगाम देवो निलयं पमोनिधिम् ॥ ४३

सोऽयं पुत्र विरूपाक्षो देवदेवो महेश्वरः ।
तमाराधय चेत् साधो क्षीरेणेच्छसि भोजनम् ॥ ४४
तन्मातुर्वचनं श्रुत्वा वीतमन्युसुतो वली ।
तमाराध्य विरूपाक्षं प्राप्तः क्षीरेण भोजनम् ॥ ४५
एवं तवोक्तं परमं पवित्रं
संछेदनं शर्वतनोः पुरा वै ।
तत्तीर्थवर्षं स महासुरो वै
समाप्तसादाय सुपुण्यहेतोः ॥ ४६

इति श्रीवामनपुराणे पट्टपञ्चाशोऽध्यायः ॥१६॥

५७

पुलस्त्य उवाच ।

तस्मिन्तीर्थवरे स्नात्वा द्रष्टव्या देवं त्रिलोचनम् ।
पूजयित्वा सुवर्णाक्षं नैमिषं प्रययौ ततः ॥ १
तत्र तीर्थसहस्राणि त्रिंशत्पापहराणि च ।

तदनन्तर निरुपम पीरुववाले उस चक्र ने देत्य का शिर काट डाला । द्विज्रमस्तरु देत्य पर्यत के ऊपर से इस प्रकार गिरा जैसे वज्र से आहत शैलशिखर गिरता है । (४२)

उस देव शत्रु के मारे जाने पर सुरारि ने विरूपाक्ष शङ्कर की आराधना की एवं चक्ररूपी श्रेष्ठ महायुध लेकर वे देव क्षीरसागर में स्थित अपने गृह को चले गये । (४३)

श्रीवामनपुराण मे छपनवाँ अध्याय समाप्त ॥ ५६ ॥

५७

पुलस्त्य ने कहा—प्रह्लाद ने उस श्रेष्ठ तीर्थ में स्नानकर त्रिलोचन महादेव का दर्शन किया तथा सुवर्णाक्ष की पूजा कर वे नैमिषारण्य चले गये । (१)
वहाँ गोमती, काञ्चनाक्षी और गुरुदा के मध्य में

तीस हजार पाप नाशक तीर्थ हैं । (२)
उनमें स्नान कर उन्हींने पीताम्बरपारी देवेश्वर अच्युत की पूजा की । नैमिषारण्यवासी ऋषियों की पूजा करने के उपरांत देवाधिदेव महेश का विधिपूर्वक अर्चन कर वे

गयायां गोपतिं द्रष्टुं जगाम स महासुरः ॥ ४
 तत्र ब्रह्मध्वजे स्नात्वा कृत्वा चास्य प्रदक्षिणाम् ।
 पिण्डनिर्व्वपणं पुण्यं पितृणां स चकार ह ॥ ५
 उदपाने तथा स्नात्वा तत्राम्यर्च्यं पितृन् वशी ।
 गदापाणिं सम्यर्च्यं गोपतिं चापि शंकरम् ॥ ६
 इन्द्रतीर्थे तथा स्नात्वा संतर्प्यं पितृदेवताः ।
 महानदीजले स्नात्वा सरयुमाजगाम सः ॥ ७
 तस्यां स्नात्वा सम्यर्च्यं गोप्रतारे कुशेशयम् ।
 उपोष्य रजनीमेकां विरजां नगरीं ययौ ॥ ८
 स्नात्वा विरजसे तीर्थे दत्त्वा पिण्डं पितृस्तथा ।
 दर्शनार्थं ययौ श्रीमान् अजितं पुरुषोत्तमम् ॥ ९
 तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षमक्षरं परमं शुचिः ।
 पट्टरात्रिण्य तत्रैव महेन्द्रं दक्षिणं ययौ ॥ १०
 तत्र देववरं शंभुमर्द्धनारीश्वरं हरम् ।
 दृष्ट्वाचार्यं संपूज्य पितृन् महेन्द्रं चोत्तरं गतः ॥ ११

महासुर गोपति का दर्शन करने के लिये गयातीर्थ में गये । (३-४)

यहाँ ब्रह्म ध्वज में स्नान और उसकी प्रदक्षिणा कर उन्होंने पितरों के निमित्त पवित्र पिण्डदान किया । (५)

यहाँ उदपान में स्नान कर जितेन्द्रिय (प्रह्लाद) ने पितरों, गदापाणि (विष्णु) एवं गोपति शङ्कर की पूजा किया । (६)

इन्द्रतीर्थ में स्नान कर उन्होंने पितरों एवं देवों का तर्पण किया एवं महानदी के जल में स्नान कर वे सरयू के समीप पहुँचे । (७)

उसमें स्नान कर उन्होंने गोप्रतार में कुशेश्वर की पूजा की एवं यहाँ एक रात्रि निवास कर वे विरजा नगर में गए । (८)

विरजातीर्थ में स्नान करने के पश्चात् पितरों को पिण्डदान कर वे श्रीमान् पुरुषोत्तम अजित का दर्शन करने गये । (९)

वे पापहात प्रह्लाद अक्षर पुण्डरीकाक्ष का दर्शन करने के उपरान्त छ' रात्रियों तक यहाँ निवास कर दक्षिण दिशा में स्थित महेन्द्र पर्वत पर गए । (१०)

(ये) यहाँ देवमेघ अर्धनारीश्वर महादेव का दर्शन एवं

तत्र देववरं शंभुं गोपालं सोमपायिनम् ।
 दृष्ट्वा स्नात्वा सोमतीर्थे सद्वाचलमुपागतः ॥ १२
 तत्र स्नात्वा महोदक्यां वैकुण्ठं चार्च्यं भक्तितः ।
 सुरान् पितृन् समभ्यर्च्यं पारियात्रं गिरिं गतः ॥ १३
 तत्र स्नात्वा लाङ्गलिन्यां पूजयित्वाऽपराजितम् ।
 कशेरुदेशं चाभ्येयं विश्वरूपं ददर्श सः ॥ १४
 यत्र देववरः शंभुर्गणानां तु सुपूजितम् ।
 विश्वरूपमयात्मानं दर्शयामास योगवित् ॥ १५
 तत्र मङ्गुणिकातोये स्नात्वाभ्यर्च्यं महेश्वरम् ।
 जगामात्रिं स सोमर्ण्यं प्रह्लादो मलयाचलम् ॥ १६
 महाहटे ततः स्नात्वा पूजयित्वा च शंकरम् ।
 ततो जगाम योगात्मा द्रष्टुं विन्च्ये सदाशिवम् ॥ १७
 ततो विपाशासलिले स्नात्वाभ्यर्च्यं सदाशिवम् ।
 त्रिरात्रं समुपोष्याथ अयन्तीं नगरीं ययौ ॥ १८

पूजन कर पितरों की अर्चना किये एवं उत्तर दिशा की ओर चले गये । (११)

यहाँ देववर शम्भु और सोमपायी गोपाल का दर्शन करने के पश्चात् सोमतीर्थ में स्नान कर वे सद्वाचल पर गए । (१२)

यहाँ महोदकी में स्नान करने के उपरान्त भक्तिपूर्वक विष्णु, देवों एवं पितरों का अर्चन कर वे पारियात्र पर्वत पर गए । (१३)

यहाँ लाङ्गलिनी में स्नान करने के उपरान्त उन्होंने अपराजित का पूजन किया एवं कशेरुदेश में जाकर विरवरूप का दर्शन किया । (१४)

यहाँ योगविन् देववर शम्भु ने गणों से पूजित अपना विश्वरूप प्रदर्शित किया था । (१५)

यहाँ मङ्गुणिना के जल में स्नान करने के उपरान्त महेश्वर का पूजन कर प्रह्लादसुगन्धिपूर्ण मलयाचल पर गए । (१६)

तदनन्तर महाहट में स्नान करने के उपरान्त शंकर की पूजा कर योगात्मा प्रह्लाद सदाशिव का दर्शन करने चिन्मयपर्वत पर गये । (१७)

तदनन्तर विपाशा के जल में उन्होंने स्नान किया एवं सदाशिव का पूजन किया । तदुपरान्त तीन रात्रियों तक यहाँ निवास कर वे अयन्ती नगरी में गए । (१८)

तत्र शिप्राञ्जले स्नात्वा विष्णुं संपूज्य भक्तिततः ।
 श्मशानस्थं ददर्शाय महाकालवपुर्धरम् ॥ १९
 तस्मिन् हि सर्वसत्त्वानां तेन रूपेण शंकरः ।
 तामसं रूपमास्थाय संहारं कुरुते वशी ॥ २०
 तत्रस्थेन सुरेशेन खेतकिर्नाम भूपतिः ।
 रक्षितस्त्वन्तकं दग्ध्वा सर्वभूतापहारिणम् ॥ २१
 तत्रातिहृष्टो वसति नित्यं शर्षः सहोमया ।
 वृत्तः प्रमथकोटीभिर्बहुभिस्त्रिदशार्चितः ॥ २२
 तं दृष्ट्वाथ महाकालं कालकालान्तकान्तकम् ।
 यमसंयमनं मृत्योर्मृत्युं चित्रविचित्रकम् ॥ २३
 श्मशाननिलयं शंशुं भूतनाथं जगत्पतिम् ।
 पूजयित्वा शूलधरं जगाम निपधान् प्रति ॥ २४
 तत्रामोक्षरं देवं दृष्ट्वा संपूज्य भक्तितः ।
 महोदयं समम्येत्य ह्यग्रशीवं ददर्श सः ॥ २५
 अश्वतीर्थे ततः स्नात्वा दृष्ट्वा च तुरगाननम् ।
 शीघरं चैव संपूज्य पञ्चालविषयं ययौ ॥ २६

तत्रेश्वरगुणैर्धुर्धुवंतं पूत्रमर्षपतेरथ ।
 पाञ्चालिकं वशी दृष्ट्वा प्रयागं परतो ययौ ॥ २७
 स्नात्वा सन्निहिते तीर्थे याम्बुने लोकविश्रुते ।
 दृष्ट्वा वटेश्वरं रुद्रं माधवं योगशायिनम् ॥ २८
 द्वावेव भक्तितः पूज्यौ पूजयित्वा महासुरः ।
 माघमासमथोप्य ततो वाराणसीं गतः ॥ २९
 ततोऽस्यां वरणायां च तीर्थेषु च पृथक् पृथक् ।
 सर्वपापहराद्येपु स्नात्वाऽर्च्यं पितृदेवताः ॥ ३०
 प्रदक्षिणीकृत्य पुरीं पूज्याविमुक्तकेशवौ ।
 लोलं दिवाकरं दृष्ट्वा ततो मधुवनं ययौ ॥ ३१
 तत्र स्वयंभुवं देवं ददर्शासुरमत्तमः ।
 तमभ्यर्च्य महातेजाः पुष्करारण्यमागमत् ॥ ३२
 तेषु त्रिष्वपि तीर्थेषु स्नात्वाऽर्च्यं पितृदेवताः ।
 पुष्कराक्षमयोगान्धिं ब्रह्माणं चाप्यपूजयत् ॥ ३३
 ततो भूयः सरस्वत्यास्तीर्थं त्रैलोक्यविश्रुते ।
 फोडितीर्थे स्त्रकोटिं ददर्श वृषभध्वजम् ॥ ३४

यहाँ शिप्रा के जल में स्नान करने के उपरान्त भक्तिपूर्वक विष्णु का पूजन कर उन्होंने श्मशान में स्थित महाकाल शरीरपारी का दर्शन किया । (१९)
 यहाँ उस रूप में स्थित आत्मवशी शङ्कर तामसरूप धारण कर समस्त प्राणियों का संहार करते हैं । (२०)
 यहाँ स्थित सुरेश ने सर्वभूतापहारी अन्तर को जला कर श्वेतकि नामक राजा की रक्षा की थी । (२१)
 यहाँ शंशुं गणों से आवृत एवं देवों से पूजित भगवान् शङ्कर उमा के साथ अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक यहाँ नित्य निवास करते हैं । (२२)
 उन कालकाल, अग्निकान्तक, यमनिग्रामक, मृत्यु के मृत्यु, चित्रविचित्र, श्मशानवासी, भूतनाथ जगत्पति, शूलधारी शङ्कर का दर्शन एवं पूजन कर वे निषध देश की ओर गए । (२३-२४)
 यहाँ भक्तिपूर्वक अमरेश्वर देव का दर्शन एवं पूजन करने के उपरान्त उन्होंने महोदय में जाकर ह्यमीय का दर्शन किया । (२५)
 तदनन्तर अश्वतीर्थ में स्नान कर अश्वमुग या दर्शन एवं शीघर का पूजन कर वे पाञ्चाल देश गए । (२६)

यहाँ अर्धपति हृद्वेर के पुत्र ईश्वर-गुण सम्पन्न पांचालिक का दर्शन कर जितेन्द्रिय प्रह्लाद प्रयाग चले गये । (२७)
 निकटस्थ यमुना के प्रसिद्ध तीर्थ में स्नानोपरान्त वटेश्वर रुद्र एवं योगशायी माधव का दर्शन एवं भक्तिपूर्वक उन दोनों पूज्यों का पूजन कर उन महासुर ने माघमास में यहाँ निवास किया । तदनन्तर वे वाराणसी गए । (२८-२९)
 तदनन्तर असी और वरणा के सर्वपापहारीविभिन्न तीर्थों में स्नानोपरान्त पितरों एवं देवों का पूजन कर उन्होंने पुरी की प्रदक्षिणा की । तदनन्तर अविमुक्तेश्वर ऋषिकेश की पूजा तथा लालक का दर्शन कर वे मधुवन चले गए । (३०-३१)
 महानेश्वरी असुरश्रेष्ठ प्रह्लाद यहाँ स्वयंभू देव का दर्शन एवं पूजन कर पुष्करारण्य में गए । (३२)
 उन तीनों तीर्थों में स्नान करने के उपरान्त पितरों एवं देवों का अर्चन कर उन्होंने अशोकाग्नि पुष्कराक्ष तथा ब्रह्मा का पूजन किया । (३३)
 तदनन्तर सरस्वती के तीर पर स्थित त्रैलोक्यविश्रुत फोडितीर्थ में उन्होंने रुद्रकोटि वृषभध्वज का दर्शन किया । (३४)

नैमिषेया द्विजवरा मागधेयाः ससंघवाः ।
 घर्माख्याः पौष्करेया दण्डकारण्यकास्तथा ॥ ३५
 चाम्पेया भारुकच्छेया देविकातीरगाथ ये ।
 ते तत्र शंकरं द्रष्टुं समायाता द्विजातयः ॥ ३६
 कोटितंत्यास्तपःगिद्धा हरदर्बालासाः ।
 अहं पूर्वमहं पूर्वमित्येवं वादिनो मुने ॥ ३७
 तान् संक्षुन्धान् हरो दृष्ट्वा महर्षीन् दग्धकलिंगान् ।
 तेषामेवानुकम्पायं कोटिर्मुर्तिरभूद् भवः ॥ ३८
 ततस्ते मुनयः प्रीताः सर्व एव महेश्वरम् ।
 संपूजयन्तत्त्वत्पूर्वं तीर्थं कृत्वा पृथक् पृथक् ।
 इत्येवं रुद्रकोटीति नाम्ना शंशुरजायत ॥ ३९
 तं ददर्श महातेजाः प्रह्लादो भक्तिमान् वशी ।
 कोटितीर्थे ततः स्नात्वा तर्पयित्वा धनुं पितृन् ।
 रुद्रकोटिं समभ्यर्च्य जगाम कुरुजाङ्गलम् ॥ ४०
 तत्र देववरं स्थाणुं शंकरं पार्षतीप्रियम् ।
 सरस्वतीजले मग्नं ददर्श सुरपूजितम् ॥ ४१

(प्राचीन समय में) नैमिषारण्य, मगध, सिन्धु प्रदेश,
 धर्माण्य, पुष्कर, दण्डकारण्य, चम्पा, भरतख्य एवं
 देविकातीर निवासी श्रेष्ठ ब्राह्मण यहाँ शहर का दर्शन
 करने आये ।

(३५-३६)

हे मुनि! मित्र के दर्शन इच्छा वाले करोड़ों सिद्ध तपस्वी
 'मैं पहले दर्शन करूँगा' 'मैं पहले दर्शन करूँगा' इस
 विवाद करने लगे ।

(३७)

उन पावरहित महर्षियों को रक्षुञ्ज हुआ देगजर
 नाहर ने उन पर अनुरम्पा कर कोटि मूर्तियों धारण
 की ।

(३८)

तदनन्तर वे सभी मुनि प्रसन्नतापूर्वक पृथक्-पृथक्
 तीर्थ बनाकर महेश्वर की पूजा करने हुए रहने लगे । इस
 प्रकार कण्डु का नाम रुद्रकोटि हुआ ।

(३९)

महापूजारी भर्षामान् जिनेन्द्रिय प्रह्लाद ने वनया
 दर्शन किया एवं कोटितीर्थ में स्नान कर गण्डुओं
 एवं पितरों का नमन तथा रुद्रकोटि या पूजन कर
 वे कुरुजाङ्गल में चले गए ।

(४०)

उन्होंने यहाँ सरस्वती के जल में मग्न सुरपूजित
 पार्षतीर्षी स्थाणु शहर का दर्शन किया ।

(४१)

सारस्वतेऽम्भसि स्नात्वा स्थाणुं संपूज्य भक्तितः ।
 स्नात्वा दशाश्वमेधे च संपूज्य च सुरान् पितृन् ॥ ४२
 सहस्रलिङ्गं संपूज्य स्नात्वा कन्याहरे शुचिः ।
 अभिवाद्य गुहं शुक्रं सोमतीर्थं जगाम ह ॥ ४३
 तत्र स्नात्वाऽर्च्यं च पितृन् सोमं संपूज्य भविततः ।
 क्षीरिकाशासमभ्येत्य ज्ञानं चक्रे महायशाः ॥ ४४
 प्रदक्षिणीकृत्य तहं वरुणं चार्च्यं बुद्धिमान् ।
 भूयः कुरुध्वजं दृष्ट्वा पद्माक्ष्यां नगरीं गतः ॥ ४५
 तत्रार्च्यं मित्रावरुणौ भास्करौ लोकपूजितौ ।
 कुमारधारामभ्येत्य ददर्श स्वामिनं वशी ॥ ४६
 स्नात्वा कपिलधारामां संतर्प्यार्च्यं पितृन् सुरान् ।
 दृष्ट्वा स्कन्दं समभ्यर्च्यं नर्मदायां जगाम ह ॥ ४७
 तस्यां स्नात्वा समभ्यर्च्यं वासुदेवं श्रियः पतिम् ।
 जगाम भूधरं द्रष्टुं वाराहं चक्रधारिणम् ॥ ४८

सरस्वती के जल में स्नान कर उन्होंने
 भक्तिपूर्वक स्थाणु की पूजा की तथा दशाश्वमेध में स्नान
 कर देवों एवं पितरों का पूजन किया ।

(४२)

कन्याहरे में स्नान करने के पश्चात् पवित्र होकर उन्होंने
 सहस्रलिङ्ग का पूजन किया एवं (शुक्रतीर्थ में) गुरु शुक्राचार्य
 की प्रणाम कर वे सोमतीर्थ चले गये ।

(४३)

यहाँ स्नान कर भक्तिपूर्वक पितरों एवं सोम का
 पूजन कर वे महायशस्वी क्षीरिकाशाम में जाकर यहाँ
 स्नान किये ।

(४४)

यहाँ वे शुक को प्रदक्षिणा कर तथा वरुण की पूजा करने
 के बाद बुद्धिमान् प्रह्लाद पुनः कुरुध्वज का दर्शन कर
 पद्मा नामक नगरी में गये ।

(४५)

यहाँ शोडशपूजित तेजसवी मित्रावरुण का अर्पण करने
 के उपरान्त कुमारधाराम में जाकर जिनेन्द्रिय प्रह्लाद ने
 स्वामी का दर्शन किया ।

(४६)

कपिलधाराम में स्नान कर पितृवर्षण, देवपूजन
 एवं शक्य का दर्शन एवं अचेन कर वे नर्मदा के तमोप
 गए ।

(४७)

वनमें स्नान तथा लक्ष्मीवर्ण वासुदेव की पूजा कर
 वे चक्रधारी भूधर वाराह देव का दर्शन करने गये ।

(४८)

स्नात्वा कोकामुखे तीर्थे संपूज्य धरणीधरम् ।
 त्रिसौवर्ण महादेवमर्बुदेशं जगाम ह ॥ ४९
 तत्र नारीहृदे स्नात्वा पूजयित्वा च शंकरम् ।
 कालिञ्जरं समभ्येत्य नीलकण्ठं ददर्श सः ॥ ५०
 नीलतीर्थजले स्नात्वा पूजयित्वा ततः शिवम् ।
 जगाम सागरानूपे प्रभासे द्रुमुमीश्वरम् ॥ ५१
 स्नात्वा च संगमे नद्याः सरस्वत्याणवस्य च ।
 सोमेश्वरं लोकपतिं ददर्श स कपर्दिनम् ॥ ५२
 यो दक्षशापनिर्दग्धः क्षयी ताराधिपः शशी ।
 आप्यायितः शकरोण विष्णुना सकपर्दिना ॥ ५३
 तावर्च्य देवप्रवरौ प्रजगाम महालयम् ।
 तत्र रुद्रं समभ्यर्च्य प्रजगामोचरान् कुरून् ॥ ५४
 पद्मनाभं स तत्रार्च्य सप्तगोदानरं ययौ ।
 तत्र स्नात्वाऽर्च्य विश्वेशं भीमं त्रैलोक्यवन्दितम् ॥ ५५
 गत्वा दाहवने श्रीमान् लिङ्गं स ददर्श ह ।

कोकामुख तीर्थ में स्नान और धरणीधर की पूजा कर वे अर्बुदेश त्रिसौवर्ण महादेव के पास गये । (४९)

वहाँ नारीहृद में स्नान तथा शंकर की पूजा करने के उपरान्त कालिञ्जर में आकर उन्होंने नीलकण्ठ का दर्शन किया । (५०)

नीलतीर्थ के जल में स्नान करने के उपरान्त शिव का पूजन कर वे समुद्र के किनारे प्रभासतीर्थ में भगवान् का दर्शन करने गए । (५१)

पक्षी सरस्वती नदी और सागर के संगम में स्नान कर उन्होंने लोकपति कपर्दी सोमेसर का दर्शन किया । (५२)

कपर्दीशंकर एवं विष्णु ने दक्ष के शाप से दग्ध एवं क्षय रोगग्रस्त ताराधिप चन्द्रमा को पूर्ण किया था । (५३)

उन दोनों श्रेष्ठ देवों का अर्चन कर वे महालय गए । वहाँ रुद्र का पूजन कर वे उत्तरकुरु गए । (५४)

वहाँ पद्मनाभ का पूजन कर वे सप्तगोदानर तीर्थ में गए । वहाँ स्नानोपपन्न उन्होंने त्रैलोक्यवन्दित भीम विश्वेश्वर का अर्चन किया । (५५)

दाहवने में जाकर श्रीमान् प्रह्लाद ने लिङ्ग का दर्शन किया । इनकी पूजा करने के उपरान्त प्राङ्गणी (नदी) में जाकर उन्होंने स्नान और त्रिदशेश्वर महादेव की

तमर्च्य ब्राह्मणीं गत्वा स्नात्वाऽर्च्य त्रिदशेश्वरम् ॥ ५६
 प्लक्ष्वावतरणं गत्वा श्रीनिवाममपूजयत् ।
 ततश्च कुण्डिनं गत्वा संपूज्य प्राणतृप्तिदम् ॥ ५७
 शूर्पारके चतुर्थाहं पूजयित्वा विधानतः ।
 मामधारण्यमासाद्य ददर्श वसुधाधिपम् ॥ ५८
 तमर्चयित्वा विश्वेशं स जगाम प्रजाह्वयम् ।
 महातीर्थे ततः स्नात्वा वासुदेवं प्रणम्य च ॥ ५९
 शोणं संप्राप्य संपूज्य रुक्मवर्माणमीश्वरम् ।
 महाकोश्यां महादेवं हंसाख्यं भक्तिमानथ ॥ ६०
 पूजयित्वा जगामाय सन्ध्यारण्यशुचमम् ।
 तत्रेश्वरं सुनेवाख्यं गृह्यशूलधरं गुरुम् ॥
 पूजयित्वा महाबाहुः प्रजगाम त्रिविष्टपम् ॥ ६१
 तत्र देवं महेशानं जटाधरमिति श्रुतम् ।
 तं दृष्ट्वाऽर्च्य हरिं चामौ तीर्थं फनखलं ययौ ॥ ६२
 तत्रार्च्य भद्रकालीशं वीरभद्रं च दानवः ।

पूजा की । (५६)

तदनन्तर प्लक्ष्वावतरण में जाकर उन्होंने श्रीनिवास की पूजा की । तत्पश्चात् कुण्डिन में जाकर प्राणों को तृप्ति देने वाले देव का अर्चन किया । (५७)

शूर्पारक में चतुर्थाह देव की विधिवत् पूजा कर मागधारण्य में जाकर उन्होंने वसुधाधिप का दर्शन किया । (५८)

उन विश्वेश का पूजन कर वे प्रजामुख में गए । तदनन्तर महातीर्थ में स्नान कर उन्होंने वासुदेव को प्रणाम किया । (५९)

शोणतट पर जाकर उन्होंने स्वर्णह्वय धारण करने वाले ईश्वर का अर्चन किया । तदनन्तर भक्तिमान् (प्रह्लाद) ने महाकोशी में हंस नामक महादेव का पूजन किया एवं श्रेष्ठ सन्ध्यारण्य में जाकर रुक्म तथा शूलधारी सुनेत्र नामक पूज्य ईश्वर का अर्चन किया । तदनन्तर वे महाबाहु त्रिविष्टप चले गए । (६०-६१)

वहाँ जटाधर नाम से प्रसिद्ध महेशान देव का दर्शन और विष्णु की पूजा कर वे फनखल तीर्थ गये । (६२)
 दानव प्रह्लाद वहाँ भद्रकालीश एवं वीरभद्र तथा पनाधिप

घनाधिपं च मेघाङ्कं ययावथ गिरिव्रजम् ॥ ६३
 तत्र देवं पशुपतिं लोकनाथं महेश्वरम् ।
 संपूजयित्वा विधिवत्कामरूपं जगाम ह ॥ ६४
 शश्विप्रभं देववरं त्रिनेत्रं
 संपूजयित्वा सह वै मृडान्या ।
 जगाम तीर्थप्रवरं महाह्वयं
 तस्मिन् महादेवसंपूजयत् सः ॥ ६५
 ततस्त्रिकूटं गिरिमन्त्रिपुत्रं
 जगाम द्रष्टुं स हि चक्रपाणिनम् ।
 तमीड्य भक्त्या तु गजेन्द्रमोक्षणं
 जज्ञाप जप्यं परमं पवित्रम् ॥ ६६
 तत्रोष्प दैत्येश्वरसूनुरादरा-
 न्मासत्रयं मूलफलाम्बुभक्षी ।
 निवेद्य विप्रप्रवरेषु काञ्चनं
 जगाम घोरं स हि दण्डकं वनम् ॥ ६७
 तत्र दिव्यं महाशाखं वनस्पतिवपुर्धरम् ।

इति श्रीवामनपुराणे सप्तपञ्चाशोऽध्यायः ॥१७॥

ददर्श पुण्डरीकाक्षं महाश्यापदवारणम् ॥ ६८
 तस्याधस्तात् त्रिरात्रं स महाभागवतोऽसुरः ।
 स्थितः स्थण्डिलशायी तु पठन् सारस्वत रत्नम् ॥ ६९
 तस्मात् तीर्थवरं विद्वान् सर्वपापप्रमोचनम् ।
 जगाम दानवो द्रष्टुं सर्वपापहरं हरिम् ॥ ७०
 तस्याग्रतो जज्ञापसौ स्ववौ पापप्रणाशनौ ।
 यौ पुरा भगवान् ब्राह्मणोऽहोऽहो जनादैनः ॥ ७१
 तस्मादथागाद् दैत्येन्द्रः शालग्रामं महाफलम् ।
 यत्र संनिहितो विष्णुधरेषु स्थावरेषु च ॥ ७२
 तत्र सर्वगतं विष्णुं मत्वा चक्रो रतिं वली ।
 पूजयन् भगवत्पादौ महाभागवतो मुने ॥ ७३
 इयं तवोक्ता मुनिसंघजुष्टा
 प्रक्षादवीर्थाऽनुगतिः सुपुण्या ।
 यत्कीर्तनाच्छ्रवणात् स्पर्शनाच्च
 विष्णुवतपापा मनुजा भवन्ति ॥ ७४

मेघाङ्क की अर्चना कर गिरिव्रज गए । (६३)
 वहाँ विधिवत् लोकनाथ महेश्वर पशुपति देव का पूजन
 कर के कामरूप गए । (६४)
 वहाँ चन्द्र की वॉति से सुक देवश्रेष्ठ त्रिनेत्र शङ्कर
 की मृडानी (पावैठी) के साथ विधिवत् पूजा कर प्रह्लाद
 श्रेष्ठ महाह्वय तीर्थ में गये और वहाँ पर उन्होंने
 महादेव की पूजा की । (६५)
 तदनन्तर अत्रिपुत्र चक्रपाणि विष्णु के दर्शनार्थ
 ने त्रिकूट चले गए और भक्ति पूर्वक वन की
 अर्चना कर उन्होंने परम पवित्र जपने योग्य गजेन्द्रमोक्षण
 स्तव का पाठ किया । (६६)
 मूल, फल एवं जल का भक्षण करते हुए दैत्येश्वर पुत्र
 प्रह्लाद ने वहाँ तीन मास तक आदर पूर्वक निवास
 किया । तदनन्तर श्रेष्ठ मादणों को सुवर्ण दान कर के
 घोर दण्डक वन चले गए । (६७)

उन्होंने वहाँ महान् हित् पशुओं के निवारण, महान्
 शापों से सुक वनस्पतिशरीरपादी पुण्डरीकाक्ष का

दर्शन किया । (६८)
 सारस्वत स्तोत्र का पाठ करते हुए महान् विष्णुभक्त असुर
 प्रह्लाद ने तीन रात्रि पर्यन्त उसके नीचे आस्तरणहीन
 चबूते पर शयन किया । (६९)
 विद्वान् दानव (प्रह्लाद) वहाँ से सर्वपापहारी हरि का
 दर्शन करने सर्वपापनाशक श्रेष्ठ तीर्थ में गए । (७०)
 उन्होंने उनके सम्मुख प्राचीनफल में क्रोडरूपी
 जनार्दन से बदे गए पापनाशक दो स्तोत्रों का पाठ
 किया । (७१)
 तदनन्तर वहाँ से दैत्येन्द्र (प्रह्लाद) महाफलदायक
 शालग्राम तीर्थ में गये । विष्णु वहाँ समस्त घर और
 स्थावर पदार्थों में विराजमान हैं । (७२)
 हे मुने ! वहाँ महान् विष्णुभक्त बलवान् प्रह्लाद विष्णु
 को सर्वगत जाननेर भगवान् के चरणों की पूजा करते हुए
 उनमें अनुरक्त हुए । (७३)
 मैंने तुमसे सुनियों के समूहों से सेवित अत्यन्त
 पवित्र प्रह्लाद की तीर्थयात्रा का वर्णन किया । इनके कीर्तन,
 भक्षण एवं स्पर्श से मनुष्य पापरहित हो जाते हैं । (७४)

श्रीवामनपुराण में अष्टाध्याय समाप्त ॥ १७ ॥

नारद उवाच ।

यान् जप्यान् भगवद्भक्त्या प्रह्लादो दानवोऽजपत् ।

गजेन्द्रमोक्षणादींस्तु चतुरस्तान् वदस्व मे ॥ १

पुलस्त्य उवाच ।

शृणुष्व कथयिष्यामि जप्यानेतांस्तपोधन ।

दुःस्वप्ननाशो भवति यैरुक्तैः संश्रुतैः स्मृतैः ॥ २

गजेन्द्रमोक्षणं त्वादौ शृणुष्व तदनन्तरम् ।

सारस्वतं ततः पुण्यौ पापप्रशमनौ स्तवौ ॥ ३

सर्वरत्नमयः श्रीमांश्चिक्कटो नाम पर्वतः ।

सुतः पर्वतराजस्य सुमेरोभास्करपुत्रैः ॥ ४

क्षीरोदजलवीच्यग्रैर्घातामलशिलातलः ।

उत्थितः सागरं भिन्त्वा देवर्षिगणसेवितः ॥ ५

अप्सरोग्निः परिवृतः श्रीमान् प्रस्रवणाकुलः ।

गन्धर्वैः किन्नरैर्वैशैः सिद्धचारणपन्नगैः ॥ ६

विद्याधरैः सपत्नीकैः संयतैश्च तपस्विभिः ।

वृकद्वीपिगजेन्द्रैश्च वृत्तगात्रो विराजते ॥ ७

पुनानौः कर्णिकारैश्च धिल्वामलकपाटलैः ।

चूतनीपकदम्बैश्च चन्दनागुरुचम्पकैः ॥ ८

शालैस्तालैरतमालैश्च सरलार्जुनपर्पटैः ।

तथान्यैर्विभिर्घट्टैः सर्वतः समलंकृतः ॥ ९

नानाधात्वङ्कितैः शृङ्गैः प्रस्रवद्भिः समन्ततः ।

शोभितो रुचिरप्रख्यैस्त्रिभिर्विस्तीर्णसानुभिः ॥ १०

मृगैः शापामृगैः सिंहैर्मातङ्गैश्च सदानदैः ।

जीवन्जीवकसंपुष्टैश्चकोरशिशिनादितैः ॥ ११

तस्यैकं काञ्चनं शृङ्गं सेवते य दिवाकरः ।

नानापुष्पसमाकीर्णं नानागन्धाधिवासितम् ॥ १२

द्वितीयं राजतं शृङ्गं सेवते यं निशाकरः ।

५८

नारद ने कहा—दानव प्रह्लाद ने भगवद्भक्तिपूर्वक जिन गजेन्द्रमोक्षणादि जपनीय स्तोत्रों का जप किया था उन चार जपों को आप मुझे बतलावें । (१)

पुलस्त्य ने कहा—हे तपोधन ! मैं उन स्तोत्रों का वर्णन करता हूँ, आप सुनें । इनके बहने, सुनने और स्मरण करने से दुःस्वप्नों का नाश होता है । (२)

प्रथम गजेन्द्रमोक्षण स्तोत्र सुनिए । तदनन्तर सारस्वत स्तोत्र एवं तपस्यान् दो पवित्र पापप्रशमन स्तवों का वर्णन करूँगा । (३)

सर्वरत्नमय सुन्दर त्रिचूट नामक पर्वत, भूर्व के समान प्रभायाने पर्वतराज सुमेरु का पुत्र है । (४)

क्षीरसागर के जलनरद्वारों से प्रभावित निर्मल शिलातलराला यह पर्वत समुद्र का भेदन कर ऊपर निरला है एवं देवता और श्रविगण यहाँ सर्वेश निवास करते हैं । (५)

अप्सरसों से परिवृत, झरनों से परिपूर्ण, गन्धर्वों, विभ्रतों, यक्षों, सिद्धों, चारणों, पन्नगों, पत्नीपुच्छ विद्यापतों,

संयमो तपस्वियों और वृक, व्याघ्र एवं गजेन्द्रों से आवृतशरीर वाला वह श्रीमान् पर्वत अत्यन्त सुशोभित होता है । (६-७)

पुनानग, कर्णिकार, विल्व, आमलक, पाटल, श्राघ, नीप, कदम्ब, चन्दन, अगुरु, चम्पक, शाल, ताल, तमाल, सरल, अर्जुन, पर्पट एवं अन्य अनेक प्रकार के वृक्षों से यह पर्वत पूर्णतया अलंकृत है । (८-९)

वह पर्वत अनेक प्रकार के घातुओं से अङ्कित पोटियों, चारों ओर से बहने वाले झरनों और अत्यन्त रुचिर तथा विस्तृत तीन शिरसों से शोभित है । (१०)

यह पर्वत निरन्तर मृग, यानर, सिंह, मदमत्त हाथी, पानक, चमोर एवं मयूर आदि पक्षियों से निनादित होता रहता है । (११)

अनेक प्रकार के पुष्पों से व्याप्त एवं विविध सुगन्धों से सुवासित इसके एक सुवर्णमय शृङ्ग का भूर्व सेवन करते हैं । (१२)

सुकल्पवर्ण मेघ की तरह एवं तुषार-समूह-सदृश बसने

पाण्डुराम्बुदसंकाशं तुषारचयसनिभम् ॥ १३
 वज्रेन्द्रनीलपैङ्गुर्यतेजोभिर्भासयन् दिशः ।
 वृतीयं ब्रह्मसदनं प्रकृतं शृङ्गमूत्रमम् ॥ १४
 न तत्कृतमाः पश्यन्ति न नृशंसा न नास्तिकाः ।
 नातमतपमो लोके ये च पापकृतो जनाः ॥ १५
 तस्य सानुमतः पृष्ठे सरः काञ्चनपङ्कजम् ।
 कारुण्यवसमाकीर्णं राजहंमोपशोभितम् ॥ १६
 कुम्भोदोत्पलकङ्करीः पुण्डरीकैश्च मण्डितम् ।
 कमलैः शतपत्रैश्च काञ्चनैः समलङ्कृतम् ॥ १७
 पत्रैर्मरकतप्रस्रवैः पुष्पैः काञ्चनसनिभैः ।
 गुल्मैः कीचकवणुनां ममन्तात् परिवेष्टितम् ॥ १८
 तस्मिन् सरसि दुष्टात्मा निरूपोऽन्तर्जलेश्वरः ।
 आमीद् ग्राहो गजेन्द्राणां रिपुरावैकोक्षणः ॥ १९
 अय दन्तोच्चरलमुखः कदाचिद् गनयूथपः ।
 मदसावी जलाकाङ्क्षी पादचारीव पर्वतः ॥ २०
 वासयन्मदगन्धेन गिरिमैरायतोपमः ।

गजो ह्यजनसंकाशो मदाचलितलोचनः ॥ १३
 तृपितः पातुकामोऽसौ अवतीर्थश्च तज्जलम् ।
 सलीलः पङ्कजवने युथमध्यगतश्चरन् ॥ २२
 गृहीतस्तेन रौद्रेण ग्राहेणाप्यक्तमूर्तिना ।
 पश्यन्तीनां कोणूनां क्रोशन्तीनां च दारुणम् ॥ २३
 हियते पङ्कजवने ग्राहेणातिवलीयमा ।
 पारुणैः संघतः पादौर्निष्प्रयत्नगति कृत' ॥ २४
 वेष्टयमानः सुधोरैस्तु पाशैर्नागो हृदैस्तथा ।
 विस्फुर्य च यथाशक्ति विक्रोशश्च महारवान् ॥ २५
 व्यथितः स निरुत्साहो गृहीतो घोरकर्मणा ।
 परमापदमापन्नो मनसाऽचितयद्हरिम् ॥ २६
 स तु नागवरः श्रीमान् नारायणपरायणः ।
 तमेव शरणं देवं गतः सर्वार्थमना तदा ॥ २७
 एकात्मा निशुद्धीतात्मा विशुद्धेनान्तरात्मना ।
 जन्मजन्मान्तराभ्यासात् भक्तिमान् गरुडध्वजे ॥ २८
 नान्य देवं महादेवात् पूजयामास केशवात् ।

दूसरे रजतमय शृङ्ग का सेवन चन्द्रमा करते हैं । (१३)

हीरा, इन्द्रनील, वैद्युर्य आदि रत्नों की ज्योति से दिशाओं को प्रकाशित करने वाला उसका अत्यन्त उत्तम वृतीय शृङ्ग ब्रह्मा का निवास स्थान है । (१४)

कृत्तन, क्रूर, नास्तिक, तपस्या से हीन एवं लोक में पापकर्म करने वाले मनुष्य उसे नहीं देख सकते । (१५)

उस पर्वत के पृष्ठभाग में सुवर्णकमलों से युक्त, कारुण्यवसे आरौणिक, राजहंसों से सुशोभित, सुबुद्ध, उत्पल, कङ्करी, पुण्डरीक आदि नानाजातीय कमलों से मण्डित, शतपत्रों वाले सुपर्ण कमलोंसे अलङ्कृत तथा मरुत के सदृश पत्रों वाले काञ्चन के समान पुष्पों एव कीचक नामक बाँस के गुल्मों से चारों ओर से परिवेष्टित एक सरोवर है । (१६-१८)

उस सरोवर के जल में गजेन्द्रों का शत्रु पक्ष गुरूप दुरात्मा अर्धनिर्मोक्षित नेत्रोवाशा प्राह रहता था । (१९)

एक समय दौंतों से उज्ज्वल मुखवाला, मदसावयुक्त, जलाभिलाषी, पादचारी पर्वत तुल्य, ऐरावत के सदृश, अजान-मुत्तय, मद के कारण बड़ाज नेत्रों वाला, वृषायुक्त एक गनयूथपति अपने मद की सुगन्ध से पर्वत को सुवासित

करते हुए जल पीने की इच्छा से उस सरोवर के जल में उतरा एव कमलों के समूह में अपने क्षुब्ध के साथ व्रीडा करने लगा । (२०-२२)

प्रच्छन्न शरीर वाले प्राह ने उसे पकड़ लिया । वरुण रूप से आर्तनाद कर रही हृथिनियों के देपते ही देपते अतिबलवान् प्राह उसे पङ्कजन में खींच ले गया एव वरुण के पाशों से बाँधकर उसे निष्प्रयत्न तथा गतिहीन कर दिया । (२३-२४)

यह गजराज हृद और भयङ्कर पाशों से आच्छन्न हो जाने के कारण यथाशक्ति फड़फड़ाकर ऊँचे स्वर से चीरकार करने लगा । (२५)

क्रूर वर्म वाले (उस प्राह) के द्वारा पकड़े जाने पर यह व्यथित तथा निरुत्साह हो गया । अत्यन्त विपत्ति में पड़कर यह मन से भगवान् हरि का ध्यान करने लगा । (२६)

यह सुन्दर गजराज नारायण का भक्त था । अतः उस समय यह सर्वार्थमना उन्हीं देव की शरण में गया । (२७)

यह ह्यार्थी जन्म-जन्मान्तर के अभ्यास से एकाम और संयत चित्त होकर विमुक्त अनवरण से गरुडध्वज विष्णु का भक्त हुआ । (२८)

उसने महान् देव येश्वर के अतिरिक्त अन्य देवता

श्रीरोदकाण्वनिकेतयशोधराय ।
 नानाविचित्रमुकुटाङ्गदभूषणाय
 सर्वेश्वराय वरदाय नमो वराय ॥ ४१
 भक्तिप्रियाय वरदीप्तसुदर्शनाय
 कुङ्कारविन्दविपुलायतलोचनाय ।
 देवेन्द्रविग्रहमनोघतगौरुहाय
 योगेश्वराय विरजाय नमो वराय ॥ ४२
 ब्रह्मापनाय त्रिदशायनाय
 लोकाधिनाथाय भवापनाय ।
 नारायणात्माहितायनाय
 महावराहाय नमस्करोमि ॥ ४३
 कूटस्थमन्यक्तमचिन्त्यरूपं
 नारायणं कारणमादिदेवम् ।
 युगान्तशेषं पुस्त्यं पुराणं
 तं देवदेवं शरणं प्रपद्ये ॥ ४४
 योगेश्वरं चारुविचित्रमौलि-
 मन्त्रेयमग्रं प्रकृतेः परस्थम् ।
 क्षेत्रज्ञमात्मप्रभवं वरेण्यं
 तं वासुदेवं शरणं प्रपद्ये ॥ ४५

वरदाता एव वरस्वरूप सर्वेश्वर को नमस्कार है । (४१)

भक्तिप्रिय, श्रेष्ठ दीप्ति से सम्पन्न, सुन्दर दिखलाई देने वाले, विकसित कमल के समान विशाल नेत्रों वाले, देवेन्द्र के विघ्नों का नाश करने के लिये पुरुषार्थ करने को उद्यत, वरस्वरूप, विरज योगेश्वर को नमस्कार है । (४२)

ब्रह्मा एव अन्य देवों के आश्रय स्वरूप, लोकधिनाथ, भवहर्ता, नारायण, आत्महित के आश्रयस्थान महावराह को नमस्कार करता हूँ । (४३)

मैं कूटस्थ, अद्वय, अचिन्त्य रूप वाले, कारणस्वरूप, आदिदेव नारायण, युगान्त में शेष रहने वाले पुराण पुरुष, देवाधिदेव की शरण ग्रहण करता हूँ । (४४)

मैं योगेश्वर, सुन्दर विचित्र वर्णयुक्त मुकुटधारी, ज्ञेय, सर्वश्रेष्ठ, प्रकृति के परे अवस्थित क्षेत्रज्ञ, आत्मप्रभव, वरेण्य उन वासुदेव की शरण ग्रहण करता हूँ । (४५)

अद्वयमन्यक्तमचिन्त्यमन्ययं
 महर्षयो ब्रह्ममयं सनातनम् ।
 वदन्ति यं वै पुस्त्यं सनातन
 तं देवगुह्यं शरणं प्रपद्ये ॥ ४६
 यदक्षरं ब्रह्म वदन्ति सर्वगं
 निश्चयं यं मृत्युमुत्पात् प्रमुच्यते ।
 तमीश्वरं नृपमनुत्तरेणुभिः
 परायणं विष्णुमुपैमि शाश्वतम् ॥ ४७
 कार्यं क्रिया कारणमप्रभेयं
 हिरण्यवाहुं वरपद्मनामम् ।
 महानले वेदनिधिं सुरेशं
 व्रजामि विष्णुं शरणं जनार्दनम् ॥ ४८
 किरीटकेयूरमहार्हनिष्कै-
 र्भण्युत्तमालकृतवसर्वगावम् ।
 पीताम्बरं काञ्चनभक्तिचित्रं
 मालाधरं केशवमभ्युपैमि ॥ ४९
 भरोद्भव वेदविदां वरिष्ठं
 योगात्मनां सात्त्विकिदां वरिष्ठम् ।
 आदित्यवद्राशिवसुप्रभायं

ब्रह्मर्षि लोग जिसे अद्वय, अद्वय, अचिन्तनीय, अद्वय, ब्रह्ममय और सनातन पुरुष कहते हैं, उन देव गुह्य की शरण ग्रहण करता हूँ । (४६)

(ब्रह्मवेत्ता) जिसे अक्षर एव सर्वव्यापी ब्रह्म कहते हैं तथा जिसके शरण से मृत्यु के मुख से सुक्ति प्राप्त होती है मैं उसी श्रेष्ठ गुणों से युक्त, आत्मरूप, शाश्वत आश्रय स्वरूप ईश्वर की शरण ग्रहण करता हूँ । (४७)

मैं कार्य, क्रिया और कारणस्वरूप, प्रमाण से अगम्य, हिरण्यवाहु, नाभि में श्रेष्ठ कमल धारण करने वाले, महामलशाली, वेदनिधि, सुरेश्वर जनार्दन विष्णु की शरण में जाता हूँ । (४८)

मैं किरीट, केयूर एवं अतिमूल्यवान श्रेष्ठ मणियों से अलंकृत समस्त शरीर वाले, पीताम्बरधारी, स्वर्णिम पद्म रचना से सुशोभित, माला धारण करने वाले केशव की शरण में जाता हूँ । (४९)

मैं ससार के उत्पादक, वेद के जानने वालों में श्रेष्ठ,

प्रभुं प्रपद्येऽच्युतमात्मवन्तम् ॥ ५०

श्रीवत्साङ्गं महादेवं देवगुह्यमनीपमम् ।

प्रपद्ये सूक्ष्मचलं वरेण्यममयप्रदम् ॥ ५१

प्रभवं सर्वभूतानां निर्गुणं परमेधरम् ।

प्रपद्ये ह्यक्तसंगानां यतीनां परमां गतिम् ॥ ५२

भगवन्तं गुणाच्चक्षमधरं पुष्करेक्षणम् ।

शरण्यं शरणं भक्त्या प्रपद्ये भक्तवत्सलम् ॥ ५३

त्रिनिद्रमं त्रिलोकेशं सर्वेषां प्रपितामहम् ।

योगात्मानं महात्मानं प्रपद्येऽहं जनार्दनम् ॥ ५४

आदिदेवमजं शंभुं व्यज्जताव्यक्तं सनातनम् ।

नारायणमणीषांसं प्रपद्ये ब्राह्मणप्रियम् ॥ ५५

नमो वराय देवाय नमः सर्वसहाय च ।

प्रपद्ये देवदेवेशमणीषांमणोः सदा ॥ ५६

एकाय लोकतरुवाय परतः परमात्मने ।

नमः सहस्रशिरसे अनन्ताय महात्मने ॥ ५७

योगात्माओं तथा सांन्यसों में श्रेष्ठ, आदित्य, रत्न, अधिनीकुमार एव पशुओं के प्रभाव से युक्त, अच्युत, आत्मस्वरूप पशु की शरण ग्रहण करता हूँ । (५०)

मैं शीघ्रतः चिह्न धारण करने वाले, महान् देव, देवताओं में शुद्ध, उपमा रहित, सूक्ष्म, अचल तथा लभ्य देनेवाले वरेण्य देव की शरण ग्रहण करता हूँ । (५१)

मैं सामान्य प्राणियों के उत्पादक, निर्गुण, निरुक्त यतियों की परम गति स्वरूप परमेधर श्री शरण ग्रहण करता हूँ । (५२)

मैं गुणाभ्यधर, अधर, पद्मलोचन, आभयशील, शरण देने वाले भक्तवत्सल भगवान् की भक्तिपूर्वक शरण ग्रहण करता हूँ । (५३)

मैं त्रिनिद्रम, त्रिशेवधर, सभी के प्रपितामह, योगात्मा, महात्मा जनार्दन की शरण ग्रहण करता हूँ । (५४)

मैं आदिदेव, अजन्मा, शम्भु, व्यज्जताव्यक्तरूप, सनातन, परम सूक्ष्म, ब्राह्मणप्रिय नारायण की शरण ग्रहण करता हूँ । (५५)

श्रेष्ठ देव की नमस्कार हे । सर्वशक्तिमान् को नमस्कार हे । मैं सदा सूक्ष्म से सूक्ष्म देवदेवेश का शरणागत हूँ । (५६)

छोटाएकरावरूप, एकमात्र, परात्पर परमात्मा, सहस्रशीर्ष महात्मा अनन्त को नमस्कार हे । (५७)

त्वामेव परमं देवशृणुयो वेदपारगाः ।

कीर्तयन्ति च यं सर्वे प्रज्ञादीनां परायणम् ॥ ५८

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष भक्तानामभयप्रद ।

सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु ब्राह्मि मां शरणागतम् ॥ ५९

पुलस्त्य उवाच ।

भक्तिं तस्यानुसंचिन्त्य नागस्यामोषसंभवः ।

श्रीतिमानभवद् विष्णुः शङ्खचक्रगदाधरः ॥ ६०

सान्निध्यं कल्पयामास तस्मिन् सरमि केशवः ।

गरुडस्थो जगत्प्रणामी लोकाधारस्तपोधनः ॥ ६१

ग्राहग्रस्तं गजेन्द्रं तं तं च ग्राहं जलाशयात् ।

उज्ज्वारारमेयात्मा तरसा मधुसूदनः ॥ ६२

स्थलस्थं दारयामास ग्राहं चक्रेण माधवः ।

मोक्षयामास नागेन्द्रं पशोर्भवः शरणागतम् ॥ ६३

स हि देवलशपेन हृद्गर्गन्धर्वमत्तमः ।

ग्राहत्वमगमत् कृष्णाद् वधं प्राप्य दिवं गतः ॥ ६४

वेदपारगामी श्रद्धिगण आपसो ही परम देव एवं ब्राह्मि देवों का आभयस्थान कहते हैं । (५८)

हे पुण्डरीकाक्ष ! हे भक्तों के अभयदाता ! आपसो नमस्कार हे । हे सुब्रह्मण्य ! आपसो नमस्कार हे । आप मुझ शरणागत की रक्षा करें । (५९)

पुलस्त्य ने कहा — शङ्खचक्र एवं गदा धारण करने वाले अमोषसम्भवन विष्णु उस गजेन्द्र की भक्ति का विचार कर प्रसन्न हो गए । (६०)

तदनन्तर लोकाधार जगत्प्रणामी तपोधन केशव गरुड पर रावार होकर उस मरौवर के समीप गये । (६१)

अप्रमेयात्मा मधुसूदन ने ब्राह्म से प्रसन्न उस गजेन्द्र तथा उस ब्राह्म की वेगपूर्वक जलाशय से बाहर निराशा । (६२)

माधव ने शृणुओं पर नियत ब्राह्म के चक्र द्वारा विदीर्ष कर शरणागत गजेन्द्र को पशुओं में युक्त किया । (६३)

देवल के शप में ब्राह्म बना हुआ गण्डर्भेष्ठ हृद्गर्ग ने मधु पाकर स्वर्ग चला गया । (६४)

गजोऽपि विष्णुना स्पृष्टो जातो दिव्यवपुः पुमान् ।
 आपद्विमुक्तौ युगपद् गजगन्धर्वसत्तमौ ॥ ६५
 प्रीतिमान् पुण्डरीकाक्षः शरणागतवत्सलः ।
 अमपत् त्वथ देवेशस्ताभ्यां चैव प्रपूजितः ॥ ६६
 इदं च भगवान् योगी गजेन्द्रं शरणागतम् ।
 प्रोवाच हृनिशार्दूल मधुरं मधुसूदनः ॥ ६७
 श्रीभगवानुवाच ।

यो मां त्वाञ्च सरशैव ग्राहस्य च विदारणम् ।
 गुल्मकीचकोरणां रूपं मेरोः सुवस्य च ॥ ६८
 अश्वत्थं भास्करं गङ्गां नैमिपारण्यमेव च ।
 संस्मरिष्यन्ति मनुजाः प्रयताः स्थिरबुद्धयः ॥ ६९
 कीर्तयिष्यन्ति भक्त्या च श्रोष्यन्ति च शुचिप्रताः ।
 दुःस्वप्नो नश्यते तेषां सुस्वप्नश्च भविष्यति ॥ ७०
 मात्स्यं कौर्मञ्च वाराहं वामनं तार्क्ष्यमेव च ।
 नारासिंहं च नागेन्द्रं सृष्टिप्रलयकारकम् ॥ ७१
 एतानि प्रावहत्याथ संस्मरिष्यन्ति ये नराः ।
 सर्वपापैः प्रमुच्यन्ते पुण्यं लोकमवाप्नुयुः ॥ ७२

विष्णु का स्पर्श होने से वह हाथी भी दिव्यशरीरधारी
 पुरुष हो गया । इस प्रकार हाथी एवं गन्धर्वश्रेष्ठ दोनों एक
 ही साथ आपत्ति से मुक्त हो गए । (६५)

तदनन्तर उन दोनों से पूजित होकर शरणागतवत्सल
 पुण्डरीकाक्ष देवेश प्रसन्न हुए । (६६)

हे मुनिशार्दूल ! योगी भगवान् मधुसूदन ने शरणागत
 गजेन्द्र से यह मधुर वचन कहा— (६७)

श्रीभगवान् ने कहा—जो गिरजुद्धि से मुचिन्नत मनुष्य
 प्रयत्नपूर्वकमेव तुम्हारा तथा सरोवर, प्राह के विदारण, गुल्म,
 कीचक, रेणु एव मेरु पुत्र के रूप, अश्वत्थ, भास्कर, गङ्गा
 तथा नैमिपारण्य का स्मरण एवं भास्करके कीर्तन तथा
 श्रवण करेंगे उनके दुस्वप्न का विनाश एवं सुस्वप्न
 की सृष्टि होगी । (६८-७०)

जो मनुष्य प्रातः काल षड्वर मत्स्यावतार, घूर्णावतार,
 धराहावतार, वामनावतार, गरुड, नरसिंहावतार, गजेन्द्र
 और सृष्टिप्रलयकारक (भगवान्) का स्मरण करेंगे वे समस्त
 पापों से मुक्त होकर पुण्य लोक को प्राप्त करेंगे । (७१-७२)

पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्त्वा हृषीकेशो गजेन्द्रं गरुडध्वजः ।
 स्पर्शयामास हस्तेन गजं गन्धर्वमेव च ॥ ७३
 ततो दिव्यवपुर्भूत्वा गजेन्द्रो मधुसूदनम् ।
 जगाम शरणं विप्र नारायणपरायणः ॥ ७४
 ततो नारायणः श्रीमान् मोक्षयित्वा गजोत्तमम् ।
 पापबन्धाच्च शपाच्च श्राहं चाद्भुतकर्मकृत् ॥ ७५
 ऋषिभिः स्तूयमानश्च देवगुह्यपरायणैः ।
 गतः स भगवान् विष्णुर्दुर्विलेयगतिः प्रभुः ॥ ७६
 गजेन्द्रमोक्षणं दृष्ट्वा देवाः शक्रपुरोगमाः ।
 ववन्दिरे महात्मानं प्रभुं नारायणं हरिम् ॥ ७७
 महर्षयश्चारणाश्च दृष्ट्वा गजविमोक्षणम् ।
 विस्मयोत्कुलनयनाः संस्तुवन्ति जनार्दनम् ॥ ७८
 प्रजापतिपतिर्ब्रह्मा चक्रपाणिर्विचेष्टितम् ।
 गजेन्द्रमोक्षणं दृष्ट्वा इदं वचनमब्रवीत् ॥ ७९
 य इदं श्रुयुयान्नित्यं प्रावहत्याथ मानवः ।
 श्रानुयात् परमां सिद्धिं दुःस्वप्नस्तस्य नश्यति ॥ ८०

पुलस्त्य ने कहा—गजेन्द्र से ऐसा कहकर गरुडध्वज हृषीकेश
 ने हाथ से गजेन्द्र और गन्धर्व दोनों का स्पर्श किया । (७३)

हे विप्र ! तदनन्तर नारायणपरायण गजेन्द्र दिव्य
 शरीर धारण कर मधुसूदन की शरण में गया । (७४)

तदुपरागत श्रीमान् अद्भुतकर्मा नारायण ने गजोत्तम
 एवं प्राह को वापबन्ध एवं शपा से मुक्त किया । (७५)

भगवद्भक्त ऋषियों द्वारा स्तुत होते हुए
 वे अविद्येय गति वाले प्रभु भगवान् विष्णु चले
 गये । (७६)

गजेन्द्र के मोक्ष को देखकर इन्द्रादि देवों ने
 महात्मा प्रभु नारायण हरि की वन्दना की । (७७)

गज-विमोक्षण को देखकर विस्मय से उल्लसल नेत्रों
 वाले महर्षियों एवं चारणों ने जनार्दन की स्तुति की । (७८)

गजेन्द्रमोक्षण रूपी चक्रपाणि के कर्म को देखकर
 प्रजापति ब्रह्मा ने यह वचन कहा— (७९)

जो मनुष्य प्रातः काल षड्वर प्रतिदिन इसे सुनेगा,
 वह परमसिद्धि प्राप्त करेगा और उसका दुस्वप्न विनष्ट
 हो जायेगा । (८०)

गजेन्द्रमोक्षणं पुण्यं सर्वपापप्रणाशनम् ।
 कथितेन स्मृतेनाथ श्रुतेन च तपोधन ॥
 गजेन्द्रमोक्षणेनेह सद्यः पापात् प्रमुच्यते ॥ ८१
 एतत्पवित्रं परमं सुपुण्यं
 संकीर्तनीयं चरितं सुरारेः ।
 यस्मिन् क्लोक्ते बहुपापनन्धनात्
 लभ्येत मोक्षो द्विरदेन यद्भृत् ॥ ८२
 अजं वरेण्यं वरपद्मनाभं

नारायणं ब्रह्मनिधिं सुरेशम् ।
 तं देवगुह्यं पुरुषं पुराणं
 वन्दाम्यहं लोकपतिं वरेण्यम् ॥ ८३
 पुलस्त्य उवाच ।
 एतन्न तवोक्तं प्रवरं स्ववानां
 स्तब्धं सुरारेर्धरनागकीर्तनम् ।
 यं कीर्त्यं संश्रुत्य तथा विचिन्त्य
 पापापनोर्दं पुरुषो लभेत ॥ ८४

इति श्रीवामनपुराणे ब्रह्मपञ्चाशोऽध्याय ॥१६८॥

५६

पुलस्त्य उवाच ।

कश्चिदासीद् द्विजद्रोघ्या पिशुनः क्षत्रियाधमः ।
 परपीडारुचिः क्षुद्रः स्वभावादि निर्घृणः ॥ १
 पर्यामिताः सदा तेन पितृदेवद्विजातयः ।
 स त्वायुषि परिक्षीणे जज्ञे घोरो निशाचरः ॥ २

हे तपोधन ! गजेन्द्र-मोक्ष पवित्र और सभी प्रकार के पापों का विनाशक है । इस गजेन्द्रमोक्ष के बहने, स्मरण करने और सुनने से मनुष्य तत्काल पाप से मुक्त हो जाता है । (८१)

सुरारि विष्णु का यह पवित्र चरित्र परम पुण्यदायक तथा कीर्तन करने योग्य है । इसे बहने से मनुष्य गजेन्द्र के सदृश अनेक पापों के बन्धन से मुक्त हो जाता है । (८२)

श्री वामनपुराण में ब्रह्मवर्षो अध्याय समाप्त ॥ १६ ॥

५९

पुलस्त्य ने कहा—ब्राह्मण विष्टेयी, सुगलरोर, दूसरों को पीड़ा देने वाला, नीच, स्वभाव से भी निष्ठुर एक क्षत्रियाधम था । (१)

इसने सदा पितरों, देवों एवं द्विजातियों का निष्ठुर किया । आयु समाप्त होने पर वह घोर निशाचर हुआ । (२)

तेनैव कर्मदोषेण स्वेन पापकृतां वरः ।
 श्रूरैश्चक्रे ततो वृत्तिं राक्षसत्वाद् विशेषतः ॥ ३
 तस्य पापरतस्यैवं जगुर्ध्वर्षशतानि तु ।
 तेनैव कर्मदोषेण नान्यां वृत्तिमरोचयत् ॥ ४
 यं यं पश्यति सत्त्वं स तं तमादाय राक्षसः ।

मैं अज, वरेण्य, श्रेष्ठ, पद्मनाभ, नारायण, ब्रह्मनिधि, सुरेश, देवगुह्य पुराणपुरुष उन लोकपति की बन्दना करता हूँ । (८३)

पुलस्त्य ने कहा—श्रुतियों में श्रेष्ठ गजेन्द्र द्वारा कीर्तित सुरारि के इस श्रेष्ठ स्तोत्र को मैंने तुमसे कहा । इसके कीर्तन, श्रवण तथा चिन्तन करने से मनुष्य पापों से मुक्ति पाता है । (८४)

अपने उसी कर्म के दोष एवं विशेषकर राक्षस होने से वह जन्म्य पापी शूर कर्मों द्वारा जीवन निर्वाह करने लगा । (३)

पापकर्म करते हुये उसके सौ वर्ष व्यतीत हो गये । उसी कर्म में श्रेष्ठ एवं अन्य वृत्ति में इसकी रूचि नहीं होती थी । (४)

चखाद रौद्रकर्मासौ बाहुगोचरमागतम् ॥ ५
 एव तस्यातिदुष्टस्य कुर्वतः प्राणिनां वधम् ।
 जगाम च महान् कालः परिणामं तथा वयः ॥ ६
 स कदाचित् तपस्यन्तं ददर्श सरित्मथटे ।
 महाभागमूर्ध्वभुजं यथावत्संपतेन्द्रियम् ॥ ७
 अनया रक्षया ब्रह्मन् क्रतरथं तपोनिधिम् ।
 योगाचार्यं शुचिं दक्षं वासुदेवपरायणम् ॥ ८
 विष्णुः प्राच्यां स्थितश्चक्री विष्णुर्दक्षिणतो गदी ।
 प्रतीच्या शार्ङ्गधृविष्णुर्निष्णुः सङ्गी ममोत्तरे ॥ ९
 हृषीकेशो निकोणेषु तच्छिष्टेषु वनार्दनः ।
 क्रौडरूपी हरिर्भूमौ नारसिंहोऽम्बरे मम ॥ १०
 क्षुरान्तममल चक्रं भ्रमत्येतत् सुदर्शनम् ।
 अस्यांशुमाला दुष्प्रेक्ष्या हन्तुं प्रेतनिशाचरान् ॥ ११
 गदा चेयं सहस्राचिरुद्धमन् पावको यथा ।

वह रौद्रकर्मा राक्षस जिस प्राणी को दम्बता उसे अपनी सुजाओं से परहू कर सा जाता था । (५)

इस प्रकार प्राणियों का वध करते हुए उस अतिदुष्ट का अधिक समय व्यतीत हो गया एव उसी अवस्था दलने लगी । (६)

जिसी समय उसने नदी तट पर एक ऊर्ध्वभुज, विधिवन् इन्द्रियों पर सवम क्रिये हुए महाभाग्यवान् ऋषि को तपत्या करते देखा । (७)

हे ब्रह्मन् । नीचे लिखे रत्नामनों द्वारा उस तपोनिधि, पवित्र, निपुण, वासुदेव परायण योगाचार्य ने अपनी रक्षा कर ली थी— (८)

पूर्वादिशा मे चक्रधारी विष्णु, दक्षिण दिशा में गदाधर विष्णु, पश्चिम दिशा मे शार्ङ्ग धनुषधारी विष्णु पृथ उत्तर दिशा मे सङ्गधारी विष्णु मेरी रक्षा करें । (९)

दिकांशों मे हृषीकेश, उन (दिशाओं एवं विदिशाओं) के छिद्रों में जनार्दन, भूमि में बराह रूपधारी हरि एवं आकाश मे वृद्धि मेरी रक्षा करें । (१०)

प्रेतों एव निशाचरों के वध के लिए यह अति शीघ्र निर्मल सुदर्शन चक्र घूम रहा है । इसकी किरणमाला दुष्प्रेक्ष्य है । (११)

ज्वाला उगलने वाले अग्नि की भाँति सहस्रों किरणों से

रक्षोभूतपिशाचानां डाकिनीनां च श्रातनी ॥ १२
 शार्ङ्गं विस्फुरितं चैव वासुदेवस्य मद्रिपूर ।
 तिर्यङ्मनुष्यकूष्माण्डप्रेतादीन् हन्त्वशेषतः ॥ १३
 सङ्गधारारज्वलज्ज्योत्स्नानिर्धूता ये ममाहिताः ।
 ते यान्तु सौम्यतां सद्यो गरुडेनेव पन्नगाः ॥ १४
 ये कूष्माण्डास्तथा यथा दैत्या ये च निशाचराः ।
 प्रेता विनायकाः क्रूरा मनुष्या जृम्भकाः खगाः ॥ १५
 सिंहादयो ये पशवो दन्दशूकाश्च पन्नगाः ।
 सर्पे भजन्तु मे सौम्या विष्णुचक्ररवाहताः ॥ १६
 चित्सृत्तिहरा ये च ये जनाः स्मृतिहारकाः ।
 बलौजसा च हर्तारश्चायाविष्वंसकाश्च ये ॥ १७
 ये चोपभोगहर्तारो ये च लक्षणनाशकाः ।
 कूष्माण्डास्ते प्रणश्यन्तु विष्णुचक्ररवाहताः ॥ १८
 बुद्धिस्वास्थ्यं मनःस्वाम्भ्य स्वाम्भ्यमैन्द्रियकं तथा ।

सुक यह गदा राक्षसों, भूतों, पिशाचों और डाकिनियों का विनाश करे । (१२)

वासुदेव का चमकने वाला शार्ङ्ग धनुष मेरे शत्रुभूत हिंस्र पशु पक्षियों, मनुष्यों, वानरों तथा प्रेतों का पूणतया विनाश करे । (१३)

जैसे गरुड को देखकर सर्प शान्त हो जाते हैं उसी प्रकार (विष्णु) के सङ्ग की धार के तीव्र तेज से मेरे अहितकारी इतप्रभ होकर तत्काल सौम्य बन जायें । (१४)

समस्त कूष्माण्ड, यक्ष, दैत्य, निशाचर, प्रेत, विनायक, क्रूर मनुष्य, जृम्भक, पक्षी, सिंहादि पशु एव शीघ्र दंष्ट्र वाले सर्प ये सभी विष्णु के चक्र के वेग से आहत होकर मेरे प्रति सौम्य हो जायें । (१५-१६)

सभी चित्त की दृष्टियों का हरण करने वाले, स्मृतिहारी, बल एवं ओज के अपहरक, कामि व विभवसक, सुखों के विनाशक एवं लक्षणों के विनाशक सभी कूष्माण्डादि (मृत प्रेत) विष्णु के चक्र के वेग से आहत होकर नष्ट हो जायें । (१७-१८)

देवदेव वासुदेव के कीर्तन से सुखे बुद्धि, मन तथा

ममाम्नु देवैर्दयस्य पातुर्दयस्य क्रीडनात् ॥ १९
 वृष्टे पुरस्तादथ दक्षिणोपे
 रिहोपकृष्यान्नु जनादेनो हरिः ।
 तनीटभोमानमनन्तमच्युतं
 जनादेने प्रविपयितो न मोदति ॥ २०
 यत परं ब्रह्म हरिस्तथा परं
 जगत्सर्वमपि न परं पेशयः ।
 शून्येन तेनाच्युतनामहीतना-
 स्त्रनाशमेतु विविधं ममानुभम् ॥ २१
 इत्यनाशमरथायं कृत्वा वै रिष्णुपञ्जरम् ।
 मन्त्रिणोऽनावपि पत्नी राशयः मनुपाटयन् ॥ २२
 एतो द्वित्रिपुत्रकायां श्यायां रत्नोत्पलः ।
 निरुत्थेयः गदगा सम्यो मामचतुष्टयम् ॥ २३
 पाण्डु द्वित्रय्य देवो ममादिधे ममापितः ।
 वाते जप्यारमानेऽग्री तं ददम निशाचरम् ॥ २४
 दानं दारयोःनाहं कान्दिर्भाकं हवीत्रयम् ।
 तं दद्या कृपयापितः ममाऽनास्य निशाचरम् ॥ २५

परञ्चागमने हेतुं म चाचट यथातवम् ।
 इत्यनाशमनो द्रष्टुं रथया तेजसः चितिम् ॥ २६
 कश्चिन्ना च तदृष्टः फारणं विविधं सत् ।
 प्रगीतैरवधौडु विप्रं निर्दिष्टाः शून्येन कर्मणा ॥ २७
 पृथि पापानि मया कृतानि पशतो हताः ।
 कृताः शिष्यो मया पशतो विषयाः पुत्रवर्जिताः ।
 अनाशतो च मरदानामन्परानां धरः कृतः ॥ २८
 तस्मान् पापादहं मौषमिच्छानि स्वत्प्रनादतः ।
 पापप्रशमनायानं कृत मे धर्मदशनम् ॥ २९
 पापस्यास्य धरकरतुपदेशं प्रयच्छ मे ।
 तस्य तद् वचनं ध्रुव्या राशमस्य द्विजोत्तमः ॥ ३०
 वचनं प्राह धर्मोत्तमा हेतुमथ मुभाषितम् ।
 फणं द्रुमभारस्य सत्वव्य निशाचर ।
 गर्हय ममायाता जिज्ञासा धर्मपरमनि ॥ ३१
 राशम उवाच ।
 एवं वै ममागतोऽम्बुवा शिमोऽहं रथया पलात् ।
 एव भंगगती ब्रह्म ज्ञातो निर्बेद उत्तमः ॥ ३२

इन्द्रियों की सम्पत्ति प्राप्त हो । (१६)
 जनादेन हरि मेरे कंठे, आगे, दाएं, बायें एवं दिशोंकी
 में विधा रहें। स्तुति करने योग्य दशन अलग अच्युत उन
 जनादेन को प्रविषात करने वाला मनुष्य दुःखी नहीं
 होना । (२०)
 जैसे ब्रह्म केष्ठ है उसी प्रकार हरि भी केष्ठ है। वे
 केष्ठ ही जगत्सर्वम् है। अच्युत के नाम के शून्येन के
 धम शस्य द्वारा मेरे विविध अंगुण नष्ट हो जायें। (२१)
 इस प्रकार अपनी रक्षा हेतु विष्णुपञ्जर वा किरास
 पर वै अभिषिक्त थे। यह बटवान् राशम कनरी और
 दीक्षा । (२२)
 हे देवर्षि! तदनन्तर द्विज द्वारा विनियोजित रथ (की
 शीमा) में पहुँचने पर वह राशम गतिहीन होकर पार
 माम तक जब तक ब्राह्मण की समाधि समाप्त
 नहीं हुई पड़ा रहा। जब समाप्त होने पर उन्होंने,
 इस निशाचर को देखा । (२३-२४)
 उन्होंने हीन, बटहीन, हतोत्साह, भयाङ्कन, तथा
 तेजोहीन उस निशाचर को देखकर कृपापूर्वक उसे आपासन
 प्रदान किया और उसके आने का कारण पूछा। उसने

शयने पयार्थ इत्यनेन देवने वे अपने आने पर तेज वा
 नाम होगा बताया। तदनन्तर अन्य अनेक कारणों वा
 उत्पन्न कर अपने धर्म से दुःखी उस राशम ने
 ब्राह्मण से कहा आज प्रसन्न हो जायें। (२५-२७)
 जैसे बटुन पाप विधा है। जैसे अनेक मनुष्यों को माघ।
 जैसे बटुन भी शिष्यों को विषया एवं पुत्रवर्द्धन कर दिया
 तथा निरपराध धर्य प्राणियों वा नाश किया है। (२८)
 आपकी कृपा ने मैं उन पापों से मुक्त होना पाहता
 हूँ। अब आप मुझे पापों वा नाश करने में समर्थ धर्म
 का उपदेश दें। (२९)
 आप मुझे इस पाप को नष्ट करने वाला उपदेश प्रदान
 करें। उस राशम के उस वचन को सुनकर धर्मोत्तमा
 द्विजोत्तम ने हेतुमुक्त मधुर वचन कहा— (३०)
 हे निशाचर! प्रर इत्यनेन के होते हुए भी सहसा
 धर्मोत्तमां में तुम्हारी जिज्ञासा किसे उत्पन्न हुई? (३१)
 राशम ने कहा—मैं आज जैसे ही आपके समीप
 आया रहा द्वारा बलपूर्वक बँक दिया गया। हे
 ब्रह्मन्! आपके संसर्ग से मुझे उत्तम वैराग्य हो
 गया। (३२)

का सा रक्षा न तां वेत्ति वेधि नास्याः परायणम् ।

यस्याः संसर्गमासाद्य निर्वेदं प्रापितं परम् ॥ ३३

त्वं कृपां कुरु धर्मज्ञ मय्यनुशोभावाह ।

यथा पापापनोदो मे भवत्यार्थं तथा कुरु ॥ ३४

पुलस्त्य उवाच ।

इत्येवमुक्तः स मुनिस्तदा वै तेन रक्षसा ।

प्रत्युवाच महाभागो विमृश्य सुचिरं मुनिः ॥ ३५

भृदिरुवाच ।

यन्ममाहोपदेशार्थं निर्धिण्णः स्वेन कर्मणा ।

युक्तमेतद्दि पापानां निवृत्तिरूपकारिका ॥ ३६

करिष्ये यातुधानानां नन्दवहं धर्मदेशनम् ।

तान् संपृच्छ द्विजान् सौम्य ये वै प्रवचने रताः ॥ ३७

एवमुक्त्वा यथौ विप्रश्चिन्तामाप स राक्षसः ।

कथं पापापनोदः स्यादिति चिन्ताकुलेन्द्रियः ॥ ३८

न चखाद स सत्त्वानि क्षुधा संघाथितोऽपि सन् ।

पण्डे पण्डे तदा काले बन्तुमेकममक्षयत् ॥ ३९

मैं यह नहीं जानता कि जिसका ससर्ग पाकर मुझे श्रेष्ठ वैराग्य हुआ है वह रक्षा कैसे है एव उसका आशय कौन है ? (३३)

हे धर्मज्ञ ! हे आर्य ! आप कृपा करें । मेरे ऊपर दया लक्ष्यें । ज्ञान वह कार्य करें जिससे मेरे पापों का विनाश हो जाय । (३४)

पुलस्त्य ने कहा—उस राक्षस के ऐसा कहने पर उन महाभाग मुनि ने बहुत देर विचार कर उत्तर दिया । (३५)

भृदि ने कहा—अपने कर्म से दुःखी होकर तुमने मुझसे जो उपदेश के लिये कहा है वह उचित ही है । पापों की निवृत्ति से उपकार होता है । (३६)

परन्तु मैं राक्षसों को धर्मोपदेश नहीं दूँगा । अतः हे सौम्य ! तुम उन ब्राह्मणों से पूछो जो प्रवचन करते हैं । (३७)

ऐसा कहकर यह ब्राह्मण चला गया । यह राक्षस चिन्तामत्त हो गया । 'मेरे पाप कैसे दूर होंगे' इस विषय की चिन्ता से उसकी इन्द्रियाँ आकुल हो गई । (३८)

मूख से बलेश पाने पर भी उसने प्राणियों को नहीं खाया । प्रत्येक छठवें समय एक जन्तु का आहार करने लगा । (३९)

स कदाचित्क्षुधाविष्टः पर्यटन् विष्टे वने ।

ददर्शोथ फलाहारमागतं ब्रह्मचारिणम् ॥ ४०

गृहीतो रक्षसा तेन स तदा मुनिदारकः ।

निराशो जीविते प्राह सामपूर्थं निशाचरम् ॥ ४१

ब्राह्मण उवाच ।

भो भद्र ब्रूहि यत् कार्यं गृहीतो येन हेतुना ।

तदनुब्रूहि भद्रं ते अयमस्म्यनुश्राधि माम् ॥ ४२

राक्षस उवाच ।

पण्डे काले त्वमाहारः क्षुधितस्य समागतः ।

निःश्रीकस्यातिपापस्य निर्घृणस्य द्विजद्वहः ॥ ४३

ब्राह्मण उवाच ।

यद्यवश्यं त्वया चाह भक्षित्वथौ निशाचर ।

आयास्यामि तवाद्यैव निवेद्य गुरवे फलम् ॥ ४४

सुवर्धमेतदागत्य यत्फलग्रहणं कृतम् ।

ममात्र निष्ठा प्राप्तस्य फलानि विनिषेदितुम् ॥ ४५

स त्वं मुहूर्तमात्रं मामत्रैवं प्रतिपालय ।

किसी समय भूख से पीड़ित होकर विशाल वन में घूमते हुए उसने फल लेने के लिए आए हुए एक ब्रह्मचारी को देखा । (४०)

राक्षस ने मुनिपुत्र को पकड़ लिया । तदनन्तर जीवन से निराश होकर उस ब्रह्मचारी ने सामयुक्त वचन कहा । (४१)

ब्राह्मण ने कहा—हे भद्र ! यह वतलओ कि तुम्हारा क्या कार्य है और तुमने मुझे क्यों पकड़ा है ? तुम्हारा कल्याण हो । मैं उपस्थित हूँ । मुझे आता दो । (४२)

राक्षस ने कहा—श्रीहीन, धृतिपापी, क्रूर एवं ब्राह्मण द्वेषी मुझ भूखे के समीप छठवें समयतुम आहार के रूप में आये हो । (४३)

ब्राह्मण ने कहा—हे निशाचर ! यदि अवश्य ही तुम मुझे खाना चाहते हो तो मैं यह फल गुरु को निवेदित करके अभी आता हूँ । (४४)

गुरु के लिए यहाँ आकर जो मैंने फल समझ किया है, उसे उन्हें समर्पित करने के लिए मुझे भद्रा है । (४५)

अतः तुम यहाँ मुहूर्त मात्र मेरी प्रतीक्षा करो जब तक मैं

निवेद्य गुरवे यावदिहागन्ध्याम्यहं फलम् ॥ ४६
राष्ट्रम् उवाच ।

पण्डे काले न मे शक्यन् कश्चिद् ग्रहणमागतः ।
प्रतिमुच्येत देवोऽपि इति मे पापजीविका ॥ ४७
एक एनात्र मोक्षस्य तव हेतुः शृणुष्व तत् ।
सुश्राम्यहमसंदिग्धं यदि तत्त्वरते भवान् ॥ ४८
ब्राह्मण उवाच ।

गुरोर्यन्न विरोधाय यन्न धर्मोपरोधकम् ।
तत्तरिष्याम्यटं रक्षो यन्न प्रतदहं मम ॥ ४९
राष्ट्रम् उवाच ।

मया निमर्गतो प्रन्नन् जातिदोषाद् विशेषतः ।
निर्विर्वर्जनं चित्तेन पापकर्म मदा कृतम् ॥ ५०
आनाल्यान्मम पापेषु न धर्मोऽस्तु तं मनः ।
तत्पापसंश्रयान्मोक्षं प्राप्नुयां येन तद् वद ॥ ५१
यानि पापानि कर्माणि गालत्राचारितानि च ।
दुष्टां योनिमिमां प्राप्य तन्मुक्तिं कथय द्विज ॥ ५२

इस पत्र को गुरु को देकर लौट आऊँ । (४६)

राक्षस ने कहा—हे ब्रह्मन् ! दृष्टव्ये समय मेरी पण्डे मे
आया हुआ कोई देवता भी मुक्त नहीं हो सता। यही
मेरी पापजीविका है । (४७)

तुम्हारी मुक्ति का एक ही उपाय है, उसे सुनो। यदि
आप उसे करें तो निरसन्देह मैं आपको छोड़
दूँगा । (४८)

ब्राह्मण ने कहा— हे राष्ट्रस ! यदि वह कार्य गुरु का
विरोधी, धर्म का अवरोधक एव मेरे मन को त्रिष्टित करने
वाला न होगा तो मैं उसे कहूँगा । (४९)

राक्षस ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मैंने स्वभावत एव
विशेषत जातिदोषप्रश तथा विवेकरहित चित्त के कारण
सदा पापकर्म किया । (५०)

वचन से ही मेरा मन धर्म में नहीं अपितु पाप मे
लगा रहा। अत वह उपाय बतलाओ जिससे पाप का
क्षय होकर मेरा मोक्ष हो जाय । (५१)

हे द्विज ! इस दुष्ट योनि को पाकर अज्ञतावश
मैंने जिन पापकर्मों का आचरण किया है, उनसे मुक्ति का
उपाय बतलाओ । (५२)

यद्येत् द्विजपुत्र त्वं समाख्यात्यस्यशेषतः ।
ततः क्षुधातीन्मत्तस्त्वं नियतं मोक्षमाप्स्यसि ॥ ५३
न चेत् तत्पापशीलोऽहमत्यर्थं क्षुत्पिपासितः ।
पण्डे काले नृश्रमात्मा भक्षयिष्यामि निर्घृणः ॥ ५४
पुलस्त्य उवाच ।

एवमुक्तो ह्यनिमुत्तमेन घोरेण रक्षसा ।
चिन्तामयाप महतीमशक्तस्तदुदीरणे ॥ ५५
स पिमृश्व चिरं विप्रः शरणं जातवेदसम् ।
जगाम ज्ञानदानाय संशयं परमं गतः ॥ ५६
यदि शुभ्रपितो महिर्गुरुद्वयपणादसु ।
नतानि वा सुचीर्णानि समार्चिः पातु मां ततः ॥ ५७
न मातर न पितरं गौररेण यथा गुरुम् ।
नर्देवात्रगन्तामि तत्रा मा पातु पावकः ॥ ५८
यथा गुरुं न मनसा कर्मणा नचमाऽपि वा ।
अवजानाम्यहं तेन पातु सत्येन पावकः ॥ ५९
इत्येवं मनसा सत्यान् कुर्वतः शपयान् पुनः ।

हे ब्राह्मणपुत्र ! यदि तूम यह पूर्णरूप से मुझे बतलाओ
तो मुझ क्षुधात्से से अवरय छुटारा पा जाओगे । (५३)
यदि ऐसा नहीं हुआ तो अत्यधिक भूला प्यासा निष्ठुर
मैं दृष्टवे समय (प्रातः दुष्ट) आपको खा जाऊँगा । (५४)

पुलस्त्य ने कहा—इस भयकर राक्षस के ऐसा कहने
पर मुनिपुत्र (राक्षस की पापमुक्ति का उपाय) कहने मे
असमर्थ होने से बहुत चिन्तित हुआ । (५५)

चिरकाल तक विचार करने के उपरान्त अत्यन्त
संशयापन्न ब्राह्मण ज्ञानदान के निमित्त अग्नि की शरण में
गया । (५६)

(वरने कहा—) हे अग्नि ! गुरु की सेवा के पश्चात्
यदि मैंने आपकी सेवा की हो तथा ब्रतों का भली भाँति
पालन किया हो तो आप समार्चि मेरी रक्षा करें । (५७)

हे अग्नि ! यदि मैंने माता और पिता से गौरव में
गुरु को सदा ही अधिक महत्त्व दिया हो तो आप मेरी
रक्षा करें । (५८)

यदि मन, कर्म एवं वाणी से भी मैंने गुरु का अपमान
न किया हो तो उस सत्य के कारण अग्नि मेरी रक्षा
करें । (५९)

इस प्रकार मन से सत्य शपथों का लेने वाले उसके

सप्तर्षिणा समादिष्टा प्रादुरासीत् सरस्वती ॥ ६०
 सा प्रोवाच द्विजसुतं राक्षसप्रहणाकुलम् ।
 मा भैद्विजसुताहं त्वां मोक्षयिष्यामि संकटात् ॥ ६१
 यदस्य रक्षसः श्रेयो जिहास्ये संस्थिता तव ।
 त्वं सर्वं कथयिष्यामि ततो मोक्षमवाप्स्यसि ॥ ६२
 अटश्या रक्षसा तेन प्रोक्त्वेत्यं सा सरस्वती ।
 अदर्शनं गता सोऽपि द्विजः प्राह निशाचरम् ॥ ६३
 ब्राह्मण उवाच ।

श्रूयतां तव यच्छ्रेयस्तयाऽन्वेयां च पापिनाम् ।
 समस्तपापशुद्धयर्थं पुण्योपचयदं च यत् ॥ ६४
 प्रातरुत्थाय जज्ञव्यं मघ्याह्नेऽह्नःक्षयेऽपि वा ।
 असंशयं सदा जप्यो जपतां पुष्टिशान्तिदः ॥ ६५
 ॐ ह्रीं कृष्णं हृषीकेशं वामुदेवं जनार्दनम् ।
 प्रणतोऽस्मि जगन्नाथं स मे पापं व्यपोहतु ॥ ६६
 चराचरसुहं नाथं गोविन्दं शेषशायिनम् ।

समस्त अग्नि के आदेश से सरस्वती प्रकट हुई । (६०)
 उन्होंने राक्षस के द्वारा पकड़े जाने के कारण व्याकुल
 ब्राह्मण-पुत्र से कहा—हे ब्राह्मणपुत्र ! डरो मत । मैं तुम्हें
 सरुत से मुक्त करूँगी । (६१)

तुम्हारे जिह्वा पर स्थित होकर मैं राक्षस के श्रेयस्वर
 समस्त विषयों का कथन करूँगी । तदनन्तर तुम मुक्त हो
 जाओगे । (६२)

उस राक्षस से अटश्य रहती हुई सरस्वती ऐसा कहने
 के उपरान्त तिरोहित हो गई । उस ब्राह्मण ने निशाचर
 से कहा । (६३)

ब्राह्मण ने कहा—सुनो ! तुम्हारे और अन्य पापियों
 के लिए श्रेयस्वर, समस्त पापों की क्षुद्रि एवं पुण्यवर्द्धन
 करने वाला (त्वयं मैं करता हूँ ।) (६४)

प्रातःकाल ७३ कर, मघ्याह्न मे अथवा सायंराल
 इत जपनीय श्लोत्र वा रादा जप करना चाहिए । यह जप
 जपकर्ता को निरानन्देह शान्ति एवं पुष्टि प्रदान करता
 है । (६५)

ओ हृदि, कृष्ण, हृषीकेश, वामुदेव, जनार्दन, जगन्नाथ
 को मैं प्रणाम करता हूँ । वे मेरे पाप को दूर करें । (६६)
 चराचर के गुरु, नाथ, शेषरायी, परम देव गोविन्द को

प्रणतोऽस्मि परं देवं स मे पापं व्यपोहतु ॥ ६७
 शङ्खिनं चक्रिणं शार्ङ्गधारिणं स्रग्धरं परम् ।
 प्रणतोऽस्मि पतिं लक्ष्म्याः स मे पापं व्यपोहतु ॥ ६८
 दामोदरमुदारार्थं पुण्डरीकाक्षमच्युतम् ।
 प्रणतोऽस्मि स्तुतं स्तुत्यै, स मे पापं व्यपोहतु ॥ ६९
 नारायणं नरं शौरिं माधवं मधुसूदनम् ।
 प्रणतोऽस्मि धराधारं स मे पापं व्यपोहतु ॥ ७०
 केशवं चन्द्रसूर्याक्षं कंसकेशिनिपूदनम् ।
 प्रणतोऽस्मि महाबाहुं स मे पापं व्यपोहतु ॥ ७१
 श्रीवत्सवक्षसं श्रीशं श्रीधरं श्रीनिकेतनम् ।
 प्रणतोऽस्मि ध्रियः कान्तं स मे पापं व्यपोहतु ॥ ७२
 यमीशं सर्वभूतानां व्यायन्ति यतयोऽक्षरम् ।
 वामुदेवमनिर्देश्यं तमस्मि शरणं गतः ॥ ७३
 समस्तालम्बनभ्यो यं व्यावृत्त्य मनसो गतिम् ।
 व्यायन्ति वामुदेवारुच्यं तमस्मि शरणं गतः ॥ ७४

मैं प्रणाम करता हूँ । वे मेरे पाप को दूर करें । (६७)
 शंखधारी, चक्रधारी, शार्ङ्गधारी एवं उत्तम मालधारी,
 लक्ष्मीपति को मैं प्रणाम करता हूँ । वे मेरे पाप को दूर
 करें । (६८)

दामोदर, उदारराक्ष, पुण्डरीकाक्ष, स्तुतिपात्रों से स्तुत
 अच्युत को मैं प्रणाम करता हूँ । वे मेरे पापों को दूर
 करें । (६९)

नारायण, नर, शौरि, माधव, मधुसूदन एवं धराधार
 को मैं प्रणाम करता हूँ । वे मेरे पाप को दूर करें । (७०)
 चन्द्र एवं सूर्यरूपी नेत्रों वाले, कंस और केशिनिपूदन
 महाबाहु केजय को प्रणाम करता हूँ । वे मेरे पापों को
 दूर करें । (७१)

वक्ष रथल पर श्रोत्रस घारण करने वाले, भीम, भीष्म,
 श्रीनिकेतन एवं श्रीमान्त को मैं प्रणाम करता हूँ । वे मेरे
 पापों को दूर करें । (७२)

संयमी लोग जिन सर्वभूतों के स्वामी, अक्षर एवं
 अनिर्देश्य वामुदेव का ध्यान करने हैं मैं उनकी शरण
 ग्रहण करता हूँ । (७३)

(यतिगण) अल्प समस्त आलम्बनों से मन की गति को
 छोटा कर जिस वामुदेव नामक ईश्वर का ध्यान करने हैं
 मैं उनकी शरण में जाता हूँ । (७४)

सर्वगं सर्वभूतं च सर्वस्याधारमीधरम् ।
वासुदेवं परं ब्रह्म तमस्मि शरणं गतः ॥ ७५
परमात्मानमव्यक्तं य प्रथान्ति सुमेधसः ।
कर्मक्षयेऽक्षयं देवं तमस्मि शरणं गतः ॥ ७६
पुण्यपापविनिर्मुक्तता यं प्रविश्य पुनर्भवम् ।
न योगिनः प्राप्नुवन्ति तमस्मि शरणं गतः ॥ ७७
ब्रह्मा भूत्वा जगत् सर्वं मदेवासुरमातृषुम् ।
यः सृजत्यच्युतो देवस्तमस्मि शरणं गतः ॥ ७८
ब्रह्मत्वे यस्य वक्त्रेभ्यश्चतुर्वेदमयं वपुः ।
प्रभुः पुरातनो जज्ञे तमस्मि शरणं गतः ॥ ७९
ब्रह्मरूपधरं देवं जगद्योनि जनार्दनम् ।
स्रष्टृत्वे तं स्थितं सृष्टौ प्रणतोऽस्मि सनातनम् ॥ ८०
स्रष्टा भूत्वा स्थितो योगी स्थितावसुरसूदनः ।
समादिपुरुषं विष्णुं प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥ ८१
धृता मही हता दैत्याः परित्रातास्तथा सुराः ।

मैं सर्वगत, सर्वभूत, सर्वाधार, ईश्वर एव वासुदेव नामक पर ब्रह्म की शरण जाता हूँ । (७५)

उत्तम मेधायुक्त लोग कर्म का क्षय होने पर जिन अव्यक्त, अक्षय, परमात्मदेव को प्राप्त करते हैं, मैं वनना शरणागत हूँ । (७६)

पुण्य पाप से मुक्त योगि लोग जिन्हें पारम पुन जन्म नहीं लेते, मैं उनकी शरण में जाता हूँ । (७७)

ब्रह्मा का रूप धारण कर देवता, असुर एवं मनुष्यों से युक्त समस्त जगत की सृष्टि करने वाले अच्युत देव की मैं शरण में जाता हूँ । (७८)

ब्रह्मा का रूप धारण करने पर जिनके मुखों से चतुर्वेदात्मक शरीरधारी पुरातन प्रभु का प्रादुर्भाव हुआ था मैं उनकी शरण में जाता हूँ । (७९)

मैं सृष्टि के लिये स्रष्टारूप से स्थित ब्रह्मरूपधारी सनातन जगद्योनि जनार्दन की प्रणाम करता हूँ । (८०)

सृष्टि कर्ता होकर योगी रूप में विद्यमान एवं स्थिति-पाल मे राक्षसों का नाश करने वाले आदिपुरुष जनार्दन की मैं प्रणाम करता हूँ । (८१)

मैं इन आदि ईश्वर जनार्दन विष्णु की प्रणाम करता

येन तं विष्णुमाद्येशं प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥ ८२
यज्ञैर्यजन्ति य विद्या यज्ञेश यज्ञभावनम् ।
तं यज्ञपुरुषं विष्णुं प्रणतोऽस्मि सनातनम् ॥ ८३
पातालवाधीभूतानि तथा लोकान् निहन्ति यः ।
तमन्तपुरुषं स्रष्टं प्रणतोऽस्मि सनातनम् ॥ ८४
संभक्षित्या सरुलं यथासृष्टमिदं जगत् ।
यो वै सृत्यति स्रष्टात्मा प्रणतोऽस्मि जनार्दनम् ॥ ८५
सुरासुराः पितृगणाः यक्षगन्धर्वाश्चताः ।
संभूता यस्य देवस्य सर्वगं तं नमाम्यहम् ॥ ८६
समस्तदेवाः सरुला मनुष्याणां च जातयः ।
यस्यांशभूता देवस्य सर्वगं तं नतोऽस्म्यहम् ॥ ८७
वृक्षगुरुमादयो यस्य तथा पशुमृगादयः ।
एकांशभूता देवस्य सर्वगं तं नमाम्यहम् ॥ ८८
यस्मान्नाभ्यत परं किंचिद् यस्मिन् सर्वं महात्मनि ।
यः सर्वमध्यगोऽजन्तः सर्वगं तं नमाम्यहम् ॥ ८९

हूँ जिन्होंने पृथ्वी को धारण किया है, देवों को मारा है एवं देवों का परित्राण किया है (८२)

ब्राह्मण लोग यज्ञों द्वारा जिनकी आराधना करते हैं मैं इन यज्ञपुरुष यज्ञभावन, यज्ञेश सनातन विष्णु को प्रणाम करता हूँ । (८३)

मैं पाताललोक निवासी प्राणियों तथा लोकों का विनाश करने वाले उन अन्त पुरुष सनातन स्रष्ट को प्रणाम करता हूँ । (८४)

यथासृष्ट इस समस्त जगत का भक्षण कर सृष्ट्य करने वाले स्रष्टात्मा जनार्दन को मैं प्रणाम करता हूँ । (८५)

मैं उन सर्वगामी देव को प्रणाम करता हूँ जिनसे समस्त सुर, असुर, पितृगण, यक्ष, गन्धर्व एवं राक्षस उत्पन्न हुए हैं । (८६)

मैं उन सर्वगामी देव को प्रणाम करता हूँ जिनके अंश से समस्त देव एवं मनुष्यों की सभी जातियाँ उत्पन्न हुई हैं । (८७)

वृक्ष, गुरुन आदि तथा पशु, मृग आदि जिन परमदेव के एक अंश रूप हूँ मैं इन सर्वगामी देव को प्रणाम करता हूँ । (८८)

मैं इन सर्वव्यापी देव को प्रणाम करता हूँ जिनसे

यथा सर्वेषु भूतेषु गूढोऽग्निरिव दारुण ।
 विष्णुर्वे तया पापं ममाशेषं प्रणश्यतु ॥ ९०
 यथा विष्णुमयं सर्वं ब्रह्मादि सचराचरम् ।
 यच्च ज्ञानपरिच्छेद्यं पापं नश्यतु मे तथा ॥ ९१
 शुभाशुभानि कर्माणि रजःसत्त्वतमांसि च ।
 अनेकजन्मकर्मोत्थं पापं नश्यतु मे तथा ॥ ९२
 यन्निश्चायां च यत्प्रातर्यन्मध्याह्नापराह्णयोः ।
 संध्ययोश्च कृतं पापं कर्मणा मनसा गिरा ॥ ९३
 यत् तिष्ठता यद् व्रजता यच्च शय्यागतैन मे ।
 कृतं यदशुभं कर्म कायेन मनसा गिरा ॥ ९४
 अज्ञानतो ज्ञानतो वा यदाच्छलितमानसैः ।
 तत् क्षिप्रं विलयं यातु वासुदेवस्य कीर्तनात् ॥ ९५
 परदारपरद्वेषवाञ्छद्रोद्वेदोद्धवं च यत् ।
 परपीडोद्धवं निन्दां कुर्वता यन्महात्मनाम् ॥ ९६
 यच्च भोज्ये तथा पेये भक्ष्ये चोष्ये विलेहने ।

भिन्न कोई वस्तु नहीं है एव जिन महात्मा मे समस्त
 यदार्थ रियत है तथा जो सभी के अन्न प्रविष्ट और
 अनन्त हैं । (८९)

षाष्ठ मे अग्नि सदृश सर्वभूतों मे निगूढ विष्णु मेरे
 समस्त पापों को नष्ट करें । (९०)

पर्वोकि विष्णु से ब्रह्मादि सम्पूर्ण चराचरात्मक जगत्
 ज्वाला है तथा जो ज्ञानपरिच्छेद्य है अत मेरे पाप
 नष्ट हो जायें । (९१)

(विष्णु की हृदा से) मेरे शुभाशुभ कर्म, सत्त्व, रज
 एव समोगुण तथा अनेक जन्मों के कर्म से उत्पन्न पाप
 नष्ट हो जायें । (९२)

शरीर, कर्म, मन एव वाणी द्वारा रात्रि, प्रातः, मध्याह्न,
 क्षयराह्न एव सन्ध्याओं में चलने, बैठने एव सोते हुए ज्ञान
 या अज्ञान पूर्वक अथवा अहङ्कार विचलित मन से मीने जो
 शुभ या अशुभ पाप कर्म किये हों वे वासुदेव के कीर्तन से
 शीघ्र विलीन हो जायें । (९३-९५)

परस्त्री रूप परद्वेष की आकांक्षा, द्रोह, परपीडा,
 महात्माओं की निन्दा तथा भोज्य, पेय, भद्रय चोप्य एवं
 विलेहन के कारण उत्पन्न समस्त पाप इस प्रकार विलीन

तद् यातु विलयं तोये यथा लवणभाजनम् ॥ ९७
 यद् बाल्ये यच्च कौमारे यत् पाप यौवने मम ।
 वयःपरिणतौ यच्च यच्च जन्मान्तरे कृतम् ॥ ९८
 तन्नारायण गोविन्द हरिकृष्णेश कीर्तनात् ।
 प्रयातु विलयं तोये यथा लवणभाजनम् ॥ ९९
 विष्णवे वासुदेवाय हरये केशवाय च ।
 जनार्दनाय कृष्णाय नमो भूयो नमो नमः ॥ १००
 भविष्यन्नरकृष्णाय नमः कंसविघातिने ।
 अरिष्टकेशिचाणूरदेवारिक्षिपिणे नमः ॥ १०१
 कोऽन्यो वलेर्वञ्चयिता त्वामृते वै भविष्यति ।
 कोऽन्यो नाशयति बलाद् दर्पं हृदयभूपतेः ॥ १०२
 कः करिष्यत्यथाऽन्यो वै सागरे सेतुपन्थनम् ।
 वधिष्यति दशग्रीवं कः सामात्यपुत्रःसरम् ॥ १०३
 कस्वामृतेऽन्यो नन्दस्य गोकुले रक्षिष्यति ।
 प्रलम्भतनादीनां त्वामृते मधुसूदन ।

हो जायें जैसे जल मे लवण पात्र विलीन हो जाता
 है । (९६-९७)

नारायण, गोविन्द, हरिकृष्ण, ईश का कीर्तन करने से
 बाल्यकाल, कौमार्य, यौवन, वार्द्धक्य एवं जन्मान्तर मे किये
 गये मेरे समस्त पाप इस प्रकार विलीन हो जायें जैसे जल मे
 लवणभाजन विलीन हो जाता है । (९८-९९)

हरि, विष्णु, वासुदेव, केशव, जनार्दन, कृष्ण को
 पुन पुन नमस्कार है । (१००)

भारी नरक का नाश करने वाले कंसविघाती को नमस्कार
 है । अरिष्ट, केशि एवं चाणूर आदि राक्षसों के क्षयकर्ता को
 नमस्कार है । (१०१)

आपके अनिरिक्त कौन पति को छल सक्ता था एवं
 आपने विना हेहयनरेश के दर्प को वीन नष्ट कर सक्ता
 था ? (१०२)

आपने अनिरिक्त सागर मे सेतुपन्थन कौन कर
 सक्ता है तथा अमात्य आदि सहित दशग्रीव का धप कौन
 कर सक्ता था ? (१०३)

हे मधुसूदन ! आपके अनिरिक्त ऐसा कौन है जो नन्द
 के गोकुल मे स्नेहययी भीडा कर सके ? देवदेव ! आपके

निहन्ताऽप्यथवा शास्ता देवदेव भविष्यति ॥ १०४
जपत्रेवं नरः पुण्यं वैष्णवं धर्ममुत्तमम् ।
इष्टानिष्टप्रसंगेभ्यो ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ॥ १०५
कृतं तेन तु यद् पापं समग्रमन्तराणि वै ।
महापातकसंज्ञं वा तथा चैरोपपातकम् ॥ १०६
यज्ञादीनि च पुण्यानि जपहोमव्रतानि च ।
नाशयेद् योगिनां सर्वमामपात्रमिवाम्भसि ॥ १०७
नरः संवत्सरं पूर्णं तिलपात्राणि पोडश ।
अहन्यहनि यो दद्यात् पठत्येतच्च तत्समम् ॥ १०८
अविलुप्तब्रह्मचर्यं संप्राप्य स्मरणं हरेः ।
विष्णुलोकमवाप्नोति सत्यमेतन्मयोदितम् ॥ १०९
यथैतन् सत्यमुक्तं मे न ह्यल्पमपि मे मृषा ।
राक्षसस्त्वस्तसर्वाङ्गं तथा मामेष मुञ्चतु ॥ ११०
पुलस्त्य उवाच ।
एवमुच्चारिते तेन मृक्तो विप्रस्तु रक्षसा ।
अक्रामेन द्विजो भूयस्तमाह रजनीचरम् ॥ १११

अतिरिक्त प्रलम्ब एव पूतनादि वा यद्य एवं नियमन यौन कर
सकृता वा ? (१०४)

इस धर्ममय उत्तम वैष्णव मन्त्र का जप करने वाला मनुष्य
इष्टानिष्ट-प्रसङ्ग तथा ज्ञान या अज्ञानपूर्वक सात जन्मों
में किये अपने महापातकों, उपपातकों, यज्ञ, होम एव
व्रतों के पुण्य कर्मों के भी योग को इस प्रकार नष्ट कर
देता है जैसे जल में मिट्टी का कषा चढ़ा नष्ट हो जाता
है । (१०५-१०७)

मैं यह सत्य कहता हूँ कि अखण्डित ब्रह्मचर्य एव
हरि-स्मरणपूर्वक एक वर्ष तक इस स्तोत्र के पाठ के साथ
प्रतिदिन सोलह तिलपूर्ण पात्रों का दान करने वाला मनुष्य
विष्णुलोक प्राप्त करता है । (१०८-१०९)

यदि मैंने यह सत्य कहा हो एव इसमें अल्पमात्र भी
असत्य न हो तो यह राक्षस सर्वाङ्गवीहित मुझे
छोड़ दे । (११०)

पुलस्त्य ने कहा—उसके ऐसा कहते ही राक्षस ने
प्राण को छोड़ दिया । पुनः द्विज ने निष्कम भाव से
राक्षस से कहा । (१११)

प्राण ने कहा—हे भद्र ! सरस्वती देवी ने जिस

ब्राह्मण उवाच ।

एतद् भद्र मया क्वातं तव-पातकनाशनम् ।
विष्णोः सारस्वतं स्तोत्रं यज्ञगाद सरस्वती ॥ ११२
हुताशनेन प्रहिता मम जिह्वाप्रसंस्थिता ।
जगादैनं स्तवं विष्णोः सर्वेषां चोपशान्तिदम् ॥ ११३
अनेनैव जगन्नाथं त्वमाराधय केशवम् ।
ततः शापापनोदं तु स्तुते लप्स्यसि केशवे ॥ ११४
अहर्निशं हृषीकेशं स्ववेनानेन राक्षस ।
स्तुहि भक्ति दृढां कृत्वा ततः पापाद् विमोक्ष्यसे ॥ ११५
स्तुतो हि सर्वपापानि नाशयिष्यत्यसंशयम् ।
स्तुतो हि भक्त्या नृणां वै सर्वपापहरो हरिः ॥ ११६
पुलस्त्य उवाच ।

ततः प्रणम्य तं विभ्रं प्रसाद्य स निशाचरः ।
तदैव तपसे श्रीमान् शालग्राममगाद् यशो ॥ ११७
अहर्निशं स एवैनं जपन् सारस्वतं स्तवम् ।
देवक्रियारतिभूत्वा तपस्तेपे निशाचरः ॥ ११८

पापनाशक सारस्वत विष्णु स्तोत्र को कहा है उसे मैंने तुमसे
कह दिया । (११२)

अग्निदेव से भेजी गयी एवं मेरी जिज्ञा के अग्रभाग में
स्थित (सरस्वती) ने सभी को शान्ति देने वाले इस विष्णु-
स्तोत्र को कहा है । (११३)

तुम इसीसे जगत्प्रथमी केशव की आराधना करो ।
तदनन्तर केशव की स्तुति करने से तुम शाप से मुक्त हो
जाओगे । (११४)

हे राक्षस ! इस स्तुति के द्वारा दृढ भक्तिपूर्वक अहर्निश
हृषीकेश की स्तुति करो । तदनन्तर केशव की स्तुति करने
पर तुम पापमुक्त हो जाओगे । (११५)

स्तुति किये गये हरि निरस्यदेह सभी पापोंको नष्ट करेंगे।
भक्तिपूर्वक स्तुति करने से सर्वपापहारी हरि मनुष्यों के
समस्त पापों का नाश कर देते हैं । (११६)

पुलस्त्य ने कहा—तदनन्तर आ मयशी वह राक्षस
ब्राह्मण को प्रणाम एवं प्रसन्न करने के उपरान्त उसी समय
तपस्या के लिये शालग्राम नामक स्थान में चला गया । (११७)

वह निशाचर अहोरात्र इसी सारस्वत स्तोत्र का जप करते
हुये देवक्रिया में अनुरक्त होकर तप करने लगा । (११८)

समाराध्य जगन्नाथं स तत्र पुरुषोत्तमम् ।
सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुलोकमवाप्तवान् ॥ ११९
एतन् ते कथितं ब्रह्मन् विष्णोः सारस्वतं स्तवम् ।

विप्रवक्त्रस्थया सम्यक्सारस्वत्या समीरितम् ॥ १२०
य एतत् परमं स्तोत्रं वासुदेवस्य मानवः ।
पठिष्यति स सर्वेभ्यः पापेभ्यो मोक्षमाप्स्यति ॥ १२१

इति श्रीवामनपुराणे एकोनपष्टितमोऽध्यायः ॥१६॥

६०

पुलस्त्य उवाच ।

नमस्तेऽस्तु जगन्नाथ देवदेव नमोऽस्तु ते ।
वासुदेव नमस्तेऽस्तु बहुरूप नमोऽस्तु ते ॥ १
एकशृङ्ग नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यं वृषाकपे ।
श्रीनिवासे नमस्तेऽस्तु नमस्ते भूतभावन ॥ २
विष्वक्सेन नमस्तुभ्यं नारायण नमोऽस्तु ते ।
ध्रुवध्वज नमस्तेऽस्तु सत्यध्वज नमोऽस्तु ते ॥ ३

वहाँ पुरुषोत्तम जगन्नाथ की आराधना कर समस्त पापों से मुक्त होकर उसने विष्णुलोक प्राप्त किया । (११९)
हे ब्रह्मन् ! मैंने तुमसे विप्रसुरस्थ सरस्वती द्वारा सम्यक्स्था कथित विष्णु का यह सारस्वत स्तोत्र

यज्ञध्वज नमस्तुभ्यं धर्मध्वज नमोऽस्तु ते ।
तालध्वज नमस्तेऽस्तु नमस्ते गरुडध्वज ॥ ४
वरेण्य विष्णो वैकुण्ठ नमस्ते पुरुषोत्तम ।
नमो जयन्त विजय जयानन्त पराजित ॥ ५
कृतावर्त महावर्त महादेव नमोऽस्तु ते ।
अनायाचन्त मध्यान्त नमस्ते पन्नजप्रिय ॥ ६
पुरंजय नमस्तुभ्यं शत्रुंजय नमोऽस्तु ते ।

कहा । (१२०)
वासुदेव के इस श्रेष्ठ स्तोत्र को पढ़ने वाला मनुष्य समस्त पापों से मुक्त हो जायेगा । (१२१)

श्रीवामनपुराण में उनसठवें अध्याय समाप्त ॥ ५६ ॥

६०

पुलस्त्य ने कहा—हे जगन्नाथ ! आपको नमस्कार है ।
हे देवदेव ! आपको नमस्कार है । हे वासुदेव ! आपको
नमस्कार है । हे बहुरूपी ! आपको नमस्कार है । (१)

हे एकशृङ्ग ! आपको नमस्कार है । हे वृषाकपि !
आपको नमस्कार है । हे श्रीनिवास ! आपको नमस्कार है ।
हे भूतभावन ! आपको नमस्कार है । (२)

हे विष्वक्सेन ! आपको नमस्कार है । हे नारायण !
आपको नमस्कार है । हे ध्रुवध्वज ! आपको नमस्कार है ।
हे सत्यध्वज ! आपको नमस्कार है । (३)

हे यज्ञध्वज ! आपको नमस्कार है । हे धर्मध्वज !
आपको नमस्कार है । हे तालध्वज ! आपको नमस्कार है ।
हे गरुडध्वज ! आपको नमस्कार है । (४)

हे वरेण्य ! हे विष्णु ! हे वैकुण्ठ ! हे पुरुषोत्तम !
आपको नमस्कार है । हे जयन्त ! हे विजय ! हे जय ! हे
अनन्त ! हे पराजित ! आपको नमस्कार है । (५)

हे कृतावर्त ! हे महावर्त ! हे महादेव ! आपको नमस्कार
है । हे अनायाचन्त ! हे मध्यान्त ! हे पराजप्रिय ! आपको
प्रणाम है । (६)

हे पुरंजय ! आपको नमस्कार है । हे शत्रुंजय ! आपको

शुभंजय नमस्तेऽस्तु नमस्तेऽस्तु धनंजय ॥ ७
 सृष्टिर्गमं नमस्तुभ्यं शुचिध्रुवः प्रपुध्रुवः ।
 नमो हिरण्यगर्भाय पद्मगर्भाय ते नमः ॥ ८
 नमः कमलनेत्राय कालनेत्राय ते नमः ।
 कालनाभ नमस्तुभ्यं महानाभ नमो नमः ॥ ९
 वृष्टिमूल महामूल मूलावास नमोऽस्तु ते ।
 धर्मावास जलावास श्रीनिवास नमोऽस्तु ते ॥ १०
 धर्माध्यक्ष प्रजाध्यक्ष लोकाध्यक्ष नमो नमः ।
 सेनाध्यक्ष नमस्तुभ्यं कालाध्यक्ष नमोऽस्तु ते ॥ ११
 गदाधर श्रुतिधर चक्रधारिन् त्रियो धर ।
 वनमालाधर हरे नमस्ते धरणीधर ॥ १२
 आर्चिपेण महासेन नमस्तेऽस्तु पुरुष्टुव ।
 बहुकल्प महाकल्प नमस्ते कल्पनाम्बर ॥ १३
 सर्वतमन् सर्वग विभो विरिञ्चि इवेत केशव ।
 नील रक्त महानील अनिरुद्ध नमोऽस्तु ते ॥ १४

द्वादशात्मक कालात्मन् सामात्मन् परमात्मक ।
 ब्योमकात्मक सुमद्वन् भूतात्मक नमोऽस्तु ते ॥ १५
 हरिकेश महाकेश गुडाकेश नमोऽस्तु ते ।
 मुञ्जकेश हृषीकेश सर्वनाथ नमोऽस्तु ते ॥ १६
 सूक्ष्म स्थूल महास्थूल महासूक्ष्म शुभंकर ।
 श्वेतपीताम्बरधर नीलवास नमोऽस्तु ते ॥ १७
 कुशेशय नमस्तेऽस्तु पद्मेशय जलेशय ।
 गोविन्द प्रीतिरुर्वा च हंस पीताम्बरप्रिय ॥ १८
 अधोक्षज नमस्तुभ्यं सीरध्वज जनार्दन ।
 वामनाय नमस्तेऽस्तु नमस्ते मधुसूदन ॥ १९
 सहस्रशीर्षाय नमो ब्रह्मशीर्षाय ते नमः ।
 नमः सहस्रनेत्राय सोमसूर्यान्लक्षण ॥ २०
 नमथाधर्वशिरसे महाशीर्षाय ते नमः ।
 नमस्ते धर्मनेत्राय महानेत्राय ते नमः ॥ २१
 नमः सहस्रपादाय महस्रक्षुजमन्यवे ।

प्रणाम है । हे शुभजय ! आपको प्रणाम है । हे धनजय !
 आपनो प्रणाम है । (७)
 हे सृष्टिर्गम ! हे शुचिध्रुव ! हे प्रपुध्रुव ! आपनो नमस्कार
 है । हिरण्यगर्भे को नमस्कार है । पद्मगर्भे को नमस्कार है । (८)
 कमलनेत्र को प्रणाम है । आप कालनेत्र को प्रणाम है ।
 हे कालनाभ ! आपको प्रणाम है । हे महानाभ ! आपनो
 बारम्बार प्रणाम है । (९)
 हे वृष्टिमूल ! हे महामूल ! हे मूलावास ! आपनो
 प्रणाम है । हे धर्मावास ! हे जलावास ! हे श्रीनिवास !
 आपनो प्रणाम है । (१०)
 हे धर्माध्यक्ष ! हे प्रजाध्यक्ष ! हे लोकाध्यक्ष ! आपनो
 बारम्बार प्रणाम है । हे सेनाध्यक्ष ! आपनो प्रणाम है ।
 हे कालाध्यक्ष ! आपनो प्रणाम है । (११)
 हे गदाधर ! हे श्रुतिधर ! हे चक्रधर ! हे धीधर !
 हे वनमालाधर ! हे धरणीधर हरि ! आपनो प्रणाम
 है । (१२)
 हे आर्चिपेण ! हे महासेन ! हे पुरुष्टुव ! आपनो
 प्रणाम है । हे बहुकल्प ! हे महाकल्प ! हे कल्पनाम्बर !
 आपनो प्रणाम है । (१३)
 हे सर्वतमन् ! हे सर्वग ! हे विभु ! हे विरिञ्चि ! हे
 श्वेत ! हे केशव ! हे नील ! हे रक्त ! हे महानील ! हे

अनिरुद्ध ! आपको नमस्कार है । (१४)
 हे द्वादशात्मक ! हे कालात्मन् ! हे सामात्मन् ! हे
 परमात्मक ! हे ब्योमकात्मक ! हे सुमद्वन् ! हे भूतात्मक !
 आपनो प्रणाम है । (१५)
 हे हरिकेश ! हे महाकेश ! हे गुडाकेश ! आपनो
 प्रणाम है । हे मुञ्जकेश ! हे हृषीकेश ! हे सर्वनाथ !
 आपको प्रणाम है । (१६)
 हे सूक्ष्म ! हे स्थूल ! हे महास्थूल ! हे महासूक्ष्म !
 हे शुभंकर ! हे श्वेतपीताम्बरधर ! हे नीलवास ! आपनो
 प्रणाम है । (१७)
 हे कुशेशय ! हे पद्मेशय ! हे जलेशय ! हे गोविन्द !
 हे प्रीतिरुर्वा ! हे हंस ! हे पीताम्बरप्रिय ! आपनो
 नमस्कार है । (१८)
 हे अधोक्षज ! हे सीरध्वज ! हे जनार्दन ! आपनो
 प्रणाम है । हे वामन ! आपनो प्रणाम है । हे मधुसूदन !
 आपनो प्रणाम है । (१९)
 सहस्रशीर्षे को नमस्कार है । ब्रह्मक्षीर्षे को प्रणाम है ।
 सहस्र नेत्र और चन्द्रसूर्यान्लक्षण को प्रणाम है । (२०)
 अधर्वाशिरसे को नमस्कार है । महाशीर्षे को प्रणाम है ।
 धर्मनेत्र का प्रणाम है । महानेत्र को प्रणाम है । (२१)
 सहस्रपाद को नमस्कार है । सहस्रमुखाओं पर्य सहस्र

नमो यज्ञवराहाय महारूपाय ते नमः ॥ २२
 नमस्ते विश्वदेवाय विश्वात्मन् विश्वसंभव ।
 विश्वरूप नमस्तेऽस्तु त्वतो विश्वममृदिदम् ॥ २३
 न्यग्रोधस्त्वं महाशाखस्त्वं मूलकुसुमार्चितम् ।
 स्फन्धपत्राङ्कुरलतापहृदाय नमोऽस्तु ते ॥ २४
 मूलं ते ब्राह्मणा ब्रह्मन् स्फन्धवने क्षत्रियाः प्रभो ।
 वैश्याः शाखा दलं शूद्रा वनस्पते नमोऽस्तु ते ॥ २५
 ब्राह्मणाः साग्नयो वक्त्राः दोर्दण्डाः सायुधा नृपाः ।
 पार्श्वीद् विश्वश्रोतृयुगाज्जताः शूद्राश्च पादतः ॥ २६
 नेत्राद् भानुरभूत् तुभ्यं पद्भ्यां भूः श्रोत्रयोर्दिशः ।
 नाम्ना ह्यभूदन्तरिक्षं घञ्जाह्नो मनसस्त्वव ॥ २७
 प्राणाद् वायुः समभवत् कामाद् ब्रह्मा पितामहः ।
 श्रोत्राद् त्रिनयनो रुद्रः क्षीष्णोः द्यौः समवर्तत ॥ २८
 इन्द्रामो वदनात् तुभ्यं पशुधो मलसंभवाः ।
 ओषधयो रोमसंभूता विराजस्त्वं नमोऽस्तु ते ॥ २९

यहाँ वाले को नमस्कार है । यज्ञवराह को नमस्कार है ।
 आप महारूप को नमस्कार है । (२२)
 विश्वेश को प्रणाम है । हे विश्वात्मन् ! हे विश्व-
 सम्भव ! हे विश्वरूप ! आपने नमस्कार है । आप से यह
 विश्व उत्पन्न हुआ है । (२३)
 आप न्यग्रोध, महाशाख तथा आप ही मूलकुसुमार्चित
 है । स्फन्ध, पत्र अङ्कुर, लता एवं पल्लव स्वरूप आपने
 नमस्कार है । (२४)

हे ब्रह्मन् ! ब्राह्मण आपके मूल हैं । हे प्रभु ! क्षत्रिय
 आपके स्फन्ध, वैश्य शाखा एवं शूद्र पत्र हैं । हे वनस्पति !
 आपने नमस्कार है । (२५)

अग्नि सहित ब्राह्मण आपके मुख एवं शस्त्रसहित
 क्षत्रिय आपकी भुजाएँ हैं । वैश्य आपके ऊरुद्वय के पार्श्व
 भाग से तथा शूद्र आपके चरण से उत्पन्न हुए हैं । (२६)

आपके नेत्र से सूर्य उत्पन्न हुए । आपके पैरों से
 पृथ्वी, कानों से दिशाएँ, नाभि से अन्तरिक्ष तथा मन से
 पन्द्रमा उत्पन्न हुए हैं । (२७)

आपके प्राण से वायु, काम से पितामह ब्रह्मा, क्रोध
 से त्रिनेत्र रुद्र एवं शिर से पुत्रोक्त आधिपत्य हुआ । (२८)
 आपके मुख से रुद्र और अग्नि, मूत्र से पशु तथा
 रोम से भीषणियों उत्पन्न हुईं । आप विराजते हैं । आपने

पुष्पहास नमस्तेऽस्तु महाहास नमोऽस्तु ते ।
 ॐकारस्त्वं वषट्कारो वीषट् त्वं च स्वधा सुधा ॥ ३०
 स्वाहाकार नमस्तुभ्यं हन्तकार नमोऽस्तु ते ।
 सर्वाकार निराकार वेदाकार नमोऽस्तु ते ॥ ३१
 त्वं हि वेदमयो देवः सर्वदेवमयस्तथा ।
 सर्वतीर्थमयश्चैव सर्वयज्ञमयस्तथा ॥ ३२
 नमस्ते यज्ञरूप यज्ञभागस्यैव नमः ।
 नमः सहस्रधाराय शतधाराय ते नमः ॥ ३३
 मूर्ध्वःस्वःस्वरूपाय गोदायामृतदायिने ।
 सुवर्णब्रह्मदात्रे च सर्वदात्रे च ते नमः ॥ ३४
 ब्रह्मेशाय नमस्तुभ्यं ब्रह्मदे ब्रह्मरूपभृक् ।
 परब्रह्म नमस्तेऽस्तु शब्दब्रह्म नमोऽस्तु ते ॥ ३५
 विद्यास्त्वं वेद्यरूपस्त्व वेदनीयस्त्वमेव च ।
 बुद्धिस्त्वमपि बोध्यश्च बोधस्त्वं च नमोऽस्तु ते ॥ ३६
 होता होमश्च हव्यं च ह्यमानश्च हव्यवाट् ।

नमस्कार है । (२९)
 हे पुष्पहास ! आपने प्रणाम है । हे महाहास !
 आपको प्रणाम है । आप ओंकार, वषट्कार और वीषट्
 हैं । आप स्वधा और सुधा हैं । (३०)
 हे स्वाहाकार ! आपने प्रणाम है । हे हन्तकार !
 आपको प्रणाम है । हे सर्वाकार ! हे निराकार ! हे
 वेदाकार ! आपने प्रणाम है । (३१)

आप वेदमय देव तथा सर्वदेवमय हैं । आप सर्वतीर्थ-
 मय और सर्वयज्ञमय हैं । (३२)

हे यज्ञरूप ! आपको प्रणाम है । यज्ञभागयोगी को
 प्रणाम है । सहस्रधार और शतधार को प्रणाम है ! (३३)

मूर्ध्वःस्वः स्वरूप, गोदाता, अमृतदाता, सुवर्णब्रह्म-
 दाता तथा सर्वदाता आपने प्रणाम है । (३४)

आप ब्रह्मेश को नमस्कार है ! हे ब्रह्मादि ! हे ब्रह्मरूपधारी !
 हे परमब्रह्म ! आपने प्रणाम है । हे शब्दब्रह्म ! आपको
 प्रणाम है । (३५)

आप ही विद्या, आप ही वेद्यरूप तथा आप ही वेदनीय
 हैं । आप ही बुद्धि, बोध्य और बोधरूप हैं । आपने
 प्रणाम है । (३६)

आप होता, होम, हव्य, ह्यमान तथा हव्यवाट्,

पाता पोता च पृतथ पायनीयथ ॐ नमः ॥ ३७
 हन्ता च हन्यमानथ हियमाणस्त्वमेव च ।
 हर्ता नेता च नीतिथ पूज्योऽप्यो विश्वधार्यसि ॥ ३८
 सुसुखी परधामामि कपालोत्खलोऽरणिः ।
 यज्ञपात्रारण्येस्त्वमेकधा बहुधा विधा ॥ ३९
 यज्ञस्त्वं यज्ञमानस्तमीञ्चस्त्वमसि याजकः ।
 ज्ञाता ज्ञेयस्तथा ज्ञानं ध्येयो ध्याताऽपि चेश्वर ॥ ४०
 ध्यानयोगश्च योगी च गतिमोक्षो धृतिः सुखम् ।
 योगाद्भानि त्वमीशानः सर्वगस्त्वं नमोऽस्तु ते ॥ ४१
 ब्रह्मा होता तपोदाता साम यूषोऽथ दक्षिणा ।
 दीक्षा त्वं त्वं पुरोडाशस्त्वं पशुः पशुगर्हम् ॥ ४२
 शुभो धाता च परमः दिवो नारायणस्तथा ।
 महाजनो निरयनः सहस्राहेन्दुरूपमान् ॥ ४३
 द्वादशारोऽथ पण्णाभिस्त्रिच्यूहो द्वियुगस्तथा ।

कालचक्रो भवानीशो नमस्ते पुरुषोत्तमः ॥ ४४
 पराक्रमो विक्रमस्त्वं हयग्रीवो हरीश्वरः ।
 नरेश्वरोऽथ ब्रह्मेशः सूर्येशस्त्वं नमोऽस्तु ते ॥ ४५
 अश्वत्थो महाभेषाः शंभुः शक्रः प्रभञ्जनः ।
 मित्रावरुणमूर्तिस्त्वममूर्तिरनघः परः ॥ ४६
 प्राग्वंशकायो भूतादिर्महाभूतोऽच्युतो द्विजः ।
 त्वमूर्ध्वकर्ता ऊर्ध्वश्च ऊर्ध्वरेता नमोऽस्तु ते ॥ ४७
 महापातकहा त्वं च उपपातकहा तथा ।
 अनीशः सर्वपापेभ्यस्त्वामहं शरणं गतः ॥ ४८
 इत्येत्त्वं परमं स्तोत्रं सर्वपापप्रमोचनम् ।
 महेश्वरेण कथितं चाराणस्यां पुरा मुने ॥ ४९
 केश्यम्याश्रतो गत्वा स्नात्वा तीर्थे सितोदके ।
 उपशान्तस्तथा जातो रुद्रः पापवशात् ततः ॥ ५०

पाता, पोता, पूत तथा पायनीय औंकार हैं। आपरो नमस्कार है। (३७)

आप हन्ता, हन्यमान, हियमाण, हर्ता, नेता, नीति, पूज्य, श्रेष्ठ तथा विश्वधारी हैं। (३८)

आप सुख, सुन, परधान, कपालो, उत्खल, अरणि, यज्ञपात्र आण्येय, एकधा, त्रिधा और बहुधा हैं। (३९)

आप यज्ञ हैं और आप यज्ञमान हैं। आप इन्द्र और याजक हैं। आप ज्ञाता, ज्ञेय, ज्ञान, ध्येय, ध्याता तथा ईश्वर हैं। (४०)

आप ध्यानयोग, योगी, गति, मोक्ष, धृति सुख, योगाद्भान, ईशान एवं सर्वग हैं। आपरो नमस्कार है। (४१)

आप ब्रह्मा, होता, तपोदाता, साम, यूष, दक्षिणा तथा दीक्षा हैं। आप पुरोडाश हैं एवं आप ही पशु तथा पशुगर्हो हैं। (४२)

आप शुभ, धाता, परम, दिव्य, नारायण, महाजन, निराश्रय तथा सहस्र ऊर्ध्व-चन्द्र सुख रूपवान् हैं। (४३)
 आप द्वादश अरों, षट् नामियों, तीन च्यूहों एवं दो

सुरों धारके कालचक्र तथा ईश एवं पुरुषोत्तम हैं। आपरो नमस्कार है। (४४)

आप पराक्रम, विक्रम, हयग्रीव, हरीश्वर, नरेश्वर, ब्रह्मेश और सूर्येश हैं। आपरो नमस्कार है। (४५)

आप अश्वत्थ, महाभेषा, शंभु, शक्र, प्रभञ्जन, मित्रावरुणमूर्ति, अमृति, जनक और श्रेष्ठ हैं। (४६)

आप प्राग्वंशकाय, भूतादि, महाभूत, अच्युत और द्विज हैं। आप ऊर्ध्वकर्ता, ऊर्ध्व और ऊर्ध्वरेता हैं। आपरो नमस्कार है। (४७)

आप महापातन के मित्राश्रित तथा उपपातकों के नाशक हैं। आप सर्वपापों से निश्चिन्त हैं। मैं आपसे शरण में आया हूँ। (४८)

हे मुनि! प्राचीन काल में महेश्वर ने इस समस्त पापों से मुक्ति देने वाले श्रेष्ठ शक्य को चाराणसी में यज्ञ था। (४९)

हीर्ष के रूप में जन्मकर केशव का दर्शन करने से रुद्र पाप से प्रजापति से मुक्त एवं शुभ रूप में। (५०)

एतन् पवित्रं त्रिपुरभ्रमापितं
पठन् नरो विष्णुपरो महर्षे ।

विष्णुक्तपापो क्षुपशान्तमूर्तिः
संपूज्यते देववैः प्रसिद्धैः ॥ ५१

इति श्रीधामनपुराणे पठितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

६१

पुलस्त्य उवाच ।

द्वितीयं पापशमनं स्तवं चक्ष्यामि ते मुने ।
येन सम्यग्धीतेन पापं नाशं तु गच्छति ॥ १
मत्स्यं नमस्ये देवेशं कर्म गोविन्दमेव च ।
हयशीर्षं नमस्येऽहं भवं विष्णुं त्रिविक्रमम् ॥ २
नमस्ये माधवेशानौ हृषीकेशकुमारिणौ ।
नारायणं नमस्येऽहं नमस्ये गरुडासनम् ॥ ३
ऊर्ध्ववेशं नृमिहं च रूपधारं बुरुषाजम् ।
कामपालमरुण्डं च नमस्ये ब्राह्मणप्रियम् ॥ ४

हे महर्षि ! त्रिपुरारि के द्वारा कहे गये इस स्तोत्र का पाठ करने से विष्णुमूक मनुष्य पापमुक्त और सौम्य होकर

अजितं विश्वकर्माणं पुण्डरीकं द्विजप्रियम् ।
हंसं शंभुं नमस्ये च ब्रह्माणं सप्रजापतिम् ॥ ५
नमस्ये शूलबाहुं च देवं चक्रधरं तथा ।
शिवं विष्णुं सुवर्णाक्षं गोपतिं पीतवाससम् ॥ ६
नमस्ये च गदापाणिं नमस्ये च कुशेश्वरम् ।
अर्धनारीश्वरं देवं नमस्ये पापनाशनम् ॥ ७
गोपालं च सवैकुण्ठं नमस्ये चापराजितम् ।
नमस्ये विश्वरूपं च मौगन्धिं सर्वदाशिवम् ॥ ८
पाञ्चालिकं हयग्रीवं स्वयम्भुवममरोधरम् ।

प्रसिद्ध तथा भ्रष्ट देवनाओं से पूजित होता है । (५१)

श्रीधामनपुराण म वाठवो अध्याय समाप्त ॥ ६० ॥

६१

पुलस्त्य ने कहा—हे मुनि ! मैं आपसे पापों का शमन करने वाला दूसरा स्तोत्र कहता हूँ । इसका भलीभाँति अभ्ययन करने से पाप नष्ट हो जाता है । (१)
मैं देवेश मतलब एवं कूर्मरूपधारी गोविन्द का नमस्कार करता हूँ । मैं हयशीर्ष, भगवत एवं त्रिविक्रम विष्णु को नमस्कार करता हूँ । (२)
मैं माधव, ईशान, हृषीकेश और कुमार को नमस्कार करता हूँ । मैं नारायण को नमस्कार करता हूँ । मैं गरुडासन को नमस्कार करता हूँ । (३)
मैं ऊर्ध्वेश्वर, नरसिंह, रूप धारण करने वाले, बुरुषाज, कामपाल, अरुण्ड और ब्राह्मणप्रिय देव को नमस्कार करता हूँ । (४)

मैं अजित, विश्वकर्मा, पुण्डरीक, द्विजप्रिय, हंस, शंभु तथा प्रजापति सहित ब्रह्मा को नमस्कार करता हूँ । (५)
मैं शूलबाहु, चक्रधर देव, शिव, विष्णु, सुवर्णाक्ष, गोपति एवं पीतवासना को प्रणाम करता हूँ । (६)
मैं गदापाती को नमस्कार करता हूँ । मैं कुशेश्वर को नमस्कार करता हूँ । मैं अर्धनारीश्वर तथा पापनाशन देव को नमस्कार करता हूँ । (७)
मैं वैकुण्ठरहित गोपाल तथा अपराजित को नमस्कार करता हूँ । मैं विश्वरूप, सौगन्धि, सदाशिव को प्रणाम करता हूँ । (८)
मैं पाञ्चालिक, हयग्रीव, स्वयम्भुव, अमरोधर, पुण्डरीक,

नमस्ये पुष्कराक्षं च पयोगन्धि च केशवम् ॥ ९
 अविद्युक्तं च लोलं च ज्येष्ठेशं मध्यमं तथा ।
 उपशान्तं नमस्येऽहं मार्कण्डेयं सजम्बुकम् ॥ १०
 नमस्ये पद्मकिरणं नमस्ये वटवायुसम् ।
 कार्तिकेयं नमस्येऽहं वाह्मीकं शिपिनं तथा ॥ ११
 नमस्ये स्थाणुमनघ नमस्ये वनमालिनम् ।
 नमस्ये लाङ्गलीशं च नमस्येऽहं श्रियः पतिम् ॥ १२
 नमस्ये च त्रिनघनं नमस्ये हृष्यवाहनम् ।
 नमस्ये च त्रिसौवर्णं नमस्ये धरणीधरम् ॥ १३
 त्रिणाचिकेतं ब्रह्मेशं नमस्ये शशिभूषणम् ।
 कपर्दिनं नमस्ये च सर्वोमयविनाशनम् ॥ १४
 नमस्ये शशिनं सूर्यं ध्रुवं रौरवं महौजसम् ।
 पद्मनाभ हिरण्याक्षं नमस्ये स्कन्दमन्ययम् ॥ १५
 नमस्ये भीमहंसौ च नमस्ये हाटकेश्वरम् ।
 सदा हंसं नमस्ये च नमस्ये प्राणतर्पणम् ॥ १६

पयोगन्धि और केशव को नमस्कार करता हूँ । (९)
 मैं अविद्युक्त, लोल, ज्येष्ठेश, मध्यम, उपशान्त तथा
 जम्बुक सहित मार्कण्डेय को नमस्कार करता हूँ । (१०)
 मैं पद्मकिरण को नमस्कार करता हूँ । मैं वटवायुस
 को नमस्कार करता हूँ । मैं कार्तिकेय चाहलीक, तथा शिपी
 को प्रणाम करता हूँ । (११)
 मैं स्थाणु एवं अनघ को नमस्कार करता हूँ तथा वनमाली
 को नमस्कार करता हूँ । मैं लाङ्गलीश तथा लक्ष्मीपति को
 नमस्कार करता हूँ । (१२)
 मैं त्रिनेत्र को प्रणाम करता हूँ तथा हृष्यवाहन को
 नमस्कार करता हूँ । मैं त्रिसौवर्ण को नमस्कार करता हूँ तथा
 धरणीधर को नमस्कार करता हूँ । (१३)
 मैं त्रिणाचिकेत, ब्रह्मेश तथा शशिभूषण को प्रणाम
 करता हूँ । मैं सर्वोमयविनाशक कपर्दी को प्रणाम करता
 हूँ । (१४)
 मैं चन्द्र, सूर्य, ध्रुव, तथा महान् ओजस्वी रत्न को
 प्रणाम करता हूँ । मैं पद्मनाभ, हिरण्याक्ष तथा अन्यय
 स्कन्द को प्रणाम करता हूँ । (१५)
 मैं भीम और हंस को प्रणाम करता हूँ । मैं हाटकेश्वर
 को प्रणाम करता हूँ । मैं सदाहंस को प्रणाम करता हूँ तथा
 प्राणतर्पण को प्रणाम करता हूँ । (१६)

नमस्ये रुक्मकवचं महायोगिनमीश्वरम् ।
 नमस्ये श्रीनिवासं च नमस्ये पुरुषोत्तमम् ॥ १७
 नमस्ये च चतुर्बाहुं नमस्ये वसुधाधिपम् ।
 वनस्पतिं पशुपतिं नमस्ये प्रथममन्ययम् ॥ १८
 श्रीकण्ठं वासुदेवं नीलकण्ठं सदृष्टिन्मम् ।
 नमस्ये सर्वमनघं गौरीशं नकुलीश्वरम् ॥ १९
 मनोहरं कृष्णकेशं नमस्ये चक्रपाणिन्मम् ।
 यशोधरं महाबाहुं नमस्ये च कुशप्रियम् ॥ २०
 भूधरं छादितगदं सुनेत्रं शूलशङ्खिन्मम् ।
 भद्राक्षं वीरभद्रं च नमस्ये शङ्खकर्णिकम् ॥ २१
 वृषध्वजं महेशं च विश्वामित्रं शशिप्रभम् ।
 उपेन्द्रं चैव गोविन्दं नमस्ये पद्मजप्रियम् ॥ २२
 सहस्रशिरसं देव नमस्ये कुन्दमालिन्मम् ।
 कालाग्निं रत्नदेवेशं नमस्ये कृत्तिवाससम् ॥ २३
 नमस्ये छागनेशं च नमस्ये पद्मजासनम् ।

मैं रुक्मकवच, महायोगी एव ईश्वर को नमस्कार करता
 हूँ । मैं श्रीनिवास को नमस्कार करता हूँ तथा पुरुषोत्तम
 को नमस्कार करता हूँ । (१७)
 मैं चतुर्बाहु देव को प्रणाम करता हूँ । मैं वसुधाधिप
 को प्रणाम करता हूँ । मैं वनस्पति, पशुपति और अन्यय
 मनु को प्रणाम करता हूँ । (१८)
 मैं श्रीकण्ठ, वासुदेव, कृष्ण सहित नीलकण्ठ,
 सर्व, अनघ, गौरीश तथा नकुलीधर को नमस्कार
 करता हूँ । (१९)
 मैं मनोहर कृष्णकेश तथा चक्रपाणि को नमस्कार करता
 हूँ । मैं यशोधर, महाबाहु और कुशप्रिय को नमस्कार करता
 हूँ । (२०)
 मैं भूधर, छादितगद, सुनेत्र, शूलशङ्ख, भद्राक्ष,
 वीरभद्र तथा शङ्खकर्णिक को नमस्कार करता हूँ । (२१)
 मैं वृषध्वज, महेश, विश्वामित्र, शशिप्रभ, उपेन्द्र,
 गोविन्द तथा पद्मजप्रिय को नमस्कार करता हूँ । (२२)
 मैं सहस्रशीर्ष तथा कुन्दमाली देव को नमस्कार करता हूँ ।
 मैं कालाग्नि, रत्नदेवेश तथा कृत्तिवासा को प्रणाम करता
 हूँ । (२३)
 मैं छागनेश को नमस्कार करता हूँ तथा पद्मजासन को

सहस्राक्षं कोकनदं नमस्ये हरिशंकरम् ॥ २४
 अगस्त्यं गरुडं विष्णुं कपिलं ब्रह्मवाङ्मयम् ।
 सनातनं च ब्रह्माणं नमस्ये ब्रह्मवत्परम् ॥ २५
 अप्रतर्क्यं चतुर्भुङ्गं सहस्रांशुं तपोमयम् ।
 नमस्ये धर्मराजानं देवं गरुडवाहनम् ॥ २६
 सर्वभूतगतं शान्तं निर्मलं सर्वलक्षणम् ।
 महायोगिनमव्यक्तं नमस्ये पापनाशनम् ॥ २७

निरञ्जनं निराकारं निर्गुणं निर्मलं पदम् ।
 नमस्ये पापहन्तारं शरण्यं शरणं ब्रजे ॥ २८
 एतत् पवित्रं परमं पुराणं
 प्रोक्तं त्वगस्त्येन महर्षिणा च ।
 धन्यं यश्चस्यं बहुपापनाशनं
 संकीर्तनात् स्मरणात् संश्रवाच्च ॥ २९

इति श्रीवामनपुराणे एकपष्ठितमोऽध्याय ॥६१॥

६२

पुलस्त्य उवाच ।

गतेऽथ तीर्थयात्रायां प्रह्लादे दानवेधरे ।
 कुरुक्षेत्रं समभ्यागाद् यष्टुं वैरोचनो यतिः ॥ १
 तस्मिन् महाधर्मयुते तीर्थे ब्राह्मणपुंगवः ।

नमस्कार करता हूँ । मैं सहस्राक्ष, कोकनद तथा हरिशंकर
 को नमस्कार करता हूँ । (२४)

मैं अगस्त्य, गरुड, विष्णु, कपिल, ब्रह्मवाङ्मय, सनातन,
 ब्रह्मा तथा उस ब्रह्म वत्पर को नमस्कार करता हूँ । (२५)

मैं अप्रतर्क्य, चतुर्भुङ्ग, सहस्रांशु, तपोमय, धर्मराज
 एवं गरुडवाहन देव को नमस्कार करता हूँ । (२६)

मैं सर्वभूतगत, शान्त, निर्मल, सर्वलक्षण, महायोगी,
 अव्यक्त एवं पापनाशन को नमस्कार करता हूँ । (२७)

शुक्रो द्विजातिप्रवरानामन्वयत भार्गवान् ॥ २
 भृगूनामन्वयमाणान् वै श्रुत्वात्रेयाः सगोतमाः ।
 कौशिकोद्भिन्नसश्रैव तत्पुत्रः कुरुजाङ्गलान् ॥ ३
 उचराशां प्रजग्मस्ते नदीमनु शतद्रुक्ाम् ।

मैं निरञ्जन, निराकार, निर्गुण, निर्मलपदारूप,
 पापहारक को नमस्कार करता हूँ तथा शरण्य की शरण में
 जाता हूँ । (२८)

महर्षि अगस्त्य ने इस परम पवित्र पुरातन स्तोत्र को
 कहा था । इसके कथन, स्मरण तथा श्रवण करने से अनेक
 पापों का नाश होता है और मनुष्य धन्य एवं यशस्वी
 होता है । (२९)

श्रीवामनपुराण न एकवठवां अध्याय समाप्त ॥६१॥

६२

पुलस्त्य ने कहा—दानवेधर प्रह्लाद के तीर्थयात्रा के
 लिये चले जाने पर विरोचन-पुत्र यति कुरुक्षेत्र में यज्ञ करने के
 लिए गये । (१)

उस महान् धर्मयुक्त तीर्थ में ब्राह्मणश्रेष्ठ शुक्राचार्य ने

द्विजातिश्रेष्ठ भार्गवों को आमन्त्रित किया । (२)
 भृगुवंशीय ब्राह्मणों का आमन्त्रित किया जाना सुनकर
 अत्रि, गौतम, कौशिक एवं अत्रिण गोत्रिय ब्राह्मणों ने
 कुरुजाङ्गल का स्थान कर दिया । (३)
 वे उत्तर दिशा में शतद्रु नदी के तट पर पहुँचे ।

शावत्रये जले स्नात्वा विपाशां प्रययुस्ततः ॥ ४
 विज्ञाय तत्राप्यरतिं स्नात्वाऽर्च्यं पितृदेवताः ।
 प्रजग्मुः किरणां पुण्यां दिनेशकिरणच्युताम् ॥ ५
 तस्यां स्नात्वाऽर्च्यं देवेषु सर्वेषु एव महर्षयः ।
 ऐरावतीं सुपुण्योदां स्नात्वा जग्मुश्चेधरीम् ॥ ६
 देविकाया जले स्नात्वा पयोण्यां चैव तापसाः ।
 अनतोर्णां धुने स्नातुमाश्रेयाद्याः शुभां नदीम् ॥ ७
 ततो निमग्ना ददशुः प्रतिनिम्नथात्मनः ।
 अन्तर्जले द्विजश्रेष्ठ महदाश्रयकारकम् ॥ ८
 उन्मज्जने च ददशुः पुनर्निमित्तमानमाः ।
 ततः स्नात्वा सप्तुशीर्णां प्रपयः सर्वे एव हि ॥ ९
 जग्मुस्ततोऽपि ते ब्रह्मन् फलयन्तः परस्परम् ।
 चिन्तयन्तश्च सततं किमेतदिति विस्मिताः ॥ १०
 ततो दूरादपश्यन्त वनपण्डं सुनिस्तुतम् ।

वनं हरगलत्रयामं रागचरनिनिनादितम् ॥ ११
 अतितुङ्गतया ज्योम आष्टुणानं नगोत्तमम् ।
 विस्तृताभिर्जटाभिस्तु अन्तर्भूमिश्च नारद ॥ १२
 काननं पुष्पिनैर्दुर्धरतिमाति भद्रततः ।
 दशार्द्धवर्णैः सुखदैनमस्तारागणैरिव ॥ १३
 त दृष्ट्वा कमलैर्व्याप्तं पुण्डरीकैश्च शोभितम् ।
 तदत् फोन्नतदैर्व्याप्तं वनं पद्मजनं यथा ॥ १४
 प्रजग्मुस्तुष्टिमतुलां ते ह्लादं परमं ययुः ।
 विनिशुः शीतमनमो हंसा इव महानरः ॥ १५
 तन्मध्ये ददशुः पुण्यमाश्रमं लोकरूपितम् ।
 नतुर्णां लोकपालानां वर्गीणां धूमिमचम ॥ १६
 धर्माश्रमं प्रादुर्भूयं तु पलाशमिटपाश्रुतम् ।
 प्रतीच्यभिमुखं ब्रह्मन् अर्धस्त्वेतुवनाश्रुतम् ॥ १७
 दक्षिणाभिमुखं काम्यं रम्माशोखनारुतम् ।

शावत्र के जल में स्नान कर वे यहाँ से विपाशा नदी के समीप गये ।

यहाँ भी मनोतुष्टि न होने के कारण वे लोग स्नान करने के बाद पितरों एवं देवों का अर्चन कर सूर्य की किरणों से उद्भूत किरण नदी के निकट गये ।

दे देवर्षि ! इसमें स्नान एवं अर्चन पर सभी महर्षि पुण्योद्गा ऐरावती नदी के समीप गये एव इसमें स्नान पर ईश्वरी नदी के तट पर पहुँचे ।

हे मुने ! देविका और पयोण्जी में स्नान कर आश्रेय आदि तपस्वी शुभा नदी में स्नान करने के लिए चारें ।

हे ब्रह्मन् ! जल में निमग्न उन लोगों ने जल के भीतर महान् आश्रयकारक अपना-अपना प्रतिबिम्ब देखा ।

किमपान्त्व महर्षयो ने बाहर निकलने पर पुनः वैशा हो देगा । तदनन्तर स्नात कर सभी श्रेष्ठ बाहर निकले ।

हे ब्रह्मन् ! तदनन्तर वे सभी लोग 'यह क्या है ?' इस विषय में आश्चर्यपूर्वक परस्पर वार्तालाप एवं विचार करने हुए बसे गये ।

तदुपस्थान वन लोगों ने दूर से ही प्रतिबिम्बा, बहुर के कण्ठ की तरह स्वानर्ण एवं वक्षियों की ध्वनि से नितान्तर

एक वनराजि देखा । (११)

हे नारद ! यह वन अत्यधिक ऊँचा होने के कारण आकाश को आच्छादित करने वाला था तथा उमड़ी नीचे की भूमि बिल्वन मूलों से व्याप्त थी । (१२)

यह कानन पाँच वर्गों वाले पुष्पिन वृक्षों से वारागणों से सुशोभित आकाश के तुल्य अत्यन्त सुशोभा हो रहा था । (१३)

पद्मजन के सदृश कमलों से व्याप्त, पुण्डरीकों से अलङ्कृत एवं कोवन्दों से आसीर्ण जल वन की देगहर के अरवन्त सङ्गुट एवं आह्लादिन हो गये । प्रसन्न मन से वे लोग इसमें इत प्रकार प्रविष्ट हुए जैसे हंग महागण्डेपर में प्रवेश करते हैं । (१४-१५)

हे सुनिस्तान ! इन लोगों ने जगद्वे मध्य में लोहपात्रक पार वर्गों परमं, अर्धं, शम एवं मोक्ष) का लोकरूपित पवित्र आश्रम देखा । (१६)

हे ब्रह्मन् ! पूर्वं दिना की ओर मुक्त बाल्य पञ्चदशक से आहत धर्मानन, परिपक्वभिमुख इतुवन से पितृ अर्थात्तम, दक्षिणाभिमुख बद्दी एवं अर्धक के वन से आहत वामा-क्षम तथा वार्ताभिमुख तुष्टुष्टु-वृक्ष-वृक्ष से वृक्षी मोक्षम

उदङ्मुखं च मोक्षस्य शुद्धस्फटिकवर्चसम् ॥ १८
 कृतान्ते त्वाश्रमी मोक्षः कामस्त्रेतान्त्रे श्रमी ।
 आश्रम्यर्थो द्वापरान्ते तिष्यादौ धर्म आश्रमी ॥ १९
 तान्याश्रमाणि ह्यनयो दृष्ट्वात्रेयादयोऽन्ययाः ।
 तत्रैव च रतिं चक्ररखण्डे गलिलाप्युते ॥ २०
 धर्मार्थैर्भगवान् विष्णुरखण्डे विश्रुतः ।
 चतुर्मूर्तिर्जगन्नाथः पूर्वमेव प्रतिष्ठितः ॥ २१
 तमर्चयन्ति ऋषयो योगात्मानो बहुश्रुताः ।
 शुभ्रपूयाऽथ तपसा ब्रह्मचर्येण नारद ॥ २२
 एवं ते न्यवसंतस्तत्र समेता ह्यनयो वने ।
 असुरेभ्यस्तदा भीताः स्वाश्रित्याखण्डपर्वतम् ॥ २३
 तवाऽन्ये ब्राह्मणा ब्रह्मन् अश्मकुट्टा मरीचिपाः ।
 स्नात्वा जले हि कालिन्याः प्रजग्मुर्दक्षिणाम्भ्याः ॥ २४
 अबन्तिविषयं प्राप्य विष्णुमासाद्य संस्थिताः ।

स्थित था ।

(१७-१८)

छत्रयुग के अन्त में मोक्ष अपने आश्रम में निवास करने लगता है, त्रेता में काम आश्रमवासी हो जाता है, द्वापर के अन्त में अर्थ आश्रमी बन जाता है एवं कलि के आदि में धर्म आश्रम में रहना प्रारम्भ करता है । (१९)

अन्य आत्रेय आदि मुनियों ने इन आश्रमों को देखकर उस अरण्य जलपूर्ण स्थान में सुख से रहने का निश्चय किया । (२०)

धर्म आदि के द्वारा भगवान् विष्णु अरण्य नाम से विख्यात हैं । जगन्नाथ चार मूर्तियों वाले हैं यह पहले से ही प्रतिष्ठित है । (२१)

हे नारद ! बहुश्रुत योगप्रता ऋषि लोग सेवा, तप और ब्रह्मचर्य द्वारा उनकी पूजा करते हैं । (२२)

असुरों से भयभीत वे मुनिगण सम्मिलित रूप से उस अरण्य पर्वत का भलीभाँति आश्रयण कर रहने लगे । (२३)

हे ब्रह्मन् ! अश्मकुट्ट तथा सूर्य रश्मि पीने वाले आदि अन्य ब्राह्मण पाण्डित्य के जल में स्नान कर दक्षिण की ओर चले गये । (२४)

वे विष्णु की श्वा के कारण महान् असुरों से दुष्पदेरय

विष्णोरपि प्रसादेन दुष्पवेशं महामुरैः ॥ २५
 वालखिल्यादयो जग्मु रवशा दानवाद् भयात् ।
 रुद्रकोटिं समाश्रित्य स्थितास्ते ब्रह्मचारिणः ॥ २६
 एवं गतेषु विषेषु गौतमाङ्गिरसादिषु ।
 शुक्रस्तु भार्गवान् सर्वान् निन्ये यज्ञविधौ ह्यने ॥ २७
 अधिष्ठिते भार्गवैस्तु महायज्ञेऽमितद्युते ।
 यज्ञदीक्षां घलेः शुक्रश्चकार विधिना स्वयम् ॥ २८
 घेताम्बरधरो दैत्यः श्वेतमाल्यानुलेपनः ।
 मृगाजिनाद्युतः पृष्ठे वर्द्धपत्रविचित्रितः ॥ २९
 समास्ते वितते यज्ञे सदस्यैरभिसंवृतः ।
 हयग्रीवप्रलम्बाद्यैर्मयवाणपुरोगमैः ॥ ३०
 परनी विन्ध्यावली चास्य दीक्षिता यज्ञकर्मणि ।
 ललनानां सहस्रस्य प्रधाना ऋषिकन्यका ॥ ३१
 शुक्रेणाश्वः श्वेतवर्णो मधुमासे सुलक्षणः ।

अबन्ति नगरी में पहुँचे एवं विष्णु के समीप रहने लगे । (२५)

वालखिल्य आदि ब्रह्मचारी ऋषि दानवों के भय से विचर होकर रुद्रकोटि चले गए और यहीं रहने लगे । (२६)

हे मुने ! इस प्रकार गौतम एवं आंगिरस आदि ब्राह्मणों के चले जाने पर शुक्राचार्य सभी भार्गव वंशीय ब्राह्मणों को यज्ञ-विधौ में ले गये । (२७)

हे अमिततेजस्वी ! भार्गववंशीय ब्राह्मणों से अधिष्ठित महायज्ञ में स्वयं शुक्राचार्य ने कलि को विधिवत् यज्ञदीक्षा दी । (२८)

श्वेतवस्त्रधारी, श्वेत माल्य एवं अनुलेपन से युक्त, मृगचर्मवृत एवं मयूरपुच्छ से अलङ्कृत, दैत्य घलि दयमीर, प्रलम्ब, मय एवं वाण आदि सदस्यों से आवृत होकर विलुप्त यज्ञ-मण्डप में समासीन हुआ । (२९-३०)

उस ही पत्नी विन्ध्यावली भी यज्ञरथ में दीक्षित हुई । यह ऋषिकन्या सदस्यों ललनाओं में प्रधान थी । (३१)

शुक्राचार्य ने वैश्रमास में सुलक्षण अथ वृष्ठी पर घूमने के लिये छोड़ा । वारणाश्रम नाम का असुर उसका

महीं विहर्तुं हृतसृष्टस्तारकाशोऽन्वगाद्य तम् ॥ ३२
 एवमथे सहसृष्टे वितते यज्ञकर्मणि ।
 गते च मासत्रितये ह्यमाने च पावके ॥ ३३
 पूज्यमानेषु दैत्येषु मिथुनस्थे दिवाकरे ।
 सुपुत्रे देवजननी माधवं वागनाकृतिम् ॥ ३४
 तं ज्ञातमात्रं भगवन्तमीशं
 नारायणं लोकरूपिं पुराणम् ।
 ब्रह्मा समम्येत्य समं महर्षिभिः
 स्तोत्रं जगादाय विभोर्महर्षे ॥ ३५
 नमोऽस्तु ते माधव सत्त्वमूर्ते
 नमोऽस्तु ते शाश्वत विश्वरूप ।
 नमोऽस्तु ते शत्रुघनेन्धनान्ने
 नमोऽस्तु वै पापमहादवाग्ने ॥ ३६
 नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वगायन ।
 नमस्ते जगदाधार नमस्ते पुरुषोत्तम ॥ ३७
 नारायण जगन्मूर्ते जगन्नाथ गदाधर ।

अनुसरण करने लगा । (३२)

इस प्रकार अध्व छोड़े जाने पर, यज्ञ कर्म के चलने रहने पर, अग्नि में हवन करते हुए तीन मास व्यतीत होने पर, दैत्यों के पूजित होने पर तथा सूर्य के मिथुन राशि में सङ्क्रमण करने पर देवमाता अदिति ने वामनाथर माधव को जन्म दिया । (३३-३४)

हे महर्षि ! वन भगवान्, ईश, नारायण, लोकरूपि पुराणपुरुष के उत्पन्न होते ही ब्रह्मा महर्षियों के साथ वनके समीप गए एवं विभु की स्तुति करने लगे— (३५)

हे सत्त्वमूर्त ! हे माधव ! आपने नमस्कार है, हे शाश्वत ! हे विश्वरूप ! आपने नमस्कार है । हे शत्रुघनेन्धन के लिए अग्निस्वरूप ! आपने नमस्कार है । हे पापदपी वन के लिये महादवाग्निस्वरूप ! आपने नमस्कार है । (३६)

हे पुण्डरीकाक्ष ! हे आपको नमस्कार है । हे विश्व गायन ! आपने नमस्कार है । हे जगदाधार ! आपने नमस्कार है । हे पुरुषोत्तम ! आपने नमस्कार है । (३७)

हे नारायण ! हे जगन्मूर्त ! हे जगन्नाथ ! हे गदाधर ! हे पीताम्बरधारी ! हे स्रुभीपति ! हे जनार्दन ! आपको

पीतनासः श्रियःकान्त जनार्दन नमोऽस्तु ते ॥ ३८
 भवांस्त्राता च गोप्ता च विद्यात्मा सर्वगोऽध्वयः ।
 सर्वधारी धराधारी रूपधारी नमोऽस्तु ते ॥ ३९
 वर्षस्व वर्धिताशेषत्रैलोक्य सुरपूजित ।
 कुरुष्व दैवतपते मघोनेऽशुभ्रमार्जनम् ॥ ४०
 त्वं धाता च विधाता च संहर्ता त्वं महेश्वरः ।
 महालय महायोगिन् योगशायिन् नमोऽस्तु ते ॥ ४१
 इत्थं स्तुतो जगन्नाथः सर्वात्मा सर्वगो हरिः ।
 प्रोवाच भगवान् महं कुरूपनयनं विभो ॥ ४२
 ततश्चकार देवस्य ज्ञातकृमादिकाः क्रियाः ।
 भरद्वाजो महातेजा वार्हस्पत्यवरतपोधनः ॥ ४३
 व्रतगन्धं तथेशस्य कृतवान् सर्वशास्त्रवित् ।
 ततो ददुः प्रीथिवुताः सर्व एव वरान् क्रमात् ॥ ४४
 यज्ञोपवीतं पुलहस्त्वहं च सितवासमी ।
 शृगाजिनं कुम्भयोगिर्भरद्वाजस्तु मेखलाम् ॥ ४५
 पालाशमददद् दण्डं मरीचिर्ब्रह्मणः सुतः ।

नमस्कार है । (३८)

आप प्राणमूर्त, रक्षक, विद्यात्मा, सर्वगामी, अध्वय, सर्वधारक, धराधारक तथा रूपधारक हैं । आप को नमस्कार है । (३९)

हे देवपूजित ! हे अशेष त्रैलोक्य को बढ़ाने वाले ! आपका अभ्युदय हो । हे देवपति ! आप इन्द्र के अशुभों का मार्जन करें । (४०)

आप धाता, विधाता, संहर्ता, महेश्वर, महालय, महायोगी और योगशायी हैं । आप को नमस्कार है । (४१)

इस प्रकार स्तुति किए जाने पर सर्वात्मा, सर्वगामी जगन्नाथ भगवान् हरि ने कहा—हे विभो ! मेरा उपनयन सकार कीजिए । (४२)

तदनन्तर महातेजसी तपोधन वृहस्पतिवशीय भरद्वाज ने वामन की जानकर्म आदि क्रियायें सम्पन्न कीं । (४३)

तदुपरान्त सदैवाश्रयेष्ठा भरद्वाज ने ईश्वर का व्रतगन्ध (यज्ञोपवीत) दिया । तदनन्तर अन्य सभी ने प्रमन्न होकर बटुक को प्रमन्न वरदान दिया । (४४)

पुलह ने यज्ञोपवीत, मैं (पुलह) ने दो सुवस्त्र वस्त्र, अगस्त्य ने शृगचर्म तथा भरद्वाज ने मेखला दी । (४५)
 ब्रह्मा के पुत्र मरीचि ने पलाशरण्ड, वारुणि (वसिष्ठ) ने

अक्षसूत्रं चारुणिस्तु कौशंयं वेदमथाङ्गिराः ॥ ४६
 छत्रं प्रादाद् रघु राजा उपानयुगलं नृगः ।
 कमण्डलुं चृहचेजाः प्रादाद्विष्णोर्चृहस्पतिः ॥ ४७
 एवं कृतोपनयनो भगवान् भूतभावनः ।
 संस्तूयमानो ऋषिभिः साङ्गं वेदमधीयत ॥ ४८
 भरद्वाजादाङ्गिरसात् सामवेदं महाध्वनिम् ।
 महदाध्वानसंपुक्तं गन्धर्वसहितं ध्रुवे ॥ ४९
 मासेनैकेन भगवान् ज्ञानधृतिमहार्णवः ।
 लोकाचारप्रवृत्त्यर्थमभूच्छ्रुतिविशारदः ॥ ५०
 सर्वशास्त्रेषु नैपुण्यं गत्वा देवोऽध्वयोऽप्ययः ।
 श्रोयाच्च ब्राह्मणश्रेष्ठं भरद्वाजमिदं वचः ॥ ५१
 श्रीवामन उवाच ।
 ब्रह्मन् ब्रजामि देहाङ्गां बुरक्षेत्रं महोदयम् ।
 तत्र दैत्यपतेः पुण्यो हयमेघः प्रवर्तते ॥ ५२
 समाविष्टानि पश्यस्व तेजांसि पृथिवीतले ।

ये संनिधानाः सततं मदंशाः पुण्यवर्धनाः ।
 तेनाहं प्रतिजानामि कुरुक्षेत्रं गतो बलिः ॥ ५३
 भरद्वाज उवाच ।
 स्वेच्छया तिष्ठ वा गच्छ नाहमाज्ञापयामि ते ।
 गमिष्यामो वयं विष्णो बलेरध्वरं मा खिद ॥ ५४
 यद् भवन्तमहं देव परिपृच्छामि तद् वद ।
 केषु केषु विभो नित्यं स्थानेषु पुरुषोत्तम ।
 सान्निध्यं भवतो ब्रूहि ज्ञातुमिच्छामि तत्त्वतः ॥ ५५
 वामन उवाच ।
 श्रूयतां कथयिष्यामि येषु येषु गुरो अहम् ।
 निवत्तामि सुपुण्येषु स्थानेषु बहुरूपवान् ॥ ५६
 ममावतारैर्वसुधा नभस्तलं
 पातालमम्भोनिधयो दिवश्च ।
 दिशः समस्ता गिरयोऽम्बुदाध
 च्यास्ता भरद्वाज ममानुरूपैः ॥ ५७

अक्षसूत्र एवं अंगिरा ने रेशमी वस्त्र तथा वेद दिया। (४६)
 राजा रघु ने छत्र, नृग ने एक जोड़ा जुता एवं अति
 तेजस्वी बृहस्पति ने विष्णु को कमण्डलु दिया। (४७)
 इस प्रकार उपनयन संस्कार हो जाने पर ऋषियों से
 संस्तुत भगवान् भूतभावन ने (गिज्ञा, कल्प, व्याकरण
 निरुक्त, छन्द और ज्योतिष) इन अंगों के साथ चारों वेदों
 या अध्ययन किया। (४८)
 हे मुनि ! इन्होंने आङ्गिरस भरद्वाज से गन्धर्वविद्या
 सहित महान् आध्वानों से पूर्ण महाध्वन्यात्मक सामवेद
 का अध्ययन किया। (४९)
 इस प्रकार ज्ञानस्वरूप-धृति के महासमुद्र भगवान्
 एक मास में लोकाचार की प्रवृत्ति हेतु ध्रुतिविशारद
 हो गये। (५०)
 समस्त शास्त्रों में निपुण होकर अक्षय, अजय
 यामन ने ब्राह्मण श्रेष्ठ भरद्वाज से यह वचन
 कहा। (५१)
 श्रीवामन ने कहा—हे ब्रह्मन् ! मैं अत्यन्त उत्कृष्ट
 कुरुक्षेत्र तीर्थ जाना चाहता हूँ। आप आज्ञा दीजिए।
 यहाँ दैत्याज बलि का पवित्र अरयमेघ यज्ञ हो रहा
 है। (५२)
 देखिये, पृथ्वीतल पर जो पुण्यवर्धक मेरे स्थान हैं

उनमें तेजों का समावेश हो रहा है। अत मुझे
 यह ज्ञात हो रहा है कि बलि कुरुक्षेत्र में स्थित
 है। (५३)
 भरद्वाज ने कहा—आप अपनी इच्छा से यहाँ रहें
 अथवा जायें। मैं आप को आदेश नहीं दूँगा। हे
 विष्णु ! हमलोग बलि के यज्ञ में जायेंगे। आप चिन्ता
 न करें। (५४)
 हे देव ! मैं आप से जो पृष्ठता हूँ उसे बतलायें।
 हे विभु ! हे पुरुषोत्तम ! मैं यथार्थरूप से यह जानना
 चाहता हूँ कि आप किन किन स्थानों में रहते हैं। (५५)
 वामन ने कहा—हे गुरु ! आप सुनें। अनेक रूपगुक्त
 मैं जिन-जिन स्थानों में मैं बहुत से रूपों को धारण कर
 रहता हूँ उनका वर्णन कर रहा हूँ। (५६)
 हे भरद्वाज ! मेरे अनुरूप मेरे अवतारों से पृथिवी,
 आकाश, पाताल, समुद्र, स्वर्ग, सभी दिशयें, पर्वत, तथा
 मेघ व्याप्त हैं। (५७)

ये दिव्या ये च भौमा जलगगनचराः स्यावरा जङ्गमाश्च
 सेन्द्राः सार्काः सचन्द्रा यमयसुयकृणा क्षन्नयः सर्वपालाः ।
 घ्नदायाः स्यावरान्ता द्विजखगसहिता मूर्तिमन्तो ह्यमूर्ताः
 ते सर्वे मत्प्रसूता बहु विविधगुणाः पूरणार्थं पृथिव्याः ॥५८

एते हि मुख्यः सुरसिद्धदानवैः
 पूज्यास्तथा संनिहिता महीतले ।
 पृथ्वीमात्रैः सहैव नाशं
 प्रयाति पापं द्विजवर्यं कीर्तनैः ॥ ५९

इति श्रीवामनपुराणे द्विपष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥

६३

श्रीभगवानुवाच ।

आद्यं मात्स्यं महद्रूपं संस्थितं मानसे हृदे ।
 सर्वपापक्षयकरं कीर्तनस्पर्शनादिभिः ॥ १
 कौर्मनन्वहसन्निधानं कीर्षिपर्वा पापनाशनम् ।
 ह्यशीर्षं च कृष्णांशे गोविन्दं हस्तिनापुरे ॥ २
 त्रिप्रिक्रमं च कालिन्दां लिङ्गमेदं भवं त्रिभुम् ।
 पेंदरे माधवं शीरं कुन्जान्ने हृष्टमूर्धजम् ॥ ३

नारायणं पदर्यां च चाराहे गरुडामनम् ।
 जयेद्यं भद्रकणं च विपादायां द्विजप्रियम् ॥ ४
 रूपधारमिरावत्त्वां कुरुक्षेत्रे कुरुप्रजम् ।
 कृतशीचे तृसिंहं च गोकर्णे निम्बकर्मणम् ॥ ५
 प्राचीने कामपालं च पुण्डरीकं महाम्भमि ।
 विद्याशयूपे क्षत्रितं हंसं हंगपदे तथा ॥ ६
 पयोष्णाद्यामखण्डं च वितन्वायां कुमारिलम् ।

हे भद्रन् ! दिव्य, पार्थिव, जलचर, आकाशचर,
 तथापर, जङ्गम, इन्द्र, सूर्य, चन्द्र, यम, वसु, परम, सभी
 अग्निर्षा, रामस्तपालक, प्रह्ला से लेकर श्वायर तक
 पशु-पक्षी सहित समस्त मूर्तिमान् और अमूर्त विविध गुरु
 सम्पन्न ये सभी पदार्थ पृथ्वी की पूर्ति के लिए मुझसे ही
 उत्पन्न हुए हैं । (५८)

पृथ्वी पर स्थित ये सभी मुख्य पदार्थ देवों, सिद्धों
 एवं दानवों से पूजनीय हैं । हे द्विजवर्य ! इनके कीर्तन
 एवं दर्शनमात्र से पाप सहजा नष्ट हो जाते हैं । (५९)

श्रीवामनपुराण में षाट्ठशो अध्याय समाप्त ॥ ६२ ॥

६३

श्रीभगवान् ने कहा—कीर्तन और स्पर्श आदि से
 सभी पापों का विनाश करने वाला मेरा प्रथम विद्याश
 मानसहृष मानस शयूपर में स्थित है । (१)
 दूसरा पापनाशक कूर्मावतार बीहिदी नदी में स्थित
 है । कृष्णांश में अश्वीर्ष अवतार तथा हरिनापुर में
 गोविन्दमूर्ति विद्यमान हैं । (२)
 बालिन्दी में त्रिप्रिक्रम, लिङ्गभेद में ब्यापक भय,
 पेंदर शीर्ष में माधव शीरि और कुन्जान्ने में हृष्टमूर्धज
 रूप स्थित है । (३)

परिश्राम में नारायण, षाट्ठ में गरुडामन
 भद्रकण में जयेद्य एवं विपादाश नदी के तट पर
 द्विजप्रिय रूप विद्यमान है । (४)
 इण्डरी में रूपधार, कुरुक्षेत्र में कुरुप्रज, कुरुक्षेत्र में
 गुरुक्षेत्र और गोकर्ण में निम्बकर्मण रूप विद्यमान है । (५)
 प्राचीन स्थान में कामपाल, गदाग्रभक्त में पुण्डरीक,
 विद्याशयूप में क्षत्रित तथा हंगपद में हंग रूप
 विद्यमान है । (६)
 पयोष्णी में अखण्ड, विद्याश में कुमारिल, बालिन्दा

मणिमत्पर्वते शम्भुं ब्रह्मण्ये च प्रजापतिम् ॥ ७
 मधुनद्यां चक्रधरं शूलवाहं हिमालये ।
 विद्धि विष्णुं मुनिश्रेष्ठ स्थितयोर्षाधसाजुनि ॥ ८
 भृगुतुङ्गे सुवर्णाक्षं नैमिषे पीतवाससम् ।
 गयायां गोपतिं देवं गदापाणिनमीश्वरम् ॥ ९
 त्रैलोक्यनाथं वरदं गोप्रतारे कुशेशयम् ।
 अर्द्धनारीश्वरं पुण्ये माहेन्द्रे दक्षिणे गिरौ ॥ १०
 गोपालहृत्तरे नित्यं महेन्द्रे सोमपीथिनम् ।
 वैकुण्ठमपि सहाद्रीं पारियात्रेऽपराजितम् ॥ ११
 कशेरुदेशे देवेशं विश्वरूपं तपोधनम् ।
 मलयद्रीं च सौगन्धिं विन्ध्यपादे सदाशिवम् ॥ १२
 अवन्तिविषये विष्णुं निषधेष्वमरेश्वरम् ।
 पाञ्चालिकं च ब्रह्मर्षे पाञ्चालेषु व्यवस्थितम् ॥ १३
 महोदये हयग्रीवं प्रयागे योगशापिनम् ।
 स्वर्गध्वजं मधुवने अयोगन्धिं च पुष्करे ॥ १४

पर्वत में शम्भु एवं ब्रह्मण्य के प्रजापति रूप स्थित है ।
 (७)
 हे मुनिश्रेष्ठ ! मधुनदी में चक्रधर, हिमालय में शूलवाह
 और ओषधिप्रस्थ में मेरे विष्णु रूप को अवस्थित जानें । (८)
 भृगुतुंग में सुवर्णाक्ष, नैमिष में पीतवासा एवं गया
 में गोपति गदाधर ईश्वर रूप वर्तमान है । (९)
 गोप्रतार में वरदायक त्रैलोक्यनाथ कुशेशय एवं
 पवित्र महेन्द्र पर्वत पर दक्षिण में अर्धनारीश्वर रूप विद्यमान
 है । (१०)
 महेन्द्र पर्वत पर उत्तर में सोमपीथी गोपाल, सहाद्री
 पर्वत में वैकुण्ठ एवं पारियात्र में अपराजित रूप
 स्थित है । (११)
 कशेरु देश में तपोधन विश्वरूप देवेश, मलय पर्वत में
 सौगन्धि तथा विन्ध्यपाद में सदाशिव रूप वर्तमान है । (१२)
 हे ब्रह्मर्षि ! अवन्ति देश में विष्णु, निषध देश में
 अमरेश्वर और पांचाल देश में मेरा पांचालिकरूप व्यवस्थित
 है । (१३)
 महोदय में हयग्रीव, प्रयाग में योगशापी, मधुवन
 में स्वर्गध्वज और पुष्कर में अयोगन्धि रूप विद्यमान
 है । (१४)

तत्रैव विप्रप्रवर वाराणस्यां च केशवम् ।
 अविमुक्तकमत्रैव लोलथात्रैव गीयते ॥ १५
 पद्मायां पद्मकिरणं समुद्रे वडवाहुरसम् ।
 कुमारधारे बाह्यीशं कार्तिकेयं च वर्हिणम् ॥ १६
 अजेयं शंभुमनवं स्थाणुं च कुरुजाङ्गले ।
 वनमालिनमाहुर्मां किष्किन्धावासिनो जनाः ॥ १७
 वीरं कुबलयारूढं शङ्खचक्रगदाधरम् ।
 श्रीधत्साङ्गद्वाराङ्गं नर्मदायां श्रियः पतिम् ॥ १८
 माहिष्मत्यां त्रिनयनं तत्रैव च हुताशनम् ।
 अर्बुदं च त्रिसौपर्णं श्माधरं सूकराचले ॥ १९
 त्रिणाचिकेतं ब्रह्मर्षे प्रभासे च कर्पूरिनम् ।
 तत्रैवात्रापि विख्यातं तृतीयं शशिशेखरम् ॥ २०
 उदये शशिनं सूर्यं ध्रुवं च त्रितयं स्थितम् ।
 हेमकूटे हिरण्याक्षं स्कन्दं शरवणे मृने ॥ २१
 महालये स्मृतं रुद्रहृत्तरेषु कुरुष्वथ ।

हे विप्रश्रेष्ठ ! उसी प्रकार वाराणसी में मेरा केशव रूप
 तथा वहीं पर अविमुक्तक तथा लोल रूप को स्थित कहा
 गया है । (१५)
 पद्मा में पद्मकिरण, समुद्रे में वडवाहुरस तथा कुमारधारा
 में बाह्यीश और बाह्यी कार्तिकेय रूप स्थित है । (१६)
 अजेय में अनप शम्भु तथा कुरुजांगल में स्थाणु मूर्ति
 हैं । किष्किन्धा के निवासी लोग मुझे वनमाली कहते
 हैं । (१७)
 नर्मदा के क्षेत्र में मुझे वीर, कुबलयारूढ, शङ्खचक्र-
 गदाधर, श्रीधत्साङ्ग एवं द्वाराङ्ग श्रीपति कहा जाता
 है । (१८)
 माहिष्मती में मेरा त्रिनयन एवं हुताशन रूप विद्यमान
 है । इसी प्रकार अर्बुद में त्रिसौपर्ण एवं सूकराचल में
 मेरा श्माधर रूप अवस्थित है । (१९)
 हे ब्रह्मर्षि ! प्रभासे में मेरा त्रिणाचिकेत, कर्पूरि एवं
 तृतीय शशिशेखर रूप विख्यात है । (२०)
 उदयगिरि में चन्द्र, सूर्य और ध्रुव ये तीन मूर्तियों
 अवस्थित हैं । हे मुनि ! हेमकूट में हिरण्याक्ष एवं शरवण
 में स्कन्द नामक रूप विद्यमान है । (२१)
 हे मुनिश्रेष्ठ ! महालय में रुद्र एवं कच्छरूढ में स्वर्ग-

पद्मनाभं मुनिश्रेष्ठ सर्वसौख्यप्रदायकम् ॥ २२
 समगोदावरे ब्रह्मन् विलयात् हाटकेश्वरम् ।
 तत्रैव च महाहर्मं प्रयागेऽपि वटेश्वरम् ॥ २३
 शोणे च रुक्मकनचं कुण्डिने प्राणतर्पणम् ।
 भिच्छीवने महायोगे माद्रेषु पुरुषोत्तमम् ॥ २४
 प्लशावतरणे विश्वं श्रीनिवासं द्विजोत्तम ।
 शूर्पारके चतुर्बाहुं मगधायां सुधापतिम् ॥ २५
 गिरित्रजे पशुपतिं श्रीकण्ठं यमुनाते ।
 वनस्पतिं समाख्यात दण्डकारण्यवासिनम् ॥ २६
 कालिञ्जरे नीलकण्ठं सरयू च शंभुमुत्तमम् ।
 हंसयुक्तं महाकौश्या सर्वपापप्रणाशनम् ॥ २७
 गोकुणं दक्षिणे शर्वं वासुदेवं प्रजापतये ।
 विन्ध्यमूढे महाशीरिं कन्यायां मधुसूदनम् । २८
 त्रिकूटशिखरे ब्रह्मन् चक्रपाणिनमीश्वरम् ।
 लौहदण्डे हृषीकेशं कोसलायां मनोहरम् ॥ २९
 महानाहुं सुराष्ट्रे च नवराष्ट्रे यशोधरम् ।

सौख्यप्रद पद्मनाभ रूप विलयात् है । (२२)
 हे ब्रह्मन् । समगोदावर मे विलयात् हाटकेश्वर एव
 महाहंस तथा प्रयाग मे वटेश्वर रूप अवस्थित है । (२३)
 शोण मे रुक्मकनच, कुण्डिने मे प्राणतर्पण, भिच्छीवने
 में महायोग, माद्रे मे पुरुषोत्तम रूप विद्यमान है । (२४)
 हे द्विजोत्तम । प्लशावतरणे मे विधात्मक श्रीनिवास,
 शूर्पारक में चतुर्बाहु एवं मगधा मे सुधापति रूप
 स्थित है । (२५)
 गिरित्रज मे पशुपति, यमुनातट पर श्रीकण्ठ एव
 दण्डकारण्य मे मेरा धनस्पति रूप विलयात् है । (२६)
 कालिञ्जर में नीलकण्ठ, सरयू मे उत्तम शंभु एव
 महाकौशी मे सर्वपापविनाशक हंसयुक्तरूप स्थित है । (२७)
 दक्षिण गोकुण में शर्व, प्रजासुख में वासुदेव, विन्ध्य
 पर्वत के शिखर में महाशीरि एव कन्या में मधुसूदन
 रूप विद्यमान है । (२८)
 हे ब्रह्मन् । त्रिकूटपर्वत के शिखर पर चक्रपाणि ईश्वर,
 लौहदण्ड मे हृषीकेश तथा कोसला मे मनोहर रूप
 वर्तमान है । (२९)
 सुराष्ट्र मे महानाहु, नवराष्ट्र में यशोधर, देविका नदी

भूधरं देविकानद्यां महोदायां कुशप्रियम् ॥ ३०
 गोमत्यां छादितगदं शङ्खोद्गारे च शङ्खिनम् ।
 सुनेत्रं सैन्धवारण्ये शूरं शूरपुरे स्थितम् ॥ ३१
 रुद्राण्यं च हिरण्यत्वां वीरभद्रं त्रिविष्टपे ।
 शङ्करुणं च भीमायां भीमं शालवने विदुः ॥ ३२
 विश्वामित्रं च नदितं कैलासे वृषभध्वजम् ।
 महेशं महिलाशैले कामरूपे शशिप्रभम् ॥ ३३
 बलन्यामपि गोमित्रं कटाहे पङ्कजप्रियम् ।
 उपेन्द्रं सिंहलद्वीपे शक्राह्ने कुन्दमालिनम् ॥ ३४
 रसातले च विलयात् सहस्रखिरसं मुने ।
 कालाशिरुद्रं तत्रैव तथाऽन्यं कृत्तिवासात् ॥ ३५
 सुतले कूर्मचलं वितले पङ्कजामनम् ।
 महातले सुरो रयात् देवेशं छागलेश्वरम् ॥ ३६
 तले सहस्रचरणं सहस्रभुजमीश्वरम् ।
 सहस्राक्षं परिच्यात् मुसलाकृष्टदानवम् ॥ ३७
 पाताले योगिनामीशं स्थितञ्च हरिशंकरम् ।

मे भूधर तथा महोदा मे कुशप्रिय रूप स्थित है । (३०)
 गोमती में छादितगद, शङ्खोद्गार मे शरी, सैन्धवारण्य
 मे सुनेत्र एव शूरपुर मे शूर रूप विद्यमान है । (३१)
 हिरण्यती मे रुद्र, त्रिविष्टप मे वीरभद्र, भीमा मे
 शङ्करुण और शालवने में भीम नामक रूप को लोग जानते
 है । (३२)
 कैलास मे वृषभध्वज त्रिश्वामित्र, महिलाशैले मे महेश
 एव कामरूप मे शशिप्रभ रूप वर्तमान है । (३३)
 बलभी मे गोमित्र, कटाह मे पङ्कजप्रिय, सिंहलद्वीप
 में उपेन्द्र एव शक्राह्ने मे कुन्दमाली नामक रूप स्थित
 है । (३४)
 हे मुने । रसातल मे विलयात् सहस्रशीर्ष एव पाळाग्नि
 रुद्र तथा कृत्तिवासा नामक रूप विद्यमान
 है । (३५)
 हे शुरु । सुतल मे अचल कूर्म, वितल मे पङ्कजासन
 तथा महातल में छागलेश्वर नामक विलयात् देवेश रूप
 स्थित है । (३६)
 तल में सहस्रचरण, सहस्रबाहु एव मुसल से
 दानव ना आकृष्ट करने वाला मेघ सहस्राक्ष रूप
 अवस्थित है । (३७)

धरातले कोरुनदं मेदिन्यां चक्रपाणिनम् ॥ ३८
 भ्रुवल्लोके च गरुडं स्वर्लोके विष्णुमव्ययम् ।
 महर्लोके तथाऽगस्त्यं कपिलं च जने म्थितम् ॥ ३९
 तपोलोकेऽपिलं ब्रह्मन् चाद्भुम्यं सत्यसंयुतम् ।
 ब्रह्मणां ब्रह्मलोके च सप्तमे वै प्रतिष्ठितम् ॥ ४०
 सनातनं तथा शैवे परं ब्रह्म च वैष्णवे ।
 अप्रतर्क्यं निरालम्बे निराकाशे तपोमयम् ॥ ४१
 जम्बूद्वीपे चतुर्वाहुं कुशद्वीपे कुशेशयम् ।
 प्लक्षद्वीपे ह्यनिश्रेष्ठं रज्यातं गरुडवाहनम् ॥ ४२
 पद्मनाभं तथा क्रौञ्चे शाल्मले वृषभभञ्जम् ।
 सहस्रांशुः स्थितः शाके धर्मराट् पुण्डरे स्थितः ॥ ४३
 तथा प्रथिव्यां ब्रह्मणं शालग्रामे स्थितोऽस्म्वहम् ।
 सजलस्थलपर्यन्तं चरेषु स्थावरेषु च ॥ ४४
 एतानि पुण्यानि ममालयानि
 ब्रह्मन् पुराणानि सनातनानि ।

इति श्रीवामनपुराणे त्रिपष्टितनोऽध्याय ॥६३॥

पाताल मे योगेश हरिश्चन्द्र, धरातल पर कोबिन्द
 तथा मेदिनी मे चक्रपाणि रूप वर्तमान हे । (३८)
 भ्रुवल्लोक मे गरुड, स्वर्लोक मे अव्यय विष्णु,
 महर्लोक मे अगस्त्य तथा जनलोक मे कपिल नामक रूप
 विद्यमान हे । (३९)
 हे ब्रह्मन् ! तपोलोक मे सत्यसंयुक्त अजित याज्ञभ्य
 एवं सप्तम ब्रह्मलोक मे ब्रह्मा नामक रूप प्रतिष्ठित हे । (४०)
 शिवलोक मे सनातन, विष्णुलोक मे परम ब्रह्म,
 निरालम्ब मे अप्रतर्क्य एवं निराकाश मे तपोमय नामक
 रूप स्थित हे । (४१)
 हे मुनिप्रेत ! जम्बू द्वीप मे चतुर्वाहु, कुशद्वीप मे
 कुशेशय एवं प्लक्षद्वीप मे गरुडवाहन नाम से विख्यात
 रूप वर्तमान हे । (४२)
 श्रीपद्मद्वीप मे पद्मनाभ, शाल्मलद्वीप मे वृषभभञ्ज,
 शकद्वीप मे सहस्रांशु तथा पुण्डरी द्वीप मे धर्मराज नामक
 रूप विद्यमान हे । (४३)
 हे महर्षि ! इसी प्रकार वृषवी मे मे शालग्राम
 के भीतर अवस्थित हैं । इस प्रकार जल, स्थल से लेकर समस्त
 वायु मे मे वर्तमान हैं । (४४)

धर्मप्रदानीह महौजसानि
 संकीर्तनीयान्वचनानां ॥ ४५
 संकीर्तनात् स्मरणाद् दर्शनाच्च
 संस्पर्शनादेव च देवतायाः ।
 धर्मार्थकामाद्यध्वगर्भमेव
 लभन्ति देवा मनुजाः सप्ताध्याः ॥ ४६
 एतानि तुभ्यं विनिवेदितानि
 ममालयानीह तपोमयानि ।
 उत्तिष्ठ गच्छामि महासुरस्य
 यज्ञं सुराणां हि हिताय विप्र ॥ ४७
 पुलस्त्य उवाच ।
 इत्येवमुक्त्वा वचनं महर्षे
 विष्णुर्भरद्वाजमृषिं महात्मा ।
 विलासलीलागमनो गिरीन्द्रात्
 स चाभ्यगच्छत् कुरुजाङ्गलं हि ॥ ४८

हे ब्रह्मन् ! ये ही मेरे पुण्य, पुरातन एवं सनातन
 धर्मप्रद, अत्यन्त ओजस्वी, सङ्कीर्तन योग्य एवं अपनाशक्त
 निवास स्थान हैं । (४५)

देवता के कीर्तन, स्मरण, दर्शन और स्पर्श करने से ही
 देव, मनुष्य और साध्य लोग धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष
 प्राप्त करते हैं । (४६)

हे विप्र ! मैंने आप से अपने इन तपोमय
 स्थानों को कहा । उठिए, देवताओं का हित साधन करने के
 लिए मैं वसिष्ठ यज्ञ में जाता हूँ । (४७)

पुलस्त्य ने कहा—हे महर्षि ! महात्मा विष्णु महर्षि
 भरद्वाज से इस प्रकार का वचन कहकर विनासपूर्वक
 चलते हुए वात गिरीन्द्र से कुरुजांगल में चले । (४८)

पुलस्त्य उवाच ।

तव समागच्छति वासुदेव
मही चकम्पे गिरयश्च चेतः ।
क्षुब्धाः समुद्रा दिवि श्रद्धमण्डलो
वभौ विपर्यस्तगतर्महर्षे ॥ १

यज्ञः समागात् परमाकुलत्वं
न वेत्ति किं मे मधुहा करिष्यति ।
यथा प्रदग्धोऽस्मि महेश्वरेण
किं मां न संधक्ष्यति वासुदेवः ॥ २

श्रद्धसाममन्त्राहुतिभिर्हुताभि-
र्वितानकीयान् ज्वलनास्तु भागान् ।
भक्त्या द्विजेन्द्रैरपि संप्रपादितान्
नैव प्रतीच्छन्ति विमोर्भवेन ॥ ३

तान् दृष्ट्वा घोररूपास्तु उत्पातान् दानवेश्वरः ।
पप्रच्छोशनसं शुक्रं प्रणिपत्य कृताञ्जलिः ॥ ४
किमर्थमाचार्य मही सशैला

पुलस्त्य ने कहा—हे महर्षि! तदनन्तर वामन रूपधारी वासुदेव के आने पर पृथ्वी कम्पित होने लगी, पर्वत विचलित हो उठे, समुद्र आन्दोलित हो गये एवं आकाश में तारा समूह की गति अस्त-व्यस्त हो गयी । (१)

यज्ञ भी अत्यन्त व्याकुल होकर सोचने लगा— न जाने मधुसूदन वासुदेव आकर मेरा क्या करेंगे? जैसे महेश्वर ने मुझे दग्ध कर दिया था, क्या वासुदेव भी वो मुझे वैसे ही दग्ध नहीं कर देंगे? (२)

द्विजेन्द्रों द्वारा भक्ति पूर्वक श्रद्धावेद एवं सामवेद के मन्त्रों की जाहृतियों से हुत यज्ञीय भागों की अग्नि विष्णु के भय से नहीं ग्रहण कर रहे थे । (३)

उन भयङ्कर उत्पातों को देखकर दानवेश्वर (वल्लि) ने उग्रता शुक्याचार्य को प्रणाम कर तथा हाथ जोड़कर उनसे पूछा— (४)

हे आचार्य! पर्वतों सहित पृथ्वी वायु से आहत

रम्भेव वाताभिहता चचाल ।

किमासुरीयान् सुहुतानपीह
भागान् न गृह्णन्ति हुताशनाथ ॥ ५
क्षुब्धाः किमर्थं मकरालयाश्च भो
श्रद्धा न रे के किं प्रचरन्ति पूर्ववत् ।

दिशः किमर्थं तमसा परिप्लुता
दोषेण कस्याद्य वदस्व मे गुरो ॥ ६
पुलस्त्य उवाच ।

शुक्रतद् वाक्यमाकर्ण्य विरोचनसुतेरितम् ।
अथ ज्ञात्वा कारणं च वल्लि वचनमवधीत् ॥ ७

शुक उवाच ।

मृणुष्व दैत्येश्वर येन भागान्
नामी प्रतीच्छन्ति हि आसुरीयान् ।

हुताशना मन्त्रहुतानपीह
नूनं समागच्छति वासुदेवः ॥ ८
तदह्प्रिविक्षेपमपारयन्ती

फेले के वृक्ष सटश क्यो कम्पित हो रही है एवं अग्नि भी भली भाँति आहुत आसुरीय भागों को क्यों नहीं ग्रहण कर रहे है? (५)

समुद्र क्यों क्षुब्ध हो उठे है? आकाश में नक्षत्र पूर्ववत् क्यों नहीं संचार कर रहे है एवं दिशाएँ क्यों अन्यत्र से आवृत हो गयी हैं? हे गुरु! मुझे यह वतलाएँ कि किसके दोष से यह सब हो रहा है? (६)

पुलस्त्य ने कहा—विरोचन पुत्र द्वारा कहे गये उस वाक्य वा सुनने के उपरान्त कारण को जानकर शुक ने वलि से कहा । (७)

शुक्याचार्य ने कहा—हे दैत्येश्वर! सुनो! निस्त्रय ही वासुदेव आ रहे है । इसीलिये अग्नि मन्त्र के द्वारा हुत होने पर भी आसुरीय भागों को नहीं ग्रहण कर रहे है । (८)
हे दितीश! उनके पदक्षेप का भार सहन न कर सकने के कारण पर्वतों सहित पृथ्वी कम्पित हो रही है ।

मही सरीला चलिवा दितीश ।

तस्यां चलत्यां मकरालयामी

उद्दृष्टवेला दितिजाय जाताः ॥ ९

पुलस्त्य उवाच ।

शुक्रस्य वचनं श्रुत्वा बलिभीर्गवमववीत् ।

धर्मं सत्यं च पथ्यं च सर्वोत्साहसमीरितम् ॥ १०

बलिरुवाच ।

आयाते वासुदेवे च दम भगवन् धर्मकामार्थतत्त्वं

किं कार्यं किंच देयं मणिकनकमयो भृगुजाद्यादिकं वा ।

किं वा वाच्यं सुरारोर्निजहितमथवा तद्धितं वा प्रयुञ्जे

तथ्यं पथ्यं प्रियं भो भव वद शुभदंतकरिण्येन चाग्यत् ॥ ११

पुलस्त्य उवाच ।

तद् वाच्यं भार्गवः श्रुत्वा दैत्यनाथैरितं वरम् ।

विचिन्त्य नारद प्राह भूतमन्वविदीश्वरः ॥ १२

त्वया कृता यज्ञसृजोऽसुरेन्द्रा

बहिष्कृता ये श्रुतिवृष्टमार्गं ।

श्रुतिप्रमाणं मरुभोजिनो बहिः

हे दिविल ! श्रुतिषो के विबलित होने से ये समुद्र आज सीमा का उल्लापन पर गये हैं ।

(६)

पुलस्त्य ने कहा—शुक्र का वचन सुनकर बलि ने भार्गव से धर्मपुत्र, सत्य, हितप्रद और सभी प्रकार के उत्साह से युक्त वचन कहा ।

(१०)

बलि ने कहा—हे भगवन् ! वासुदेव के आने पर मेरे करने योग्य धर्म, काम एवं अर्थ के वचन को बनवाएँ । मैं उन्हें गणित, स्वर्ग, पृथ्वी, हथी अथवा अथ में से क्या दान करूँ ? मैं सुरारि से क्या करूँ ? अपना अधया उनका क्या हित साधन करूँ ? आप मुझे हितकारी, शुभ तथा मिय तथ्य बनवाएँ । मैं वही करूँगा, अन्य कुछ नहीं करूँगा ।

(११)

पुलस्त्य ने कहा—हे नारद ! दैत्यनाथ द्वारा बड़े रूप पर भेद वचन से सुनने के उपरान्त विपार पर भूत एवं भक्ति के ज्ञाना भार्गव ने कहा—

(१२)

मुझे मुनि द्वारा प्रत्यादिन मार्ग में बहिष्कृत असुरेन्द्रों के पतनका वनावा है एवं मुनि प्रमाणानुसार

सुरास्तदर्थं हरिरग्युपैति ॥ १३

तस्याध्वरं दैत्यसमागतस्य

कार्यं हि किं मां परिपृच्छसे यत् ।

कार्यं न देयं हि विभो वृणाग्रं

यदध्वरे भूकनकादिकं वा ॥ १४

वाच्यं तथा साम निरर्थकं विभो

कस्ते वरं दातुमलं हि शक्युयात् ।

वस्योदरे भूर्भुवनाकपाल-

रसावलेष्ठा निवसन्ति नित्यशः ॥ १५

बलिरुवाच ।

मया न चोक्तं वचनं हि भार्गव

न चास्ति मद्यं न च दातुमस्तहे ।

ममागतेऽप्यधिनि हीनश्रुते

जनादनें लोकपतौ कथं तु ॥ १६

एवं च श्रुते श्लोकः सतां कथयतां विभो ।

सद्भावो ब्राह्मणेभ्येव कर्त्तव्यो भूतिमिच्छता ।

दृश्यते हि तथा तद्य सत्यं ब्राह्मणसत्तम ॥ १७

मारभोगी देवों को बहिष्कृत पर दिया है । इसी कारण से हरि आ रहे हैं ।

(१३)

हे दैत्य ! तुमने मुझसे जो यह वृद्धा है कि यश में उनके आने पर क्या करना चाहिए, (उमके विषय में मेरा यह कहना है कि) यश में हृण के अमभाग में बराबर भी पृथ्वी या सुपर्णादि कड़े नदी देना चाहिए ।

(१४)

जैसे इस प्रकार का अर्थहीन सामयुक्त वचन करना चाहिए कि 'हे विभो ! जिसके उदर में भूडोव, सुपर्णादि एवं स्वर्गों के अधिपति तथा रसावले के स्वामी नित्य निवास करने हैं ऐसे आप को दान देने में वीन समर्थ है ?

(१५)

बलि ने कहा हे भार्गव ! आपादीन वाचक के आने पर भी मैंने यह वचन नहीं कहा कि मेरे पास नहीं है और मैं देना नहीं चाहता । अतः छोड़ना भी जनार्दन के वाचक बनकर आने पर मैं ऐसा कैसे बड़ सकता हूँ ?

(१६)

हे विभो ! सज्जनों के द्वारा कहा गया इस प्रकार का श्लोक सुना जाना है कि पृथ्वी की इच्छा करने वाले

पूर्वाभ्यासेन कर्माणि संभवन्ति नृणां स्फुटम् ।
वाक्कायमानसानीह योन्यन्तरगतान्यपि ॥ १८
किं वा त्वया द्विजश्रेष्ठ पौराणी न श्रुता कथा ।
या वृत्ता मलये पूर्वं कोशकारस्तुतस्य तु ॥ १९
शुक्र उवाच ।

कथयस्व महाबाहो कोशकारसुताश्रयाम् ।
कथां पौराणिकीं पुण्यां महाकौतूहलं हि मे ॥ २०
बलिहवाच ।

शृणुष्व कथयिष्यामि कथामेतां मर्यान्तरे ।
पूर्वाभ्यासनिबद्धां हि सत्यां भृगुकुलोद्बह ॥ २१
मुद्गलस्य ह्यनेः पुत्रो ज्ञानविज्ञानपारगः ।
कोशकार इति ख्यात आसीद् भ्रमरंतपोरतः ॥ २२
तस्यासीद् दयिता साध्वी धर्मिष्ठा नामतः श्रुता ।
सती वात्स्यायनसुता धर्मशीला पतिव्रता ॥ २३

मनुष्य को ब्राह्मणों के प्रति सद्भाव रखना चाहिए ।
हे ब्राह्मणपुंगव ! और यह सत्य भी प्रतीत
होता है । (१७)

यचन, शरीर एवं मन द्वारा किये गये मनुष्यों के कर्म
दूसरी योनियों में भी पूर्व के अभ्यासवश स्फुटरूप से
प्रकट होते हैं । (१८)

हे द्विजश्रेष्ठ ! प्राचीनकाल में मलयाचल पर पंडित
कोशकार के पुत्र की प्राचीन कथा को क्या आपने नहीं
सुना है ? (१९)

शुक्र ने कहा—हे महाबाहु ! कोशकार के पुत्र सम्बन्धी
पवित्र प्राचीन कथा को वही। मुझे महान् कीर्तिहल
हो रहा है । (२०)

बलि ने कहा—हे भृगुकुलश्रेष्ठ ! पूर्वाभ्यास से संबद्ध
इस सत्य कथा को मैं यज्ञ में कह रहा हूँ। आप श्रवण
करें । (२१)

हे ब्रह्मन् ! महर्षि मुद्गल का कोशकार नाम से
विख्यात ज्ञान विज्ञान सम्पन्न एक तपस्वी पुत्र था । (२२)

उसकी पत्नी का नाम धर्मिष्ठा था। वह वात्स्यायन की
कन्या, साध्वी, सती, धर्मशीला तथा पतिव्रता
थी । (२३)

तस्यामस्य सुतो जातः प्रकृत्या वै जडाकृतिः ।
मूकवन्नालपति स न च पश्यति चान्धवत् ॥ २४
तं जातं ब्राह्मणी पुत्रं जडं मूकं त्वचक्षुषम् ।
मन्यमाना गृहद्वारि पण्टेऽहनि सप्ततृजुजत् ॥ २५
ततोऽभ्यागाद् दुराचारा राक्षसी जातहारिणी ।
स्वं शिशुं कुशमादाय सूर्पाक्षी नाम नामतः ॥ २६
तत्रोत्सृज्य स्वपुत्रं सा जग्राह द्विजनन्दनम् ।
तमादाय जगामाव भोक्तुं शालोदरे गिरौ ॥ २७
ततस्तामामतां धीक्ष्य तस्या भर्ता घटोदरः ।
नेत्रहीनः प्रत्युवाच किमानीतस्त्वया प्रिये ॥ २८
साऽब्रवीत् राक्षसपते मया स्थाप्य निजं शिशुम् ।
कोशकारद्विजगृहे तस्थानीतः प्रभो सुतः ॥ २९
स प्राह न त्वया भद्रे भद्रमाचरितं त्विति ।
महाज्ञानी द्विजेन्द्रोऽसौ ततः शस्यति कोपितः ॥ ३०

उसी स्त्री के गर्भ से उसने एक पुत्र हुआ, जो स्वभाव
से ही जड़ आकार वाला था। गूंगे व्यक्ति की भाँति
न यह धोखता था और न अन्धे की भाँति देखता ही
था । (२४)

अपने उस उत्पन्न पुत्र को जड़, गूंगा और अन्धा
समझकर ब्राह्मणी ने छठे दिन उसे घर के द्वार पर फेंक
दिया । (२५)

तदनन्तर सूर्पाक्षी नाम की एक दुराचारिणी, नवजात
बालकों को चुराने वाली राक्षसी अपने दुबले-पतले पुत्र को
लेकर वहाँ आयी । (२६)

वहाँ अपने पुत्र को छोड़कर उसने ब्राह्मणपुत्र को ढूँढ
लिया। उसे लेकर खाने के लिए शालोदर नामक पर्वत
पर गयी । (२७)

तदुपरान्त उसे आयी हुई जानकर घटोदर नामक
उसके नेत्रहीन पति ने पूछा—हे प्रिये ! तुम क्या
लायी हो ? (२८)

उसने कहा—हे राक्षसपति ! हे प्रभो ! मैं अपने
शिशु को कोशकार मुनि के घर में रखकर उनके पुत्र को
लायी हूँ । (२९)

राक्षस ने कहा—हे भद्रे ! तुमने यह अच्छा
नहीं किया। यह द्विजेन्द्र महात्तमी है। अतः यह
क्षोभित होकर शाप दे देगा । (३०)

तस्माच्छीघ्रमिमं त्यक्त्वा मनुजं घोररूपिणम् ।
 अन्यस्य कस्यचित् पुत्रं शीघ्रमानय सुन्दरि ॥ ३१
 इत्येवमुक्त्वा सा रौद्रा राक्षसी कामचारिणी ।
 समाजगाम त्वरिता सद्गुत्पत्य विहायसम् ॥ ३२
 स चापि राक्षससुतो निस्पृष्टो गृहबाह्वतः ।
 रुरोद सुस्वरं ब्रह्मन् प्रक्षिप्याद्भ्रष्टमानने ॥ ३३
 सा क्रन्दितं चिराच्छ्रुत्वा धर्मिष्ठा पतिमब्रवीत् ।
 पश्य स्वयं मुनिश्रेष्ठ सशब्दस्तनयस्तव ॥ ३४
 वस्ता सा निर्जगामाय गृहमभ्यात् तपस्विनी ।
 स चापि ब्राह्मणश्रेष्ठः समपश्यत तं शिशुम् ॥ ३५
 वर्णरूपादिमयुक्तं यथा स्वतनयं तथा ।
 ततो विहस्य शोवाच कोशकारो निजां प्रियाम् ॥ ३६
 एतेनाविभ्य धर्मिष्ठे भाव्यं भूतेन साम्प्रतम् ।
 कोऽप्यस्माकं छलयितुं सुरूपी भृषि संस्थितः ॥ ३७
 इत्युक्त्वा वचनं मन्त्री मन्त्रैस्तं राक्षसात्मजम् ।

हे सुन्दरी! इसलिए शीघ्र इस भयंकर रूप वाले मनुष्य को छोड़ कर तुम किसी दूसरे के पुत्र को लाओ । (३१)

ऐसा बड़े जाने पर वह कामचारिणी भयङ्कर राक्षसी आनाथ में उड़ती हुई शीघ्र यहाँ गयी । (३२)

हे ब्रह्मन्! गृह के बाहर छोड़ा गया यह राक्षसपुत्र भी मुझ में अँगूठा डालकर उस स्त्री से रोने लगा । (३३)

चिरमालोपरान्त क्रन्दन को सुनकर उस धर्मिष्ठा ने पति से कहा—हे मुनिश्रेष्ठ! देखो यह, आपना पुत्र शब्द बरने लगा । (३४)

डरकर वह तपस्विनी गृह के भीतर से बाहर गयी । उस ब्राह्मणश्रेष्ठ ने भी उस शिशु को देखा । (३५)

अपने पुत्र के समान ही रंग रूप आदि से युक्त उस बालक को देखने के उपरान्त कोशकार मुनि ने हँस कर अपनी पत्नी से कहा । (३६)

हे धर्मिष्ठे! इस बालक के भीतर अवश्य भूत प्रविष्ट हो गया है । हम लोगों को घोसा देने के लिए सुन्दर रूपवाला कोई यहाँ विद्यमान है । (३७)

ऐसा बहुरार उस मन्त्रवेद्या ने हाथ में कुशा लेकर मन्त्रों के द्वारा भूमि को देखाद्विन पर राक्षसपुत्र को बाँध

वन्धोच्छिद्य वसुधां सञ्जुशेनाथ पाणिना ॥ ३८
 एतस्मिन्नन्तरे प्राप्ता सूर्पाक्षी विप्रबालकम् ।
 अन्तर्धानगता भूमौ चिक्षेप गृहदूरत ॥ ३९
 तं क्षिप्तमात्रं जग्राह कोशकारः स्वकं सुतम् ।
 सा चाभ्येत्य ग्रीहीतुं स्वं नाशकद्र राक्षसी सुतम् ॥ ४०
 इतथेतश्च विभ्रष्टा सा भर्तारमुपागमत् ।
 कथयामास यद् वृत्तं स्वद्विजात्मजहारिणम् ॥ ४१
 एवं गतायां राक्षस्यां ब्राह्मणेन महात्मना ।
 स राक्षसश्शिशुर्ब्रह्मन् भाषायाँ चिनिवेदितः ॥ ४२
 स चात्मतनयः पित्रा कर्पलायाः सवत्सयाः ।
 दध्ना संयोजितोऽत्यर्थं क्षीरेणोक्षुरसेन च ॥ ४३
 द्वावेव बर्धितौ बालौ संजातौ सप्तवार्षिकौ ।
 पित्रा च कृतनामानौ निशाकरदिवाकरौ ॥ ४४
 नैशाचरिर्दिवाकीर्तिनिशाकीर्तिः स्वपुत्रकः ।
 तयोश्चकार विप्रोऽसौ व्रतबन्धक्रियां क्रमात् ॥ ४५

दिया । (३८)
 इसी बीच सूर्पाक्षी वहाँ पहुँची एवं अदृश्य रूप में गृह से दूर स्थित होकर उसने ब्राह्मण के बालक को पँचा । (३९)

कँकरो ही कोशकार ने अपने उस पुत्र को पकड़ लिया । किन्तु यह राक्षसी वहाँ जाकर अपने पुत्र को नहीं पकड़ सकी । (४०)

दोनों ओर से ध्रष्ट होकर वह अपने पति के पास गयी और अपने पुत्र तथा ब्राह्मणपुत्र दोनों के रोने का वृत्तान्त बह सुनाया । (४१)

हे ब्रह्मन्! इस प्रकार राक्षसी के चले जाने पर महात्मा ब्राह्मण ने अपनी पत्नी को यह राक्षसपुत्र दे दिया । (४२)

और पिता ने अपने पुत्र को सरसवा कपिला गाय के दूध, दधि एवं ईश के रस से पाटा-पोसा । (४३)

दोनों ही बालक बढ़कर सात वर्ष के हो गए । पिता ने उन दोनों का नाम निशाकर एवं दिवाकर रखा । (४४)

राक्षसपुत्र का नाम दिवाकीर्ति और ब्राह्मणपुत्र का नाम निशाकीर्ति था । ब्राह्मण ने क्रमशः दोनों का यमोपवीत संस्कार किया । (४५)

व्रतन्धे कृते वेदं पपाटासौ दिवाकरः ।
 निशाकरो जडतया न पपाठेति नः श्रुत्वम् ॥ ४६
 तं वान्धवाश्च पितरौ माता आता गुरुस्तथा ।
 पर्यनिन्दन्तवा ये च जना मलयधामिनः ॥ ४७
 ततः स पित्रा क्रुद्धेन श्लिप्तः कूपे निरुदके ।
 महाशिलां चोपरि च पिधानमवरोपयत् ॥ ४८
 एवं श्लिप्तस्तदा कूपे बहुवर्षगणान् स्थितः ।
 तत्रास्त्यामलक्रीगुल्मः पोषाय फलितोऽभवत् ॥ ४९
 ततो दशसु वर्षेषु समतीतेषु भार्गव ।
 तस्य माताऽगमत् कूपं तमन्वं शिलयाचितम् ॥ ५०
 सा दृष्ट्वा निचितं कूपं शिलया गिरिकल्पया ।
 उच्चैः प्रौढाच केनेयं कूपोपरि शिला कृता ॥ ५१
 वृषान्तस्थः स तां वार्षां श्रुत्वा मातुर्निशाकरः ।
 ग्राह्यं ग्राह्यं पित्रा मे कूपोपरि शिला त्वियम् ॥ ५२

व्रत-बन्ध हो जाने पर दिवाकर वेदपाठ करने लगा ।
 किन्तु निशाकर जड़ता के कारण वेदपाठ नहीं करता था ।
 ऐसा हम लोगों ने सुना है । (४६)

माता, पिता, भाई, बन्धुजन, गुरु एव अन्य
 मलयवासी लोग उसकी निन्दा करने लगे । (४७)

तदनन्तर पिता ने क्रुद्ध होकर उसे निर्जल कूप में फेंक
 दिया एवं उसे एक बड़ी शिला से ढँक दिया । (५०)

इस प्रकार कुएँ में फेंके जाने पर वह बालक वहाँ
 अनेक वर्षों तक रहा । उस कुएँ में एक आँबुके का वृक्ष
 था । उस बालक के पोषण के लिए उसने फल
 खा गये । (४६)

हे भार्गव ! तदनन्तर दस वर्ष वीत जाने पर उसकी
 माँ उस अन्धकार पूर्ण तथा पत्थर से ढके हुये कुएँ के पास
 गयी । (५०)

उसने पथक के समान शिला से ढँके कुएँ को देखकर
 ऊँचे स्वर से कहा—कुएँ के ऊपर इस पत्थर को किसने
 रखा है ? (५१)

कुएँ के भीतर अस्थित पुत्र निशाकर ने माता की
 पाणी सुनकर कहा—मेरे पिताजी ने कुएँ पर इस शिला को

साऽतिभीताऽब्रवीत् कोऽसि कूपान्तस्थोऽद्भुतस्वरः ।
 सोऽप्याह तत्र पुत्रोऽस्मि निशाकरोऽति विश्रुतः ॥ ५३
 माऽब्रवीत् तनयो मयं नाम्ना स्यातो दिवाकरः ।
 निशाकरोति नाम्नाऽहो न कथित् तनयोऽस्ति मे ॥ ५४
 स चाह पूर्वचरितं मातुर्निरवशेषतः ।
 सा श्रुत्वा तां शिलां सुभ्रः समुत्क्षिप्यान्वतोऽधिपत् ॥ ५५
 सोचीर्यं कूपत् भगवन् मातुः पादावचन्दत ।
 सा स्यात्तु रूपं तनयं दृष्ट्वा स्वजनमप्रतः ॥ ५६
 ततस्त्वमादाय सुतं धर्मिष्ठा पतिमेत्य च ।
 कथयामास तत्सर्वं चेष्टितं स्वमुतस्य च ॥ ५७
 ततोऽन्वष्टच्छद् निप्रोऽसौ किमिदं वात कारणम् ।
 नोक्तवान् यद्भवान् पूर्वं महत्कोतुहलं मम ॥ ५८
 तच्छ्रुत्वा वचनं धीमान् कोशकारं द्विजोत्तमम् ।
 ग्राह्यं पुत्रोऽद्भुतं वाक्यं मातरं पितरं तथा ॥ ५९

रगा है । (५२)
 वह अत्यन्त भयभीत होकर बोली—कुएँ के
 भीतर इस अगुर्वे स्वर वाले तुम कौन हो ? उसने कहा—
 मैं निशाकर नामक तुम्हारा पुत्र हूँ । (५३)

उसने कहा—मेरे पुत्र का नाम तो दिवाकर है ।
 निशाकर नाम का मेरा कोई पुत्र नहीं है । (५४)

उस बालक ने माता से अपना समस्त पूर्व वृत्तान्त
 कहा । उसे सुनने के उपरान्त माता ने उस शिला को
 उठाकर दूसरी ओर फेंक दिया । (५५)

हे भगवन् ! उस बालक ने कुएँ से ऊपर उठकर
 माता के चरणों की वन्दना की । उसने अपने से उपरान्त
 एवं अपने अनुरूप पुत्र को सम्मुख देखा । (५६)

तदनन्तर उस पुत्र को लेकर धर्मिष्ठा पति के समीप
 गयी एवं अपने पुत्र के सम्पूर्ण चरित को उससे
 कहा । (५७)

तदनन्तर उस ब्राह्मण ने पूछा—हे पुत्र ! तुम
 पहले नहीं बोले, इसका क्या कारण है ? मुझे बहुत
 दुःख हो रहा है । (५८)

उस बात को सुनकर बुद्धिमान पुत्र ने ब्राह्मण श्रेष्ठ
 कोशकार तथा माता से अद्भुत वचन कहा । (५९)

निशाकर उवाच ।

धूपतां कारणं तात येन मूकत्वमाश्रितम् ।
मया जटत्वमनघ तथाऽन्धत्वं स्वचक्षुषः ॥ ६०
पूर्वमासमहं निप्र कुले धृन्दारकस्य तु ।
वृषाकपेश्च तनयो मालागर्भसामुद्भवः ॥ ६१
ततः पिता पाठयन्मां शास्त्रं धर्मार्थकर्मदम् ।
मोक्षशास्त्रं परं तात सेविहासथुर्वि तथा ॥ ६२
सोऽहं तात महाज्ञानी परावरविशारदः ।
जातो मदान्धस्तेनाहं दुष्कर्मागिरतोऽभवम् ॥ ६३
मदात् समभवद्योभस्तेन नष्टा प्रगल्भता ।
विप्रेको नाशमगमत् मूर्खभावसुपागतः ॥ ६४
भूयभावतया चाव जातः पापरतोऽस्म्यहम् ।
परदारपरार्थेषु मतिर्मे च सदाऽभवत् ॥ ६५
परदारामिमांश्रित्वात् परार्थहरणादपि ।
मृतोऽस्म्युद्धन्नेनाह नरकं रौरव गतः ॥ ६६

निशाकर ने कहा—हे निष्पाप पिता! मेरे द्वारा मूकता, जड़ता एवं अपने नेत्रों के अन्वय का आशय करने का कारण मुनिये । (६०)

हे विप्र! मैं पहले धृन्दारक (सम्मानित) धंश में माला के गर्भ से उत्पन्न वृषाकपि का पुत्र था । (६१)

हे तात! पिता ने मुझे धर्म, अर्थ और काम की सिद्धि देने वाले शास्त्र तथा इतिहास और वेद महित मोक्षदायक शास्त्र को पढ़ाया । (६२)

हे तात! मैं महाज्ञानी तथा एव ज्ञान और परलोक-ज्ञान में विशारद था । उससे मैं अक्षर से अन्धा होकर दुष्कर्म में प्रवृत्त हो गया । (६३)

मद से मुझे लोभ हुआ । उससे मेरी प्रगल्भता नष्ट हो गयी । विप्रेक का नाश हो गया जिससे मैं मूढ़ हो गया । (६४)

मूढ़ता के कारण मैं पापी बन गया । मेरा मन मदा दुम्बरे की ओर एवं दुम्बरे के धन में आगमक रहने लगा । (६५)

पराधी के साथ ससर्ग करने एवं परार्थ का हरण करने के कारण बन्धनमग्न होने पर मैं मर कर रौल नरक में गया । (६६)

तस्माद् वर्षसहस्रान्ते शुक्तघृष्टे तदागसि ।
अरण्ये मृगहा पापः संजातोऽहं मृगाधिपः ॥ ६७
व्याघ्रत्वे संस्थितस्तात यद्गः पञ्जरगः कृतः ।
नराधिपेन विभ्रुना नीतश्च नगरं निजम् ॥ ६८
यद्भक्ष्य पिञ्जरस्थस्य व्याघ्रत्वेऽधिष्ठितस्य ह ।
धर्मार्थकामशास्त्राणि प्रत्यभासन्त सर्वशः ॥ ६९
ततो नृपतिशार्दूलो गदापाणिः कदाचन ।
एकनश्रपरीधानो नगरान्निर्घ्नो वहिः ॥ ७०
तस्य भार्या जिता नाम रूपेणाप्रतिभा शुचि ।
ना निर्घते तु रमये ममान्तिरसुपागता ॥ ७१
तां दृष्ट्वा ववृधे मह्यं पूर्वाभ्यासान्मनोभवः ।
यथैव धर्मशास्त्राणि तथाहमयदं च ताम् ॥ ७२
राजपुत्रि मुकुल्याणि नववीचनशालिनि ।
चित्तं हरमि मे भीरु कोकिला ध्वनिना यथा ॥ ७३
सा मद्बचनमाकर्ण्य प्रोवाच तनुमध्यमा ।

एक सहस्र वर्षों के उपरान्त भोग से अधिशिष्ट उस पाप के कारण मैं पशुपाती पापी व्याघ्र होकर अरण्य में उत्पन्न हुआ । (६७)

हे तात! एक प्रभावशाली राजा ने व्याघ्रयोगिनि में स्थित मुझे पाँध पर पिजड़े में डाल दिया एवं अपने नगर में ले गया । (६८)

व्याघ्रयोगिनिप्रान्त, बन्धन मग्न एवं पिञ्जरस्य मुझे समस्त धर्म, अर्थ एवं काम सम्पत्तियाँ दाखल प्रतिभासित हो रहे थे । (६९)

तदनन्तर वह भेष्ट राजा किसी समय हाथ में गदा लिये एवं दास्य धारण पर नगर से बाहर चला गया । (७०)

पृथ्वी में अग्रिम रूप वाली उसकी जिना नामक भार्या थी। पति के बाहर जाने पर वह मेरे समीप आयी । (७१)

उसे देखकर पूर्वाभ्यास के कारण धर्मशास्त्रों के ज्ञान की वृद्धि की अग्नि मेरे मन में काम की वृद्धि हुई । तदनन्तर मैंने उनसे कहा— (७२)

हे भीरु मुकुल्याणी नववीचनशालिनि राजपुत्री! तुम मेरा पिता उन्नी प्रचार हरण करती हो जैसे कोकिल अपनी ध्वनि से स्त्रियों के चित्त का हरण करती है । (७३)

जब मुन्दरी ने मेरा बचन सुनकर कहा—हे व्याघ्र!

कथमेवावयोर्न्याग्र रतियोगमुपेभ्यति ॥ ७४
 ततोऽहममृषं तात राजपुत्रो मुमष्यनाम् ।
 द्वारमुद्घाटयस्वाध निर्गमिष्यामि सत्वरम् ॥ ७५
 साऽप्ययग्रवीदु दिवा व्याघ्र लोकोऽयं परिपश्यति ।
 रात्राजुद्घाटयिष्यामि ततो रंस्याव स्वेच्छया ॥ ७६
 तामेवाहमवोचं वै कालक्षेपेऽहमक्षमः ।
 तस्माद्दुद्घाटय द्वारं मा वन्धाच्च विमोचय ॥ ७७
 ततः सा पीवरश्रोणी द्वारमुद्घाटयन्मुने ।
 उद्घाटिते ततो द्वारे निर्गतोऽहं बहिः क्षणात् ॥ ७८
 पाशानि निगडादीनि छिन्नानि हि बलान्मया ।
 सा गृहीता च नृपतेर्भार्या रमितुमिच्छता ॥ ७९
 ततो दृष्टोऽस्मि नृपतेर्भृत्यैरतुलविक्रमैः ।
 शत्रुहस्यैः सर्वतश्च तैरहं परिप्रेषित ॥ ८०
 महापाशैः शृङ्खलाभिः समाहृत्य च मुद्गरैः ।
 वध्यामानोऽध्रुवमहं मा मा हिंसध्वमाकुलाः ॥ ८१

हम दोनों का सम्भोग कैसे सम्भव है ? (७४)
 हे तात ! तदनन्तर मैंने उस सुन्दरी राजपुत्री से
 कहा—तुम अभी पिजड़े का द्वार खोलो, मैं शीघ्र बाहर
 निकल आऊँगा । (७५)
 उसने कहा—हे व्याघ्र ! दिन में लोग देखेंगे । रात्रि
 में खोलौंगी, तब इच्छासुखार दोनों बिहाइ करेंगे । (७६)
 मैंने पुन उससे कहा देर करने में मैं असमर्थ
 हूँ । अब द्वार खोलो और मुझे वन्धन से मुक्त करो । (७७)
 तदनन्तर उस सुन्दरी ने द्वार खोल दिया । द्वार
 खुलने पर मैं क्षणमात्र में बाहर निकला । (७८)
 मैंने बलपूर्वक बेड़ी आदि वन्धनों को तोड़ डाला
 और उस राजा की पत्नी को रमण करने की इच्छा से
 परकू लिया । (७९)
 तदनन्तर राजा के अतुल पराक्रमशाली अनुचरों ने मुझे
 देता और हाथ में शस्त्र लेकर उन लोगों ने मुझे पारों
 ओर से घेर लिया । (८०)
 मोठी रस्सियों और साँकड़ों से बाँधकर उन लोगों ने
 मुझे मुद्गरों से बहुत पीटा । मारे जाते समय मैंने उनसे
 कहा—तुम लोग मुझ मत मारो । (८१)

ते मद्बचनमाकर्ण्य मत्स्यैव रजनीचरम् ।
 दृढं वृक्षे समुद्रप्य घातयन्त तपोधन ॥ ८२
 भूयो गतथ नरकं परदारनिषेवणात् ।
 मुक्तो वर्षसहस्रान्ते जातोऽहं श्वेतगर्दभः ॥ ८३
 ब्राह्मणस्याग्निवेश्यस्य गोहे बहुकलत्रिणः ।
 तत्रापि सर्वविज्ञानं प्रत्यभासत् ततो मम ॥ ८४
 उपवाहाः क्रुतव्यास्मि द्विजयोपिद्धिरादरात् ।
 एकदा नगराष्टीया भार्या तस्याग्रजन्मनः ॥ ८५
 विमतिर्नामतः रयाता गन्तुमैच्छद् गृह पितुः ।
 तामुवाच पतिर्गच्छ आरक्ष श्वेतगर्दभम् ॥ ८६
 मासेनागमनं कार्यं न स्थेयं परतस्ततः ।
 इत्येवमुक्त्वा सा भर्ता तन्वी मामधिरेख च ॥ ८७
 वन्धनादवमुच्चाय जगाम तररिता मुने ।
 ततोऽर्धपथि सा तन्वी मत्पृष्ठादवरुक्ष वै ॥ ८८
 अवतीर्णा नदीं स्नातुं स्वरूपा चार्द्रवातसा ।

हे तपोधन ! मेरा वचन सुनकर उन लोगों ने मुझे
 राक्षस समझा और वृक्ष में कसकर बाँध कर मार
 डाला । (८२)
 परश्री सेवन के कारण पुन मैं नरक में गया । सहस्र
 वर्ष के उपरान्त मुक्त होने पर मैं श्वेतगर्दभ हुआ । (८३)
 उस अवस्था में मैं अनेक दित्रयों वाले अग्निवेश्य
 नामक ब्राह्मण के घर में रहता था । वहाँ भी पूर्वजन्मार्जित
 समस्त ज्ञान मुझे प्रतिभासित हो रहे थे । (८४)
 ब्राह्मण के घर की दित्रयों ने मुझे आदर से सवारी के
 कार्य में लगाया । एक समय उस ब्राह्मण की नवराष्ट्र
 देशीय विमति नामक परनी अपने पिता के घर जाने के
 लिए उत्सुक हुई । उसके पति ने उससे कहा—इस श्वेत
 गर्दभ पर आरुढ़ होकर चली जाओ । (८५)
 एक महीने के भीतर चली आना । उससे अधिक
 समय तक न रहना । पति के ऐसा कहने पर वह सुन्दरी
 मेरे ऊपर सवार हुई । (८६)
 हे मुने ! वन्धन खोडकर वह तुरन्त चल पड़ी ।
 तदनन्तर आगे मार्ग में वह सुन्दरी मेरी पीठ से उतरकर
 नदी में नहाने के लिए उतरी । भीगे वस्त्र में होने से

साक्षीपान्नां रूपवतीं दृष्ट्वा तामहमाद्रवम् ॥ ८९
 मया चाभिट्टुवा तूर्णं पतिवा पृथिवीतले ।
 तस्यामुपरि भो तात पतितोऽहं भृशतुरः ॥ ९०
 द्यौं भर्तुस्तुष्टेन नृणा तदनुमारिणा ।
 प्रोतिद्विष्य यष्टिं मां धनत्रं समाधावन् त्वरान्जित् ॥ ९१
 तद् भयाद् तां परित्यज्य प्रदृतो दक्षिणामुखः ।
 ततोऽभिट्टवत्पृष्णं खलीनरसना मुने ॥ ९२
 ममामक्ता वंशगुल्मे दुर्मोक्षे प्राणनाशने ।
 तत्रासक्तव्यं पट्टरात्रान्ममाभुलीनित्तय्यः ॥ ९३
 गतोऽस्मि नरकं भूयस्त्वम्भान्मुक्तोऽगचं शुक्रः ।
 महारण्ये तथा बद्ध शररेण दुरात्मना ॥ ९४
 पञ्जरे द्विष्य विक्रीतो बणिक्पुत्राय शालिने ।
 तेनाप्यन्तःपुरवरे सुवतीनां समीपतः ॥ ९५
 शब्दशाम्प्रविदित्येव दौषान्नशैत्यरन्ध्रितः ।
 तत्रासतस्त्वप्यस्ता ओदनान्मुक्तुफलदिभिः ॥ ९६
 भक्ष्यैश्च दाडिमफलं पुष्पान्त्यहरहः पितः ।

कदाचित् पद्मपत्राधी श्यामा पीनपयोधरा ॥ ९७
 सुथोणी तदुमप्या च बणिक्पुत्रप्रिया शुभा ।
 नाम्ना चन्द्रावली नाम समुद्घाट्याय पञ्जरम् ॥ ९८
 मां जग्राह सुचार्वङ्गी कराम्यां चान्द्रामिनी ।
 चकारोपरि पीनाभ्यां स्तनाभ्यां सा हि मां ततः ॥ ९९
 ततोऽहं कृतवान् भावं तस्यां विलसितुं प्लवन् ।
 ततोऽनुप्लवत्तत्र हारे मर्कटवन्धनम् ॥ १००
 बद्धोऽहं पापमपृक्तो मृत्युश्च तदनन्तरम् ।
 भूयोऽपि नरकं धोरं प्रपन्नोऽस्मि सुदुर्मतिः ॥ १०१
 तम्माचाहं वृपत्वं वै गतधाण्डालपक्रणे ।
 स चैकदा मा शकृते नियोज्य स्वां विलामिनीम् ॥ १०२
 समारोप्य महानेत्रा गन्तुं कृतमतिदैनम् ।
 ततोऽग्रतः म चण्डालो गतम्पेनास्य पृष्ठतः ॥ १०३
 गायन्तीं याति तच्छ्रुत्वा जातोऽहं व्यथितेन्द्रियः ।
 पृष्ठतस्तु समालोक्य निपर्यस्तव्योत्पृष्ठतः ॥ १०४
 पतितो भूमिमगमम् तदक्षे षणविंशत्मा ।

वसना रूप स्पष्ट दिग्दर्श पद्मा । इसे अङ्गोर्णों सहित
 रूपवती देवदर में वन पर दीक्षा । (८८-८९)
 मेरे शपठने पर यह तारास प्रथो पर गिर पड़ी ।
 हे तात ! मैं अरधिय आतुर होकर उसके ऊपर गिर
 गया । (९०)
 हे ब्रह्मन् ! श्यामी के आदेश मे उस स्त्री के पीठे पीठे
 आने का अनुपर मे मुझे देना जिया और उदा उदाकर
 यह वेग मे मेरी ओर दीक्ष पड़ा । (९१)
 उसके भय मे उस स्त्री को छोड़कर मैं जमी क्षण
 दक्षिण की ओर भागा । हे मुने ! पशुन जमी मे दीक्षा
 हुए मेरे लगान की श्यामी शोम की प्राणपात्र विरक्त शक्ति
 मे चंग गयी । वही चंगा हुआ मैं ए शक्ति के बाद
 मर गया । (९२-९३)
 मुने पुन नरक में जना पड़ा । वही मे मुक्त होकर
 मैं उच परी हुआ । कदाच अण्ड मे एक तुलामा उचर
 मे मुने शोच गया । (९४)
 पत्रके मे शरार (जगने मुने) एव दृष्टाव बणिक् पुत्र
 को देख दिया । जगने की देण महत् मे मुक्ति को वि निर
 मुने मांजाय देव लया शोच दूर करने वाला क्माकर हल
 दिया । हे पिता ! वही रहने मयप के मुपनिती

प्रतिदिन मुझे बाधन, उस तथा अनार के फलों के भोजन
 से मुष्ट करने लगी । एक समय बणिक्पुत्र की
 कमन्दल मुख नेत्रों वाली द्यामा, विराट जगने तथा सुन्दर
 जपन एव शीनरुटि वाली कल्पानी पन्द्रावली नामक त्रिया
 ने पत्रके को लोका । (९५-९८)
 उस चान्द्रामिनी सुन्दरी ने मुझे दोनों हाथों मे ले
 लिया और अपने दोनों स्तनों पर मुझे रख लिया । (९९)
 उनसे बाद मैंने पन्द्रावली के साथ विहास करने का
 भाव प्रकट दिया । तब चापागत में घूमना हुआ उससे
 हार मे मर्कट-वन्धन की भाँति बंधार मर गया । मैं
 पुन श्रयण पापबुद्धि होने के कारण फिर नरक मे
 गया । (१००-१०१)
 नरनगर में बैठ होकर चाण्डाल के पर में पड़ुषा ।
 उसी एक दिन मुझे माँकी में चोचकर मर माँकी पर मर
 भागों को पदयाग । इस प्रकार बा मे जाने की इच्छा मे
 बर महानेत्री चाण्डाल आगे बना एव नरक पीठे
 पर लगी हुई पत्नी । उसका गान सुनकर मेरी इच्छा
 निवृत्त हो गयी । मैंने पीठे घूम कर देना और हृद बर
 उचट गया । (१०२-१०४)
 क्षिप्र विषम के कारण मैं भूमि पर गिर पड़ा एव

योक्त्रे सुषुद्ध एवास्मि पञ्चत्वमगमं ततः ॥ १०५

भूयो निमग्नो नरके दशवर्षशतान्यपि ।

अतस्तत्र गृहे जातस्त्यहं जातिमनुस्मरन् ॥ १०६

तावन्त्येषाय जन्मानि स्मरामि चानुपूर्वशः ।

पूर्वाभ्यासांश्च शास्त्राणि पन्थनं चोगते भूमि ॥ १०७

तदहं जातविघ्नानो नाचरिष्ये कथंचन ।

पापानि पौररूपांश्चिन्मनसा कर्मणा गिरा ॥ १०८

शुभं धाम्यशुभं चापि स्वाभ्यासांश्च शास्त्रजीविका ।

पन्थनं वा यथो वाऽपि पूर्वाभ्यासेन जायते ॥ १०९

जाति यदा पीरिक्ती तु स्मरत ताव मानयः ।

तदा ग तेभ्यः पापेभ्यो निरृचि हि करोति वै ॥ ११०

तस्माद् भूमिष्ये शुभवर्धनाय

पापवर्धनाय ह्यने क्षरण्यम् ।

भवान् दिवाकीर्तिमिमं सुपुत्रं

गार्हस्थ्यधर्मं विनियोजयस्व ॥ १११

वलिहवाच ।

इत्येवमुक्त्वा स निदाकारस्तदा

प्रणम्य मातापितरौ महर्षे ।

जगाम पुण्यं मदनं ह्युरातेः

ख्यातं यदयाभ्रममाद्यमीत्यम् ॥ ११२

एवं पुराभ्यासरतस्य पुंसो

भवन्ति दानाभ्ययनादिकानि ।

तस्माच्च भूय द्विजयैः समा

अभ्यस्तमासीद्यतु ते प्रतीमि ॥ ११३

दानं तपो वाऽभ्ययनं महर्षे

स्वियं महापातकमुपिदाहम् ।

ज्ञानानि चैवाभ्यस्तानि, हि पूर्व

भवन्ति धर्मोर्ध्वयज्ञानि नाथ ॥ ११४

फलस्तय उवाच ।

इत्येवमुक्त्वा पुलवान् ग शुभं

दैत्येभ्यः स्वयं गुरुमीशितारम् ।

भ्याप्यस्तदानं मधुरैः तमां

नारायणं चक्रमदातिपारिणम् ॥ ११५

इति श्रीभामतपुराणे चतुःषष्टितमोऽध्याय ॥६४॥

रासी में अत्यन्त रोष जाने से मैं मर गया । (१०५)

मैं पुनः सदस्य वर्ष पन्थन नरक में पड़ा रहा । वहाँ से मैं अपने पूर्व जन्म का स्मरण करता हुआ आपसे गृह में उलपन हुआ हूँ । (१०६)

मैं आज कहीं जन्मों का क्रम-द स्मरण कर रहा हूँ । पूर्व अभ्यास से मुझे शास्त्रों का ज्ञान तथा पन्थन मिला है । अतः ज्ञानी होकर मैं मर, कर्म और वाणी से कभी पौर पापकों का आचरण नहीं करूँगा । (१०७-१०८)

शुभ, अनुभ, स्वाभ्यास, शास्त्रजीविता पन्थन या यत्र पूर्व अभ्यास से ही होते हैं । (१०९)

हे मान ! मनुष्य को जब अपने पूर्व जन्म का स्मरण होगा तो वह इन पापों से दूर रहता है । (११०)

आः हे मुने ! तुम को हृदि सर्व पाप के छह के नियम हैं वा में लायेगा । आप इस शुभ दिवाकीर्ति को ग्रहण करने में निरुक्त करें । (१११)

वलि ने कहा—हे महर्षि ! ऐसा कहने के उपरान्त माता-पिता को प्रणाम कर वह निदाकार भगवान् मातापिता के भेद्य सुविषयात् पवित्र निवात यद्विदाहम मे प्राप्त गया । (११२)

इसी प्रकार पूर्वाभ्यासवत् मनुष्य के दान एवं अभ्ययन आदि कार्य होते हैं । हे द्विजवर ! इसी से नियम ही मैं आपसे अपने पूर्व अभ्यास के तथ्य को बत रहा हूँ । (११३)

हे महर्षि ! हे नाथ ! दान, तप, अभ्ययन, शौच, महापातक, अग्निदाह, ज्ञान, धर्म, अर्थ एवं यज्ञ आदि सभी पूर्वजन्मों के अभ्यास से प्राप्त होते हैं । (११४)

प्रणम्य ने कहा—दैत्येभ्यः कदाचन कश्चि अपने गुरु और निपातक पुत्रपादों से देना वह वर मधुरैः तमां के माताक चक्र-मदानन्दपारिण नातापय वा भ्याम बने क्या । (११५)

श्रीभामतपुराणे चतुःषष्टितमोऽध्याय ॥६४॥

। ऐं ह्रस्वः । अक्षरान्तरं । अक्षरान्तरं ।

। अक्षरान्तरं । अक्षरान्तरं ।

००० । अक्षरान्तरं । अक्षरान्तरं ।

। अक्षरान्तरं । अक्षरान्तरं ।

एतस्मिन् अन्तरे प्रसिद्धो भगवान् वामनाकृतिः ।

यज्ञवाटपुपागम्ये उदैर्वचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

अकारपूर्वाः श्रुतयो मखेऽस्मिन्

‘तिष्ठन्ति’ रूपेण तपोधनानाम् ।

यज्ञोऽधमेघः प्रवरः कर्तुना

सुरयस्तेषां सत्रिषु दैत्यनाथैः ॥ २ ॥

इत्थं वचनमाकर्ण्य दानवाधिपतिवशी ।

सार्धपात्रः समभ्यागाद्यत्र देवः स्थितोऽभवत् ॥ ३ ॥

ततोऽर्च्यं देवदेवेशमर्च्यमर्षादिनासुरः ।

भरद्वाजर्षिणा सार्धं यज्ञवाटं प्रवेशयत् ॥ ४ ॥

प्रविष्टमाश्रं देवेशं प्रतिपूज्य विधानतः ।

प्रोवाच भगवन् ब्रूहि किं दमि तव मानद ॥ ५ ॥

६५

००० ॥ अक्षरान्तरं । अक्षरान्तरं ।

। अक्षरान्तरं । अक्षरान्तरं ।

००० ॥ अक्षरान्तरं । अक्षरान्तरं ।

। अक्षरान्तरं । अक्षरान्तरं ।

ततोऽब्रवीत् सुरश्रेष्ठो दैत्यराजानमब्रवीत् ।

विहस्य सुचिरं कालं भरद्वाजमवेक्ष्य च ॥ ६ ॥

सुरोर्मदीयस्य गुरुस्तस्यास्त्यग्निपरिग्रहः ।

न स पारयते भूम्यां पारक्यां जतिवेदसम् ॥ ७ ॥

तदर्थमभिर्वाचेऽहं मम दानवर्षाभिः ।

मच्छरीरप्रमाणेन देहि राजन् पदत्रयम् ॥ ८ ॥

सुरारेवचनं श्रुत्वा बलिर्भायोमवेक्ष्य च ।

यागं च तनयं वीक्ष्य इदं वचनमब्रवीत् ॥ ९ ॥

न केवलं प्रमाणेन वामनोऽयं लघुः प्रिये ।

येन प्रमत्रयं मौर्ज्याद् याचते बुद्धितोऽपि च ॥ १० ॥

प्रायो विधाताऽल्पधियां नराणां

पहिष्कृतानां च महातुभाग्यैः ।

धनादिकं मूरि न वै ददाति

६५

पुलस्त्ये ने कहा—इतने में यामनाकार भगवान् आ गये । यज्ञशाला के समीप आकर वे ऊँचे स्वर से कहने लगे—

औंकार पूर्वक वेदमन्त्र तपोधन ऋषियों के रूप में

इत यज्ञ में स्थित हैं । यज्ञों में अधमेघपशु सर्वश्रेष्ठ

है और दैत्यस्वामी बलि यज्ञशालाओं में प्रथम है । (१)

इस प्रकार वे वचन को सुनकर जितेन्द्रिय दानवाधि-

पति बलि अर्घ्यपात्र लेकर जहाँ यामनदेव गये थे

वहाँ गये । (२)

तदनन्तर अर्घ्य आदि से देवदेवेश्वर की पूजा करके

अमुरपति बलि ने भरद्वाज ऋषि के साथ इन्हें यज्ञशाला में

प्रविष्ट किया । (३)

यज्ञशाला में प्रवेश करने ही बलि ने देवेश की

विधिपूर्वक पूजा की और कहा—हे भगवन् ! हे मानद !

कहिये मैं आपसे क्या हूँ ? (४)

अविनाशी देवश्रेष्ठ ने देते तक हिस कर तथा भरद्वाज को देवराज दैत्यराज से कहा—

मेरे गुरु के गुरु अग्निहोत्री हैं । वे दूसरे की भूमि में

अग्निस्थापन नहीं करते । (६)

हे दानवपति ! हे राजन् ! उनके लिए मैं आपसे

याचना करता हूँ कि मेरे शरीर के परिमाण से आप तीन

पग (भूमि) मुझे प्रदान करें । (७)

सुरारि का वचन सुनने के उपरान्त बलि ने पत्नी को

और पुत्र बाण को देखकर यह वचन कहा—

हे प्रिये ! यह धामन केपड़ प्रमाण से ही छोटा नहीं है,

अपिण्ड सुद्धि का भी छोटा है । क्योंकि मूर्खतावश यह

सुझने केवल तीन पग (भूमि) माँगा है । (१०)

बिधाता प्रायः अल्पबुद्धि वाले भाग्यहीन इच्छितों को अधिक पनादि नहीं देते । इसी से बलि ने अधिक वा

९६ ॥ अथेह विष्णोर्नमं ह्यप्रसासः ॥ ११ ॥ लडी
न ददाति विविस्तस्यस्य भाग्यविपर्ययोः ॥ १० ॥
मयि दातरि यथायमत्र याचेत्पदत्रयम् ॥ १२ ॥
इत्येषमुक्त्वा वी वचनेन महामाता ॥ ११ ॥
। भूयोऽप्युवाचाया हरिः ॥ १२ ॥
याचस्व विष्णोर्नाजयाजिर्भूमि ॥ १३ ॥
९६ ॥ दासीहिरण्यं यदमीप्सितं च ॥ १३ ॥
भयान् याचयिता विष्णो अहं दाता जगत्पतिः ॥ १४ ॥
दातुर्वाचयितुर्लज्जा कथं न स्यात् पदत्रये ॥ १४ ॥
रसातलं वा पृथिवीं ध्रुवं नाकमयापि वा ।
एतेभ्यः कतमं दद्यां स्थानं याचस्व वामने ॥ १५ ॥
वामने उवाचे ॥ १५ ॥
गजाश्वभूहिरण्यादि तदर्थिभ्यः प्रदीयताम् ।
एतावता स्वहं चार्थी देहि राजन् पदत्रयम् ॥ १६ ॥
इत्येषमुक्त्वा वचने वामनेन महासुरः ॥ १६ ॥
वलिभृङ्गारमादाय ददौ विष्णोः क्रमत्रयम् ॥ १७ ॥

प्रयास नहीं किया । (११)
जिसका भाग्य विपरीत होता है, उसे विधाता नहीं देते हैं । मेरे ऐसा दाता होने पर भी आज ये तीन पग की याचना करते हैं । (१२)
ऐसा कह कर महात्मा बलि ने पुनः हरि से कहा— हे विष्णु ! हाथी, घोड़ा, भूमि, दासी तथा सुवर्ण आदि जो आप चाहते हैं, यह माँगिये । (१३)
आप विष्णु याचक और मैं जगत्पति दाता हूँ । ऐसी स्थिति में केवल तीन पग का दान करने में दाता एवं याचक को कर्षो लज्जा न होगी ? (१४)
हे वामन ! आप याचना करें । रसातल, पृथ्वी, भुवर्लोक अथवा स्वर्गलोक में से मैं किस स्थान का दान करूँ । (१५)
वामन ने कहा— हाथी, घोड़ा, भूमि, सुवर्ण आदि वस्तुएँ उनके प्रार्थियों को दीजिये । हे राजन् ! मैं इतने का ही प्रार्थी हूँ । अतः मुझे तीन पग प्रदान करें । (१६)
वामन के ऐसा वचन कहने पर महान् असुर बलि ने क्रमण्डलु लेकर विष्णु को तीन पग दान दिया । (१७)
हाथ पर जल गिरते ही तीनों लोकों को नापने

पानी तु। पविते तोये दिव्यं रूपं शकारः ॥ १८ ॥
त्रैलोक्यक्रमणार्थी धनुर्रूपं जगन्मयम् ॥ १८ ॥
पद्भ्यां भूमिस्तथा जहृद्ये नमस्त्रैलोक्यधन्दिः ॥ १९ ॥
सत्यं तपो जातुयुग्मेऽहम्भ्यां मेरुमन्दरो ॥ १९ ॥
विश्वेदेवा कटीभामो महतो वस्तिशोर्षगाः । ॥ २० ॥
लिङ्गे स्थितो मन्मथश्च घृणोभ्यां प्रजापतिः ॥ २० ॥
कुक्षिभ्यामर्णवाः सप्त जठरे भुवनानि च ॥ २१ ॥
वलियु त्रिपु नद्यश्च यद्वास्तु जठरे स्थिताः ॥ २१ ॥
इष्टापूर्वादयः सर्वाः क्रियास्तत्र तु संस्थिताः ॥ २२ ॥
पृष्ठस्था वसवो देवाः स्कन्धेषु रुद्रैरधिष्ठितौ ॥ २३ ॥
बाहवश्च दिशः सर्वा वसवोऽष्टौ करे स्मृताः ॥ २३ ॥
हृदये संस्थितो ब्रह्मा कुक्षियो हृदयोऽपि तु ॥ २३ ॥
श्रीसमुद्रा उरोमध्ये चन्द्रमा मनसि स्थितः ॥ २४ ॥
श्रीवादिर्दिश्वमाता विद्यास्तद्वल्लयस्थिताः ॥ २४ ॥
मुखे तु साग्नयो विप्राः संस्कारा दशनञ्जदाः ॥ २५ ॥
धर्मकामार्थमोक्षीयाः शास्त्राः शौचसमन्विताः ॥ २५ ॥

के लिये विष्णु ने बृहद् दिव्य विषमय रूप धारण किया । (१८)
उनके पैर में भूमि, जंवाओं में त्रैलोक्य-युजित आकाश, दोनों जातुओं में सत्यलोक और तपोलोक, दोनों ऊरुओं में मेरु और मन्दर पर्वत, कटि प्रदेश में विश्वेदेव, वस्ति प्रदेश के शीर्षस्थान पर मरुद्गण, लिङ्ग में कामदेव, घृणो में प्रजापति, कुक्षियों में सप्त समुद्र, जठर में समस्त भुवन, त्रिवली में नदियों एवं उनके जठर में यज्ञ स्थित थे । (१९-२१)
जठर में ही इष्टापूर्त आदि समस्त क्रियाएँ अवस्थित थीं । इनकी पीठ में वसुगण और देवगण और कर्णों में रुद्रगण अधिष्ठित थे । (२२)
सभी दिशाएँ उनके बाहुरूप थीं । उनके हाथ में आठ वसुगण, हृदय में ब्रह्मा एवं हृदय की अस्थियों में कुक्षि स्थित था । (२३)
उर के मध्य श्री तथा समुद्र, मन में चन्द्रमा, प्रीया में देवमाता अदिति, तथा पल्लवों में सारी विद्याएँ अवस्थित थीं । (२४)
मुख में अग्नि के सहित ब्राह्मण, ओष्ठ में सभी धार्मिक संस्कार, ललाट में लक्ष्मीसहित तथा पवित्रता

लक्ष्म्या सह ललाटस्याः त्रयणाम्योमशोधिनी । १८ ॥
 श्वासस्यो मातरिश्वाः च मरुतः सर्वस्रिपुः ॥ २६ ॥
 सर्वसूक्तानि दक्षिणा जिह्वा देवी सरस्वती । १९ ॥
 चन्द्रादित्यौ च । नयने पक्ष्मस्याः कृत्तिकादयः ॥ २७ ॥
 शिखाया देवदेवस्य ध्रुवो राजा न्यपीदत । २० ॥
 तारका रोमरूपेभ्यो रौमाणि च महर्षयः ॥ २८ ॥
 गुणैः सर्वमयो भूत्वा भगवान् भूतभावनः । २१ ॥
 क्रमेणैकेन जगतीं जहार सचराचराम् ॥ २९ ॥
 भूमिं विन्ममाणस्य महारूपस्य तस्य वै । ३० ॥
 दक्षिणोऽभूत् स्तनश्चन्द्रः सूर्योऽभूदथ चोत्तरः । ३१ ॥
 नभश्चक्रमतो नाभिं सूर्येन्द्रं सन्वदक्षिणौ ॥ ३० ॥
 द्वितीयेन क्रमेणाथ स्वर्महर्जनतापसा । ३१ ॥
 क्रान्तार्धाधेन वैराज मध्येनापूर्यताम्वरम् ॥ ३१ ॥
 ततः प्रतापिना ब्रह्मन् बृहद्विष्णुमद्भिन्नगम्बरे । ३२ ॥
 ब्रह्माण्डोदरमाहृत्य निरालोकं जगाम ह ॥ ३२ ॥
 विश्वाङ्घ्रिणा प्रसरता कटाहो भेदितो बलात् । ३३ ॥

के साथ धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष सम्बन्धी शास्त्र, कर्णों में अश्विनोङ्गुमार, श्वास में वायु एवं सभी सन्धिधियों में मरुद्गण स्थित थे । (२५-२६)

उनके होंतों में समस्त सूक्त, जिह्वा में सरस्वती देवी, दोनों नेत्रों में चन्द्र और सूर्य एवं चरीनियों में वृत्तिका आदि नक्षत्र स्थित थे । (२७)

देवदेव की शिखा में राजा ध्रुव, रोमरूपों में तार और तमों में महर्षि लोग अवस्थित थे । (२८)

भूतभावन भगवान् ने गुणों के द्वारा सर्वमय होकर एक पद में ही चराचर सहित पृथ्वी का हरण कर लिया । (२९)

भूमि को नापते समय उन विशाल रूपधारी के चन्द्रमा एवं सूर्य दक्षिण तथा उत्तर स्तन हो गए । इसी प्रकार आन्तरिक का अतिरमण करते समय सूर्य एवं चन्द्रमा उनकी नाभि के चाम एवं दक्षिण भाग में अवस्थित हुए । (३०)

तदनन्तर उन्होंने द्वितीय चरण के धावे से स्वर्गलोक, महर्लोक, जनलोक और तपोलोक आक्रान्त कर दोष धावे से वैशङ्गलोक तथा मध्यभाग से आकाश को आपूरित किया । (३१)

हे ब्रह्मन् ! तदुपरान्त विष्णु का प्रतापी विशाल चरण

कुटिला विष्णुपादे । तु समेत्य कुटिला तवः ॥ ३३ ॥
 तस्या विष्णुपदीस्येवं नामाख्यातममनुन्वने ॥ ३४ ॥
 तथा सुरनदीस्येवं तामसेवन्त तापसाः ॥ ३५ ॥
 भगवानप्यसपूर्णे सृतीये तु क्रमे विश्वः ॥ ३४ ॥
 समभ्येत्य बलिं प्राहः ईषतः प्रस्फुरिताधरः । ३५ ॥
 ऋणाद् भवति दैत्येन्द्र बन्धनं घोरदर्शनम् । ३६ ॥
 त्वं पूरय पद तन्मे नो चेद् बन्धं प्रतीच्छ भोः ॥ ३५ ॥
 तन्सुरारिवचः श्रुत्वा विहस्याथ पलेः सुतः ३६ ॥
 बाणः प्राहामरपतिं वचनं हेतुसयुतम् ॥ ३६ ॥
 मृत्वा महीमवपतरा जगत्पतेः ३७ ॥
 स्वायम्भुवादिभुवनानि वै पट् । ३८ ॥
 कथं बलिं प्रार्थयसे सुविस्तृता ३९ ॥
 या प्राग्भवान् नो विपुलामथाकरोत् ॥ ३७ ॥
 विभो मही यावतीय त्वयाऽद्य ४० ॥
 सृष्टा समेता श्रवणान्तराले ॥ ४१ ॥

आकाश में ब्रह्माण्ड के उदर भाग को आहत कर निरालोक में चला गया । (३२)

विष्णु के पैर रहे चरण ने बलपूर्वक फटाह फा भेदन कर दिया । विष्णु का चरण कुटिला नदी के समीप पहुँच गया । हे मुने ! इससे कुटिला विष्णुपदी नाम से प्रसिद्ध हुई । तपस्वीजन सुरनदी के रूप में उत्सर्जी सेवा करते लगे । व्यापक भगवान् तीसरे चरण के पूर्ण न होने पर बलि के पास गए एवं अधर को किञ्चित् स्फुरित करते हुए बोले—हे दैत्येन्द्र ! ऋण न चुकाने से भयङ्कर बन्धन होता है । अतः तुम मेरे पद को पूर्ण करो अन्यथा बन्धन स्वीकार करो । (३३-३५)

सुरारि के इस वचन को सुनकर बलि के पुत्र बाण ने अमर पति से हँस कर हेतुयुक्त वचन कहा— (३६)

बाण ने कहा—हे जगपति ! आपने स्वायम्भुवादि छ भुवनों का ही निर्माण कर पृथ्वी को छोटा बनाया है । आपने पहले ही भूमि को विपुल नहीं बनाया अतः आप बलि से अधिक विस्तृत भूमि कैसे भागते हैं । (३७)

हे विभो ! भुवनान्तराले सहित जितनी पृथ्वी की सृष्टि आपने की थी उसे मेरे दिशों में एक आप को दे

दत्ता च तातेन हिंसावैतीयं

आकिं प्राकृष्टलेनेयं मनिप्रव्यतेऽयं ॥ ३८ ॥

या नैव शक्या मेवता हिंसावैतीयं

कथं वितन्याद्दिविजेधरोऽसौ ।

शक्तत्वं संप्रजायितुं सुरारो

प्रसीद सा वन्दनमादिशुस्व ॥ ३९ ॥

श्रोक्तं श्रुतो भवतापीय वाक्य

दानं पात्रं भवते सोऽल्पदायि ।

देशे सुपुण्यं वरदं युधं कालं

तवाश्रयं हृदयत चक्रपाणं ॥ ४० ॥

दानं भूमिः सर्वकामप्रदम्

भवान् पात्रं देवदेवो जित्तात्मा ।

कालो ज्येष्ठामूलयोगो मृगोऽहः

हुरुक्षेत्रं निपुण्यदेशं प्रसिद्धम् ॥ ४१ ॥

किं वा देवोऽस्मिन्नधिषुर्द्विहीनैः

शिक्षापनीयः साधु वाऽसाधु चैव ।

स्वयं श्रुतीनामपि चादिकर्ता

ध्याप्य स्थितः सदसद् यो जगद् वै ॥ ४२ ॥

दिया । अतः आप, चाकृष्टल द्वारा उन्हें क्यों बाँधते हैं ? (३८)

हे सुरारो ! जिस पृथिवी की कमी को आप पूर्ण नहीं कर सकते, उसको ये दानपत्रति कैसे विलुप्त कर सकेंगे ? ये आपकी पूजा करने में समर्थ हैं । अतः आप प्रसन्न हों और बाँधने का आदेश न दें । (३९)

हे ईश ! आपने ही श्रुति में यह कहा है कि पवित्र देश, काल एवं वरदाता पात्र में दिया गया दान सुखदायक होता है । हे चक्रपाणि ! वह सम्पूर्ण (योग) दिलखाई पढ़ रहा है । (४०)

'सर्वकामप्रदा' भूमि' का दान ही रहा है, देवाधिदेव जित्तात्मा आप पात्र हैं, ज्येष्ठ एवं मूल के योग में स्थित पत्रमा से युक्त काल है तथा प्रसिद्ध पवित्र हुरुक्षेत्र का देश है । (४१)

अथवा हम जैसे बुद्धिहीन लोगों द्वारा आप भगवान् को बधित और अनुचित शिक्षा क्या ही जाय ? आप स्वयं वेदों के भी आदिकर्ता और सदसद् विराधो

कृत्वा प्रमाणं स्वप्रमेव हीनं कालो

२४ पदत्रयं त्रिधा चित्तवान् नानुभवधाम्नाम होई

किं त्वं न शूद्रासि जगत्त्रयं भोः

४४ ॥ प्रहृषेण कर्णामा लोकत्रयं निदित् ॥ ४३ ॥

नात्राश्रयं यजगद् वै समग्रं

क्रमत्रयं नैव पूर्णं तवाद्य

क्रमेण त्वं लक्ष्यमितुं समर्थो

लोलामेवा कृतवान् लोकनाथ ॥ ४४ ॥

प्रमाणहीना स्वयमेव कृत्वा

वसुधारां माधवं पद्मनाभं

विष्णो न पन्नासि बलि न दू

प्रभृष्यदेवेच्छति चक्रकरोति ॥ ४५ ॥

पुलस्त्य उवाच

हृत्वेयममुक्ते वचने धाणेन प्रलिसृजता ।

श्रीवाच भगवात् प्राक्यमादिकर्ता जनार्दनः ॥ ४६ ॥

त्रिविक्रम उवाच

यान्युक्तानि वचांसोऽथ त्वया बालेय साम्प्रतम् ।

तेषां वै हेतुसंयुक्तं भृशं प्रत्युत्तरे मम ॥ ४७ ॥

व्याप्त कर अवस्थित हैं । (४२)

आपने स्वयं अपने प्रमाण (शारीरिक आकार) को छोटा बनाकर तीन पग भूमि की याचना की थी । हे वैब ! क्या आप अपने त्रैलोक्य पण्डितरूप से तीनों लोकों को महण नहीं कर लिए हैं ? (४३)

आपके तीन पगों को सामग जगत् पूर्ण नहीं कर सक्य, इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं । क्योंकि अपने एक पग से ही आप इसका उलटान करने में समर्थ हैं । हे लोकनाथ ! आपने तो यह छोटा ही की है । (४४)

हे माधव ! हे पद्मनाभ ! हे विष्णु ! पृथ्वी को स्वयं ही लघुप्रमाण की बनाकर बलि को बाँधना उचित नहीं । भ्रजु जो चाहते हैं वही करते हैं । (४५)

पुलस्त्य ने कहा—बलिपुत्र बाण के—प्रेसा रहने पर आदिकर्ता, भगवात् जनार्दन में यह वचन कहा । (४६)

त्रिविक्रम ने कहा—हे बलिनन्दन ! मुझे संप्रति इस प्रकार शिन धरनी को कहा है जनना हेतु संयुक्त प्रत्युत्तर मुझ से मुने । (४७)

पूर्वमुक्तस्तव पिता मया राज्ञन्पदत्रयम् ।
 देहि मया प्रमाणेन तदेवत् सममुदितम् ॥ ४८
 किं न वेत्ति प्रमाणं मे वलिस्तव पितासुर ।
 प्रायच्छद् वै न शिष्टं भ्रमानन्तं क्रमत्रयम् ॥ ४९
 सत्यं क्रमेण चैकेन क्रमेयं भूर्भुवादिकम् ।
 बलेरपि हिताथोय कृतमेतत् क्रमत्रयम् ॥ ५०
 तस्माद् यन्मम बालेय त्वत्पित्राम्बु करे महत् ।
 दत्तं तेनापुरेतस्य कल्पं यावद् भविष्यति ॥ ५१
 गते मन्वन्तरे बाण श्राद्धदेवस्य सम्प्रवत् ।
 सारथिके च संप्राप्ते बलिरिन्द्रो भविष्यति ॥ ५२
 इत्थं प्रोक्त्वा बलिसुतं पाणं देवस्त्रिविक्रमः ।
 प्रोवाच वलिमन्येत्य वचनं मधुराक्षरम् ॥ ५३

धीमशवानुवाच ।

आपूरणाद् दक्षिणाया गच्छ राजन् महाकलम् ।
 सुतलं नाम पातालं वस तत्र निरामयः ॥ ५४

मैंने प्रथम ही तुम्हारे पिता से यह कहा था कि हे राजन् ! मेरे प्रमाणानुसार मुझे तीन पग भूमि दो । उन्होंने भलीभाँति वसना अनुष्ठान किया ।
 हे असुर ! क्या तुम्हारे पिता बलि मेरा प्रमाण नहीं जानते थे जो उन्होंने निःशङ्कभाव से मेरे अगस्त तीन पगों का दान किया ।

वस्तुतः अपने एक पैर से ही मैं समस्त भू-भुव-आदि जगत् को आक्रान्त कर सकता हूँ । बलि के हित के लिए ही मैंने तीन पगों को दिया है ।

अतः हे बलिपुत्र ! क्योंकि तुम्हारे पिता ने मेरे हाथ में प्रशस्त जल दिया है अतः इसी आशु एक कल्प की होगी ।

हे पाण ! श्राद्धदेव का सम्प्रतिक मन्वन्तर व्यतीत हो जाने के उपरान्त सारथिक मन्वन्तर के आने पर बलि इन्द्र बनेगा ।

बलि के पुत्र बाण से ऐसा कहने के उपरान्त त्रिविक्रम देव बलि के समीप गये एवं उससे मधुर वचन कहा ।
 धीमशवान् ने कहा—हे राजन् ! दक्षिणा की पूर्ति होने तक तुम्हें यह महाकल्प प्राप्त करना होगा । शुभ

वलिहवाच सुतले वसतो नाथ मेम भोगाः कुतोऽव्ययाः ।
 भविष्यन्ति तु येनाहं निवत्स्यामि निरामयः ॥ ५५
 त्रिविक्रम उवाच ।

सुतलस्थस्य दैत्येन्द्रं यानि भोगानि तेषुना ।
 भविष्यन्ति महार्हाणि तानि वक्ष्यामि सर्वशः ॥ ५६
 दानान्यविधिदत्तानि श्राद्धान्यश्रोत्रियाणि च ।
 तथाधीतान्यव्रतिभिर्दास्यन्ति भवतः फलम् ॥ ५७
 तथान्यमुत्सवं पुण्यं वृत्ते शुक्रमहोत्सवं ।
 द्वारप्रतिपदा नाम तव भावो महोत्सवः ॥ ५८
 तत्र त्वां नरशार्दूल हृष्टाः पुष्टाः स्वलंकृताः ।
 पुष्पदीपप्रदानेन अर्चयिष्यन्ति यत्नतः ॥ ५९

तत्रोत्सवो मुख्यतमो भविष्यति

दिवानिशं हृष्टवनाभिरामम् ।

यथैव राज्ये भवतस्तु साम्प्रतं

सुतल नामक पाताल में व्यापि रहित होकर निवास करो ।

बलि ने कहा—हे नाथ ! सुतल में निवास करते समय निरामय रूप से रहने के लिये मुझे अश्रय भोग वहाँ से प्राप्त होंगे ?

त्रिविक्रम ने कहा—हे दैत्येन्द्र ! मैं इस समय तुम्हारे सम्मुख उन समस्त बहुमूल्य भोगों का वर्णन करता हूँ जो सुतल में निवास करते समय तुम्हें उपलब्ध होंगे ।

अविधिपूर्वक किए गये दान, अश्रोत्रिय द्वारा किये गए श्राद्ध एवं ब्रह्मचर्यव्रत-रहित अथ्ययन आप को फल प्रदान करेंगे ।

इन्द्र पूजन के अनन्तर आने वाली प्रतिपदा को तुम्हारे पूजन के निमित्त दूसरा वस्तुय मनाया जायगा, जिसका नाम द्वारप्रतिपदा होगा ।

उस वसव के समय हृष्ट-पुष्ट, नरमेष्ट लोग सुन्दर रूप से सप्त ध्वज कर पुष्प और दीप देकर प्रयत्नपूर्वक आपकी पूजा करेंगे ।

आप के राज्य में इस समय जिस प्रकार अहोरात्र

तथैव सा माव्यय कौमुदी च ॥ ६०
 इत्येवमुक्त्वा मधुहा दितीश्वरं
 विमर्जयित्वा सुतलं समाप्यम् । ३३
 यच्च समादाय जगाम तूर्णं
 सकृन्मन्त्रानरसंघमुत्तमम् ॥ ६१
 देव्या मयाने च विष्णुत्रिविष्टपं
 कृत्वा च देवान् मरुत्भागमोक्तवन् ।
 अन्तर्दधे विष्टपतिर्महर्षे
 मंपश्यतामेव सुराधिपानाम् ॥ ६२
 रयम् गते पावरी चासुदेवे
 शाल्योऽगुराणा महता पलेन ।
 कृत्वा पुरं सोममिति प्रसिद्धं
 तदन्तरिक्षे विचचार कामात् ॥ ६३
 मयस्तु कृत्वा विपुरं महात्मा
 सुवर्णतोत्रोपमममयगौरयम् ।
 मत्तारकाद्यः मह यद्युनेन
 संविष्टते भूतयकल्पप्रबान् तः ॥ ६४

पाणोऽपि देवेन हने त्रिविष्टपे
 पदे बली चापि रसातलस्थे ।
 कृत्वा सुगुप्तं हवि शोणितारुण्यं
 पुरं स स्नाते साह दानवेन्द्रैः ॥ ६५
 एवं पुरा चक्रधरेण विष्णुना
 पद्मो पतिर्नामनरूपधारिणा ।
 शक्रप्रियाय सुरसूर्यमिदृशे
 हिताय विप्रर्षमगोद्विजानाम् ॥ ६६
 प्रादुर्भाषन्ते कथयितो महर्षे
 पुण्यः श्रुचिषामिनस्योपहारी ।
 धुने यस्मिन् मम्यूने कीर्तिते च
 पापं पाति प्रथमं पुण्यमेति ॥ ६७
 एतन् प्रोक्तं भवतः पुण्यकीर्तः
 प्रादुर्भाषो पतिर्न्योऽव्ययस्य ।
 यथाप्यन्यन् श्रोतुकामोऽपि विप्र
 तन्त्रोच्यतां कथयिष्याम्यनेपम् ॥ ६८

इति श्रीवामनपुराणे पद्मपटितमोऽध्याय ॥६०॥

यमम जनसमुदाय के कारण रमणीक महोरसय बना रहता है जमी प्रकार शरयो में भेज वह कौमुदी नाम का कामच होगा । (६०)
 मधुगूदन ने दानवेश्वर बलि से इस प्रकार शरकर वगे पत्नी रहित हुआ छेक में भेज दिया । ये यत को भेज दीय देव-समुदाय से सोचा इष्ट भवन गये । (६१)
 हे महर्षे ! इमं बाद विदुषयिष्णुपाकक मगवात्त विष्णु इष्ट को स्वर्ग देवर और देवताओं से यत भाग का भेजा कगकर देवताओं के देवने ही देवने अहार्य हो गये । (६२)
 विष्णु वासुदेव के स्वर्ग चले जाने पर दानव काश्य धमुरी की बड़ी सेवा कर शीघ्र नामक समिद्ध नगर बनाकर इजानुगार आकाश में विष्णु करने लगा । (६३)
 भूतयकल्पप्रबान् महात्मा मय इत्तं तस्य एवं मोद वा स्मिन् पुर निर्मातुं कर मारकाश तथा वेदुन के साथ अथवा सुवर्णक जनमें रहने मया । (६४)

वागामुर भी विष्णु के द्वारा स्वर्ग दीन लिये जाने पर तथा बलि के बंधने तथा रसानन में रहने पर काश्य सुशिक्षित शोणित नामक पुर का निर्माण कर दानवेन्द्रों के साथ रहने लगा । (६५)
 इस प्रकार प्राचीन समय में चक्रधार विष्णु ने कामन रूप धारण कर इष्ट की भलाई, देवताओं की कार्यसिद्धि तथा प्राणों, ऋषियों, गौत्रों और द्विजों के हित के लिए बलि को बोधा या । (६६)
 हे महर्षि ! मैंने आप से कामन के पारहाते, पुण्यपुत्र एवं पवित्र प्रादुर्भाष का बर्णन किया । हमने भवन, मरुत एवं कीर्तन से पाप का नाश एवं पुण्य की प्राप्ति होती है । (६७)
 हे विष्णु ! मैंने अविनाशी पुण्यकीर्तन से देव कामन के अविनाश तथा बलि से बंधने की कथा का ज्ञान से बर्णन किया । अब अन्य अन्य जो हुए मुझका पारहे हो, उसे बर्णन । मैं पुनःपुनः कथा का बर्णन करूँगा । (६८)

इति पद्मपटितमोऽध्याय ॥ ६१ ॥

श्रुतं यथा भगवतो मलिनद्वौ महात्मनाम् ॥ १ ॥
 किंस्वस्त्वन्वेषु प्रष्टव्यं तच्छ्रुत्वा कथंयाद्य मे ॥ १ ॥
 भगवान् देवराजाय दत्त्वा विष्णुस्त्रिपिपयम् ।
 अन्तर्धानं गतः कवासौ सर्वोत्तमा तात केध्वताम् ॥ २ ॥
 सुतलस्थश्च दैत्येन्द्रः किमकार्षीत् तथा वद । ॥ १ ॥
 का चेष्टा तस्य विप्रयं तन्मे व्याख्यातुमर्हसि ॥ ३ ॥
 पुलस्त्य उवाच ॥ १ ॥
 अन्तर्धाय सुरावासं वामनोऽभूद्दवामनः ।
 जगाम ब्रह्मसदनमधिरहोरगाश्चनम् ॥ ४ ॥
 वासुदेवं समायान्तुं ध्यात्वा ब्रह्माऽव्ययात्मकः ।
 समुत्थायाय सौहादीव सस्वजे कमलासनः ॥ ५ ॥
 परिष्वज्याच्युं विधिना वेधाः पूजादिना हरिम् ।
 पप्रच्छ किं चिरेणेह भयतागमनं हृतम् ॥ ६ ॥

अयोवाच जगत्सुामी भूया कायं महत्कृतम् ।
 सुराणां कृतभर्गाय स्वयंभो बलिबन्धनम् ॥ ७ ॥
 पितामहस्तद् वचनं श्रुत्वा मुदितमानसः ।
 कथं कथमिति प्राह स्वं मां दक्षितमहसि ॥ ८ ॥
 हृत्येवमुक्ते वचने भगवान् गरुडध्वजः ।
 दर्शयामास तद्रूपं सर्वदेवमयं लघु ॥ ९ ॥
 तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं योजनाद्युतविस्तृतम् ।
 सायानेवोच्यमानेन ततोऽजः प्रणतोऽभूत् ॥ १० ॥
 ततः प्रणम्य सुचिरं साधु साध्वित्युदीर्य च ।
 भक्तितनमो महादेवं पञ्चजः स्तोत्रमीरयत् ॥ ११ ॥
 नमस्ते देवाधिदेव वासुदेव
 एकशृङ्ग बहुरूप वृषारूपे भूतभावन
 सुरासुरवृष सुरासुरमयन पीतवासः
 श्रीनिवास अमुरनिर्मितान्त अमितनिर्मित

नारद ने कहा—महात्मा भगवान् ने जिस प्रकार बलि को बाँधा था उसे मैंने सुना । किन्तु, अन्य विषय भी पूछना है । उसे सुनकर आज आप मुझसे कहिये । (१)
 हे तात ! यह बतलाइए कि देवराज इन्द्र को स्वर्ग देने के उपरान्त वे सर्वोत्तमा भगवान् विष्णु अन्तर्हित हो कर कहाँ चले गये । इसके अतिरिक्त यह बतलाइए कि सुतलस्थ दैत्येन्द्र ने क्या किया एवं हे विप्र ! मुझे विशेषरूप से यह सूचित करें कि तदुपरान्त यह कौन-सी चेष्टाएँ करता था ? (२३)
 पुलस्त्य ने कहा—विरोहित होने के उपरान्त वामन देव ने अपना वामन स्वरूप त्याग दिया एवं गरुड पर आरुढ़ होकर सुरावास ब्रह्मलोके गये । (४)
 वासुदेव को आवा जानकर अव्ययात्मक कमलासन ब्रह्मा (अपने आसन से) उठे एवं सौहादपूर्वक (विष्णु का) आर्तिजन दिये । (५)
 आर्तिज्ञानोपपन्न विधिपूर्वक पूजादि द्वाप हरि की अर्चना कर ब्रह्मा ने पूजा—'चिरहालेपरम्य आपके यहाँ

आने का क्या कारण है ? (६)
 तदनन्तर जगत्सुामी ने कहा—मैंने महान् कार्य किया है ? हे स्वयम्भो ! सुरों के यम भाग के लिए मैंने बलि को बाँधा है । (७)
 यह वचन सुनकर ब्रह्मा ने प्रसन्न होकर कहा—कैसे ! कैसे ! आप उस रूप को मुझे दिखायें । (८)
 ऐसा ध्यान कर्ते जाते पर भगवान् गरुडध्वज ने श्रीपदा से यह सर्वदेवमय रूप दिखाया । (९)
 अद्युत योजन विस्तृत तथा लघुने ही ऊँचे पुण्डरीकाक्ष को देखकर पितामह ने प्रणाम किया । (१०)
 तदनन्तर चेर तक प्रणाम कर ब्रह्माने 'साधु, साधु' कहा एवं भक्तिपूर्ण नम्रता से महादेव की स्तुति करने लगे—(११)
 हे देवाधिदेव ! वासुदेव ! एकशृङ्ग ! बहुरूप ! वृषारूपि ! भूतभावन ! सुरासुरश्रेष्ठ ! सुरासुरमयन ! पीतवास ! श्रीनिवास ! अमुरनिर्मितान्त ! अमितनिर्मित ! अर्पित !

कपिल महाकपिल विष्वक्सेन नारायण [७]
 ध्रुवध्वज मत्स्यध्वज रुद्रध्वज तालध्वज
 वैश्वदेव पुरुषोत्तम वरेण्य विष्णु अपराजित
 जय जयन्त विजय कृतावर्त महादेव
 अनादे अनन्त आद्यन्तमन्वनिधन
 पुरश्चय धनंजय शुचिधव वृश्चिगर्भ [10]
 कमलगर्भ कमलापताय श्रीपते विष्णुमूल
 मूलाधिवास धर्माधिवास धर्मधाम
 धर्माध्यक्ष प्रजाध्यक्ष गदाधर
 श्रीधर श्रुतिधर पनमालाधर
 लक्ष्मीधर धरणीधर पद्मनाभ - [15]
 विरिञ्चो आर्द्धिवेण महासेन सेनाध्यक्ष
 पुरश्चय पद्मकल्प महारूप
 कल्पनामृत अनिरुद्ध सर्वेश मयात्मन्
 ब्रह्मात्मन् सूर्यात्मन् सोमात्मन्
 पालात्मन् व्योमात्मन् भूवात्मन् [२०]
 रगात्मन् परमात्मन् मनात्मन्

सृष्टांश हरिंश गुहांश वेश्व
 नील मूष्म स्थूल पीत रक्त श्वेत श्वेताधिवास
 रक्ताम्बरप्रिय प्रीतिरुर प्रीतिवास हंम
 नीलवास गौरध्वज सर्वलोकधिवास [२५]
 कुशेशय अधोक्षज गोविन्द जनार्दन
 मधुमूदन वामन नमस्ते ।
 सहस्रशीर्षोऽसि सहस्ररामि महत्प्रवापोऽसि
 त्वं कमलोऽसि महापुरुषोऽसि सहस्रबाहुरसि
 सहस्रमूर्तिरसि त्वां देवाः प्राहुः सहस्रवदनं [३०]
 ते नमस्ते ।
 ॐ नमस्ते विद्यदेवेश विद्यन्ः विद्यात्मक
 विभरूप विरामंभव त्वक्तो विमिदमभवत्
 प्राज्ञपारम्पर्यन्मुनेभ्योऽभवत् धर्मिणा दोःमंमृताः
 ऊर्युग्माद् विद्योऽभवत् शूद्राधरणकमलेभ्यः [३५]
 नाम्ना भरतोऽन्तरिक्षमजायत इन्द्रादीपकयतो
 नेत्राद् भानुरभूमनमः शशाङ्कः अहं प्रमादजगत्
 श्रोत्रान् रुच्यरकः प्राणाज्जातो मयतो मातरिक्षा

महाकपिल ! विष्वक्सेन ! नारायण ! आपसे नमस्कार है ।
 ध्रुवध्वज ! मत्स्यध्वज ! रुद्रध्वज ! तालध्वज !
 वैश्वदेव ! पुरुषोत्तम ! वरेण्य ! विष्णु ! अपराजित !
 जय ! जयन्त ! विजय ! कृतावर्त ! महादेव !
 अनादि ! अनन्त ! आद्यन्त ! मन्वनिधन !
 पुरश्चय ! धनंजय ! शुचिधव ! वृश्चिगर्भ !
 (आपसे नमस्कार है ।) [10]

हरिंशः 'गुहांश' वेश्व' नील' मूष्म' स्थूल'
 पीत' रक्त' श्वेत' श्वेताधिवास' रक्ताम्बरप्रिय' प्रीतिरुर'
 प्रीतिवास' हंम' नीलवास' गौरध्वज' सर्वलोकधिवास !
 कुशेशय' अधोक्षज' गोविन्द ! जनार्दन' मधुमूदन'
 वामन' आपसे नमस्कार है । [२५]

कमलगर्भ ! कमलापताय ! श्रीपते ! विष्णुमूल
 मूलाधिवास ! धर्माधिवास ! धर्मधाम ! धर्माध्यक्ष !
 प्रजाधर ! गदाधर ! श्रीधर ! श्रुतिधर ! पनमालाधर !
 लक्ष्मीधर ! धरणीधर ! पद्मनाभ ! (आपसे नमस्कार
 है ।) [15]

आप महामूर्ति, महाराम, महत्प्रवाह, ब्रह्म,
 महापुरुष, महत्प्रवाह एवं महत्सर्मा हैं । आपसे देवता
 सहस्रवदन रहे हैं । आपसे नमस्कार है । [३०]

विरिञ्चो आर्द्धिवेण ! महासेन सेनाध्यक्ष पुरश्चय
 पद्मकल्प महारूप कल्पनामृत अनिरुद्ध सर्वेश
 मयात्मन् ब्रह्मात्मन् सूर्यात्मन् सोमात्मन् पालात्मन्
 व्योमात्मन् भूवात्मन् ! (आपसे नमस्कार है ।) [२०]

विद्यदेवेश ! विद्यन्ः ! विद्यात्मक ! विभरूप !
 विरामंभव ! त्वक्तो ! विमिदमभवत् ! प्राज्ञपारम्पर्यन्
 मुनेभ्योऽभवत् ! धर्मिणा ! दोःमंमृताः ! ऊर्युग्माद् !
 विद्योऽभवत् ! शूद्राधरणकमलेभ्यः ! नाम्ना ! भरतोऽन्तरि-
 क्षमजायत ! इन्द्रादीपकयतो ! नेत्राद् ! भानुरभूमनमः !
 शशाङ्कः ! अहं ! प्रमादजगत् ! श्रोत्रान् ! रुच्यरकः ! प्राणा-
 ज्जातो ! मयतो ! मातरिक्षा

है रत्नमक ! वामन ! मनात्मन् ! सुखेश !

है मधुमूदन ! वामन ! ममि मे अर्द्धि, ममि मे इन्द्र
 एवं अनेन मे मे भानु, ममि मे इन्द्र एवं अर्द्धि ममि
 मे मे इन्द्र हैं । अर्द्धि ममि मे वामन, ममि मे
 ममि, ममि मे इन्द्र, ममि मे विष्णु, ममि मे इन्द्र

शिरसो धौरजायत श्रोवाद् दिशो भूरियं चरणा-
दभूत्श्रोत्रोद्भवादिशोभवत्.स्वयंभोनक्षत्रास्तेजोद्भवाः[40]
मूर्त्तयेश्चामूर्त्तयश्च सर्वे त्वत्तः समुद्भूताः ।

अतो विश्वात्मकोऽसि ॐ नमस्ते पुष्पहासोऽसि
महाहामोऽमि परमोऽसि ॐकारोऽसि वषट्कारोऽसि
स्वाहाकारोऽसि वौषट्कारोऽसि स्वधाकारोऽसि
वेदमयोऽसि तीर्थमयोऽसि यजमानमयोऽसि [45]

यज्ञमयोऽसि सर्वधाताऽसि यज्ञभोक्ताऽसि
शुक्रधाताऽमि भूर्द् भुवर्द् स्वर्द् स्वर्णद गोद
अमृतदोऽसीति । ॐ ब्रह्मादिरसि ब्रह्ममयोऽसि
यज्ञोऽसि वेदकामोऽसि वेद्योऽसि यज्ञधारोऽसि
महामीनोऽसि महासेनोऽसि महाशिरा असि [50]
नृकेसर्यसि होताऽसि होम्योऽसि हव्योऽसि ह्यमानोऽसि
हयमेधोऽसि पोताऽसि पावयिताऽसि पूतोऽसि
पूज्योऽसि दाताऽसि हन्यमानोऽसि हियमाणोऽसि
हर्त्तासीति ॐ । नीतिरसि नेताऽसि अग्र्योऽसि
विश्वधामाऽसि शुभाण्डोऽसि ध्रुवोऽसि आरण्योऽसि [55]
ध्यानोऽसि ध्येयोऽसि ज्ञेयोऽसि ज्ञानोऽसि यथाऽसि

पृथ्वी, श्रवण से दिशाएँ, एव तेज से नक्षत्र उत्पन्न हुए हैं ।
समस्त मूर्ते एव अमूर्त पदार्थ आपसे समुद्भूत हुए
हैं । [41]

अत आप विश्वात्मक हैं ॐ आपने नमस्कार हैं । आप
पुष्पहास, महाहाम, परम, ॐकार, वषट्कार, स्वाहाकार,
वौषट्कार, स्वधाकार, वेदमय, तीर्थमय, यजमानमय,
यज्ञमय, सर्वधाता, यज्ञभोक्ता, शुक्रधाता, भूर्द्, भुवर्द्,
स्वर्द्, स्वर्णद गोद एव अमृतद हैं । ॐ आप ब्रह्मादि,
ब्रह्ममय, यज्ञ, वेदकाम, वेद्य, यज्ञधार, महामीन, महासेन,
महाशिरा, नृकेसरी, होता, होम्य, हव्य, ह्यमान, हयमेध,
पोता, पावयिता, पूत, पूज्य, दाता, हन्यमान, हियमाण
एव हर्त्ता हैं । ॐ आप नीति, नेता, अग्र्य, विश्वधाम,
शुभाण्ड, ध्रुव, आरण्य, ध्यान, ध्येय, ज्ञेय, ज्ञान, यथा,
दान, भूमा, ईश्वर, ब्रह्मा, होता, उद्गाता, गतिमानों की
गति, शानियों के ज्ञान, योगियों के योग, मोक्षार्थियों

दानोऽसि भूमाऽसि ईश्वोऽसि ब्रह्माऽसि होताऽसि
उद्गाताऽसि गतिमतां गतिरसि ज्ञानिनां ज्ञानमसि
योगिनां योगोऽसि मोक्षगामिनां मोक्षोऽसि
श्रीमतां श्रीरसि गृह्योऽसि पाताऽसि परममि [60]
सोमोऽसि सूर्योऽसि दीक्षाऽसि दक्षिणाऽसि नरोऽसि
त्रिनयनोऽसि महानयनोऽसि आदित्यप्रभवोऽसि
सुरोत्तमोऽसि शुचिरसि शुक्रोऽसि नभोरसि
नभस्योऽसि इषोऽसि ऊर्जोऽसि सहोऽसि
सहस्योऽसि तपोऽसि तपस्योऽसि मधुरसि [65]
माधवोऽसि कालोऽसि संक्रमोऽसि विक्रमोऽसि
पराक्रमोऽसि अश्वप्रीवोऽसि महामेधोऽसि
शंक्रोऽसि हरीश्वरोऽसि शंभुरसि ब्रह्मेधोऽसि
सूर्योऽसि मित्रावरुणोऽसि प्रावृंशकायोऽसि
भृतादिरसि महाभृतोऽसि ऊर्ध्वकर्माऽसि कर्त्ताऽसि [70]
सर्वपापविमोचनोऽसि त्रिविक्रमोऽसि ॐ नमस्ते
पुलस्त्य उवाच ।

इत्थं स्तुतः पद्मभवेन विष्णु-
स्तापस्विभिक्षाद्भूतकर्मकारी ।

के मोक्ष, श्रीमानों की भी, गृह, पाता एव परम हैं । [60]

आप, सोम, सूर्य, दीक्षा, दक्षिणा, नर, त्रिनयन,
महानयन, आदित्यप्रभव, सुरोत्तम, शुचि, शुक्र, नभ,
नभस्य, इष, ऊर्ज, सह, सहस्य, तप, तपस्य, मधु, माधव,
काल, संक्रम, विक्रम, पराक्रम, अश्वप्रीव, महामेध, शंभुर,
हरीश्वर, शंभु, ब्रह्मेध, सूर्य, मित्रावरुण, प्रावृंशकाय,
भृतादि, महाभृत्, ऊर्ध्वकर्मा, कर्त्ता, सर्वपापविमोचन एवं
त्रिविक्रम हैं । ॐ आपने नमस्कार हैं । [70]

पुलस्त्य ने कहा—ब्रह्मा एव तपस्वियों के इस प्रकार
स्तुति करने पर अद्भुत कर्मकारी विष्णु ने प्रपितामह देव
से कहा—हे अमलसत्त्ववृत्ति! आप वर नौगिये । (१२)
प्रितामह ने प्रीतिपूर्वक उनसे कहा—हे विभो! हे
सुपारि! आप सुते यह वर प्रदान करें कि आप इस

प्रोवाच देवं प्रपितामहं तु
 वरं वृणीष्वामलसत्त्वरुचते ॥ १२
 तमब्रवीत् प्रीतियुतः पितामहो
 वरं ममेहाय विभो प्रयच्छ ।
 रूपेण पुष्येन विभो ह्यनेन
 मंस्थीयतां मद्भवने सुरारे ॥ १३
 इत्थं वृते देववरेण प्रादात्
 प्रभुस्त्वयास्तिवति तमव्ययात्मा ।
 तस्यै हि रूपेण हि वामनेन
 संपूज्यमानः सद्ने स्वयंभोः ॥ १४
 नृत्यन्ति तत्राप्यनुरसां समूहा
 गायन्ति गीतानि सुरेन्द्रगायनाः ।
 विद्याधरास्तूर्ववरांश्च वादयन्

स्तुवन्ति देवासुरसिद्धसङ्घाः ॥ १५
 ततः समाराध्य विभुं सुराधिपः
 पितामहो धौतमलः स शुद्धः ।
 स्वर्गे निरिञ्चिः सद्नात् सुपुष्पा-
 ग्यानीय पूजां प्रचकार विष्णोः ॥ १६
 स्वर्गे सहस्रं स तु योजनानां
 विष्णोः प्रमाणेन हि वामनोऽभूत् ।
 तत्रास्य शुकः प्रचकार पूजां
 स्वयंभुवस्तुल्यगुणां महर्षे ॥ १७
 एतत् तनोक्तं भगवांस्त्रिविक्रम-
 थकार यद् देवहितं महात्मा ।
 रसातलस्यै दितित्रयश्चकार
 यत्तच्छृणुष्व्याद्य यदामि विप्र ॥ १८

इति श्रीवामनपुराणे पट्टपठितमोऽध्याय ॥६६॥

पवित्ररूप से मेरे भवन में रियत रहें । (१३)
 देवश्रेष्ठ के ऐसा वर माँगने पर अव्ययात्मा प्रभु ने
 वनसे कहा—येसा ही होगा। तदनन्तर वे स्वयंभू के
 भवन में वामनरूप से पूजित होते हुए रहने लगे। (१४)
 वहाँ अप्सराओं का समूह नृत्य करने लगा, सुरेन्द्र
 के गायक गान करने लगे, विद्याधर श्रेष्ठ तूर्व यज्ञाने लगे
 एवं देव, असुर तथा सिद्धों के सघ स्तुति करने
 लगे। (१५)
 विभु की समाराधना के उपरान्त पितामह ब्रह्मा
 निष्पाप एवं शुद्ध हो गए। स्वर्ग में ब्रह्मा ने घर में से

सुन्दर पुष्पों को लानर वनसे विष्णु का पूजन
 किया। (१६)
 विष्णु स्वर्ग में वामन रूप से सहस्र योजन विस्तृत
 हो गये। हे महर्षे! वहाँ इन्द्र ने ब्रह्मा के समान
 गुणयुक्त पदार्थों से उनकी पूजा की। (१७)
 हे विप्र! महात्मा भगवान् त्रिविक्रम ने बलि को
 रसातल में भेजकर देवताओं का जो हितसाधन किया
 था, वह मैंने आप से कहा। दैत्य ने रसातल में
 रहते हुए जो कार्य किया उसका वर्णन मैं आज कर रहा
 हूँ। उसे सुनो। (१८)

श्रीवामनपुराण में द्वादशवाँ अध्याय समाप्त ॥ ६६ ॥

पुलस्त्य उवाच ।

गत्या रसातलं दैत्यो महार्हमणिचित्रितम् ।
 शुद्धस्फटिकसीपानं कारधामास वै पुरम् ॥ १
 तत्र मध्ये सुविस्तीर्णः प्रासादो चक्रवेदिकः ।
 मुक्ताजालान्तरद्वारो निर्मितो मिथकर्मणा ॥ २
 तत्रास्ते विविधान् भोगान् भुञ्जन् दिव्यान् समाजुषान् ।
 नाम्ना विन्ध्यावलीत्येवं भार्याऽस्य दयिताऽभवत् ॥ ३
 युवतीनां सहस्रस्य प्रधाना शीलमण्डिता ।
 तथा सह महातेजा रेमे वैरोचनिर्हृते ॥ ४
 भोगासक्तस्य दैत्यस्य वसतः सुतले तदा ।
 दैत्यतेजोहरः प्राप्तः पाताले वै सुदर्शनः ॥ ५
 चक्रे प्रविष्टे पातालं दानयानां पुरं महान् ।
 चमौ हलहलाशब्दः क्षुभितार्णवसन्निभः ॥ ६
 तं च श्रुत्वा महाशब्दं बलिः रज्जं समाददे ।

पुलस्त्य ने कहा—रसातल में जाकर दैत्य ने बहुमूल्य मणियों से चित्रित शुद्ध स्फटिक के सोपान से भूषित नगर बनवाया । (१)

विरचकर्मा ने उसके मध्य में सुविस्तीर्ण वक्रमय वेदियों वाला एक मुक्ताजालयुक्त द्वार वाला प्रासाद बनाया । (२)

बलि अनेक प्रकार के विषय तथा मनुष्यों के योग्य भोगों का उपभोग करते हुए वहाँ रहने लगा । विन्ध्यावली नाम की उसकी प्रिय पत्नी थी । (३)

हे मुनि ! वह सहस्रों युवतियों में प्रधान एक शीलसम्पन्न स्त्री थी । महातेजस्वी विरोचन पुत्र बलि उसके साथ रमण करने लगा । (४)

भोगासक्त दैत्य के सुतल में रहते समय एक दिन दैत्यतेजोहर सुदर्शन चक्र पाताल में प्रविष्ट हुआ । (५)

चक्र के पाताल में प्रविष्ट होने पर दानवों के पुर में क्षुब्धसागर के लुब्ध महान् हलहलाशब्द उत्पन्न हुआ । (६)

उस महान् शब्द को सुनकर असुरश्रेष्ठ बलि ने शाय

आः किमेतद्वितीत्यञ्ज प्रपच्छासुरसुंगवः ॥ ७
 ततो विन्ध्यावली प्राह सान्त्वयन्ती निजं पतिम् ।
 कोशे रज्जं समावेश्य धर्मपत्नी शुचित्रता ॥ ८
 एतद् भगवतश्चक्रं दैत्यचक्रद्वयंकरम् ।
 संपूजनीयं दैत्येन्द्र वामनस्य महात्मनः ।
 इत्येवमुपत्वा चार्धञ्जी सार्धपात्रा विनिर्यथौ ॥ ९
 अथाभ्यागात् सहस्रारं विष्णोश्चक्रं सुदर्शनम् ।
 ततोऽसुरपतिः प्रहः कृताञ्जलिपुटो मुने ।
 संपूज्य विधिवच्चक्रमिदं स्तोत्रमृदीरयत् ॥ १०

बलिहवाच ।

नमस्यामि होश्चक्रं दैत्यचक्रविदारणम् ।
 सहस्रारं सहस्रारं सहस्रारं मुनिर्मलम् ॥ ११
 नमस्यामि होश्चक्रं यस्य नाभ्यां पितामहः ।
 तुष्टे त्रिशूलधृक् शर्व आरामूले महाद्रव्यः ॥ १२

मे एक तलवार लिया और इस प्रकार पूछा—अरे ! यह क्या है ? (७)

तदनन्तर शुचित्रता धर्मपत्नी विन्ध्यावली ने अपने पति को सान्त्वना देकर तथा खड्ग को कोश में समाधिष्ट कर यह कहा— (८)

यह भगवान् महात्मा वामन का दैत्यसमूह का विनाश करने वाला पूजनीय चक्र है । ऐसा कहकर वह सुन्दरी अर्धपात्र सहित बाहर गयी । (९)

उसी बीच विष्णु वा सहस्र अरों वाला सुदर्शन चक्र आ पहुँचा । हे मुनि ! असुरपति ने नम्रतापूर्वक हाथ जोड़कर विधिवत् चक्र का पूजन किया एवं यह स्तुति की । (१०)

बलि ने कहा—दैत्य-समूह को विदीर्ण करने वाले सहस्रारशुक्र, सहस्र आभा वाले, सहस्र अरों से युक्त निर्मल विष्णु के सुदर्शन चक्र को मैं नमस्कार करता हूँ । (११)

विष्णु के उस चक्र को मैं नमस्कार करता हूँ, जिसकी

आरेषु संस्तिष्या देवाः सेन्द्राः माषणः मपावकाः ।
 अथे वस्य स्विषो पापुसापोमिः पृथिवी नमः ॥ १३
 आरप्रान्तेषु श्रीभृगाः मौदामिन्पुष्टारषाः ।
 पादयो सुनयो वस्य पात्रगिन्याद्वन्मया ॥ १४
 तदापुष्यपरं वन्दे वासुदेवस्य भक्तिवतः ।
 वन्दे पापं शरीरोत्थं पापं मानममेव च ॥ १५
 वन्दे दहस्य दीर्घांशो विष्णोःपत्र सुरदीन ।
 वन्दे इन्दोःश्वं पापं पेशः माशुं तथा ॥ १६
 वन्दे हस्तस्य शरमा नमस्तोः उन्मुतापुष ।
 आषयो मम नवपन्तु व्वाषयो वान्तु संशयम् ॥
 रश्मापकीर्तनागक दुहितं वातु संशयम् ॥ १७
 इत्येवमुक्त्वा मतिमान् ममस्वप्नवांशं भक्तिवतः ।
 संमरन्तु दुष्टरांशवांशं मपंपापप्रपाश्रनम् ॥ १८
 पृथितं वक्षिन्वा पत्रं कृत्वा निम्नेत्रमोऽभुगान् ।
 निद्रकामाय पात्रान्नाद् विपुंरे वक्षिणे सुनि ॥ १९
 सुदर्शने निर्गते तु परितरिचदरां गतः ।

परमामापदं प्राप्य मत्स्यार स्वपितामहम् ॥ २०
 म पापि संमृतः प्रायः सुतलं दानवेधरः ।
 एषा सप्री महावेत्ताः मार्षपायो पञ्चिन्द्रा ॥ २१
 समन्वं विधिना श्रमन्तु पितुः पितरमीश्वरम् ।
 कृत्वाऽऽश्रितो भूया इदं वचनममर्षयम् ॥ २२
 संमृतोऽपि मया सात सुपिपन्नेन पेशमा ।
 वन्दे हितं च पथं च श्रेयोत्थं वद सात मे ॥ २३
 किं पश्ये सात मंगारो पमता उरुणेन हि ।
 त्वांन देन पै नान्य वन्यः मनुषजायो ॥ २४
 मंगारान्पयनप्रानां नराणामन्वपेशमाम् ।
 मरणे यो भवेत् पेशवन्दने व्यागपातुमर्षमि ॥ २५
 पुत्रस्य उपाय ।

एतद्वचनमाकर्ष्य कर्षणीयाद् दानवेधरः ।
 विगिन्यस्य प्राह वचनं मंगारो वक्षितं परम् ॥ २६
 प्रहाद उपाय ।
 मातु दानवउद्दह्ल यो जाता मतिमिरपम् ।

नाभि में विणमद्, घोडी पर विष्णुपत्नी महादेव, अरों व
 मूत्र में मत्स्यार वंश, अरों में इन्द्र, मूर्ध, अग्नि, आदि
 देवता, मति में वायु, जल, अग्नि, पृथिवी और आकाश,
 अरों के किन्तों में मेघ, विष्णु, नक्षत्र एवं ताराओं
 के समूह तथा वायुभाग में वायुविज्ञान आदि सुनि विषय
 हैं । (१२-१८)

मैं अतिपूर्वक वासुदेव के मम श्रेष्ठ आशुष को नमस्कार
 करता हूँ । हे विष्णु के कीर्तन सुदर्शन वचन । मेरे शरीरि
 वाचित एवं मार्गमक पापों का आप विनाश करें । हे
 अश्वत्थामुप । मेरे कृत्र में हुए पेश्व एवं मातृव पापों का
 वेश से आप हृदय करें । आपसे नमस्कार है । मेरी ममता
 व्याधि व्याधियों का नाश हो जाय । हे वचन । आपसे
 नाम का कीर्तन करने से पापों का नाश हो जाय । (१५-१७)
 पेशा वदहस्त मतिमान् (वक्षि) में अतिपूर्वक वचन की
 पूजा कर मपंपापप्रपाश्रक पुष्टीरागत वा मरणा
 किया । (१८)

हे सुनि । मति से वृत्ति शक असुरों को निरन्धन कर
 पात्रान्त में निरुद्ध कर वक्षिण की ओर गया । (१९)
 सुदर्शन के निरुद्ध जाने पर वक्षि अश्वत्थ विरुद्ध हो ।
 मए । घोर आपवति आने पर अर्द्धने अपने पितामह को

मरणा किया । (२०)
 मरणा करते ही देवेधर (मद्व्याद) सुतल में आ
 गये । (उम्दे) वेगरे ही महावेत्ता की वक्षि मरणा हृदय
 में आर्ष लिखे कृत्र मद्वा हुए । (२१)
 हे मत्स्यार । अपने तमर्ष विणमद् की विधिपूर्वक पूजा
 करने से उरुणा वक्षि में हृदय जोड़ कर वद वचन
 वदा— (२२)
 हे मातु । आपस्य विणमय विना से मैंने आपका
 मरणा किया है । अतः हे मातु । सुतल दितार, पथ एवं
 श्रेयोत्थर उपाय एवंवेद दे । (२३)
 हे मातु । मनुष्य का संसार में रहने हुए क्या करना
 चाहिए जिसके करने से बुरे कर्मजन न हो । (२४)
 आप सुतले संसार समुद्र में मग्न अल्पमति मनुष्यों
 को करने के लिये पोतवहप क्या है इसे बार्षी । (२५)
 पुत्रस्य में वदा—अपने वीर्य से इस वचन को सुनने
 के उपरान्त दानवेधर (मद्व्याद) ने विचार कर संसार में
 दिव्यार श्रेष्ठ वचन वदा । (२६)
 प्रहृष्टाद् में वदा—हे दानवेधर ! तुम भय्य हो कि
 सुम्दे पैती मति उरुणा हुम्दे । हे वक्षि । अथ मैं तुम्हारे एवं

प्रवक्ष्यामि हितं तेऽद्य तथाऽन्येषां हितं वले ॥ २७

भवजलधिगतानां द्वन्द्ववाताहतानां

सुतदुहितृफलत्रयाणभारार्दितानाम् ।

विपमविपयतोये मज्जतामलवानां

भवति शरणमेको विष्णुपोतो नराणाम् ॥ २८

ये संश्रिता हरिभनन्तमनादिमध्यं

नारायणं सुरगुरुं शुभदं वरेण्यम् ।

शुद्धं खगेन्द्रगमनं कमलालयेषं

ते धर्मराजकरणं न विशन्ति धीराः ॥ २९

स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्त

वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ।

परिहर मधुसूदनप्रपन्नान्

प्रश्नरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम् ॥ ३०

तथाऽन्यदुक्तं नरसचमेन

इक्ष्वाकुणा भक्तिव्युतेन नूनम् ।

ये विष्णुभक्ताः पुरुषाः पृथिव्यां

यमस्य ते निर्विषया भवन्ति ॥ ३१

दूसरों के लिए हितकर वचन कहता हूँ । (२७)

ससार रूपी समुद्र में निमग्न, द्वन्द्वरूपी वायु से आहत, पुत्र, वन्या, पत्नी आदि की रक्षा के भार से दुःखी, भयकर विषयरूपी जल में मग्न हो रहे मौनारहित मनुष्यों के लिये विष्णु रूप नौका ही एकमात्र शरण होती है । (२८)

आदि, मध्य एव अन्त रहित, शुभदाता, वरेण्य, गरुड वाहन, लक्ष्मीपति, शुद्ध, सुरगुरु, नारायण हरि का आश्रय ग्रहण करने वाले धीर मनुष्य यमराज के शासन में नहीं पड़ते । (२९)

यमराज पाश हाथ में लिये खड़े अपने दूत को देखकर उसके कान में कहते हैं कि मधुसूदन की शरण में गये हुये मनुष्यों को छोड़ देना । क्योंकि मैं अन्य मनुष्यों का ही प्रभु हूँ, वैष्णवों का नहीं । (३०)

इसके अतिरिक्त भक्तिपुक्त नरपुत्र इक्ष्वाकु ने कहा था कि पृथ्वी में विष्णुभक्त जबकि यम की गति से बाहर हैं । (३१)

वही जिह्वा है जो हरि की स्तुति करती है, वही चित्त

सा जिह्वा था हरि स्तौति तच्चित्तं यच्चदर्पितम् ।

तावेव केवलं शलाघ्यौ यौ तत्पूजाकरौ करौ ॥ ३२

नूनं न तौ करौ प्रोक्तौ वृक्षशाखाग्रपल्लवौ ।

न यौ पूजयितुं शक्यतौ हरिपादाम्बुजद्वयम् ॥ ३३

नूनं तत्कण्ठशालूकमथना प्रतिजिह्वका ।

रोगो वाऽन्यो न सा जिह्वा या न चक्ति हरेर्गुणान् ॥ ३४

शोचनीयः स बन्धूना जीवन्नपि मृतो नरः ।

यः पादपङ्कज विष्णोर्न पूजयति भक्तितः ॥ ३५

ये नरा वासुदेवस्य सततं पूजने रताः ।

मृता अपि न शोच्यास्ते सत्य सत्यं मयोदितम् ॥ ३६

शारीर मानस वाग्जं मूर्तामूर्तं चराचरम् ।

दृश्य स्पृश्यमदृश्यञ्च तत्सर्वं केशवात्मकम् ॥ ३७

येनार्चितो हि भगवान् चतुर्धा वै त्रिविक्रमः ।

तेनार्चिता न संदेहो लोकाः सामरदानवाः ॥ ३८

यथा रत्नानि जलधेरसंख्येयानि पुत्रक ।

हैं जो उनमें रत है, वही करयुगल प्रशसनीय हैं जो उनकी पूजा करते हैं । (३२)

जो करयुगल श्रीहरि के चरणारविन्द युगल की पूजा नहीं करते, वे हाथ नहीं हैं, अपितु वृक्षशाखा के अप्रपल्लव हैं । (३३)

जो जिह्वा हरि के गुणों का वर्णन नहीं करती, वह जिह्वा नहीं अपितु कण्ठशालूक (मेढक का कण्ठ), प्रतिजिह्वा अथवा अन्य कोई रोग है । (३४)

भक्तिपूर्वक विष्णु के चरणमल का पूजन न करने वाला मनुष्य जीवित ही मृत तुल्य है एवं बन्धुजनों के लिये शोचनीय है । (३५)

मैं यह सत्य कहता हूँ कि वासुदेव के पूजन में निरन्तर रत मनुष्य मरने पर भी शोचनीय नहीं होते । (३६)

समस्त शारीरिक, मानसिक, वाचिक, मूर्त, अमूर्त, चर, अचर, हरय, स्त्रिय एव अदृश्य पदार्थ विष्णु स्वरूप हैं । (३७)

त्रिविक्रम भगवान् की चार प्रकार से अर्चना करने वाले मनुष्यों ने निरसन्देह सुप्तपुर सहित समस्त लोकों का अर्चन कर लिया है । (३८)

है पुत्र । जिस प्रकार समुद्र के रत्न असंख्य

तथा गुणा हि देवस्य रत्नमर्यादास्तु चक्रिणः ॥ ३९,
 ये शङ्खचक्राञ्जकरं सञ्चारिणं
 खगोन्द्रकेतुं वरदं श्रियः पतिम् ।
 समाश्रयन्ते भवभीतिनाञ्जनं
 संसारमते न पतन्ति ते पुनः ॥ ४०
 येषा मनसि गोविन्दो निवासी सततं बले ।
 न ते परिभव यान्ति न मृत्योरुद्विजन्ति च ॥ ४१
 देवं शार्ङ्गधरं विष्णुं ये प्रपन्नाः परायणम् ।
 न तेषां यमसालोक्यं न च ते नरकौरुसः ॥ ४२
 न तां गतिं प्राप्नुवन्ति श्रुतिशास्त्रविशारदाः ।
 मिया दानवशार्ङ्गल विष्णुभक्ता प्रजन्ति याम् ॥ ४३
 या गतिर्देव्यशार्ङ्गल हतानां तु महाहवे ।
 ततोऽधिकं गतिं यान्ति विष्णुभक्ता नरोत्तमाः ॥ ४४
 या गतिर्वर्मशीलानां सार्विकानां महात्मनाम् ।
 सा गतिर्गदिता दैत्य भगवत्सेनिनामपि ॥ ४५
 सर्वावासं वासुदेवं सूक्ष्ममव्यक्तविग्रहम् ।

प्रविशन्ति महात्मानं तद्भक्ता नान्यचेतसः ॥ ४६
 अनन्यमनसो भक्त्या ये नमस्यन्ति केशवम् ।
 शुचयस्ते महात्मानस्तीर्थभूता भवन्ति ते ॥ ४७
 गच्छन् विष्णुं स्वपन्न जाग्रत् पित्रद्वन्द्वममीक्ष्यशः ।
 ध्यायन् नारायणं यस्तु न ततोऽन्योऽस्ति पुण्यभाक् ।
 वैदृष्ट उद्धमपरशुं भवन्नधसमृच्छिदम् ॥ ४८
 प्रणिपत्य चयान्यायं संसारे न पुनर्भवेत् ।
 क्षेत्रेषु यस्ते नित्यं क्रीडन्नास्तेऽमितवृत्तिः ॥ ४९
 आसीनः सर्वदेहेषु कर्मभिर्न म वध्यते ।
 येषा विष्णुः प्रियो नित्यते विष्णोः सततं प्रियाः ॥ ५०
 न ते पुनः सम्भवन्ति तद्भक्तास्तत्परायणाः ।
 ध्यायेद् दामोदरं यस्तु भक्तिमग्नोऽर्चयेत् वा ॥ ५१
 न स संसारपङ्केऽस्मिन् मज्जते दानवेश्वर ।
 कल्पमृत्याय ये भक्त्या स्मरन्ति मधुसूदनम् ।
 स्तुवन्त्यप्यभिशृण्वन्ति दुर्गाण्यत्तिवन्ति ते ॥ ५२

हैं, वसी प्रनार चक्रधारी विष्णु के गुण भी असह्य हैं ।
 (१९)
 हार्थों में शङ्ख, चक्र, कमल एवं शार्ङ्ग धनुष धारण करने वाले, गरुडभ्यज भयभीतिनाशक, परदाता श्रीपति का आश्रय ग्रहण करने वाले मनुष्य पुन संसार गर्त में नहीं गिरते ।
 (२०)
 हे बलि ! गोविन्द जिनके मन में सतत निवास करते हैं उनका पराभव नहीं होता एवं वे मृत्यु से उद्विग्न नहीं होते ।
 (२१)
 श्रेष्ठ शरणस्थान, शार्ङ्गधर देव विष्णु की शरण में पहुँचे मनुष्यों को यमलोक या नरक में नहीं जाना पड़ता । (२२)
 हे दानवश्रेष्ठ ! श्रुतिशास्त्रविशारद विषों को बह गति नहीं प्राप्त होती जो गति विष्णुभक्त प्राप्त करते हैं । (२३)
 हे दैत्यश्रेष्ठ ! महान् बुद्धि में निहृत व्यक्ति जो गति प्राप्त करते हैं, विष्णुभक्त नरश्रेष्ठ को उससे भी उत्तम गति प्राप्त होती है । (२४)
 हे दैत्य ! धर्मशील, सार्विक, महात्माओं को जो गति प्राप्त होती है, भगवद्भक्तों की भी वही गति उन्हीं गति है । (२५)
 अनन्यभाव से भगवान की भक्ति करने वाले सर्वा-
 वास, सूक्ष्म, अव्यक्त शरीर वाले महात्मा वासुदेव में प्रवेश

करते हैं । (४६)
 अनन्यमन से भक्तिपूर्वक वेशन को नमस्कार करने वाले मनुष्य वरिष्ठ एवं तीर्थरूप हीत हैं । (४७)
 चलते, खड़े, सोते, जागते, एवं खाते पीते हुए निरन्तर नारायण का ध्यान करने वाल से अधिक पुण्य का भाजन कोई नहीं होता । यथाविधि भवन्नधन का समुच्छेद करने वाले खड्गापरशु वैदृष्ट देव को प्रणाम करने से संसार में पुनर्जन्म नहीं होता । क्षेत्र में निवास करते हुए नित्य मीढा करन वाला अमितवृत्ति घृणभक्त समस्त शरीरों में रहने पर भी उनके कर्मों के बन्धन में नहीं पड़ता । विष्णु जिन्हें नित्य प्रिय है वे सर्वदा विष्णु के प्रिय होते हैं । (४८-५०)
 दामोदर का ध्यान करने वाल उनमें भक्त, उनमें शरणगत अथवा भक्तिपूर्वक उनका अर्चन करने वाल मनुष्य पुन जन्म ग्रहण नहीं करते । (५१)
 हे दानवेश्वर ! प्राप्त शल उठकर भक्तिपूर्वक मधुसूदन का स्मरण करने वाल इस संसारपङ्क में निगमन नहीं होने । उनको स्तुति करनेवाले एवं गुणधरान करने वाले मनुष्य दुर्गों को पार कर जाते हैं । (५२)

हरिवाक्यामृतं पीत्वा विमलैः श्रोत्रभाजनैः ।
 प्रहृष्यति मनो येषां दुर्गाण्यवितरन्ति ते ॥ ५३
 येषां चक्रगदापाणौ भक्तिरव्यभिचारिणी ।
 ते यान्ति नियतं स्थानं यत्र योगेश्वरो हरिः ॥ ५४
 विष्णुकर्मप्रसक्तानां भक्तानां या परा गतिः ।
 सा तु जन्मसहस्रेण न तपोभिरवाप्यते ॥ ५५
 किं ज्यैस्तस्य मन्त्रैर्वा किं तपोभिः किमाश्रमैः ।
 यस्य नास्ति परा भक्तिः सततं मधुसूदने ॥ ५६
 वृथा यज्ञा वृथा वेदा वृथा दानं वृथा श्रुतम् ।
 वृथा तपश्च कीर्तिश्च यो द्वेष्टि मधुसूदनम् ॥ ५७
 किं तस्य बहुभिर्मन्त्रैर्भक्तिर्यस्य जनार्दन ।
 नमो नारायणायेति मन्त्रः सर्वार्थसाधकः ॥ ५८
 विष्णुरेव गतिर्येषां वृत्तस्तेषां पराजयः ।
 येषामिन्दीवरश्चयामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥ ५९
 सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं वरेण्यं वरदं प्रभुम् ।
 नारायणं नमस्कृत्य सर्वकर्माणि कारयेत् ॥ ६०

विमल वर्णरूपी पात्रों से हरिवाक्यामृत का पान कर
 जिनका मन अत्यन्त प्रसन्न होता है वे कठिनाइयों को
 पार कर जाते हैं । (५३)

चक्रगदापाणि विष्णु में स्थिर भक्ति रखने
 वाले मनुष्य निश्चय ही योगेश्वर हरि के स्थान में जाते
 हैं । (५४)

विष्णु की सेवा में आसक्त भक्तों को जो श्रेष्ठ गति प्राप्त
 होती है वह सहस्र जन्मों में भी तप से नहीं प्राप्त हो
 सकती । (५५)

मधुसूदन में सतत पराभक्ति से रहित मनुष्यों के
 जप, मन्त्र, तप एवं आश्रमों से क्या लाभ ? (५६)

मधुसूदन से द्वेष करने वाले मनुष्यों के यज्ञ, वेद,
 दान, शान, तप एवं वीरि व्यर्थ हैं । (५७)

जनार्दन में भक्ति रखने वालों को वृत्त से भक्तों से क्या
 लाभ ? "नमो नारायणाय" मन्त्र सभी अर्थों का साधक है । (५८)

जिनकी गति विष्णु है एवं जिनके हृदय में इन्दीवर
 श्याम जनार्दन अवस्थित है उनकी पराजय कहीं सम्भव
 है ? (५९)

सभी मन्त्रों के मङ्गलस्वरूप, परीय, परताम प्रभु
 नारायण को नमस्कार कर समस्त कर्म करना चाहिए । (६०)

विष्टयो व्यतिपाताश्च येऽन्ये दुर्नीतिसम्भवाः ।
 ते नाम स्मरणाद्विष्णोर्नाशं यान्ति महासुर ॥ ६१
 तीर्थकोटिसहस्राणि तीर्थकोटिशतानि च ।
 नारायणप्रणामस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ६२
 पृथिव्यां यानि तीर्थानि पुण्यान्यायतनानि च ।
 तानि सर्वाण्यवान्तेति विष्णोर्नामानुकीर्तनात् ॥ ६३
 श्वाप्नुयन्ति न तांल्लोकात् व्रतितो वा तपस्विनः ।
 प्राप्यन्ते ये तु कृष्णस्य नमस्कारपर्यन्तैः ॥ ६४
 योऽप्यन्यदेवतामक्तो मिथ्यार्चयति केशवम् ।
 सोऽपि गच्छति साधूनां स्थानं पुण्यकृतां महत् ॥ ६५
 सातत्येन हृषीकेशं पूजयित्वा तु यत्फलम् ।
 सुचीर्णतपसां नृणां तत् फलं न कदाचन ॥ ६६
 विसन्ध्यं पद्मनाभं तु ये स्मरन्ति सुमेधसः ।
 ते लभन्त्युपवासस्य फलं नास्त्यत्र संशयः ॥ ६७
 सततं शास्त्रदृष्टेन कर्मणा हरिर्मर्चय ।

हे महासुर ! विष्टियाँ, व्यतिपात एवं दुर्नीति से उत्पन्न
 अन्य समस्त आपत्तियों विष्णु के नाम का स्मरण करने से
 विनाश हो जाती हैं । (६१)

शत कोटि एवं सहस्र कोटि तीर्थ भी नारायण की
 प्रणाम करने की सोलहवीं कला के भी तुल्य नहीं है । (६२)

पृथ्वी में जितने तीर्थ और पवित्र देवालये हैं, वे सभी
 विष्णु के नाम के समीपन से प्राप्त होते हैं । (६३)

श्रीदृष्ट्य को नमस्कार करने वाले मनुष्य जिन लोकों
 को प्राप्त करने हैं उन्हें मरी या तपस्वी लाभ नहीं प्राप्त
 करते । (६४)

अन्य देवता का भक्त होने हुए वैश्वर वा मिथ्या
 अर्चन करने वाला मनुष्य भी पुण्यकर्मा साधुओं के महान्
 स्थान को प्राप्त करता है । (६५)

हृषीकेश के सतत पूजन से जो फल प्राप्त होता है
 पार तप करने वाले मनुष्यों को वह फल कभी नहीं प्राप्त
 होगा । (६६)

तनों तथापि मत्त से पद्मनाभ का स्मरण करने वाले
 बुद्धिमान पुरुषों को निरानन्द उपवास का फल प्राप्त
 होता है । (६७)

हे बलि ! क्षात्रों में प्रतिपादित कर्म द्वारा सबन हरि का

तत्प्रसादात् परां सिद्धिं बले प्राप्स्यसि शाश्वतीम् ॥ ६८
 तन्मना भव तद्भक्तस्तवाजी तं नमस्कुरु ।
 तमेवाश्रित्य देवेशं सुखं प्राप्स्यसि पुत्रक ॥ ६९
 आद्यं क्षान्तमजरं हरिमन्वयं च
 ये वै स्मरन्त्यहरहर्नृधरा भुविस्थाः ।
 सर्वत्रगं शुभदं ब्रह्ममयं पुराणम्
 ते यान्ति वैष्णवपदं ध्रुवमक्षयञ्च ॥ ७०
 ये मानवा विगतरागपरापरज्ञा
 नारायणं सुरगुहं सततं स्मरन्ति ।
 ते धीतपाण्डुरपुटा इव राजहंसाः
 संसारसागरजलस्य तरन्ति पारम् ॥ ७१
 ध्यायन्ति ये सततमच्युतमीशितारं
 निष्कलमं प्रवरपद्मदलायताक्षम् ।
 ध्यानेन तेन हतकिल्बिषवेदनास्ते
 मातुः पयोधरसं न पुनः पिबन्ति ॥ ७२
 ये कीर्तयन्ति वरदं वरपद्मनामं

शङ्खाञ्जचक्रवरचापगदासिहस्तम् ।
 पद्मालयावदनपद्मजपटपदार्यं
 नूनं प्रयान्ति सदनं मधुघातिनस्ते ॥ ७३
 शृण्वन्ति ये भक्तिपरा मनुष्याः
 संकीर्त्यमानं भगवन्तमाद्यम् ।
 ते मुक्तपापाः सुखिनो भवन्ति
 यथाऽमृतप्राशनवर्षितास्तु ॥ ७४
 तस्माद् ध्यानं स्मरणं कीर्तनं वा
 नाम्नां श्रवणं पठनां सज्जनानाम् ।
 कार्यं विष्णोः श्रद्धधानैर्मनुष्यैः
 पूजातुल्यं तत् प्रशंसन्ति देवाः ॥ ७५
 बाह्यैस्तथाऽन्तःकरणैर्विकल्पै-
 र्यो नार्चयेत् केशवमीशितारम् ।
 पुष्पैश्च पत्रैर्जलपल्लवादिभि-
 नूनं स मूढो विधितस्फोणे ॥ ७६

इति श्रीवामनपुराणे सप्तपष्ठिमोऽध्यायः ॥६७॥

अर्चन करो । उनके प्रसाद से श्रेष्ठ शाश्वती सिद्धि प्राप्त करोगे । (६८)
 हे पुत्र ! तुम तन्मना, तद्भक्त एव उनका भजन करने पाटा होकर उन्हें नमस्कार करो । उन देवेश का ही आश्रय ग्रहण कर तुम सुख प्राप्त करोगे । (६९)
 आद्य, अन्त, अजर, सर्वत्रगामी, शुभदाता, ब्रह्ममय पुराण, अन्वय हरि का अहोरात्र स्मरण करने वाले शृण्वीवासी श्रेष्ठ मनुष्य ध्रुव एवं अक्षय वैष्णव पद प्राप्त करते हैं । (७०)
 जो धीतराग एवं परापरत मनुष्य सतत सुरगुह नारायण वा स्मरण करते हैं वे धुले हुए श्वेत पत्तों या राजहंसी के सदृश संसार रूपी सागर के जल को पार कर जाते हैं । (७१)
 जो मनुष्य सतत उत्तम कमलदल तुल्य विलसित नेत्रों वाले निष्कलम, नियामक अच्युत वा ध्यान करते हैं वे उस ध्यान से पापवेदना का नाश हो जाने से पुनः माता के पयोधर वा रस नदी पान करते । (७२)

हार्थों में शङ्ख, कमल, चक्र, श्रेष्ठ घनुप, गदा एवं अस्त्र धारण करने वाले, लक्ष्मी के वदनपद्मज के धरमर, वरदाता पद्मनाभ वा कीर्तन करने वाले मनुष्य निश्चय ही मधुघुदन का लोक प्राप्त करते हैं । (७३)
 अमृतप्राशन से तृप्त होने वाले प्राणी के सदृश भक्ति-परायण मनुष्य आद्य भगवान् वा कीर्तन सुनकर पापमुक्त एवं सुखी होते हैं । (७४)
 अन्त शब्दालु मनुष्य को विष्णु वा ध्यान, स्मरण, कीर्तन अथवा पाठ करने वाले मनुष्यों से विष्णु के नामों का श्रवण करना चाहिये । देवगण पूजा के तुल्य उसरी प्रशंसा करते हैं । (७५)
 स्वयं, बाह्य तथा आन्तरिक इन्द्रियों से जो मनुष्य पुष्प, पत्र, जल एवं पल्लवादि द्वारा नियामक पिशन वा अर्चन नहीं करता निश्चय ही विधिरूपी तस्फर ने उसे छुट लिया है । (७६)

श्रीवामनपुराण में सप्तपष्ठिम अध्याय समाप्त ॥ ९७ ॥

बलिहाराच ।

भवता कथितं सर्वं समाराध्य जनार्दनम् ।
या गतिः प्राप्यते लोके तां मे वक्तुमिहाहंसि ॥ १
केनार्चनेन देवस्य प्रीतिः समुपजायते ।
कानि दानानि शस्तानि श्रीगणेशाय वगद्गुरोः ॥ २
उपवासादिकं कार्यं कस्यां विष्यां महोदयम् ।
कानि पुण्यानि शस्तानि विष्णोस्तुष्टिप्रदानि वै ॥ ३
यद्यान्यदपि कर्त्तव्यं हृदयैरनात्मैः ।
सदप्यशेषं दैत्येन्द्र ममाख्यातुमिहाहंसि ॥ ४

प्रह्लाद उवाच ।

श्रद्धानैर्मक्तिपरैर्यानुविश्य जनार्दनम् ।
पले दानानि दीयन्ते तानुचूर्णनयोगोऽध्यायान् ॥ ५
ता एव तिथयः शस्ता यास्वम्यर्च्य जगत्पतिम् ।
तच्चित्तस्त्वमयो भूत्वा उपवासी नरो भवेत् ॥ ६

पूजितेषु द्विजेन्द्रेषु पूजितः स्याज्जनार्दनः ।
एतावु द्विपन्ति ये मूढास्ते यान्ति नरकं ध्रुवम् ॥ ७
तानर्चयेन्नरो भक्त्या ब्राह्मणात् विष्णुवत्परः ।
एवमाह हरिः पूर्वं ब्राह्मणा मामकी तनुः ॥ ८
ब्राह्मणो नावमन्त्रण्यो युधो वाप्यबुधोऽपि वा ।
सोऽपि दिव्या तनुर्विष्णोस्तस्मात् तामर्चयेन्नरः ॥ ९
तान्येव च प्रशस्तानि कुसुमानि महासुर ।
यानि स्युर्वर्णशुक्लानि रसगन्धयुतानि च ॥ १०
विशेषतः प्रवक्ष्यामि पुष्पाणि त्रिवयस्तथा ।
दानानि च प्रशस्तानि माघवप्रीणनाय तु ॥ ११
जाती शताह्ना सुमनाः कुन्दं बहुपुटं तथा ।
वाणञ्च चम्पकाशोकं करवीरं च गृयिका ॥ १२
पारिभद्रं पाटला च बहुलं गिरिशालिनी ।
तिलकं च जपाकुसुमं पीतकं नागरं त्वपि ॥ १३

बलि ने कहा—आपने सप शुद्ध वर्णन किया ।
अब आप जनार्दन की आराधना करने से प्राप्त होने वाली
गति का वर्णन करें । (१)

किस प्रकार की पूजा से वासुदेव की प्रीति उत्पन्न होती
है ? जगद्गुरु को प्रसन्न करने के लिये किस प्रकार के दान
प्रदान हैं ? (२)

किस विधि में उपवास आदि करने से महान् उत्पत्ति
होती है ? कौन पुष्प पापे विष्णु के प्रीतिजनक पड़े
गये हैं ? (३)

हे दैत्येन्द्र ! आठस्यरहित होकर प्रसन्नतापूर्वक करने
योग्य अन्य कार्यों को भी पूर्णतया आप मुझे बतलायें । (४)

प्रह्लाद ने कहा—हे बलि ! बड़ा सम्पन्न और
भक्तिमुक्त होकर जनार्दन के वन्दन से जो दान दिये जाते
हैं उन्हें इतनी ही भज्य कहा है । (५)

ये ही विधियाँ प्रशस्त होती हैं जिनमें मनुष्य विष्णु की
पूजा करने के अनन्तर इनमें विषय एवं मन ध्यानर उपवास
करता है । (६)

ब्राह्मणों की पूजा करने से जनार्दन की पूजा होती है ।
उन्से द्वेष करने वाले मूढ़ व्यक्ति निश्चय ही नरक में जाते
हैं । (७)

विष्णुभक्त मनुष्य को भक्तिपूर्वक ब्राह्मणों की पूजा
करनी चाहिये । पूर्वकाल में विष्णु ने यह कहा था कि
ब्राह्मण मेरे शरीर हैं । (८)

शान्ति अथवा अशान्ति भी ब्राह्मण की अरमानना नहीं
करनी चाहिये । यह विष्णु का दिव्य शरीर होता है ।
अतः इसकी पूजा करनी चाहिये । (९)

हे महासुर ! वर्ण, रस एवं गन्ध से युक्त पुष्प ही उपवास
होते हैं । (१०)

अब मैं माघर के प्रीणनार्थ बड़े गये विशेष पुष्पों ।
विधियों एवं दानों का वर्णन करता हूँ । (११)

अनुप के अर्चनाार्थ—मालती, शशाङ्ग, सुमना, कुन्द,
बहुपुट, वाण, चम्पक, अशोक, करवीर, (कनेर), मृगिका
(जूही), पारिभद्र, पाटल, बहुल (मोरसरी), गिरिशाली,
तिलक, जया, पीतक एवं नागर नामक पुष्प प्रशस्त हैं ।

एतानि हि प्रशस्तानि कुसुमान्यच्युतार्चने ॥ १५ ॥
 सुरभीणि तथान्यानि वर्जयित्वा तु केतकीम् ॥ १४ ॥
 विल्वपत्रं शमीपत्रं पत्रं मृद्वमृगाङ्गयोः ।
 तमालामलकीपत्रं शस्तं केशवपूजने ॥ १५ ॥
 येषामपि हि पुष्पाणि प्रशस्तान्यच्युतार्चने ।
 पल्लवान्यपि तेषां स्युः पत्राण्यर्चाविधौ हरेः ॥ १६ ॥
 वीरुधां च प्रवालान् बर्हिषा चार्चयेत्तया ।
 नानारूपैश्चाम्बुभवैः कमलेन्दीवरादिभिः ॥ १७ ॥
 प्रवालैः शुचिभिः श्लक्ष्णैर्जलप्रक्षालितैर्बले ।
 वनस्पतीनामर्च्येत तथा दर्वाग्रपल्लवैः ॥ १८ ॥
 चन्दनेनातुलिम्पेत कुङ्कुमेन प्रयत्नतः ।
 उशीरपद्मकर्म्यां च तथा कालीयकादिना ॥ १९ ॥
 महिषारच्यं कणं दारु सिद्धकं सागरं सिता ।
 शङ्खं जातीफलं श्रीशै भूपानि स्युः प्रियाणि वै ॥ २० ॥
 हविषा संस्कृता ये तु यवगोधूमशालयः ।
 तिलमृदादयो माषा व्रीहयश्च प्रिया हरेः ॥ २१ ॥

इनके अतिरिक्त केतकी को छोड़कर अन्य सुगन्धित पुष्प भी प्रशस्त हैं । (१२-१४)
 केशव के पूजन में विल्वपत्र, शमीपत्र, मृद्व एवं मृगाङ्ग के पत्र, तमाल तथा आमलकी के पत्र प्रशस्त हैं । (१५)
 अच्युत के अर्चन में जिन वृक्षों के पुष्पों का प्रयोग होता है उनके पल्लव एवं पत्र भी हरिपूजनार्थ प्रशस्त होते हैं । (१६)
 वीरुधों के किसलय एवं कुञ्ज तथा जल में उत्पन्न होने वाले अनेक प्रकार के कमल एवं इन्दीवरदि से विष्णु का पूजन करना चाहिए । (१७)
 हे बर्हिष ! वनस्पतियों के चिकने, पवित्र एवं जल से प्रक्षालित कोपलों तथा दर्वाग्रपल्लवों से (विष्णु का) पूजन करना चाहिए । (१८)
 प्रयत्नपूर्वक चन्दन, कुङ्कुम, उशीर, पदाक एवं कालीयकादि से विष्णु का अनुलेपन करना चाहिए । (१९)
 श्रीविष्णु को महिष नामक कण, दारु, सिद्धक, अगरू, सिता, शङ्ख एवं जातीफल का धूप प्रिय होता है । (२०)
 घृत से संस्कृत यव, गेहूँ, शालिधान्य, तिल, मूँग उद्द और अन्न हरि को प्रिय हैं । (२१)

गोदानानि पवित्राणि भूमिदानानि चानव ।
 वस्त्रान्नस्वर्णदानानि प्रीतये मधुवातिनः ॥ २२ ॥
 माघमासे तिला देयास्तिलधेनुश्च दानव ।
 इन्धनादीनि च तथा माधवप्रीणनाथ तु ॥ २३ ॥
 फाल्गुने व्रीहयो मृदा वस्त्रकृष्णाजिनादिकम् ।
 गोविन्दप्रीणनार्थोय दातव्यं पुरुपर्षभैः ॥ २४ ॥
 चैत्रे चित्राणि वस्त्राणि शयनान्यासनानि च ।
 विष्णोः प्रीत्यर्थमेतानि देयानि ब्राह्मणेभ्यथ ॥ २५ ॥
 गन्धमाल्यानि देयानि वैशाखे सुरभीणि वै ।
 देयानि द्विजसृष्ट्येभ्यो मधुसूदनतृप्ये ॥ २६ ॥
 उदकुम्भाशुधेनुं च तालचूतं सुचन्दनम् ।
 त्रिविक्रमस्य प्रीत्यर्थं दातव्यं साधुभिः सदा ॥ २७ ॥
 उपानद्युगलं छत्रं लवणामलकादिकम् ।
 आपाठे वामनप्रीत्यै दातव्यानि तु भक्तितः ॥ २८ ॥
 घृतं च क्षीरकुम्भाश्च घृतधेनुफलानि च ।

हे अनव ! मधुसूदन को गौ, पवित्र भूमि, वस्त्र, अन्न एवं स्वर्ण के दान प्रिय होते हैं । (२२)
 हे दानव ! माघव के प्रीणनार्थ माघमास में तिल, तिलधेनु एवं इन्धनादि का दान करना चाहिए । (२३)
 श्रेष्ठ पुरुषों को गोविन्द के प्रीणनार्थ फाल्गुन मास में चावल, मूँग, वस्त्र एवं कृष्णसृग का चर्म दान करना चाहिए । (२४)
 चैत्र मास में विष्णु के प्रीत्यर्थ ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के वस्त्र, शय्या एवं आसनों का दान करना चाहिए । (२५)
 मधुपूरुष की तुष्टि हेतु वैशाख मास में श्रेष्ठ ब्राह्मणों को सुगन्धित गन्ध एवं माल्यों का दान करना दान करे । (२६)
 त्रिविक्रम की प्रीति हेतु सज्जन व्यक्ति जल का पद्दा, जलधेनु, ताल वा परा तथा सुन्दर चन्दन का चाहिए । (२७)
 वामन की प्रीति हेतु आपाठ मास में भक्तिपूर्वक जूते वा जोड़ा, छत्र, लवण एवं आमलगादि का दान करना चाहिए । (२८)
 बुद्धिमान् मनुष्य को क्षीर की प्रसन्नता हेतु शायण

श्रावणे श्रीधरप्रीत्यै दातव्यानि विपश्चिता ॥ २९
 मासि भाद्रपदे दद्यात् पायस मधुसर्पिणी ।
 हृषीकेशप्रीणनार्थं लवणं सगुडोदनम् ॥ ३०
 तिलास्तुरङ्गं वृषभ दधि ताम्रायसादिकम् ।
 प्रीत्यर्थं पचनाभस्य देयमाघपुजे नरैः ॥ ३१
 रजतं कनक दीपान् मणिमुक्ताफलादिकम् ।
 दामोदरस्य तुष्यर्थं प्रदद्यात् कार्तिके नरः ॥ ३२
 खरोष्ट्राश्वतरान् नामान् यानपुण्यमजाविकम् ।
 दातव्यं केशवप्रीत्यै मासि मार्गशिरे नरैः ॥ ३३
 प्रासादनगरादीनि गृहप्रावरणादिकम् ।
 नारायणस्य तुष्यर्थं पौषे देयानि भक्तितः ॥ ३४
 दासीदासमलङ्कारमञ्जं षड्रससंपुतम् ।
 पुरुषोत्तमस्य तुष्यर्थं प्रदद्वै सार्यकालिकम् ॥ ३५
 यद्यदिष्टतमं किञ्चिद्राप्स्यस्ति शुचि गृहे ।

मास में घृत, दुग्ध या हुम्भ, घृतयेतु एव फलों का दान करना चाहिए । (२९)

भाद्रपद मास में हृषीकेश के प्रीणनार्थं पायस, मधु, घृत, लवण एवं गुडयुक्त ओदन का दान करना चाहिए । (३०)

मनुष्यों को पचनाभ की प्रीति हेतु आश्विन मास में तिल, अन्न, वृषभ, दधि, ताम्र एवं लौह आदि का दान करना चाहिए । (३१)

मनुष्य दामोदर की तुष्टि हेतु कार्तिक मास में रजत, स्वर्ण, दीप, मणि, मुक्ता एवं फलादि का दान करे । (३२)

मनुष्यों को केशव की प्रीति हेतु मार्गशीर्ष मास में रत्न, वस्त्र, खर, हाथी, यानगाहक वस्त्र एवं भेड़ का दान करना चाहिए । (३३)

नारायण की तुष्टि हेतु पौष मास में भक्तिपूर्वक प्रासाद, नगर, गृह एवं प्रावरणादि का दान करना चाहिए । (३४)

पुरुषोत्तम की तुष्टि हेतु सभी समय दासी, दास, अलङ्कार एवं पद रत्नों से युक्त अन्न का दान करना चाहिए । (३५)

पत्रपारी देवाधिपेय की प्रीति हेतु अपना जो सर्वोपरि दण्ड हो अथवा गृह में जो पशु पवित्र हो वनया दान

तत्तद्धि देयं प्रीत्यर्थं देवदेवाय चक्रिणे ॥ ३६

यः कारयेन्मन्दिरं केशवस्य
 पुण्याल्लोकान् स जयेच्छाश्वतान् वै ।

दत्त्वारामान् पुष्पफलाभिपन्नान्
 भोगान् भुङ्क्ते कामतः श्लाघनीयान् ॥ ३७

पितामहस्य पुरतः कुलान्यष्टौ तु यानि च ।

तारयेदात्मना सार्धं विष्णोर्मन्दिरकारकः ॥ ३८

हमाश्च पितरो दैत्य गाथा गायन्ति योगिनः ।

पृरतो यदुत्सिहस्य ज्यामघस्य तपस्विनः ॥ ३९

अपि नः स कुले कश्चिद् विष्णुभक्तो भविष्यति ।

हरिमन्दिरकर्ता यो भविष्यति शुचिव्रतः ॥ ४०

अपि नः सन्ततौ जायेद् विष्णुवालयविलेपनम् ।

सम्मार्जनं च धर्मात्मा करिष्यति च भक्तितः ॥ ४१

अपि नः सन्ततौ ज्ञातो ध्वजं केशवमन्दिरे ।

करना चाहिए । (३६)

केशव का मन्दिर बनवाने वाला मनुष्य शाश्वत पुण्य-लोकों को प्राप्त करता है । पुष्प एवं फलों से युक्त उद्यानों का दान करने वाला इच्छापूर्वक श्लाघ्य भोगों का उपभोग करता है । (३७)

विष्णु के मन्दिर का निर्माण करवाने वाला पुरुष अपने पितामह से आगे वे आठ बुद्धपुरुषों का उद्धार करता है । (३८)

हे दैत्य ! यदुभ्रेष्ठ योगयुक्त तपस्वी ज्यामघ के सम्मुख पितरों ने इस गाथा का गान किया था । (३९)

क्या हमारे कुल में पवित्र प्रवधारी ऐसा कोई विष्णु भक्त उत्पन्न होगा जो हरि का मन्दिर बनवायेगा ? (४०)

क्या हमारे सन्तति में कोई विष्णुमन्दिर में भक्ति-पूर्वक लेप और श्राद्ध देने वाला धर्मात्मा उत्पन्न होगा ? (४१)

क्या हमारी सन्ततियों में ऐसा कोई होगा जो केशव के मन्दिर में ध्वजा दान करेगा एवं देवदेवरत्न को

दास्यते देवदेवाय दीपं पुष्पातुलेपनम् ॥ ४२ ॥
 महापातकयुक्तो वा पातकी चोपपातकी ।
 विष्णुकृतपापो भवति विष्णुशयतनचित्रकृत् ॥ ४३ ॥
 इत्थं पितृणां वचनं श्रुत्वा नृपतिसत्तमः ।
 चकारायतनं भूम्यां स्वयं च लिम्पातासुर ॥ ४४ ॥
 विभूतिभिः वैशवस्य वैशवाराधने रतः ।
 नानाधातुविकारैश्च पञ्चवर्णैश्च चित्रकैः ॥ ४५ ॥
 ददौ दीपानि विधिवद् वासुदेवालये वले ।
 सुगन्धितैलपूर्णानि घृतपूर्णानि च स्वयम् ॥ ४६ ॥
 नानावर्णा वैजयन्त्यो महारजनरञ्जिताः ।
 मञ्जिष्ठा नवरङ्गीयाः श्वेतपाटलिकाश्रिताः ॥ ४७ ॥
 आरामा विविधा ह्यद्याः पुष्पाढ्याः फलशालिनः ।
 लतापल्लवसंलब्धा देवदारुभिराहृताः ॥ ४८ ॥
 क्वाश्रिताश्च महामञ्चाधिष्ठिताः कुश्लैर्जनैः ।
 पौरोगवविधानज्ञै रत्नसंस्कारिभिर्द्विष्टैः ॥ ४९ ॥
 तेषु नित्यं प्रपूज्यन्ते यतयो ब्रह्मचारिणः ।

दीप, पुष्प और अनुलेपन प्रदान करेगा ? (४२)
 महापातकी, पातकी अथवा उपपातकी व्यक्ति विष्णु
 मन्दिर को चित्रित कर पापमुक्त हो जाता है । (४३)
 हे असुर ! पितृगण के इस प्रकार के वचन को सुनकर
 उस नृपश्रेष्ठ ने पृथ्वी पर मन्दिर निर्माण करवाया एवं
 स्वयं उसमें लेप करता था । (४४)
 यह केशव की विभूतियों, नाना प्रकार की धातुओं से
 निर्मित वस्तुओं तथा पाँच वर्ण के चित्रकर्म से केशव की
 पूजा करने लगा । (४५)
 हे बलि ! उसने वासुदेव के मन्दिर में स्वयं विधिपूर्वक
 सुगन्धित तैल एवं घृत से पूर्ण दीप का दान किया । (४६)
 (उसने विष्णु मन्दिर में) बसुम्भ मञ्जिष्ठा के रत्न में
 रञ्जित श्वेत एवं रक्त वर्ण के तथा नर रङ्गों वाले विविध
 प्रकार के पञ्जों का आरोपण किया । (४७)
 (उसने) पुष्पों, फलों, लतापल्लवों तथा देवदारु
 आदि विविध प्रकार के वृक्षों से पूर्ण उद्यानों का निर्माण
 कराया । (४८)
 (उसने) पानशालाएँ के विधान को जानने वाले
 एवं रत्नसंस्कार करने वाले अत्यन्त दुःशल पुरुषों से
 अधिष्ठित बड़े-बड़े मन्त्रियों का निर्माण कराया । (४९)
 उनमें प्रतिदिन यतियों, ब्रह्मचारियों, ज्ञानसम्पन्न

श्रोत्रिया ज्ञानसम्पन्ना दीनान्धविकलादयः ॥ ५० ॥
 इत्थं स नृपतिः कृत्वा श्रद्धधानो जितेन्द्रियः ।
 ज्यामघो विष्णुनिलयं गत इत्यनुशुश्रुमः ॥ ५१ ॥
 तमेव चाद्यापि वले मार्गं ज्यामघकारितम् ।
 प्रजन्ति नरशार्दूल विष्णुलोकजिगीषवः ॥ ५२ ॥
 तस्मात् त्वमपि राजेन्द्र कारयस्वालयं हरेः ।
 तमर्चयस्व यत्नेन ब्राह्मणांश्च बहुश्रुतान् ।
 पौराणिकान् विशेषेण सदाचाररताञ्चूचीन् ॥ ५३ ॥
 वासोभिर्भूषणै रत्नैर्गोभिर्भूकनकादिभिः ।
 विभेषे सति देवस्य ग्रीणनं कुरु चक्रिणः ॥ ५४ ॥
 एवं क्रियायोगरतस्य तेऽथ
 नूनं सुरारिः शुभदो भविष्यति ।
 नरा न सीदन्ति वले समाश्रिता
 विभुं जगन्नाथमनन्तमच्युतम् ॥ ५५ ॥
 पुलस्त्य उवाच ।
 इत्येवमुक्त्वा वचनं दितीश्वरो

श्रोत्रियों, दीनों, अन्धों एवं विन्तेन्द्रिय पुरुषों का
 पूजन होता था । (५०)
 हम लोगों ने सुना है कि ऐसा कार्य करने से ब्रह्मालु
 एवं जितेन्द्रिय राजा ज्यामघ विष्णु लोक गये । (५१)
 हे बलि ! विष्णुलोक जाने की कामना वाले पुरुष आज
 भी ज्यामघ द्वारा प्रदर्शित उसी मार्ग का अवलम्बन करते
 हैं । (५२)
 अतः हे राजेन्द्र ! तुम भी हरि का मन्दिर बननाओ
 एवं यत्नपूर्वक उन हरि, बहुश्रुत ब्राह्मणों एवं विरोध रूप से
 सदाचारपरायण पवित्र पौराणिकों का अर्चन करो । (५३)
 ऐश्वर्य रहने पर वस्त्र, आभूषण, रत्न, गौ, पृथ्वी एवं
 स्वर्गादि द्वारा चक्रधर देव को प्रसन्न करो । (५४)
 तुम्हारे इस प्रकार की क्रिया करने में रत
 रहने पर सुरारि निश्चय ही तुम्हारा कल्याण करेंगे । हे
 बलि ! अनन्त अच्युत विष्णु जगन्नाथ का आश्रय महण
 करने वाले व्यक्ति दुःखी नहीं होते । (५५)
 पुलस्त्य ने कहा—बलि से इस प्रकार सत्य एवं श्रेष्ठ
 वचन कहने के उपरान्त पूर्णकाम, हरिचरणानुरागी

वैरोचनं सत्यमनुत्तमं . हि ।
 संपूजितस्तेन विमुक्तिमाययौ
 संपूर्णकामो हरिपादभक्तः ॥ ५६
 गते हि वस्मिन् मुदिते पितामहे
 बलेश्चै मन्दिरमिन्दुवर्णम् ।
 महेन्द्रशिल्पप्रवरोऽथ केशवं
 स कारयामास महामहोयान् ॥ ५७
 स्वयं स्वभार्यासहितश्चकार
 देवालये मार्जनलेपनादिकाः ।
 क्रिया महात्मा यवशर्करायां
 बलिं चकाराप्रतिमां मधुद्रुहः ॥ ५८
 दीपप्रदानं स्वयमायताक्षी
 विन्ध्यावली विष्णुगृहे चकार ।
 नेपं स धर्म्यश्रवणं च धीमान्
 पौराणिकैर्विप्रवरैरकारयत् ॥ ५९
 तथाविधस्यासुरपुंगवस्य
 धर्म्यं सुमार्गं प्रतिमंस्थितस्य ।
 जगत्पतिर्दिव्यवपुर्जनार्दन-
 स्तस्यै महात्मा बलिरक्षणाय ॥ ६०

सूर्पायुताभं . मुसलं , प्रगृह्य
 निघ्नन् स दुष्टानरियुथपालान् ।
 द्वारि स्थितो न प्रददौ प्रवेशं
 प्राकारगुप्ते बलिनो गृहे तु ॥ ६१
 द्वारि स्थिते घातरि रक्षपाले
 नारायणे सर्वगुणाभिरामे ।
 प्रासादमध्ये हरिमीशितार-
 मभ्यर्चयामास सुरर्षिमुत्थयम् ॥ ६२
 स एवमास्तेऽसुरराट् बलिस्तु
 समर्चयन् वै हरिपादपङ्कजौ ।
 सस्मार नित्यं हरिभपितानि
 स तस्य जातो विनयाङ्कशस्तु ॥ ६३
 इदं च वृत्तं स पपाठ दैत्यराट्
 स्मरन् सुवाक्यानि गुरोः शुभानि ।
 तथ्यानि पथ्यानि परत्र चेह
 पितामहस्येन्द्रसमस्य वीरः ॥ ६४
 ये वृद्धवाक्यानि समाचरन्ति
 श्रुत्वा दुरुक्तान्यपि पूर्वतस्तु ।
 क्लिग्धानि पश्चात्तवनीतशुद्धा

दितीश्वर प्रह्लाद बलि द्वारा की गयी पूजा स्वीकार कर
 विमुक्तिमार्गीगामी हो गए । (५६)

प्रसन्न पितामह प्रह्लाद के चले जाने पर
 बलि का भवन चन्द्रयन् प्रकाशित होने लगा। महामहिम
 उस (बलि ने) विधर्मों से केशव का मन्दिर
 बनवाया । (५७)

बलि स्वयं अपनी पत्नी के साथ उस देवालय में
 मार्जन, लेपन आदि क्रियाएँ करने लगा। मधुसूदन के
 लिए महात्मा बलि ने जो एवं शर्करा आदि का उत्तम
 नेत्र्य अर्पित किया । (५८)

विशालाक्षी विन्ध्यावली स्वयं विष्णुमन्दिर में दीपदान करने
 लगी। बुद्धिमान् बलि पुराणवेद्या श्रेष्ठ ब्राह्मणों से धर्मयुक्त
 प्रवचन करवाते थे । (५९)

उस प्रकार के धर्ममार्ग में स्थित असुरश्रेष्ठ बलि के
 रक्षणार्थ दिव्यशरीरधारी जगत्पति महात्मा जनार्दन
 स्थित हुए । (६०)

वे द्वार पर रहते हुए अयुत सुर्यों के तुल्य आभा वाले
 मुसल को लेकर दुष्ट शत्रुओं के युथपतियों का विनाश
 करते एवं प्राणों से रक्षित बलि के गृह में किसी को
 प्रवेश नहीं करने देते थे । (६१)

सर्वगुणाभिराम विधाता नारायण के द्वारपाल होने
 पर बलि अपने प्रासाद के मध्य निरन्तर सुरों एवं ऋषियों
 में सर्वश्रेष्ठ नियामक हरि का अर्चन करने लगा । (६२)

असुरराज बलि इस प्रकार हरि के पादपङ्कजों का पूजन
 करते हुए नित्य हरि के चरणों को स्मरण करता था ।
 यह (नियम) उसके लिये विनयाङ्कश हो गया । (६३)

इन्द्रउत्थ श्रेष्ठ अपने पितामह के कल्याणमद
 इस लोक तथा परलोक में हितकारी एवं तथ्य सुन्दर
 चरणों का स्मरण करते हुए यह वीर दैत्यराज इस वृत्त
 का पाठ करता था । (६४)

पूर्व में बटोरता पूर्वक कहे गए पं बाद में नवनीत
 के सटन विनय एवं शुद्ध वृद्धवाक्यों का भयग कर

॥ मोदन्ति ते नात्र विचारमस्ति ॥ ६५
 आपद्भ्रुजंगदपस्य मन्त्रहीनस्य सर्वदा । -
 वृद्धवाक्यौषधा नूनं कुर्वन्ति किल निर्विषम् ॥ ६६
 वृद्धवाक्यामृत पीत्वा तदुक्तमनुमान्य च ।
 या तृप्तिर्नायते पुसा सोमपाने कुतस्तथा ॥ ६७
 आपत्तौ पतिताना येषा वृद्धा न सन्ति शास्वारः ।
 ते शोच्या बन्धूना जीवन्तोऽपीह मृततुल्याः ॥ ६८

इति श्रीवामनपुराणे अष्टपठितमोऽध्याय ॥ ६८ ॥

॥ इति त्रिविक्रमचरित समाप्तम् ॥

६६

पुलस्त्य उवाच ।

एतन्मया पुण्यतमं पुराण

तुभ्य तथा नारद कीर्तित वै ।

श्रुत्वा च कीर्त्या परया समेतो

तदनुकूल आचरण करने वाले निरसन्देह आनन्दित होते हैं ।

(६५)

वृद्धवाक्यरूपी औषधि आपत्ति रूपी सर्प से दक्षित मन्त्रहीन पुरुष को निरसन्देह विपराहित कर देती है ।

(६६)

वृद्धवाक्यरूपी अमृत को पीने पर उनके कथनानुसार आचरण करने से मनुष्यों को जो तृप्ति होती है वैसी सोमपान में कहाँ है ?

(६७)

आपत्ति में पड़े हुए त्रिन मनुष्यों का शासन वृद्धजन नहीं करने वे बन्धुओं के लिये शोचनीय तथा जीवित ही मृतक तुल्य होते हैं ।

(६८)

श्रीवामनपुराण म अष्टपठितो अध्याय समाप्त ॥ ६८ ॥

॥ त्रिविक्रम चरित समाप्त ॥

६९

पुलस्त्य ने कहा—हे नारद । मैंने तुमसे इस अत्यन्त पवित्र पुराण का वर्णन किया । इससे सुनने से मनुष्य परम कीर्ति एवं भक्ति-युक्त होकर विष्णुलोक को जाना है ।

(१)

[४६९]

आपद्ग्राह्यृहीताना वृद्धाः सन्ति न पण्डिताः ।
 येषा मोक्षयितारो वै तेषां शान्तिर्न विद्यते ॥ ६९
 आपज्जलनिमग्नाना द्विपता व्यसनोर्मिभिः ।
 वृद्धवाक्यैर्विना नूनं नैवोच्चार कथयन् ॥ ७०
 तस्माद् यो वृद्धवाक्यानि मृशुयाद् विदधाति च ।
 स सद्यः सिद्धिमाप्नोति यथा वैरोचनो बलिः ॥ ७१

भक्त्या च विष्णोः पदमभ्युपैति ॥१

यथा पापानि पूयन्ते गङ्गावारिविगाहनान् ।

तथा पुराणश्रवणाद् दुरिताना विनाशनम् ॥ २

न तस्य रोगा जायन्ते न त्रिष चाभिचारिकम् ।

आपत्तिरूपी माह से प्रहीत जिन व्यष्टियों को वृद्ध पण्डित लोग मुक्त करने वाले नहीं होते उन्हें शान्ति की प्राप्ति नहीं होती ।

(६९)

आपत्तिरूपी जल में निमग्न एवं व्यसनरूपी लहरा से आच्छादित हो रहे पुरुषों का उद्धार वृद्धवाक्य से अतिरिक्त अन्य किसी भी प्रकार नहीं हो सकता ।

(७०)

अतः वृद्धवाक्यों को सुनन एवं तदनुसार आचरण करने वाला मनुष्य विरोचन-पुत्र बलि के सदृश शीघ्र सिद्धि प्राप्त करता है ।

(७१)

निस प्रकार गंगानल में स्नान करने से मारे पाप धुल जाते हैं, उसी प्रकार पुराण का श्रवण करने से समस्त पाप नष्ट हो जाते हैं ।

(२)

हे ब्रह्मन् ! वामन पुराण का श्रवण करने वाले मनुष्य के

शरीरे च कुले ब्रह्मन् यः शृणोति च वामनम् ॥ ३
 शृणोति नित्यं विधिवच्च भक्त्या
 संपूजयन् यः प्रणतश्च विष्णुम् ।
 स चाश्वमेधस्य सदक्षिणस्य
 फलं समग्रं परिहीनपापः ॥ ४
 प्राप्नोति दत्तस्य सुवर्णभूमे-
 रश्वस्य गोनागरश्वस्य चैव ।
 नारी नरश्चापि च पादमेकं
 शृण्वन् शुचिः पुण्यतमः पृथिव्याम् ॥ ५
 स्नाने कृते तीर्थवरे सुपुण्ये
 गङ्गाजले नैमिषपुष्करे वा ।
 फोकाह्वरे यत् प्रवदन्ति विप्राः
 प्रयागमासाव च माघमासे ॥ ६
 स तत्फलं प्राप्य च वामनस्य
 संकीर्तयन् नान्यमनाः पदं हि ।
 गच्छेन्मया नारद तेऽथ चौकृतं
 यद् राजपुत्रस्य फलं प्रयच्छेत् ॥ ७
 यद् भूमिलोके सुरलोकलभ्ये

शरीर एवं कुल मे रोग तथा अभिचार-कर्म जनित विप का प्रमाद्य नहीं होता । (३)

नम्रतापूर्वक विष्णु का पूजन करते हुए भक्तिपूर्वक विधिवत् नित्य इस पुराण का श्रवण करने वाले मनुष्य के पाप मट हो जाते हैं एवं उसे दक्षिणासहित अश्वमेध यज्ञ करने तथा सुवर्ण, भूमि, अश्व, गौ, हाथी एवं रथ के दान का फल प्राप्त होता है । इस (पुराण) का एक श्रवण भी श्रवण करने वाला पुरुष तथा स्त्री पृथ्वी मे शुचिता युक्त एवं अत्यन्त पुण्यवान् हो जाता है । (४-५)

विप्रागण अत्यन्त पवित्र भेष्ट तीर्थ के जल, गङ्गाजल, नैमिषारण्य, पुष्कर, कोकापुर एवं माघमास में प्रयाग में जाकर स्नान करने से जिस फल की प्राप्ति का होना बतलाते हैं, अनन्यमन से वामनपुराण के एक पद का कीर्तन करते हुए गमन करने वाले पुरुष को वही फल प्राप्त होता है । हे नारद ! मैंने आज तुमसे वह पुराण क्या है जो राजभूय यज्ञ का फल प्रदान करता है । (६-७)

महत्सुखं प्राप्य नरः समग्रम् ।
 प्राप्नोति चास्य श्रवणान्महर्षेण
 सौत्रामणेर्नोस्ति च संशयो मे ॥ ८
 रत्नस्य दानस्य च यत्फलं भवेद्
 यत्सूर्यम्भ्य चेन्दोर्ग्रहणे च राहोः ।
 अन्नस्य दानेन फलं यथोक्तं
 बुभुक्षिते विप्रवरे च साग्निके ॥ ९
 दुर्मिक्षसंपीडितपुत्रभार्थे
 यामी सदा पोषणतत्परे च ।
 देवाग्निविप्रपिररते च पित्रोः
 शृश्रूपके भ्रातरि ज्येष्ठसाम्ने ।
 यत्तत्फलं संप्रवदन्ति देवाः
 स तत् फलं लभते चास्य पाठात् ॥ १०
 चतुर्दशं वामनमाहुराद्यं
 श्रुते च यस्याध्वर्याय नाशम् ।
 प्रयान्ति नास्त्यत्र च संशयो मे
 महान्ति पापान्यपि नारादाशु ॥ ११
 पाठात् संश्रवणाद् विप्र श्रावणादपि कस्यचित् ।

हे महर्षि ! मुझे इसमें सन्देह नहीं है कि इसका श्रवण करने से मनुष्य पृथ्वी एवं सुरलोक में लपलप होने योग्य समस्त महान् सुखों को प्राप्त कर सौत्रामणि नामक यज्ञ का फल प्राप्त करता है । (८)

देवगण रत्नदान, राहु द्वारा सूर्यग्रहण एवं चन्द्र का ग्रहण होने के समय किये गए दान, भूरे अग्निहोत्री भेष्ट ब्राह्मण को दिये गये अन्नदान, दुर्मित्र से पीड़ित पुत्र, भार्या एवं वाग्ध्व के पोषण में उत्तर पुरुष को दिये गए दान, देवता, अग्नि एवं विप्र की परिचर्या में लग्न व्यक्ति को दिये गए दान, माता पिता, तथा ज्येष्ठ भ्राता को दिए गये दान से जिस फल का होना बतलाते हैं वह फल मनुष्य इसका पाठ करने से प्राप्त कर लेता है । (९-१०)

हे नारद ! वामनपुराण शीघ्रदर्शो भेष्ट पुराण है । इसमें मुझे सन्देह नहीं है कि इसका श्रवण करने से पाप समूह एवं महापाप भी क्षीय नष्ट हो जाते हैं । (११)

सर्वपापानि नश्यन्ति वामनस्य सदा मुने ॥ १२
 इदं रहस्य परमं तवोषतं
 न वाच्यमेतद्धरिभक्तिवर्जिते ।
 द्विजस्य निन्दारतिहीनदक्षिणे
 सहेतुवाक्याद्युपपापसत्त्वे ॥ १३
 नमो नमः कारण वामनाय नित्यं यो वदेन्नियतं द्विजः ।

तस्य विष्णुः पदं मोक्षं ददाति सुरपूजितः ॥ १४
 वाचकाय प्रदातव्य गोभूस्वर्णविभूषणम् ।
 वित्तशास्त्रं न कर्तव्यं कुर्वन् श्रवणनाशकम् ॥ १५
 त्रिसध्वं च पठन् मृण्वन् सर्वपापप्रणाशनम् ।
 असूयारहितं विप्र सर्वसम्पत्प्रदायकम् ॥ १६

इति श्रीवामनपुराणे एकोनसप्ततितमोऽध्याय ॥६९॥

॥ इति श्रीवामनपुराणं समाप्तम् ॥

हे मुनि । हे विप्र । वामन पुराण का पाठ करने,
 सुनने एवं सुनाने से सर्वदा समस्त पाप नष्ट होते
 हैं । (१२)
 मैंने तुमसे यह परम रहस्य तत्त्व कहा है इसे
 हरिभक्तिरहित व्यक्ति, ब्राह्मण की निन्दा करने वाले आचार-
 हीन तथा तर्कशील पापी मनुष्य के सम्मुख नहीं
 कहना चाहिए । (१३)
 'नमो नमः कारणवामनाय' इस मन्त्र का नियमपूर्वक
 जप करने वाले द्विज को सुरपूजित विष्णु मोक्ष पद प्रदान

करते हैं । (१४)
 इस पुराण के वाचक को गो, पृथ्वी एवं स्वर्णभूषण
 प्रदान करना चाहिए । इसमें वित्तशास्त्र नहीं करना
 चाहिए । वर्योक्ति ऐसा करने से श्रवण के फल का नाश
 हो जाता है । (१५)
 हे विप्र । तीनों सध्याओं में असूयारहित होकर
 सर्वपापनाशक इस पुराण का पाठ करने एवं श्रवण करने
 से सभी प्रकार की सम्पत्तियाँ प्राप्त होती हैं । (१६)

श्रीवामनपुराण में अन्तर्हृत्तमो अध्याय समाप्त ॥६९ ॥

वामनपुराण समाप्त

परिशिष्ट APPENDI

वामनपुराण के विषयों के साथ अन्य पुराणों के तथा रामायण महाभारत के समान विषयों का निर्देश SUBJECT-CONCORDANCE OF THE VĀMANA PURĀNA WITH THE OTHER PURANAS AND THE EPICS

[Some of the Puranic topics of the Vāmana Purana are also met with in the other Purānas, Harivamśa and the two Epics. The contents of these common topics in these works are generally similar, and their concordance also helps in deciding a text. There are however certain common topics in the Vāmana and the other Puranas which differ in their contents, for example, the story of the birth of Mahisa given in the Nāgara-Khaṇḍa of the Skanda Purana differs from the story given in the Vāmana. According to the Vāmana Purāna Mahisa is the son of the Asura Ramba and was born in the form of a white buffalo from a she buffalo (Mahiṣ) ('अमोघतद सुतं पुत्रं महिषं कामरूपिनं' Vām P 18 60) while in the Skanda Purāna (VI 119 4 14) Mahisa is said to be the son of Hiranyākṣa, his name was Citrasama, but owing to the curse of Sage Durvāsas his handsome form was changed to an ugly form of a buffalo. Such common topics differing in their contents as found in some of the Purānas are also noted here in this Concordance for the sake of a comparative study of such common topics. This concordance may not be treated as exhaustive.]

The topics are given here in the order of the Adhyāyas of the Critical Edition of the Vāmana Purāna. The other Puranas are referred to, below that in the alphabetical order in two columns, and then the Rāmāyaṇa, Mahābhārata and the Harivamśa are referred to. In the beginning, the scheme of reference is also given.]

[वामन पुराण के कुछ विषय अन्य पुराणों में तथा रामायण-महाभारत में भी पाये जाते हैं। यहाँ इन सभी समान विषयों का एकत्र निर्देश किया गया है। इस साम्य निर्देश के द्वारा पाठनियों में सहमति मिलती है। कभी कभी इन समान विषयों में व्याख्यादि के प्रसङ्ग में विभिन्न पुराणों में भेद परिलक्षित होता है, जैसे स्वयं पुराण के नागर खण्ड (अ० ११६, श्लो० ४-१७) में महिषासुर की उत्पत्ति की कथा वामन, पुराण की उक्त कथा से भिन्न है। किन्तु ऐसे विषय भी यहाँ तुलनात्मक अध्ययन की दृष्टि से दिए गये हैं। तथापि यह संवाद सर्वथा पूर्ण है ऐसा नहीं मानना चाहिए।]

यहाँ विषयों का क्रम वामन पुराण के पाठ्यनीतिगत संस्करण के अध्यायों के क्रमानुसार है। उनके नीचे अन्य पुराणों के निर्देश व्याख्यादि के क्रम में हैं जिनके अनन्तर रामायण, महाभारत तथा हरिवंश के निर्देश हैं। इस साम्य निर्देश में प्रयुक्त स्वयन्निर्देश की पद्धति की प्रारम्भ में व्याख्या कर दी गई है।]

Scheme of Reference

1 The reference figures for the main divisions adhyāyas and the ślokas are given in Devanāgarī numerals. But in the case of the अथर्वपुराण, पितृपुराण, and the स्कन्दपुराण the reference figures for the subdivisions (other than the adhyāyas) are given in the International forms of the numerals.

2 The number of a śloka referred to is printed in smaller type.

3 In the case of the अथर्वपुराण, ब्रह्मपुराण, मत्स्यपुराण, मार्कण्डेयपुराण, वराहपुराण and वामनपुराण there are two reference numerals, the first denotes the number of the adhyāya and the second the number of the śloka referred to.

Abbreviations and Reference Details

(प्रयुक्त सकेतों की व्याख्या तथा निर्देश विवरण)

<p>अग्नि = अग्निपुराण, Published by (Pub) आनन्दाश्रम, पूना [Ref अध्याय श्लोक]</p> <p>कूर्म = कूर्मपुराण, Pub वेङ्कटेश्वरप्रेस मुम्बई [Ref अर्थ (१ पूर्वार्ध, २ उत्तरार्ध) अध्याय श्लोक]</p> <p>गरुड = गरुडपुराण Pub जीवानन्द, कलकत्ता [Ref खण्ड (१ पूर्वखण्ड, २ उत्तरखण्ड called प्रेतकल्प) अध्याय श्लोक]</p> <p>देवी भा = देवीभागवतपुराण, Pub मोर (गुरुमण्डल मध्यमाला), कलकत्ता [Ref रक्त अध्याय श्लोक]</p> <p>गार = गारुडपुराण, Pub वेङ्कटेश्वरप्रेस, मुम्बई Ref भाग (१ पूर्वभाग, २ उत्तरभाग) अध्याय श्लोक]</p> <p>पद्म = पद्मपुराण Pub मोर, कलकत्ता (= वेङ्कटेश्वर प्रेससंस्करण) [Ref खण्ड अध्याय श्लोक]</p> <p>Khandas -</p> <p style="padding-left: 2em;">१ सृष्टिखण्ड (= आनन्दाश्रम, ५) २ भूमिखण्ड (= आनन्दाश्रम, २) ३ स्वर्ग खण्ड (= आनन्दाश्रम, १ आविखण्ड) ४ ब्रह्म खण्ड (= आनन्दाश्रम, ३) ; ५ पातालखण्ड (= आनन्दाश्रम, ४) ; ६ उत्तरखण्ड (= आनन्दाश्रम, ६)</p> <p>मद्म = मद्मपुराण, Pub मोर, कलकत्ता [Ref खण्ड अध्याय श्लोक]</p> <p>Khandas -</p> <p style="padding-left: 2em;">१ ब्रह्मखण्ड २ प्रकृतिकण्ड, ३ गण पतिकण्ड, ४ श्रीकृष्णजन्मखण्ड</p> <p>प्रज्ञापद्म = प्रज्ञापद्मपुराण, Pub वेङ्कटेश्वरप्रेस, मुम्बई [Ref भाग (१ पूर्वभाग, २ मध्यभाग ३ उत्तरभाग) अध्याय श्लोक]</p> <p>भविष्य = भविष्यपुराण; Pub. वेङ्कटेश्वरप्रेस, मुम्बई, [Ref पर्व अध्याय श्लोक]</p>	<p>Parvans -</p> <p style="padding-left: 2em;">१ ब्रह्मपर्व २ मध्यमपर्व [१ प्रथम भाग, २ द्वितीय भाग ३ तृतीय भाग] ; ३ प्रतिसर्गपर्व [१ प्रथम खण्ड, २ द्वितीय खण्ड, ३ तृतीय खण्ड ४ चतुर्थ खण्ड] ; ४ उत्तरपर्व</p> <p>भाग = भागवतपुराण. Pub गीताप्रेस, गोवरपुर [Ref स्कन्ध अध्याय श्लोक]</p> <p>मत्स्य = मत्स्यपुराण; Pub मोर, कलकत्ता [Ref अध्याय श्लोक]</p> <p>महाभा = महाभारत, Pub चित्रशाला प्रेस, पूना [Ref पर्व अध्याय श्लोक]</p> <p>Parvans -</p> <p style="padding-left: 2em;">१ आदि, २ सभा, ३ वन, ४ विराट, ५ उद्योग ६ भीष्म, ७ द्रोण, ८ कर्ण, ९ शल्य, १० सौमिक, ११ स्त्री, १२ शान्ति १३ अनुशासन १४ आश्वमेधिक, १५ आश्रमवासिक, १६ मौसल, १७ महा प्रस्थानिक १८ समाधिखण्ड</p> <p>मार्क = मार्कण्डेयपुराण, Pub जीवानन्द, कलकत्ता [Ref अध्याय श्लोक]</p> <p>रामा = रामायण Printed by M L G Press मद्रास, 1950. [Ref खण्ड सर्ग श्लोक]</p> <p>Kandas -</p> <p style="padding-left: 2em;">१ वाल, २ अयोध्या, ३. अरण्य, ४. किष्किन्ध्या, ५ सुन्दर, ६ युद्ध, ७ उत्तर.</p> <p>लिङ्ग = लिङ्गपुराण, Pub मोर, कलकत्ता [Ref अर्थ (१ पूर्वार्ध, २ उत्तरार्ध) अध्याय श्लोक]</p> <p>वराह = वराहपुराण Bibliotheca Indica Series Pub Asiatic Society of Bengal, कलकत्ता 1897 [Ref अध्याय श्लोक]</p> <p>वाम = वामनपुराण षाट्समाधिकारसंस्करण (Critical Edition) Pub सर्वभारतीयकाश्मिरान्यास, रामनगर, धारणसी, 1967 Ref अध्याय श्लोक]</p>
---	--

षासु. = षासुपुराण ; Pub. वेङ्कटेश्वरप्रेस, मुम्बई
[Ref. अर्थ (१. पूर्वार्थ ; २. उत्तरार्थ) .
अध्याय श्लोक]

विष्णु = विष्णुपुराण ; Pub. गीताप्रेस, गोरखपुर
[Ref. अंदा अध्याय. श्लोक].

विष्णु-ध. = विष्णुधर्मोत्तरपुराण ; Pub. वेङ्कटेश्वरप्रेस,
मुम्बई. [Ref. खण्ड (१. प्रथमखण्ड २. द्वि-
तीयखण्ड ; ३. तृतीयखण्ड ४. अध्याय. श्लोक]

शिव. = शिवपुराण ; Pub. वेङ्कटेश्वरप्रेस, मुम्बई.
[Ref. संहिता अध्याय श्लोक]

Saṃhitās :-

१ विद्येश्वर-संहिता ; २. रुद्र-संहिता [-1.
सृष्टिखण्ड ; २. सती-खण्ड ; ३. पार्वती-खण्ड ;
४. कुमार-खण्ड ; ५. मुद्र-खण्ड], ३. रुद्र-
संहिता ; ४. कोटिकण्ड-संहिता ; ५. उमा-
संहिता. ६. कैलास-संहिता, ७. वायवीय-संहिता
[-1. पूर्वभाग ; २. उत्तरभाग].

खण्ड = खण्डपुराण ; Pub. मोर, (fortified
five Khāṇḍas. १-२. खण्ड — माहेश्वर-
संहिता ; ब्रह्म- ; काशी ; अश्वी-) and वेङ्क-
टेश्वरप्रेस (for the last two Khāṇḍas,
६-७ खण्ड — नागर- ; प्रभास-). [Ref. खण्ड
अध्याय. श्लोक].

Khāṇḍas :-

१. माहेश्वर-खण्ड [- 1. कैदारखण्ड ; २.
वीनारिवातखण्ड ; ३. अस्ताचलनाहात्म्य—
(i) पूर्वार्थ, (ii) उत्तरार्थ] ;

२. वैष्णव-खण्ड [-1. वेङ्कटाचलनाहात्म्य ; २.
पुरुषोत्तमक्षेत्रनाहात्म्य ३. बदरिहात्म्यनाहात्म्य,
४. धार्चिकमात्मनाहात्म्य, ५. मार्गशीर्षनाहात्म्य ;
६. भागवतनाहात्म्य ; ७. वैशाखनाहात्म्य । ८.
अयोध्यानाहात्म्य ; ९. षासुदेवनाहात्म्य]

३. ब्राह्म-खण्ड [-1. सेतुनाहात्म्य ; २. धर्मा-
रण्यखण्ड ; ३. चानुकार्यनाहात्म्य ; ४. ब्राह्मो-
त्तरखण्ड]

४. काश-खण्ड (पूर्वार्थ = अ० १-२० ;
उत्तरार्थ = अ० २१-१००)

५. अश्वी-खण्ड [-1. अश्वीक्षेत्रनाहात्म्य,
२. चतुर्शीतिलिङ्गनाहात्म्य ३. रेवाखण्ड]

६. नागरखण्ड

७. प्रभास-खण्ड [-1. प्रभासक्षेत्रनाहात्म्य,
२. वसुधापथ (गिरनार) क्षेत्रनाहात्म्य ; ३. अर्जुन-
खण्डनाहात्म्य, ४. द्वापयाननाहात्म्य]

हरिवं = हरिवंश . Pub. विप्रशाखाप्रेस, पूना. [1. १.
पर्व. अध्याय. श्लोक]

Parvans :-

१ हरिवंश-पर्व २. विष्णु पर्व ३. भविष्य-
पर्व

यसन्तवर्षान् (Description of Spring)—वाम ६ ६-२१

तिव २ [२]. २१ २६-३६

कामदाह (Burning of Kāma-deva)—वाम ६ २४-१०७

- ब्रह्म. १८ १०-२१, २७ २ [7]. ८ ८-१६; २७
- ब्रह्मवै. ४ ३९, ४२-६४ ५ [1]. ४, ५-६, ४०;
- लिङ्ग. १०१, ३१-४६ ७ [1]. १९९ १-२००, ३१;
- रत्नमं. १ [1]. २१, ३७-७३, ७ [3]. ४०, १-२५
- १ [2]. २४, १-४६,

अन्धकवृत्तान्त (Legend of Andhaka)—

वाम. ९. १-१०, ५७, ३३, १६-४४, ६६

- हर्म १. १६, ६५-२३८
- पद्य. १. ४८ १-६२
- मत्स्य. १. ७९, १-२६
- लिङ्ग. १२ १८७-६३, २६
- वराह २७, १-४३
- विष्णु-व. १ २२६, १-३७
- हरिव. २. ६, १-८७, ३६
- तिव. २. [5]. ४२ ८-४९, ५२
- स्कन्द. ५ [1]. ४७, ६-४९, ४१;
- ५ [3]. ४२, १-४८, ४६,
- ६-१४६, १३-१४१;
- ७ [2]. ९, १५१-१६६

भुवनेकोश (Bhuvanakośa)—वाम. ११. ३१-४६; १३ १-४८

- भक्ति. ११८, १-८
- हर्म. १ ४०, १-५०, २६
- गण्ड. १. ५४, १-५७ ६
- देवी-भा. ८४, १-२० ३७
- पद्य. ३. ३. १-९, ४२
- ब्रह्म. १८, १० २१-२७
- ब्रह्मण्ड. १ १४ १०-१९ १६७
- भक्तिव्य. २ [1]. ३, १-४ ४४
- भाग. ५ १६ १-२४ ३१
- मत्स्य ११२, १-१२७ ८५
- मार्क ४३ ११-६० १५
- महाभा. ६ ५, १-११, ३८
- लिङ्ग ४६, १-६२, ४२
- वराह. ७४, १-८९, ४
- वायु. १ ३३, ११-५३, १२३
- विष्णु. २, २, १-५ २७,
- २, ७, १-१२ ४७
- विष्णु घ. ३, १५९ १ १६१, ७
- तिव ५, १७ १-१६ ४४
- स्कन्द १ [1] ३७ १-३६, ६४;
- ३ [3] २६ ३७ ५५;
- ६ २६९, ३६-५१,
- ७ [1] १९ ६-४४

नारकवर्णन (Description of Narakas)—

वाम. ११ ४७-१२, ५६

- भक्ति. २०३ १-२३
- गण्ड. १ ५७, ४७
- देवी-भा. ८ २१ १५-२३, ३१
- नाट. १. १५, १-२०
- ब्रह्म. २१, १-४६;
- २१४ १-२१५ १४२
- ब्रह्मवै. २ २६ १-३३, १२१ १
- २, ५१, ४५-५२, ४०
- ब्रह्मण्ड. ३, २, ४५-१५१
- भक्तिव्य. १ १९, ५१
- भाग. ३, ३० १-२४;
- ५, २६ १-४०

- मार्क. १२ १-१४, ४६
- वराह. २०० १-५७
- वायु २ ३९, १४६-१८७
- विष्णु. २, ६, १-५१;
- ६, ५ १-५८
- विष्णु-व. २, १११, १-२०;
- २, ११८, १-१२१, १३;
- ३, २४०, १-२४३, ४५
- तिव. ५, ५, १-१०, ५७;
- ५, १६, १-४०
- स्कन्द. १ [2]. ३९, ८-२४;
- १ [2]. ४१, ११-७८;
- १ [3]. (ii) ५, १-२५;
- २ [1]. १, २, ३-४६;
- ४ ८, ५०-६०;
- ५ [1]. ३९, ५-४३;
- ५ [3]. १५५ ६७-११०;
- ६, २६, १-८६;
- ६, २२६, १-८-८४;
- ७ [1]. २२५, १४-३६

महाभा १३ १३, १६-८३

- सदाचार (Virtuous conduct)—वाम १४, १-११, ६६
- भक्ति. १५२, १-५;
- १५५, १-१५७, ४२
- हर्म. १, २, ३-३६ २८;
- २, १२, १-२४, २१;
- २, ३४, ११०-१४१
- गण्ड. १, २०५, १-१५४
- देवी-भा. ११, १, ४-२, ४२
- नाट. १, ४३, ५१-४४, २०;
- १, ६६ १-७८
- पद्य. १, ९१, १-६०, ४३;
- २, १३, १-३५;
- २, ६७, १-११२;
- ३, ५१, १-१५, ६४;
- ३, ५९, १-६०
- ३, ५७, १-६० ४३.
- ब्रह्म. २२१, १-२२५, ६३
- ब्रह्मवै. १, २६ ५-१०४;
- ४, ७५, १-८१;
- ४, ८३, १-८४, ४०
- ब्रह्मण्ड. २, १४, ५०-११७
- भक्ति. १, ३, १ ४२२२;
- १-११, १ २१ १
- ४, २०५, १-४३
- भाग. ७, ११ १-१५, ८०;
- ११, १७, १-१८, ४८
- महाभा. ३, २०७, ६२-६६; १२, १८९, १-१९३, ३३;
- १२, २८७ १-४६; १३, ९७, १-२४;
- १३, १०४, १-१५७; १३, १४१, ३-४-४६, ६५;
- १४, ४५, १-४७, १७
- हरिवं. ३, २४, १-१५
- मत्स्य. ४०, १-१७;
- १७४, ३२-४४
- मार्क. २८, १-२९, ४८;
- ३४, १-३५ ६५
- लिङ्ग. ८५, १२७-२१७;
- ८९, १-१२२
- विष्णु. ३ ८, १-१२ ४५
- विष्णु घ २, ७९ १-२५, ३०;
- २, ३३०, १-१३१, ६४;
- ३, २५०, १-४५;
- ३, २५८, १-३७, २२,
- ३, २६९, १-२७२, ३
- ३, २८७, १-२८९, ५;
- ३, ३३९, १-३४०, ४०
- तिव. १, १३, १-८५
- स्कन्द. १ [2]. ४१, १-१७, १७४;
- २ [9]. २०, ११-२३, ४३
- ३ [2]. ५, १-७ १००;
- ३ [2]. ४०, १-१५२;
- ५, ३५, १४-३६, ६६;
- ४, ३६, १-११५
- ६, २२३, १-३६,
- ७ [1]. १०७, ३-२०, ८, ५२

अश्वत्थमाहात्म्य (Glorification of the holy fig tree)—वाम १४.३७

स्कन्द. ६.२७०.२४-४४

असूनाशयनद्वितीयाव्रत (Asūnāśayana-dvitiyā-Vrata)—वाम १७.१६-२६

मंत्रि. १७७.३-३२	विष्णु-ध. १.१४५.५-२० ;
नार. २.११.७-१०	३.१३२.१-१२
पद्म. २.८७.१-३७	स्कन्द. २.[७] १०.१-२६ ;
भवि. १.२०.१-३३ ;	६.४१.१-५४ ;
४.१५.१-२३	६.२१५.२१-३६
मत्स्य. ७०.१-१६	

विष्णुपञ्जरस्तोत्र (Viṣṇupañjara stotra)—

वाम १८.३६-३७ ; ५९.६-२१

मंत्रि. २७०.१-१५	ब्रह्मवै. ४.१२.१७-४२
पद्म. १.१३.१-१३	विष्णु-ध. १.१३५.१-७ ;
साग. ६.८.४-४०	१.२३७.१-२६
ब्रह्मवै. ३.३१.१-५७ ;	

महिषोत्पत्तिवृत्तान्त (Story of the birth of Mahiṣa)—वाम १८.४२-६०

देवी-आ. ५.२.१६-४८ स्कन्द ६.११६ ४-१८

देवीमाहात्म्य तथा महिषवध (Glorification of Devi and killing of Mahiṣa)—वाम १८.३६-२१.५०

देवी-आ. ५.२.३-१९ ४४	स्कन्द. १[-३](१).१०.१-११.४६ ;
मार्क. ८.२.१-८४.३६	३.[-१] ६.१-७.४४ ;
वराह. ६.२.१-९५ ६५	६.११८ १-१२१.८६ ;
सिव. ५ ४६.१-६३	७ [-१] ८३ १-६०
	७ [-३].३६.३-६३

अमस्त्य के द्वारा विन्ध्य का निम्नीकरण (Lowering of Vindhya mountain by sage Agastya)—

वाम १९.२२-३७

देवी म. १०.२.४-७.२६	विष्णु-ध १.२१६.६-२१
पद्म. १.१९ ४०-१५६	स्कन्द ४.५.५३-६८ ;
	६.३३.५-४३

महाभा. ३.१०४.१-११५

कुरुक्षेत्रतीर्थमाहात्म्य (Glorification of Kurukṣetra and its Tirthas)—वाम २२.२३-३५.मा. २८.४६

मंत्रि १०९.१४-१६	ब्रह्म. २५.३५-४४
नार. २.६४.१-६५.१३३	ब्रह्मवै. २.१३ ६५-६६ ;
पद्म. ३.२६.१-२७.६७	२.४७ १-३३

महाभा. ३.८३.१-२०८ ; ९.३७.१-४३.४६

तपती संवरण का उपख्यान (Story of Tapatī and Saṁvarana)—वाम २२.२६-६१

महाभा. १.१७१.१-१७३.५०

वामन-चरित (Story of Vāmana)—

वाम. स. मा. २.१-१०.६१ ; अ. ५०.५१.६२ ६६

मंत्रि. ४.५-११	वायु. २.३६.७४-८६
कूर्म. १.१७.१-६६	विष्णु ध. १.२१.४-३२ ;
नार. १.१०.१ ११.६७	१.५९ १-५६ ;
पद्म. १.३०.१-२०३ ;	३.३४.१-११
६.२३९.१-२४०.६१	स्कन्द. १.[-१].१७.२७६-१९.६३ ;
ब्रह्म. ७३.१-६६ ;	५.[-१].७४.२३५-२७० ;
२१३ ८०-१०५.	५.[-३] १५१.११-१३ ;
भवि ४ ७६.१-२७	७.[-१].११४ १-११ ;
साग. ८.१४.१-२३.३१	७.[-२] १४.८-८३ ;
मत्स्य. २४३.६-२४५.६६	७.[-२] १८.२०१-१९.४
	७.[-४] १८.१०-१४

महाभा. ३.२७२.६१-७६ ; हरिवं. ३.६५.१-७२.१०७

सरस्वतीवृत्तान्त (Story of the origin of the Sarasvatī)—वाम स.मा. ११.१-१४ ; स.मा. १२.२

नार. २ ६४.१७-१८	स्कन्द. ६.४६.१५-४४
पद्म. १.१८.१२७-१४६	६.१७२.१-१७३.१६

सरस्वती-स्तोत्र (Eulogy of the Sarasvatī)—
वाम. स मा. ११.६-२२

मार्क २३.३०-४७

परशुराम के द्वारा रामहृदय का निर्माण (Creation of Rāmahrada by Paraśurāma)—वाम. स.मा. १४.१-१५

नार. २.६४.१५.१७	स्कन्द. ४.[-३].२१८.२७-४७ ;
	६.६६.१-६९ २७ ;
	७ [-३].४९.१-१६

महाभा. २.८३.२६-४०

सुरभिषों की उत्पत्ति (Birth of Surabhis)—
वाम स.मा. १४.२६-३०

महाभा. १३.७७.१६-१८

मानुषतीर्थ (Mānuṣa Tirtha)—

वाम. स.मा. १४.५०-५६

स्कन्द. ६.२३.१-१५ ;

७.[-३].२८.१-११

शारभावतार (Śarabha-Incarnation of Śiva)—

वाम. स.मा. १५.२६-३६

सिव. ३.११.१-१२.४७

वेदवती-वृत्तान्त (Story of Vedavati)—

वाम. स.मा. १६. ८-१२.०

देवी-मा. ३. ३०. ६-१२; विष्णु-प. १. २२१. १७-४६
 - ९. १६. ३-५३ स्कन्द. १. [-१-]. ८. १०५-११०;
 ब्रह्मवै. २. १४. १-६४ - २. [-१-]. ५. १८-३०
 रामा. ७. १७. १-३६

मङ्कण का आख्यान (Story of Mankanaka)—

वाम. स.मा. १७. १-२३; ३६. ४५-५८

कूर्म. २. ३५. ४४-७६ स्कन्द. ६. ४०. २७-५२
 पद्य. १. १८. १३४-१५६ ७. [-१-]. २७०. १-४६
 महाभा. ३. ८३. १६-३४, ६. ३८. ३३-४६

कपालमोचन माहात्म्य (औशनसतीर्थ) (Glorification
 of Kapālmocana)—वाम. स.मा. १८. १-१३

महाभा. ३. ८३. १३३-१३७, ६. ३६. ४-२२

रहोदरचरित (Story of Rahodara)—

वाम. स.मा. १८. ३-१३

महाभा. ६. ३६. ४-२२

रुपङ्गचरित (Story of Rusangu)—

वाम. स.मा. १८. १६-२०

महाभा. ३. ८३. १४१-१४६; ९. ३९. २७-३४

दाल्भ्यकचरित (Story of Dālbyabaka)—

वाम. स.मा. १८. २५-३५

महाभा. ६. ४१. १-२७

वासिष्ठ-प्रवाहकी कथा (Legend of Vasishta's taking
 away by the Sarasvatī)—वाम. स.मा. १९. १-४३

स्कन्द. ६. १७२. १-१७३. १६

महाभा. ९. ४२. १-४१

सरस्वती-स्तुति (Eulogy of the Sarasvatī)—

वाम. स.मा. १६. १२-१७

महाभा. ९. ४२. २६-३३

ऋषियों के यज्ञोपवीत के कुञ्जतीर्थ का निर्माण (Building
 of Kuñja Tirth by the sacred threads of
 the Rsis)—वाम. स.मा. २१. १-६

महाभा. ९. ३७. ४१-५८

स्थानुतीर्थे माहात्म्य (Glorification of Sthānufirtha)—

वाम. स.मा. २३. १-२४. ३१

महाभा. ३. ८३. १७८-१७९; ९. ४९. ४-७

सृष्टिनिर्माण (Creation)—वाम. स.मा. २२. १६-४३

नाट. १. ४२. १-२३ मत्स्य. ३. १-५५
 पद्य १. २. ८-३. २०६ मार्क. ४७. १-३६ १
 ब्रह्म. १. ३३-५६ वायु. ६. १-१०. ५८
 ब्रह्माण्ड. १. ३. ७-१. १४१ शिव. २. [-१-]. ६. ४-५६
 मवि. १. २. १-११२

महाभा. १२. १८२ १-१८३. १७

देवदारुवन में शिवलिङ्ग का पतन (Fall of Śivaliṅga
 in Dāruvana)—वाम. स.मा. २२. ४४ स.मा. २३. ३६

कूर्म. २. ३७. ५३-३९ ८० स्कन्द. ३. [-३] २६. १-२७. १६१,
 ब्रह्माण्ड. १. २७ १-१२६ ६. १. २-७२;
 शिव. ४. १२. ४-५४ ६. २५८. ६-२९;
 ७. [-१]. १८७. १५-४६;
 ७ [३]. ३९. १-६६

वेनपृथु-चरित (Legend of King Vena and
 Pithu)—वाम. स.मा. २६. ५-१६३

पद्य. १. ८. ३-३५, मत्स्य. १०. ३-३५
 २. २. ७. १-३६ ३७ विष्णु. १. १३. १-६५
 ब्रह्म. ४. २८-१२२ विष्णु-प. १. १०८. १-६६
 ब्रह्माण्ड. १. ३६. १०८-२२७ स्कन्द. ६. २३. १-३०,
 भाग. ४. १३. १७-१६. १५ ७. [-१]. ३३६ ६७-८७
 हरिवं. १. २. ९०-२७

शिव स्तुति (Eulogy of Śaṅkara)—

वाम. स.मा. २६. ६३-१६३ (वेनपृथु)

ब्रह्म. ४० २-१०० वायु. १. ३०. १८-०-२८४
 (दशकुला) (दशकुला)

महाभा. १२. २८४. ७३-१६६

(दशकुला)

पार्वती-चरित (Story of Pārvatī)—वाम. स.मा. २५. १-२८. २६

पद्य. १. ४५. १-४६. १२१ वायु. २. ११. ७-२६
 ब्रह्म. ३४. ७०-३६. १३५ शिव. २. [-३]. ५. १-६. ५४,
 ब्रह्माण्ड. २. १०. ८-२६ २. [-३]. २२. १-५०. ४५
 मत्स्य. १५३. २६१-४६८ स्कन्द. १. [-२] २२. १-२८. १५,
 पराह. २१. १-५४ २. [-१]. ८३३-३५२,
 ६. ७७. १-३०;
 ६. ७७. १-३०,
 ७. [-२]. ९. ४३-७२

स.मा. १. ३५. २३-३६. २६

- बालखिल्य-चरित (Story of Bālakhylys)-

वाम. २७.५६-५८

पद्य. १.१८.६१-१११

विद्य. २.[-३].४६ १-४७

ब्रह्माण्ड. १.३५.६४

स्कन्द. ६.७७.३०-७६ ;

६.७९.१-५४

महाभा. ९.३७ ४१-५०

विनायक-जन्म (वीरक) (Birth of Vināyaka)-

वाम. २८.५६-७५

पद्य. १.४५.४४५-४३०

बराह. २३.१-३०

मत्स्य. १५३.५६६-१५७.२१

विद्य. २.[-१].१३.१-१७-५६

लिङ्ग. १०४.१-१०५.२०

स्कन्द. १.[-२]. २७.१-२३ ,

७.[-३].३२.२-२२

शुम्भनिशुम्भवध (Slaying of Śumbha and Niśumbha by Devi)-वाम.२९.१-३०.७३

देवी.भा.५.२.१.१-३१.६८

स्कन्द. ७.[-३].२४.१.२२

विद्य. ५.४७.१-४८.५०

स्कन्द-जन्म तथा तारकवध (Birth of Skanda and Killing of Tāraka by him) वाम ३१.१-३२.१२०

देवी.भा. ७.३१.६-४०.४०

विद्य. २.[-१].१.६-५.६७

पद्य. १.४५.५-४६-२१६

स्कन्द. १.[-१].२७.३०-३०.५१,

ब्रह्माण्ड. २.१०.६ ५२

२.[-७].९.५३-६६ ,

मत्स्य. १४५ १-१५९.३३

३.[-३].१३.६.५१ ,

लिङ्ग. १०१.२६-३०

६.७०.१.७१-२० ;

बराह. २५.१-५२

६.२४५.१-२४६ २२ ;

विष्णु.व. १.२२३.१-२० ;

६.२६४.१-४१

१.२२८.१-१२

७.[-१].२००-३-२६ ३

७.[-२].९.१६६-१७३

महाभा. ३.२२४.१-२० ; ९.४४.१-४६.११५

१३.८४.५६-८६.३३

रामा १.३५.२३-३७.३३

क्रौञ्च-महिषवध (Destruction of mount Kraunca and Mahiṣa by Skanda)—वाम. ३२.५६-१२१

महाभा. ३.२२५.२१-२३१.११२

गालव-वृक्षान्त (story of sage Gālava)—वाम. ३३.१-१४

स्कन्द. ३. [-१].३.११-२१७

सनकादि की उत्पत्ति (Birth of Sanaka etc.)-

वाम. ३४.६०-७६

लिङ्ग. ७०.१७०.१७७

हरि-हर का अमेदवर्षण (Oneness of Hari & Hara)-

वाम. ३६.२०-३२

कूर्म. २.४.१-३४

स्कन्द. ६.२४७.०-१६ ;

७.[-२].९.१४३-१४८

शुक्रवृक्षान्त (Legend of Śukra)—

वाम. ३६.४०-४४ ; ४३.१-४५

देवी.भा. ४.१०.४२-१४.४७

मत्स्य. ४७.७१-१६७

पद्य. १.३३.२०७-२६०

विद्य. २[-५].४७.१-५०.५३

ब्रह्म. ६.५.१-२६

स्कन्द. ६.१५०.१-१३

ब्रह्माण्ड. २.७२.६२-७३.५६

महाभा. १२.२८९ १-२०

दण्ड का आख्यान (Story of Daṇḍa)-

वाम. ३७.१६-४०.१०

पद्य. १.३९.१-६०

ब्रह्म. ८८.१०-५६

रामा. ७.७६.१-८१.२२

भैरवों की उत्पत्ति (Birth of Bharavas)-वाम. ४४.२०-४५

विद्य. ३.८.४४-९.७२

स्कन्द. ४.३१.१-१५७

मरुतों की उत्पत्ति (Origin of Maruts)-

वाम.४५.१०-४६.७६

देवी.भा. ४.३.२१-५५

मत्स्य. ७.१-६५

पद्य.१.७.१-६४ ;

वायु. २.६.६६-१३५

२.२६.१-३२

विष्णु. १.२१.३०-४१

ब्रह्म. ३.११०-१२२ ;

विष्णु.व. १.१२७.१-३२

१२४.१-१४०

विद्य. ५.३३.१-१५

ब्रह्माण्ड. २.३.४५-१०९

स्कन्द. १.[-२]. १४.३०-४५ ;

भाग. ६.१८.१६-७०

६.२२.१-३७

बलिशक्रयुद्ध, शक्रपराजय (War between Bali and Indra, Indra's defeat)-वाम. ४७.१-४८.२३

भा.व. ८.१५.१-३६

स्कन्द. १[१].१७. २७०-२६२

हरिवं. ३.४८.१-६५.३२

विष्णुद्वारा कालनेमिवध (Killing of Kālanemi by Viṣṇu)—वाम. ४७. ३५-४०

मत्स्य. १७०. ४०-१७७. ५० स्कन्द. १.[-१].१३.६०-१४.१० ;

विष्णु.व. १.२२४.१-२५.२५ १ [-२]. १९. १-५२

हरिवं. १.४६. ४०-४८.५०

परिशिष्ट

धुन्धु-वध (Slaying of Dhundhu)—

वाम. ५२. १०-६०

ब्रह्मण्ड. २. ६३. ३१-६१ विव. ५. ३७. ६-३८

वायु २. २६. २६-५८ स्कन्द. ६. ३८. ६-१५

महाभा. ३. २०१ १-२०४. १५

श्रवणद्वादशीव्रतकथा (Śravaṇa-dvādaśī-vrata-kathā)

वाम. ५३. ११-८३

मलि. १८६. १-१५ वराह. १७४. ५३-८५

गण्ड. १ ८४. ३२-३६ वायु. २. ५०. २०-२५

पद्म. ६. ६६. १-७५ विष्णुव. १. १६२. १-७०

भविष्य. ४. ७५. १-६७

गजामाहात्म्य (Glorification of Gaṅgā Tirtha)

वाम. ५३. ६२-७२

मलि. ११४. १-४१ स्कन्द. ६. २०५. १-२०६. ६६

वायु. २. ४३. १-५०. ८०

नक्षत्रपुरुषव्रत (Nakṣatra-Puruṣa-Vrata)

वाम. ५४. १-३६

मलि. १९६. १-२३ भविष्य. ४. १०८. १७-४२

महाभा. १३ ११०. १-१० (अत्र चन्द्रतक्षत्रव्रतम्)

उपमन्यु-चरित (Story of Upamanyu)

वाम. ५६. १-४८

विष्णु. १०७. १-६५

शिव. ३. ३२. १-७८

५. १. १-७१

७. [१]. ३४. १-३५. ६५

महाभा. १३. १४. १११-१६७

हर द्वारा हरि को चक्रदान (Presentation of Cakra to Hari by Hara)—वाम. ५६. १६-४५

ब्रह्म. १०९. १-१५७

चन्द्रमा को दक्ष का शाप तथा निवारण (Curse against the Moon afflicted with by Dakṣa and its removal) वाम. ५७. ५३

शिव. ३. [२]. ६. ५६-६२ ; स्कन्द. ६. ६३. १-६३

४. १४. १-६२

७. [१]. २१. ३५-२२. ११५

गजेन्द्र मोक्ष (Liberation of Gaṅgā)

वाम. ५८. १-८५

भाग. ८. २. १-४. २६

विष्णुव. १. १९४. १-७५

वराह. १४४. ११६-१३५

स्कन्द. २. [४]. २८. १-३२

विष्णु-पूजा के योग्य पुष्प (Name of the flowers prescribed for the worship of Viṣṇu)

वाम. ६८. १०-२०

नार. १. ६७. ६०-७०

परिशिष्ट २

APPENDIX 2

(वामनपुराण में वर्णित आख्यान, स्तोत्र, व्रत एवं उपवास की सूची)

(Lists of the Episodes Stotras and Vrata Upavāsas mentioned in the Vamana Purana)

(1)

वामनपुराण की आख्यानसूची (List of the Episodes of the Vamana Purana)

1	दक्षयज्ञविष्वसः	27 5 61	21	नमुदि षष्ठ मुण्डादिवधोपाख्यानम्	29 1-30.32
2	लियस्य कपालियम्	2 18-41	22	सुम्भनिघुम्भदेव	30 33-73
3	सवधो-अथ	6 1-7 20	23	स्व-कृतमहिषादिवधोपाख्यानम्	32 45-120
4	कामस्य अतङ्कत्वप्राप्ति	6 23-107	24	कुवलयाशकृत-पातालकेतुवधोपाख्यानम्	33 1-15
5	निबलिकुपातनम्	6 60-93	25	भौरी प्रति कामार्तसंघा-वकस्य तद्वरधोवधोपाख्यानम्	33 16-47
	स मा	22 41-24 31	26	भुरवधोपाख्यानम्	34 26-35 77
6	नरनाशयाम्बा प्रह्लादस्य युद्धम्	7 27 8 72	27	भुवरथ सजीवनीप्रादुपाख्यानम्	36 40-45
7	अथकविजय	9 1-10 57	28	अथकपराजयोपाख्यानम्	37 1-44 96
8	सुकेशिचरितम्	11 1-16 63	29	अथकोपाख्याने धरजा-रथोपाख्यानम्	37 19-40 18
9	काल्याणनीचरिते महिषादिवधोपाख्यानम्	18 39-21 52	30	धरजोपाख्याने चित्राङ्गराजुपाख्यानम्	37 64-39 169
10	भगवत्पेन विष्वस्य निम्नीकरणम्	19 21-35	31	अथकपराजयोपाख्यानम्	40 42-44 96
11	स्वरत्नपद्मोपाख्यानम्	22 23-51	32	मातलितुवात	43 127-147
12	कुरुपेरनिर्वाणिवृत्तावम्	23 1-45	33	महद्गणोत्पत्तिवृत्ताव	45 18-46 76
13	अतिशाम्भुचरितम्	स मा 2 1-स मा 10 91	34	कान्तेमिवधोपाख्यानम्	47 1-51
		स मा 48 51 62 66	35	धुधुषधोपाख्यानम्	52 13-90
14	मङ्गलवधोपाख्यानम्	स मा 17 1-23 36 45 59	36	शैलवणिजोरपाख्यानम्	53 11-73
15	रहोदरोपाख्यानम्	स मा 18 5-13	37	जलोद्भवधोपाख्यानम्	55 18-29
16	प्रातिस्मर स्यद्रुपाख्यानम्	स मा 18 16-26	38	श्रीदामवधोपाख्यानम्	56 15-46
17	दसिष्ठासवाह	स मा 19 1-43	39	उपमन्सूराख्यानम्	56 5-16
18	वेनोपाख्यानम्	स मा 26 1-स मा 27 35	40	गजप्राहुरोपाख्यानम्	58 1-84
19	पार्वतीव्रतमादिकृतान्द	24 1 29 77	41	बौद्धाक्षुतोपाख्यानम्	64 19-115
20	स्वर्गैरचित्तुताम्ब	28 30-29 77 31 1-52			

(2)

(वामनपुराणमन्तर्गत स्तोत्रों की सूची—List of the Stotras of the Vamana Purana)

विष्णुस्तोत्राणि

स्तोत्रम् (स्तुति)	स्तुतिव्रता	स्तुतिवर्ता	स्थाननिर्देश
1 विष्णुस्तोत्रम्	विष्णु	निव	3 14-73
2 विष्णुपञ्चस्तोत्रम्			18 26-36
3 मातापञ्चस्तव	मातापवन	म-प	स मा 5 (गद्य)

परिशिष्ट

4. विष्णुस्तवः	विष्णुः	परिति	स.मा. 6.17-36
5. अदितिगर्भस्य-विष्णुस्तव.	"	प्रहार.	स मा. 8.17-28
6. गन्धर्वमोक्षस्तोत्रम्	"	गन्धर्वः	58.31-59
7. सारस्वतस्तोत्रम्	"	ब्राह्मणः	59.66-110
8. पापप्रमनस्तव. (प्रथमः)	"	महेश्वरः	60.1-51
9. पापप्रमनस्तवः (द्वितीय)	"	प्रमनस्तवः	61.2-29

वामनस्तोत्राणि

1. वामनस्तुति.	वामनः	ब्रह्मा	स मा. 9.18-31
2. "	"	(I) "	62.36-41
3. "	"	"	प० 66 (गद्यम्)

शिवस्तोत्राणि

1. - शिवस्तुतिः	शिवः	ब्रह्मा	स मा 23.5-8
2. "	"	शुभ्र.	स मा. 23. (गद्यम्)
3. "	"	वेनः	स मा. 26.63-163
4. "	"	ब्रह्मा	स.मा. 28.11-18
5. "	(हाटकेश्वर)	कन्यका.	प० 39. (गद्यम्)
6. "	"	शुक्र	43.29-31
7. "	"	"	43.40-42
8. "	"	कन्यका:	44.52-66

देवी (दुर्गा) स्तोत्राणि

1. शारदायनीस्तुतिः	शारदायनी	देवाः	19.19-20
2. देवीस्तुतिः	देवी	"	30.56-63
3. पार्वतीस्तुतिः	पार्वती	कन्यका:	प० 44. (गद्यम्)

अन्यस्तोत्राणि

1. सरस्वतीस्तोत्रम्	सरस्वती	मार्कण्डेयः	स मा. 11.6-23
2. सुरार्तिस्तुतिः	सुरार्तिस्तवः	वसिः	67.11-17

(3)

वामनपुराणे समागतानां श्रवोपवासानां सूची

(वामनपुराण में वर्जित द्वादश एवं सप्तवास, The Vratas and Fasts mentioned in the Vāmana Purāṇa) .

1. अश्विनीव्रतम्	16.21-23, 17.19-29	4. दशहराव्रतम्	35.9-19
2. अश्विनीव्रतम् (अश्विनीव्रतम्)	16.24-25, 17.30-54	5. अश्विनीव्रतम्	53.1-75
3. अश्विनीव्रतम्	16.26; 18.11-25	6. अश्विनीव्रतम्	53.81-54.39

परिशिष्ट ३

APPENDIX 3

1c (वामनपुराण में आये हुए व्यक्तियों—मनुष्य तथा ऋषियों, देवों, देवयानियों—गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, गण, नागादि तथा असुरों के नाम की सूची)

(List of proper names of Persons—Men and Sages, Gods, Demigods—Gandharvas, Yakṣas, Rākṣasas Ganas, Nāgas and Asuras mentioned in the Vāmana Purāna)

(1)

मनुष्यनामानि

(मनुष्य तथा ऋषियों के नाम—Names of Men and Sages)

वसुदेव (मुनि)	19 21, 22 40 31, 61 29	परिच्छेदेभिर् (ऋषि)	2 13
(१—कलशुब्ध)	19 29	परश्वती (वसिष्ठपत्नी)	2 9 6 62; 26 1, 6 13, 14, 33 61, 68, 54 35
—कन्दोद्भव	19 26, 28	प्रलिनो (ऋषिपत्नी)	46 15
—कुरुबन्धु	19 27	प्रसिद्ध (देवर्षि)	40 78, 39
(१—कुरुभन्धु)	19 23	प्रहत्या (गोतमभ्राता)	2 10, 4 6
—कुरुयोनिसि	12 47, 62 45	शारदाम्ब (कालास्यतापस्वी)	6 90
प्रतिवेश्य (शाह्यग)	64 84	शान्ति (संवरण रूप)	22 39
प्रह्लाद (दुर)	40 33	—सवरण	22 26, 33 45, 46, 56; 23 3
प्रह्विरत् (ऋषि)	2 10, 14 24, स मा 9 37, 26 9 31, 32, 42, 32 18, 62 46	शाम्बुरि (मुनि)	14 25, 34 71
प्रजापति (रूप)	23 40	श्यामुक (दुर)	37 26, 38 62, 39 18, 59, 71, 40 16, 67 31
प्रजि (ऋषि)	2 9, 47, स मा. 3 27, स मा 15 9, 26 9, 32 18 57 66	श्वश्रुत्त (मनुष्य, दुर)	39 49, 58, 60, 77
प्रसिद्धि (कल्पवृक्षो)	स मा 3 7 स मा 4 14, 16, स मा 6 4, 5, 11, 13, स मा 7 2, 5, 14, 15, स मा 8 10 स मा. 9 12, 14, 34 71	जतम (मनु)	46 42, 55
II 7	स मा 10 54, स मा 13 13, 27 5 31 58, 50 27, 51 17, 64 24	जदालक (मुनि)	स मा 16 32
—देवव्रजनी	62 34	जिन्यम्बु (वीरमनुष्य मुत्त)	56 5
—सुधादीप	50 31, 41 42	जानक (दुर)	स मा 18 1, स मा 21 25 36 40, 64 4
मनुष्य (पतिभ्राता)	2 9, 6 62	—कपि (—कपिशेष्ठ)	43 7, 27, 28, 34, 39
भगवान् (भद्राक्षभ्राता)	2 10	—कश्यप (—भद्र)	32 17
भरतस्य (दुरमुत्त)	37 50	—दुर्य	44 18
—भरतग	37 26	—भार्य	37 20; 43 11, 25, 27, 38, 45 62 2, 64 10, 12, 16, 50
—भरत	37 21, 23, 25, 63, 38 1; 40 4, 13	—भार्येश्वर	40 7, 52 38
—भरतश्च	37 36	—भुक्त	9 6, स मा 10 55 स मा 21 26 36 44, 37 21, 24, 33, 37, 40 4 1, 10 42 66, 43 1, 6 12 14, 15, 20 43; 47 1, 48 4, 14, 34, 35, 52 29, 30, 33, 43

शब्द (तोमरवैपीय रूप)	११ ६	22,26	शब्देन्दु (कालास्य शिष्य)	6,90
शब्दप्रज्ञ (रामसमनुसृत)		46,57	शुक्ल (मनुसृत रूप)	स.मा. 26 5
शब्दश्रेष्ठ (रूप)	२१	33, 3, 8, 10	गतिभाव (प्रभाससृत)	52, 60
शब्दसूत्र (रामवेदीपाणुप्रताचार्य)		37 70, 38 27, 62, 79;	गय (रूप)	स.मा. 16, 29, 30, 50, 15
२६		39, 4, 17, 56, 59, 60, 74,	गर्ग (श्रुति)	स.मा. 10 35
२६		99, 100, 104, 118, 124;	गर्गि (रूप)	33 28
२६		126, 131, 146, 158	{ गार्ग्य { गार्ग्ये	see शिष्यिक
२१-सायण्यज्ञ		39 143	गातव (श्रुति)	33 3-5, 39 4, 6-8; 10, 19, 22, 29,
शब्द (श्रुति)		14, 24	- २१ 1० -	133, 137, 139
शब्द (योगेश्वर रूप)		6, 89	गुह (दृष्टप्रति)	24 6
शक्ति (मुनि)	२२ १	34, 71, 72	गुह्येनाचार्य	24 ७, 48, 14
शतगुरु - कलसीसूत्र	१९	see शतस्य	गुह्येति	स.मा. 9 36, 42, 24 5, 62, 47
शतौदर (शास)	१०	6, 91	गोचयन (श्रुति)	6 88
शक्ति		see उचयत्	गोतम (मुनि)	2 10, 4 6, 14 24, स.मा. 3 27,
शक्य (श्रुति)	2, 8, 5 9, स.मा. 3 6, 7, 11, 15, 34, 38,		स.मा. 15, 9, 26 9, 62 3, 27	
स.मा. 4 14, 16, 20, 23, स.मा. 6 1, 7,				
11, स.मा. 7 10, स.मा. 9 33,				
स.मा. 10 4, 55, स.मा. 15 9,				
स.मा. 17 2, स.मा. 26 4, 26 9, 32,				
29 1, 45 20, 21, 52 13				
शतपायन (महर्षि)		19, 7	चन्द्रा (पञ्चरसूलो)	2 10
शतवैश्या (रूप)		स.मा. 25 41	चन्द्रावली (वशिष्काली)	64 98
शत ('दा')		स.मा. 26 9	चाक्षुष (मनु)	46 70
शतसाय (सायण)		6, 90	चिकी (रूप)	46 58
शत		see उचयत्	चित्रा (श्रुतिपत्नी)	46 15
शुभ		see उचयत्	चित्राङ्गदा (विश्वकर्मासुता)	37 38, 39, 71, 82, 38 1, 39 28,
शुभचर्या		see शतस्य	६ 32, 33, 75 102, 116, 124, 126,	
शुभचर		see शतस्य	150, 151, 162, 168	
शुभयोगि		see शतस्य	श्वयन (भागविष्ट श्रुति)	7 26, 29, 30, 33, 14 24
शुभ (विश्वरसुत रूप)	23 3, 5, 8, 28, 32, स.मा. 1 13;		श्वयन् (रूप)	स.मा. 16, 10
०५ ०२ =	स.मा. 20, 14, 22		श्वयन्ति (श्रुति)	स.मा. 15 9
—शुभ (श्रुति)		स.मा. 11 24	श्वयन्ति (श्रुतस्यसुत)	38 29 47, 52, 72, 39 56, 59 87
शुभनाराय (रूप)		33, 11	89, 98, 119, 156, 162	
शुभ्य (चर्मसुत)		6 2, 3	जिता (रूपभार्या)	64 71
शुभकार (मुद्रासुत, शास)	64 19, 20, 22, 29, 36, 40, 59		ज्यामप (रूप)	68, 39, 51, 52
शुभिक (—विधामित्र श्रुति)	2, 9, 62, 3		ज्योतिष्मत् (रूप)	46 43
११ —गाथिक-गाथिय	स.मा. 10, 35, स.मा. 19 19 26, 9		जलक (महात्मा)	स.मा. 25 8
११ —विधामित्र	स.मा. 15 9, स.मा. 18 14,		जप्तो (विश्वद सुता)	22-39, 40, 46, 57, 59, 60, 23 1
११	स.मा. 19 2, 5, 9, 10, 17, 20, 22, 23		जामस (मनु)	46 36, 57, 62
शुभ (श्रुति)		14 24, 32, 18	जल (श्रुति)	स.मा. 3 27, स.मा. 16 37
शुभप्रज्ञ (स्वारीचिसुत)		46 24, 28, 36	जल (जिन)	37 19, 20, 27, 34, 50, 63; 40 11, 15-17
			जनु (कथ्यभार्या)	6 1
			जिति (—)	45 20, 23, 24, 35, 38, 41
			जिवाकेट (= जिवाकीति)	64 44-46 54, 111
			जुवांसत् (मुनि)	2 47

देवजन्तो	see ऋषिणि	पुनस्त्विति (ऋषि)	2.9, 14.24, 22.1; स.मा. 9.37, 32.18
देववृत्ति (कन्दरमुता)	37.79, 38.5, 10, 15, 35, 56; 39.42, 43, 61, 83, 133, 138	पुनहं (ऋषि)	(14.24; स.मा. 3.27; स.मा. 9.37, 32.18; 62.45
देवाचार्य	see कौशिक	प्रवेत्सु (ऋषि)	TE (स.मा. 3.27
धनद (महावती)	6.91	प्रभास (वाक्यशास्त्रम्) OE	52.58
धर्म (देवनि)	2.12; 6.1, 34.69; 35.49	प्रम्लोचा (मञ्जनपत्नी, शम्भारत्)	38.41
धर्मकीर्ति (नृप)	4.34	प्रियवत (स्वर्गपुत्रमनुपुत्र)	46.4
धर्मनीला (वीतमनुभार्या)	56.4, 15	बहदात्म्य (ऋषि)	स.मा. 18.26, 28
धर्मिष्ठा (शोभकारपत्नी)	64.23, 34, 57	बहुला (सोमवर्गैर्बणिक्माता)	53.43
धृतराष्ट्र (नृप)	स.मा. 18.26-28, 30	बाह्यैस्त्वय (= भद्राज)	62.43
धृति (कौशिकपत्नी)	2.9	बालखिन्न (हपत्नी)	स.मा. 22.4, 41, स.मा. 25.48; 27.58, 59, 55.52; 62.26; 67.14
धृव (नृप)	65.28		
नन्द (नृप)	30.68; 59.104		
नन्दयन्त्री (मञ्जनपुत्रकमुता)	37.80; 38.14, 19, 25, 41, 49, 39.60, 119, 138, 142, 159	दृहस्त्विति (देवपुत्र)	see कौशिक
= यराजा	38.57	नया (कालमुता)	स.मा. 26.6
नर (धर्मपुत्र)	2.42, 50, 53-55; 3.6; 6.2, 3, 5; 7.49, 51, 52, 54-61, 64, 8.46-59	भद्राज (ऋषि)	2.10; 6.89, स.मा. 15.9; 26.9; 62.43, 45, 49, 51; 65.4, 6
नराप्रज-धर्मज (= नाटावग)	8.22	भाग्य (= शुक्र)	see जनगम्
—नारोत्तम (= पुरोत्तम)	8.13, 16	भाग्य (= जामदग्न्य रास)	स.मा. 14.14
—नाटावग (धर्मपुत्र)	2.42, 43, 45, 50; 3.6, 6.2; 3.5, 22; 7.51, 52, 64, 65; 8.3, 7, 12, 25, 46, 47, 58, 69, 72	भाग्येन्द्र (= शुक्र)	see ज्ञानम्
नल (विश्वकर्मापुत्र)	39.154	भारवत् (कल्पपुत्र)	स.मा. 26.4
नक्षित्री (ऋषिपत्नी)	46.15	भृशु (ऋषि)	2.13, 14.24; 15.41; स.मा. 3.27; 32.18, 53.9; 54.30; 62.3
नहुप (नृप)	40.33	भोजकीर्ति (सोमवर्गीय नृप)	4.34
नाभाग (नृप)	39.18	भङ्ग्य (= भङ्ग्यक), (ऋषि)	स.मा. 16.23, 28, 31, 34, 38, 40; स.मा. 17.1, 2, 7; 36.45, 51, 58, 46.73
नारद (दिविनि)	1.2, 9, 5.14, 6.60, 16.42, स.मा. 3.27, स. मा. 15.32, स. मा. 26.26, 29, 30, 32; 25.9, 12, 30.16, 31.2, 32.34, 42.56, 45.30, 46.12, 24, 27, 47.33, 51.6, 52.14, 62.22, 64.12, 69.1, 7, 11	—महि (हपत्नी)	46.71
नाटावग	see नराप्रज	भद्र (महात्म्य)	स.मा. 21.10
निद्राकर (= निद्राकीर्ति)	64.44-46, 52-54, 112	भद्रु (धर्मपुत्र)	49.28; स.मा. 26.4, 5; 40.31
नृा (नृप)	62.47	भद्रु (ऋषि)	14.24
नैत्रमान (समासाशास्त्रपुत्र)	52.60	भरीषि (ऋषि)	14.24; स. मा. 3.27; स. मा. 9.37; स.मा. 26.4, 32.18, 35.71, 50.13; 62.46
पञ्चनिध (सोमनाभार्य)	34.71	भारति (समीकगुप्त, राक्षसापि)	43.147, 148; 47.16
पटावग (पुनि)	स.मा. 25.37	भारीष (पुनि)	स.मा. 3.7
विद्वत् (पुनि)	14.25	भारुथेय (ऋषि)	स. मा. 11.5, 23; स. मा. 12.1; स.मा. 16.39; स.मा. 22.5, 14; 32.18
पुत्रराज (नृप)	53.9, 10, 53; 54.1, 37	भासा (पुत्रकर्त्तार्या)	64.61
		विशावरण (विश्व)	23.2; 34.46
		—विशावरणार्थव (= वशिष्ठ)	34.46 see पर नाटावग

—विश्रावणनामक (= वसिष्ठ)	50 13	वृहस्पति	(see वृहस्पति
मुद्गल (ऋषि)	38 42,62, 64 22	वेदवती (पर्जन्यसुता)	37,80, 39,30,41 43,83,160
मुकुन्द (महात्मन्)	स मा 25 31, 32 18	वेदव्यास (= व्यास)	स मा 125 38
शुशु (कौलपत्नी)	स मा 26 6	वेन (नृप)	स मा 26 7,9 15,20; स मा 27,7,9,27
शुभ्र (नृप)	40 34	विष्य (उग्रु)	स मा 27,26
यशोव (मन्दपत्नी)	30 68	व्यास (= वेदव्यास)	स मा 1 6, स मा 15 53 58
रघु (नृप)	34 44, 62 47	यकुनि (ह्यवाकु सुत)	38 65,66 74,76 39 56,59,77, 89,91,93,159,163
रामुक (मुनि)	स मा 21 5	यक्ति (वसिष्ठसुत)	6 88
रहोदर (मुनि)	स मा 18 3,4,7,11	यमोक (ऋषि)	43 132,148
राधर्व (= राम)	स मा 18 5	यातिहोत्र (राजर्षि)	स मा 16 2
राम (दाक्षरिषि)	स मा 16 10,11, स मा 18 5	शीला	43,133
राम (विप्र, जामदग्न्य) = भार्गव,	स मा 13 42, स मा 14 1, 3,5,9,10,13,15	शुक (ऋषि, प्रसुर पुरोहित)	see उशनस्
रिपुञ्जित (नृप)	33 2 46 63	शौलक (ऋषि)	स मा 16 24
रूपरु (बाहिस्रमर ऋषि)	स मा 18 16-18	श्वेतकि (नृप)	57 21
रेवन्त (आदित्यसुत)	54 36	सवरय (ऋषिसुत, नृप)	see आशि
रैम्य (ऋषि)	14 24	सवर्त (अगिरस् सुत)	स मा 3 31
रैवत (मनु)	46 62 63 70	सत्यवज	see महात्मज
रगिक	see सोमवज	सन्क (देवर्षि)	14 25 स मा 9 28 स मा 22 39, 34 70 35 38
सोमहर्षण (मुनि)	स मा 1 1, स मा 16 24	सन्कुमार (देवर्षि)	14,25, स मा 22 4 34 57,68,70, 73 35 32,53
सुपुत्राती (ऋषिपत्नी)	46 15	सनन्दन (देवर्षि)	14,25 34 70
सुपुत्रात् (निपचाधिप)	46 43	सनातनु (देवर्षि)	14 25,34 70
सुरशात्मज (= वसिष्ठ)	22 40	सनात्ता (ऋषिपत्नी)	46 15
= भार्गव	22 43,47,58, 40 31, 62 46	सवन (प्रियव्रतसुत)	46 4
= बाह्येय	26 9	साधिनि (= सृष्टी)	22 47
= वसिष्ठ (ऋषि)	2 9, 6 88, 14 24; 22 28	सीता (रामपत्नी)	स मा 16 10,12
	29,46,47 57, स मा 3 27,	सुदामम् (नृप)	23 5
	स मा 9 37 स मा 10 35	सुदेव (नृप)	37 41 39 77,123
	स मा 15-9; स मा. 18,40,	सुदेवा (सवनपत्नी)	46 5,8
	स मा 19 1-3 5 8 9 18-20,	सुवर्त्स (वणिक्)	53 13
	32 18, 34 46,49, 50 10	सुनाम् (नृप)	46 11
सात्त्विकान (मुनि)	64 23	सुरदि, (रिपुबिस्त्रन्या)	46 64
सातसिख्य	see बाससिख्य	सुरप (विदग्धेनृप, सुदेवसुत)	37 41,45,51,64,66
सिन्धवा (कश्यपभार्गव)	31 102		38 1, 39 35,38,116,162,164
सिन्धति (क्षत्रिभेदपत्नी)	64 86	सुररणि	see मति
सिरजम्	see सरजम्	सौम (नृप)	स मा, 16 15
सिमाला (ऋषिपत्नी)	46 15	सोयवर्मा (वणिक् प्रेतनायक)	53 43
सिन्धामिन् (ऋषि)	see कौणिक		
सोतमन्थु (द्विज)	56 3 14,45		
सुन्दारक	64 61		
सुपाकरी	64 61		

वामनपुराण

सोमप्रवा (वणिक्)	53.44	हरि (धर्मसुत)	(11-1) 517 2 6 2,3
सोदाग्निनी (सुदाग्निगुता)	23 5	हरिता (ऋषियस्त्री)	46.15,41
स्वार्यभूव (मनु)	46.4,23	हार्यत (ऋषि)	स.मा. 25.26
स्वारोचिष (मनु)	46.24,41	द्वैत्य (मनु)	59.102

(2)

सुर-नामानि

(देवों के नाम, Names of Gods)

भृशुमत् (भूर्ध्व)	5 12-15, 31 70	—मन्वन्तरीय	18.33
—भर्क,	2.20, 12 25,49; 17.27	—ईश	17.23,24
—आदित्य	स.मा. 10.63; स.मा. 13 13	—उषेन्द्र	स.मा.6.31,33,34
—तिस्रमातृ	22.41	—सहस्र	स.मा.10 65
—स्वधृ	43.72	—कर्त्तव्यपुत्र	52.5
—दिनकर	16.60	—कर्मवपुत्र	52 7
—दिवाकर	5.13,21, 15 66	—वृष्ण	स.मा.6.14;स.मा.7.14;स.मा.8.32
—सूयन्	5 10,16-18, स.मा. 10.54, स.मा. 20.34, 31.66	—वेदाय	4.44 6.73; 8.72
—प्रभाकर	40.31	—कैटभनायक	4 52
—मानु	14 23; 16 38,39,47	—कैटभार्दन	22 25
—मानुमातृ	16.44	—सद्यस्वज	3.12;4 48
—मानुमानिन्	16.48	—सद्योग्रासन	19.2
—माकर	10.34,54, 11 2,24; 18 72	—सद्यस्वज	3 14
—मासवत्	स.मा. 26.4	—भोविन्द	स.मा.9 13;स.मा 10.18,32,40,55 17
—रवि	7.15, 16.17,19; 19 23	—पद्मदाधर	34 24
—सोत	3 40, 16.59; 57.31	—चक्रधर	3.24;19.1
—विचस्वत्	16.15,49, 19.14, 22.59	—चक्रेशि	56.36
—सवित्र	22.55; स.मा. 22 32	—सक्रपाणि	20.44; 57.66; 65.40
—सूर्य	2 50, 3.33, 11 1, 48 14	—सक्रिय	स.मा.9.43;49.30;68.36
सखन्द (वित्र)	55 11, 62.21	—समुसुभ (= समुसुभृ)	35 72;57.58
पानि	19.3,18, 12.25, 56 26	—समुसुति	34.62-64;62 21
—दधि	18 52, 31 30	—जगन्नाथ	स.मा.8.18; स.मा.9.14;स.मा.10 32,58.8
—जलन	46 10	—जगन्मूर्ति	36.6
—पादक	18 51, 19 9; 23 40	—जगन्नि	12 44;17.51;18.34;स.मा.8 9,46
—सिद्धि	18.47,53, 31 7, 32 23	—त्रिविक्रम	52 11,12,82,85,90;53.1;61 2;65.53, 67.38
—सिधाय	स.मा. 10 55; 47 38	—दामोदर	56 35;67.51,68 32
—द्वयभृ	31.9	—देवदेव	स.मा.8 40
—द्वयभृ	27 33; 46 60	—देवदेवादि	स.मा.10.38
—दृशाय (= दृशायन)	10.50,52,53; 18 72; 19.14	—देवदेव	स.मा.10.38
दधुव (विष्णु)	4.40, 23 36, स.मा.8 48; स.मा.9 10	—नरोत्तम	8 13
—दधोत्तम	3 17		

—नायपण	स मा 4 21 स मा 6 1, स मा 8 44 स मा 22, 28, 29
—नृशेसरिवृ	18 32, 32 25
—नमिह	35 77 51 56 55 5
—पचनान्न	18 17, 20, 21 35 76 52 44
—पचापच	18 22
—पितवासत	8 32, 43, 57 3
—पुष्टराकाम	7 28 18, 29 23 36 57 10
—पुष्टपोलन	18 36 22, 13, 23, 39
—पुष्करान	57, 33
—मत्स्यवपुष	52, 3
—मनुष्यातिवृ	67 73 68, 22
—मनुमुन्न	19 6 17 21, स मा 7 16
—माधव	4 46 ; 32, 25 ; 57 78, 62, 34
—मुपरि	4, 50, 14, 23, 19 5 14, 24 4, 34 77
—यनसूकर	18 31
—योग (वापति)	स मा 10 10, 19
—सदभाग	32, 22
—सामुद्रिक	4 53, 16 50 ; 22, 22
—विशु	17, 4
—विश्व	स मा 10 20
—विष्यु	16, 17, 19 ; 17 23 ; 18 11 ; स मा 1 4 11
—विष्वक्सेन	43, 57
—वैकुण्ठ	स मा 8 33 ; 51 25, 57 13
—विनतेपञ्चज	47 34
—गङ्गाचक्रवाधर	3 13, 23 35
—शोरि	59 70
—श्रीधर	59 72
—श्रीपति	17, 3, 19 1, 57 48
—श्रीग	59 72
—शङ्खग	स मा 4 71
—सुपर्ण	4, 49 23 14
—सुरेण	36, 27
—सूकरवपुष	8 52
—हरि	6 71 ; 11 39 14 79, 17 1, 70
—हलायुव	4, 47
—हृषीके	4 52, 53 23 35 ; स मा 9, 37, 36
सज	see षडुपुष
सजित (= विष्णु)	55 9 57 9 61 5
सद्रिमुता (= द्विपत्नी)	37, 3
—सन्दा	34 1 37 13

—सन्दिक्का	9 18, 20 39, 21 21
—उमा	22, 3, स मा 21 13 स मा 22, 45
—काल्यापनी	17 15, 18 37, 39, 41, 19 13
—कालो	27, 36, 47, 28 6, 9, 13
—कुम्भलिनी	30 4
—कौण्डिनी	22, 3, 28 25, 26 29 28 30 27
—किरिजा	27 35, 58 10, 24 31, 35
—किरिमुता	37 5, 28 22
—कौरो	28 56 ; 31 40 ; 33 18
—कण्डकारी	29 57
—कण्डा	29 81, 84 ; 30 27, 46
—कण्डिका	29 79 30, 2, 10
—कण्ठी	29 62
—कविदा	30 67 44 46, 47
—कमसुरग	29 88, 30 28
—कामुण्डा	29, 85
—किनेया	29, 86 ; 30 4
—किन्नीको	30 4
—कुर्ण	18 41, 19 36 ; 20, 30, 38, 40
—देवो	11 24 ; 36, 3, 39 40 46
—नारायणो	21 51
—निद्रा	स मा 15 18
—परमेष्ठो	21, 36, स मा 23 78, 29 56
—पावती	22, 6, 8 ; 28 6, 7, 14, 57 25 61
—पगवती	21, 6
—पद्म	स मा 15 18
—प्राणिनी	21, 26
—महादेवो	20 39 ; 28 52, 30 17
—महेश्वरो	29 73 ; 30 2, 19
—माया	19 70, स मा 15 18
—माटी	29 82, 88 ; 30 20, 59
—मादुधर	30 4, 71
—मुद्रापी	21 43, 47 ; 28 77 ; 30 32
—विष्णुवाहिनी	28 77, 29 79
—निगावरी	29 46, 64 ; 43 92 44 92
—गङ्गाधरो	30 59
—शिवकृतो	30 17
—निवा	23 54, 29 71, 84 ; 30 12, 53
—गिषी	33 45 37 13
—सती	1, 5, 22, 5, 9, 26 10
—छनालनी	स मा 15 18

—हरस्वतो	20 36 , 21 26
—पुरेश्वरो	30.18
—हैमवतो	1.11
प्रयोगत्रय	see सच्युत
प्रवह	6 22,23,107 ; 7.1,5 ; 37 71
—वर्ष	6 1,7,8,24,27,20 9 ; 27.31
—वाम	6 25,43,107 ; 20 5,7
—कुसुमानुष	6 27,94,97
—मन्त्रत्रय	20 11
—मदन	6 45,49,57,96 ; स मा 21 10
—सामय	20 8 , 65 20
—स्मर	20 5,95,104 , 106
प्रवृत्त (= योग)	12 44 ; स मा 26 112
—महानाग	स मा 9 43
—रोष	17.7 ; स मा. 9 43
—रोचनाग	30 7
प्रवृत्तस्य (= पवन)	39 51
—प्रवृत्त	19 3,18
—पवन	6 53 , 17 52 , 18 51 , 19 14 ; स मा 16 1,2 ; स मा. 20 10 ; 32 23 , 43 54
—प्रमज्जन	60 46
—मारुत	10.45 , 18 70 , 28 17
—वासु	9 47 , 31 67
—ध्वज	19 14
प्रवृत्त	see प्रवृत्तस्य
प्रवृत्तः (यमघात्र)	34 47 , 57.21
—वृत्त	35 72
—दक्षिणायक	32 22
—दक्षिणाय	34 49
—धर्म	34 60
—धर्मघात्र	9 16 ; 10 17 ; 12 22 ; 17 14 , 34 55
—धार्तरि (धानुमुत्त)	10 16,23 ; 14 23,49
—धम	9 46 , 10.24 ; 12 17 , 19 15 ; स मा 26 55 , 34 57,59
—धैरावधु	10 14
धनुर्धरा	57 14
धनुर्धरः	39 148
—धनु	स मा. 10 54 ; 39 102,156
—विधुर्धरः	17 14,19 ; 18.5 ; स मा. 3 32 ,

स मा 25 9 ; 28 1 , 37 39,57 , 39 28,101,109,123,143,145,154	
—धनुर्धरः	39 155
धनुः	see धनुर्धरा
धनुः	see धनुर्धरा
धनुर्धरः	57 33 , 63 14
धर्म (= सूर्य)	see धनुर्धर
धर्मनारीश्वर (= निव)	57.11
—ईश	2 28 ; 17.1
—ईशान	11.5 ; 27.21,28
—उमापति	17.43 , 56 11
—व्यालकृष्ण	स मा 25 28
—वर्षिन्	2 24 ; 28.42 ; 57 2,53
—वर्षिन्	2 17 18
—वर्षिन्वपुत्र (-निव)	स मा 14 25
—वर्षिन्	17 53
—वर्षिन्	17.62
—विरोच	26 71
—वीरिच	39 11
—वृद्धापर	5 28 ; 57.62
—जीमूतवेनु	1 30 , 26 35 , 27 23
—जीमूतवाहन	41.32
—हमापूर्ति	2 32
—विरोच (-निवेत्र)	1.24 ; 2 1 ; 16.44 ; 26.34
—विनयन	37.5 ; 41.49
—विपुलानन	26 3
—विपुलहा	26 56
—विपुलराज	25 44,75 ; 27.34 ; 36 22
—विशोचन	2 24 ; स मा 23 3 ; 37 7
—विश्विन्	6 50 ; 47.7
—धन	39 25
—धनुष	17.41 ; 39 121 , 40,60 , 44 39
—धनुषानन	17.59
—धनुषि विव	स मा 15 54
—धनुषेपर	17 51
—धनुषि	26 36 , 56 11
—धनुषि	40 46
—धनुषि	स मा. 22.45 ; स मा 23 5
—धनुषि	17.57
—धनु	16-62,63 ; 22.3 ; स मा 17.15
—धनुषि	40 51

— भूतनाथ	57 24
— भूतपति	26 58
— भूतभावन	32 12, 44 27
— भैरव	47 1, 44 25, 32-39, 44, 49, 95 ; (काभराज 44 34), (काभराज 44 33), (ललितराज 44 37), (विष्णुराज 44 38), (विद्याराज 44 32), (सोमराज 44 35) ; (स्वच्छंदराज 44 36)
— महादेव (योगमूर्ति)	6 26, 17 43, स मा 20 12
— महास्थानु	स मा 22 77
— महेश	32 105, 36 5
— महेशान	26 36, 28 29, 36 32
— महेश्वर	2 16 ; 17 63 ; 18 4 ; स मा 20 24
— शत्रु	2 26, 17 38, 64 ; स मा 22 69
— लोकनाथ	23 18
— विरूपाक्ष	17 33, 56 11, 12, 14, 15, 38
— वृषकेतन	6 43 ; 27 22
— वृषपदास	40 24
— वृष(श)ध्वज	6 50 ; 17 63 ; 27 55, 32 116
— वृषवाहन	26 34
— शंकर	1 5, 13, 14 23 ; 11 6, 24 ; 16 50
— राम्भु	2, 30, 16 25 ; 22 11
— शर्व	17 2, 39, 25 38, 39 ; 26 13
— शक्तिशेखर	53 6
— शिव	2 17, 17 27, 32 23
— शूलधर	31 103, 42 13
— शूलधृक्	स मा. 17 17, 25 43 ; 26 14
— शूलपाणि	2 24 ; स मा 17 17 ; स मा 23 2
— शूलिन्	2, 40 ; 23 36 ; स मा 23 19
— शोकण्ठ	37.67-69, 84 ; 38 9, 47, 51, 39 1, 4, 6, 37, 82
— सुवर्णाक्ष	56 38 57.1
— रवागु	17.37, स मा. 1 12, स मा. 21 21
— हर	1.30, 12.54, स मा 1.12 25 11
— हिरण्यवक्ष	17.35 56 38
प्रथमोर्ध्व	see मन्थुत
अधि (देवता)	10 54 32 19 43.59, 47.18
अधिगो (नक्षत्र)	5 31, 31.64
आशिय	see अशुभम्
पावलिक (गिव)	स मा 24.18
रत्न (देवी)	स मा 2.20

इन्दु	see चन्द्र
इन्द्र	1.1, 18.70, 72, 19.15
— मोनवित्	32.108, 43 162, 45 16, 18, 19, 42
— देवराज्	9 15
— देवेन्द्र	27.10, 49.6
— पाक्यासन	स मा 24.11
— पुण्ड्र स मा.	3 2, स मा 10 65, 24.8, 45.15
— गणवत्	23 6, 33 42
— महेंद्र	10.37
— वासव	7.18, 10 9, 18.45, स मा 6 4, स मा 7.7
— वृषहृत्	32 99
— शक	2 8, 4.16, 5.7, 19 3
— शचीपति	50.1
— शतवज्रु	5 21, 6 6, 10.9, 12
— शतमाल	10 4
— सहस्रहृत्	27.10, 47.2
— सहस्राक्ष	7.19, 10.13, स मा. 3.5
— सुरराज्	47.16
— हरि	29.3, 43.145
— हरिहृत्	34.39
ईश	see अच्युत
ईश	see धर्मनारीश्वर
ईशान	see धर्मनारीश्वर
उनेन्द्र	see मन्थुत
समा	see मद्रिसुता
उनापति	see धर्मनारीश्वर
उरुलम	see मन्थुत
शक्ति (देवी)	स मा 3.19
ऐक्यी	30.21
कङ्कालक्ष्मिन् (शिव)	see धर्मनारीश्वर
कच्छावपुत्र	see मन्थुत
कन्दर्प	see धनञ्ज
कल्पका (राति) (= कल्प्या)	5 36, 56, 35.59
कपदिन्	see धर्मनारीश्वर
कपालिन्	see धर्मनारीश्वर
कविता (सुरमियुता)	55 13
कमवाल्या (= देवा)	17 15, 19 20
कमलसितल	see चतुर्भुज
कंकटक (= कर्ली, कर्कट)	17.12, 5.34, 51, 35 57
कवि	see मद्रि
कार्यावली	see परिमुता

कान्ति (देवी)	स मा. 19 15	खगध्वजे	see अच्युत
कपिल (महर्षिव)	see अर्धनारीश्वर	खगेन्द्रासन	see अच्युत
काम	see मनङ्ग	गङ्गाधर	see अर्धनारीश्वर
कामदेव	see अर्धनारीश्वर	मदाधर (= विष्णु)	50.15, 20, 22, 24
कामराज (भैरव)	55 6	मदापाणि (..)	57.6
कामेश्वर	19 15	गङ्गाध्वज	see अच्युत
काव	see अर्धनारीश्वर	गिरिजा	see अद्रिमुता
कावप्र	see अर्धनारीश्वर	गिरिमुता	see अद्रिमुता
कान्तराज (भैरव)	see अर्धनारीश्वर	गिरीश	see अर्धनारीश्वर
कानरूपिन् (= कालरूप)	5.27-31, 43	गुरु (ग्रह)	see गृहस्पति
कालिन्दीरूप (= विष्णु)	52 99	गोत्रर्षु (महासिद्ध)	स मा. 25 16
काली	see अद्रिमुता	गोत्रभिद् (= इन्द्र)	see इन्द्र
काव्य (सुकप्रह)	32 17	गोपति (= शंकर, गयाया)	57.4, 6
कीर्ति (देवी)	स.मा. 2 19, 20, स.मा. 19 15, 49, 49	गोपाल (महेष्ट्र)	57.12
कुटिला (देवी)	31 5, 32 2, 65 33	गोमातृ (देवी)	45 9
कुञ्जलिनी (देवी)	see अद्रिमुता	गोविन्द	see अच्युत
कुमारिण (वितरतायां)	55 11	गौरी	see अद्रिमुता
कुमारी (देवी)	30 21	गौरीश	see अर्धनारीश्वर
कुमारेश्वर	स मा. 25 19	चन्द्रमदाधर	see अच्युत
कुम्भ (राशि)	5 41 58, 35 64	चनचर	see अच्युत
कुण्डलज	55.4, 57 45	चक्रधर (शंकर)	55 17
कुशेय	57 8	चक्रनेमि	see अच्युत
कुमुमासुच	see अर्धनारीश्वर	चक्रपाणि	see अच्युत
कुम्भपुष्प	see अच्युत	चक्रिन्	see अच्युत
कुतान्त	see अन्तक	चण्डमारो	see अद्रिमुता
कृतिका (देवी)	25 20, 31 22, 24, 38, 42, 48, 59, 86; 32 2, 65.27	चण्डा	see अद्रिमुता
कृतिका (नक्षत्र)	14 50, 25 20	चण्डिका	see अद्रिमुता
कृष्ण	see अच्युत	चण्डो	see अद्रिमुता
कैदार (मृदुकैदार)	स मा 15 14, 16	चतुर्बाहु	see अच्युत
कैलास	see अच्युत	चतुर्भुज	see अच्युत
कैलिनि (देवी)	30 27	चतुर्मुख (ब्रह्मा)	स.मा. 28.7, 20, 37, 43, 47, 32 89
कैलासासन	see अच्युत	—ध्वज	66.10
कैलासदेव	see अच्युत	—कमलासन	66.5
कौशेश्वर (= शंकर)	स.मा. 13 29, स मा 15 63, स मा. 16 63, 72	—पातृ	31 65, 72
कौमारी (देवी)	30 5	—पञ्चवदन	2.23
कौर्म (विष्णु)	58 71, 63 2	—पद्मज	31.26, 66.11
कौर्तिनी	see अद्रिमुता	—पद्मकम्पा	31.12
कृष्णा (देवी)	स मा. 2 20	—पद्ममयूत	34.24
कामा (देवी)	19.20, स मा. 2.19;	—परमेष्ठिन्	2.31, 34 67
	स.मा. 19.15, 49 49	—वितरामह	2.26, 27, 6.69, 72, 73, 77; 19 1, 6; स.मा. 14 30, 32

—ब्रह्मन्	2 19, 25, 28, 54, 14, 23,	जीमूतवाह्य	see धर्मनारीश्वर
—विरिञ्चि (-वि, -रिञ्च)	27.46, 55.70; 66 16	जृम्भायिका (रौद्र)	43.63
—वैद्यम्	19.3, 31 66, स मा 23 5, 66 6	ज्वलन	see ध्रानि
—वयम्	16.63, स मा 3 30	ज्वालामापीश्वर (कोटितीर्थ)	स.मा. 13 36
—वयुर्मूर्ति	see अच्युत	तमोमूर्ति	see धर्मनारीश्वर
वन्द्य (श्रेष्ठ)	12 49, 16 8, 17, 28, 31, स मा 10 63 स मा. 11 16, स मा 26 156	वारवन्द्य	see वन्द्य
—वन्दु	19 3, 18, स मा. 8 20, 27.12	वार्थ्य (विष्णु)	58 71
—वन्द्यम्	167., 20, 26, 18 32, स मा. 10 53, 24 6, 65 24	विर्माद्यु	see अमुमद्
—वाराधिप	57 53	वुरगानन (अश्वतीर्थ)	57 26
—मृगाङ्ग	65 41	बुला (यधि)	5 37, 17.27, 35 60
—विष्णु	54 37	{ विरौन (नैन)	see धर्मनारीश्वर
—वागधर	27 47	{ विनयन	see धर्मनारीश्वर
—ववाङ्ग	16 9, 27, 29, 20 4	विनेवा	see अश्विबुवा
—वाग्नि	16.24 26, 17.1; 18 72, 24 2, 40 5	विपुलानन	see धर्मनारीश्वर
—सोम	स मा. 3 33, स मा. 13 35	विपुलहा	see धर्मनारीश्वर
—हिमाधु	26 63	विपुलन्तक	see धर्मनारीश्वर
वन्द्यम्	see वन्द्य	विलोचन	see धर्मनारीश्वर
वर्षिवा	see धर्मिगुता	विविधम्	see अच्युत
वर्ममुष्ठा	see अश्विगुता	निगूलिन्	see धर्मनारीश्वर
वामुष्ठा	see धर्मिगुता	निगूलिनी	see अश्विबुवा
विनाङ्गदेश्वर	स मा 25 35	नितीवर्ण	57.49
घाया (देवी)	19 20	{ अयन	see धर्मनारीश्वर
वज्रप्राय	see अच्युत	{ अयम्बक	see अमरवदंकि
वज्रमूर्ति	see अच्युत	त्वष्ट	see अमुमद्
वदाधर	see धर्मनारीश्वर	त्वष्ट	see अमुमद्
वर्नादन	see अच्युत	दन (प्रजापति)	1 5 2, 11, 17 4 1, 2, 15, 19, 57 5.7, 6 26, 22 5, 18, स मा 8 14, स मा 28 26, 26 10
वपन्त (देव)	47.24	दमवपन्	see धर्मनारीश्वर
वपनी (रागिणीदेवी)	49 27 41 48	दनिग (वनपत्नी)	5.26
वत्सवपज	see धर्मनारीश्वर	दनेश्वर	स मा 13 21
वषेण	53 6	दण्डनायक	see धर्मक
वत्सनायक (= वषण)	10 41	दण्डाधि	see धर्मक
—वषेण (वत्सेश्वर)	10 26, 34 35, 37 38 42, 21 45	दवा (देवी)	49 49
—वागावधिनायक	10 43	दाशमनिगन्ध	see वत्सनायक
—वहन	9 17, 47; 22 28, 29 14	दापोदर	see अच्युत
—वहितेश्वर	10.29	दिग्देव	स मा 15 16
वलेण (वत्सेश्वर)	see वत्सनायक	दिनकर	see अमुमद्
वोद्वरेणु	see धर्मनारीश्वर	दिवाकर	see अमुमद्
		दुर्गा	see धर्मिगुता

देवदेव	see अच्युत	पवन	see वनवसुध
देवदेवपति	see अच्युत	पशुपति	see अर्धनारीश्वर
देवदेवेश	see अच्युत	पाशासन	see इन्द्र
देवमणि (शिव)	see अर्धनारीश्वर	पाश्चातिकेश	6-54 , 57.27 , 61 9 , 63 13
देवराज	see इन्द्र	पादंती	see अद्रिमुखा
देवो	see अद्रिमुखा	पादक	see अर्ध
देवेश्वर	see इन्द्र	पितामह	see अर्धुसुख
धृति (देवी)	स.मा 2.19 , स.मा 19 15	पिनाकधृक् }	
धनाधिप (देव)	57.63	पिनाकिन् }	see अर्धनारीश्वर
धनुष (-धर) (राशि)	5 39,56	पीतवासस	see अच्युत
धन्वातरि (देव)	56 27	पुण्डरीक (देव)	55 8
धरणीधर (देव)	57.49	पुण्डरीकाण	see अच्युत
धराधर (देव)	32.24	पुरन्दर	see इन्द्र
धर्म (देव)	2.12 ; 4-23-25,27,30 , 6 1 , 34 69	पुरुषोत्तम	see अच्युत
धर्म	see अस्तक	पुत्रहासज	27.42
धर्मराज (= वमराज)	see अस्तक	पुष्करलाप (पयोष्णाय)	37.86
धानु	see अनुसुख	पुष्करास	see अच्युत
धी (नक्षत्री)	49.49	पुष्टि (देवी)	19.20 , स.मा 2 20
धृति (,,)	स.मा. 2.19 , स.मा. 19 15 , 49 49		स.मा 19.15
ध्रुव (देव)	25.24	सूषन्	see धीसुमत्
धनाप्रपुत्र	53.81 , 54.1,2,34,38,39 , 55 2	पीलोमी (इन्द्राणी)	23 6
नर	स.मा 21 21	= पद्मी	27.10 , 33 14
नरोत्तम	see अच्युत	प्रजापति (देव)	11 33 , स.मा. 10 55 , 32 6 , 55 15 , 56 26 , 65.20
नागेन्द्र (विष्णु)	59.71	प्रमञ्जन	see वनवसुध
नाट्येश्वर	see अर्धनारीश्वर	प्रमा (देवी)	स.मा. 2.19 , 49 49
नारदगिह (विष्णु)	58 71	प्रनाशर	see अर्धुसुख
नारदगिहो (देवी)	30 9,22	प्रानुतिर	57.57
नारायण	see अच्युत	प्रनदेश	स.मा 13 16
नारायणी	see अद्रिमुखा	पुष (वर)	14-23 , स.मा 3 31 , 32.17
निद्रा (देवी)	see अद्रिमुखा	पुष्टरति (प्रह)	स.मा 3 31 , 24 2
नीलकण्ठ (शक्तिश्वर)	57.50	—पुष	32 17
नीलमोहि	see अर्धनारीश्वर	पुष्टर (पितामह)	see अनुसुख
नृबेहरिन्	see अच्युत	पुष्टर (परब्रह्म धरार)	स.मा. 10 55 ; स.मा 11 7,8 ; स.मा 12.12 , स.मा 14 39 , स.मा 18 2 ; स.मा 20 9 ; स.मा 22.27,29,31,31)
नृगिर	see अच्युत		
पञ्चवन् (ब्रह्मा)	see अनुसुख		
पञ्च (-पञ्चग्या , ब्रह्मा)	see अनुसुख		
पञ्चनाभ	see अच्युत		
पञ्चानन	see अच्युत	ब्रह्मरसा (देवी)	3.25, 10
पञ्चभूत	see अनुसुख	ब्रह्मणी	30 1
पारमेश्वरो	see अद्रिमुखा	ब्रह्मो	30 20
पारमेश्व	see अनुसुख	भ्रा (देव)	5 19

भगवतश्च	see धर्षनारीश्वर	महासेन	see दामुख
भगवती	see शक्तिमुता	महास्वाम्यु	see धर्षनारीश्वर
भद्रकालीश (कनकले)	57.63	महाहस (= हरि)	22.12
भद्रा	see शक्तिमुता	महेन्द्र	see इन्द्र
भद्रेश्वर	25.70	महेशान (महेश)	see धर्षनारीश्वर
भरणी (नक्षत्र)	5.31	महेश्वर	see धर्षनारीश्वर
{ भव	see धर्षनारीश्वर	महेश्वर (मरुकुणिकाया)	57.16
{ श्रवतीश		महेश्वरी	see शक्तिमुता
भानु	see शंभुमत्	मातरिश्वा	65.26
भानुमालिन्	see शंभुमत्	मातर्य (विष्णु)	58.71; 63.1
भार्गवनी	see शक्तिमुता	मादव	see शच्युत
भास्कर	see शंभुमत्	माया	see शक्तिमुता
भास्करि (भानुज, भानुमुत्)	see शरत्क	भारी	see शक्तिमुता
भास्वत्	see शशुमत्	माहत	see भगलसह
भीम (विश्वेश)	57.55	मार्ग (मार्गशीर्षनक्षत्र)	24.8
{ भूतनाथ	see धर्षनारीश्वर	माहेन्द्री	30.8
{ भूतपति		माहेश्वरी	see शक्तिमुता
{ भूतभावत		मित्र (देव)	स.मा. 25.44 , 31.72 , 43.54 , 56.26
भूति (देवी)	स.मा. 2.19 , 49 49		57.46
भूतेश्वर	स मा. 13.36	मिथुन (राशि)	5.33,49,50 , 17.6 , 35.56 , 62.34
भूधर (विष्णु)	57.48	मीन (राशि)	5.42,59 , 35.65
भूमिमुता (= संगत)	14 23,49	मुरारि	see शच्युत
भैरव	see धर्षनारीश्वर	मुष (नक्षत्र)	24.2,5,7
भरु (राशि)	5.40,57	मूल (,,)	53.3
भकरध्वज	see भनङ्ग	मृगाङ्क	see पद्म
भववत्	see इन्द्र	मृडानी	see शक्तिमुता
भलि (देवी)	49.49	भेष (राशि)	5.31,46,60 , 35.54
भस्ववपुष् (विष्णु)	see शच्युत	यत् (मृगरूप)	5.26
भदन	see भनङ्ग	यत्पति (यज्ञेय)	see शच्युत (यज्ञेय)
भधुपातिन्	see शच्युत	यत्सूकर	see शच्युत
भधुसूदन	see शच्युत	यम	see शरत्क
भनमय	see भनङ्ग	योगवायवि (श्रवाणे विष्णु)	3.26,29
भधु (देवता)	स.मा. 10.56 , 32.19 , 43 59 , 45.37 , 46.22,23,24,39,41, 42,55,56,61,62,69,70,75,76	योगसायिन् (सन्निहिते विष्णु)	57.28
महासेन	see धर्षनारीश्वर	योगिनी	29 56
महादेव (कुरुवाङ्गलपातक)	23.40	रति (कामप्रिया)	7.5 , 37.71
महादेवी	see शक्तिमुता	रन्धेश्वर	स.मा. 25.35
महानाथ	see भनन्त	रवि	see शंभुमत्
महामति (= मति)	स.मा. 2.19	रविज (गनीश्वर षट्)	14.49
महालि (देवी)	30.71	रहू (षट्)	69.9
महापास (बनस्पतिवपुर्धर विष्णु)	57.48	रवममंत् (धोणे)	57.60
		रुद्र	see धर्षनारीश्वर

छकोटि	स. मा. 15.22,23, स.मा. 25.48 ; 57.34,39,40, 62.26	वहग मधु	see बलनायक 19.11, स.मा. 10.56, 62.58 ; 65.22,23
छद्रुती	30.22	बभ्रुवाधिप (देव)	57.58
रोहिणी (सगिभार्या)	2.14, 16.24, 40.5	बभ्रुविराजकर्ता	19.16
लक्ष्मण	see मन्वुत	बह्नि	see मधि
लक्ष्मी	2.13,18 ; 17.20, स.मा. 1.4, स.मा. 8.6, 27.9, 49.29	वाजिमूल (कांतिका)	52.7
लक्ष्मीधर (विष्णु)	17.25	वागी (सरस्वती)	स. मा. 19.15,16
लक्ष्मिपुत्र	see भर्षनारोधर (भैरव)	वामन (द्विज-विष्णु)	52.5,6,7,13
विद्ध (ऐश्वर)	36.23, 57.56	वामन (विष्णु)	1.1 ; स.मा. 1.2 ; स.मा. 2.1,2 ; स.मा. 3.1, स.मा. 9.13,39-41 ; स.मा. 10.4,38,39,43,47,48,84, 87,91, स. मा. 15.65,66,78 ; स. मा. 22.3 ; 52.9.11,12,52, 77,90 ; 58.71 ; 59.19 ; 65.10,15,17,66,67 ; 66.4 ; 67.9, 69.14
सोमनाथ	see भर्षनारोधर		
सोन (सूर्य)	see भशुमत्		
षट्तिग	स.मा. 24.14		
षटेश्वर	स. मा. 25.12, 57.28		
वरदा (मन्त्रिका)	6.48, 25.68		
वपुस्त्रीणी	30.21		

(वामनस्वरूप-महालय-सहित)

(Forms of Vāmana with the Places or His Sacred Abodes)

—सप्तशृङ्ग (पयोजा)	63 7	—बुधमिथ (महोद्या)	63.30
—सहितवाग्मय (लीलोक्त)	63.40	—बुधेराय (बुध द्वीप)	63.42
—सप्तशृङ्ग (महलोक)	63.39	—बुधेराय (गोप्रतार]	63 10
—सहित (विद्यालय)	63.6	—सूर्य, धवल (सुतल)	63 36
—सप्तशृङ्ग (पारियात्र)	63 11	—कृतिवास (रसातल)	63 35
—सप्तशृङ्ग (निराकम्ब)	63 41	—केनाय (वाटागही)	63 15
—सप्तशृङ्ग (निपथ देवा)	63 13	—कोकनद (धरातल)	63 38
—सप्तशृङ्ग (पुष्कर)	63 14	—सोम (कीर्तिनी)	63.2
—सप्तशृङ्ग (माहेश्वरिण)	63 10	—सोमधर (सुकटावन)	63 19
—सप्तशृङ्ग (वाटागही)	63 15	—गरुड (सुकलोक)	63.39
—सप्तशृङ्ग (विहल द्वीप)	63.34	—गरुडवाहन (प्लवाशी)	63 42
—सप्तशृङ्ग (प्रमात)	63 20	—गरुडवाहन (वाटाह)	63.4
—सप्तशृङ्ग (बललोक)	63 39	—सोम, मन्मथि (मया)	63.9
—सप्तशृङ्ग (प्राचीन)	63 6	—सोम (उत्तरमाहेश्वर)	63.11
—सप्तशृङ्ग (रसातल)	63.35	—सोम (बलनी)	63 34
—सप्तशृङ्ग (गम्बूज)	63 35	—सोम (हरितवापुः)	63.2
—सप्तशृङ्ग (विलसल)	63 7	—सप्तशृङ्ग (बुधिन)	63 24
—सप्तशृङ्ग (सुरोच)	63 5		

—अश्वत्थर (मनुवादी)	63.8	—महदा (महिलासैल)	63.33
—अश्वत्थरि (त्रिद्विदशिक्षर)	63.29	—मात्स्य (मानसहृद)	63.1
—अश्वत्थरि (भेदिनी)	63.38	—माधव, धौरि (केदार)	63.3
—अनुवाङ्ग (अम्बुद्रीप)	63.42	—मुसलाहृष्टदानन (तल)	63.37
—अनुवाङ्ग (धूमरक)	63.25	—मद्योपर (नवराष्ट्र)	63.30
—अश्वत्थरि (महाखल)	63.36	—योगवासिन् (प्रयाग)	63.14
—अश्वत्थरि (भोगती)	63.31	—अश्वत्थरि (रांग)	63.24
—अश्वत्थरि (भद्ररंग)	63.4	—अष्ट (महालय)	63.22
—अश्वत्थरि (निराकाश)	63.41	—अष्ट (हिरण्यती)	63.32
—अश्वत्थरि (ब्रह्मरं)	63.70	—अश्वत्थरि (द्वापती)	63.5
—अश्वत्थरि (माहिष्मती)	63.19	—अश्वत्थरि (वाद्यगता)	63.15
—अश्वत्थरि (कातिन्दी)	63.3	—अश्वत्थरि (प्रयाग)	63.23
—अश्वत्थरि (समुद्र)	63.19	—अश्वत्थरि (सप्तुद्र)	63.16
—अश्वत्थरि (विप्रासा)	63.4	—अश्वत्थरि (विन्दिगवा)	63.17
—अश्वत्थरि (पुष्कर)	63.43	—अश्वत्थरि (दण्डकारण्य)	63.26
—अश्वत्थरि (सदयगिरि)	63.21	—अश्वत्थरि (प्रजासुख)	63.28
—अश्वत्थरि (वस्ती)	63.4	—अश्वत्थरि (कातिकेय, बहिष्ण (बुभारपर)	63.16
—अश्वत्थरि (शालिखर)	63.27	—अश्वत्थरि (नखरसैल)	63.12
—अश्वत्थरि (कृतपीन)	63.5	—अश्वत्थरि (प्लशावतरण)	63.25
—अश्वत्थरि (कटाह)	63.34	—अश्वत्थरि (गोकर्ण)	63.5
—अश्वत्थरि (वितल)	63.36	—अश्वत्थरि (शालवन)	63.32
—अश्वत्थरि (पद्मा)	63.16	—अश्वत्थरि (प्रवन्तिविषय)	63.13
—अश्वत्थरि (सतपुत्र)	63.22	—अश्वत्थरि (शोणशिशु)	63.6
—अश्वत्थरि (शंख)	63.43	—अश्वत्थरि (स्वतीक)	63.39
—अश्वत्थरि (विष्णुलोक)	63.41	—अश्वत्थरि (विविष्टर)	63.32
—अश्वत्थरि (गिरिपञ्च)	63.26	—अश्वत्थरि (शालपत्त)	63.43
—अश्वत्थरि (पाञ्चाल)	63.13	—अश्वत्थरि (सैवास)	63.33
—अश्वत्थरि (नैमिष)	63.9	—अश्वत्थरि (सहायिक)	63.11
—अश्वत्थरि (महाभद्र)	63.6	—अश्वत्थरि (भंग)	63.32
—अश्वत्थरि (माद्र)	63.24	—अश्वत्थरि (मन्त्रोद्धार)	63.31
—अश्वत्थरि (ब्रह्मण्य)	63.7	—अश्वत्थरि (मन्त्र)	63.17
—अश्वत्थरि (ब्रह्मलोक)	63.40	—अश्वत्थरि (मणिमन्त्र)	63.7
—अश्वत्थरि (विष्णुभेद)	63.3	—अश्वत्थरि (सरयु)	63.27
—अश्वत्थरि (शालवन)	63.32	—अश्वत्थरि (सिंहगयाकर्ण)	63.28
—अश्वत्थरि (क्षेत्रिकानदी)	63.30	—अश्वत्थरि (प्रयाग)	63.21
—अश्वत्थरि (ख्या)	63.26	—अश्वत्थरि (प्रभास)	63.20
—अश्वत्थरि (कोदाता)	63.29	—अश्वत्थरि (शामन्)	63.33
—अश्वत्थरि (सुपष्ट)	63.30	—अश्वत्थरि (शरयु)	63.31
—अश्वत्थरि (त्रिभूवन)	63.24	—अश्वत्थरि (शिवानन)	63.8
—अश्वत्थरि (विष्णुगण)	63.25	—अश्वत्थरि (मनुनाट)	63.26
—अश्वत्थरि (सन्तोदावर)	63.23	—अश्वत्थरि (प्लशावतरण)	63.25

—श्रीपति (नमंदा)	63.18	विनायक (देव)	17.14 ; 28.72
—सदाशिव (विष्णुपाद)	63.12	विश्वव्याप्तिनी	see शक्तिसुता
—सनातन (शिवलोक)	63.41	विपश्चित् (इन्द्र)	46.26
—सहस्रशिरस् (रसातल)	63.35	विभावरी	see शक्तिसुता
—सहस्रायु (शाकटोष)	63.43	विधु	see मन्वन्त
—सुधापति (मधुपा)	63.25	विमलेश्वर	स मा. 13.15
—सुनेत्र (सैन्धवारण्य)	63.31	{ विरञ्चि	
—सुवराशि (भृगुसुजा)	63.9	{ विरिञ्चि (-व)	see चतुर्भुज
—सूर्य (उदयनिरि)	63.21	विरुपाक्ष	see धर्मनारीश्वर
—सोमसोमिन् (महेन्द्र)	63.11	विवाहवत्	see मन्वन्त
—सौमित्र (सत्यवादि)	63.12	विद्यानाथ	18.35
—स्वन्द (शरवण)	63.21	विद्वन्मन्त्र	see धनत्वर्द्धकि
—स्वारायु (कुम्भजात)	63.17	विद्वन्मन्त्र (शोकेश्वर)	55.6
—स्वपन्थु (मधुपन)	63.14	विद्वन्मन्त्र (करोश्वरस्वयम्)	57.14,15
—हयमोय (महोदय)	63.14	विद्वेष	see मन्वन्त
—हयसौर्य (हृष्णाश)	63.2	विन्दोक्ष	32.19 ; 56.26 ; 65.20
—हंस (हंसपद)	63.6	विष्णु	see मन्वन्त
—हंसयुक्त (महाकोपी)	63.27	विष्वक्सेन	see मन्वन्त
—हरिसङ्कर (पाताल)	63.38	वीरभद्र (देव)	57.53
—हाटकेश्वर (सप्तगोदाश्वर)	63.23	वृद्धकेशर	see केशर
—हिरण्यनाथ (हेमकूट)	63.21	वृद्धिक (राशि)	5.38,55 ; 17.26 ; 35.51
—हृषीकेश (लौहदण्ड)	63.29	वृषहृष	see इन्द्र
—हृष्टमूर्धन्य (कुम्भनाथ)	63.3	वृष (राशि)	5.32,48 ; 35.55
—हृताशन (माहिष्मती)	63.19	{ वृषधेतन	
बाबु	see धनलक्ष	{ वृषभध्वज	see धर्मनारीश्वर
बाबुबाप (गरुड)	स मा. 17.6	{ वृषवाहन	
बाबुचक ()	स मा 17.6	वृहस्पति	see वृहस्पति
बाबुबाल "	" "	वेधम्	see चतुर्भुज
बाबुबल "	" "	वैकुण्ठ	see मन्वन्त
बाबुमण्डल "	" "	वैतलेश्वर	see मन्वन्त
बाबुसेतु "	" "	वैवस्वत	see धर्मनाथ
बाबुसेव "	" "	वैशानर	see धर्म
बाबुसुता "	" "	वैष्णवी (देवी)	30.5,21
बाबाह (विष्णु)	32.25 ; 57.48 ; 58.71	वाकर	see धर्मनारीश्वर
बाबाझे (देवी)	30.7,21	वदिक (देवी)	19.20
बाबाब	see इन्द्र	वाहू चक्रवादीश्वर	see मन्वन्त
बाबुदेव	see मन्वन्त	वाक	see इन्द्र
बिष्णुराज	see धर्मनारीश्वर	वाची	see पानोमो
बिष्णु (देवी)	49.49	वाचीपति	see इन्द्र
बिष्णुराज	see धर्मनारीश्वर (शैल)	वातन्तु	see इन्द्र
बिष्णु	see मन्वन्त	वातवह	see इन्द्र
		वातामरी (देवी)	33.38

शनिश्चर (ग्रह)	21.23; स.मा. 3.14; 32.17	सरस्वती (लिङ्गाकारा)	स.मा. 19.4,6,13,16 ;
{ चन्द्र	see अर्धनारीश्वर	,,-श्वेतरूपा	स.मा. 25.10 , 49.26 , 65.27
{ शर्व		सरस्वती (देवी)	49.26
शनिशेखर	see अतनायक	सवित्र	see अग्निगुता
शशधर	see अश्व	सहस्रहृद्	see अशुभर
शयाङ्क	see अन्द्र	सहस्रलिङ्ग (दशाधमेधे)	see अश्व
शशि	see अन्द्र	सहस्राक्ष	see अश्वत
शशिरोरार	see अर्धनारीश्वर	सहस्राक्ष	see अश्व
शाकम्भरी (देवी)	see अग्निगुता	साध्य (देव)	32.19 ; 43.59
शान्ति (धोदेवी)	स.मा 2.20	सिंह (राशि)	5.35,52 ; 35.58
शान्तिग्राम (-शाकग्राम)	32.80 ; 57.72	सिद्धि (देवी)	स.मा. 19.15
शक्तिध्वज	32.13	सिद्धेश्वर	स.मा. 25.30
= शक्तिवाहन	32.16	सुन्दरान	see अश्वत
शिव	see अर्धनारीश्वर	सुनेत्र (देव)	57.61
शिवदूती	see अग्निगुता	सुरभि (देवी)	27.5 ; 55.13
शिवश	see अग्निगुता	सुरवर्द्धकि	see अमरवर्द्धकि
शुक्र (ग्रह)	14.23 ; स.मा. 3.31	सुरता (देवी)	27.5
{ मूलधर	see अर्धनारीश्वर	सुरेजान	see अश्वत
{ मूलधृक्		सुरेश्वरी	see अग्निगुता
{ मूलपाणि		सुवर्गाक्ष (देव)	see अर्धनारीश्वर
मूलबाहु (मोविन्द)	55.17	सूकरवपुस्	see अश्वत
मूर्तिन्	see अर्धनारीश्वर	सूर्य	see अशुभर
शेष (-नाग)	see अनन्त	सोम (देव, सोमतीर्थ)	57.44
शैलपो	see अग्निगुता	सोम	स.मा. 13.33 ; see अश्व
शौरि	see अश्वत	सोमपापिन् (गोपाल)	57.12
शुद्धा (धोदेवी)	19.20	सोमराज	see अर्धनारीश्वर (भैरव)
श्रियादेवी	49.30	सोमेश्वर (सोमतीर्थ)	स.मा. 13.34 , 57.32
श्री (पद्ममालिनीश्री)	49.16,49	स्वाणु	see अर्धनारीश्वर
श्री (ब्राह्मी)	स.मा. 3.35	स्वानुलिङ्ग	स.मा. 24.7 , स.मा. 25.51,54
श्रीकण्ठ (ईश्वर)	see अर्धनारीश्वर	स्वान्मोश्वर	स.मा. 23.15
श्रीधर (अश्वतीर्थ)	57.26	स्वर	see अनन्त
श्रीधर	see अश्वत	स्वृति (धोदेवी)	19.20 , स.मा- 2.20
श्रीजिवात (पञ्चावतारणै)	57.57	स्वच्छन्दराज	see अर्धनारीश्वर (भैरव)
श्रीपति	see अश्वत	स्वधा (सरस्वती)	स.मा. 19.15
श्रीज	see अश्वत	स्वधमुत्र (मयुवने)	57.32
श्रुति	स मा. 2.20	स्वर्षद्	see अशुभर
श्रमण	see अननसख	स्वाहा (सरस्वती)	स.मा. 19.15
शतो	see अग्निगुता	स्वर्षद्	57.32
सदाशिव (देव)	57.18	स्वाहा (सरस्वती)	स.मा. 19.15
शनाहनी	see अग्निगुता	स्वर्षद् (महाभोरवा, हंसवरे)	55.10 , 57.60
शरत्काली (देवी) , हरिजिह्वा	20.36 ¹ स. मा. 10.53 ; स.मा. 11.5,23 ; 59.60,6 . 112,120	स्वर्षद् (महोरवे)	57.25
		स्वर्षद् (देवहरे)	52.8

हर	see धर्धनारीश्वर	हिमशेखर	स या 25 40
हरि	see प्रच्युत	हिमाशु	see बन्द
हरि	see इन्द्र	हिरण्यनाभ	see धर्धनारीश्वर
हरिहय		द्वतवह	see मनि
हलायुध	see प्रच्युत	द्वताण (- न)	see मनि
हव्यमुक्	see प्रनि	द्वपीकेश	see प्रच्युत
हृतिपादेश्वर	स मा. 25 20	द्वैमवती	see मद्रिमुता
रुद्रकेश्वर (सप्तगोदावरी निव)	37 78,81 , 39 55,115, 121,128,138	हो (देवो)	स मा 2 19 , 49 49

(3)

देवयोनि-नामानि

(गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, गण, नागादि के नाम—Names of Demigods)

अग्निज (= कातिकेय)	32 96, see पम्पुष	एकाक्ष (प्रमथ)	31 73
अच्युत (प्रमथ)	37 74	कडूला (मातृगण)	31 97
अञ्जन (गृह्यकेश्वर)	37-55, 80 , 38 14,15,41 , 39 134	कनकेशण (प्रमथ)	31 81
—गहाञ्जन	39 131	कर्णिल (गृह्ययज्ञ)	स मा 13 44
अलिपस (प्रमथ)	31 69	कमलाक्षी (मातृगण)	31 99
अलिचर्मम् ,	31 68	कराल (प्रमथ)	31 84
अलिच्छुङ्ग (पार्यद)	31 67	ककटिका (मातृगण)	31 101
अद्रिकम्पक (प्रमथ)	31 75	ककटक (नाभ)	29 74,76,77
अनन्त ,	31 73	कलरोदर (गण)	31 73 , 32 51
अनुवक	31 66	कात्तंस्वर (,,)	42 56,57
अनुवक (गणेश्वर, शृङ्गी)	44 90,91	कार्तिकेय (गणेश्वर)	31.2,25,43,58 , 32.49,90 , 47 23]. see पम्पुष
अपरराजिता (उमासखी)	4 4 , 28 12 , 42 9	कालव (प्रमथ)	31 66
अम्बुज (प्रमथ)	31.73	कालबन्द (,,)	31 75
अर्धपति (= कुवेर)	57 27	कालसेन (,,)	31 71
अष्टबाहू (प्रमथ)	31 79	काली (भेनासुता)	25-4,24,35,47,61 , 26 37,42,56,60,61 , 27 34,42
अल्केग	31.64	किरीटी (प्रमथ)	31 73
अस्कावनी (मातृगण)	31 97	कुक्कुटिका (मातृगण)	31 101
असूक्ष्मशेखला (महायक्षी)	स मा 13 45	कुटिला (भेनासुता)	25.3,6,9,12,13 , 31 5,7,11,18, 29,30,34,37,40,41,43
अन्धाय (प्रमथ-अनुचर)	31 71	कुण्डजठर (प्रमथ)	31 86 , 43 01
अमाद	31.59	कुण्डोदर (गण)	42 34,39
अमा (भेनासुता)	25 22,30 26 11	कुन्दो (प्रमथ)	31 73
अर्वाणी (धर्मसरम्)	7 14,19 , 9 14,19	कुन्द (,,)	31 65
अशुक्लमेक्षता (मातृगण)	31.95	कुवेर (यथापिपति)	32 23
—अशुक्ला ,,	32 59	—धन्द	6 46 , 9 15,45
अशुक्लाणी ,,	31 101	—धनपिय	57 63
अश्वेश्वरी ,,	31 98		
एक-रुद्र	31 93,96 , 32.69		

परिशिष्ट

— घनेश्वर		21.44	घटक "	31 70
— यज्ञ	स.मा. 12 21 ; स.मा. 13 26 ; स.मा. 14 37		चण्डिका (मातृगण)	31.94
हुमार (— वातिशेष)		see पशुसू	चतुर्वेद (प्रथम)	31 77, 85
हुमुद (प्रथम)		31 73	चरतरासिनी (मातृगण)	31 100
हुमुदमणिवृ (")		31 61	चद्र (घण)	23 39
हुम्नपञ्च (गण)	42 39, 43 48		चन्द्रभाग (प्रथमपत्र)	31 38
हुम्नवचन (प्रथम)		31 87	चन्द्रोमणि (गण)	31.4
हुवलप "		31 80	चाखवचन (प्रथम)	31 82
हुगुम "		31 65	चापवचन "	31.88
हुर्मशीव "	31 86, 32 52		चिपदेव (प्रथम)	31 79
हुष्णवेदा (प्रथम)		31 84	चिपख्य (")	31 79
होमनद "		31 74	चिपमैत्रा (मातृगण)	31 98
हाकनामा (मातृगण)		31 101	चिपान्नद (सार्वभ)	स.मा 25 33
होट्टा "		31.98	चोडो (मातृगण)	31 94
हं द्विष्य "		see पशुसू	चटायर (गण)	31 84
हव "		31 77	चम्बूव (प्रथम)	31 80, 88
होश्व "		31 77	चव (")	31 68
खटवटा (मातृगण)		31.100	चवन्तो (पार्वतीसखी)	4 4, 28 12, 42 9
खर (राणस)	स मा 25 22		चवा (गौतममन्दिरो, पार्वतीसखी)	4 3, 4, 10-12, 14, 15, 21, 28 12, 42 9, 43 85, 86
ख्यति (मातृगण)		31 99		
खम्बुष		see विनायक	खनपि (बहयबाह्व)	9.17
खमान		see विनायक	खनेपरी (मातृगण)	31.101
खगरति		see विनायक	खिलपु (प्रथम)	31 83
खिजा (मेनामुता बाली)	25 58, 27.15		खलामिद्व "	31 68
खिखिरी (गण)		32 60	खलानामुख (गण)	32 52
खीर्षिमा (मातृगण)		31.93	खल (गण)	1.27
खुइ (= वातिशेष)		see पशुसू	खानवचन (प्रथम)	31 71
खुप्रान (प्रथम)		31 82	खिलोतमा (सन्तरु)	48.18
खोनन्द "		31 78	खिसिर (प्रथम)	31.66
खोदर (गण)	28 74, 42.35, 39, 43.31		खीर्षेण (मातृगण)	31.93
खोदर (राणस)		64 28	खुषा (मातृगण)	31 101
खण्डकर्ण (प्रथम)		31 61, 43 50	खुचुर (सन्तरु)	27.15
खण्डारवटा (गण)		41 14	खिखरेवृ (राणस)	स.मा 25 23, 43.54
खाखना (मातृगण)		31 92	खण्डक (गण)	31 64, 32 53
खनाद (प्रथम)		31 67	खण्डेव (= राणस)	59 103
खन "		31 69	खानन (गण)	31 85
खणो (पार्वतीसखी, सन्तरु)	39.30, 41, 79, 84, 86, 105, 107, 108, 128, 129, 130, 149, 150		खण्ड (गण)	31 70
ख (प्रथम)		31 66	खण्डा (मातृगण)	31 99
खण्ड "		31 73	खण्ड (प्रथम)	31.70
			खिखरेवृ (गण)	41 14

दिवाकर (= दिवाकोति, राससमुत्)	64 45,46	पिण्डाक (,,)	32-63
दूषण (रासस)	स मा 25.23	पुण्ड्रना (,,)	31.59; 32.55
देवमित्रा (मातृगण)	31.98	पूतना (अन्तरम्)	46.27,29
देव्याजिन् (गण)	31.85	पोष्क (रौद्र, धर्मराजवाहृत)	9.16
धनद	see दुबेर	प्रमाय (प्रमय)	31.71
धनाधिप	see दुबेर	प्रमोक्षा (अन्तरम्)	38.41
धनेस्वर	see दुबेर	प्रहास (प्रमय)	31.74
धमधमा (मातृगण)	31.96	प्रियक (,,)	31.74
नकुलीरा (गण)	स मा 25 13	प्रियङ्कर (,,)	31.76
नन्द (गण)	31.76	पलासा (मातृगण)	31.93
नन्दिक (प्रमय)	31.78	पशुदत्त (प्रमय)	31.90; 32.67
नन्दित् (सपत्नायक)	26.7 31.64	बह्मोव (,,)	31.86
नन्दि (= गणनायक)	स मा 21.12, 26 70,	बहुमुद्रिका (मातृगण)	31.98
(= गणाधिप)	27.1,22, 28.39,62,67,	बाहुनाल (प्रमय)	31.90
(= गणेश्वर)	33.31,33, 34 1; 36.3, 41 1-4,	भद्रबाली (मातृगण)	31.94; 32.69
	42.17, 44-53, 43.9,13,15,17,18,25,	भोम (प्रमय)	31.70,78; 32.58
	48,80,82, 44 88,90	शुद्धिरिति (वेन गणाधिप)	स.मा. 27.5
= गौतादि	33.34, 34.4, 41.1,22, 42.16,18,41,	शुद्धी (अन्तरम् अणपति)	44.72,75
	43 21,85	शैष्टी (मातृगण)	31.94
नन्दित्नी (मातृगण)	31.91	मकराक्ष (प्रमय)	31.89; 32.78 80
नन्दियेण (सपत्)	42.55,58,59, 43.48	मगिभद्र (यसाधिपति)	18.3
नन्दित्सेन (प्रमय)	31.61	मवालाता (विश्वावतुपली)	33.12
नल (विश्वकर्मासुत्)	39.154	मधुहुम्भा (मातृगण)	31.99
नागजिह्व (गण)	31.88	मधुवर्न (प्रमय)	31.80
नाडिजिह्व (,,)	31.71; 32.61	महाप्राही (यतिनी)	स.मा. 13.39
निकुम्भ (,,)	31.73	महाजय (प्रमय)	31.68
निरोधय (,,)	41.14	महानन (,,)	31.87
नैगमेय (,,)	41.8; 42.61,62; 43.49	महापाशुपत (,,)	41.16,20,23,49,51, 42.19,24
पद्भुज (,,)	31.64	महामुञ्ज (,,)	31.71
पञ्चशिख (,,)	31.89; 32.59	महापानो (मातृगण)	31.101
पद्मावती (मातृगण)	31.96	महासेन (= वाहिकेय)	see पण्मु
परारुम (गण)	31.63	महीरर (गण)	42 32,39
परिष (,,)	31.70	माधवी (मातृगण)	31.93,96
पर्जन्य (पन्धर्वराज्)	37.80; 39.30,41,132,135	माज्वर (गण)	31.77
पत्तिता (मातृगण)	31.99	मालकट (सक्ष)	18.44,53,58,67
पाञ्चालिक (धनदमुत्)	6.46, 57.27	मालिनी (पार्वती-सखी)	27.51-53,55,56; 28.56-58,60;
पाणिर्दूर्म (गण)	31.88		42.9
पार्वती (मेनासुता, काली)	25.39,61,63,65	माहियक (प्रमय)	31.90
पार्विक	see पण्मु	मुद्गन्द (,,)	31 65
पिङ्गल (गण)	31.64,90, 32.56	मृदु (कालपली)	स.मा. 26.6
पिण्डाकार (,,)	31.87	मेघनाद (प्रमय)	31.95

मेनका (अक्षरम्)	54.37	= गजमुख 28.70 ; = गजानन 28.58 ;
मेना (= मेनका) (अग्निष्वात्तवानसीकन्या, द्विषादिभार्या)	22.16,17 ; 24.10 ; 25.2,4,21 ; 26.50,57,59	= गणपति 42.29 ; 43.14,15 ; = गणेश 42.35 ; = विघ्नराज 42.3 ; = विघ्नेश 42.6
मंनित्र (गण)	41.14	विभीषण (राक्षस) स.मा.16.11
मन्त्रेन्द्र	800 कुबेर	विशाख (गण) 41.8 ; 42.40,59,61,62 ; 43.49 ; see पद्मसुख
मन्त्रवाङ्मय (प्रमय)	31.93	विशोक (,,) 32.67
मोयभैष्ठी (मातृगण)	31.94	विशोला (मातृगण) 31.92
रक्षाश (गण)	32.76	विद्यावसु (गन्धर्वराज, महेंद्रनाथरु) 33.10,12
रणीकट (प्रमय)	31.75	वीरभद्र (गणप, गणनाथरु) 4 18,20,23,30,31,35,38,42,47, 48,52,53-56 ; 27.3 ; 41.17 ; 57.63.
रम्भा (अक्षरम्)	6.6 ; 12.50 ; स.मा. 17.3 ; स.मा. 25.33 ; 54.37	— गणनाथरु 4.30,45,50 ; गणप 4.39 ; — गणाधिप 41.22 ; गणाधिपेन्द्र 4.50 — गणेश 4.24,26-28,49
रागवती (मेनायुता)	25.17,20	वृषभध्वज (गण) 42.50
— रागिणी	25.2	वृषभध्वजिन्द्र (,,) 41.11
रावण (राक्षसराज)	स.मा. 16.9,11 ; स.मा. 25.15	शेगारि (प्रमय) 31.78
रुद्र (प्रमय)	31.91 ; 41.5	शेवमिना (मातृगण) 31.97
रौद्रा (मातृगण)	31.101	शकटचक्रास (रौद्र, पनदवारन) 9.18
सलिला (= काली)	25.41	शकटचक्रवास (गण) 32.59
सोह्रजङ्घ (प्रमय)	31.87	शङ्करा (गण) 32.54 ; 43.48
सोह्रमेखला (मातृगण)	31.101	शङ्करा (विद्याधर) 23.40 ; 31.69 ;
सोह्रिलास (प्रमय)	31.61	शङ्करा (प्रमय) 31.73
सस (,,)	31.64	शतचन्द्रा (मातृगण) 31.95
सपु (अक्षरम्)	46.72,73	शतनीर्य (प्रमय) 31.78 ; 32.66
सपुष्पती (मातृगण)	31.101	शक्तिप्रभा (पार्वतीसती) = शोयप्रभा 25.67
सपुत्रा (,,)	31.91	शशीसक (प्रमय) 31.88
सपुत्रिणी (प्रमय)	31.54	शाख (गण) 41.8 ; 42.61,62 , 43.49 ; see पद्मसुख
सामुकि (नाग)	23.39	शाखकटकट (= कुबेरि) 41.10 ; 16.40
सामुकि (मातृगण)	31.100	शालिका (मातृगण) 31.95
सामुकि (प्रमय)	31.63	शालिकिन्द्र (= कुमार) 32.112
सामुकि (,,)	31.68	शालार (अग्निध्वजक) 42.42
सामुकर (= विमेश)	see विनायक	शैलादि (= शक्ति) see मन्दि
सामुकर (गौतमनन्दिनी, पार्वतीसती)	4.4 ; 28.12 , 42.9 ; 43.55,96	शोयती (मातृगण) 31.98
सामुकि (प्रमय)	31.35	श्रुतवर्ण (प्रमय) 31.91
सामुकेति (विद्याधरपति)	11.4	श्रुतायुष (ना) 32.57
सामुकेति (प्रमय)	31.92	शैलानन (प्रमय) 81.50
सामुकेति (विष्णुसाहू)	12.44 , 31.102	शराना (= पद्मसुख) see पद्मसुख
— शैलेय	18.34 ; 27.9 ; 47.21	
सामुकर (विद्याधरपुत्र, पार्वती)	17.14 ; 28.72 ; 42.3,28, 30,31,34,38,50 ; 43.50 ; 44.17	

वामनपुराण

पद्मसूत्र (= कर्तिकेय) 31.24, 39, 42, 45, 49, 51, 70, 41 7	सुवनाश (प्रमथयण) 31.89 , 32 72, 74, 47, 78, 79
= कुमार (चतुर्भुज, कुटिलायुध) 31 40, 43, 53, 56, 57 ,	—सुचक्रनेत्र 32 116
32 1, 5, 27, 98 42 51, 60 ,	सुदामा (मातृगण) 31 101
47 32	सुपक्षना " 31.97
—कौटिल्य 32 109	सुप्रथ (प्रमथ) 31 72
—गृह (शकरसुत) 31 26, 27, 44, 55, 60, 72 ,	सुप्रभाता (मातृगण) 31 97
32 8, 26, 88	सुप्रसाद (प्रमथ) 31 83
—महासेन (चतुर्भुज, अग्निमुत) 30, 54 , 31 40, 45	सुबाहु " 31 79
(= अग्निज) 32 96	सुभङ्गता (मातृगण) 31 97
(= पावकि) 32 107	सुयज्ञा (पार्वतीसखी) 43 80, 88
—विधात (चतुर्भुज) 31 40 , 41 8	सुयज्ञेस (प्रमथ) 31 68
—वाल (चतुर्भुज) 31 40 41 8	सुव्रत (") 31 72
—वारदत्त (शरवणसुत) 31 45	सुपमा (मातृगण) 31 96
—षडानन 41 8	सुविश्वर (प्रमथ) 31 66
—स्कन्द (पौरोयुध) 17 15 , 31.1, 2, 23, 44, 57, 62 87	सूचीवक्त्र (") 31 74
41.7 , 42 27, 40 44 16 ,	सुपत्ता (मातृगण) 31 99
47.25, 31, 33 , 57.47, 52	सुर्पाक्षी (राक्षसी) 64 26, 39
पोडशाच (प्रमथ) 31 77 , 32 66	सोपानीया (") 31.95
सप्रथ " 31.63	सोमप्रभा (पार्वतीसखी) 25 60 62
सप्रह " 31 68	सोमप्रायण (प्रमथ) 31 85
स्यानिका (मातृगण) 31 100	स्फन्द (गणपति, वार्तिकेय) 30 पञ्चसुख
सत्यसन्ध (प्रमथ) 31.72	स्वाणु (प्रमथ) 31 53 , 32 50
सर्वोजम् " 31 90	स्यागुजङ्घ (,) 31 87
सह " 31 81	सिमातानना (मातृगण) 31 93
सहस्रनयन (गण) 32 57	स्वर्गपाल (प्रमथ) 31 67
सहस्रबाहु (प्रमथ) 31 76	हसवक्त्र (,) 32 82
सामरवेगिन् " 31 81	—हस्ताद्य 31.86 , 32 66
सितकेश " 31.84	हृत्प्रपद (= हृत्प्रपद) स मा 16.3 , स मा 25 42 , 56 27
सितोदर " 31 76	ह्यानन (प्रमथगण) 31 86
सिद्धयान " 31 75	—पुरगानन 57.26
सुषमन् " 31 72	हूह (पञ्चर्ष) 58.64
सुकेशि (राक्षसेश्वर) 10.34 , 11-2, 4, 11 58 , 13 55 ,	
14.19 , 15 67 , 16 1 5, 60 61 ,	
23.40 , 42.35	

(4)

असुरनामानि

(असुरों के नाम, Names of Asuras)

भद्रहाद स मा. 2 8	37.1, 2, 4, 27 , 40 20, 22, 24, 27,
भद्रवक (= धन्व) 8.43, 44, 70 , 9, 1, 3, 4, 6, 7, 26, 45 ,	37, 41, 42, 47, 50, 52, 55, 59, 64 ,
10.2, 4, 7, 8, 11, 19, 21, 35, 41 51-55 ,	42.1, 6, 7, 43.1, 6, 48, 76, 81, 83, 84,
स.मा. 26 72 , स मा 27.3 ,	91, 97 , 44 1-3, 6, 51, 68, 73, 84,
32.33, 34, 35, 45, 47 , 33 1, 6, 19,	88, 89, 91 ; 45.3 , 47.7
33, 34, 37, 39, 40, 46, 47 , 34 1 ,	—द्वैरुष्यलोचनि 8.45 , 43.96

धय शङ्ख	9.29, स मा 8.30 ; 21.23, 40.61, 51.23	दुग्धुभि	-	9.29 ; 20.21-23, 35
धय शिरस्	42.60, 62, 43.18, 48	दुर्दर		21 32
धरिष्ट	59 101	दुमुख		21.32
धरशोष	30.71	दुयोधन	40 53, 55, 56, 63 ; 42 45, 46, 43.50	
धथप्रोच	43.49	द्विभूर्ध्व		43.54
—धथशिरस्	स मा 8 30	धुम्बु	52 13, 16, 17, 19, 20, 26, 27, 29, 30, 38, 43, 46, 52, 57 61, 72, 77, 90	
धत्तिलोमन्	21.50 ; 51.23, 52 41	धूम्रलोचन (= धूम्राक्ष)		29.40, 41, 43, 46
इत्यल	43 56	नतेश्वर		51 23
उग्रकामुक	21.32	नमर	18.38, 39, 40, 66, 20 19, 37, 21 4, 13	
उग्रामुन	20.19	नमुचि	29.2-4, 32 96, 40.33	
उग्रस्थ	21.31	नरक	स.मा. 8 12, 43.59	
उदन्न	21 32	निवातपत्र		43.59
उद्वत	21.32	निबुम्भ	22 4, 6, 7 ; 28.76, 29 2-4, 11, 20, 25, 28, 30, 34 30, 43, 33, 40, 49, 68	
वस	59.71, 101	पाक	40.63, 43.56, 45.13, 47.9	
वन्दरमालिन् (= वन्दर)	37 79 ; 38.5, 7, 39.132, 136, 158	पारिभर		48.9
करम्भ	18.42, 44	पातालकेतु		32.35, 33 5, 13
करतास्य	21.31	पिबन्त		20.19
कर्त्तस्वर	40.61, 42 56, 57	पुर		43 56, 45 15
काल	40 63	पूतना		59 104
कालनामान	40.62	पृथु		43 55
कालनेमि	40.62, 43.57 ; 47.12, 35, 40, 41, 45, 47	प्रथ		स.मा 8 31
कुचक्रुश	स मा 8.31	प्रतम्ब		59 104, 62 30
कुवम्भ	9 28, 10.36, 40 स मा. 8.12 ; 32 32, 40.60 ; 42 43-45 ; 43 4, 9, 18, 53, 156, 157 ; 47.8	प्रह्लाद	1.4, 5 22, 7.22, 31, 63 8 20, 30, 34, 45, 67, 9.1, 2, 27, 46, 10 14, 18, 22, 24, 36 स मा 2.4, 8, स मा 8.1-10, 15, 33, 47.1, 48 19, 22, 27, 32, 34, 35 51 2, 14, 19, 25 52 1, 2, 55 2, 57 40, 58 1, 62 1	
केलि	59 71, 101	मल	9 30, 10 40, 43 18, 49, 106, 108, 109, 115, 155, 45 16	
कैटभ	64.115	मलि (नेरोवनि)	1.1, स.मा 2 1, 3, 5, 12, 13, 18, 21, स मा. 3 2, 4, 6, 14, स मा 8 1, 4, 11, 15, 33, 44, 46, 48, स. मा 9 39 ; स मा. 10 1, 3, 10, 36, 40, स मा 15 65, 40.60, 42 38, 43 48, 47.1, 2, 12, 40, 41, 48 2, 4, 10, 12, 13, 15, 16, 19, 21-23, 27, 28, 30, 35, 44, 49, 50 49 1, 4, 8, 12, 15, 47, 50, 51, 50 4, 51.2, 18, 19, 25, 38, 57, 52 10, 59.102, 62.1, 28, 54, 64 7, 10, 65 9, 17, 35-37 45, 46, 49, 50, 53, 66, 66.1 ; 67.4, 7, 21, 68 52, 57, 60, 61, 63, 71	
चण्ड	20.1, 2, 19, 21.50 ; 29 17, 23, 34, 49, 54, 62, 67, 68, 76, 77, 81, 85, 86, 30.1			
चाणूर	59.101			
चिबुर	20 19, 37, 21 23, स मा 10.61			
जम्भ	9.28, 47, 10.36, 38-40, स मा 8 12, 32 32, 40.60, 43.18, 52, 110-112, 115, 118-120, 156, 158-160, 162, 47.8			
धलोद्भव	55.20, 27			
धार	21.50, 33.32, 34.42, 45.3, 6			
धारक	18 71, 25.28, 26.58, 31.52, 32.3, 32, 42, 46, 47, 64, 69, 81, 83, 85 ; 33 15, 16, 47-13			
नारकाभ	62 32			
गुरङ्गकन्धर	42.58			
गुरङ्ग	40 60 ; 42 25, 28, 36, 37, 43.50			

बाण	स मा 8 12 ; 32 46,76,77 78,80, 85 117,118 ; 40 61 ; 43 49, 45 15 ; 47,51 ; 48 1,6 10,13, 62 30 65,9, 36, 37, 46,47,51, 52,53,65	विप्रचिति विलम्बपुद् विरोचन	स मा. 8 30; 30 68, 40 62, 51 22 43 54 9 28 47, 10 25 33,34,36 स मा 2,5; स मा. 3 4 ; स मा. 8,11,44, 32,32, 40 61; 43 18, 47,2 9, 51,14, 64 7
बालकल	20 19 ; 21,32	विलोमकृत	51 23
विद्यासनयन (= विद्यालयेन)	21 32	वृष	9 30, 10 40, 40 48, 43 18 49, 52,31
भङ्गकार	स मा 8 30	वृषपर्वन्	37,22, 40 61, 48 8, 51 23
मकरास	51 23	वाङ्मु	स मा 8,30
मधु	35 73, 75 47,43, 64 115, 65 61, 68 58	वाङ्मुर्का	9 29
मय	9 29,47, 10 44,46 48, 20 21, 30,50, 21 50; स मा 2 7,8, 33 32, 34 42, 43 19, 45 3 6,13, 47,2,12,32 40 41, 48 7,13, 62 30, 65 64	सोरोषण	48 8
महाहनु	स मा 8 30	सम्बर	9 29 47, 10,45 46 48,52, 18 71, स मा. 2 7 8, 40 42 46,50 5 7 60 63 63, 41 1, 42 63,65, 43 29
महिय (= ह्यारि)	18 38,39,40 69 ; 20 2,11,17, 21,75,31 35,42,43 ; 21 39,42, 47 ; 22 11,14,19 ; 26 58, 29 16,18 22,26,65,70, 30 54 ; 31,1 52, 32 3,14,32,42,46 47, 64 66,71,72,74,75,84-86 97,109, 33 16	सम्भु	स मा 8 31, 43 53, 44 4, 47 9, 51 23
महोदर	40 15 61	सरन (-सरन)	40 62, 43 56
मुष्ट	20 1,2,19 ; 21 50 ; 29 17,23, 34,49,54,68,76,77,81,84-86, 30 1	सलभ	40 62, 43 56
मुर	34,28,29,34,38,51-53,55,56,60, 62	साल्व	40 61, 43 54, 47 13, 65 63
—मुह	34 39,41,42 ; 35 72,75,77	निवि	स मा 8 30, 40 61
रसवीर	18 38-40,70, 20,19, 29,16,17,24, 30,1,24,25	सिख	51 23
रम्भ	18 42,44,46,50, 20 22,23,24	सुम्भ	22 2 4,6 7, 28 76, 29 2,11 20,25,27,28,29, 30,32,35,38,40,43 46,88, 30 13,49,52,68
रघु	42 31,33-37, 43 54, 48 13	श्रीदास	56 16,39,40
रव	29 20 62	सङ्गाव	40 62
सवा	30 68	सुप्रोव	29 29,35,40
सातारी	43 56	सुदर्शन	47,9
सागर	48,8	सुन्द	43 76,77,81,83 85,91 97
—विद्यालयेन	सो विद्यासनयन	सुपर्णु	40 61
सिम्भियद्र	48 8	त्यर्नाद्रि	48 14
सिद्ध्यासित्	43,58	ह्यप्रोव	9 29,48, 40 62
सिद्ध्यासतो (बन्वितली)	62,31, 67,38 68 59	ह्यारिद्र	स मा 8 30
सिदाक	40 63, 48,8	ह्यारि	सो महि
सिद्ध	43 56	हस्तो	40 61, 42 49,52, 43 51
		हिरण्यवसिपु	7 22, 10 15, स मा 2,4,5,16, 45 19, 47,5, 49 45, 52 16,17
		हिरण्यवन्	9 45, 10 50
		= हिरण्यार	40 34
		= हिरण्यवन्	47,43
		- हिरण्यान	9 2,4, 10 1 19, स मा 27,4, 27,4, 37,5, 40,34, 44 4,94
		हृष	40 60
		हृष्यनोषनि	सो वापय
		हाप	43 19,51, 48 13

परिशिष्ट ४

APPENDIX 4

(वामनपुराणान्तर्गत भौगोलिक-नामसूची—Lists of Geographical Names of the Vamana Purāna)

(1)

द्वीप-उपद्वीप-वर्ष-समुद्र-पुष्करद्वीपस्थनरक-नामानि

(द्वीप समुद्र-वर्ष-उपद्वीपादि के नाम—Names of Dvīpas or Continents, Oceans, Varṣas etc)

वम्बतामित्त-क (पुष्करद्वीपस्थ-नरक)	11 53, 12 41	ताम्रवर्ण (उपद्वीप भा.)	13 9
मप्रतिष्ठ (नरक)	11 54	दधिमुद्र	11 38
ममिपनवन (नरक)	11.55, 12 41	दुष्कर्ष	see क्षीपन्धि
इक्षुरसोद	11 36	नागद्वीप (उपद्वीप भा)	13 9
एन्द्रद्वीप (उपद्वीप भा.)	13 9	पुनाम (नरक)	34 77,78, 35 19
इलावृत्त (वर्ष ज. द्वी.)	13 3,6	पुष्कर (द्वीप)	11 41,42,46-48 ; 13 1, 63 43
बटाह (उपद्वीप भा.)	13.9, 63 34	प्लक्ष (द्वीप)	11 35,44, 63 42
कल्पय (नरक)	11 56	नद्राय (ज द्वी वर्ष)	13 3
कल्मसिकटा (नरक)	11.57 ; 12 7	भारत (ज द्वी. वर्ष उपद्वीप)	13 4,6,8
कलेरुमाव (उपद्वीप भा.)	13 9	महारौरव (नरक)	11 52, 12 40
कालवक्र (नरक)	11.54	रम्यक (ज द्वी वर्ष)	13 5
किन्नर (वर्ष)	13 4	रुद्र (जलनिधि)	11 35
कुमार (= भारतद्वीप)	13 10,58	रौरव (नरक)	11.48,50,51, 12 19,43 ; 40 35, 38, 64 66
कुलवर्ष (ज द्वी. वर्ष)	13 5	तोहपिण्ड (नरक)	11 57
कुश (द्वीप)	11 37, 63 42	वारण (उपद्वीप भा)	13 9
कूटपाल्मलि (नरक)	11 56	विद्रुमोजन (नरक)	12 14
कुमिभोजन (नरक)	11 57	वृषभल (नरक)	12 37
केतुपाल (ज द्वी. वर्ष)	13 5	वृषिकायन (नरक)	12 29
क्षौच (द्वीप)	11.38, 63 43	वैतरणी (नरक)	11.57, 12.55
क्षालवो (नरक)	11 57	शाक (द्वीप)	11 39,44 ; 63 43
क्षीपन्धि	11 40	शात्मलि (द्वीप = शात्मल)	11 36
—क्षीरोद	6 69, स.पा 26.113, 34 59	शात्मवी (नरक)	12.30
—दुष्पाण्डि	11 39 34 62	शोषितपूयमोजन (नरक)	11.58
गमसिमाव (उपद्वीप भा.)	13 9	श्लेष्मनाशन (नरक)	12.15
घटोपन्न (नरक)	11 54, 12 42	श्वमोन्व (नरक)	12.26
धृतोद	11.37,38	—श्वानाशन (नरक)	11 56
चक्र (नरक)	11.58	श्वेत (द्वीप)	22.12, स.पा 4.16, 34.57
चक्रू (द्वीप)	11 34 40, 13 1,2, 63 42	संदरा (नरक)	11.57
उष्णुम्भ (नरक)	11.56, 12 16,42	सरोपण (नरक)	11 58
शामिल-क (नरक)	11 53, 12 41	सिद्ध (उर द्वीप भा)	13.9, 63 34

सुरोद	11.37	हरि (ज द्वी वर्ष)	13 4
स्याद्द	11 41	हिरण्य (ज द्वी वर्ष)	13 3

(2)

जनपदनामानि

(जनपदों तथा जातियों के नाम, Names of Janapadas and Tribes)

अङ्ग	13 44	किङ्किवावातिम्	63 17
अङ्गुलीक	13 40	कुक्कुट	13 43
अङ्गुप	13 55	कुनिकुण्डल	13 35
अन्तरजम्ब	13 51	कुपभावरण	13 37
अन्तगिरि (रि)	13 44	कुम्भल	13 49
अङ्ग	13 49	कुपय	13 56
अङ्गरान	13 37	कुमारराट	13 47
अङ्गुद	13 52	कुसूत	13 43
अलिमद्र	13 42	कुस्य	13 46
अवन्ति	13 55	कुण्ट	13 35
असक	13 49	कुङ्क	13 43
अक्षमुष्ट	62 24	केरल	13 46
आङ्गिरस	6 65, 62 3 27	केसववर	13 45
आङ्ग	6 51, 13.41 62 3 7, 20	केकेय	13.39
आङ्ग	13 11	कोशल (-कोशल)	13.35 34
आङ्गीर	13 37, 48	कोवीर	13 36
आरभ्य	13 48	कौणिक	62 3
आवन्त्य	13 52	कममस	13-42
अरुण	13 53	सन्धिप (जाति)	13 39
उत्तमण	13 53	सग	13 56
उत्कथार	13 39	सेटक	13 37
उरुमि	13 49	गोन्धार	13 38
ऊर	13 43, 57	गोनन्द	13 46
एकलव्य	13 53	गीतम	62, 3, 27
घोरस	13 42	चाम्पेय	57 36
काङ्गीर	13 40	शोल	13 40
कास्कर	13 51	वैलिक	13.34
कारिकन	13 50	चोड	13 46
कारुप	13 53	जातुप	13 47
कालतोयिक	13 37	तङ्गुन	13 41 56
कालिङ्ग	13 47	तापस	13 50
काय	13 35	तामस	13.42 50
किङ्कट	13 53	तामसितक	13 45
किरात	13, 11 42 57	तालोक्त	13 50

परिशिष्ट

शावकौरम	13.41	वह्निगिर	13.14
मुष्किभेर	13.15	वाह्यतौदर	13.40
सुम्बर	13.54	बहुतोर	13.45
दुष्क	13.11	मरुद्राम	13.41
दुसह	13.54	मारकच्छ	13.51
सुपर	13.40	मारकच्छेय	57.36
तौमर	13.57	भार्य	6.51,65; 13.45; 62,2,27,28
होसल	13.54	भोगवर्द्धन	13.49
विपही	13.57	भोज	13.53
वैपुर	13.54	मगध	13.46
दण्डक	13.48	मरुथ	13.35
दण्डकारण्यक	57.35	मद्रक	13.38
दरद	13.40	मरोचिप	62.24
दशार्ण	13.53	मराक	13.36
दशेरक	13.41	महाराष्ट्र	13.47
धर्म	13.50	महासक	13.47
देविकातीरग	57.36	माताद	13.44
धर्मारथ	57.35	माचपेय	57.35
नलकारक	13.49	माडर	13.39
निराहार	13.56	माण्डव्य	13.43
नासिक्य	13.51	माल	13.46
निपाद	त.म. 26.20	मातवीय	13.43
नैमिषारथ्यवासिन्	57.3	माहिषिक	13.47
---नैमिषेय	57.35	माहेय	13.51
नैयथ	13.54	मुद्रगरद	13.44
नैपीक	13.48	मूपक	13.38
पङ्कज	13.17	मूयिखर	13.47
पाञ्चाल	13.35	मेकल	13.53
पारावत	13.38	यवन	13.11,38
पुण्ड्रक	13.42	रमित्	13.51
---पुण्ड्र	13.46	सम्पक	13.41
पुनिष्ठ	50,25,76	सलितर	13.38
पुलोच	13.50	वज्र	13.44
पौरिक	13.49	यन्त्रिण्य	13.48
पंक्करोय	57.35	बहन	13.54
प्रवङ्ग	13.14	वाङ्गोप	13.44
प्रसपल	13.41	वाटधान	13.37
प्राग्ग्योदिप	13.15	वासेय	13.52
प्राविष्य	13.39	वाह्नीक	13.37
प्राविष्य	13.45	विदेह	13.45
वतदन्तिक	13.44	विन्धवपीलेय	13.48

वामनपुराण

घोतहोन	13,55	सकिनीक	13,50
वृक	13,36	सारस्वत	13,51
विदर्भ	13,48	सिन्धु	13,38
वीर्य	13,39	सुपार्व	13,42
विपिक	13,49	सुयम्द्र	13,52
राक	13,36	सूपारक	13,50
साबर	13,36,48	सैम्बद	57,35
सातद्व	13,38	सौवीर	13,38
सिन्धुपद्रिक	13,57	सौशिक	13,49
फूड (जाति)	13,37,39,45	हंसमार्ग	13,56
फूलिक	13,41	हृहक	13,57

(3)

पर्वतनामानि

(पर्वतों के नाम, Names of Mountains)

अखण्ड	62,23	चित्रकूट	13,18,25, 26,42
अञ्जल	26,48, 38,17 ; 39,131,134	सुङ्गप्रस्थ	13,17
अमर	38,39, 39,134	त्रिकूट	26,47, 57,66, 58,4, 63,29
अर्बुद	13,17, 63,19	दुर्वर	13,16, 26,48
अम्बावन	13,17	दृवशङ्कर	26,47
उदय	26,46 ; 31,15, 39,79 ; 45,23 ; 47,26 ; 63,71	नागगिरि	13,17
उद्दालक	26,46	निपथ	26,48
उदस	13,14,27	पारियात्र	13,14,24, 26,48, 57,13, 63,11
उद्वन्मुक	13,18	पुष्पगिरि	13,17
भोपधिप्रस्थ	26,15	प्राणेश	see द्विपवत्
—भोपधिवानु	63,8	शृगुतुङ्ग	63,9
कालञ्जर	6,35	सगिमत्	63,7
—कालिञ्जर	50,14,25 ; 57,30 ; 63,27	मन्दर (= मन्दरक)	1,11, 2,5,6, 4,3,19, 7,10, 13,16, 16,57, 25,74, 26,2,46,47,66, 27,3,61,62, 28,29,37,76, 33,18, 36,3, 58, 37,1,12, 40,42,44,46, 48,64 ; 41,58, 42,1,4 ; 43,82,121,149, 52,17, 65,19
कुतास्मर	13,18	नलय	13,14, 26,48, 44,78,80, 45,1,2,4,9,17 ; 57,16, 63,12, 64,19,47
कीलास	स.मा 22,69, स.मा 23,3,21, 26,48 ; 27,4, 32,87, 63,33	महापेश	see पेश
कोदुण	13,18	महिलातीस	63,33
कोताहल	13,16 ; 39,109	महोरय	57,25
कोथ	30,54, 31,1, 32,87,97,101, 107-109,120		
कन्धमादन	26,19,21,43		
मरुटासन	26,46		
गोमन्त	13,18		
गोवर्धन	13,17		

परिशिष्ट

माहेन्द्र (= महेंद्र)	13.14, 26 48, 57.10, 63 10,11
मेघ (= महामेघ, सुमेघ)	9 8, 22.38, स मा 3-2, स मा. 22 36, 25 31, 26 44,55, 37.17, 38-2, 39.42,43, 42 30, 46 25,27, 50 7,10,11, 52 3,85, 58.4,68, 63 11
मैनाक	13 16, 32.68
रम्यक	26 46
रैवत	13 17
लिङ्गनेर	53 1
बागह	26 46
बा म्ब	13 16
बास्य	26 46
विन्ध्य	6 55, 13 14,29,55, 19 21,26,28,30,35, 20 3,16,36, 22 4, 26 48, 28 26, 29 19,43,77, 30 70, 31 67, 39,110, 63 12,28

वेपसानु	26 47
विद्युत	13 16
विज्ञात्र	13 16
वालोरदर	64 27
वास्वेय	38 3
सिधिराचल सिधिराद्रि सिधिराद्रि	} see हिमवत्

दुहितम्	13.14,32, 26.47
शुक्लवत्	26 47
श्रीवन्त	13.81
सरस	13.16
सह्य	13 14,31, 57 12, 63 11
सुनाभ	25 1, 26.16, 27.35, 32,110,112, 46 11
सुमेघ	see मेघ
सूकर	63 19
सौराष्ट्रि	57.16
हिमवत्	1-6 13 22, 19.16, 22.3,5, स मा 26 112, 24 10, 25.14, 24,30,32,69, 26 55, 27.39, 31 67, 55.31,32
—प्रालेयाद्रि	6,4, 22 17
—सिधिराचल	55 30
—सिधिराद्रि	6 106, 13 57
—सौराद्रि	12 44
—हिमराज	50 18
—हिमसाक्ष्य	4 19
—हिमाचल	32.87,112, 37.8, 56 19
—हियाद्रि	6 55, 24.10, 26 15, 28 11, 32 8,87, 38 49, 50.14,25, 55.27
—हिमालय	25 24, 26.12, 55 23, 63 8
—हिमाश्रय	2.42
हेमभूट	26 46, 63 21
हेमगुलताद्रि	44 47

(4)

नदीनामानि

(नदियों के नाम, Names of Rivers)

अरुणा	स मा 19 30,41,42
अरुन्दी	13 24
आरणा	स मा. 13.7, स मा. 15 3,5
अरि	3 28, 16 54, 57.30
एरावती	13 20, 53 7,51, 55 1, 63 5
—एरावती	31 77, 62-6
ईरावे	62-6
एरावती (सर)	12.46
एरावती	13 32
एराव	13.21
एरावती	see एरावती

प्रोपयती (सरस्वती)	स मा 1 7, स मा 16.18, स मा 25 47, 31.83, 32 114, 36.40,54
अरिषयाद्रि	57.47
अरुणदा	13.26
अर्ना	31.52
अरुणदा	13.31
अरुणा	31.51
अरुणा (सरस्वती)	स मा 16 18,28, 36 54; 37 60, 39 34, 57.2
अरुणी (-रि)	13.30

कालिन्दी	3.8; 6.30; 13.20; 31.75; 34.17, 41; 37.68; 38.10, 12; 39.5, 82; 52.89; 53.1; 62.24; 63.3	दृष्यती	13.21; स.मा. 1.1; स.मा. 12.9; स.मा. 13.8; स.मा. 15.46, 57
—यमुना (यमस्वता)	3.7; 27.11; 38.9, 47, 49, 54; 52.9; 63.26	हेनिका	52.36, 53; 55.5; 57.36; 62.7; 63.30
—रविस्तुता	37.69	घातुकी	13.21
बायो	31.79	धृतपापा	13.21; 31.80, 82
किररा (रूप)	स.मा. 15.60	नङ्कला	53.51
किरण	62.5	नन्दिनी	13.23
कुटिला	31.7, 11; 65.33	नमदा	7.26; 13.25; 29.23; 31.75; स.मा. 21.7; 57.47; 63.18
—कुलरो (विष्णुपदी)	65.34	नन्दिनी	13.31
कुमारपाप	57.46	निविन्ध्या	13.28
कुमुदती	13.28	निधिरा	13.22
कुङ्क	13.20; 31.80	निपथावती	13.28
कुलमाला	13.32	नीला	13.20
कुलिमा	13.27	पञ्चनद	18.43
कुषा	13.25	पद्म	63.16
कुष्मा	13.30	पद्मा (सर)	12.54
कुलिङ्की	13.22; स.मा. 13.7, 18; स.मा. 15.57; 31.77; 39, 84, 85; 52.5	पयोष्णी (= पयोष्णा)	13.28; 37.86; 55.10, 11; 62.7; 63.7
कुङ्गा	6.4; 12.45; स.मा. 13.7; स.मा. 15.62; स.मा. 21.7; 69.2, 6	पर्णासा (-सा)	13.23; 31.81
कुण्डली	13.22; 31.79	पपलहर	स.मा. 16.1
कुण्ड	57.2	पारा	13.24
गोदावरी (गोदावर)	13.30; 31.75; 39.37, 128	पार्वती	13.23
गोमती	13.21; 37.61; 57.8; 63.31	पितामहसर	स.मा. 19.13
गोतमी	31.77	पित्तधोयी	13.26
गन्दिशबा	13.20	पित्तानिका	13.26
गर्भगर्भती	13.24	प्रभाषा	31.81
गिना	13.22, 24; 31.79	प्लवाजा	स.मा. 15.8
गिरीदाला	13.26	प्लवाहिनी	13.27
गमधा	13.26; 31.75	गह्वरा	13.21; 31.78
गरम्पुरा	स.मा. 1.14	गह्वरिपुण्ड्र	स.मा. 15.8
गानी	13.28	गह्वर	स.मा. 1.4; स.मा. 11.24; स.मा. 28.38
गामपणी	13.32	ग्राहणी	57.56
गुह्ययमा	13.30	ग्रीवरपी	13.30; 31.78
गोम्या	13.29	ग्रीवा	63.32
दद्या पी	13.23	गुरुकिष्का	57.16
दिव्य (सर)	18.65	गर्भदा	13.27
दुष्पेया	13.31	गणुर्गन्ती	55.16, 17, 26
दुर्गा	13.29	गणुयद	
		गणुय	13.21
		गणुयवा	स.मा. 13.7
		गणुयवा	31.86

मनोरथ (सरस्वती)	स.मा. 16 34, 31 82, 36.54	विद्याया (सरस्वती)	स मा 16-18,30, 31.53 ; 36.54 ; 55.26
मन्त्राङ्गिणी	9.50, 13.25, स.मा. 13 7, 31.76, 46.14	वृन्दणी	13.23
मन्त्रोद्धारिणी	46.30	वेणा	13 28,30, 31.80
महाभोगी	57.60, 63.27	वेणुमती	13.24
महाभोरी	13.29	वैरिणी	13.23
महावद (= घोष)	13 25	वैदरभूति	13.23
महावरी	31.79, 57.7	वैतरणी	13.28, स मा 13.6, स मा. 15.11
मानवरी (= सरस्वती)	स मा. 19.7,8	वसतु (= वसतुका)	13.20 ; 62.4
महावर (= मानस)	62 15	वाकूचिनी	स.मा 13 22, 38.3
महो	13 23, 31.95	विद्या (-वि)	13.34 ; 57.19
महोदधी (= महोदधि)	57.13, 63.30	विद्या	13.28
मानव (हृद)	31 95	मुक्तिमती	13.27
मानवहृत्वा (सरस्वती)	स.मा. 16.18	वीग (= महावद)	13 25 ; 57.60 ; 63 24
वसवस्वता	800 वाजिन्यो	मन्त्रिह (सर)	स मा. 1.5,7,9 ; स मा. 22.34
वसुता	800 वाजिन्यो	सर्विहती	स मा. 13.30
रघुवन्ध	स.मा. 1.5,14	सर्वस्वता	13 27
रविपुत्रा	800 वाजिन्यो	सरजू	13.22, 31.78, 34.43,46, 57 7, 63.27
रत्ना	13 21	सरपथी (रूप)	स मा. 21.16
रामहृद	स.मा 1.13, स मा 11.24, स मा. 14 1	सरस्वती	2.42, 7.42, 13 30, 30, 33 ; 23 13, स.मा. 1.1,9, स मा. 11.5 12,23, स मा. 12.2, 9, 11, 20, स.मा. 13 6,8, स मा. 14.17, स.मा. 16. 6, 17, 20, 27, 29, 30, 32,35,37-39, स मा. 18 18, 19, 21, स मा. 19 18, 22, 23, 26, 27, 30,31,41, स मा. 20.4, स मा. 21.3,5,9,16,19,20 ; स.मा. 22.12, स मा 26 46,58 ; स.मा. 82.7,41 24.3, 25.52, 27.12 31.51,53 34.15,20 ; 36.40, 37.54,56,60, 39.34, 43 70 46 75, 53.5, 56.9, 63, 57.34,41
रामहृद (हृद)	स.मा 24.29,30	—वसवता	3.8, 23. 13, 34 15
रेवा	13 31, 31 81	सर्विह (सर)	22.1, स मा. 26 37, स मा. 28 6
साङ्गविनी	57.14	सिन्धी	13.32
सुवी	13 24	सिन्धीवाङ्	13.28
सौरिह्या	13.22	सिन्धु	13.23, स.मा. 21.6
सङ्गता	13.32, 31.76	सोप (सरस्वती)	5 2 ; 31.76
सङ्गतापती	13.26	सुताया	13.32
सङ्गवरा	31.22	सुवता (सरस्वती)	स मा. 16 15, 21 ; 36.54
सरता	3.27 ; 16.52-54, 57.30		
सङ्ग	13.27		
सौरिह्या	13 31		
सङ्गिता	13 29		
सङ्गुनदी	स मा. 13.7		
सङ्गा	31.75		
सङ्गा	13.30		
सिद्धता	13 20, 31.77, 55 11,30 63.7		
सिद्धता	13.24		
सिद्धता	13.26, 31.76, 53 6, 57.18, 62.4, 63.4		
सिद्धता	31.52		
सिद्धता (= सिद्धता, सरस्वती)	16.15, स मा. 16.37, 36.54		

वामनपुराण

सुप्रयोगा	13.30	हरिबिह्व (सरस्वती)	23.13
सुरनदी (विष्णुपरी)	see कृदिता	हाररावी	13 21
सुरसा	13.25	हिरण्वती	13.20, स.मा. 13 8, 38.16,19,34,
सुवेणु (सरस्वती)	स.मा. 16,18,35, 31.83, 36.54		45, 63.32

(5)

स्थाननामानि

(स्थान—नगर, ग्राम, घन, आश्रम इत्यादि के नाम, Names of Places-Cities, Villages, Forests, Aśramas etc)

अदितिघन	स.मा. 7.5, स.मा. 13 4,12	चित्रवन	6 93
अन्यत्रय (ग्राम)	स.मा. 15.36	ज्येष्ठग्राम	स मा 15 67
अमरावती	9.9, 10.12, 34.36	दशाग्रम	स मा 13 21
अमृतस्थान	स.मा. 4 7,8,20	दण्डकारण्य	19,28,34, स मा. 18.5, 40.18 ;
अम्बुवन	स.मा. 14 42		57.67 ; 63 26
अयोध्या	38 62	दाक्षन (= देवदारण्य)	6 58,81 ; स मा 22.46 ,
अर्जु देव	57.49, 63.19		स.मा. 23 17, 57 56
अवन्ती (नगरी)	57.18, 62 13,25	देवदारवनाश्रम	स मा 23 32
अशोकवन	62.18	द्वैतवन	23.12 ; स.मा. 11.4, स.मा. 26.57
अरुमकपुर (पातालस्थ)	10.56	घर्माण्य	3 10
अरिष्यपुर	स.मा. 1.7	नन्दनवन	12 46, 33.13
इक्षुवन	62 17	नवराष्ट्र	63 30, 64.85
उत्तरकुण्ड	57.54, 63 22	निषध	57.24, 63 13
उन्मत्तपुर	38.27	नैमिष (महारण्य)	37.40
अश्वपाथम	स मा 3.17, स मा 6.12	नैमिषकुञ्ज	स.मा.16 7
अश्वदेश	57.14, 63 12	नैमिषारण्य	3-10, 7.41, 8.29, 37.40, 57.3,
बायो (नगर)	12.50		58 69
बाम्यक (वन)	स.मा 13.4, स.मा. 20.32, स मा 21.1	पर्कजवन	58.23,24
कुमारपुर	स.मा 20.7	पञ्चाल	57.26, 63.13
कुह त्रिवन	स मा. 6 12	पद्मवन	62 14
कुण्डलगल (गेन)	12.45	पद्मास्या (नगरी)	57 45
—कुण्डलगल	62.3	पुष्कर	स.मा 16 19,21,23, 39.14
कुमारघन	50 14	पुष्करारण्य	3,9, 39.12,13,15, 57.32
कुमारगली (पुर)	12.51	फलकीवन	स मा. 13 4, स.मा. 15 45,48,49
केदारण्य (वन)	6.99	हकुल	500 केदारण्य
कोसल (-ता) (उत्तर-)	स.मा. 16 32, 38 19	वदरिण्यग्राम (= बरटो)	2.41, 3.6, 6 4,8,21 ;
= कोसला (कोसल-सा)	63 29		8.45, 31 96, 39 66,
गङ्गादास	स.मा. 16 37 ; स मा.18.17		43 4, 64.112
गम (देव)	स.मा 16 29	हृद्गार्त (देव)	स मा 12.9
गालवाश्रम	32.37	प्रवानोवन	स मा. 14 29
गोमूत	59.104	घर्मवाश्रम	37 25

मिर्झीवन	63 24	शाकल (नगर)	39,57,70 , 53,8,12,43,74,78
मन्ना	63 25	शाकल	63 32
मरदेश	53 12	शिबि (देश)	38 12
मधुवन	स मा 13 5 , 57,31	शितवन	स.मा. 13 5 , स मा 14 44
मध्यदेश	12 51	दूरपुर	63 31
महावन	स मा 18 6	दूरसेन (देश)	53 68
महाधम (धर्मस्थाधम)	19 31 35	श्रीगिरिपुर	65 65
मागध (धरण्य)	3 9 : 11 7 ; 57 58	सप्तगोदावर (देश)	37 78
माद्र	63 24	सवन	स मा. 13 14
माहिष्मती	39 137	सुकेशिनगर	11.1
रत्नकाशम	स मा 21.5	सुराष्ट्र	53 14 , 63 30
रेणुकाशम	स मा 20 5	सूर्यवन	स मा. 13 5
सिद्धाश्रम	स.मा. 19 3 , स मा 28 47	सैधवारण्य	3 9 , 57,61 , 63 31
समुद्र	50 14	श्रीगणिक (वन)	स मा 26 55
नाराणसी	3 30,40 , 16 51,58 , 25 49 , 57 29	श्रीभपुर	65 63
श्रीभूतक (वन)	49 9	स्वाशोश्वर	स मा 23 15
विरजा (नगरी)	57 8	हरिलेन (= नाराणसी)	16 48
विश्वामिनाश्रम	स मा 19 3,17	हस्तिनापुर	63 2
व्यासवन	स.मा 13 4 , स मा 15 54	हिमवदन	28 14
शरवण	31,15,19,21,22,28,30,38 , 63 21	हिरण्यपुर	32 44

(6)

तीर्थनामानि

(तीर्थों के नाम—Names of Tirthas)

मनुलोश्वर	7,26,33	सङ्ग	स मा 15 61
महापद	62 20	इलापद	स मा. 15 24
मन्त्रिकुण्ड	25 52	इन्द्रतीर्थ	57.7 , 31 92
मन्त्रुतस्वन	स मा 13 47	इन्द्रपती	53 7
मन्त्र	63 17	उदवान	31,92 , 57.6
मन्त्रिवन	स मा 13 12	ऋणभोवन	स मा 20 6
मन्तरक	स मा. 20 24, 25	एकहंस	स मा 13 37
मन्त्रजग	स मा 15 28,36	भोवन	स मा 20 6,10
मन्त्रुतस्वान	स मा 16.3	= भीमस	स मा 1.5 , 31 51
मन्त्रुवन	स मा 14 42	भोवनस (= कपालभोवन)	स मा. 18 1,10,11,13 , स मा. 21,24 , 31 91
मन्त्रार्थवन	स मा 19 41,42	भनवन	4.19 , 25 52 , 31.89 ; 57 62
मन्त्रक	स मा 15 44	कन्या	63 28
कन्योर्ण	स मा 18 25,27,30,33	कन्याहन	57 43
कन्योर्ण	57 26	कन्याभोवन	3 49-51
कन्योर्ण	स.मा. 13.31		

कपिलधारा	57 47	कौनट	25 53
कपिलाह्वर	स मा 14 74	कौलिको (नदीतीर्थ)	52 5, 63 2
कपिलस्थल	स मा 15 14	कोसला	63 29
कल्पव	25 52	क्रम	31 100
कल्पी	स मा 15 18,19	क्षीरिकावात	57 44
कामाक्षा	57 54, 63 33	मन्त्रसाहस्र	52 8
कामेश्वर	स मा 14 42	मवा (गवाशिरसु, गवातीर्थ)	स मा 12 8, स मा 15 48, स मा 23 19, 31 89
काम्यक (वनतीर्थ)	स मा 20 32		53 64,69, 57 4, 63 9
कायसोधन	स मा 14 17 18	मवाशिरस (ब्रह्मण पूर्वा बेदि)	23 19
कालिञ्जर	6 55 57 50, 63 27	गिरिवन	57 63, 63 26
किदत्त (वृषतीर्थ)	स मा 15 60	गोकर्ग	स मा 25 16, 55.5 62 5 63 28
किल्म्य (महातीर्थ)	स मा 15 27	गोणवरी (न ती)	39 128,154
कुण्डिन	57 57, 63 74	गोपतार	57.8, 63 10
कुम्भक	25 53	चक	7 37, स मा 21 5, स मा 22 11, 31 89, 55 3
कुम्भास्र	5 1 25 51 53 3 63 3	कण्डिकेश्वर	25 51
कुमारधार	57 46 63 16	कान्तुस	स मा 1 5
कुहवेद	22 20,23 25, स मा 1 13, स मा 11 74, स मा 12 1,2,6-8,10 15,16, स मा 13 3 41, स मा 15 78; स मा 16 23, 29, 31, 34, 36,38 स मा 20 16,21 स मा 21 3, स मा 24 23 स मा 26 40 स मा 27 73 33, 24 4,22 26 40, 27 73 31 31, 53,93 1 36 32,40, 43 4 55 2, 62 1,52,53 63 5	चरणपावन	31 94
कुहसनसमन्तपथक	स मा 1 14	जयन्त	25 51
कुहबल्लस	स मा 2,2, स मा 12 12	ज्येष्ठाश्रम	स मा 15 67
—कुहबाहून	3 12 23 41, स मा 1 1, स मा 2,2, 57 40, 62 1, 63.17,48	तरन्मुक	स मा 1 14
कुरुतीर्थ	स मा 20 14,21,22	त्रिविष्टप	स मा 15 41, 25 52, 31 94, 57.61 63 32
कुरुष्वन्न	55 4, 57 45	दशतीर्थ	स मा 25 2
कुन्तारण	स मा 15 74 स मा 16 4	दशाश्रम	स मा 13 21
कृतजय्य	स मा 15 62	दण्डक	स मा 14 45
कृत्वाच	स मा 13 37 63 5	दशाश्रमेश (= दशाश्रमेशिक)	3 41,53, स मा 14 49, 57 42
कृष्णतीर्थ	52 7, 55 9	दुगातीर्थ	स मा 21 15
कृष्णाग	63 2	दृषद्वती (न ती)	स मा 15 46
केनार (महातीर्थ)	स मा 15 16,26; स मा 16 35, 31 97; 34 10,11,16,17 53 2, 63 3;	देवह्न	52 7, 55 14
श्रीवामुक्ष	57 49 69 6	धरणीतीर्थ	स मा 13 19
श्रीदिलीर्थ	स मा 13 78, स मा 15 63,71 25 53, 57,34,40	धर्मण (न ती)	57 47
		नागतीर्थ	स मा 13 23 31 93
		नागह्वर	स मा 15 39
		नारीह्वर	57 50
		नीलतीर्थ	57 51
		नृपावन	स मा 1 9
		नीमिष	7 37,38,39, स मा 16 8,24,28, 37 10, 39 34,75, 57 1, 63 9, 69 6
		नीमिषकुञ्ज	स मा 16 7

पञ्चद	18.43; स मा. 13.26,27	भवानीवन	स मा 14.29
पञ्चद	स.मा. 20.12	भूतानय	स मा. 13 47
पयोष्णी (न. ती)	55.10	भृगुसुक्त	55.32
पवनहृद	स.मा. 16.1.	मरुतुपिपा (न.ती.)	57.16
पारिषदात	स मा. 15.51	मणिमन्त	55 14
पारिप्लव (सरस्वीपं)	स.मा. 13 17	मधुनन्दिनी	55.16
पावन	स.मा 1.5	मधुमत्	55.17
पितृतीर्थ	स.मा. 21 18	मधुवटी	स मा. 15 55
पुष्कर	7.37; (23.20 ब्रह्मय प्रतीचोवेदि पुष्कर)	मधुवन	57.31; 63 14
	स.मा 13.41; स.मा. 16 19,21,23,	मधुसूत	स मा. 18.39
	31.90; 39.14, 18, 19, 27, 40, 52,	मनोजव	स.मा. 15 54
	46 16,17, 63.14; 69 6	महावीरति (न. ती.)	57.60; 63 27
शुद्धक (महातीर्थ)	12.45, 22.20,23, 23 43,44;	महाश्व	57.55
	स मा. 18 16,17,20,21,30, 24 1,4;	—महातीर्थ	57.59
	25 49, 50, 54, 73, 74, 27.14,	महाम्भम्	63.6
	31.88; 32 114; 36 52	महापय	57.54, 63.22
पौण्डरीक	स मा 15.39	महाहृद	57.17
प्रजासुख	57.59, 63 28	महोदकी (न. ती.)	57.13
प्रमास	31 91; 57.51, 63 19	महोत्थ	57.25, 63.14
प्रयाग	3 26; 25.51; 31.99, 57.27;	मागधारण्य	57.58
	63.14,23, (23.19 ब्रह्मगो मण्यमा वेदि),	माहृतीर्थ	स.मा. 14.43
	69.5	मानस (हृद)	31.90,95, 52.3, 63.1
प्राचीन	63.6	मानुष	स.मा. 14.50,56, स.मा. 15.1
प्राजापत्य	55.15	माहिष्मती	39 137
प्लशावतरण	57.57, 63.25	मिथक	स.मा. 15.52,53
पलकीबन	स.मा. 15.48,49	मुक्तिषमायय	स मा. 14.34
बदरिषाधम	6.4,21,23, 31.96, 53.4, 63.4,	मुञ्जवट	स.मा. 13.30
	64 112	पतोप्योक्तिक	स.मा. 21.4
बभ्रुसुन्द	25 52	यायाव	स.मा. 18.37
बलमी	63.34	सुमन्वर	स मा 13.17
ब्रह्म	63.7	रन्तुक	स.मा. 1.5,14, स.मा. 12.2,19, स मा. 13.11,21,
ब्रह्मतीर्थ	स मा. 21.98, स मा. 28 40	स मा. 14.37	स मा. 15 43
ब्रह्मध्वज	57.5	रमावर्त	स.मा. 1.14, स.मा. 11.24, स मा. 14.1
ब्रह्मयोनि	स मा. 18.21,24, 31.94	रामहृद	स.मा. 25.14
ब्रह्मपितृसूक्त (= ब्रह्मोद्गम्वर)	स मा 15.8	रत्नकेटि	स मा. 15.22, 62.76
ब्रह्मसर	स मा. 1 +, स मा. 11. +,	रदहन	स मा. 24.29,30
	स.मा 28.38	रदमहाप्रय	31.93
ब्रह्मसदन	स मा 28 38	रेणुप्रथम	स मा. 20.5
ब्रह्मस्वान	स मा 16 13	सामन्ती (न. ती.)	57.14
ब्रह्मावर्त	स मा 14 36,39	विज्ञानेद	63 3
ब्रह्मोद्गम्वर	स.मा 15.7,10	सोमवार	स.मा. 14 21
ब्रह्मगो (न ती)	57.56		
ब्रह्मण्य	53.6, 63.4		
बन	25 52		

सौहृद्य	63 २९	सन्निहित (सरतीर्थ)	स मा 1.5 7,9, स मा 22.34,
संराज्य	स मा. 14.16		स मा. 25.48, स मा. 26 33,
पण्डितोद्देश	स मा. 18.40	—साहित्य (सरतीर्थ)	स मा 22.1, स मा 23 13,
वाग्निशिरसु	31.90		स मा 24 29, स मा. 26.57,
यामनक्ष	स मा 15 64	—साहित्य	स मा. 12.15, स मा 24 2, स मा. 28 21
धारणवी	3 42, 25 49, 57.29, 63 15	सप्तगोदावर	स मा 13 50 स मा 20.9, स मा 21 5,
धारहतीर्थ (= वराह)	स मा. 13 32, 53 5, 63 4		37 78 81 82 39 55,75,78,111,135,137,
मिथल (सरतीर्थ)	स मा 13 15	सप्तसरस्वत	स मा. 16 17,40, स मा 17.22, 31.92,
विन्दस	57.9		36 45, 46 71,73
विन्दा (ब्रह्मणो रसिगा वेदि)	23.19	समन्तपञ्चक	23.16
विशाखपू	55 9, 63 6	समन्तपञ्चका	23 20
विशाला (न ती कुक्षेत्रे)	स मा 16 30	सरक	स मा 15 20, 21, 28
विधामिनतीर्थ	स मा 18.14	सरस्वती (न. ती.)	25 52
विष्णुपद	स मा 15 56	सरस्वतीकुञ्ज	स मा. 21 1,6
विहार	स मा 21 10 13,14	सरस्वतीहृण	स मा 21 16
वैशरणी	स मा 15 41	सर्पिर्दण (तामतीर्थ)	स मा 13 23
व्यासवन	स मा 15 54	सर्वपञ्चका (ब्रह्मण सत्तप वेदि)	23 17
व्यासस्थली	स मा 15 58	सर्वपापप्रमोचन	57 10
वामाक्ष	63 34	= सर्वपापविमोचन	31.10
वाद्मोदार	63 31	= सर्वपापहर	57 30
वातपाहसिक	स मा 20 3	सवन (विष्णुस्नान)	स मा. 13 14
वातिक	स मा 20 3	सारस्वत	26.28, 36 53, 57.42
वातप्राग	स मा. 14 23, 57.72, 59.117 63 44	सोत्ततीर्थ	स मा 16 12
वाग्निहोत्रतीर्थ	स मा 16 5	सुतीर्थ (—क)	स मा 14.40 53 4
वाग्निनी (न ती)	स मा 13.22	सुदिनतीर्थ	15 61
वाग्निद्वार	स मा 20 23	सूर्यतीर्थ	स मा. 14 26, स मा 15 73, स मा 22 11
वातोत्पन्न	स मा 14 44	सोमतीर्थ	स मा 13 33 स मा 22.11 स मा 25 1
वाग्नीतीर्थ	स मा. 14 23 स मा 25 1		31 91, 57 12,43
वाग्नीरु	57 58 63 25	स्कन्दतीर्थ	स मा 25 2
वाग्नि	57 60, 63 24	स्वाणुतीर्थ (= स्वाणुवद)	स मा 1 12, स मा 19 13,
श्रीकण्ठ	37 68 38 47 60		स मा 21.30 स मा 22 1,11,
श्रीकुञ्ज	स मा 16 6		स मा 24 4,24, स मा 25 6,25,
श्रीतीर्थ	स मा 14 23		स मा. 26 1, 33, 40, 60, 62 1
श्वेततीर्थ	31.101		स मा. 27 26,30,35
सगमतीर्थ (इरावती-नन्दवडा)	53 51		स मा. 28 7,49, 27 26, 30,36
सगमतीर्थ (कोशिकी-दृपदती)	स मा. 13 18, स मा 15 57	स्वाणुमहाह्वर	स मा 14.46,47
सगमतीर्थ (सरस्वती-समुद्र)	57 52	स्वाध्वीश्वर	स मा. 23 15
सङ्गिनी (तीर्थ)	स मा 14 34	स्वाणुसोमयान	स मा 14.46 47
सप्तक	स मा 21 5	हृत्पद	55 10; 63 6
सप्तहृदी	स मा. 13 50, स मा 20 9	हरिद्री (= वाराणसी)	16 48
		हाटभतीर्थ	39 157
		हिरण्यवीतीर्थ	38 45

परिशिष्ट ५

APPENDIX 5

वनस्पतिनामानि जन्तुनामानि च (Flora and Fauna of the Vāmana Purāṇa)

A

वनस्पतियों के नाम, Floral names

[The following is the list of plants and herbs mentioned in the Vāmana Purāṇa. This list also includes the various parts of the plants—such as flowers, fruits, seeds, exodus etc—if mentioned in the text. The reference of the Adhyaya and Śloka is given within brackets. Hindi names and also the scientific botanical names are also given. Synonyms have cross references.]

अगुरु (17 60, 36.13, 26, 58.3, 68.20), हि० अगुरु. <i>Aquilaria agallocha</i> Roxb. (Fam. Thymelaeaceae)	इन्दीवर (22 32, 68 17), हि० नीलोत्तर. <i>Nymphaea stellata</i> Willd (Fam. Nymphaeaceae)
अमोल (6 19) हि० अकोट, डेरा <i>Alangium salviifolium</i> (Linn f.) Wang (Fam. Alangiaceae)	उत्पल (3 47, 58 17), हि० कमल का एक भेद. <i>Nymphaea</i> species (Fam. Nymphaeaceae)
अमृती (44 34), हि० अमृती, तीसो. <i>Lanum usitatissimum</i> Linn. (Fam. Linaceae)	उदुम्बर (15 13, 17.49), हि० गूलर. <i>Ficus glomerata</i> Roxb (Fam. Moraceae)
अतिमुक्त (36 13), हि० माधवी; see माधवी.	उशीर (12 7, 68 19), हि० उष. <i>Vetiveria zizanioides</i> (Linn.) Nash (Fam. Gramineae)
अर्चिजनी (38 57) see वपिनी	कदम्ब (1 18, 17 9, 42; 18 2, 26 71, 58 8), हि० कदम्ब. <i>Anthocephalus indicus</i> A. Rich (Fam. Rubiaceae)
अम्बुज (36 25) see वनन	कदली (7 11) हि० केला <i>Musa paradisiaca</i> Linn (Fam. Musaceae)
अर्पविन्द (58 42) see वनन	कमल (6 17, 22 37, 31 20, 36 12, 58 17, 62 14, 68 17), हि० कमल. <i>Nelumbo nucifera</i> Gaertn (Fam. Nymphaeaceae)
अर्क (17 55, 44 86), हि० मराठ. <i>Calotropis gigantea</i> (Linn.) R. Br. ex. Ait. (Fam. Asclepiadaceae)	कण्ठीर (17.36, 50 36, 68 12), हि० क्नेर. <i>Nerium indicum</i> Mill (Fam. Apocynaceae)
अर्जुन (1 18, 58 9) हि० अर्जुन, कौहर <i>Terminalia arjuna</i> (Roxb. ex DC.) Wight & Arn (Fam. Combretaceae)	कर्णिकार (6 12, घ. मा. 26 135, 58.8), हि० मुषष्टम्ब, उदुम्बरका, अमलताण्ड, कर्णिकार 1 <i>Pterospermum acerifolium</i> Willd (Fam. Sterculiaceae) 2 <i>Adroma augusta</i> Linn. f. (Fam. Sterculiaceae) 3 <i>Cassia fistula</i> Linn (Fam. Leguminosae) 4 <i>Erythrina variegata</i> Linn var. <i>orientalis</i> (Linn.) Merrill (Fam. Leguminosae)
अशोक (12 51, 62 18, 68 12), हि० अशोक <i>Saraca indica</i> Linn (Fam. Caesalpinaceae)	
अश्वत्थ (14 37, 18 8, घ. मा. 15 32, 38, 58 69), हि० पीपल <i>Ficus religiosa</i> Linn (Fam. Moraceae)	
आमलक (17 55, 58 8, 68 28), हि० आमला. <i>Emblica officinalis</i> Gaertn (Fam. Euphorbiaceae)	
आमलकी (64 49, 68 15), see आमलक.	
इधु (62 17, 64 43), हि० ईध, वन	

कलम (27 46, 58 17) A type of शालि, cf शालि.
 कल्हार (18 17, 22 32, 58 17), कमल का एक भेद.
Nymphaea rubra Roxb (Fam Nymphaeaceae) cf कमल.
 काकमाची (12 53), हि० छोटी मकोय.
Solanum nigrum Linn (Fam Solanaceae)
 काद्वन (58 17), हि० चम्पा, नामचैतर इत्यादि.
 कार्पास (12 52, 15 6), हि० कपास.
Gossypium arboreum Linn (Fam Malvaceae)
 कालीचक्र (68 19), हि० झाड ची हल्दी.
 1 *Coccoloba fenestratum* (Gaertn) Colebr (Fam Menispermaceae)
 2 *Jateorhiza palmata* Miens (Fam Menispermaceae)
 कालेय (36 13) see कालीचक्र.
 किशुक (4 29, 6,9,17, 16 46), हि० पत्वार.
Butea monosperma (Lam) Kuntze (Fam Leguminosae)
 कीचक (58 18,68), हि० नरकट, बॉस
 1 *Phragmites Karka* (Retz) Trin ex Steud (Fam Gramineae)
 2 *Bambusa bambos* Druce Syn B. arundinacea Willd. (Fam. Gramineae)
 कुङ्कुम (68 19), हि० केसर.
Crocus sativus Linn (Fam Iridaceae)
 कुन्द (6,11,18, 17 47 18 6, 27 12, 68 12,19), हि० कुन्द.
Jasminum pubescens Willd (Fam. Oleaceae)
 कुसुद (22 32, 58 17), हि० कुँई.
Nymphaea sp (Fam Nymphaeaceae) cf कमल
 कुश (17 42, स. मा. 17.7, स. मा. 26 17, 25 42, 46 45, 64 38), हि० कुश, दारु.
Dermotachya bipinnata Stapf (Fam Gramineae)
 कृष्णोदुम्बरक (18.7), हि० कठपुलर.
Ficus hispida Linn f (Fam Moraceae)
 केतकी (1 18, 68.14) हि० केवडा
Pandanus odoratusimus Roxb (Fam Pandanaceae)
 केसर (6 99), हि० केसर, see बकुल.

कोकनद (22 32, 62 14), वमल का एक भेद.
Nelumbium speciosum Willd (Fam Nymphaeaceae)
 -
 खदिर (18 5), हि० खैर
Acacia catechu Willd (Fam Leguminosae)
 गिरिशालिनी (68 13), हि० कोयल, प्रपराजिता.
Clitorea ternatea Linn. (Fam Leguminosae)
 गुग्गुलु (17 49), हि० गुग्गुलु.
Commiphora mukul (Hook ex Stocks) Engl (Fam Burseraceae)
 गोधूम (68 21), हि० गेहूँ
Triticum aestivum Linn (Fam Gramineae)
 चन्दन (12 7, 17 47, 25 6, 36 12,13, 41.37 42 8, 45 5, 58 8, 68.19); हि० सफेद चन्दन.
Santalum album Linn (Fam Santalaceae)
 चम्पक (6 98, 58 8, 68 12), हि० पीला चम्पा.
Michelia champaca Linn (Fam Magnoliaceae)
 चूत (6 10a, 12 51, 17.52, 58 8), हि० आम
Mangifera indica Linn (Fam Anacardiaceae)
 जपाकुसुम (68 13), बडौल.
Hibiscus rosa sinensis Linn (Fam Malvaceae)
 जाती (6 101, 12 50, 68 12,20), हि० चमेली, मालती.
Jasminum officinale Linn var. *grandiflorum* Bailey (Fam Oleaceae)
 जातीफल (68 20), हि० बायफल.
Myristica fragrans Houtt (Fam Myristicaceae)
 सगर (17 40), हि० सुगन्धवाला.
Valeriana wallichii DC (Fam Valerianaceae)
 तमाल (58 9), हि० तमाल.
Garcinia morella Desr (Fam Guttiferae)
 ताल (2 49, 12.54, 16 47, 42 48; 47 48, (47 49 गुण्डताल); 58 9, 68.27), हि० ताल.
Borassus flabellifer Linn (Fam Palmae)
 तिन्दुक (स. मा 26 122), हि. तेंद, तिदुआ.
Diospyros peregrina Gurke (Fam. Ebenaceae)
 तिल (15 6, 17 35,42, 18 13,17, स मा, 15 5,60, स मा 24 27, 24 9, 50 38, 53 49, 54 20,22, 59 18, 68 21, 23 31), हि० तिली-
Sesamum indicum Linn (Fam Pedaliaceae)

तिलक (68 13), हि० तिलका.
Wendlandia ezerta DC (Fam Rubiaceae)

दर्भ (समा. 10 80), see कुा

दाडिम (64 97), हि० अनार.
Punica granatum Linn (Fam Punicaceae)

दारु (68 20) see देवदार

दूर्वा (14 36 18 9 68 18) हि० दूव
Cynodon dactylon (Linn) Pers (Fam Gramineae)

देवदार (68 48), हि० देवदार
Cedrus deodara (Roxb) Loud (Fam Pinaceae)

घत्तू (16 32 17 32 58 18 4 36 12) हि० घत्तू
Datura metel Linn (Fam Solanaceae)

नलिनी (12 54) हि० कमलिनी Water lilies in general

नागर (68 13) हि० भद्रख
Zingiber officinale Ro c (Fam Zingibera ceae)

नीप (1 22 6 13 58 8) हि० कदम, हलद्द
 This is *Kalaamba* or one of the allied trees of the same family wh ch are *Myrtagyna parvifolia* Korth and *Adina cordifolia* (Roxb) Benth & Hook f

नीलाशोक (6 17) see अनारक
Anjeria nobilis Wall

नीलेन्द्रीर (6 18 25 4) हि० नीलोकर
Nymphaea et alata Willd (Fam Nymphaeaceae)

नीलोत्पल (17 15) हि० नीलकमल see नीलेन्द्रीर

न्यमोच (33 68 60 74) हि० ब
Ficus bengalensis Linn (Fam Moraceae)

पद्मज (2 3 17 31 18 31 51 7 58 2) हि० कमल
Nelumbo nucifera Gaertn (Fam Nymphaeaceae)

पटोल (54 19), हि० परवल
Trichosanthes dioica Roxb (Fam Cucurbitaceae)

पथ्या (12 51), हि० हर्त
Terminalia chebula Retz (Fam Combreataceae)

पद्म (1 4, 22, 25, 2 2, 4, 3 47, 12 45, 18 1; 22 32, 50, समा 26 3, 25 3, 28 23; 44 32), हि० कमल का एक नेद.
Nelumbo nucifera Gaertn. (Fam Nymphaeaceae)

पद्मक (68 19), हि० पदाक, पद्मक
Prunus cerasoides D Don (Fam Rosaceae)

पद्मिनी (37 30), हि० नलिनी.
 This word denotes the whole plant of *Kamala* including root, stem flower and fruit

पपैट (58 9), हि० पापेटे, पापट, पाकर
Gardenia latifolia Ait (Fam Rubiaceae)

पालाश (= पाशलाश) (6 10 100 18 7 62 17) see किशुक

पाटल (पाटली) (6 100 58 8 68 13), हि० पाश
Storacopermus stavelens DC (Fam Bignonaceae)

पारिजात (36 13), हि० पारिजात
Nyctanthes arborescens Linn (Fam Oleaceae)

पारिभद्र (68 15) हि० फख्द
Erythrina variegata Linn Var *orientalis* (Linn) Merrill Fam Leguminosae)

पीतक (68 13)

पुण्डरीक (58 17 62 14) हि० कमल (सके)

पुनजीव (6 71), हि० त्रिपातोला
Putranjaya roxburghii Wall (Fam Euphorbiaceae)

पुत्राग (58 8), हि० मुलतानचम्या
Colophyllum euphyllium Linn

पुष्कर (41 40 58 53) see कमल

प्रियङ्गु (54 73) हि० बज्जो, बानु
Setaria italica Beauv (Fam Gramineae)

प्लभ (समा 11 3 5), हि० पातर.
Ficus infectoria Roxb (Fam Moraceae)

पत्रुल (6 99 68 13), हि० मोतखिटे
Mimusops elengi Linn (Fam Sapotaceae)

बन्धुनीव (6 19 18 8 39 44), हि० दुग्हेटे
Pentapetes phoenicea Linn (Fam Sterculiaceae)

बर्हिस् (68 17) see कुा

याही	(68 1); हि० नीला वैश्यर. <i>Barleria strigosa</i> Willd. (Fam. Acanthaceae)	पेतस	(6 16); हि० पेत, पलगावा. 1. <i>Calamus tenuis</i> Roxb. (Fam. Palmae) 2. <i>Salix tetrasperma</i> Roxb (Fam Salicaceae)
विल्व	(1 22, 6 18, 18 8, 36 12, 25, 58 8, 68 15); हि० पेत. <i>Agh marmelos</i> Corr (Fam. Rutaceae)	त्रीहि	(15 2, 18 13; 68.21, 24) see वान्नि.
भद्रा	(17 38); हि० दूब; see दूबा.	शतपत्र	(58 17) see कपल.
भृङ्ग	(6 21, 68 15); हि० भारैया, पीको भंगरवा. (1) <i>Eclipta alba</i> Hassk. (Fam. Compositae) (2) <i>Fedelia calendulacea</i> Less (Fam Compositae)	शताक्ष	(68 12); हि० सोवा. <i>Anthum socra</i> Kurz (Fam Umbelliferae)
मधुक	(17.40); हि० मधुवा. <i>Madhua indica</i> J. F. Gmel. (Fam. Sapotaceae)	शमी	(18 8, 53 17, 18, 21, 41, 59; 68.15, 31); हि० दमी. <i>Protopus spicigera</i> Linn. (Fam. Leguminosae)
मन्दारक	(17.49, 36 13) see कर्क.	शर	(18 9), हि० सरफज. <i>Saccharum munja</i> Roxb (Fam. Gramineae)
मही	(6 102), हि० मोगरा, मोरिया. <i>Jasminum sambac</i> Ast (Fam. Oleaceae)	शाल	(7 43, 58 9); हि० सलुवा, सान. <i>Shorea robusta</i> Gaertn. f. (Fam Dipterocarpaceae)
माधवी	(45 5); हि० माधवी. <i>Hiptage benghalensis</i> Kurz (Fam. Malpighiaceae)	शाळि	(12 50; 54 18; 56 6, 7, 68.21); हि० घात, पावत. <i>Oryza sativa</i> Linn. (Fam Gramineae)
माष	(17.61, 68 21); हि० सरद. <i>Phaseolus mungo</i> var. <i>radiatus</i> (Fam. Leguminosae)	शात्मली	(12.30), हि० सेवर. <i>Salmalia malabarica</i> Schott & Endl. (Fam. Bombacaceae)
मुद्ग	(16 41, स.मा. 26 122, 54 17, 68 21, 24); हि० मूंग. <i>Phaseolus aureus</i> Roxb. (Fam Leguminosae)	शौवाल	(9.37); हि० वेवार. 1. <i>Ceratophyllum demersum</i> Linn. (Ceratophyllaceae) 2. <i>Vallisneria spiralis</i> Linn. (Fam. Hydrocharitaceae)
यव	(17.59, 18.13, 68 21, 58); हि० जव. <i>Hordeum vulgare</i> Linn. (Fam Gramineae)	श्रीफल	(17.58); हि० विल्व.
यूथिका	(68.12); हि० जूही. <i>Jasminum auriculatum</i> Vahl (Fam. Oleaceae)	श्रीवास	(17.36); सरल, कपे, विरोजा. <i>The oleaceum of Pinus roxburghii</i> Sargent (Fam. Pinaceae)
रक्तचन्दन	(50 36); हि० तासचन्दन. <i>Pterocarpus santalinus</i> , Linn f (Fam Leguminosae)	श्रीवृक्ष	(17.39, 60) see विल्व.
रक्तशाळि	(17 39, 54 23) see वान्नि, A type of rice	श्वेताकै	(43 95, 44.85) see कर्क.
रक्तश्रीक	(6 17) see श्वेताकै.	पट्टिक	(54 17) see वान्नि. A kind of rice ripening in about 60 days.
रम्भा	(39 26, 62 18, 64 5) see कदली.	सरल	(58 9); हि० पुषसरल, बीड. <i>Pinus roxburghii</i> Sargent (Fam. Pinaceae)
वरा	(64 93), हि० बास. <i>Bambusa bambos</i> Druce (Fam Gramineae) and other species of different genera.	सर्ज	(1, 18, 22, 17.34, 53, 26 71); हि० वरा सान. <i>Vateria indica</i> Linn (Fam Dipterocarpaceae)
वट	(12 54; 18.3, स.मा. 22 4, 8, 38, स.मा. 24 25, 31, स.मा. 25.1, 2, 8, 9, 11, 12, 25, 38 20, 22, 26, 36, 69, 72, 75; 39.95) see व्यरोप.	सिद्धार्थक	(18 17); हि० शंभेर सरसी. <i>Brasia pirta</i> Moench (Syn. B alba (L.) Boiss.)

सिद्धवार (सिन्धुवारक) (6 19 18 6) हि० निर्गुंडी म्योजी
Vitex negundo Linn (Fam Verbenaceae)
सिद्धलक (68 20) हि० पिलारक, लोबाक
1 *Altingia excelsa* Noronha (Fam Hamamelaceae)
2 *Liquidambar orientalis* Miller (Fam Hamamelaceae)

सुचदन (68 27) see चन्दन

सुमना (68 12) हि० मासती जाती का एक भेद, हि० गुलाब
1 *Aganoma dichotoma* (Roth) K Schum (Fam Apocynaceae)
2 *Rosa centifolia* Linn (Fam Rosaceae)

B

जन्तुओं के नाम, Faunal names

अना (5 46 18 54 21 20 68 33) हि० बकरी
Genus-*Capra* Class Mammalia Fam Bovida

अलि see भृग

अवि (-अविक) (4 46 21 20 68 33); हि० भेड़
Mammalia Order-Artiodactyla
Genus-*Ovis*

अथ (18 54 21 4 स मा 10 41 स मा 26 158
29 50 58 32 52 33 9 13 39 112 42 37
43 129 145 154 49 32, 62 37 33 68 33
69 5 37 65 16) हि० घोड़ा

—बुरग (9 29 46 22 38 33 3 44 6 8 12 15

—बुरङ्ग (21 26 29 50 32 40 33 7 10
39 114 42 58 68 31)

—बुरङ्गम (9 28 22 35 29 60)

—बाबि-जो (9 11 26 45 10 37 32 57 33 7 9
39 11 43 146 47 11 16 49 23,
52 76 65 13)

—ह्य (9 21, 27 28 21 19 40 59 47 19
52 41 43 127 154 46 74, 47 19, 40)

—हृत्ति (9 20 43 125)

Genus *Equus caballus* Fam Equidae

अहि (1 25 7 34 स मा 9 44 27 33 29 82
36 29 40 8); हि० सर्प

—चरण (स मा 8 11 45 5)

—रन्ध्रक (59 16)

—नाग (1 26 4 54 7 27 28, 30 44 12 49
स मा 9 44 29 70 58 25 79 5)

Genus *Naja*

—नागराज (29 83); King cobra
Najabangarus

—चरण (7 29 29 74 59 14 16)

—बुबाग (नेत्र) (1 25 9 21 29 72 45 26)

—बुबङ्ग (3 39 7 10 27 6 44 26 45 26
68 66)

—भोगिन् (स मा 26 112)

—महाहि (27 6, 32 30 4 34 5)

—महोरण (9 29 10 54)

—सरोसूत्र (स मा 8 13)

Class Reptilia Order Squamata Suborder Ophidia

आलु (21 20); हि० चूहा

(i) *Rattus rattus*

(ii) *Bandicota bengalensis* Gray and Hardw

इम see बरिन्

उरग see बहि

उरगाशन see खगबि

उष्ट्र (40 59 : 49 33 ; 68 33) हि० ऊँट
Camelus dromedarius

मृश (राज) (12 54); हि० मालू, जाम्बवद
Melurus ursinus shaw

एण (43 158) हि० कृष्णमृग

Indian Antelope *Antilope cervicapra* (Linn)

कड्ड (2 2 : 9 38 ; 17 18) ; हि० मज्जर, कक

Ardea cinerea Linn (Genus Ardea Fam Ardeae, Sub-order Ardeae)

कच्छप (15 3) हि० कछुपा

—इम महा (9 36)

Genera *Trionyx* and *Testudo*

कपि 16 47 ; 27 11 38 7, 10 13 14, 26, 35, 37 39, 45,
64, 71, 75 39 41 80, 81 98 100 101, 104, 107, 109,
128, 131, 135, 136 41, 6) ; हि० बन्दर.

—खड्डम (39 46 108)

—मकंट (64 100)

—वानर (38 12 ; 39.44, 54, 88, 90, 93, 95, 110, 133, 134, 144 , 47.27)

—पाखापुग (37.75 , 38.11 ; 58 11)

(i) *Macaca mulatta* Zimmerman.

(ii) *Macacus* , *Semnopithecus entellus*

करिणी (6.54) हि० हृषिकी.

—चरेणु (33.35 , 58.23)

Elephas maximus

करिन् (3 37 6 11, 22 49), हि० हायो.

—हम (9.45 , 10 10)

—करोग्र (21 12)

—कुञ्जर (6.54 , 9.21, 29 , 10 33, 34 , 21 13, 16, 27.20 ; 29.59 , 30.54 ; 32.57, 60 ; 33 35 ; 34.43 ; 39.108 ; 49.22)

—गज (9.11, 28, 33, 36 , 10.27, 31, 33, 47 ; 18.54 ; 21.4 ; 27 10, 12, 14 , स.मा. 10 41, 29.13, 50, 58, 30 52, 32.52 , 40.59 , 43.120, 154 , 52 76 , 47.10, 14 ; 49 32 , 58 30, 55, 73 75, 78)

—गजेन्द्र (9 33 , 10 11, 12, 31, 32 , 21 15 , 40 25)

—दन्तिन् (10.29)

—द्विप (6 29 , 16.36 , 30.51)

—द्विपेन्द्र (43.121)

—द्विरद (29 74, 76, 77 , 58 32)

—नाय (58.25, 60 , 68.33 , 69 5)

—नायवर (58 27)

—नायेन्द्र (32.103 , 58.53)

—गजङ्ग (6.10 , 58 11)

—हस्तिन् (21 42 , स.मा. 23, 23, 29, 33, 36 , स.मा 26 15 , 47 27)

Elephas maximus , *Elephas indicus*

करीन्द्र see करिन्

करेणु see करिणी

कादम्ब (9.38) , हि० वरुव

कारण्डव (58.16) , A sort of Duck.

कुक्कुट (21.20 , 42.50) , एक बद्धसो दुग्धा.

Gallus (Genus) :

कुञ्जर see करिन्

कूर्म see कर्पूर

कृष्णधरा see ध्रुव

केसरी (6.10 : 10.40 ; 16 36 , 21.9)

—मृगाधिप (9.29 , 28 16 , 64.67)

—मृगारि (1 24 ; 25 64 , 27.32 , 44.26)

—सुनेन्द (4.40 , 12.50 , 19.16, 21 , 29.79)

—सिंह (5 13 , 10.47 , 21.14, 37, 40, 16 : 22.49 ; स.मा. 15 29 , 27.6 , 29 28 , 29 52, 53, 58 , 37.62 ; 40.26 , 42 50 , 43.15, 25, 158 : 58.11 ; 59 16)

Panthera leo persica (Meyer) ; *Felis leo*

कोकिल (38 54) , हि० कोवल.

Endynamys scolopacea Linn.

—कोविता (63 73 ; 64 73)

कौशिक (3 38 , 16 11) , हि० उल्लू

(i) *Bubo bubo*

(ii) *Ketupa zeylonensis*

क्रोष्टुक्र (21.29 ; 40 26) , हि० तियाद, शृगल, गीदड.

—गोमायु (9 38)

—दिव्या (9.43, 44)

Canis aureus Linn

रामपति (30 62) , हि० गहड, घोकाव.

—उखाशन (66.4)

—सनेन्द (29.76, 80 , 40.39)

—सयोत्तम (47 50)

—गहड (3 42 , 29.70, 74, 75 , 30.5 , 58.51 , 56.14)

—वाक्यं (स.मा. 26 112 , 29.78)

—पद्मवचन (32.12)

—विनहासकूब (12.44 , 31.102)

—वैतलेव (18 34 , 27.9 , 47.21, 34, 50)

(i) *Alouatta rapax* (Jemnick).

(ii) *The Francoise partridge*

सर (49.33 , 68 33) ; हि० गगा.

—मरुंभ (15.15)

—मरुंभ (खेव) (64.53, 56)

—रावण (29.70, 73, 87 , 30.50)

(i) *Equus oranger indicus* Blyth.

(ii) *Equus asinus*

गज (गजेन्द्र) see करिन्

रामेन्द्र (गरड) see रामपति

गृध्र (9.38) ; हि० गिद्ध
Gyps bengalensis Gmelin.
 गो (12 25, 38, 39, 50, 56, 14.30, 36; 15.20, 34; 18.54;
 21.20, स.मा. 10.41, 30.56; 32.92; 44.82;
 49.33; 68.54, 69, 5, 15) ; हि० गाय.
 —धेनु (7.52, 14.36; 17.52; 68.27, 29)
 Genus—Bos; (Fam. Bovidae).
 गोधा (15.3) ; हि० गोध.
Gavialis gangeticus.
 गोमायु see गोप्लुक
 माह (9.37, 18.45, 46.33; 58.19, 24, 62-64, 68,
 75) ; हि० मगर.
 —घाहो (46.34)
Crocodilus palustris.
 चकोर (58.11) ; हि० चकोर.
 Genus—*Alectoris*.
 चक्र (16.13) ; हि० चक्रवा.
 —चक्रादिपत्र (16. 14)
 —चक्राह्न (9.33, 16.16)
Tedorn ferruginea (Pallas)
 चातक (56.10) ; हि० चातक, पयोह.
 (i) *Cuculus vernalis* Vahl
 (ii) *Clamtor jacobinus*
 जलौका (स.मा. 26.125) ; हि० जोक, जलूका.
Hirudinaria granulosa.
 जीवजीवक (58.11) ; हि० जकोर.
Polyplocetron bicalcaratum
 वासुध (31.10) ; हि० राजगिद्ध.
Gyps bengalensis Gmelin.
 वाह्य see खपरपि.
 तित्तिर (54.70) ; हि० तीतिर.
 (i) *Francolinus francolinus* Linn
 (ii) *Francolinus pictus* Jardine & Selby
 (iii) *Francolinus pondicerianus* Gmelin
 तिमि see मत्स्य
 तुषा see शम्भ
 तुषुङ्ग " "
 तुषुङ्गम " "
 दन्तिन् see बरिल
 दन्दशुक see महि
 द्विप } see बरिल
 द्विपन्द्र }
 द्विरद

धेनु see गो
 नाग see ग्रहि
 नाग } see करिल
 नागवर }
 नागराज see ग्रहि
 नागेश्वर see करिल
 पतङ्ग (10 38 ; स.मा. 10.60, 29.55, 40.26), हि० पतंग.
 Phylum—Arthropoda; order—*Septoptera*.
 पन्नग see ग्रहि
 पन्नगशयु see खपरपि
 पिपीलिक (43 36)
 —पिपीलिका (12 35)
 A member of the Phylum—Arthropoda
 Order—Hymenoptera.
 पुंसोच्छिद (6.18), हि० चोपख; see कोविच
 लवङ्गम see कपि
 चक (1.18) ; हि० चणुला; see बंक
 वहिग (10 2; 30 43, 43 152) ; हि० मगर.
 —बहिग (1.17, 6.20; 30 5, 62.29)
 —मगर (30 5; 31.102, 104; 32 86, 102)
 —सिंहगिह (32.87)
 —सिंहगि (30 62, 41.7; 58.11)
Pavo cristatus Linn.
 चलाका (1.18, 17.18) हि० चणुला (करचिया).
Egretta gausetta Linn.
 भुजाग (नेन्द्र) see ग्रहि
 भुजङ्ग " "
 भृङ्ग (3.34; 6.21, 31, 100, 7 9; 16.30) ; हि० भौष.
 —बलि (38 28)
 —पटपट (स.मा 3 20)
 Phylum—Arthropoda; Order—Coleoptera.
 भोगिन् see ग्रहि
 भकर (5 53, 9.37) ; हि० मगर
 मक्षिका (15.12) ; हि० मच्छी.
 (i) *Musca domestica*.
 (ii) *Apis mellifica*.
 मत्स्य 15.31, स.मा. 26 125; 39.20, 25, 46 35),
 हि० मत्स्य.
 —तिमि (मत्स्यवेद) (39.21, 24)
 Class—mammalia; Order—*Cataceae*.
 —महामत्स्य (59.20)
 —मोन (5.59, 9 36)
 class—*Pisces*.

मयूर see बहिण
 मार्केट see कपि
 मशक (40.26), हि० मच्छर.
 Phylum—Arthropoda, order—Diptera
 महामत्स्य see मत्स्य
 महाहंस see हंस
 महिष 9.16, 46, 18.54, 61, 62, 64, 69; 21.19, 29 13,
 71; हि० भेडा.
 —महिषी (18.55, 59, 49.33)
Bos bubalus; *Bubalus bubalis* Linn
 महोरग see ग्रहि
 मातङ्ग see कविवृ
 मीन see मत्स्य
 मूषिक (14.32) ; हि० मूस, चूत.
Mus musculus.
 मृग 1.20, 5.13; 6.15; 15.15; 17.42; 21.29,
 22.30, स.मा. 14.52; 24.7, 31.19, 33.23;
 37.55; 43.25; 53.18, 24; 54.2; 58.11,
 62.29) ; हि० हरिय.
 —एण see एण
 —इण्णमृग (स.मा. 14.51) see एण-
 —हस (2.2)
 = सारङ्ग (9.22) हि. मृग, चीतल ; *cervus axis*
Axis axis Exrl.
 मृगाधिप see केसरी,
 मृगारि " "
 मृगेन्द्र " "
 मेघ (31.29), हि० मेघ.
 Genus—*ocis*
 राजहंस see हंस.
 रासभ see चर.
 रुत see मृग.
 बराह (21.19); हि० सुवर.
Sus cristatus Wagn.
 वाजि see शय.
 वानर see कपि.
 वायस (2 2, 12.10, 25, 16.11, 17.18) ; हि० कौबा.
Corvus splendens Vieillot.
 —वनवायस (9.38) ; हि० जङ्गली कौमा.
Corvus macrorhynchos Wagler.
 विनदातनूज see सगपति.

शुक (12.37, 21.19; 58.7) ; हि० भेडिया.
Canis lepus
 बुद्धिक (5.55) ; हि० विच्छू.
 Terrestrial Scorpions.
 Phylum Arthropoda; *Palamneus, Scorpio,*
Euthus
 Class—Arachnoda; Order—Scorpionidea.
 शृपभ (शृप) (5.19 9.19, 12.55, 14.36, (17.62 वृत्त) ;
 27.7, 29, 30.4, 41.48, 59, 42.11, 50,
 44.24, 64.102, 68.31) ; हि० बँल.
Bos indicus,
 येनतेय see छापति
 व्याघ्र (21.19, स.मा. 26 112, 28.14, 15, 19, 20, 21;
 37.52, 42.55, 64.69, 74, 76) ; हि० बाघ, वेर-
 —जाइल (41.5).
Talis tigris
 शरभ (स.मा. 15.31) , टिड्डो, हाथो का बन्धा इत्यादि.
Loensta migratoria
 शल्यक (15.3) A porcupine, हि० राही; see श्याविष-
 शशक (15.3) , हि० सरोपोष, सरो.
Lepus ruficandatus Geoff.
 शारवामृग see कपि
 शार्ङ्ग see व्याघ्र
 शिशुगिड } see बहिण
 शिशुखिन् }
 शिवा see कौटुक
 शिशुमार (9.17, 10.25) ; हि० सोंब
Platanista gangetica
 शुक्र (9.22, 64.94) हि० तोबा; हीरामन तोता.
 (i) *Pastacula cupatria* Linn
 (ii) *Pastacula krameri* Scopoh.
 (iii) *Pastacula cyano cephalo* Linn
 श्येन (9.38) ; हि० बाज
 (i) *Falco biarmicus* Gray
 (ii) *Falco chiequera* Daudin
 (iii) *Falco tinnunculus* Linn
 श्या (15.15, स.मा. 26 55, 59, 61, स.मा. 27.18, 25) ;
 हि० कुता.
Canis domesticus.
 श्याविष (15.3) ; हि० राही.
Hystrix leucura Gray & Hardwicke.

षट्पद A hexapoda. see षट्पद.

सरीसृप see षट्पद.

सारङ्ग see मृग.

सारस (6.20); हि० सारस.

(i) *Grus antigone* Linn.

(ii) *Anthropoides Virgo* Linn

सिंह see कैसरी.

सूकर (32 38), हि० सूअर.

(Fam Suidae)

हंस (1.19; 6.20; 9.20,38; 27.9,12; 28.40,41;
30.3; 62.15); हि० हंस.

महाहंस (9 38)

(*Cygnus olor*)

राजहंस (58.16; 67.71)

Phoenicopterus roseus Pallas

हय see शय

हरि "

हस्तिन् see कर्प

हारीत (= हारित) (42.15); हि० हारियल.

Treron phoenicoptera Latham.

परिशिष्टों में अतिरिक्त संनिवेश एवं संशोधन

ADDENDA AND CORRIGENDA IN THE APPENDICES

A. अतिरिक्त संनिवेश Addenda

1. अतिरिक्त नाम-सूची Additional List of Names

भधतर (नाम) 1.26	घनंजय (नाम) 1.25
कम्बल (नाम) 1.25	निषध (जनपद) 57.24
कुञ्ज (= भौम, भंगल ग्रह) 44.48	नील (नाम) 1.26
चित्रगु (= शक्ति) 46.59	पद्म (नाम) 1.25
द्वीपिन् (= व्याघ्र) 5९.7	सिद्धन्त (नाम) 1.25

2. परिशिष्ट ३ में 'सुरनाम-सूची' शीर्षक के नीचे यह टिप्पणी जोड़िये—

In Appendix 3 the following note is to be added below the heading 'Names of Gods'—

(यहाँ सुरनामों की इस सूची में भूल से राशि, नक्षत्र, ग्रह इत्यादि के नाम भी शामिल हो गये हैं।

Here in this list of gods the names of Rāsis, Nakṣatras, Grahas etc have also been included due to oversight).

3. परिशिष्ट ४ में 'जनपदनाम-सूची' शीर्षक के नीचे यह टिप्पणी जोड़िये—

In Appendix 4 add the following note below the heading 'List of the Janapadas'—

(जनपदनामों के नाम संस्कृत में बहुवचनान्त होते हैं। Names of Janapadas in Sanskrit are in plural number).

4. परिशिष्ट ५ में 'वनस्पतिनाम-सूची' शीर्षक के नीचे यह हिन्दी-टिप्पणी जोड़िये—

In Appendix 5 the following Hindi note is to be added below the heading 'Flora —

[वामनपुराणोक्त वनस्पतियों की इस सूची में वनस्पतियों के उन विभिन्न अंगों—पुष्प, फल, बीज, निर्वास आदि—का भी उपास्यत्व अन्तर्भाव कर दिया गया है जिनका उल्लेख वामनपुराण में है। वनस्पति-नाम के आगे कोष्ठक में वामनपुराण के अध्याय तथा श्लोक का निर्देश है। रुद्रतनाम के आगे वनस्पति का हिन्दी नाम तथा वनस्पति-शास्त्रीय लैटिन नाम भी दिया गया है। पर्यायवाची में उसके मूलशब्द का निर्देश कर दिया है जहाँ उसे देखना चाहिये]।

B. संशोधन Corrigenda

(a = स्तम्भ १, column 1, b = स्तम्भ २, column 2; L = Line, पंक्ति)

परिशिष्ट-पृष्ठ Appendix-page	स्तम्भ संख्या पंक्ति Column, Line	अशुद्ध Incorrect	शुद्ध Correct
7	b, L. 9	affiliated with	inflicted
12	b	कुञ्ज	हटाइये delete
13	a	कुञ्ज	हटाइये delete
"	b	विदवां	हटाइये delete
14	b	मिथावरुण (विप्र)	मिथावरुणात्मज (विप्र, वशिष्ठ)
15	b	सोमसर्मा (वणिक् प्रेतनायक)	सोमसर्मा (चाकलस्य विप्र)
18	a	वैवस्वत	वैवस्वत
20	a	केदार (वृद्धकेदार)	वृद्धकेदार
21	a	सलिलेश्वर	सलिलेश्वर
22	a	द्रुव (देव) 25.24	द्रुव (नक्षत्र) 32.24
26	b	वैवस्वत	वैवस्वत
27	a	सलिलेश्वर	सलिलेश्वर
"	b	सरस्वती (देवी)	सरस्वती (देवी कात्यायनी)
28	b	हिमदेश्वर	हिमवतेश्वर (शिबलिङ्ग)
30	b	भद्रालसा (विश्वावसु-पत्नी)	भद्रालसा (विश्वावसु-कन्या)
36	a	असमृद्ध आङ्गिरस }	हटाइये delete
"	"	आश्वेय 6 61 etc.	आश्वेय 13 41
"	b	कौशिक	हटाइये delete
37	a	दण्डकारण्यक देविकारीर्य पर्मालस्य नीमिषारण्य नीमिषेय भास्करच्छेय }	हटाइये delete
"	"	निपाव	निपाव (प्राति)
"	"	पुलिन्द	पुलिन्द (प्राति)
37	b	मरीचिप मागधेय }	हटाइये delete
38	b	सैन्धव	हटाइये delete

वामनपुराणस्य श्लोकार्धसूची

अ					
अगावतीर्णं च येन गर्भे	स मा ८ २७३	मद्गोपाङ्गानि देवैर्	५४ ३१३	प्रतोर्वेन विनाम्यद्य	४१ ३६०
अकरोद् ममते बुद्धि	स मा ३ १५०	मज वरेण्य वरपद्मनाभ	५८ ८३३	प्रतो विनायते चन्द्र []	१६ ३१०
अकामेन द्विजो भूपत्	५६ १११०	मजरञ्जामरञ्जापि	८ ६४०	प्रतो किवृद्धिमममद	५२ ४७०
अकामो वा सकामो वा	स मा २५ ५२३	मजरञ्जामरञ्जैव	स मा २५ २००	प्रत्यर्वभक्तो देवग	स मा ८ ८०
अकार्यं च शौचं च	१४ १०	मजागन्त तदंशेन	४१ ५३३	प्रतिस्तस्माद् समुद्भूतो	२ ४७०
अकार्षणमनापास	११ २३०	मजायत स गोविन्दो	स मा ६ १३०	मय कोपेन चाम्येति	स मा १० ३१३
अकायकारकेत्येव	१८ ५८०	मजायन च नृपति	२३ ४००	मय नोपाकृतनापि	२ ३८३
अकालञ्च विकालञ्च	स मा २६ १२६३	मज्जित विष्वक्कर्माण	६१ ५३	मय शावा कारणं च	६४ ७०
अकूपार नमस्तुभ्य	१८ ३५०	मज्जित्वा सगण रुद्र	३७ १६०	मय तान् दु खितान् दृष्ट्वा स मा	२२ ७४३
अकृषावै नृपति	३७ ५५२	मज्जोन्नत्वा तनयाञ्च तिलो	२४ ११०	मय तामाह स मुनि	३६ १४३०
अकृषेना न्यायपरा प्रमत्तरा	१४ ५५०	मज्जोन्नतं गुप्तं शुभ	१८ ६००	मय ते श्रेष्ठ्य सर्वे	स मा २३ २४३
अक्षय प्रवरे क्षेत्रे	२३ ३५०	मज्जेयत्वमवध्यत्व	६ ५३	मय दन्तोऽज्यतमुख	५८ २०३
अनया प्रमयाञ्जामी	४३ ४०	मज्जेयस्तस्य भायैव	३७ १५०	मय दैत्येश्वरं प्राह	स मा १० ६७३
असयापि भविष्यन्ति	स मा १५ ७००	मज्जेयो दवतैः सव	१८ ५३३	मय प्रगम्य ते वीर	स मा ३ १३३
अनयान् लभते कामान्	१७ ६३०	मज्जेया मुचि शत्रु न	स मा ३ १४३	मय प्रतीकोभारतीयो	४४ ३४३
अस्य लभते सर्वे	स मा २१ १८३	मज्जेने शशुभनच	६३ १७३	मय पर्यग्रथं देवाञ्च	स मा १६ २३३
अस्यमुदयं तस्य	स मा २० ११०	मजाते पातयुर्वे च	१५ १८०	मय सा तमुपि नन्द	३७ ७२०
असर्गं परमं देवि	स मा ११ ७०	मज्जानं चान्यमूयत्वन्	३५ १५३	मयागामान्त्सु शत्रु	३६ ५८०
असर्गं परमं बहू	स मा ११ ७०	मज्जानतो गान्तो वा	५६ ६५३	मयाजगाम देवस्य	३७ ७०३
असमूयं माणिसु	६२ ४६०	मजाता जानतो वाऽपि	स मा २४ २४३	मयाजगाम प्रतोऽज्ञो	५३ २१३
असीयत ततो राष्ट्र	स मा १८ ३१०	मज्जनस्यैव तत्रापि	३७ ८००	मयाजगाम भगवान्	४६ २१३
अशीश्विना विगद्भि	३० १०	मज्जं विभेद भगवान्	स मा २२ ३००	मयाजगाम स नृस्य पुत्रस	२२ ५७३
अश्वत् पारश्वेद् बहून्	१८ २३०	मज्जंमये समुत्पन्नो	स मा २२ ३५०	मयाजगाम हिमवान्	२७ ३६३
अगस्त्य गह्वरं विष्णु	६१ २५३	मज्जं परं प्रव्यथामि	३५ २००	मयाजगाम देवहृद्	४५ ११३
अगुहं गृहं बालेय	३६ १३०	मज्जं प्रसिद्धिं समुपाजगाम	३५ ७७०	मयातस्तीयथाश्राया	२५ ४६०
अग्नि तीमस्तया मित्रो	५६ २६३	मज्जंतीकुमुमग्र्य	४४ ३४०	मयाजगाम सवित्रो	२६ ४६०
अग्निद्रोमपाशानोऽपि	स मा १४ २७०	मज्जंस्तव गृहं ज्ञातस	६४ १०६०	मयाग्यानिपि विप्रो	४३ १०
अग्निद्रोमापिताशान्या	स मा १५ ४६०	मज्जितुङ्गत्वा श्योम	६२ १२३	मयाग्यानिपत् प्रहर्षो	स मा १६ १८०
अग्नौ प्रगल्भे यज्ञोऽपि	५ २६३	मज्जितमथ्या तु शीघ्रस्य	स मा २२ १४०	मयाग्यान् सतायान्तम्	३८ १४३
अग्रतोऽन्त्यादिना	६ १२३	मज्जितुव िरिपोलघा	३७ ६६०	मयाग्यान् सतायान्त्	६७ १०३
अग्रमुद्गस्य सत्वाज्य	१५ १७०	मज्जितुव गुवावर्द्धा	२७ २३०	मयाग्यान् सतायान्त्	स मा २ १३३
अग्रस्येनापत्रेण	७७ ३३०	मज्जितुव गुवायुक्त	स मा २६ ५८३	मयाग्यान् सतायान्त्	५६ २०३
अग्रोऽप्येनापत्रेण	स मा २६ ८६०	मज्जितुव गुवायुक्त	स मा १६ ३३	मयाग्यान् सतायान्त्	५२ ३३०
अग्रोऽप्येनापत्रेण	१३ ४७३	मज्जितुव गुवायुक्त	७३ २२०	मयाग्यान् सतायान्त्	स मा २० २१३
अग्रोऽप्येनापत्रेण	स मा १७ १५०	मज्जितुव गुवायुक्त	४६ ४७३	मयाग्यान् सतायान्त्	स मा १० ३७०
		मज्जितुव गुवायुक्त	३५ ७१०	मयाग्यान् सतायान्त्	स मा २७ १३

अयोचुर्देवता सर्वौ	२५ ७६	अधिष्ठिते भार्गवैस्तु	६२ २८६	अनुपधागु जठर	५४ १७०
अयोत्वाय हरिं भक्त्या	२७ १०	अधीयाना महाभगा	स मा २२ ५४०	अनुलिम्बेत्कुङ्कुमेन	३६ १२६
अयोत्पय च वेगेन	२१ १६६	अधोराज नमस्तुभ्य	६० १६६	अनुलेपनमादाय	२७ १४०
अयो देशान् प्रवक्ष्याम	१३ ५६६	अधो नभि स पातालात्	५१ ६६	अन्पास्तुशुङ्केराश्र	१३ ५५६
अयोमा प्राहू तनय	३२ ७६	अध्वगच्छत विस्तीर्णै	स मा ३ १६०	अनेकजन्मवर्मादेव	५६ ६२०
अयोवाच अगतस्वामी	६६ ७६	अध्येतव्या नयो नित्य	१५ ५२६	अनेन वारुणोनां	४ १०
अयोवाच दितीसरतां	७ ५०३	अनङ्गुलमप्रतिमो बभूव	५३ ८३०	अनेन तु विधातेन	१७ २६६
अयोवाच नरो देव	७ ५६६	अनन्त धाङ्कुपीठश्र	३१ ७३६	अनेन षड्भुजो देवा	२६ २१६
अयोवाच पुषो ब्रह्मन्	३१ ६२६	अनन्त सर्वगो व्यापी	४४ ६५६	अनेन वीर्येण गुरुरस्त्वया जिता[]	३० ३५०
अयोवाच महादेवो [देवात्]	स मा २४ १६	अनन्तर स बुभुजे	५३ ३६०	अनेनैव जगन्नाथ	५६ ११५६
अयोवाच महादेवो [दत्त]	२७ ५३६	अनन्तर सुखासीना	स मा २३ २६०	अनेनैव तु देहेन	स मा २७ ११०
अयोवाच महादेवो [मया]	३६ ३८६	अनतराय चंकाय	५८ ३२०	अनेनैव धृता भूमिर	स मा १० ७०
अयोवाच महाबुद्धि	५१ १५६	अनता मनस प्रीति	५४ ३३०	अनेनैव विश्वानि	स मा २० २६०
अयोवाच मुनिस्तवी	३६ १४७०	अनन्ता विद्यमानोति	स मा १४ ३५६	अन्तकाल ततो दृष्टवा	स मा १८ १७०
अयोवाच वच काली	२८ १६६	अनताय नमस्तुभ्य	स मा २३ ५६	अन्तर्जले शिबभैरु	६२ ८०
अयोवाच सुरात् दुर्गा	२० ४०६	अनन्वमनसो भक्त्या	६७ ४७६	अन्तर्देवे विश्वप्रतिमहर्षे	६५ ६२०
अयोवाच सुरात्किष्णगु	३६ २१६	अनन्ववृष्टिं किमियम्	२६ २६०	अन्तर्दुर्गेन दह्याती	२४ ३६०
अयोवाच हरिं स्कन्द	३२ १०६६	अनया पितृभक्त्या च	स मा १४ ४६	अन्तर्धानं गता क्षमा	६६ २०
अयोवाच हरिर्ब्रह्मन्	६ ७१६	अनया रक्षया ब्रह्मन्	५६ ८६	अन्तर्धानं गता भूमौ	६४ ३६०
अयोवाचासुरो मूढो	३३ २०६	अनलत्कर्मके हि	२७ २५०	अन्तर्धानं जगामास	६ ६६०
अयोवाचैव दासस्ते	४४ ८८०	अनास्य षडगुणास्य च	स मा ११ १८०	अन्तर्धानमग्राद् ब्रह्मन्	५३ ३७०
अदक्षिणागतया यज्ञा	स मा १० ७६६	अनास्यार्थैव ते वीरार्	३२ ४७६	अन्तर्धानमवाप्नोति	स मा १५ १५०
अदक्षोऽनं गता सोऽपि	५६ ६३०	अनागसा च सत्त्वानाम्	५६ २८०	अन्तर्धानं गुरुरास	६६ ७६
अदाहात्वं हुताशेन	६ ५०	अनाथैव यथा नारी	४३ ३०	अन्तर्हिते धर्मराजे	१० २४६
अदितिर्देवमाता च	स मा ६ ५६	अनादिमध्यनिचन	स मा ११ १७०	अन्तर्हिते धर्मराजे	६ ३७०
अदितिश्चरमासाद्य	स मा ६ १२६	अनादिपदविश्वस्य	स मा ८ १७०	अन्तर्हिते धर्मराजे	३४ १०
अदित्या प्रापि च श्रोमां	स मा ६ ४०	अनादासाऽनमथान्त	६० ६०	अन्तर्हिते धर्मराजे	४३ १०
अदित्या यन् पुत्रार्थे	स मा १३ १२०	अनापदि स विद्विद्भु	१५ ३३०	अन्तर्हिते धर्मराजे	६ २६६
अहन्य सर्वभूताना	स मा ७ १०	अनारम्भस्तथाहारी	१५ ६०६	अन्तर्हिते धर्मराजे	स मा २६ ७२०
अहृदयमव्यक्तमि च त्वमव्यय	५८ ४६६	अनाश्रिताय देवाय	३८ ३१०	अन्तर्हिते धर्मराजे	४३ ६७०
अहृदया रक्षसा तेन	५६ ६३६	अनिष्ठा श्वा बाला	२७ २८०	अन्तर्हिते धर्मराजे	४३ ४८६
अहृष्टया धर्मतनयी	३ ७६	अनिर्देश्यपद त्वेदेद्	स मा ११ १४६	अन्तर्हिते धर्मराजे	४४ ६१०
अद्यप्रभृति नैत्रोत्पये	स मा १५ ३६०	अनीता सचपावेभ्यस्	६० ४८०	अन्तर्हिते धर्मराजे	१० २६
अद्यप्रभृति वेदेरे	स मा ६ १०६	अनुजम्बु कुमार ते	३२ २७०	अन्तर्हिते धर्मराजे	३३ ४६०
अद्यप्रभृति मयोऽसिम	२६ २७६	अनुजम्बुमुहोदेव	२७ १५०	अन्तर्हिते धर्मराजे	४३ १०
अद्यप्रभृति वय पुत्रस्	३५ ५२६	अनुजम्बुमहेमान	२७ १६०	अन्तर्हिते धर्मराजे	४० ५६०
अद्यप्रभृति वय पुत्रस्	५३ ३६०	अनुजम्बुशुभा मात	६ ६४०	अन्तर्हिते धर्मराजे	११ ५३०
अद्यैतानिश्चितं ब्रह्म	स मा ११ २६०	अनुना ब्राह्मणेभ्यश्च	१० ८६	अन्तर्हिते धर्मराजे	४५ ३६
अधमपुत्रोऽङ्गमुतो बभूव	४० ३३६	अनुनाता विनेत्रग	२८ १००	अन्तर्हिते धर्मराजे	३० ६७०
अधमपुत्रोऽङ्गमुतो बभूव	स मा २६ १३७६	अनुनातास्तथा देव्या	२८ १३०	अन्तर्हिते धर्मराजे	स मा १५ ६३६
अधियय साधवाद् कृत्वा	८ १५०	अनुनातो वञ्च दत्त्वा	१४ ७०	अन्तर्हिते धर्मराजे	स मा २६ ६६०

अनस्य दानेन फल यथोक्त	६६ ६०	अपि न सततो जातो	६८ ४२३	अग्निपिबस्व त्वेयिन	स मा २६ ४६३
अम्बजन्म मुविस्थात	स मा १५ २८०	अपि न सततो जायिद्	६८ ४१३	अग्निष्टूय महाभावा	स मा १६ ३६०
अम्यत्र कृतापाया ये	स मा २० २०३	अपुच्छोद्योगविनात	३४ ७३०	अमुल वस्तु येषान्मिति	१२ १२०
अम्यत्रापि यदा पश्या	स मा २० ३००	अपुच्छन्त द्विजवरा	स मा १ ११०	अग्नेशोऽग्निमनाम्य	३८ ३६३
अम्यस्य कर्मयजित् पुत्र	६४ ३१०	अपोवाह वसिष्ठ उ	स मा १६ १६०	अगोऽग्या सूतिकापण्ड	१५ २५३
अभ्या सहस्राश्रान	१३ ३४३	अप्रतनयं क्लुबांडु	६१ २६३	अभ्यन्तस्तात्र ब्रह्माह	२१ ३६०
अभ्यातिनाम्तोऽशान	२७ २८३	अप्रतनयं निरालम्बे	६३ ४१०	अभ्यदवत् संहसा	३२ ४६०
अभ्यात्तत्तवरागात्का	२७ २५३	अप्रतनयं मन्विष्य च	२६ २६०	अभ्यपिब स्वमितर	स मा २६ ४१३
अभ्या सरसन वास	२७ २७३	अप्रतनयं मन्विष्येय	३४ ६५३	अभ्यपिबन्तु पुविष्या त	स मा २६ २३३
अभ्ये षोऽनुभव मून	३२ ४२३	अप्रतनयं मन्विष्यम्	२ २१३	अभ्युद्ययो तत्रा प्रस्था	४३ ८६३
अभ्येऽनुबन् च त्रमसा	१६ २६३	अप्रतनयं मन्विष्यम्	५८ ३३०	अभ्येऽह्य चोऽनुमहिय गगत	३२ ८६०
अभ्येऽनुबन्धनाऽनुन	१६ २७३	अप्रतनयं मन्विष्यम्	११ ५५०	अभ्येऽह्य ताडयामास	१० ३००
अभ्येऽनुबन्धुव देव्या	१६ २४३	अप्रतनयं मन्विष्यम्	४६ १७३	अभ्येऽह्य देवी गगनस्वितोऽप	२० २२३
अभ्येऽनुबन्धुव देव्या	१६ २१३	अप्रतन्ये विरूपा ने	५६ ११०	अभ्येऽह्य वच चैवैना	३० ११०
अभ्ये ये प्राणिन केचित	स मा २५ ६३	अप्रतोत न प्रयच्छन्ति	स मा २६ १४०	अभ्यपत किमेतद्धि	१६ ३२०
अभ्ये वर्णान्त चक्राह्वी	१६ १६३	अप्सरोभि परितुत	५८ ६३	अभ्यपत तवानज्ञ	७ ५०
अभ्येऽपामपि द्रव्याणा	१५ १४	अप्सरोभि परितुत	३१ २४६	अभ्यराखिल दृष्टया	४२ ५३३
अभ्येऽपामपि सहर्षी	४६ ३५३	अप्सरोभि परितुत	स मा १६ २००	अभ्यराखिलुवा वाता	४६ ३६०
अभ्येऽपामपिना विषय	स मा १० ४६०	अप्सरोभि परितुत	स मा १४ ६३	अभ्यराखिलुवा वाता	२६ १७०
अभ्ये ह्यग्नीवमुखा महाबला	६ ४८३	अप्सरोभि परितुत	३२ ३६०	अभ्यराखिलुवा वाता	५३ ५६०
अभिव्येय सती ब्रह्मन्	४३ ६०३	अप्सरोभि परितुत	८ ४३०	अभ्यराखिलुवा वाता	१७ ६३३
अभवहृष्ट तथा राज्यम्	४७ ७३	अप्सरोभि परितुत	स मा १६ १६०	अभ्यराखिलुवा वाता	३५ ३७३
अभवहृष्टे तपस्यो	३७ ५५०	अप्सरोभि परितुत	५८ ६६०	अभ्यराखिलुवा वाता	२७ ५८०
अभ्यस्तीक तदास्त्रेण	६ २७०	अप्सरोभि परितुत	५३ १५०	अभ्यराखिलुवा वाता	२३ ४१०
अभ्यच त्रि विदित्वा च	२८ ६६०	अप्सरोभि परितुत	स मा २ १००	अभ्यराखिलुवा वाता	२२ १६०
अभ्यस्यसर्वात् दृष्टया	१५ ५६३	अप्सरोभि परितुत	त मा ४ १६०	अभ्यराखिलुवा वाता	१५ २६०
अभ्यपान तत्रा चक्र	४३ ६१३	अप्सरोभि परितुत	स मा १८ ८०	अभ्यराखिलुवा वाता	३५ ३५३
अभ्यपान्तास्तया पूदा	१३ ३७०	अप्सरोभि परितुत	स मा १५ ४६०	अभ्यराखिलुवा वाता	स मा ४ ७०
अभ्यपान्तु कृतीऽन्ध	स मा २२ ६६०	अप्सरोभि परितुत	३६ १०३३	अभ्यराखिलुवा वाता	स मा ४ ८०
अभ्यपान्तु गुरु	४१ ३४०	अप्सरोभि परितुत	४ ३६०	अभ्यराखिलुवा वाता	स मा ४ २०३
अभ्यपित्य दक्षिणे वा	स मा १२ ६३	अप्सरोभि परितुत	४७ ३१०	अभ्यराखिलुवा वाता	स मा २६ १४२०
अभ्यपित्योर्ध्वप्रतिले	३६ ११६३	अप्सरोभि परितुत	६ ३३३	अभ्यराखिलुवा वाता	१५ १५३
अभ्यपिता वापवत्तर्मा इ	२० १०	अप्सरोभि परितुत	१० २७०	अभ्यराखिलुवा वाता	स मा ४ १२०
अभ्यपित्युर्ध्वगदव	स मा ६ २२०	अप्सरोभि परितुत	५७ ४३०	अभ्यराखिलुवा वाता	५६ २८०
अभ्यपयन्त तमो घोरा	स मा ४ १६३	अप्सरोभि परितुत	३१ ५७३	अभ्यराखिलुवा वाता	४४ ६६३
अभ्यपयन्ती नरपति	३७ ५६०	अप्सरोभि परितुत	७ २२०	अभ्यराखिलुवा वाता	६ १८०
अभ्यपयन्ती नरपति	४३ ६३३	अप्सरोभि परितुत	स मा २ १२३	अभ्यराखिलुवा वाता	स मा २७ २००
अभ्यपयन्ती तद्दुःख	४६ ६७३	अप्सरोभि परितुत	स मा २७ ३३०	अभ्यराखिलुवा वाता	स मा १० १३३
अभ्यपयन्ती तद्दुःख	८ १५३	अप्सरोभि परितुत	३१ ५६३	अभ्यराखिलुवा वाता	१३ १०३
अभ्यपयन्ती तद्दुःख	६८ ४०३	अप्सरोभि परितुत		अभ्यराखिलुवा वाता	

अथ पापेन धोरेण	स मा २६ ४२०	अथतीर्था जगदीनि	स मा १० ४३	अथत्वष्टुनामश्रित्य	स मा १५ ३२०
अथ स दनुपुत्रजिदं०	४० ४३३	अथतीर्था महाबाहुद्	५१ १७०	अथदस्य तु यन्मूल	स मा १५ ३८५
अथ सृष्ट्या मां फेन	२६ ८०	अथतीर्थं रथेभ्यस्ते	३६ ८६३	अथमेघमवाजोति	स मा १५ ४१०
अथ शङ्कु णिव शम्बुद्	५१ २३३	अथतीर्थानाम् ब्रह्मन्	५१ ३८०	अथमेघस्य यतस्य	स मा १३ २१०
अथ शङ्कु णिवि धाल्वे	४० ६१०	अथयान विवर कृत्वा	१ १००	अथवनतो महाभेधा	६० ४६३
अथुष्यन्त महारथानो	४३ ६७७	अथव्य दैवते सर्वैर्	२० ४२०	अथिनोस्तीर्थमासाद्य	स मा १३ ३१३
अथुष्येता तदा ब्रह्मन्	३२ ७३०	अथव्यल्लं वर प्रादात्	२६ ५०	अथिनो अथरो तस्य	स मा १० ५२०
अथुष्येतां महेश्वासी	८ १००	अथव्यल्लं सुरैः सेन्द्रैः	५२ १४०	अथुवाद् ददौ वासी	३१ ७६०
अथोष्यामगमरिसत्र	३८ ६२०	अथविक्रमभेदेभ्य स्वामिनोः	१ २७०	अथुष्यो कृष्णपशस्य	स मा ३१ २६३
अथरजसाद्रवीद् दण्ड	३७ ५००	अथवित्तवियय प्राण	६२ २५३	अथुष्या च चतुर्दश्यां	स मा २५ ४३
अथरा स्रष्टुर्देवैर्हो	३७ २३७	अथवित्तवियये विष्णु	६३ १३३	अथुष्ये च महेश्वासाद्	४३ ५५०
अथरथे निर्जने साधो	५३ ३६७	अथवर्गसो यदुस्तमोवा[]	४० ३४०	अथुष्येति संहर्षाणि	२७ ५६०
अथरथे भृगवा गा	६४ ६७०	अथवत् सिवत्तारुष्टया	५२ ८७०	अथुष्ये वै बहव कृपाता	४३ ५५३
अथरुद्रकेणियागुर	५६ १०१०	अथव्य भाविनो ह्यर्वा[]	५१ ४६०	अथो सहस्राणि यदुर्परागा	२३ ४२३
अथरुद्रेभित चक्र	२ १३३	अथवहृद्भोगितोमिध	स मा १६ २२०	अथस्थाता सहस्राणि	स मा २५ ५००
अथरुद्रां पुष्यतोर्षे पा	स मा १६ ३००	अथवहृत्स्य तत वाजो	स मा २० १७३	अथस्थातानि युषानि	२७ १६३
अथरुद्राया सरस्वत्या	स मा १६ ४१३	अथवाय वाजो सुरति	४६ ६४०	अथस्थेयगवा द्या[]	स मा २६ १६१०
अथरुद्रात्तन्नेभे स्वात्वा	स मा १६ ४२०	अथवाय गर्भं तन्वद्भो	४६ ५२३	अथवाय सप्त जन्वो	५६ ६५०
अथरुद्रतो महाभावा	५४ ३५०	अथवातवाद् यदुपपत्तवर्षं च	५० ३५०	अथवहृद् दशान्विता	५७
अथरुद्रत्या च संहितम्	२ ६३	अथवानुवाद् राजदुप	स मा १५ ५१०	अथवमानेषुतज्जा	१४ ११०
अथरुद्राणिना रामभर्ष्यं	२६ ७०	अथवर्षापर्यय णिष्य	स मा ११ १४०	अथवायो मदी तस्मिन्	५३ १६०
अथरुद्रित्वा सितन् देवान्	स मा १५ २७३	अथवित्तविययमसह च	४३ १००	अथवायि महोत्सवा[]	५२ ७२३
अथरुद्रित्वा महादेव	स मा १५ ६३०	अथविभुस मुगायस्य	२२ ३१०	अथवायि सद्योत्सवा[]	२८ ४१३
अथो परमत्र नामभ	स मा १ १४	अथविमुक्त च तोत च	६१ १०३	अथवायि सद्योत्सवा[]	११ ५३३
अथनारीश्वर देव	६१ ७७	अथविमुक्तवचनय	६३ १५०	अथवायि सद्योत्सवा[]	२८ ४८०
अथनारीश्वर पुष्ये	६३ १००	अथविरोधेन धर्मस्य	४८ ३६०	अथवायि सद्योत्सवा[]	६२ २३०
अथनरच यवा तासात्	१६ ४६०	अथविभुस महावर्ष	५६ १०६३	अथवायि सद्योत्सवा[]	स मा २७ १०
अथनाराश्रमासाद्य	स मा ३ ३३०	अथविदेवमयागत	११ २७३	अथवायि सद्योत्सवा[]	६६ ११०
अथनर गगन गर्वा	५ २८०	अथवहृत्स्य तत वाजो	स मा २० १७३	अथवायि सद्योत्सवा[]	३३ ७०
अथनर यवाटात्ते	५ २८३	अथव्यक्त सर्वगोष्ठीह	३४ ६४३	अथवायि सद्योत्सवा[]	३७ ४२०
अथो वीणावक्त्रुद्	४१ ४८३	अथव्यक्ताश्रय मत्ताश्र	४३ ३८३	अथवायि सद्योत्सवा[]	२५ ७००
अथुदे य निनां पत्नी	६३ १६०	अथव्यक्ताश्रयमवन्त्येने	३५ ७१३	अथवायि सद्योत्सवा[]	८ ४०३
अथुदेवा वा दानाम्	२२ ६६०	अथवात्ता शिव त्वेते	२८ ३८३	अथवायि सद्योत्सवा[]	१५ १६०
अथुत्पां पत देा	स मा १० १६०	अथवात्तुर्देव गृहीतैर्देवैः	१८ ७२३	अथवायि सद्योत्सवा[]	स मा १६ ३३
अथवातामपद् देव	५६ ५६०	अथवात्तुर्देव मगमाद्	१६ २३०	अथवायि सद्योत्सवा[]	४६ २८३
अथवातामपद् देव	स मा १० ३४०	अथवात्तुर्देव नाम	१६ २२०	अथवायि सद्योत्सवा[]	५६ २८३
अथवातामपद् देव	७ २७०	अथवात्तुर्देव नाम	५३ ५६३	अथवायि सद्योत्सवा[]	१५ २०
अथवातामपद् देव	३४ १६६	अथवात्तुर्देव नाम	५७ २६३	अथवायि सद्योत्सवा[]	स मा १५ ४०
अथवातामपद् देव	६४ ८६३	अथवात्तुर्देव नाम	५८ ६६३	अथवायि सद्योत्सवा[]	१६ २८०
अथवातामपद् देव	६३ ७०	अथवात्तुर्देव नाम	स मा १५ ३८०	अथवायि सद्योत्सवा[]	१८ २४३
अथवातामपद् देव	स मा ६ १४३	अथवात्तुर्देव नाम	१४ ३००	अथवायि सद्योत्सवा[]	स मा २० २००

श्लोकार्थसूची

अस्मिन्तीयं भवति	१६.१६५०	आ	आश्रयानाम विरक्ति	२६.६३३	
अस्मिन् दृष्टे वागिषु	५३.३०३	आ: कि क्रिमेतन्न पुत्रे	१०.५५०	आज्ञापयस्वानुत्तरोर्षं वंशे	१.५७०
अस्मिन्मुक्तिमवाप्नोति	स.मा.१५.२५३	आ: क्रिमेतदितोत्यव	६७.७०	आज्ञापि ताभ्यां नक्षत्रतमाज्ञा	२०.१५०
अस्मिन् समागते प्रेताः	५३.३००	आ क्रिमेतदितोर्युक्त्वा	५.१२०	आग्नेयं च विना होमं	स.मा.१०.८००
अस्मिन् सारिंहिते तीर्थे	स.मा.२८.२१३	आकण्ठमगमस्तिस्रुति	१६.१२०	आत्मज्ञानवचोपेक्षा	१५.६००
अस्य शीघ्रं च माहात्म्यात्	स.मा.१५.५५३	आवाच विदियः पुष्यो	५३.१५३	आत्मज्ञान महाबुद्धिः	५३.७१३
अस्य तिष्ठत्य माहात्म्यात्	स.मा.२७.१७३	आकाशमार्गेषु तथा	स.मा. २२.५५०	आत्मज्ञानं सा ज्ञानो ज्ञानं	२६.८००
अस्य व्रतस्य सुमथाः	स.मा.२२.६३०	आवासाभिरप्याय सदीर्घमुष्णं	३३.९०	आत्मज्ञानो यज्ञसो ब्रह्मणं	२६.८०
अस्य साधो प्रसादेन	स.मा.२७.२८०	आवासात् पर्यासात्	३६.६३३	आत्मज्ञानविशेषेण	स.मा.३.१२०
अस्यामुमाता पुत्रेणा	५६.११०	आकण्ठिस्तर्पणं भुक्त्वा	५.१२३	आत्मज्ञानसर्वसंयुक्तं	२६.३८३
अस्यात्मन्यं तत्रास्तीह	३७.५५३	आकण्ठ्यं तस्मै सहिता तदाया	१६.३२०	आत्मज्ञानं इव ज्ञानो ब्रह्मो	५३.१७०
अहंकारमतीन्द्रियं	११.२५०	आकण्ठ्यं नामासु निपाठुता वयं	१६.३०	आत्मज्ञानं भुवनान् उतातान्	५०.५७३
अहंकारविमुक्तिश्च	५१.२६०	आकण्ठ्यं लोकाविव निमित्तावर्ग]	२०.१३०	आत्मज्ञानं सत्कर्म हृद्यता	स.मा.२३.३५०
अहंकारादुक्तो हृदः	२.२६३	आकण्ठ्यं वसुधा सर्वा	६.७३	आत्मज्ञानं नदी संयमयुष्मतीर्षा	स.मा.२२.२५३
अहं च पानीयप्रामाण्यं मोक्षम्	५१.५६३	आकुमुकुटवचनात्	२१.२०३	आत्मज्ञानं गुणं जगत्	स.मा.३०.१२०
अहं च संयमिष्यामि	५३.१५०	आकण्ठ्यं वदन्ति	२७.३८०	आत्मज्ञानं प्रदत्तं स्वात्मन्यात्	३७.५२३
अहं ते प्रतिज्ञामि	२.३२३	आकण्ठ्यं वदन्ति	३.६०	आत्मज्ञानं प्रदत्तं स्वात्मन्यात्	३७.५२३
अहं त्वा च कर्तव्यामि	स.मा. ७.१३३	आकण्ठ्यं यमि तन्वह्नी	३६.७२०	आत्मज्ञानं तन्तुं स्वकत्वा	स.मा.२७.१५०
अहं न विरम्यं विप्र	स.मा. १७.१५०	आकण्ठ्यं वाक गच्छामो	२८.३५३	आत्मज्ञानं तामटाज्ञा	१३.५१३
अहं पताका संयमि	५०.५१३	आकण्ठ्यं वाक गच्छामो	५१.५६	आत्मज्ञानं तत्परं भूर्णा	३८.७३३
अहं पूर्वमहं पूर्वं [तरने]	३१.२३०	आकण्ठ्यं वाक गच्छामो	५१.५६	आत्मज्ञानं वाग्भुक्तं चोर	८.५०
अहं पूर्वमहं पूर्वं [हृदये]	५७.२७०	आकण्ठ्यं वाक गच्छामो	५१.५६	आत्मज्ञानं वाग्भुक्तं चोर	३२.९०
अहं यत्नवत्तत्पानं	२५.५५३	आकण्ठ्यं वाक गच्छामो	५१.५६	आत्मज्ञानं वाग्भुक्तं चोर	५२.९६३
अहं विवाहविष्यामि	२६.२६०	आकण्ठ्यं वाक गच्छामो	५१.५६	आत्मज्ञानं वाग्भुक्तं चोर	७.५०
अहं पुत्रं दत्ति ह्यवातो	२६.२०३	आकण्ठ्यं वाक गच्छामो	५१.५६	आत्मज्ञानं वाग्भुक्तं चोर	३३.५२३
अहं समागता श्रुत्वा	५६०	आकण्ठ्यं वाक गच्छामो	५१.५६	आत्मज्ञानं वाग्भुक्तं चोर	५८.५००
अहं त्वा रागिणी नाम	५६.५१३	आकण्ठ्यं वाक गच्छामो	५१.५६	आत्मज्ञानं वाग्भुक्तं चोर	५८.५००
अहं त्वा रागिणी नाम	स.मा. २५.५३	आकण्ठ्यं वाक गच्छामो	५१.५६	आत्मज्ञानं वाग्भुक्तं चोर	५८.५००
अहं त्वा रागिणी नाम	५६.१००	आकण्ठ्यं वाक गच्छामो	५१.५६	आत्मज्ञानं वाग्भुक्तं चोर	५८.५००
अहं त्वा रागिणी नाम	५३.५२३	आकण्ठ्यं वाक गच्छामो	५१.५६	आत्मज्ञानं वाग्भुक्तं चोर	५८.५००
अहं त्वा रागिणी नाम	स.मा. २६.११३	आकण्ठ्यं वाक गच्छामो	५१.५६	आत्मज्ञानं वाग्भुक्तं चोर	५८.५००
अहं त्वा रागिणी नाम	३५.५६०	आकण्ठ्यं वाक गच्छामो	५१.५६	आत्मज्ञानं वाग्भुक्तं चोर	५८.५००
अहं त्वा रागिणी नाम	५६.११८३	आकण्ठ्यं वाक गच्छामो	५१.५६	आत्मज्ञानं वाग्भुक्तं चोर	५८.५००
अहं त्वा रागिणी नाम	५६.११५३	आकण्ठ्यं वाक गच्छामो	५१.५६	आत्मज्ञानं वाग्भुक्तं चोर	५८.५००
अहं त्वा रागिणी नाम	२.१०३	आकण्ठ्यं वाक गच्छामो	५१.५६	आत्मज्ञानं वाग्भुक्तं चोर	५८.५००
अहं त्वा रागिणी नाम	१५.११	आकण्ठ्यं वाक गच्छामो	५१.५६	आत्मज्ञानं वाग्भुक्तं चोर	५८.५००
अहं त्वा रागिणी नाम	१६.२३	आकण्ठ्यं वाक गच्छामो	५१.५६	आत्मज्ञानं वाग्भुक्तं चोर	५८.५००
अहं त्वा रागिणी नाम	स.मा. २७.२३	आकण्ठ्यं वाक गच्छामो	५१.५६	आत्मज्ञानं वाग्भुक्तं चोर	५८.५००
अहं त्वा रागिणी नाम	१०.३३३	आकण्ठ्यं वाक गच्छामो	५१.५६	आत्मज्ञानं वाग्भुक्तं चोर	५८.५००
अहं त्वा रागिणी नाम	स.मा. २२.७५०	आकण्ठ्यं वाक गच्छामो	५१.५६	आत्मज्ञानं वाग्भुक्तं चोर	५८.५००
अहं त्वा रागिणी नाम	स.मा. १५.६१३	आकण्ठ्यं वाक गच्छामो	५१.५६	आत्मज्ञानं वाग्भुक्तं चोर	५८.५००

धामनपुराणस्य

मासं मासस्य महद्गुण	६३ १६	आवाते त्रिपुरात्मके सहस्रं ०	२७ ३४५	आलय राक्षसना तु	४० १८०
प्राक् शैव परिख्यात	६ ८७३	आवाते वासुदेवे ०	६४ ११६	आलयस्य वै शोडशमम्	३५ १६०
प्राक् ह्यनन्तामजर हरिमण्डय च	६७ ७०३	आवास्यामि तवाद्यं	५६ ४४०	आसिञ्जयते च सतत	६ ३८०
प्राक् प्रजापति सौमि	स मा ६ २४०	आयुष देहि भगवद्	४३ १२२०	आलेख्योमिदिमलाननाञ्चै	३ ३४०
प्राक् नित्यं तदा स्याथ	स मा २४ १८०	आयुषान्तेषु औगुता	६७ १४५	आलोकिताश्लेषण	६ ६९३
प्राक्षैव ब्रह्मणो वेदिसु	स मा १ १३३	आयुषतन्तस्तदह मा	३२,३००	आलोस्यायान् सुरणान्	२७ २०
प्राथमो मम नाप्यन्तु	६७ १७०	आयुत् स्थित्याप्रतो घन्वी	६ ६४०	आजतत ततो देवा	७ २५०
प्राथमो व्यायुषश्चैव	स मा २६ १४००	आयुषनाय कृष्णस्य	स मा ६ १४०	आवर्त्तयामास तदा	४३ ७०
प्राथम्य चाप वेगेव	८ ५६	आयुषनाय देवस्य [शक०]	२५ ४००	आवृत्त वज्रित सर्वे	४३ ६२०
प्रातीतास्वाध्रमात्केन	३६ ४२०	आयुषनाय देवस्य [कृत्वा]	५० १६०	आवाहनाय मकारध्वजेन	२० ११०
प्राध्ना कश्चिगतो नीर	१३ ११०	आयुषनाय देवाम्या	१७ १०	आविधेता तदाभ्योम्य	८ ७०
प्रापगा च गहाडुष्या	स मा १३ ७३	आयुषनाय शर्मस्य	१७ २०	आवातानामशता च	१५ ३६५
प्रापयाना महावेग	४३ २३०	आयुषयन्ति देवेसु	स मा २२ ४४०	आधमस्वाविद्वूर तु	४६ ३००
प्रापया नाम विख्याता	स मा १५ १०	आयुषयन्तो ब्रह्माग	४६ २६६	आयुमादय निर्णय	४० ४०
प्रापजलनिष्पानाना	६८ ७०६	आयुषयानो वृषभञ्ज तदा	३२ ११६०	आधमान्ते च ददशे	४० ७३
प्रापतत गणपति	४२ २६६	आयुषयामास तदा	स मा २८ ८३	आधमे चेह वत्त्वामि	स मा १७ २१०
प्रापतो पतिताना	६८ ६८३	आयुषयामास विभु	३४ ३१०	आधमे पर्यट्त् मिला	स मा २२ ५६३
प्रापदाभागम दृष्ट्वा	५१ ४६६	आयुषयामास विरिञ्चिपारात्	५५ २००	आधमो वै वसिष्ठस्य	स मा १६ ३३
प्रापद्वाट्टदृष्टीताना	६८ ६६६	आयुषयामास हरि	५६ २००	आधम्ययो ऽपारान्ते	६२ १६०
प्रापद्ब्रह्मचर्यदृष्ट्य	६८ ६६६	आयुषितस्तु भगवात्	१६ १७३	आस्तेषानु नखान् पूज्य	५४ २०३
प्रापद्विभुक्तौ गुणपद्	५८ ६५०	आयुषितो महर्षेव	३७ ६०	आश्वत्थनकर चाल्य	स मा २७ ७७
प्रापद्दिभोशाम्बि ह्यत्	५८ ३००	आराभ्य त्वा सरस्वती वाज्रभन्ते	स मा २६ १४५०	आपाठमदाददश	स मा ६ ३७५
प्रापूष्पाद्दक्षिणाया	६५ ५४३	आश्वभ्यमन यजन	५५ १२०	आपावमासे या कृष्णा	स मा २५ १६०
प्रापो नारा वै तनव []	स मा २२ २६६	आराभ्य वरद देव [प्रतिष्ठा०]	स मा २५ ३४०	आपाठस्य तु मासस्य	स मा २५ २१६
प्रापामया प्लावयन्तो	२५ १६०	आराभ्य वर देव [चक्रम्]	स मा २५ ४३०	आपाठान्या तया द्वाभ्या	५४ १३३
प्रापोमयी ब्रह्माज्ञेक	२५ १४०	आराभ्य हनुमाभ्या	स मा २५ ४२०	आपाठ इ इय घोर्वीर्	१४ ४३
प्रापामयी म त्रकात	३१ १८०	आरामा विविधा ह्येषा	६८ ४८३	आपाठ मासि मार्गशे	२४ ८५
प्राप्याथित दक्षुरेण	५७ ५३०	आरामस्तास्त्वषो चास्य	५६ २५३	आपाठे स्नानमुचित	१७ ५८३
प्राप्यायिता येन देव	स मा १० ७७०	आरारोह वट सूर्ये	३८ ७५३	आसन चैव पुनह	स मा ६ ३७७
प्रापयामनो विचकार भूम्या	५५ २२०	आरारु बलभी तास्तु	३६ ११५०	आसनेभ्य प्रवर्तितौ	३४ २२३
प्रापयाम्यम वापेषु	५६ ५१३	आरारु बाहन स्व स्य	६ १००	आसमन्ताञ्जणद् शत	१६ ३३०
प्रापयस्तम्बप त	स मा ६ ३१३	आरारु बाह्यान्वेष	६ २३३	आसमन्ताद् योजनानि	२३ १६०
प्राभीरा सह नैवीका []	१३ ४८३	आरेषु सन्विता देवा	६७ १३३	आसाद्य भूमि भरद्वाज नरेन्द्राद्	१० ५९३
प्राभम्य इतवान् दश	२ ११३	आशेषमनुन प्राप	५३ ६०	आसाद्य मन्दरगिरि	२६ ६९०
प्राभम्यता च श्लेष	५२ ३६५	आशुभं प्रथित वगी	५२ ४६०	आसीद् प्राशे गयेन्द्रागौ	५८ १६०
प्राभम्य भागं श्रीतात्	स मा १४ १४३	आशुभं स्नानमुचित	१६ ६०३	आसीद्दृष्टो नाम दुन	३७ २०५
प्राभम्य सर्वान्पुत्रप्राप्तान्	५१ ५७०	आशुभं स्नानमुचित	१६ ६३३	आसीद्गुणमुचिति ह्यात	५६ ३३
प्राभम्यवामि भां बन्धे	३६ १२०	आशुभं स्नानमुचित	२० ८०	आसीद्गुणमुचिति ह्यात	५२ १३३
प्रापता दानिनो ज्ञानम्	७ १५३	आशुभं स्नानमुचित	६० १३३	आसीद्गुणमुचिति ह्यात	६७ ५०३
प्रापार्ण त्रिपुरात्मके शर्णां १०	२५ ७५३				

श्रीसूक्तसूची

भासीप्रियाचरपतिन्	११.४३	दत्त्वं मित्तर्णं यवनं	१८.४४३	दक्षुक्ता तु ततो देवी	४.मा.२२.२३३
भासीभूमौ रघुकुर्वे रिपुनिर्महर्षे	३३.२३	दत्त्वं प्रभाति परमं पवित्रं	१४.२८३	दक्षुक्ता दानवेन्द्रेण	७.४०३
भासीर्माङ्गलिति स्थापाम्	४६.७१३	दत्त्वं प्रोक्त्वा बलिमुत्तं	६५.५३३	दक्षुक्ता पराश्रुक्ता	२८.६६०
भासीमहागुणरपतिः	५६.१६३	दत्त्वं ध्रुवन् कव्य विपातयामि	२.४६०	दक्षुक्ता ब्रह्मा गार्ध	४ मा २३ २१
भास्वन्तु गुणतीर्था ता	६.३१०	दत्त्वं महेश्वरो ब्रह्मन्	४४.६७३	दक्षुक्ता वासुदेवेन	३६.१५३
भास्वन्तु कुर्मुनि तत्र	४.मा. १३.४५०	दत्त्वं मुखादि सह पंचरेण	१६.५३	दक्षुक्ता सद्गुरुरागव	१.१४१
भाह्वं भेरी रत्नचर्मनास्ते	२०.२०३	दत्त्वं यत्र श्राप्य महासुरेन्द्रो	४८.५०३	दक्षुक्ता प्राह स मुनिन्	३६.६५३
भाह्वं ब्रह्मा महातीर्था [.]	३.मा. ३.२८०	दत्त्वं वचनमाकर्ण्य	६५.३३३	दक्षुक्ता दीपसंविता	४.मा.१०.४३३
भाह्वं रत्नोभेन तदा	४.मा २६.५६३	दत्त्वं वणिगमुत्तवचः	५३ ४२३	दक्षुक्ता धर्मपुत्रस्तु	२.४४३
भाह्वता च सतिरन्ध्रग्रा	४.मा. १६.३०३	दत्त्वं वदति दैत्येन्द्रे	३३.२४३	दक्षुक्ता लोच नाभेन	८.६७३
भाह्वता ब्रह्मा गा ताम्र	४.मा १४.३२०	दत्त्वं विकल्प स्वप्नान्ते	६ ४२३	दक्षुक्ता वासुदेवेन	३१.३५३
भाह्वता सा कुक्षदेवे	४.मा. १६.३४०	दत्त्वं विवदयाना सा	४०.२३	दक्षुक्ता विष्णुना नन्दी	४४.६००
भाह्वयथा च निष्पद्यम्	५२.३५०	दत्त्वं वृन्दे देववरेण प्राप्तात्	६६.१४३	दक्षुक्ता जम्बुकुर्वी	३५.५२०
भाह्वय माकिरी स्नातुं	२८.५६०	दत्त्वं गन्धित्यग्नेयं	७.१६३	दक्षुक्ता तास्तदा तं वी	४.मा २२ ६५३
भाह्वय सारिता शंष्टा	४.मा. १६.२८०	दत्त्वं तदनुत्पमान.०	२७.२३३	दक्षुक्ता दानवपति	४.मा ८.८३
इ		दत्त्वं स देवैरिरीभोदिवस्तु	१०.५०३	दक्षुक्ता ब्रह्मवर्हि देवे	४.मा.७.१४३
इच्छा च परवारेणु	३५.१७३	दत्त्वं स नागरस्त्रीणा	२७.२६०	दक्षुक्ता भगवान्देवम्	४.मा.२८.३६०
इग्यापुद्वेगिज्यावै.	१३.१२०	दत्त्वं स नृपति इत्वा	६८.५१३	दक्षुक्ता भगवान् इदो	४.मा.२४.५३
इडास्यं च तत्रैव	४.मा. १५.२४०	दत्त्वं गुणैरावचनं	११.११३	दक्षुक्ता वचन मग्नी	६४.३८३
इडास्येत्तत्र विष्णुग्रा	६४.५१३	दत्त्वं गुणैरेव च	५२ ३७३	दक्षुक्ता वासुदेवेन	२२.२२३
इत सद्यैर्बहुभोजनास्यैर्	५२ २१३	दत्त्वं स्तुत वचिपरेणु०	५३.३९३	दक्षुक्ता सारिध्वज्य	३६.७३३
इति आनास्य लोभो	४.मा. ८ ४२०	दत्त्वं स्तुत पचनवेन विष्णुम्	६६.१२३	दक्षुक्ता स मरायोनी	३७ ७६३
इति द्विजानां वचनं	५२.७५३	दत्त्वं स्तुततत्रमथर	३.२४३	दक्षुक्ता सोमभवत्सूची	२८.३४३
इति दैत्यपति ध्रुवा	४.मा. ६.१३	दत्त्वं स्तुता साग्नयेन	४४.६२३	दक्षुक्ता प्रणम्येति	१७.२४३
इति गृष्टोडव बलिना	४.मा. १०.३३	दत्त्वं स्तुतो जगन्नाथ	६२.४२३	दक्षुक्ता तमाह्वय	५३ २६३
इति दविबचनादवाहुरुम्भवन्मा	१६.२७३	दत्त्वं मिनना सा कुडिता	३१.७३	दक्षुक्ता स्वगतया तु	५३.११७३
इति वचनमयोर्षे सारिता सा मुदानी	१.२७३	दत्त्वं म्यवचन ध्रुवा	४४ ६३	दक्षुक्ता सारिध्वज्य	४४.८६०
इति विष्णुना प्रगतातिहरेण	५१.५८३	दत्त्वं म्योप्ये पुरा साम्या	२.२८३	दक्षुक्ता सारिध्वज्य	३८.५४३
इति धीविनायक्यामम्	७.१३३	दत्त्वं सारितासाम्या	५६.२२३	दक्षुक्तासुर्वेषो महा	१६.५३
इति सचिन्त्य मनसा [स्यशवा]	२३.२२३	दत्त्वं सुवचस्तेन	४.मा.८.५३	दक्षुक्तासुर्वेषो महा	४.मा १२.१३
इति सचिन्त्य मनसा [श्रुत?]	३६.५६३	दत्त्वं सौतवामेन	८.५३३	दक्षुक्ता सौतव तस्य	४.मा.१०.८७३
इति सचिन्त्य मनसा [श्रुत?]	५२.११३	दत्त्वं सारितासाम्या	२.३३३	दक्षुक्ता सौतव तस्य	६०.५६३
इति सचिन्त्य मनसा [श्रुत?]	५२.११३	दत्त्वं सारितासाम्या	२.३३३	दक्षुक्ता सौतव तस्य	४.मा.२८.५६३
इति सुषोवचनं	२६.५०३	दत्त्वं सारितासाम्या	२.३३३	दक्षुक्ता सौतव तस्य	४.मा २६.५६०
इति सुषोवचनं	५६.३१०	दत्त्वं सारितासाम्या	२.३३३	दक्षुक्ता सौतव तस्य	१३.२२०
इति सुषोवचनं	१.२३३	दत्त्वं सारितासाम्या	२.३३३	दक्षुक्ता सौतव तस्य	१३.५०३
इति सुषोवचनं	२६.२३३	दत्त्वं सारितासाम्या	२.३३३	दक्षुक्ता सौतव तस्य	३६.१७३
इति सुषोवचनं	१.२४३	दत्त्वं सारितासाम्या	२.३३३	दक्षुक्ता सौतव तस्य	३८.५६०
इति सुषोवचनं	५०.६५३	दत्त्वं सारितासाम्या	२.३३३	दक्षुक्ता सौतव तस्य	४.मा.२६.२६०
इति सुषोवचनं	३०.५०३	दत्त्वं सारितासाम्या	२.३३३	दक्षुक्ता सौतव तस्य	४.मा.२६.३१३

इत्येव चोदित सर्वैः	२६ २२६	इत्येवमुक्ते वचने [सर्व-]	३६ ६१६	इत्येवमुक्त्वा जग्मुस्ते	४६ ५००
इत्येव ब्रह्मणा वासा	२५ १५६	इत्येवमुक्ते वचने [कवि]	३६ १३५६	इत्येवमुक्त्वा तां बालान्	४५ ४१६
इत्येव मनसा सत्यान्	५६ ६०६	इत्येवमुक्ते वचने [मुनि ^०]	३६ १५६०	इत्येवमुक्त्वा त्रिविधां	४४ ७६६
इत्येव मेनया प्रोक्त	२६ ५६६	इत्येवमुक्ते वचने [कृद्-]	४० १२६	इत्येवमुक्त्वायादाय	४६ ५००
इत्येव हृदकोट्येति	५७ ३६०	इत्येवमुक्ते वचने [प्रह्ला ^०]	४० ४१६	इत्येवमुक्त्वा देवेश	५२ ७३६
इत्येव वदतस्त्वस्य	स मा १० ३३६	इत्येवमुक्ते वचने [गणा]	४१ ३००	इत्येवमुक्त्वा देवेशो	४६ २२०
इत्येव वाचमुस्त्वज्ज	स मा १२ ७७	इत्येवमुक्ते वचने [बाड]	४३ ८१६	इत्येवमुक्त्वा देव्यास्तु	२८ ७३०
इत्येवमाश्वास्य बलि महात्मा	५१ ५७६	इत्येवमुक्ते वचने [नन्दि]	४३ १३६	इत्येवमुक्त्वा नरदेवतुस्तु	३६ १६६
इत्येवमुक्त कौशस्तु	३२ १०८६	इत्येवमुक्ते वचने [वर्णिक]	५३ ६१६	इत्येवमुक्त्वा प्रह्लादम्	४० ४२६
इत्येवमुक्त पिशाह	३८ ३५६	इत्येवमुक्ते वचने [वाम ^०]	६५ १७६	इत्येवमुक्त्वा बलवाम्शु कृक	६५ ११५६
इत्येवमुक्त शैलेन्द्रो	२६ २१६	इत्येवमुक्ते वचने [वाम ^०]	६५ ४६६	इत्येवमुक्त्वा भगवान्[सर्व] स मा २७ २५६	
इत्येवमुक्त सहस्र	३६ १०५०	इत्येवमुक्ते वचने [भग ^०]	६६ ६६	इत्येवमुक्त्वा भगवान् [गूल]	३१ ४७६
इत्येवमुक्त स तु धङ्करेण	२ ५१६	इत्येवमुक्ते वचने महात्मा	४३ ४२६	इत्येवमुक्त्वा भगवाञ्जगाम	१६ ३२६
इत्येवमुक्त स मुनिश्	५६ ३५६	इत्येवमुक्ते वचने महात्मना	५२ ८३६	इत्येवमुक्त्वा भगवान् मुषोच	४३ ४३०
इत्येवमुक्त सविनुश्च पुश्या	२२ ५५६	इत्येवमुक्ते वचने गदाधरेण	५० २५६	इत्येवमुक्त्वा भववान्निवेश	५० ५६६
इत्येवमुक्त सुरराज विरञ्चिना	५० १३६	इत्येवमुक्ते वचने गदाधरेण	३ ४२६	इत्येवमुक्त्वा मर्त्यान्	६७ १८६
इत्येवमुक्तेनाह	२३ ३६७	इत्येवमुक्ते वचने गदाधरेण	२५ ३५६	इत्येवमुक्त्वा मधुसूदन वी	४७ ५५६
इत्येवमुक्ता प्रमया	४४ १५६	इत्येवमुक्ते वचने गदाधरेण	= ४५६	इत्येवमुक्त्वा मधुहा वितोभ्रर	६५ ६१६
इत्येवमुक्ता श्रुत्यो	स मा २३ २१६	इत्येवमुक्ते वचने [वह्निना]	१८ ४३६	इत्येवमुक्त्वा मुनिपुत्रोऽज्ञो	४० ११६
इत्येवमुक्ता खचरेण बाला	४६ १०६	इत्येवमुक्ते वचने [शचरेण]	३५ ५७६	इत्येवमुक्त्वा राजान	स मा २७ २६०
इत्येवमुक्ता दनुनायकेन	२० ३३६	इत्येवमुक्ते वचने [ब्रह्मणा]	४६ ६६	इत्येवमुक्त्वा वचन [ब्रह्म]	३ ५६
इत्येवमुक्ता दितिजेन दुर्गा	२० ३०६	इत्येवमुक्ते वचने [ब्रह्मणा]	२४ ८७६	इत्येवमुक्त्वा वचन [देवा ^०]	८ ३७६
इत्येवमुक्ता दुर्लभ्य	२६ १५६	इत्येवमुक्ते वचने [देवैस्तु]	२२ ६००	इत्येवमुक्त्वा वचन [विगेन]	१० २०६
इत्येवमुक्ता देवेन [शक ^०]	२६ ६६	इत्येवमुक्ते वचने [देवो] स मा २३ ३२६	५६ ४०६	इत्येवमुक्त्वा वचन [सुर ^०]	४७ १६६
इत्येवमुक्ता देवेन [ऋष ^०]	स मा २३ १९०	इत्येवमुक्ते वचने [हरणे]	४० ५२६	इत्येवमुक्त्वा वचन [करे]	४८ ३०६
इत्येवमुक्ता देवेन [ब्रह्म ^०]	२५ २६६	इत्येवमुक्ते वचने [महिमां]	३५ ७५६	इत्येवमुक्त्वा वचन [दान ^०]	४६ ४७०
इत्येवमुक्ता देवेन [गिरि ^०]	२५ ७२६	इत्येवमुक्ते वचने [महिमां]	३६ ६५६	इत्येवमुक्त्वा वचन [कुश्या]	३५ ६२६
इत्येवमुक्ता मुनिना	३७ ८२६	इत्येवमुक्ते वचने [महिमां]	३६ ६५६	इत्येवमुक्त्वा वचन [बलभ्या]	३६ १२०६
इत्येवमुक्ता सक्केण	४६ २६०	इत्येवमुक्ते वचने [मुनिभि सुकेशी]	१५ ६७६	इत्येवमुक्त्वा वचन [नन्दी]	४२ १६६
इत्येवमुक्ता सहस्र	३६ १५६०	इत्येवमुक्ते वचने [मुनिस्तप्तयेन]	१६ ३०६	इत्येवमुक्त्वा वचन [विद्या]	४३ ७६
इत्येवमुक्ता सा तेन	३७ ६८६	इत्येवमुक्ते वचने [गुरुणा]	३५ ३६६	इत्येवमुक्त्वा वचन [समु ^०]	४३ ८८०
इत्येवमुक्ता सा भर्ता [वित्तिङ्]	५५ २३६	इत्येवमुक्ते वचने [सुरेण]	४३ १५६	इत्येवमुक्त्वा वचन [हिर ^०]	४४ ४६
इत्येवमुक्ता सा भर्ता [वन्तो]	६५ ८७०	इत्येवमुक्ते वचने [त्रिनेत्रा]	२ ५५६	इत्येवमुक्त्वा वचन [मिनेत्रा]	२६ ८६६
इत्येवमुक्ता सा रैत्रा	६५ ३२६	इत्येवमुक्ते वचने [विभुना स पदो]	६ ५५६	इत्येवमुक्त्वा वचन [वितोभ्ररो]	६८ ५६६
इत्येवमुक्ता देवपेर	४३ १३७६	इत्येवमुक्ते वचने [वृषभन्वजेन [यक्ष]	६ ५०६	इत्येवमुक्त्वा वचन महर्षे	६३ ४८६
इत्येवमुक्ता भगवान्	४३ १३०६	इत्येवमुक्ते वचने [वृषभन्वजेन [यक्ष]	४२ ४२६	इत्येवमुक्त्वा वचन महात्मा[वितो ^०] ७ ५३६	
इत्येवमुक्ता मुनिना	३६ १३३६	इत्येवमुक्ते वचने [हृरिणा कुमारस]	३२ ११५६	इत्येवमुक्त्वा वचन महात्मा[भूयो ^०] ६५ १३६	
इत्येवमुक्ता वचने [प्रमु ^०]	२७ ५५६	इत्येवमुक्ते वचने [हृरिणा कुमारस]	१५ २८६	इत्येवमुक्त्वा वचन [वर्णिक]	५३ ७७६
इत्येवमुक्ता वचने [खडग]	३० ४२६	इत्येवमुक्ते वचने [हृरिणा कुमारस]	२८ १०६	इत्येवमुक्त्वा वचन [वृषभन्वजेन [यक्ष]	४५ ७३६
इत्येवमुक्ता वचने [कुपा ^०]	३२ ५६	इत्येवमुक्ते वचने [हृरिणा कुमारस]	६७ ६०	इत्येवमुक्त्वा वचन [वृषभन्वजेन [यक्ष]	२५ ६८६
इत्येवमुक्ते वचने [मुप]	३६ १८६	इत्येवमुक्ते वचने [हृरिणा कुमारस]	४५ ३६०	इत्येवमुक्त्वा वचन सुराणा	३० ७३६

श्लोकार्थसूची

इत्येवमुक्त्वा वरदेन चर्चिका	४४ ४७७	इमे प्राप्ता गणा योऽतु	४१ १३०	उज्ज्वारायमेयातना	५८ ६२०
इत्येवमुक्त्वा वरदोऽप्यधीत्यत्	२७ ४५५	इमे गुणेश्वरना	४१ १७७	उज्ज्वान पुष्पगिरिर्	१३ १७०
इत्येवमुक्त्वा विपुल	४३ १२५५	इमे सत्पाय पुण्या	२६ ५३५	उताहोस्त्रिदिमा शक्या	३७ १८५
इत्येवमुक्त्वा शकुनि	३६ ६३३	इमे हि श्रुपय प्राप्ता	२६ २३५	उत्कृजति तथारथ्ये	६ ४२०
इत्येवमुक्त्वा शैलेन्द्रो	२७ ४३५	इय तबोला धर्मत	५३ ६०५	उत्कृष्टोपासन यौ	११ १८५
इत्येवमुक्त्वा स श्रुति	३६ ७७५	इय तबोला मुनिसधनुषा	५७ ७४५	उत्लेग पञ्च ज्ञानी	३१ ६५५
इत्येवमुक्त्वा स निशाकरस्तादा	६४ ११२६	इय गुरेन्द्रमहिणी	३८ ४२०	उत्तमानी वेदमिना	३१ ६७५
इत्येवमुक्त्वा स मृप	३६ ६५५	इय प्रवीयता मह्य	२८ २५५	उत्तमगा दामार्गा	१३ ५३०
इत्येवमुक्त्वा स मुनिर्जगाम	३७ ८६५	इय ममोत्सपूर्ता	७ १८५	उत्तमस्यान्ववाये तु	४६ ४२०
इत्येवमुक्त्वा सुरपूजित सा	५० ३६५	इय र्थि भवेत्तैव	३३ २१५	उत्तमे महतो ये च	४६ ४२५
इत्येवमुक्त्वा सुरपट पुलिन्दाम्	५० २६५	इय वा त्वत्पुता कालो	२६ ३७५	उत्तरस्या जगनाव	१८ २६०
इव च तीर्थं प्रवर वृषिण्या	३६ ५२०	इय धिक्स्वद्वृद्धिता गुरेन्द्र	२२ ५६५	उत्तराशास्त्र्य पाणिग	५ ३६५
इव च भगवान् योगी	५८ ६७५	इय सा शकुजनी	३३ ३००	उत्तराशास्त्रयो श्रुता	५ ४०५
इव च वृत्त च पण्डित रत्नराट्	६८ ६७५	इय सगतिररमाक	स मा १६ ३५०	उत्तराकल्पुनीयोग	२६ ३३५
इव द्वापाम प्रोक	३५ ६५०	इयमस्य जगद्धातुर	स मा १० ८५	उत्तरागा प्रबामुते	६२ ४५
इव पुराण परम पवित्र	३० ७३५	इरावतीमनुष्याय	५५ १५	उत्तरे कोशराभागे	स मा १६ ३२५
इव रहस्य परम तयोक्त	६६ १३५	इरावत्या नडवलाया	५३ ५१०	उत्तरे च कुस्वर्ष	१३ ५०
इव हि तु छ मृगशावनेभ्याम् []	३७ ८५०	इरावत्यास्तते श्रीमान्	५३ ८१५	उत्तानशापी भगवान्	३१ २१५
इदमोह्य व्रत लिखित	स मा २२ ६३०	इलाजुवाया ये चाष्टौ	१३ ६०	उत्तिष्ठ गच्छस्व विभो	५६ ३६५
इदमुक्त व्रत पुण्य	१७ ६४५	इत्यय पशवश्रास्य	स मा १० ५६०	उत्तिष्ठ गच्छामि महात्तुरस्य	६३ ४७०
इदमुक्त्वायेद् भक्त्या	१७ ५७०	इत्यग्निप्रसंगेभ्यो	५६ १०५०	उत्तिष्ठन्व यभ्रम्याम्	७ ३६५
इदानीं भुञ्ज सर्वे	स मा १० ६६०	इत्युत्पादय सर्वा	६५ २२५	उत्तानामास ततम्	स मा १० ३५०
इदानीं शत्रु शोचति	स मा २२ २८५	इह ये पुरुषा केचिद्	स मा २४ ३५	उत्तम्य पश्चाद्दिरित्युदीय	१४ २६०
इन्द्रतीर्थं विशोक च	३१ ६२५	इह श्रयो न पश्यामि	स मा १८ १७७	उत्थित सागर मिरया	५८ ५०
इन्द्रतीर्थं तस्मा एतत्पा	५७ ७७५	इहामयन्व ता वाती	२५ ५७५	उत्थिति च प्रनाव च	स मा २ २०
इन्द्रमुत्पन्नस्य महिणी	३६ ४६५	इहत्या त्वा समाभाष्य	२५ ५७५	उत्थिति च प्रन्यास्य	स मा २२ १६०
इन्द्रशब्देन तन्तु	३६ १६३५	इहाह त द्विभ्रष्ट	स मा १६ ७५	उत्थित्याह्य गवत	५ ५०
इन्द्रशब्दो मुनिषष्टम्	३६ १५८५	इहैव विद्यस्व विभो	२५ ३३०	उत्थना एव भगवान्	स मा २८ ३५
इन्द्रानीं चाप्ययो धिभ्ये	५६ २६०	इति च विविधैर्गैर्	३७ २१५	उत्थना श्रुपय सन्त	स मा २२ ४००
इन्द्रानीं वदनात्म्य	६० २६५	इहशाया सुरेशान	३ ४०५	उत्थास्य विकान विरोपन हि	१० ३३०
इन्द्राया द्वादशादित्या []	४ ३२०	ईप्सितान् मानसान् कामान् स मा	१४ १३५	उत्थास्य भूम्या च विनिर्गियेय	१० ११०
इन्द्रोऽप्य कसेरमास	१३ ६५	ईश्वरिणामत्र सत्येणु	३५ १७०	उत्थस्य धनु श्रेष्ठ	६ ६७०
इन्द्रोऽपरमानी सादौ	२५ २६५	ईषदासाधुना दृष्टवा	२० ६००	उत्थस्य तता प्रागान्	२६ १००
इन्द्रोऽप्य कसेरमास	२० २६०			उत्थस्य जीवित दून्ये	१६ १४०
इन्द्रादीनि च तथा	६८ २३०			उत्थस्यमात्र शापे तु	३७ ५५०
इम चोवाहरत्येव	स मा २२ २८०	उत्थन्तो प्रभो य हि	३५ ५१०	उत्थक शोषामास	स मा २२ ३२०
इमा देवमतीं शृणु	३८ ३५०	उत्थस्य परया वाचा	स मा ४ १५०	उत्थकृष्णाम्बुधेनु च	६८ २७५
इमा स्तुति भक्तिपरा नरोत्तमा []	३० ६५५	उत्थस्य मा वंलयव	१८ ४८५	उत्थकेन विना पूजा	स मा १० ८०५
इमानि श्रुयानि वने मुनागा	१ २०५	उत्थाय च नमो नित्य	स मा २६ ८४०	उत्थक्यादानं रसो	१४ ४५०
इमात्र पितरो दीव्य	६८ ३६५	उत्थायुध निधुररक्तबीजो	२० १६०	उत्थक्याधाननमास	१५ १६५
इमे तबोला लिपया सुविस्तराट्	१३ ५८५	उत्थै शोचन केनेय	६४ ५१०	उत्थक्याधाननमास	४४ ३५५

उदङ्मुख च मोक्षस्य	६२ १८०	उर्वाविष्टं विनेयस्तु	२७ ४०३	उमामि स वर लक्ष्म्या	२८ २६३
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वापि विद्वान्	१४ ३३३	उर्वाविष्टा शिलापट्टे	३८ २१०	उमामपि तपस्यन्ती	२४ ३०३
उदङ्मुखोऽङ्गुवा देशा	१३ ३४०	उर्वाविष्टा सभाया वै	२६ ४६०	उमास्वेद भवत्वेद	२८ ६५०
उदमाने तथा स्नात्वा	५७ ६३	उर्वाविष्टे पु ऋषियु	२६ ७३	उमेदेव हि कन्याया	२५ २२०
उदयाद्विहते रम्ये	४७ २६३	उर्वाविष्टो सुखातीतो	३५ ४६०	उर सत्या त्वनुपाया	५४ ५०
उदये दक्षिण सूर्ये	६३ २१३	उभेदा भवानीरा	३ २१०	उवा तस्याभव मेदस्	स मा २२ ३६३
उदयो हेमपूज्य	२६ ४६३	उभ्यान् नमस्तेऽह	६१ १००	उवाच दीनया वाया	स मा १३ ४६३
उदर राजते श्लुषा	७ ८०	उभ्यान्वस्त्रया जातो	६० ५००	उवाच देव भुवना	६ ७००
उदरे चास्य गन्धर्वा []	स मा १० ५७३	उभयतः हारकाले च	स मा २२ २००	उवाच देव्याधिपति	स मा १० ३०
उदीरयत वैदोर्ल	स मा ४ २३०	उभयसंनि ते देव्या	स मा १० ६००	उवाच मा भैर्द्वजत	स मा २३ ६०
उद्गाप्राद मुदभिर्जाता	स मा १४ ३००	उभयस्य बल श्रीमान्	४१ २०	उवाच याम देव्यास्ताद्	४७ १५०
उद्गधिते ततो द्वारे	६४ ७८०	उभयस्य शुचिभूत्वा	४० १२०	उवाच वचन दृष्ट्वा	१ ११०
उद्दालकेन मुनिना	स मा १६ ३२०	उभयैरस्तया हृषी []	स मा २८ ८०	उवाच वचन सत्यक	स मा ६ २३
उद्दालको वापराग्र	२६ ४६०	उपागम्य शमीमूले	५३ २१०	उवाच दायक वाक्यज्ञ [कृता°]	२६ ५५०
उद्बद्ध कपिना राजन्	३८ ६४०	उपागम्य पयस कृष्य	१२ ३१३	उवाच दायक वाक्यज्ञ [सर्वा°]	२६ ५२०
उद्बुध तस्य तीर्थस्य	२२ २३०	उपागम्युगत ध्वज [दान]	१७ ५६०	उवाच लोकतन्त्रपात्	स मा २६ ४४०
उद्यम्य वेगात् परिष हुताग	१० ५००	उपागम्युगत छत्र [लवणा°]	६८ २८३	उवाच स सत्सिद्धेष्टा	स मा १६ १००
उद्योग कारवामास	४७ १००	उपागम्युगले दत्त	५३ ५६०	उवाचागम्यता सुभू	३७ ७७०
उद्योग मुमहकृत्वा	२६ १२३	उपागम्य सत सती	५५ ३०	उवाचैको मुनिवरस्	स मा २२ ७१३
उद्ग्राह्य तमवायेन	५३ २०३	उपाय मखविष्यसे	५२ ५००	उवाचैको मुनिवरस्	३५ ३८०
उद्बुधत्वेना सहसैव निम्नया	१ २१३	उपायैस्त्वा प्रथयो	५३ ६६०	उयना यत्र सतिद्ध []	स मा २१ २५३
उमन्नने च दह्यु	६२ ६३	उपावृत्तस्तवस्तास्माद्	१४ ११३	उयना यत्र सतिद्धो	स मा ११ ११०
उमन्ताना सधनधाना	५२ ६४०	उपासत च तत्रैव	स मा ३ २६०	उशीरपद्मकाव्य च	६८ १६०
उमन्तेवागमन्ताना	२७ २७०	उपास्य पश्चिमा सत्या	३७ ७६०	उपित्वा वासपान् सप्त	५३ ३०
उन्माद गदकुर्वाण च	३१ ६६३	उपेत्याह ध्रुपता वाक्वमीश	४३ १११०	उपित्वा सुचिर कात्	स मा २७ ३३
उन्नेपत्र निमेपत्र	स मा २६ १२३०	उपेन्न वैष गोकिन्द	६१ २२०	उषान्दे तीर्थरस्वेव	स मा ४ ६०
उन्मोचयितुमारुन्धो	३८ ७४३	उपेन्न सिंहप्रदो	६३ ३४०	उरुमानत्र तुष्टाव	स मा १६ १२०
उपतस्तुत्र स त्रैवा	स मा ६ ३८३	उपोष्य सगदा प्रक्या	५५ ४३	उरुमानस्तवाष्टाभि	६ २७०
उपप्लवञ्चिन्मनु	स मा २६ १२००	उपोष्य भक्त्या हि भवन्तमगाद्	५५ ३१०		
उपभुञ्जन्महाभोगान्	स मा १० ७४०	उपोष्य शूय सजुष्य	५२ ५३	ऊ	
उपभोगान्धतगुण	स मा १० २६०	उपोष्य रजनीमेका[गाण°]	स मा १२ ३६३	ऊचतुवचन श्लुषा	२६ २७०
उपरिष्टाद् ध्रुव पातु	३२ २४३	उपोष्य रजनीमेका [लिङ्ग°]	५३ १०	ऊचु परस्पर सर्वे	स मा १६ ३७३
उपर्युपरि लिङ्गानि	स मा २४ २१०	उपोष्य रजनीमेका [तीर्थ°]	५३ २०	ऊचु प्रगतसमाङ्गा [विभु°]	स मा १५ ३००
उपवास च तत्रैव	स मा १३ ७००	उपोष्य रजनीमेका [विरा°]	५७ ८०	ऊचु प्रगतसर्वाङ्गा [यथा]	स मा २६ ३८३
उपवास निरायन वा	१५ १८३	उपोष्य सम्पतेतु	५४ ३५३	ऊचु प्राञ्जलय तमे	स मा ३ १३०
उपवास समुपित	१७ ४६०	उभयो श्रुयतो वाक्य	स मा १६ १६३	ऊचुरद्विस्तर बुद्ध	२६ ३१०
उपवासोऽय दान च	२३ ३५३	उभयो हि नर स्ततो	स मा २० ३०	ऊचुर्वेन नमस्कृत्य	३६ ३१०
उपवासोऽय कार्य	६८ ३३	उभो तो गीदितो मोह	२२ ३५३	ऊचुर्वाक्य गहादेवी	२० ३६०
उपवासो इरावत्या	५३ ७०	उमा च लिङ्गस्त्रेण	स मा २५ ७०	ऊचुस्तान् वै मुनीन् सर्वान् स मा	१६ ३१०
उपवासोऽयैतौवे	स मा २२ ५२०	उमा नाम्ना च तस्या ता	२२ ३०	ऊचुस्ते देहि सगवन्	४१ ५६०
उपवासा इतश्चास्मि	६४ ८५३	उमापतो मयुपतो	५६ ११३	ऊमाया वाक्यद्वेदाया	३५ ४६०

ऊष्मा धैर्यजतोऽप्याः	स.मा. १८.२३०	शुभोगामुपकारार्थं	स.मा. १६.३६०	एकादशैव ये श्वात्	४३.५८५
ऊरु च ब्रह्मै च नितम्बसंयुते	१६.१००	शुभोनाथ च संपूज्य	५७.३०	एकादश्या जगत्स्वामी	१७.६०
ऊरुद्रुवां स कम्पसौ	७.५३	शुभोनुवाच कालीयं	२६.६०५	एकादश्या तु कृष्णार्थी	१७.१६०
ऊरुगुणमोगारस्य	५.३६०	शुभेः संमाननार्थं	स.मा. १६.३५७	एषा न बन्धमयम्	२६.६५०
ऊर्ध्वं मुच्छा मघः कोट्योः	६.१०२३	शुध्यमूकः सगोमन्तु	१३.१८५	एतस्य लोकतत्त्वाय	५८.५७३
ऊर्ध्वं संचयनात्तयाद्	१५.४३३	ए		एकार्णवे जगत्प्रसिद्धं	स.मा.२६.३३
ऊर्ध्वंवेदां तुसिंहं च	६१.५३	एकं च पद् पञ्च नरेण मुक्तात्	७.५८५	एकहवासी वृत्ते हि	३५.५०
ऊर्ध्वेनार्थं च वदुधे	५५.३३३	एकं जगद् केषेपु	२६.६१३	एकेनात्पञ्चिनेनैव	२७.२६३
ऋ		एकं स्वनेकवाप्येव-	स.मा.११.१८५	एकैकं प्रति देवेन	५१.१६०
ऋचनाममन्दाहृतिभिर्हृताभिर्	६५.३३	एकं द्रो सकताद् वापि	१५.७३	एकैकस्यापि धर्मव	६.१३०
ऋचनामापद्यंयुनिर्	२५.१५०	एकं द्रो दितितेजश्चछ	७.५६३	एकोऽप्यसौ बहून् देव्या.	२१.६३
ऋषामानप्रमृता च	१३.२७०	एकं निमग्नं सलिले	१८.५५३	एतच्च संशयं ब्रह्मन्	२१-२३
ऋषो बहुबुचमुर्ध्वश्च	स.मा.३.२१३	एकं हृत्पाद् बहुभ्योऽर्थे	३२.६५०	एतच्छ्रुत्वा कोषदृष्टिर्	स.मा.२६.१५०
ऋशं देवपितृनागां	३५.२१३	एक एव रथो रथैः	४३.५७०	एतच्छ्रुत्वा तु गतिं	स.मा. १०.५७३
ऋणमोचनमासाद्य	स.मा. २०.६३	एक एवाथ मोक्षस्य	५६.५८०	एतच्छ्रुत्वा तु मुनयो	स.मा.१६.२६०
ऋणान्मुचति ईरन्ध्र	६५.३५०	एकञ्च नागतोऽर्थः	३१.६३०	एतच्छ्रुत्वा तु वचनं [च्यव ^०]	७.३५३
ऋणैर्मुक्तो भवेत्किं	स.मा. २०.६०	एकत्तैव दासिन	४२.६२०	एतच्छ्रुत्वा तु वचनं [प्रमि ^०]	स.मा.१३.५८०
ऋतञ्च. सपुत्रस्तु	३६.७५३	एकतो नैगमेवेन	४२.६२३	एतच्छ्रुत्वा तु वचनं [व्यभि ^०]	स.मा.१६.७०
ऋतञ्चवचनः श्रुत्वा	३६.१०००	एकदा दैत्यसार्द्धत	३८.५३	एतच्छ्रुत्वा तु वचनं [मवा ^०]	स.मा.२३.२७७
ऋतञ्चजो नाम महाद् महीमाद्	३३.३३	एकदा नवराष्ट्रीया	६५.५५०	एतच्छ्रुत्वा तु वचनं [नार ^०]	स.मा.२६.३५३
ऋतञ्चबोधिं सन्वञ्जी	३६.१२५	एषा नित्ये रथे	७.२२३	एतच्छ्रुत्वा तु वचनं	स.मा.२६.१२०
ऋतवः पद् समादाय	२७ १३३	एकदा सा तपोमुक्ता	५५.२७३	एतच्छ्रुत्वा इवोद्देवी	स.मा.२२.५००
ऋतावृत्तो पर्वकालेषु नित्यं	१६.३५३	एकपञ्चस्तुपविष्टाना	१२.१५३	एतच्छ्रुत्वा मया पूर्वं	३२.६६३
ऋते त्वरक्षतीमेकम्	६.६२३	एकपादास्वताया तु	२८.१५३	एतच्छ्रुत्वा वचस्तोषां	स.मा.१.१३
ऋतेन वेनाच्युतनामकीर्तनात्	५६.२१०	एकहातमकं दैहं	४१.३५३	एतच्छ्रुत्वा वचो देवो	२८.६३०
ऋते गिनाकिनो देवाद्	५२.५७३	एकवज्रपटीधानो	६५.७००	एतच्छ्रुत्वा वचो रथैः	५.१७३
ऋते विनायाभिमुखं	स.मा. ८.३६३	एकपृष्ठं गगन्तुभ्यं	६०.२३	एतज्जाला मुनिप्रेष्ठ	स.मा.१०.३२३
ऋते संरक्षितारं हि	१८.६६०	एकहते नर. स्नात्वा	१२.१५३	एतज्जाला श्रद्धानः	स.मा.२५.५१३
ऋते सहस्रविरलं	५६.७०	एवांशमृता देवास्य	५६.६६०	एतच्छ्रुत्वा सप्तमन्त्रपञ्चकं	स.मा.१.१५०
ऋत्विजोऽभूद् गानवस्तु	३६.१६१०	एकपादास्तकाचम	स.मा.८.३६०	एतत्तपोकं देवस्य	३५.६७३
ऋषयः पापिवाश्रमाप्ये	३६.२७०	एककी बुञ्जपाञ्च.	३५.५३०	एतत्तपोकं द्विज राकरस्तु	३६.५६३
ऋषयो नैमिषेया ये	स.मा.१८.२८३	एककी धर्मरहितो	४०.२३०	एतत्तपोकं परमं पवित्रं	५५.३६३
ऋषयो यशगन्धर्वाः	५.२२०	एकव. कुट्टी बभूव	३१.७३०	एतत्तपोकं प्रवर्त् स्तवानां	५८.८५३
ऋषिभिर्देववह्निश्च	स.मा.२५.५५०	एक गगनमाचम्य	२.५६०	एतत्तपोकं भगवतिगविनमन्	६६.१८३
ऋषिभिर्वातस्त्रित्पाथैर्	स.मा.२२.५०	एवात्मा निष्ठीहात्मा	५८.२८३	एतत्तपोकं मुनिवर्षं क्व	३५.७२३
ऋषिभिः सार्धनासीनं	५०.२८०	एवाद्य तया कोट्यो	२७.१७३	एतत्तपोकं मुरदैत्यनादानं	३५.७७३
ऋषिभिः स्तूपमानश्च	५८.७६३	एवाद्य तया दद्याः	५.३३	एतत्तपोकं वचनं शुभास्त्रं	२८.७७३
ऋषीया च प्रसादेन	स.मा.१५.१३०	एवाद्यवचनेनोक्तं	३५.११०	एतत्तपोका मरत पुरा यथा	५६.७६३
ऋषीया चरितं श्रुत्वा	स.मा.२१.२०	एवादानानां दद्या	६.१६३		
ऋषीया चैव प्रथमं	स.मा.२५.१०				

एतत् तीर्थरत्न माहात्म्य	स मा १४.५६५	एतन्मे गाय द्विग्वि	१ ७०	एतात् त्रिपन्ति ये मूढास्	६८.७७
एतत्ते कथयिष्यामि	२२ ८१	एतरमात्वारगारतुन	३५ ४७५	एताम्बा भर्तृमुखासु	६ ६२०
एतत्त कथित ब्रह्मन्	५६ १२०१	एतस्मात्वारणात् साध्य	३५ २०१	एतामुतुमतीं वाता	१८.६९६
एतत्ते कारण प्रोक्त	५३ ५७१	एतस्मिन्नन्तरे तन्वी	३६ ७६६	एतावता स्वहृ बापौ	६५ १६०
एतत्स्ववित्र त्रिपुरप्रभाषित	६० ५९६	एतस्मिन्नन्तरे देवी	४ ३६	एतावता दैवपते	स मा १० ५६६
एतत्स्ववित्र परम पुराण	६९ २६६	एतस्मिन्नन्तरे देव्य	३१ २२६	एतावता पुण्यसुत	४८ २४६
एतत्स्ववित्र परम शुभुष्य	५८ ८२६	एतस्मिन्नन्तरे दैव्य	३४ ४२०	एतावत्वस्तया शोभ्य	४१ ८६
एतत्पुराण कथ श्रुत्वा	४० १२६	एतस्मिन्नन्तरे धोमात्	४७ २१६	एतावहीयते तेभ्यो	५२ ६३०
एतत्पुराण परम महर्	३४ ७६६	एतस्मिन्नन्तरे प्रात [श्रीकण्ठ]	३८ ६०३	एतावन्वाचमप्यन	स मा ८ ४७३
एतत् प्रशुश्रुतां भूय	६ ८३०	एतस्मिन्नन्तर प्रात [सम]	४२ १६	एतावाश्रित्य ता दुष्टा	२६ २६५
एतत्प्रधान पुण्यस्य वर्म	स मा २२ २५५	एतस्मिन्नन्तरे प्रासा [सर्व]	३६ १२१०	एतासा च स्वल्पस्याम्	४६ ३१५
एतत्प्रभाव तीर्थस्य	स मा २७ ३५५	एतस्मिन्नन्तरे प्रासा [सुपान्ति]	६४ ३६६	एतासासुदृक् पुण्य	स मा १३ ६६
एतत्प्राप्त भवत् पुण्यकोत्त	६९ ६८६	एतस्मिन्नन्तरे प्रासा [भग]	६५ १६	एतासु स स्मृताना च	४६ ३३०
एतत्प्राप्तित्ति प्रोक्त	स मा २४ २६	एतस्मिन्नन्तरे बाले	३६.१६	एतास्त्वगि महानन्द	१३ ३१०
एतदर्थ बलिद्वैत्य	४७ १६	एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन् [भूपयो]	१६ ५५६	एते गगान्तस्तस्याता	४१ ११०
एतद्वय निय दीप्ता	४८.३६६	एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन् [वाचक]	३१ २६१	एते व त्रिगुणा सर्वे	११ ३६०
एतदर्थ सहस्राक्ष	४५ १७३	एतस्मिन्नन्तरे ब्रह्मन् [भुवना]	३४ २१६	एते वान्ये व वलितो	५१ २४५
एतदर्थगमिष्यामि	३५ २६०	एतस्मिन्नन्तरे राजा	३७ ५४०	एते वान्ये च बहून् [राजसो]	४१ १८६
एतदश्रित्य देवात्र	स मा १ १०६	एतस्मिन्नन्तरे राम्भुद्	५६ १६६	एते वान्ये च बहून् [स्वय]	स मा ३ ३००
एतद्योयो हि सौभाग्यो	२७ ५४०	एतस्मिन्नन्तरे वागे तु	स मा २१ ५१०	एते वान्ये च बहूना [महा]	४० ६३०
एतद्वृत्त भगवता	१८ ३७३	एतस्मिन्नन्तरे तीर्थे	३ ४८१	एते वाये व गे रान्ति	स मा ८ ३१०
एतद्विभवरे दान-	स मा १० २८६	एतस्यापि प्रसाद त्व	स मा २७ १६६	एतेन चारस्तेनाया	३७ १३६
एतद् ब्रह्म सवागेन	स मा २२ २७५	एतस्यापि भयान्मध्ये	स मा २७ १६०	एते नरा द्विजा ये च	१२ ३६६
एतद्भगवत्सम्भक्त	६७ ६६	एता सप्त सारस्वत्यो	३६ ५५६	एतेन कथ्य धर्मिणे	६४ ३७६
एतद्भद्र मया कृपात्	५६ ११२६	एतास्तेन हि चरित	७ २१६	एतस्ये च महात्मानो	२१ ३३६
एतद् भवन्ती चरणागतानां	१६ ५६	एतास्तेन क्लेश	४४ २७५	एते प्रपाना गिरवस्	२६ ४६६
एतद्भक्तमकार्ष्ये	६७ २६६	एतास्तेो हृ चाले	२ ५६	एतेभ्य कतम दद्या	६५ १५०
एतद् वन्दतु निभ्रम्हा	१९ १०	एतानि तुभ्य विनिवेदितानि	६३ ४७३	एते यान्ति परा सिद्धि	स मा २४.२००
एतद् वाच्य तदा श्रुत्वा	४३ १३५६	एतानि ते मयोक्तानि	१८ २५६	एते ह्य इति क्वाता	४१ ५०
एतद्वाच्यार्थं व भूत्वा	स मा २६ ४७६	एतानि पुण्यतोयानि	स मा २५ ३६	एते वैवा इति प्रोक्तान्	४१ १००
एतद्दर हृषीकोयं	३४ १६६	एतानि पुण्यानि कृतात्म्यमोभिद्	४० ३२६	एतेवा द्वास्यात्साले	४१ ६०
एतद्विनिवन्धनार्थं	३० ३८६	एतानि पुण्यानि मयालयानि	६३ ४५६	एतेपामेभिर्हृदित	४० २७६
एतद्विगृह्यतवाह	स मा १० २६६	एतानि पूजयित्वा च	स मा २८ ४२६	एतेषु शेषेषु च देवधर्मान्	१३ ५८०
एतद् विस्तरत् सर्वे	२२ ७०	एतानि प्राप्तस्वयम्	५८ ७२६	एते हि मुख्य सुरसिद्धदानवै	६२ ५६६
एतद्विस्तरत्स्वात्	१८ ४०६	एतानि ब्रह्मतीर्थानि	स मा २८ ४०६	एते हि बलिना श्रद्धा	४३ ५१०
एतद् विस्तरतो ब्रूहि	स मा ११ २०	एतानि भूतानि यथात्र मातरो	३१ १०२६	एते ह्यपत्यास्तस्वर्ग]	स मा १७ ७६
एतद् भवा ते कथित सुरर्षे	५ ६१६	एतानि मुनिभि साष्टौद् {	स मा २५ ५६	एते सनेत्य लक्ष्ण	स मा १५ १०६
एतदमया पुण्यतम पुराण	६६ १६	एतानि सर्वजगत	५६ १२६	एतैश्च पापं सङ्कु	३५ २४०
एतद् मात्रानय देवि	स मा ११.१२६	एतानि सर्वदाग्नेष्य	२३ ५१६	एतैस्तु पापं पुण्य	३५ ६६६
एतन्मे विस्तरपद् ब्रह्मन्	३१ १०	एतानि हि प्रवस्ताणि	६८ १४६	एभि ससृष्टमन्न च	स मा १६ ३८०

श्लोकार्थसूची

एवं कपाली सजातो	४ १३	एव पुरा देववरेण धाम्ना [उद्वं०]	२० १३	एव सवस्वर पूर्ण	१० २३
एव कृतस्वरस्ययनो	३२ २६	एव पुरा नारद ज्ञानवेन्द्रो	८ ७२	एव सस्त्रुयमानस्तु	६ ८१
एव कृते तु वैवेच	३६ १४०	एव पुरा नारद भास्करेण	१६ ६२	एव स नमर कृद्र	२१ ४७
एव कृतोपनयनो	६२ ४८	एव पुराम्पासवस्तस्य पुसो	६४ ११३	एव स भगवान् ब्रह्मा	६ ६२
एव कृत्वा कालरूप त्रिवेनो	५ ४३	एव पुरा विष्णुपुत्रस्य वामनो	५२ ६०	एव सनातापतेय सुरारिस्	२० २५
एव ममाद्रिवाहस्तु	३६ १६४०	एव पुरा सुरपति	४० ३६	एव सारस्वतो तेन	स मा १६ १६०
एव श्रियायोपरतस्य तेजस	६८ ५६	एव पुरासो द्विजपुङ्गवस्तु	५३ ८३	एव स भरतजन्वस्तु	६ ६३
एव मोडा हर कृत्वा	२७ ३८	एव पुरा स्वानपि सोदरात् स	४५ ४२	एव स्तुता तदा देवी	स मा ११ २३
एव क्षितस्तदा कूपे	६४ ४६	एव प्रपूर्वको देवा	२४ १	एव स्तुता सुरदेर् ०	३० ६४
एव गताया राक्षस्या	६४ ४२	एव प्रतीकृत तोयै	स मा १८ २४०	एव स्तुतोऽत्र भग्वात्	स मा ७ १
एव गतेऽपि मा शोक	५३ २७	एव प्रदत्तोऽथ वं	५३ ७२	एव स्तुतो देवर्ग ०	स मा २३ ३६
एव गतेषु विभेषु	६२ २७	एव प्रगाथा दनुपुङ्गवास्ते	१८ ७१	एव स्तुतो महादेवो [ब्रह्मणा]	स मा २३ ६
एव गुणाङ्गुस्तुदुङ्गवोऽप्यो	४६ ५१	एव प्रगाथो दनुपुङ्गवोऽप्यो	५५ २२	एव स्तुतो मयूदेवो [हृष्याण]	स मा २८ १६
एव च ध्रुवते श्लोक	६४ १७	एव प्रगाथो द्विज विष्णुपञ्जर	२० ४४	एव स्तुतो हृषीकेश	स मा ६ ३२
एव ज्यति मृत्यु स	१४ १००	एव प्रसाध मधोऽत्र	स मा १३ २६	एव स्तुत्वा महादेवन्	स मा १७ १६०
एव जातेषु सवेषु	१८ १००	एव प्रतीनवतिना	५३ २५	एव स्वख्या दनुनायक्या	३० १५
एव ज्ञानधर्ममप्रय सुरेन्द्रा []	२२ ६३	एव युषति वंशधरे	३७ ४	एव हि देव्या विविधैस्तु र्म्यं	३० २३
एव ज्ञाना तत्र ब्रह्मा	स मा २४ १८	एव युषत कौश स	३२ १०	एव हि वदस्तस्य	५३ ३१
एव ज्ञानतो मह्य	५३ ५०	एव भव गुरुणा त्व	४८ २०	एव हि सतस्पोऽप्यो	४४ ३८
एव सहृदयकारण	४० १८	एव भवतु दैत्येन्द्र	{ ४४ ३२ ८ ६०	एवमथे समस्तुष्टे	६२ ३३
एव तवोक्त परम पतित्र	५६ ५६	एव भक्तु सत्यतो	२८ ४७	एवमासवपर चास्तु	८ ५७
एव तवोक्त महिषासुरस्य	३२ १२	एव भविव्यत्यनुत्	८ ६३	एवमाकुतता यात	स मा १६ २६०
एव सत्या स्वर्गनाथा []	३७ ६२	एव भ्रूयोऽभवद्देवो	२८ ७६	एवमात्रतो सोमे	१५ ५७
एव सत्यापि दुष्टस्य	५६ ६	एव महात्मना वंश	४४ ३६	एवमास्र मस्तो	४६ ४१
एव ते न्यवसस्तत्र	६२ २३	एव य सतत भूमात्	स मा १२ १०	एवमाह हरि पूर्व	६८ ८०
एव विदुष च दधार विष्णुस्	५५ ३०	एव युष्मति देवे च	८ ३	एवमुक्त सुरेशेन	३ ५०
एव त्वगभ्येन महाचलेन्द्र	१६ ३६	एव रमन्तो मुचिर	३६ ११	एवमुक्तस्तु पितृभ्यो	स मा १४ ५०
एव दग्धा स्मर रुद्र	६ १०६	एव रामहृदा दुष्पा []	स मा १४ ४०	एवमुक्ता सर्व एव	स मा २२ ७२
एव दत्त्वा वरान् विष्णा []	स मा १४ ३०	एववादिन विषेन्द्र	२५ ६५	एवमुक्तास्तदा तेन	स मा २२ ६५
एव दिशाप्रमाहेय	स मा २१ ६	एव विदित्वा दैत्येन्द्र	५१ ५१	एवमुक्ते तु वैवेच	स मा ६ १०
एव दिवि त्वया व्याप्त	स मा ११ ७	एव विधानतो ब्रह्मन्	५४ ३	एवमुक्ते मया गोष्ठ	५२ ६६
एव देवे तदा उच	स मा २२ ७०	एव विभक्तस्ता नार्यस्	४६ ३०	एवमुक्तो वित्तोऽस्तु	८ २६
एव ब्रह्मसहस्राणि	४३ ६०	एव वैश्वान्र दृष्टास्र	स मा १६ ३	एवमुक्तो नारदेन	१ ६
एव द्वीपास्त्रिने सप्त	११ ४३	एव गत्वा ऋषि श्रीमात्	४६ ७५	एवमुक्तो भवाचा तु	१ ३३
एव नापयोतोऽप्यो	८ ३३	एव शय्या सुरान् गौरी	२८ ३६	एवमुक्तो मुनिवृत्सु	५६ ५५
एव निरस्ते महिषे	३३ १५	एव शुक्रेण मुनिना	स मा २१ ६	एवमुक्तो विभावर्षा	२६ ४६
एव परकृतश्राणि	४० १६	एव सचिन्त्य भगवान्	१६ ३३	एवमुक्त्वा गत शम्भु	३७ २६
एव पुरा चक्र ररेण विष्णुना	६५ ६६	एव सचिन्त्य स तत्रा	स मा २६ ३२	एवमुक्त्वा तु सा देवी	स मा २ १८
एव पुरा तदा ऋष्या	३७ ४०	एव सनापता तत्र	१६ ३२	एवमुक्त्वा मुनिश्रेष्ठ	स मा १७ १५
एव पुरा दानवसप्तम त	४४ ६	एव सनापत पूर्ण	१७ ६३	एवमुक्त्वा मया विष्णु	५६ ३८

एवमुक्त्वा वराङ्गो सा	३६ ५३१
एवमुक्त्वा स नृपति	स मा १८ ३५३
एवमुक्त्वा हृषीकेशो	५८ ७३३
एवमुच्चारिते तेन	५६ १११३
एवमुच्चारितो धाक्ये	५१ ३८३
एवमेताहा पापौ	५३ ५८०
एवमेव समुद्दिष्ट	१७ ४५३
एवमेव महायोगी	३१ ४६७
एवमेवा हरिः श्रेष्ठा	स मा १६ २३३
एव मभारते गदितो	१७ १७३
एव धोरेण पापेन	स मा २६ ४४३
एव चाहृषते धम्भस	५३ ११५०
एव तीर्थवर पुष्यो	३ ४७०
एव तूहात प्रोक्तो	१५ ५५१
एव मे साधो ब्रह्मन्	४५ १८०
एव विष्णुसहस्राणि	२८ ७३०
एव ब्रह्मस्तु प्रथम	१७ २६३
एव स्वपोषणरो	स मा २६ ४७०
एवामेवैवश इषो	स मा ८ ३२०
एवा क्षुधिश्रापि पुरातनो किल	३२ ६१३
एवोऽयं मे भिरिवर प्रशण्डि मार्ग	१६ २६०
एवोऽशरोऽयं सुवो	३६ ११६०
एवोऽपि पापनिमुक्तो	स मा २७ २१०
एहहि कामस्तसम्	६ ४११
एहहि मूढ भर्तार	२६ ४४०
एहहि वानरास्माक	३६ ६३०
एहहि वीराच ग्रह महासुर	४४ १०
ऐ	
ऐ द्रवामेन सयुक्त	स मा १५ २५३
ऐरावती सुपुष्पोदा	६२ ६०
ऐरावतेन भवण	५५ ३३
ऐराव पाशस्तुद्ध	३१ ७७३
ओ	
ओकारपूर्वां श्रुत्यो भसेऽसिम्	६५ २३
ओकाररव वषटकारो	६० ३००
ओकाराक्षरसम्भान	स मा ११ ६३
ओकारद्विपि निवृत्ति	३५ २२३
ओ नम सकारायेति	२६ १२०
ओ नमो मूलप्रहृतये	५८ ३१३
ओ हरि कृष्ण हृषीकेश	५६ ६६३
ओभमा चुलुक यावत्	स मा २६ ४६०

ओजसे हृदाय श्राद्ध	स मा २० १०३
ओषधीभिश्च मुख्याभिरु	१८ १२०
ओषध्य पाव पीता	४६ ३४१
ओषध्या रोमनभूता []	६० २६०
ओष्ठ नभसपूत्र प्रीतिर्वा रगुणात्	३० २८०
औ	
औम्बराणां चान्तेन	१५ १३१
औरस क्षेमजद्वच	३५ ३४१
औरसाश्रातिमनाश्र	१३ ४२३
औरसो य स्वय वात	३५ ३६०
क	
क कर्तिव्यययोर्बे	५६ १०३३
क क्रीडति सरोपेन	४० ८०
क कन्द्ये भागदिव	४२ १८०
क क्वा सप्त बलाबधिर	१७ १८३
क क्वालरूपिणश्चरि	स मा २५ २८३
क कृदाय श्रीमाय	स मा २६ ८७०
क कृत्स्नया सिहकटियथव	२२ ४६०
क कृत्स्नया कृत्स्नवाचैव	५४ ४०
क कृदाय च कौमारो	३० ५३
क क्य क्यमपि प्राणा []	५३ ४८३
क क्य कर्मिन्ति प्राह	६६ ८०
क क्य कर पत्वजकोमलस्ते	२१ ६३०
क क्य कात्यायनो देवो	११ १३
क क्य कूरस्वभावस्य	५६ ३१०
क क्य क्य क्येति मुहुःस्तयोत्त	३५ ७५०
क क्य च निहत्त सख्य	३४ २८०
क क्य च कणयो भूत्वा	१ ५३
क क्य चेद महारण्यम्	५३ २४३
क क्य तन सहस्राश	५२ २८०
क क्य तस्य क्रिया कार्या	स मा २६ २६३
क क्य तु कभणा केन	५२ २८३
क क्य त्वामुदरेणाहं	५० ४३३
क क्य देवातिदेवोऽग्री	स मा ३ १०
क क्य तु विजयकमात्	३६ १४५३
क क्य पापानन्दो स्यात्	५६ ३८०
क क्य पुत्रत्वा विष्णुम्	५३ १०३
क क्य प्रतिष्ठितं तीर्थं	स मा १८ २७३
क क्य बलि प्राचयते गुप्तिहृता	६५ ३७०
क क्य भगवता ब्रह्मन्	१ ३३
क क्य भगवत् व्यैख्येन	४१ ३१३

कय मद्गुणक सिद्ध	स मा १७ १६
कय यगकरोऽस्माक	स मा १६ २५३
कय योगचमापत्री	३६ २७०
कय रोगोऽग्री व्रत	स मा १८ ५३
कय राज्य समानस्ये	८ ६७०
कय गम्भो विजानोऽयान्	५६ २६०
कय युजन् कय दान्त	३४ ६६३
कय समहिप वाञ्छो	३१ ११
कय सर समाहाय	स मा ११ २३
कय हि देवदेवो	१ २८३
कय हि मातामहान्पूज कथे	३२ ६००
कयमेवावयोर्व्याघ्र	६४ ७४०
कयमया समुत्पन्न	स मा ११ १३
कययन्तु मन्तो मे	११ ६०
कययस्व महाबाहो	६४ २०३
कययस्व महाभाग	स मा २२ १२०
कययस्व सुरादीना	१७ ५३
कययमात् तत्सर्वं [चिह्नित]	६४ ५७०
कययमात् तत्सर्वं [यच्छत]	स मा २२ १५०
कययमात्स यद्वृत्त	६४ ४१०
कययमात्स या विष्णुर	५५ १६०
कययमात्स दती	स मा १६ ६०
कययिवा च तथ	५६ २७३
कययिष्यामि तस्वेन	६२ ५३०
कययिष्यामि ते साय	३४ ७५३
कया पौराणिको पुष्य	६४ २००
कयित्तेन स्मृतेनाथ	५८ ८१०
कयथा परमशोऽसि	५१ ३०
कदम्बसञ्जाञ्जुनकेतकीद्रुमा	१ ८८०
कदम्बाना सुगंधाना	१७ ६०
कदयस्यापि मुद्गय्यत	१५ ३६०
कालोत्तम्भसदसौर्	७ ११३
कदापियद्मन्वनासा	६४ ६७०
कद्रुश्च कर्मिलश्रीव	स मा २६ ११६३
कनकं रत्नवसन	१७ ६२०
कनीवावस्य च भ्राता	२६ २५०
कन्वरो गीक्य सज्ज	३८ ७०
कन्वर्षश्च सुदुष्यग	६ ७३
कन्वर्षस्य कराप तु	१८ २३
कन्वर्षो ह्यवतयो	६ २४३

वच्यते धनुष्ये हि /	३६.५२०	करिष्याम्यनुयुधुषा	४४.२५१	कन्यपस्य सुतो मने	स.मा.१.७.२३
कन्या कोकृत्य संवाताम् /	४४.४३०	करिष्ये यातुधानाना	४६.३७७	कन्यपस्योरस पुत्रो	३५.३०३
कन्यावातास्तु कानोन.	३५.४३३	करिष्ये विवृकप्रेष्ठा.	त.मा.६.६३	कन्यपात्रे वारसोव	२६.६३
कन्यादानं च मत्स्य	स.मा.१३.४३३	करेण जग्राह ततो	स.मा.२.३.३३०	कन्यपदभवद्वास्वान्	स.मा.२.६.४०
कन्यानेवस्य दत्वां च	१२.६७	करेण धारयामास	स.मा.२४.१२०	कन्यपायाश्च श्रुपयो	५.६३
कपहृष्टवाङ्मकपालचष्टा-	३६.३००	करेकेन जग्राह	४.२४०	कन्यपयोज्याह वैदेहा	५०.६३
कपदिन समये च	६१-१४०	करोमि बुद्धि तस्मात्त्व	३०.३५०	कस्तस्य कुयाद् युधि वर्हानि	२०.४४०
कपानं वसिष्ठो हस्ते	३५.६३	ककि कुलीरेण सम	५.५१३	कस्ता जेतु प्रतो शक	८.४५३
कपालमोचनमिति	स.मा.१.८.१३०	ककौत्स स दृष्ट्वैव	२६.७४०	कस्ता धारयितु नाय	५०.४४३
कपालमोचनेशेर्बे	३.४६०	ककिंकाकारमकुञ्चं	११.३२०	कस्ता वेत्स्यति सर्वेश	स.मा.६.२.६०
कपालमोचने सस्ता	३.५००	ककौत्स इति श्वातो	६.६१०	कस्तामुतेऽप्यो तन्वस्य	५६.१०४३
कपालिजायति सती	४२३	ककितामि सुवीक्षानि	१२.२४०	कस्ताच्च नामुरात् भागात्	स.मा.१०.२०
कपालिनमयोवाच	३.४३	ककुं तप प्रयातास्ताः	२५.५०	कस्ताश्चेप तत. पापं	३५.७८०
कपालीति विदित्वेश	२.१७०	ककुंमर्हति विद्वारत्व	५१.५१०	कस्तादागम्यते मिसी	२५.४८३
कपाली भगवाज्जाति	२.१८०	ककुंशोऽयं देवं	५६.७६०	कस्मिन्नदिनो सुरसप्तमाना	५०.३०३
कपि प्राह वृणीष्व त्वं	३६.१००३	ककुंसा नरकादेतात्	१२.१६	कस्मिं हते केन च कारयेन	१६.२२०
कपिचापस्यरोम	३६.१०४३	ककुंसा येन वेनेह	१२.२३	कस्य किं वा वर देवा	स.मा.४.१.३३
कपिना यत्तुं सर्वं	३८.७१३	ककुंसा तप वय विप्र	५२.२६०	कस्यचित्त्वय बालस्य	स.मा.१६.२.६३
कपिलश्च महाभयो	स.मा.१.३.७४३	ककुंसाञ्ज्जाराणासु	१५.१०३	कस्यचिं चोर् मुक्तौ वीरौ	२२.७३
कपिलाना सहस्राय	स.मा.१.४.२५३	ककुंसात् कुञ्जुर्बे भे य	स.मा.२२.३३०	कस्य वा कस्यन विष्णु	५२.११०
कपिला ह्युत्पलाद्य	स.मा.१.४.२५३	ककुंसा च तथा दवाद्	स.मा.२०.२८५	कस्येव चारुवर्वाङ्गौ	३३.२००
कपिल्येति विख्यातं	स.मा.१.५.१५३	ककुंसा च नर स्नात्वा	स.मा.१५.१६३	ककुंसात्पुत्रमुदं	२२.३२०
कपिलं वसिष्ठश्च	स.मा.६.३७०	ककुंसा तु ततो गच्छेत्	स.मा.१५.१८३	ककुंसात् वरुणस्येण	२६.५२०
कपिलं वृहत्सजा.	६२.४७०	ककुंसा तु मुखा गणितज्ञता च	१२.५३३	ककुंसात् सख्येन विष्णु	२६.५८३
कपिलं निपपाय	स.मा.२.६.१५१०	ककुंसात् तु सप्ताने	स.मा.२८.४७३	ककुंसात् कृते सख्यया	स.मा.२२.६६०
कपिलं व्युत्पन्नो	२५.४६३	ककुंसात्परयोर्मध्ये [व्यासेन]	स.मा.१.६३	ककुंसात् तस्य विप्रयै	६६.३०
कपिलानरेण वमता	१६.१००	ककुंसात्परयोर्मध्ये [हर्षे]	स.मा.२४.२६०	ककुंसात्प्रादरणी गया	स.मा.२२.३४३
कपिले धतरपीश्च	५८.१७०	ककुंसात्प्रादरणी गया	४६.२३	ककुंसात्प्रादरणी गया	४३.१४१०
कपिले गिर्यश्रेणे	स.मा.१०.६३	ककुंसात्प्रादरणी गया	स.मा.१०.६८३	ककुंसात्प्रादरणी गया	१६.७०
कपिले प्रविष्टे व हस्तिनोऽयं	२१.४२०	ककुंसात्प्रादरणी गया	११.४५०	ककुंसात्प्रादरणी गया	१७.१५०
कपिले प्रस्तभैस्तु	११.५६०	ककुंसात्प्रादरणी गया	६७.५२०	ककुंसात्प्रादरणी गया	१६.१३०
कपिले पाटप्लते	१२.६०	ककुंसात्प्रादरणी गया	२०.४७०	ककुंसात्प्रादरणी गया	२०.२३३
कपिले प्रस्तभै व रभश्च	१८.४४०	ककुंसात्प्रादरणी गया	५०.१४०	ककुंसात्प्रादरणी गया	२१.३३०
कपिले पाटप्लतेषु	१८.३६३	ककुंसात्प्रादरणी गया	६३.१२३	ककुंसात्प्रादरणी गया	१६.८०
कपिले पाटप्लतेषु	५६.१२०	ककुंसात्प्रादरणी गया	१८.४०३	ककुंसात्प्रादरणी गया	६२.१३३
कपिले पाटप्लतेषु	४४.३००	ककुंसात्प्रादरणी गया	१८.४००	ककुंसात्प्रादरणी गया	५६.१३३
कपिले पाटप्लतेषु	५.१२३	ककुंसात्प्रादरणी गया	५६.१३	ककुंसात्प्रादरणी गया	५६.१३
कपिले पाटप्लतेषु	४५.३२०	ककुंसात्प्रादरणी गया	स.मा.४.२३३	ककुंसात्प्रादरणी गया	६८.२०
कपिले पाटप्लतेषु	३१.८४०	ककुंसात्प्रादरणी गया	५३.२१३	ककुंसात्प्रादरणी गया	६८.३०
कपिले पाटप्लतेषु	५२.१००	ककुंसात्प्रादरणी गया	स.मा.३.३४०	ककुंसात्प्रादरणी गया	३५.३६३
कपिले पाटप्लतेषु	२३.२१०	ककुंसात्प्रादरणी गया	२६.१३	ककुंसात्प्रादरणी गया	५४.३७०

वामनपुराणस्य

कान्तिभोका लय जम्भु	५ ३०	कालनागम काताय	स मा २६ ८३०	कि तु त्वया न तावद्वि	३४ ६००
कावस्य द्वापर्शोत्सव	३४ ६६०	कालराजिनि निध्यात	४४ ३३०	कि त जितैर्नरैर्दैत्य	३४ ४५३
कामधामद्वयाम्बु	स मा २६ १०३३	कालरार्जि मयमाना []	२१ १२०	कि तेषा सकलैस्तीर्थैर्	स मा २२ २३३
कामधोमिष्टीनस्य	५० २१०	कालरुची त्रयाह्वयत,	५ २६३	कि एव न शुद्धासि जगद्वयम भो	६५ ४३०
कामतोऽकामतो वापि	स मा २५ १७३	कालाग्नि हृददेवेश	६१ २३०	कि एव न ब्रह्मसे तन	४ ७३
कामपानमखण्ड च	६१ ४०	कालाग्निहर तत्रैव	६३ ३५०	कि त्वया न परिज्ञात	३७ ५१३
कामार्जिनिर्देहति माम्	३७ ३३०	कालास्यो भगवानासीत्	६ ६०३	कि त्वया न घृत दैत्य	३७ १६३
कामानुरोऽसौ सजात	७ १३०	कालिञ्जर समन्येत्	५७ ५००	कि त्वस्ति तुविनीतामा []	२६ ३६३
कानारिणा निजितमानरोन	४४ ५८०	कालिञ्जररस्योत्तरत सुमुष्यस	५० १४३	कि त्वस्ति दैत्येणकुलेऽस्मदीये	२० ३१३
कामिनश्चाप्यनन्यत्	१६ २०३	कालिञ्जरे नीलकण्ठ	६३ २७७	कि त्वत्स्वययत्तु प्रष्टव्य	६६ १०
कामेधस्य सौम्ये तु	स मा १४ ४२०	कालिन्धी शुक्लनलिला	३ ८३	किपत्त जूपमाताय	स मा १५ ६०३
कामोपहृत्चितात्मा	४० २०	कालिन्दोस्त्रिलिखे स्नात्वा	५३ १०	कि न पश्यसि मे ब्रह्म	स मा १७ १३३
काम्बोजा दददाश्रीव	१३ ४०३	कालिन्दा कालकन्दश्च	३१ ७५३	कि न वेत्ति प्रमाण मे	६५ ४६३
काम्यक च वन पुष्य [तया]	स मा १३ ३३	कालिन्दा दक्षिणे कुले	३४ ४१३	कि पुष्य तत्र विप्रत्र	२५ ५०३
काम्यक च वन पुष्य [सर्वे]	स मा २० ३२०	कालिन्दा रूपमाश्रय	५२ ८६०	कि वाता न त्वया दृष्टा	३६ ८००
काम्यकस्य तु पुर्वेण	स मा २१ १३	कालिन्दा विमले सौम्ये	३६ ८२३	कि भवद्गम्या समारब्ध	७ ४८३
काम्योत्थनमासाय	स मा १४ १७३	कालि पश्यत दयन	२७ ४७३	कि भविष्यत्सुपादानम्	स मा १० ७७०
कारु वेदि न च तद्	३ ४५०	काली करालवदती	२६ ५६०	कि भावितो मूर्धसि केत हेतुना	३६ ४७०
कारुध्वजमावीर्षे	५० १६०	काले जगाम निर्वासत्	२६ ५७०	कि ममाती रणे भोऽम्	४० २३३
कारुण्यस्तु 'पिनो	१३ ५१३	कालेन चलिता बुद्धिर्	स मा २६ ५४३	कि यावत्सि च दास्यामि	२७ ५१०
कारिणाश्च महामथा	६८ ४६३	कालेऽमुपागत तदा	५३ ६६०	कि रूप च महातीर्थं	स मा १५ २७७
कारुपाश्रैकलव्याश्च	१३ ५३३	कालो ज्येष्ठभूलयोगे मृगाङ्ग	६५ ४१०	कि लक्षणो भवेद्धम	११ १४३
कार्तस्वरो निवृत्ते	४२ ५६०	कालोत्थगाड्यारोह	३० ४०	कि वा ते बहुनोत्तेन	३७ ३७३
कार्तिको पुष्यण भावि	३६ १४०	काव्य सप्त स्वस्ति करोतु तुभ्य	३२ १७०	कि वा त्वया द्विजश्रेष्ठ	६४ १६३
कार्तिके वयसा स्नान	१७ ३६३	काष्ठशत स द्विधा भूतो	४२ ३३३	कि वा देवोऽप्रमद्विप्रबुद्धिर्हीन	६५ ४२३
कार्तिकेय नमस्यह	६१ ११०	काष्ठान्याहृतुमवत	३७ ५८३	कि वा वाच्य मुरारेर	६४ ११०
कार्तिकेयेति विख्यातो	३१ २५०	का सा रत्ता न ता वैर्दिम	५० ३३३	कि वा भ्रमेण महता	स मा २३ १६३
कार्तिकिवाना वज्राणा	१५ ६०	कासि केन च कार्पण	३६ ३२०	कि वायो' विप्रभारो च	२६ १६०
कासुक च सुप्रस्य	८ १६०	काश्चि त्वमापता रौद्र	३ ३०	कि वेणुमनिष्ठाणाम्	स मा २२ ४७०
कासुक न द्वितीयन	४ २५३	काष्ठी वापायती नाम	१० ३६३	कि त्विच्छ्रेय परे साके	११ १०३
कासुक हृदमावगम्	२१ २४३	कि कर्णस्मि तिथता गुण्माद्	२६ ३००	कि त्विदं वामनस्य	७ १४०
कास्ये क्रियाकारणमप्रमेय	५८ ५८३	कि कार्णं सर्वश्रेष्ठे	स मा १६ २६३	कि प्रत्त मुजगाह्या []	६ २१०
कास्ये न देव हि विभो गुणप्र	६४ १४०	कि कार्पे तात सतारे	६७ २४३	कि म्म चिन यन्तुज्यवत जन	१ ११०
कास्ये विष्णो धर्मावर्तनुर्न्ये	६७ ७५०	कि चिद् त्वया न घृत देखनाय	३३ २८३	कि मये कामदेवोऽह	६ २५३
कास्यो बल सगवारे	५४ १७०	कि जयैस्तस्य मानवा	६७ ५६३	कि मये गालयस्यासौ	३३ ४३
कास्ये सवसतारुणस्तु	२४ ६८०	कि विदारसवपुरेऽत्रेण	१२ १४३	कि मये तजरो ह्यनिर्	५१ ४०
कास्येऽभिषि षक	५६ २३०	कि तद् क्षेत्र हरे पुष्य	२६ ४६०	कि मये देवतानां	६ ८२३
कास्येऽसौ भवतिरो	६० ४४०	कि तस्मिन् गुणमात	१४ २१३	कि मये देवताश्रेष्ठ	२ १०३
कास्येऽस्तस्योत्तरत सुमुष्यो	६ ५५०	कि तस्य बहुनिर्ग र	६७ ५८३	कि मये देवदेवेन	८ १३३
कास्येऽस्तस्योत्तरत सुमुष्यो	५१ ७५०	कि तिष्ठन् मुत्प्रेष्टा []	४४ ११३	कि मये देवतानिर्	४५ १८३
कास्येऽस्तस्योत्तरत सुमुष्यो	६० ६०	कि तिष्ठसि क्षयप्राय	४२ ५०	कि मये पतिवोऽपिह	५२ २६०

श्लोकार्घसूची

किमप पातुना शक्रम्	स मा २२ १००	कुटिला विष्णुपादे तु	६१ ३३०	कुरुष्व पाद शत्रुणा	२६ ४००
किमर्थं पतितो भूम्याम्	११ २०	कुट्टित प्रवरं शखैर्	३३ ३६५	कुरुष्व गीघ्र सुयते	४३ ८८५
किमर्थं पुण्डरीकीणे	११ ४७५	कुठारं पणिनादाय	३२ ५१०	कुरारर्षाम् वृत्तवत्	२३ ५०
किमर्थं पुष्करारण्ये	३६ १३०	कुशङ्गी यच्च तस्याम	१५ ३७०	कुप्य दधीरुर्गर्भोऽहं गोष्ठे	१४ ३००
किमर्थं प्रगतौप्रतीह	८ ४७०	कुशोदरं भगवतिष्ठं चकार	४२ ३६५	कुप्याद् धेनास्य सुप्रोता	१५ ५००
किमर्थं भगवान् शम्भुर्	५५ १८५	कुत प्राणम्यते ब्रूहि	५३ २३०	कुव १ गुप्तहाभ्य	३२ ४३५
किमर्थं भवती रोद	२५ ५६५	कुतद्वचं वारिचानीय	५३ ३६०	कुवतो वीर्यपूजये	४५ ८०
किमर्थं भीरु गानकैर्	२८ ६१५	कुपयानरण्यदशैव	१३ ५७५	कुलजो व्यसने मया	४८ ४०५
किमर्थं लोकपतिना	२ १६५	कुम्भं मुकुम्भं कुमुम	३१ ६५०	कुलानि दारवत् सवाय्	स मा १६ ५५
किमर्थं विजया नावाज	४ ४०	कुपित कुलनाराय	१५ ६५५	कुलानि वारयेत् स्नात	स मा १५ ७६०
किमर्थं सा परिषयम्	१ ६५	कुलवामनलज्जाना	५२ ६५५	कुलावच्छारकरणे	३६ ६०
किमर्थं सा तरिचन्द्रा	स मा १६ १०	कुमारं प्राह वचन	३२ ६८०	कुलिगर्भिहता बत्या	२१ १०५
किमर्थमर्षं भगवान् भरतस्य	१६ २२५	कुमारं शकरमगाद्	३१ ४०५	कुलिनेनाहतास्त्रुणै	३७ ३२०
किमर्थमागतोऽपीह	३७ ७३०	कुमारशारामभ्येत्य	५७ ४६०	कुत्रता कुट्टका उणांस	१३ ४३५
किमर्थमाचार्यं महो सर्पना	६४ ५५	कुमारधारे वाहेलीय	६३ १६०	कुनेत्रमनीये शत्रुम् दैव्य शुक्र	२० ३४५
किमर्थमाद्युधं चक्र	५६ १०	कुमारदुस्मानोति	स मा २० ७०	कुलोत्तारानामान	स मा १५ ७४०
किमासुरीयानां सुहृत्तानपीह	६४ ५०	कुमारसहिता जम्बु	३१ ५३०	कुलोत्तरणमासाय	स मा १६ ४०
किमियं पतिता भूमौ	४ १४०	कुमारस्यभिर्येकं च	स मा २० ६०	कुलास्यलास्यूर्वत एव विदुता	५० १४०
किमेतदिति चोक्तवैव	३६ ११५५	कुमारस्य परिख्यातो	१३ १००	कुलस्यलो श्रेष्ठतमा पुरेणु	१२ ५१५
किमेतदिति सचिन्त्य	३२ ३३०	कुमारि दूतोऽस्मि महासुरस्य	२० २२०	कुनेशय नमस्तेऽस्तु	६० १८५
किमेते सहसैवाद्य	स मा ८ २०	कुमारेश्वरमाहात्म्यात्	स मा २४ १६०	कुण्डरोर्गामिभूतत्र	५३ ६५
विषयप्रमाणं पुनस्ते	३१ २६०	कुमुदोत्पलकङ्कारे	५८ १७५	कुण्डुरोगेण मर्ता	स मा २६ ३५०
किमन्येतामि रोद्राणि	११ ४६५	कुम्भम्वज नृणिगतसचिन्त्य	४२ ३६०	कुहू कुलस्य प्राणात्	३१ ८०५
किम्यो देवश्च सन्ति	२३ १७५	कुम्भम्वज वल्लभोमान्	४३ ४८०	कुट्टम्यास्त्वयौवाच	१२ ४०५
किम्यमायाणि मार्गेश	११ ४७०	कुशलेन गमिष्यामि	स मा १२ ७५	कुट्टस्यप्रणं ये च	१२ ४००
किराटकेऽकुरमहाहनिर्ध्वरै	५८ ४६५	कुरुक्षेत्रं समभ्यागाद्	६२ १०	कुट्टस्यमन्वत्कमाच त्वरुष्य	५८ ४४५
कीर्तयति च य सर्वे	५८ ५८०	कुरुक्षेत्रं समायाता	स मा १२ २०	कूपवरीतडागाच	५८ २३०
कीर्तयिष्यति भवत्या च	५८ ७०५	कुरुक्षेत्रं समायाता	स मा १६ ३१०	कूपान्तस्य स ता वाणी	६४ ५२१
कीर्तयिष्यति च य सर्वे	२३ ३८५	कुरुक्षेत्रस्य वदद्धार	स मा १३ ४६५	कूर्मश्रीम च पञ्चविताय्	३१ ८६०
कीलाभिवज्जुलाभिद्	३२ ६१०	कुरुक्षेत्रस्य माहात्म्य	स मा २७ २३५	कूर्मश्रीवो प्रियवच	३२ ६२५
कुलिम्यामगता सप्त	६५ २१५	कुरुक्षेत्रे तु कुशला	स मा १६ ३८०	कूर्मपाञ्चस्ते प्रणयन्तु	५६ १८०
कुली समुद्र श्रवणरम	स मा २६ १५२०	कुरुक्षेत्रं पुण्यतम	स मा २० २१५	कृत तेन तु यदार्णव	५६ १०६५
कुम्भमन्दिपु दैव्यपु	४३ ६५	कुरुक्षेत्रे मृतानां च	स मा १२ १६०	कृत मर्तुं शङ्कर तेषारार्थं	४४ ५८५
कुम्भमन्दिपु दैव्यपु	४३ ५५	कुरुक्षेत्रे तदस्वयाम्	३१ ५१०	कृत मन्नुभं यम	५६ ६४०
कुम्भमन्दिपु दैव्यपु	४७ ८०	कुरुक्षेत्रे शत्रुस्य पुष्य	२२ २४०	कृत सार्वहितं ब्रह्मन्	५४ २०
कुम्भमन्दिपु दैव्यपु	२६ ५६०	कुरुक्षेत्रे शत्रुस्य पुष्य	स मा ११ २४०	कृत प्रसा हि मया	स मा ७ १०५
कुम्भमन्दिपु दैव्यपु	६ २१५	कुरुक्षेत्रे शत्रुस्य पुष्य	स मा १ १३०	कृत प्रावतत तय	४६ १०५
कुम्भमन्दिपु दैव्यपु	३१ ८४५	कुरुक्षेत्रे शत्रुस्य पुष्य	स मा २० २२०	कुरुक्षेत्रस्य दैवस्य	स मा १० १६५
कुम्भमन्दिपु दैव्यपु	२५ ६०	कुरुक्षेत्रे शत्रुस्य पुष्य	स मा २० १४५	कृतश्रीवो ब्रह्मज्जा	स मा १३ ५२०
कुम्भमन्दिपु दैव्यपु	३१ ४००	कुरुक्षेत्रे शत्रुस्य पुष्य	स मा २० २२५	कृतस्य ततो न ह्य	स मा १५ ६२५
कुम्भमन्दिपु दैव्यपु	३१ ५३०	कुरुक्षेत्रे शत्रुस्य पुष्य	६२ ४००	कृतस्य समभ्यास्त	३६ ८०

कृतमाला साक्षपर्वी	१३ ३२४	कृत्वा च यस्या मरुमुत्तमाया	३२ ६१०	केदारवापीपुल्लिने	५ ३१०
कृतयज्ञपु देवेषु	स मा २ ९०	कृत्वा च रूपं विविधास्व ह्रत्वा	५२ ८३४	केदाराम वर दत्त्वा	३४ १७५
कृतगौत्र समासाद्य	स मा १३ ३७०	कृत्वा जगाम कौशिक्या	२६ ८२०	केदारि भाषण शौरि	६३ ३०
कृतशोचि मुंसिंह च	६३ ५०	कृत्वा तस्यां गृहोऽग्नेरथ	३२ १०३०	केन पूज्यस्तथा सत्यु	११ १००
कृतशोचो जगामाय	५५ ४०	कृत्वा तु चातुराश्रमं	६ ६२०	केन सिद्धिरथ प्राप्ता	स मा २६ १०
कृतस्तु तेजसा युक्तो	२५ ४३०	कृत्वा तु स्पर्शमालाप	१५ २४०	केनाम्बरदत्ताद्वात्री	३३ ६४
कृतस्यादां समभवत्	२२ २६०	कृत्वा नामास्य लोलिति	१६ ५६०	केनाचनेन देवस्य	६८ २४
कृता परशुना भूमौ	४ १३०	कृत्वा पुर सौभमिति प्रसिद्ध	६५ ६३०	के भवन्तोऽथ सप्राप्ता	५२ ६६५
कृता दिनयो ममा बह्वभौ	५६ २८०	कृत्वा प्रमाण स्वयमेव हीन	६५ ४३४	केय शोका महापुण्या	२२ २४५
कृताञ्जलिपुट स्वान्	३२ १२३	कृत्वा महीमलयदरा जगत्पते	६५ ३७५	केयमित्वेव सचिन्त्य	३८ ५७०
कृताञ्जलिपुटा भूत्वा	२२ २२०	कृत्वा रक्षस्व मा देव	१८ ३६०	केयूरपेक मम कम्बलस्त्वटिर्	१ २५०
कृताञ्जलिपुणे भूत्वा [हर°]	३ ३३०	कृत्वा रूपं महाकाय	स मा १० ६२०	केयल तिवह मा देवस्	३२ १०५
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा [वधन्दे]	८ ४६०	कृत्वा शिर स्नानमयाद्रिक वा	१४ ३५४	केसाकीटावपन्नेऽथ	१५ १२५
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा [प्रवि°]	३६ ६४०	कृत्वा सान्दि सगण सबाह्वो	२५ ७४०	केसापाग द्वितीयेन	२७ २४०
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा [पव°]	४८ २१०	कृत्वा शौर स सौवर्ण	२३ २३४	केसाथ चन्द्रसूर्याथ	५६ ७१५
कृताञ्जलिपुटो भूत्वा [६द]	६७ २२०	कृत्वा गुणुष गुवि योगितास्य	६५ ६५०	केसाथ गकरो हृष्टा	३ ६४५
कृताञ्जलिपुटौ भूत्वा	६ ७७०	कृत्वा रगान ततो वैभ्य	स मा २७ २६५	केसाथस्याप्रतो गत्वा	६० ५०५
कृतानि च मुखब्दानां	४३ ६००	कृत्वा स्रबभनीपम्या	२६ ७६५	केसास्तु सतोष्य च दन्तधानन	१४ ३४०
कृतानि तानि पुण्यानि	५६ ३७०	कृत्वा स्वस्त्येव देवो	३२ १२०	केसानम्बुधुष वै तस्मिन्	स मा १४ ४६५
कृतान्ते स्वाधमो मोक्ष	६२ १६४	कृत्वा रूपं भयद च भैरव	४४ ६५०	केसावपजगत्प्रभूत	स मा १६ ३८५
कृतापचथा अपि नैव वध्या []	३२ ६२०	कृतवोत्सर्जं भूम्या च	२८ ५६०	केसु केसु विभो नित्य	६२ ५५०
कृतापचथानपि हि	५१ ३६०	कृतवोत्सर्जं भूम्या च	१७ ३८५	केसाता गिरिपारिदू	स मा २३ २१०
कृतार्चो भक्तिनाम् भूषा	४३ ७००	कृतवोत्सर्जं भूम्या च	१७ ३८५	केसासमुत्पुष्य हिमाचल तथा	३२ ८७०
कृतावय गजेऽथ	२१ १५०	कृतवोत्सर्जं भूम्या च	१७ ७०	केसासादिर्मिहदस्व	२६ ४८०
कृतावत महावत	६० ६५	कृतवोत्सर्जं भूम्या च	५० ७०	केसासुसे यत्प्रवदन्ति विप्रा	६६ ६०
कृताश्रासुलापिन	५२ ४००	कृतवोत्सर्जं भूम्या च	३५ १४५	कोटरामूर्खवैर्षी च	३१ ६८०
कृताश्रितासुलो ज्ञातो	५३ ३४०	कृतवोत्सर्जं भूम्या च	३३ २७०	कोटितीर्थे च तत्रैव	स मा १५ ६३०
कृतेन देन वै मास्य	६७ २४०	कृतवोत्सर्जं भूम्या च	२३ २५०	कोटितीर्थानि स्तोत्र	स मा १३ २८५
कृतेऽपि दोषे शुचि सिगुता	५१ ४२०	कृतवोत्सर्जं भूम्या च	५४ ६०	कोटितीर्थे तत स्नात्वा	५७ ४००
कृते सुषे साप्रित्य	स मा २४ २६५	कृतवोत्सर्जं भूम्या च	६ २६०	कोटितीर्थे स्तकोटि	५७ ३४०
कृते सुषे हरे पात्रे	स मा २८ ४१५	कृतवोत्सर्जं भूम्या च	५४ ६०	कोटितीर्थे स्तकोटि	५७ ३४०
कृतो देवैश्च विप्रैश्च	स मा १५ ५६५	कृतवोत्सर्जं भूम्या च	५४ ६०	कोटितीर्थे स्तकोटि	५७ ३४०
कृतोऽनयन सप्यम्	१४ ४५	कृतवोत्सर्जं भूम्या च	५४ ६०	कोटितीर्थे स्तकोटि	५७ ३४०
कृतोपचात सुविमाद्	५३ ५२०	कृतवोत्सर्जं भूम्या च	५४ ६०	कोटितीर्थे स्तकोटि	५७ ३४०
कृतोपचातसत्कृत्या	१७ ३५५	कृतवोत्सर्जं भूम्या च	५४ ६०	कोटितीर्थे स्तकोटि	५७ ३४०
कृतोपचातो देवर्षे	१८ १६५	कृतवोत्सर्जं भूम्या च	५४ ६०	कोटितीर्थे स्तकोटि	५७ ३४०
कृता साक्षात् हविषा	२७ २५०	कृतवोत्सर्जं भूम्या च	५४ ६०	कोटितीर्थे स्तकोटि	५७ ३४०
कृतोऽस्य मृदाहरणच देवा []	२३ २३५	कृतवोत्सर्जं भूम्या च	५४ ६०	कोटितीर्थे स्तकोटि	५७ ३४०
कृतोऽस्य म हव्या पूरे	३२ १०४०	कृतवोत्सर्जं भूम्या च	५४ ६०	कोटितीर्थे स्तकोटि	५७ ३४०
कृतिरानु कर्त्त पूम्या	५४ १५५	कृतवोत्सर्जं भूम्या च	५४ ६०	कोटितीर्थे स्तकोटि	५७ ३४०

श्लोकांशुची

काश च दक्षप्रतिमो	५२.६६०	कीर्षं चक्रं सुदुर्गद्विर्	३३ १६०	दीगत्वात्य शरीरस्य	५३ २००
कोशं पुत्रामो देव	३४.७०६	कीर्षारिवनयो रद	६०.२००	धीरस्माने प्रयुज्जीत	३६.६०
कोशं विश्वासा इति	३६.१४०	कीर्षानुदायामास	५३.६३०	धीरिवावाप्तमन्त्रेण	५७.४४०
कोशं सनत्कुमारति	३४.६०६	कीर्षार् बाहू प्रमायां	५.१००	धीरोदजनवीच्यैर्	५०.५३
कोशं गन्तव्यं तत्रत्य	३३.११६	कीर्षान्वातिर् ददं	२.३१०	धीरोदमयने नदं	७ १००
कोशात्न. सर्वत्राजो	१३.१६३	कीर्षान्वितः पाशमुपाश्रयदणो	५३.१५०	धीरोदस्योत्तरे कूने	स मा ४७१
कोशं कृष्णं परित्यज्य	२०.२३०	कीर्षान्वितस्तुष्टुष्टु	५२.२५०	धीरोदोऽनुवृत्तानां च	स मा.२६.११३१
कोशवार इति ह्यात्[.]	६४.२२०	कीर्षान्विताऽनुष्टुप् सर्वे	६.६५०	धीरोद च बुधुर्	५६.००
कोशवारदिग्रह	६४.२६०	कीर्षेण गर्त्वा मुक्तो	स मा २०.३३०	धुतकीटावधर्तं च	स मा. १६.३७०
कोशानुचक्षवामास	२६.१४०	कीर्षुको मुदितोऽप्ये	२१.२६०	धुतामा भुवताऽवीडा	१.२६०
कोशे तान्म समावेत्य	६७.००	कीर्षस्य मुक्तु परागागर्ष	३२.१२००	धुपं यजज्जप्राय	३६ ३४०
कोशावनन्तो ब्रह्मणे	६ २३३	कीर्षान्ये ते मुनिगमा[]	ग.मा.२२.५६०	धुपा निर्मर्षं मन्त्रावाश्र भो[]	६४ ६२
कोशो नाम पतविधिम्	स मा २२.६१३	कीर्षोऽन्मते व्यननिनि	३५ ४०३	धुपा समुद्रा दिवि श्लाघामन	६४.१०
कोशो मुत्तारिदेवैर्	३४.२६३	कीर्षेऽन्ति हि विप्रादीम्	१२.२०३	धुप्याम्बा तर्षं पार्श्वं	३०.५१३
कीर्षुकाभिवृत्ता सर्वे	३१.५०३	कष कोपमीदृग पारं	स.मा.२२.०५०	धुपान्तममनं कर्षं	५६ ११३
कीर्षारब्रह्मचर्येण	स.मा.२४.१०३	कष गत साङ्गो ह्यामीर्	३४.१३	धुपेण शितधारेण	स.मा.१०.६०
कीर्षमन्त्रतन्निधानं	६३.२३	कष च त्व प्रतियन्नासि	२५.४००	धीक्षमात्प्रमर्षं कर्षेयं	५०.४५०
कीर्षाय गर्भसिद्धान्तो	११.२००	कष च न्यतरसमस्तोऽष्टा	ग.मा.२२.०५१	धीरेणु पद्विबुजङ्गानं यः	१०.४५०
कीर्षाभिर्गुणसम्भेव	६२ ३०	कष ता कष जटाभार	७.४००	धीरेणु कर्णे नियमं	६७.५६०
कीर्षा चानिधमयं	१६ ११३	कष च देव इत्यामातः	स.मा २३ २६३	धीर्षं वितोक्त्य मुनयः[.]	स मा २२.१७३
काशियावा दान्मये यस्तु	स.मा ११ ५७३	कषां वप जगन्नाथ	३६ ००३	धीर्षो बभूव गुणमात्	स.मा.२२ ७०१
काशो दक्षी दक्षविनासात्ता	२७.२१०	कषं मायति देवयै	६.३५३	ध्यातव्यं निपातव्यं	५३.१३००
कर्म गुणीय न सदाश्रय पूरितं	५२.०५३	कषं ध्यायति तन्मन्त्री	६.३४०	र	
कर्मवयं तावदेवेत्य दर्शं	५२.०२३	काष्ठात्पूरेत क्षमादत्त	५१.५००	कण्ठ्यत्र कृपात्	५१.४००
कर्मण च मुदा. सर्वे	स.मा.४.२२०	काष्ठात्पूरेति रद्रेय	५१.५१०	कण्ठ्यत्राश्याशय	२६.७११
कर्मण एवं साद्गुणितुं समर्थो	६६.४४०	काष्ठात्प्रमत्तयोगमात्रं	५२.५३०	कङ्कं तिपाप्य तस्मा	१०.५२०
कर्मण ह्यदरे देवो	स मा.६.१२०	काष्ठात्पिच्छकरो विष्णु	५१.५२३	कट्टान्नामानय कर्णे रंद्म	२१.५७१
कर्मोर्गर्भेण जगतोम्	६४.२६०	काष्ठात्पिच्छकरो विष्णु	स मा.१७.००१	कट्टान्नायोधिनो शोरा[]	५१ १३१
कर्म्यात्मपात्र सदाभिर्यदिग	५२.१४०	काष्ठात्पिच्छकरो विष्णु	५४.३६१	कट्टान्नामानय च कर्मपातरं	३०.३५३
कर्म्यात्पार्थिवं विराजं	६४.३१०	काष्ठात्पिच्छकरो विष्णु	स मा.१६.२६३	कट्टान्नामानय च कर्मपातरं	५२.७३
कर्मिता मद्रय शीर्षं	स.मा.२३.१०३	काष्ठात्पिच्छकरो विष्णु	१५.१२०	कट्टान्नामानय च कर्मपातरं	३२.५५३
कर्मिता वृत्ता च वा कर्षात्	स.मा.१०.०३३	काष्ठात्पिच्छकरो विष्णु	११.३६०	कट्टान्नामानय च कर्मपातरं	५६.१५३
कर्मिता यद्गुण्य यवकच्यदा	१०.५००	काष्ठात्पिच्छकरो विष्णु	५०.५५०	कट्टान्नामानय च कर्मपातरं	५१.१०१३
कर्मिता हि नियमार्थाय	स मा.२२.०१०	काष्ठात्पिच्छकरो विष्णु	५६.२७७	कट्टान्नामानय च कर्मपातरं	३०.५६१
कृत्वा सप्तमस्य मद्राधुस्ततो	७.५५०	काष्ठात्पिच्छकरो विष्णु	३१.५६०	कट्टान्नामानय च कर्मपातरं	३२.०१३
कृत्वा सप्तमस्य तं	१६ ४५३	काष्ठात्पिच्छकरो विष्णु	१ २००	कट्टान्नामानय च कर्मपातरं	६.०६३
कृत्वा सप्तमस्य तं	५.१५०	काष्ठात्पिच्छकरो विष्णु	स.मा.११.१६०	कट्टान्नामानय च कर्मपातरं	५६.११०
कृत्वा सप्तमस्य तं	२१.६०	काष्ठात्पिच्छकरो विष्णु	१०.३५३	कट्टान्नामानय च कर्मपातरं	स मा.२५.२२३
कृत्वा सप्तमस्य तं	५६.३०	काष्ठात्पिच्छकरो विष्णु	१२.१६०	कट्टान्नामानय च कर्मपातरं	१०.११३
कृत्वा सप्तमस्य तं	५६.१००	काष्ठात्पिच्छकरो विष्णु	१२.१७७	कट्टान्नामानय च कर्मपातरं	७.६५०
कृत्वा सप्तमस्य तं	५३.११६०	काष्ठात्पिच्छकरो विष्णु	१२.१६०	कट्टान्नामानय च कर्मपातरं	५२.१०

स्वातोऽनुविद्या युवपेतसोऽपी	२३ ३०	गजेन्द्रमोक्षण हृष्टवा[दिव]	५८ ७७३	गतिर्गया याम पितामहाजिर	५२ २००
स्वातिं जगामाच गवाधरेति	५० १६०	गजेन्द्रमोक्षण हृष्टवा[इर]	५८ ७६०	गते च मातृगितये	६२ ३३०
स्वातो गवाधिवी भूषवा	स मा २७ ६०	गजेन्द्रमोक्षण पुष्य	५८ ८१३	गते अनादिते देवे	५८ ६०
स्वातो ललितपर्येति	४४ ३७०	गजेन्द्रमोक्षणार्दीस्तु	५८ १०	गते तस्मिन् मुनिप्रष्ठ	४५ २५३
ग		गजेन्द्रमोक्षणोनेह	५८ ८१०	गते ते ऋषिणा सर्षि	३६ १६०
गकर हृष्ट्य प्रोक्त	३५ ५८३	गजेन्द्राद् परमानाञ्च	१० १२२	गने शंलोवपराण्ये तु	५० १३
गयनस्यास्ततो देवा	३० ५७३	गजोऽपि विष्णुना स्पृष्टो	५८ ६५३	गतिञ्च तीर्थयानावा	६२ १३
गयनात् स परिभ्रष्ट	१६ ४५३	गजो मत्तगजेऽ व	६ ३३०	गतेऽपि वाम राजपिर	२३ २७३
गङ्गापरेति जलतम्य	१७ ६२०	गजा विद्वो ह्यो मिष	४३ १५५३	गते ब्रह्मणि शर्वोऽपि	६ ६३३
गङ्गातुलितकेणाव	स मा २६ ६६३	गजो ह्यञ्जनसकाशो	५८ २१०	गते मङ्गुलके पुत्र्यो	३६ ५८३
गच्छ जेष्यति भक्तया त	८ ३८०	गरा पञ्चविंश नाम	३१ ८६०	गते मन्वन्तरं वाच	६५ ५२३
गच्छत पवि तस्याय	५३ १५३	गणकस्य निपादस्य	१५ ३६३	गतेषु रात्रप्रायेषु	४४ ८००
गच्छ त्व तस्य त देह	स मा २६ ३३३	गगा पञ्चदशे हि	३१ ७४०	गते हि तस्मिन् मुदिते पितामहे	६८ ५७३
गच्छ दैत्येन्द्र योत्स्याम	८ २८०	गगा विदुमुखा जाता[]	४ १८०	गतोऽवस्तु पाताले	३७ १३
गच्छन् स्वानि विष्णुयानि	४४ ७७०	गगा गुह्यव भूत्वा	३२ १०३	गतोऽस्मि नरक भूयत्	६४ ६५३
गच्छद् तिष्ठन् स्वपन् प्राप्रत्	६७ ५८३	गगाविषयमापन्न	४४ ७६०	गतोऽहमास दैत्येन्द्र	३२ ३७३
गच्छन्ता सा च शरीरो	३८ २०३	गगापिपस्य कुम्भस्यो	१८ ६०	गवाञ्जन समामभ्य	३६ १३४०
गच्छ प्रीतोऽस्मि भवतो	५० २२०	गगापिपस्तान् विमुञ्चान् स कृत्वा	५२ ५०३	गत्वा तु श्रद्धया युक्त	स मा १२ १८३
गच्छ तन्मसि सुद त्व	४६ ७५३	गगान् सन-गेनाहूय	४४ ७५३	गत्वा त्वपश्यन्न मिय सुरोत्तमां	१६ २३
गच्छ गम्बर दीनेन्द्र	५० ५२०	गगान् सन-गेद् वृषभञ्जास्तात्	५२ ५०३	गत्वाय विद्या स्वयमेव पश्य	२० १६०
गच्छ धीमत् महाबाहो	५० ५५३	गगामरणाभास्तात्	४३ १०५३	गत्वा वाचने भौमात्	५७ ५६३
गच्छ पुत्र पणवो	४३ १५३	गगामरेषु च राय	४३ ६७३	गत्वा दृष्ट्वा च देवेण	१६ ५८३
गच्छ गतागुणामभ्य	२६ ४३०	गगात्र जय देवैति	२७ ३३	गत्वा निवेद्यामास [वासु ^०]	५ ५३०
गच्छस्व वैश्यागुण	८ ६५३	गगात्र गत्र हृष्टवा	४४ ८१०	गत्वा निवेद्यामास [महि ^०]	२० ३५०
गच्छस्व पूतने गैस	४६ २७३	गगास्तद्दानव सैन्य	४२ २४०	गत्वा मनुष्यदी वैव	स मा १५ ५५०
गच्छस्व सुव-गाणेन	३७ ३७०	गगास्त्वामसन्नता[]	४१ १७०	गत्वा रत्नात्त दैत्यो	६७ १३
गच्छस्व सुमगे देग	३७ ७८३	गगोऽपि च वरासंस्तान्	५ ३७०	गत्वा वच-प्राह मुनिमहीध्र	१६ २६३
गच्छस्वैर्याह मुनिता	स मा २२ ५३०	गगोऽपि च वरासंस्तान्	५३ ५६३	गत्वा स दहो देवं	४६ ३३
गच्छस्वैतु मुखा त्व	३६ १३१०	गगोऽपि च वरासंस्तान्	४ २८३	गत्वा मनुष्या नगरीं मुतीयां	३ ४३३
गच्छाम गराण देव	स मा २३ २३	गगोऽपि च वरासंस्तान्	४ १६३	गत्वा सुरगिरिपश्य	२६ ४००
गच्छत परमा सिद्धि	स मा १५ ६००	गगोऽपि च वरासंस्तान्	३१ १०५३	गत्वा हिमाद्रिगिरि	२६ १३३
गच्छ-गवा नादर देव्य चाक्त	६६ ७०	गगत-वचल तस्याद्	४ १६०	गत्वा शिवाद्रिगिरि	४० ४७३
गच्छुभममहार्थमा	६ ३६०	गत स भगवात् विष्णुर	५८ ७६०	गत्वा काञ्चि-वकीन्	४३ १०००
गजापिच्छो देवेऽत्	२७ १०३	गत स मावात् सुको	३७ २४०	गत्वा वास्यामास	१० २२०
गजानन्ये रणानन्ये	५७ १६०	गतवान-मर्दव	२६ ३३०	गत्वा मुसनेवास्यात्	३१ ८०
गजाम महिषामाभ्या[]	१८ ५४०	गतसतो विनिर्हृतो	५० ८०	गत्वा मुनिं वानं हि	३२ ७६३
गजाभभूहिरस्यादि	६५ १६३	गतस्तु मेरुगिरि	२२ ३८०	गत्वा सह विन्द	३० ४४०
गजेन्द्रं पातयामास	१० ११०	गता निमन्त्रिता सवा	४ ४०	गतां च मायां शुस	१८ २७३
गजेन्द्रकर्म गोवर्ण	स मा २६ ६७३	गता महेश्वर पुष्य	स मा २३ २४०	गतां च शशां सार जातकानो	५७ ४४०
गजेन्द्रमयुषस्या च	४० २६०	गतास्तु कुञ्जल-भाद्	२१ १६०	गतां च इवां सार भलगात्र	४३ ११००
गजेन्द्रमयुषं रणानो	५८ ३३	गतास्तु ऋ-य सर्वे	५ ८३	गतां च शशां सार जातकानो	५७ ४७३

श्लोकाद्यंशुची

गदां द्विधा सुतीक्ष्णार	३२ ७५A	गदाधराच्च यत्पुथ्य	स मा २० ८०	गुरो सर्वमगो भूत्वा	६५ २६B
गदा प्रगृह्य तरसा	७ ६३C	गह्वर पतपाताम्याम्	४३ १०२A	गुरु पूज्यस्तव पिता	५१ ३१A
गदा मुकोष महिन	३२ ७५A	गह्वरयो जनस्त्वामी	५८ ६१C	गुरुदेवद्विजतीना	३२ २१A
गदा समाविष्य जघान भुञ्जि	४२ ३८C	गर्जन्ययामोद्योग्युत्थे युद्धे	६ ४६A	गुलिन्दिनाकरा ये च	१२ ४A
गदा समाविष्य धनेऽद्वरस्थ	२१ ४४C	गर्भो भारवाहिद्वे	१५ १५C	गुरुश्च युक्त सह भानुजेन	१४ २३C
गदा समुद्रभ्राम्य जलेश्वरस्तु	१० ३६C	गर्भमासप्तगुणालाय	स मा २६ ६४C	गुरो बर्गगि शोयोग	१४ ६A
गदावनाद्भिन्नकरो	३२ ७३A	गर्भस्थिते तत रुद्रो	स मा ७ १४C	गुरोरभावे तत्पुत्रे	१४ ६C
गदा चैव सहस्राचिद्	५६ १२A	गर्भस्य वर्तते कालो	३१ १४C	गुरोर्गुरुगुरुर्भूद	५१ ३२A
गदाघर श्रुतिधर	६० १२A	गर्भस्य तदेवोक्त	१५ ४५C	गुरोर्निवृत्त तच्चाद्यम्	१४ ५C
गदापाणि समभ्यर्च्यं	५७ ६C	गर्भाधान म्रिय कृत्वा	४५ २३C	गुरोर्मदीयस्य गुरुस्	६१ ७A
गदापाणि समाधान	७ ६४B	गर्भोदक समुदाश्र	स मा २२-३६C	गुरोर्येन विरोधात्	५६ ४६A
गदापातक्षताद् भूरि	४४ ३१C	गा ब्राह्मण्य वृद्धमपाप्तवाच्य	३२ ६२A	गुर्ययमेतदापरय	५६ ४५A
गदाभाद्यप तेजस्वी	४८ ५C	गागपथ्य विभौ भक्तिम्	२८ २०C	गुर्विष्णामथ भार्याया	४६ ५२C
गदाभाद्यप बलवाद्य	४४ १८C	गागपथ्यमकाशोति	स मा २० १३C	गुप्तकाचकवेत्तुना	५८ ६८C
गदित्तिनि सुपादीना	६ २५A	गावगि शैवाभरपाणिना च	१४ ५४C	गुप्ती काचकरेत्तुना	३८ १८C
गदिव्यापस्तव च	११ ४३C	गावारा यवनाश्चैव	१३ ३८A	गुप्त हत्येन नाम्ना च	३८ ४४C
गन्धु माशान्धुवद् सूयै	१६ ७C	गार्भित्वा वायजिगो	स मा २६ ६८A	गुप्तको वीक्ष्य तवया	३८ १७A
गन्धुकाय स सदन	५२ २७C	गार्भित्वा श्रुत्यन्ति रमन्ति यक्ष	६ ५३A	गुह्याय वेदनिलयाय महोदराय	५८ ३६A
गन्धुकागो महातेजा]	३८ १३C	गावन्नी याति तच्छ्रुत्वा	६५ १०५A	गुह्यपु चैव दृष्टेपु	स मा २२ ६C
गन्धुमात्स्वनि देयानि	६८ २६A	गावन्ते सन गन्धर्वा]	३६ १६२A	गुह्यो धावा च परम	६० ४३A
गन्धर्वकन्यके चैते	३६ ७C	गावन्त्यन्ये ह्यन्यन्ये	२१ २१A	गुह्यतो गुरुतपात्	स मा २६ १३३A
गन्धर्वतेजसा युक्त	४३ १४६C	गावेषे सुखर गीत	३६ ६C	गुह्यत्वानोऽन्यद्विदय	३५-३४C
गन्धर्वतेजसा युक्त	४१ १४४A	गाहृत्स्य ब्रह्मचर्यं च	१५ ६२A	गुणस्तत्परमं ब्रह्म	५६-२१C
गन्धर्वराजो रजतानुलिप्त	१६ १७A	गाहृत्स्य युतस्य त्वेन	१५ ६३C	गुणतो तत्पर ब्रह्म	६ ४C
गन्धर्वलोके सुचिर	५३ ७४A	गाहृत्स्यथमकापस्तु	१४ ८A	गुणकङ्कमहाहवा	६ ३८A
गन्धर्वविद्यावेदिन	११ २०A	गात्र च धनसो योनि	३६ १३७A	गुणप्रप च विमला	३१ ८२A
गन्धुवापस्तरसो यथा	स मा १२ १७C	गात्र च वापरथष्ट	३६ १३३C	गुह्य कुर्यात् महाजलोत्तमे	१ २३C
गन्धुवाय गार्भित देवेश	२७ १६C	गात्रवोऽपि सम ताम्ना	३६ १६A	गुह्य स्वस्त्वा श्रुण्वन	४३ ६५A
गन्धुवाय महावीर्या	६ ६C	गिर्विद्या कर्तव्ये	१८ ६A	गुह्येन सदा कार्यम्	१४ १५A
गन्धुवास्तुम्बरमुखा]	२७ १५A	गिर्विद्ये हलेनैव	३२ ६०A	गुह्येन सदा कार्यम्	१४ १५A
गन्धर्व किन्नरैश्च [तथा]	२६ १७A	गिर्विद्ये पशुपति	६३ २६A	गुह्येन सदा कार्यम्	१४ १५A
गन्धर्व किन्नरैश्च [सिद्ध]	५८ ६C	गिर्विद्ये ज्ञाप्य पात	१२ ३४C	गुह्येन सदा कार्यम्	१४ १५A
गन्धर्व स्मर्य चैव	स मा १३ १०C	गीतप्रिया माधवी च	३१ ६३A	गुह्येन सदा कार्यम्	१४ १५A
गन्धर्वयति च तनोक्तो	२६ ६३C	गीतव्यादिकन्युक्तो	स मा २६ १२५A	गुह्येन सदा कार्यम्	१४ १५A
गन्धर्वयति महापुथ्य	३६ ५६C	गीतव्यादिसमित्री	४२ २३C	गुह्येन सदा कार्यम्	१४ १५A
गन्धर्वयो वय विष्णो	६२ ५४C	गीते सर्ववैद्ये	स मा ६ २६A	गुह्येन सदा कार्यम्	१४ १५A
गन्धर्व यन्वापरय	स मा १६ २६C	गीतगपतिरव्यमा	४४ ६५C	गुह्येन सदा कार्यम्	१४ १५A
गन्धुवा मोर्षति वेन	६३ ६C	गुग्गुन महिषास्य च	१० ४६C	गुह्येन सदा कार्यम्	१४ १५A
गन्धुवा मोर्षति ब्रह्म	५७ ४C	गुह्य कलेहक दद्यात्	५४ १६C	गुह्येन सदा कार्यम्	१४ १५A
गन्धुवा च यथा श्राद्ध	स मा १५ ४८A	गुह्य गीतैः स भगवान्	स मा २२ २१A	गुह्येन सदा कार्यम्	१४ १५A
गन्धुवा तीर्थमुद्राया	५३ ६४A	गुह्य गीतैः स भगवान्	३ ६०C	गुह्येन सदा कार्यम्	१४ १५A

वामनपुराणस्य

नेय स चम्पवनग च भीमाद्	६८ ५६०	घ	चक्रहृद्योगमनुव	७ ५००	
मेह ततोऽम्बेय महेश्वरस्य	२६ ७०३	घटोदरो वै शम्पा जवान	४२ ३५०	चक्रवैद्य सहेत्रण	४४ १५०
मोकर्णं दक्षिणे शर्व	६३ २८३	धृष्टाकर्णं लोहितश	३१ ६१३	चक्रे कीरवयमनुव	२२ २२०
गोत्रहृत्संरागाङ्गित्वा	५३ ७७०	घण्टो घण्टी महाघण्टी	स मा २६ १२७०	चक्र जगत्सामिनिद्रिमप्रया	२० १८०
गोनसाम्य कुले वृत्ति	३५ ३५०	घनाचकारितागो वै	१ १५०	चक्रेण चिच्छेद मुद्रुगतस्य	४७ ५६०
गोदानानि पवित्राणि	६८ २२३	घनायस्थितदेहाया	१ २६३	चक्रे ततो सङ्क्रियितु त्रिलोकं	५२ ८२०
गोदावरी भीमरथी	१३ ३०३	घषरा च मुगोऽस्य	२६ ७६०	चक्र दिव्यफलैर्जितेन युञ्जिना मूलैश्च	
गोशवर्षा सिद्धयानस	३१ ७५०	घम चतितपस वायु	३१ ६६०	क नदिभि	२५ ७५०
गोनर्दो गोत्रताऽऽ	स मा २६ १३७०	घातयस्य पराक्रम्य	३२ ६७०	चक्र निगीर्षो गगनापकेन	४ ५०३
गोपायति मुरो सस्य	३४ ५५०	घातयिष्यति वा विप्र	३७ ११३	चक्र प्रविष्ट पाताल	६७ ६३
गोपाल च स्रुवैकुण्ठ	६१ ८३	घृत च धीरकुम्भान्नाश्च	६८ २६३	चक्र मति नान विचारयति	२० १७०
गोपालमुत्तरे निस्य	६३ ११३	घृत तिला द्रोहियवाः]	१८ १३३	चक्रैर्बन्धान्पुनर्भस्त्ववनिगगनयोर्जितव	
गोत्रात्मगस्त्रीपशुद्	१५ ३५०	घृतपात्र च मतिमान्	५४ २८०	गुणैर् समन्तात्	४७ ३८०
गोत्रात्मगामर्नि च	१२ २५५	घृतमानय नैराण	४३ ८७३	स्वत्वार रोत्रनासौ	५६ ५०
गोत्राहाणानय सृष्ट्या	१२ १६३	घृताचो ता सम्भयेय	३६ १५०३	चवार नागन्त्याभि	७ ३००
गोमती घृतपापा च	१३ २१०	घृताभ्यग्नि नदी स्नातु	३६ ८६०	चवार मान्दगिरा	५२ १७०
गोमया छादितमद	६३ ३१३	घृताभ्यास्तद् वन शुच	३६ ८५३	चथल हि मनुष्यव	स मा १२ १३३
गोमया परिर्विषय	३७ ६१३	घृतादिविषय पोर	३५ २३३	चण्डमुष्ठी च निहृता	३० १३
गोमया वाचनाश्याश्च	५७ २०	घृतोपाद् द्विगुण श्रेष्ठ	११ ३८३	चण्डा त्वाणय चण्ड च	२६ ८१३
गोमहिय खरोष्ट्र च	४६ ३३०	घृतोदा द्विगुणश्रैव	११ ३७०	चण्डाया मातरो ह्युष्टा	३० ५६०
गोमातरोऽस्मानु विनाशकारि	५२ २२०	घोरान्तिस्वरुपाय	स मा २३ ७०	चतु पट्टिकलाः श्रेताः]	४६ ३२३
गोरोचनाया त्वाविष्य	३६ २५३	घारा धारजदी चाया	११ ५७०	चतुरङ्गबल श्यवा	४२ २५३
गोरोचनाया सहिता गुडन	१७ ५५३	घोषमासा नवरे	स मा २६ १०३	चतुर्णां लोकपालाना	६२ १६०
गोविन्दप्रोगनायाय	६८ २५०	घ्राण च गच्छद्गणै निमुक्त	स मा ८ २५०	चतुर्थे बलिनां मुख्य	३१ ६१०
गोविन् प्रीतिवर्ता च	६० १८०	च		चतुर्थे ब्रह्मणा तिङ्ग	स मा २८ ३६०
गोविन्देन सुरास्यस्तत्रम्	४८ ४०	चकम्पिरे महागताः]	स मा ७ १५०	चतुर्थस्य श्वेतरागे	५२ १६३
गौरव च तिरस्कृत्य	४० १३०	चकार कुपिता दुर्गा	२६ ८१०	चतुर्थे त्वापमे धर्माः]	१५, ६१३
प्रतिभो दैत्यवीर्याम्	२६ ८३०	चकार गोत्रभित् पश्चात्	३२ १०८०	चतुर्थेन गण शुभ	४२ २१०
प्रतल्पने च स्वर्भद्र	स मा २६ १५५०	चकार पचपत्राणा	४६ ५६३	चतुर्थो राजसो नाम	३५ ७०३
प्रह्लादात्रतारणा	स मा १२ १६३	चकार स पुत्रकृतु त्वनोहित	४४ ५६०	चतुर्थस्य वामनमाहृतस्य	६६ ११३
प्रह्लादात्रतारणा	स मा १२ १६३	चकार स्वपितृया च	४३ ७००	चतुर्णांममोक्त	३५ १५३
प्रह्लादस्यैव प्रसूयते	स मा २१ २५०	चकारायतन भूम्यां	६८ ५५०	चतुर्णां मुक्तिषु [बन्धवो]	४ ६३
प्रह्लादस्य जया गुणानुभ	४४ ५८०	चकारोपरि पीनाम्या	६४ ६६०	चतुर्णां मुक्तिषु [राज्यं]	२१ ३६०
प्रह्लादस्यै स्वव्रतपादौ	१५ ५३०	चक्र हरेऽन्तवचकहन्तु	२१ ५५३	चतुर्णां ततो वणा	१७ १०३
प्राह्वस्तं गेम् स	५८ ६२३	चक्रतीर्थे महाबाहा	७ ३७०	चतुर्णां तु सभ्याह	स मा १५, १०
प्राह्वस्तममपुष्पाद्	५८ ६५०	चक्रतीर्थे मुचकण	३१ ८६३	चतुर्णां तु सभ्याह	३५, ८८०
श्रीवाङ्मन्त्रित्तवमाता	स मा १० ५५३, ६५ २५०	चक्रप्राग्निद्विन्द्रान्तो	६ ७६०	चतुर्णां तु सभ्याह	स मा ५ १३
श्रीवामनिधता तथा ज्येष्ठा	५४ ७३	चक्रप्रानसबद्ध	५६ २०	चतुर्णां तु सभ्याह	३५, ७२०
श्रीवास्य पाद्माहृतिमाभ्याति	२२ ५०३	चक्रमुद्यम्य सङ्क्रो	३२ ७२०	चतुर्णां तु सभ्याह	२८ ५६३
श्रीवामः प्रभुतो देवेभ	१ १२३	चक्रानुचक्रौ श्यता य	३१ ६६३	चतुर्णां तु सभ्याह	२ १६०
		चक्रासिहस्तं हनाङ्गनाभि	३६ ३०३	चतुर्णां तु सभ्याह	स मा २८ २००

चतुर्भुज बहतीर्थ	स मा २१ २८३	चाण्डालान्नयज्ञाद् वापि	१२ ३६०	चिन्तयन्नात्र सतत	६२ १००
चतुर्भुज स्थापयित्वा	स मा २० ४७०	चतुःप्राथम्येनो वा	स मा २६ १२६३	चिन्तयन्ती स्वपितर	४० ५३
चतुर्भुजानामुत्पत्ति	स मा २० १३	चातुर्वर्ण्यं तदा खे हरे	७ २५३	चिन्तयामास दुःखार्तं	स मा २६ ३००
चतुर्भुजि बभ विष्णुर	३४ ६३३	चातुर्वर्ण्यं ततो दृष्ट्वा	स मा १० २४३	चिन्तयामास योगात्मा	४१ ५०
चतुर्भुजिर्वाभाय	६२ २१०	चातुर्वर्ण्यं स एष्यथंम्	स मा १० २२३	चिन्तयाम्यहमन्यत्रे	स मा ४ १०
चतुर्भुजिर्वाभावो	३४ ६४०	चापामांगमुत्सृज्य	४ २७०	चिन्तयित्वा तु सुविर	२० ३००
चतुर्भुजव्यवस्था च	स मा १० ७०३	चाप्येया भास्वच्छेया []	५७ ३६३	चिन्तयामास मृतीम्	५६ ५५०
चतुर्भुजप्रयुक्तेषु	स मा २६ १२००	चार्यैर्वैदितो मानु	१६ ४७३	विर ध्यात्वा जगदीश	स मा ८ ४०
चतुर्भुजात्तथा जम्बुर	२७ १००	चापवामास त रचनात्	स मा १६ ११०	विर विविद्यास्तुलमैतत्पितृभ्यम्	४१ ४३०
चतुर्भुजेषु रथ्यासु	स मा २६ १५०३	चापवचन च जम्बूकं	३१ ८८०	शोभा पुत्र पत्नियन्त्र	२५ ५६०
चतुर्भुजान् सद्भिर्मानु	४३ ३७०	चिन्तार सैयसान्तु	२१ २३०	शोभास्यैव तुपापासत्र	१३ ४००
चतुर्भावे स्थिते धर्म	स मा २ ११३	चिन्तारस्तु महादत्त	स मा १० ६१३	शुभ्रु सागरा सत्त	२० ३१०
चार्त्तारिणो द्वाभ्याम्	३० ३३३	चिन्तार दैत्यराजाय	१० ४०	शुभ्रुसिंहमुत्पन्नमद्वयं	१६ १६०
चार्त्तारिण्यदिमा शोको	११ ४०३	चिच्छेत् चमया साहै	३० ४३०	शुभ्रुनौपकाम्यैश्च	५० ८०
चन्द्रादिभिरेकाग्रैश्च	४१ ३६०	चिच्छेत् दवाया साध्य	८ २१०	शुभ्रुनौनि मुग्धनौनि	६ १०५३
चान्नेनानुत्तिमेषु	६० ११३	चिच्छेद देवान्तु गतत्वनामवन्	३५ ७६०	शेखु शेषुर्धरण्या च	३४ २१०
चार्त्तर्षरणासाहै	४५ ५३	चिच्छेत् मार्गसरै	८ ६०	शेखु पतुश्च मन्त्रुश्च	२१ ११०
चन्द्र समभूषणगः	५ ५३	चिच्छेत् सतथा ब्रह्मन्	४५ ३४०	शेष्टित्वा नानुदना	१५ ६०
चन्द्रभूषितदेहाश्च	३ ३६०	चिच्छेत्केन बाणेन	८ १४०	शैवमासे तिताष्टम्यां	५४ ११३
चन्द्रया सङ्घित ब्रह्मन्	२ १००	चितामाघोषित मा च	३० ६७०	शैव मास त्रयोदश्यां	स मा २५ ५३३
चन्द्रयुक्ते तु नयने	स मा १० ४६३	चितिभस्मप्रिपावेव	स मा २६ ८५३	शैवमासे तिष्ठे पने	स मा २५ २४३
चन्द्राभ्यां चानुपौरे ठे ववाश्च हि	स मा २६ १५५०	चित् हृदिसे मे शीघ	६४ ७३०	शैवशुक्लचतुर्था[शान्तोति] स मा १५ १७०	
चन्द्रादिषो च नयने	६५ २७०	चित्तवृत्तिहृद् वै च	५६ १७३	शैवशुक्लचतुर्था [तीर्थे] स मा १५ ४४३	
चन्द्राद्योर्म्यपठता	स मा २६ १२६०	चित्तवृत्तिनिर्मुक्तम्	२६ ४७०	शैवशुक्लयां तिष्ठे पने	स मा २० ८१
चन्द्रावर्तो युगावर्तः	स मा २६ १३५३	चित्राक्षितव स्वागिद्	४ ३७३	शैवस्य हृदयस च	स मा २४ ३०३
चन्द्रोर्मणि यमुनिम्	३१ ६४०	चित्राङ्गान्तु गापर्को	स मा २५ ३३३	शैवाद्यां क्षान्तुनाताश्च	५६ २७०
चरणोद्दिनात्स्य	३ २७३	चित्राङ्गान्ति सात् दृष्ट्वा	३६ १२६३	शैव चित्राणि वखाणि	६० २५३
चरणाम्नां समानाय	१० ४५०	चित्राङ्गानामाभिलेख	३६ १२०	शैव शोभुम्बरनी	१७ ४६३
चरता सरस्य द्वे	४३ १७३	चित्राङ्गानामा कल्याणि[सुर्या]	३६ १६४३	शैवी भेङ्गे वापभङ्गे	३१ ६४०
चरते हनोपतिस्वामे	५ ५३०	चित्राङ्गानामा कल्याणि [सु]	३६ १६००	शुभ्रुतार्यां निर्वै रास्यम्	स मा १० ६०३
चरत् सरस्वतीं पुण्याम्	७ ४२०	चित्राङ्गानामा चितरं	३६ १०२०	शुभ्रुतारसरकुम्भैश्च	३० ३६०
चरात्सरसुर्गं नार्यं	५६ ७७३	चित्राङ्गानामा यद्वृत्तं	३७ ३००		
चरात्सरस्य जगतो	स मा २० १२०	चित्राङ्गानामा यद्वृत्ते	३८ ११	स्य प्राणात्पुं रासा	६२ ४७३
चरात्सरस्य प्रभवं पुत्रामम्	स मा १७ १७०	चित्राङ्गाना गुप्तापत्तौ	३८ २००	स्यवद् चरितो ब्रह्मन्	४४ ३६०
चरितैश्च शुभं नाय	४४ ५६०	चित्राङ्गान्देति मुफोणि	३८ ३३०	सुशोभनाद् शैतमुनि	५४ २०३
चर्मं मुनयः शुभ्य	१० ३२३	चित्राङ्गान्देत्तं दृष्ट्वा	स मा २३ ३५३	साम्ना शैव वापर्म	स मा ३ ७३०
चमाद् मुत्तं च	२६ ५६३	चित्रा शैव सवात् शु	२४ ६३	साम्नामास चित्रं	५५ १२०
चर्मणि निरसा भूमि	स मा ८ ५३	चित्राय ते सवात् च	२४ २५३	क्षिप्या निराश्रयमास	४७ ४८०
चर्मणं चित्तुश्च	४३ १३३३	चित्रा चित्रना हृदिचित्रो च	४६ १५०	क्षिप्या चित्राश्रयमास	४७ ४८०
		चित्राय हृद् यजते च तैर्	१४ ४०३	क्षिप्या चित्राश्रयमास	४७ ४८०
		चित्रायना हृदिचित्रो च	११ २६३	क्षिप्या चित्राश्रयमास	४७ ४८०

द्विन्ने तु परिषे धीमान्	८ २०३	जगाम वृषभारुढो	२७ २६०	जनादिनवच धृत्वा	४३ ११४३
द्विन्ने धनुषि खड्ग च	२१ २७०	जगाम नेगाद् गच्छो यथाहो	३ ४२०	जनादिनापि कुङ्गाय	५६ १०००
द्विन्ने निरसि दैत्येभ्यो	३० ५४३	जगाम सतथा ब्रह्मज्ञ	८ ३०	जनादिने महाभाग	स मा १० २८०
द्विन्पु तुषु शस्त्रेषु	८ २४३	जगाम शरण विभ्र	५८ ७४०	जयोऽपि नित्योत्सवमन्दिनैर	१४ ५६०
छेसा भेसा प्रहृत्सि	स मा २६ ११५०	जगाम निष्पसहित	४० १६०	जमजमान्तात्पयाहात	५८ २८०
छेतुकामो निज गोपै	१८ ४७०	जगाम सत्यम्ब हि दण्डक हि	१६ २८०	जम्भृमुजुरातोति	स मा ६ १८०
छन्द वृषज्जातीनां	३५ २०	जगाम स कुम्भन	५५ २०	जपन्त स्नातकात्स्वा च	८ १००
ज		जगाम सर्वतोपानि	स मा १८ ६०	जपनेव नर पुष्य	५६ १०५३
जगच्च त्रिष्टये यत्र	स मा ६ २१३	जगाम सागरादौ	२७ २१०	जपतोयपरा मुष्या []	स मा ३ २३३
जगतोभ्रकर विभ्र	३६ ४१०	जगाम साहस शनस्य	४३ १४२०	जतस्य शतशयो	३६ १४३
जगतोऽजगदन्तेश	स मा ६ २००	जगामाद्रि स सं गन्धि	२७ १६०	जपवाश्टान्तनामान	३६ २६०
जगतो भातर सदा	१३ ३३०	जगामाम्बरमादिस्य	२५ ७२०	जपत्वा सहस्रनामानम्	२८ ६८३
जगत्यतिद्विष्यत्पुनर्नान्तस्य	६८ ६००	जगामाहो पयोग्यायान्	५५ १००	जम्भृक घृतपाया च	३१ ८००
जगत्समग्र प्रविशेण धीमान्	१० ५६०	जगुण वर्धपतयो	३१ ५६०	जम्भृद्वीपस्य सस्यान [कथ०]	१३ १०
जगत्र च महाभाग	१० २१०	जम्भु पुरस्कृत्य पितामह ते	१६ १०	जम्भृद्राषस्य सस्यान [कथ०]	१३ २३
जगदैन स्तव विष्णो	५६ ११३०	जम्भु प्रभावत क्षीम	स मा १० ३४०	जम्भृद्वीपात्समारम्भ	११ ४००
जगाम श्रुतिभिः साह	स मा २३ ३२०	जम्भु स्वानयेव विष्ण्वानि	२५ २६०	जम्भृद्राषे चतुर्बाहु	६३ ४२३
जगाम कच्छप इष्टु	५२ ५०	जम्भुस्ते सुखलोमानि	४४ ८२३	जम्भ कुजम्भ नरक	स मा ८ १२३
जगाम काश्यप इष्टु	३६ ५३०	जम्भुस्ततोऽपि ते ब्रह्मन्	६२ १०३	जम्भ च पाशेन तथा निहत्य	१० ४०३
जगाम च महादेवा	३८ ११०	जम्भुर्दृष्टा रथेभ्यस्ते	३६ १०७३	जम्भ कुजम्भो हृष्टज्ञ	४० ६००
जगाम च महात् नाल	५६ ६०	जग्राह चतुषो षागाव	३० २००	जम्भमुद्रिनिपातेन	४३ १२०३
जगाम चोराय पुर श्वकीय	१५ ६७०	जग्राह च घनवीगात्	३८ ७७३	जम्भस्ताजंकोत्तययै	४३ ११२३
जगाम ज्ञानदानाय	५६ ५६०	जग्राह तुगानि तृपाऽप्याधि	२ ५१०	जम्भस्य तु रथो दिव्यो	६ ८८०
जगाम तत्र यथास्त [नैत]	२६ २१०	जग्राह पाणिना दण्ड	१० २००	जम्भाम्भुजोपि पुरेसम्बध	४३ १३६०
जगाम तत्र यथास्ते [सह]	४० ४६०	जग्राह शक्ति यमदण्डकल्यां	४३ १५६०	जम्भे हते दैत्यवले च भाने	४३ १६२३
जगाम तीर्थप्रवर महास्य	५७ ६५०	जघनै स्वनिविस्तीर्ण	७ १०३	जयन्ती च महापुण्यां	२८ १२०
जगाम दानवो इष्टु	५७ ७००	जघनेऽश्वघीरन्त	४४ ७०	जयत्र दूनपारिणसव	४४ ६६०
जगाम दिव्याया गत्या	४६ १४०	जघान चक्र रत्नाम्	३२ ७६०	जयशीलं रवदना	५६ ४८३
जगाम धमराजान	३५ ५६०	जघान् चायान् रणवण्डविजया	३० १६०	जय सूर्यातिपुत्रम् एवं	स मा ६ २३०
जगाम नमोप स्तानु	७ २६०	जघान तनव कुजम्भमाहवे	४२ ४४०	जयस्य शिष्याम्भुजकाण्वोर	५० ३३३
जगाम नैमिष नारम	३७ ४००	जङ्गमनि च भूदरि	स मा २८ ३०३	जयस्य पापान्तज्जालेदस्	५० ३३०
जगाम नैमिषारण्य	८ २६०	जङ्ग मुहूर्तयि च रोमहीने	२० १३३	जयस्य मायाभोगस्य	स मा ६ २४३
जगाम पुष्य सन्त मुपारे	६४ ११२०	जज्वाल शानामिनियो	१० १७०	जयस्य सन्श्वर विश्वमूर्ते	४४ ५३३
जगाम ब्रह्मसन्त [सह]	५० १०	जज्वाल हरिदृष्टवा	५ १३	जयो च विजयो पैव	४२ ६०
जगाम ब्रह्मसन्त [सपि]	६६ ४०	जज्वालैव सुराष्टेन	३८ २६०	जया शोभाद् गदां गृह्य	४ २१३
जगाम भगवाञ्छुनं	२७ ४०	जज्जिते दण्डिने नित्य	स मा २६ १५६३	जयाशित जगोश	स मा ६ २१३
जगाम भूपरं इष्टु	३७ ४८०	जत सर्वो महाभाग	स मा १० २३०	जयाचिन्मय जयानक	स मा ६ २६०
जगाम भृगुगिरिम्	२८ ३७०	जतविद्यस्य पुनं एवं	४५ २२०	जया जगाम तैतेर्द	४ ३०
जगाम मायवं इष्टु	६ १६०	जतावात्त शेरं हि	३६ २१०	जयानित जयारेण	स मा ६ १६३
जगाम यमुनां स्तानु	३ ७०	जतावात्तगर्ताकि एवं	३६ २३०	जयतिगाम दुर्षेय	स मा ६ २३३
जगाम विनयं गृह्ये	४२ ६४०	जतावात्तं पुरदृष्ट्य	३६ ३०		

पयादिमध्यान्वमय	स मा ६ २१०	जातो रुचिरनिध्मन्दा	४७ ३००	जातुमीया न मुनय	स मा ६ २८०
पयादीना ज्ञयाजेय	स मा ६ १८३	जातवित्तवृन्दमुकु	३८ २८०	जात्वा व शशाङ्गुवा सकामा	२२ ५५०
जया मुता सती दृष्टवा	४ ११३	जातो विदितवृत्तात्तो	३६ १००	जात्वा तस्य वधात्कामो	५६ १८०
ज्यापास्तद्रव श्रुत्वा	४ १०३	जानन्ति देव्याधिप यत्स्वरूप	स मा ८ २००	जात्वाय विष्वक्कर्माण	३६ १०६३
ज्यायेष जगत्सासिन्	स मा ६ २०३	जानन्ति श्रियतर	{ स मा ८ ४३३	जात्वा प्रनष्ट भिदिवन्द्ययु	५५ २६३
जये तथा वनवतोर्दु	स मा २ ७३	जानुना व समाह्वय	५१ ३०३	जात्वाऽभिपिक्त दैतेय	४७ २३
जये पायस्य देवस्य	४३ ८६३	जानुनी पूढगुल्के च	१० १००	जात्वा स संयश्चरभोगमव्यय	४४ ५१३
जयम च पचाय युद्ध	४३ ५०	जानुनी चाङ्किनीयोयो	७ १२३	जात्वेन्द्रर्ष्येन साहाय्ये	४३ १४३०
जयेन भद्रवर्णे च	६३ ४०	जानुनी चाङ्किनीयोयो	५४ १२३	जानयामं न ते द्युर्दु	३४ ७२३
जयैवन्द्रद्रुभाग्नेन	स मा ६ २४०	जानुन्यामपरा नायं	स मा २२ ६६३	जानापान विराजम्ब	३ १५०
जरायुज्जपज्जज्ञैव	स मा २६ १०६३	जानुन्यामुपरि स्वाप्य	४५ २८३	जानापिबभोगेषु	३५ २६३
जरा युवात्त वै यद्रत्	२८ ५००	जावाङ्गिना सारवहेन सद्युत	३८ ७६०	जानाना शयका देवम्	स मा २३ ६०
जरायुग्माय सौवेद्याय्	१७ ५४३	जावासीति परिख्याय	३८ २६०	जानानि चैवाम्यसता हि पुं	६६ ११४०
जरावासाङ्गिनिनिध्मन्तां	२६ २३०	जावलेर्दयता श्रद्धान्	३६ १५८०	जानिनामायमो वदम्	स मा २२ ८४०
जलेन ताडयामास	१० २६०	जावन्त्येन रामेण	स मा १३ ४२३	जये तदेव प्रवदन्ति सम्बन्ध	स मा २२ २४०
जलेवापगोक्षि महागुरेण	२१ ४५३	जावयो गुरजो धृदा []	१२ १८०	ज्यामथो विधुगुनितय	६८ ५१०
जलेधरा कुकुटिका	३१ १०१३	जावगुर्दुहितृधनेन	२ १५३	ज्येष्ठ गुम्भ इति ह्यवातो	२६ २३
जरोद्भवध्यापि जल विमुच्य	५५ २७३	जावमिनगुणस्युवा	२६ ६२०	ज्येष्ठ श्रेष्ठा वरिष्ठानि	{ २ १६०
जरोद्भवो नाम महागुरेद्रो	५५ २०३	जिननी काङ्किलेयस्य	३१ ५८३	{ २ १७५	
जरोगार महीय हि	११ ३३०	जिवासाय तदेवेह	५६ ३००	ज्येष्ठ सनत्कुमारोऽमूर्द	३४ ७०३
जरो यस्य रिजतो वायुर्दु	६७ १३०	जितास्त्वदीय पुष्य नितामह	२ ६३३	ज्येष्ठमातङ्ग शरण	३५ ६५०
जान्म-यगानमाध्यान्त	१० १८३	जितास्तमा तोमधराऽजर्बहि	२० ५३	ज्येष्ठाया पूजयेद् घोषा	५४ २००
जात सा च तपोशीव	२२ ३४०	जितास्त्याकम्य दैत्याम्ना	२६ १३३	ज्येष्ठाव्यम च तत्रैव	स मा १५ ६७३
जातकमाङ्गिका कृत्वा	स मा ६ १७०	जितेन्द्रियवर्ष चौ च	११ २४३	ज्येष्ठावमे महापुण्ये	स मा १० ८२३
जातमात्रयु पुत्रयु	४६ ३८३	जितान्द्रियत्वमावाति	१५ ५६०	ज्येष्ठे माति निते पत्र	स मा १० ८४३
जातस्तीर्थीवर पुण्या	३४ १००	जितोऽय ल्वल्लसदिन	८ ३६०	ज्येष्ठे स्नान कामरुके	स मा १५ ६८३
जाता गजे द्युष्टस्या	३० ८०	जित्वा लोकत्रय तादव	स मा १० ६५३	ज्येष्ठे स्नान कामरुके	१७ ५५३
जाता सा चाह देवेश	३० १३३	जिष्टसत्सामन्त सर्वे	२२ २१०	ज्योति पद्यन्ति युक्तानास्	स मा २६ १५८०
जाता सा पाटला रम्या	६ १०००	जीमूतकेतु गन्तुज्जो	२६ ३५३	ज्योतिर्द्वितागल प्राणात्	३१ ६५३
जातास्ता कर्मकास्तिष्ठ	२५ ५३	जीमूतकेतुः पायात् []	२७ २३३	ज्योतिर्द्वितागल प्राणात्	३५ ७४०
जाता रिमचतो गेहे	१ ६०	जीमूतवाहन इव	६ ७००	ज्योतिर्द्वितागल प्राणात्	२२ ४३३
जाति यान् पौषिणी हु	६५ ११०३	जीमूतवाहन इव	५८ ११०	ज्योतिर्द्वितागल प्राणात्	३२ ५२३
जाति युक्तानि देवेन	६ १०३०	जीमूतवाहन इव	५८ ११०	ज्योतिर्द्वितागल प्राणात्	३२ ५२३
जातिस्मरुो हपङ्कस्तु	स मा १८ १७३	जीमूतवाहन इव	५८ ११०	ज्योतिर्द्वितागल प्राणात्	३२ ५२३
जातो यताद्वा सुमना	६८ १२३	जीमूतवाहन इव	५८ ११०	ज्योतिर्द्वितागल प्राणात्	३२ ५२३
जातुया भूषिकादाश्र	१३ ५७३	जीमूतवाहन इव	५८ ११०	ज्योतिर्द्वितागल प्राणात्	३२ ५२३
जात ध्यायवहायेसो	५६ २४०	जीमूतवाहन इव	५८ ११०	ज्योतिर्द्वितागल प्राणात्	३२ ५२३
जातेऽस्ये वपित्वाव	३६ १५४०	जीमूतवाहन इव	५८ ११०	ज्योतिर्द्वितागल प्राणात्	३२ ५२३
जातेऽस्ये धृताध्या हु	३६ १५६३	जीमूतवाहन इव	५८ ११०	ज्योतिर्द्वितागल प्राणात्	३२ ५२३
जात पुने पितु स्नान	१५ ४१३	जीमूतवाहन इव	५८ ११०	ज्योतिर्द्वितागल प्राणात्	३२ ५२३
जातो मन्थस्तेनाह	६५ ६३०	जीमूतवाहन इव	५८ ११०	ज्योतिर्द्वितागल प्राणात्	३२ ५२३

त खड्ग चर्मणा सार्धं	२१ २८३
त गच्छन् महातीर्थ	२४ १०
त गच्छन् सुरभद्रा[]	२४ ३३
त गन्धमात्राय सुरा विपन्ना[]	५२ ४३३
त गजमान वीर्याय	१० ६५
त गृह प्राह एषोहि	३२ १००
त च ध्रुवा महागन्ध	६७ ७३
त चाणव हरो मन्त्रिम्	२८ ६७३
त चापि जम्भो विमुख निरोक्ष्य	४३ ११०३
त चापि भूयो सन्तो जधान	६ ४५१
त चैत्र्या महिषो ममात्	२० ३१०
त ज्ञात ब्राह्मो पुन	६४ २५३
त ज्ञातमात्र भगवान्	स मा ६ १७३
त तमाद्यय विलस	४७ ३७
त तु कुट्टमनिश्चय	स मा १६ १६६
त तु हृष्टवा नरो मुक्ति	स मा १४ ६७
त ददर्श महातेजा	४७ ७०३
त ददर्शानुरप्रेक्षो	४३ १६३
त हृष्टवा कमलैर्व्याप्त	६२ १४३
त हृष्टवा कुपाविष्ट	५६ २५०
त हृष्टवा गातव चैव	३६ १३६३
त हृष्टवाय महाफल	५७ २३३
त हृष्टवा ददातनुवा	१ १६३
त हृष्टवा दानवपति	४४ ७६३
त हृष्टवा देवता पूज्य	४३ १३८३
त हृष्टवा देववर्धनम्	५६ ४१३
त हृष्टवा नृपतिप्रभु	३८ ६३३
त हृष्टवा पानुवर्षे च	स मा २४ १२३
त हृष्टवा पाणमुत्सृज	स मा २० २१०
त हृष्टवा पुष्परोषाणम् [बह्वं]	५१ १२३
त हृष्टवा पुष्परोषाणम् [सण]	५७ १०३
त हृष्टवा पुण्डरीकाक्षी [पौज (०)]	६६ १०३
त हृष्टवा बलिना धृष्ट	४२ ६०३
त हृष्टवा भवभाव ब्रह्मा	४३ २१३
त हृष्टवा भास्वर देव	२२ ४२३
त हृष्टवा महाभयै	४४ २३३
त हृष्टवा मानिनी प्राह	४३ ८३०
त हृष्टवा मुच्ये पापैर	स मा २५ २५०
त हृष्टवा पापाणं तु	स मा १० ३५३
त हृष्टवार्थं हरिं शतौ	४७ ६२०

त हृष्टवा वर्धमान रिपुमतिवतिन	
देवगचवमुष्या	४७ ३६३
त हृष्टवा विपुलच्छाय	३८ २१३
त हृष्टवा गतशीर्षमुष्टतप	
गैलेऽश्रुज्जाहति	४७ ४२३
त हृष्टवा क्षीतलच्छाय	४५ ६३
त हृष्टवा सा सखीराह	३७ ४२३
त देवगुह्य पुरप पुराण	५८ ३२०
त देवनिर्मित देग	स मा १२ ६०
त देवपि महात्मान	स मा ४ ५३
त देगममलकाली	२५ ३५०
त निघ्नत मन्दादेव	३२ ४१३
त पट्टा भ्राम्य जघान मूर्ध्नि	४२ ५७०
त पराश्रेष्ठ्ये भक्त्या	८ ४२०
त पागमाविच्छ गदा प्रशुह्य	१० ४२०
त पूजयिषा दलेन	स मा २५ २२०
त पूजवर्तित मार्गम्	२८ ५३
त प्रशुह्य करेणैव	२६ ७२०
त प्रगम्य धर्तुधानो	स मा २८ ४७३
त प्रशयव दारण	५० ११०
त प्रयष्टु सदा हृष्टवा	६ ६६३
त प्रह्व्याद्रवादेवो	स मा १७ १४३
त प्राह भगवान् यत्	३१ २८३
त प्राह भगवान्योषी	४६ ५३
त प्राह विष्णुव्रज तीर्थवर्ष	३२ ११५३
त प्राह पाशुद्विज परय महा	३६ ५०३
त प्रावाच कर्बुरहाव	१८ ५२३
त बल प्राह मोस्तात	४८ २३३
त बाधवाध्रि तितरो	६४ ४७३
त भ्रामयानो बलवान्	४२ २७३
त मर्दमान बीर्याय	१० ३०३
त माता प्राह वन	३६ ६३
त माता मुनिगार्हत	५६ ६००
त मूढे पतिभिर्भिव	४३ १६३
त यज्ञपुरय विष्णु [नमामि]	स मा ६ २८०
त यज्ञपुरय विष्णु [प्रगतौ]	५६ ३००
त विष्णुसपिनु यत्नं	३२ ४७०
त विष्णुपति सवर्णं तपायत्	३० ६८०
त विष्णुना हृष्टव	३८ २५३
त विलासावयगतं	स मा २२ १७३

त वीर्य भूमौ पतित विप्रज	४३ १६१०
त वृगीष्य महाबाहो	८ ६२०
त वं तीर्थं उपानिषु	स मा १८ १८०
त वनतेषोप्युरासा क्षयोत्तमो	४७ ५०३
त वज्रत हि गवर्षा[]	४३ १४३३
त शकरोऽप्येत्य करे निगृह्य	३६ ४७३
त शकरोऽप्येत्य वचो बभाषे	२ ५०३
त शक्यागभिहत दुरासद	४३ १५६३
त शक्यमावप्य च शम्बरस्य	१० ४८३
त शूरगुण्य विष्य काली	२५ ६१०
त शैबर गिवा शूह्य	२६ ८५३
त समम्यय विविध	५५ ३२३
त स्तम्भित वीर्य सुचारिमये	३० ३५३
त हनुमिच्छति हरि	२६ ३०
त हि मोक्षयितु नाय	३८ ६५३
त हीनवीर्यं गतवा चकार	३० ३००
तच्च गुम्भोऽपि गुथाव	२६ ४६३
तथापि विजित द्रह्मन्	४५ १६०
तथारणवच गव	१६ ४२३
तस्मिन्तस्य मयो भूत्या	६८ ६०
तथैकता परैतकूटस्त्रिभ	१६ ७३
त ध्रुववचन क्षु वा	४२ १८३
त क्षिप्र शक्यरर्षेव	२ ३७३
त क्षिप्रस्वरण मुक्त्वा	स मा १८ १२३
तक्षुक् पापियेत्य	४६ १८३
त क्षुत्र बालुकाया च	२७ ४७०
त क्षुद्रगुण्य द्विजप्रेष्ठा	स मा १ ८०
तक्षुद्रवा कण्यवच	५० ६३
तक्षुद्रवा क्षीपमुत्सृज	२ ३६३
तक्षुद्रवा सायको वाक्यं	३२ ४४०
तक्षुद्रवा दानवपति	४० २३३
तक्षुद्रवा देवतास्तन	स मा २१ १३०
तक्षुद्रवा भगवाण्डर	४३ १४७३
तक्षुद्रवा भगवाण्डर	३१ १५३
तक्षुद्रवा भगवाण्डर प्राह	३६ २३
तक्षुद्रवा भगवाण्डर श्रोत	स मा १६ २००
तक्षुद्रवा भगवाण्डर ब्रह्म	स मा २४ २१३
तक्षुद्रवा भगवाण्डर भानुर्	१६ ४२३
तक्षुद्रवा भगवाण्डर भाग	३२ ७६३
तक्षुद्रवा भगवाण्डर भाग	३६ २५३
तक्षुद्रवा भगवाण्डर भाग	२८ १२०

श्लोकार्थसूची

तच्छ्रुत्वा वचनं तस्य	स मा २६ ३०a	तत् क्षुपातीं गततत्त्व	५६ ५३०	तत् प्रीणोऽभवद् भानुर	५० ३६a
तच्छ्रुत्वा वचनं देव्या	स मा २२ ४८०	तत् क्षुभ्येयु लोकेषु	३४ २३a	तत् प्रातो मुनि-गणो	३६ ६६०
तच्छ्रुत्वा वचनं देव्या []	२० १५a	तत् पततिनिर्वीरो	७ ११a	तत् प्रीत्या सुरानाह	२८ ४५a
तच्छ्रुत्वा वचनं धीमात्रं	६४ ५६a	तत् पपात देवस्य	१ ६६a	तत् प्रतापित्ता	५३ २३a
तच्छ्रुत्वा सहस्रोत्थाम	२८ ४३a	तत् पपात देवेश	६ ३०a	तत् प्रीवाच भगवान्	६ ८५a
तच्छ्रुत्वा सुतरा शसो	३२ ४३a	तत् पप्रच्छ कुटिला	३१ ३०a	तत् प्रीवाच वचन	७ ४७०
तच्छ्रुत्वाऽन्य वधो धोर	४० २५a	तत् पप्रच्छ स मुनि	३६ ६a	तत् प्लवङ्गमो वृक्ष	३६ ४६a
तच्छ्रुत्वाऽथ ह्रीर प्राह	४३ १४५a	तत् पर्यचरच्छ्रुतो	३६ ७०a	तत् स मातापितरौ	३१ ४८a
सञ्जात केसरारण्य	६ ६६०	तत् पश्यत्यु देवेषु [गग ^०]	८ १०a	तत् गभु क्षमावत्य	२८ ६४०
सञ्जातस्तनवो मेवो	३५ ४४०	तत् पश्यत्यु देवेषु [महा ^०]	४२ २४a	तत् शकुनिना पाणिर्	३६ १६३०
सञ्जानुषुम महिषापुरेन्द्र	२० १२a	तत् पश्यन्ति हि गणा	४१ ४५a	तत् शक मुर्दे सार्धे	२८ ३७a
सञ्जावनिवच युत्वा	३६ ८६a	तत् पारिप्लव गच्छद्	स मा १३ १७a	तत् शकोऽश्वक्रीडत्या	स मा २० १८०
सञ्जावस्युदित श्लोकम्	३८ ४२०	तत् पिता पादयन्मा	६४ ६२a	तत् शतसिम् तत्रेव	३६ ३६०
सञ्ज्योतिस्तैश्चस्तेषा	१६ ७a	तत् पितामहं श्रुद्ध	२५ १२a	तत् शरण्य शरण्य जनाईन	५२ ४३०
तत् सयचिद् भगवान्	४४ २६a	तत् पितामहो देव	६ ७३a	तत् शरी दक्षिभिरकुर्वीर	३१ ८८a
तत् सदाचिप्रमार्थे	२८ ६०	तत् पितृत्वभाषन्ने	१५ ४६a	तत् शापापनोद्ध तु	५६ ११४०
तत् सपाली लोके च	३ ४६a	तत् पीते तेजसि दै	२८ ५१a	तत् शाकुकिनी गत्वा	स मा १३ २२a
तत् सपिबर प्रातो	३६ १२८a	तत् पूषा हर धीर्य	५ १०a	तत् शीघ्रतर ांसो	३६ ४४a
तत् सकरतले ह्रद्	३ १a	तत् वृषदक गच्छद्	स मा १८ १६a	तत् शीतवन गच्छद्	स मा १४ ४४०
तत् सन परित्रयस्य	५२ ५४०	तत् प्रष्टुह्य केवेषु	१८ ४७a	तत् शुभे हर्म्यतले हिरण्ये	२७ १६a
तत् सनर्षवाद् भुङ्क्ते	स मा २२ ७६a	तत् प्रजाना बहुल्यमो-ज	४४ ५००	तत् सुम्भो निज हूत	२६ २६a
तत् सानुभवमानस्य	४४ ६a	तत् प्रगम्यं चरणौ	स मा ३ ३७a	तत् शेषो महानागो	स मा ६ ४३a
तत् सानेन महता [उमया]	स मा २२ ४५a	तत् प्रगाथं स विभ	५६ ११७a	तत् शैलपति प्राह	२६ ४३a
तत् सालेन महता [तेजसा]	स मा २४ १६a	तत् प्रगम्यं मुचिर	६६ ११a	तत् शोकेन महता	स मा २६ ३६a
तत् सालेन महता [भद्रुप]	स मा २६ ५६a	तत् प्रतापिना ब्रह्मन्	६५ ३२a	तत् श्रुत्वा तु वचन	स मा २६ ३६०
तत् सालेन महता [श्रावयो]	५३ १२a	तत् प्रत्युदति तनां	१६ ५३a	तत् श्रोत्र्यस्य सद्युष्टा	स मा ४ ६a
तत् सानुमनो बन्धश्च	४३ १८a	तत् प्रयुटो सुसुख महावज्रो	२ ५२a	तत् सनुभिता सर्वा	६ ६३a
तत् सारुवा स भगवान्	५२ ५२०	तत् प्रविष्ट प्रसमोऽथ गडु	२७ ३०a	तत् सानोभमाश्रो	स मा १० ३६०
तत् सारुवचुद् द्या	स मा २८ ४६a	तत् प्रवृत्त सपागे	३० १a	तत् सानामतोयेन	५३ ५३a
तत् सारुवाऽन्य ब्रह्मा	स मा ६ ३६a	तत् प्रवृत्तो यशसु	५२ ४१a	तत् सानुजितो घट	२६ १a
तत् सारुवामाश्रो	४४ ३२a	तत् प्रवृद्ध सुतराम्	१६ ६a	तत् सानुजितोऽपार्धर	२२ ४४a
तत् सारुव चतमस	१० ४a	तत् प्रवृद्धो नन्दग	स मा २१ १२०	तत् सानुज्य देवेन [पच ^०]	१८ २०a
तत् सारुवतमाविष्टा []	स मा २६ १६०	तत् प्रवृद्धमनस	स मा ६ १००	तत् सानुज्य देवेन [त्वरया]	३८ ६२a
तत् सारुवत त्रिवेदस्य	४ १८a	तत् प्राणद् वर ब्रह्मा	२८ २०a	तत् सानुज्यमागतौ	२६ १६a
तत् सारुवामिभूतेन [वीर ^०]	४ ५५a	तत् प्रियाऽभूद् भार्याया []	५३ ८२०	तत् सानुज्य विधिना	२६ ६५a
तत् सारुवामिभूतेन [वक्र ^०]	५ ८a	तत् प्रीत प्रभु प्राणाद्	५६ २२a	तत् सानुज्य विधिना	२६ ६५a
तत् सारुवामिभूतेन [वृष्णा]	५ १७a	तत् प्रीता गिरिमुता	२८ ७००	तत् सानुज्य विधिना	२६ ६५a
तत् सारुवामिभूतेन [भ्रातृना]	१६ ३८a	तत् प्रीतास्तु सितरम्	२४ ६०	तत् सानुज्य विधिना	२६ ६५a
तत् सारुवेन महता	स मा ३८ २६०	तत् प्रीतिपुत्रो रश्ः []	३१ ४१a	तत् सानुज्य विधिना	२६ ६५a
तत् सारुवेन देवत	२७ २०a	तत् प्रीतेन मनसा	३६ १५५०	तत् सानुज्य विधिना	२६ ६५a

ततः स देवीगणमध्यसरित्त	३३.३५३	ततः सुराणां वचनात्	२२.२५३	तद्वस्तं पठितं दृष्ट्वा	२६.६५३
ततः स पतितो लिङ्गो	६.६७३	ततः सुरा दिवं जगुर्द्	३६.३८०	तद्वस्तं यज्ञवाटं तु	५.२३३
ततः स पित्रा ब्रह्मेन	६५.४८३	ततः सुरान् ब्रह्महृदीन्द्रमुख्यात्	२७.६२५	तद्वस्तं वीष्य देवेना	३६.३३
ततः ससंपद्य प्रोचु	२६.६२५	ततः सेनापतिर्दिव्यो	२०.३७३	तद्वस्ततः मितिः खेदात्	स मा ७.१५०
ततः स प्रहितं पित्रा	३८ ६७३	ततः सोऽप्येव ता बालां	३७.६६३	तद्वस्तस्तः षीन्वमतुलं	३२.६५३
ततः स बालवस्तेषां	३१ ३६५	ततः श्रुत्वा देववरंशुभेन्द्रम्	१६.२१५	तद्वस्तस्तदभुततमं [श्रुत्वा]	१ ७२५
ततः ससहस्रादीर्घैः	स.मा.१६ २०	ततः स्तोत्रं समाख्यो	स मा.२३.४३	तद्वस्तस्तदभुततमं [दृष्ट्वा सर्वे]	५१.-१.३
ततः स गत्याऽङ्गीतम्	३४.३१५	ततः स्वयंश्रुयत् दृष्ट्वा	स मा.२५ १२०	तद्वस्तस्तदभुततमं [दृष्ट्वा स]	५१.५२०
ततः सपानम्भमुत्तमं हि	१०.३५०	ततः स्नाताभ्यं कृत्तिनयाम्	३६.१८०	तद्वस्तस्तदभुततमं [दृष्ट्वा स]	५१ ३८५
ततः सपानार्धं मायुदेने	६४.११५	ततः स्नाताभ्यं वे सर्वे	स मा १४.५५०	तद्वस्तस्तदभुततमं निरीक्ष्य	३०.२७५
ततः सपानात्पौत्रा	३.२५	ततः स्नाताभ्यं विधिवत्	५६.१७५	तद्वस्तस्तदुक्तं बलिना	५८ २७५
ततः स मातापितरौ	३५ ४८५	ततः स्नात्वा सपुत्रीणां	६२ १८०	तद्वस्तस्तर्षितं पार्षण्या	२८.१५३
ततः समाराध्य विभुं सुराधिप	६६ १६५	ततः श्रुत्वास्त्रानि शिरः परेण	१४ १५३	तद्वस्तस्तमप्रतो दृष्ट्वा	६.६५३
ततः सभुवःशय विचिन्त्येत	१४.२६५	ततः स्वदेहो देवान्	५४.७५३	तद्वस्तस्तमादाय सुतं	६४.५७३
ततः स मे शिरः प्रादात्	२३.३२०	ततः स्वपतरं दृष्ट्वा	५०.१०५	तद्वस्तस्तमूत्रमुनयो	२६.२०५
ततः स उग्रयामात्	स.मा.२६.२३०	ततः स्वबलमोर्ध्वेन	३२ ८१०	तद्वस्तस्तस्मात्पुत्रवत्	५६.६०५
ततः सख्यतोऽपि दाता	स मा.१६.२२५	ततः स्वर्ं समारभ्यं	३६.७३	तद्वस्तस्तस्मान्महातीलं	२७.५१
ततः स षड्मास्याहं	स मा.२६.५१५	ततः स्वर्षं सहस्रातो	५२.८८३	तद्वस्तस्तस्मिन् महाऽग्ने	२७ ५३
ततः सर्वे प्रवृत्तं च	स मा.१७ ६५	ततः स्वस्वपीठार	३३.१७५	तद्वस्तस्ता मयुषोऽपि वाणी	३६.३५३
ततः सर्वविदम्बयो	२२.४०५	ततः स्वस्वस्वमातभ्य	५३.१५	तद्वस्तस्तां चारयामासुर्	५६.६६५
ततः सर्वे महात्मानसु	२६.१८५	ततः स्वस्वस्वमातभ्य	५४.५१५	तद्वस्तस्तां सिचिषु राक्ष्य	३०.५६५
ततः स विद्विषो भूत्वा	स मा १८.१२०	ततः स्वस्वस्वमातभ्य	५४.५१५	तद्वस्तस्तां देवतां सवा[.]	स मा २६.५५०
ततः स विद्विषोऽपि सर्वान्	७१.१७५	ततः स्वस्वस्वमातभ्य	५४.५१५	तद्वस्तस्तां देवतां सवा[.]	७ ४८३
ततः सस्यो भूयो राजा	२३.३१०	ततः स्वस्वस्वमातभ्य	५४.५१५	तद्वस्तस्तां देवतां सवा[.]	स मा.६.७५
ततः स ह्यवर्षतो	५३.१६५	ततः स्वस्वस्वमातभ्य	५४.५१५	तद्वस्तस्तां देवतां सवा[.]	६.६६०
ततः स चारुवर्षाङ्गो	३७ ४८०	ततः स्वस्वस्वमातभ्य	५४.५१५	तद्वस्तस्तां देवतां सवा[.]	५४.७७५
ततः स देवदेवेनां	३८.५१५	ततः स्वस्वस्वमातभ्य	५४.५१५	तद्वस्तस्तां देवतां सवा[.]	६४.२८५
ततः स वीचरुषोऽग्नी	६४.७५३	ततः स्वस्वस्वमातभ्य	५४.५१५	तद्वस्तस्तां देवतां सवा[.]	१० ३०५
ततः स प्रादुर् तमूषि	३७.७५३	ततः स्वस्वस्वमातभ्य	५४.५१५	तद्वस्तस्तां देवतां सवा[.]	५४.५१५
ततः स मनसा देवं	३५.२१५	ततः स्वस्वस्वमातभ्य	५४.५१५	तद्वस्तस्तां देवतां सवा[.]	२६.७०५
ततः स वामोऽपि हां तु	स.मा.१३ ५६०	ततः स्वस्वस्वमातभ्य	५४.५१५	तद्वस्तस्तां देवतां सवा[.]	३६.५५३
ततः स हावर्षावट	स मा.१६.३०३	ततः स्वस्वस्वमातभ्य	५४.५१५	तद्वस्तस्तां देवतां सवा[.]	१६.२५५
ततः सुकेतिर्देवैः	१६.१५	ततः स्वस्वस्वमातभ्य	५४.५१५	तद्वस्तस्तां देवतां सवा[.]	१६.८५
ततः सुकेतिवचनात्	१६.५३	ततः स्वस्वस्वमातभ्य	५४.५१५	तद्वस्तस्तां देवतां सवा[.]	१८.१५३
ततः सुतोषं त्वास्या च	५३.७३	ततः स्वस्वस्वमातभ्य	५४.५१५	तद्वस्तस्तां देवतां सवा[.]	६.६५५
ततः सुतोषं त्वास्या च	३२.२६५	ततः स्वस्वस्वमातभ्य	५४.५१५	तद्वस्तस्तां देवतां सवा[.]	१६.५८५
ततः सुदेवतनयो	३६.१२५५	ततः स्वस्वस्वमातभ्य	५४.५१५	तद्वस्तस्तां देवतां सवा[.]	६.मा.२०.२६३
ततः सुराः सप्तैव	३६.२५५	ततः स्वस्वस्वमातभ्य	५४.५१५	तद्वस्तस्तां देवतां सवा[.]	११.५५५
ततः सुराः सप्तैव	२८.१२५	ततः स्वस्वस्वमातभ्य	५४.५१५	तद्वस्तस्तां देवतां सवा[.]	२५.६५
ततः सुराः सप्तैव	८.६५	ततः स्वस्वस्वमातभ्य	५४.५१५	तद्वस्तस्तां देवतां सवा[.]	२२.१६५
ततः सुराः सप्तैव	८.६५	ततः स्वस्वस्वमातभ्य	५४.५१५	तद्वस्तस्तां देवतां सवा[.]	७.२६५

श्लोकार्थसूची

सदस्तु तदयम् सर्वे	४६.१६०	सदस्ते पितरः प्रीताः [ः]	स.मा. १४.३०	ततो गच्छेत् सोमस्य	स.मा. १६.१५०
सदस्तु तद्वर्षं देव्या	२६.६२०	वत्सले मुनयः प्रीता [सर्]०	स.मा.१६.२००	ततो गच्छेदवरकं	स.मा. २०.२४०
सदस्तु तस्या वृद्धा	२५.६००	वत्सले मुनयः प्रीता [सर्वेषु]	५७.३१६	ततो गच्छेद् द्विजश्रेष्ठा	स.मा. २१.१००
सदस्तु सा तपः तदा वक्ष्स्वी	२०.१०	वत्सले मं निनःसदस्तु	६.६००	ततो गच्छेत्कुसितो	३४.४००
सदस्तु तेनाप्रतिपौरुषेण	५६.४२३	सदस्ते राक्षसा सर्वे	स.मा. १६.४३३	ततो गच्छानामधिप	४३.२००
सदस्तु तेनाप्रतिपेन साविता	३२.८२०	सदस्ते योगिणः सर्वे	स.मा. १६.२५३	ततो गच्छानामधिप	५२.२००
सदस्तु स्वर्ति०श्यागाद्	३८.४६०	सदस्तिवृद्धं गिरिमविपुलं	५७.६६०	ततो गच्छेत् वत्सध्वजस्तु	५२.३५०
सदस्तु देवप्रवरं जटावरे	२६.१६०	सदस्तिनैव स्वा सम्भवा	४३.६६०	ततो गते वन्द्ये द्वे	२५.२१०
सदस्तु देवप्रवरं महेश्वर	४.५७०	सदस्तिनेनस्य गत	२.३५०	एषो गतेषु देवेषु	४६.१५
सदस्तु देवा महिषेण निजिता	१६.१०	सदस्तिनेनस्य सप्तद्वारिन्ति	२.३५०	ततो गच्छात् युक्त्वा ता	४३.८००
सदस्तु देवं सगर्गं	४३.६८०	सदस्तिनेनो गिरिजां	४४.८००	ततो गच्छात् पर्युच्छत्	३६.५४०
सदस्तु देव्या बनिनो महापुत्रा []	२१.३८०	सदस्तिनमुनते ब्रह्मन्	१६.८३	एषो गच्छात् सत्सुच्छेष्टा	स.मा. १६.६०
सदस्तु देवीनं वराकामिना	७.६२०	सदस्तिनविपुलं गच्छेद्	स.मा. १५.४१६	ततो गदाधरः प्रीतो	५०.२२०
सदस्तु देवीो महिषापुरेण	२०.२१०	सदस्तिनवायुद् देवी	३१.८५०	ततो गमन्महादेव	३६.५५०
सदस्तु धनुःपादाय	४.२३०	सदस्तिनस्यैति महापुत्रपरो	६.६००	ततो गिरिस्ता देव	४२.७०
सदस्तु पूषा विहस्य	५.१६०	सदस्तिनरात्रके सोके	स.मा. २६.१७०	ततो गिरीयः स्वा भार्या	२६.५००
सदस्तु फाल्गुने मासि	१७.४६०	सदस्तिनस्यैति महापुत्रपरो	११.३६०	ततो गिरीयः दत्तः	२८.१०
सदस्तु भगवाञ्जाल्वा	१६.३४०	सदस्तिनस्यैति सीधे	स.मा. १८.१०	ततो गुह्यं प्राह हिरं गुरेण	३२.११३०
सदस्तु मन्वा देवाय	४२.१५१०	सदस्तिनस्यैति सीधे	स.मा. १८.११०	ततो वृद्धीस्ता बनिता	३८.७०
सदस्तु रक्ष दशकृत्	१६.३६०	सदस्तु ऋतस्य प्राह	३६.१०४०	ततो गच्छेत्पुनः मही सञ्जला	५२.४२०
सदस्तु रोद्रे सुरदेवमादने	६.४१०	सदस्तु ऋतस्य प्राह	३६.१३१०	ततो गच्छेत्पुनः मही सञ्जला	५६.५४०
सदस्तु वसतस्तस्य	१८.६००	सदस्तु ऋतस्य प्राह	३६.१३१०	ततो गच्छेत्पुनः मही सञ्जला	६०.६८०
सदस्तु शारिष्यान्वतो	४२.३४०	सदस्तु ऋतस्य प्राह	३६.१३१०	ततो गच्छेत्पुनः मही सञ्जला	६४.८२०
सदस्तु शोषं प्रजगाम रक्त	३०.३००	सदस्तु ऋतस्य प्राह	३६.१३१०	ततो गच्छेत्पुनः मही सञ्जला	६८.९६०
सदस्तु सौचार्यमुपाहरेभ्युर्द	१४.३१०	सदस्तु ऋतस्य प्राह	३६.१३१०	ततो गच्छेत्पुनः मही सञ्जला	७२.१००
सदस्तु पच्छेद्गुनि पारिषेन	४६.१३०	सदस्तु ऋतस्य प्राह	३६.१३१०	ततो गच्छेत्पुनः मही सञ्जला	७६.२४०
सदस्तु सकुले तस्मिन्	६.३५०	सदस्तु ऋतस्य प्राह	३६.१३१०	ततो गच्छेत्पुनः मही सञ्जला	८०.३८०
सदस्तु सर्वं कर्मसु	३६.१०६०	सदस्तु ऋतस्य प्राह	३६.१३१०	ततो गच्छेत्पुनः मही सञ्जला	८४.५२०
सदस्तु सारं चार्पं	२१.२७०	सदस्तु ऋतस्य प्राह	३६.१३१०	ततो गच्छेत्पुनः मही सञ्जला	८८.६६०
सदस्तु सहास्येरेण	३६.२५०	सदस्तु ऋतस्य प्राह	३६.१३१०	ततो गच्छेत्पुनः मही सञ्जला	९२.८००
सदस्तु सुविराज्छरं	२५.३८०	सदस्तु ऋतस्य प्राह	३६.१३१०	ततो गच्छेत्पुनः मही सञ्जला	९६.९४०
सदस्तु धनुर्व्यस्य	३८.७४०	सदस्तु ऋतस्य प्राह	३६.१३१०	ततो गच्छेत्पुनः मही सञ्जला	१००.०८०
सदस्तु शिष्यावाद्यत	३०.४८०	सदस्तु ऋतस्य प्राह	३६.१३१०	ततो गच्छेत्पुनः मही सञ्जला	१०४.२२०
सदस्ते ऊचुःसुहृद्वा	३६.१३०	सदस्तु ऋतस्य प्राह	३६.१३१०	ततो गच्छेत्पुनः मही सञ्जला	१०८.३६०
सदस्ते कृत्स्नं सर्वं	स.मा. २६.१८०	सदस्तु ऋतस्य प्राह	३६.१३१०	ततो गच्छेत्पुनः मही सञ्जला	११२.५००
सदस्ते कृत्स्नं सर्वं	स.मा. २६.२००	सदस्तु ऋतस्य प्राह	३६.१३१०	ततो गच्छेत्पुनः मही सञ्जला	११६.६४०
सदस्ते कल्पयामासुः	स.मा. २१.४०	सदस्तु ऋतस्य प्राह	३६.१३१०	ततो गच्छेत्पुनः मही सञ्जला	१२०.७८०
सदस्ते नतिद्वयेन	३६.४४०	सदस्तु ऋतस्य प्राह	३६.१३१०	ततो गच्छेत्पुनः मही सञ्जला	१२४.९२०

ततोऽय तीर्थे कुम्भाभ्रे	२५.५१०	ततोऽपि च गतिं पान्ति	६७.५४०	ततोऽप्यत्रः सार्वतोऽम्बुपयाद्	१०.५१०
ततो दद्याधर्मं गत्वा	स.मा.१३.२१९	ततोऽपि चन्द्रारतु रथं	५३.१५८	ततोऽप्यत्रो मासतत्रमासतत्	१०.५४३
ततो ददर्श गच्छ	२६.७५४	ततो घुम्बुद्विबाष्या	५२.३८३	ततोऽप्येभ्यं समातिष्ठस्य	३८.५८३
ततो ददर्श देवामा	३८.५६३	ततोऽनङ्गं विभ्रुहृष्ट्या	७ १९	ततोऽप्यवावन् देविया[]	३३.३१९
ततो द्दुः प्रीतिवृता	६२.५४०	ततो नदीपु पुष्पापु	६ ३२९	ततोऽप्युच्छद्विप्रोऽगौ	६५.५८३
ततो दन्तो ग मृङ्गाम्या	१०.२६९	ततो ननाम भगवात्	२७ २१९	ततोऽपरो योजनकोटिना वै	५२.२२९
ततो ददापु पूर्णपु	३१.२०३	ततो ननाम विरसा [वत*]	५३.७१९	ततोऽपरो योजनकोटिनिरतु[पद्*]	५२.२३९
ततो द्दपु मात्सेपु	३६.१५३०	ततो ननाम विरसा [घन]	५०.३३	ततोऽपरो योजनकोटिनिरतु[निप*]	५२.२४९
ततो द्दपु भयैपु	६५.५०३	ततो ननत् हृदिनिङ्ग	६ ७५३	ततोऽपि गार्हिष्ठ दृष्ट्वा	स.मा.१६.२०३
ततो द्दपु चोरं	६.५८३	ततो नरपति पुत्रं	२३ ७३	ततोऽप्यत्र वपिचरं	३८.३५३
ततोऽपि वप्यप्रभ	स.मा.४.१४३	ततो नरपतिहृष्ट्या	२३.५३	ततोऽप्यत्रमुत्ता तन्वी	३६.१२६३
ततो दितोय सगद समाद्वत्	७.६५३	ततो नरस्त्वाजगण हि वारम्	७.५४३	ततोऽप्यत्र देवेभ्य	३६.३२६
ततो दितोश्चर श्रीमान्	७.५२६	ततो नरो बानगणैरवाः	७.६०३	ततोऽपि भस्मते पुष्ट्यौ	३६.३६३
ततोऽदित्या सह सुध	ग.मा.३.७१	ततो नागरिको सोको	५३.५१९	ततोऽपि भिन्नमदुः	३६.३६०
ततो दिवाकरं भूय	१६.५६३	ततो नाम महादेव्या	३०.१७३	ततोऽपि द्विगुणः प्रोक्त	११.३८०
ततो दिवाकरा सर्वे	५.२१९	ततो नारायणं दैत्यो	८.७३	ततोऽप्यनुष्यत दितिर्	५५.३५३
ततो दिवाकरं सर्वैर्	२५.६३	ततो नारायणो दृष्ट्वा	६ २२६	ततोऽप्यत्रपती धार्वं.	२६.१३६
ततो दिवाकरो चाधि	१७.१४३	ततो नारायणो देवो	८.२५३	ततोऽप्यत्रपती वातीम्	२६.१३६
ततो दिव्यवपुर्मुखा	५८.७५३	ततो नारायणगञ्जं	८.१२६	ततोऽप्यत्रपद्येभ्यतराद् हि वाणान्	७ ५६०
ततो दुःखाना स तदापुको मुने	३३.५७३	ततो निःसृतमालोचय	६ १२६	ततो बहुतिथे बाले [समाप्ते]	५०.६३
ततो दुरारपयन्त	६२ ११९	ततो निमग्ना दक्षु	६२.८३	ततो बहुतिथे बाले [सा प्राहौ]	५६.३४०
ततो दृष्टोऽस्मि नृवतीर्	६५.८०३	ततो निरुत्तर स्वर्गं	स.मा.२५.७३	ततो बहुतिथे बाले [सा राजो]	५६.५१०
ततो देव प्रसन्नात्मा	स.मा.१७.२००	ततो निराहृता देवा	२२ ११९	ततो बहुत्वर्षगणान्	३६.५६३
ततो देवपतिप्रके	२८.४०	ततो निर्वदसंमुक्तो	५३.८००	ततो बाणगणैर्दैत्य	२१.५३
ततो देवा सगन्धर्वा[]	स.मा.१५.३०३	ततो निरिन्धियरे वीरा	५ २५३	ततो बाणैरवच्छाद्य	५५.१३६
ततो देवा समाजगुर्	२५ २५३	ततो निवारितो यक्षैर्	१८.६५३	ततोऽप्यवीच्य विरजा	३७.३६३
ततो देवा सर्व एव[क्षप*]	स.मा.२३.३५३	ततो निवृत्तय दैत्येभ्य	८.५३	ततोऽप्यवीच्यस्वस्तु	५०.८३
ततो देवा सर्व एव[ब्रह्माण]	स.मा.२४ ८३	ततो निदचेरुत्प्रा	५३ १५२३	ततोऽप्यवीच्य पतानेव	१६.५६३
ततो देवा सर्व एव [इद]	स.मा.२४ ६३	ततोऽनुकृपयवित्तो	१६.१५३	ततोऽप्यवीच्युत्पत्ति	३६ ५६३
ततो देवाय दाय्याया	१७ २१९	ततोऽनुकृपयोग-मभुसूदतस्य	१६.६३	ततोऽप्यवीच्य सुरपतिर् [नेय]	२५ ८३
ततो देवे पुनर्हृत्वा	स.मा.२५.२०३	ततोऽनुकृपु सङ्घा	३६.१६१९	ततोऽप्यवीच्युरपतिर् [धर्म]	२६ ८३
ततो देवो महात्माऽसौ	स.मा.१५ ३१९	ततोऽनुकृपवैतथेष्ट	३६.१०६०	ततोऽप्यवीच्युरपतिर् [विषेयं]	३५.३६३
ततो देवो मुनि दृष्ट्वा	स.मा.१७ ११०	ततोऽनुकृपयमि कराशतोर्धं	३६.५६३	ततोऽप्यवीच्युरपतिर् [एहोहि]	३६.३४३
ततो देव्या स दुःखत्मा	३३.३८०	ततोऽनुकृपयमान	३६.६३	ततोऽप्यवीच्यो हृष्टा	६५ १६३
ततो दैत्य समुत्पात्य	५२.८७३	ततोऽनुकृपयवतस्य	६५.०००	ततोऽप्यवीच्यो निरिमुता	५० ५०३
ततो दैत्यपति विष्णु	८.८७३	ततोऽनुकृपु भुञ्जं नमर सचण्ड	२०.१६३	ततोऽप्यवीच्यो ब्रह्मन्	२७.५८३
ततोऽपि मुनी समस्य चंभु	२७.६६३	ततोऽनुकृपयानु	२३.३०३	ततोऽप्यवीच्यो रभो	१८ ५०३
ततोऽपि मुनि महाशैल []	२६.५२३	ततोऽनुकृपयानु	६५.७०३	ततोऽप्यवीच्यो रभो	२५.१३६
ततो द्विजनिमुक्ताया	५८.३२३	ततो नृपतिचारुतो	स.मा.१६ ७०	ततोऽप्यवीच्यो रभो	३७.३८३
ततो द्वितीयेऽह्नि कृताप्रणामा	५०.३८३	ततो नृपतिचक्र तु			
ततो द्वैतवच नाम	२३.१२३				

ततोऽत्रवाप्यारस्त	स मा २६ २६B	ततोऽमरान्ब्रह्मणे निवास्ति	५२ १६A	ततो बणिक्नुवायादी	५३ ३५B
ततोऽमनीम्ब्रह्माभा	स मा १६ २५C	ततोऽमरा भूमिश्वा समुत्ता	५५ २३B	ततोऽजोर्मिं समार	२८ १२B
ततो ब्रह्मा चिर ध्यात्वा	स मा २३ २३B	ततोऽमरावतीं बृह	३४ ३६B	ततोऽश्वत्थवामात्र	२६ ६A
ततो ब्रह्माचरोत्सा हि	२५ २७A	ततो मह्ययो हृष्टा	४ ४०A	ततो दर विरिक्तुता	२८ २२B
ततो ब्रह्माचरोदी देवान्	२५ २७B	ततो महा मा हास्यद	२ २५A	ततो वराहवैगंननायकेन	४ ३०A
ततो ब्रह्मा सुरपति	१६ ५७A	ततो मह वचनात्	४१ २B	ततो वप गत देवी	२८ १७B
ततोऽनुवत्ये गन्धर्वा []	४३ १२६A	ततो महेऽवास्यान्वे	२७ ५६B	ततो कास्यहृत्तान्ने	८ ३२B
ततोऽनुवत् इति कथयता	३१ ४२A	ततो महोत्तर श्रोतो	२६ ६८B	ततो कर्ष्य भगवान्	स मा २४ ११B
ततोऽनुवत् दरकनदा रिताः	१० ४६A	तता माश्वक् चर्या	६ ८A	ततो कर्मणे सपात्रे	स मा २८ ३१A
ततोऽभवच्चक्रेकण्यो	४१ ५०A	ततो मामत्रवीक्षततो	३८ २६A	ततो वसन्ते सपात्रे	६ ६A
ततोऽभवच्चक्रेकण्यो	४३ ६२A	ततो मत्सिप वानो	स मा ६ १३	ततो वसिष्ठाय दिवाकरेण	२२ ४६A
ततोऽभवन्नान तदेधरस्य	१ ३०C	ततो मुञ्जवट नाम	स मा १३ ३८C	ततो वाप्य मुनि प्राह	३६ ६०B
तता नरमसतात् तत्तान्	स मा १७ १६A	ततो मुनेस्तस्य शोभाद	स मा १७ ४A	ततो वामनाक गच्छद्	स मा १३ ६४C
तताभिदिवतसूर्वा	६४ ६२C	तता मुनास भगवान्	२८ ५०B	ततो वायुपया मुक्त	१६ ४६A
ततोऽभिपितस्य हर	३१ ६०B	तता मुत्तरिपवन	३६ १७	ततो वायुत्तरिच	स मा २६ ४१C
ततोऽभिपित्तो दत्तेन	६ २C	ततो मुत्तरिपवन	२४ ४A	ततो विषट्कणोऽनी	५२ ७८C
ततो भूतोऽपिाचाश्र	स मा १६ २४C	ततो मुहूर्तानुपति द्विया युत	४६ ११B	ततो विष्णोऽवचनात्र	४२ ६B
ततोऽभूत्कामवशात्	३३ १६A	ततो मृगाव्यानेपाद्	२२ ३०B	ततो विचरता तेन	३३ १८B
ततो भूय सरस्वत्याम्	५७ ३४A	ततो मूत्ररसास्यादाद्	४७ ३३A	ततो विज्जिहामरतीभ्यमुप	१० ५५A
ततो भूय सरस्वत्याम्	स मा २२ ३१A	ततो मूत्ररसनाद् वृत्	३६ ४७B	ततो विनिमित्तं गान्मुद	२ ३०B
तता ब्रूा कामार्गेवितुक्षो	६ ५७C	ततोऽम्बरततो धोष	४२ २२A	ततो विभ्यावती प्राह	६७ ७A
ततोऽभ्यगाद्युष्मत्सभरन्तु	३२ ८६A	ततोऽम्बरततो देवा	४२ २२B	ततो विषायास्तान्नि	४६ २६B
ततोऽभ्यागाद् दुःखावा	६४ २६A	ततोऽम्बराद्वाजिबट पयात्	३३ ७C	ततो विपुष्यन्ति सुरा	१७ २७B
ततोऽभ्यागाद् देववती	३६ ३०A	ततोऽम्बरे रनिपातो	८ ८A	ततो विवाहे निवृत्त	२७ ६०B
ततोऽभ्यागाद् महादेवा []	२४ ३४C	ततोऽम्बरा केऽविकर्षणाकुल	३० २६A	ततो विवेगं गणपो	४ ३६B
ततोऽभ्येय वणा सर्वे	४१ १६A	ततोऽम्बरा प्राह हर	३१ ३६A	ततो विषासो रीगे	४७ ३०A
ततोऽभ्येय वानुरभेष्टौ	२६ २४B	ततोऽभ्विकायास्तस्य वनमुण्डया	२६ ८८A	ततो विस्तर्जनामास	३७ २८A
ततो भ्रातृरि नष्टे च	१८ ४६A	ततोऽभ्विकाया हरगुले	२७ ४८B	ततो विहृत्य श्रोवाच	६४ ३६C
ततो मन्दरपुष्पेऽनी	२ ६A	ततोऽभ्विनो सप्तसमुन्वाहितो-	३१ ५५A	ततो विहृत्य भगवान्	७ ४A
ततो मन्त्रमागम्य	४३ १४६A	ततोऽभ्विनव पनाग	स मा १४ ४२A	ततो विहृत्याह गृह	३२ ८A
ततोऽभ्यवत् क्षारपिद्	३८ ५५A	ततो वनाशासनं करिष्ये	४८ ५०C	ततो वीद्या मुञ्जे निष्य	३४ ८A
ततो मयाऽभ्य गन्त	२३ २६A	तता याति पर ब्रह्मा	स मा १८ २C	ततो वाटा विदार्यैव	३५ ६A
ततो मयोक्तुं स भ्राता	५२ ६३B	ततो रगेऽश्रुत् युद्धव	६ ३१A	ततो वृष्णत्र हृष्टा	६ १७B
ततो मयोक्तो नैवास्मि	२६ ४३A	ततो राव्येऽभिपिक्तु	२३ ८A	ततो वेपेन महता	५ १३B
ततोऽमरगणेश्च	४३ ६८C	ततो रातो नृभिर्पौरैः	५३ ४६C	ततो वैवस्वतो दण्डे	१० ५A
ततोऽमरगणेश्च	२८ ३०A	ततो रामहृद् गच्छद्	स मा १४ १६	ततो व्यतीते शरदि	२ ७A
ततोऽमरगणेश्च	४२ ८A	ततोऽमरतस्य पत्नी	४६ ५C	ततोऽभ्यावात्या स हरिः	३६ २३A
ततोऽमरा ग वृत्तना यास्विनी	४७ २५A	तता रोचनया देवम्	३६ ११C	ततोऽभ्यापात्र ते सर्वे	स मा १४ ५२A
ततोऽमरा ग रजनी	१७ १२C	ततोऽभ्येय देवनेपम्	६५ ४B	ततोऽभ्यासन गच्छद्	स मा १४ ५५A
ततोऽमरा ग वचनाद्	२८ ३६A	ततोऽभ्येय सा सन्धी	६५ ८८C	ततोऽभ्यासयती नाम	स मा १४ ५८A

सतो वते सुराभ्रीर्णे	३६ १६३	सकथ सर्वंग ब्रानम्	स मा ६ ८०	सत्र तप्यन्ति हि तप	४६ २८३
सतो सुरगनाना च	४३ ४७३	सकथिभ्याम्बह रसो	४६ ४६०	सत्र तीर्थं महास्वात	स मा १६ ८०
सतोऽमुचपति म्ल्ल	६७ १००	सत् कर्त्तव्यमाङ्गुन	१४ ४३०	सत्र तीर्थं सुखिध्यात	स मा १८ ३७३
सतोऽमुच शस्त्रपरा	२१ ३६३	सकथन्त्या तपस्तप्त	१६ १६०	सत्र तीर्थंभीशनस	स मा २१ २४०
सतोऽमुच यथाकाम	४२ १८३	सकथिभ्योऽपि शिवमेव तप्य	३२ ६०३	सत्र तीर्थेवर चान्यत्	स मा १४ ४६०
सतोऽप्री ना समादाय	३८ ३६३	सत् किमर्थं निवसते	४० ४४०	सत्र तीर्थेवरे स्नात्वा	४४ १४३
सतोऽस्मि वेगाद् बलिना	३६ ४१३	सकथिभ्यमपरास्मैताम्	२४ ४६३	सत्र तीर्थसहस्राणि [कृषिभिः]	स मा १२ ३३
सतोऽस्मि कन्यामास	४२ ३१३	सकथुष्ण ज्यो येन	२२ १४०	सत्र तीर्थसहस्राणि [विगतम्]	४७ २३
सतोऽस्य सुष्टो वरद	३४ ३२३	सत् केन पूर्वमपरावै	४६ १०	सत्र तीर्थानि मुनिना	स मा १४ ४२०
सतोऽस्यो वैश्वदे	८ १४३	सकथाम्यता सत ममापरावा	४१ ४२३	सत्र तीर्थं नर. स्नात्वा	स मा १६ ४३
सतोऽस्य गन्धो कुविगेन तूर्णे	४२ ४८३	सकथिना सत्सो मध्ये	स मा २८ ३३०	सत्र त्वा तररादूर्णा []	६४ ४६३
सतोऽस्य प्राप्यवच्छुक्	४६ ७३३	सकथिना विनय यातु	४६ ६४०	सत्र दान द्वितीयाया	१७ २८३
सतोऽस्य मुदिस्त्रमा	२३ १०३	ससद् मुणवते देय	१४ ४१०	सत्र दिव्य महाबाह	४७ ६८३
सतोऽस्य भ्रातरो वीरो	२६ ११०	सतदि वैद्य प्रीत्यर्थं	६८ ३६०	सत्र दृष्ट्वा महादेव	७ २७३
सतोऽस्य सायन जोषाद्	४७ ४८३	सकथ्य गचन श्रुत्वा [ब्रह्मण]	३४ ३८३	सत्र दृष्ट्वा हृषीकेण	६ ७०३
सतोऽस्य विपुला गाक्षा	३६ ४४०	सकथस्य दचन श्रुत्वा [वणिक्]	४३ ६२३	सत्र देव जगन्नाथ	४२ ८०
सतोऽस्य मूल व्यसज्यन् बुधनी	२१ ४३३	सकथीर्षयैः स महासुरो धी	४६ ४६०	सत्र देव पशुपति	४७ ६४३
सतोऽस्य मूलिन विभेद कण्ठ	२१ ४८०	सकथपत्न्यासविश्रीभाद्	स मा १० ४०	सत्र देव महिमान	४७ ६२३
सतोऽस्या वरपाया च	४७ ३०३	सकथपत्न्यस्ययाम्मोस	४६ ११०	सत्र देवदर शम्भु [गोपाल]	४७ १२३
सतोऽस्यास्तुतिमागमद्	२४ ४४०	सकथुष्ण सकल तस्य	स मा २४ १८०	सत्र देववर शम्भु [प्रज]	४७ ११३
सतोऽहं कृतवाभाब	६४ १००३	सकथीर्षयैः प्रगतस्य	१८ १४३	सत्र देववर स्थाणु	४७ ४१३
सतोऽहं प्रातये शम्भु	४३ १२८०	सकथीर्षयैः श्रुत्वा	४१ ४३	सत्र देवसुखोपेते	स मा १० ७२०
सतोऽहं रा प्रया दृष्ट्वा	स मा २८ ३२०	सत् प्रमन बल दृष्ट्वा	४२ २८३	सत्र देवहृदे स्नात्वा [सर्वे]	४२ ७०
सतो हृत्पदे हस	४४ १०३	सकथसत्परापरा सिद्धि	६७ ६८०	सत्र देवहृदे स्नात्वा [सन्तु]	४४ १४३
सतो हृत् स्व तनय निरीक्ष्य	४२ ४६३	सकथान् तीर्थं निदगाधिपाम्या	४४ ३१३	सत्र देवीं ददर्शय	२३ १३३
सतो हृत्वास्तु महिषा	१८ ६६३	सकथप्रमनस्य तया विहृत	४२ ४७०	सत्र देवपते पुण्यो	६२ ४२०
सतोऽहमसूत्र गत्वा	२३ २८३	सकथ कि हृत्बला कुमार्द्	२६ ४४०	सत्र देव्या समाजम्	३२ ४८०
सतोऽहमनुच सत	६४ ७४३	सकथ कृत्वा सरो धार	स मा २६ ८३	सत्र धर्मोऽस्य यस्त च	१४ ४०
सतो हर प्राह वचो	४२ ६३	सकथ कीर्तन्ति सततम्	२२ ३३३	सत्र नाम विभूषणे	४४ १४३
सतो हृत् वरपाया	६ २८३	सकथ गच्छाम्य देवेश	६ ७२०	सत्र नारो हृदे स्नात्वा	४७ ४८३
सतो हृत्पदं धनखण्डमुपगतम्	१ ३०३	सकथ गता ह्यम्बरसो	स मा १७ ३३	सत्र नीत्वा स्थाणुतीर्थे	स मा २६ ४००
सतो हृत्प्राग्धर्मोऽनित्य	२७ ४१३	सकथ गत्वा स त दृष्ट्वा	२ २३३	सत्र पञ्चवट नाम	स मा २० १२३
सतो हरोऽप्रीति तया निरक्ष्य	४३ ३३३	सकथ गत्वा त्वयीवाच	२८ २७३	सत्र पिण्डप्रदानेन	४३ ६४३
सतो हरो वर प्रदात	३४ ११३	सकथ गत्वा ददर्शयि	३ १२०	सत्र पुण्यपूतीर्थे	स मा २८ ७३
सतो हृत्कलसोऽन्व	४३ २४३	सकथ गत्वा महाविनो	स मा २३ २३३	सत्र पुष्टदेके तीर्थे	२२ २००
सतो हृत्कलसोऽन्व	३६ ४८३	सकथ गत्वा सुप्येष्ट	३ ४१०	सत्र प्रतिष्ठितं निज्ज	स मा २४ २१०
सतो हृत्कलसोऽन्व	२६ ४८३	सकथ चैव सर स्वामी	स मा १२ ११३	सत्र प्रतिष्ठिता विप्रा []	स मा १४ ६६३
सतो हृत्कलसोऽन्व	२४ ११३	सकथ ज्येष्ठो मम भ्राता	४२ ४६०	सत्र प्रयान्ति कायास्ता []	६ ६३०
सतो हृत्कलसोऽन्व	१० ४४३	सकथ तत्र च विप्रन्ना	स मा ३ २४०	सत्र शृणुष्वरे स्नात्वा	४७ ४३
सकथं पूर्वकालेऽपि	४२ ११३	सकथ सत्र प्रहयन्त्रे	३२ ४६०	सत्र शृणुष्वरे स्नात्वा	स मा १४ ८३
सकथं यत्प्रविलास	८ ३४०	सकथ सत्पत्वा तयो घोरा	स मा २७ ३४३	सत्र मन्त्रकुण्डलोये	४७ १६३

श्लोकार्थसूची

तत्र मध्ये च श्रुतवान्	११ ३४७	तत्र स्नात्वा भक्तिमुक्तं	स मा १४ ४६०	तत्रापि क्षणवृत्तिसंघो	५३ ७७३
तत्र मध्ये सुविस्तीर्णं	६७ २९	तत्र स्नात्वा महाप्राज्ञः]	स मा १४ ३८७	तत्रापि च नर स्नात्वा	स मा १३ ३००
तत्र महाभाग्य सर्वम्	स मा ११ ६०	तत्र स्नात्वा महोदयमा	५७ १३७	तत्रापि च सरस्वत्या	स मा २१ १६०
तत्र मे जातेः प्रोक्तम्	३८ ४२९	तत्र स्नात्वा मुक्तिकाम	स मा १८ २५५	तत्रापि तीर्थं सुमहद्	स मा १५ ५०३
तत्र मे मानवा धर्मासि	११ २६०	तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च		तत्रापि भग्नो गत्वा	६ ५७३
तत्र रम्ये शुभे काले	१८ ११९	[देव ^०]	स मा १४ २४०	तत्रापि मुक्तिफलदा	स मा २० ३११
तत्र राज्ञेति धान्योऽश्व	स मा २६ २४०	तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च		तत्रापि मे निराहार	स मा २८ ४८३
तत्र ह्यं समम्यर्च्यं	५७ ५४०	[ऋ ^०]	स मा १५ १५५	तत्रापि सगम प्राप्य	स मा १३ १८०
तत्रापि सत जाताः]	स मा १७ ५०	हर स्ना वाऽर्चयित्वा च		तत्रापि सविवान	६४ ८४०
तत्र विप्रा महाप्राज्ञाः]	स मा १४ ४७७	[पितृ ^०]	स मा १५ २५०	तत्रापि सुमहतीर्थे [विष्वा ^०]	स मा १८ १४१
तत्र विष्णुपुत्रे स्नात्वा	स मा १५ ६६७	तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च		तत्रापि सुमहतीर्थे [वसिष्ठा ^०]	स मा १८ ४०१
तत्र वैतरणी पुण्या	स मा १५ ४१०	[सूत ^०]	स मा १५ ४२७	तत्राप्येकमपि भूत्वा	स मा २७ ६९
तत्र गङ्गा समन्वये	५० १६९	तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च		तत्राप्यनुजगामासी	४३ ६४०
तत्र पिपासवे स्नात्वा	५७ १६९	[स्वर्णि ^०]	स मा १६ १६९	तत्राप्येक कुवागो	स मा १४ २६०
तत्र सञ्जुतदेहस्तु	स मा २६ ५८०	तत्र स्नात्वाऽर्चयित्वा च		तत्राप्येक कुवाँत [पितृ ^०]	स मा १४ ४१९
तत्र सन्निहिता नित्य	स मा १४ ४००	[देव ^०]	स मा २० १३७	तत्राप्येक कुवाँत [गंगाया]	स मा १५ ६२०
तत्र सर्वगत विष्णु	५७ ७३९	तत्र स्नात्वाऽर्चयेद्वाद्	स मा १५ ५६५	तत्राम्य महावीर्यं	३६ १३६९
तत्र सर्वेषु लोकेषु	स मा २३ २७०	तत्र स्नात्वाच्य च पितृषु	५७ ४४३	तत्रामरेश्वर देव	५७ २५५
तत्र सा रज्जुः प्राप्य	स मा १२ २९	तत्र स्नात्वाच्यं वेदान	५३ ३३	तत्रारण्येभ्यभाग्न	१४ ५७३
तत्र सिद्धस्तु जह्यपी	स मा १८ १६०	तत्र स्नात्वा च देवे	५५ १२७	तत्रार्च्यं भद्रनालोप	५७ ६३९
तत्र भूर्पवनस्थान	स मा १३ ५९	तत्र स्नात्वाच्य विद्वेग	५७ ५५०	तत्राच्य मिश्रावरणी	५७ ४६९
तत्र सोमेश्वर दृष्टवा	स मा १३ ३५७	तत्र स्नात्वा नाङ्गलि या	५७ १४७	तत्रा नम रम्यतर हि कृत्वा	१६ ३३३
तत्र स्व्याणुष्ट दृष्ट्वा	स मा २१ ३००	तत्र स्नात्वा विधानेन	३६ १२८	तत्राथमाह तु वदने	११ ७०
तत्र स्वपथ हरिर्वैवी	२८ २८३	तत्र स्नात्वा विमुक्तस्तु	स मा १६ ६९	तत्रास्तस्य पडावाद्	६४ ६३०
तत्र स्थित महादेव	स मा १४ २४०	तत्र स्नात्वा शिवद्वारे	स मा २० २३०	तत्रास्तस्यैरुप्यस्ताः]	६४ ६६०
तत्र स्थितस्यापि महापुरस्य	१० ५७९	तत्र स्नात्वा मुक्तिर्भूत्वा	३४ १८९	तत्रास्ततो भागवस्य	४३ ३८०
तत्र स्थिताया रम्यो	३७ ७६९	तत्र स्नात्वा ऋष्यपाल	स मा १५ ६५५	तत्रास्ततो मे पातले	स मा १० ७७३
तत्र स्थितिका सुवती	३६ २८९	तत्र स्नात्वा शुक्र सव	२४ ५९	तत्रास्ततोऽस्य मुषिर	३८ ४१
तत्रस्थेन सुरैरेन	५७ २१९	तत्र स्नान नर कृत्वा	स मा १३ २३०	तत्रास्तो सः श्राव्याय	३८ १८९
तत्र स्नातस्य सान्निध्य	स मा १४ २३०	तत्र स्नायीत वै विद्वान्	१७ ३२९	तत्रास्तित तपोः यति	३८ २७०
तत्र स्नातो भक्तिमुक्तो	स मा १८ ४००	तत्र श्वकार्यं कृत्वा	४४ ७८०	तत्रास्तित देवो सुमहाभावा	२० ३०
तत्र स्नात्वा च दृष्टवा च		तत्र स्वयंभुज देव	५७ ३२९	तत्रास्तित नगरो पुण्या	३ ३०३
[ऋ ^०]	स मा १३ १३९	तत्रागच्छति मय्याह	३६ ४८९	तत्रास्तित बाजनात	३१ १५०
तत्र स्नात्वा च दृष्टवा च		तत्रागतोय रागाह	३६ ५८९	तत्रास्ते भावान्विजगुद्	३४ ५६०
[ब्रह्मा ^०]	स मा १३ १७०	तत्राग्निना नेत्रभवेन जुड	४४ ५०९	तत्रास्ते विविधानोगाद्	६७ ३९
तत्र स्नात्वा च दृष्टवा च [पूज ^०]	५५ ७३	तत्राजगाम चरिता	४६ ३०९	तत्रास्तेऽस्य सती गुण	६४ ५६०
तत्र स्नात्वा च दृष्टवा च [सतप्य]	५५ ८३	तत्रातिद्वेषो वगति	५७ २२९	तत्रास्त्वद्य समेष्यन्ति	३६ ७६०
तत्र स्नात्वा च विमने	५३ २९	तत्रादि निक्षिप्य विष्णुपुत्री	१६ ३३०	तत्रास्त्वद्य प्रवतार पूजा	६६ १७०
तत्र स्नात्वा तु पुण्य	स मा १५ २७७	तत्रापि यत्न देवेन	५० २९	तत्रास्तेन विद्वज	स मा २६ ३७३
तत्र स्नात्वा तपो भक्त्या	स मा १६ ७३	तत्रापि यत्न मारीच	स मा ३ ७०	तत्राश्वर सुनोऽस्य	५७ ६१०
तत्र स्नात्वा भक्तिमुक्त	स मा १५ ४३०			तत्राश्वरजुगुक्त	५७ २७३

तत्रैकस्य शिरसि त्रै	स मा १८ ६१	तथा कुरन्व मा तोषा	४६ २६५	तथा पापुपताभ्रान्ये	४१ ११७
तत्रैवो जनमध्यस्थो	१८ ४४१	तथा क्रीडाविनोदार्थम्	स मा ६ ४२०	तथापि वसते पृथ्वी	३६ ४४०
तत्रैव क्षिप सुयोगि	३१ १६१	तथा गुणा हि देवस्य	६७ ३६०	तथापि त्वा विजेष्यामि	४४ २००
तत्रैना मोहमिष्यामि	४३ ७६०	तथा गौभूमिहस्तारो	१२ ३८०	तथापि न दशार्पण	४३ ६५३
तत्रैव कोटितोर्ध्वं च	स मा १५ ७१३	तथा च त्व ण्विष्वज्पुर	२३ ३७३	तथापि नात्यजद् राहुद्	४२ ३३०
तत्रैव च यानो दक्षम्मा	स मा १८ २८०	तथा चन्द्रमस देवम्	२ १५३	तथापि सप्तविद्यामि	५० ४६०
तत्रैव च महाप्राही	स मा १३ ३६०	तथा च यथा वपिना	३८ ३७१	तथा पुरा नश्रवणाद्	६६ २००
तत्रैव च महाहस	६३ २३०	तथा च सर्वाणि महार्णवानि	२३ ४५३	तथा पुरा दुयजन नुरामुर्	५० १६३
तत्रैव न रति चक्र	४५ ८१	तथाचिरामा मुतरा स्फुरन्ति	१ २००	तथा ऋषिभ्या ब्रह्मर्षे	६३ ४४३
तत्रैव न रति चन्द्र	६२ २००	तथाचिरेण पदरेण	स मा ८ ४६०	तथा प्रवङ्गा पाञ्चवा[]	१३ ४४०
तत्रैव हीर्य विधातम्	स मा १८ २५०	तथा तथा त्वज्जायन्त	४१ ४६०	तथा भवान् सुरे सार्ध	२३ ३६३
तत्रैव देवता तन्द्रा	३१ ५५३	तथा तथा भूतलक्षा[]	२१ ३५०	तथाऽभ्येत् महात्मनो	४६ ३६०
तत्रैव ब्रह्मोन्मत्ति	स मा १८ २१३	तथा तथा वरिष्यामि	स मा ६ ११०	तथा मनुष्याणा धीरु[]	२८ ७४०
तत्रैव याचना यन्त्रा	२३ ३८०	तथा तव पित्रुभ्योऽपि	४७ ८५१	तथामो तव ये भू-यात	५३ ४०३
तत्रैव लिङ्गकौष	स मा २५ १००	तथा सा व्यविता हृष्ट्वा	स मा १६ ८३	तथा मे जानवो भावो	४४ ७१३
तत्रैव वा गुरोर्गोहे	१५ ६३	तथात्पमानयसाय	स मा ६ २०३	तथा यतश्चाततत्त्वकेष्ट	४८ ४१०
तत्रैव यामनो देव	स मा १३ ३०३	तथा त्वयि स्थित ब्रह्म	स मा ११ ८०	तथा यतिष्ये न यथा	२८ ६०
तत्रैव शुभहतीर्षे	स मा १५ ७३३	तथा दधिपथाखरोवो	४४ ३३३	तथा यतिष्ये भगवन्	२५ ६०
तत्रोत्सवो मुख्यतमो भविष्यति	६५ ६०१	तथा दुर्ज्जाम्बरशालिनो त्व	२५ ६४३	तथापिपरवागुर पुण्यस्य	६८ ६०३
तत्रोत्सव्य स्वपुत्र सा	६४ २७५	तथा देव करिष्यामि	२५ ११०	तथा विवाह्विषारा[]	४७ ४६३
तत्रोपविष्टर्षेवागौ	४८ ३२३	तथा दैत्येश्वर मूढन्	८ १३३	तथा ध्याद् च कदाच्य	स मा १५ ४८०
तत्रोपासत गन्धर्वा[]	४८ १७०	तथाधिरुडो वरदोऽय वेदि	२७ ४६३	तथा ध्याद् तत्र कृत	स मा २० ६०
तत्रोपास्य महेशान	३७ ७८०	तथाधीताम्यजतिभिर्	६५ ५७०	तथाष्टावसामो प्रोक्ता	११ ५७७
तत्रोप्य दैत्येश्वरसुतुरास्त्राद्	५७ ६७३	तथा नवा च सुदृढा	५३ ३२३	तथासतस्त्रिनेत्रस्य	२८ ५०
तत्रोप्य मातायामर्ष्यं भगवथा	५३ ५३	तथाऽन्तकाले मामिन	२३ ३७०	तथा सुरनवीत्येव	६५ ३४०
तत्रोप्य रजनीमिका[स्नारथा]स मा	१३ २४०	तथाऽप्य पुरनामान	४५ १५३	तथा रतवमिग ध्रुवा	स मा २७ २२०
तत्रोप्य रजनीमिका[शोकर्ग]	५५ ५०	तथाऽप्यच महाप्राही	५१ ५२३	तथा स्तोपो परिष्टोऽय	स मा २७ ६३
तत्रोप्य सुचिर काल	५३ ७६३	तथाऽप्यमुक्त नरसत्तमेन	६७ ३१३	तथास्त्वपुण्य सयन सार्धेन	१७ २२०
तत्रसजात मया सर्वे	स मा ८ १६३	तथाऽप्यमुस्तव पुण्ये	६५ ५८३	तथास्त्विति सुरा सर्वे	स मा ४ १६०
तत्रसकसिसमुत्तयौ	२८ ६६३	तथाऽप्यो गृह्यकमुता	३७ ८०३	तथा स्तुतस्तस्तव	स मा २५ ४७३
तत्रसन्निपादादमुखा ।	स मा १० ६३	तथाऽप्यो पिप्लवगौगी	१३ २६०	तथापि सर्वे ते स्नेच्छा	स मा २६ ३७०
तत्रसन्निधौ धृते स्नात्वा	स मा २४ २५०	तथाप्ये ऋषयस्तत्र	३६ १७३	तथाप्युक्त नय पित्रा	२५ ४६३
तत्रसर्वे कवचिभगामि	५६ ६२०	तथाप्ये यानवश्रद्धा[]	४३ १६३	तथाप्युक्त्वा गतो ब्रह्मा	२८ २३३
तत्र सर्वे स्वयि सवोगि	स मा ११ ७३	तथाप्ये ब्राह्मणा ब्रह्मद्	६२ २४३	तथाप्ये च ततर्त	४४ ६३३
तत्र सर्वे विषय यति	३५ २८३	तथाप्ये सतसाह्ववा[]	१३ १५३	तत्रैव चोप भयहारि मानव	३४ ७६०
तत्र सर्वे विस्तारोह	स मा १३ २०	तथाप्ये पार्यदियुद्धे	२२ ६८३	तत्रैव द्वारेण प्राप्त	स मा २८ ४५३
तत्रापा मुच्य भृशो	५१ ४०१	तथाप्येर्षविषैर्दुर्ल	५८ ६०	तत्रैव नैमिष्यारण्य	३ १०३
तत्रापा मुकृत कर्म	स मा १० २०३	तथापर शोचिन्तयुक्तोजन	११ ५८३	तत्रैव मित्रावदगारमजेन	५० १३०
तत्र स्वदतो महापौरो	३६ १०२३	तथा पराजय सर्वे	स मा ३ १६०	तत्रैव विप्रप्रवर	६३ १५३
तत्र स्वदे पार्वती चैव	२८ ५७७	तथाऽप्यत्र वेदवती	३७ ८०३	तत्रैव शकान्दिपु देवतेषु	१६ ६०
तत्रापितेजोत्तममुत्तम महद्	१६ १३३	तथापरे विद्युत्तलकेशपाशा[]	३० ३२३	तत्रैव सत्माहृत्य	स मा २२ २०

तथैव सहचारं ज्ञाना	३८.८०	तदा व्यायामस्यास्तु	२०.४१०	तद्गुणोच मया ह्यात्मा	३८.४६०
तथैव स्वाय मातुष्य	१४.४६०	तदारोच्य देहेनां	४६.१२०	तद्गुणोत्तां परित्यज्य	६४.६२०
तथैवापि विख्यातं	६३.२००	तदाचढमिदं जाला	स.मा.२१.५६०	तद्गुणोत्तरं परित्यज्य	३२.४४०
तथैवोद्युगं प्रादान्	२३.३२०	तदावतोर्यः सुकुनि.	३८.७६०	तद्गुणादस्मि जनयि	३२.४००
तथोक्तवाग्ने दिक्षिः शिवावात्	२०.२४०	तदायथाणि सर्वाणि	६.६००	तद् भवादाविद्यद् गौरौ	४३.६४०
तथोक्तं वासुदेवेन	३६.३६	तदाष्टान् महाधर्म	२३.२८०	तद्भूतते रत्नमनुत्तमं सिद्धं	२०.१६०
तथोभयोः पथ चतुस्तथैका	१४.३१०	तदा स तेभ्यः पापेभ्यो	६४.११००	तद्यदेतानि चरेणु	४६.३७०
तथ्यनि पथ्यानि परत्र चेह	६८.६४०	तदासाद्य सुभंतुष्टो	२३.२२०	तद्यानु विनयं तोपि	४६.६७०
तदश्वत्थपलमोक्ष्यास्य	७.२०	तदानीत्तुमुलं युद्धं	४७.२६२	तद् युष्माकं हितार्थं	२२.१४०
तदप्रिप्रवि तेषामपरवस्ती	६४.६०	तदा स्नानं तत्र इत्या	स.मा.२०.२७०	तद्रेत. स तु जगद्गृह	स.मा.१७.४०
तदद्यापि च विख्यातम्	स.मा.६.४४०	तदास्य स्वयमेवाहं	३७.११०	तद् वधोर्द्धिरतः श्रुत्या	२६.४२०
तदय-तामहापुष्यम्	४१.६०	तदा स्वप्रति देवेशो	१७.२०	तद्वत् कोकनदेष्यां	६२.१४०
तदयु बृहि भरं ते	४६.४२०	तदा हि सर्वाभूताना	स.मा.१.६६०	तद्वत् गुण्यनि विदारं	स.मा.३.६०
तदनेन नरेन्द्रेण	३६.६६०	तदिदं शुद्धता दैव्य	३७.६०	तद् वर्णनं यवाग्रजं	२६.४४०
तदन्ताश्च वसून् द्यान्	स.मा.८.१००	तदिदं तात मद्रोय-	४८.२४०	तद् वदाम्यद्य गद् वागव	४३.७७०
तदप्यरोवं दैव्येन्द्र	६८.४०	तदिदं तैमंशुदेव	४३.१२०	तद्वदाश्वयुजे भाति	१७.३४०
तदमीभिर्नरैरुपायैर्द्	४१.२८०	तदिदं स्वयंता तावद्	२८.४६०	तद्वद् द्विकलनारोनि	१४.३०
तदम्परात्रचलितमध्वर्यै	४६.१५२	तदिदं पश्य भगवन्	४३.३०	तद्वद् भूतात्वेव स्नात्वा	स.मा.१३.४७०
तदर्थमग्निवाचेहं	६४.८०	तदोश्चरेचरेमान	स.मा.६.३१०	तद्वद्यय च मा प्रागम्	स.मा.१६.६०
तदशक्तेन तेनाद्य	३१.१३०	तदुक्तं साध्यमुद्येन	३४.३३०	तद् वरं तस्य च प्रागम्	४२.१५०
तदहं ब्राह्मिजानो	६४.१०८०	तदुच्यता वया दैव्यो	२६.२२०	तद्वद्ययं दानवर्षति.	४२.३३०
तदा कान्तोमुलं ब्रह्मा	२७.४६०	तदुत्तिष्ठ प्रजापतिश्च	३१.११०	तद् वायवं दानवर्षतेः	४२.७७०
तदा गमनसंचारी	२७.६४०	तदुत्तिष्ठत्य गच्छामो	४३.७६०	तद्वद्ययं भगवतः ध्रुवा	६४.१२०
तदा गच्छत वो युक्तं	३४.२४०	तदुत्तिष्ठत्य गच्छाम.	३६.४२०	तद् वायवं वायुदेवस्य [ध्रुवा]	४०.४२०
तदा गच्छन्मवनी	४२.३४०	तदेतत् प्रतिगुह्योया	६.८४०	तद्वद्ययं वायुदेवस्य [विग]	४६.३१०
तदागच्छन्मवनी	३०.१६०	तदेतेषां महादेव	४१.२४०	तद्वद्ययं दंकर ध्रुवा	४४.२१०
तदागच्छन्मवनी	३६.७६०	तदेव ज्योत्सा दत्तं	४३.४४०	तद्वदायममकानं च [दिग्ग]	३०.१२०
तदायचतु शुभमाय	२६.२८०	तदेव तनु कार्श्वर्याः]	७.८०	तद्वदायममकानं च [ध्वनदद्]	३८.४३०
तदाजगुर्मुदीगुहं	२६.१४०	तदेव माता नामास्वाम्	२४.२२०	तद्वदायममकानं च [गुह]	४८.३४०
तदा तथा तु तस्यज्ञाया	३७.४१०	तदेव कीर्ण दैव्याना	स.मा.२.३०	तद्वदायमननरं जात.	स.मा.२६.४४०
तदात्तिगुहा सुरात्तमानां	१६.१८०	तदेव वदनं वाय	७.६०	तदामनदव ध्रुवा	४२.७१०
तदा तु भगवत्पारी	४४.११०	तदेवा याः स्वं कामं	४०.४६०	तद्वदुद्धं भवतो वृद्धम्	४८.४६०
तदा निर्भूतगाराखे	४१.४४०	तदेव तस्य श्रियोनाम्	४६.११०	ततो बुधितु वदाश	स.मा.१०.४६०
तदा निरवेक्ष्यो दैव्याः	४०.४८०	तदगच्छत्य दुराचारा	३०.१४०	तद्य शक्तोम्हं त्यक्तं	४०.४८०
तदाप्रभृति कासिण्याः]	६.३१०	तदगंध्याः शुभं यम	१२.३४०	तद्याराण्य गोविन्द	४६.६६०
तदाप्रभृति नास्तीति	२२.३६०	तद् दस्ता देवदेवाय	४६.२३०	तद्विनाशं महत्तुम्हा	३०.१००
तदाप्रभृति निस्तेजाः	३४.२०	तद्वदासि कृणुधेर्षु	स.मा.१०.४२०	तद्विनाशं मही हरांम्	३२.३१०
तदाप्रभृति लोकेषु	स.मा.२०.३४०	तद् इत्या शोभयमपर	२७.४४०	तद्विनाशं मही हरांम्	३१.६६०
तदाभिप्रेतं हनयं	३१.४६०	तद् इत्या शुभरे स्वतां	४६.११०	तद्विनाशं मही हरांम्	३१.६६०
तदाभयं तदाभिप्रेत	४३.११०	तद् इत्या शोभते विप्रः	स.मा.१७.११०	तद्विनाशं मही हरांम्	३१.६६०
तदाभयं विप्रवत्	२६.४१०	तद्वदुदनिव गीमे	२१.७०	तद्विनाशं मही हरांम्	३१.६६०

वामनपुराणस्य

तन्मन शोभयेद् धीमान्	स मा २२ ७६०	तपोवनानामपि कुम्भयोनि	१२ ४७०	तमादाय महादेव	स मा २३ ३४५
तन्मना दानवश्रेष्ठ	११ १५५	तपोऽयनसमन्वया []	४८ ४४५	तमादाय हृत्पम्बागम्	४३ २६५
तन्मना भव तद्भक्तस्	६७ ६६५	तपोर्वे ते गता रीत	४६ २४०	तमाद्विपुष्प विष्णु	५६ ८१०
तन्मयो भवते तद्भक्	स मा २२ ७८५	तपोऽर्थाय सया चक्ष	३४ ३०	तमानीत कर्षि शर्व	४३ २७५
तमद्देशानवचन	५६ ३२५	तपोलोकेश्वर ब्रह्मन्	६३ ४०५	तमानीत शरस्यत्या	स मा १६ १८५
तमा वमसतपशक्ति	३६ १६८०	तपाहिंसा च शरय च	४६ ११५	तमापतन्त कुलियोन नदी	४२ ४७५
तमा कुचतले तस्ये	३७ ४७५	ततं सुधोर क्षमस्य	स मा २० १४०	तमापतन्त गदया जघान	१ ४२५
तम्पातुर्वचन श्रुत्वा	{ ५६ १४५ ५६ ४५५	तसङ्कन्द्वरहस्य वै	३६ १८०	तमापतन्त ज्वलनप्रकाश	४२ ५७५
तमाधववच धृत्वा	३२ १०७५	तसहचक्रुग् ससुद्धा	३६ ६५	तमापतन्त निदोऽधरस्तु	४३ १०८५
तमुनेर्वाक्पमाकण्य	३८ ६६५	तसताम्रमयी भूमिद्	११ ५२५	तमापतन्त दृष्ट्वाऽप	३० ५०५
तम्पुरारिवच श्रुत्वा	६५ ३६५	तयता च तप सोम्यो	६ ३०	तमापतन्त दृष्ट्वा	४३ ६३०
तमे कुलोद्भव पाप	६७ १६०	तपन्तपुष्य हर्षे	५६ ८४०	तमापतन्त दैत्याना	३० २५
तमे वृहत् दीशखो	६७ १६५	तमा तरगाणोत्स्य	४४ २६५	तमापतन्त दैत्येन्द्र	३८ ८५
तमे पाप सय यातु	८ ५८०	तमा नरमुपागम्य	४३ २५५	तमापतन्त निम्बिना	३० ४३५
तमे युवा धर्मो जातो	३८ १५०	तमन्वेव गापा सर्वे	३२ २७५	तमापतन्त परिवेष भूय	१० ५२५
तमे सर्वे समाख्यात	५२ ७०५	तमन्वीर श्रौतिपुत पितामहो	६६ १३५	तमापतन्त प्रसमीक्ष्य पाग	१० ४३५
तमे हृत्स्य तरसा	६७ १७५	तमन्ययाद् दानवविश्वकर्मा	१० ४४०	तमापतन्त प्रतापीष्य मत्तर	३० २६५
तमे हित च पथ्य च	६७ २३०	तमन्वर्च्य प्रयत्नेन	स मा २५ १४५	तमापतन्त प्रसमीक्ष्य शकम्	४३ १५६५
तप कियर्षे तच्छ्रुत्वा	३६ ६६५	तमन्वर्च्य महादेवा	५७ ३२०	तमापतन्त बनवाग्	८ २१५
तप कियर्षिणीर्षी च	स मा १६ १०५	तमन्व्येय महायाता	२२ ३६५	तमापतन्त बाणोर्ध्व	१० १५५
तप समाधिता श्रीह	२५ ५६०	तस्य फल राजपिर	२३ २१५	तमापतन्त भगवान् [सनिरीक्ष्य]	५ ११५
तपतीतापित वीर	२२ ४००	तमर्चयति ऋषयो	६२ २२५	तमापतन्त भगवान् [दृष्ट्वा]	४४ २४५
तपश्ररणपुक्तस्य	४६ ४५५	तमर्चयन् यत्नेन	६८ ५३०	तमापतन्त भगवान् सवीक्ष्य	४२ ४१५
तपश्ररन्ति विपुल	स मा १५ ४५०	तमचपित्वा विदेवा	५७ ५६५	तमापतन्त महिष	३२ ७२५
तपश्रर्षा द्विजश्रेष्ठ	२५ ६१५	तमर्च्य ब्राह्मणी गत्वा	५७ ५६०	तमापतन्त मुसल प्रशुह्य	४२ ४५५
तपश्रर्व तपस्यश्र	५६ २७०	तमर्च्य विविधा ब्रह्मन्	६७ २२५	तमापतन्त वीक्ष्याथ	२० ३६५
तपसा कर्षित दीन	३६ ६७५	तपस्य श्रुष्ट भगवान्	५६ १८५	तमापतन्त वेगेन	१० ८५
तपसा धृतपापसि	२८ १८०	तमानिस्तमाकण्य [हिर]	१० १६५	तमापतन्त गतसूर्यकण	४ ४६५
तपसा परनेरीह	स मा २२ ४३०	तमाकण्यितमाकण्य [चारणा]	१६ ४१५	तमापतन्त सप्रेक्ष्य	४३ १६८०
तपसा पितृष्टोत्रिमि	३६ ४३५	तमागत प्राह मुनि मरुचन	३५ ७३५	तमागत त शय	२६ ४७५
तपसासाश्व देवेभ	६ ४०	तमागत यम प्राह	३४ ५३५	तमागत त सह शम्भेरण	१० ५५५
तपसा वाञ्छयस्तीह	२५ ५८५	तमागत शिव दृष्ट्वा	स मा २८ १०५	तमापतन्त सत्सा	४ २४५
तपसाह सुतनेन	२४ १००	तमागत शुक्रमुता	३७ २६५	तमापतन्त यम श्रुत्वा	३४ ५०५
तपसो भात्यामाह	२४ २१०	तमागत सनिरीक्ष्य	४ २८५	तमाशुधवर बदे	६७ १५५
तपस्तेन सहस्राक्ष	५० २००	तमागत समीक्ष्यैव	४८ २१५	तमाशय्य वैस्त्राया	५६ ४४०
तपस्ते षपत्ता युव	स मा १४ १०५	तमागत सप्तसितम्	५३ ३३५	तमाशय्य जगन्नाथ	५६ ३१०
तपस्ते यदत्ता विप्र	स मा १७ २१५	तमागत सहस्राक्ष	४७ २२५	तमाशय्य विष्णोऽप	५६ ५५०
तपस्विनो धमपये	स मा १७ १२०	तमागतमुदीक्याय	४३ १२७५	तमाशमिलव पत्र	६८ १५०
तपस्विन्व् बीवने घोरम्	३६ ६८०	तमागम्य सुरश्रेष्ठो	४७ ६५	तमाश्रममुपागम्य	४५ २४०
तपोऽप्यसतोप्यागाद्	२८ १७०	तमादाय जगामाव	६४ २७०	तमाशसाद च कर्षि	३६ ८०५
		तमादाय ततो वैगाद्	१० २१५	तमाह दैत्यागर्तुन	३४ ५८५

श्रीकायसूची

समाहर्षमर्षाद् ब्रह्मम्	३४ ५५७	तमोमूर्तेः ग्रह ह्यप	३ १८३	तस्यो वर्णसहस्र हि	२८ ३००
समाहर्ष भगवान् बलि	४३ ११६३	तपानि तस्यास्तत्काम्य	३७ ६१०	तस्य शिष्याचलप्रसम्प	५६ १६०
समाहर्ष समुद्रिञ्ज गच्छ लोक	३६ ५२३	तया सह महादेवा []	६७ ४३	तस्यो हि रूप्य हि धामनेन	६६ १४०
समाहर्ष समुद्रिञ्ज दत्तेमेतद्	३२ ११८८	तया सृष्टा दनुजता []	४३ ६५३	तस्माद्य जाता तत्रजयतापी	१६ ८०
समाहर्ष कुमुद देवात्	१५ ३२०	तयामि देवमानीता	३८ ४६०	तस्मात् तदतो ज्ञातो	३७ ६३
समाहर्षात् तस्यप्रा	१५ ३००	तर्षनमुत्तत्त्वम्यागा	२६ ३६३	तस्मात् पुष्कलोप	११ ५१३
समिन्द्र प्राह कैटिभ्य	३२ १०५३	तयो स्नात्वा विभुदात्मा	स मा ११ ६१०	तस्मात् पूर्वं द्विजयर्षे वी मया	६४ ११३०
समाहर्ष अन्वया तु गजेन्द्रमोक्षेण	५७ ६६०	तयोरेवाहिना देवा	२६ ८२३	तस्मात्वाहं वृषवर्षे	६४ १०२३
समोक्षमागतमनन्तमच्छुद	५६ २००	तयोश्चरान् विप्रोऽज्ञो	६४ ५५०	तस्माच्छुप्रमिभ व्यक्त्वा	६४ ३१३
समोश्चर तुममनुत्तमैर्दुर्गै	५८ ४७०	तयाश्च पात्रयोर्दिव्ये	७ ४६३	तस्मात् जाल्वा सप्त विद्वान्	स मा १६ ३६३
समुत्तर हर प्राह	४० ४७०	तरयो यो भवेत्सोतम्	६७ २५०	तस्मात्कारयविभुदुर्धमे	३६ ८०
समुत्तयाय तदा कालो	२५ ४७३	तरमुत्कारयुक्तयोर्बलत्तर	स मा १ १५३	तस्मात् कुलञ्च भेगो ना	४३ ५३
समुत्तर तथा सृष्टा	स मा २१ २२०	तर्षयेच्छ्रद्धया पुष्क	स मा २४ २७०	तस्मात् श्रीगात् सजाता	२८ २४३
समुद्राग्निताय च	१८ ६२२	तत्तत्प्रहारैरमप []	५ ८०	तस्मात्तमेव शरण्य	स मा २१ २०३
समुद्राग्नि महादेवा []	३४ ४६३	तले सहस्रचरण	६३ ३७३	तस्मात्तयाद्यतो विष्णो	८ ३६०
समुद्राग्निब्रवीद्विद्ये	३४ ४५३	तन्ने स्वर्गिति लोकाना	१७ १३०	तस्मात्तीर्थं च विद्वान्	५७ ७०३
समुद्रेत्याब्रवीद्वी राजा	३६ ६८३	तल्लक्ष योजनाना च	११ ३५०	तस्मात्तेज समश्रवद्	स मा २२ २२३
समुद्राच जगत्सामा	८ ६८३	तव किरणजितो रविप्र्यते महोद्गा	१६ २७०	तस्मात् न जनिष्यन्ति	२८ ५५०
समुद्राच महादेवा []	८ ४७३	तव गर्भे समुद्रभूतल	स मा ७ ११३	तस्मात्त्वमग्नि राजेन्द्र	६८ ५३३
समुद्राच महायोगी	३५ ३१३	तव पिता ह्यपुत्रय	३७ ६३	तस्मात् परतर लोके	४१ ४२३
समुद्राच मनो गच्छ	३४ ५६३	तव पुम्पा वय शामत	२६ ६४०	तस्मात्सप्तसमाचार	५१ ३५०
समुद्राच सहलासप्त	३२ १००३	तव प्रसाद्यन्ते [सनादि]	स मा १२ २१३	तस्मात्पापादह माणम्	५६ २६३
समुद्राच हरि शक	४३ ११३३	तव प्रसाद्यन्ते [मुक्ता]	स मा १३ २६३	तस्मात् पुष्पतम तीर्थे	स मा २४ १३३
समुद्रावाग्भवो ब्रह्मन्	३४ २३३	तव भक्ता समायाता []	४१ ११०	तस्मान्पुत्रय पिथ्यश्च	३५ २६३
समुद्रवन्मुनिभ्रष्ट	४६ १०३	तव पिथ्ये दग्धेन	४० ११३	तस्मात्सना-स्य शुभाश्व	३१ ६०
समुद्र सर्व एषेन	४७ ४३	तव ससगतो ब्रह्मन्	५६ ३२०	तस्मात्सना-स्य सना	स मा २१ २३०
समुद्रसंपप खर्वे	स मा २६ १६०	तवाप्रतो हास्यबोभिरत्ता []	६ ५३०	तस्मात्सनीयनी विद्या	३६ ४३०
समुद्रुत्पपगर्वा []	४३ १२५३	तवातिवसमुद्रात्	३२ ४५३	तस्मात्समुत्तित नरेन्द्र देश्या	२२ ६०३
समुद्रुत्पवता यथात्	३६ १७३	तवाग्नि तेन गदित	३४ ६८०	तस्मात् सत्स्यु सवल	४० १५३
समुद्रुत्पवता मर्षे	५० १२०	तवात्तनवामार्थे	३६ ४२३	तस्मात्सवप्रवलेन	स मा २० १००
समुद्रुत्पव देवेन	३६ ५०	तवावय मरुत्यामि	३५ ६६०	तस्मात्सुदूरदा सर्वेद्	४० ४०३
समुद्रुत्पव पनामस	३६ २२३	तवैतत्परम रूप	स मा ११ १५३	तस्माद् श्यानादाद्यकम्प [कुम्भारो]	५ १०
समुद्रुत्पवय मूर्धे	१६ ५०३	तवैवाननयाच्छस्तम्	४५ ३६०	तस्मात्सवानादाकम्प [पता]	३३ ४०३
समेव धाराया बले	६८ ५२३	तवादेहेह दानमि	५० ४८३	तस्माद् स्वयमेव न हि सत्यमेत	१५ ६६३
समेव धारवत्स पुष्क	३७ ३५०	तस्यावधोमुखो दीनो	२ ३००	तस्मात्सनातहीन तु	५२ ५०३
समेव गरुड देव	५८ २७०	तस्यावष्टमुखा भूत्वा	४ २६०	तस्मात्सनात्सुष्कामा	४४ ४२०
समेव हातेषुर्धे	६ ११०	तस्यावष्टमुखा भूत्वा	२५ ३४०	तस्मात्सनात्सुष्कामा	५७ ७२३
समेवानुसगारेण	५ २७३	तस्यो इतोऽजित्तुदम्	३२ ११०	तस्मात्सनात्सुष्कामा	५० २०३
समेवाश्व देवेना	६७ ६६०	तस्यो मुनिरिव म्यानम्	७ १६०	तस्मात्सनात्सुष्कामा	३६ ३०३
समानपतत ३शाय	२ २५३	तस्यं मरुतिवाक्यम्	४७ ४६०	तस्मात्सनात्सुष्कामा	३६ ६६०

तस्माद्गुणपाठ्यं द्वार	६४ ७७०	तस्मिन्स्तीर्यवरे स्नातो	स मा १५ ११६	तस्मिन् स्नात सर्वतीर्थे	स मा २५ १५६
तस्मादेन समुद्दिश्य	स मा २६ ४८०	तस्मिन्स्तीर्यवरे स्नात्वा [बाह्यस्थ]	स मा १६ १५६	तस्मिन् स्नात सर्वतीर्थे	स मा २४ १३०
तस्माद् गच्छत् पुण्यं तद्	२२ २०६	तस्मिन्स्तीर्यवरे स्नात्वा [सतथ्य]	५२ ५६	तस्मिन् स्नातस्तु कुरुषु	स मा १५ २७०
तस्माद् गच्छत्स्य शीघ्रं च	३७ ६७०	तस्मिन्स्तीर्यवरे स्नात्वा [दृष्ट्वा]	५७ १६	तस्मिन् स्नातस्तु कुरुषो [गो ^०]	स मा १५ ५००
तस्माद् गमित्ये शुभप्रथमाय	६४ १११६	तस्मिन्स्तीर्ये च सत्प्राण्य	स मा १४ १६६	तस्मिन् स्नातस्तु पुष्पे [यवसा]	स मा २० ७६
तस्माद्गृह्णन्वाङ्गिङ्ग	स मा २३ १७६	तस्मिन्स्तीर्ये तु य स्नाति	स मा १६ ३६६	तस्मिन् स्नातो नरो भवत्या स मा १६ ३६६	
तस्माद्दिवाप्रथा श्रुतिशास्त्रमुक्ता []	४८ ४३६	तस्मिन्स्तीर्ये नर स्नात्वा	स मा १५ ७१०	तस्मिन् स्नात्वा तया प्राचा	५५ ६६
तस्माद्द्वर्गे न सत्याज्यो	४० ३५६	तस्मिन् सुष्टु जगदामिन्	५६ १३६	तस्मिन् स्नात्वा नरो भवत्या स मा १६ ३६०	
तस्माद्दृष्ट्या न स्मरणं नीर्तनं वा	६७ ७५६	तस्मिन्-दक्षोऽमुञ्जद् बज्रं	२६ ६०	तस्मिन् स्नात्वा भक्तिमुक्त	स मा १५ ७३०
तस्माद्बहुपुत्रो मही	६ १०२०	तस्मिन्स्तीर्ये हि विजित	३४ ४८०	तस्मिन् स्नात्वा विमुक्तस्तु	स मा १६ २०
तस्माद्बहुभूतामर्षाद्य	३२ ६७६	तस्मिन्-गार्गतिं वैत्येन्द्रे	७ २३६	तस्मिन् स्नात्वा श्रद्धया न	स मा १३ ३२०
तस्माद्भुज्जन् स्व स्व हि	२४ २८६	तस्मिन्-ज्जवा घोररते प्रवृत्ते	६ ४४६	तस्मिन् स्नात्वा सुनाभो	३२ ११०६
तस्माद् भजन्त्वा मा मा त्वं	२६ ३४०	तस्मिन् काले निराहारा []	स मा २५ ५५६	तस्मिन् हते दैवतैर्वी मुरारिर्	५६ ४३६
तस्माद्भुज्जन्-देहं जगत्पति मा	२० २६०	तस्मिन् काले स बलवान्	५२ १७६	तस्मिन् हते भ्रातरि भ्रमत्सो	३२ ८४६
तस्मात्स्त्रीश्च देवैश्च	स मा २६ १५६	तस्मिन् बोदावरोतीर्थे	३६ १५६	तस्मिन् हते भ्रातरि मातुले	४२ ५८६
तस्माद् यथा सुपति	५० ४५६	तस्मिन्-मध्ये स्थितो ब्रह्मा	स मा २२ १६६	तस्मिन् हते भ्रातरि मापत्ने	४३ १५६
तस्माद्यत्ने निवसन्ति पुन	४८ ४१६	तस्मिन्-भरपति श्रीमान्	३६ ५८६	तस्मिन् हि सर्वसखाता	५७ २०६
तस्माद्यदिच्छसि यथ	८ ४२६	तस्मिन्-भिपतिते रौद्र	३० ४६६	तस्मै जिलो-बेनासोद्	३७ ७६
तस्मात्सम्यं बाल्ये	६५ ५१६	तस्मिन्-विबुधे गणपे	४२ ५६६	तस्मै दत्तैव ता विद्या	स मा २२ ६००
तस्माद् युयु श्रद्धया	स मा १४ ५५०	तस्मिन्-निवाचन द्वीपे	११ ४८६	तस्मै निवेद्यत्मानम्	३८ ४८०
तस्माद् गो कृत्वावायानि	६८ ७१६	तस्मिन् प्रयाते भगवान्निवे	६ ५६०	तस्मै स चासन दत्त्वा	स मा २६ २७६
तस्माद्वाभ्य प्रति विभो	५१ ४६६	तस्मिन् प्रविष्टुमागस्तु	स मा २६ ५७०	तस्मै समस्तजगताम्	स मा ६ २४६
तस्माद् वर त्वा प्रतिपूजनाय	६ ५१०	तस्मिन्-प्लथे स्थिता दृष्ट्वा	स मा ११ ५६	तस्य क्षेत्रस्य रक्षायै	२३ ३६६
तस्माद्गर्णा स्वयमस्थास	४८ ४६६	तस्मिन् ब्रह्मा समुद्रभूत	स मा २६ ३०	तस्य घोरेण तपसा	स मा २० १५६
तस्माद्द्वयसहस्रात्	६४ ६७६	तस्मिन् मध्ये श्याणुर्गुणो	स मा २२ ३८६	तस्य चानयने नाय	स मा २३ ३१०
तस्माद् विषत् न श्रयो	स मा ३ १४०	तस्मिन् महाभर्मयुते	६२ २६	तस्य चोत्तरदिशागो [राजोत्त]	स मा २५ १५०
तस्माद् विनिगता वर्णा []	स मा २२ २८०	तस्मिन् महाभयमे पुण्ये	३८ १०६	तस्य चोत्तरदिशागो [लिङ्ग]	स मा २५ २०६
तस्माद् विमुच्यते पापाद्	स मा २५ १७०	तस्मिन् विवरद्वारे तु	स मा १४ ३३६	तस्य शान ब्रह्ममयम्	स मा १२ ११०
तस्माद् विरोधो जने	स मा २ ५६	तस्मिन् विगस्ते दनुर्दैन्यनाथे	३० ३१६	तस्य तद्रथन श्रुत्या [कृपा ^०]	स मा १६ ११६
तस्माद् व्रतानि देवेश	२८ ६६	तस्मिन् विष्णु सुरधेष्ठ []	४७ २१०	तस्य तीर्थै हरदत्त्वा	स मा १४ ३७०
तस्मात्स्य दास्याम्मान	३७ ९३६	तस्मिन् बुद्धे ह्यन्तर्गता	स मा २२ ८०६	तस्य तीर्थस्य सभूति	स मा २१ ११०
तस्मात्प्रियादा उत्पत्ता []	स मा २६ २०६	तस्मिन् सारसि कुष्ट्रासा	५८ १६६	तस्य तुष्टस्तपसाय	११ ५६
तस्मात्सम्पन्नानिद्वयं	२५ १३०	तस्मिन् सरस्वते विभो	स मा १५ ३३६	तस्य दक्षिणतो लिङ्ग [हारीतो ^०]	स मा २५ २५०
तस्मात्सम्पन्नानि शीघ्रं	५४ ११०	तस्मिन् सरै च य स्नात्वा	स मा १५ २२०	तस्य दक्षिणतो लिङ्ग [वर्षिदृष्ट]	स मा २५ २६६
तस्मात्समन्वितरभन्द्	स मा २६ ५६	तस्मिन् स देते भगवात्	२ २२६	तस्य दक्षिणतो लिङ्ग [वर्षिदृष्ट]	स मा २५ ३६६
तस्मात्समन्वितरभन्द्	स मा २६ ५६	तस्मिन् सुपुण्ये विषये निविष्टा	६ ५६६		
तस्मात्समन्वितरभन्द्	स मा २६ ५६	तस्मिन् देवापार्तां पुण्ये	२१ ३१६		

श्रीमार्घसूची

सत्य दशमस्तिमो[सत्य]	स मा २३ १५०	सत्यो विद्यावध हरि	१० २०३	सत्यो पुनस्तिमो[सत्य]	स मा २३ ४८०
सत्य ११स्तिमो[सत्य]	स मा २३ ३११	सत्या विद्या हृद पाणि	२१ ६४३	सत्यपुनस्तिमो	स मा २४ १६०
सत्य १२स्तिमो	स मा २३ २७१	सत्यो विदुष्ट बह्वन्	४१ ६४१	सत्या नव्यया धृष्टि	स मा २४ ४२३
सत्य सप्तमसप्त [सत्ये]	स मा २३ ३०	सत्या तुल्य श्रीव	२४ ६०	सत्या भक्त्या पा	२१ १०१
सत्य सप्तमसप्त [सिद्धि]	स मा २३ ८३	सत्यापुत्र सोमकातपुत्रा	स मा २४ २१०	सत्यामन्य मर्त्ये तु	४६ ४३
सत्य देवमय स	स मा १० ६०१	सत्यो वाचते गोर्वा	स मा २३ १६०	सत्यमान्य गुण जात	६४ २४१
सत्य देवोपिदेव्य	स मा १० ४६०	सत्य 'सूत्र' विष्णु	१० ११०	सत्यामाशयमानस	४३ ८१
सत्य पत्नी बभूवाव	स मा २६ ६१	सत्यो सनामानस स	स मा ३ २४०	सत्यामाशय'विष्णु	४६ ६६०
सत्य पतिम'स्यारे[विष्णु]	स मा १६ ३०	सत्या सत्यमय, सत्य	१० ४७३	सत्यामुक्ति भा जात	६४ ६०
सत्य पतिम'स्यारे[विष्णु]	स मा २४ ३०३	सत्या सत्यवदना	स मा २६ ७३	सत्याम्बर नास' पावकय	६१ १२३
सत्य पाररत्न'सं	४६ ४१	सत्या सत्यु विष्णु	१० ३११	सत्या मत्तर क्षुण	३० ६४३
सत्य पुण्डय जात	४२ ४६३	सत्या सा सत्युत्पा	२२ १८१	सत्या १ वी बभूवा	२६ ६११
सत्य पुत्रासप्त	४६ २४१	सत्योस्नाय पुत्रयमा पुत्रा	स मा २२ २४०	सत्या'त्रिनासय	३० ४११
सत्य पुत्रा गुण'सप्त	११ ४०	सत्यो स्नाय पुत्रिपुत्रा	४२ ६०	सत्या'दूरे गहनम्	३० ६०
सत्य पुत्रा गुण'सप्त	४६ ४३०	सत्या स्नाय सक्तोर्षे	स मा २१ ६०	सत्या सिन्धु'सिद्धे	६४ २४१
सत्य पुत्रो मगडेवा	स मा २ ४०	सत्यो स्नायु मयाजाता	४६ ३११	सत्यागो'सप्त नाम	४६ ४३
सत्य पुत्र स'सिद्धे	स मा २४ ३२३	सत्यो स्नायवा मयाजा	४२ ६०	सत्यासी, स'विद्या साधो	६४ २३१
सत्य प्रयाग'सन्तो	स मा २४ ३६०	सत्यो स्नायवा मयाजा	४२ ६०	सत्यासुत्पत्त' बह्वन्	४४ ४०३
सत्य श्रीताम विजयो	स मा २४ १४०	सत्यो स्नायवा मयाजा	४२ ६०	सत्या'स' मयाजास्ये	४० १०१
सत्य भावा स सुधोरो	४६ ४४०	सत्या स्नायवा मयाजा	४२ ६०	सत्यासप्तमो'सिद्धे	२३ १६३
सत्य भाव विद्या ताम	६४ ७३१	सत्या स्नायवा मयाजा	४२ ६०	सत्यासप्तम' धमग [सत्य]	३० ११०
सत्य मय्यन वी सई	स मा ११ २४	सत्या स्नायवा मयाजा [सत्य]	२३ ७३	सत्यासप्तम' स्यास [सत्य]	३६ ८१३
सत्य मया'स्य'सु'सु'सु'	६४ ६००	सत्यो स्नायवा मयाजा	४२ ६०	सत्यासप्तम' स' स्यास	स मा ११ १२०
सत्य विद्यमयो धूमि	स मा १० ११३	सत्या स्नायवा मयाजा	४२ ६०	सत्यासप्तम' स' स्यास	३० २८१
सत्य विष्णु स'सु'सु'	६६ १४८	सत्या स्नायवा मयाजा	४२ ६०	सत्यासप्तम' स' स्यास	११ ३३३
सत्य बला'स्य'सु'सु'सु'	स मा ४ १२३	सत्या स्नायवा मयाजा	४२ ६०	सत्यासप्तम' स' स्यास	११ ३३३
सत्य विष्णु'स्य'सु'सु'सु'	६ ८६०	सत्या स्नायवा मयाजा	४२ ६०	सत्यासप्तम' स' स्यास	११ ३३३
सत्य विष्णो बभूवाव	६ ८६०	सत्या स्नायवा मयाजा	४२ ६०	सत्यासप्तम' स' स्यास	११ ३३३
सत्य विष्णु'स्य'सु'सु'सु'	६ ६००	सत्या स्नायवा मयाजा	४२ ६०	सत्यासप्तम' स' स्यास	११ ३३३
सत्य धर्म'स्य'सु'सु'सु'	स मा ११ ३००	सत्या स्नायवा मयाजा	४२ ६०	सत्यासप्तम' स' स्यास	११ ३३३
सत्य धर्म'स्य'सु'सु'सु'	४३ ६११	सत्या स्नायवा मयाजा	४२ ६०	सत्यासप्तम' स' स्यास	११ ३३३
सत्य १-१-१-१	स मा ६ ४४	सत्या स्नायवा मयाजा	४२ ६०	सत्यासप्तम' स' स्यास	११ ३३३
सत्य १-१-१-१	स मा १२ १२०	सत्या स्नायवा मयाजा	४२ ६०	सत्यासप्तम' स' स्यास	११ ३३३
सत्य १-१-१-१	स मा २० १३३	सत्या स्नायवा मयाजा	४२ ६०	सत्यासप्तम' स' स्यास	११ ३३३
सत्य १-१-१-१	१ २० ११३	सत्या स्नायवा मयाजा	४२ ६०	सत्यासप्तम' स' स्यास	११ ३३३
सत्य १-१-१-१	१४ ६६३	सत्या स्नायवा मयाजा	४२ ६०	सत्यासप्तम' स' स्यास	११ ३३३
सत्यो स'स'स'स'स'स'	४६ ८८३	सत्या स्नायवा मयाजा	४२ ६०	सत्यासप्तम' स' स्यास	११ ३३३
सत्यो स'स'स'स'स'स'	२० २०	सत्या स्नायवा मयाजा	४२ ६०	सत्यासप्तम' स' स्यास	११ ३३३
सत्यो स'स'स'स'स'स'	६४ ६०	सत्या स्नायवा मयाजा	४२ ६०	सत्यासप्तम' स' स्यास	११ ३३३
सत्यो स'स'स'स'स'स'	४६ ४८०	सत्या स्नायवा मयाजा	४२ ६०	सत्यासप्तम' स' स्यास	११ ३३३
सत्यो स'स'स'स'स'स'	२३ १३	सत्या स्नायवा मयाजा	४२ ६०	सत्यासप्तम' स' स्यास	११ ३३३

तस्योपरि तुन्दस्तु	१२ ६०	ता सुष्टमाना धुधिता	स मा २८ २७०	तान् दृष्ट्वा घोररूपास्तु	६४ ४३
तस्योपरि महापुर्वम्	५१ ८३	ता अन्नवीक्ष्यन् प्रीया	३१ ४२०	तान् दृष्ट्वा लीलवा दुर्गा	२१ ३४७
तस्योर्ध्वंशृङ्गे मुनिसस्तुता गा	१६ ३६०	ता एव तिष्यन् तास्ता []	६८ ६३	तान् दृष्ट्वा तान् चक	१८ ३५३
तस्योर्ध्वान् हरिद्वैव	२३ २६३	ताडयन् सुविप्रञ्च	४० ५४०	तामिदृष्ट्वा समीक्ष्य	४२ ५५३
तस्योर्ध्वं वैदिक कृत्वा	५२ ६२०	ताडयामास वेगेन	४० ५४०	तान् पाताञ्जलात्था चके	१० २८३
ता कृत्वा च्युतचर्चिधा	८० ३३	तादितरयाय गन्था	८ २१०	ता प्रभयान् मुरगणान्	४८ १०३
ता च भिच्छेद यतवान्	८ २३०	तात कोऽय हरिर्नाम	{ स मा ८ २६३	तान् भस्मघातवा चक	१० ५०
तां च तद्वनमायान्ती	३८ ६६०	तात निस्तेजसा दैव्या	५१ ३३	तान् मूढदृष्टीन् सप्रथ	३६ ४०
ता चैवाप्याप मूढा	४६ ७३०	तात निस्तेजसो धत्या []	स मा ८ २३	तापह कौतमिष्यामि	स मा १२ ३०
ता तथा चास्तर्षाङ्गी	४६ ४००	तात मोहेन मे नात	५१ ४४३	तापेव च प्रगस्तानि	६८ १०३
तां तुष्टुवदववरा सहैणा	१६ १८०	तात याधे मगरूपे	३५ ४०३	तान् स्रोव नवानावो	३३ ३१०
ता तदानीं च तन्वङ्गी	३७ ४१०	तानप्यस्य वाराय साध्या	८ १६३	तान् वायवास्तवा पावा	१६ ११०
ता दृष्ट्वात् पद्मजन्मा	३१ १२३	तानचद्रेप्ररो भवया	६८ ८३	तान् विनोक्ष्य ततो देवो	स मा २२ ५५३
ता दृष्ट्वा कामसततस	३७ २७३	तानर्थाप्यादिना गल	२६ २५३	तान् ससृष्टवान् हरो दृष्ट्वा	५७ ३८३
ता दृष्ट्वा चाहसर्षाङ्गी	३३ १६०	तानदिताय रणे दृष्ट्वा	३३ ३३३	तामगृह्यन् द्विवास्तौम्य	५६ ३७०
ता दृष्ट्वा देवजननी	५१ १०३	तानस्या दास्युदेवेन	४ ४५३	तापतं कन्धकाम्या धि	३६ २२०
ता दृष्ट्वा परिपप्रच्छ	४० ८३	तानह कौतमिष्यामि	४६ २६०	तापित तपसा ब्रह्मन्	६ ५०
ता हृष्ट्वा प्राह कुडिले	३१ ५०	तानह च हृतिष्यामि	स मा ७ ११०	ताभि परिच्युता तस्यै	४४ ८७३
ता हृष्ट्वाभिर्मा ब्रह्मा	स मा २८ ५३	तानावतानिरोधय	४७ ३३	ताभिराश्रासिता चापि	२२ ३७०
ता हृष्ट्वाग्नात्वा धौमान्	३८ १५३	तानागतान् बापजस्तद्	५५ १२३	ताभिनिपायमान तु	३० १०३
ता हृष्ट्वा मुनय प्रीता []	स मा १६ २२३	तानागतान् प्रथमीक्ष्य देव	१० ३६३	ताभिर्मां सतात रथ	स मा २६ १४६०
ता दृष्ट्वा राक्षसैर्वैरै	स मा १६ २७३	तानागतान् समीक्ष्य [देवत]	२६ ३३	ताभिस्ततस्त्वन व्याप्त	स मा १४ ३१०
ता दृष्ट्वा बहूषे मष्ट	६४ ७२३	तानागतान् समीक्ष्य [पुम्भस]	३६ १४६०	ताम्या मध्ये तु यो देशत	३ २६३
ता दृष्ट्वा स मुनिष्वािन्य	३७ ७२३	तानागतान् सुष्टान् दृष्ट्वा	२२ १३३	ताम्या स दृष्ट्वा चोत्तमाम्या	५५ २६३
ता न दने देविरिपुस्तरुवी	३३ १३३	तानादाम विप चारी	४८ २३३	ताम्या रित्ताम्या तनैव	३६ ५३
ता प्रविश्य तमा दिव्या	स मा ३ ३३३	तानापतत् एषानु [चाप]	४ ३६३	तामन्तरिक्षादागरीरिणी वाक	४६ ७३
ता प्रादादिति सधुय	२८ २६३	तानापतत् एषानु [वागात्]	८ ६३	तामन्धेय कपि प्रायाद्	३६ ८७३
ता प्रादादेवराज्याय	४६ २५३	तानाताभ्रनष्टद् दृष्ट्वा	४ ४१३	तामन्धेय महावेग	३६ १०७०
ता प्रापयति देवेनाथ	२६ ३७०	तानाह पथसमूतो	३४ २४३	तामप्यवाप्यद् ब्रह्मा	२५ १६३
ता प्राह पुनि कस्यासि	३७ ७३३	तानि च दत्या मयवति	४७ ४०३	तामये च सहस्राथ	२८ २४०
ता बाणकृष्टिमनुजा	१०१६३	तानि सुवर्णम्यापनोति	६७ ६३०	तामस रूपमस्थाय	४६ ५७३
ता मृता ऋषयो दृष्ट्वा	४६ ६८३	तानुवाच प्यग्नूतिर	३६ ६०	तामसस्य मनो पुनो	४६ ५६३
ता मुक्षामिति विनाय	३७ ५७०	तानुवाच तया ब्रह्मा [विमथम्] स मा २४ ८०	३६ ६०	तामसा मममाज्ञीरथ	१३ ४२०
ता मेना हिमबलक्षणा	२४ ११०	तानुवाच यथा ब्रह्मा [सुष्टान्] स मा २४ १०३	२८ ३३३	तामसता निरीक्ष्यैव	४६ १५३
ता लघ्यमाना स्वचक्र समीक्ष्य	४२ ३८३	तानुवाच भयो दून	३६ ३२३	तामागता सती दृष्ट्वा	४ ५३
ता नार्णी मधुरा श्रुत्वा	३६ ५०३	तानेकचित्तान् विज्ञाय	३६ ३२३	तामागता हरो दृष्ट्वा [प्राञ्छ]	३ ३३
ता वेगात्वाश्वनासो तु	३७ ६००	तान् करणव भगवान्	४१ १६०	तामागता हरो दृष्ट्वा [भूपो]	२५ ३६३
ताद्यः सर्वाश्रयाणाद्	३८ ६६३	तान् शाल्या गकर वाक	५५ ६३	तामागता तदा गति	४३ ११८३
तास्त्व प्राक्स्वसि भयम्	स मा ७ २०	तान् दुर्गा स्वर्गैरिच्छवा	२१ २५३	तामापतन्ती प्रसवीक्ष्य विष्णु	४७ ४६३
ता ससृष्टा समाजम्	२८ १३३				
ता सर्वा कतिमात्रिय	४६ ५००				

वामनपुराणस्य

ते वाप्यप्युव्युषा []	४५ ११०	तेनाय तुष्टोऽस्मि मृश द्विविन्द्र	३६ ४६०	तेऽयाम्जमुस्त्वरावन्त	२६ ४५३
ते चास्यं वरदा ब्रह्मन्	४६ ४६३	तेनाथमेव पुत्रकृत्य	स मा २६ ४५०	ते प्राप्ता शम्बर तूर्ण	४२ ६३०
तेऽचरेरेणं सभ्राता	स मा ४ १७३	तेनापि तत्र निःशर्म्य	स मा १८ २६३	ते प्राप्नुवन्तु सदन	स मा २० १६०
ते द्याधमानामुरवागजालैर	४२ ५००	तेनापि दैवस्तीक्ष्णाम्या	१८ ६३३	तेऽनुवस्तव र्धं पृष्ठा []	स मा १४ ५३०
तेजसा चापि धार्यं ग	३१ १६३	तेनापि वृषस्तरेषा	३६ ४५३	तेऽनुवन्तु श्रेयसो विप्र	स मा १८ १००
तेजसा भास्कराकार	स मा ३ २००	तेनाप्यन्त पुरवरे	६४ ६४०	तेभ्यः स चाभव दत्त्वा	४७ ३६३
तेजसा अगसा चैव	स मा २७ १२३	तेनाप्येति न सदेहो	स मा १० ३००	तेऽप्येव दानववत्	४२ २०३
तेजसा विजितास्तस्या []	२५ २५०	ते नामरचरणाद्विगो	६७ ६१०	तेभ्यो दत्तानि प्रादानि	स मा १५ ७०१
तेजसा शोषितै शेष	स मा २२ ३३३	तेनापि यद्व्याजो	२५ ३२०	तेभ्यो दास्यन्ति पितरो	स मा १४ १२०
तेजसो हानिदत्तया	स मा ८ १६०	तेनापि चित्त्रिचर तत्र	३७ २२०	ते मद्रचनमाकर्ष्य	६४ ८२३
तेजस्विना यद्विहासं उजो	१२ ४६३	तेनापि ता न सदेहो	६७ ६८०	ते मुक्तागामा सुखिनो भवन्ति	६७ ७४०
ते ज्ञाता मरतो नाम	४५ ३७३	तेनापि सिद्धिं समुपाचरेत्	१४ ३८०	ते मुहूर्तोऽपि सभ्राता []	स मा ३ १८३
तेऽज्यायन्ताथ सप्त []	४६ ४५०	तेनापि ता देववरेण दैत्या	१० ४१३	ते यत्नतोऽपि तुंगा	४४ ७७
तेजोऽन्विता गामवरधमाश्र	४० ३२०	तेनासो वीक्षिताश्रम	१६ २८३	ते याति निवस स्थान	६७ ५४०
तेजोयुक्ता सुचार्वङ्गी	४६ ४७३	तेनासो भगवान् प्रीत	१६ २३३	ते यान्तु सँभ्याता सद्यो	२६ १४०
ते तत्र शकर द्रष्टु	५७ ३६०	तेनासो भगवान्नाथ	२६ १०३	ते लभन्तुपवासरय	६७ ६७०
ते तस्य कामयासाद्य	४ ४३३	तेनासो गतिनिर्जिता	१६ १७०	ते वष्यमाना प्रमथैर्	४२ ५४३
ते तु सर्वे महाभावा	स मा १६ २८३	तेनाह त्वा सदेत्युत्वा	स मा २० २२०	ते वष्यमाना विह्वेन	२६ ५३०
ते स्वासम्पत्तस्वाद्या []	४६ २३०	तेनाह परया भक्त्या	स मा १० ७१३	ते वष्यमाना धननायकेन	४२ ४५०
ते स्वासन् मरतो ब्रह्मद्	४६ ६२३	तेनाह प्रतिजानामि	६२ ५३०	ते वष्यमाना बलिभि	४२ ११३
तेऽधिरहस्य रथास्तूर्ण	३६ ६६३	तेनाहूत पञ्चचैव	१४ ६०	ते वष्यमाना रँदया	२१ १२३
ते ध्रुवुना दानवेऽत्रा	५२ २६३	ते निजिता सुरगर्वा	४५ ३०	ते वष्यमानास्त्वथ देवताभिर्	३० २४३
ते ध्रुवुनाकम् तु निशम्य दैत्या	५२ २०३	ते निश्चेरुमहत्मानो	४४ ७४०	ते बह्विहता कृताश्रय	१२ ३००
ते घातपाण्डुरपुटा इव राजत्सा	६७ ७१०	तेनेद सकल व्याप्त	स मा २२ २१०	ते विमुक्ताश्च कल्पुर्	स मा १२ १४३
ते नन्वा कीर्तिता सद्भिस्	१५ ३५०	तेनैकेन सहसाद्य	स मा ३ ५०	ते विष्णुना हृष्यमाना	४७ ३५३
तेन ज्ञान हि वै नष्ट	४१ २०३	तेनैव कर्मयोगेण [स्वेन]	५६ ३३	ते विपुष्टा महेशेन	४४ ७६०
तेन ज्ञानविकेको वै	३६ ७०	तेनैव कर्मयोगेण [नाम्या]	५६ ४०	ते इक्ष्णुवर्षमनुज	४ ३७३
तेन तस्य परा प्रीति	१८ २०	तेनैव कर्मयोगेण	५१ १३३	ते बोध्या वन्तुना	६८ ६८०
तेन वृष्टा भविष्याभो	स मा १५ ५०	तेनैव गर्भं पितिज	५५ ३४३	ते श्रुत्वा श्रेयस सर्वे	स मा १८ १३०
तेन व्यक्तस्तु मयथा	४६ १७०	तेनोत्तो नैव मरतो	५२ ६३०	ते श्रुत्वा सत्सा नाथ	३२ ३३३
तेन शैलशयविश्रयात्	स मा १३ २८०	तेनोपगम्येन दिवस्पुत्रेन	५२ ४२०	तेषा कीर्त्तितोऽन	स मा २१ १७३
तेन पापेन महता	स मा २८ ५०	ते परिहाततत्स्थायै	३८ ५६३	तेषा क्लेशयस देव	स मा २२ ४७३
तेनापि सृष्टान च तेजसा वृत्	१६ ६३	ते पदपति पर मुक्त	स मा २१ २६०	तेषां गुदेन चात्राणि	१२ २५०
तेन भोकेषु मार्गोऽथ	स मा २२ ८२०	ते पात्यन्ते च विष्णुने	१२ ३२०	तेषा च प्राथम्यक्युक	४६ ३२०
तेन शीर्णेन स ययं	स मा २८ ६३	तेऽपि सतीर्यमासाद्य	स मा १५ ७३०	तेषा च वीर्यमनुज	२६ ५००
तेन सत्येन धमाद्या []	१८ २२०	तेऽपि निष्कृतापराति	स मा २४ १६३	तेषा सद्भ्यापित श्रुत्वा	४४ ४४३
तेनाभ्यम् ज्यत्सर्व	५६ १६०	तेऽपि विष्णुपत्तपसो	४६ ३३०	तेषा तद् वचन श्रुत्वा	स मा १८ ११३
तेनाहान्तास्त्विके लोका []	२८ ३३०	ते सिष्यन्ते गितापि	१२ २८०	तेषा तु ध्वनिमाकर्ष्य	४६ ६१३
तेनाहान्तोऽभवद् ब्रह्मन्	३१ ३०	ते शुच्यन्ति महात्मान	स मा १६ २४०	तेषा ते मुनयः श्रुत्वा	स मा १६ ३६०
तेनाज्ञानेन भवतो	४१ २७३	तेऽयाम्जमुह्रावेवाद्	२६ ६६३	तेषा न दुर्लभं किञ्चिद्	स मा २१ २३३
तेनाज्ञियसता दैव्य	४३ ११६३	तेऽयाम्जमुह्रं द्रष्टु	२६ १६०	तेषा नैवगतो बह्विर्	१२ १७०

तेषां पद्यविहितस्य	१० ५५३	ते रिकने चापि वीगन्वो	३६ २६३	मिडूटागिखरे ब्रह्मम्	६३ २६३
तेषां गुरुस्वर स्याद्यु	३२ ५०३	ते ह्यम्माना प्रमया []	३२ ६५३	विगततात्र किरतात्र	१३ ५७०
तया माता त्वय वैशो	२६ ३६०	ते ह्यम्माना निदित्रेद्	५० ६३	निजगय किशोपाय	स मा २६ ७३३
तया रविताग्नेन	५६ २००	ते पीयन्ते सरिच्छ्रुता []	१३ १६०	निगाचिचैत ब्रह्मर्षे	६३ २०१
तेषां लोहमया बीता []	१२ २२३	ते नम मेरुगिरार	६ ५०	निगाचिचैत ब्रह्मण	६१ १५३
तेषां वचनमर्थाद्य	५१ ३२०	तेवार्थान्धासमाना हरिश्चरुणितै		निगाचिचैतत्रिगणप्रतिष्ठ	५५ ५७३
तया तचनमावर्ष्य	५२ २७३	कान्तगडप्रवा रि	५७ ५१३	निर्गणुपुत्रे सायम्	१ ५०
तया विनपता वम	१२ २५३	तेर्वध्यमाना प्रुता मह्ये	५२ २६३	त्रिषिषा समायाम्त	२६ ५३
तया विधेयते ब्रह्मि	५ ५५०	तैर्विषिया जनपत्ना []	१३ १६३	विना चकार विष्ण	५६ ३३०
तया वै ह्युपयुक्त	६५ ५७७	तैश्चापि प्रहितस्तूर्ण	३१ ५०	विपुल्लसता कृदस	५२ ०३
तेषां श्रमाभितस्तानाम्	स मा २३ १५०	तैश्चापि मादं मयवाङ्गणाम	५५ २३०	त्रिभि प्रयोजन वि ते	स मा १० ५५३
तया सम्पन्नहात्र	१३ १३३	तोमत्तव जन्मसर्गे	१० २६३	त्रितान व हरिष्यन्ति	स मा २१ २००
तया साश्रवणश्रमात्	३६ ११२०	ताया चैव महावीरो	१३ २६३	त्रितान समुपायव	५७ १५०
तया स्वाभाविका सिद्धि	१३ ७०	तागता बागलाश्रव	१३ ५५३	त्रितानोपायित स्नातो	स मा १६ ५१०
तया ह्यस्युज्ज्वलेव	३५ १३०	तोप जगामा तु ततस्त्रिगुतो	६ ५००	त्रिविक्रम व बानिष्ठा	६३ ३३
तयापम्पानना मय	१२ ३१०	तो चापि भूमि सयम्ब	२६ ७३३	त्रिविष्टम् त्रिवाणे	५० ५५३
तयामनु हवा नीपा	६ १३३	तो ताभ्यमानो प्रमर्षेद्	३२ ७०३	त्रिविष्टमस्य प्रीत्यर्थे	६० २७०
तयामयागुहास्तता	१२ २००	तं हृद्यं तत्र गुर्यां	स मा १५ ३३०	त्रिविष्टुर्व परित्यज्य	५० ११०
तयामर्षं हि विनाय	३० ५२३	तो हृद्यमन्मयत तया	७ ५७३	त्रिविष्टुषु गतिस्त दानकेन्द्र	५६ ५२३
तयामर्षं महाबाहो	५७ ७०	तो देवो प्रणिपातन	स मा १५ २२०	त्रिविष्टुगुणैर्युक्ता	५२ ६१०
तयामाकर्ष्यं वचन	५२ ५७३	तो पमच्छ किमर्थं वा	३१ ३२३	त्रिभुम्भनमृतित्र	३५ ६६०
तयामापतता यम	५३ २३३	श्वन्वा तया हस्तिरूप		त्रिगुणा भुङ्क्ता वचन	२६ ५६३
तयामापतता गच्छ	३३ ५१०	महामा	स मा २३ ३६०	त्रिगुता मयतात्र	५१ २३०
तयामुपरि वैचावा	५१ ५०	त्यस्ता द्वैतजन युष्य	स मा २६ ५७३	त्रिगुतपानिन रम	३ ५०
तेषामपवातुनमार्थ	५७ ३५०	त्यन्त्वावतुल्यं निर्गत्य	५५ ०६३	त्रिगुलमवि मिहाय	२१ १५०
तयु तसोपरिष्टु	५५ ७३	त्यन्त्वाथमगि दूयानि	६ ६५३	त्रिगुलामिहान् मागाय	२ ५६३
तयु त्रिष्वपि तोषेषु	५७ ३३३	त्यन्तैव मन्मदीगि	५३ १२१०	त्रिगुलेन समालम्ब	५ ५६०
तयु त्रिय प्रयुज्यन्ते	६० ५०३	त्यन्ति नीलाशुषुषत वनस्तव	२ २३	त्रिगुण्य व चान् शृष्यद्	६६ १६३
तयु स्नातार्च्यं देवेना	५७ ३३	त्याम्ब धमास्तितिय	५० ३७३	त्रिगुण्य पचनम गु	१७ ६७३
तयुपविष्टु तया	३६ १५००	यमयुक्तो जगामाय	२ ५१०	त्रिगुणै महादेवम्	५७ ५१०
तेषव भूतपाणयु	५१ ५५०	यसो गुणाङ्गो याम	स मा ११ ११३	त्रिगुणै विनाश	स मा ११ १००
त स्तुमयास्तु श्रुप्या	२६ २३	यसोऽन्यत्रिभवेर्षेद्	५ २५३	त्रिगतवतपावस्या	स मा ११ ११०
त स्तु स्तान्निरता []	स मा २२ ५२३	यसोऽपान्ना त धमे	१६ ५०	त्रिगुण्य विनाशे	३१ २५०
त शममेभ्ये रतेया []	७ ५१३	यसोऽप्यै तव काम	१७ ६३	त्रिगुण्य वानवामात	५६ १०
त समुप्रीता भूयो	५३ ११०	यसो साक्षाज्जो वणत्	स मा ११ १०३	त्रिगुण्य वदण चाले	२६ १५३
त शान्ताऽनेनैव	३२ ३५३	यसोऽर्चिस्त्रिभुतिरध्यायम्	५५ ३६३	त्रिगुण्य वदण चाले	६५ १५०
त शचक्रमण्युक्ता []	स मा १५ ३१०	यस्ता सा निजगामाय	५५ ३३३	त्रिगुण्य वदण चाले	स मा २६ १३०३
त सर्वे भवता शोका	१२ ५३०	यता मत्ता च धाता च	स मा ६ ५०	त्रिगुण्य वदण चाले	३७ १००
त सर्वे परमेष्ठ	२० ७५३	यहि सा देव ईशान	५५ ३६०	त्रिगुण्य वदण चाले	६३ १०३
त सर्वेऽन्यत्रेभ्यं चैर्	५ ५१०	त्रिपाञ्चसाली	५२ ०६०	त्रिगुण्य वदण चाले	५५ २७०
ते स्तुवन्तो महर्देवं	स मा २१ १२३	त्रि साय तव पुत्री	३५ ३००	त्रिगुण्य वदण चाले	३७ १५३

वामनपुराणस्य

शैलोन्यप्रवर तीर्थं	३ २६०	त्वक्तोपरिदग्धोऽह	स मा ६ ६०	त्वयि प्रकृते वरद	स मा ७ ८०
शैलोन्ययोगेन सनायमेक	स मा ८ १६०	त्वक्तोऽसंभवा चैव	२८ २५०	त्वयि मे हृदय देव	स मा २६ १६२०
शैलोक्यमाकाशिमिरप्रदेर्षी	६ ५१६	त्वराद्यनक्षुभाभ्या हि	८ ६३०	त्वय्योक्तञ्च नैवास्ति	स मा २८ २३०
शैलोक्यमगुणु रने वृषाङ्क	४४ ५३०	स्वदिस्ताऽपि समभ्यागात्	३७ १२०	त्वयोक्तमच्युतामेव	स मा ८ ४८०
शैलोक्यराज्य भुञ्ज त्व	४८ २४०	स्वप्रसादात् सुराः सव	स मा १७ १६६	त्वयोक्तानि वषास्वेवं	६ ४०६
शैलोक्यरायमासिप्य	१ १६	स्वप्रसादाद्भुषीकेण	२३ ३५६	त्वयोक्ता जगतामीने	स मा ६ २७०
शैलोक्यराज्यमैश्वर्यम्	स मा ६ ५६	स्वप्रसादाद् भुषीकेण	३ ४४०	त्वय्येव ससृष्ट त्रयो	३६ १५६०
शैलोक्यलक्ष्मीवरदा	४६ १४०	स्वर्णि प्रपूजामिरतस	४८ २५०	त्वय्ये नमो नमस्तोऽनु	४३ ७२१
शैलोन्यविजयो पुत्र	१८ ५००	स्वर्णापत सुरो वार्ये	२४ ६६०	त्वा नाम देवा शिवमोरर्यति	४४ ५४३
शैलोन्यस्वापि नेता च	स मा ४ ३०	स्वदाथयाश्च हृद्यन्ते	स मा १७ १८३	त्वा पूजयिष्यति सुराः []	४४ ५५१
शैलोक्याधिपति पुत्रस	स मा ७ ७०	स्वदृष्टिपरायतेन	३७ ४७३	त्वा योगिनश्चित्तयन्ति	४ ५०३
शैलोक्यस्त्व जितशोभो	४४ ६६३	स्वदितार्थे यतिप्यामि	४३ ६६	त्वा वै समागतोऽस्म्यद्य	५६ ३२३
श्वम्भकः स पराजितु	४० ६०३	स्वप्रामवीतनाथक	६७ १७०	त्वा सवनेवारपति प्रतर्पय	२० ५०
श्वम्भवाय त्रिनेत्राय	स मा २६ ७३०	स्वप्रामनापिनो देव	स मा २८ १४०	त्वा स्तोष्यात् सप्त देवि	४४ ४६३
श्वम्भवाय सुशिखाय	स मा १५ ३५०	स्वमच्युतो हृषीकेणा	८ ५१६	यामाहृष्टहृद विदासो	स मा २६ १०७०
श्वम्भवेन मुनिश्रेष्ठ	४४ १७०	स्वमश्रमभ्रमोक्ता च	स मा २६ १०५०	त्वामुने पावसङ्कप	स मा ८ ३५०
श्वम्भको षडधाराश्च	स मा २६ १४२६	स्वमभ्ययो महान	८ ४६०	त्वामेव परम देवम्	५८ ५८१
श्वम्भकान्स्विननाथाय	स मा २६ १०२०	स्वमदिरत्तो मध्यञ्च	४४ ६४१	दु	
श्वहमुद्यग पिनेरसिद्	३६ १६०	स्वमात्स्व्य जगतस	६ ८०३	दृष्ट्वाऽखल दृक्चोदितंनिभ	४४ २६१
श्वहमुद्यग पिनेरस	३६ १६३	स्वमिन्श्च यमद्वेष	स मा २६ १२०१	यथा प्रचेता पुलहो	स मा ३ २७३
श्व वतां चैव धाता च	४४ ६१६	स्वमिन्श्च वपद्वारो	४४ ६२०	यथा प्रजापतिपथो	२ ७३
श्व वारण सर्व्वराजवरज	५० ३४०	स्वमुक्ता बधन्मुखाभ्यां	२६ ३४३	यथाकोपाद् यथा मुक्त	२२ १६०
श्व वृषा मुह भगव	५६ ३४३	स्वमूष्यवता ऊष्यञ्च	६० ४७०	यथावतवकर	६ ७६०
श्व वामनास्त स च अरामर्षितो	२५ ६४०	स्वमेव देवदेवा	स मा २६ १०६०	यथावत यत विगति क्षयवरे	४ ५७३
श्व बाह च अर्वाचे	स मा ८ ३७३	स्वमेव द्वय दृष्ट्वा च	स मा २६ ११७३	यतिग वरुण पाथम्	४७ २४०
श्व देव पुण्डरीकानम्	८ ४६१	स्वमेव मायाय विजो वरपुत्र	५६ २८३	यतिगो च द्विजातिभ्यो	१७ ४८०
श्व देवि शयलापारानां	स मा ११ ६३	स्वमेव मेघसपात्र	स मा २६ ११००	यतिगो भ्रतवृग्भ	१७ ६३१
श्व पापा च विप्रता च	६२ ४१६	स्वमेव त्वद्वैकु	स मा १६ १६३	यतिगोऽह नद्यान्त व	४२ १३३
श्व पापमोहायनिहेव पुत्र	४० १५०	स्वमेववावागता देवि	स मा १६ १४३	यतिगो च सर्व्वेद्य	१७ ५००
श्व पूर्य वद समे	६५ ३५०	स्वमेवारापितो पाय	स मा ६ ३०१	यतिगोऽभिमुक्त काम्य	६२ १८३
श्व पूर्यो ज्योतिरावाग	८ ५४१	यथा दृशा यमपुत्रोऽगुरेण []	६४ १३१	यतिगोऽन तु देवस्य	स मा २५ ५६६
श्व ब्रह्मा सृष्टिप्रामता	४४ ६२६	यथा अत्रायाज जगामयेव	५० ३५१	यतिगोऽभूत् स्तनभ्रम्	६३ ३००
श्व ब्रह्मत्वल्लवभोगात्	४४ ६१०	यथा तु दानवा दस्य	स मा १० १२०	यदो यजता गापि	स मा १६ ३७३
श्व मायापरायतो	स मा ६ २६१	यथा दस्ये भोगेभ	स मा २३ ३१६	यद्वरुणु वारणे वरिच्य	६ २४०
श्व मुने मोर्यति मां	३७ ४६०	यथा व तावत्सह वार्यदस्य	१६ ३१०	यद्वेदिस नष्टोऽस्मन्मोहादौ	३ २३०
श्व मे धाता विप्रतां करेभ्यः	स मा २६ १४५६	यथा वनविभूया हि	४६ ५१३	यद्विनिन्द्य वगायाम्	२६ २२०
श्व दापो स्व ग्नी वाय	स मा २६ ११५६	यथाऽर्षिऽतो नित्यम्	स मा २७ २८३	यद्व्यभक्ति सद्युः	३२ ५३३
श्व साङ्गादवपुत्र वेणस	३ २१६	यथा व्वातो वगावरे	८ ५४०	यद्व्यनिर्विर्गारुणम्	२१ ११६
श्व हि नारायणऽम्भ	८ ४८०	यथा वरुणो नाव	१ १६०	यद्व्यसति मुन्युः	४१ ४६१
श्व हि वेणसा देव	६० १२३	यथा गतिः व्वात	४४ ६३०	यद्व्यस्तवाव हृद्यन्ते	४१ ४६०
		यथाऽयं दस्वऽपि	स मा १० १५३	यथायं च अर्वावाय	८ ५७०

दण्डोपि भस्मसादनृत	४० १७B	दह्यु स्वैच्छया यात्यो	३१ २२०	दशवर्षसहस्राणि [त्रयत्]	१२, ४१A
दण्डोऽप्रावो वृत्तवर्जित्	३७ ३५A	दह्युर्वातमशुभ	३१, ४६B	दशवर्षसहस्राणि [कुभारत्वे]	३८, ३८०
दत्त तद्विदशायाति	५३ ५७०	दह्युर्मलय गोल	४४ ४B	दशवर्षसहस्राणि	३१ १६०
दत्तं ताम्यस्त्वया ह्यन्न	स मा २८-२६०	दह्युस्ते मुद्रा स्नाता	४६ ३२A	दशान्नो राजसन्नद्य	१४ २B
दत्त तेनायुरेतस्य	६५ ५१०	दह्युस्ते समासीनाम्	स मा २३ ३०	दशार्द्धवर्षे मुखद्वे	६२ १३०
दत्त यद्येष्ट जनिवास्तपामन्वा	४८ २८०	दह्ये च विरे पुत्री	४४ ८५A	दशाश्वमेध यज्ञोक्त	३ ४१A
दत्ता च दत्तेन हि तावतीय	६५ ३८०	दह्ये वायव्यभर	३८ ५४०	दशाश्वमेधिक चैव ~	स मा १४ ४६B
दत्त फल तद्व्यवन्ति देवा	६६ १०B	दह्ये दानवपतिसि	२६ ७०	दशुनि, पीडयमानास्ताम्	स मा २६ १८B
दत्त्वा कामाश्च विभ्रम्यो	स मा २७ ३२०	दह्ये दानवान् सर्वान्	४५ १००	दशाश्वमी दस्य भार्या	६ १०
दत्त्वा च तावान् कथमस्य शुक्लान्	२७ ४६०	दह्ये नन्दयन्ती च	३६ १३८०	दक्षिणाया वनपदान्	१३ ४६०
दत्त्वा तेभ्यश्च तस्यैव	५३ ३५०	दह्ये रघुनामान	३४ ४४०	दातव्य केचयप्रोत्थे	६८ ३३०
दत्त्वा द्वित्रेभ्यः कणक तिलाज्य	५० ३८०	दह्ये रूपसम्पन्नान्	३६ १००B	दातव्य केशवप्रोत्थे	५४ २२०
दत्त्वाऽन्य महाबाहु	५२ ५१०	दह्ये वृषाशिलरे	३८ २४A	दाता भौक्ता विभक्ता च	५२ ७२०
दत्त्वा मयाने च विभ्रुत्रिविष्ट	६५ ६२B	दह्ये निपुन कर्त्तृनिपुणो	१६ १४B	दातु मन्त्र स्वमात्मान	३७ ३६०
दत्त्वा रामान् पुण्यफलाभिप्राय्	६८ ३७०	दह्ये दीपाणि निविष्ट	६८ ४६A	दातुनिवारका ये च	१२ ४०
दत्त्वा शुक्ल च द्विगुण	स मा २६ ३६B	दह्ये मयूर स्वमुत्त महाजव	३१ १०२०	दातुर्वाचिमुत्तुब्जा	६५ १४०
दत्त्वेकस्य च या कन्या	३५ ४४B	दशास्त्वमूषानमपि स्वदर्वे	२० ३२०	दान तपो वाध्ययानं महर्षे	६४ ११४B
ददर्शं कन्यामिदं	३६ ३१०	दक्षिणानि चतु षष्टिर	३६ १०A	दान दत्त्वा यथा वाक्या	स मा १० ८४B
ददर्शं च महादेवे	३८ ६B	दत्ता सयोजितोत्थर्वे	६४ ४३०	दान ददासि तत्र यम्नस्तत्त्वश्रीष्ट	१६ २५०
ददर्शं तथ तस्यज्ज्ञे	३७ ७१B	दद्योन्न सहसर	१७ ११०	दान दद्या च द्यानिश्च	१६ २०
ददर्शं दह्यु कोपेन	५ २३०	दद्योत्तेन सम्पूर्णम्	५३ ११०	दान भूमि सर्वकामप्रदेय	६५ ४१A
ददर्शं दिवदेवेश	५२ ६०	दनुर्गर्भसमुद्भूतो	५२ १३०	दानवाना सहस्राणि	४७ १४B
ददर्शं नृपमान च	३६ ४५०	दन्ततोष्णनन्दूह	२८ ३B	दानवा निजिता सर्वे	४३ ७५०
ददर्शं पुरुष्ठीकावा	५७ ६८०	दन्ताभ्या तस्य द्वि शीवान्	स मा १० ६१०	दानवान् ध्वसयिष्याणि	५० ४१०
ददर्शं धाणानपराय्	७ ४३०	दन्भार्यं जपत यज्ञ	१५ २६B	दानवान् समवान् योर	३३ ४२०
ददर्शं बालद्विहय	४३ १३७०	दद्या दान त्वानुगत्य	४६ ११०	दानवाभ्रापरे रौद्रा []	३४ ४३B
ददर्शं दद्याधिपतेस्तनूज	६ ४६B	दर्शानात् तस्य तीर्थस्य	स मा १४ ५००	दानवास्तेन सोपेन	४३ १०४०
ददर्शं दानरथेष्ट	३८ ६०	दर्शानादेव स नृप	२२ ३४B	दानवेन्द्रय विक्रम्य	२२ ११०
ददर्शं कुमाशिक्षरे	३८ ६८०	दर्शनान्मुक्तिमानोति	स मा २१ १७B	दानानि च प्रशस्तानि	६८ ११०
ददर्शं दाम्प्य ब्रह्मण	४५ ११०	दर्शनार्थे यदौ श्रीमान्	५७ ६०	दानान्यविधितानि	{ स मा १० ७८B
ददर्शाप कताहरस्य	५६ ४००	दश्यानाह ददरूप [सद्य]	६१ ४४०		६५ ५७B
ददर्शांस्त्रिंशत् बाल	४५ ३००	दश्यामास तदरूप [सर्वे]	६६ ६०	दामोत्तरमुगाराण	५६ ६६A
ददर्शांश्चकतीतीरे	३६ ४००	दश्यामास देवाना	३६ २३०	दामादरस्य नृपस्य	६८ ३२०
ददस्व दान माम यम्ननीपित	१६ २४०	दक्षिणाश्च तत्र देव्या	स मा २३ २६०	दारपिकाशर्वाकरो	२३ ४०
ददस्व मा नाय तपस्विनेऽग्ने	२२ ५४B	दशद्रादशमासाह	१५ ४७B	दारपमाना बलवान्	१०, २४०
ददत्त नक्षत्रपुमान्	५४ ३४०	दश्या भुवनेष्टारश्च	१७ १६A	दारणं मुमद्दरुणं	४४ २५०
ददत्त भूमिर्विकर	स मा ६ ४००	दश्या भुक्तपदास्य	स मा १५ ४०B	दारयत्वमभामिन्व	३५ २५A
ददत्ताते परिजान-	३६ २A	दगतपयसयुक्ती	स मा २६ ११६B	दारयत्वस्वितो बह्विद्	स मा ११ ८B
ददशु 'गि'शु' त च	३१ ३८०	दार्यर्षातात्वे तु	४५ २७०	दासीदासमन्द्वाप्य	६८ ३५B
ददशु दीवराजस्य	२६, १५०	दार्यर्षाताम्यस्य	३६ ६४०	दासीदासाश्च भूतवाश्च	५२ ७६B
ददशु सर्वभूतानि	३६, ४७०	दार्यर्षाताम्येव	३८, ३२A	दासीतिम् मुष्यं हर पाद्वि मह	४४ ५५०

दासोऽह भक्ता विप्रा	२६ २६३	दीक्षा एव त्व पुरोडासात्	६० ४२०	दुर्गोचनश्च वक्तिन	४३ ५०६
दास्यते देवदेवाय	६० ४२०	दीक्षाप्रतिष्ठासमुक्ता	स मा १५ ६६०	दुर्वांरणी दुर्वापहो	स मा २६ १३६३
दास्ये गृह हिरण्य च	४२ ७६३	दीक्षिता कामद दिव्य	स मा ४ २००	दुर्मुत्तचेष्टान् चिनिहस्य वंद्यान्	३० ७००
दास्येते च तत सुन्द	३५ ३१०	दीक्षितोऽदीक्षित कान्तो	स मा २६ १३४०	दुष्टश्च वेगात्पयसासमीक	१० ३१०
दिसु सवागु गुहासु	स मा २ ६३	दीन हतबलोत्साह	५६ २५३	दुष्टा योनिमिमा प्राप्य	४६ ४२०
दिसु सर्वान् जग्मुस्ता	३३ ४६३	दीनान्दृष्टवा स शकादीन्	४६ ६०	दुष्टुख्यपूयितान्	१२ १३३
दिग्वासस चाम्पवदत्वतोता	२६ ६६०	दीपप्रदान स्वयमायताशी	६० ५६३	दुष्पुण्या भयि जाताया	३६ १४५०
दिग्वासोऽपि न तथा	१५ ४७०	दीयता ब्रह्मणा साद्धम्	३२ ४०	दुष्प्रवेश च त तस्या	२० ३६०
दिग्वासतो मौनिनश्च	४१ १५३	दीयता शैल काशीय	२६ ५६०	दुस्तरा परब्रह्मापि	१० ४६०
दिग्वासा बुधभाळडो	२ ३२०	दीयतामस्य वैश्वेन्द्र	४२ ७४३	दूरस्योऽपि कुरु एव	स मा १२ १०३
दिग्दिग्देव नमस्कृत्य	स मा १५ १६०	दीपकाल तपस्तपवा	स मा २० २३३	दूरस्योऽपि वन यस्तु	स मा ७ ५३
दिति कृताञ्जलिपुट	४५ ३००	दीधाम्न तस्याङ्गुलय सुपर्वा	२२ ५१०	दूरस्योऽपि स्मरेद्यस्तु	स मा १५ ००३
दितिवा दानवाभ्राप्ये	४ ३५३	दु स कृतापराधत्वाद्	५१ ४१०	दूर्वा सति उभिरयोऽप्युष्म	१४ ३६३
दितिनिष्टपुष्पा तु	४५ २०३	दु क्षताकसमावात्तो	३० १७०	दूर्वाञ्जलिसिद्धिश्चैव	स मा २५ २३३
दिसुदरात्त्वया गर्भ	५० ६०	दु खान्विता देवभनाद्यमीक्ष्य	५० २६०	दृढ दृष्टे तमुद्भव्य	६४ ६२०
दिव्यैव समायता	४७ २०	दु सर्ह दुर्चर मत्वा	१० २३०	दृश्य स्युस्मगदृश्यञ्च	६७ ३७०
दिव्यभूषा हया युद्ध	० ०	दु स्वप्ननागोजघ्न सुप्रभात	१५ २६०	दृश्यते हि तथा तप्य	६४ १७०
दिवाकर स्वस्ति करोतु शुभ्य	३२ १७३	दु स्वप्ननाशो भवति	५० २०	दृष्यत्वया नर रनात्वा	स मा १५ ५६३
दिवाकरश्च सोमश्च	स मा ३ ३३३	दु स्वप्ननागो भविता न सद्यो	३० ६५०	दृष्ट सभाभित्थापि	० ७०३
दिवाकराजामपि तेजसाङ्गुली	१६ ११०	दु स्वप्नो नश्यते सेवा	५० ७००	दृष्टमानस्त्रिणेवम	१६ ४४०
दिवाकरो भूमितले भवेन	१६ ६२०	दुष्पोदा नलिनी देवा	१३ ३१३	दृष्टमानस्त्रिनेवम	५२५०
दिवा चन्द्रश्च सूर्यश्च	१६ ००	दुद्राव विक्लवपतिर्	५ २६०	दृष्टश्च दानर्ह सर्वै	१० ५६३
दिवाऽपि सूर्यं पयान्पुताभिर्	३ ३३०	दुद्राव सिंह पुत्रि हनुकाम	२१ ४००	दृष्टा गौरी च गिरिजा	३३ १६०
दिवा सपत्ते बधित	स मा १३ ४०३	दुराचारो हि पुरुषो	१५ १७३	दृष्टा देववती नाम्ना	३६ ०१०
दिव्य वर्षसहस्र तु	० ३१०	दुरिष्ट कि तु देवाना	स मा ० ३३	दृष्टिपूत पदाकान्त	२६ २००
दिव्य वर्षसहस्र ते	स मा २२ ४४३	दुर्गा कालावनी भद्रा	स मा १५ १६०	दृष्टिश्चैवायमेवापि	स मा १० ५१३
दिव्य सहस्र परिवत्सराणा	२ ५२०	दुर्गातीर्थं ततो गच्छेत्	स मा २१ १५०	दृष्टोऽयं वैद्यपतिना	५२ ५४७
दिव्यमाल्याभ्यरघरा	स मा १६ ४३०	दुर्गं तु रीद्रेषु निचाचरेण	१२ ५५०	दृष्टो भग्नसुष्टुभ	६४ ६१३
दिव्यपूतिधरो भूत्वा	स मा २७ २५०	दुर्जयोऽसौ महाबाहुस्	० ३४३	दृष्टो यया देवपतिमदृष्ट	३३ १४०
दिव्या सत्यवतीं तया	स मा ४ ११३	दुर्जयोऽसौ रणपटुर्	४३ ७६०	दृष्टा सूर्योऽमरगमनुजो	२२ ४००
दिव्यैः शानगमिवादीर्	स मा ३ १६०	दुर्दस्यं घोषरहितो	११ ४७०	दृष्टयन्विना तर्वावाये	५ ६०
दिग्देवैर्देवैर्देवैर्	४ ४४०	दुर्दया नारसिंहो घुरपुष्टिरत्वा एव		दृष्टा च तां वपकिवावनेन	२२ ५०३
दिग्देवैर्देवैर्देवैर्	४ ४४०	तदग्नेरी सयञ्चा	३० ६२०	दृष्टा जगाम नमरो	२१ १३०
दिग्देवैर्देवैर्देवैर्	४ ४४०	दुर्दरो दुर्मुत्तश्चैव	२१ ३२०	दृष्टा हर्षं तपो धोरं	१६ २४०
दिग्दिव्यैर्देवैर्देवैर्	४ ४४०	दुर्गं यो दुष्कृताञ्च	स मा २६ १३६०	दृष्टा सद्यो महातेजा	६७ २१०
दिग्दिव्यैर्देवैर्देवैर्	४ ४४०	दुर्गं यो दुष्कृताञ्च	स मा ० ३६०	दृष्टा तु ताद् गुरुराद् सवाद्	स मा ३ ३०६
दिग्दिव्यैर्देवैर्देवैर्	४ ४४०	दुर्गं यो दुष्कृताञ्च	६६ १०३	दृष्टुर्देवं तां चक	७ ४४०
दिग्दिव्यैर्देवैर्देवैर्	४ ४४०	दुर्गं यो दुष्कृताञ्च	३५ ४४३	दृष्टा तु सदा देवा]	४ ३१०
दिग्दिव्यैर्देवैर्देवैर्	४ ४४०	दुर्गं यो दुष्कृताञ्च	१२ २६०	दृष्टा ए परमं सर्वं [ततोऽह]	स मा २ १५०
दिग्दिव्यैर्देवैर्देवैर्	४ ४४०	दुर्गं यो दुष्कृताञ्च	४२ ४६३	दृष्टा ए परमं सर्वं [सर्वं]	४६ ४४०
दिग्दिव्यैर्देवैर्देवैर्	४ ४४०	दुर्गं यो दुष्कृताञ्च	४० ६३३	दृष्टा तां चरत्सत्या]	स मा १६ १३३

हृष्टा विनेतो धनदस्य पुत्रं	१.४६०	हृष्टद्वयं दौलादवतीर्यं शीघ्रम्	२०.२५	देवानस्मान् श्रुति विश्वं	स.मा.४.५०
हृष्टाय चको सहस्रैव कोपं	११.५०	हृष्टद्वयं सर्वान् भुवनांस्तपोदरे	४३.४१०	देवानां च परा सप्तमीः	स.मा.६.५०
हृष्टाय घृष्टप्रसन्नैः	७.६५०	हृष्टवोचतुस्तो महिषापुरस्य	२०.२०	देवता पत्नी धर्मः	११.१५३
हृष्टवार्तिनि मुष्टिं कृवाङ्कितिलु	५०.२७३	हृष्टवोचुः किमिदं लोकाः	३४.२३०	देवतां प्रीति नः कर्म	स.मा.३.१३
हृष्ट्वा देवं हर्षयुक्ताः	स.मा.२.३.३०३	देवताश्रोत्रयुगलं	३५.६३३	देवतां मातरश्चापि	१७.५०
हृष्ट्वाद्भवदगवागिन्	३२.७८०	देवतं दोहदं विष्णोः	५४.१५०	देवताभिजन्तुद्वैत्याश्च	४७.३२०
हृष्ट्वा नमः स्थागवेति	३६.३३०	देवताभिः द्विजमुस्येभ्यो	६८.२६०	देवान् पितॄन् समुद्दिश्य	स.मा.११.१.२३
हृष्ट्वा नारायणं देवं	८.४६३	देवं शङ्करं विष्णुं	६७.४२०	देवा भुवन्ति ते सर्वे	स.मा.५.११३
हृष्ट्वा न्ययोपगत्युच्यं	३८.६८३	देवकार्यं त्वया देव	३१.५००	देवार्चने च निरता	८.११०
हृष्ट्वा पञ्चमिदं धेनुं	३५.७११	देवक्रिया रतिर्भूत्वा	५१.११८०	देवार्चनं चैत्यतरं चतुष्पदं	१४.३२३
हृष्ट्वा पराच्छ केनायं	३१.१२०	देवताः प्रीणयेत्सुखं	स.मा.२०.२८०	देवाश्च श्रुतयः सर्वे	स.मा.२.४.६०
हृष्ट्वा प्रणम्यैव च सिद्धिसाधकी	११.२०	देवताः सर्व एवात्र	स.मा.२६.६६०	देवाश्च पृष्टतो जगद्गुरु	२७.८०
हृष्ट्वा प्रहृतं कामं च	६.५७०	देवता श्रुतयः सिद्धाः	स.मा.१२.२.१२	देवाश्च मुमुक्षुस्तुलं	स.मा.१.१५०
हृष्ट्वा प्रोवाच बभनं	७.१७०	देवतातिथिभूतेषु	१२.१२३	देवाश्च सिद्धाश्च मत्तोरादिव	११.३७३
हृष्ट्वा ब्रह्महरो मुष्टे	४३.१०५०	देवदाना च माहात्म्यम्	स.मा.१.२०	देवासुररक्षणमजयो महाह्वे	५५.२१३
हृष्ट्वा बहुधं श्लोकधं	३७.६१३	देवतापितृसम्पत्त्यन-	१५.२४३	देवासुरोन्मूलनं प्राप्नो	४८.१५०
हृष्ट्वा मुक्तिमवाप्नोति		देवत्यागी पितृत्यागी	१५.३४३	देविनाया जते स्नात्वा	६२.७३
[श्रुति ^०]	स.मा.१.५.२६३	देवदानवगन्धर्वाः[:]	३५.७१३	देवि देविष्टाम्येव	२८.५३३
हृष्ट्वा मुक्तिमवाप्नोति[नरो]	स.मा.१.५.२८०	देवदानवगन्धर्वात्	४४.३०	देवी निपतितं हृष्टा	४.१५३
हृष्ट्वा मोक्षमवाप्नोति	स.मा.१.३.१६०	देवदेवं तथेमानं	५७.५३	देवीं सरस्वतीं व्यासं	
हृष्ट्वा यथेष्टं न च विष वा सा	२०.१५०	देवदेवं महानामं	स.मा.६.३५३	[प्रत्यादौ मङ्गलसंज्ञकस्य दृष्टीकषाट्.]	
हृष्ट्वा यमोऽग्नीदं वाच्यं	स.मा.२.६.५५३	देवदेवपतिः सासाद्	स.मा.१०.३८३	देवी च ता निजा मूर्तीः	३३.४३०
हृष्ट्वाश्च संपूज्य पितॄन्	५७.११०	देवदेवो जगद्योनिर्	स.मा.६.१७३	देवी च स्वतुलं हृष्ट्या	२८.७५०
हृष्ट्वा यथेष्टं देवं	स.मा.२.५.१२३	देवदेवो यथा स्यात्तुः	स.मा.२.२.१०३	देवेन्द्रविष्णुयमनोऽततोऽप्याय	५८.४२०
हृष्ट्वा यथेष्टं हरे	५७.२५०	देवदेवस्य चारि-	स.मा.६.१६०	देवेऽ बलिनिष्कम्भ-	स.मा.२.६.६५०
हृष्ट्वा यथेष्टं प्रीणित्य भूर्जा	२२.५७०	देव प्रदस्यवासानं	स.मा.२.२.५१३	देवेषु मत्तरोमा च	स.मा.२.१०
हृष्ट्वा विपत्रान्यस्त्राणि	४.४६३	देवत्रिभार्थमप्युच्यं	५५.१३०	देवेर्गर्भश्चापि वृष्टो पिरोपः	२६.७१३
हृष्ट्वा वेनोऽन्नतोऽन्नयं	स.मा.२.७.२७३	देवब्रह्मण्युजसु	१६.३५०	देवेर्निवारितः पूर्वं	स.मा.२.७.२०३
हृष्ट्वा दून्यं विप्रियस्यं	४३.१३३	देवमातुः स ददौ	५१.१०	देवो जगद्वोनिर्यं महात्मा	स.मा.८.२८३
हृष्ट्वा संपूज्य च शिवं	५३.६०	देवमातुः स्थिते देवे	५१.१३	देवो द्वितीयेन ज्वार वेगात्	५२.८५०
हृष्ट्वा स मुनिपुत्रं तं	३८.६६०	देवमांशप्रविष्टा च	स.मा.२.१.१६०	देवोऽप्याश्रित्य तदाद्रं	२५.३१३
हृष्ट्वा शैवं विप्रयेतुप्रसक्तं	३३.२८०	देवमिथा चित्रतेना	३१.६८३	देव्यङ्गमुद्रसंयते	२८.५७०
हृष्ट्वा स्कन्दं सम्भर्ष्य	५७.५७०	देवराजाय वामाद्याम्	७.२००	देव्या जयं देवगाणा विजोन्स्य	२१.५१३
हृष्ट्वा स्यात्तुं पूजयित्वा	स.मा.२.५.३५३	देवराजा महतीस्तु	४५.४१०	देव्या भद्रोऽवा महिषासुरस्तु	२१.३६३
हृष्ट्वा स्नात्वा सोमतोर्वे	५७.१९०	देवनेनाऽपि च गर्भं	१.११३	देव्याभिर्जितमनायाय	४३.६१०
हृष्ट्वा हृतानां प्रीत्या	३१.५००	देवनेत्यमन्दिदृश्य	५०.५०	देव्या स भगवान् हतः	स.मा.२.२.६६३
हृष्ट्वा कृषित्विस्तस्यु	३१.१२३०	देवस्वभ्रमज्जातं	स.मा.२.७.१६०	देव्याप्तोर्वे नटः स्नात्वा	स.मा.१.५.३५०
हृष्ट्वैव देवं निद्रायापिं तं	५०.३२३	देवानिधिप्रसिद्धे च पित्रोः	६१.१००	देवानुगिष्टं कुत्सधर्ममयं	१५.३८३
हृष्ट्वैव देवा हरिंकरं तं	३६.३१३	देवात् स यत्र वरमानुषायं	३२.११७३	देवो मुमुक्षे वरदे यथा जते	६५.५००
हृष्ट्वैव निवरं प्राह	३१.८७०	देवादिभिः सह बभूव	१.३०	देहं स्तप्या निरात्मन्	५२.५१३
हृष्ट्वैव यत्पया हृष्टे विनेद	३२.८३०	देवाधिदेवं वरदं	स.मा.२.३.५०	देहं हृतेन हृषार्हं	स.मा.२.७.५०

धर्मात्पथाः पौष्कर्याः[]	५७.३५७	धूम्रपद विविधं धूमं	१८.१८०	नवीविभिन्नानि नार्थसहो	३०.२२३
धर्मादेकाममोक्षार्थां	स.मा.२६.१००८	धूमो मधुकानिषो	१७.४७०	नगराव्याननालासु	५.४४०
धर्मादेकाममोक्षानि	१८.२१०	धूमलोहितदृग्वाय	स.मा.२६.७५७	नमनप्रागप चण्डाय	स.मा.२६.१००७
धर्मादेकाममोक्षादासु	१८.२४०	धूमसात मध्वं हौ दृष्टा	२६.४१६	न च बधिन्मनाम्नासे	२३.४७०
धर्मादेकाममोक्षस्यसु	४८.३३०	धुतराष्ट्रेण राता च	स.मा.१८.२४०	न च कोपेन निर्मुक्ता.	स.मा.२२.४०३
धर्मादेकामराक्षसि	६४.६६०	धुता मही हृता देव्या	५६.८२३	न अलाद स सखानि	५६.३६६
धर्मादेकामसंप्रति	१५.४४०	ध्यात्वा क्षणं प्रसविनि	६.३५६	न च जानानि सा कुप	३६.६४०
धर्मादेकामाद्यपवर्गमेव	६३.४६०	ध्यानयोगश्च योगी च	६०.४१६	न च जाने स केनापि	३६.४००
वम.वास अनावाय	६०.१००	ध्यानेन तेन हृत्निस्त्वियवेदनास्ते	६७.७२०	न च न बानकारोष्यं	स.मा.१६.३२०
धर्माद्यं प्राप्नुयुः तु	६२.१७७	ध्यापंस्वदास्ते मधुकैवध्वं	६८.११५०	न च परपन्ति तं देव[तत ^०]	स.मा.२३.२२३
धर्मं च धर्मं भूषात्वा	स.मा.६.१५०	ध्यायन्ति ये सततमध्वुतमौषितारं	६७.७२३	न च परपन्ति तं देवम्	
धर्मतरे धर्ममाने	४६.१४७	ध्यायन्ति चाग्नेवाच्यं	५६.७४०	[अन्वि ^०]	स.मा.२३.२५७
धर्मोऽप्रवच्यतुल्यादम्	४६.१००	ध्यायन्नारायणं वस्तु	६७.४८०	न च पीडा करिव्यामि	स.मा.७.१३०
धर्मो यद्वस्तवः सारयम्	३.२०७	ध्यायन् स्मरन् केवमप्रमेय	८.७१०	न च पुनकनं नैव	३७.५४३
धर्मोऽयं मूलं धनमस्य धाता	१४.१६६	ध्यायेद्दामोदरं यस्तु	६७.४१०	न च मन्त्रुत्सवा काव्यो	स.मा.२८.१६०
धर्मोऽहिंसा च देवेभ्यं	३५.४६६	द्रुवध्वज नमस्तेज्जु	६०.३००	न च धनकोति संख्यमं	३८.७५०
धाता विधाता संपाता	स.मा.२६.१३२०	द्रुवमेव्यति तेन एव	३७.६७३	न च शक्यो हरो जेतुं	३७.१८०
धातुषु शालिद्रिपदेषु विप्र	१२.४०७	न		न च सोऽस्ति पुमान् कश्चित्	३६.६८३
धारयत्येति चान्त् देवान्	स.मा.१०.७०	न बर्तव्यं घृष्टरथं	१४.४१०	न च स्नायोत वै नमो	१४.४७३
धारयत्यो तवा गर्भे	३१.११०	न कर्मवज्जो भवतो	८.६४०	न चान्तमलमद् बहव्	४३.३६३
धारयन्तुता वीणा	२.२६०	न कश्चिच्छानुवादं यादु	७.५१०	न चापि दृष्टं सुरत्य.	३६.३८०
धारयन् वै कारे दण्डं	२६.१६०	न कश्चित्तात केनापि	३६.६२३	न चापि राक्ष प्राप्नुं ता	३७.१६३
धारयान् कठोदेशे	३४.४०	न काश्चिद्युधे तेन	३४.३५०	न चावलानां तरसा पराक्रम	३.३६०
धारयामास विततं	२७.१००	न न स्यचित् स्वप्राप्यैर्यं	५.६००	न चास्ति भवतस्तुल्यो	४६.४२०
धारयिष्यामि योगेन	५०.४००	नकारो मुखमस्यो हि	३५.५५३	न चात्य पापान्तरित्	३४.१५३
धारयिष्याम्यहं तेजस्	२५.१०७	न केवलं प्रमारोऽन	६५.१०३	न चात्य सह योद्धुं किं	३४.३६०
धार्यधात्केनविन	स.मा.१०.८०	न केवलं सुरादोना	स.मा.४.३३	न चात्येन न वा जिह्वा-	स.मा.१६.१५०
धिक् एवां पापसमाचार	५१.२६३	न केवलं हि भवतो	४६.४०	न केत् तत्पापयोलोर्हं	५६.५४३
धिग् चिन्विस्वाह स वलि	५१.२४०	नक्त भुञ्जीत देवर्षे	१७.२४०	न केद् बलाप्रविष्यामि	२६.४४३
धीरा काव्येषु च सदा	५१.४००	नक्षत्रं तुल्यं गरम विधान	५४.३६०	न केद् अनामोऽय रमातल हि	१६.४०
धुम्बुः शकत्वमकरोद्	५२.१६०	नक्षत्रं तुल्यं चौरर्षा	५४.२२३	न केद्येत्तयो तारयो व्यय हि	३३.९३
धुम्बुनिमासुरपरितद्	५२.४६३	नक्षत्रं तुल्यं चौरर्षा	५४.२२३	न चैव कश्चित् परमन्दिवागि	३.३६३
धुत्तपास महासुरा	२६.४०	नक्षत्रं तुल्यं चौरर्षा	५४.२०७	न चैव सा वराहो	३६.९४३
धुत्तपास महासुरा	३१.८२३	नक्षत्रं तुल्यं चौरर्षा	५४.२०७	न चोमोषयितु मृदात्	३६.६६३
धुत्तपास महासुरा	१७.३३३	नक्षत्रं तुल्यं चौरर्षा	५४.२०७	न जाने त नरं राजन्	३२.३८०
धुत्तपास महासुरा	१७.२६०	नक्षत्रं तुल्यं चौरर्षा	५४.२०७	न जुहोत्युचिते काले	१५.२८३
धुत्तपास महासुरा	१७.१६३	नक्षत्रं तुल्यं चौरर्षा	५४.२०७	न ज्ञाने धत्तिव्यामि	१६.६६३
धुत्तपास महासुरा	१७.५३३	नक्षत्रं तुल्यं चौरर्षा	३२.७००	न ज्ञापते गृहे केन	३५.४२३
धुत्तपास महासुरा	१७.४२०	नक्षत्रं तुल्यं चौरर्षा	२६.५३३	न हीं चातयितुं धाताम्	स.मा.२२.१७०
धुत्तपास महासुरा	१७.५५०	नक्षत्रं तुल्यं चौरर्षा	२.३६०	न हास्तुतना परपन्ति	५८.१५३
धुत्तपास महासुरा	१७.३५३	नक्षत्रं तुल्यं चौरर्षा	३०.६०	न तत्र वायुतो प्रागो	स.मा.१०.८१०

न तत्र देव न कूर्प ३६.३०
न तथा निन्दकः पापी २५.६७
न तवाभाषायोगस्त ४५.४०
न तस्य बन्धिनो लोचये ४६.७३
न तस्य दुर्नमं विशिद्धं ३.मा.१७.२२०
न तस्य प्राप्नोति कर्म हि लोके स मा.२२.८६०
न तस्य रोगा ज्ञानते ६६.३३
न तस्य सहस्रो लोके ४१.४१६
न ता गति प्राप्नुवन्ति ६७.४३६
न साहसोऽस्ति यमने ३.२६०
न हानिमुखेदं हि पण्डितो जनम् २८.८०
न तु नीमितिर्बोच्छेदः १५.४००
न ते परिभवः शान्ति ६७.४१०
न वे पुत्र सम्भवति ६७.५१६
न वे युक्तिरामार्तं ३७.४६६
न वेपा दुर्लभं किञ्चिद् ३.मा.२३.११०
न वेपां कुपुर्तं किञ्चिद् ३.मा.२१.२१६
न वेपां यमसातोभयं ६७.४२०
न वेपु देवोपु वहेत युद्धिमाद् १४.५६६
न वेत्स्यति पुत्रावरसा १३.७३
न त्वया स्म विना ब्रह्म ३६.१५०
न त्वहं श्रेयसेवसे ३.मा.८.४६०
न त्वामहं न वेसानो ३.मा.६.२८३
न त्वेष योया पूर्वं हि ४१.३४३
न ददाति तदा दापु ४६.६३
न ददाति विधिस्तस्य ६५.१२३
न ददाति द्विर्बालिभ्यो ४३.४५०
न ददातु न यष्टुष्य ३.मा.२६.१००
नदी पयोधौ मुनिवृन्दकाण्डं ३७.८६०
नदीप्रवाहसंपुला ३.मा.१२.१०
नदीप्र विविधा दिव्या ३.मा.४.२८०
नदीपु पद्मन आनेपु पदं १२.४५३
न दुःखितो न बन्धिना ३.मा.१०.२४०
न दुर्गादिभक्तानां गति ३.मा.१३.२९६
न हावने गरिभेऽनु ३.मा.१६.२०६
न ईश्वरीश्रावणवर्तिहामो १४.१०६
नद्यात्तमुत्तरदिशो ४४.८३३
नद्यामेवाश्वतोर्गोत्रिण ७.१४३
न धर्मस्य दिव्या कानिद् ३.मा.२२.७३३
ननतं कावचमोर् ४१.७२०
नननं बीजां वरिवात्तनी २१.१००

ननाथ भूयो नारायै ३०.१००
न निष्कृतिश्रान्ति वृत्तप्रवृत्तेः १२.५६०
न निष्ठुरं नागमशास्त्रहीन १४.३६६
नन्दन्ति हृष्टाभयि गोकुलाति २.३०
नन्दयन्ती च दाकुनिः ३६.१५६०
नन्दयन्तीति ये नाम ३८.४१०
नन्दयन्त्यपि वेगेन ३८.१६६
नन्दयन्त्यादिका हृष्टा ३६.१४२०
नन्दयन्त्या सम युष्ठा ३८.१४०
नन्यायु नाम्यङ्गयुषावरेत १४.४८३
नन्त्रिज्योदय मे भागो ४२.१७३
नन्दिन च तथा ह्यादि ४४.८८३
नन्दिना दन्ति मार्गं २७.२२०
नन्दिना सन्मुताः सर्वे ४१.३३
नन्दिदां ततो भूत्वा ४३.८२३
नन्दिदये तथा बद्धं ४२.५६६
नन्दिने गो व्याघ्रमुक्षे ४२.५५०
नन्दीमुखो भीममुत्त. ३.मा.२६.१३६
न पराचार्यमुपेतो १५.१६०
न परितातवास्तव ३३.२६३
न पर्यति यशोन्मतो ३३.३७०
न पर्यतीह चार्यवो ३३.३७३
न पुनर्जन्मपर्यं ३.मा.६.२७०
न बाधाकारि महान् ३.मा.१०.२३०
न बिभेभि परेभ्योऽहं ४१.४००
न ब्रह्म न च गोविन्द ३.मा.२६.४६६
नवाः सप्तदं महता सहैव १४.२६०
नवज्ञाकर्मतो नास्ति ६५.३००
नवस्ये भावि च तथा १७.३०३
नवस्ये भावि सप्तस्ये ३.मा.१३.६३
न भेदभ्यमितीत्युक्त्वा ३२.४६६
नवो विक्रमालस्य ४.४१०
नव भवनेशय ६०.६३
नवः कुर्यात्तनायाय ३.मा.६.१७३
नवः शूयम मुष्पाद ३.मा.२६.६१६
नवः पशुबन्धाय ३.मा.६.६८३
नवः पशुबन्धुति ३.मा.६.६८०
नवः पशुबन्धुत्वाय ३.मा.६.६८०
नवः परवन्ध्याय ३.मा.६.७००
नवः पशुबन्धाय ३.मा.२८.१३३
नवः पशुबन्धाय ३.मा.१५.५३३

नय विवाय दान्ताय [नम] ३.मा.२६.६०३
नयः विवाय दान्ताय [नमि] ५.८.३४३
नम पदमर्तुगम्य ३.मा.२६.६६०
नमः समसमे नित्यं ३.मा.२६.६४३
नमः सर्वदयापन्न ३.मा.२६.१०३०
नमः सर्ववर्तिष्ठाय ३.मा.१६.८८३
नमः सत्सपाठाय ६०.३३०
नमः सहस्रनेत्राय ६०.२००
नमः सहस्राक्षाय ६०.२२६
नमः सहस्रचिरसे ४८.५७३
नमः सहस्रोपर्य ३.मा.२६.६७३
नयः स्तुतायः स्तुत्याय ३.मा.२६.७६३
नमः स्वानन्दे विद्याय ३.मा.२८.१७३
नमः स्थूलातिशूयमाय ३.मा.६.२१०
नमः भाटाय बीजाय ३.८.३२३
नयरं रक्तवोजं च { ३.८.३८०
{ ३.८.३६०
नमरो नाम विद्यातो ३.८.१६३
नमःशार्वविद्यते ६०.२१६
नमःशिमोरुष्टाय ३.मा.२६.६२६
नमःशूरय जवद्रायम् ५२.७३
नमःशूरय तत सर्वं ५२.२२०
नमःशूरय महाशूरयम् ३.मा.२२.१६३
नमःशूरय शरं चापे ४३.११०
नमःशूरय सुरेधाय ३.मा.६.११०
नमस्तस्यै निगुडाय ३.मा.६.२६०
नमस्तु पयोधे शुम्भं ३.मा.२६.६६३
नमस्तो जगदाधार १२.३७०
नमस्तो त्रिनेत्रे नमस्तो तप ३.०.१३३
नमस्तो देवायतन १७.५६०
नमस्तो देवताभय ३.१४३
नमस्तो देवदेवेन ३.मा.२६.६५३
नमस्तो देव विधेय ३.मा.२६.८३
नमस्तो धर्मनेत्राय ६०.२१०
नमस्तो निर्वन्ध्याय ३.मा.२८.६३३
नमस्तो निगुणाय ३.१३३
नमस्तो परमनाथ ३.मा.२३.७३
नमस्तो मुहूर्त्तकाय [मल] ५.८.५६३
नमस्तो पुच्छरीकाय [नमस्त] ६२.३७३
नमस्तो ब्रह्मचर्य १७.७७३
नमस्तोभ्यो नमस्तोभ्यो ३.मा.२६.१६०

श्लोकार्थसूची

नमस्ते यन्पुरम्	६० ३३३	नमो नम कारणवामनाय [नारय] ६६ १४३	नमोऽस्तु भवता देवा [] ३२ ३७
नमस्ते रता रतोष्ण	१८ ३००	नमो नम गकर दूलपाशे २७ ३२६	नमोऽस्तु कुवतेपाय स मा २३ ६३
नमस्ते ह्य ह्युत्सवा	२६ १४०	नमो नमस्ते गोविन्द १८ २६६	नमोऽस्तु लोकातिहरे त्रिगुलित्ति ३० ५८०
नमस्ते विश्वदेवाय	६० २३३	नमो नमस्तेऽस्तु त चक्रपाणे ३ २२३	नमोऽस्तु वाराहो सप्त धराधरे ३० ५६३
नमस्तेऽस्तु जगन्नाथ	६० १३	नमो नम्याय नम्राय स मा २६ ८००	नमोऽस्तु विश्वेश्वरि पाहि विश्व ३० ६१३
नमस्ते स्तुतिनिपाय	स मा २८ ११०	नमो नमनराशोलाय स मा २६ ८२३	नमोऽस्तु स्वदेवेभ्य ३६ ३६३
नमस्तेऽस्तु महादेव	स मा २८ ११३	नमो नारायणायैति ६७ ५८०	नमोऽस्तु वरप्रतिष्ठापय स मा २६ ७६३
नमस्तेऽस्तु स्वधा स्वाहा	स मा २६ १५५०	नमो बालाय वृद्धाय स मा २६ ६८०	नमो ऋष्यपर्माय ६० ८०
नमस्त्वामि हरेदचक्र [देवय] ६७ ११३	६७ ११३	नमो भवाय शर्वाय [द्वय] १६ ४००	नमो हिरण्यवर्गाय स मा २६ ७८०
नमस्त्वामि हरेदचक्र [यस्य] ६७ १२३	६७ १२३	नमो भवाय शर्वाय [वर] स मा २६ ७२३	नमो होय च हृत्ते च स मा २६ ८०३
नमस्ये च गणाधिप	६१ ७३	नमो मानसिमाताय स मा २६ ७७३	नमस्ति तानन्तरा यथाप्रया [] ६ ५२०
नमस्ये च चतुर्बाहु	६१ १८३	नमो मुण्डाय चण्डाय स मा २६ ७७३	नमस्ति निकुलिप्रज्ञ ४० ४००
नमस्ये च त्रितयन	६१ १३३	नमो यज्ञवहाहाय ६० २२०	नमस्ति वरनारा हि ४० ३७०
नमस्ये च त्रिसोवर्ण	६१ १३०	नमो यज्ञाय यज्ञिने स मा २६ ६५३	न यष्ट्य न दातव्य स मा २६ १६३
नमस्ये ह्यमलेना च	६१ २४३	नमो यज्ञेऽग्निनाय स मा २६ ७५३	न यस्य ह्यो न च पश्योतिर स मा ८ २०३
नमस्ये धमराजान	६१ २६०	नमो विकृतवक्त्राय स मा २६ ८६३	न यस्य रूप न बल प्रभावो स मा ८ २३३
नमस्ये पद्मकिरण	६१ ११३	नमो विरक्ततरणय स मा २६ ८८०	नयात्र ऋतवश्रव स मा ३ ३०३
नमस्ये पापहृत्कार	६१ २८०	नमो विरवरण्याय स मा २६ १०१०	न युक्त चैवमुक्त्वाय २५ ३८०
नमस्ये पुञ्जराध च	६१ ६०	नमो वृषाङ्गुनाय स मा २६ ७७३	न योगिन प्राप्नुयन्ति ५६ ७७०
नमस्ये भीमहृषो च	६१ १६३	नमोऽस्तु ह्यनायाय स मा २६ ८१३	न यै पूजयितु गतो ६७ ३३०
नमस्ये माधवेगानो	६१ ३३	नमोऽस्तु तर्षे देवाय ५८ ३७३	नर नरस्येव सप्त स विप्रहृ २ ५५०
नमस्ये रुमकचच	६१ १७३	नमोऽस्तु ते सिन्धुरिपुत्रायकरि ३० ५७३	नर सवासर पूर्ण ५६ १०८३
नमस्ये लाङ्गलोला च	६१ १२०	नमोऽस्तु ते पद्मनाभ १८ २१३	नरवाहो भवप्रभता [] ४१ ३७०
नमस्ये विश्वरूप च	६१ ८०	नमोऽस्तु ते मगवति पापनागिनि ३० ५६३	नरनारायणस्यानम् २ ४२३
नमस्ये शानिर्ण सूर्य	६१ १५३	नमोऽस्तु ते मास्करदिव्यभुक्त ५० ३४३	नरनारायणाय च ६ ५३
नमस्ये पूनबाहु च	६१ ६३	नमोऽस्तु ते भैरव भोमभूते ५४ ५२३	नरनारायणो चैव ६ ३३
नमस्ये श्रीनिवास च	६१ १७०	नमोऽस्तु ते मणिपविनागवादिणि ३० ५७०	नरनारायणो ह्यो स मा २१ २१०
नमस्ये सर्वभद्र च	६१ १६०	नमोऽस्तु ते माधव सत्त्वभूते ६२ ३६३	नरस प्र बुवावाय ७ ५१३
नमस्ये स्वानुभनर्ष	६१ १२३	नमोऽस्तु ते रामभृष्टवर्हिनि ३० ६००	नरस्तु वागात् प्रमुमोच पञ्च ७ ५६०
न मारुत न पितर	५६ ५८३	नमोऽस्तु ते वज्रधरे गजध्वजे ३० ५६०	न रासना पिपावा वा स मा २१ १२०
नमामि सा देवमन्त्रयोगम्	स मा ८ २७०	नमोऽस्तु ते गङ्गुद गर्व सभो ५३ ४१३	नराधिपेन विभुता ६४ ६८०
न मे प्रियतर कृष्णात्	स मा ८ ४२३	नमोऽस्तु ते धनुवने जनाये ६२ ३६०	नरा न सोऽन्ते ब्रूते समानता [] ६८ ५५०
न मेऽसि त माता न पिता तथैव	२७ ४४३	नमोऽस्तु ते मूलपाणे ६ ७८३	नरेव यष्ट्यभद्र ८ ५६०
न मेऽसि विरा पृष्ठस्यपाय	१ २४०	नमोऽस्तु तेऽष्टाङ्गनागात्मनि ३० ५८३	नरेश्वरोऽय ब्रह्मा ६० ४५०
नमो गणेशनाथाय	स मा २६ ७७०	नमोऽस्तु त सवमधि त्रिनेत्र ३० ६१०	न स ह्येऽस्तु रोपमुच १५ २१३
नमो पुण्याय मुदाय	५८ ३३३	नमोऽस्तु ते हृदिहरान्ध्यायिनि ३० ५१०	नयत्र मुक्तिर्तो १३ २०
नमो ब्रह्मप्रतिष्ठाय	५८ ३५०	नमोऽस्तु देव्य सुररुजिताय १६ १६३	नवम ततहुम्भ च ११ ५६३
नमो अग्न न विजय	६० ५०	नमोऽस्तु पचनाभाय ५८ ३६३	नवम्या गामवस्तान १७ २४०
नमो ज्येष्ठाय धराय	स मा २६ ८२३	नमोऽस्तु वीतामहसवाहन ३० ६०३	न वय विप सङ्गाव स मा २२ ७१०
नमो दक्षायिनाय	५८ ३५३	नमोऽस्तु प्रीयता गवम् १७ ३६०	नवसाङ्गसङ्गम ५.४७३
नमो नम कारणवामनाय [नारय] ५८ ३८३			नवमिच्छाय ऋतव्यन च २३ २६

न विष्णु कारणं सद्यः	३६ ६६	नारायण्ये न पश्यन्ति	३३ ३६०	नाम्ना बभूवाय कपालमोचन	३ ५१०
न विद्येयोर्यसिंत्त पुत्रस्य	३५ ७५०	नारायण्ये यज्ञगद् वी समग्र	६५ ४४६	नाम्ना विन्ध्यावलीत्वैव	६७ ३०
न देसिंत्त देवि सत्त्वेन	स मा २२ ४६६	सत्य नायेति बह्मसो	४६ ६०	नाम्ना वेदवतीत्वैव	३६ ४३०
न व्ययुज्यन्त चत्वारश्च	१६ १३३	नादेन चैवाग्निस्त्रिभित्त	२१ ४०६	नाय नृत्येद्यया देव	स मा १७ ११६
न शरीरस्य सत्त्वेयैद्	स मा २२ ८००	नाद्यापि येन शुद्धयन्ति	स मा २२ ४८३	नायकेन विना देवि	२८ ७१०
न शर्म लेपे दत्तो	६ २६०	नाद्यथो ध्याययस्तेषां	स मा १० ८६६	नारद परिपत्रच्छ	१-३०
गश्वतो बुध्नुषु सर्वे	स मा २४ २४०	नाना धातुविकारश्च	६८ ४१०	नारदसह च नागिन्द्र	५८ ७१०
नटवत्सर्कनलनम्	२ २००	नाना धात्वङ्गितं शृङ्गं	५८ १०६	नारदसह वपु कृत्वा	स मा १५ २६६
नष्टा कृतश्रमस्यापि	३६ ६२०	नानापुण्यतमाकीर्णं	५८ १२०	नाराचैन जघानाप	८ २५०
नष्टायामप्य पावैर्या	४३ ६६०	नानाम्हरणा युजे	७३ १६०	नारायण तथा सूर्य	स मा २६ ७००
न सर्वहो नरपतेर	३८ ४४६	नारायण्युभवे	६८ १७०	नारायण नमस्तुव्य[नर]	
न स धारयते भूम्या	६५ ७०	नारायण्यसिचरण[]	२१ २००	श्रुत्वास्मिन् मङ्गलश्लोकस्य प्रथमपाद	
न सम्पद्युक्त भवता [रत्ना]	२६ २७५	नानावाग् दीजयत्ययो	६८ ४७५	नारायण नमस्तुव्य[सर्व]	६७ ६००
न सम्पद्युक्त भवता [विषुद]	४० २५०	नानाविधिपशुकुटाङ्गदभूपणाय	५८ ४१०	नारायण नमस्तुव्येऽहं	६१ ३०
न स सताराङ्गुलिमन्	६७, ५२३	नानाशक्तिपिक्वस्य	स मा ११ १६६	नारायण नर क्षीरि	५६ ७०५
न सा पालयती राज्य	४८ २६३	नानाशक्त्यप्य धीरा[]	४२ २००	नारायण बदर्या च	६३ ५६
न सोसिंत्त कश्चित्त्रिशोऽसुरो वा	३७ ८५६	नानाशक्त्यधोघततो समूहा	४७ २५०	नारायण जगत्सूत	६२ ३८३
न सोसिंत्त नाके न महोत्तने वा	३० २७५	नानुत्त तमज विष्णु	स मा ६ ३३०	नारायणप्रणामस्य	६७ ६२०
न सोसिंत्त पुत्र्य कश्चिद्	३८ २२३	नात्सर्जलाद्राजस सूधिकस्यलात्	१४ ३२३	नारायणवच भुङ्क्वा	२ ४५३
न स्वाधु त्पश्यादेन	८ ४००	नात्सको विभियदित्त्रान्	४० २४५	नारायण वर याचि	८ ५८३
न हि देववदो स्वपाता	३६ ८३०	नाय दव महादेवात्	५८ २६३	नारायणस्तु भगवात्	स मा ६ १६
नहि नहि परिभवमस्त्ययुष च	३० ६३०	नाय्य देवाह म ये	स मा १७ १७३	नारायणस्य तुष्टधर्मै	६८ ३४०
न ह्यलामिति मन्तव्य	स मा ८ ७०	नाय परतरोऽग्रमग्नि	३२-१००	नारायणस्य देवाय	स मा ४ २१०
न ह्याचाविहीनस्य	१४ १५०	नाय्य पुमात् धारयितु हि शक्ते	६ ४६०	नारायणाय विश्वाय	५८ ३७०
नाकम्पस्ताडयमानोऽपि	३२ ६८०	ना यदा त्व प्रगवथोऽसि	८ ५५०	नारायणायाम्बहितायनाय	५८ ४३०
नागजिह्व चन्द्रनास	३१ ८८३	नाय्यथा नश्यते ताप	६ ४१०	नारायणी सर्वजगत्प्रतिष्ठा	२१ ५१०
नागदन्तास्त्रिपुङ्गवा	१५ ७३	नायेक्षितस्तस्या यस्मात्	स मा ८ ४७०	नारायणोऽनैवमुक्त	८६ ६६६
नागद्वीप कटाहश्च	१३ ६०	नाभिप्रजातकमलस्यचतुर्भुजाय	५८ ४१३	नारी नञ्जापि च पादयेक	६६ ५०
नायस्तैश्चाधतरो हि कङ्कण	१ २६३	नाभिर्भिमीरा सुतप विभ्राति	२० ६३	नाल समो विपहितु	५१ १८०
नाया सुपर्णा सरित सप्तसि	३२ २०६	नाभिरस्थाने यदुदक	स मा २२ ३७३	नालपद् जनविष्टि	५४ २३०
नायाना पत्ये ब्रह्मन्	१८ ६६	नाभेरुपरि भूरायोद्	५१ ६०	नावयोर्वै विशेषोऽसि	४१ २८३
नाया विद्यावप्राभापि	१६ ५५०	नाभ्यङ्गमर्कं न च भूमिपुत्र	१४ ४६६	नावागता वरदाम्बिकायां	६ ४८३
नायेन्द्रहृत्प्यासतनुप्रियाय	५८ ४०६	नाभ्यङ्गित्त कायमुपसृजेच्च	१४ ५५३	नाशयानास सा यत्र	१८ ८५३
नाजिलाह रणे वीर	३० ४१६	नाभ्या निर्याति हि तदा	१८ १००	नाशयेद्योगिना सर्वम्	५६ १०७०
नाजाशोच पिता पुत्र	६ ३२३	नाभ्या ह्यमुद नरिस	६० २७०	नाशयिष्यं समुद्रमुत्ता	स मा ८ ३०
नात्यन्धर ममस्तेऽस्तु	१७ ५१६	नामत्रय्यवधीत्यव	१७ ५३०	नाशुभ प्राणुयात्सिचिद्	स मा २७ ८५
नात्यथोपहारुण्णाव	स मा २६ ८२०	नामधारक एवेह	३५ ३७०	नाशयै दानवध्यात्र	स मा २ १६६
नाटोद्युष्टिप्रपादत्र	३२ ६१६	नामिन्द्राऽपि सातेन	४ ७७०	नाशयै दानवधु	४६ ५५०
नातस्तपसो लोके	५८ १५०	नाम्ना चन्द्रावली नाम	६४ ६८०	नाशो निवृत्तेति मति विश्वाय	१६ ३३०
नात्पानं तव दास्यानि	४० १६	नाम्ना तु ऋषियेयो हि	३१ ४३६	नासिंहना घोषरहित	४६ ३६३
		नाम्ना तु युजेति चरावरात्सा	४३ ४३६	नासीति विभु देवराज	स मा १० १७०

नास्तोति यन्मया नोक्तम्	स.मा.१०.२९३	निपपादान्तरिताद् स	१६.४६०	निर्जगाम वृद्धापुत्रो	४२.११०
नास्तोत्यहं गुरो वदये	स.मा.१०.२१३	निपपादात्स्वराद् ऋः	१६.३६०	निर्जगामातिवियेन	६.११०
नाहं स्वामुदरे वीतुम्	स.मा.७.१२०	निपातयामास भुवि	४.२००	निर्जगामाव पातालाद्	३३.१७०
नाहस्वानं धुमाकारं	६.६६३	निपातयानं नर वृष्ट्यावर्यं	२.५००	निजिताः शकपञ्चं च	४०.२३०
नाहोपरि तथा मुष्टौ	६.१०१३	निपातिता धरतिवले मुष्टाय्या	३०.३२०	निजिताः समरे दैत्यैः	४७.३३०
नि.शेषं च तदा कालं	स.मा.१०.६६०	निपात्यमाना वसुधुङ्गवास्ते	२६.६६०	निजित्वा त्वाजिताः स्वर्गं	४१.२१०
नि.श्रीकस्यातिपास्य	५६.४३०	निपात्य रक्षिणः सर्वान्	४३.२६०	निन्दयुक्तमस्त्वनिगाम्	२.३३०
नि.श्रीक्यास्तु त्रयो लोकाः	५६.१७३	निपेनुमुं वि भागानाः[:]	४.५३०	निधूतवैः सहसा	५६.२३०
नि.श्वेताय सर्वेषां	स.मा.६.६६	निमग्नपर्वतपर	२.२१०	निर्मलं स्वर्गमायाति	१६.६३०
नि.श्वेतायासवर्षे	३६.६७०	निमग्नश्रामि दहरो	३६.२०३	निर्मलः स्वर्गमायाति	स.मा.१३.१५०
निवृत्ताय्या गत्रः पद्व्या	१०.५२३	निमग्नो संकरे क्षायो	६.३००	निर्मलः स्वर्गमायाति	स.मा.१६.१६०
निवृत्तो न स्वभावो मे	५६.३६०	निमग्नो संकरे देव्या	३४.२०३	निर्मग्यं निवहस्तेन	४५.७३०
निवृत्तो मे बलं बखं	४३.११३	निमग्नमानमुहूः	५२.५६३	निर्मितो मोहमाहास्त्वम्	स.मा.१२.६३०
निवं कर्म परित्यज्य	२७.२३०	निमग्नित्वा राज्याय	६.७००	निर्विकेन चित्तं	५६.५००
निवं राज्यं च देवेभ्यो	५०.२३३	निमग्नित्वा कर्ता सर्वे	४.६०	निर्विप्रायि तत्वाज	७.२६०
निचपाय यथैवेन्द्रो	३२.५६०	निमग्नित्वा ज्यवतोमुहूः	१२.६३	निर्वृत्ते पतिरहिते	४७.२६०
निचपायानुत्थवं	४३.६६३	निमग्नित्वा यशवाटस्व	२.१२०	निष्कजिन महागन्धैर्	१६.२१०
निचपायानुत्थानोरः	३२.५७०	निमित्तानो हराद् दृष्ट्वा	४२.१६३	निवर्तय मति मुदाद्	३०.३६०
निचप्युर्वाजन्वन्वेवा	४७.३२३	निमित्तानोह हृदयन्ते	४२.१७०	निवर्तय ह्यसस्तरमाद्	२५.३००
निचप्युर्वाजन्वन्वृत्ते	स.मा.२६.१७३	निमिशास्तरसाजेग	४५.१५०	निवर्तयानि मुमुष्येयु	६२.५६०
निचप्युर्वाजन्वन्वृत्ते	स.मा.६.२६३	निमिशास्तरसाजेग	स.मा.२६.६२०	निवारिता कृतवान्	५६.६६०
निचप्युर्वाजन्वन्वृत्ते	५५.२४०	निमिशास्तरसाजेग	स.मा.१०.७००	निवारितश्चकपरेण वेगाद्	३२.१११०
निचप्युर्वाजन्वन्वृत्ते	१५.३१०	निमिशास्तरसाजेग	स.मा.१२.१६३	निवारिता तयामास्वैर्	५६.५१०
निचप्युर्वाजन्वन्वृत्ते	स.मा.२६.१२६०	निमिशास्तरसाजेग	११.२२०	निवारिता गता वेत्ता	४३.१३६०
निचप्युर्वाजन्वन्वृत्ते	१५.४०३	निमिशास्तरसाजेग	४६.५१३	निवारितामयं निरसद्	२५.६७०
निचप्युर्वाजन्वन्वृत्ते	१.१४०	निमिशास्तरसाजेग	६१.२६३	निवृत्ता देवतानां च	४०.१०
निचप्युर्वाजन्वन्वृत्ते	१.१५३	निमिशास्तरसाजेग	२१.५५०	निवेदयामास तदा	४६.३६३
निचप्युर्वाजन्वन्वृत्ते	१६.१६०	निमिशास्तरसाजेग	४३.१३५०	निवेदयामाद् संप्रत्याद्	२६.२००
निचप्युर्वाजन्वन्वृत्ते	२६.१४०	निमिशास्तरसाजेग	५०.३२०	निवेदयामाद् कौण्डिन्यै	२६.७०३
निचप्युर्वाजन्वन्वृत्ते	३०.३३	निमिशास्तरसाजेग	५६.५१०	निवेद्ये गुरुये यावत्	५६.५६०
निचप्युर्वाजन्वन्वृत्ते	स.मा.६.५५३	निमिशास्तरसाजेग	२२.६०	निवेद्ये भैरवायमुत् महाहंम्	५०.३७३
निचप्युर्वाजन्वन्वृत्ते	स.मा.६.५७३	निमिशास्तरसाजेग	४१.१४०	निवेद्ये विप्रप्रवरयुत् काश्वर्यं	३७.६७०
निचप्युर्वाजन्वन्वृत्ते	१५.२१०	निमिशास्तरसाजेग	२७.५४०	निवेद्यामास तदा	स.मा.२३.३५०
निचप्युर्वाजन्वन्वृत्ते	१६.५००	निमिशास्तरसाजेग	११.३३०	निवारयेत् नाम्नाहो	६५.५५०
निचप्युर्वाजन्वन्वृत्ते	३२.११६०	निमिशास्तरसाजेग	१३.२६०	निवारयेत् षडश्या	६५.५६०
निचप्युर्वाजन्वन्वृत्ते	४३.१२००	निमिशास्तरसाजेग	४३.५२०	निवारयत्य वृद्धिं तां	१६.३५०
निचप्युर्वाजन्वन्वृत्ते	६.२१०	निमिशास्तरसाजेग	३५.२७०	निवारयता उग्रपुण्ड्रवन्त	५५.५५३
निचप्युर्वाजन्वन्वृत्ते	३७.६०३	निमिशास्तरसाजेग	५.मा.६.२००	निगुण्यं वरितं हृद्वा	३०.५६३
निचप्युर्वाजन्वन्वृत्ते	१६.५५०	निमिशास्तरसाजेग	६.१६३	निगुण्यमुक्त्वापहर्ते	२६.३००
		निमिशास्तरसाजेग		निगुण्योर्जं मय प्राण	२६.२००
		निमिशास्तरसाजेग		निगुण्यमाय पातालाद्	६७.१६०

विश्वामित्रमातास्माद्	४०.३०	मृगमेतेन प्राभ्यं वै	५१.४५५	नीमाषरिदिवाकोतिद्	६४.४५५
निर्मिता गण्डनी बिना	१३.२२५	दुरैसरिद् मुपासति-	स.मा.६.२५५	नोतयान् यद्वयमायूर्वै	६४.४६०
निश्वसन्तं यथा नामं	४.५४०	द्वयं परिपश्य मुक्तिमितोऽय	३९.५१०	नोचेतायाश्च द्विवाहौ	३४.४४०
निपण्णो भुवि जानुभ्यां	२९.२२५	दृश्यन्तश्च ह्यस्माश्च	स.मा.१६.२५०	नोचेन्नयनयते वामो	३७.४८५
निपुटपराखनं	३२.५००	दृश्यन्ति तान्परातां गमूहाः]	१६.१५५	नोचेद्ब्रह्मचरोपेन	३०.१५०
निपुटपयन्ती विपुसैक्यमुप	२६.८७०	दृश्यन्ते भावर्गुणः]	५३.७३०	नोचेत्त्रिवर्ततो यमो	३४.४५०
निष्कामेन वृत्तं लानं	२५.५३०	दृश्यन्त्ययोसारस्ताश्च	२.५.१६५	नोततार निममोपि	३६.२५०
निष्कान्तमात्रं हृदये परा तम्	२१.४६५	दृश्यमानश्च देवेन	स.मा.१६.४००	नोयानारो विवातेषु	१५.२३५
निष्कामन्ती महार्णवस्तु	३८.४००	दृश्यमानस्तु देवेन	स.मा.१७.१०	नोदेगमायपूर्वहं	स.मा.६.१६५
निष्कामा. सततं रेनु	६.६०	ने.ते पराशिवं नामां	१४.४५५	नोपेय सानुदहिष्टो	४४.१३०
निष्कारितं स्वकं कार्यं	४५.१०	नेत्रयं हिरण्याभा	३७.८५	नोतद्वृष दुष्मान् दामयामि	२६.५४०
निश्वस्यन् मूकनये पुराणं	३३.१००	नेत्रभाय इति ह्यतो	५२.६०५	न्यधोपस्यं महासासत्	६०.२४५
निस्त्रियोग्युता वाताः]	५१.१०	नेत्रहीनं कथं राग्ये	६.१५	न्यतस्तस्य पनाणि	२६.७५०
निस्त्रियोग्युतान् एष्ट्वा [सम्]	स.मा. ८.१५	नेत्रहीनं प्रत्युवाच	६४.२८०	न्यतन्मेरुसिखराद्	३८.२०
निस्त्रियोग्युतान् एष्ट्वा [महाह्वरं]	५१.१५	नेत्राङ्गानुरभूत्सुभ्यं	६०.२७५	न्यमज्जत स वातिन्या	३८.१००
निहत् स महादेव्या	२६.१६५	नेत्राभ्यां धोरुणाम्यां	५.१६०	न्यदेदयेतदा सिन्धु	स.मा.१६.१७०
निहृतो मधुचि पूरं	२२.६६०	नेत्राभ्यामगतद् वारि	८.२०	न्यदुपयद् मृग वृद्धा	२६.५८०
निहन्ताप्यथा वारता	५६.१०४०	नेत्रैस्त्रिभिर्नोपि वृतात्मनानि	२०.४०	न्यस्तद्वद तपोमुक्तं	स.मा.३.६५
नीत प्रोक्तो निषिद्धस्तु	२८.५४०	नेदं वपानं देवेन	३.४५५	न्यासाभ्याम्ययोपेताः]	४६.३८०
नीत सिधेति विश्वातं	३८.१२०	नेहरो पापसकल्ये	३७.१४०	न्यासाहारिणः पापाः	१२.२६५
नीतस्तेनाविरोदेन	७.२६५	नेत्र भूतपति भूमि	स.मा.१०.६०	प	
नीता देवं महानुभवं	३८.१६०	नेहाभ्यधामां प्रवर्धन्ति सतो	२२.५४०	पञ्चमामसलुब्धाय	स.मा.२६.८६०
नीत्वा स्वर्गनिर्दरं सर्वं	४६.३७५	नेहृत्वा मां च एतस्व	१८.३२०	परीशं वपितेऽस्माकं	स.मा.१६.३३०
नीयता सुरलोकाय	७.१८०	नेहृत्वायं बहून्स्वाद्	३२.६५५	पञ्चगव्यस्य शुद्धस्य	६६.१००
नीजतोषजले स्नात्वा	५७.५१५	नेकासने तथा रवेय	१४.४६५	पञ्चगुत्साम्रवजातो	३६.१०१०
नीत रक्त महानीत	६०.१४०	नेताह्वरं ब्राह्म गस्यास्ति वित्तं	स.मा.२२.२६५	पञ्चदानवनाहुलाः]	४३.१८०
नीतन्यसाविष्टयो	४६.२२०	नेते धर्मं विजानन्ति	स.मा.२२.४६०	पञ्चनराश्च वृंश	स.मा.१३.२७५
नीतन्यवमकाब्दा	४६.२२५	नेमिष्य गन्तव्यमस्तु	७.३८०	पञ्चपिष्ठाणुदुष्टस्य	१५.२२५
नीताजिनतततनु सरदभ्रवर्णा	४१.५६०	नेमिपराय च स्नानेन	स.मा.१६.८५	पञ्चबाहुनातेनापि	३२.७७५
नीताजिनचयप्रथ्या	२५.४५	नेमिपारम्भमागत्य	७.४१०	पञ्चमस्य कलेरादौ	४८.१५५
नीताम्बरा नीतमाल्या	४६.२१०	नेमिष्ये वाचनाती तु	३६.३४०	पञ्चम्यां तोदमानस्तु	स.मा.२१.२४५
नीताशोककवा द्यमा	६.१७०	नेमिष्ये वाचनाती तु	स.मा.१६.२८०	पञ्चपञ्चानवाचोति	स.मा.१३.२६०
नीताश्च केषां कुटिलाश्च हस्त्य	२२.५१५	नेमिणे मुनवः स्थित्वा	स.मा.१६.२४५	पञ्चवर्गं महेशान	२७.१३०
नीतेन्द्रीवरेणया च	६.१८५	नेमिष्येवाश्च द्विजवचः]	५७.३५५	पञ्चवर्षाताभ्यालो	३८.३१०
नीलैश्च मेधैश्च समावृत्त नभः	१.२२५	नेमिष्येवाश्च ऋषय	स.मा.२१.३५	पञ्चवर्षाते काले	३८.७१०
नीलेत्यलदलदयामा	स.मा.२८.४०	नेत्र दुःख मम विभो	५१.४१५	पञ्चवर्षाहृत्वाणि [वृत्तं	३१.६५
नीलोपेयं नीलाज्जनतुल्यवर्णं	१.२६०	नेत्र काम्य जगप्राये	स.मा.१०.३१०	पञ्चवर्षसंहृत्वाणि [कुटिला	३१.६५५
नील काम्ताविहीनेन	१६.१५५	नेत्रास्तमनसद् ब्रह्मण	७.४५०	पञ्चवर्षसंहृत्वाणि [वारं	३१.६५५
नीलं तद्वृत्तानुक्रमम्	६७.३४५	नेत्रेण सपुलं दयात् [ताम्रं	१७.४८५	पञ्चवर्षसंहृत्वाणि [वात्	३८.३०५
नीलं न तो करो प्रोक्तं	६७.३३५	नेत्रेण सपुलं दयात् [वधि	१७.६१५	पञ्च वत् सप्त चाष्टौ वा	४३.१००५
नीलं सपुलं धितनस्य एष्ट्वा	१.२००	नेत्रेण सपुता पूषा	१७.५६५	पञ्चाताप्य विताङ्गाम	स.मा.२६.६१०

श्लोकार्थसूची

प्रश्नैककालान्तर्गतनिष्कारणा]	४२ ३७०	परमलया मदनपद्मकृष्णपदपदाख्य	६७ ७३०	परस्पर भक्षणयो	१२ ३३०
पञ्जरे लिप्य विनोदो	६४ ६५३	परभावती माधवी च	३१ ६६३	परस्पर समागम्य	स मा १६ १३३
पठित्यति स सर्वस्य	५६ १२१०	परयोद्यतकरा देवी	स मा २ १२९०	परस्पर सानुरागी	स मा २४ २३०
पठ्यसे स्तुतिभिर्निय	स मा २६ १०६०	पपात वृद्ध क्रमवास्त्रिविधयो	५२ ८५०	परस्परमिति चोत्सवा	स मा २२ ५८०
पतत पूर्वतोयैषु	स मा २२ ६००	पपात भुवि नि सञ्जी	५ १८०	परस्य मरकापव	१४ ४४०
पतता वानुदेवेन	५२ ८६३	पपात अज्ञाततर्पणवयगा	५५ २६०	परस्ये परदारो च	१४ ४४३
पतते न कदाचिच्च	२ ३७०	पप्रच्छ कांति मा ब्रूहि	४६ १५०	परक्रम वै भवतो विदित्वा	२० ६०
पतनाय तथा धम[]	४० ३६०	पप्रच्छ कि विरेतेह	६६ ६०	परामयो विममत्त्व	६० ४५३
पतन्ति धारा गगनात् परिच्युता[]	१ १८३	पप्रच्छ कुलत्रा तर्वाय	४७ ३०	पराम्मुत्तान् बं ह्य गगान् कुमार	४२ ५१३
पतति यथापि ते	१२ २७०	पप्रच्छ केय लतना द्विजेन्द्र	२२ ५८०	पराम्मुक्ते सद्बाले	१० १३३
पतमान समालोच्य	१६ ४०३	पप्रच्छ त प्रतापत	५३ ३८०	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००
पतमान सहस्रात्	४३ १३१०	पप्रच्छ कुलत्रा दोष्य	३८ ५८०	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००
पतमान हरि सिद्धास	४३ १२२३	पप्रच्छ नृपति का तु	३७ २५३	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००
पतमानाद् द्विजेन्द्रात्	४३ १२१३	पप्रच्छ धुक कि कथ	५२ ३००	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००
पति शुभ्रभामाया सा	४६ ४६०	पप्रच्छ सा कारणमोघर तम्	स मा २२ ५०	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००
पति मुद्राया यस्तस्मै	स मा ६ २४०	पप्रच्छ यमने हेतु	५६ २६३	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००
पतिव सात्विक दृष्टवा	३३ ४००	पप्रच्छ रमिद केन	३२ १०७०	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००
पतिवत्पविद्धननाश्र	१५ २५०	पप्रच्छ तपसो हेतु	४६ ४८३	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००
पतिवे देवदेवस्य	स मा २२ ६६०	पप्रच्छोचनस धुक	स मा १० १०	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००
पतिवो भूमिगाम्यम्	६४ १०५३	पयसा हृविपाद्यश्र	४१ ३६३	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००
पतिभि समनुमाता	४६ १७०	पयोभक्त मनेवेरा	१७ ४३३	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००
पतिव्रता पतिप्राणा	५६ ४०	पयोण्यावाम्बुज च	६३ ७३	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००
पत्नी तस्य महायनी	स मा १३ ४५३	पर वदमवाप्नोति	स मा १४ १६०	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००
पत्नी विन्द्यावली चाप्य	६२ ३१३	पर विवममागस्य	स मा १० ६४०	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००
पशुक पालान् प्रीक	३५ ६४०	परवहं व दच्छेय	४८ ३७०	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००
पशुं मरुतप्रहृषी	५८ १८३	परदारपरच्छेय—	५६ ६६३	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००
पशुं स्नानेन च फल	२५ ५००	परदारपरच्छेय—	६४ ६४०	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००
पशुस्य समस्यर्थ	१६ २७०	परदारपरच्छेय—	३५ १३	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००
पशुस्यस्तथैवाये	४० ११०	परदारपरच्छेय—	३५ १३	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००
पशुति पतिवो भूम्या	४३ १५५३	परदारपरच्छेय—	३५ १३	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००
पशुतिर्पि संभुद्ध	६ ३५३	परदारपरच्छेय—	३५ १३	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००
पशुपटु पाशो गत्वा	४४ १६३	परदारपरच्छेय—	३५ १३	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००
पशुं पशु यजकत्	स मा २५ ४०	परदारपरच्छेय—	३५ १३	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००
पशुया देवतसैव्यानि	६ ३००	परदारपरच्छेय—	३५ १३	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००
पशुयो भूमिस्तथा वद्वे	६५ १६३	परदारपरच्छेय—	३५ १३	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००
पशुनाथ तथा क्रौञ्चे	६३ ४३३	परदारपरच्छेय—	३५ १३	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००
पशुनाथं मुनिभेद	६३ २२०	परदारपरच्छेय—	३५ १३	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००
पशुनाथ स तत्रार्थ	५७ ५५३	परदारपरच्छेय—	३५ १३	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००
पशुनाथ हिरण्यस	६१ १५०	परदारपरच्छेय—	३५ १३	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००
पसा मुनान् निलयानि बापसा[]	२ २०	परदारपरच्छेय—	३५ १३	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००
पश्यायं पचकित्त	६३ १६३	परदारपरच्छेय—	३५ १३	पराम्मुक्तेऽप्युदिमाना मुनीन्द्र	४ ३००

यामनपुराणस्य

परिभ्रुजति केनाद्य	४०.४३०	पाशुना पूर्णता शीघ्रं	स मा २४ १००	पादप्रहारैरपरे	५ ६३
परिभ्रूत सख्यया	स मा २६ ५६०	पाशुना सर्वपात्राणि	स मा २४ १५०	पादयो पतितं शीरं	४८ २२३
परिभ्रमन् ददायां	४३ ३४३	पात्रं जपान शीघ्राग्नौ	४५ १३०	पादाश्चमुत्थ विपात्रास्तु	स मा १० ४६०
परिभ्राम्य सर्वा वेगात्	८ १०	पात्रागततां तप्त	४५ १४०	पादेन कूर्चं तराया कुजम्भ	१० ४००
परिवादोऽभवत्तत्र	२ २८०	पात्रजप महापातम्	४५ ३११	पादेताम्य सैवाय	२६ ६१०
परिवायं समन्ततो	३२ ६५०	पात्रातिथि च ब्रह्मणे	६३ १३०	पादेभु भूमि कल्पोऽस्युग्र	१० ३२०
परिव्रमन्नादि पराजितेषु	३ ३५१	पात्रातिकं वयो दृष्टवा	५७ २७७	पादौ च तस्या बभूवोरधयो	२० १४५
परिव्रववाच्यं विधिना	६ ६६	पात्रातिकं ह्यप्रोचं	६१ ६५	पादौ च लोचप्रतितामहस्य	१६ ११६
परिवृत्त मनुमुदनाभ्रमात्रं	६७ ३००	पात्रात् सभवागद्विष	६६ १२३	पादौ यवरो मीनोऽपि	३५ ६५५
परपतापजनकान्	१२ ७३	पात्रिस्तात नर स्नात्वा	म मा १५ ५१६	पादौ धूमौ चनयनादिचित्ता	२२ ४६३
परपेतापी नमुक्तिर्दुःपात्ना	४० ३३०	पात्रिजप्य कालकच	३१ ६६०	पाप प्रागनपायातु	४४ ६३३
पर्यय तत्र चाभम्य	३६ १३५५	पात्रिना बन्धमात्राय	१० १२०	पापप्राकायायात	५६ २६०
पर्ययतना साञ्ची	३६ ३००	पात्रो तु पतिते तोषे [वामनो]	स मा १० ४८३	पापव्याघ्र गापाय	५८ ७५०
पर्ययस्य धृताय्या तु	३६ ४१६	पात्रो तु पतिते तोषे [त्रिव्य]	६५ १८५	पापस्यास्य दायकरम्	५६ ३०३
पर्यागा नदिनी चैव	१३ २३०	पाशुपाम्बुदसाङ्कान्	५८ १३०	पापानि शोररुपाणि	६४ १०८०
पर्यङ्क निमित्तोऽश्रुत्वा	स मा २२ १५५	पाशुपद्याय सुरप्रहृष्टम्	४३ १५००	पापिष्टा नर्महृत्पातो	३६ ७३
पर्यङ्कस्यं सम लक्ष्या	१७ २००	पातार्थि तस्य देवस्य	स मा २२ ६८३	पापीयना तद्विद्धि दृष्ट्य	१२ ५६५
पर्यानिन्दस्ताया ये च	६५ ४७०	पातवापान्त दैत्येन्द्र	१० १३०	पापेष्ट पापकर्माह	४४ ५६५
पर्यासिताः सदा तेन	५६ २३	पातवापान्त बलवान्	१० ८०	पापवं दृष्टार मात	१२ २०३
पर्वतेषु च रम्येषु	६ ३३३	पाता पोता च दूताश्च	६० ३७७	पापवान्ते विनेत्रस्य	१७ ४४०
पर्वमेषुनिन पापा	१२ ३०३	पाताल प्रविशेताय [विष्णु]	६ ७४०	पापा बर्जयन्तो लूपी	३ २४३
पना द्वाप्य तोयस्य	३६ १७७	पाताल प्रविशेताय [तत]	१८ ५७०	पापितो दक्षिणा दत्तात्	५४ २७०
पल्लिता कमलायी च	३१ ६६३	पातालकेतु निजपान दृष्टे	३३ ३०	पापिभ्रं पाठता च	६८ १३३
पल्लवान्पति तेया स्तु	६८ १६०	पातालकेतुदैत्येन्द्र	३२ ३४०	पापस्य सर्वभूताना	३५ १०
पवनस्य ह्रद स्नात्वा	स मा १६ १३	पातालकेतुस्तपःपीडय विष्ण	३३ ५०	पापिपया जानपथाश्च	३६ १७०
पवित्र च पवित्राया	स मा २६ १२१०	पातालकेतुस्तु ज्वाहृत् तन्वी	३३ १३०	पापितो मनुष्यादिष्टा	२८ ७३
पवित्रपाणिरादाय	२७ ३६०	पातालभ्रूवना सर्वे	६ ६८०	पापित्या पापिते स्तन्व	३२ ११३
पद्मिने केतुमात्रञ्च	१३ ५३	पातालवीथीधृतानि	५६ ८५३	पापित्वांश्चि ताम्रोऽपान्	६० २६०
पद्मिने तु विद्याभागे	स मा २१ ८३	पातालहरोऽपको ब्रह्मन्	३७ २३	पापित्वां भाद्रपदायुग्मे	५४ १६३
पद्मत् कर्म सतत	स मा ६ ३४०	पातोऽना सप्त तस्यासन्	४८ १६३	पापयज्जनं विष्णुद्	४७ २३०
पद्मता सवतोऽकाना	स मा २७ २४७	पातोऽनादपि दैत्ये	३६ १३२३	पापवापान्त स मही	२२ ८०
पद्म एव द्विजशार्ङ्ग	४४ ३३	पातोऽनादपि दैत्ये	३६ १३६०	पातासामददहृष्ट	६२ ४६३
पद्मन्ति शैवी सुप्रोता	स मा २३ २६३	पातासामदपि दैत्ये	५० ६०	पापक कृत्काराचैव	३१ ५६०
पद्मन्ति देवोऽपि साम ब्रह्माभ्या	२७ ३६०	पातासामदपि दैत्ये	६३ ३५३	पापक स्वस्ति तुभ्य च	३२ १६०
पद्मन्ति निर्मल देव	स मा १२ १४०	पातासामदपि दैत्ये	७ २१०	पापकश्चापि देवैः	३१ ११०
पद्मन्तीना करेणाना	१८ ८३०	पातासामदपि दैत्ये	१६ ४३०	पाप दक्ष्या समाह्वय	४२ ६५३
पद्ममानस्तु श्वेदम्	२८ १६०	पातासामदपि दैत्ये	६ ७१०	पापप्रतिपत्तिद्वारा	३ ७७३
पद्मस्य तिथ्य देवैः	४६ ६३	पातासामदपि दैत्ये	स मा २२ ६८०	पापानि निषदायेनि	६४ ७६३
पद्मस्य प्रगतिं मात	४४ ८६३	पातासामदपि दैत्ये	११ १०	पापौ प्रतीचो रदातु	३२ २२०
पद्म स्वयं मुनिप्रह	६५ ३४०	पातासामदपि दैत्ये	५६ ३५३	पापुपात्य प्रकुर्वन्तु	४८ ४६०
पापानोऽपि कुष्टोऽप	स मा २४ २३३	पातासामदपि दैत्ये	६ ३७०	पापेन यद्वा गदया विहृति	१० २७०

श्लोकार्थसूची

पादो निष्पाता माते	४२ ६५a	पितृमातृहृत यक्ष	३५ २७a	पुष्या गणे प्राग्मुसता प्रयाता	२३ ४३c
पिङ्गवाभिर्जगामिस्तु	३० २४c	पितृमातृयमुख्य च	५४ ३२c	पुष्यासामान्याभ्यां	१६ २५a
पिङ्गलो दण्डमुद्यम्य	३२ ५६a	पितृमा च द्विजप्रह	३५ २१c	पुष्या रम्या नर्विदते	१३ ६a
पिण्डनिर्वचनं चक्र	५३ ७१c	पितृमा तर्पणं यस्तु	ग मा २४ २६a	पुष्यासौ गिगिरात्रिं स	६ १०६c
पिण्डनिर्वचनं तत्र	५३ ७०a	पितृगामय धाद	३४ १४c	पुत्र जनयते दूर	स मा १३ १२c
पिण्डनिर्वचनं पुष्य	५७ ५c	पितृगामयि दैहियो	२७ ४२c	पुत्र महिपर्त्तार	२५ ७c
पिण्णवारं च पञ्चैताव	३१ ६७c	पितृनासाययक्ष हि	२४ ३c	पुत्र स कथ्यते लोकै	स मा २६ ३१c
पिण्डारक्तु तुष्केन	३२ ६३a	पितृनासाय्य वैर्लैर्	२६ ४७c	पुत्र एवास्मि देशेग	३४ ७५a
पिण्डाग्निभिन्नं पुरतो	५३ २०c	पितृना वृत्तनामालो	६४ ४७c	पुत्रक पुत्रसामस्य	३७ ७c
पितरं ग्राह देवेश्च	५० ७a	पितृपरिज्ञिता हस्य	स मा २६ २४a	पुत्रसौधापुत्रा वृक्ष-	६ २१a
पितरस्तापितास्तेन	स मा १४ ३a	पितृभ्यो भयविधायम्	५ ३५a	पञ्चगोपायस्तुला	१६ ६c
पितरस्ताप्यं सुखिता []	स मा १५ १२c	पित्राय वर्याँ हस्ताभ्या	३३ २४c	पुत्रपृथक्कलत्राणि	१२ २६c
पितरस्तापितास्तेन	स मा २१ २७c	पित्राकधारिणो रैत्रा []	४१ १२a	पुत्रमिषकलत्रायै	५१ ४७a
पिता त्वास्ति धर्मिष्ठ	३७ ४७c	पित्र-यत्पुत्रादारं भद्रताम्	६ ४२a	पुत्रगोपाभिभूतेन	स मा १५ ५०c
पिता नित्यतो दैव	३७ ५c	पित्रस्व चण्डे ह्यिर त्वरावेर	२० २७c	पुत्रगोपेन पवनो	स मा १६ २२a
पिता मम धर्ममिष्टो	स मा २६ २४c	पित्रावमुनिसकीर्णं	६ ३६a	पुत्रानुदाह धर्मेग	स मा २७ ३२a
पिता मम दुःखाचो	स मा २६ २६a	पित्रावत्सोपशुष्टिर्बर्नोम्	६ ४१c	पुत्रार्थं वरुं ग्राह	स मा ६ ५c
पिता मम महाब्रह्मोपाद	३७ ३१c	पित्राचानामय धर्म	११ २७a	पुत्रि त्यजस्व शोब त्वं	३६ १५०c
पितामहं नमस्कृत्य	४४ ७६c	पिहित मागपस्वस्य	३७ ५c	पुत्र पापेन भाग्यना	१५ ७c
पितामहं पुरस्त्वय	३४ २५c	पौतमात्रेण पुत्रेण	४६ १६c	पुत्ररूपि दवरिपुत्ररास्त्व	३० ६६c
पितामहं मानयन्ती	स मा १६ २२c	पौतवाप्त प्रियं बालं	६२ ३६c	पुत्रभूतयो य च	१२ ३५a
पितामहवचं श्रुत्वा	३५ ३०a	पौतवाप्तसमभ्येय	८ ३२c	पुत्रपुदाय विन्दुर्	४३ ४५c
पितामहस्तातोवाच	२० १६a	पौताम्बर काश्चनमक्तिचित्र	५० ४६c	पुत्रपावभम्बुलीञ्च	५४ १६c
पितामहस्ताद्वचन	६६ ६a	पौताम्बरं पौतवर्णं	४६ २०c	पुत्रापुरसाग्मुष्यो	५४ ६c
पितामहस्ताव हलो	४७ ५a	पौताम्बराय मपुण्ड्रभनामानाय	५० ४०c	पुत्ररेव च प्रारम्भुर्	स मा २३ १c
पितामहस्य विवतो	स मा १४ ३०a	पौताम्बरा वा मुनया	४६ २४c	पुत्रञ्च देववस्य	१ ७a
पितामहस्य पुरत	६० ३०a	पात्रा सान्ना परिषामाञ्च	२० ६a	पुनर्दिचन्तवत् सृष्टि	स मा २० ४a
पितामहस्य यत्रत	स मा १६ १६a	पौतदामभूत् देवाय	स मा २३ ७७c	पुनर्दिचन्तवत्सत्य [प्रजा]	स मा २२ ४०a
पितामहस्य यत्रतो	स मा १४ ३२a	पुनामनरक धार	३५ १६c	पुनर्दिचन्तवत्सत्य [रजता]	स मा २२ ४१a
पितामहस्य वरत	स मा १६ १३a	पुनामो नरकात्प्रति	३४ ७७a	पुनाति दानाणि	स मा १४ ४४c
पितामहं हृत राज्य	५० ४c	पुसां पातमह्यमणि	स मा २६ १४७a	पुनाति पुनां क्वणरम्	३४ १६c
पितामहं यजता	स मा १६ २१a	पुस्कोक्चनत्वना िव्या	६ १६c	पुनां कर्तव्यार्थञ्च	५० ७a
पितामहर्तयपुला []	३४ २५a	पुस्रणं च सत्स्य	३५ ८c	पुनर्जन नमनुष्य	३२ ६०a
पितामहत्त वचन	४३ २२a	पुस्रटोक्मयानाति	स मा १३ ३६a	पुनराय रीनाय	स मा १० ६५c
पितामहृणि तं पुन	३५ ५३a	पुस्राञ्च केरनाभिच	१३ ४६c	पुरता नत्तिन हस्ता	४२ ५३c
पितामहृण्य/पादात्	३० २७a	पुस्रं पुनराय परम पवित्र	५ ६१c	पुरता दग्निस्त्य	६० ३६c
पितामहृण्यं चानाव	३० ४५a	पुस्य एतत्पर्व नाम	स मा १३ ५c	पुरता दग्निस्त्य	६० ३६c
पितृभ्यो तद्दिश्य	१५ ५०a	पुनानाशरत्प्रहृ	५३ ७०a	पुरता दग्निस्त्य	६० ३६c
पितृभ्यो मधुपचामि	३६ १७a	पुष्यादादिनिमुष्ठा []	५६ ७७a	पुरता दग्निस्त्य	६० ३६c
पितृवापदादीन	१५ २०c	पुष्यादिकर हृदन्	३४ ११c	पुरता दग्निस्त्य	६० ३६c
पितृवशात्पितृभ्य	स मा १४ ७a	पुष्यां दिवि पावहा	२४ ५a	पुरता दग्निस्त्य	६० ३६c

धामनपुराणस्य

पुरा तपस्वयन्ति गालर्षापर	३३ ५१	पूजयामास संदुष्टा	३७ २६०	पूर्वाचर्येन धारेण	स मा २७ ५०
पुरा रवेकार्युव सर्वम्	२ २०३	पूजयित्वा जगानाम	५७ ६१६	पूर्वाभ्यास्तनिबद्धा हि	६५ २१०
पुरा मद्भूगक सिद्ध	स मा १७ ७०	पूजयित्वा महाबाहु	५७ ६१७	पूर्वाभ्यास्तान् चारुत्तानि	६५ १०७०
पुरा रतार्थमीनेन	१८ ३७०	पूजयित्वा मयाभवाय	२५ ५७०	पूर्वाभ्यास्तान् चमणि	६५ १८८
पुरा भटाहस्त्रे वे	स मा २८ २०६	पूजयित्वा गिव तान	त मा १५ ५७०	पूर्वे किराता यस्यान्ते	१३ ११६
पुरा वै दण्डकारण्ये	स मा १८ ५१	पूजयित्वा पूलधर	५७ २५०	पूर्वोद्दिष्टे तदा स्थान	४ ५५०
पुराश्रुत्वरौ रोद्री	१८ ४२१	पूजयित्वा मुबर्गश	५७ १०	पूपा नाम द्विजयेष्ठा]	स मा २० २७३
पुरा हि विन्धयेन दिवाकरस्य	१६ २३६	पूजयिष्यन्ति चैवाय	२८ ७३३	पुद्गामि यद्गृह्णाति वा वै	२५ ५५०
पुरा हैमवती देवी	१ ११६	पूजयिष्यन्ति सतत	२५ ७१०	पुष्यव्या चतुस्तया	४३ १३२६
पुष्पवत्तमस्य तुष्ट्यर्थे	६८ ३३५	पूजयेताव पुत्रुमै	१८ १८५	पुष्यव्या चतुस्तया	स मा २६ ५०
पुष्करवा द्विजश्रद्ध	५४ १६	पूजयेत् कु द्युसुमैर्	१७ ५७०	पुष्यव्या नीमिष तीर्थम्	७ ३७३
पुरा मत्तपुष्टयव	३८ २७५	पूजा चोत्ति तस्यैव	२५ ५७५	पुष्यव्या यानि तीर्थानि	६७ ६३३
पुरोहितस्तु तस्यासौद्	२२ २८५	पूजिता बलिता चक	६७ १६६	पुष्यव्या जगानाम	२५ ७३०
पुरोहितेन स सुक्तौ	स मा १८ ३२०	पूजिता द्रव्योद्दिष्ट	स मा १५ २३३	पुष्यव्या सभाशिरस	स मा १८ २१०
पुलकाभर्वृता यद्गृ	६ १५०	पूजितेषु द्विजेऽशु	६८ ७३	पुष्यव्याके अथपरो	स मा १८ २००
पुलस्त्य कथ्यता तावद्	२२ १६	पूजिता कृपापरो मैस्	५४ ३८०	पुष्यव्याके नाम तुभ्य	२४ १०
पुलस्त्यवृषिमालीनम्	१ २३	पूज्य निःश्रयते वास	५१ २२०	पुष्यव्याके महातीर्थे	स मा १८ ३०६
पुलिनैषु च रम्भेपु	६ ३२०	पूज्यमाना सुरगणौ	त मा २४ १६०	पुष्यव्याके च तथा	स मा २८ १०
पुलीया ससिनीलाश्र	१३ ५००	पूज्यमाना मुनिगणौर्	स मा १६ ३३०	पुष्यव्याके सखास्तवाऽथ	१४ २६१
पुष्कर च ततो गत्वा	स मा १३ ५१०	पूज्यमाना मुनिनाम्ना	२८ २७०	पुष्ट्यागमन हेतु	२२ ४४०
पुष्करद्वीपमाजोऽथ	११ ५२६	पूज्यमानेषु नैलेषु	६२ ३७५	पुष्ट्या चान्नसर्वे	४८ १००
पुष्कराणमयोगिण्य	५७ ३३०	पूज्यमानेषु मुक्ता	५६ २७५	पुष्ट्यासु समालोक्य	६४ १०४०
पुष्टिपुस्तितया कात्ति	स मा १६ १५५	पूज्यमानेषु वे विप्रा	स मा १५ ५८०	पुष्ट्यागम्या सभागच्छन्	३६ ८४०
पुष्टिस्तुष्टौ रुचिस्त्वया	४६ ५०६	पूज्यमानेषु च विप्रा	स मा १४ २०	पुष्ट्यासक्तिगो सुमस्	१२ ३७३
पुष्प धूप च नैवेद्य	स मा १२ २००	पूज्यमानेषु च विप्रा	स मा २४ १५५	पुष्ट्याया वसतो देवा	६५ २२०
पुष्पशोषप्रदानेन	६४ ५६०	पूज्यमानेषु च विप्रा	१५ ५८०	पुष्ट्याविराया गह्निवासुरोऽपि	२१ ५७३
पुष्पवर्षमनौषम्य	८ ६०	पूज्यमानेषु च विप्रा	५५ ३००	पुष्ट्या वसतो देवाः]	५६ २०६
पुष्पवृष्टि च मुमुक्षु	३० ४८०	पूज्यमानेषु च विप्रा	५० १५५	पुष्ट्या वसतो देवाः]	स मा १० ५६६
पुष्पहास च नमस्तेऽस्तु	६० ३०६	पूज्यमानेषु च विप्रा	३६ ८८०	पुष्ट्या वसतो देवाः]	३० २३०
पुष्पाङ्गलिपुत्रा भूता	५ ६०	पूज्यमानेषु च विप्रा	५३ ११०	पुष्ट्या वसतो देवाः]	११ ५६०
पुष्पेषु जाता नगरेषु कश्ची	१२ ५००	पूज्यमानेषु च विप्रा	२३ ५७५	पुष्ट्या वसतो देवाः]	५७ ३६०
पुष्पैः पथ कलैर्वापि	१८ १२६	पूज्यमानेषु च विप्रा	१३ ३००	पुष्ट्या वसतो देवाः]	५७ ३६०
पुष्पैश्च पत्नैर्जलपत्रवादिभिर	६७ ७६०	पूज्यमानेषु च विप्रा	१३ ५६	पुष्ट्या वसतो देवाः]	५७ ३६०
पुष्पोत्तमानि रम्याणि	६ १०३६	पूज्यमानेषु च विप्रा	५४ ३२६	पुष्ट्या वसतो देवाः]	५७ ३६०
पुष्पे मुख पूजयेत्	५४ २१०	पूज्यमानेषु च विप्रा	स मा २१ ७३	पुष्ट्या वसतो देवाः]	५७ ३६०
पूजन गङ्गास्वीरु	१७ ५२०	पूज्यमानेषु च विप्रा	४६ २३	पुष्ट्या वसतो देवाः]	५७ ३६०
पूजयन्ति महादेव	स मा २८ ४८०	पूज्यमानेषु च विप्रा	६४ ६१६	पुष्ट्या वसतो देवाः]	५७ ३६०
पूजयन्ति शिव ये वै	स मा २५ ५५०	पूज्यमानेषु च विप्रा	६५ ५८३	पुष्ट्या वसतो देवाः]	५७ ३६०
पूजयन् भगवत्सादी	५७ ७३०	पूज्यमानेषु च विप्रा	स मा २२ १७३	पुष्ट्या वसतो देवाः]	५७ ३६०
पूजयामास गोविन्द	स मा १० ४००	पूज्यमानेषु च विप्रा	स मा १७ १८०	पुष्ट्या वसतो देवाः]	५७ ३६०
पूजयामास पिपिना	२६ ६५०	पूज्यमानेषु च विप्रा		पुष्ट्या वसतो देवाः]	५७ ३६०

श्लोकार्घसूची

पौर्णमास्यामुमानायः	१७-११७	प्रथम्य विरक्षा पादौ	स.मा.४.१४०	प्रतीक्षन्त्यो मुनिवरं	३६-२६०
पौषेति गदितो मासो	३५-६२०	प्रथम्य विरक्षा भूमौ	स.मा.२८.१०८	प्रतीची पुष्कर वेदिषु	२३-२०७
पौषे स्नानं च हविषा	१७.४०७	प्रथम्योत्तुर्महानां [भवात्]	२६-६७७	प्रतीचीमुत्तरा वायुः	३२-२३०
प्रथम्यपूजे प्रते च	५३-३७७	प्रथम्योत्तुर्महानां [जगत्]	२८-३२०	प्रतीच्यत् इतिकार्योपं	२५-२००
प्रहृष्टिन्न विकारश्च	स.मा.३-२६७	प्रगतु धात्रमातत्समाद्	३२-३६०	प्रतीच्या रक्ष मे विष्णो	१८-२८०
प्रहृष्टिष्ये ततो लोके	स.मा.२-१०७	प्रगामं संकरवपूद्	२६-६००	प्रतीच्या साङ्गैर्हविष्यगुर्	५६-६००
प्रलिपसवाभ्मि मम	३१-७०	प्रगामानततानां यो	२८-५४०	प्रतीच्यनिमुलं ब्रह्मद्	६२-१७०
प्रशोभमगमन् सर्वान्[:]	६-६१०	प्रणिपत्य च कामारिम्	३१-४८७	प्रत्यत् तैर्जनं श्रीमान्	५६-२२०
प्रशुल्ल केयेषु महायुरास्ताम्	२१-३७७	प्रणिपत्य तथा भक्त्या	४२-५४	प्रत्यत् वानवेन्द्राणा	४७-६०
प्रशुल्ल तुर्गं मुखत् महात्मा	४२-२४०	प्रणिपत्य तदा श्रुत्यां	स.मा. ११-५०	प्रथमिहाय योपात्मा	३६-१२४०
प्रशुल्ल पुष्कराग्ने	५८-३००	प्रणिपत्य तदा स्थाणुं	स.मा.२६-६२०	प्रथममं पर्यटस	२५-५६०
प्रशुल्ल वागापानमुपवेगं	४२-४६०	प्रणिपत्य समहाय	४६-५४	प्रत्युच्यं तदा जन्मं	४३-११८०
प्रशुल्ल रत्न मां विद्वेषो	१८-३१०	प्रणिपत्य गुराणपिर्	स.मा.१-३०	प्रत्युचाच ऋषीन् सर्वान्	११-८०
प्रशुल्लस्यप्रवत्तुर्गं	३६-३२०	प्रणिपत्य भवं भक्त्या	३२-११०	प्रत्युचाच परं वाच्यं	२६-३२०
प्रथितेषु तदा वेगात्	३०-४२०	प्रणिपत्य ययात्याम्	६७-४६०	प्रत्युचाच प्रभुः प्रीत्या	४३-१३०
प्रथितो नरप्रचाय	८-२२०	प्रणिपत्य विभुं तुष्टो	८-६६०	प्रत्युचाच महात्मानं	स.मा.११-२३०
प्रथमः किरणा गुण्या	६२-४०	प्रणिपत्य सुधात् सर्वाङ्ग	३२-२६०	प्रत्युचाच महाभागो	५६-३५०
प्रथम्युक्तुका योद्	४०-६३०	प्रणिपत्य देवेनं	स.मा.२२-७३०	प्रतुडुः परमशीतः[:]	स.मा.१४-६०
प्रथम्युत्तुलनाच्चापि	५६-६८०	प्रतिपाद्य प्रथमःभुः	स.मा.८-३१०	प्रतुडुर्भगवान् बृहि	४१-४३०
प्रथम्युत्तुष्टिमुत्तुला	६२-१५०	प्रतिष्ठा सममगमात्	३८-५०	प्रत्येकं तु नरः स्नातो	स.मा.२०-१०
प्रजापतिप्रतिर्द्रष्टा	५८-७६०	प्रतिता नैव चोदव्या	स.मा.१०-१४०	प्रत्येकं देवदेवेनं	स.मा.१०-३७०
प्रजापतिमस्त्या प्रादात्	४६-२५०	प्रतिनक्षत्रयोगेन	५४-२६०	प्रयैधान्त विवाहं हि	३६-१५३०
प्रजापतीना कानाश्च रोजसा	१६-१२०	प्रतिप्रणमित्प्रार्थो	२२-४२०	प्रयने बर्वास स्त्रीणा	२५-५७०
प्रजापालनपरमस्थाः	४६-१३०	प्रतिमुच्येत देवोऽग्नि	५६-४७०	प्रयगेऽङ्गि चतुर्षु वा	१५-४२०
प्रजापालनयुक्तेषु	स.मा.२-११०	प्रतिपातेषु देवेषु	५२-२२०	प्रदक्षिणं पादभारी	३२-१०२०
प्रजापाल महाबाहो	३-१७०	प्रतिपद्य ततोपरयद्	३८-५१०	प्रदक्षिणं शीघ्रतरं	३२-१०१०
प्रजा लिप्यते नित्यम्	स.मा.१४-४४०	प्रतिपद्य सुश्रीतेषा	४२-८०	प्रदक्षिणमुपावर्त्य	स.मा.१३-४१०
प्रणतोऽग्निं जगत्पार्यं	५६-६६०	प्रतिष्ठाप्य विमुक्तसं	स.मा.२८-३१०	प्रदक्षिणाय यत्तुयं	स.मा.२२-६०
प्रणतोऽग्निं पराधारं	५६-७००	प्रतिष्ठितं पुष्यहृता	स.मा.२५-४००	प्रदक्षिणोऽङ्गता तेन	स.मा.२५-१३०
प्रणतोऽग्निं पति सध्याः	५६-६८०	प्रतिष्ठितं महालिङ्गं [सर्वकारं]	स.मा.२५-६०	प्रदक्षिणोऽङ्गता तैस्तु	स.मा.२५-५६०
प्रणतोऽग्निं परं देवं	५६-६७०	प्रतिष्ठितं महालिङ्गं [शेकं]	स.मा.२५-१६०	प्रदक्षिणोऽङ्गता तर्	५७-५५०
प्रणतोऽग्निं महाबाहुं	५६-७१०	प्रतिष्ठितं महालिङ्गं [सर्वपा]	स.मा.२५-२८०	प्रदक्षिणोऽङ्गता तर्	५७-३१०
प्रणतोऽग्निं श्रियं चान्तं	५६-७२०	प्रतिष्ठितं महालिङ्गं [सर्वपा]	स.मा.२५-३६०	प्रदक्षिणोऽङ्गता तर्	५७-५५०
प्रणतोऽग्निं स्तुतं स्तुतं	५६-६६०	प्रतिष्ठितं लिङ्गवरं	स.मा.२५-३२०	प्रदक्षिणोऽङ्गता तर्	५७-५५०
प्रथम्यं केरावं देवं	१६-६१०	प्रतिष्ठितं स्वर्गुनिजं	स.मा.२५-५४०	प्रदक्षिणोऽङ्गता तर्	५७-५५०
प्रथम्यं च महेशानं	२८-२६०	प्रतिष्ठितं महालिङ्गं [सर्वपा]	स.मा.२५-५६०	प्रदक्षिणोऽङ्गता तर्	५७-५५०
प्रथम्यं हा प्रत्येन	स.मा.२५-११०	प्रतिष्ठितं महालिङ्गं [सर्वपा]	स.मा.२५-५६०	प्रदक्षिणोऽङ्गता तर्	५७-५५०
प्रथम्यं पादौ बमलोदराभौ	५०-२७०	प्रतिष्ठितं महालिङ्गं [सर्वपा]	स.मा.२५-५८०	प्रदक्षिणोऽङ्गता तर्	५७-५५०
प्रथम्यं वरदं देवं	५२-४४०	प्रतिष्ठितं महालिङ्गं [सर्वपा]	स.मा.२५-५८०	प्रदक्षिणोऽङ्गता तर्	५७-५५०
प्रथम्यं दंकरं देवाः	२६-४००	प्रतिष्ठितं महालिङ्गं [सर्वपा]	स.मा.२५-५८०	प्रदक्षिणोऽङ्गता तर्	५७-५५०
प्रथम्यं राम्भुं स चवाम तूर्णं	४२-४४०	प्रतिष्ठितं महालिङ्गं [सर्वपा]	स.मा.२५-५८०	प्रदक्षिणोऽङ्गता तर्	५७-५५०

प्रोवाच तान्भीषणवर्मकारान्	१० २५a	कनानि तन दास्यन्ति	स मा १० ७६०	बलिदानवाहूत []	५१ २०
प्रोवाच देव प्रसितामह तु	६६ १२०	कनेपु चूतो मुमुन्ध्वशोक	१२ ५१०	बलिभृश्रातरमादाय	६५ १७०
प्रोवाच धर्मसंयुक्त	७ ३५०	कलैश्च बिन्वा पयशा तदापया	१ २२०	बलिपिराचनसुत	स मा ३ ४०
प्रोवाच पुत्र देवत	३१ २७०	कफोरागानि वृक्षाणि	६ १०५०	बलिभ्रैवाक्षित जस्य	स मा १० ३६a
प्रोवाच पुत्रि दत्ताति	३६ ५६०	कान्युतोद्विषये गुण	५५ १५a	बलिपु रिपु नअश्न	६५ २१०
प्रोवाच प्रहलन् मूर्च्छि	स मा २२ ५००	फाल्गुन श्रौह्या मुरगा []	६० २५a	बलिसस्य च नीलोषप	स मा ३ २a
प्रोवाच बलिमभ्येरेष	६५ ५३०	य		बन दानानि दीयन्ते	६० १०
प्रोवाच वृद्धिप्रत्न बह्वन्	३५ ५६०	यदुत्सर्ग कमादय	२५ ५५a	बन वनवता अष्ट	स मा २ १५a
प्रोवाच बाह्यगन्धेष्ट	६२ ५१०	बदर्याश्रममागम्य	६ ००	बनेस्पहृत राज्वम्	स मा १५ ६५०
प्रोवाच भगवान् बृहि	६५ ५०	बदर्याश्रममासाद्य	३६ ६६०	बलरपि हिलापय	६५ ५००
प्रोवाच भगवान् मस्य	६२ ५२०	बदस्य पिञ्जस्त्यस्य	६० ६६a	बलेदंत भगवता	स मा १० १६०
प्रोवाच भगवान् वाक्य	३ २५०	बदाश्रप्रपत्ते निगन्द	१२ १६a	बलेदानवमुष्यस्य	स मा ५ २०
प्रोवाच भगवान् वाक्यम्	६५ ५६०	बदोर्ह पापमुक्तो	६५ १०१a	बलेवर्मम वत्वा	स मा १० ०५a
प्रोवाच मा मैत्र मयि	१० १६०	बदौ बवोदकेनेव	२६ ७७०	बलेतिष्ठोश्च बरित	स मा १० ०००
प्रोवाच मुख तेजस्तन	२५ ५६०	बद्वन् वा वषो वापि	६५ १०६०	बने ष्टुणुष्व यारिम त्वाग्	५६ १६०
प्रोवाच मुनिगार्हूल	५० ६७०	बन्धनादवमुष्याय	६५ ००a	बलेवर्देगनादाय	२० ३००
प्रोवाच यशोर्ह यज्ञेर्	५२ ३५a	बन्धना यमति धने	५२ ५२a	बलाश्वद्वपतिश्च भीत	५३ १०००
प्रोवाच राजन् किमिद	२३ २५०	बन्धिन्यति तदा पासा []	स मा १० ७६०	बलोचमा च हतारन्	५६ १७०
प्रोवाच राजन्नेष्टुहि	३६ ७५०	बन्धुजीवाधरा चुष्ठा	६ १६a	बलिज्योतिरस्यो यो	स मा ६ २३a
प्रोवाच वचन श्रीमान्	२७ ५१०	बन्धुदत्त बाजिगिरो	३१ ६०a	बहुकस्य महाकस्य	६० १३०
प्रोवाच वदता अष्ट	१ ६०	बन्धुदत्तरतु प्रूतेन	३२ ६७०	बहुपाम विमुक्तेन	स मा २७ २०
प्रोवाच वाक्य देवत	१ १६०	बन्धुयुद्धे च बर्षये	२५ ५२a	बह्निमात्स्यसमुक्त	२६ २०
प्रोवाच स्वल्पकालेन	५० १२०	बन्धुयुस्तदाकाश	० ११a	बह्निप्रकृपात्वाप	स मा २६ ६००
प्रोवाचेन्द्र सुरे साधे	५० ५a	बन्धुयु प्रहृ वैषेना	२६ ०५०	बह्नि वापानि मया	५६ २०a
प्रोवाचैष्टोहि वापालम्	५ १६०	बन्धुयु बाह्यगणेन	५२ ३१०	बह्यग्यान् वै मम तथ्यतस्तप	३६ ५००
प्रोवाचैष्टोहि देवेष्ट	५३ १५५०	बन्धुयु गौर सह पट्टिसेन	५२ ५००	बह्व् वर्षग्यान् देव्यो	१० ५३०
प्रोवाचैष्टोहि वापालम्	५५ ५a	बन्धुयु ज्योतिष्य वमुषा	६५ ३००	बह्वोभिर्मत्स्यकन्यापि	३६ २००
प्रोवाचैष्टोहि वापालम्	५ ५२a	बन्धुयु सान् ग्यान् सर्वाद्	५१ २५०	बाढमाह नरियेष्टेष्ट	३६ १६a
प्लसबा ब्रह्मण पुत्री	२३ १३०	बन्धुयु तेजसो हानिर	स मा ७ १६०	बाढमित्यत्रवीच्यर्ष	३१ ५३a
प्लसबा स्नातुमागम्	३ ००	बन्धुयु हलहलाश्र	६७ ६०	बाढमित्यत्रवीच्यर्ष	५१ ५७a
प्लसबापे मुनिश्रष्ट	६३ ५२०	बन्धुयु दकृताना च	६ २०a	बाढमित्यत्रवीच्यर्ष	५१ ६५a
प्लसबापे सुमुदमुला	स मा ११ ३a	बन्धुयु मणि गोविन्	६३ ३५a	बाढमित्यत्रवीच्यर्ष	५१ २५०
प्लसबापिपु नरा तीर	११ ५५a	बन्धुयु शौरतङ्कागो	५३ २५०	बाढमित्यत्रवीच्यर्ष	३६ १६००
प्लसबापेरण गत्या	५७ ५७a	बन्धुयु मणि धारोण	३२ ७७०	बाढमित्यत्रवीच्यर्ष	५२ ३७०
प्लसबापेतरणे विरत	६३ २५a	बन्धुयु दानवपतिर्	५३ १०७०	बाढमित्यत्रवीच्यर्ष	३५ ३७a
फ		बन्धुयु च बलिना	६ ३०a	बाढमित्यत्रवीच्यर्ष	३१ ३७a
फणीश्वरव्यापय	स मा २० १००	बन्धुयु दानाया ह्यती	५० ११०	बाढमित्यत्रवीच्यर्ष	३६ १६६०
फणीन्द्रोक्तमहिने ते	स मा २० १०a	बन्धुयु बनावनेप मुदन्	स मा ६ २०	बाढमित्यत्रवीच्यर्ष	२५ ००
फल प्राणति यशस्य	स मा १० ३००	बलि समभ्येष्ट्य अधान मूर्च्छि	५२ ५२०	बाढमित्यत्रवीच्यर्ष	६५ ६०
फल महामेघमस्य मानवा []	५० १७०	बलिना बलवान् ब्रह्मन्	५६ १२०	बाढमित्यत्रवीच्यर्ष	५० ६१a
फलतिय महापाप	३५ २a	बलिप्रह्लादसबाद	स मा १० ००a	बाढमित्यत्रवीच्यर्ष	६५ ३६०

श्लोकार्थसूची

बाग्यं चमकारोर्कं	६८.१२०	धुष्यधराण्यमुक्ता	५३.६६०	ब्रह्मवेदकानं प्राप्य	स.मा.१३-१८३
बागस्तवा नेगमेवं	४३.४६०	धुषुषु योपियं यमाचरेत्	- १५.४६०	ब्रह्मवेदिः कुचनेन	स.मा.१२.१५३
बागस्य तद् बाहुवर्तं प्रवृद्धं	६२.११८०	शुक्लानप्रतीकागो	स.मा.२६.२१०	ब्रह्महत्यासायकरी	३.२४०
बागीः सुररिपूजयान्	२१.८३	शुद्धपद्ममूत्रैर्कं	स.मा.२२.१७०	ब्रह्महत्याभिमुत्सव	३.६३
बागैश्चादितमोर्धैव	४४.१०३	शुक्लातिस्तु सनकीर्	स.मा.६.४२३	ब्रह्मायमाना सकमण्डुं च	१६.१५०
बागोऽपि देवेन हृते निविष्टुपे	६५.६५३	ब्रह्मैरस्यवा सगस्याता	२२.२५	ब्रह्मानं कर्षणं चैव	५०.३०
बागोऽपि मकरात्तेन	३२.८००	ब्रह्मकालयमागोनां	स.मा.२६.१२८३	ब्रह्मार्णं च नमस्तुभ्य	३२.२०
बागोऽपि धीरे निष्ठोय तारके	३२.८५३	ब्रह्मनगोष्ठाविषु निष्ठुतिहि	१२.५६०	ब्रह्मानं एवा दातकतो	स.मा.२९.६८०
बागो बाहुसहस्रेण	४८.६३	ब्रह्मचर्यं यथासितं	११.२२३	ब्रह्मानं श्रष्टुमिच्छन्तम्	स.मा.३.१६३
बाग्विख्याः समुत्पन्ना	स.मा.२२.४१०	ब्रह्मचर्यं यमानित्वं	११.२१३	ब्रह्मानं प्रेष्यते सर्वे	स.मा.३.१६३
बाग्विख्यास्यो जगमुद्	६२.२६३	ब्रह्मचर्यांतरं मोक्षं	स.मा.१५.७५०	ब्रह्मानं ब्रह्मलोकं च	६३.४००
बाग्विज्यनहृत्कारं	१२.७०	ब्रह्मचर्यं स तेन	स.मा.५.२२३	ब्रह्मानं शरणं भवे	४६.२०
बाग्विषयश्च द्वितीयस्य	४३.१३६३	ब्रह्मचारी गृहस्थश्च	स.मा.१५.७६३	ब्रह्मानं धारणा तत्त्वा	२७.२३
बाग्विषयस्य द्वितीयस्य	स.मा.२६.६८३	ब्रह्मज्ञानं यथायादं	स.मा.१२.८३	ब्रह्मागमप्रतः इत्या	स.मा.२३.३००
बाग्विषयस्य द्वितीयस्य	३१.२००	ब्रह्मज्ञानं द्विजदेशेण	स.मा.६.१०	ब्रह्मागमस्य कथनासत्त्वं	स.मा.१.४३
बाग्विषयस्य द्वितीयस्य	१५.४४०	ब्रह्मज्ञः सततं जगमुद्	स.मा.२२.७३३	ब्रह्मागमुत्सुर्नयः	स.मा.२३.२२०
बाग्विषयस्य द्वितीयस्य	स.मा.२६.१४४०	ब्रह्मज्ञः सत्सुखामस्य	स.मा.२८.२०	ब्रह्मागो त्वं मुञ्चतो	३०.६२३
बाग्विषयस्य द्वितीयस्य	२२.२७०	ब्रह्मज्ञा कथिताः पुण्याः	११.२८०	ब्रह्मागोऽदोऽरमाहृत्य	६५.३२०
बाग्विषयस्य द्वितीयस्य	२५.५५०	ब्रह्मज्ञा सतिहायु सवर्ण	४४.२१०	ब्रह्मा तपस्य सर्वं च	स.मा.२६.१२३३
बाग्विषयस्य द्वितीयस्य	२१.३२३	ब्रह्मज्ञा सेवितं यस्माद्	स.मा.१.११३	ब्रह्मा तमोर्वा वचनं वनापे	८.५३३
बाग्विषयस्य द्वितीयस्य	६५.२३३	ब्रह्मज्ञा सेवितं यस्माद्	स.मा.१.११३	ब्रह्मा विनेनेभमरुत्तृ हुतावाः	८.५३३
बाग्विषयस्य द्वितीयस्य	स.मा.१०.५३३	ब्रह्मज्ञो हा निवेष्टं	२५.१७०	ब्रह्मादिभिः सुरैस्तन	स.मा.१७.१०३
बाग्विषयस्य द्वितीयस्य	३१.७८३	ब्रह्मज्ञोऽपि कतेऽपिऽप्याः	२५.२६०	ब्रह्माद्या एवावराणा द्विवक्ष्यगसहिता	
बाग्विषयस्य द्वितीयस्य	३०.६३	ब्रह्मज्ञो मथ्यतो देहात्	१८.५३	मृतिमन्तो ह्यमृतोः	६२.५८०
बाग्विषयस्य द्वितीयस्य	५.११३	ब्रह्मज्ञो यचनं ध्रुवा	स.मा.२३.१३	ब्रह्मा परमविमानेव	६.७५३
बाग्विषयस्य द्वितीयस्य	३५.४२०	ब्रह्मज्ञेजो विहीनास्ताः	४६.१६३	ब्रह्मा प्रतिपदि तथा	१७.१३३
बाग्विषयस्य द्वितीयस्य	६७.१४०	ब्रह्मज्ञे यद्य वक्त्रेभ्यम्	५६.७६३	ब्रह्मा प्रोवाच देवेनां	१०.१०३
बाग्विषयस्य द्वितीयस्य	६७.७६३	ब्रह्मज्ञं कथयन् ब्रह्माम्	स.मा.१०.१७३	ब्रह्मा प्रोवाच शकैतद्	५०.५३
बाग्विषयस्य द्वितीयस्य	स.मा.२४.२६०	ब्रह्मज्ञं प्रसीयता सत्यम्	३६.६०३	ब्रह्मा मुत्पदिषुपन्तकारी	१५.२३३
बाग्विषयस्य द्वितीयस्य	स.मा.२८.२८३	ब्रह्मज्ञं सवाच वरं महं	३६.१०१०	ब्रह्माविनाय विदद्यायनाय	५८.४३३
बाग्विषयस्य द्वितीयस्य	८.१२०	ब्रह्मज्ञं मया वेदमुपेत्य यो हि	२२.४८३	ब्रह्मावर्तं नरः स्नात्वा	स.मा.१४.३६३
बाग्विषयस्य द्वितीयस्य	४५.४२०	ब्रह्मज्ञं ब्रह्माग्निं देह्याता	६२.५२३	ब्रह्मावर्तं नरः स्नात्वा	स.मा.१४.३६०
बाग्विषयस्य द्वितीयस्य	३२.१०६०	ब्रह्मज्ञं महाभाग	स.मा.२२.६३	ब्रह्मावर्तं नरः स्नात्वा	स.मा.१४.३६०
बाग्विषयस्य द्वितीयस्य	४४.२७०	ब्रह्मज्ञोऽपि देवकृपाया	३१.६५३	ब्रह्मा विगुह्यपारगु	स.मा.२८.३७३
बाग्विषयस्य द्वितीयस्य	३०.२६०	ब्रह्मज्ञोऽपि देवकृपाया	५६.२१०	ब्रह्मा सममेव सर्वं महर्षिभिः	६२.३५०
बाग्विषयस्य द्वितीयस्य	८.१३०	ब्रह्मज्ञोऽपि देवकृपाया	५८.२२३	ब्रह्माग्ने तु प्रथमिने	७.६३३
बाग्विषयस्य द्वितीयस्य	६८.१५३	ब्रह्मज्ञोऽपि देवकृपाया	स.मा.१५.११०	ब्रह्मा स्वयं च ब्रह्मा	६.८५०
बाग्विषयस्य द्वितीयस्य	३६.१२०	ब्रह्मज्ञोऽपि देवकृपाया	५२.१८०	ब्रह्मा होता तपोदाया	६०.४२३
बाग्विषयस्य द्वितीयस्य	६०.३६०	ब्रह्मज्ञोऽपि देवकृपाया	३.४०	ब्रह्मैरस्यवा सगस्याता	३२.११०
बाग्विषयस्य द्वितीयस्य	५६.१६३	ब्रह्मज्ञोऽपि देवकृपाया	स.मा.३.११३		

प्रपद्य देवदेगेणम्	५८ ५६०	प्रमथ्यपूतनादीनां	५६-१०५०	प्रमूतस्यागुरेन्द्रस्य	{ स मा २ १६०
प्रपद्य देवमीतान	स मा २६ ६३३	प्रवक्ष्यामि हितं तेष्य	६७ २७०	प्रसृतं तं भुञ्ज हृष्टथा	२३ ३००
प्रपद्ये मुलसङ्घानां	५८ ५२०	प्रवक्ष्याम्यपुना खेतद्	१८ २५०	प्रसिद्धता ब्रह्ममदन	स मा ३ १७०
प्रपद्ये मूढमयचन	५८ ५१०	प्रवर्तते रक्षिततम	२४ ६५	प्रस्तुमिच्छसि यदि	३४ ५७०
प्रपन्नान्यपित्रयो	स मा ७ ६०	प्रवालीं युधिभि रत्तर्धन्द्	१८ १८५	प्रष्टयमनुज शब्दा	३६ १५०३
प्रप्रातो भवतो तेषा	१२ ५२०	प्रवाहे दनिरो कस्या[]	स मा २१ ७०	प्रष्टय मावगम्भोरम्	स मा ६ ३२०
प्रप्रादेवपुत्रागमान्	१२ २३३	प्रविदेग महाबाहुर्	३७ २६०	प्रष्टयैव वच प्राह	७ १०
प्रपुल्लपुत्रद्वाना	६ १८०	प्रविदेग रुर्ध्व भासित	२६ ५०	प्रष्टय नावदत्तासा	३३ ३८५
प्रमथ्यत वल सर्वे	३२ ८१५	प्रविदेग गुण ह्वात्वा	३६ ५०	प्रष्टया सुखिनस्तल्पु	३६ १६८५
प्रमथ सर्वभूतानां	५८ ५२५	प्रविदेग वरुण इष्ट्वा	स मा २६ ५६०	प्रष्टयति मना येषा	६७ ५३०
प्रमथ प्रलयदैव	स मा २६ ७१०	प्रविदेग न सं श्रित्वा	३४ ३७०	प्रष्टय प्राह वचन	५८ ३२०
प्रमथापारथ विषयस्य	स मा ६ ३१०	प्रविदेग महात्मान	६७ ५६०	प्रष्टय रक्षित हृष्टता	१० २२५
प्रभाते याद् पठनं यो	१४ २१०	प्रविदेग दहरो धीमान्	५३ १५६०	प्रष्टय प्राह संत्येन्द्र	स मा ८ १५०
प्रभा सुनि क्षमा भूतिर्	स मा २ १६०	प्रविदेग जठरं मुञ्चो	४५ ३०३	प्रष्टय प्राह नया	५८ २७०
प्रभा मलि क्षमा भूतिर्	५६ ५६०	प्रविदेग वन्द्य राहोर्	स मा २६ १५५३	प्रष्टयतीर्थयावा ते	५२ २०
प्रभावाप्यं सह प्रापद्	३१ ८१०	प्रविदेग मूढमनूतित्र	२८ ५२५	प्रष्टयतीर्थयावा ने	५२ १०
प्रभु पुत्राजो जग	५६ ७६०	प्रविष्टमात्रं देवेग	६५ ५३	प्रष्टयानागा सुराण्युक्त	६ ५६०
प्रभु प्रभूणा परम परागा	स मा ८ १६५	प्रविष्टा पुष्यतोयोया	स मा ११ ५०	प्रष्टयवमथ पप्रच्छ	स मा ८ १०
प्रभु प्रमाणं मागना	स मा ८ १८०	प्रविष्टा वरदा सेव्या	स मा २ १८०	प्रष्टयवमाहाव बलिद्	५१ १६०
प्रभाञ्चिद्व्युषं त्रिलालिनिषेपशा	१६ ३५	प्रवृत्ता प्रमयाद् हनु	४२ २१०	प्रष्टयान्वचन भुक्त्वा	५१ १६५
प्रमथप्राप्तुर प्रापद्	३१ ६००	प्रगातथमन्मूद् दैवान्	८ ६६५	प्रष्टयान्वरयतेर्	स मा २ ८०
प्रमथा वानवान् दृष्टवा	५२ २५	प्रमूद् समाभयेय स	३१ ३६०	प्रष्टयस्य रयो दिव्यम्	६ २७५
प्रमथाधिपतेर्वीर्य	५१ २५५	प्रमूदिच्छामि भवत	११ ६३	प्रष्टय हे जम्भकुजम्भवाद्या[]	१० ३६०
प्रमथाभ्यामि सरन्ना[]	५२ २०	प्रसन्नञ्च महादेव	स मा २३ २००	प्रष्टयोषि तद्रागच्छद्	८ ५५०
प्रमथ्य सर्वानमुपाद्	स मा १० ६२५	प्रसन्ना देवतास्तरथ	स मा १३ ५३०	प्रष्टयो मयुर वाक्य	५१ १५०
प्रमाण सखी मूहि	स मा १ २५	प्रसन्नादायं चिप्रसथ	स मा १८ ३३५	प्राज्ञतापि दहेनारो	४० २००
प्रमाणहीना स्वयमेव कृत्वा	६५ ५५५	प्रसन्नादायमात गुह	स मा ६ १०	प्राज्ञतोऽप महाबाहो	५६ ३६५
प्रमाणान् यदि भुञ्जामि	५३ ५६५	प्रसन्नादाहेनदेवस्य	स मा २३ २०	प्राज्ञतोऽपि हत कष्ट	१० १८०
प्रपच्छाम्यथ भवतो	५२ ७६०	प्रसन्नादाये महाबाहो	स मा २७ २२५	प्राज्ञेव पुंसस्तु बुभोसुमानि	२० १८५
प्रयाने वसते निवृ	३ २६०	प्रसन्नादायं सुरेणाय	स मा ५ २१५	प्राज्ञोऽपि तत्राश्र	१३ ५५०
प्रयागी मध्यमा वेदि	२३ १६५	प्रसन्नित स राजा व	स मा १८ ३३०	प्राज्ञवगकायो भूतादिर्	६० ५७५
प्रयासा प्राग्दण सर्वे	स मा ६ १२५	प्रसादे नः प्रमा देवो	स मा १० ५३५	प्राज्ञवगारक्षता ब्रह्मन्	३२ २००
प्रयाता पश्चिम मार्गे	स मा २१ ६०	प्रसाद्य देवदेगे	स मा २२ ५६५	प्राज्ञी विग रक्षिता वञ्चो	३२ २२५
प्रयाता पश्चिमार्गशा	स मा ११ २०	प्रसाद्य भाल्लरायय	१६ ५८०	प्राज्ञं दिव निषेयते	स मा २१ २२५
प्रयाता परग देव	५१ १६०	प्रसाद्य ह्यदिशि तथ	स मा ६ १३५	प्राज्ञीने कामपाल च	६३ ६५
प्रयाति दक्षिण घार	५७ १३०	प्रसाध्य देवो गिरिजा तत	सिन्धो २७ ३५५	प्राज्ञीने चापरे दैव्यो	५५ ६०
प्रयाति देवपार्श्वेवो	२७ ६०	प्रसोद तात मा कोप[कुह]	स मा ६ २५	प्राज्ञी सरस्वती पुण्या	स मा २१ २०५
प्रयाति मोक्ष परम	स मा २८ ५५५	प्रसोद तात मा कोप[कृत्]	स मा ६ ६५	प्राज्ञ्या रक्षत मा विष्णो	१८ २६०
प्रयातु जितव तोये	५६ ६६०	प्रसोद देवदेवस	स मा ७ १२५	प्राज्ञस्या कर्त्तव्येऽहं	स मा १० २१०
प्रयाति नास्त्यव च सखी मे	६६ ११०	प्रसोद मम भद्र ते	स मा २६ १६२५	प्राज्ञचूत पत्तिलीयं	४० ५१०
प्रयोहप्रवृत्ततनु	३८ २००	प्रसोदेवप्रवृत्तिप्र	५६ २७०		

श्रीकार्ष्णसूची

प्रागतं घट्यावर्षाय	स मा २६ ६३६	प्राग्मे दानवेन्द्रं ततश्चानमयो		प्रियदोषा सप्त यस्या	३ ३०३
प्रागा सत्त्वं रजश्चैव	स मा २६ १२२०	प्रेममन्कातनेमि	४७ ४१०	प्रियव्यवपि चैतेन	४१ ३५६
प्राणद्राघु सप्तमवयु	६० ५०६	प्रायपय्य सतीं मेना	२२ १७०	प्रियव्य स्वतोक्तेषु	स मा २६ ५३६
प्राणावर्षानिर्हृन्मि	स मा १४ ४५६	प्रायपरवराधु वक्ति	४३ ११३०	प्रियेन सत्त्वं कर्तव्यं	१५ ५६०
प्राणोपान समानम्	स मा २६ १२३६	प्रायेयादि समागम्य	६ ४६	प्रियेन देवनावाय	१७ ५१०
प्रातस्नायो लघ्वपायी	५० २०३	प्रायत्तत नगी क्षीरा	६ ३५०	प्रीतं पृथ्या तु शुभया	३५ १६६
प्रातस्त्रयाम नैरीण	३६ ११०	प्रायत्तत महायुद्ध	४३ ६०६	प्रीतारमा विवर्षा गभु	४१ ५५६
प्रातस्त्रयय ज्ञातय	५६ ६३६	प्रायत्तयत कर्माणि	१६ १००	प्रीतार्सि सत्त मद्र ते	स मा २ १४०
प्रातभरति मे क्षीरा	५३ ५७६	प्रायं समान्विय्य तडित्प्रका	४२ ४६०	प्रीतिमानभव चादौ	२४ १००
प्रातिरे यमरुद्रन	५३ ५३६	प्राज्ञानगराणेनि	६० ३४६	प्रीतिमान् पुष्टरोक्तास्त	५० ६६६
प्राच्छत तपा ब्रह्मन्	६ ६६०	प्राज्ञानमन्त्र हरिमोर्गितारम्	६० ६२०	प्रीतिमुक्त पिङ्गलागो	४४ ६७०
प्राणा षट्कण्ठा चाव्या	३१ १००६	प्रागे द्विरे सतो दय्य	८ २३६	प्रीतिमानननदिव्यु	५० ६००
प्रा वात्तिसमभूमिध	२४ ६६	प्रागे तुतीव्य पत्सि च विरुत्तर	३० १००	प्रीतोर्सि न सुरच्छ	स मा ६ ३०
प्राणद्राघो म भगवन्	२७ ४३०	प्राह एष्य हि पुष्टा मन्	४४ २२०	प्रीतैर्वर्ष पद्मनाभस्य	६० ३३०
प्राणैवेत्यत्मनि	११ ५०	प्राह केनासि यदस्य	३० २५०	प्रीयता मन्वान् स्वागुरु	१७ ५३०
प्राणान्नाय भगवान्	४३ ११७०	प्राह गच्छस्व सुभगे	२६ ६६०	प्रीयता मे महादेव	१७ ५३०
प्राणदेवोच्छित्तो विभ्यस्	३१ ६७०	प्राह नैताव न्य यो स्ये	४३ १२३०	प्रीयता मे विष्णुपत्त	१७ ३३६
प्राणं द्विरे प्राय पय्यव तपा	५२ ८१०	प्राह तरव न विनापि	४३ १३००	प्रीयता मे द्विरेषाशो	१७ ३३०
प्राणुर्नवत्ये कवितो मह्ये	६५ ६७६	प्राह स्व वाय सौमेवि	२० ६६६	प्रीयमाणा तपा देवो	स मा २३ २६०
प्राप्त कवित्व परम	स मा २५ ३७०	प्राह दूरस्थित युग्मो	३६ ४००	प्रयस्य दीनोर्सि भवन्तोश	१७ ४५०
प्राप्त स्वपितरं दृष्ट्वा	३० ७२०	प्राह द्विरे तं वदिम	५२ ७५०	प्रतपतो वच प्राह	५३ ६२०
प्राप्तनेषयमनुज	स मा २ २१०	प्राह पय्यव्यपान	५० ३६०	प्रतमुद्दि य कतव्यम्	१५ ४०६
प्राप्तवाद् ब्रह्मण	स मा २६ ५०	प्राह वर्मावस्तुक्त	५० ३५०	प्रतस्मै च सपारोष्य	५३ ६०६
प्राप्त कवियुगे घोरे	स मा १६ ४२६	प्राह पुत्रुपुरोपरताम्	५२ ५७०	प्रताप सलिल देव	१५ ४२६
प्राप्ता मवाद्भुतमतो भवता		प्राह पुत्र प्रतस्मि	५४ ६२०	प्रेता विनायका वृषा []	५६ १५०
प्रसात्वा	३० ६४०	प्राह पुत्रीदुमुत्त वाक्य	६४ ५६०	प्रितोसीह सुग्नेन	२६ ५५६
प्राणुवात्परमां तिष्ठि	५० ८००	प्राह प्रसा पित्रा मे	६४ ५२०	प्रोक्त तपा वापि हि पाव्यपौर	२० ५३०
प्राणुर्जात न नौज्ञेनान्	६७ ६५६	प्राह प्रहस्य गम्भीर	२० ४२०	प्रोक्त धृत भवताप्रीत वाक्य	६५ ५०६
प्राणोति वास्य थवणाम्मह्य	६६ ८०	प्राह प्रहस्य देवेश	४१ २२०	प्रोक्तापारिदुराणे च	२ १६०
प्राणोति दत्तश्च सुकणभूमेर	६६ ५६	प्राह प्रहस्य भगवान्	३५ ३३०	प्रोक्त्वा प्रगाम कम्बलाकनाद्यास्त	३६ ३१०
प्राणो यमिनतीज्ञेनान्	स मा १३ २२०	प्राह प्रोतिपर श्रीमान्	५६ ३५०	प्रोक्तु परस्पर नाय []	स मा २२ ५०६
प्राणोऽभ्युत्तमि वाय	५६ १३०	प्राह मा गच्छ सुभगे	३७ ६६०	प्रोक्तु सत्वे सुरदण्डा []	५२ ५४०
प्रायन्ते ये तु कृगस्य	६७ ६४०	प्राह यास्वैऽवक हत्तुं	४२ ६१०	प्रोक्तुस्त्वपाति सव	५२ ७३०
प्राय्य किप्रामहे नयन्	३६ ११२६	प्राह योस्ये क्व युद्ध	४३ १२७०	प्रोक्तुर्वैय द्विधा ब्रह्मन्	५२ ७१०
प्राय्योऽभ्युत्तमि वाय	३२ १०५०	प्राह सतिमतगम्भीर	स मा १० ५३०	प्रोक्तुमिद्रुश येवीर्ष्यम्	११ ११०
प्राय्योऽभ्युत्तमि वाय	५० ४००	प्राह सुभारि तच्छब्द	३० ५७०	प्रोक्षिष्य यष्टि मा ब्रह्मन्	६५ ६१०
प्राय्योऽभ्युत्तमि वाय	१४ २००	प्राहामान्य गलारे	४१ १०	प्रोक्तुल्लामसर्षि	स मा १० ७३६
प्राय्योऽभ्युत्तमि वाय	६५ ४६०	प्राहामान्य सुयत्सर्वां	४० २०	प्रोवाच विप्र परश्व	३६ ५६
प्राय्योऽभ्युत्तमि वाय	स मा २६ ५५६	प्राहाहुरपति पुत्रु	५२ ७७०	प्रवाच विरिजा देवो	२० २४०
प्रायो विनातालविय नरता	६५ ११६	प्राहोतिष्ठ वागिनपुत्र	५३ ३३०	प्रोवाच चिन्ताधिराज	३० ३६०
		प्रियगुरुरक्ता यन्म	५४ २३०	प्रोवाच यदता वीदि	५० ४२०

ब्रह्मस्वरूपमुनिचारणस्तुताय	१८ ३६८	भक्तिमयो महादेव [पद्मज]	६६ ११८	भवता कथित सर्वे	६८ १८
ब्रह्मेव विष्णुनामात्मा	४३ १५२०	भक्तिप्रियाय वरदोत्तमुदर्नायाय	४८ ४२६	भवता निजिता देवा	४१ १६६
ब्रह्मणाय नमस्तुभ्य	६० ३५८	भवत्या रत्नन्यया बाहू	८ ५६०	भवतो वा महारण्ये	३८ ४०३
ब्रह्मोत्तरा प्राविजया []	१३ ४५५	भवत्या द्विजेद्वैरिण संप्रादिताय	६४ ३०	भवतो चान वा दाते	३६ ३६६
ब्रह्मोत्तुम्बरमित्येव	स मा १५ ७०	भवत्या यदि हृषीकेश	८ ५५३	भवतो नाथ सदेह	स मा १४ ३६०
ब्रह्मण्यथानिविगा	४८ ४७५	भयैत्थ दाडिभक्तै	६४ ६७३	भवतो जनक कोज	२ २७०
ब्रह्मणश्च विमुद्धात्मा	स मा १६ १४०	भगनेत्राहुष्ठाचम्ड	स मा २६ १३१६	भवतोऽथ तयाऽप्येवा	४१ ४२०
ब्रह्मणस्तु विमुद्धात्मा	स मा १८ १५०	भगवन्नोकनायाय	४६ १६	भवद्भिः कीर्तितोऽप्योज्या []	१४ २६६
ब्रह्माऽस्वाग्निवैदस्य	६४ ८४३	भगवत्त्वत्प्रदादि	स मा १७ २०३	भवद्भिः कृता ये पर्मा	११ २६६
ब्रह्मणस्य भुत सुद्धाया	३५ ४६६	भगवत्त्वा समाश्रित्य	४३ २३	भवद्भिः कृता घोरा	१३ १६
ब्रह्मणस्यापि विहिता	१४ २०	भगवन् कानि तीर्थानि	७ ३६३	भवद्भिः कृता पुक्तैः	४१ २६६
ब्रह्मणा शनिया वैश्या [पुद्गाश्वा]	१३ १२५	भगवन्त गुणायस्य	४८ ५३६	भवन्त मोक्षकाम्यान्	स मा २२ ८४८
ब्रह्मणा शनिया वैश्या [पुद्गा ये]	स मा १५ ७७६	भगवत्शैवदेवैः	४२ ४५५	भगवन्तान वै गत्वा	स मा ४ ८६
ब्रह्मणा शनिया वैश्या [पुद्गा व]	स मा २६ ११०५	भगवन् सर्वतोवस्य	स मा २६ २७०	भवन्ति दानधारे	४६ ३६०
ब्रह्मणा शानयो ववशा	६० २६६	भगवानपि वंत्सेय	४२ ८६६	भवन्ति पुराणाया वै	४६ ३५०
ब्रह्मणानामहीराज	१४ ४६६	भगवानप्यसंपूर्ण	६५ ३४०	भवन्ति य समुद्रमध्य	१४ १६०
ब्रह्मणा नावमन्तव्या	स मा १३ ३४३	भगवानादिहृद् ब्रह्मा	२५ १२०	भवन्तो यदि मे प्रीता []	स मा १४ ६०
ब्रह्मणान् भोजयित्वा च	स मा १३ २५०	भगवानेव न पुत्रो	स मा ४ १५६	भवतो कस्य तनयो	२६ १६०
ब्रह्मणश्च तपो धर्म	७ २४३	भगवाः कारण कार्ये	स मा २६ ७१५	भवस्य उपाया सर्वा	स मा २१ १३६
ब्रह्मणी ब्रह्मणस्यैव	१४ २७१	भगवान् देवराजाय	६६ २०	भवस्तु वदो भविता	स मा १० १४६
ब्रह्मणं परिपूर्णं तु	स मा २१ ५०	भगिनो धर्मतस्तेऽह	३७ ३२०	भवास्तदा च गोता च	६२ ३६६
ब्रह्मणैश्च परित्यक्तो	स मा २६ ४८६	भगोऽभिदोष्य पूयाण	५ १६६	भवानिन्दितैः विष्णुशक्तिर्भवा	४४ ५६६
ब्रह्मणो गुणवानासीत्	४२ ४८६	भगवन्तस्तथा पूया	५ १८६	भवानन्तश्च भगवान्	६ ८००
ब्रह्मणो नावमन्तव्यो	६८ ६६	भगवान् गणान् वीक्ष्य महेश्वरालयज	३२ ८३६	भवानपि कुक्षत्र	३६ ५६६
ब्रह्मणो वेदमाप्नोति	स मा १० ६१६	भगवता स्पन्दनशर्मि	४४ १२०	भवानपि च तेजस्वो	४३ ४००
ब्रह्मण्य लक्ष्मणान् पत्र	स मा १८ १४०	भद्रकर्म ततो गत्वा	५३ ६६	भवानपि तपोयुक्त	३७ १४६
ब्रह्मण्यप्रतिम लक्ष्म्या	स मा २ ११०	भद्राश्च वीरमद्र च	६१ २१०	भवानप्यन्तरिक्षे हि	२ २६६
ब्रह्मो मुहूर्तं प्रथम विष्णुभेद्	१४ २०५	भयद् सर्वसत्त्वानाम्	३५ ४६	भवानोवनमासाद्य	स मा १४ २६६
ब्रह्मणा विवा लेप्यमानाम्	स मा ३ ३५०	भयाज जान ततो गष्ट	२८ ३६०	भवान् किल विजानाति	४१ २६६
ब्रह्मि गत्वा नक शीर	४० ५००	भयानुरारोहणकातरस्य	२० ७०	भवान्वाकोक्तिमिग सुपुत्र	६४ ११६०
ब्रह्मि देवाधिदेवस्य	स मा २२ १३६	भयावन्त्ये हर हृष्टवा	५ २४०	भवान् क्षमपरत्तेका	४० ५१०
ब्रह्मि मे सरमाहस्य	स मा २२ ६०	भयाद्विदेः गोप्रमया निधान	३१ ८५०	भवान् पापसमायुक्त	२ ४००
ब्रह्मि वामदमाहस्यम्	स मा २ १३	भयाभ्याश्रित्य कश्चो	२६ ७५६	भवान् भवस्यानुचरो	४३ ८००
ब्रह्मि शुभं निशुभं च	३० १३०	भरणोऽपि गिर पूष्य	४४ २४०	भवान् यथा राक्षससप्तमेपु	१२ ४६०
भ		भरदाजविगा धार्य	६५ ४०	भवानप्यिह भाग्यार्थी	३० ४१०
भकार नेत्रगुण	३५ ५७६	भरदाज शत्रुष्य त्वम्	२६ ६०	भवान् याचयिता विष्णो	६५ १४६
भक्तानुकम्पी भगवान्	स मा २६ १५००	भरदाजो गौतमश्च	स मा १५ ६६	भवान् वै तापसो ह्यो	स मा २२ ६१०
भक्ति हस्यानुसन्धिय	४८ ६०३	भरदाजो महातेजा []	६२ ४३०	भवान् हि निमत सुद	४१ ३१०
भक्तिमयो महादेव [शरण]	४३ ३६०	भवजलधिताना दन्द्रवाताहृताना	६७ २८६	भवान् पारिहृतीति	२८ २८०
		भवत परदारये	३३ २६०	भविष्यति च व सर्वे	स मा ४ २६
		भवत पातित लिङ्ग	६ ८३६	भविष्यति द्विजश्रेष्ठा	स मा १० ८६०

भविष्यति पिता तुम्य	३६ १४८०	भिरहृष्टुद्रुव पाप	४१ ५६०	भूयःप्राह स्तुतोदित्वा	स मा ६ ३४३
भविष्यति पितृस्तुम्य	३६ १५१३	भिक्षातनभावनादीन्	१४ ४७०	भूयो गतश्च नरक	६४ ८३६
भविष्यति प्रतिष्ठाया	स मा २३ १००	भिक्षावने महायोगं	६३ २४०	भूयो भोगुगतायैव	४३ १३६३
भविष्यति सहलाक्ष	स मा ६ ३५०	भिता ह्येव परित्यज्य	४४००	भूयो निमनो नरके	६४ १०६३
भविष्यतीति देवेन	२८ ६२३	भोम च यथा मनुजा मद्देश्वर	४४ ५४०	भूयो निवृत्ता बलिन	४२ ५४०
भविष्यन्ति तु येनाह	६५ ५५०	भोम भोमरयी प्रादाद्	३१ ७८०	भूयाप्रिप तत्रिधा जातां	२६ २८०
भविष्यन्ति महाहर्षि	६५ ५६०	भोमभुज महेतान	२६ ३६३	भूयाप्रिप नरक घोर	६४ १०१०
भविष्यन्ति बह्निमारोह शीघ्र	४६ ६०	भोमो भोमशिलाकधे	३२ ५६३	भूयाऽप्यर्था भविष्यति	५३ २७०
भविष्यति शुद्धदेहा]	स मा २३ १६३	भुक्तस्तु च सर्वपु	५३ ३६६	भूयो भविष्याम्यमरायमेव	२१ ५२०
भविष्यन्नरकनाय	५६ १०१३	भुक्ति मुक्ति प्रोक्त	स मा २५ २६३	भूयो भविष्याम्यसुगुहिलानना	३० ६७३
भविष्यत्यक्षया नृगा	३४ १५०	भुक्तवान् तस्य शुद्धयेत	१५ ३८०	भूयो यतिष्यामि दुरारिस्तुतम	३० ६८३
भवेया भक्तिमान्तिवे	स मा ६ १००	भुजङ्गहार भुजगेचरोपि	१६ १७०	भूयो विपक्षप्रपाय देवा]	३० ७०३
भवोद्भूय वेदविद्या परिष्ठ	५८ ५०३	भुजङ्गहारामलकच्छकण्डर	४४ २६०	भूयोति वरणा भूयो	१६ ५४३
भय कृत्स्नान कुलिशम्	१० ७०	भुजगुम्ब विगाशासु	५४ २६०	भूरारि कृत्वा भुवननि सत	१४ २७०
भय चक्र महावेगो	३२ ६००	भुजगाया कृत्वाया दग्गीलप्रका	४७ ५७०	भूरिय त्व जगत्पाय	३ १६३
भस्मभूतात् प्राकृतास्तु	४० १६०	भुजो ह्यस्तव्यमापनो	५ २४०	भूभुज स्व स्वल्पाय	६० ३४३
भस्मान्भूभिन्न कार्याना	१५ १३०	भुञ्जते नासुराद् भागात्	स मा १० ६०	भूभुज स्वर्गिणी ह्यता	४८ १६०
भस्माणितदेहाश्च	४१ १०३	भुञ्जति नैवेह च दक्षिणामुखो	१४ ५१०	भूभुज स्वस्त्यत चैव	स मा २६ १३७३
भायसायेषां वीर्यन्ते	५३ २८३	भुव सताक त्रिविधविवात	५२ ८४३	भृगुं च मा नलकरे	२ १३०
भाग्यानि चास्य यन्चेत	४३ १३६०	भुवनविषयालास्य	४३ ३४७	भृगुपुत्रे सुवर्गना	६३ ६७३
भायत्रिजा येयेद्रस्य	३१ ५८०	भुवलिचि च गच्छ	६३ ३६३	भृगुपुत्रे महातन्वा	७ ३२३
भानुशो राससमुद्र	१६ ३८०	भूयप्रोगे विबुद्धे तु	स मा २८ ३१०	भृगुपुत्रे महातन्वा	७ ३२३
भानुर्वै यतते सस्य	१५ ६५०	भूयससारदुर्गाय	स मा २८ १७०	भृगुपुत्रे महातन्वा	७ ३२३
भास्कराया सवाहेया	१३ ५१०	भूयतासा भूतकृत्स्नित्	स मा २६ १३३०	भृगुपुत्रे महातन्वा	७ ३२३
भारतो बसिणे प्रोक्तो	१३ ४०	भूयान्भवेपाणि यतो भवन्ति	स मा ८ २२३	भृङ्गनामन्ध्यागात् वै	६२ ३३
भारतावाङ्मङ्गलसाद्	६२ ४६३	भूतिलुब्धा वित्तसिन्धो	३ ३६३	भृङ्गिन दायामात्र	४४ ७५०
भारवाही तत क्षिनो	३६ ५७३	भूतेश्वर च तनैव	स मा १३ ३६३	भृङ्गाश्च यस्या गतिवात्तानिर्ता	३ ३५३
भागव स्वावृत्ततनु	४३ २७०	भूतेश्च देव्यनुचरेश्	२६ ५४३	भृश्या वल्लभनुत्ते	६ १७०
भागवेद्रेण घुञ्ज	५२ ३८०	भूतोवाच भ्रिये गच्छ	२५ ६६३	भृश वैर बभूवेह	स मा १६ २०
भागवे पुनरापाते	४३ ५५३	भूयश्च द्योदितगद	६१ २१३	भेतव्य च भवेन्नोके	१४ ५३०
भायात्रवीट प्रनो बाल	४३ १३२०	भूयश्च दैविकानदा	६३ ३००	भरतो विप्रयुता साधम्	४१ १६०
भायाभ्याम्य राजान	३६ १६७०	भूमि विक्रममागरय	६५ ३०३	भोगाश्च विजुलात् मुक्त्वा	स मा १४ ३२०
भायां ह्यनासुरा पुत्र	३५ ४००	भूमि च पद्भुजाकारा	५१ ७३	भोगाश्चरय दत्त्वाय	६७ ५३
भावेन पोष्यति बालवत्स	३६ ४६३	भूमिनिपुण्यते छात	१५ ११३	भोग्येन्द्रया युक्त	स मा ७ ६०
भाष्यभेदेण भूतं ते	स मा ६ ६०	भूमित्याद् कथिराजतो	४४ ३७३	भो यमर्त्त पशुपित	१५ २६३
भाष्यस्य नैव नातोऽस्ति	३६ १४८३	भूमौ गय्या ब्रह्मचय	१५ ५७०	भो भृहृ गत्याय	५६ ४२३
भास्करोपि हि दीनत्व	४६ ६०	भूम्यां तूष्णीं महावीया	३२ २६०	भग्न निचपमाया	३५ ४०
भियद्रे कयमासा	२५ ६००	भूम्यां सग ब्राह्मणभूयितायां	४८ ५२३	भ्रमिष्यामि च तावानि	स मा २२ २१०
भियां प्रचक्ष भगवद्	२ ४३०	भूय कुम्भजं हृष्टवा	५७ ४५०	भ्राता मया मानुजो निरस्तु	३२ ११३०
भियो विमर्ष वीलेऽ	४० ४३३	भूयः प्राह भिगोर्वैरम्	२७ ५६३	भ्रानुनिर्वर्त्यैर्भ्रायि	३५ २७३
भियो भवाद् सतीकम	४४ २०३	भूयः सुवर्त्तियुनो विर्णनी	३० ६६३	भ्रानुय कथामि वचो यवघ	६ ४६०

भ्रान्त सुनाभेन तदोत्सवे कृति २७.३५०
 भ्रामयन्त महास्रष्टं १०.२३६
 भ्रामयन्नुदरं वेगान् ३२.५६०
 भ्रामयन् विपुलं पद्मम् ४३.१०३६
 भ्रामयाभासं सततं ५.१३०
 भ्रामितस्यातिवेगेन ५.१५६
 भ्राम्यभारं स चिच्छेद ८०.१६०
 भ्रियमागं स चाभित्तु ३१.२५६
 भ्रुकुटी कृटिता देव्या [.] २६.५६०
 म
 मकरोऽप्री नदीचारी ५.५७०
 मखानि मुक्ति रात्रानो ७.२३०
 मगधु नासिका पुण्या ५५.२५३
 मच्छरीर्यमालेन ६५.८०
 मज्जन्ते पूयविम्बुने २२.११०
 मञ्जरीभिर्विप्राजन्ते १.१६६
 मञ्जिष्ठा नवरङ्गीया ६८.४७०
 मन्मिन्मन्त्रैरेवं ६३.७०
 मन्मिमुक्ताप्रवालानि १८.३३०
 मन्मिन्प्रवालानां १५.५३
 मन्मिन्बोधधानेन स.मा.२२.७७०
 मन्मिन्सखयनिर्भं २७.१५६
 मन्मिन्सखयनिर्भं ६.४५०
 मन्मिन्सखयनिर्भं ३२.६५०
 मन्मिन्सखयनिर्भं ८.५२०
 मन्मिन्सखयनिर्भं २७.४२६
 मन्मिन्सखयनिर्भं स.मा.१०.२७६
 मन्मिन्सखयनिर्भं स.मा.१०.३०६
 मन्मिन्सखयनिर्भं ५५.२५०
 मन्मिन्सखयनिर्भं स.मा.२७.७७
 मन्मिन्सखयनिर्भं ३५.२२०
 मन्मिन्सखयनिर्भं स.मा.२६.१२५०
 मन्मिन्सखयनिर्भं ५८.२६०
 मन्मिन्सखयनिर्भं स.मा.२६.२१६
 मन्मिन्सखयनिर्भं ५३.३००
 मन्मिन्सखयनिर्भं ३७.४३६
 मन्मिन्सखयनिर्भं ५८.२००

मन्मिन्सखयनिर्भं ५५.२५०
 मन्मिन्सखयनिर्भं स.मा.७.३०
 मन्मिन्सखयनिर्भं ३६.२१०
 मन्मिन्सखयनिर्भं ५३.१२६
 मन्मिन्सखयनिर्भं स.मा.१०.२५६
 मन्मिन्सखयनिर्भं ६३.८६
 मन्मिन्सखयनिर्भं ३६.११६
 मन्मिन्सखयनिर्भं ५५.१७५
 मन्मिन्सखयनिर्भं ३४.१२०
 मन्मिन्सखयनिर्भं ३३.२१६
 मन्मिन्सखयनिर्भं स.मा.२६.१५३६
 मन्मिन्सखयनिर्भं स.मा.१८.३६६
 मन्मिन्सखयनिर्भं स.मा.१३.७०
 मन्मिन्सखयनिर्भं ३०.७३
 मन्मिन्सखयनिर्भं ३६.११६
 मन्मिन्सखयनिर्भं स.मा.२०.२५०
 मन्मिन्सखयनिर्भं ४.२१०
 मन्मिन्सखयनिर्भं १३.३६
 मन्मिन्सखयनिर्भं ६.१२०
 मन्मिन्सखयनिर्भं स.मा.२६.१०६
 मन्मिन्सखयनिर्भं स.मा.२७.१६०
 मन्मिन्सखयनिर्भं ५६.३५०
 मन्मिन्सखयनिर्भं स.मा.१२.१८०
 मन्मिन्सखयनिर्भं स.मा.२७.१५०
 मन्मिन्सखयनिर्भं स.मा.१५.५५६
 मन्मिन्सखयनिर्भं स.मा.२२.३६०
 मन्मिन्सखयनिर्भं स.मा.१५.५६६
 मन्मिन्सखयनिर्भं स.मा.२२.७८०
 मन्मिन्सखयनिर्भं १२.४८०
 मन्मिन्सखयनिर्भं ५०.२५०
 मन्मिन्सखयनिर्भं ३६.७१६
 मन्मिन्सखयनिर्भं ३६.४६०
 मन्मिन्सखयनिर्भं स.मा.१५.५५०
 मन्मिन्सखयनिर्भं २६.३८०
 मन्मिन्सखयनिर्भं स.मा.७.२६
 मन्मिन्सखयनिर्भं स.मा.२६.५६
 मन्मिन्सखयनिर्भं ६६.२०६
 मन्मिन्सखयनिर्भं ३६.५५०
 मन्मिन्सखयनिर्भं स.मा.१६.३५६
 मन्मिन्सखयनिर्भं ४७.१०
 मन्मिन्सखयनिर्भं ३२.३५६

मन्मिन्सखयनिर्भं ३२.३५०
 मन्मिन्सखयनिर्भं ५२.१०
 मन्मिन्सखयनिर्भं ५२.५०
 मन्मिन्सखयनिर्भं १३.२५०
 मन्मिन्सखयनिर्भं ६.५००
 मन्मिन्सखयनिर्भं ३१.७६०
 मन्मिन्सखयनिर्भं ३६.१३६
 मन्मिन्सखयनिर्भं ५७.५५०
 मन्मिन्सखयनिर्भं ६५.२५०
 मन्मिन्सखयनिर्भं ४६.१६०
 मन्मिन्सखयनिर्भं १६.१३०
 मन्मिन्सखयनिर्भं २०.१००
 मन्मिन्सखयनिर्भं ४.३६०
 मन्मिन्सखयनिर्भं ३०.३६६
 मन्मिन्सखयनिर्भं स.मा.१०.२७०
 मन्मिन्सखयनिर्भं ५२.६००
 मन्मिन्सखयनिर्भं ५३.६५०
 मन्मिन्सखयनिर्भं ३६.६५०
 मन्मिन्सखयनिर्भं ३८.६५६
 मन्मिन्सखयनिर्भं ५२.००६
 मन्मिन्सखयनिर्भं ६.५५०
 मन्मिन्सखयनिर्भं १०.२६०
 मन्मिन्सखयनिर्भं स.मा.२७.२३०
 मन्मिन्सखयनिर्भं ५६.५०
 मन्मिन्सखयनिर्भं स.मा.१०.५५६
 मन्मिन्सखयनिर्भं स.मा.१०.७५६
 मन्मिन्सखयनिर्भं ३६.६५०
 मन्मिन्सखयनिर्भं ५६.५५०
 मन्मिन्सखयनिर्भं ५१.३१०
 मन्मिन्सखयनिर्भं स.मा.८.५५०
 मन्मिन्सखयनिर्भं ५०.५८६
 मन्मिन्सखयनिर्भं ५२.५२०
 मन्मिन्सखयनिर्भं ६२.५७६
 मन्मिन्सखयनिर्भं ५१.५५०
 मन्मिन्सखयनिर्भं ३२.३६६
 मन्मिन्सखयनिर्भं २५.५६६
 मन्मिन्सखयनिर्भं स.मा.१५.३६०
 मन्मिन्सखयनिर्भं ६५.६३६
 मन्मिन्सखयनिर्भं २६.१०६
 मन्मिन्सखयनिर्भं ५३.४५६
 मन्मिन्सखयनिर्भं ५६.५१०

ममास्ति नाभरापोऽम्	४४.३६B	मर्यादोपमनुप्राथ	५३.७६C	महापापुपतागृह्य	६.६६A
ममास्तु देवदेवस्य	४६.१६C	मर्वायि यस्तु साकुता	१२.६A	महापापुपतागृह्य	४१.२७B
ममारया निर्रगाया तु	४२.६६A	मलयादीं च तौगन्धि	६३ १२C	महापापुपतागृह्य	४१.२७C
ममेवं तेज उदितं	२०.४७C	मजवेप्रपि महेट्रेज	४५ १A	महापापुपता नाम	४१.१६A
ममेवं वेदवत्यस्तु	३६.१६०A	महत्स्तमस. गारे	स.मा.२६.१४७C	महापापी शुश्रूषानि	६४.८१A
ममेव गान्धा अवितामि पुष्य	६ ४४B	महता श्राववर्षेण	४०.१७C	महापुपती अभितय ताडितम्	२.४३C
ममोपवीत भुजवेधर' पुभे	१.२४B	महता तिरसा वस्तसु	स.मा १० ३C	महावच वेदनिर्दि मुदरं	५०.४०C
मय प्रजन्वाल च दाम्बरोऽग्नि	१०.४६C	महत्कौतुहलं मेऽह	१ २२ १C	महावला भूवगगा गणेश	३२.२०C
मयताप्युरोगास्ते[वारि]	३३.३२A	महत् सरस्तेन पूर्ण	स.मा २२.३७C	महावला महावोर्मा[]	स.मा.८.३२A
मयताप्युरोगास्ते[निवास]	४५.६C	महदाभ्यानसयुक्तं	६२.४६C	महाबलो वायुर्वि	१०.५१C
मयस्तु कृत्वा त्रिपुर महात्मा	६४.६४A	महदेतमहाबाहो	स.मा.८.७A	महाबाहु मुष्टम् च	६३ ३०A
मयस्य पुत्रो त्रिपुरैश्वर्यमती	२०.२१C	महदिशयुता सूर्य	५२.७०C	महाभागमूर्ध्वमुख	५६.७C
मया इत चयन्मनश्च पुरा	४०.२०A	महल्लिकि तयावस्त	६३ ३६C	महाभागवता ब्रूजा	१६.१६A
मया च य प्रतिज्ञातम्	स.मा.६.३३C	महर्षयश्चारणाश्च	५०.७०A	महामाको वरा प्राप्त	४३.१४५C
मया यामिदृता सूर्य	६४ ६०A	महर्षि शकुनिं प्राह	३१.६१C	महामोनी ह्यभिरात्	८ ४१C
मया चोक्तयलितासि	२६.३७A	महर्ष्यं स तदा दृष्ट्वा	११ ८A	महामुद्रानितप्रीया	३४.५A
मया उदत्तमनस	६४.६०C	महापुगस्रर नूर्यत्	१९ ३६C	महामेष महामरुच	स.मा.२६ १०४C
मया जित देवदेव	८.३६A	महाकोश्यां महादेव	५७ ६०C	महामोहस्मिते दरे	२०.३१A
मया तवायाय विवाकरोऽग्नि	२२.४६C	महाभहोपतस्ये	४० ४C	महामोनिनम्यत्	६१.२७C
मया तुपाद्योषकरो	१ ११A	महान्वं मन्दरमभ्युपेयिवात्	४० ६४C	महारथ्ये तथा बट	६४ ६४C
मयात्मा ताय दत्तश्च	३६.३६A	महान्वो निरयव	६० ४४C	महारथ्रा माहिषिका	१३ ४७C
मया न चोक्त बचनं हि शार्गव	६४.१६A	महावज्रलेपहतप्रभावात्	३० २०C	महागर्वं परियज्य	३२ ४३C
मया निसर्गतो ब्रह्मत्	५६.५०A	महानानो दिष्टेन्द्रोऽश्वी	६४.३०C	महालय महावाग्नि	६२.४१C
मया पूर्व मया पूर्व	३२ १०४A	महाजले गुरो श्वानं	६३ ३६C	महालये स्मृत दग्	६१.२२A
मया मृत प्रमाथं यत्	स.मा.१.०A	महातिप्या महापुण्ये	२२ २१A	महालिखणेन विनष्टोऽवितं	३० ७१C
मया स्तान प्रयागे तु	२४ ५१A	महावीर्यं तत् स्नात्वा	५७ ५६C	महावने परिश्रिता	३७ ६२A
मया हि पालिता यूय	स.मा २६ ११C	महाबुद्धकर्मणां	स.मा.२४ २३C	महाव्रत प्रवी लोका	३६ ३७C
ममि तिष्ठति रेत्ये	७.४०C	महादेव महादानं	स.मा.२६ ६३C	महाव्रतो च धनदत्	६ १६A
ममि दासि र यम्राम्यम्	६४.१२C	महादेव स्थितो यत्र	स.मा.२० १२C	महाकिला चोपरि वी	६४.४०C
ममि मुक्ते च पीते च	४३.४०C	महादेवप्रसादेन	स.मा.१५ ७२C	महावरु महाबाहो	स.मा.२६ १०४A
ममूरुमाहाहा निखण्डमण्डितं	३२ ८६C	महादेवजन् श्रुत्वा	३ ४६A	महागैत्र इति श्रुत्वा	३१.५४A
ममग्रे याति बलवान्	४७ १२A	महादेवयो मह्यं	४३.१०A	महाविषयोऽक्षरी वार-	२७ ६A
ममोत्सृष्टमिदं राज्य	८.४४C	महादेवाय देवाय	स.मा.२३ ५C	महादिनवा रं श	३० ४C
ममोपतेवितं यस्मात्	स.मा २४ २C	महादेवाय शर्वाय	४३.३१C	महाहिरन्मवलयो	२७ ७A
ममोऽग्नि भावामारवाच	४०.७A	महान्दो चित्रदेव	३१ ७६C	महाहिरानिद्रितशुश्रूषाला	२७.३२C
ममोऽग्नि पुलह पुलस्त्य	३२ १०A	महानवीजले स्नात्वा	५७ ७C	महाहृदे तत् स्नात्वा	५७ १७A
ममतो नाम यूय वै	४६ २२A	महान्वो यत्र सुरधिकम्या	५० १०A	महिय पातयदेव	३१.५२C
ममतो विष्वक्मां च	स.मा.३.३२C	महान्त संशय धोर	३० ४४C	महियस्तास्तरवीनां	३२.४६C
ममद्विर्भक्तिभिश्चैव	स.मा २४.५C	महापातकमुक्तो वा	६०.४३A	महिपास्य कण दास	६०.२०A
ममद्विभ्रु हतासीश्च	४.२१C	महापातककर्त्री वा	५६.१०६C	महिनो गदपा सुगं	३२.७१A
ममैतु इतमतिर्मदे	३६.३७A	महापातनहा इ च	६०.४०A	महिष्या रूपमुक्तया	१०.५५C

वामनपुराणस्य

सही महीरे सहिता सहार्णया	५२ ८३०	साताश्विभ्या यो दत्त	३५ ४१६	मात्याप्रदान वसनानि मलतो	१४ ५२०
सही विहर्तुमुत्सृष्टम्	६२ ३२०	मानु प्रसवरो कस	१५ १५६	मात्यादंभ्या चादाय	२७ २४३
सही रामन्तात्रिचवार गुन्दरो	४४ ४७०	मानुरेवापचारेण	४५ ३७०	मा विप्राद कृत्वा पुनि	३६ १४४३
सही अल वल्लिसमी रमेव	२३ ४४०	मातृतीर्थ च तत्रैव	स मा १४ ४१०	मास भावव इत्युक्तम्	३५ ५७०
सहीधरोत्तमे पूर्व	४७ २७०	मानुरेवे निनु प रे	स मा २७ १४३	मासश्च कार्तिके नाम	३५ ६००
सहीध्रशृङ्गोपरि विष्णुशम्भू	५५ २८३	मातृभक्त्या च दस्तुष्य	स मा २० ५०	मासश्चाश्विपुत्रो नाम	३५ ५६०
सहीरुधेव यदा वटश्च	१२ ५४०	मातृष्वस घशाङ्गुश्च	४ ८०	मासि चाश्विपुत्रे ब्रह्मद्	१८ १३
सहेन्द्रशिलिप्रवन्दोऽव केगर्व	६८ ५७०	मातृष्वसा विपानेयम्	४ १६०	मासि भाद्रपदे दद्यात्	६८ ३०३
सहेन्द्रो मलय भवा	४४ ८०३	मातृहा पितृहा यश्च	स मा २१ १८०	मासि मार्गशिरे स्नान	१७ ३८०
सहेन्द्रो मलय शङ्ख	१२ १४३	माता पता द्वितोयेऽङ्गि	५६ ६०	मासेनापमत्त कार्य	६४ ८७३
सहेन्द्रा महिलाऽति	६३ ३३०	मात्स्य कौर्मन्थ वाराह	५८ ७११	मासेनैकेन भगवान्	६२ ४०३
सहेधर महेधना	६ ७६३	माधव गतमानाव	४८ ४३	मासेना प्रायाऽन्नामा च	३५ ५६०
सहेधरवपुश्चन	४३ ८४०	माधवाकुमुमामोद	४५ ५०	मासेना भाद्रसदा प्रोक्त	३५ ५८०
सहेधर शृगुण्वेमा	३ २५३	माधवोऽप्युवरी हृष्टा	७ १४३	मासेना मार्गशिरो नाम	३५ ६१०
सहेधरस्य हृदये	१८ ४३	मानुमुक्त महायोगे	३५ ७२०	मासेना दीपास्तनामा च	३५ ५४०
सहेधरार्थं कन्या तु	२६ ५३०	मानुषस्य तु पूर्वैः	स मा १५ १६	माहात्म्य वेदिषु शक्तम्] स मा २६ १४६०	
सहेधरराज पुष्पपीतनेन	७ ६२०	मानुषभ्यो भय तीक्ष्ण	स मा २४ ६०	साहित्यदा विनयन	६३ १६३
सहेधरेण कपित्थ	६० ४६०	मानुष्य जन्मासाद्य	५३ ७४०	साहेधराद् वनमयो वभूव	१६ ६३
सहेधरेण सन्वक्त	३१ ६३	मा भौद्रिभमुताह त्वा	५६ ६१०	साहेधरो त्रिनेत्रा च	३० ४३
सहोद्रेषुशला रोद्रा	३० ७३	मा मा क्षिपत्वेत्यभवत्	४६ ५६०	साहेधरोद्गलविदारितोरसरा	३० २१३
सहोदये समसेरय	५७ २५०	मा मा शक पतस्वाद्य	४३ १२२०	मित्रजयाय जननी	१२ १६३
सहोदये ह्यप्रवी	६३ १४३	मा मे श्रुद्धस्व देवेश	४४ ६०३	मित्रपुत्र मिन्दत्	३५ ४१०
सहोदराणा प्रवरोऽप्यनन्तो	१२ ४४७	मा मेव यद दैत्येऽत्र	३३ २५३	मित्रावस्थापूर्तिस्त्वम्	६० ४६०
सहै वस कुजमश्रय	४३ ५३०	मा मेव नव त्रिधो एव	२५ ६५०	मिथुन नाम विष्णवत्	५ ५००
सा अग्रह गुणवर्द्धो	६४ ६६३	मा मित्रस्य भूतस्येह	१८ ४६०	मिथुन भूजयोस्तस्य	५ ३२०
सा एव राक्षसि सण	१८ ३४०	माश्रय वदिष्यते लोको	४१.३८३	मिथुनाभिगते सूर्ये	१७ ६३
सा निहनु ततो हि स्याद्	स मा १० ३१०	मायाबालसमुपद्र	स मा ६ ३१०	मित्रको वर्णहीनश्च	४१ ३१३
सासमस्योनि क्षिपर	३१ ६०	माएण मित्रकौटिल्य	३५ ५३	मित्रैकान्तमिहिरुक्त	३५ ५०
सा सगन्धद्वयस्वाद्य	२७ ३००	मारो निरुत्तेन जदान	चान्याद् ३० २०३	मौनद्वयमयास्तु	३५ ६३
सा स्तुवाते भूशास्यस्य	६ ८२०	मारुतेनैव युद्धयन्ति	१५ १६०	मुक्तपाराश्च स्वतीर्षि	स मा २७ २६३
सा कुम्भ सुहृद्भि	२३ २६३	मा रुद्धयन्तिरेवाह	५६ ६६०	मुक्तस्तु शर्वदातृणां	५३ ६५०
सापचारभ्यमासाद्य	५७ ५८०	मार्कण्डेयवच श्रुत्वा	स मा २२ १४३	मुक्ताबालाभरदारो	६७ २०
सापचासमयोपेध	५७ २६०	मार्कण्डेयो मुनिरस्तन	स मा २२ ५३	मुक्तावामे प्रकाम हृदिगिरितनया	
सापमसे तिता देवात्	६८ २३३	मार्जार कौशिके प्रादात्	३१ ७७०	मौडिनाथं तपान्धत्	२७ ३७०
सापे कुतोयकनयान	१७ ४२३	माखा हरि दूलधर पताका	३१ १०३०	मुष्णमुवर्णरजत	४६ ३२०
सापो निगदितो मास	३५ ६३०	माता मगधगोनन्दा	१३ ४६३	मुष्णो वर्षसहस्रान्ति	६४ ८३०
साठरोदकवारार्य	१३ ३६३	मातिनी तन्दिच्छ स्नान	२८ ६०३	मुष्णोसि दैत्यनाथाय	४४ ७२०
साठव्या मातृवीयाश्च	१३ ४३०	मातिनी वृषभगम्द्	२८ ५८३	मुष्णोऽह पाठवी सर्वैस्त्	स मा २७ १७०
साठार्य तथा सर्वा	३२ २८३	मातिनी त्रिजगोरस्य	२७ ५४०	मुक्त्वा देव गदापाणि	४३ १०७३
सा तात साहसं कार्यम्	स मा २६ ४२३	मातिनी शङ्कर प्रह्	२७ ५२३	मुख निरोधन्ति सुरा	३२ ५०
सावापिनुरूपणा च	१२ ११३	मातिनी सुरभि शृष्ट	२८ ५७३	मुखतो ब्राह्मणा जाता	स मा १८ २३३

भुङ्गनाशक्तिरुपादीन्	२६ ६३	मुहूर्तमपि ते सयं	स मा ६ ७०	मेषप्रभेभ्यो दैव्येभ्यो	४३ ६६३
मुखस्यस्तथा पुष्य	५४ ७०	मूकवधोत्पत्तिं स	६४ २४०	मेषवैश्यामिवाकारो	४० ७०
मुखे गुरु समासिन्य	३१ २१०	मूढ किं ते वलं बाह्यो	३२ ६६३	मेधावत युगवर्त	स मा २६ १०५
मुखे तु सामन्यो विप्रा	६५ २५३	मूढमुदे भवान् भ्राता	३७ ३२३	मेनां देवाश्च शंलाय	२४ १०३
मुखे वैश्वानरश्चास्य	स मा १० ५५३	मूढनावतया चाप	६४ ६५३	मेनाप्यथाह भर्तारं	२६ ५७३
मुख्य पुरारोपु यथैव मास्य	१२ ४८३	मूनरत्नेभ्यमुरीपाणि	१२ ३२३	मेनाया बन्धकास्तित्यो	२५ १६
मुख्ये त्वया विरहितो	६ ३६०	मूर्तिं तमोऽनुत्सय	स मा ६ ३३३	मेव ददां पीलेन्द्र	५१ ७०
मुख्यती चरि मेनाम्या	४ ११०	मूर्तिं स्वल्प कुचक्ष्ये	३६ ५७०	मेरुप्रव यमो धाम	स मा ३ २०
मुख्यं नित नाराचगान् सहलग []	६ ४६०	मूर्तिं हि ते महासूक्तं	स मा २६ ६६३	मेरुमुत्ताय्येद्राणि	३७ १७०
मुख्यन्ति क्लाररत्नाञ्जिवाश्र	६ ४३३	मूर्ध्नि नैनमुपाश्राय	२८ ७१३	मेवादीन् पवतश्चद्रात्	२६ ५४०
मुख्याम्पुत्रसदित्य	५६ ४८०	मूर्ध्नि नारायणस्यापि	८ ३३	मेघ समानमूर्तिरथ	५ ४६३
मुख्यनेत्र हृषीकेन	६० १६०	मून ते ब्राह्मणा ब्रह्मन्	६० २५३	मेघो राशि कुञ्जनेत्र	५ ३१०
मुद्गर भ्राम्य वैपेन	८ २००	मूल पूर्वोत्तराणाञ्च	५ ३६३	मोकारो मुजयोर्मुस्म	३५ ५६३
मुद्गरे वितये जति	८ २२३	मूलस चरयो विष्णोर्	५४ ३३	मोक्षयामास नागेन्द्र	५८ ६३०
मुद्गलस्य मुने पुनो	६४ २२३	मूने गुणे भाद्रपदासु मास	१४ ५००	मोक्षघातन पर तात	६४ ६२०
मुद्गलेनास्मि गदिता	३८ ५३३	मूलेषु कन्द प्रवरो ययोक्तो	१२ ५२३	मोक्षार्थं रक्षता तेषा	स मा १६ ४००
मुनयो मुनिमादाय	३६ १६७३	मूल्यैर्गृहीतौ कीत स्याद्	३१ ४३०	मोक्षेते देववत्तया	११ ५४३
मुनिप्रव्रज्यासीन	स मा १ १०	मूककुञ्जस्ते कुरुता हि स्वस्ति	३२ १८०	मोक्षोपहृतविनाम	स मा ६ ३३
मुनीन् सनुजवाभ्याश्च	४३ ३६३	मूकान्या पिञ्चरिता []	६ १५३	मोक्षमथ्ये सनुत्सय	स मा २६ २६०
मुमुक्षुमिदमिच्छेत्स	स मा ६ २२३	मूकशीर्षं नयनयो	५४ ८०	य	
मुमोष चक्र वेगाढं	५६ ४१०	मूला समेन वी माता []	स मा १४ ५२०	य कीर्त्यं सधुत्स तथा विचिह्य	५८ ८४०
मुमोष हानप्रतिमी दृपलकैश्च	७ ५४०	मूलाजिन कुम्भ्यानिर्	६२ ४४०	य क्षीरास्यभिषेकेण	३६ २००
मुमोष तेजो जिलासु	५६ ३२०	मूलाजिनाङ्गुत दृष्ट	६२ २६०	य ददर्श जगन्नाथो	६ २३०
मुमोष मार्गानाद् भूम्या	६ १०५३	मूलाजिखडन दृष्टवा	४ २२३	य दृष्टा सकलात् कामात्	स मा १४ ३३०
मुमोष बीरुभद्राय	४ ४२०	मूलादमादादिधापास्	५ ३३३	य दृष्टाऽह प्रवृत्तो वै	स मा १७ ३३०
मुमोष साप्याय तरा	८ ५०	मूलास्यो मकरो ब्रह्मन्	५ ५७३	य न पश्यन्ति पश्यन्तो	स मा ६ २२३
मुमोष सिंहाय वै	३० २०	मुपि गात्रामूर्तिं सिंहेर्	५८ ११३	य न करतलेनाह	३४ ३३३
मुद्रयासाद्य मोदते	३४ ४२०	मुपोत्तमाङ्ग नवने	५४ २४०	य न करेण दृष्टान्ति	७७ ३७३
मुद्रस्तद्राज्यमावर्ष्य	३४ ६०३	मृत प्रेतत्वनापन्नो	५३ ५६३	य न पश्यति सत्य स	५६ ५६३
मुद्रस्तमाह भवत	३४ ५६३	मृतकल्पा महाबाहो	३७ ५७३	य योगिन सतोपुत्र	स मा १० ११३
मुद्रतिरकरविभ्रष्ट	३६ ३३३	मृता श्रपि न गोच्यास्ते	६७ ३६०	य विनिद्रा जितभासा	स मा २६ १४८३
मुद्रतिररन्त्येय गणाधिपेद्रम्	४ ५००	मृते च सर्ववर्धुनात्	१५ ४१०	य करोति च पैतृभ्यं	१२ १०३
मुद्रार्जुनस्य श्रुत्वा	६५ ६३	मृते भर्तारं सा यामा	१८ ६४३	य बारसेमादिद केवात्स्य	६८ ३७३
मुद्राधि महाभोगात्	३४ ४१०	मृतोऽस्त्युत्सव स्येनाहं	६४ ६६०	य परेया हि समर्पिण	१५ ३१३
मुद्राल बीरुभद्राय	४ ७७३	मृतानवमपि मिष्टस्य	५३ ५५३	य पान्पद्मज विष्णोर्	६७ ३५०
मुद्रालं सपद दृष्टा	४ ४८३	मुमुक्षु मुमुक्षुता च	स मा २६ १२०	य प्रभु सर्वलोकानां	स मा ४ ५३
मुद्रि गृह्यत दाना	३ १७०	मुयो सकलात्सुपमा	स मा २६ ६०	य प्रभु स्यात्स रत्नाहं	२६ २७०
मुद्रन्तमिव चक्षु वि	३१ ४६०	मुमुक्षुप्रत्यनाराणि	१५ १२०	य प्रवच्छेत्त चरकात्	स मा २० २७०
मुद्रस्य दालिन गृह	१८ २६३	मुद्रागोच्य स्वस्तिरुपगतानि	१४ ३६०	य प्रवृत्तिनिवृत्तौ	स मा ६ १५३
मुद्रसो साङ्गली चक्षु	३२ २४०	मुद्रागोच्यो रमिपौर	३० ४०	य दिते जलमथ्यस्वम्	स मा २६ २५३
मुद्रस्यै प्यानमारथाय	३८ ६१०	मुद्राव चतुर्धृ	३१ ८५०	य श्यात्त कुस्ते मर्यम्	स मा १५ ४७०

धामनपुराणस्य

य सत्येक्षेभोपि निज हि धर्मं	१५,६६०	यत् ज्ञात्वा ब्रह्म परम	स मा २२ २७०	यत्परीत दृष्टाणेन	३१,३४
य सवमप्यगोमन्त	५६ ८६०	यत् ये च कुहस्रज	स मा २०,११३	यत्तस्त्वत्सवयन पुष्य	१ ३२ १३६
य सृजत्यच्युतो देवस्	५६७८०	यत् समदाय जगाम तूर्णे	६५ ६१०	यत्तङ्गमत्ताद्विष्य	२८ ७०३
य स्मेरते मुहस्रज	स मा १२ ६०	यत् समगात्परस्नाजुलत्व	६४ २३	यत्सिद्धा यद्ब्रजता	१ ५६ ६४३
य सृष्टा सर्वलोकाना	स मा ३ १२३	यत्कर्माधिकारस्यात्	स मा १० ३८०	यत् श्रवस्करं कर्म	४७ ४०
य प्राणाना नरो गत्वा	स मा १५ ५३	यत्दानतपसोह	१४ १६१	यत्सैलोक्ययुक् विष्णु	११ २४०
य इद श्रु सुधाचित्य	५८ ८०३	यत्तदीशा नले लुकत्	६२ २८०	यत्स धर्ष परित्यज्य	४३ ११६०
य इहाभ्यन् स्मरता च	स मा १५ ३७३	यत्पञ्च गमस्तुम्य	६० ४३	यत्सया तात कर्त्तव्य	५३ १३३
य एते पितरो दिव्यास	२२ १६३	यत्पानानारण्येस्त्वन्	६० ३६०	यत्सया युधि विक्रम्य[देवराज्य]	स मा २ १५३
य एतत्परम सौत्र	५६ १२१३	यत्तवाह विगाता च	३१ ८३०	यत्सया युधि विक्रम्य[देवराजो]	४६ ४३०
य एते भवता प्रोक्ता	स मा ८ ३६३	यत्तनागभुजस्तव	५२ ४०३	यत्सया सलिल दत्त	स मा १० ६७०
यस च चन्द्रप्राप्त	२३ ३६०	यत्तनागमुषो देवा []	स मा १० १२३	यत्तमस्त्याभियनार्थ	३१ ५४०
यस समभिवादीय	स मा १३ ११०	यत्तमभ्यागतो बह्वृत्	स मा १० १००	यत्तात्कचमाशय	४१ ३७३
यसविद्यानरादान्च	६ १२०	यत्तवाट प्रविष्टु त	४ ३१३	यत्तग्राम्य प्रदत्तेन	स मा २५ २६०
यसविद्यानरादान्च	४४ ४५०	यत्तवाटप्रपागम्य	६५ १०	यत्तनामदुषा गाय	४४ ८२०
यसस्य च प्रसादेन	स मा १४ ३८०	यत्तवाटस्त्वत्त विप्रा	स मा १० ३६०	यत्त वीडा विविधा सङ्कुमुमतरवो	
यना किपुरुपादान्च	४ ३३०	यत्तवाहाय हृष्याय	स मा २६ ६५०	वारिणो विन्मुपातैर्	२७ ३७३
यसा पिनाडा वसवोऽय किप्रा	३२ १६०	यत्तमिद्याविविद	स मा २ २२३	यत्त वै दारुयाकारा []	३२ ४८३
यसागामाधिपस्यापि	१८ ३३	यत्तसस्तचविद्भिश्च	स मा ३ २३३	यत्त वै मुनय सर्वे	स मा २२ ५४३
यसा नलेपु सम्भूता []	स मा १० ५००	यत्तस्व यत्तमानस्त्वम्	६० ४०३	यत्त त्व नेष्यते विप्र	स मा ११ २३०
यसानान्ध्रिय तस्यै स	१८ ६६०	यत्ता नियन्ते यज्ञास	स मा १० १६०	यत्त देववर शम्भूर्	५७ १५३
यसाम् किपुरुपाद्यादीन्	४३ ३५०	यत्तादीनि च पुण्यानि	५६ १०७३	यत्त देवा सगन्धर्वा	स मा १५ ४५०
यस ज्ञानपरिच्छेद्य	५६ ६१०	यत्ताभ्ययनसपना []	४८ ४६३	यत्त देवा समागम्य	स मा २१ ११३
यस ह्यै व्यस्तभूत च तस्य	स मा ११ २२०	यत्तौ चाहापि दुष्टिता	४ २०	यत्त देव सगन्धर्वा	स मा १६ ३०
यस प्राद्वशे वीर	१८ ४६३	यत्तयजन्ति य विप्रा []	५६ ८३३	यत्त नाम्नेन निङ्गत्	स मा २२ ६१०
यस भोग्ये तथा पेये	५६ ६७३	यत्तैविना नो प्रीयन्ते	स मा २६ १४३	यत्त पूव स्थितो ब्रह्मा	स मा २० २४७
यस रोपमिभूतेन	{ स मा १४ ७०	यत्तोपवीत पुलहस	६२ ४५३	यत्त ब्रह्मात्मो देवा []	स मा १२ १७३
	{ स मा १४ ७०	यत्तोपवीत भगवान्	स मा ६ ३६०	यत्त मङ्गलक विद्म	स मा १६ ४०३
यस नर्ज्य महानाहो	१४ १३	यत्तोपवीतो ह्यतो च	२५ ४५०	यत्त यत् पर विप्रा []	स मा ६ ४०३
यसात्पयमपद	५३ ५६३	यत्तोऽधमेव प्रवर भूतानां	६५ २०	यत्त योग समास्त्याय	स मा ४ ६०
यसामपदिन कल्प्य	६८ ४३	यत्तव सप्तस्यो मृदुरेव सत्यवाक	४६ ५१०	यत्त रामेण विप्राण	स मा १४ १०
यसपि कुशलो नात्वा	१५ ५३३	यत्तज्ज्वल मुनया हस्रग []	४६ ३७३	यत्त यगायत्र स्नात्वा	स मा १६ १४३
यसप्यन्वद धोतुकामोऽसि विप्र	६५ ६८०	यत्तज्ज्वल होमशालामु	१६ १८३	यत्त वातातपो श्रीष्टे	१ १२०
यसस्रवीहीयता मे	४० ४६३	यत्तस्तु सा तिव दीप्तै	३० १६०	यत्त वामनरूपेण	स मा १५ ६५३
यसह हृदमीहृत्वा	२५ ७०३	यत्तिल्प्यामि तथा शक	५० २३०	यत्त विष्णु स्थितो नित्य	स मा १४ २२३
यच्छतोऽभि दुषचारत्	स मा ६ ३०	यत्तो मृगो च तौ दक्ष्यो	२६ ७१३	यत्त सनिहितो विष्णुस	५७ ७२०
यच्छ्रुत्वा मुक्तियान्मोति	स मा २२ ३०	यत्तो यतो विविर्थाति	स मा ७ १५३	यत्त सप्त सरस्वत्या []	स मा १६ १७०
यच्छ्रुत्वा सर्वगणेश्यो	{ स मा २६ २०	यत्तो पिब्य सनुदुहृत	स मा ६ २०३	यत्त सा सुरभिदेवी	५५ १३३
	{ स मा २८ ४६०	यत्तिकात्त्रिमले सस्मित	स मा २० २३	यत्त सोमस्तपस्तत्त्वा[व्याधि०]	स मा १३ ३३०
यच्छनु ब्राह्मणधामो	३० १५३	यत्तौतनाचक्रुत्वास्त्यनाचा	५७ ७४०		
यच्छनुर्नो ऋग्मयस्त्वाम्	स मा २६ १०६३	यत्तकायनो यजन्ति यद् ददाति स मा २२ ८६३			

यत्र सोमस्तपस्तस्वा [द्वित्रं]	सं.मा. १६.१५०
यत्र स्वागोमं हृत्सोमं	सं.मा. २६.१३०
यत्र स्तास्ता विभूत् पूष्य	सं.मा. २६.१६६
यत्रांशुहृत्सो ह्यभवद्विस्तो	५५.१००
यत्रास्विनी च भरणी	५५.३१६
यत्रास्ते शेषपर्यङ्के	३४.६२०
यत्रास्ते चक्रे भगवान्मुरादिः	५०.१६०
यत्रेश्वरो देववरस्य विष्णोः	५५.३३६
यत्रेष्टा भगवाद् स्थानुः	सं.मा. १६.५३
यथा कथञ्चिज्येष्यामि	५५.५२०
यथा गुहं न मनसा	५६.५६६
यथा च न मम क्लेशम्	५०.५४०
यथा च पायंतीकोषाद्	२२.६६
यथा चापी निभासन्ति	१६.३३६
यथा तयानुपस्थेयं	५१.३७०
यथा एवमुच्यं तत्र देव तल्पं	१७.२३६
यथा न कृष्णादपः	सं.मा. ८.५६६
यथा न तस्तादपः	५१.३६६
यथा नरेष्टमुद्राणि	६.१२०
यथा नाच्यः प्रियः कश्चिद्	५१.२६०
यथा नाच्यत् जिततरं	५१.३५६
यथा नायनाक्षी योगम्	४८.३८०
यथा पतन्ति नरटे	५१.३८०
यथा परं बद्ध हरिस्तथा परं	५६.२१६
यथा पापानि पूजन्ते	६६.२३
यथा पापापनोदो मे	५६.३४०
यथा प्रदग्धोऽसि महेश्वरेण	६५.२०
यथा बलिनिर्घमितो	सं.मा. १.१०
यथाभिलषितं कामं	सं.मा. २१.१५६
यथाभिलषिताम् कामान्	सं.मा. २५.२३०
यथा भ्रामांशुसुतो	२५.१८०
यथा मिरा हीनवताः पृथिव्यां	२०.२५०
यथापी कम्पलाः श्लक्ष्णाः []	१६.३०६
यथा मे विश्वस्येष्टाद्	सं.मा. ८.५८६
यथाऽन्वराद् वादित्वाः प्रणष्ट-	४७.५००
यथाऽमुपापा न तव	१.२६०
यथा यथा जिनयनो	५१.४६६
यथा यथा वादयते	२१.३५६
यथा यथा समाप्यन्ति	५१.४८६
यथायातो मागं	सं.मा. ९.६०

यथा यथापते वृत्ते	३६.४००
यथायुधानां यत्रं तुवर्तानं	१२.४४०
यथा रत्नाणि चतशेद्	६७.३६६
यथाऽरधिमसंस्तता	२७.४८०
यथा वने मत्सरो परिभ्रमन्	३३.३५०
यथा वने सर्वाङ्कदम्बमध्ये	२६.७१०
यथा विष्णुमयं सर्वं	५६.६६६
यथा वृषागाभिर् नोत्तवर्गो	१२.५४०
यथा शक्यं दास्यामि	सं.मा. ६.३४०
यथा शुभोऽस्तिविद्ययातः	२६.३२०
यथाश्रयानो योविष्णवाः समन्तात्	१.१६०
यथा स्तायं प्रवारथय	५८.३८०
यथाश्वमेधः प्रवतः कतूना	१२.४७६
यथा स तनयस्तुभ्यम्	३८.२२०
यथा सतीना हिमवतगुहा हि	१२.५५६
यथा समद्विपः कौचो	३०.५४०
यथा सर्वेषु देवेषु	सं.मा. २७.८०
यथा सर्वेषु भूतेषु	५६.६०६
यथा सुराणां प्रवरो जनार्दो	१२.४७६
यथाऽहं वै परिब्रातो	५१.२६६
यथा हतवतीं शुभ्रं	२२.६०
यथा हरस्य मुषानं	२५.१६६
यथा हि तपसो निभं	५६.२८०
यथा हि सध्या न विदुष्यते त्वं	१७.२२६
यथेच्छया मया दृष्टम्	३८.३६०
यथेयं द्वादशीपुण्या	५६.६६६
यथैतत्सर्वमुक्तं मे	५६.११०६
यथैव चर्षवाहाणाणि	६५.७२०
यथैव रात्रौ भवतस्तु साम्प्रतं	६५.१००
यथोक्तानां स्वयंभूमां	११.३०
यथोद्दिष्टं भगवतः	सं.मा. ४.१७०
यत्सुतं ब्रह्म यदन्ति सर्वानं	५८.५७६
यत्सो भवता प्रोक्षत []	५६.१६
यत्स्यं शुभस्तस्मा []	सं.मा. १०.१६६
यत्स्यमिह संवासा []	सं.मा. ५.१६
यत्स्य रत्सत धेयो	५६.१२६
यत्स्यस्तनुमज्यथा []	३२.२२६
यदा उत्तरतो याति	सं.मा. २१.८०
यदा युताया तजवं	३६.१०६
यदा तिस्रः समेष्यन्ति	३७.८१६
यदा तु तपोऽप्रेय	सं.मा. १०.१८०

यदा तु क्षीरविद्रिष्टं	३७.१०६
यदा त्वापाखी यंवाति	१७.३६
यदा दशमुद्रा ब्रह्मम्	५६.२६६
यदा दैव्यो निर्गमिष्यद्गुहास्तः	३२.६३०
यदाऽग्निः स्वतं तेजस्	सं.मा. २२.३३६
यदा न देव्या कवचं	२०.५१६
यदा न शक्तिता तेन	३८.७६६
यदा न शक्तिता योदतुं	५३.६१६
यदा पक्षिष्यते चैवं	२८.१५०
यदा प्रभृति सा दृष्टा	२२.३६६
यदाऽग्निप्रमथयन्त	५१.५३०
यदा मुग्धितो श्लो	२५.२६
यदाऽस्यां क्षम राजन्	५८.३६६
यदाऽस्यां शो भविता महासुरः	३०.७१६
यदाऽकृष्टे नृपतो	३७.६५६
यदा वर्णाः स्ववर्मस्था []	५८.५८६
यदा वर्षसहस्रं तु	३५.२६
यदा संवत्सरं पूर्णम्	१८.१५०
यदासीन्मुष्टिबन्धं तु	६.६८६
यदा सुरैश्च विप्रैश्च	सं.मा. १०.७६०
यदा सूर्यस्य ग्रहणं	सं.मा. १२.२०६
यदा हरो हि यासिष्या	२७.५६६
यदि कश्चिद्दि शारथ्यं	५३.१२८६
यदि तुष्टोऽसि देवाना	२८.५६६
यदि तुष्टोऽसि मे देव	सं.मा. २७.१६६
यदि देव प्रसन्नस्त्वं	सं.मा. ७.७६
यदि मे नापन्नस्तव्यस्	सं.मा. २८.२५६
यदि भोहेन मे शानं	सं.मा. ६.८०
यदि यं रजतो रम्या	१६.२०६
यदि वरदा भवती विदद्याना	३०.६६६
यदि क्वाचिदोऽहं स्वा	२४.७०
यदि शुभ्रपूवतो वस्त्रिद्	५६.५७६
यतोऽप्यति यतो गोस्तुं	५६.११६
यतोऽप्येतरस्य रूपं	सं.मा. २५.१६६
यतोऽप्यस्तव क्लेशः	५०.५५६
यतो मा योदुमुपागतोऽसि	३५.७५६
यतुस्तं देवतितान	२६.८५
यदृच्छया निपतितो	१६.५४०
यदेतद् भवता प्रोक्तं	११.१३
यदेतद् भारतं वपं	१३.८५
यदेयं कम्पते भूर्भुव	५३.१३५३

येऽन्वेष्ट्यविहृता देवाः	४८ १४०	ये सन्निधाना सुतत	६२ ५३०	योऽय कल्पति पूर्वं स	३२ १०६०
ये नपन्ति निराह्वयः	स मा २८ ४००	य सेवन्ते चतुर्विधा	स मा २१ २८०	योऽय विरूपाक्ष इति	५६ १५०
ये यदन्त्यखिलावादाद्	स मा ६ २७७	य सन्तो भृक्षुधातारा	स मा २१ २६०	यो य धारो मया दत्तो	स मा ६ ६७
ये पराशेतिहासावान्	१२ ३०	य स्मरन्ति च तीर्थानि	स मा १२ ५५	यो यतो यनपरदैर	स मा ६ २८५
ये प्रबुद्धन्ति विप्रम्वस	स मा १५ २०	य स्मरन्ति सप्ता स्याणु	स मा २३ १५०	यो रक्तबिन्दुर्वपत्तु ब्रुविष्या	३० २६०
ये ब्राह्मणान् प्रद्विषति	१ मा १६ ३४०	य हता प्रथम युद्धे	६३ ८०	यो य नृपतिः सदात्मा	५६ ८५०
येऽनवन रैवते ताश्च	४६ ६२०	य हता प्रयाद्वैश्या []	४३ १११	योपिता चैव पापाना	स मा १६ ३५५
ये मानवा विगतरागपराभ्या []	६७ ७१५	यैरिम प्रकरोत् सर्वे	स मा २८ २७५	योऽगावात्मनि देहेऽस्मिन्	स मा २२ ७६०
येय गिरिसुता वीर	३७ ५५	यष्टमाने सहस्रैव नाम	६२ ५६०	योऽगो नमुचिरिरेव	२६ ३३
येय हि भवत परवी	४० ५५०	येन सुबद्ध एवास्मि	६४ १०५०	याऽगो पीतान्बरधर	२७ ५४७
येय हि भवता प्रोक्ता	३५ ३२०	योग जिगिषस्तात	३५ ५०५	याऽगो प्राश्मश्लेते पुष्य	३ २६५
येऽथा त्रिव्या ये विनयन्ति		योगान्चिन्तयन्मम	१६ ५१०	योऽगो भगवता प्रातो	३३ १६
चाये	स मा ११ २१५	यागाङ्गानि तन्मीमान	६० ४१०	याऽगो ममागतो ऽन्वितो	३ ४७१
ये लिङ्ग पूजयिष्यात्	स मा २३ ११५	योगार्चायै गुणि वक्ष	५६ ८०	याऽगो बहलात् सवर्धना	२६ ३४७
ये वसन्ति महोष्ठे	११ ३००	योगागत महामान	५८ ५४०	योऽगो मुर इति ख्यत	३४ २८५
ये वा भूमौ येऽन्तरिण्यवतो		योगान्वापरोत्तौ निय	१ २०	योऽय युवा नीलघनप्रकाश	३६ ११७५
वा	स मा ११ २१०	यो विभुक्तिः क्षमिस्तु	स मा ६ २२०	योऽगो रज सत्वमयो	३४ २७५
ये विष्णुनृका पुरया वृषिष्या	६७ ३१०	योगो चतुर्मुखिभूत	३१ ३६०	योऽस्मिन्तीर्थे नर स्नाति	स मा २१ १४०
ये वृद्धवाक्यानि समाचरन्ति	६८ ६५५	योगेश्वर चाष्टविचित्रमस्मि	५८ ५५५	योऽह स भगवान् विष्णुर्	४१ २७०
ये गह्वरचक्रजकर सर्वाङ्गण	६७ ४०५	योगेश्वराय देवाय	स मा २८ १६०	यो हृत्पयति सत्यात्	१५ ६४०
ये शृङ्गन्ति श्रद्धावानास	स मा ४ ५६०	योजनाना परिख्यातम्	११ ५५०	यो पुत्र भगवान् प्राह	५७ ७१०
ये श्रद्धधानास्तीर्थोऽस्मिन्	स मा २० १६५	योजनाना प्रमाणेन	११ ३१५	योवने परमा भोगान्	३८ ३२०
येषा कुले न वेरोऽस्ति	१५ ३५५	योजनाना राक्षसे ऽ	११ ४००		
येषा चक्रगदाभयो	६७ ५५५	योजनानि चतु षष्टि	१८ २०		
येषा त्व कर्कशो राजा	५१ ३३०	योऽजयः सवतो देवान्	१८ ७००	रत्नबीजमयातुते	२६ १६५
येषा लघवीहशो राजा	स मा ८ ३४०	यजिता नैव पतिना	३७ ७५०	रत्नबीजिति विख्यातो	२६ १७५
येषा वर्णमज्जैग	स मा २२ ८५	यो ज्येष्ठोऽस्मत्कुलजा रगाग्र	२० ४४०	रत्नमण्ड्याम्बरधरो	स मा २६ १३०५
येषा न विद्यते सहा	स मा २६ १६१५	योऽय तोयस्त्वल्हयो	स मा ६ ३२५	रत्नबाजिसमाह्वता	५६ २०५
येषा नामानि पुण्यानि	स मा १३ ३०	यो वक्षशापनिदम्	५७ ५३५	रत्नस्तया पचतु रात्र्युन	२२ ५२०
येषा मत्सि गोविन्दो	६७ ४१५	यो यथायाम तेजस्वी	४३ ५८०	रत्ना पुष्टाशरा रम्याम्	स मा ४ १०५
येषा भोपयितारो वै	६८ ६६०	यो यथायाम स बलवान्	४८ ७	रत्नाङ्गो रत्नोवा च	२२ ५५
येषा विष्णु प्रियो निय	६७ ५०	यो परमशीलो जिदमानरोपो	४० २६५	रत्नाम्बरधरा चाया	४६ ६६०
येषा भूते जगति पापहानि	४६ ७६०	यो परमहीन कनहप्रिय सदा	४० ३०५	रत्नाशोककरा त नो	६ १७५
येषा हि हृष्ट्याऽर्पणचोदितेन	५२ २१०	यो नोपो द्वादशवतास	११ २८५	रत्नाशोक्याना भान्ति	६ १४५
येषामन उक्त चित्तम्	स मा २२ २३०	यो नियकमयो हानि	१५ ३८५	रत्नाशोया प्रयत्नेन	४२ १००
येषामास हि पुण्यानि	६८ १६५	यो पौष्यदेवतामक्तो	६७ ६५५	रत्नातो भवत वापद्	४० १०
येषामिन्दीवरायामो	६७ ५६०	यो वा ऋषि परित्यक्त	१५ ३७५	रत्ना तु ते हि मा निय	स मा २६ १५६०
येषामेककरो विष्णु	५१ २४०	यो मा त्वा च सरस्वैव	५८ ६८५	रत्ना मा रत्नगीयोऽह	स मा २६ १५०५
ये सन्निरता हरिभक्ततमनात्तदमध्य		यो मा विजयते युद्ध	२० ३६०	रत्नास्व धाम्ये व न धावतेऽन्यत्र	१० ४६०
[विष्णु]	५१ ५४५	यो मा हि स भवमुपेयिवास्तु	२० २७०	रत्नासि यन्नास्व सुसप्रहृष्टा	६ ४१०
ये सन्निरता हरिभक्तमनात्तदमध्य	६७ २६५	यो मामसितकेत ता	३३ २३०	रत्नितस्त्वन्मक्त दाध्या	५७ २१०
[नारायण]				रत्निता गुह्यो साय्यो	१८ ६४०

श्लोकार्घसूची

रसोभूतविधाचाना	५६.१२०	रसोन् रसोक्तजनयो	५३.१५००	राधाबुद्ध्यादपिप्यामि	६५.७६०
रज सृष्टिगुणं प्रोक्त	स.मा.२२.२०७	रसतल वा पृथिवीम्	६५.१५३	रात्रिर्जं सूर्यरूपी च	स.मा.६.३३०
रजतं मनकं शेषान्	६८.३२६	रसतल विद्येयान्	६.६७०	रात्रौ चिन्तयते मुदं	८३.३००
रज्ज्वा संवृतो लोको	६.३१०	रसतलगतता ये च	स मा २६ १६०३	रात्रौ न शेते मन्तेपुताडितो	३३.५७०
रजस्वतत्वमेताम्	स मा १३ ६०	रसतलस्यो दितिजञ्जकार	६६.१८०	रात्रौ विकसिता ब्रह्मम्	१६ १००
रजोयुक्तं नमस्तेऽस्तु	३.१६६	रसतले च वानि स्युर्	७ ३६०	रात्र्यन्ते स्रजते लोकात्	२.२२०
रजरेणु रजोद्भूत	५७.२८३	रसतले च विख्यातं	६३ ३३३	राममन्वर्च्यं श्रद्धावाग्	स मा.१५-१५०
रज्ज्वात्रैवापरास्यामि	५४.२०	रसति स्यादुक्तवम्ल-	१८ १५३	राम राम महाबाहु	स मा.१५.५५
रज्ज्वा निर्गच्छति लोकागते	५२.१३३	रहस्ये हि गमिष्यामो	स मा २२ ६५०	रामेण रावर्गं त्वा	स मा.१६ ११०
रतीमिव सिंघता पुष्पात्	३७.७१०	रहोदरस्य तल्लग्नं	स मा १८ ७३	रावणेन प्रहीतया	स मा १६ ६३
रत्नस्य दानस्य च यत्कर्म भवेद्	६६.६३	रहोदरो नाम मुनिर्	स मा १८-३३	रात्रायो गदिता ब्रह्मम्	५ ५५३
रत्नानि सन्ति तावन्तं	२६.३३०	राक्षसस्तत सर्वाङ्ग	५६.११००	राशि कर्कटयो नाम	५-३५०
रथं चरामसद्वार्धं—	६ २०३	रासतानामर्षो मुर्त्के	स मा १६.२६०	रित्तकुम्भश्च पुष्ट	५ ५८५
रथ सारथिना सार्धं	१०.७३	रासताएडवकोद्यानि	१८.१६०	रिपुजिनामत् स्यातो	५६.६३०
रथज्वलं. सनारत्न	६ ३६०	रासतो नानि च भय	३६.२५०	रक्तमुद्गंमहादेवैर्	१० ३०
रथाद् भार्गवनाशामत्	५३ २५०	राशिणो नाम संजाता	२५.२०	रक्तो श्रीदयोपेता	५० १००
रथै पञ्चापि तातो	३६ १११७	राजकार्यनिमुक्तो वा	स मा २७ ११३	रक्त च देव प्रणिपत्य मूर्त्ता	स.मा १.५०
रथैरस्ये पञ्चैरस्ये	५७.११३	राजत राजतेऽप्यर्थम्	५२ २६०	रक्तं चेतसि सधाम	२५ २३०
रथो मयास्य विख्यातो	६.२६०	राजते शृङ्गमालेव	७ ६०	रक्तं सत्या प्रगष्ट्या	२२.६३
रथ्याकर्दमतोयानि	१५ १६३	राजप्रष्टावलास्मान्	३६ ६००	रक्तं स्नात्वाच्यं देवादीन्	२८.६७०
रथ्यामतान्विज्ञातं	१५ ८०	राजमुनि सुवत्यानि	६५ ७३३	रक्तममलतोद्भूत	६ १७३
रत्नुक च नरो हृष्टवा	स मा.१३ ११३	राजमाहगर मुञ्च	३५ ७३	रक्तकोटि समन्वर्च्य	५७ ५००
रत्नुक च समासाद्य	स.मा.१२ १६०	राजपर्यस्तथा सिद्धा]	५७ १६३	रक्तकोटि समाग्रित्य	६२ २६०
रत्नुकस्यापमातापद्	स.मा.२.१.५३	राजपं परितुष्टोऽस्मि	स मा.२० १५०	रक्तकोटिस्तथा कृणे	स मा १५ २२३
रत्नुकादेजसं यावत्	स.मा.१.५३	राजप पञ्चवरो	२.२३३	रक्तपत्नी पदिचयत्	स.मा २० २५३
रमगीये वनोद्देशे	३६.११३३	राजमूदयस्य यज्ञस्य	स मा १३ ३५०	रक्तमीनानस प्रादात्	३१.६१३
रमत सह पार्वत्या	२८.६३	राजा बलासतो भूम्या	२२ ३५०	रक्ततद्वाक्यमाकर्ण्य	३१ ३५३
रमनागा मनोद्देशे	३६ ५१०	राजानश्च महोभागा]	३६.१८०	रक्तस्त्रित्तोलजो	६०.२२०
रमयाभास ता लक्ष्मीं	३६.११०३	राजा गितुष्टपैर्मुक्त	स.मा.२७.३१०	रक्तस्थ च द्विरभक्ष्या	६३.३२३
रम्याश्रय करभश्च	१८.५२०	राजाज्जीवीं सुरवरं	२३ २५३	रक्षाया च प्रसादेन	स.मा १५.२३०
रम्यायाश्वास' श्रेष्ठा	६.६०	राजा वैवस्वताश्वाद्	५ ३५३	रक्षादीना वदस्वेह	६.१३३
रम्यारूपमवापाम्य	५५ ३७३	राधेदेऽस्या कुबो पीनो	७ ७०	रक्षाया स्वन्दपर्यन्ताम्	५२.२७०
रम्यं महेश्वरावास	१६ ५७०	रात कुवतयापश्य	३३.११०	रक्षे च सरोनस्य	स.मा.१.१२३
रम्याश्रयस्यो पुंसो	५२.६१३	राज्यं ह्य च तेनेष्ट	स.मा २ ६३	रक्षोसश्रयो भीम	६.१६३
रम्येऽथ द्युसेतास्यं	५३.६८०	राज्यं त्वतनयाता व	५०.५१३	रक्षिरासुतसर्वाङ्गम्	५.१५३
राम लक्ष्मी मननोत्तमेयु	२२ ६१०	राज्यं परित्यज्य महासुरेन्द्रो	८ ७१३	रक्षिरासुतसर्वाङ्गो	५.२६०
राम लक्ष्म्या सह कामधारी	५६ १३०	राज्यं प्रसं यशोभ्रम	स.मा ६ ५३	रक्षं च वलितान श्रेष्ठं	२६ ५०३
राम सभुर्भवात्	२.६०	राज्ये त्वङ्गितकारित्व	३५ ७३	रक्षेष्ट्वा प्रदुष्टाय	२६.६२०
रामिदिशप्रतापदि-	७.१५०	राज्येऽप्यन्तेऽपिपातु	६ ३३	रक्षो मुरच प्रहस्य	६५.३३०
रविरास कुम्भधनं समेत्य	१६.२३०	राज्येऽपिपिक्तश्च महासुरेन्द्र	१८ ७१०	रक्षोदाय ततो बान्धाव	५६.१०३
रवौ सतिनि चैवान्ये	१६.१६०	राज्येऽपिपिक्तो दैत्येन्द्रो	६.५३	रूपं ज्ञानं विवेकं च	५१.२५०

यदि श्रेयो भवेद् वीर	११ १२०	यमाश्रित्य वन पुष्यं	स मा २० ३३०	परमाभाङ्ग्यस्वर किञ्चिद्	५६ ८६३
यद्वात्ये यद्य कौमारे	५६ ६८३	यसोर्धं सर्वभूताता	५६ ७३३	यस्मान्नेच्छसि तेषु पुत्राः]	२८ ५५८
यद्वाह्यो मुनिश्रेष्ठ	५३ १३४०	यसोश्चरं यदन्येके	२६ ३५०	यस्मात्प्रवचनं पति	२५ १३३
यद्मन्त्रमहं देव	६२ ५५३	यमुना सरिता श्रेष्ठा	२७ ११७	यस्मान्मा सरिता श्रेष्ठे	स मा १६ २१३
यद्भूमिलोके सुरतोक्तस्ये	६६ ८३	यसौ शशो विस्मयमेव यस्या	३ ३२०	यस्मिद्बोहो कान्यकुब्जि	३६ १५०
यद्भूम्या न्यपदक्षिप्र	४४ ४२३	यसोपर महाबाहु	६१ २००	यस्मिद्बोहो वियोगस्तु	१७ २६०
यद्भोग्यं च समुद्दिष्ट	१५ १०	यसो राज्यसुखार्थ्य	स मा २७ ६०	यस्मिन् काले सवर्ष	५२ १२०
यदद्विष्टमं किञ्चिद्विज्ञास्य	१५ ५१३	यसोवृद्धि कुमास्य	३१ २०	यस्मिन् किञ्चोक्ते बहुपात्रबन्धनात्	५८ ८२०
यदद्विष्टमं किञ्चिद्विज्ञास्य	६८ ३६३	यथास्या पशुत्वस्त्रिचद	२६ ४२५	यस्मिन् माते मुनिश्रेष्ठ	३५ ६७०
यद्यमोने विभो चक	५६ ३०३	यस्चेद स्वानमश्रित्य	स मा १० ८१३	यस्मिन् तीर्थे वको दास्यो स मा १८ २६३	
यद्यचरन्ति निदसा	६ ८५३	यस्चेह तीर्थे निवसेत्	स मा २८ ३५०	यस्मिन्दिजेन्द्रा य्युतितास्त्रजिताः]	५० १७३
यद्यच-य त्वया साह	५६ ४४३	यस्चेह त्वद् वने स्थित्वा	स मा ७ ५१	यस्मिन्नेव यत्स्वेव	स मा ६ २३०
यद्यसावपि यथास्या	३६ २३३	यस्चेह प्राङ्मगान् पश्च	१ मा ७ ६३	यस्मिन् प्रतिष्ठितं सर्वं	स मा ७ १२०
यद्यतो दुर्जयो देव	५ ३५३	यस्चेव ज्ञानून्वदुत्सवर्ण	३६ ११८३	यस्मिन् प्रविष्टमानस्तु	स मा २० ३३३
यद्यस्ति ते सत्यमनुत्तमं तदा	६६ ७०	यच्छु सुरमेधना	५२ ३३०	यस्मिन् प्रविष्टान् पुनर्नवन्ति	स मा २ ११०
यद्युक्तं समहाबाहो	५८ ३४०	यस्तं वेद महात्मान	स मा २२ २२०	यस्मिन् यया यानि यतोऽयं विप्र	२० १८०
यद्यत्सत्यमुक्तं मे	स मा ६ ३६३	यस्तं च कुर्वते श्राद्ध[शिवः]	स मा १५ १७३	यस्मिन् स दत्तेऽयस्तुतो जयाम	५२ ६००
यद्यत्तद्विष्णुन त्व	५६ ५३३	यस्तं च कुर्वते श्राद्ध[वटः]	स मा २४ १४३	यस्मिन्-वैश्वदेव सर्वे	स मा ६ ३५३
यद्येव पुत्र युष्माभिर्	स मा ३ ५३	यस्तं च तर्पणं कृत्वा	स मा १५ १६३	यस्मिन् स्वाने स्थितं ह्यण्ड	स मा २२ ३४०
यद्यव प्रदिग्भवेति	५६ ३१०	यस्तं च सपयद् देवान्	स मा २१ १७०	यस्मिन् स्थित स्वयं देवो	स मा १५ १४०
यद्यप सप्रति ममाह्वयमभ्युपैति	५७ ४५३	यस्तरेतागर दोर्म्या	३७ १७३	यस्मिन्स्वातस्तु पुष्ट्यो	स मा २२ ४०
यदा पूर्वं यरमूते समस्ता	स मा ११ २२३	यस्तस्मि वेदेद्याय	स मा ६ २६०	यस्मिन्स्वातस्तु मुच्येत	स मा २० २६३
यद्य चत्वारिहरणं	३५ ६३	यस्तामद्रिष्टुतां शीघ्र	३७ ३०	यस्य कथं न वक्तव्यं	३५ ७४०
यद्यथा मा वचसि तद् वरिष्ये	६ ४७३	यस्तु कृष्णतिलं सार्द्धम्	स मा २४ २७३	यस्य केधेपुं बीमृताः]	स मा २६ १५२३
यद्यत्रिन्दश्च जगन्नाथ	४१ ४०३	यस्तु वटे स्थितो रात्रि	स मा २४ ३१३	यस्य त्व कणा पत्रो	५१ २८०
यद्यत्रिणाथ च यत्रातर्	५६ ६३३	यस्तु धाद्य नरो भक्त्या	स मा २१ २७३	यस्य त्वमोहस पृथो	स मा ८ ४००
यद्यन्महापदेसायं	५६ ३६३	यस्तु संविद्यमानोऽपि	स मा ६ २६३	यस्य नास्ति पतामक्ति	६७ ५६०
यद्यन्मयावार्थं कर्तव्यं	स मा १० ११०	यस्तु स्नान श्रद्धयान्	स मा २० ११३	यस्य प्रसादात् प्राप्नोति	स मा २५ ३१०
यद्यन्मया तात कर्तव्यं [नलोच्य]	५८ ३३३	यस्त्वस्या भूतापतिना	२६ ५८३	यस्य यो सन्नभवद्	स मा २ ३०
यद्यन्मया तात कर्तव्यं [सद्वृत्तुः]	५३ ६१०	यत्वा सदा परयति चैवमाते	६ ५२३	यस्य वैश्वान्तिं धृत्वा	५२ २५३
यन्मा देहीति विद्या	स मा १० २००	यस्त्वा पुद्गलमानारा	४० ६०	यस्य सहास्येना कुर्वी	५० ४४०
यन्मे पाप शरीरोत्थ	६७ १५०	यस्त्वासोऽन्नुसमाक	२६ १८०	यस्या चित्तं समानमि	१८ ५२०
यन्महार वेदविद्यो वर्दन्ति	स मा ८ २१३	यस्माज्जातस्ततो नाम्ना	२८ ७२३	यस्या जलकीजसगतासु	३ ३५०
यन् प्रमायमुन्माय	३१ ७१३	यस्मात् सस्मादिहैव स्वम्	स मा ८ ५४०	यस्या लिप्या प्रस्वनिति	१७ १६३
यन् प्रजासंपन्नान्	३५ ५७३	यस्मात्तनकिनीतेन	४० १३३	यस्या मानमदौ पुतां	३ ३७०
यन्मत्तं प्रहृ म विष्णुर्	५७ २३०	यस्मात्तत्त्वतनुजायि	६ ५१३	यस्यास्यभूता देवस्य	५६ ८७०
यन्मत्तं प्रहृ म विष्णुर्	५७ ५७३	यस्यात्सुख्योऽश्वनीपस्व	५१ ३५३	यस्या हि पितरो दिव्या	२२ २४०
यन्मत्तं प्रहृ म विष्णुर्	१६ ७३	यस्यात्स्वतनुजायि	३७ ७५३	यस्या हि भोगिनोऽपीश	३ ३००
यन्मत्तं प्रहृ म विष्णुर्	५३ ८३	यस्यात्स्वतनुजायि	स मा २३ ८२३	यस्या स्तनमसाद्य	५६ ३३०
यन्मत्तं प्रहृ म विष्णुर्	११ १४०	यस्यात्स्वतनुजायि	२८ ६३३	यस्यासिपो वन्द्युषी	स मा ६ ३४३
यन्मत्तं प्रहृ म विष्णुर्	११ १४०	यस्यात्स्वतनुजायि	३७ ५२०	यस्यादरात् प्रणमोऽप्य	३२ ८०

यस्मादिन्द्राद्यवन्त्याल	स मा ८ ३८३	यावत्सूयच्छाण	३२ ३८३	यूय यत्तेजसा दून	२५ २७०
यमेह यजमानस्य	स मा १८ ३७०	यावदेत मया कृष्ट	२३ ३३३	ये कीतयन्ति वरद वरदापनाम	६७ ७३३
यस्योदरे जगत्सर्वे	५० ५३२	यावदेत निहृत्स्मिच्छ	३६ ६००	य दूष्प्रगंडास्तथा कणा []	५६ १५३
यस्यादरे भूर्भुवनाकापाल—	६४ १६०	यावदोषवतो प्रोक्ता	स मा १ ७०	येऽग्न्युत्तमाना पुत्रपा []	स मा २६ १५६३
या गति प्राप्यते लोके	६८ १०	यावद् द्विजस्य देवपे	५६ २५३	ये च पञ्चमु भूतानु	स मा २६ १५६३
या गतिर्ल्याराल	६७ ५४३	यावद् बुधिमराणिरय	१७ २६०	य च श्राद्धमि दास्यति	स मा १० ८२०
या गतिर्मर्त्योलाना	६७ ५४३	यावन्तो जन्तुमा यन्मा []	२६ ३६३	य चाय पतितता गभा []	स मा २६ १५५३
या च पाठो गुना ह्यानीद्	६ १००३	यावन्तो भास्वररते	१६ ५६२	य चोदभावद्वेतरा	५६ १८३
यावत्स विष्णो गजवाजिभूमि	६५ १३०	यावत्प्र प्राप्नुवन्तीह	स मा १४ १८०	ये जना पुष्पद्वीपे	११ ४६३
याचितारस्य मुनया	२६ ५६३	यावत्प्र भूया निजमाश्रमि	१६ ३१३	ये जन तावत् लोके	३४ १२३
याचितारो वय शर्वा	२६ ५६३	यावत्साह च भुञ्जामि	३३ ५८३	ये तु श्राद्ध करिष्यन्ति [प्राय] स मा १५ ३३	३४ १२३
याज्जवा यजमानश्च	१२ ३६०	यावत्सिंह म वायार्थ	४४ ५०	ये तु श्राद्ध करिष्यन्ति [प्राय] स मा १५ ३३	३४ १२३
या ज्यान महादेवो	२० ७६०	यावन्मन्मन्तर प्रारु	स मा २४ २८३	ये तु श्राद्ध करिष्यन्ति [प्राय] स मा १५ ३३	३४ १२३
याग्नोत्पन्नयोर्वेद्यश्च	१२ ५०	या वृता मन्ये पूर्व	६४ १६०	य तु विद्या महामानस	स मा २४ १७३
या गृह्णित्वाये पुता	६८ ६७०	या सा रागवता नाम	२५ १७३	य त्वेते नरत्वा रोडा []	१२ ४३३
यायात्पय च तानु सवान्	५० ५५३	या सा दशेताम्बरा श्रुता	५६ २२०	ये दिव्या य च भ मा चनगगतवरा	
यायात्पय द्योस्ताम्या	३६ ५४०	या सा हिमवत धुवी	२२ ३३	स्यान्तरा जन्तुमाश्च	६२ ५८३
याहास्ताहो वाणि	२५ ६७३	यानु यष्ट सुरेनेन	२३ १८०	यन सगवत् मौक्याद्	५६ १००
याहाग य सवारा []	५ ५४०	यासौ विशाङ्गदा नाम	१६ ७३३	येन स विष्णु साधे	५६ ८२०
या कृत्तितुष्टुधूपा	५८ २६०	युक्तमोदि पापना	५६ १६०	य नग्येणु समुद्रु	स मा २६ १५७३
यानमुष्पन्त्य ह्यर्ष	३६ ६०	युक्ता मृगागिरेणव	१७ ३००	यन नित्येजो दैव्या []	५१ १५०
यानि पापानि कर्माणि	५६ ५३३	युगवरे वेनि प्रादव	स मा १३ ५७३	यन प्रविच्छेत् किरीट गड्ढर	५५ ३३०
यानि सुर्वर्गयुक्तानि	६८ १००	युगा निमेषा काष्ठद्वच	स मा २६ १११०	येन युक्त हि निहित	स मा २ ७७०
यानि स्वर्गे महोदृष्ट	२६ ३३३	युगाद्योप पुत्रय	५८ ५४०	येन येन निधानत	स मा १३ ३३
यानेतानु पश्यते गमा	५१ ५३	युञ्ज च वाप्यामात्र	स मा १५ ३३०	य नरत् वायुदेवस्य	६७ ३६३
यानेतानु भगवानु प्राह	१७ १३	युद्ध वनो प्रापयगाविद्ध	६ ५४०	यन सम्पगकीतेन	६१ १०
या नैव गत्या मवता हि पूरितु	६५ ३६३	युद्धव दानेन सार्धम्	५३ ७४०	यन सवात विष्णु	५१ ५४०
यानु ज्वानु भववदभक्त्या	५८ १३	युद्धायाम्यागतेष्वेव	५३ ६०	यन सर्वे समेतेन	२२ १४०
यानु याञ्जरेण सृणुते पवकम्पे	१० ५४०	युद्ध वरारत्रैर्भुङ्क्तेता	७ ६१०	येन सुवरवाङ्मया	५१ २२३
यानुमुत्तनि वनाशेतेय	६५ ७७३	युध्यमाना तु सो देवो	स मा १५ ३३०	यनावत्स महर्षेण	४४ ५००
शान्धे च रत्नानि महोत्तने वा	२० २८३	युध्य स ल सनाल्ल	५३ १२४०	यताग्नान्ताडुभी देवो	२ २३०
या भद्रानयमसत्स्य द्वे	२१ १६०	युष्टुपु सङ्घर्ष युद्ध	५८ ५३०	यनाशत शिवसमि	३६ ८३
या भूतायश्च सूर्याखे	स मा २६ १५६३	युष्टुपुष्पानेनै सार्ध	५८ ३०	येतार्थिकवप मा ल	३२ ६६०
याग्या रक्षन्त मा विष्णो	१८ २७०	युवदीना सहस्राय	६७ ५३	देवास्वर मुनिनेष्ट	५३ ३००
याम्येन वेना हृष्टिजता च	१६ ६०	युवमोगुणसमुत्ता	४६ ५०३	देवार्थिनो हि त स्य	२६ २६०
या या जपित मे बुद्धि	८ ६१३	युवदेववनादेवी	२६ ३१३	देवासौ पतिगा दैव्य	३३ ४०
या रत्ना रत्नरसवा	५६ २३०	युष्मत्सतागन्धेयामि	३२ ३०	देवाह् निरिता नित्य	५१ २६०
यावत्सोति सुमध्वा हि	२३ १००	युष्माक चायसाधेन	स मा १६ ३३३	देनेकद्रुण समुद्रुद्वेतेय	स मा ८ २६३
यावत्ता चातपिव्याव	२६ २२०	युष्मानि पातित विद्म	स मा २३ १३३	देनेतानि शृष्टेस्तां	५८ ३६०
यावत्सर्वाणि सप्तस्थानु	३२ ५६३	युष्माश्रयस्तमि	५२ १०३	देनेत्तरत्वा वेनि	२३ १७०
यावत्सुदृश विप्रश्च	स मा १० ७४०	यूय देवा भविष्यन्	५६ ५०३		

रूपधारमिरावर्यां	६३.५०
रूपयौवनसंपन्ना	३७.३६०
रूपस्य चक्षुर्ग्रहणे स्वगोपा	स.मा.८.२.४५
रूपस्य नाभौ भवति	स.मा.१.३.३१०
रुपाभिजनमैश्वर्यं	२५.५८०
रुपाभिजनसम्पत्त्या	२६.३८०
रूपेण मुखेन विभो ह्यनेन	६६.१३०
रूपेणानुपमा कालो	२५.५०
रेणुकाश्रममासाद्य	स.मा.२.०.५५
रेमे तन्व्या सह तथा	२३.६०
रेमेऽन संजुना सार्द्धं	२८.७६५
रेमे निराचरैः सार्द्धं	११.६०
रेमे सहोमया रात्रिं	२७.६००
रेम्यो मरीचिस्त्वयवतो ऋधुस्त्व	१५.२४०
शैवात्स्यान्दरे अता	५६.७००
शैवतस्यान्ववाये सु	५६.६३३
रोमा न याति भिषजैः	स.मा.२.८.१३३
रोमो धान्यो न सा जिह्वा	६७.३४०
रोमश्चक्षुषिकेवाद्या	३१.१००
रोमावलो च अक्षनाद्	७.६३
रोद्रः शकटवनाशः	१.१८०
रोद्रः शकटवनाशो	३२.५६०
रोद्रा कर्कटिका तुण्डा	३१.१०१०
रोद्रिश्च वैश्वदेवेभ्यः	५१.५७०
रोद्राविनसंकीत	स.मा.२.८.१३०
रोद्रवाचास्ततो रोद्रः	११.५८०
रोद्रयो नाम नरकः	११.५१०
ल	
लक्ष्मं च स्वल्पं च	५.२६०
लक्ष्मं तस्य चक्षुषाम्	१४.१४०
लक्ष्मं धेतुमिच्छानि	१४.१३०
लक्ष्मा गतिारमुत्थं	५.६००
लक्ष्मणकटाहनेन	११.५२०
लक्ष्मीधरः प्रीयता मे	१७.२५०
लक्ष्मीं मेधा धृतिः कान्तिः	स.मा.१.०.५७०
लक्ष्म्या सह ललत्प्रियाः	६५.२६३
लक्ष्यते कार्त्तवीर्यं	१६.२६३
लज्जमाना समाधास्य	२६.६१०
लज्जया सापि दृष्टेति	२७.५६०
ललाच्छत्रं ततस्त्रुणं च	३८.७२३
ललाच्छत्रसंघाताः	६८.५८०

लतापार्श्वमैहादन-	३८.३७०
लतावत्स्पर्शतुषीपथ्यः	स.मा.२.६.११७३
लतावितानसंघमं	४५.४०
लक्ष्मणे भूमिदाय्याकर्म	३८.३३०
लक्ष्मणधुरतां भूयो	६.२३
लक्ष्मणोऽङ्गैः सहसा	२३.२६०
लक्ष्म्या च वक्त्रं प्रवरं महापुत्रं	५६.४३०
लक्ष्म्या पीताम्बरवरः	१७.८०
लभते यवकांमात्रं	स.मा.१.५.२१३
लभ्यकास्तावकारामाः	१३.५१०
लभ्यं च यस्मिन् प्रलये प्रयान्ति	स.मा.८.२२०
ललनावा सप्तसख्य	६२.३१०
ललाटफलके तस्मात्	४५.४१०
ललिताह्वया तपस्तेषु	२५.४१०
लाघवाददं कर्त्रेस्ता	३८.७७०
लाघवाद्दृष्टिपुत्रं सं	३८.७००
लाङ्गलं च गणेशोऽपि	५.५७०
लाङ्गलैरारितप्रोवाः	२१.१००
लातामकीरांमेवोक्तम्	३५.८०
लावण्याराशिः शशिकान्तितुल्या	३३.१२०
लिङ्गं निरवने सूक्ष्मं	६.६३०
लिङ्गं शैलवर्षदिक्रियात	स.मा.२.५.२७०
लिङ्गं पापहरं सद्यो	स.मा.२.५.५१०
लिङ्गं प्रत्यश्मुखं दृष्ट्वा	स.मा.२.५.१०३
लिङ्गस्य दर्शनाच्चैव	स.मा.२.५.२६०
लिङ्गस्य दर्शनादेव	स.मा.२.५.३०
लिङ्गस्य दर्शनाङ्गुलिः	स.मा.२.५.२५५
लिङ्गाना दर्शनाद् पुत्र्यं	स.मा.२.२.२३
लिङ्गानि देवदेवस्य	स.मा.२.८.३७०
लिङ्गानि ह्यतिपुण्यानि	स.मा.२.२.७०
लिङ्गैः स्विताः सम्मयश्च	६५.२००
लिङ्गनेन तथा रैत्यात्	३२.६२०
लिङ्गवर्षं लोलुपत्वं च	३५.८३
लुप्तस्त्रियोऽवहृत्पातौ	१६.५४०
लोकानुलोभनाद् सेकाद्	१५.११०
लोकानवर्य भाययं	३३.२५०
लोकान्वात्स्यपुरण्यम्	६२.५००
लोकान्वात्स्यपुराणा	२.१०
लोकान्वात्स्यपुराणा	स.मा.३.२.४०
लोकान्वात्स्यपुराणा	स.मा.१.५.२००
लोका योऽदोः सतः	३.२२०
लोके भवान् काश्चिको मतो मे	

लोकेषु यद्गतसं विरिन्धेः	१२.५६०
लोकोदारं समासाद्य	स.मा.१.५.२१३
लोलं विवाकरं दृष्ट्वा	५७.३१०
लोलासंकरसंभूतेस्	स.मा.२.८.५४०
लोहितान्तर्गतो दृष्टिर्	स.मा.२.६.१२५३
लोहितो हरितो नीलः	स.मा.२.६.११८०
लोहदण्डे हृषीकेशं	६३.३६०
व	
वैश्वदेवं समासाद्य	स.मा.१.५.१६३
वकारं क्वचं विद्यात्	३५.५६३
वक्त्रकामा इवाङ्गुल्या	६.१६०
वक्त्राणि दृष्ट्वाऽस्मानि सद्यः	२.३३३
वक्त्रसमानकेताय	स.मा.२.६.१०२०
वक्षस्येन तथा ह्योः	स.मा.१.०.५६०
वक्ष्यते तव योगे हि	३२.६०
वक्ष्यामि कथमायाते	स.मा.१.०.२२०
वचनं प्राह देवैर्	५३.६०
वचनं प्राह धर्मात्मा	५६.३१३
वचनं बलिपुत्रकाम्या	५८.३५३
वच्यं तपेन्द्रः सहपश्यता च	१६.१५३
वच्यं परिभ्राम्य बलस्य मूर्ध्नि	५३.१०८०
वच्यं प्रहरणाता च	स.मा.२.६.११३०
वच्यं सुरेन्द्रस्य च विग्रहेऽप्य	२१.५६३
वक्ष्यतुष्णता जिह्वाम्	१२.१००
वक्ष्यात्कुशोद्यतकरा	३०.८३
वक्ष्येन्द्रनीलवैद्यैर्-	५८.१५३
वक्ष्यित्वा प्रतीहारं	२८.५१०
वक्ष्याथैः स्वितां लिङ्गं	स.मा.२.५.११०
वक्षुषः समभवत्	१८.३०
वक्ष्य उत्तरे पाथे	स.मा.२.५.८०
वक्ष्य दर्शनं पुण्यम्	स.मा.२.२.८०
वक्ष्य पूर्वदिग्भागे	स.मा.२.५.६०
वक्ष्यात्प्रोत्सिम्मुद्रवक्त्रं	३८.३६०
वक्ष्यपुत्रं ततः प्राह	५३.२६०
वक्ष्य कौपिन मे मोहो	स.मा.६.७३
वदनं विकृतं कृत्वा	५३.९४०
वदन्ति यं मे पुत्र्यं यताता	५८.५६०
वदस्य वचनं वचर्ता	३५.५३०
वदामि ते पार्श्वेति वाक्यमेवं	२५.६३३
वक्ष्यामी पूर्वकर्म-	३६.६२०
वक्ष्यति ददाशीवं	५६.१०३०

वधु सर्वजगतां	२६ ४१०	वरनोऽपि वदोगान	४४ ७०७	वधमनेवात्तरमद्भुत्वयोर्	४० २५०
वधुते चैकद्वयापि []	३२ ६६०	वररोऽभ्योत्थयेलुक्त	२३ ३२०	वध तनेहारी प्रात	६ १००
वधवसानोऽनुभवत	६४ ८१०	वरादुरोऽपि देवेण	२६ २४५	वधतमाह भगवान्	७ ३०
वन पार सुगुल्फाद्य	३८ ३३	वराहोऽपि गहडासर्पे स	५३ ५०	वसन्तदक्षी सप्रसा	६ २१०
वन हरणव्याप	६२ ११०	वशा च समन्वेद्य	१० २८०	वसन्तोऽपि महाविना	७ २०
वनमालाहृताग्रीडो	स मा २२ ५५०	वश्या िगुमारस्वी	१० २५५	वसवोऽग्री महाभापा []	४ ३२५
वनमालावर हरे	६० १२०	वशगरर मणिकुण्ड	२६ १४५	वसवोऽग्री हर हृदा	५ २५
वनमालिनमात्रमी	६३ १७०	वशरोऽभूम्यस सोमा	५८ १३०	वसो विलुप्तान्ति च विस्फुरन्ति	६ ४२०
वनवासकान्त्वम्बा []	६ ३८०	वशेभ्य विरगो वैदुच्छ	६० ५५	वसामुर् ममादेण	स मा १० ७२५
वनस्तपि पपुषुष	६१ १८०	वशे प्रसत् विपुण्ड्रकेन	३२ ११६५	वशिष्ठ मुनिगार्तु	स मा १६ ९०
वनस्तपि समान्यात	६३ २६०	वशोपवाभिन्न सहस्रमुत्तिमित	३१ ५५०	वशिष्ठस्तन तपसा	स मा १६ ५५
वनस्तपित वृणेष	३३ ५५५	वशापान तथा दुष्टम्	३५ ३५	वशिष्ठस्यापवाहोऽग्री	स मा १६ १५
वनस्तपितोनामर्च्यैत	६८ १८०	वशयथाय चान्मानि	१५ ६१०	वशिष्ठो गाभिन्नो यमो	स मा १० ३५०
वनानि नृपिनारायाण	६ १२५	वशक्यापिसुप्त	६४ ३६५	वसुनामा सोमशोर्ष	३१ ६१०
वनानि तस्य नो पूहि	स मा १३ १५	वशादानामवमाणा च	स मा १५ ७५५	वसेच्छ वेषोपु सुराजकेपु	१५ ५५५
वनान्येतानि वै सप्त	स मा १३ ६५	वशाधर्मविश्रायोऽप्य	स मा २२ ८३५	वसन्तस्वस्वगतानि	६८ २२०
वने विचरतस्तत्र	स मा १८ ७०	वशस्य वदितानिकेन	स मा ६ २७५	वसन्तसुराया देव्य	४४ ८५
वन्त्य वरगो िव्या	३२ ७०	वशस्य वदितानेण	६२ ४०५	वह्निर वसिष्ठपूर्वो च	३२ २३५
वन्मि वरगो मातुर्	४४ ६६०	वशस्य वदितानेण	६२ ४०५	वह्नी स्वर्गि संक्षिप्य	१८ ४६०
वन्मन्तुनिपविच	१५ ५८०	वशानवता सर्वा []	स मा १३ ८०	वावर नाचितकुल	३५ ६१५
वपुण्यल्लुमुनामी च	३१ १०१०	वशाना सततोना वै	५३ ५५०	वावरो जानुमुना च	३५ ६५५
वपुष्मन्ति विख्यातो	४६ ४३५	वशिष्या विष्यमीलय []	१३ ४८०	वाङ्मयादेहोऽपि जता	६३ ६०
वष तेन प्रेषिता स्मस	२६ ३२०	वशिपु त्रिपु नद्यत्र	६५ २१०	वाङ्मायमानसातह	६४ १८०
वष हि धुविता सर्वे	स मा १६ ३२५	वसन्तजितसवीर	स मा ३ ६०	वासप्रारन विरतीतम्	१५ ६५
वष परिपत्ती वष	५६ ६८०	वसन्तजातामोषागम्	१५ ५०	वास्य च यश्मन्सुतो वनाप	२० १३०
वषोमनुष्यान्खिलास	स मा ८ १३०	वसोऽभूम्यैव हि शोषनाय	१५ ३२०	वास्यमाह महादेवा	४० २२०
वश नवीवैभल्य न च परकृतवापि		वसन्त मूनावनत	४७ २२०	वासस्यका वदतानिदशन्ति	२८ ८५
वश	३३ २६०	वसिदरे महात्मान	५० ७७०	वासिष्णुषो द्विजराजा	१५ १००
वश प्राणास्त्वान्या न च विबुधवा		वसन्त चरणी शंभ	२५ ३७०	वाशमायुष्ये तथा कान्ति	५५ ३५५
वशभिरति	३३ २६५	वसन्तं तापु वाश्यन स	१० ६०	वाचकाय प्रोत्तव्य	६६ १५५
वश नन्वा तस्य शुक्ल	३६ ४७५	वसन्तं मातगास्तक्षणात	४ २८०	वाचयामास वै तस्मै	स मा १० ४७७
वश वर्य भद्र तेष्वत्येव [] स मा २७ १६०		वसन्त शरजालानि	२१ २४०	वाचा कुलक शोभास	२८ ७०
वश वर्य भद्र तेष्वित्येव []	४४ ६८०	वसन्तं शैल धारोपैर	२१ ५०	वाचिक च जगन्नाथ	८ ५६५
वश वृषोत्त भ [] ते	स मा १४ ५५	वसुवर्ता मुखस्वर्गा []	स मा ६ १५५	वाच्य तथा वाच निरर्थक विभो	६५ १५५
वश वृष्ण्य भद्र वो	स मा ६ ३५	वसता द्विजगार्हता []	स मा १८ ५०	वाच्य नमस्ते देवेण	१७ ११०
वश व्याप्राय दर्शैव	२८ २१५	वसतिभ्रवतीना च	३३ ४७०	वाजिपुत्राविद्योर	५ ५६०
वश प्रयोगता महा	२८ २२०	वसते पुष्पद्वेषु	५ ५६०	वागो परनसत्कारा	स मा ४ १०६
वशवापा समन्नेय	१६ ५३०	वसते भगवान्जिज	३ ४००	वात नमो वैद्युतत्र	१३ १६०
वशपापा सनेवास्वीत	१६ ५२०	वसते व्याघ्रजिषु	५ ५२०	वातागो चैवल्लक्ष्मि	४३ ५६०
वशपाय नयस्तुभ्य	४३ २८०	वसते सतिधाने तु	१७ ३१०	वासीवाह सुराष्ट्राय	१३ ५२५
वशो भव तेनाह	२८ १६०	वसतोऽप्यश्वमे हस्य	२५ ३५५	वायन्ति च वसन्ति	५८ १८०

वाद्यपन्यसरे तन	२१ २१०	वासुदेव समावाप्त	६६ ५७	विज्ञानमेग्नुनिष्ठे	१८ २००
वादयामास हस्तौ	२१ २४०	वासुदेव नमस्तेऽस्तु	६० १०	विज्ञाय तत्राप्यरति	६२ ५७
वाद्यन्ति तूयानि सुरासुरागम्	६ ५२७	वासुदेवमनिर्देव्य	५६ ७३०	विज्ञाय तस्य तद्भाव	स मा १८ १८७
वानप्रस्थाश्रम गच्छद्	१५ ५६०	वासुदेवाख्यमव्यक्त	३५ ६५०	विज्ञायते सर्वपातमहाद्यैम्	स मा ८ २३०
वानप्रस्थाश्रम धर्म	१५ ५५०	वासोभिभूयैर् रत्नैर्	६८ ५५७	बिन्दुमोजन राक्षसेभ्य	१२ १५०
वानप्रस्थाश्रम वाग्धि	१५ ८०	वासोयुग प्रोगनेच्च	१७ ५८०	वितस्य वाप गुणवाविकृत्य	७ ५३०
वानप्रस्थेन विधिना	स मा २२ ५३७	वाहनानि समात्तेन	६ १४०	वित्तप्राप्त्य न कर्तव्य	६६ १५०
वानर्यजस्युक्त	५२ १२५०	वाह्नोका वाडधानाश्च	१३ ३७७	विचारयति सशामे	३२ ६३०
वानरास्यात् पश्यते वा	५१ ६७	विगति धोवनस्यादौ	३८ ३१६	वित्त मुनिधारूल	स मा १० २६०
वाम पार्श्वमष्टम्य	५७ २५७	विगार्दवाहो भुजगेवाहार	५४ ५२०	वित्तित्वा यत्सुख क्षिप्र	स मा २२ ७६७
वामनस्य धृत पूर्वम्	१ १०	विबवा प्रतिभारभ्ये	१६ ३००	वित्तित्वा मोचराज्याप	२३ ७०
वामनस्य च महात्म्य	स मा १० ६१०	विक्रममाद्यान्ति च पञ्चजानि	२ ३७	वित्तित्वेन महाभाग	स मा १० १५०
वामनस्य श्रुतम् मस्तु	स मा १० ८७०	विकामिपद्योनास	१८ २२७	विद्वद्भासो वेदायुष्मिस्तु	५ ५३०
वामनाय नमस्तेऽस्तु	६० १६०	विशिष्यती सद्यार्नेर्	३० ६७	विदि विष्णु मुनिभेष्ट	६३ ८०
वापनेनेह छयेण	स मा १० ५०	विगाह्य तस्मिन् सरसि	स मा १४ ५१०	विद्यते कारण स्र	३ ४६०
वामपार्श्वमष्टम्य	५७ १३७	विघ्न करोति पापाना	स मा १३ ५४०	विद्यते स्वमेवास्वात्	५३ १२६०
वामपुच्छा सप्त पार्श्व	१० ११७	विघ्न कुमुदिह तत्र	स मा २७ १३७	विद्यमानेषु ससक्तु	२१ २०
वायव्या रस मा देव	१८ ३३०	विघ्नराजोऽष्टम प्रोक्तो	५४ ३८०	विद्यार वारुकरुण	२३ ५०७
वायस्यैव ह्यन्वेते	१७ १८०	विघ्नार्थं तस्य तुष्टिता []	५६ ७२७	विद्यारपरत्नमस्तु	११ १६७
वायशाश्रयि कुर्वन्ति	१७ १८०	विचचार तदोमत्त	६ २८०	विद्यारया गुरुकाश्च	५७ १८०
वायु समन्वेत्य च शम्बरोऽय	६ ५७०	विचचार महातीताद्	२५ ३१०	विद्यारयात् परमोज	११ १६०
वायुज्जालो वायुतेतो	स मा १७ ६०	विचचार मही सर्वा	२३ ११०	विद्यारयात्पूर्वराश्च वाद्यन्	६६ १५०
वायुर्दिग्भिनभ्याधि	३ १६०	विचचारोदगिनि	३६ ७६०	विद्यारयै स्रस्तीकै	५८ ७३
वायुवेपो वायुवजो	स मा १७ ६७	विचरत तदा भूयो	६ ६५३	विद्यान्वितोऽङ्गानुरक्तुव	५० ३१०
वाय्याहारस्तथा तस्यो	३५ ७०	विचरत् प्रविवापय	७ ३१७	विद्यारयेति विद्ययात्	५५ ३२०
वारयामास क्लवान्	५३ ५२०	विचरत् खेच्छया नैव	६ ३३०	विद्यास्तयान्तरिक्ष च	स मा ३ २८७
वारयामास दूलेन	५४ ५०	विचरति महीयुष्ट	३८ २४०	विद्यारय वेदकल्पस्त्व	६० ३६७
वारह तोयमाख्यात्	स मा १३ ३२७	विचारयामास ततो	स मा ८ ६०	विद्युद्भिद्व पारिभद्रो	५८ ८३
वारहो द्रुष्टो जाता	३० ७०	विचित्रमिन्द्राख्यान	३५ २६०	विद्यारयकभूतगणान् सन्ताद्	३० २५०
वारहोऽभ्युनिषौ पातु	३२ २५७	विचिन्त्य नारद प्राह	६५ १२०	विद्यारय गुणसामान्	२ ११०
वारिकल्लोलसङ्घ	स मा २८ १५७	विचिन्त्य प्राह वचन	६७ २९०	विधान तसङ्घस्यस्य	३६ १५०
वारितोऽसि मया दोर	५० २८७	विच्यस्त्य सहस्रासौ	५४ ६५०	विधान सङ्घस्थासि	५५ १०७
वारिधानो च सप्रस्ता	५३ ३२०	विजयाद्या महागुणे	५३ ६६७	विधानसंस्तु तादेवान्	५५ १६७
वारुणं सयत् पादौर्	३८ २४०	विजहारतिवेगेन	५४ २८०	विधिवद्भि च प्रत्य	५५ १५०
वार्यमाणा सव्रीभस्तु	५७ ५६७	विजित विक्रमाद्यन	५६ ५७७	विधुन्वन केसरसदा	२१ ६०
वाध पूसा कुरुवन	स मा १२ ८०	विजित ह्यनेपायै	५२ ३५७	विध्वसयिष्यति ह्यो	५६ ७५०
वाद्यमदग्नेव	५८ २१७	विजेतु माड्य गन्तोमि	८ ३३०	विना स्यया न ज्ञेयेय	६ ५००
वाद्यवत्यानुजो भ्राता	स मा ६ ५३	विजृम्भण पुत्र तयेव तारम्	६ ५६७	विनायक सयत्समीत्य राहुणा	५२ ३५७
वाद्यवो तमया स्वर्ग	३० १४०	विजृम्भणोऽन्तरिक्षिनिरो	६ ५८०	विनायकभ्रतुष्यो तु	१७ १४०
वायुर्देविरनुते पुच्छ	१८ ६०	विजति धृयता विष्णो	५२ ५५०	विनायकस्य सवकुम्भे	५२ ३०७
वायुदेव पर वद	५६ ७५०	विगतो वै महादेवो	स मा १७ १००	विनायकाद्या समवा	५४ १७७

श्रीकाण्ठसूची

विनायको महावीर्य	४३ ५०३	विगतनिर्मात स्यात्	६४ ८६५	विगतसंज्ञं रणे गानो	४३ ५०३
विनायकान्तो ब्रुहि	५० ६०	विमने च नरः स्यात्	१३ १५३	विवाति गीत कर्त्तव्य	४५ ७०
विनायकपुत्रावर्षित	स मा ८ ३४१	विमलान्न भवत्यतो	स मा १६ ३७०	विनायकवहेत्यर्थ	३५ ३०
विनायक वरायणं ह	६ २९०	विमानानि च पुत्राणि	४७ २०३	विवातिं वाता हृत्वावागारणा []	१ १७३
विनि र्वापयत दिवसा	५० ३६०	विमुक्तं कर्तुंये सर्वे [गैम]	स मा १६ १६०	विनाह्वयं द्विजमुक्ता	५३ ७६३
विनिचरतो भागवतवचनं	६३ ४४३	विमुक्तं कर्तुंये सर्वे		विवाहस्त्या नैव	३७ ५३०
विनिज्ज्ञान्मुद्रादृष्टवा	४७ ४४३	[शान्तेति]	स मा १६ १३३	विवाहस्त्या नैव	४८ १६३
विनिज्ज्ञान्ते मुद्रातो	२८ ४४३	विमुक्तं कर्तुंये सर्वे	स मा २७ ३१६	विनिधननि भोगाश्च	६२ १५०
विनिज्ज्ञान्ते मुद्रातो	२८ ४३०	विमुक्तं पातं सर्वे	स मा २८ ४६०	विनिधु प्रीतवनतो	२६ १५०
विनोतामा च वायावो	४५ २९०	विमुक्तं पातं सर्वे	स मा २५ ५२०	विनिधुभवन रम्य	२६ १७०
विनोत्पाय पावत्या	२५ ४३३	विमुक्तस्यैवास्तारलेपना भवत्	३० २४७	विनिधुविस्मयाविष्टा	२६ ४५०
विदुः कथा ह्यणु रूपं	स मा २६ १३५०	विमुक्तानां च तातो गमिष्ये	५१ ५६०	विनिधुविस्मयाविष्टा	४७ ३९०
विद्वं महावतमुषष्टं	१६ २१०	विमुक्तानां च तेने	३६ १६०	विनोत्पाय रम्य	६५ ६४०
विद्व्यगात्रमुत्तम	१३ २६०	विमुक्तानो भवति	६८ ४३०	विनेन कृपयो यव	६ ५८०
विद्व्यन्न पारिषावन्न	१३ १४०	विमुक्तानो ह्युत्तमानां पूति	६० ५१०	विनेन कोपताम्रातो	४ ५६०
विद्व्यन्न भक्तवर्धन	२६ ४८३	विमुक्तानां च न च गवपत्ना	४७ ५१०	विनेन मानवचिद्	५१ १००
विद्व्यष्टं महावेदि	६३ २८०	विमुक्ता कर्तुय सर्वे	स मा २८ ४२०	विनेन शैवं तिग्मानु	२२ ४१०
विद्व्योषेति दृष्टवा गाने महायमं	१६ ३३३	विमुक्ता सवपायेभ्य	स मा ३ ३७०	विनेन निनिगद्गुन	४३ ३३०
विद्व्योषे महेष्टाय	३५ २८०	विमुक्तास्ते द्विज प्रजा []	५३ ७२०	विनेन मानुस्वर	४५ २६०
विद्वयमा न तत्त्वति	१३ ७०	विमुक्तो राजनीभारि	स मा २८ ४५०	विनेन वेकायका निघात	१० ४३०
विद्वानो विशार सैव	४६ ८०	विमुक्तो राजनीभारि	स मा २६ ६१०	विनेन वापक रक्षण	३२ ३१०
विद्वानिति विदि दक्षुर्	स मा ८ ३०६	विमुक्तो राजनीभारि	२३ १६०	विन्याय चापं तरता विनाय	६ ४३०
विद्वान्त्वस्यमा सत्यव	५६ १२००	विमुक्तो राजनीभारि	४४ १३०	विगत्य भगवत् श्रद्धाम्	२४ ५०
विद्वान्न भोजयेद् भक्त्या	५४ २६०	विमुक्तो राजनीभारि	स मा २२ १३०	विगास सत्रिषद् वै	४२ ६१५
विद्वान्न चातुरायम्	१४ ३३	विमुक्तो राजनीभारि	स मा २२ ७२५	विगास कुपितोऽभ्येय	४२ ५६०
विद्वान् दानवान्मूल	६७ ४३०	विमुक्तो राजनीभारि	५३ १००	विगासपूरे तन्तु	५५ ६३
विद्वान् शतसुता ता	५६ २६०	विमुक्तो राजनीभारि	५३ ८०३	विगासपूरे हञ्जितं	६३ ६०
विद्वान् दशप्रियेय	७७ ३३०	विमुक्तो राजनीभारि	स मा २६ ६५३	विगासपूरे हञ्जितं	५३ ६०
विद्वान् ब्रह्महृत्	३५ ६३	विमुक्तो राजनीभारि	स मा २६ ११०	विगासपूरे हञ्जितं	५३ ६०
विदुः कलिते तस्मिन्	स मा २२ ३०३	विमुक्तो राजनीभारि	६ ४५३	विगासपूरे हञ्जितं	५३ ६०
विद्वे सति देवस्य	६८ ४५०	विमुक्तो राजनीभारि	स मा ८ ४५३	विगासपूरे हञ्जितं	५३ ६०
विद्वे सति नैवाति	१५ ३०३	विमुक्तो राजनीभारि	४७ ६०	विगासपूरे हञ्जितं	५३ ६०
विद्वान्ति रम्य लघन गुणावा	२० १०३	विमुक्तो राजनीभारि	६ २८३	विगासपूरे हञ्जितं	५३ ६०
विद्वान्ति सा सुवायङ्गो	७ ११०	विमुक्तो राजनीभारि	६ २८३	विगासपूरे हञ्जितं	५३ ६०
विद्वान्तिः प्रयास्तवा पाण	७ १२०	विमुक्तो राजनीभारि	३२ ३२०	विगासपूरे हञ्जितं	५३ ६०
विद्वान्तिः प्रयास्तवा पाण	७ १२०	विमुक्तो राजनीभारि	३५ ६०	विगासपूरे हञ्जितं	५३ ६०
विद्वान्तिः प्रयास्तवा पाण	७ १२०	विमुक्तो राजनीभारि	६३ ४८०	विगासपूरे हञ्जितं	५३ ६०
विद्वान्तिः प्रयास्तवा पाण	७ १२०	विमुक्तो राजनीभारि	३३ ३३३	विगासपूरे हञ्जितं	५३ ६०
विद्वान्तिः प्रयास्तवा पाण	७ १२०	विमुक्तो राजनीभारि	३६ २५०	विगासपूरे हञ्जितं	५३ ६०
विद्वान्तिः प्रयास्तवा पाण	७ १२०	विमुक्तो राजनीभारि	३१ २४३	विगासपूरे हञ्जितं	५३ ६०
विद्वान्तिः प्रयास्तवा पाण	७ १२०	विमुक्तो राजनीभारि	३१ ३३०	विगासपूरे हञ्जितं	५३ ६०

धामनपुराणस्य

विद्यता धरणेव	३.२७०	विद्युत्पुत्राद् समादिष्टा	४८.३०	सौगावात्पुत्रु मियुं	५.४६०
विष्वे विश्वसि विष्णुं	स.मा.६.३२०	विद्युत्पुत्रा स्थितिवामेन	ग.मा.१.११०	वीरं कुबलपाहं	६३.१८३
विष्वक्कर्ममुता धात्री	३७.३६५	विष्णुत्पुत्रमिदं जारतं	४८.२०	वीरभद्रमवादिभ्य	४.५६३
विष्वक्मोगमाहूय	२८.१०	विष्णुदेवं सया पापं	५६.६००	वीरभद्राय चित्तो	४.४८०
विष्वक्कर्मा द्वितीयाया	१७.१५५	विष्णुदेवगतियोगा	६७.५६३	वीरभद्रेन देवाद्याः	४.३८०
विष्वक्कर्माणि मुनिना	३८.२५	विष्णुगुणैस्त्रया पातालात्	६.७६३	वीर्या च प्रवातेन	६८.१७३
विष्वक्कर्मा महातेजा.	३६.१०१५	विष्णुगुणैस्त्रयापातोति	५६.१०६०	वीर्यं प्रसंसन्ति पवनतोष	४३.३६२०
विष्वक् रूप नमस्तेस्तु	६०.२३०	विष्णुगुणवसुभुंको जमे	स.मा.१.५.३३५	वृद्धोऽगिरेन्द्रेभ	५८.७०
विष्वक् रूपमनामानं	५७.१५०	विष्णोः प्रीत्यर्थमेतानि	६८.२५०	वृद्धाः शबरकोषोपाः	१३.३६५
विष्वक् रूप महा रूप	४३.४०५	विष्णोः सारस्वतं स्तोत्रं	५६.११२०	वृद्धगुण्मादयो यान्	५६.८८३
विष्वक् रूपिणा प्रवरता	६५.३३५	विष्णो न बन्नासि वसि न तूरे	६५.५५०	वृद्धगुण्मात् शिरोर्य वन्त्यः	४३.३६०
विष्वक् मित्रं च गरितं	६३.३३५	विष्णोरपि प्रसादेन	६३.२५०	वृद्धगुणैस्तु गोष्ठिषु	स.मा.२.६.५७०
विष्णुमिष्यस्य राजर्षेर्	स.मा.१.६.२५	विष्णोरास्ता स्थितरत्नैः	स.मा.१.०.६४०	वृद्धगुणैः स्थिताया मे	१.२८०
विष्णुमिष्यस्योत्तु कृद्धो	स.मा.१.६.८०	विष्णोर्नासिसमुद्रतूतं	ग.मा.२.६.३०	वृद्धाणां वसुभ्योऽसि त्वं	स.मा.२.६.११२५
विष्णुमिष्यस्यो वसिष्ठश्च	स.मा.१.५.६०	विष्णुवनेन नमस्तुभ्यं	६०.३५	वृद्धोऽयं वरमन्त्रश्च	२८.२१०
विष्णुवाचमुनिं मन्देन्द्रगाम्यो	३३.१०३	विष्णुर्ज्यामास गगान्	४८.८१५	वृद्धोऽयं वरमनन्तं	४१.५६५
विष्णुवाचसोः पीलुगुणोरपता	३३.१२५	विष्णुर्ज्यामास दानैः	२६.६५०	वृद्धः प्रमथकोटीभिर्	५७.२२०
विष्णुवाचासं विष्णुवर्षं	स.मा.१.१.१६०	विष्णुर्ज्यामास दानैः	२७.६२०	वृद्धः पद्मिर्महातेजाः	२६.४३०
विष्णुदेवगान्त्वं सत्त्वं	४३.५७५	विष्णुर्ज्यामास दानैः	५२.५१०	वृद्धः स भर्ता जगवन् हि पूर्व	२२.५३०
विष्णुदेवो. वटोभागे	६५.२०५	विष्णुर्ज्यामास दानैः	३०.७२०	वृद्धा सौम्यतः पुत्रैः	३४.१८८
विष्णुदेवो महात्मान.	स.मा.६.१.११५	विष्णुर्ज्यामास दानैः	स.मा.१०.१३०	वृद्धा देवयुक्स्वारी	२१.३०
विष्णुदेवोऽथ जानुत्याः	स.मा.१०.५०५	विष्णुर्ज्यामास दानैः	१३.१५०	वृद्धा च पुष्करे पात्रा	३६.२७३
विष्णुदेवोऽथ साध्याश्च	४.३३५	विष्णुर्ज्यामास दानैः	६२.१२०	वृद्धाचरोमी च मुद्र बुध्याः	२०.११५
विष्णुदेवराजस्योऽथ	स.मा.१.७७	विष्णुर्ज्यामास दानैः	५५.३२०	वृद्धिर्दयाभ्रान्तिरयेह माया	१६.२००
विष्णुदेवराज देववराः	स.मा.१.६६	विष्णुर्ज्यामास दानैः	३५.८०	वृद्धे मुनिविवाहे तु	३६.१६५
विष्णुदेवराज देवाय	५८.३६०	विष्णुर्ज्यामास दानैः	५८.२५०	वृद्धाष्टनं वृथा सानं	१४.५१५
विष्णुदेवराजं च साध्याश्च	५.४३	विष्णुर्ज्यामास दानैः	५८.७८०	वृद्धाष्टनाभिर्यहानिद्	१४.५२५
विष्णुदेवराजं साध्यमश्नन्नामनयो	३२.१६५	विष्णुर्ज्यामास दानैः	५१.२२५	वृद्धा तपश्च कीर्तिश्च	६७.५७०
विष्णुदेवराजं साध्यमश्नन्नामनयो	३२.१६५	विष्णुर्ज्यामास दानैः	५१.२३५	वृद्धा पशुधाः प्राणोति	१४.५४०
विष्णुदेवराजं साध्यमश्नन्नामनयो	३२.१६५	विष्णुर्ज्यामास दानैः	२१.३८०	वृद्धा युवाहर्मिति सा	स.मा.६.४२०
विष्णुदेवराजं साध्यमश्नन्नामनयो	३२.१६५	विष्णुर्ज्यामास दानैः	३३.५७५	वृद्धा यथा वृथा वेदाः	६७.५७३
विष्णुदेवराजं साध्यमश्नन्नामनयो	३२.१६५	विष्णुर्ज्यामास दानैः	२५.६२०	वृद्धवाक्यायुतं पीत्वा	६८.६७३
विष्णुदेवराजं साध्यमश्नन्नामनयो	३२.१६५	विष्णुर्ज्यामास दानैः	२०.३३०	वृद्धवाक्यविना तूनं	६८.७००
विष्णुदेवराजं साध्यमश्नन्नामनयो	३२.१६५	विष्णुर्ज्यामास दानैः	३०.५३०	वृद्धवाक्योपथा तूनं	६८.६६०
विष्णुदेवराजं साध्यमश्नन्नामनयो	३२.१६५	विष्णुर्ज्यामास दानैः	३०.४००	वृद्धो भातिर्गुणो विप्रः	४८.४००
विष्णुदेवराजं साध्यमश्नन्नामनयो	३२.१६५	विष्णुर्ज्यामास दानैः	२२.१३०	वृद्धोऽन रातोऽन युवाय योषिण	६.५२०
विष्णुदेवराजं साध्यमश्नन्नामनयो	३२.१६५	विष्णुर्ज्यामास दानैः	४१.३३५	वृद्धोऽभ्यस्तकश्च सवाधिरौहुं	१६.२६०
विष्णुदेवराजं साध्यमश्नन्नामनयो	३२.१६५	विष्णुर्ज्यामास दानैः	६५.६०	वृद्धाचरं समाह्वय	३०.४६०
विष्णुदेवराजं साध्यमश्नन्नामनयो	३२.१६५	विष्णुर्ज्यामास दानैः	स.मा.२.८.३००	वृद्धः सह्यरूपो हि	५.४८५
विष्णुदेवराजं साध्यमश्नन्नामनयो	३२.१६५	विष्णुर्ज्यामास दानैः	३३.३६०	वृद्धाचरं महेशं च	६१.२२५
विष्णुदेवराजं साध्यमश्नन्नामनयो	३२.१६५	विष्णुर्ज्यामास दानैः	३४.१०५	वृद्धाकपेश सलयो	६५.६१०
विष्णुदेवराजं साध्यमश्नन्नामनयो	३२.१६५	विष्णुर्ज्यामास दानैः		वृष्टिभूय महाभूय	६०.१०५

श्लोकार्धसूची

वेणुदुग्धो दुग्धवतु सगर्भौ	५५.२८०	व्यापितो दु खितो दीनश्	स मा २७ १००	शक्तस्तु सपूजयितुं सुरारे	६५ ३६०
वेगिन भेषमालह्य	३१ २६०	व्यापिभिर्गन्धि विनिर्मूल	स मा १३ ३५३	शक्त भवन्व सर्वेषां	स मा १६ ३६३
वेगेनानुसरद्देवी	२६ ७६०	व्यापिना तेन रूपेण	स मा १० ८५०	शक्तिं प्रचिनेष ह्युपादात्ता	२१ ५३०
वेगेनाभिमुता सा च	२६ ७३०	व्याप्त त्वया जगत्सर्वे	स मा १६ १३०	शक्तिं सप्तशत कृतनि स्वना वै	५३ १६०३
वेगेनैवाप्तन्त च	५४ २५३	व्याप्तस्य च वन पुण्य	स मा १३ ५०	शक्तिं हुतांग श्रयन्तश्च वाप	१६ १४०
वेगा वैतरणी चैव	१३ २८०	व्याप्ताने मुनिशार्ङ्गलाः	स मा १५ ५३३	शक्तिं हुतांगोऽद्रियुता च वत्स	३१ १०३३
वेदेदेवद्रिवातीना	१२ ३३	व्योमकारामक सुब्रह्मणः	६० १५०	शक्तिनिभिरहृद्यो	४२ ५२३
वेदान नोतिसाल्लाण	११ १६०	ब्रह्मस्तु योषित्यु चतुष्पथेषु	३ ३२५	शक्त्या मय शम्भरसेश कथ	१० ४५०
वेदनाता मुमोबाप	३२ ७६७	ब्रह्मण्य तनया सति	५५ ५२०	शक्त्या विभिन्नहृदय	५५ १६०
वेदनिचा महत्वाप	स मा २६ ४३३	ब्रह्मन्ति नगक धार	५१ ३६३	शक्त्या स बायावशरो विदारिते	१० ४६५
वेदयो लोकनापस्य	२३ १६५	ब्रह्मन्ति नरागूर्तल	६८ ५२०	शक्त्या स भिन्ना हृदये सुरारि	५३ १६१३
वेदयत्सुगुरस्यागो	१२ ३५३	ब्रह्मन्ति परमा सिद्धि	स मा २४ १७०	शक्त्य तमोऽश्रमस्य च देव	स मा ८ २५०
वेदयव्यानेन मुनिना	स मा २५ ३८३	ब्रह्मण्य शरण्य मालुर्	५४ ६०३	शक्त्य परमं चो ब्रूहि	५० ५०
वेदस्त्वितिर्वैदिसिनी	१३ २३३	ब्रह्मण्य वैत्या ययमप्रजस्य	५२ १६०	शक्त्य प्राहाय्य वववाप	३२ १०१३
वेदप्रोक्त स्तयमिम	स मा २७ ७०	ब्रह्मण्य करिष्यामि	५३ ८७०	शक्त्य शत तु पुण्याना	५२ ३२३
वेदो राज्ञा समभवत्	स मा २६ ६३	ब्रह्मण्य तयेशस्य	६२ ४४३	शक्त्य गच्छाम्य सदन	स मा ३ १६३
वेदेष्यमान सुषोरेस्तु	५८ २५३	ब्रह्मण्यो कृत्रे वेद	६४ ४६३	शक्त्य प्रियार्थं सुरकायतिद्वय	६५ ६६०
वेदकुण्ड षडंगपरशु	६७ ५६०	ब्रह्मण्यो कृत्रे वेद	१ ८०	शक्त्य भेवात्रवद् योऽसु	५३ १०७०
वेदकुण्डमपि सहास्री	६३ ११०	ब्रह्मण्यो विभिन्ना च	५६ ५७०	शक्त्योक्त स सप्रप्य	५३ ७७०
वेदक्षानस्य गार्हस्थ्यम्	१५ ६३३	ब्रह्मण्येन वा सुषोर्णानि	५८ ४०३	शक्त्योक्तसमाप्तं त	३० ५२०
वेदयवो प्रशुस्य स्व	१८ ३३३	ब्रह्मण्येन स्वखण्डेन	१६ २६०	शक्त्येनाय समय	२६ ५३
वेदतेय समाहृत	१८ ३४३	ब्रह्मण्येन विविचैर	स मा १० १८३	शक्त्य चरित श्रीमान्	५२ ३१०
वेदतेय समाहृत	२७ ६३	ब्रह्मण्येन विविचैर	५६ ३४०	शक्त्यवापु तथैवाये	६ १०३
वेदधाम्न च जगामाय	२२ ३००	ब्रह्मण्येन विविचैर	५५ ३३३	शक्त्यवाहृत्य च गज	२६ ३३०
वेदधाम्न च जटाभार	१७ ११०	शकर मूलधुव् सर्वत	२६ ३४०	शक्त्यादीना तुरेयाना	३ ७०
वेदधाम्न च गुणो	५२ २६०	शकरस्य च गुह्यानि	स मा २२ १२३	शक्त्या प्रवयामासुर्	५३ १२६०
वेदधाम्न च तथाऽतीते	स मा १० ६८०	शकरस्य त्रिया भार्या	१ ५०	शक्त्योऽपि प्राह मा सुद	५५ ३६३
वेदशास्त्रे च यदा पठ्ये	स मा २० २६०	शकरस्य वच धृत्वा	५१ ४३३	शक्त्योऽपि सुरसैपानि	६ ६३
वेदशास्त्रे स्नानमुदित	१७ ५२३	शकराय महोवाय	५३ २६०	शक्त्योऽपि भगवान् ब्रह्मण	५८ १३३
वेदशास्त्रे स्नानमुदित	६० २५०	शकराय प्रवेद्याय	स मा २८ १५०	शक्त्योऽपि तीर्थे नारोऽन्नाद्	३२ १०३३
वेदशास्त्रे स्नानमुदित	७ २४०	शकराय भारुदे दीप्या	११ २४०	शक्त्योऽपि च भीमाया	६३ ३२०
वेदशास्त्रे स्नानमुदित	५६ २८०	शकराय च नरेण	५० २१३	शक्त्योऽपि महाकार्यं	स मा २६ ६६०
वेदशास्त्रे स्नानमुदित	स मा १० ६१०	शकरोऽपि महातेजा []	२५ ७३३	शक्त्योऽपि च मुत्तलो	३२ ५५३
वेदशास्त्रे स्नानमुदित	१३ ५६०	शकरोऽपि सुतस्नेहात	३२ १०	शक्त्योऽपि च तुरयो	६ २६३
वेदशास्त्रे स्नानमुदित	५८ २६३	शकरो भन्दरस्योऽपि	३७ ६०	शक्त्योऽपि च पातोपन श्रीरो	६८ २००
वेदशास्त्रे स्नानमुदित	१८ ६८०	शकरो वरुदो शोके	५५ ४४०	शक्त्योऽपि च पातोपन श्रीरो	५० ११३
वेदशास्त्रे स्नानमुदित	स मा २६ ११४०	शकरोऽपि च पितर	स मा १५ ५३	शक्त्योऽपि च पातोपन श्रीरो	३ ४०
वेदशास्त्रे स्नानमुदित	२७ ३४०	शकरोऽपि च समाका []	१३ ३६०	शक्त्योऽपि च पातोपन श्रीरो	५६ ६८३
वेदशास्त्रे स्नानमुदित	६५ ६८३	शकुनिं पुतल कृत्वा	३६ ७७०	शक्त्योऽपि च पातोपन श्रीरो	५६ ३३३
वेदशास्त्रे स्नानमुदित	स मा २६ ११२०	शकुनिं वीर्य राजेन्द्र	३८ ६५०	शक्त्योऽपि च पातोपन श्रीरो	५२ ४६३
वेदशास्त्रे स्नानमुदित		शकुनिं वीर्य हारोयो	५२ १५०		

वामनपुराणस्य

शात नरञ्जीणि शतानि दैव्य	७ ५६३	शरैश्चतुर्भिश्चिच्छर	२१, २८०	शार्धे धारयितुं तिम्रो	२५ ८०
शात वातसहस्र वा	स मा १० ४५०	शरैश्चिच्छरं सन्नाडा	२१ ३००	शालिहोत्रस्य राजर्षेस्	स मा १६ ५०
शातानुपथायागत	४३ ५२७	शरैस्तु तीव्रैर्ग्रीवैस्तापयन्त.	६ ५०३	शाल्वैतानावैस्तमार्त्तेश्च	५८ ६३
शातानुपुरनिदिग्ध	स मा २० १८३	शशास सर्वमथसाद्य	५३ २१०	शाल्वेय पर्वतश्रेष्ठे	३८ ३०
शतक्रवुश्च दुद्राव	४३ १०६३	शशाक शल्यको गोत्रा	१५ ३३	शाल्वस्तेव धर्मनाश	३५ १००
शतघण्टा शतानुश	३१ ६५०	शशाङ्कनिर्जित मूर्ध्नि	१६ २६०	शाल्ज्वाणि चैवां सुरयानि	६ ८६०
शतजिह्व शतावर्त	स मा २६ ६७०	शशाङ्कमिति तेजस्वाद्	१६ ६०	शाल्ज्वाण्येवेषाणि तया	स मा ६ ३८०
शतदुश्चन्द्रिका नीला	१३ २००	शशाङ्कानलशितोष्ण	स मा २६ १४०३	शिक्षा हीन त्रिस्तोषर्ष	स मा २६ १२१३
शतधा स्वपमद् ब्रह्मन्	४२ ३००	शशाप देवतायु सर्वायु	२८ ५४०	शिक्षण्डो पुष्करोकाद्य	स मा २६ १४१०
शतधा शार्यते भीरु	३० ३७०	शशासा च यथापुत्रम्	स मा १० ८६३	शिक्षाया देवदेवस्य	२५ २८३
शातपर्वाय कुलिश	४५ ३३०	शशिप्रभ देववर त्रिनेत्र	५७ ६५३	शिक्षासत्य तु श्रोत्रार	३५ ५५३
शातख्याप्रभवद्गोरी	३३ ३४०	शश्वप्रपत्ता निपतस्ति चान्ये	६ ४३०	शिक्षिष्यजाय विभवं	३२ १३०
शातसाहायिक तीर्थ	स मा २० ३३	शश्वहस्त सर्वतश्च	६४ ८००	शिर प्रविच्छेद वरासिनस्य	२१ ४६०
शात्रवस्ते प्रकुर्वन्तु	३३ २७०	शश्वान्नादिकवस्त्राणि	५६ ३३३	शिर स्वारस्तदा तस्यै	८ ३७०
शात्रुभिर्दानवशरैस्	४३ ८६०	शाकल नाम नगरं	५३ १२०	शिरश्चिच्छेद बाणैः	३० ५३०
शनिर्म्मोक्षयामास	३६ ६६३	शाकान्तेषु न तेष्वस्ति	११ ४४०	शिरसा प्रणिपत्यह	५१ ३६३
शनिश्चरश्च राहश्च	स मा ३ २२३	शाक्येषु मूढया त्ववि काकमाचो	१२ ५३०	शिरोभिः प्रगता देव	स मा ३ ३६०
शपर्येस्य भगवान् सुवो	४० १६३	शाक्ये सिंहासने ब्रह्मन्	५८ ३००	शिरोभिः रवनीं जामु	२८ ४४०
शष्य स्पर्शाश्च रूपं च	स मा ३ २८०	शाक्यया कृतया चाशी	३८ ७८३	शिरोऽभिर्दानवेन्द्रया	२६ ७८०
शष्यशास्त्रविदित्वेव	६४ ६६३	शाक्यश्च नौगमेवश्च	५२ ६१०	शिरोरहस्या चैवादां	५४ ६०
शम्बरस्य विमानोऽमृत	६ २६०	शाखा वहति मत्स्यु	३६ ६७३	शिवानु पचय गांसु	२६ ५०
शम्भु पातो महेश्रेण	५७ ६३	शाङ्खलाख्येषु देवेषु	३६ ११३०	शिव्य च शिल्पिना श्रद्ध	स मा २६ १३००
शम्भुनमामसुरपति	५३ ५३३	शातद्रवा ललितवारुच	१३ ३८०	शिव विष्णु सुवर्गाश्च	६१ ६०
शय्यासनस्थानमा	५२ ६५३	शातद्रवे जले स्तात्वा	६२ ४०	शिवरूपत्वमाहात्म्य	२२ १००
शर पशुपत इत्था	५ २७०	शातयामास चात्म्य	२१ २२०	शिवस्य च प्रसादेन	स मा १७ २३०
शरग पावकमगात्	५३ ११४०	शातयित्वा प्रचि त्त	१० १६०	शिवो चाशिवनिर्घोषा	३८ ५३०
शरणागत यत्स्वजति	१५ ३६०	शात्युगमास्य तुरगा	४४ १२३	शिवो पयोव्री निविन्ध्या	१३ २८३
शरणागत ये त्यजन्ति	१२ २७३	शान्ते रजसि देवाद्यास्	५७ ३१३	शिवो वाप्ययवा भीम	२५ ६६३
शरण्य शरण गच्छ	५१ ५३३	शाप प्राप्य च मे वीर	स मा ६ ११३	शिवो वाप्ययन्त	५६ ६००
शरण्य शरण गच्छ	५८ ५३०	शापो दतो विवेकश्च	स मा ६ ७०	शिविश्च नाम मातङ्ग	६ १०३
शरण्य शरण विष्णु	स मा ६ १६३	शारदत इति श्यात	३१ ५५०	शिवुमारो दिव्यमति	६ १७०
शरन् शतमत्स्यैव	४० ६२०	शारीर मानस वाग्ज [दुष्कल]	५४ ७००	शिवुर्लस न ज्ञानामि	३२ ५३
शरत्पौत्रे तेनाव	२१ ६३	शारीर मानस वाग्ज [मृता]	६७ ३७३	शिवुश्चाराविनाश च	३५ १०३
शरसन्निवृत्तशुश्रु	३२ ३६३	शारीर वाचिक यत्	३५ २६०	शिवुश्चारा रक्षणायीव	५६ २५०
शरनोपायमार्गेण	३८ ७८०	शाङ्ग विरहूजित श्वै	५६ १३३	शिवे स्थितिरदंशमिधान	
शरास्त्वभोषात्मोषत्वम्	४ ४४३	शाङ्गवाप्युत्तैवार्णै	४३ ६६०	वर्जनेम्	स मा २२ २६०
शरीरयुद्धिमानोति	स मा १४ १७०	शाङ्गपाणिनमायात	८ ११	शुवाब्द्याश्च कथयो	६ २२०
शरीरस्यास्तायु भ्रमयान्	४४ २२३	शाङ्गवारायस जाता	३० ६०	शुक्तिमान् वेगसानुश्च	२६ ४७३
शरीरे च मुले ब्रह्मन्	६६ ३०	शाङ्गमाचरन् नैव	७ ५६०	शुक च विष्णो राजा	४६ ५८०
शरीरे तव पर्यायि	स मा २६ ७३	शाङ्गमाचरन् च पशुद्	१८ ३०३	शुक पुरोहित इत्या	६ ६०
शरीरे तवैव सतत	४ ३८३	शाङ्गमानस्य वार्गं वैर्	५७ ३४०		

मूक बन्धनविषमद्	३७ २२३	गुरुबुधिविषयभाजा []	स मा ३ २१०	शृणुष्यावहितो भूया [सन्तो?] २२ ८०
गुकीगण्यार्थितं वनो	३७ २८०	शृणु दण्डनकसमुद्रमुखायाम्	४८ ४२०	शृणु चैवमनास्ताच १४ १८०
गुरुस्तद्राजयमनाकथ्यं	६४ ७३	शृणुयन् निरभीमानो	१४ १०३	शृणु सत वनातीह स मा १३ ३३
गुरुस्तु प्रागवान् सवान	६२ २७७	शृणुदवाप्यं तपसा	६२ २२०	शृणु सर्वमयोग [सांख्य] स मा २६ २५
गुबन्धय मतमास्वाद्य	५२ ४८०	शृणु सम्भ्रमुरग्रेह	४८ ४७०	शृणु सर्वमयोगे [बन्ध] स मा २० २५
गुबन्धय बध्नन् श्रुत्या [दृष्टं] स मा	१० १०३	शृणु प्राग् एसां गुरो	स मा २५ ३६५	शृणु स्वस्त्ययनं पुण्य ३२ १४३
गुबन्धय बध्नन् श्रुत्या [बन्धिर]	६४ १०३	शृणुस्ता मोलवगाद्धो	४६ २६०	शृणोति नित्यं विदित्वा च भङ्गा ६६ ४३
गुबन्धयानुभवे ब्रह्मन्	५२ ३६०	शृणु गिरिमाधम	३६ ४३	शृण्वन्ति वानो वन स मा ७२ ६३३
गुबन्धयानीच संहिता	३७ २१०	शृणुस्यगाद् दृष्टमर्तिं देवा	३६ ४६०	शृण्वन्ति ये भस्त्रियरा मुनय ६७ ७४३
गुराचचार्याधयो	स मा २५ ५३०	शृणुतेरि निम्नमया वनदा गृह्णन्	३३ २०	शृण्वन्तु मुनय प्रोतात स मा १३ १०३
गुरोनाथ एतवर्णो	६२ ३२३	शृणुषां गजितानो च	१५ ५५	शृण्वन्तु मुनय तव [तीर्थ] स मा २१ २३
गुरोरेण्य वगाने तु	४६ १५३	शृणुषाने चतुर्वर्द्ध [सूत्र]	५७ ५८३	शृण्वन्तु मुनय तव [पुत्रा] स मा २२ ३३
गुरो द्विजसिद्धवरात्	६२ २८	शृणुषाने चतुर्वर्द्ध [सा]]	६३ २५०	शृत् प्रागडव्यायाम् १५ १७३
गुरुः श्रद्धयवान् श्रुत्या	४२ ६३	शृणु तवा वाक्त्रयो	५५ १८०	शृत्तर अन्धमुखाभ्या २६ ८५३
शुको गृह्णातत्रयं	स मा ३ ३१०	शृणु परिस्थाय जगार यत्	४ ४६०	शृत्ते द्रष्टव्य एवम जगद् वा ग मा ० २६०
शुभ्रवदशरीरपातो	५३ ४१५	शृणुषाणि बर्णो च	२ २४०	शृत्ते च वा न ह रि दम्भस्वय १६ ३४८
शुभ्रवसो म ल्पानत्	६७ ८७०	शृणुषाणि गिरिप्रदेशे	४४ २४०	शृत्पतायन् गिर्या [] ३४ ७७०
शुभि भ ई बालयत्	१५ ८३	शृणुतागो नमस्तानु	स मा २३ ८०	शांतापरयत् ि व्य ३५ २६०
शुभिरामा हरिः सवृ	स मा २६ १२४०	शृणुतागोरेतात स्थिवा	६३ ८६०	शेषान्तु मुनयसत स मा २१ ४०
शुभिरस्वतः गत्वो निगम्य	३ ३१०	शृणुत्वाहं च गीर्षि	५५ १७०	शेषान्तिगणयद् १७ ७३
शुद्ध शरोः गमनं बगवानयोग	६७ २६०	शृणुत्वं च मनागत	स मा ७ ३३	शेषान्तिगमनां च १५ ४०
शुद्धजातुन्यमय	५३ १२६५	शृणुत्वं च मनागत	स मा २ २३	शेषान्तिगमनं भवा २६ ३१३
शुद्धेभ्य सं याति	स मा १४ १८३	शृणुत्वायं स्तव शिष्य	स मा २७ १४०	शेषान्ति प्रष्टुमुपगत २७ २१०
शुद्धशक्तिबन्धनां	५३ ३१०	शृणुत्वाया एत नारो	स मा २७ १४०	शेषान्ति वतिर्न हृष्ट्या ३३ ३४३
शुद्धशक्तिबन्धनानं [विद्वन्?] २८ ३०		शृणुत्वं करविध्यामि [तवरा?] १ १५३		शेषान्ति प्राहू बध्नं ४२ १६०
शुद्धशक्तिबन्धनानं [रा?] ६७ १०		शृणुत्वं करविध्यामि [कदा] ३१ २५		शेषान्ति स्वाम्य गीशरं ३६ ४०
शुद्धायु निम्न श्वायु	स मा २ ७०	शृणुत्वं करविध्यामि [घात] ५२ २३		शेषान्ति स्वाम्य वषा धमार् ४२ ४१०
शुद्धियान्तोति पुत्र	स मा २२ ८१३	शृणुत्वं करविध्यामि [जया] ५८ २३		शेषान्ति शिष्यं गच्छ १ ८८३
शुद्धयते तिह्नुव्याया	स मा २३ १२०	शृणुत्वं करविध्यामि [जयास] ६४ २१३		शेषान्ति शान्ततायाम् २७ १०
शुद्धयत्य वासयन्तीद्	स मा २६ ६१३	शृणुत्वं करविध्यामि प्रोक्तम् १० २३		शेषान्ति शान्ततायाम् १७ १५३
शुद्धयत्य वधतेऽनु	६० ७०	शृणुत्वं करविध्यामि ४६ ७००		शेषान्ति शान्ततायाम् [] २१ ३३३
शुद्धं बान्धुं शुद्धं वाणि	६४ १०६३	शृणुत्वं गुण वरम ३४ १७३		शेषान्ति शान्ततायाम् १६ ८०
शुद्धं वापुताशाय	३७ ७००	शृणुत्वं वापानेते ६ २६३		शेषान्ति शान्ततायाम् न शिवा ५१ २५३
शुद्धाद्गो वपाशाना	२८ ३३	शृणुत्वं वल्लभर वेग भाग्य ६४ ८३		शेषान्ति शान्ततायाम् ५१ २५३
शुद्धयति गोस्त्वानि शुद्धतर्ता	५३ ११०	शृणुत्वं वतुवामना ११ १०३		शेषान्ति शान्ततायाम् ५१ २५३
शुद्धायुर्धनि धर्मानि	५१ ६२३	शृणुत्वं वल्लभर ह ११ २०३		शेषान्ति शान्ततायाम् ५१ २५३
शुद्धायुर्धनि च मयुरा	१६ ३३	शृणुत्वं वल्लभर वष ४० २८०		शेषान्ति शान्ततायाम् ५१ २५३
शुद्धायुर्धनि च मयुरा	२२ ४८			शेषान्ति शान्ततायाम् ५१ २५३
शुद्धायुर्धनि च मयुरा	२२ २०			शेषान्ति शान्ततायाम् ५१ २५३
शुद्धायुर्धनि च मयुरा	५८ १३०			शेषान्ति शान्ततायाम् ५१ २५३
शुद्धायुर्धनि च मयुरा	५२ ३०			शेषान्ति शान्ततायाम् ५१ २५३

वामनपुराणस्य

शोधयित्वा तु सतीर्षम्	स मा १६ ५०३	शोचयन्वपश्च श्रोत	५६ ७२३	शुद्धैव साम्ना महिषामुख्तु	२० १७१
सोमते वासणिं श्रीमाद्	२२ ४३०	श्रीनस्ताड् महादेव	५८ ५१६	शुद्धैव मेघस्य हृदं तु गन्धित	१ १६१
शोमन्ते पच्यमाशां []	४३ ६६०	श्रीवन्ताड्मुदावाज्ज्	६३ १८०	शुद्धैव सा शोचपरिष्णुताङ्गी	५० २६३
शामितो रविप्रथ्वीम्	५८ १००	श्रीवृषभर्षे सकर्तुद्	१७ ६००	शुद्धोत्तरयो च वेगेन	३६ ३५०
संवाचारममागुक्ता	५५ २१०	श्रीगान्धर्वमामिगदात्रया	५८ ३८०	शुद्धता क्वचिध्यामस्	११ १२१
सोमशोभमानिन सीर	४६ ४५३	श्रीसमुद्रा उरोमध्ये	६५ २४१	शुद्धता क्वचिध्यामि [भूयो]	२२ २१
समशान्तिलय सम्भू	५७ २४५	श्रुत यथा भगवता	६६ ११	शुद्धता क्वचिध्यामि [मुखा]	३४ २६६
समागन्तव्य ददर्शाव	५७ १६०	श्रुत सनक्तुमारिण	३४ ६७०	शुद्धता क्वचिध्यामि [योग्य]	५२ १२३
स्यामाक पयसा सिद्ध	१ मा १५ २३	श्रुत स मह्येपाव	३२ ३२६	शुद्धता क्वचिध्यामि [कथा]	५३ ११६
स्यामाकदात वाचवाचयामिद्	२ ४६३	श्रुतवर्गं च पर्यासा	३१ ८१३	शुद्धता क्वचिध्यामि [नगद]	५४ २३
सहृदयानैर्भक्तितर्	६८ ५३	श्रुतानुस्तु भद्रमा	३२ ६७१	श्रुद्धता क्वचिध्यामि [कथामे]	५१ १६३
सदा स्तुतिं पुष्टिरयो धमा च	१६ २०१	श्रुति प्रमाणं धमस्य	स मा २६ १३०	श्रुद्धता क्वचिध्यामि [यिषु]	६२ २६६
समेग महता युक्ता [सहाय] स मा २३ १८३		श्रुति स्तुतिरिडा योति	स मा २ २०१	श्रुद्धता कारणं तात	६४ ६०३
समेग महता युक्ता [प्रवि] स मा २३ २७५		श्रुति स्तुतिर्धृति कीर्तिर्	५६ ५०१	श्रुद्धता गोविन्दिच्छक्	५५ १६१
सर्वगदाज्ञां कृत्वा	५३ ७३०	श्रुतिगदितानुवमनेव मन्दर	४१ ५८०	श्रुद्धता तव मन्त्रेयस्	५६ ६४३
सर्वगदाज्ञो नाम	५३ ५००	श्रुतिप्रमादं मन्त्रभ्रिजिनो बहि	६४ १३०	श्रुद्धता तव मन्त्रेयस्	स मा २२ ७५०
सर्वगदाज्ञो पुण्य	५३ ६००	श्रुते यन्मन्त्रस्तुते बीजिते च	६५ ६७०	श्रुद्धता मन्त्राङ्गुल	३८ ६३०
सर्वगदाज्ञो मरु	५३ ८२०	श्रुत्वा कुमारखचन भगवाद् मूढ्ये	३२ ६४३	श्रुद्धता पर्वतमण्ड	२६ २३६
सर्वतो धवगो पुण्यो	५४ २१३	श्रुत्वा गोविणय ब्रह्मण्ये	५७ १०३	श्रुद्धता पूर्ववदतां	५६ ३३
सर्वतोऽनु निरुच्यन्ते	१२ २२०	श्रुत्वा च काल्यां परया समतो	६६ १०	श्रुद्धतां यन्मन्त्रेय	५५ २१
सर्विष्टाना तथा शृष्टे	५४ १८१	श्रुत्वा धर्यासित्त्य तद्	३८ ५७१	श्रुद्धता राममण्ड	१४ २२५
स्यद्धातिरियमम्याय	१२ ३३१	श्रुत्वा तद्विमानवचनं	७ ३८१	श्रुद्धतां सप्रवज्यामि	१८ ४१३
स्यद्धा शुद्धपरितासा	५३ १८०	श्रुत्वा तद्वचन स्वस्ती	३२ १०२३	श्रुद्धता सर्वमात्स्याये [स्वर्गो]	५१ ३३०
स्यद्धो मुण्योन्वेन	१७ ६०३	श्रुत्वा तु वचनं तेषां	स मा ३ १५१	श्रुद्धतां सर्वमात्स्याये [यता]	५१ १५१
स्यद्धो श्रीधरप्रोर्ध	६८ २६०	श्रुत्वा तु वाक्यं कीर्णिया []	३० ३६१	श्रुद्धे च द्विवधु	१ ५३
स्यद्धे माताय दान्ताव	स मा ६ १६३	श्रुत्वाऽऽ वाक्यं मरुतोऽप्रवीच्य	२० ३२१	श्रुद्धे रविनि ताद	५७ २६०
स्यद्धे देवीति नाम्ना ता	५६ ३०१	श्रुत्वाऽऽ वाक्यं वृषमन्त्रज्यम्	३६ ५१६	श्रुद्धे हृदये निदं	६ ३१
स्यद्धे क्वा मुनेर्षे च	६१ १६३	श्रुत्वाऽऽ गन्धं दितिर्द्रे सवीरित	१० ३८१	श्रुद्धे क्वाटोममिन्द्रा	स मा ३ २००
स्यद्धे मन्त्रम द्रष्टुं	३६ ३८०	श्रुत्वाऽऽ गन्धं दितिर्द्रे सवीरित	१० ३८१	श्रुद्धे क्वाटोममिन्द्रा	स मा ३ २००
स्यद्धे मन्त्रम गता तूर्ण	३७ ६८०	श्रुत्वा गितामहर्ष	३१ २६३	श्रुद्धे क्वाटोममिन्द्रा	स मा ३ २००
स्यद्धे मन्त्रम गता तूर्ण	३६ ८२०	श्रुत्वा प्रोषाव राजर्षिर्	३६ ७२१	श्रुद्धे क्वाटोममिन्द्रा	स मा ३ २००
स्यद्धे मन्त्रम गता तूर्ण	स मा १६ ६०	श्रुत्वा मन्त्रस्या दान्त्य	४ १५०	श्रुद्धे क्वाटोममिन्द्रा	स मा ३ २००
स्यद्धे मन्त्रम गता तूर्ण	स मा १४ २३३	श्रुत्वा मन्त्रस्या दान्त्य	४ १५०	श्रुद्धे क्वाटोममिन्द्रा	स मा ३ २००
स्यद्धे मन्त्रम गता तूर्ण	५६ ३६०	श्रुत्वा मन्त्रस्या दान्त्य	४ १५०	श्रुद्धे क्वाटोममिन्द्रा	स मा ३ २००
स्यद्धे मन्त्रम गता तूर्ण	५७ २६०	श्रुत्वा मन्त्रस्या दान्त्य	४ १५०	श्रुद्धे क्वाटोममिन्द्रा	स मा ३ २००
स्यद्धे मन्त्रम गता तूर्ण	१ १०	श्रुत्वा मन्त्रस्या दान्त्य	४ १५०	श्रुद्धे क्वाटोममिन्द्रा	स मा ३ २००
स्यद्धे मन्त्रम गता तूर्ण	६० २०	श्रुत्वा मन्त्रस्या दान्त्य	४ १५०	श्रुद्धे क्वाटोममिन्द्रा	स मा ३ २००
स्यद्धे मन्त्रम गता तूर्ण	१३ १८०	श्रुत्वा मन्त्रस्या दान्त्य	४ १५०	श्रुद्धे क्वाटोममिन्द्रा	स मा ३ २००
स्यद्धे मन्त्रम गता तूर्ण	५२ ५५०	श्रुत्वा मन्त्रस्या दान्त्य	४ १५०	श्रुद्धे क्वाटोममिन्द्रा	स मा ३ २००
स्यद्धे मन्त्रम गता तूर्ण	१ मा ६ २०	श्रुत्वा मन्त्रस्या दान्त्य	४ १५०	श्रुद्धे क्वाटोममिन्द्रा	स मा ३ २००
स्यद्धे मन्त्रम गता तूर्ण	५६ ७८०	श्रुत्वा मन्त्रस्या दान्त्य	४ १५०	श्रुद्धे क्वाटोममिन्द्रा	स मा ३ २००

श्लोकार्थसूची

श्वेतशिलाशरवत्	६०.१७०	शमिनी तु समासाद्य	स मा १४ ३ ४३	सपूजनीय दैत्येन्द्र	६७ ६०
श्वेतमाल्याशरवत्	२५ ३०	संज्ञह विप्रह वाञ्छित्	३१.६००	सपूजनीया विप्रह्निद्	५५ २६३
श्वेतमूर्ति स भगवात्	४१ ४१०	सवाररयानमेवास्य	५.४६०	सपूजयन्तस्त्वसुर्वी	५७ ३६३
श्वेतवर्णो गजवर्तिद्	९ १५०	सबुर्ययति मवीव	३२ ५४०	सपूजयन्तस्त्वसुर्वी	३६ १२५०
श्वेतवृक्षरक्तकान्ध्या	४९.१६६	सद्यिप्रशोभो निपात तैसाद्	५६ ४२०	सपूजयित्वा कचोरोरुपुर्वी	५० ३६०
श्वेतानि दुष्प्राप्यय शोभकानि	१४ ३७०	सद्यिप्रत्यय चापेणु	८ ६००	सपूजयित्वा गोविन्द	५४ ३६०
श्वेतानि धीरभेषाणि	४६ १६०	सज्जल पुनिगाङ्गुल	३४ ६६०	सपूजयित्वा विधिवत्	५७ ६४०
श्वेताशरवत् चैव	५६ १६०	सज्जल स्वस्वभेषो	५३ १२०	सपूजित पर्वतप्राविदेन	२७ ६१०
श्वेताशरवरो दैव्य	६२ २६६	सज्जल स च धर्मस्य	१८ ४००	सपूजितस्तेन विमुक्तिमायवी	६८ ५६०
श्वेतेषु दुग्ध प्रवर धनैव	१२ ५२०	सज्जासाङ्गक यश्चन्दु	३७ २७७	सपूजितानविष्टय	७ ३२०
ष		सज्जीवनी गुभा जिवा	३६ ४२०	सपूजितो हरि वामान्	५४ १००
पट्टकृत्स्नाश्च शिरसा	३२ २३	सज्जे लेभे सुचार्वङ्गी	३७ ५६३	सपूज्य च जनकानम्	५२ ४०
पट्टं च पट्टिस्तथा कोट्य	४१ ७०	सतथा ह्य निरत्ताभ्या	१४ ५३३	सपूज्य देवदेवेशं	३७ ७७३
पट्टं श्रीणि चैव च दितोक्षरेण	७ ५७०	सततोविप्रह सवान्	३७ २७	सपूज्य देवागोदान	३६ ८३
पट्टपदोद्गीतमभूयं	स मा ३ २०३	सतादवादेव न च प्रह्वो	३६ ५००	सपूज्यमानो हनुमुगर्वस्तु	१० ५५०
पट्टं पल सर्विय प्रोक्त	३६ १७०	सताद्वयमाना प्रमर्शवान्या	२१ ५००	सपूज्यमानो दैत्येन्द्र	७ ३६०
पट्टं सप्त चाष्टौ नव पञ्चरेण	७ ५८०	सतानिवा विकलिवा	३१ १०००	सपूज्यमानोऽनुजगाम चाथम	५० २६०
पट्टङ्गलिपिन घोर	३५ ११३	सतानपानस्त्रग तदा स विद्धो	६ ४४३	सपूज्य विधिवत् कम्	६७ १००
पटास्त्यन्तान्महाबाहु	३१ ४६०	सतानमामर्षं ब्रह्मन्	३ १०	सपूज्य ह्यपीर्ये च	५२ ८०
पट्टार चैव पस्याना	१५ ४६०	सतायश्चापं वनत् समर्थं	६ ४४०	सपूजां वस्तुसवीता	५३ ५३०
पट्टारान तत्र च स्थित्वा	५५ १६०	सतायश्चापगत सर्वं	१६ १५०	सपूगे स्वपि माधे वै	५५ ४००
पट्टारानमुद्य तत्रैव	५७ १००	सत्यसुमाधोऽय परस्वधेन	४२ ३६०	सप्रयच्छव दैत्येन्द्र	५२ ८००
पष्पासादादरिष्यन्ति	३४ १३३	सत्यसुमानो नागेन	७ २०३	सप्रयातानि युद्धाय	५७ १४०
पष्पुषाद् पश्यते याश्च	४१ ७३	सत्ययश्चात्कररय	२६ ६०	सप्रयातेषु देवेषु	२८ ५२३
पष्ठु काले त्वमाहार	५६ ५३३	सत्यय मेघ वननखलेन्द्र	५२ ३३	सप्रवृत्त दैत्यरये	स मा २ ८३
पष्ठु काले न मे ब्रह्मन्	५६ ५७३	सत्यय सप्राग्विदो दुःखत्या	३२ ८४०	सप्राप्ता शङ्करस्यान	३८ ५००
पष्ठु काले नृपसात्मा	५६ ५४०	सत्यय विहृ महिषागुरत्य	२१ ४६०	सप्राहास्ते दाखवः	३१ ३८३
पष्ठु पष्ठु तदा काले	५६ ३६०	सत्यो लोहेगिण्ड्य	११ ५७०	सप्राप्तास्त्वगामन् गैला	२७ २००
पष्पय स्वप्न प्रस्तपिति	१७ १५३	सत्योश्च कृत पापं	५६ ६३०	सप्राप्तो वचनोद्देग	३८ ६७०
पाङ्गागश्चिद्रूपे	३२ ६६०	सत्यानुक्तं सद्यो	५७ २८०	सप्राप्तो च सद्य देव्या	२६ ७७३
स		सद्यो वज्रं मुक्त दिवा च	१४ ५०३	सप्राप्तो मग्दरगिरि	४३ ८२०
सकीर्तनास्मरणात्सनाच	६३ ५६०	सद्यो निवसुहृष्टा	६ २३०	सप्राप्त्य तत्र देवेभ	३७ ८३३
सकीर्तनीय द्विजसत्तयेषु	४४ ६६०	सद्विस्तस्यो रोद	५७ २७३	सप्राप्त्य लीये तिष्ठति	३६ ५५०
सकीर्तयमुदा गतिं	५२ २५०	सद्विरोधव्यससर्जैवम्	५ १५०	सवभूच मुत श्रीभान्	५६ ५०
सकन्दनाथ शब्दाय	स मा २६ ७८३	सद्विनितानोह महाभुजेन	२३ ४५०	सवाधयाना दैतेर्विद्	५६ ११३
सकम् विवम चैव	३१ ६३०	सद्विदुते ततो बाले	५८ १३	सवाधयित्वा सवत्	५६ ६५३
सकन्दो रासतथयु	५३ ५००	सद्विनेद्या रक्तानिद्	१७ ३६०	सवाधय सर्वभूतानि	स मा २६ १५३
सकन्दस्वस्तया साम्ना	६ ६३	सद्विच च मुक्तिस्वीयो	५१ ५६०	सवाधयामप्यचरोद्	५६ ७०
सकन्द्यान् भुवनान् दृष्ट्वा	६ ६६३	सद्विस्त्वज्जताध्वनात्	५१ २००	सविभुद्दरो ब्रह्मन्	८ २६३
संशोभयसौमनिधोन् पनाश्च	२१ ४१०	सद्विस्त्वज्जता व्यसन्	५१ ५७०	समृता यरव देवत्व	५६ ८६०
सगमे च नर स्नात्वा	स मा १३ १८०	सद्विस्त्वज्ज म मुनिद्	३८ ७३०	समृद्य देव्यादितसवयामया	३० ६६०
		सद्विस्त्वज्ज विस्मयिष्ट	स मा ६ ५३		

वामनपुराणस्य

सभुय विष्णु गत्वा च	२२ ४३	सस्मृतोऽसि मया तात	६७ २३३	स च दक्षेऽश्रोतो यशैर	१८ ६७३
सभेत् सविद्यमेतत्	३५ १३०	स इत्युक्त उवाचेद	स मा २२ ५१०	स च विद्या निजे राज्ये	२२ २७३
स भ्राममस्तूयतर स वेगात्	४२ ४३०	स श्रेयेर्वाङ्गमाकाण्य	३६ ६८०	स च वन्न महातेजा	३७ २००
समन्व्य देवर्षिहित च कार्यं	५५ २४५	स एव केवल देव	स मा ६ ३००	स च वन्नै वर दायो	३४ ३२०
समोहित भ्रातृमुत्त विदि वा	४२ ४३३	स एव सेवपातोऽभूत्	२३ ६३	स चम्पकतण्डला	६ ६८०
सवतासि कथ चाभ्रात्	४३ १४५०	स एव चायाति भ्रमाथम व	२२ ५६०	स चापिज्ञानसम्पन्न	३७ ८४३
सवस्तुर्वा यथा स्याद्धि	३४ ६१०	स एव धत्त भगवान्	४१ ४२०	स च आ तत्तण्डलेव	स मा २७ २५३
सवन्म मा कृपिवर	३८ ३६३	स एव धयो हि विता	२६ ३८१	स च आ परमा सिद्धि	स मा २७ ३००
समुक्त प्रीणयेद्द	३५ १८०	स एव नून नरदेवमुत्तुर	३६ ११७०	स चागत सुरै से द्वै	३६ ३६०
समोनयाति देवप	४३ ५१०	स एव पुनि गृषतेस्तनृजो	२२ ५६३	स चावका वलिना रणे जयं	५० २८०
सजोऽयामास वयो	४२ ६००	स एव पुनरायाति	३६ ८८३	स चाभितनय मिश	६४ ४३३
सरत्कमुद्रजा भीमा	३ २०	स एवमास्तेऽभुरराडवलिस्तु	६८ ६३३	स चाविद्युदयो भाता	४३ १०२०
सरभ्राह्मणवे वि मुग्धि निःसिञ्च		स एवमुक्त मुग्धेन	२६ ४३३	स चावपयो देवप	४६ ५३
समुतो देवसाय	४७ ३८३	स एवमुक्त्वा वचन भद्रा मा	५१ ४३३	स चापि गमन चक्र	१८ ५६०
सहरोप सदा मार्गे	४३ १६०	स एव नून तपता वरिष्ठो	३६ ११८०	स चापि तेन सनुक्तो	३२ ७६०
संरोहतीपुणा विद्ध	२८ ७०	स एव भवत श्रयो	५१ ५५०	स चापि तेनाधिकृता	२० ३८३
सत्त्वररत्वमुक्तो	स मा २६ ११११	स एव वेताङ्गमनःकृता कृत	२७ ३१३	स चापि दष्टो यच्छुद्	४५ ६०
सत्त्वराराणां दिव्याना	४५ २२३	स क्व सुपवशासाद्	४० २४०	स चापि दम्भवर गुपल्लभा	७ ६००
सत्त्वरं सप्तभि	४४ ८०	स क्व च श्रुताविष्ट	५८ ४०३	स चापि ध्रुवस्युत्त	६४ ३५०
सदतनोन्तवश्रव	स मा २६ १२७१	स क्वाचित्तपयशत	५६ ७३	स चापि राक्षसमुतो	६४ ३३१
सद्गुदेनेऽग्रम्यज	२६ २७०	स क्वाचिद्वदतैरेवम्य	११ ७३	स चापि राजविद्ययात्	४६ ५१३
सद्गुणानां कृपितानुताङ्गो	२६ ५७०	स क्वाचि चर्हाणै	२५ ३२३	स चापि वानरो देव्या	३८ १२३
सद्गुणानां चतुर्णां	३८ ५६०	स क्वाचि चर्हाणै	३४ ४३३	स चापि विप्रतनयो	४३ ५४०
सर्वाणो नाम तदाप्यनन्त	११ ५८०	सकलतो महत्तजा	३४ ४००	स चापि गकरा प्राप	११ ९३
सत्तापातासितस्य करारसम्ब	५१ ५४०	सकदवपाद् समामन्व	२ ८०	स चापि संस्तुत प्रात	६७ २१३
सत्तारगहन दुर्ग	स मा १५ १६०	सकटं पितृ यन च सप्रभूय	५० १७०	स चापि हि वनिकुयो	५३ ७३३
सत्तारगवमनाना	६७ २५३	सकटानामाग	स मा २८ ३४०	स चाप्यञ्जनतद्गा	४१ ३२३
सत्तारे तुषभासात्	स मा ६ ५०	स केन वन् निधिन्न	३३ १०	स चाप्यारह्यं सुरा	२२ ३८३
सत्तारपरिहीनत्वम्	३५ १२०	सकव तुषाभासेन	स मा २२ ५७०	स चाप्यगा महातेजा	२० ३६३
सत्तारभनोऽह्यरतोऽद्वितीय	२० ३४०	सकभूध सप्रुवाद् देदे	१७ ५६३	स चाप्येव गुरप्रेष्ठो	२० ३६३
सत्तारभवाना मुर्षिद्वयपरै	३१ ५२३	सकौधय बलि प्राह	स मा ८ ३३०	स चाप्यैवापि वर वा र्व	३६ १२३
सत्तारभवानो श्रेयिभि	६२ ४८०	सक्यस्तामश्नुवतात्]	३७ ४३०	स चापि माया बलि	स मा १० ४०३
सत्तारवयो महाभयो	४४ ५१३	सक्यस्तामश्नुवतात्]	३१ ५३	स चापिप्यद् महादेवं	३६ १३०
सत्तारवयो निजने कोर्षे	३६ २६०	सक्यस्तामश्नुवतात्]	२१ ५०	स चाप्युक्तोऽहनागे	४२ ३३
सत्तारवयोऽपि वनो	५६ २२०	सक्यस्तामश्नुवतात्]	स मा २६ ३५३	स चाप्येवाय सन्निपत्य	६६ ४०
सत्तारवयोऽपि वनो	४३ ७०३	सक्यस्तामश्नुवतात्]	२६ ३०३	स चाप्येव देवोऽनयो	२२ १०३
सत्तारवयोऽपि वनो	४३ १०३०	सक्यस्तामश्नुवतात्]	३४ ३८३	स चाप्येव पूजयन्	४४ ६४०
सत्तारवयोऽपि वनो	६७ १८०	सक्यस्तामश्नुवतात्]	स मा १६ १२३	स चाप्येव पूजयन्	३६ ७६०
सत्तारवयोऽपि वनो	५८ ६६०	सक्यस्तामश्नुवतात्]	२६ ५०३	स चाप्येव पूजयन्	२२ २८०
सत्तारवयोऽपि वनो	७ २८०	सक्यस्तामश्नुवतात्]	३६ १२३	स चाप्येव पूजयन्	३४ ५६०
सत्तारवयोऽपि वनो	४८ २०३	सक्यस्तामश्नुवतात्]	३६ १२३	स चाप्येव पूजयन्	२६ ६६०

स चाह पूर्वचरित	६४ ५५a	स तोषामभय दत्त्वा	५१ १७a	सदाचारो निगदितो	१४ १३a
स चाह मम वैहृद्यं	२३ २६०	स तेषु ध्यावन कुर्वन्	स मा २६ ५०c	सदारोऽहं सम पुर्वैर्	२६ ३०a
सचिदे राज्यभाषाय	स मा २६ ३५०	स त पुत्रे समानीत	स मा १८ १६a	सदास्तु धर्मस्य निधानमप्य	३६ ५३c
स केचाङ्गुलितो धीमान्	३६ ५६०	स तीक्ष्णुनि परितान्मनामो	४२ २६a	सदा ह्यस नमस्ये च	६१ १६०
स वैकटा मा शकटे	६४ १०२०	सत्युपग त्वया वरस	स मा २७ २७०	स विष्वधीगात्रतिसिंध्यतोऽम्बरे	४६ १२०
स चैव भगवान् शर्व	४१ ४००	सत्य धरो जानुयुगो	५५ ५०a	स हृष्टवाङ्मनाय	५१ ११a
स चोत्थाम्ना पुत्रार्थे	३४ ५००	सत्य प्रभूद्विनवराट शुदिव्या	५२ १६०	स हृष्टा कल्पकाशुभ	३६ ५a
स धोम प्राह वैःशोऽम	२६ २५a	सत्य धद सुदेवान	३६ २२०	स हृष्टा कौतुकाविष्ट	४३ ३८०
स चोवाच महारात्र	७ ३३a	सत्यमरयाभवद् बाणो	स मा १० ५२०	स हृष्टा पुनवदन	स मा २६ ७०
सजलस्थतपर्यस्त	६३ ४७०	सत्यमुक्त जिलोकेरा	२६ ३५०	स हृष्टा वाचयित्वा च	३८ ६१a
स जातकम दिग्निरेज सञ्जते	२३ ११०	सत्यमेतत्पत्न्यानाथे	५० ४६a	सदेनामुरगः खर्व	स मा १० ७a
स जाल्वा वानुदेवोय	५१ ५a	सत्याधीनामिसमुक्त[]	४६ २६a	स देवो जगता नाथो	स मा ८ ५६a
स त परस्य शनकौ	स मा २६ ६०a	सत्याजितसमायुक्त[]	४६ २८a	स देव्या समनुजातो	स मा १५ ५६०
स त प्रमुखाश्ववर नरेन्द्रम्	३३ ८a	सत्याभिधानो भगवनिवातो	५१ २४०	सदेव वर्ण्यं यवनमुदविश्राम्	१४ ५१a
सतत क्षाम्भरुचन	६७ ६८a	सत्येन तेन सकृदा	स मा ६ ३६०	सदोऽम्बलो धर्मरतोऽप्य दान्त	४६ ५२०
सतत्सो मुनिश्रेष्ठो	३८ ६००	सत्येन तेनामित्तोर्नोर्व विष्णो	१७ २३०	सद्भ्रात्रो ब्राह्मणोऽथेव	६४ १७०
स तत्कल प्राप्य च कामनस्य	६६ ७a	स तिभि शकुरमुत्तं	४२ ६३a	सद्य शोष भवेऽत्रो	१५ ५५a
स तत्र हृष्टवा ता दुर्गा	२६ ४४a	स ह्य मुहूर्तमाय माम्	५६ ४६a	सद्य समुद्रा क्षुभिता	स मा ८ ५०
स तद्ब्रनमाकर्ष्य	३१ २७a	सत्वर भैरव राज	४० ५६०	स द्विधा कृष्णते मूढम्	१२ ८०
स तदसिद्धवधाय	३४ ४६a	स त्या क्वय ऽ जयते	२६ ३७०	स ध्यातपथय कृत्वा	स मा ८ ६a
स तस्य मूर्च्छि प्रवरोऽपि बद्धो	४३ १०६a	स त्या प्राह महाभागे	२६ ३२०	सन्त्युत्तम प्रोवाच	३३ ५३०
सता च चित्त हिं दित्वा मुर्धं सम	२ ४०	सत्वाकिंशुत लोकेष	३ १७a	सन्त्युत्तम प्रोवाच	३५ ३२a
स ता हृष्टवा महावाह्वी	४६ ३५०	सत्वापुषि परिशाखे	५६ २०	सन्त्युत्तम सनक सनन्दन	१४ २५a
स ता श्रुसुता लक्ष्म्या	२३ ६a	स त्वेकदा निजाद् राष्ट्रात्	५३ १४a	सन्त्युत्तमरामासीन	स मा २२ ४a
स ताडितोऽपिनदितिविचारेण	१० ३३०	स त्वेकदा सम पित्रा	५६ ८a	सन्त्युत्तमरामोऽथ	३४ ७३a
स ताड्यमान शिनिराशुवागेर	१० ३१a	स त्वेव मृपतिश्रेष्ठो	२३ ११a	सनातन च ब्रह्माण	६१ २५०
स तामाह महाभागे	३८ २६a	सत्सनाया मुक्तिमती	१३ २७a	सनातन सत्या दैवे	६३ ४१a
सताकृ हि महिष	२५ २८०	सत्यु कुत्सितमेव हि	३३ २७a	सनातनाय पूर्ववि	५८ ३४०
स तास्काव सह धैरुतेन	६५ ६४०	सत्यु नित्य सदा वैरम्	३५ १२a	स नामत स्मृतो दैव्यो	१८ ७०a
स ताश्राहृ तिमिर्गुणा	३६ २१a	स ददर्श ततोऽदूरात्	७ ४५a	स निगजत्रपि जले	२६ ७a
सति सद्य प्रमुषिता	६ ३७a	स दस्यो रणे सस्ताम्	३४ ३००	स नून देवराजस्य	४६ १८a
सतीनायय जैवेत्र	२ ५०	स दग्धैरेकदित्वा	स मा ८ १०a	स नून यनमायाति	स मा १० ५a
सती वात्सयानमुक्ता	६४ २३०	सदद्यद् देवि यत्किञ्चिद्	स मा ११ ६०	स नैरेव च रजत	१७ ३७a
स तु चिन्तायेव मन	२८ ४०a	सदस्या पादमाशिर	स मा १० ३६a	सन्ति मे शतगो वैव्या	स मा ८ ६०
स तु नासावर श्रीमान्	५८ २७a	सदस्या ऋषिब्रह्मवि	५२ ३६a	सन्ति मे शतगो वैव्या[]	५१ २०
स तु भिक्षाकाल स	स मा २२ ५६०	सदस्या यत्रमान्य	१२ ५५a	सन्तु शिवा बने प्रप्याम्	४८ ५००
स तु शीलावच ध्रुवा	४३ १३३a	स दह्यमानो वित्तियोऽग्निनाथ	१० ४७a	सन्ध्ययत्न इत्तं पार्श्व	५६ ६३०
स तु सोमधवा नाम	५३ ४७०	सदाकानवहास्त्राभ्याम्	१३ ३५०	सन्ध्यापुरतः सहागो	४७ २८०
स ते प्राता भयात्समाद्	५१ ५३०	सदाचारनिपैविन्द	१६ ३०	सन्ध्यापुरतः सहागो	४३ ७५a
स तेन सन्नेन दग्	स मा १८ ८a	सदाचारो निगदितस्	१४ १४a		
स तेषां वचन ध्रुवा	४३ १२३a				

सनिपातस्तयो रौद्र	४७ २७३	स प्राह गच्छ त्व तावत्	३४ ६१३	समन्यपादत्त प्रह्लाद	१० १४०
सन्निवृत्ते वतो बाणे	४८ १३	स प्राह गच्छ दुर्मुखे	२ ४०३	समन्ययात् सुतकुण्ड	४२ ४३
सन्निहृत्या तदा स्नात्वा	स मा १३ ५००	स प्राह देववर वैह वर ममाद्य	४३ ३२०	समन्यागात्वरानुकु	४८ २००
सन्निहृत्या यथा वाङ्म	स मा २० ६३	स प्राह न त्वया भद्रे	६४ ३०३	समन्येत्प्रिया पुत्री	३६ १४५३
स पपात् हतो भूम्या	२६ ६३०	स प्राह योद्ध सह वै त्वयाद्य	३५ ७३०	समन्येय वति प्राह	६५ ३५३
स पपाताय नि सगे	४३ १७०	स प्राह राज्ञप्रिय विभो	३६ ७००	समन्येत् महादेवीम्	२८ ५२०
स पप्रच्छ क्व शुकेति	३७ २४३	स बद्धो बाहुपाशेन	४२ ३२३	समन्येत्प्राञ्चरीदेवा	३७ ४६३
सपवतवनामूर्धो	स मा १० १३	सबल भस्मसाचके	२६ ४७०	समन्येत्प्राञ्चरीद् वातान्	४६ २१०
सपिणोकरण कायं	१५ ५८०	सवल भस्मसाचीत	२६ ४८०	समन्येत्प्राञ्चरीद् वृष्टवा	३३ ४३३
स पुगार्थो जुहामानो	४६ ५७०	स वली गाडन तुम्य	३५ ४५३	समन्येत्प्राचतुस्तथ्य	३१ ३४०
स पुगार्थो अपरसेपे	४६ ५४३	स वारणविद्धो व्यथित	३२ ३६३	सममेव त्वहमन्त्या []	२६ ६०
स पुरोहितवाक्येन	४८ ५३	स बायत्र सनगर	१६ ६००	सममे क तथा नष्टे	२६ १००
स पूतिना विस्तवता	स मा १८ ६३	स बानस्पृतिपुत्रोऽथ	४४ ५३३	समर्थेप द्विजेऽपे	५२ ७६०
स वृष्टत प्रेक्ष्य निष्प्रसिद्धकेतन	३२ ८७३	सत्तद्वृक्कास्तथा देवा	स मा २ ३६०	समवाप पर रूपम्	५३ ८०
सद्वत्कथ सुविस्तोर्ण	२८ ५३	सत्तद्वृक्कास्तथा लोका	२६ ६७०	समस्तदेवा सकला []	५६ ८७३
सप्तकोटिगत गभो	४१ ६३	स ब्रह्म स च मोविद []	स मा २२ २२३	समस्तपापमुद्धर्य	५६ ६४०
सप्तगोमवर तीर्थे [स मयैव]	३६ ७५०	स ब्राह्मण प्राह ममाद्य तुष्टिर्	३६ ४८३	समस्तलोकमष्टौ	स मा ८ १५३
सप्तगोदावर तीर्थे [पत्र]	३६ ७८०	स भयपागच्छापार्थो	स मा २८ २८०	समस्तातम्वनेऽप्योऽथ	५६ ७५३
सप्तगोदावर तीर्थम्	३७ ८२०	समागताना य सम्य	१५ ३२३	स महावतमुत्पाप	३५ ५३
सप्तगोमवरे तीर्थे	३६ १३५०	स भागुरा तदा दृष्ट	४६ ३६३	समाजमन्वाचि मह्यमुत्स्य	१६ ३००
सप्तगोमवरे ब्रह्मन्	६३ २३३	स भूमि च तथा जाक	४६ ८३	समागच्छत वन्याणी	२६ ५००
सप्तत्र मङ्गत पाप	५४ ३२३	सम विरिज्या तेन	२७ ५०३	समागता कुरु रेव	स मा १६ २६३
सन्त्या प्रविभ्राय तु	स मा १७ ५३	सम जगाम तनुम्य	२ ५६०	समागता न चापयन्	स मा २१ ११०
सताराशातराद् भस्म	४० १४०	समहात्त परिवर्ष्यैव	४२ १२०	समागतान् सुरादृष्टवा	२७ १३
सतपयस्त्रैवमुक्ता []	२६ १२३	सम साभि- कृपाञ्जोनिर्	३६ १२६०	समागता न्न वनाय	स मा १६ २८३
सतपिकाश गलेत्र	२७ ४००	सम नृपतिभिर्हृष्ट	३६ १२७०	समागतोत्सफरतान्	२६ ३३०
सतपिमुष्यो द्विचतुश्र दैवो	७ ५७३	सम पित्रा गीतमेन	४ ६३	समागता हि तच्छुप	३६ ३६०
सतप्येभ्र सप्तुहिय	स मा १५ १३३	सम शोषेन वने	२५ ६००	सम शतैर्यायिनि हीनवृते	६५ १६०
सतप्येगा प्रसाधे	स मा १५ ८०	सम सट्वरेणैव	६ ७०	समागते हर ब्रह्म	३६ १०
सतप्येदुस्तया कोष्णे	स मा १७ ६०	सम सुर पार्थिव	२७ २२३	समागतोऽह द्विज दूरतस्त्वा	१६ २५३
ससनास्त्वत तीर्थे	स मा १६ १७३	सम सन्धेन बलिना	३२ २८०	सद्भाग्यं च केरेत	२१ १५३
ससत्कारस्वत प्राणन्	३१ ६२०	समजायत गैलादर	४३ ८१०	सद्भाग्यं तत सपे	स मा १६ २७३
ससनास्त्वोपे तीर्थे	४६ ७१०	समदृष्टि निचरा भूला	२२ ४७०	सद्भाग्यं निनाय्यायि	४६ ६१०
ससत्कारस्वते स्नात्वा	स मा १७ २२३	समप्याते गुविपरा	३७ ३३०	सद्भाग्यं प्राञ्चरीद् भावव	४० ५२०
सस स्वरा सत रसातलाभ	१४ २५०	समप्याते स विनाय	३६ ५८०	सद्भाग्यं प्राञ्चरीद् भावव	४४ ६१३
ससस्त्रेवाचिप सत	४६ ५६३	समप्याते स विनाय	२३ १६३	सद्भाग्यं प्राञ्चरीद् भावव	४४ ६१३
ससत्कारिणा समपिष्टा	५६ ६००	समप्याते स विनाय	२३ २००	सद्भाग्यं प्राञ्चरीद् भावव	४४ ६१३
ससत्कारिणा सत कुलाबलाभ	१४ २७३	समप्याते स विनाय	४३ १६०	सद्भाग्यं प्राञ्चरीद् भावव	४४ ६१३
ससत्कारिणा सत कुलाबलाभ	स मा २४ ११०	समप्याते स विनाय	४३ २००	सद्भाग्यं प्राञ्चरीद् भावव	४४ ६१३
ससत्कारिणा सत कुलाबलाभ	३३ ३ ३	समप्याते स विनाय	१० ३८०	सद्भाग्यं प्राञ्चरीद् भावव	४४ ६१३
ससत्कारिणा सत कुलाबलाभ	स मा १८ ३६०	समप्याते स विनाय	२६ ४६०	सद्भाग्यं प्राञ्चरीद् भावव	४४ ६१३

समाजगम सहसा	२६ ५१a	समारोप्य जगनाथ	५६ ११६a	समुत्सृज्य जनात्स्वमात्	स मा २० ३२a
समाजम् कुरक्षेय	२४ ४०	समारोह भगवान्	४७ १६०	समुत्थाप्य परिष्वज्य	४८ २२०
समाजमुपसंहारैः	२६ २०	समारुह्यादय सर्वे	४७ २००	समुत्थापय सौहार्गात्	६६ ५०
समाजधान निरसि	४२ ३२०	समारुह्यामवस्था	६ ६०	समुत्थाप्य च वेगेन	२० ११a
समाजप्रनाथ हुता न दि	१० ५२a	समारुहादन मुस्ताता []	३६ १२२a	समुत्थाप्य त्वरामुक्ता	४१ ३०
समातरश्चापि पराजिता रणे	३२ ८२०	समारुहादिम सहसा	३६ ४४०	समुत्थाप्य महायज्ञी	२२ ४१a
स मातरामुद्रापेण	स मा २६ ६०	समारुह्य सहसा न	४७ १७a	समुत्थाप्यनाथ छोत्र	३६ १३७०
समादत्त वन साप्यो	८ १७०	समारोप्य महातेजा []	६४ १०३a	समुद्रगा दक्षिणा प्राक्ता	१७ ४१a
समाद्वय ततो बागैर	८ २४०	समारोप्य त्व तुर्गा	३६ ७३०	समुद्रवृत्ता महाजालैर्	४६ २५a
समागम्य हुषीकेतो	४ ५२०	समारोप्य सुर्वेणि ज	१६ ६१a	समुद्रपूता च देवयो	३० ५०
समानायाचक हृत्ते	४४ ८५a	समारोप्यय भर्तार	४६ ५४a	समुद्रप्राप्य महत्पूत	२१ १६a
समान्दिगे बुद्धाय	४२ १६०	समाविष्टानि पयस्व	६२ ५३a	समुद्रार्द्र द्विगुण ताक	११ ३६a
समान्दिगातिवन्न	३० १०	समाधयन्ति वनिन	४६ ४६a	समुद्रार्द्रसरिद्रोपात्	स मा ८ १३a
समाविष्टोऽप्यकेनाय	४० ५५a	समाधयन्ते भवनीतिनाथ	६७ ४००	समुद्रा सरितो गङ्गा	स मा २६ ११६०
समाद्वयत वीतयो	४३ ६२०	समाधयन्ति सौंकाय	४६ ४२a	समुद्रास्व न चत्वारो	स मा २० १a
समाद्वयत वेगेन[वरा०]	२१ ३१०	समाधयन्ति शचीधनु	४४ ४०	समुद्रत पर्वाभ्रद्वारवीचस	२२ ५२a
समाद्वयत वेगेन[तुष्टुष्ट]	४२ २८०	समाधयन्ति शचीधनु	४४ ४०	समुद्रतजटाभारो	२७ ७०
समाद्वयत वेगेन[हर्०]	४३ ६२a	समाधयन्ति शचीधनु	४४ ४०	समुद्रतजटाभारो	७ ४४०
समाद्वयस्त्रोपाश्रया	३० ४४०	समाधयन्ति शचीधनु	४४ ४०	समुद्रतजटाभारो	७ ४४०
समाद्वयता दुर्गा वै	२६ ५५a	समाधयन्ति शचीधनु	४४ ४०	समुद्रतजटाभारो	७ ४४०
समानव हारभुजङ्गवपय	३६ २६०	समाधयन्ति शचीधनु	४४ ४०	समुद्रतजटाभारो	७ ४४०
समानव्य सह माङ्गै	४ ४२a	समाधयन्ति शचीधनु	४४ ४०	समुद्रतजटाभारो	७ ४४०
समान्यता कुक्षयज	स मा १६ २३०	समाधयन्ति शचीधनु	४४ ४०	समुद्रतजटाभारो	७ ४४०
समान्यता श्रुत सीता	स मा १६ १२a	समाधयन्ति शचीधनु	४४ ४०	समुद्रतजटाभारो	७ ४४०
समान्यतातरुमयसिम्भ	३६ ५१०	समाधयन्ति शचीधनु	४४ ४०	समुद्रतजटाभारो	७ ४४०
समान्यतोऽस्मि पात्राणे	७ ३४०	समाधयन्ति शचीधनु	४४ ४०	समुद्रतजटाभारो	७ ४४०
समान्यत महिषाधिकुड	६ ४६a	समाधयन्ति शचीधनु	४४ ४०	समुद्रतजटाभारो	७ ४४०
समापत्त त वेगेन	४३ २२०	समाधयन्ति शचीधनु	४४ ४०	समुद्रतजटाभारो	७ ४४०
समान्यतादि भद्र ते	५३ २४०	समाधयन्ति शचीधनु	४४ ४०	समुद्रतजटाभारो	७ ४४०
समाप्त मोहने बाला	२० ३५a	समाधयन्ति शचीधनु	४४ ४०	समुद्रतजटाभारो	७ ४४०
समाप्नोति महाभाषा []	स मा १० ६००	समाधयन्ति शचीधनु	४४ ४०	समुद्रतजटाभारो	७ ४४०
समाप्नुव रमात्सर्वो	१० ६०	समाधयन्ति शचीधनु	४४ ४०	समुद्रतजटाभारो	७ ४४०
समाप्यत निरीधिव	४४ ८५०	समाधयन्ति शचीधनु	४४ ४०	समुद्रतजटाभारो	७ ४४०
समापाता सग्राहवा []	४१ १५०	समाधयन्ति शचीधनु	४४ ४०	समुद्रतजटाभारो	७ ४४०
समापाता समा तुर्गा	४० ५७०	समाधयन्ति शचीधनु	४४ ४०	समुद्रतजटाभारो	७ ४४०
समापाता महाभाषा	३६ १५१a	समाधयन्ति शचीधनु	४४ ४०	समुद्रतजटाभारो	७ ४४०
समापाता सुचार्ङ्गी	३० ४४०	समाधयन्ति शचीधनु	४४ ४०	समुद्रतजटाभारो	७ ४४०
समापातेषु देवेषु	३६ १५७	समाधयन्ति शचीधनु	४४ ४०	समुद्रतजटाभारो	७ ४४०
समापाताऽस्मि देवेण	२२ ४५a	समाधयन्ति शचीधनु	४४ ४०	समुद्रतजटाभारो	७ ४४०
समापातोऽस्मि वै दुर्गे	३० १२a	समाधयन्ति शचीधनु	४४ ४०	समुद्रतजटाभारो	७ ४४०
समापुतो योगयुतोऽपि पात्रात्	३ ११०	समाधयन्ति शचीधनु	४४ ४०	समुद्रतजटाभारो	७ ४४०

सर सन्निहित श्रौक्त	स मा १ ५०	सर्वश्रयोतीति यागीह	स मा १० ५८a	सर्वसत्त्वानुगमनं	४८ ३७a
सरस्वतं तु पूर्वैर्ग	स मा १५ २८a	सर्वत पाणिपावात	स मा २६ ६५०	सर्वसामान्यमुखिणो	४६ ३७०
सरस्वती सद्ब्रह्मस्यैव	३० २५a	सर्वत श्रुतिप्रज्ञोक्ते	स मा २६ ६६a	सर्वसूक्तानि दग्नाः]	६५ २७a
सरय सगज साधं	३२ ४२०	सर्वतीर्थमपश्रितं	६० ३२०	सर्वस्य चाततायित्वम्	३५ १६०
सरम गलभ पाक	४३ ५६a	सर्वतीर्थेषु स स्नाति	स मा १५ ५३०	सर्वस्याग्निह जगतो	३७ १३०
सरसूत्र सतीर्हिंसा	१३ २२०	सर्वतेजोमयी दिव्या	स मा ३ ३५a	सर्वा पुष्पा सरस्वत	१३ ३३०
सरस्वतीं सदा दृष्टवा	स मा १६ २३०	सर्वत्र कामचारित्व	११ २१०	सर्वाकार निराकार	६० ३१०
सरस्वतीं समाहूय	स मा १६ ६a	सर्वत्रग मुमुद ब्रह्ममय पुराणम्	६७ ७००	सर्वाणि क्षमते तस्य	स मा १३ २००
सरस्वतीजले मन्त्र	५७ ४१०	सर्वत्रा वरदा दुर्गा	१८ ४१०	सर्वाणि भद्राण्यानीति	५४ ३३a
सरस्वतीद्वयद्वयोद् [भक्त°]	स मा १ १a	सर्वदेवमय रूप	स मा १० ४८०	सर्वाणि नामद्य समागतानि	२० २८०
सरस्वतीद्वयद्वयो [दिव°]	स मा १२ ६a	सर्वदेवमयोर्जित्वयो	स मा १० ३३०	सर्वात्मन् सर्वग विभो	६० १५a
सरस्वती नदी पुण्या	स मा १३ ६०	सर्वदेवमयो देवो	स मा ६ ३६०	सर्वात् ज्ञातीन्समाभाष्य	२६ ५१०
सरस्वती पञ्चरूपा	१३ २०a	सर्वदेवाधिदेवस्य	स मा ४ ११०	सर्वात् निवेदयामास	४१ ४०
सरस्वतीम्य सप्तम्य	४६ ७५०	सर्वदेवैरनुज्ञात	स मा २० ३२a	सर्वान्मुरात् विविजित्य	५२ ४६०
सरस्वती महाभारा	स मा ११ १०	सर्वदेवाद्यच्छाभि	५६ ५८०	सर्वान्परीभि प्रतिरामयन्त	१६ १७०
सरस्वती यत्र पुण्या	२ ४२०	सर्वदेवो धराधारो	६२ ३६०	सर्वाय सर्वभावाय	स मा २६ ७६०
सरस्वती सत्सिद्ध्या	२७ १२०	सर्वपापभायकर	६३ १०	सवावात् वायुदेवं	६७ ४६a
सरस्वती स्थितार मन	स मा १६ २६a	सर्वपापसदाहारी	स मा ११ ३०	सर्वत्राभारसो दिव्याः]	स मा २ २००
सरस्वत्या नर स्नात्या	स मा १२ २०d	सर्वपापशय ज्ञेया	स मा १६ ३५०	सर्वत्रामभि ज्ञातीना	४६ ३४०
सरस्वत्या सिवारा ब्रह्मर	११ १८०	सर्वपापविनिर्मुक्त	स मा २७ ३५०	सर्वस्ता अपि तावन्त	३६ १५२a
सरस्वत्याम किमुक्ते	२५ ५२०	सर्वपापविनिमुक्ता	स मा २५ ६०	सर्वस्त्वापस्त्वमेवेति	स मा १६ १४०
सरस्वत्यास्तु स्वाभाव	स मा २१ ३०	सर्वपापविनिमुक्ताः]	स मा १४ ५५a	सर्वे कामा समुद्यन्ते	स मा ७ ४०
सरस्वत्युत्तरे तीर्थ [प्रति°]	स मा २८ ७०	सर्वपापविनिमुक्तो	५६ ११६०	सर्वे सत्त्वानु पुष्पो	स मा १० ४२a
सरस्वत्युत्तरे तारे [नाम्ना]	स मा २८ ४३०	सर्वपापविमुदात्तम् [बन्ध°]	स मा १५ ४२०	सर्वे भवन्तु मे सोम्याः]	५६ १६०
सरस्वत्युत्तरे तीर्थे	स मा १८ २०a	सर्वपापविमुदात्ता [विष्णु°]	स मा १५ ६६०	सर्वेश्वरेश्वर देव	५१ ३००
सरस्वतोपनामा च	स मा १९ १८०	सर्वपापहरायु	५७ १००	सर्वेषा रक्षारीनां	११ ५००
सरस्वतु चैतोत्तरमाननं यया	१२ ४६a	सर्वपापानि नश्यन्ति	६६ १२०	सर्वेषामपि पूताना	५१ ३७a
सरस्वतु पथा गगने च वाक्का []	२ ४a	सर्वपापं प्रमुच्यन्ते	५८ ७२०	सर्वेषामपि वर्णानाम्	४० ३७०
स राधापतिगुण्डानु	६५ ४२०	सर्वभूतगत पापं	६१ २७a	सर्वेषामपि वर्णानाम्	स मा २३ १२a
स राधय प्राप्य तेभ्यस्तु	स मा २६ २५a	सर्वभूतवश्ये त	५१ ११०	सर्वेषामपि युष्माव	स मा ६ ७०
सत्सि सा हि ममाहता	स मा १६ ३१a	सर्वभूतकर्मोप	६७ ६०a	सर्वे सुराद्यैरतमोष्मपाद्य	४४ ५१०
सत्सि तु सोर्वयु तथाप्रमेयु	३ ११a	सर्वभूतकर्मोप	१७ ५०	सर्वो जम भाहित्वं	३१ ६००
सत्सि मध्ये समानीता	स मा १६ ३६a	सर्वभूतकर्मोप	५३ २५०	सर्वेषामपि मया	५६ ६a
सत्सि मध्ये समानीता	स मा १३ २३a	सर्वभूतकर्मोप	५३ ४६०	सत्सि निर्गिरं सत्र	५४ १३०
सर्वे तन्मात्रं सद्य	स मा १० ८३०	सर्वभूतकर्मोप	६७ ६०a	सत्सि नोत्तरं सत्र	५८ २२०
सर्वे तन्मात्रं सद्य	स मा २७ १६a	सर्वभूतकर्मोप	५३ २५०	सत्सि नाम विष्णोर्	स मा १३ १४०
सर्वे एवायुश्च वायु	२६ ५५०	सर्वभूतकर्मोप	५३ ४६०	सत्सि नाम विष्णोर्	२२ ३२a
सर्वेषामपि निगिष्य	२२ २६०	सर्वभूतकर्मोप	५३ ४६०	सत्सि नाम विष्णोर्	स मा २६ ११६०
सर्वेषां शशभूतं च	५६ ७५a	सर्वभूतकर्मोप	५३ ४६०	सत्सि नाम विष्णोर्	स मा ६ ३६a
सर्वेषामपि पश्ये	३४ ६३०	सर्वभूतकर्मोप	५३ ४६०	सत्सि नाम विष्णोर्	स मा ६ ५१a
सर्वेषामपि ब्रह्मार्ज	स मा २३ ३८०	सर्वभूतकर्मोप	५३ ४६०	सत्सि नाम विष्णोर्	१० १७a

श्रीवार्धसूची

स प्राणोत्पन्नक	३४ ५२a	सामार नन्वीप्रमुखात्र गणाद्	२१ ७००	सहा रत्ना निर्धनुस्ते	५० ५६२
सवाचनयना जाता	३६.१५३a	सामार निय हरिमाषिताति	६० ६३०	सहा तपोमि परिचरणाय	१० ५७०
सवाचन प्रसपति	३२ ५३०	सामार मनगा ब्रह्मन्	५० ६६०	सहाय त गणश्रुत	२० ७५१
सवाचन हृतकती	२१ १०	स स्वय दत्त इत्युक्तम्	३५ ५५०	सहायार्थ तवापाता []	५१ १००
सवाहना समय जगत्	५३ १०५a	सह तनवं वृ गेण	३६ ५६०	सहित दण्डोद्धारोद्	५ ४१०
स विभर्षितसर्वत्वद्	५१ ८२०	स हनिष्यति सैलेन्द्र[महिय सार]	२० १६०	स ति देवनामान	५० ६५१
स विभुष विर विप्र	५६ ५६a	स हनिष्यति सैलेन्द्र[महिय सार]	२६ ५००	सहोमरा मुनिपरा	३१ ३७०
स विष्णु स वृषो ब्रह्मा	स मा ११ १६१	स हान्योऽधिवाय्यैव	२६ ५२०	सह्यवतात्मपर	३५ ७११
स वलपति महागती	३६ २०	सह सट्पाय महायोगे	१६ २२a	सहितमयैव मुवागुगना	३६ ६३१
स वै तीर्थे समाकाश	२६ ११a	सहसा स महातेजा []	५५ १०५	सहित्य तु निष्वात	स मा २३ १३०
स वै वागरा दृष्टा	स मा १७ ००	सहसैव समापाता	५६ ३१०	सा नानामहोत्सव	३७ ५०a
सह्य तस्मा समुत्तयो	स मा २६ १६a	सहजनिर्णय देव	स मा १५ २०५	सा सति विवाङ्मूढा	६५ ३५१
सह्य नादायणुज	२ ५५०	सहजना हव दिव्य	२३ ३१a	सा गतिगता दत्त	६७ ५५०
सह्य भूय तादयस्य	२ ५५०	सहजनयन गूढ	३२ ५७a	सागवन्तरिता तवे	१३ ००
सह्याणा द्वितीया च	३ २०a	सह्यवाद् सोताया []	३१ ७६a	सा शुभता च शुभम्	६५ ७६०
सह्यन गणिना धाम्य	२१ १७७	सह्यमेव विज्ञाना	स मा २५ ५७०	साधनसह्य तु	५६ ११a
सहायर्ण गती मुक्ता	२ १५०	सह्यमुगर्षित	स मा २२ १००	साध संवासा जाता	३५ २००
सहायर्ण गत्यो	६ २५०	सह्यतिष्ठ ज्ञान्य	५७ ५३५	साधन्य दानानगत	स मा ११ १७१
सहायना वाक्छो	५३ २०५	सह्यव्यवचरण	५१ ५५०	सा स्यात्साधन्युपाय स मा २६ १०१a	
सहाय्यतरणागत	१७ २००	सह्यवचन श्रीमान्	३५ ६६०	साहायानां स्वयता	६५ ०६०
सहार धनुस्त्राय	३६ ०६०	सह्यगतथ टाय	स मा २६ ६२०	साहायानां स्वयता	स मा ३ २६०
सहार सश्वगामि	५३ १५०१	सह्यगिरय देव	६१ २३a	सा च कोर्ण समागद	२६ ६५१
सह्य भैरव शृङ्ग	५५ २०५	सह्यगिरया गम्य	स मा ३ ५५	सा चकार सा पार	स मा ६ १३०
सहाय वीर्य चागम	५३ ३६०	सह्यगोपाय नयो	६० २०a	सा च सात्वति सर गु	३७ ५००
सहाय परिचय्य	३२ ००१	सह्यगुप्तमागत्य	५० ३०a	सा चानिकोऽष्टादशी	२६ ३६०
सहाय सुविदेश्य	० २७१	सह्यगो यथेरा	५१ २१a	सा चाह वतीत वयन् दुष्ट	२१ ५२a
सहाय सिद्धिमानोति	६० ७१०	सह्यगाना वाचन	६१ २४०	सा चातस्ती दृष्टा	३० ५७१
सहायसत्त्वदृष्टम्	३५ ३३०	सह्यगार्णवियात	६३ ३७०	सा चानि वृत्त्यां मुक्तोपनाम्यां	२१ ५७०
सहायस्य तवसा	५६ ६५a	सह्यगाना महादेव	५३ ५००	सा चानि साधनैरनामुक्तायुक्ती	३० १६a
सहायस्य वर	५२ १५१	सह्यगानाय सां प्राग्	७ १६०	सा चानि महागमयया र्णमा	२७ ५५०
सहायस्य महिय	३५ ५५१	सह्यगाना जन्मवाचर्णिगाम्य	५३ १११a	सा चानि हम्भुव नृगामये र्ण	२२ ५७०
सहायस्य श्रीवार्धसूची	स मा ० १७०	सह्यगोऽधिगुमि	५३ १२३०	सा चाचारोऽभिपद्यती	५६ २३१
सहायस्य श्रीवार्धसूची	३५ ५५a	सह्यगोऽधि हां वृष्ट	२६ २६०	सा चाचारा सत्येभ्य	५६ ३५५
सहायस्य श्रीवार्धसूची	स मा २० ३०	सह्यगोऽधि वचन	५० १२१	सा चाचारा सत्येभ्य	२२ ३७१
सहायस्य श्रीवार्धसूची	२३ ६०	सह्यगोऽधि संवातु	५५ ७०a	सा चाचारा सत्येभ्य	१० ५१०
सहायस्य श्रीवार्धसूची	स मा २० २६०	सह्यगोऽधि संवातु	१० १०	सा चाचारा सत्येभ्य	१५ ५००
सहायस्य श्रीवार्धसूची	५२ २२०	सह्यगोऽधि संवातु	१७ ११०	सा चाचारा सत्येभ्य	३६ ३१a
सहायस्य श्रीवार्धसूची	१५ २०५	सह्यगोऽधि संवातु	११ ५१०	सा चाचारा सत्येभ्य	५६ ७२०
सहायस्य श्रीवार्धसूची	१५ ६५	सह्यगोऽधि संवातु	१७ ११०	सा चाचारा सत्येभ्य	२५ २०१
सहायस्य श्रीवार्धसूची	२१ १०	सह्यगोऽधि संवातु	११ ५१०	सा चाचारा सत्येभ्य	३० ५१०
सहायस्य श्रीवार्धसूची	३१ ५७	सह्यगोऽधि संवातु	२ ६०	सा चाचारा सत्येभ्य	३० ५१०

सर सतिहित प्रोक्त	स मा १ ५०	सर्वज्योतीषि यानोह	स मा १० ५८३	सर्वस्त्वानुगमन	४८ ३७३
सरस्वत्ये तु पूर्वैः	स मा १५ २८३	सर्वैत पाणिपादात्	स मा २६ ६५०	सर्वसामान्यसुखिनो	४६ ३७०
स रक्षणीय सहसाम्युपेत्य	३० २५३	सर्वैत श्रुतिमहोक्ते	स मा २६ ६६३	सर्वदुःखानि दाना []	६५ २७३
सख्य संग्रह साध्य	३२ ५२०	सर्वतीर्थमयश्चैव	६० ३२०	सर्वस्य चाततामित्यम्	३५ १६०
सरयु गतम पाक	४३ ५६३	सर्वतीर्थेषु स स्नाति	स मा १५ ५३०	सर्वस्याहीह जगतो	३७ १३०
सद्वृत्त सन्नोद्विषा	१३ २२०	सर्वतज्जोमयीं दिव्या	स मा ३ ३५३	सर्वा पुण्यां सत्स्वस्य	१३ ३३३
सरस्वतीं तदा दृष्टवा	स मा १६ २३०	सर्वं कामवारित्य	११ २१०	सर्वाकार निराकार	६० ३१०
सरस्वती समाहूय	स मा १६ ६५	सर्वं नग गुप्तद ब्रह्ममय पुराणम्	६७ ७००	सर्वाणि समते तस्य	स मा १३ २००
सरस्वतीञ्चै मग्न	५७ ४१०	सर्वंदा वरदा दुर्गा	१८ ४१०	सर्वाणि समते तस्य	स मा १३ २००
सरस्वतीदृष्टद्वयोर् [ध्रन्त°]	स मा १ १६	सर्वदेवस्य रूप	स मा १० ४८०	सर्वाणि मास्य समागतानि	२० २८०
सरस्वतीदृष्टद्वयोर [दिव°]	स मा १२ ६३	सर्वदेवस्योर्गिरित्यो	स मा १० ३३०	सर्वोत्पन्न सर्वेषु विभो	६० १५३
सरस्वती नदी पुण्या	स मा १३ ६०	सर्वदेवस्यो देवो	स मा ६ ३६०	सर्वात् ज्ञातीन्ममाभाष्य	२६ ५१०
सरस्वती पञ्चमया	१३ २०३	सर्वदेवाधिदेवस्य	स मा ४ ११०	सर्वात् निवेदयामास	४१ ५०
सरस्वतीम्य सप्तम्य	४८ ७५०	सर्वदेवैर्जन्तुनात्	स मा २० ३२३	सर्वाम्पुरात् विनिश्चित्य	५२ ४६०
सरस्वती मत्प्रभागा	स मा ११ १०	सर्वदेवावगच्छामि	५६ ५८०	सर्वानुरोति प्रतिरामयन्त	१६ ३७०
सरस्वती यन शुण्या	२ ४२०	सर्वधारी धरावारी	६२ ३६०	सर्वाय सर्वमध्य	स मा २६ ७६०
सरस्वती हरिश्चन्द्रा	२७ १२०	सर्वपापनाशकर	६३ १०	सर्वावास बासुदेव	६७ ४६३
सरस्वती स्थिता यन	स मा १६ २६३	सर्वपापनाशकरो	स मा ११ ३०	सर्वोत्पत्तसो दिव्या []	स मा २ २००
सरस्वत्या नर स्नात्वा	स मा १२ २०३	सर्वपापक्षया श्रेया	स मा १६ ३५०	सर्वोत्पत्तमि ज्ञातीना	४६ ३४०
सरस्वत्या सिधरा भक्तिर	११ १८०	सर्वपापविनिर्मुक्त	स मा २७ ३५०	सर्वोत्ता अग्नि तावन्त	३६ १५२०
सरस्वत्याम भिक्षुञ्चे	२५ ५२०	सर्वपापविनिर्मुक्ता	स मा २५ ६०	सर्वोत्स्वापस्त्वमेवेति	स मा १६ १५०
सरस्वत्यास्तु स्नानार्थं	स मा २१ ३०	सर्वपापविनिर्मुक्ता []	स मा १५ ५५३	सर्वे कामा सद्गुण्यते	स मा ७ ४०
सरस्वत्यास्तुरे तीरे [प्रति°]	स मा २८ ७७	सर्वपापविनिर्मुक्ता	५६ ११६०	सर्वे च सकला पुष्पी	स मा १० ५२३
सरस्वत्यास्तुरे तीरे [नाम्ना]	स मा २८ ४३०	सर्वपापविनिर्मुक्ता [गच्छ°]	स मा १५ ४२०	सर्वे भवन्तु मे सोम्या []	५६ १६०
सरस्वत्यास्तुरे तीर्षं	स मा १८ २०३	सर्वपापविनिर्मुक्ता [विष्णु°]	स मा १५ ६६०	सर्वेश्वरेभ्यः देव	११ ३००
सरस्वत्याशेषनामा च	स मा १६ १८०	सर्वपापहृत्पापयु	५७ ३००	सर्वेषां रोचयतीना	११ ५००
सरस्तु चैकोत्तरमानस यथा	१२ ४६३	सर्वपापविनिर्मुक्त	६६ १२०	सर्वेषामपि भूतानां	५१, ३७३
सरस्तु पथा गगने च सारका []	१ २५३	सर्वपापविनिर्मुक्त	५८ ७२०	सर्वेषामपि वर्णानाम्	४० ३७०
स राक्षसगिर्गुर्वह्यम्	६५ ४२०	सर्वभूतगत शान्ता	६१ २७३	सर्वेषामेव पापाना	स मा २३ १२३
स राक्ष्य प्राप्य वैष्यस्तु	स मा २६ २५३	सर्वभूतवन्द्ये त	५१ ११०	सर्वेषामेव शुभ्राव	स मा ६ ७०
सखि सा हि समाहूता	स मा १६ ३१३	सर्वभूतलमाङ्गल्य	६७ ६०३	सर्वे सुरादेवतनोभ्यपाद्य	४४ ५१०
सखिस्तु तीर्थेषु दयायमेयु	३ ११३	सर्वभूतलमाङ्गल्य	१७ ५०	सर्वेषां च माहित्यकं	३१ ६००
सरोमये समानीता	स मा १६ ३६३	सर्वभूतलमाङ्गल्य	५३ ४१०	स त्वाध्यायम स्वार्	२६ ६३
सर्वैर्देवैः समासाद्य	स मा १३ २३३	सर्वभूतलमाङ्गल्य	८ ६३३	सखिन गिरिर सप्त	५४ १३०
सर्वे सन्नाद्य तस्य	स मा १० ८३०	सर्वभूतलमाङ्गल्य	५८ ५३	सनीत पद्भुजवने	५८ २२०
सर्वे सुपद्यते तस्य	स मा २७ १६३	सर्वभूतलमाङ्गल्य	३६ २८०	सवन नाम विश्वार्त	स मा १३ १५७
सर्वे प्यायुवन् वाप्य	२६ ५५०	सर्वभूतलमाङ्गल्य	स मा २६ १५३०	स वनान्त च दरये	२२ ३२३
सर्वेषु पुण्य निगिण्य	२२ २६०	सर्वभूतलमाङ्गल्य	स मा १५ ४३३	सर्वभ्याप्यवर्णाश्च	स मा २६ ११६०
सर्वेषु सर्वेषु च	५६ ७५३	सर्वभूतलमाङ्गल्य	५२ ५८०	स मासो जने दग्धो	स मा ६ ३६३
सर्वेषु सत्सवये	३४ ६३०	सर्वभूतलमाङ्गल्य	६२ ५३३	स मासो जने दग्धो	स मा ६ ४६३
सर्वेषु सर्वेषु च	५६ ७५३	सर्वभूतलमाङ्गल्य	१५ ५६३	स मासो जने दग्धो	१० १७३

श्रीमार्घसूची

स मासुदेववन	३४ ५२०	सरमार नन्दीप्रमुखात् सवान्	२६ ७००	सहाय्या नियमुक्ते	४० ५६०
सवाणनयना वासा	३६ १४३३	सरमार निरप हरिमापितोनि	१० ६३०	सहाय्यरोभि परिचारणाय	१० ५७०
सवाहन प्रसिपति	३२ ५३०	सरमार गनना ब्रह्मन्	४० १६०	सहाय्य तु गणयत्	२० ७५१
सवाहन हसवती	२१ १०	स स्वय दत्त इत्युक्तम्	३५ ५४०	सहाय्य तयावाता []	४१ १००
सवाहना शय जसु	४३ १०५३	सह तेवैव वृ गे	३६ ४६०	सहित परिरोहगारै	४ ४१ ०
स विप्रचित्तवतवान्	५१ २२०	स हनिष्यति दस्येत् [महिष सप]	२२ १६०	स हि देवतागोन	५० ६५१
स विप्रुय चिर विप्र	५६ ५६१	स हनिष्यति दैव्येत् [महिष तार]	२६ ५००	सहोमरा कुटिनया	३१ ३७०
स विष्णु स वृषी ब्रह्मा	स मा ११ १६१	स हाभ्योऽविवाप्यैव	२६ ४२०	साभ्यवेतारमपर	३४ ३११
स वस्यति महानानी	३६ २०	सह मन्मसा महायोगी	१६ २२५	सानिधमनेव मुद्यतुरागौ	३६ ५३३
स वै तीर्थ समागाद्य	२६ १११	सहासा स महानेत्रा []	४४ १०१	सानिधय वि मुष्यात्	स मा २३ १३०
स वै सावराय दृष्टा	स मा १७ ००	सहसैव समापाता	५६ ३११	सा कर्त्तव्यमहारण्यं	३७ ४०१
सव्य तसमासमुत्तरौ	स मा २६ १६१	सहस्रविरह्य देव	स मा १४ २००	सा कर्त्तव्य विचयपुररा	६४ ३४१
सव्य नासायकमुत्र	२ ५४०	सहस्रस्य तत् द्विष	२३ ३११	सा गतिगतिता गत्य	६७ ५४०
सव्य भुञ्ज तादयस्व	२ ५४०	सहस्रस्यस्य दूत	३२ ५७१	सागरातरिता सवै	१३ ५०
सव्या या द्वितीया च	३ २०१	सहस्यवाह्य सोवाया []	३१ ७६१	सा शृगेता च मुत्तद्	६४ ७६०
सञ्जन परनिना भ्राम्य	२१ १७०	सहस्रमेव लिङ्गानां	स मा २५ ५३०	साय सवसहस्र तु	५६ २११
साचरां यती मुखा	२ १४०	सहस्रमुपास्यते	स मा २२ १००	साय संवसरा ज्ञाता	३४ २००
सा चरैव संवसरी	६ २४०	सहस्रप्रतिज्ञं संसूत्र्य	५७ ५३१	साय संवसरा ज्ञाता	३४ २००
सा सभुवा कवाद्यो	५३ २०१	सहस्रवचनचरणं	४१ ५४०	सायन्य एवासाज्जास	स मा ११ १७१
सायानातरयागता	१७ २००	सहस्रयत्न श्रोमाद्	३५ ६६०	सायन्य सायन्यमुष्याय	स मा २६ १०१
सायं धनुसाय	३६ ५६०	सहस्रयत्नयत्न	स मा २६ ६२०	सायनाज्ञां सायनां	६४ ५६०
सायं पञ्चवचसि	५३ १४०१	सहस्रयत्नयत्न	६१ २११	सायनाज्ञां सायनां	स मा ३ २६०
सायं भैरवं वृक्ष	४४ २०१	सहस्रयत्नयत्न	स मा ३ ५१	सायनाज्ञां सायनां	२६ ६५१
सायान्ति वीथय चात्मान	५३ ३६०	सहस्रयत्नयत्न	६० २०१	सायनाज्ञां सायनां	स मा ६ १३०
सायनाय परिवर्त्य	३२ ००१	सहस्रयत्नयत्न	५० ३०१	सायनाज्ञां सायनां	३७ ५००
सायनां मुचिरेवैव	० २७१	सहस्रयत्नयत्न	५१ २१५	सायनाज्ञां सायनां	२६ ३६०
सायनां सिद्धिमानोति	६० ७१०	सहस्रयत्नयत्न	६१ २४०	सायनाज्ञां सायनां	३१ ५२३
सायनां मन्त्रसंग्रहम्	३४ ३३०	सहस्रयत्नयत्न	६३ ३७०	सायनाज्ञां सायनां	३० १६०
सायनाय सवाद्य	५६ ६५१	सहस्रयत्नयत्न	५३ ४००	सायनाज्ञां सायनां	३० १६०
सायनाय सव	५२ १५१	सहस्रयत्नयत्न	७ १६०	सायनाज्ञां सायनां	२३ ५४०
सायनाय सहस्रं	३४ ५०१	सहस्रयत्नयत्न	५३ ११३	सायनाज्ञां सायनां	२२ ५७०
सायनाय सवसु	स मा ० ३७०	सहस्रयत्नयत्न	५३ १३३	सायनाज्ञां सायनां	५६ ५३१
सायनाय सवसु	१४ ५४१	सहस्रयत्नयत्न	२० २६०	सायनाज्ञां सायनां	५६ ३५१
सायनाय सवसु	स मा २० ३०	सहस्रयत्नयत्न	३० १२१	सायनाज्ञां सायनां	२२ ३७१
सायनाय सवसु	२३ ६०	सहस्रयत्नयत्न	५६ ३५१	सायनाज्ञां सायनां	१० ६६०
सायनाय सवसु	स मा २० २६०	सहस्रयत्नयत्न	१० १०	सायनाज्ञां सायनां	६४ ५००
सायनाय सवसु	५२ २२०	सहस्रयत्नयत्न	६७ ११०	सायनाज्ञां सायनां	३६ ३१३
सायनाय सवसु	१३ २०१	सहस्रयत्नयत्न	६७ ६३०	सायनाज्ञां सायनां	५६ ७२०
सायनाय सवसु	१६ ५१	सहस्रयत्नयत्न	५३ ६३०	सायनाज्ञां सायनां	२६ ३७१
सायनाय सवसु	२६ १०	सहस्रयत्नयत्न	स मा २६ १००	सायनाज्ञां सायनां	३० ३३०
सायनाय सवसु	३१ ५७	सहस्रयत्नयत्न	स मा ३ १०१	सायनाज्ञां सायनां	२६ ३५१

धामनपुराणस्य

सा वाह साङ्कर यत्प	२१ १३३	साध्याना ह्यन्ये जातो	१० १०३	सा मदवाय अतिग्नो	२६ ११०
सा वाह श्रुयता नाय	४३ १३३०	साध्यामहदगाण्यर्षव	४३ ४६०	सा मद्बचनमाकर्ष्य	६४ ७४३
सा चेद्रागादुरभेष्ट	४६ २०७	साध्या विद्वे तथादित्यान्	स मा १११	सामर्थ्ये सति य कुर्यात्	७ ४६०
सा जाता सुतरा रोद्री	२६ ६६६	साध्येन च भ्रूयुषल मुकीर्तितत	१६ १२०	सामवेदव्यनि श्रीमान्	३२ २४०
सा जाता हिमवतपुरी	२२ ५०	साध्वो विप्रवरो धीमान्	८ ३४०	साम्प्रत जय विश्वात्मन्	स मा ६ २४०
सा जिह्वा या हरि स्तीति	६७ ३२३	सा निगते तु रमणे	६४ ७१०	साम्प्रत ब्रह्मनोक्तव्यान्	४२ ४८३
सा शाला दानय रं द्र	४३ ६००	सानिध्य कल्पयामास	४८ ६१३	साम्प्रत भगवान् विष्णुन्	४२ १०३
साञ्जना च प्रष्टुहाया	२७ २६०	सानिध्य भवतो बृहि	६२ ४५०	साम्प्रत वामुदेवस्य	१६ ५००
साट्ट सयं प्रागहर्म्यभूमि	१० ३४०	सानिहृष्य सर पुष्य	स मा २२ ६०	साम्प्रत सुवर्गातेन	४६ ४५३
सा त पति प्राप्य मनोऽनिराम	२२ ६१३	सानिहृष्यसरोत्पति	स मा २२ १०	सारङ्गावधिष्ठा ब्रह्मन्	६ २२३
सातत्येन ह्युकीर्ण	१७ ६६३	सापरथा यया दासी	२६ ४१०	सारथे वाह्य रथ	४४ ५३
सा तदमवाच यत्पत्	३८ १६०	सापि मृदात्रयोदून	२५ १८३	सारस्वत च त लोक	स मा १७ २३३
सा तद्वचनमाकष्य [बोडी]	३६ १४४०	सापि जाता मुनिष्ठ	२५ २०३	सारस्वतोऽम्भस्ति स्नावा	५७ ४२३
सा उद्वचनमाकर्ष्य [प्राह]	४६ १६३	सापि स बनिना श्रेष्ठ	३६ १०८०	सारस्वतो तल पुष्पै	५८ ३०
सा तस्वोत्पायामास	२६ ७२३	सापि सा मातर दृष्टा	३६ १२६०	सा रोमरात्री सुतरा हि तस्या []	२० ८३
सा ता वागीमन्तरिक्षानिसम्भ	४६ ८३	सापि तेनेह मुनिना	स मा १६ ३६३	सापंपात्र समन्मागाद्	६४ ३०
सा साडिता बलवता	४० ५६३	सापि तेनेव पतिना	१८ ४६३	सापिष्मती जटामध्यान्	३४ ६०
सा साधुवाच पुत्री मा	३६ ३३३	सापि तु क्षपरोदाङ्गी	४६ ६५०	सायेंन महता कुक्तो	४३ १४०
सातिभोताऽद्रोक्तेऽसि	६४ ५३३	सापि प्राह नृपथ	३७ ३११	साई मिनैत्र कमलाङ्कुरदन्	३६ २६३
सा तु जन्मउद्देशे ष	६७ ५५०	सापि मर्षु वच श्रुत्वा	२८ ५४३	साधुदिनेना पचसात	४१ १५३
सा तु जाता सरिच्छ्रेष्ठा	५ २०	सापि गवचवो रं द्र	२४ ३६३	सायंगिके च सप्रस	६४ ५२०
सा तु ध्याता सतस्तत्र	स मा १६ २७०	सापि सुकमुत्ता तन्वी	४० ४३	सायणिके तु संदास	स मा १० १६३
सा तु सत्यस्य त बाल	३१ १८३	सापि त्नातु सुधावङ्गी	४६ ३१०	सायमेने च भतार	५३ ७६०
सा तेन रक्षिता ब्रह्मन्	२० ४२३	सायश्रवोहिवा व्याघ्र	६४ ७६३	सायिनिमान्य ततो वसिष्ठ	२२ ४७३
सा तैर्भूतगणैर्वी	२१ २२३	सा प्राह दण्ड नृपति	३७ ३४३	सा गकरण स्वतेजोऽ	२२ ६६३
सा त्पान्मैण कानेन	३८ ५०३	सा प्राह वानरपते	३६ ८३३	सा गङ्गरवच श्रुत्वा	४ १५३
सात्त्विक उदरतं चैव	४१ ४२०	सा प्राह श्रुत्वा ब्रह्मन्	४३ ४१३	सा श्रुत्वा हा तना वागी	३८ २३३
सा शैवमुत्ताऽय विषागबोधा	२६ ८७३	सा शोवाच द्विजसुत	३६ ६१३	सा श्रुत्वा तां निना गुधू	६४ ५५०
सा शैवमुत्ता बर्णमिविवा हि	३० २८३	सा बदा सखिता ब्रह्मन्	२५ १६३	सा श्रुत्वा ब्रह्म गो वाच्य	३१ १७३
साञ्ज मा प्राह कि बुनि	२६ ३८३	साधिवद्भोगवता सर्वा	स मा ६ ४१०	सा श्यागाव हृष्टैः	१८ ५६३
साशोवाच ह्यशाम्येव	२८ ६१०	साश्नो-दूयतो यादिय	३६ ४०३	सा तिष्यमाना सुतरां	३७ ५६०
सा दन्ना तना पण्ड	२६ ७१०	साऽऽशोतनयायां	४५ ४८०	सा स्नातुमनतोर्णा च	३७ ४१३
सा दन्नां क्रिय चैरां	स मा १३ ४६३	साश्वोतनयो मह्यु [याने]	३१ ३१३	सा स्वय फलपुष्पान्	४६ ५५०
सा दानवादीश्रदास	४६ २६३	साश्वोतनयो मह्यु [नम्ना]	६४ ५५३	सा श्यागुक्ता तनय	६४ ५६०
सा दण्ड्या निमित्त भूयं	६४ ५१३	साश्वोत्त चणसत्तरे	६४ २६३	साहमन्मागता भटे	३६ ३४३
सा देव्या यवतं श्रुत्वा	४ ५३	साऽऽशोतनयो ताम	३८ ५१३	साहस्य बर्षयामास	स मा ६ ४३०
साय भूयं शमुद्वृत्ता	२६ ११३	साश्वोत्तरेण तु	२६ ६७३	साहास्यं शिवायं वाशोर्	४३ २१०
सायवन्ति तयो धोरं	स मा २२ ४२०	साश्वोत्तया ते षण्ये	४३ १४०३	सा हि पुष्या सतिच्छ्रेष्ठा	४२ ३६०
सापरिहस मरुकां	२६ ७००	सा बह्याय श्माकावा	४६ २२३	सा हृता रागणेन	स मा १६ ११३
सायु दानरगास	६७ २७३	सानिनायो जगामानुद्	स मा २७ ५३	साह्यगुणा वृत्ता यवे	४२ ५००
सायुवा-दुर्दृष्टा []	१० २२०	साश्वय्य श्रुतीनां हि	२६ ५१३	साह्यगु वतारस्य	२ ५२३

सिंहारिजो बालिनील	२७ ६०	सुतलशरय दैर्घेन्द्र	६५ ५६६	सुराशामधिप गक	३६ १५६६
सिद्धादयो ये धनयो	५६ १६६	सुतते कूर्ममचल	६३ ३६६	सुरान्तिमुसमभ्यर्थ	५७ १३०
सिद्धारिजोत विधिने यदैव	१० ५७७	सुतने वसतो नाय	६५ ५५६	सुरान् प्रविच भगवाश	४४ १००
सिद्धासने दैर्घपरति	५८ २१०	सुता सवरपरस्मायै	२२ ५५०	सुरान् सङ्घामाभास	४४ ६०
सिद्धोऽथवदुत्सद	२६ ५२६	सुत्तान्दय जननी	२३ १५६	सुरान् कृतमार्गवसुरोत्थरात्	६ ५८०
सिद्धोऽथ यने मकरस्तोके	५० ३१०	सुत्तयने निर्गते तु	६७ २०६	सुरारणि गवमनेष्य दोन	५० ३२६
सिद्धाना वायवमाकथ्य	३८ ६१०	सुत्तयो द्रागवार	५६ २५०	सुराश्र नियमुत्तुर्गे	४३ ६५०
सिद्धानामुत्तितो धर्मो	११ १७६	सुररत्र वागागाय	८ २७०	सुराश्र तवै नैतोवयम्	५२ ८८०
सिद्धार्थै स्तवैर्वापि	१८ १७६	सुरेत्तनयो धीमान्	३७ ५१०	सुरासुरस्यै सर्वे	५१ १२०
सिद्धिमयाभिलषिता	स मा १३ २६०	सुरथरा कट्टा व	३१ ६७०	सुरासुरस्य श्रीमान्	स मा ३ २६६
सिद्धशरम्बु विद्यागत	स मा २५ ३००	सुनाभ इति न क्वाता	२५ १०	सुरासुरा पितृगणा	५६ ८६६
सिद्धोसि दानवपते	४४ ६८६	सुनाभमभ्येव हिमावन्सु	३२ ११२६	सुरास्तेऽपि सहस्राश	२६ १२०
सिनी चैव सुनामा च	१३ ३२०	सुनाभा नभिरव्यर्थै	२६ १६०	सुरूपतामवाप्त्यायां	५३ ८२६
सिन्ना ह्यवती च यथा	१३ २४०	सुनासावगारोष्ठम्	७ ६०	सुरुपाभ्यनिजायन्ते	५४ ३१०
सिपिनुवाहिरिणाम्ये य	२२ ३६०	सुनेन मन्वराय्ये	६३ ३१०	सुरे प्रमातुजठर प्रावष्टो	स मा ८ २८०
सीता नामेति विख्याता	स मा १६ १००	सुन् गीतारिक्तस्वम्	५३ ८५६	सुर सरुद्रे संप्राप्तम्	३६ १५७६
सीधम् देवतेन्द्रेव	२८ ४६६	सु हस्ते समायाय	५३ ६७६	सुरोरो द्विसुरस्तस्य	११ १७६
सुशरा अञ्जन प्रोक्त	३५ ६२६	सुन्द भ्रातासि मे वीर	५३ ७७६	सुरवर्षस व वरुण	३१ ६८६
सुकुमारारोरोय	३० ३७६	सुपुङ्खै र्व्यामास	५४ १५०	सुवर्गेश्वरलाति	स मा १० ५४०
सुक्योति च वचसासो	११ २६	सुसुभ्रापि सुविश्वानरो	५३ १६६	सुवर्गैर्यनसघातो	२१ ७०
सुक्येऽथ विन्ध्यमूलस्थास	१३ ५५०	सुभोत्वितस्तथा ब्रह्मा	स मा ५२ १६६	सुवर्गैर्यनसघातो	स मा १० ५१६
सुखदु खानि दैर्घेन्द्र	५१ ५८०	सुप्रभ च सुवनाय	३१ ७२६	सुवर्गैर्यनसघातो	स मा १० ५१६
सुखान् सुख महारोषय	स मा ११ १६०	सुप्रभा वाचनानी च[विना ^०]	स मा १६ १८६	सुवर्गैर्यनसघातो	स मा १६ ३५६
सुखारोमस्य धर्मस्य	२७ ५१६	सुप्रभा काचनानी च[सुरे ^०]	३६ ५४६	सुवर्गैर्यनसघातो	३१ ७२०
सुखेनोवाह स विम	स मा १६ १७६	सुप्रभा नाम सा देवी	स मा १६ २१०	सुवर्गैर्यनसघातो	६४ ६८६
सुखोपविष्ट परमासने च	२० २४०	सुप्रसा सुवेसुभ्र	३१ ८३६	सुवर्गैर्यनसघातो	३१ ६६०
सखोपविष्टायाया	५३ २२०	सुप्रज्ञ च पापानि	३६ १०३०	सुवर्गैर्यनसघातो	५६ २०६
सखोपविष्टास्ते देवा	स मा २३ २८६	सुप्रस्थप्य नमस्तेऽस्तु	५८ ५६०	सुवर्गैर्यनसघातो	६२ ३४०
सुपर्चिर्हैतयूणानि	६८ ४६०	सुभयो दानीयच	स मा २५ ३५०	सुवर्गैर्यनसघातो	४५ २८०
सुपर्चो रूपसम्पन्नो	स मा १० ७३०	सुभोगो भोगिता वाजे	२५ ५७०	सुवर्गैर्यनसघातो	स मा २७ ३३६
सुचरनेनोर्ध्व महाप्रभे लपण	३२ ११६५	समहन्त तत वान	स मा २८ २३०	सुवर्गैर्यनसघातो	१२ ५६
सुचरणा सचक हि	३२ ७८६	सुरच ह्यग्नी माह	३६ ११६०	सुवर्गैर्यनसघातो	४४ ६३६
सुचक्रायो निज चक्रम्	३२ ७४०	सुरसस्य तवा रागम	३७ ६४०	सुवर्गैर्यनसघातो	६० १७६
सुचिर विस्मितासाध	५१ २१०	सुरनेन स वागार्तो	३६ ३५०	सुवर्गैर्यनसघातो	१२ १३०
सुचोर्गतपसा दृषा	६७ ६६०	सुरनि चरता वायाग	२७ ५०	सुवर्गैर्यनसघातो	३१ ७४६
सुत पर्वतराजस्य	५८ ५०	सुररोणि तवायानि	६८ १५०	सुवर्गैर्यनसघातो	३१ ६६०
सुत नाम पाताल[समासा ^०]	स मा १० ७१०	सुररोणि विवेदत्य	१७ २१०	सुवर्गैर्यनसघातो	१३ ५०६
सुतत्र नाम पाताल[वस]	६५ ५४०	सुरार्ण मनुभागार्थ	६६ ७०	सुवर्गैर्यनसघातो	५ ३५०
सुतत्र नाम पातालम्	स मा १० ६६६	सुरार्ण चिन्तितं गाला	३६ २८५	सुवर्गैर्यनसघातो	स मा १४ २६०
सुतस्यश्च दत्तेन्द्र	६६ ३६	सुरार्ण दितवामार्थ	स मा १७ १२६	सुवर्गैर्यनसघातो	स मा २२ ११०
				सुवर्गैर्यनसघातो	स मा २६ ७६०

सूर्यायुतान् मुखलं प्रहृष्ट	६८.६१३	सोप्याह तव पुत्रोऽस्मि	६४.५३०	स्कन्दस्य बन्धुबीवस्तु	१८.८४
सूर्येन्दुतारका दृष्टाः	१२.१७७	सोमेनं प्रसप्तोऽस्य दैत्यविद्य-		स्कन्दस्य विजयवाचाम्	३२.१४०
सूर्योदये यथापूर्वं	स.मा.८.६३	प्रच्छेदेनं मानिनं	४७.४२०	स्कन्धपत्राङ्कुलता-	६०.२४०
सूर्यो मृगाङ्घ्रिवलजङ्गमाद्यो	८.५३०	सोऽश्ववीर्यं कौ भवान् दूहि	३६.६६०	स्तनौ सुवृत्तानय मग्नं तृषुको	२०.५०
सुष्टः पापसमाचारी	४४.६००	सोऽश्ववीर्यं तदा दृष्ट्वा	स.मा.२८.२४०	स्तन्यानिवो षं पृथुर्दु	४६.३६०
सुष्ट्वा विधाता हि निरुषणाय	२०.१२०	सोऽश्ववीर्यसुत्रदृष्ट्यर्थे	३१.३००	स्तनेन पुष्येन च संस्तुवन्तो	५०.३७०
सुष्टुस्तु पुरुषो धीमान्	२.३८०	सोऽश्ववीर्यवितोकोत्वं	४३.१४६०	स्तुतिं चक्रे महापुण्या	४४.६१०
सृष्टिं क्विन्तस्तस्य	स.मा.२२.१६०	सोऽश्ववीर्यं भोह मां युक्तः	३७.३३०	स्तुतोऽहं भवता पूर्वम्	स.मा.६.३३०
सृष्टिकामेन च पुरा	स.मा.२८.२२३	सोऽश्ववीर्यं वद मेऽश्वीव	४३.१४००	स्तुतो हि भक्त्या नृणां वै	५६.११६०
सृष्टिकाले भगवता	स.मा.२८.४३३	सोमक्षये च समाप्ते	स.मा.१५.४७३	स्तुतो हि सर्वपापानि	५६.११६०
सृष्टिगर्भं नमस्तुभ्यं	६०.८३	सोमतीर्थे च तत्रापि	स.मा.२०.४७	स्तुत्वैवं स महादेवं	स.मा.२६.१६३०
सेनाप्रगामिनं चक्रे	२०.३७०	सोमपातफलं सर्वाः	३६.५५०	स्तुवन्ति ब्रह्मणां साधुं	४६.२७३
सेनाप्रे निहते तस्मिन्	२१.२३३	सोमपुत्रस्य सन्मैतद्	५.३६०	स्तुवन्ति लक्ष्मीमित्येवं	४६.२६३
सेनाध्यक्ष नमस्तुभ्यं	६०.११०	सोमप्रभाया वचनं	२५.६२३	स्तुवन्त्यभिमिश्रयन्ति	६७.५२०
सेनापत्येऽभिपिक्तस्तु	३२.१३	सोमराजेति विख्यातम्	४४.३५०	स्तुवन्मृगाशीं मुमुता कयेन	३६.१६६०
सेनायाः पतिरस्त्येव	३१.५२३	सोमलोकात्मजोऽति	स.मा.१३.३५०	स्तुहि भक्तिं हृदो कृत्वा	५६.११५०
सेवन्ति नियतात्मानो	स.मा.१२.१३०	सोमवंतोऽङ्गवज्रोप्रे	५.३४०	स्तोयानुक्तक्यानुक्तः	४६.२६०
सेवन्ते मुक्तिप्रदायै	स.मा.१.१००	सोमव्येपोऽङ्गो राजा	२२.२६०	स्तोत्रेणालेन च नरो	स.मा.२४.५३
सेवमान् नरा नित्यं	स.मा.१२.१५०	सोमविक्रिणो ये च	१२.२६०	स्तोत्रो यस्मात्संज्ञात्	स.मा.१०.५१०
सेवितानि प्रकलेन	स.मा.२५.४५०	सोमगमेति विख्यातो	५३.५३०	स्तोत्रुत्तयोः सार्धं रूपं	५.४६३
सेव्यं सौर्यं महतेजसाः	स.मा.१.१२०	सोमसिद्धा हृदि.कंस्या	स.मा.११.१३३	स्तोत्रसमाप्तं भवती च कथा	२०.२६३
सेव्यं पांशुं प्रकलेन	स.मा.२५.२२०	सोमाप्यनयेदोषं	३१.८५०	स्तुत्यर्थं दारयामास	५८.२३३
सेव्यवाण्यमेदासौ	३.६०	सोमिभरं सोकर्त्तु	५७.५२०	स्तुत्यर्थं च जतरथांश्च	४३.३७३
सेव्यस्य मध्ये च बलिः	४७.१२०	सोऽयं पुत्र विष्णुपात्रो	५६.५५३	स्त्यागवे विष्णुरूपाय	४३.३१३
सेव्यार्धं ममनालोच्य	२१.१३३	सोऽयं स्तानाम्हातीर्थे	स.मा.२६.५२०	स्त्यायुं ब्रह्मा पापं प्रादाद्	३१.६३३
सेवाधिगते स हृदो भवेत्	३१.१०५	सोऽहं कदाचिं मृदात्मा	५३.५५३	स्त्यायुजं हुं हुम्नवनं	३१.८७३
सेवा चैतद्वदन्ममि	स.मा.११.५३	सोऽहं तथा करिष्यामि	स.मा.६.२५३	स्त्यायुतीर्थं स्तौ मन्थेद्	स.मा.२१.३०३
सोऽभ्रान्ता मृता पुत्री	३८.११३	सोऽहं तात महामानी	६५.६३३	स्त्यायुतीर्थं समेष्यन्ति	स.मा.२४.५०
सोऽभ्रान्तानोऽप्य धीरस्य	५६.७३	सोऽहं दानवराजं	८.५३३	स्त्यायुतीर्थं प्रभावं तु	स.मा.२६.१३
सोऽतीर्थं वृषाद् भगवत्	६५.५६३	सोऽहं दानवराजं	६६.५०	स्त्यायुतीर्थस्य माहात्म्यं	
सोऽप्याञ्जनीना रुद्रस्वावताभि	४६.६३	सोऽहं दानवराजं	२३.५३	[वदस्य]	स.मा.२२.१३
सोऽर्कस्तु क्रियां कार्यां	१५.५३०	सोऽहं दानवराजं	२३.५३	स्त्यायुतीर्थस्य माहात्म्यं	
सोऽरेणमि हि धाम्ना	५२.७८३	सोऽहं दानवराजं	२३.५३	[च०]	स.मा.२२.१३
सोऽजातिः स महास्यायुः	स.मा.२२.७८३	सोऽहं दानवराजं	२३.५३	स्त्यायुतीर्थस्य महात्म्याद्	स.मा.२६.६२३
सोऽदिष्टो महोदस्य	४८.३१३	सोऽहं दानवराजं	२३.५३	स्त्यायुतीर्थं मुदीं दूण्या	स.मा.२७.२६०
सोऽपनीतान् सदाप्रादात्	१७.५५०	सोऽहं दानवराजं	२३.५३	स्त्यायुतीर्थं यदो विदि	स.मा.२७.३०३
सोऽपस्वमानो गिरिजां	३३.३७०	सोऽहं दानवराजं	२३.५३	स्त्यायुतीर्थे ये मनी	स.मा.२८.२६३
सोऽपनीतो धरो प्रातः	३१.६५३	सोऽहं दानवराजं	२३.५३	स्त्यायुतीर्थस्य हि सोऽप्यु	स.मा.२३.१५०
सोऽपि सन्धति साधुनां	६७.६५०	सोऽहं दानवराजं	२३.५३	स्त्यायुतिर्नृस्य माहात्म्यं	स.मा.२४.७०
सोऽपि दिव्यां तनुं स्मृत्यु	६८.६०	सोऽहं दानवराजं	२३.५३	स्त्यायुतीर्थस्य माहात्म्यं	स.मा.२५.७०
सोऽपि मुक्तमजानीति	स.मा.१५.७८०	सोऽहं दानवराजं	२३.५३	स्त्यायुतीर्थस्य माहात्म्यं	स.मा.२५.३३०
सोऽपि यतिं परं स्थानं	स.मा.७.५०	सोऽहं दानवराजं	२३.५३	स्त्यायुतीर्थस्य माहात्म्यं	स.मा.२५.३३३

श्रीकाव्यसूची

स्वागोमंठं कौलपतिर्	स.मा.२६.५२९	स्नात्वा बोकायुजे तीर्थे	५७.५६६	स्वायंयामास हृत्तेन	५८.७३०
स्वागोमंठं दक्षिणतो	स.मा.२५.५२८	स्नात्वा गोदावरीतीर्थे	३६.१२८३	सृष्ट्वा स्नायीत चौकार्यै	१५.१६०
स्वागोमंटेऽप्रसादेन	स.मा.२४.३१०	स्नात्वा च तीर्थेषु विमुक्तपाप	३.५१०	सकुरन्ति नीताभ्रगणेषु विद्युतो	१.१७०
स्वागोमंटेऽथ पूर्वेषु [सोम*]	स.मा.२५.१०	स्नात्वा च सङ्गमे नद्या	५७.५२९	स्मरन्त्या सुवर्षं धीरं	३८.१०
स्वागोमंटेऽथ पूर्वेषु [हस्ति*]	स.मा.२५.२५९	स्नात्वा जने हि बान्निवा	६२.२५०	स्मरन् सतीं महादेवम्	६.२६३
स्वागोमंटेऽथोत्तरतः	स.मा.२५.१२९	स्नात्वा दद्या हृत्गतोर्वे	५५.१०	स्मरन्मालोत्थपापास	६.२५०
स्वाग्गोमन्तरे स्थितो यस्मात्	स.मा.२३.१५५	स्नात्या तीर्थवरे तस्मिन्	स.मा.१५.२१०	स्मृतं तराचरदमम्	३५.१५०
स्यात् नैनीयमासव्याप	५.७५५	स्नात्वा तु देविकाया च	५५.५५	स्मृत्वा तीर्थेषु गन्तुं सर्वान्	स.मा.१८.१६०
स्यात् नैनीयमासाद्य	५२.३६०	स्नात्वा ते ऋषि रम्भोह	३६.२६६	स्मन्तानि द्विजाभ्यां स	३६.६५०
स्यान्नि स्थलानि पाशोन्नमस्तर्करं	१८.७२०	स्नात्वा दद्याऽन्मेषे च	५७.५२०	स्मन्नेवाश्वपुत्रेण	३६.७८५
स्यान्नि द्वीपसंनिधि	११.२३०	स्नात्वा फलोण्या सन्नि	५५.११९	श्वचन्द्रनादिदिग्गन्तौ	स.मा.१०.७५५
स्यान्ने शशां कुम्भसन्निष्काशान्	२७.३००	स्नात्वा मिषात्वा तर्षव	स.मा.१३.५०३	श्वम्भवे शगेन्द्रस्य	२६.८०३
स्वायंपापासत देवैरो	स.मा.१६.५०	स्नात्वा मुक्तिमवाप्नोति	स.मा.२५.५७३	शृष्टा षड्यवस्वाम्यु [जगतो*]	२.२३०
स्थित शैवाऽर्तिनिर्ध	५.२०९	स्नात्वा ददाह्वरे तीर्थे	स.मा.२५.३००	शृष्टा च राचरस्वाम्यु [गता]	स.मा.२६.१०.७२
स्थित रमण्डलनायो तु	५७.६६०	स्नात्वात्थं देवान् स रविप्रजातो	३२.११५०	शृष्टा भूत्वा स्थितो योगी	५६.८१५
स्थितस्तथास्येव ततो महापि	३३.८०	स्नात्वात्थं सर्वं मात्या	२८.६५७	शृष्टारं सर्वभूतानां	स.मा.२८.२५५
स्थितां भगवतीं पूजे	२३.१५०	स्नात्वा विरजने तीर्थे	५७.६९	शृष्ट्येव मरिचतं शृष्टी	५६.८००
स्थिताय धारमानाय	स.मा.२६.८१०	स्नात्वा शुद्धिमवाप्नोति	स.मा.२१.१६५	शुक्लपुषो परधामाति	६०.३६५
स्थितासु पुरतस्तस्य	३६.१२२०	स्नात्वा सधूम विधिबद्ध	५२.६९	स्वं विवर्तं विमुञ्चति	१६.१०५
स्थितं वर्तुं जगन्नाथ	स.मा.१६.८०	स्नात्वा सप्रहितं तीर्थे	५०.२८५	स्वं विदुं कृपामादाय	६५.२६०
स्थित्वा प्रोवाच देवैरेन्द्रो	५५.१६०	स्नात्वा स्नात्वा च तीर्थेषु	स.मा.२६.५६५	स्व एवं माहृन्माहृष्ट	५७.१७०
स्थित्वा श्रेष्ठस्य श्यागुच	स.मा.२६.१३८०	स्नात्वा हृदये तु समस्य	स.मा.१५.५५५	स्व सन्धश्च ध्रुवोऽमूरु	स.मा.२२.२१०
स्थित्वासु स्वर्षि ऋत्विग्नु	५५.७१०	स्नात्वात्थं सर्वान् हृषीकेश भगव्या	३२.११५०	स्वभंगशा वर्त नञ्या	१५.१२५
स्थोषतां विस्तृते रम्ये	२६.५५	स्नानं कर्तुं व्यवहितो	स.मा.१७.७०	स्वभंगमथर्मयोगेन	५३.६६५
श्येय विदोषतो मासम्	३६.१६६५	स्नानं वर्तं शया धादि	स.मा.१५.५००	स्वभंगमनभोगादे	१२.२०
स्नात सधुज्येव कुण्डे	१७.३२०	स्नानं मुक्तिचरं प्रोक्तम्	स.मा.१२.५०	स्वभंगमरुतिना विप्र	स.मा.२६.२८०
स्नातकस्वाम्यामाश्रयेव	१६.१२९	स्नानदानतपसोह	३५.१५५	स्वच्छन्दपात्रो विवरात	५५.३६०
स्नातकस्वयं पाठेन	३.५८०	स्नाने हृते तीर्थवरे सुगुण्ये	६६.६५	स्वच्छातिशयैर् दैव्य	८.९६०
स्नातकस्वयं कताऽथस्तोत्र	२८.६५५	स्नानेन तेन स्नायीत	१८.१६०	स्वच्छेदयोगेन विवेका देव्या.	५०.५६०
स्नातकस्वयं सर्वेषु त्रिपुरान्तकस्य	३.५१०	स्नान्ति च यद्दद्यान्नाम	स.मा.१२.३०	स्वच्छासृष्ट्वा परदारवर्जो	५०.३६०
स्नातकस्वयं देवस्य तदेततो नराय	५०.२५०	स्नायथाश्वक्रे विद्मन्	३६.२५०	स्वच्छोदया द्योतयन्तं च	५६.३०
स्नातकानां च भूतानां च	१३.३३०	स्नायतां विधानेन	३६.३०	स्वच्छोपाच्छरन्तं पारं	३३.२३०
स्नातकं भस्मिना समं	स.मा.१५.७००	स्नायन्ति रश्मिना सिग्ग्याम्	स.मा.१७.३०	स्वधर्मं य सुमुल्लस्य	१५.३३५
स्नातुं तूष्णीं मन्त्रपाठम्	३६.१०५५	स्नायाच्छिरस्नानतया च नित्य	१५.५३५	स्वधर्मं धर्म्युत्तमं	५३.७५५
स्नातुं य वन्देऽऽ मतोऽप्यगाम्	२३.५२०	स्नायते देवपात्रेषु	१५.२३०	स्वधर्मं विष्णुतिर्नाम	१६.३७५
स्नातुं मानुषता देवो	३५.१७०	स्नायते विवराह	स.मा.१५.५७५	स्वधर्मं प्रकृत्येषु	स.मा.२.११०
स्नातुं च दुन्दुभे तीर्थे	३६.१६०	स्नायन्ति वज्रपवननेत्रजुदाः]	६८.६३०	स्वधर्मं सर्वयोगी शान्तिः]	५६.११५
स्नातुं विवाहोऽप्यय	७.३३०	स्नायन्ति शयपवननन्दाय	३६.१३००	स्वधर्मं स्वाहा तथा शानो	स.मा.१६.१५०
स्नातान् नैव च सा रोमा	३.१००	स्नातुं गन्तुं नैव च	३१.५७०	स्वधर्मं नित्यं कर्तव्यं	५३.९७०
स्नात्या ऋषिपदाशानं	५७.५७५	स्नातुं नराणां शानं	३६.१५५५	स्वधर्मं न हरे देवेषु	१७.१७०

स्वपरिग्रहसमुक्ता []	३२ ४७०	स्वर्णलोपी च अल्पम्	१२ ३८३	हस्तपुक्त महाकोपा	६३ २७०
स्वपुरुषमभिबोध्य पादाहस्त	६७ ३०३	स्वर्णागुरुभवत्सूर्य	४८ १७३	हस्तपुक्तविमानस्था	३० ३०
स्वपोपगमरो यस्तु	१२ २६६	स्वयमतिद्वये विभ्रा	स मा १४ १६०	हस्तपुत्र गधुकरम्	स मा २६ १०८०
स्वप्ने वषेद गदाति	६ ३५०	स्वस्ति शवाङ्गिकाकरो	३२ १५०	हस्तास्य कुण्डलकर	३१ ८६३
स्ववग्नुहन्ता भविता कथ त्यह	३२ ८८०	स्वस्ति ते कुस्ता ब्रह्मा	३२ १५६	हस्तास्य पट्टिषोनाय	३२ ६६६
स्ववक्ष निजित दृष्टवा [तत]	३३ ७६९	स्वस्ति ते नानागणेशस	३२ २१०	हस्तप्रानतभूषिष्ठ	४३ १५५०
स्ववक्ष निजित दृष्टवा [मत्वा]	४३ ७६९	स्वस्ति ते गकरो भक्त्या	३२ १६३	हताभारतयान्नास्तकद	४४ १६३
स्वभावमात्मनो द्रष्टु	५६ २६०	स्वस्ति द्विपादिकेभ्यस्ते	३२ २१६	हते तुष्टुभ्ये विमुक्षे च राहौ	४२ ३७१
स्वभातुल बोध्य वनो कुमार	३२ १११६	स्वस्त्यस्तु लोकेभ्य इति	३४ २२०	हते हिरण्यकशिपो [देवा]	स मा ४ ५०
स्वभात्मान गच्छ शीघ्र	३४ ७७०	स्वस्त्या हुरा समामभ्य	२० ५१०	हते हिरण्यकशिपो [यव]	४५ १६०
स्वभात्मान निरोधनाय	३४ ३६	स्वस्त्यो भवात् कि त्वसुरेन्द्र		हस्तोऽय भूमो निपपात वेगात्	४२ ४८०
स्वय दान गमिध्यामि	३४ ५८०	साम्प्रतम्	२० ३३	हत्वा कुण्डलमु मुसलेन नन्दो	४२ ४५३
स्वय दत्ता धारण्य	३४ ३६०	स्वागेत धैव ते गर्भे	स मा ७ १००	हत्वा कुमरो रणमूर्ति तारक	३२ ८६३
स्वयप्रकाश परमार्थतो य	स मा ८ २५३	स्वा स्वा गति प्रयातेषु	४४ ८३०	हत्वा च दैव्य नृपतेस्तनूजो	३३ १५३
स्वयमुत्र गधुवने	६३ १४०	स्वा स्वा कमक्रिया कुर्वु	१५ ४७०	हत्वा सारथिभेकेन	२१ २६०
स्वयमुवा चापि निगाचरेन्द्रत	१६ ६३०	स्वागत व मुर्येष्ठा []	स मा ४ १३०	हत्वाऽगुरुगमास्तवात्	स मा ६ ८३
स्वय रुद्रण देवर्षे	१७ ६४०	स्वागतेनाभिवार्ये न	४३ २२३	हत्वाऽव समरेऽजयोद्	४५ १६३
स्वय श्रुतीनामपि चादिकला	६५ ४२०	स्वागतेनाभिसंपूज्य	२५ ३६०	हत्वा ब्रह्मे वाङ्मन्त्रोक्तो	४५ ८३
स्वय स्वभार्यासहितप्रकार	६८ ५८३	स्वातिभोगे च दगागा []	४४ १२३	हत्वाऽभ्राय बलवान्	४६ २७३
स्वय हि मारथिध्यामि	२६ ६८०	स्वाभ्याय श्वाभके भक्तिर	११ २६०	हत्वा गतमियायोगे	४५ २३१
स्वयमन्यागमद्वारि	२६ २४०	स्वाभ्याय ब्रह्मण्यै न	११ २३१	हत्वा च हयमानाश्र	६० ३२१
स्वयनेबाजगामाय	स मा २८ ६०	स्वाभ्याय बहुविजानं	११ १७०	हत्वा तामिति सनाभ्य	स मा २२ ६७०
स्वरूप तव यशामि	५ ४५३	स्वाभ्याय यानिरता []	४८ ४५१	हयधीव शालतेमि	४० ६२३
स्वरूप त्रिपुरम्नस्य	५ ३०३	स्वाभ्यायवत पितर	स मा ३ १००	हयधीवप्रलम्बासौ	६२ ३००
स्वरूपी चाविद वाक्यम्	६ ८१०	स्वाभ्यायवेत्तेतृत्व	११ १५०	हयगिण शशगिणा []	स मा ८ ३००
स्वरेण परमयोगा	स मा ३ २२०	स्वाभ्यायोऽशानिनिसुधुपा	१४ ५३	हयगिण च कृष्णागि	६३ २०
स्वर्ग गते वातरि वामुदेवे	६५ ६३३	स्वानि कर्णाश्रयोक्तानि	१५ ६४३	हयगिणै नमस्तेऽह	६१ २०
स्वर्ग गृहे वायुपवात्र यस्या	२० २६३	स्वानुलोमायने तीर्थे	स मा १४ ४७०	हयस्यानुययो श्रोमात्	४२ ४१०
स्वर्गाहार ततो गच्छत	स मा २० २३३	स्वानेकादे विजम्बुवे	६ ३२०	हयास्या महिवास्याश्र	२१ १६०
स्वर्गाहारयन्मूर्गेय	स मा १० ५४०	स्वामितलव्यममाना []	६ १३०	हर हरिजिवाभूत	४६ ३४३
स्वर्गमोक्षा नक्तिर्वात	४८ १२०	स्वायमुत्र समारम्य	४६ ३०	हरवत्ता गगात्पु	३१ ६२३
स्वर्गाहाय परिष्वज्य	३४ ३६०	स्वायमुत्रैव पुत्रोऽग्नू	४६ ४३	हरप्रसागन्धतानि	६ १०५०
स्वर्गाद् नान्यवप्राजान	३६ १३२०	स्वायमुत्रैवस्य पुत्रस्तु	४६ २४०	हरये च उमाभवे	स मा १५ ३४०
स्वर्गाहर्षप्रतिभ्र	१३ १३०	स्वायमुत्रैव तु मारतो	४६ २४३	हरयो रयवाहाश्र	६ २००
स्वर्गाहर्षफलदो	स मा ६ २५०	स्वाहाहार नमस्तुभ्य	६० ३१६	हराय बहुरुपाय	स मा १५ ३५३
स्वर्ग विरिञ्च सन्नाद मुमुक्षा	६६ १६०	स्वाहा स्वधा श्वेतवायो	स मा २६ १३१०	हरि हृषा च देवर्षे	६ २३
स्वर्गे गहस स मु योजनाना	६६ १७३	स्वेऽष्टा तिष्ठ वा गच्छ	६२ ५४३	हरि च वलनेव च	स मा १३ १६३
स्वर्गे स्वर्ग निवसति	४८ १७३	स्वेऽष्टा पातित विद्वां	स मा २३ १६०	हरि निष्पती द्विद्रा	५१ २६०
स्वर्गे धाराय च तथाप्यारि	२८ ७७०	ह		हरि हरेण समुक्तं	स मा १३ २२०
स्वर्गमात्र पचाद्वां च	३१ ६७३	हर्तं नाम्नु नमस्ते च	६१ ५०	हरि कुमारं सविचरिन् नयद्	३३ ११२०
स्वर्गलिङ्गस्य पचाद्वा	स मा २५ ४६३	हस्तपुत्रोऽभवात्	२७ १२६	हरिणि मारुणि	६० १६३

श्रीकाशीमुद्रा

हरिवाहुरायेन	४५११	हार्दित बुद्धि सर्वे	१६ ४१०	हृताऽऽमासाय पतितता सं	४६ १००
हरिपत्रिकर्ता वा	६८ ४००	हित सर्वस्य जगत	५० १००	हृतामिष दीप्यन्तम्	स मा ३ १०३
हरिवाक्यामृत पीत्वा	१७ ५३३	हितार्थं सर्वदेवानां	स मा २१ ६१	हृत्वे च पुनश्चाभ्यां	स मा ५ १०
हरिश्च चर्कं मुमुक्षुषयेन	३५.७६३	हितान्निष्ठा दीकता	८ ६८०	हृत्माने स्यात् राष्ट्रे	स मा १८ ३११
हरोम्बर्कं कर्षयद्दक्षिणतः	४४ ४६३	हितमङ्गलितुं कान्त	स मा २६ ८४३	हृतं राज्यं न दुःसाय	स मा ७ ६१
हृत्पत्नीं सार्वभौमो वासे	४१ ११	हितमद् भवनं ध्रुवा	२६ ५५३	हृतं राज्यं हृत्प्रभाय	स मा ७ ८३
हृत्तां मेता च मोक्षिणः	६० ३८०	हिरण्यकणितुर्वीरः	४७ ५०	हृत्तानि क्लेशं भवे	५१ १८३
हृत्प्रभायत्नं सद्गता	२६ ४२०	हिरण्यकणितुः पुत्रम्	१० १५०	हृत्प्रं च परं ब्रह्म	स मा १० ५५
हृत्प्रदानं किमर्थं च	स मा १७ १२०	हिरण्यकर्मणो गङ्गानि	स मा २६ १३६०	हृत्प्रो सत्पत्नी ब्रह्मा	६५.२३०
हृत्प्रभायत्नं शीतम्	१८ २८३	हिरण्यकर्मणो गङ्गानि	४१ ७१०	हृत्प्रो वा ब्राह्मणे यो न	१ ११
हृत्प्रानुष्णं पीत्वाप्यान्	४३ १०१०	हिरण्यकर्मणो गङ्गानि	६ ४५३	हृत्प्रो वा गन्तव्यम्	५१ ५०
हृत्प्रिया पचनप्रदाय	१८ १७०	हिरण्यकर्मणो गङ्गानि	४७ ४३०	हृत्प्रो वा प्रोक्तानां	६८ ३८०
हृत्प्रिया संस्तुता ये तु	६८ २११	हिरण्यकर्मणो गङ्गानि	१८ १६३	हृत्प्रो वा देनं मुक्तम्	४ ५३३
हृत्प्रानुष्णं गुणान् सर्वान्	स मा ६ ८०	हिरण्यकर्मणो गङ्गानि	स मा २६ १४५३	हृत्प्रो वा विद्यालौक्ये	५६ १०३
हृत्प्रानुष्णं देवेन	स मा २२ ६००	हिरण्यकर्मणो गङ्गानि	३३ १००	हृत्प्रो वा गुणान् च	स मा १० २५५
हृत्प्रानुष्णं गुणान् च	४३ ८३३	हिरण्यकर्मणो गङ्गानि	५६ ३८३	हृत्प्रो वा गुणान् च	स मा २ १२०
हृत्प्रानुष्णं तिष्ठन्तं	स मा २३ २३०	हिरण्यकर्मणो गङ्गानि	स मा २७ ४३	हृत्प्रो वा गुणान् च	६३ २१०
हृत्प्रो च बुद्धिप्रदा	४३ ५३३	हिरण्यकर्मणो गङ्गानि	८ ५३३	हृत्प्रो वा गुणान् च	स मा २६ ३६०
हृत्प्रो हृत्प्रो स्यात् पुत्र्यो	५४ १६३	हिरण्यकर्मणो गङ्गानि	३३ १५०	हृत्प्रो वा गुणान् च	६० ३७३
हृत्प्रो स्यात् पञ्चमोऽङ्गुलिः	२२ ५००	हिरण्यकर्मणो गङ्गानि	८ ३६३	हृत्प्रो वा गुणान् च	१४ ३५०
हृत्प्रो पञ्चमोऽङ्गुलिः	स मा २६ १५८०	हिरण्यकर्मणो गङ्गानि	३० १७०	हृत्प्रो वा गुणान् च	२३ ३४०
हृत्प्रो पञ्चमोऽङ्गुलिः	३७ ८१०	हिरण्यकर्मणो गङ्गानि	स मा २६ १३०	हृत्प्रो वा गुणान् च	१६ ५८३
हृत्प्रो स्यात् प्राद्वर्षितं बुद्ध्या	३० ३१०	हिरण्यकर्मणो गङ्गानि	स मा १० ७८०	हृत्प्रो वा गुणान् च	१८ १७०
हृत्प्रो स्यात् प्राद्वर्षितं बुद्ध्या	३५ १३३	हिरण्यकर्मणो गङ्गानि	४० २६३	हृत्प्रो वा गुणान् च	स मा १४ ११०
हृत्प्रो स्यात् प्राद्वर्षितं बुद्ध्या	१६ १६३	हिरण्यकर्मणो गङ्गानि	६४ ८०	हृत्प्रो वा गुणान् च	स मा १४ ८०
हृत्प्रो स्यात् प्राद्वर्षितं बुद्ध्या	२१ १८०	हिरण्यकर्मणो गङ्गानि	५६ ११३	हृत्प्रो वा गुणान् च	स मा १४ १३३
हृत्प्रो स्यात् प्राद्वर्षितं बुद्ध्या	७ ३६३	हिरण्यकर्मणो गङ्गानि	३१ ८०	हृत्प्रो वा गुणान् च	५८ २४३

Addenda (परिचय)

४६ [हृत्प्रो गङ्गानि १७ गङ्गानिभारं वाचनीयम्—
 एष्वनी मद्राज्या स मा ११ ८३]